पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व

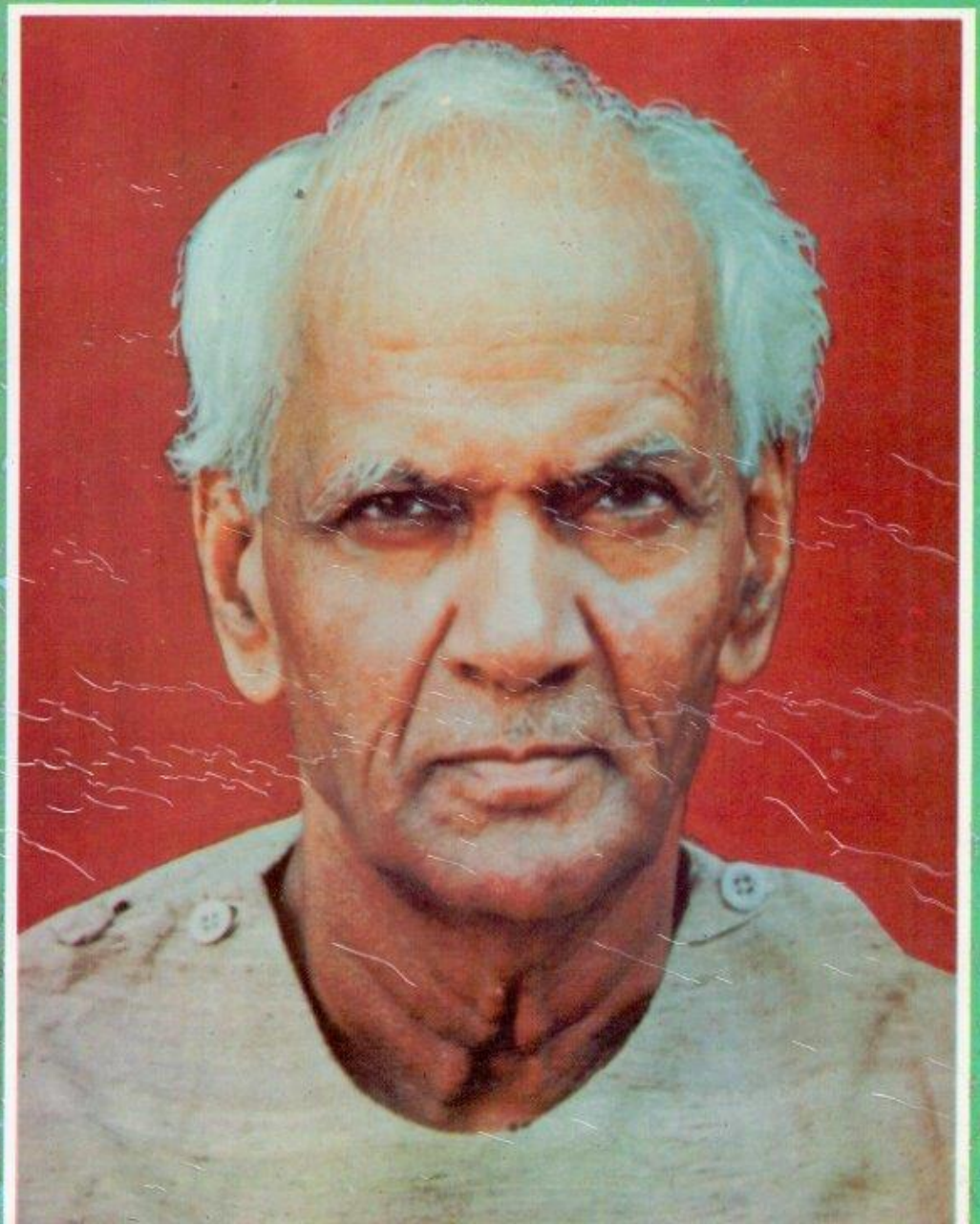

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❐
प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

❐
© सर्वाधिकार सुरक्षित

❐
द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

❐
मूल्य १२५)

❐
मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ॥

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ॥

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ॥

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

विश्व की सर्वोत्कृष्ट संस्कृति भारतीय संस्कृति है, यह कोई गर्वोक्ति नहीं अपितु वास्तविकता है । भारतीय संस्कृति को देव संस्कृति कहकर सम्मानित किया गया है । आज जब पूरी संस्कृति पर पाश्चात्य सभ्यता का तेजी से आक्रमण हो रहा है, यह और भी अनिवार्य हो जाता है कि, उसके हर पहलू को जो विज्ञान सम्मत भी है तथा हमारे दैनन्दिन जीवन पर प्रभाव डालने वाला भी, हम जनजन के समक्ष प्रस्तुत करें ताकि हमारी धरोहर–आर्य संस्कृति के आधार भूत तत्त्व नष्ट न होने पायें ।

भारतीय संस्कृति का विश्व संस्कृतिपरक स्वरूप तथा उसकी गौरव गरिमा का वर्णन तो इस वाङ्मय के पैंतीसवें खण्ड 'समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान' में किया गया है किंतु इस खण्ड में संस्कृति के स्वरूप, मान्यताएँ, कर्म काण्ड–परम्पराएँ– उपासना पद्धतियाँ एवं अंत में इसके सामाजिक पक्ष पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है । इस प्रकार दोनों खण्ड मिलकर एक दूसरे के पूरक बनते हैं ।

भारतीय संस्कृति हमारी मानव जाति के विकास का उच्चतम स्तर कही जा सकती है । इसी की परिधि में सारे विश्वराष्ट्र के विकास के–वसुधैव कुटुम्बकम् के सारे सूत्र आ जाते हैं । हमारी संस्कृति में जन्म के पूर्व से मृत्यु के पश्चात् तक मानवी चेतना को संस्कारित करने का क्रम निर्धारित है । मनुष्य में पशुता के संस्कार उभरने न पायँ, यह इसका एक महत्त्वपूर्ण दायित्त्व है । भारतीय संस्कृति मानव के विकास का आध्यात्मिक आधार बनाती है और मनुष्य में संत, सुधारक, शहीद की मनोभूमि विकसित कर उसे मनीषी, ऋषि, महामानव, देवदूत स्तर तक विकसित करने की जिम्मेदारी भी अपने कंधों पर लेती है । सदा से ही भारतीय संस्कृति महापुरुषों को जन्म देती आयी है व यही हमारी सबसे बड़ी धरोहर है ।

भारतीय संस्कृति की अन्यान्य विशेषताओं सुख का केन्द्र आंतरिक श्रेष्ठता, अपने साथ कड़ाई, औरों के प्रति उदारता, विश्व हित के लिए स्वार्थों का त्याग, अनीतिपूर्ण नहीं–नीतियुक्त कमाई पारस्परिक सहिष्णुता, स्वच्छता–शुचिता का दैनन्दिन जीवन में पालन, परिवार–व राष्ट्र के प्रति अपनी नैतिक जिम्मेदारी का परिपालन, अनीति से लड़ने संघर्ष करने का साहस–मन्यु, पितरों की तृप्ति हेतु तथा पर्यावरण संरक्षण हेतु स्थान–स्थान पर वृक्षारोपण कर हरीतिमा विस्तार तथा अवतारवाद का हेतु समझते हुए तदनुसार अपनी भूमिका निर्धारण सभी पक्षों का बड़ा ही तथ्य सम्मत–तर्क सम्मत विवेचन पूज्यवर ने इसमें प्रस्तुत किया है ।

संस्कृति का अर्थ है वह कृति–कार्य पद्धति जो संस्कार संपन्न हो । व्यक्ति की उच्छृंखल मनोवृत्ति पर नियंत्रण स्थापित कर कैसे उसे संस्कारी बनाया जाय यह सारा अधिकार क्षेत्र संस्कृति के मूर्धन्यों का है एवं इसी क्षेत्र पर हमारे ऋषिगणों ने सर्वाधिक ध्यान दिया है । परम पूज्य गुरुदेव ने भारतीय संस्कृति की कुछ मान्यताओं पर बड़ी गहराई से प्रकाश डाला है एवं प्रत्येक का तथ्यसम्मत विवेचन विज्ञान की–शास्त्रों की सम्मति के साथ प्रस्तुत किया है, पुनर्जन्म में विश्वास, स्वर्ग और नरक कहाँ है, कैसे हैं, ब्राह्मणत्व क्या है–कैसे अर्जित किया जाता है–वर्णाश्रम धर्म परम्परा क्यों व किस रूप में ऋषियों ने स्थापित की, जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष का आधार क्या है तथा आस्तिकता व कर्मफल के सिद्धान्तों को संस्कृति का मूल प्राण क्यों माना जाता है, पूज्यवर ने बड़ी सुगम शैली में यह सब समझाने का प्रयास किया है । आपद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
धर्म–युगधर्म तथा यज्ञ की व्याख्या भी इसमें सशक्त रूप में आयी है । यधपि ये सभी विस्तार से अलग–अलग खण्डों में भी प्रसंगानुसार आये हैं, किंतु यहाँ उनका संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में विवेचन है ।

मूर्तिपूजा–प्रतीकों की उपासना के पीछे क्या वैज्ञानिकता है तथा शिखा–सूत्र, तिलक–माला आदि के पीछे क्या रहस्य छिपे पड़े हैं जो हमारे ऋषियों ने उन्हें इतना महत्व दिया, यह विवेचन पाठकगण इसमें पढ़ सकेंगे । षोड़ष संस्कारों से लेकर पर्व त्योहारों तक तथा तीर्थ यात्राओं, मेलों से लेकर कथा पारायण तक देवसंस्कृति का विस्तृत फैलाव है । इन सभी के स्वरूप को एक पाठक को जैसे प्रारंभिक कक्षा के छात्र को पढ़ाया जाता है, पूज्यवर ने समझाया है । बहुदेव वाद क्या है–हमें इसके माध्यम से एक पर ब्रह्म की उपासना के मार्ग तक कैसे पहुँचना है, यह समग्र तत्त्व दर्शन तथा श्राद्ध–तर्पण आदि मान्यताओं की वैज्ञानिक व्याख्या भी इस में है ।

अंतिम अध्याय में पूज्यवर ने चारों वर्णों व चारों आश्रमों के विभिन्न पक्षों को विस्तार से लिखा है । वर्णाश्रम पद्धति हमारी संस्कृति की विशेषता है एवं समाज की सुव्यवस्था की एक सुदृढ़ आधार शिला है । आज इस संबंध में अनेकानेक भ्रान्तियाँ फैला दी गयी हैं पर वस्तुतः यह सारी विधि व्यवस्था मानवी जीवन को व उसकी सामाजिक जिम्मेदारियों को एक निर्धारित क्रम में बाँधने के लिए बनी थीं । इसी सामाजिक पक्ष में संस्कृति के खान–पान, जातिपाँति, ऊँच–नीच, भाषा, वेश, गुण–कर्म–स्वभाव की परिष्कृति से समाज की आराधना जैसे अनेकानेक पक्ष आ जाते हैं इनका वर्णन विस्तार से हुआ है । गुरु, गायत्री, गंगा, गौ व गीता ये पाँच हमारी संस्कृति के महत्त्वपूर्ण आधारस्तम्भ माने जाते हैं । इनके प्रतिश्रद्धा रख हम अपनी सांस्कृतिक गौरव गरिमा का अभिवर्धन करते हैं एवं इनके माध्यम से अनेकानेक अनुदान भी दैनन्दिन जीवन में पाते हैं ।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सांस्कृतिक पुनरुत्थान के महत् प्रयोजन व उस निमित्त योजनाओं के विस्तार के साथ इस वाड़मय का समापन है । भारतीय संस्कृति के आधार भूत तत्त्वों को सीखने–धारण करने वालों के लिए इस खण्ड में बहुत कुछ अमूल्य सामग्री भरी पड़ी है ।

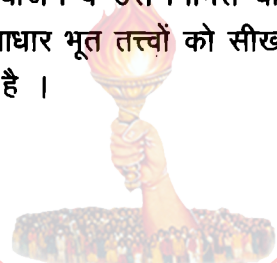

–ब्रह्मवर्चस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंतःस्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंतःकरण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुतः अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बडा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अत: पुन: सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमश: उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत: स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी । उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं । यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी ।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ । गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी । धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है । १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है । १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया । कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं । संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था । तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं । हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया । परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं ।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ । तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तपःपूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था । तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए । स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये । एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी । ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये ।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे । इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक । इसके

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेघ महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ट प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

अध्याय-१

पृष्ठ भूमि १.१
संस्कृति का स्वरूप १.५
मानवता के विकास का उच्चतम स्तर १.५
भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिक आधार १.७
भारतीय संस्कृति में एकता के अमूल्य सूत्र १.९
भारतीय संस्कृति महापुरुषों को जन्म देती है १.१०
भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ १.१४
सुख का केन्द्र आन्तरिक श्रेष्ठता १.१४
अपने साथ कड़ाई और दूसरों के साथ उदारता १.१४
सद्भावों का विकास १.१५
व्यक्तिगत आवश्यकताएँ घटाकर विश्वहित की ओर ध्यान १.१६
शुद्ध कमाई का प्रयोग १.१६
सद्ग्रंथों का स्वाध्याय–एक योग साधना १.१६
स्वाध्याय आत्मा का भोजन १.२१
सत्साहित्य से शक्ति और समुन्नति १.२२
सत् अध्ययन आत्म–उत्थान का आधार १.२४
सद्ज्ञान का संचय एवं प्रसार १.२६
स्वाध्याय में प्रमाद न करें १.२८
स्वाध्याय तप १.३३
ज्ञान ही मनुष्य की वास्तविक शक्ति १.३४
स्वाध्याय–जीवन विकास की अनिवार्य आवश्यकता १.३७
उत्तम पुस्तकें जीवंत देवता हैं, उनकी नियमित उपासना करें १.४१
पुस्तकालयों का जाल बिछा दिया जाये १.४३
अपने रहने की दुनिया आप बनाएँ १.४५
उत्कृष्ट विचारों का सतत् सान्निध्य रहे १.४८
स्वाध्याय नित्य करना ही चाहिए १.५०
देव संस्कृति हमें भाग्यवादी नहीं, कर्मवादी बनाती है १.५३
हर बात बारीकी से सोचें १.५४
अन्धकार की विरासत १.५५
हम और हमारे पूर्वज १.५६
उलटे विचार उलटे परिणाम १.५६
यदि यह सत्य होता तो १.५७
अतीत पर दृष्टिपात १.५७
दुहरा व्यवहार दुहरा प्रयोजन १.५८
ज्योतिष–शास्त्र की वास्तविकता १.५९
आश्चर्य–जनक उल्टाबांसी १.६०
पद–दलितों के लिए अफीम १.६०
संसार की गतिविधियाँ देखें १.६१
किसी विशेष प्रयोजन के लिए १.६१
बौद्धिक आलस्य छोड़ें १.६२
कर्म से भाग्य का निर्माण १.६३
कर्म ही प्रधान समझें और कर्मठता अपनावें १.६३
समन्वय और सहिष्णुता १.६४
सर्वत्र स्वच्छता रखना १.६५
अपने उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों को पूरी तरह पालन करना १.६७
अनीति से लड़ना और धर्मभावनाओं की रक्षा के लिए कष्ट सहने को तैयार रहना १.६७
वृक्षारोपण १.६८
वृक्षारोपण एक परम पुनीत पुण्य १.६८
वृक्षों के विपुल वरदान १.७०
वृक्ष प्रकृति के परिधान १.७०
वृक्ष आध्यात्मिक–प्रशिक्षक १.७०
वृक्ष बनाम रेगिस्तान १.७१
मकानों के लिए लकड़ियाँ १.७१
ईंधन और खाद १.७२
मानव–जाति के अनन्य सेवक वृक्ष १.७२
वृक्षों से आर्थिक लाभ भी कम नहीं १.७३
प्राणदाता, आरोग्यदाता १.७४
वृक्ष या धन्वन्तरि १.७५
वृक्ष मीठे फल देते हैं १.७५
सौन्दर्य और कला प्रेरक १.७६
फसलों के रक्षक १.७६
पक्षियों के आश्रय स्थल १.७७
शीतल और सुखद छाया १.७७
वृक्ष नहीं, कर्ण और दधीचि कहिए १.७७
वृक्षों का ऋण कैसे चुकायें १.७८
श्रावणीपर्व और वृक्षारोपण १.७८
वृक्षारोपण सप्ताह १.७८
कीर्ति–स्तम्भ, स्मृति–स्तम्भ १.७९

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घरों के आस–पास विद्यालय और देवालय में भी वृक्ष उगायें १.७६
बड़े बाग और उनकी व्यवस्था १.७६
तुलसी और तुलसी कानन १.८०
वन–सम्पदा का संरक्षण भी आवश्यक है १.८०
देव संस्कृति हमें भाग्यवादी नहीं, कर्मवादी बनाती है १.८२
अवतारवाद १.८४
अवतार कैसे होगा ? १.८५

अध्याय-२

भारतीय संस्कृति की मान्यताएँ २.१
पुनर्जन्म में विश्वास २.१
आस्तिकता २.२
सच्ची आस्तिकता अपनायें २.३
ईश्वर और उसका अस्तित्व २.३
जीव और ईश्वर का सम्बन्ध २.४
प्रशिक्षण एवं परीक्षा २.५
आस्तिकता का सच्चा स्वरूप २.५
आस्तिकता का स्वरूप एवं प्रतिफल २.८
भक्ति का वास्तविक स्वरूप २.११
कृतज्ञता की भावना २.११
समग्र सुविकसित व्यक्तित्व २.१२
अन्तरात्मा की पुकार २.१२
जीवन साथी का सहारा २.१३
आस्तिकता से शक्ति का अवतरण २.१३
सर्वोत्कृष्ट सत्संग की भूमिका २.१६
आत्म प्रवंचना एवं लोक विडम्बना २.१७
आधार सही करें २.१८
आस्तिकता और समाज–कल्याण २.१८
धर्म–ग्रंथों में ईश्वरत्व २.१६
स्वर्ग और नर्क २.२०
ब्राह्मणत्व २.२१
ब्राह्मणत्व के पुनर्जीवन की आवश्यकता २.२३
समाज–पुरुष का शीर्ष–ब्राह्मण २.२४
कठिन कर्त्तव्य और महान उत्तरदायित्व २.२६
अवनित और पतन का क्रम २.२७
यह ब्रह्म परम्परा नष्ट न हो २.२८
ब्राह्मणत्व का दर्शन और कर्त्तव्य २.२६
कर्म–फल २.३०
कर्म–फल आज नहीं तो कल भोगना ही पड़ेगा २.३१
अध्यात्मवाद २.३३
अध्यात्मवाद ही क्यों ? २.३४
व्यक्तिगत सन्दर्भ में २.३४
जीभ का चटोरापन २.३५
सामाजिक संदर्भ में २.४४
चार पुरुषार्थ २.५४
जीवन को चरमलक्ष्य तक ले जाने वाले चार पुरुषार्थ २.५६
व्यक्ति की संवेदना को परिष्कृत करने वाली विद्या है– धर्म २.६०
'धर्म' व 'मोक्ष' की सिद्धि का उपाय 'अर्थ' व 'काम' २.६३
मोक्ष अर्थात् बन्धनों से मुक्ति एवं 'त्याग की प्रतिष्ठा' २.६८
स्वर्ग और मुक्ति का आनन्द इसी जीवन में २.७१
दार्शनिक भूल भुलैया २.७३
आपद् धर्म का रहस्य और तात्पर्य २.७४
यज्ञ २.७५
यज्ञ और भारतीय संस्कृति २.७६
अग्निहोत्र २.७७
दशपूर्णमास २.७७
चातुर्मास्य २.७७
आग्रहायण अथवा नवसस्येष्टि २.७७
अग्निष्टोम २.७७
पितृ यज्ञ २.७७
पंच महायज्ञ २.७८
राजसूय और अश्वमेध यज्ञ २.७८
गोमेध २.७८
यज्ञ में मंत्र–शक्ति का महत्त्व २.७६
यज्ञ से देव तत्त्वों की परिपुष्टि २.८४
यज्ञ का स्वास्थ्य पर प्रभाव २.८६
अग्नि की शिक्षा तथा प्रेरणा २.८८
मानसिक संतुलन को स्थिर तथा चित्त को प्रसन्न रखना २.६०

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्याय-३

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ ३.१

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन ३.१
हिन्दू–धर्म के लक्षण और तीन विभिन्न स्तर ३.३
हिन्दू धर्म की विशेषताएँ और हमारी अयोग्यता ३.६
हिन्दू धर्म की उदारता और महानता ३.८
मूर्ति पूजा : चित्त एकाग्र करने का अमूल्य साधन ३.६
मूर्ति–पूजा चित्त–शुद्धि का साधन ३.१०
भारत की संसार को अमिट देन–मूर्ति पूजा ३.११
हिन्दू संस्कृति में प्रतीकों का महत्त्व और प्रभाव ३.१३
भाव अभिव्यक्त व परिमार्जित होते हैं–प्रतीकों के माध्यम से ३.१५
प्रतीकों के पीछे छिपे उद्देश्य ३.१८
आध्यात्मिक प्रतीकों का रहस्य ३.१९
विश्व कल्याण का प्रतीक स्वस्तिक ३.२१
स्वस्तिक सार्वभौम संस्कृति का प्रतीक चिन्ह ३.२५
हिन्दू संस्कृति के प्रतीक ३.२८
यज्ञोपवीत ३.२८
ऋण से सच्ची मुक्ति ३.२८
तिलक, माला, कण्ठी इत्यादि ३.३०
शिखा का महत्त्व और लाभ ३.३२
हिन्दू तीर्थ यात्राओं तथा धार्मिक मेलों का उद्देश्य और असंख्य लाभ ३.३३
तीर्थों में सुधार की आवश्यकता ३.३६
तीर्थों की उपयोगिता ३.३७
कथा कहने और सुनने की पद्धति ३.४१
देववाद (परमात्मा की नाना शक्तियों के प्रतीक) ३.४२
देव–पूजा का विधान ३.४४
पंचदेवों का आध्यात्मिक रहस्य ३.४६
देवता–तथ्य और विज्ञान की कसौटी पर ३.५१
दुर्गा पूजा का तत्त्वार्थ ३.५४
देवता तथा हिन्दू धर्म को कलंकित न किया जाय ३.५५
देवताओं के वाहनों का रहस्य ३.५७
विघ्नराज गणेशजी और उनकी उत्पत्ति ३.५८
वक्र तुण्डाम नमो नमः ३.६१
प्रजापति दुहित् की कथा ३.६३
इन्द्र अहिल्या की कथा ३.६४
इन्द्र और वृत्रासुर की कथा ३.६४
देवासुर संग्राम की कथा ३.६५
हनुमानजी को पूजिए पर वैसे ही बनिए भी ३.६६
ब्रह्मसत्ता की तीन मूल शक्तियाँ–त्रिदेव ३.६६
चतुर्मुखी ब्रह्मा ३.७२
शिव का तत्त्व ज्ञान ३.७६
अग्निहोत्र और शिवलिंग ३.८२
देववाद की रहस्यमयी अभिव्यंजनाएँ ३.८३
देव पूजा का स्वरूप और प्रतिफल ३.८५
तेतीस कोटि देवता क्या हैं ? ३.८६
बहुदेववाद में समाया एकेश्वरवाद ३.९१
देववाद पर एक दृष्टि ३.९४
विष्णु ३.९८
गणेश ३.९९
दुर्गा ३.९९
गायत्री ३.९९
सन्तोषी माता ३.९९
देवऋण का परिशोध ३.१०३
व्रत और त्यौहार ३.१०६
पर्व और त्यौहार ३.१०७
पर्व और त्यौहारों की उपयोगिता ३.११०
सामूहिकता की आवश्यकता ३.११३
श्राद्ध (मृत्यु–भोज) और तर्पण ३.११४
श्राद्ध का रहस्य ३.११६
मृतक भोज की क्या आवश्यकता ? ३.१२०
ब्राह्मणों और साधुओं को कब दिया जाय ? ३.१२३
दान का दुरुपयोग न हो ३.१२४
मृतात्मा के उपलक्ष्य में दान का उचित मार्ग ३.१२४

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मरणोत्तर क्रिया की शास्त्रीय विधि ३.१२५
बड़प्पन की भावना वाले ३.१२६
मरणोत्तर क्रियाकर्म में अपव्यय ३.१२६
मृतक के लिए शोक करने का
गलत तरीका ३.१२७
मृतक के परिवार की सहायता करें ३.१२८
षोडश संस्कार ३.१३३
संस्कारों से प्रेरणा ग्रहण करें ! ३.१३४
आचार और व्यवहार ३.१३६
संस्कारों की आवश्यकता और उपयोगिता ३.१३६
धरती पर स्वर्ग अवतरित करने
की ऋषि प्रणाली ३.१३६
सर्वश्रेष्ठ परम्परा ३.१३७
विज्ञान–सम्मत प्रक्रिया ३.१३७
मानसिक चिकित्सा की प्रखर पद्धति ३.१३८
व्यक्ति निर्माण का उपयुक्त माध्यम ३.१३६
कर्मकाण्ड और प्रशिक्षण ३.१३६
उद्‌बोधन आवश्यक ३.१४०
विचार–गोष्ठी आयोजन ३.१४१
लोक शिक्षा का अनुपम माध्यम ३.१४१
सन्ध्या, वन्दन, प्रार्थना इत्यादि ३.१४२
योग–भारतीय संस्कृति की
अमूल्य देन ३.१४२
ज्ञान योग की साधना ३.१४५
ज्ञान का महत्त्व समझिये ३.१४५
अंतः ज्ञान की उपलब्धि ३.१४५
सद्‌ज्ञान और जीवन–फल ३.१४७
सद्‌ग्रन्थों का स्वाध्याय–एक योग साधना ३.१४६
स्वाध्याय आत्मा का भोजन ३.१५१
सत् अध्ययन आत्म–उत्थान का आधार ३.१५२
संसार की सर्वोपरि सम्पत्ति : ज्ञान ३.१५३
ज्ञान की उपासना कीजिये ३.१५७
श्रेष्ठतम विभूति–ज्ञान ३.१५६
आत्म–ज्ञान सबसे बड़ा ज्ञान ३.१६०
कर्मयोग की रीति–नीति ३.१६१
अनासक्त जीवन में सुख–शान्ति ३.१६१
काम में लगन भी हो और भावना भी ३.१६३
कर्म कुशल होना ही योग है ३.१६४
हम भी कर्म साधना क्यों न करें ? ३.१६६
कर्म का ब्रह्मार्पण ३.१६७
अनासक्ति योग सम्बन्धी भ्रान्ति ३.१६६
पुरुषार्थ धर्म है–कामनायें बन्धन ३.१७१
गौरव निरन्तर चलते रहने में है ३.१७२
कर्मों का सामूहिक फल ३.१७४
कर्मदेव का अपमान न करें ! ३.१७५
भक्तियोग का वास्तविक स्वरूप ३.१७७
आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध ३.१७७
प्रेम ही परमेश्वर है ३.१८०
प्रेम से भगवान का दर्शन ३.१८२
परमात्मा की प्राप्ति का दिव्य साधन–प्रेम ३.१८४
ईश्वर प्राप्ति की साधना ३.१८६
उपासना बिना कल्याण नहीं ३.१८८
विश्व प्रेम ही ईश्वर–प्रेम ३.१६०
हम प्रकाश की ओर चलें ३.१६३
दानशीलता ३.१६३
दान में विवेक की आवश्यकता ३.१६५

अध्याय-४

सामाजिक संस्कृति का सामाजिक पक्ष ४.१
सामाजिक पक्ष का महत्त्व ४.१
चार वर्ण ४.१
द्विजत्त्व की अवधारणा ४.२
सच्ची वर्ण–व्यवस्था ही हितकारी है ४.८
वर्ण–व्यवस्था सामाजिक उत्थान के लिये
सर्वोत्तम है ४.११
वर्ण–व्यवस्था का स्वरूप और लक्ष्य ४.१५
वर्ण और जाति में जमीन–आसमान
का अन्तर ४.१८
वर्ण–व्यवस्थायें 'कर्म' के आधार पर ४.२०
गीता और भावी वर्ण–व्यवस्था ४.२२
नये युग के अनुरूप वर्ण–व्यवस्था ४.२३
ब्राह्मणत्व की ओर ४.२५
चार आश्रम ४.२८
आश्रम–धर्म की उपयोगिता और आवश्यकता ४.२६
आश्रम धर्म और सन्तान सीमाबन्ध ४.३२
आश्रम व्यवस्था से दीर्घ–जीवन ४.३४
चार आश्रम व्यक्तित्व–विकास के चार चरण ४.३६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आश्रम व्यवस्था में सामाजिक दृष्टिकोण ४.३६
आश्रम–व्यवस्था पर एक सापेक्ष दृष्टि ४.४२
ब्रह्मचर्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता ४.४४
इन्द्रिय–संयम की महिमा ४.४५
हिन्दू–धर्म की अनुपम निधि ४.४६
ब्रह्मचर्य की विश्वव्यापी महिमा ४.४७
ब्रह्मचर्य के बिषय में भ्रान्तियाँ : उसकी उपेक्षा ४.४६
वर्तमान शिक्षा–संस्थाओं की दुर्गति ४.५०
घरों की असन्तोषजनक व्यवस्था ४.५१
सिनेमा की सत्यानाशी हवा ४.५२
अश्लील साहित्य और चित्र आदि ४.५२
ब्रह्मचर्य–रक्षा कैसे करें ? ४.५३
ब्रह्मचर्य और स्वादेन्द्रिय ४.५३
ब्रह्मचर्य और उपवास ४.५४
ब्रह्मचर्य और मनोविकार ४.५४
ईश्वर परायणता और आस्तिक भाव ४.५४
भोजन का शुद्ध और सात्विक होना ४.५४
उन्नति का मूल मन्त्र–ब्रह्मचर्य ४.५५
वीर्य का प्रचण्ड प्रताप ४.५६
वीर्यहीन युवकों के लक्षण ४.५७
किशोरावस्था से यौवन में प्रवेश ४.५८
वीर्य रक्षा और पुनरुत्थान के अनूठे नियम ४.६०
१– सात्विक संकल्प ४.६०
२– काम का दमन ४.६१
३– काम शमन के उपाय ४.६२
४– पवित्र मातृभाव की दृष्टि ४.६३
५– मानसिक व्यभिचार से बचिए ४.६३
६– मानसी पूजा की आदत डालिए ४.६४
७– यह विलास प्रियता छोड़िये ४.६५
८– सत्संग कीजिए ४.६६
९– खान–पान का संयम ४.६८
१०– ब्रह्मचारी का भोजन ४.६९
११– व्यसनों को त्याग दीजिए ४.७०
१२– गुप्तांगों का शौच ४.७१
१३– शरीर को बलवान बनाइये ४.७२
१४– ब्रह्म मुहुर्त से लाभ–उठाइये ४.७२
१५– काम–वासना को भूखे मारिये ४.७४
१६– प्राणायाम किया कीजिए ४.७४
१७– प्राण–शक्ति सम्वर्धित कीजिए ४.७५
धन्यो गृहस्थाश्रमः ४.७८
परिवार संस्था और उसका महत्त्व ४.८०
परिवार भी हमारा एक शरीर ही है ४.८१
परिवार किसी उद्देश्य के लिये बसाया जाय ४.८५
गृहस्थाश्रम एक कर्त्तव्य धर्म ४.८६
विवाह भले ही कीजिए पर ध्यान यह भी रखिए ४.९२
दाम्पत्ति जीवन की मधुरता एवं निष्ठा ४.९४
दाम्पत्य जीवन का सफल निर्वाह ४.९७
गृहस्थाश्रम– एक स्वर्गधाम ४.१००
गृहस्थ–धर्म – एक योग साधना ४.१०३
भारतीय संस्कृति का मेरुदंड– वानप्रस्थ ४.१०५
वानप्रस्थ एक शास्त्र मर्यादा– धर्म मर्यादा ४.११२
वैराग्य की विवेचना ४.११५
गृहत्यागी–बैरागी बनने का वास्तविक उद्देश्य ४.११८
संन्यास वे ही लें, जो उसकी मर्यादाएँ निभा सकें ४.१२०
वर्णाश्रम धर्म का आधार ४.१२४
वर्णाश्रम धर्म की महान पृष्ठभूमि ४.१२६
वर्णाश्रम, धर्म और उसकी दुर्गति ४.१२९
अपनी महान् परम्पराओं को खोकर ही हम दीन–हीन बने हैं ४.१३१
खान-पान ४.१३५
गृहस्थ योग ४.१३६
दृष्टिकोण का परिवर्तन ४.१३९
गृहस्थ में वैराग्य ४.१४१
गृहस्थ–धर्म तुच्छ नहीं है ४.१४२
गृहस्थ योग से परमपद ४.१४५
गृहस्थ योग के कुछ मन्त्र ४.१४८
परिवार की चतुर्विधि पूजा ४.१५१
पारिवारिक स्वराज्य ४.१५६
ऊँच–नीच, जाति-पाँति और छूआछूत ४.१५८
जातिवाद और ऊँच-नीच एक भयंकर अभिशाप ४.१५८

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाति, उप-जातियों का दायरा चौड़ा किया जाये ४.१६०
जातीय एकता की शक्ति ४.१६५
जातीय संगठनों का स्वरूप ४.१६७
जातीय संगठनों का उद्देश्य– मानवता की रक्षा ४.१६६
प्रगतिशील जातीय संगठनों की आवश्यकता ४.१७२
अटपटापन कुछ नहीं ४.१७३
वस्तुस्थिति समझी जाये ४.१७४
अच्छाइयाँ बनाम बुराइयाँ ४.१७४
रोग को मारें रोगी को नहीं ४.१७५
काँटे से काँटा निकाला जाय ४.१७६
भारतीय संस्कृति में गुण–कर्म की प्रधानता ४.१७६
विवाह–संस्कार ४.१८२
हिन्दू शिष्टाचार ४.१८२
भाषा–वेश–भाव ४.१८३
वेशभूषा शालीन ही रखिए ४.१८५
योरोप का नग्न सम्प्रदाय ४.१८५
प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायियों की सम्मति ४.१८६
कृत्रिम वस्त्रों के दोष ४.१८७
पश्चिमी फैशन की नकल ४.१८८
भारतीय परिधान की महत्ता ४.१९०
अधिक कपड़े एक भार की तरह हैं ४.१९०
वस्त्र कम से कम तथा ढीले पहनें ४.१९२
गहने पहिनने का जंगली रिवाज ४.१९४
जूतों और मौजों की अधिकता ४.१९५
छोटे बच्चों के वस्त्र ४.१९६
कृत्रिम जीवन को त्याग दीजिए ४.१९७
प्रभावशाली व्यक्तित्व यों बनता है ४.१९८
जीवन में सादगी की आवश्यकता और उपयोगिता ४.१९९
अन्दर और बाहर की पवित्रता ४.२०१
गायत्री, गौ, गीता और गंगाजी ४.२०२
गौ की ब्राह्मण और देवता से तुलना का आधार ४.२०४
वेदों में गौ महिमा ४.२०७
गौ की उपयोगिता और हमारा कर्त्तव्य ४.२०९
गौ की उत्पत्ति और उसकी महिमा ४.२११
गंगा की गौरव गाथा अकारण नहीं गाई जाती ४.२१३
पुण्यतोया गंगा की पवित्रता नष्ट न होने दें ४.२१६
गंगा माता की गोद में अमृतोपम पयपान ४.२१९
भगवती गंगा का दिव्य प्रवाह ४.२२२
गंगा स्नान का पुण्यफल किसे ? ४.२२४
भागीरथ और उनकी भागीरथी ४.२२५

अध्याय-५

सांस्कृतिक पुनरुत्थान ५.१
सांस्कृतिक पुनरुत्थान एक महत्त्वपूर्ण कार्य ५.१
रचनात्मक सांस्कृतिक आयोजन ५.३
सांस्कृतिक विद्यालय ५.४
सांस्कृतिक पुनरुत्थान योजना ५.५
अतीत को वापिस लाने का स्वप्न ५.६
भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि ५.११
गायत्री ज्ञान मन्दिरों की स्थापना ५.१६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व

-: पृष्ठभूमि :-

मानव–जीवन मुख्यतः दो भागों में बँटा है– एक आधिभौतिक और दूसरा आध्यात्मिक । एक साधारण मनुष्य जब संसार के रंग–मंच पर आता है तो उसे सबसे पहले भोजन, वस्त्र, निवास स्थान की आवश्यकता ही प्रतीत होती है और उसका प्रयत्न यही होता है कि ये जीवनोपयोगी वस्तुएँ । उसे अधिक से अधिक अनुकूल रूप में और सुविधापूर्वक प्राप्त हो जायें, क्योंकि इन सब बातों की उचित व्यवस्था और रक्षा अकेले कर सकना बहुत ही कठिन होता है, अतः वह समुदाय बनाता है, परिवार का निर्माण करता है और सब प्रकार की सामिग्री का संग्रह भी करता है, जिससे वह सुखपूर्वक जीवनयापन कर सके । जीवन के इसी कार्यक्रम में से आधिभौतिक उन्नति का श्रीगणेश हो जाता है और मनुष्य एक के बाद दूसरी प्राकृतिक शक्ति की जानकारी प्राप्त करके अपनी सुख–सामग्री की वृद्धि करता जाता है ।

पर जैसे ही आधिभौतिक उन्नति शुरू होती है और मनुष्य को जीवन–रक्षा के प्रयत्नों से कुछ अवसर सोचने विचारने के लिये मिलता है, वैसे ही एक दूसरी भावना भी विकसित होने लगती है और उसके सम्मुख यह समस्या या पहेली उपस्थित होती है कि यह चारों तरफ दिखलाई पड़ने वाली विभिन्न प्रकार की सृष्टि क्या है ? कहाँ से आई है और इससे हमारा क्या सम्बन्ध है ? इन विषयों पर जैसे–जैसे वह विचार करके विश्व के रहस्य को समझने लगता है, वैसे ही आध्यात्मिक उन्नति भी आरम्भ हो जाती है । मनुष्य सृष्टि के स्थूल पदार्थों, जैस–पंचतत्व, सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि के विषय में विचार करता हुआ पापःपुण्य, धर्म–कर्म, जीव, आत्मा, परमात्मा आदि तक पहुँच जाता है । इन्हीं आधिभौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों को सामाजिक–जीवन के उपयुक्त बनाने की कला को विद्वानों ने "संस्कृति" का नाम दिया है।

यों तो प्रत्येक जाति की अपनी पृथक् संस्कृति होती है और आज संसार में योरोपियन, अमरीकन, रूसी, चाइनीज, अरबी आदि अनेक संस्कृतियाँ पाई जाती हैं, पर यह संसार के सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि इनमें सबसे पुरानी संस्कृति भारतवर्ष की ही है । साथ ही हम यह भी कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति सबसे प्राचीन ही नहीं, सबसे श्रेष्ठ भी है, क्योंकि संसार की अन्य संस्कृतियों में आध्यात्मिक–विभाग का बहुत ही कम अंश पाया जाता है, वे अधिकांश में केवल आधिभौतिक विषयों तक ही सीमित हैं, पर भारतीय संस्कृति का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक उन्नति ही है, क्योंकि जो संस्कृति मनुष्य में 'पंच तत्वों का पुतला' होने की भावना भरदे और इस जीवन के बाद किसी प्रकार की आशा, भरोसा न दिला सके, वह मनुष्य या समाज की स्थायी उन्नति कदापि नहीं कर सकती ।

भारतीय संस्कृति ने आधिभौतिक अथवा लौकिक उन्नति की अवहेलना नहीं की है, जीवन को सुखी बनाने का मार्ग उसने बड़ी स्पष्टता से समझाया है, पर अन्तिम लक्ष्य सदैव आध्यात्मिक उन्नति को ही समझा है । अथवा यह कहना चाहिए कि उसने समस्त लौकिक कार्यों और उद्योगों का सम्बन्ध आध्यात्मिक उन्नति से ही जोड़ दिया है, जिससे मनुष्य भौतिकवाद के दोषों से बच सके और समस्त सांसारिक कार्यों को करते हुये आत्म–कल्याण के ध्येय को न भूले । अगर हमारी संस्कृति के निर्माताओं ने इस बात का ध्यान आरम्भ से ही न रखा होता तो हमें भी वही दिन देखना पड़ता जो आज योरोप, अमरीका में दिखाई पड़ रहा है । वहाँ इस समय एक ओर भौतिक उन्नति और वैभव की पराकाष्ठा दिखलाई पड़ रही है, तो दूसरी ओर नीच स्वार्थ, ईर्ष्या–द्वेष, क्रोध आदि की इतनी अधिकता पाई जाती है कि वे लोग किसी भी दिन अपने वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा आप ही नष्ट हो सकते हैं । इस अवस्था में अगर उनकी रक्षा होगी तो वह भारतीय सभ्यता के सिद्धान्तों (पंचशील) के अपनाने से ही सम्भव है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भारतीय सभ्यता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ अन्य देशों ने अपने धर्म, सभ्यता, संस्कृति का सर्वोच्च लक्ष्य सांसारिक सुख और भोग की सामग्री प्राप्त करना समझ रखा है, भारतवर्ष का लक्ष्य सदा त्याग का रहा है । दूसरों के 'भोगवाद' के मुकाबले में हम यहाँ की संस्कृति का आधार 'त्यागवाद' कह सकते हैं । अब यह स्पष्ट है कि जहाँ के मनुष्यों का लक्ष्य 'भोगवाद' होगा, वहाँ दूसरों से और परस्पर में भी संघर्ष चलता ही रहेगा, क्योंकि संसार में जितनी भी भोग–सामग्री है, उसके मुकाबले में मनुष्य की तृष्णा कहीं अधिक बढ़ी–चढ़ी है । ऐसी जातियों के व्यक्ति पहले विदेशी अथवा अन्य जाति के लोगों को लूटने–मारने का कार्य करते हैं और फिर जब बाहर का मार्ग रूक जाता है तो अपने ही देश–भाइयों पर हाथ साफ करने लगते हैं । उनके सामने कोई ऐसा आदर्श अथवा लक्ष्य नहीं होता, जिसके प्रभाव से वे ऐसे काम को बुरा समझें । उनको तो यही सिखाया गया है कि "यह संसार सबलों के लिये है और यहाँ वही सफल मनोरथ होता है, जो सबसे अधिक शक्तिशाली या संघर्ष के उपयुक्त होता है।"

इसके विपरीत भारतीय संस्कृति यह सिखलाती है कि इस संसार में जितनी भौतिक वस्तुएँ दिखलाई पड़ती हैं, उनका महत्त्व बहुत अधिक नहीं है, वे क्षणभंगुर हैं और किसी भी समय नष्ट हो सकती हैं। वास्तविक महत्त्व की चीज आत्म–सत्ता या परमात्म–तत्व ही है जो स्थायी और अविनाशी है । इसलिये मनुष्य को, जब तक वह संसार में है, भौतिक वस्तुओं का संग्रह और उपभोग तो करना चाहिये, पर अपनी दृष्टि सदा उसी सत्य, आत्म–तत्व पर रखनी चाहिये, जो कि सब भौतिक वस्तुओं का मूल आधार है और जिसमें मनुष्य को, जीवात्मा को सदैव निवास करना है । इस भावना के प्रभाव से मनुष्य स्वार्थान्ध होने से बचा रहता है और वह अपने हित के साथ दूसरों के हित की रक्षा का भी ध्यान रखने में समर्थ होता है । वह अन्याय और अत्याचार के कार्यों को पाप समझ कर बचता है और इस प्रकार समाज में न्याय और सुख–शान्ति की स्थापना होती है । यही कारण है कि भारतीयों ने सब प्रकार की शक्ति प्राप्त करके भी कभी संसार को गुलाम बनाने की बात नहीं सोची और न कत्लेआम द्वारा किसी अन्य राष्ट्र का नाम निशान मिटा देने का प्रयत्न किया । कोई समय ऐसा भी था कि संसार भर के धन का केन्द्र भारत ही था और यहाँ सचमुच सोने और रत्नों के मंदिर और महल बनाये गये, पर उसने धन को अपना आदर्श कभी नहीं बनाया और न उसके द्वारा अन्य देशों को अपने अधिकार में लाने की योजना बनाई । सब प्रकार के सांसारिक वैभव को भोगते हुये भी उसने सदैव यह ख्याल रखा कि उसके ऊपर एक और भी सत्ता है जो इस संसार की शक्तियों की अपेक्षा उच्चतर, दृढ़तर और शक्तिवान् है । अगर वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करेगा तो वह सत्ता उसे दण्ड दिये बिना न छोड़ेगी । इसी अध्यात्म भावना के आधार पर उसका जीवन सदैव संयमयुक्त बना रहा और वह सब मनुष्यों को ही नहीं समस्त प्राणियों को एक ही परम पिता के बनाये मान कर करुणा और प्रेम का पात्र समझता रहा ।

भारतीय संस्कृति की दूसरी विशेषता यह है कि इसका कभी एक विशेष श्रेणी से सम्बन्ध नहीं रहा । जैसे आजकल किसी देश की संस्कृति में पूँजीपतियों की ही प्रधानता है, किसी में मजदूरों का सिक्का लगा है, किसी में पुराण पंथियों का जोर है, तो कहीं नव–पंथियों के सिर पर ही सेहरा बाँधा जाता है, वैसी दशा भारतीय संस्कृति में किसी काल में नहीं रही । किसी एक प्रदेश में किसी राजा या धर्माध्यक्ष ने अपने विरोधियों पर अत्याचार किये हों या किसी विभाग को कुचल डाला हो तो यह दूसरी बात है, पर समस्त देश की दृष्टि से भारतीय संस्कृति में कभी कोई ऐसा विधान स्वीकार नहीं किया गया जिसके अनुसार एक समुदाय को तो सब तरह की सुविधायें और सुख मिले हों और दूसरे को भूखों मरने को छोड़ दिया गया हो । सच तो यह है कि यहाँ की संस्कृति में शोषण का सिद्धान्त, जो वर्तमान समय का मूल मंत्रा बना हुआ है, कभी स्वीकार नहीं किया गया और सदा यह घोषणा की गई–

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत ।"
"पर हित सरिस धर्म नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार सारे पदार्थ किसी खास आदमी या खास जाति के बनाये नहीं हैं; इसलिये न्यायानुसार उन पर मनुष्य मात्र का समान अधिकार है । भूमि, जल, हवा, समुद्र आदि प्रकृतिदत्त पदार्थों पर किसी व्यक्ति के द्वारा एकाधिकार जमाने की चेष्टा यहाँ पर बड़ा भारी जुर्म या परमात्मा के खिलाफ बगावत की तरह माना जाता था । हमारा अनुमान है कि आज–कल के साम्राज्यवादियों या पूँजीवादियों की तरह प्राचीनकाल में रावण और कंस आदि इसी विचारधारा के मनुष्य थे । इसी कारण उनको 'राक्षस' की पदवी दी गई और जनता–जनार्दन ने उनके नाश की माँग की, जो परमात्मा द्वारा शीघ्र ही पूर्ण की गई । भारतीय विचारकों ने ऐसे अस्वाभाविक सिद्धान्तों की जड़ ही यहाँ न जमने दी । वास्तव में संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य यही है कि परमात्मा ने मनुष्य को पृथ्वी पर भेजा, पर यहाँ उसको बैठने के लिये स्थान नहीं मिल सका । यह जानते हुये भी भूमि को कोई साथ नहीं लाया, किसी ने उसको बनाया भी नहीं, कुछ लोगों ने उस पर अपनी मुहर लगा रखी है और वे दूसरों को उसमें रहने से रोकते हैं । इसका तो मतलब यही निकलता है कि ऐसे लोगों ने परमात्मा की एक देन पर जबर्दस्ती अधिकार जमा लिया है और वे पीछे आने वालों को उसके प्रसाद से वंचित करते हैं । ऐसे कार्य को परमात्मा के खिलाफ बगावत करना न कहा जाय, तो और क्या कहा जाय ?

भारतीय संस्कृति की यही सबसे बड़ी श्रेष्ठता है कि उसने आरम्भ ही में स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया कि संसार की वस्तुयें किसी व्यक्ति विशेष की नहीं हैं और समाज में रहने वाले व्यक्ति को उनके उपयोग करने का अधिकार है । भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत वेद में कहा है–

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
येपां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिल्लोके शतं समाः ।।

(यजु० १६/४६)

"समस्त जीवों में जो मन से साम्यभाव वाले हैं, वही मुझको प्रिय हैं और उन्हीं की सम्पत्ति सैकड़ों वर्ष तक रही है ।"

समानी प्रपा सहवा`अन्नभागः समाने योक्त्रे सहवो युनिडिम ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्य तारा नाभि मिवासितः ।।

(अथर्व० ३/३०/६)

"तुम्हारे दुग्धादि पेय पदार्थ समान हों और अन्न का विभाग साथ–साथ हो । जिस प्रकार रथ की नाभि के चारों ओर के काँटे एक समान होते हैं, उसी प्रकार तुम सब लोग एक समान यज्ञ करो ।"

इस प्रकार वेदों ने आरम्भ से ही मनुष्यों को भाइयों की तरह न्याय और प्रेमपूर्वक रहने की शिक्षा दी है, क्योंकि यही समाज की उन्नति और सुखी रहने का राज–मार्ग है । जहाँ पर छुटाई–बड़ाई की भावना होगी, वहाँ ईर्षा–द्वेष का उत्पन्न होना भी अनिवार्य है और ईर्षा–द्वेष के फलस्वरूप अपहरण, हिंसा आदि की उत्पत्ति होनी निश्चित है । इसलिये वेद ने अपने न्याययुक्त भाग से ही संतुष्ट रहने का उपदेश दिया है–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्य स्विद्धनम् ।।
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवे त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।

(यजुर्वेद ४/१-२)

"इस संसार में परमात्मा को सर्वत्रा हाजिर–नाजिर समझ कर किसी के भी धन की इच्छा न करो, किन्तु उतने से ही निर्वाह करो, जितना उसने तुम्हारे लिये स्थिर किया है । आजीवन इस प्रकार कर्म करने से ही मोक्ष हो सकता है और कोई दूसरा उपाय नहीं है ।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति में वे सब गुण पाये जाते हैं, जिनकी मानव–जाति के कल्याणार्थ आवश्यकता बतलाई जाती है । आजकल संसार में फैले हुये दोषों को दूर करने का उपाय समाजवाद अथवा साम्यवाद बतलाया जाता है और दुनियाँ के एक बड़े भाग में उसका प्रचार भी हो रहा है । वह पूँजीवाद को मिटाकर उत्पत्ति और वितरण के साधनों पर समाज का नियन्त्राण स्थापित करने का समर्थन करता है, जिससे हर एक व्यक्ति को न्यायानुसार काम करने और जीवन–निर्वाह की सामग्री पाने की सुविधा मिल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सके, पर अभी तक समाजवाद की जो कुछ प्रगति हुई है, उसमें गरीबों के कुछ हित के साथ ही, कई दोष भी दिखाई पड़ते हैं । एक तो उसमें ईर्षा–द्वेष की वृद्धि पहले से भी अधिक देखने में आती है और दूसरे बेईमानी, कामचोरी, उच्छृंखलता, चरित्रहीनता आदि की भी उसमें ठीक रोक–थाम नहीं हो पाती । कई विद्वानों के मत से इन त्रुटियों का कारण समाजवाद में निरीश्वरवाद का बोलबाला और आध्यात्मिक भावनाओं का अभाव ही है । इसके विपरीत भारतीय संस्कृति में जो सब मनुष्यों से समानता का व्यवहार और अपने न्यायोचित भाग से अधिक न लेने का विधान है, उसकी नींव ही आध्यात्मिकता और आस्तिकता पर रखी गई है । यहाँ पर जनक जैसे राजाओं के उदाहरण मिलते हैं, जो हर एक बड़े प्रदेश के शासक होते हुये भी अपने निर्वाह के लिये स्वयं खेती करते थे । यहाँ कर्ण का भी उदाहरण मिलता है, जो अपनी नित्य प्रति की आय को प्रातः होते ही याचकों को बाँट देता था । यहाँ के इतिहास में हर्ष जैसे राजाओं का भी वर्णन है, जो प्रति वर्ष अपनी समस्त सम्पदा को बाँट कर एक वस्त्र के सिवाय कुछ शेष न रखते थे । इस प्रकार जो काम आजकल समाजवाद कानून और दण्ड के भय से कराना चाहता है, यह भारतीय सभ्यता ने दान और त्याग के प्रचार द्वारा कहीं अधिक अच्छी तरह सिद्ध करके दिखा दिया था ।

इन्हीं सब तथ्यों का विवरण प्रस्तुत ग्रन्थ में उपस्थित किया गया है । यहाँ अगणित प्रमाणों द्वारा यह भली-भाँति सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि भारतीय संस्कृति के अनुसार एक हिन्दू का समस्त जीवन ही सत्य, न्याय, उदारता, त्याग आदि कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए अर्पण माना जाता था । वह जीवन-निर्वाह के लिए भी जो कुछ उद्योग और प्रयत्न करता था, वह भी इसी उद्देश्य से कि अपने शरीर और मन को ठीक दशा में रख कर अपने सब प्रकार के कर्त्तव्यों की पूर्ति में समर्थ हो सके । यह दूसरी बात है कि बीच में अनेक स्वार्थी और धर्मशून्य व्यक्तियों ने इस परम्परा को बिगाड़ दिया और समय के प्रभाव से हम अपने आदर्शों के विपरीत मार्ग पर भी चलने लगें पर इसमें भारतीय संस्कृति तथा उसके उच्च आदर्शों पर कोई लांछन नहीं आ सकता । लेखक ने यहाँ उसके शुद्ध स्वरूप को ही दिखलाया है और यह प्रमाणित कर दिया है कि हमारे देश का कल्याण तभी हो सकता है जब हम हृदय से अपनी संस्कृति को समझेंगें और उसका पालन करेंगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कृति का स्वरूप

१-मानवता के विकास का उच्चतम स्तर

प्रत्येक व्यक्ति की आन्तरिक इच्छा यही होती है कि वह सुख-शांति से रहे, अधिक से अधिक जीवन का आनन्द लेकर दीर्घ काल तक आन्तरिक शांति-संतोष का रस लूटता रहे । सामूहिक रूप से समुन्नत विचार वाले विद्वानों तथा विचारकों ने समय-समय पर इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए ऐसे विचार तथा कार्य के रूप स्थिर किये हैं, जिनके अनुसार आचरण करने से समस्त सांसारिक और आध्यात्मिक सुख-साधन प्राप्त हो सकते हैं; व्यक्ति और समाज आनन्दित रह सकते हैं और पृथ्वी पर ही स्वर्ग की सृष्टि हो सकती है । यदि इन विचारों के अनुसार जीवन ढाल लिया जाय, तो मनुष्य का जीवन मधुर बन सकता है और समाज में देवत्व विकसित हो सकता है ।

संसार के जिन विचारकों ने इन विचार तथा कार्य-प्रणालियों को सोचा और निश्चय किया है, उनमें भारतीय विचारक सबसे आगे रहे हैं । विचारों की पकड़ और चिंतन की गहराई में हिंदू धर्म की तुलना अन्य सम्प्रदायों से नहीं हो सकती । भारत के हिंदू विचारकों ने जीवन मन्थन कर जो नवनीत निकाला है, उसके मूलभूत सिद्धांतों में वह कोई दोष नहीं मिलता, जो अन्य सम्प्रदायों या मत-मजहबों में मिल जाता है । हिंदू–धर्म महान् मानव-धर्म है; व्यापक है और समस्त मानव मात्र के लिए कल्याणकारी है । वह मनुष्य में ऐसे भाव और विचार जागृत करता है, जिन पर आचरण करने से मनुष्य और समाज स्थायी रूप से सुख और शांति का अमृत-घूँट पी सकता है। हिंदू संस्कृति में जिन उदार तत्वों का समावेश है, उनमें तत्वज्ञान के वे मूल सिद्धांत रखे गये हैं, जिनको जीवन में ढालने से आदमी सच्चे अर्थों में "मनुष्य" बन सकता है ।

"संस्कृति" शब्द का अर्थ है सफाई, स्वच्छता, शुद्धि या सुधार । जो व्यक्ति सही अर्थों में शुद्ध है, जिसका जीवन परिष्कृत है, जिसकी रहन-सहन में कोई दोष नहीं है, जिसका आचार-व्यवहार शुद्ध है, वही सभ्य और सुसंस्कृत कहा जायगा ।" सम्यक् करणं संस्कृति"-प्रकृति की दी हुई भद्दी, मोटी, कुदरती चीज को सुन्दर बनाना, सम्भाल कर रखना, अधिक उपयोगी और श्रेष्ठ बनाना उसकी संस्कृति है । जब हम भारतीय या हिंदू संस्कृति शब्दों का प्रयोग करते हैं, तो हमारा तात्पर्य उन मूलभूत विचारों से होता है, जिन पर आचरण करने से मानव-जीवन में अच्छे संस्कार उत्पन्न हो सकते हैं और जीवन शुद्ध परिष्कृत बन सकता है । हम देखते हैं कि प्रकृति में पाई जाने वाली वस्तु प्रायः साफ नहीं होती । बहुमूल्य हीरे, मोती, मानिक आदि सभी को शुद्ध करना पड़ता है । कटाई और सफाई से उनका सौंदर्य और निखर उठता है और कीमत बढ़ जाती है । इसी प्रकार सुसंस्कृत होने से मानव का अन्तर और बाह्य जीवन सुन्दर और सुखी बन जाता है । संस्कृति व्यक्ति समाज और देश के लिए अधिक उपयोगी होता है । उसका आचार-व्यवहार, रहन-सहन सम्भाला हुआ, सुन्दर, आकर्षक और अधिक उपयोगी होता है, फिर उस व्यक्ति का परिवार तथा उनके बच्चों के संस्कार भी अच्छे बनते हैं । इस प्रकार मानव मात्र ऊँचा और परिष्कृत होता है और सद्भावना, सच्चरित्रता और सद्गुणों का विकास होता जाता है । अच्छे संस्कार उत्पन्न होने से मन, शरीर और आत्मा तीनों ही सही दिशाओं में विकसित होते हैं । मनुष्य पर संस्कारों का ही गुप्त रूप से राज्य होता है । जो कुछ संस्कार होते हैं, वैसा ही चरित्रा और क्रियाऐं होती हैं । इस गुप्त आन्तरिक केन्द्र (संस्कार) के सुधारने से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शुद्धि का राजमार्ग खुल जाता है । तात्पर्य यह है कि संस्कृति जितनी अधिक फैलती है, जितना ही उसका दायरा बढ़ता जाता है, उतना ही मानव स्वर्ग के स्थायी सौंदर्य और सुख के समीप आता जाता है । सुसंस्कृत मनुष्यों के समाज में ही अक्षय सुख-शांति का आनन्द लिया जा सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संस्कार का बड़ा महत्त्व है । संस्कार का अर्थ है-शुद्ध, परिष्कृत गुप्त मन, मँजा हुआ दिल, उच्च आत्मा । जिसने अपना अन्दरूनी संस्कार कर लिया है, उसके कार्य स्वतः अच्छे होंगे । वह पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी प्रकार के कर्त्तव्य पूर्ण कर सकेगा । जिस व्यक्ति ने अपने संस्कार, अपना दिल जितना साफ कर लिया है, वह उतना ही सुसंस्कृत कहलायेगा । जो जितना ही सुसंस्कृत है, उसका जीवन उतना ही उच्च और मधुर रहेगा । "संस्कृति" प्राप्त कर लेना ही मुख्य महात्म्य है । मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है ।

"संस्कृति" की परिभाषाएँ अनेक हैं और विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रूपों में इसकी व्याख्याएँ की हैं । कारण, यह विकास का एक रूप नहीं, विभिन्न रूपों की ऐसी समन्वयात्मक समष्टि है, जिसमें एक रूप स्वतः पूर्ण होकर भी अपनी सार्थकता के लिए दूसरे का सापेक्ष है । "किसी मनुष्य-समूह के साहित्य, कला, दर्शन, आदि में सञ्चित ज्ञान और भाव का ऐश्वर्य ही उसकी संस्कृति का परिचायक नहीं, उस समूह के प्रत्येक व्यक्ति का साधारण शिष्टाचार भी उसका परिचय देने में समर्थ है, क्योंकि संस्कृति जीवन के बाह्य और आंतरिक संस्कार का क्रम ही तो है और इस दृष्टि से उसे जीवन को सब ओर से स्पर्श करना होगा ।"

"संस्कृति जीवन के उन समतोलों का नाम है, जो मनुष्य के अन्दर व्यवहार, ज्ञान और विवेक पैदा करते हैं । वह उनके सामाजिक व्यवहारों को निश्चित करती और उनकी संस्थाओं को चलाती है, वह उनके साहित्य और उनकी भाषा को बनाती है; वह उनके जीवन के आदर्श, उनके जीवन के सिद्धान्तों को प्रकाश देती है । वह समाज के भावात्मक और आदर्श विचारों के बीच निहित होती है, जो समाज और व्यक्ति को महत्त्व देती है । समतोलों को स्वीकार कर जब समाज सहस्त्रों वर्ष तक चलता है, तब संस्कृति महान् रूप लेती है । वह साध्य नहीं साधक है । वह जीवन का उद्देश्य और जीवन का लक्ष्य है ।"

"मनुष्य पशुता से जितना ऊँचा है, उतना ही संस्कृत है । जिसकी वृत्तियाँ अपने विकास में जितनी ही सूक्ष्म हो पाई हैं, उतना ही वह संस्कृत हो पाया है । मनुष्य पशुता से तीन बातों में ऊँचा है (१) विचार–शक्ति, (२) सौंदर्य, प्रेम और (३) नैतिक भावना। इसलिए वृत्तियों की सूक्ष्मता के साथ ही साथ इन गुणों की सूक्ष्मता मनुष्य को बहुत ऊँचा और संस्कृत बनाती है ।"

(श्री भीष्म साहनी)

"किसी भी व्यक्ति का सांस्कृति महत्त्व इस बात पर निर्भर है कि उसने अपने अहम् से अपने को कितना बन्धन-मुक्त कर लिया है । वह व्यक्ति भी संस्कृत है, जो अपनी आत्मा को माँज कर दूसरे के उपकार के लिये उसे नम्र और विनीत बनाता है । जितना व्यक्ति मन, कर्म, वचन से दूसरो के प्रति उपकार की भावनाओं और विचारों को प्रधानता देगा, उसी अनुपात से समाज में उसका सांस्कृतिक महत्त्व बढ़ेगा । दूसरों के प्रति की गई भलाई अथवा बुराई को ध्यान में रखकर ही हम किसी व्यक्ति को भला-बुरा कहते हैं । सामाजिक सद्गुण ही, जिनमें दूसरों के प्रति अपने कर्त्तव्य-पालन या परोपकार की भावना प्रमुख है, व्यक्ति की संस्कृति को प्रौढ़ बनाती है ।" ***(अलवर्ट आइन्सटाइन)***

कहने का तात्पर्य यह है कि निष्काम भाव से मनुष्य पूर्णता के लिए सतत् प्रयत्न ही संस्कृति है। हमारे अच्छे-बुरे कार्य और शुभ-अशुभ विचार-व्यवहार हमारी सभ्यता बताते हैं । ये ही सामूहिक रूप से किसी देश या जाति की संस्कृति हैं । इस प्रकार संस्कृति सभ्यता का परिणाम है और दूसरी ओर सभ्यता प्रत्येक देश, समाज की संस्कृति का व्यावहारिक रूप है । संस्कृति के चार पहलू हैं-शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक । संस्कृति का उद्देश्य जीवन के इन चारों पहलुओं को समान रूप से विकसित करना, पूर्णता के लिये प्रयत्न करना है । प्राचीन तत्त्वदर्शी ऋषियों ने जिन सूक्ष्म आधारों पर सुख-शान्ति प्राप्ति का मार्ग दिखाया, उसे संस्कृति के अन्तर्गत रखा जाता है । इस निष्कर्ष और आधार को लाखों वर्षों तक विभिन्न प्रकार से, विभिन्न स्थानों पर अजमाया गया और अन्ततः लोगों को इसी नतीजे पर पहुँचना पड़ा कि यह ऋषि–प्रणीत, विचार-पद्धति और कार्य-प्रणाली ही एक मात्र ऐसी पद्धति है, जिसे अपनाकर मनुष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

स्वयं सुख-शान्ति से रह सकते हैं और अपने सम्पर्क में आने वाले अन्यों की सुख-शान्ति में भी वृद्धि कर सकते हैं । इस प्रकार जीवन की विभिन्न समस्याओं पर अमुक दृष्टिकोण के अनुसार विचार करने और जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में अपनाई जाने योग्य कार्य–पद्धतियों का नाम संस्कृति रखा गया । यह तत्त्वज्ञान समस्त विश्व के लिए था, परन्तु चूँकि इसका आविष्कार भारत में हुआ, इसलिए इसका नाम भारतीय संस्कृति रखा गया । भारतीय संस्कृति वस्तुतः किसी संकुचित जाति-देश या सम्प्रदाय आदि तक ही सीमित नहीं, मानव मात्र के लिए समान रूप से उपयोगी, कल्याणकारी और आवश्यक विचार-प्रणाली है ।

संसार की समस्त संस्कृतियों में भारत की संस्कृति ही प्राचीनतम है । आध्यात्मिक प्रकाश संसार को भारत की देन है । गीता, उपनिषद् पुराण इत्यादि श्रेष्ठतम मस्तिष्क की उपज हैं । हमारे जीवन का संचालन आध्यात्मिक आधारभूत तत्त्वों पर टिका हुआ है । भारत में खान-पान, सोना-बैठना, शौच-स्नान, जन्म-मरण, यात्रा, विवाह, तीज-त्योहार आदि उत्सवों का निर्माण भी आध्यात्मिक बुनियादों पर है । जीवन का ऐसा कोई भी पहलू नहीं है, जिसमें अध्यात्म का समावेश न हो, या जिस पर पर्याप्त चिन्तन या मनन न हुआ हो ।

जब तक विश्व में भारतीय संस्कृति को आदर था, उसे लोग धर्म एवं ईश्वरीय आदेश एवं उच्चतम आदर्श मान कर व्यवहार करते थे, तब तक सारे विश्व में परम शान्ति का साम्राज्य था । घर-घर सुख-शान्ति विराजती थी; मनुष्य के बीच अपार स्नेह था । एक दूसरे के लिए व्यक्ति क्या त्याग कर सकता है, इसके आदर्श उपस्थित करने के लिए हर एक व्यक्ति प्रतिस्पर्धा करता था, एक दूसरे से आगे बढ़ना चाहता था । ऐसी स्थिति में धन धान्य की कमी भी कदापि नहीं हो सकती थी । मनुष्य और समाज हर प्रकार से सुखी, स्वस्थ, दीर्घजीवी, प्रसन्न और संतुष्ट दिखाई देते थे ।

भारतीय संस्कृति का अनुसरण करने वाले को भौतिक सुख और आन्तरिक शान्ति का होना सुनिश्चित है–इस तथ्य को हर एक पर प्रयोग करके ऋषियों ने यह दिखा दिया था कि मानव को अभिलाषा, सुख, शान्ति के निश्चित रूप से प्राप्त करने का एक मात्र मार्ग वही है जिसे संस्कृति कहते हैं । इस संस्कृति को पाकर मानवता धन्य हो गई थी । संसार ने भारतीयों की इस महान् देन के प्रति पूर्ण कृतज्ञता प्रकट करते हुए इसका नाम भारत-निर्मित विश्व- संस्कृति या संक्षेप में "भारतीय संस्कृति" रखा । इसकी विजय दुंदभी विश्व के कोने-कोने में बजी । इसी आधार पर भारत को चक्रवर्ती एवं, जगद्गुरु कहा गया । वास्तव में सामाजिक, आर्थिक, लौकिक, वैयक्तिक, पारलौकिक सभी प्रकार की उन्नति का विधान भारतीय संस्कृति में निहित है ।

२- भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिक आधार

भारतीय संस्कृति मनुष्य मात्र को क्या, संसार के प्राणी मात्र और अखिल ब्रह्माण्ड तक को भगवान् का विराट् रूप मानता है । भगवान् इस विराट में आत्म-रूप होकर प्रतिष्ठित है और विश्व के समस्त जीव-जन्तु प्राणी स्थावर जंगम उसमें स्थिर हैं । वे अंग हैं और ये सब अङ्गक । जीवन के अन्त तक सब में यह भावना समाविष्ट रहे, एक मित्रा इसी के लिए योग्यता, बुद्धि, सामर्थ्य के अनुसार अनेक कर्त्तव्य निश्चित हैं । कर्त्तव्यों में विभिन्नता होते हुए भी प्रेरणा में समता है, एक निष्ठा है, एक उद्देश्य है और यह उद्देश्य "अध्यात्म" कहलाता है । यह अध्यात्म लादा नहीं गया है, थोपा नहीं गया है, बल्कि प्राकृतिक होने के कारण स्वाभाविक है ।

विराट के दो भाग हैं-एक है अन्ततः चैतन्य और दूसरा है बाह्य अंग, बाह्य अंग के समस्त अवयव अपनी-अपनी कार्य-दृष्टि से स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं। कर्त्तव्य भी उनकी उपयोगिता की दृष्टि से प्रत्येक के भिन्न-भिन्न हैं; लेकिन ये सब हैं उस विराट अंग की रक्षा के लिए, उस अन्तः चैतन्य को बनाये रखने के लिए । इस प्रकार अलग होकर और अलग कर्मों में प्रवृत्त होते हुए भी जिस एक चैतन्य के लिए उनकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गति हो रही है, वही हिन्दू संस्कृति का मूलाधार है। गति की यह एकता, समसत्ता विनष्ट न हो इसी के लिए संस्कृति के साथ धर्म जोड़ा गया है और यह योग ऐसा हुआ है जिसे पृथक् नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि दोनों समानार्थक से दिखाई पड़ते हैं।

"धर्म" शब्द की व्युत्पत्ति से ही विराट की एकतानता का भाव स्पष्ट हो जाता है । जो वास्तविकता है, उसी को धारण रखना धर्म है, वास्तविक है, चैतन्य है । यह नित्य है । अविनश्वर है; शाश्वत् है । सभी धर्मों में आत्मा के नित्यत्व को, शाश्वतपन को स्वीकार किया गया है; लेकिन अंगांगों में पृथक् दिखाई देते रहने पर भी जो उसमें एकत्व है, उसको सुरक्षित रखने की ओर ध्यान न देने से विविध सम्प्रदायों की सृष्टि हो पड़ी है । हिन्दू धर्म में इस एकता को बनाये रखने, जागृत रखने की प्रवृत्ति अभी तक कायम है । यही कारण है कि संसार में नाना सम्प्रदायों-मज़हबों की सृष्टि हुई, लेकिन आज उनका नाम ही शेष है, पर हिन्दू धर्म अपनी विशालता के साथ जीवित है । हिन्दू धर्म वास्तव में मानव-धर्म है । मानव की सत्ता जिसके द्वारा कायम रह सकती है और जिससे वह विश्व- चैतन्य के विराट अंग का अंग बना रह सकता है, उसी के लिए इसका आदेश है ।

हिन्दू धर्म की विशेषता की सबसे बड़ी देन उसकी अपनी विशिष्ट उपासना-पद्धति है । विश्व-आत्मा की उपासना के लिए उसके समय-विभाग में कोई एक समय निश्चित नहीं है । उपासना देश और काल में विभाजित नहीं है । उसका तो प्रत्येक क्षण उपासनामय है । वे अपने विश्व चैतन्य को एक क्षण के लिए भी भूलना नहीं चाहते, बल्कि गति-विधि का प्रत्येक भाग इन चैतन्यदेव के लिए ही लगाना चाहते हैं ।

उपासना की दृष्टि से विराट पुरुष चार भागों में विभक्त हैं और समय भेद से भी उनके चार भाग कर दिये गए हैं । ये दोनों प्रकार के चार भाग हिन्दू संस्कृति में वर्ण एवं आश्रमों के नाम से पुकारे जाते हैं । यों समस्त ब्रह्माण्ड में वर्ण-धर्म और आश्रम पाये जाते हैं, लेकिन हिन्दू संस्कृति उन्हें पृथक् नहीं रहने देना चाहती । उसकी दृष्टि में उनका अस्तित्व तब ही तक है, जब तक कि विराट् पुरुष की रक्षा के लिए उनकी गति-विधि है । दूसरे शब्दों में विश्व-चैतन्य की सांमजस्य स्थापना में अपने को लगाये हुए हैं । अन्य संस्कृतियाँ या धर्मों की गति-विधि विराट् के प्रति नहीं है । वे अंग. के अंश तक ही सीमित हैं । कोई भी बुद्धि विशिष्ट व्यक्ति इस बात को स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि समस्त शरीर का ध्यान छोड़ कर शरीर के किसी एक ही अंग का ध्यान रखने से शरीर की रक्षा सम्भव ही नहीं हो सकती । अतः जो लोग चैतन्य को भुलाकर, जिसने कि विराट् पुरुष के शरीर को विभिन्न अंगों के द्वारा एक कर रखा है, अलग-अलग अंगों तक ही अपने को सीमित रखते हैं और अपने साथी एवं सहयोगी दूसरे अंगों को न सिर्फ भुला देते हैं, बल्कि उनके साथ प्रतिस्पर्धी बनकर उनकी सत्ता कैसे स्थिर रख सकते हैं ।

इसीलिए हिन्दू संस्कृति में इस स्पर्द्धा से बचने के लिए जीवन के आरम्भ काल में प्रत्येक को स्वरूप-ज्ञान करने का आदेश है । चिन्मय सत्ता के साथ-विराट के साथ व्यक्ति को जोड़ने वाली इस कड़ी का नाम ब्रह्मचर्याश्रम है ।

"ब्रह्मचर्याश्रम" इस नाम से ही ध्वनित होता है कि मानव की वह स्थिति है, जिसमें कि ब्रह्म में, विराट् पुरुष में, विश्वात्मा में भ्रमण करना, उसके प्रति अपने को समर्पित करना सिखाया जाता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नाम से जिन चारों वर्णों को व्यक्त किया जाता है, उनका विभेद उनकी कार्यक्षमता की दृष्टि से ही किया गया है और फिर इन्हीं चारों में अन्तर्भाव हो जाता है । ब्रह्मचर्याश्रम इन चारों को ही ब्रह्म में वरण करने की विद्या सिखाता है ।

शरीर के मुख, बाहु, उरु, पाद का काम अपने लिए नहीं है, समस्त शरीर के लिए है; उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद का काम अपने लिए नहीं विराट् पुरुष के लिए है । इस दृष्टि को अन्त तक बनाये रखने की शिक्षा ब्रह्मचर्याश्रम में दी जाती है, तब दूसरी अवस्था आती है । यह गृहस्थाश्रम है । यह आश्रम कर्म प्रधान है, व्यवहार प्रधान है । जो शिक्षा पाई है, उसे जीवन में उतार लाना है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस शिक्षा का क्रियात्मक रूप गृहस्थाश्रम से आरम्भ होता है, वानप्रस्थ में इसकी वृद्धि होती है और संयास में परिपक्वता आती है ।

इस प्रकार शरीर में रहकर और शरीर-रक्षा के लिए ही अपना रक्षण और अस्तित्व बनाये रखकर शरीर के प्रति आत्मोत्सर्ग कर देना शरीरांगों का काम है । विश्व-आत्मा के लिए उसी प्रकार अपना अस्तित्व रखकर कार्य करते हुए उत्सर्ग कर देना वर्ण-धर्म का उद्देश्य है । चैतन्य शक्ति को क्षण भर भी न भुलाने वाली यह हिंदू संस्कृति हमेशा आत्मा की ओर ही अभिमुख रहती है और इस प्रकार अभिमुख रहना ही हिंदू धर्म को बचाये रहने का एक मात्र साधन है ।

हिंदू धर्म आध्यात्म प्रधान रहा है । आध्यात्मिक जीवन उसका प्राण है । अध्यात्म के प्रति उत्सर्ग करना ही सर्वोपरि नहीं है, बल्कि पूर्ण शक्ति का उद्भव और उत्सर्ग दोनों की ही आध्यात्मिक जीवन में आवश्यकता है । कर्म करना और कर्म को चैतन्य के साथ मिला देना ही यज्ञमय जीवन है । यह यज्ञ जिस संस्कृति का आधार होगा, वह संस्कृति और संस्कृति को मानने वाली जाति हमेशा अमर रहेगी ।

हिंदू जाति कभी भी धन के पीछे नहीं पड़ी । ऐश्वर्य, यश, प्रतिष्ठा, धन इत्यादि सब कुछ इन्हें विपुलता से प्राप्त हुआ । यह धन शायद अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा कहीं अधिक था, पर भारतीय संस्कृति का आधार अर्थ, लाभ, धन, विलास कभी नहीं रहा है । युगों तक भारत शक्तिशाली बना रहा, पर तो भी शक्ति उसका आदर्श कभी नहीं बना । अपनी शक्ति का कभी उसने दुरुपयोग नहीं किया । साम्राज्य बढ़ाने, दूसरों का दमन करने, हिंसा, मारकाट या पद-लोलुपता का भारत कभी शिकार नहीं बना । धन और पाशविक शक्ति कभी भी उसकी प्रेरक शक्तियाँ नहीं बन सकीं ।

यही एक ऐसी संस्कृति रही है, जिसने जीवन के ऊपरी स्तर की चिंता कभी नहीं की है । बाहरी तड़क-भड़क में उसका कभी भी विश्वास नहीं रहा है । यह सांसारिक जीवन सत्य नहीं है । सत्य तो परमात्मा है, हमारे अन्दर बैठी हुई साक्षात् ईश्वर स्वरूप आत्मा है; वास्तविक उन्नति तो आत्मिक उन्नति है । इसी उन्नति की ओर हमारी प्रवृत्ति बढ़े, इसी में हमारा सुख-दुःख हो । यही हमारा लक्ष्य रहा है । अपने ह्रास के इतिहास में भी भारत ने अपनी संस्कृति, अपने धर्म, अपने ऊँचे आदर्शों को प्रथम स्थान दिया है । हिंदू का खाना धार्मिक, पीना धार्मिक, उसकी नींद धार्मिक, उसकी वेश–भूषा धार्मिक, उसके विवाह, मृत्यु आदि धार्मिक अर्थात् सर्वत्र ईश्वर, आत्मा और धर्म की प्रेरणा रही है । यही इस देश और जाति की सजीवता का एक कारण है ।

३–भारतीय संस्कृति में एकता के अमूल्य सूत्रा

क्या कारण था कि नाना पाश्चात्य राष्ट्र भारत की कीर्ति, अतुल पराक्रम और समृद्धि की गाथाएँ सुन-सुन कर यहाँ आया करते थे ? भारत की प्रशंसा सभी विदेशी यात्रा किया करते थे ? इसे भूतल का स्वर्ग कहा जाता था ।

कारण यह है कि भारतीय संस्कृति ने इस देश को एकता के सूत्र में बाँध रखा था । भारतीय जन परस्पर एक दूसरे से भ्रातृ-भाव, प्रेम, सौहार्द, सहानुभूति की रज्जुओं से बँधे हुए थे । विदेशी सत्ता का यह साहस न होता था कि आक्रमण कर बैठें । अनेक विदेशी आए और उस एकता की चोट खाकर वापिस लौटे । मुसलमान तथा अँग्रेज शासकों ने भारतीय एकता को, हमारे संगठन को नष्ट किया और भेद-भाव उत्पन्न कर हमें गुलाम बनाया । आज हम पाश्चात्य देशों से शासन-व्यवस्था की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, किंतु हमें मालूम नहीं कि स्वयं हमारी संस्कृति में एकता और समाजवाद की वह धाराएँ भरी पड़ी हैं, जिनसे हमारा राष्ट्र अब भी संसार का मार्ग-दर्शक हो सकता है ।

इस सम्बन्ध में आचार्य श्री नरदेव शास्त्री के बहुमूल्य विचार यहाँ उद्धृत किए जाते हैं, जो माननीय हैं । शास्त्री जी लिखते हैं कि:-

"हमारे प्राचीन भारत का सूत्रा अब भी विद्यमान है-वह है अपनी संस्कृति । इस संस्कृति का सम्बन्ध हमारे धर्म से है । नाना विचारधाराएँ, नाना पन्थों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के रहते हुए भी हमारे पूर्वज एकता में नानात्व और नानात्व में एकता को देखने का पाठ पढ़ा गये हैं। भारतीय संस्कृति के प्रचार, प्रसार द्वारा उन्हीं सूत्रों को दृढ़ करने की आवश्यकता है । "संस्कृति" कहिए या "संस्कार" कहिए, है एक ही बात है । अनेक परम्परागत संस्कारों से ही किसी जाति समुदाय, देश, राज्य की संस्कृति बनती है । हमारी एक विशेषता यह रही है कि देश में नाना धर्म, नाना पन्थ, नाना विचार रहते हुए भी सब एक सूत्र में बँधे रहे । न बँधे रहते, तो एक सहस्र वर्ष की भयंकर दासता, विदेशी विधर्मियों की प्रभुता का सुदीर्घ काल, इसमें यह भारत जीवित ही कैसे रहा ? इस पर संसार आश्चर्य करता रह गया । वह इस भारतीय संस्कृति के कारण ही जीवित रहा; विपरीत परिस्थितियों में भी सब कुछ सहता रहा और फिर उभर गया । अब अन्य देशों के लोग यह देख रहे हैं कि भारत जिस पाश्चात्य प्रजातन्त्र का प्रयोग कर रहा है, उसमें कहाँ तक सफल हो रहा है । भारत ने स्वतन्त्र होकर संसार के ईर्ष्यालु राष्ट्रों में परस्पर शांति, समृद्धि, सौजन्य के हेतु एक भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत सुन्दर उपाय बतलाया है । वह रामवाण औषधि है, पञ्चशील जिसको संसार सेवन करे, तो संसार के राष्ट्रों के समस्त दुःख ही दूर हो जाँयगे । महाभारत के शांतिपर्व में 'आमृशंस्य धर्म' के प्रसंग में जो धर्म तत्व कहे हैं, उन्हीं का तो अनुवाद है यह पञ्चशील-

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"

"जो बात, जो व्यवहार स्वयं अपने आपको नहीं भाता, प्रतिकूल लगता है, उस प्रकार का व्यवहार हम दूसरों से न करें ।"

"यन्येषां हितं न स्याद्, आत्मनः कर्म पौरुषम् ।।

"हमारे जिन कर्म और पौरुष से दूसरों का हित बिगड़ता है, उन कर्मों और पौरुषों को प्रयत्न से त्याग देना चाहिए ।"

इस नए युग के नए विचारों में हमको अपनी एकता के लिए नए सूत्रों को टटोलने की आवश्यकता नहीं है । हम अपनी संस्कृति को सम्भाले रहेंगे तो बने रहेंगे । केवल बने ही नहीं रहेंगे, बल्कि बिगड़े हुओं को सुधारेंगे । जो हमारी संस्कृति है, उसी का उच्छिष्ट संसार में बिखरा पड़ा है ।"

४-भारतीय संस्कृति महापुरुषों को जन्म देती है

भारतीय संस्कृति की एक विशेषता यह है कि यह महापुरुषों को जन्म देती है । इसमें ऐसे आधार भूत तत्वों को प्रोत्साहन दिया गया है, जिनको विकास होने पर ऐसे नर-रत्नों का जन्म होता है, जो मानवता के सिरमौर हैं ।

इस संस्कृति के ढाँचे में ढले हुए नर-रत्न अपने दिव्य प्रकाश से संसार में प्रकाश उत्पन्न करते थे और उसी आकर्षण के कारण विश्व की जनता इन्हें जगद्गुरु, चक्रवर्ती शासक एवं भूसुर-पृथ्वी का देवता मानती थी । भारत स्वर्ग की अपेक्षा भी श्रेष्ठ समझा जाता था । अतीत का इतिहास इस तथ्य का मुक्त-कण्ठ से उद्घोष कर रहा है ।

भारतीय संस्कृति के प्रभाव से प्रत्येक परिवार में स्वर्ग जैसी शांति एवं सद्भावनाओं का निवास रहता था । पिता–पुत्र के बीच कैसे भव्य और पवित्र सम्बन्ध थे, इसका उदाहरण देखना हो तो विमाता की आज्ञा से १४ वर्ष के लिए वनवास जाने वाले रामचन्द्र, अन्धे माता–पिता को कन्धे पर काँवर में बिठाकर तीर्थ कराने वाले श्रवणकुमार, पिता के दान करने पर यमपुर खुशी-खुशी प्रस्थान करने वाले नचिकेता, पिता को सन्तुष्ट करने के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेने वाले भीष्म का चरित्र पढ़ लेना चाहिये ।

भाई का भाई के प्रति क्या कर्त्तव्य है, उसकी झाँकी राम, लक्ष्मण और भरत का चरित्र पढ़ लेने से सहज ही हो जाती है । कौरवों को जब यक्षों ने बन्दी बना लिया था, तो युधिष्ठर ने भ्रातृ-प्रेम के वशीभूत होकर कटुता होते हुए भी उन्हें छुड़वाया था । पुष्कर के दुर्व्यवहार को भुलाकर नल ने अपने भाई को क्षमा ही कर दिया । ऐसे भ्रातृ-स्नेह के उदाहरण भारत में पग-पग पर मिलते हैं ।

सच्चे मित्र कैसे होते हैं, इसका उदाहरण कृष्ण ने सुदामा और अर्जुन के साथ अपना कर्त्तव्य-पालन करके दिखाया था । कहाँ द्वारिका के राजा कृष्ण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और कहाँ रंक सुदामा ! लेकिन धन और ऐश्वर्य मित्रता के मार्ग में बाधक न बन सका । प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा, भाईचारे के सामने धन और ऐश्वर्य न टिक सका ।

पति-पत्नी के बीच कैसे आदर्श सम्बन्ध होने चाहिए, इसके असंख्य उदाहरण भारत में मिलते हैं, जो हमारे यहाँ के पत्नी-व्रती पुरुष और पति-व्रता नारियों ने पग-पग उपस्थित किये हैं । सीता, सावित्री, शैव्या, दमयन्ती, गान्धारी, अनुसूया, सुकन्या की कथाएँ भारत में घर-घर गाई जाती हैं । पर स्त्री को माता एवं पुत्री समझने वाले भी सभी कोई थे । छत्रपति शिवाजी द्वारा यवन कन्या को आदर से सुरक्षित रूप में राजमहल में पहुँचा देना, अर्जुन का उर्वशी को लौटा देना, कच का रूप गर्विता देवयानी का प्रस्ताव अस्वीकार करना, सूर्पणखा का लक्ष्मण द्वारा उपहास जैसे संयम के प्रसंगों की कमी नहीं है । भीष्म, हनुमान जैसे अखण्ड ब्रह्मचारी भारत में प्रचुर संख्या में मिलते हैं ।

अतिथि-सत्कार के लिए मोरध्वज का अपना पुत्र दे देना, भूखे बहेलिए के लिए कबूतर-कबूतरी का अपना शरीर दे देना, दुर्भिक्ष पीड़ित समय में अनेक दिनों से भूखे ब्राह्मण परिवार का अपनी थाली की रोटियाँ चाण्डाल को दे देना आदि अनेकों वृत्तांत महाभारत में देखे जा सकते हैं । कबूतर जैसे छोटे से पक्षी की रक्षा के लिए राजा शिवि ने अपना माँस काट-काटकर दे दिया था । महारानी कुन्ती ने ब्राह्मण कुमार के बदले अपने पुत्र भीम को राक्षस का आहार बनने के लिए भेजा था ।

अपने स्वार्थ, सुख-साधन, धन, सम्पदा, संग्रह, ऐश-आराम को लात मारकर अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए लोक सेवक और परमार्थ का जीवन व्यतीत करने में भारतीय व्यक्ति अपने जीवन की सफलता मानते रहे हैं । गौतम बुद्ध अपने राजपाट और सौभाग्य को छोड़ कर हिंसा और अज्ञान में डूबे संसार को दया और आत्म-ज्ञान की शिक्षा देने के लिए निकल पड़े । भगवान् महावीर ने लालची और विषयासक्त दुनियाँ को त्याग और संयम का पाठ पढ़ाने के लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया । भागीरथ ने राज-सुख को छोड़कर दीर्घकाल तक कठोर तप किया और प्यासी पृथ्वी को तृप्त करने के लिए तरण-तारिणी गंगा का अवतरण कराने का महान् कार्य पूरा किया ।

हमारे यहाँ अनेक ऐसी महान् आत्माएँ हुई हैं, जिन्होंने घूम-घूम कर अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की परवाह न कर आत्मज्ञान का प्रचार किया है । नारद जी कुछ घड़ी भी एक स्थान पर ठहर कर आत्म-ज्ञान का प्रसार करने के लिए हर घड़ी पर्यटन करते रहते थे । व्यास जी ने संसार को धर्म-ज्ञान देने के लिए अठारह पुराणों की रचना की थी । आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण जैसे मूल्यवान कल्याणकारी ग्रथ की रचना करके मानव-जाति को कर्त्तव्य-पथ पर चलने के लिए अग्रसर किया है । चरक, सुश्रुत, बाणभट्ट, धन्वन्तरि जैसे त्यागी निस्पृह ऋषियों ने जीवन भर जड़ी-बूटियों, धातुओं, विषों आदि का अन्वेषण करके रोग-ग्रस्त पीड़ितों का त्राण करने के लिए सर्वांगपूर्ण चिकित्सा-शास्त्र का आविर्भाव किया और कभी भी अर्थलाभ या स्वार्थ का कण भी नहीं दिखाया । दिखावट या शेखीखोरी का अणुमात्रा भी पास नहीं आने दिया ।

ज्योतिष-विद्या की बड़ी-बड़ी खोजें, आकाश में पाये जाने वाले ग्रह-नक्षत्रों की गति—विधियों और उनका मनुष्य जाति पर जो प्रभाव पड़ता है, उसकी खोज करने वाले हिंदू ऋषि ही थे । सूर्य सिद्धान्त, मकरन्द, ग्रहलाघव आदि को देखने से आश्वर्य होता है कि उस समय बिना वैज्ञानिक यन्त्रों के इस प्रकार की शोध करके संसार को महान् ज्ञान देने के लिए उन्हें कितना श्रम पड़ा होगा, जिसकी मजदूरी उन्होंने कभी नहीं चाही । दैवी संस्कृति, देव-तुल्य आचार-विचारों की पद्धति ही इनका कारण थी । इस पद्धति के अनुसार जीवन का निर्माण करने का अर्थ निश्चित रूप से यह रहा है कि मनुष्य भौतिक सुख-सम्पदाओं की अपेक्षा आध्यात्मिक सद्गुणों, सद्विचारों, सद्कार्यों को अधिक महत्त्व दे तथा संसार के क्षुद्र स्वार्थों का ध्यान न रखे ।

इस संस्कृति ने ऐसे अनेक महान् ऋषि-मुनि उत्पन्न किए हैं, जिन्होंने विश्व तथा मानव की सेवा में ही अपना जीवनदान दिया था । विश्वामित्र, वशिष्ठ, जगदग्नि, कश्यप, भारद्वाज, कपिल, कणादि,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गौतम, जैमिनी, पाराशर, याज्ञवल्क्य, शंख, कात्यायन, गाभिल, पिल्लाद, शुकदेव, श्रृंगी, लोमश, धौम्य, जयत्कारु, वैशम्पायन आदि भारतीय ऋषियों ने अपने को तिल-तिल जलाकर संसार के लिए वह प्रकाश उत्पन्न किया जिसकी आभा अभी तक बुझ नहीं सकी है । सूत और शौनक निरन्तर प्राचीन काल के महापुरुषों की गाथाएँ, विरुदावलियाँ, धर्म-चर्चाएँ सुना-सुनाकर मानव-जाति की सुप्त अन्तरात्माओं को जगाया करते थे ।

यही वह संस्कृति है जिसने संसार का हित करने के लिए अपने जीवन की कुछ भी परवाह नहीं की थी । महर्षि दधीचि ने असुरत्व से देवत्व की रक्षा के लिए अपनी हड्डियाँ ही दान कर दी थीं । धर्म तथा मर्यादा की रक्षा के लिए बन्दा वैरागी खौलते तेल के कढ़ाह में प्रसन्नता पूर्वक कूद पड़ा । वीर हकीकत राय के कत्ल, गुरुगोविन्द सिंह के बालकों के जीवित दीवारों में चुने जाने की कथाएँ आज भी धर्म-कर्त्तव्य की उपेक्षा करके धन-संग्रह और इन्द्रिय भोगों में लगे हुए लोगों पर लानत देती हुई आकाश में विहार कर रही हैं ।

आज अधिकांश पण्डित, पुरोहित, साधु, ब्राह्मण आदि संसार को मिथ्या बताते हुए मुफ्त में आनन्द मंगल मना रहे हैं । ब्राह्मण का कर्त्तव्य विद्या-अर्जन और जनता को सुमति सदुपदेश देना है, किंतु आज के ब्राह्मण संसार का बौद्धिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए कुछ भी श्रम नहीं करते ।

भारतीय संस्कृति की परम्परा इस पतित स्थिति से सदा सर्वदा भिन्न रही है । साधुता और ब्राह्मणात्व, आचार्य और पण्डितों का बहुत ऊँचा आदर्श रहा है।

शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट, सिख धर्म की रक्षा करने और धर्म की रक्षा के लिये अपने को बलिदान करने वाले दस गुरुओं स्वामी दयानन्द सरस्वती, सन्त ज्ञानेश्वर, सन्त तुकाराम, समर्थ गुरु रामदास, चैतन्य महाप्रभु, कवि शिरोमणि कबीर, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ आदि असंख्य भारतीय धर्म-गुरु लोकहित के लिये जीवन भर घोर परिश्रम, प्रयत्न और परिभ्रमण करते रहे हैं । यही उनके जीवन की साधना थी । उन्होंने अपना सब कुछ देकर लोक-सेवा को एकान्त मुक्ति से अधिक महत्त्व दिया ।

भगवान् बुद्ध जब अपनी जीवन-लीला समाप्त करने लगे, तो उनके प्रिय शिष्यों ने कातर हो पूछा-"आप तो अब मुक्ति के लिये प्रयास कर रहे हैं ।" अब हमारा मार्ग-दर्शन कौन करेगा ? बुद्ध ने उत्तर दिया, "जब तक संसार में एक भी प्राणी बन्धन में बँधा हुआ है, तब तक मुझे मुक्ति की कोई कामना नहीं है । मैं मानव मात्रा का उत्कर्ष करने के लिये बार-बार जन्म लेता और मरता रहूँगा ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भी योग-साधना करते हुए हिमालय गये थे । वहाँ इन्हें ईश्वरीय प्रेरणा प्राप्त हुई कि "लोक-सेवा ही सर्वोत्तम योग-साधना है ।" स्वामी जी यह लोक-सेवा का उद्देश्य लेकर तपस्या से लौट आये और जीवन भर अज्ञानग्रस्त जनता में ज्ञान-प्रचार करने में ही अपनी साधना मानते हुए जीवन समाप्त कर दिया । जनता की सेवा ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य रहा ।

यह भारतीय संस्कृति ही थी जिसके प्रभाव के कारण शंकराचार्य और स्वामी दयानन्द सेवा करते-करते विष-पान कर स्वर्ग सिधारे थे । गाँधी जी भी जीवन भर जनता-जनार्दन की सेवा करते रहे, अपने परिवार तक का मोह उन्हें न बाँध सका। उन्होंने महात्मा शब्द को सार्थक किया । लोकमान्य तिलक और महामना मालवीय जैसे व्यक्तियों का चरित्र ही पण्डित शब्द का वास्तविक प्रमाण है ।

भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के लिये गुरु-शिष्य की प्रशस्त परम्परा रही है । यह भारत की अपनी वस्तु है । गुरु शिष्य की परम्परा का शरीर से सम्बन्ध नहीं, आत्मा का सम्बन्ध है । साधक का जीव गुरु के जीव का शिष्य बनता है । इसलिये गुरु के शरीर-त्याग के पश्चात् भी उसको उनसे निर्बाध प्रेरणा मिलती रहती है । गुरु आत्मरुप है, देह रूप नहीं । भारतीय संस्कृति ने कैसे--कैसे उत्तम गुरु उत्पन्न किये हैं, यह जानना हो तो गुरु गोविंदसिंह आदि सिक्खों के दस गुरुओं का चरित्र पढ़ना चाहिये । शिष्य भी तब ऐसे ही होते थे । गुरु के लिये बलिदान करने को सदा सहर्ष तैयार रहते थे । एकलव्य, अरुणि, उद्दालक, धौम्य, नचिकेता आदि भारतीय शिष्यों के चरित्रा पढ़ने से हमें भारतीय संस्कृति पर सहज ही गर्व होने लगता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारतीय संस्कृति में पले हुए राजा कैसे होते थे, इसका उदाहरण राजा जनक के जीवन से मिल सकता है । वे प्रजा की सेवा को ही अपने जीवन का महानतम उद्देश्य मानते थे और सच्चे अर्थों में प्रजा के सेवक थे । अपने जीवन-निर्वाह के लिए वे परिश्रम करके स्वयं कमा लेते थे और राजकोष से एक कोड़ी भी अपने लिये नहीं लेते थे । वे राज्य कार्य और न्याय-व्यवस्था अपना कर्त्तव्य मानकर करते थे और जीविका के लिये स्वयं खेती करके अन्न उत्पन्न कर लेते थे । संस्कृत में हल की नोक का नाम 'सीता' है । इसीलिये राजा जनक को खेत जोतते समय जो कन्या प्राप्त हुई उसका नाम भी 'सीता' रखा गया था।

महर्षि विश्वामित्रा को जब यज्ञीय (लोक हितकारी) कार्य के लिये धन की आवश्यकता पड़ी तो राजा हरिश्चन्द्र ने समस्त राज-कोष दान कर दिया और जब उससे भी काम न चला तो अपने तथा अपने स्त्री-बच्चों को बेचकर एक आदर्श राजा का आदर्श उदाहरण उपस्थित किया ।

छत्रपति शिवाजी का आदर्श भी यही था । उनके गुरु का नाम समर्थ रामदास था । वे निरन्तर उनके आदर्शों पर चलते रहे । यहाँ तक कि एक समय तो ऐसा आया कि उन्होंने अपना सारा राज्य ही गुरु के चरणों में अर्पित कर दिया था और स्वयं गुरु की आज्ञानुसार एक मुनीम की तरह राज्य का संचालन करते रहे । उसी देख-रेख में मराठा राज्य फला-फूला और पनपता रहा । भयंकर कठिनाइयों में भी उसकी निरन्तर उन्नति होती रही ।

भरत का उदाहरण खोजे भी संसार में अन्यत्रा नहीं मिलेगा, राजा राम की चरण पादुकाओं को ही शासक मानकर स्वयं एक तुच्छ सेवक की भाँति वे चौदह वर्ष तक राज्य संचालन करते रहे । हर प्रकार का अवसर होते हुए और ज्येष्ठ भ्राता के दूर रहने पर भी कभी उन्होंने राज्य को हड़प जाने की कामना नहीं की । यह भारतीय संस्कृति के उच्च संस्कारों का ही प्रताप था ।

धौलपुर की राजगद्दी के मालिक नृसिंह भगवान् और मेवाड़ की राजगद्दी के मालिक भगवान् एकलिंक जी माने जाते थे । इन स्थानों के राजाओं ने कभी स्वयं को अधिपति न माना । केवल अपने आपको राज्य का विनम्र संचालक माना । पीछे यद्यपि यह बात दिखावा मात्र रह गई, पर प्रारम्भ में यह त्याग भी उसी शृंखला का एक प्रतीक अवश्य था ।

राजा विक्रमादित्य प्रजा की वास्तविक स्थिति से परिचय प्राप्त करने के लिए वेश बदल कर प्रजाजनों में घूमता रहता था । प्रजा की सच्ची सेवा, उसके लिए सदा सब कुछ करने को प्रस्तुत रहना, उनके सुख–सुविधा को बढ़ाना यही उसका प्रधान लक्ष्य रहा । इसी प्रकार महाराणा प्रताप राज-सुख की परवाह न करके जीवन भर देश को आजाद करने के लिए स्वाधीनता संग्राम में धर्म-युद्ध करते रहे ।

महान् राज-पुत्रा दुर्गादास राठौर को धर्म-युद्ध में रोटी भी नसीब नहीं हुई । ऐसे-ऐसे अवसर आये जब भूख से तड़प कर घोड़े पर चढ़े-चढ़े ही वे भाले की नोंक में छेदकर भुट्टे भूनकर खाते थे और स्वाधीनता संग्राम लड़ते रहते थे । ऐसे सैकड़ों राजा भारत ने उत्पन्न किए । छत्रसाल की गाथा सर्वविदित है । ये शासक हमारी संस्कृति के प्रतिनिधि हैं ।

राजा ही नहीं, यहाँ के मन्त्री भी निस्वार्थ, त्यागी, निर्लेप और कुशाग्र हुए । अपने व्यक्तिगत लाभ की कभी कोई कामना उन्होंने नहीं की । वे सदा निष्पक्ष भाव से सत्य की रक्षा करते रहे । अपराध के प्रति कठोर रहे । चाणक्य का जीवन भारतीय संस्कृति का एक नमूना है । विश्व का वह अभूतपूर्व कुशाग्र बुद्धि कूटनीतिज्ञ एक फूँस की झोपड़ी में गरीब लोगों की भाँति जीवन व्यतीत करता था और राज्य कोष से अपने व्यक्तिगत व्यय के लिए कुछ भी नहीं लेता था ।

हमारे यहाँ के धनवान, लक्ष्मीपति भी सदा लोक-हित का ध्यान रखते रहे हैं । जिन-जिनके पास धन सम्पत्ति होती थी, वे उसे सात पीढ़ियों के लिए तिजोरी में बन्द नहीं करते थे, वरन् तात्कालिक लोक-हित के लिए उसे मुक्तहस्त से दान करते थे। राजा कर्ण जैसी दानशीलता किस देश और किस संस्कृति में मिल सकती है ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

५-भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

भारतीय संस्कृति के अनुसार व्यक्ति का दृष्टिकोण ऊँचा रहना चाहिए । हमारे यहाँ अन्तरात्मा को प्रधानता दी गई है । हिन्दू तत्त्वदर्शियों ने संसार की व्यवहार वस्तुओं और व्यक्तिगत जीवन-यापन के ढँग और मूलभूत सिद्धान्तों में परमार्थिक दृष्टिकोण से विचार किया है । क्षुद्र सांसारिक सुखोपभोग से ऊँचा उठकर, वासनाजन्य इन्द्रिय सम्बन्धी साधारण सुखों से ऊपर उठ आत्म-भाव विकसित कर परमार्थिक रूप से जीवन-यापन को प्रधानता दी गई है ; नैतिकता की रक्षा को दृष्टि में रखकर हमारे यहाँ मान्यताएँ निर्धारित की गई हैं ।

प्राचीन भारतीय तत्वदर्शियों ने हिन्दू संस्कृति का सूक्ष्म आधार जिन मान्यताओं पर रखा है वे संक्षेप में इस प्रकार रखे जा सकते हैं:-

१-सुख का केन्द्र आन्तरिक श्रेष्ठता-

भारतीय ऋषियों ने खोज की थी कि मनुष्य की चिरंतन अभिलाषा, सुख-शान्ति की उपलब्धि इस बाह्य संसार या प्रकृति की भौतिक सामिग्री से वासना या इन्द्रियों के विषयों को तृप्त करने से नहीं हो सकती। पार्थिव संसार हमारी तृष्णाओं को बढ़ाने वाला है । एक के बाद एक नई-नई सांसारिक वस्तुओं की इच्छाएँ और तृष्णाएँ निरन्तर उत्पन्न होती रहती हैं। एक वासना पूरी नहीं हो पाती कि नई वासना उत्पन्न हो जाती है । मनुष्य अपार धन संग्रह करता है, अनियन्त्रित काम-क्रीड़ा में सुख ढूँढ़ता है, लूट-खसोट और स्वार्थ-साधन से दूसरों को ठगता है । धोखाधड़ी, छलप्रपंच, नाना प्रकार के षड़यन्त्र करता है, विलासिता, नशेबाजी, ईर्ष्या-द्वेष में प्रवृत्त होता है, पर स्थायी सुख और आनन्द नहीं पाता । एक प्रकार की मृगतृष्णा मात्र में अपना जीवन नष्ट कर देता है । उलटे उसकी दुष्ट वृत्तियाँ और भी उत्तेजित हो उठती हैं । जितना-जितना मनुष्य सुख को संसार की बाहरी वस्तुओं में मानता है, उतना ही व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन अतृप्त, कंटकाकीर्ण, दुखी, असन्तुष्ट और उलझन भरा होता जाता है । हिन्दू तत्त्ववेत्ताओं ने इस त्रुटि को देखकर ही यह निष्कर्ष निकाला था कि स्वार्थपरता और सांसारिक भोग कदापि स्थायी आनन्द नहीं दे सकता । हमारे स्थायी सुखों का केन्द्र भौतिक सुख-सामिग्री न होकर आन्तरिक श्रेष्ठता है । आन्तरिक शुद्धि के लिए हमारे यहाँ नाना विधानों का क्रम रखा गया है । त्याग, बलिदान, संयम वे उपाय हैं, जिनसे आन्तरिक शुद्धि में प्रचुर सहायता मिलती है ।

२-अपने साथ कड़ाई और दूसरों के साथ उदारता-

भारतीय संस्कृति में अपनी इन्द्रियों के ऊपर कठोर नियंत्रण का विधान है । जो व्यक्ति अपनी वासनाओं और इन्द्रियों के ऊपर नियंत्रण कर सकेगा, वही वास्तव में दूसरों के सेवा-कार्य में हाथ बँटा सकता है, जिससे स्वयं अपना शरीर, इच्छाएँ वासनाएँ आदतें ही नहीं सम्भलती, वह क्या तो अपना हित और क्या लोकहित करेगा ।

"हरन्ति दोषजानानि नरमिन्द्रियकिंकरम् ।

(महाभारत अनु० प० ५१,१६)

"जो मनुष्य इन्द्रियों (और अपने मनोविकारों) का दास है, उसे दोष अपनी ओर खींच लेते हैं ।"

"बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वंसमति कर्षपि ।"

(मनु० २-१५)

"इन्द्रियाँ बहुत बलवान हैं । ये विद्वान को भी अपनी ओर बलात् खींच लेती हैं ।"

अतः भारतीय संस्कृति ने सदा अपने साथ कड़ाई के व्यवहार की स्थापना की है । यदि हम अपनी कुप्रवृत्तियों को नियंत्रित न करेंगे, तो हमारी समस्त शक्तियों का अपव्यय हो जायेगा । आदर्श भारतीय वह है जो दम, दान एवं यम-इन तीनों का पालन करता है । इन तीनों में भी विशेषतः दस (अर्थात् इन्द्रिय दमन) भारतीय तत्त्वार्थदर्शी पुरुषों का सनातन धर्म है । इन्द्रिय–दमन आत्मतेज और पुरुषार्थ को बढ़ाने वाला है । दम तेज़ को बढ़ाता है । दम परम पवित्र और उत्तम है । अपनी शक्तियाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ा कर दम से पुरुष पाप रहित एवं तेजस्वी होता है । संसार में जो कुछ नियम, धर्म, शुभ कर्म अथवा सम्पूर्ण यज्ञों के फल हैं, उन सब की अपेक्षा दम का महत्त्व अधिक है । दम के बिना दान रूपी क्रिया की यथावत् शुद्धि नहीं हो सकती । अतः दम से ही यज्ञ और दम से ही दान की प्रवृत्ति होती है ।

जिस व्यक्ति ने इन्द्रिय दमन और मनोनिग्रह द्वारा अपने को वश में नहीं किया है, उसके वैराग्य धारण कर वन में रहने से क्या लाभ तथा जिसने मन और इन्द्रियों का भली-भाँति दमन किया है, उसको घर छोड़कर किसी जंगल या आश्रम में रहने की क्या जरूरत ?

जितेन्द्रिय पुरुष जहाँ निवास करता है, उसके लिए वही स्थान वन एवं महान् आश्रम है । जो उत्तम शील और आचरण में रत है, जिसने अपनी इन्द्रियों को काबू में कर लिया है तथा जो सरल भाव से रहता है, उसको आश्रमों से क्या प्रयोजन । विषयासक्त मनुष्यों से वन में भी दोष बन जाते हैं तथा घर में रह कर भी पाँचों इन्द्रियों पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया जाय, तो वही तपस्या है ।

जो सदा शुभ कर्म में प्रवृत्त होता है, उस वीतराग पुरुष के लिए घर ही तपोवन है । जो एकान्त में रहकर दृढ़ता पूर्वक नियमों का पालन करता है, इन्द्रियों की आसक्ति से दूर हटता है, अध्यात्म तत्व के चिन्तन में लगता है, वही भारतीय संस्कृति का फूल है ।

एक ओर जहाँ भारतीय संस्कृति इन्द्रिय संयम कर उपदेश देती है, वही दूसरी ओर वह दूसरों के प्रति अधिक से अधिक उदार होने का आग्रह करती है । सच्चे भारतीय को दूसरों की सेवा, सहयोग और सहायता के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए ।

"सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम् ।
यद्भूतहितमत्यन्तम्, एतत सत्यं ब्रवीम्यहम् ।।"

(म.भा.शां २६३.१६)

"अर्थात् सब से बढ़कर कल्याण करने वाला सत्य का कथन है, परन्तु सत्य का ज्ञान तो बहुत ही कठिन है । इसलिए सुगम रूप से उसी को मैं सत्य कहता हूँ जो प्राणियों के लिए अधिकतया हितकर हो ।"

आत्मोत्कर्ष न मार्गेत परेषां परिनिन्दया ।
स्वगुणैरेव मार्गेव विप्रकर्स पृथक् जनात् ।।

"दूसरों की निन्दा से अपनी उन्नति को कभी न देखे । अपने सद्गुणों से ही दूसरे मनुष्यों की जो उन्नति चाहे वही सच्चा भारतीय है । भारतीय संस्कृति के उपासक सदा निर्बलों, अपनी शरण में आये हुओं, अतिथों के सहायक होते हैं ।"

भारत में सदा दूसरों के साथ उदारता का व्यवहार रहा है । जो लोग बाहर से मारने के लिए आये, जिन्होंने विष दिया, जिन्होंने आग में जलाया, जिन्होंने हाथियों से रौंदवाया और जिन्होंने साँपों से डसवाया, उन सब के प्रति भी भारतीय संस्कृति उदार रही है । मित्र-भाव से सद्व्यवहार ही करता रहा है । हमने सबमें भगवान् को देखा है । हाथी में विष्णु, सर्प में विष्णु जल में विष्णु और अग्नि में भी भगवान् विष्णु को देखा है तो फिर पशुओं और मनुष्यों की बहुत ही ऊँची बात है । हम मनुष्य मात्रा को प्यार करने वाले उदार जाति के रहे हैं ।

३-सद्भावों का विकास-

अन्तरात्मा में छिपे हुए व्यापार और सद्भाव को दूसरों के साथ अधिकाधिक विकसित एवं चरितार्थ करना हमारी संस्कृति का तत्त्व है ।

भारतीय संस्कृति मनुष्य की अन्तरात्मा में सन्निहित सद्भावों के विकास पर अधिक जोर देती है । "शीलं हि शरणं सौम्य" (अश्वघोष) सत् स्वभाव ही मनुष्य का रक्षक है । उसी से अच्छे समाज और अच्छे नागरिक का निर्माण होता है । अन्तरात्मा में छिपे हुये व्यापार और सद्भाव को दूसरों के साथ अधिकाधिक विकसित करना—हमारा मूल मन्त्र रहा है । हमारे यहाँ कहा गया है:-

"तीर्थानां हृदयं तीर्थ शुचीनां हृदयं शुचिः

(म.भा.शा.प.१६१-१८)

"सब तीर्थों में हृदय (अन्तरात्मा) ही परम तीर्थ है । सब पवित्रताओं में अन्तरात्मा की पवित्रता ही मुख्य है ।"

हम यह मानकर चलते रहे हैं कि हमारी अन्तरात्मा में जीवन और समाज को आगे बढ़ाने और सन्मार्ग पर ले जाने वाले सभी महत्त्वपूर्ण विचारों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण, हमारी आत्मा में साक्षात् भगवान् का निवास होता है । जिस प्रकार मकड़ी तारों के ऊपर की ओर जाती है तथा जैसे अग्नि अनेकों शुद्ध चिनगरियाँ उड़ाती है, उसी प्रकार इस आत्मा से समस्त प्राण, समस्त लेख, समस्त देवगण और समस्त प्राणी मार्ग-दर्शन और शुभ सन्देश पाते हैं । सत्य तो यह है कि यह आत्मा ही उपदेशक है ।

शाश्ता विष्णुरशेसस्य जगतो यो ह्रदि स्थितः ।
नमृते परमात्मानं ताल कः केन शास्यते ।।

(विष्णु १ । १७ । २०)

"ह्रदय में स्थित भगवान् विष्णु ही तो सम्पूर्ण जगत के उपदेशक है । उन परमात्मा को छोड़कर और कौन किसी को कुछ सिखा सकता है ।"

भारतीय संस्कृति दूसरों के प्रति उदारता का व्यवहार करने पर जोर देती है । हम मनुष्यों की पूजा करें । मनुष्य को मनुष्य नही ईश्वर रूप मानें, सभी को ईश्वर रूप, परमात्मा रूप समझें और इस प्रकार मनुष्य की उपासना करें तो यह ईश्वर की ही उपासना होगी । जो कोई हमारे पास आवे, ईश्वर समझकर हमें उसका स्वागत करना चाहिए । अपने अन्दर से हमें अमृत का प्रवाह बहाना चाहिये जिससे दूसरे भी अपने-अपने व्यक्तित्व कोअधिकाधिक विकसित करें ।

४-व्यक्तिगत आवश्यकताऐं घटा कर विश्वहित की ओर ध्यान-

भारतीय संस्कृति ने विश्वहित को बड़ा महत्त्व दिया है । अपनी निजी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ घटाते रहना और समय, शक्ति तथा योग्यता का अधिकांश भाग विश्वहित में लगाना हमारा आदर्श रहा है । कम से कम खा, पहिन कर अधिक से अधिक सेवा करना, स्वाद के लोभ से भोजन न खाना और विलास तथा दिखावे के लोभ से विलासिता के वस्त्र न पहिनना हमारे देश की परिपाटी रही है । भोजन इसलिए किया जाता है कि शरीर स्वस्थ रहे और उस शरीर से अधिक से अधिक विश्व की सेवा की जाती रहे । भारतीय संस्कृति के पुजारी को यह इष्ट है कि उसके वस्त्र स्वच्छ हो और उनमें किसी प्रकार का दिखावटीपन न हो । वह कम से कम सोवे और सांसारिक दिखावे से अपने को अलिप्त रखे । बिना पूर्ण त्याग के विश्वहित हो नहीं सकता ।

हमारे गृहस्थ भी ऐसे-ऐसे हुए हैं जिन्होंने पूरे राज्य का संचालन करते हुए उनसे सर्वथा अनासक्त रहे हैं । अपने शरीर का भी मोह नहीं किया । महाराजा जनक तो इसीलिए विदेह कहे जाते थे । विरक्त शिरोमणि श्री शुकदेव जी भी जिन्हें गुरु बनाकर ज्ञानोपदेश लेने गये, उस परम ज्ञानी के सम्बन्ध में क्या कहा जाय ? तुलाधर वैश्य थे । अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ घटा कर वे सदा ग्राहक का हित देखते रहे । धर्म व्याध शूद्र थे । उनके त्याग के सामने ब्राह्मण भी नत हो जाते थे । महर्षि याज्ञवल्क्य ने एक कोपीन और जलपात्रा के अतिरिक्त कभी कुछ न रखा था । श्री शुकदेवजी, श्री शंकराचार्यजी विरक्त सन्त निरन्तर लोकहित के कार्य करते रहे हैं । इसी प्रकार के अनेक ज्ञानियों ने निष्काम-भाव से परोपकार और प्राणीमात्रा की सेवा को अपने जीवन का ध्येय बनाया है ।

भारतीय संस्कृति कहती है, "हे मनुष्यों ! अपने ह्रदय में विश्व–प्रेम की ज्योति जला दो । सबसे प्रेम करो । अपनी भुजाएँ पसार कर प्राणीमात्र को प्रेम के पाश में बाँध लो । विश्व के कण-कण को अपने प्रेम की सरिता से सींच दो । विश्व-प्रेम वह रहस्यमय दिव्य रस है, जो एक ह्रदय से दूसरे को जोड़ता है । यह एक अलौकिक शक्ति सम्पन्न जादू भरा मरहम है, जिसे लगाते ही सबके रोग दूर हो जाते हैं । जीना आदर्श और उद्देश्य के लिये जीना है । जब तक जिओ विश्व-हित के लिए जिओ । अपने पिता की सम्पत्ति को सम्हालो । यह सब तुम्हारे पिता की है । सबको अपना समझो और अपनी वस्तु की तरह विश्व की समस्य वस्तुओं को अपने प्रेम की छाया में रखो । सबको आत्म-भाव और आत्म-दृष्टि से देखो ।"

५-शुद्ध कमाई का प्रयोगः—

भारतीय संस्कृति ने परिश्रम और अनुशासन से प्राप्त ईमानदारी की कमाई पर जोर दिया है । हम आलस और प्रसाद से बचते रहें; परिश्रम करते रहें अनुशासन को मजबूती से पकड़े रहें तथा शुद्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कमाई उपयोग करते रहें-यह हमारे आदर्श है । कहा भी है–

"अपमित्य धान्यं यज्जघसाहृमिंद"

(अथर्ववेद ६-११७-१)

"ऋण लेना एक प्रकार की चोरी है । हम अपनी सात्विक कमाई से अधिक व्यय न करें । पाप की कमाई, जन्म-जन्म तक दुःख रूपी नर्क में पड़े रहने की तैयारी है ।"

रमतां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीता अपनीनशम् ।

(अथर्ववेद ७-११५-४)

"पुन्य से कमाया हुआ धन ही सुख देता है जो पाप युक्त धन है, उसको मैं नाश करने वाला बनूँ ।"

भारतीय संस्कृति हमें अपने ऊपर अनुशासन करना सिखाती है । वह अनुशासन पुलिस या फौज की भाँति बाहर से थोपा हुआ न होकर प्रेम, सत्य और नीति का अनुशासन है । न्याय, सत्य और प्रेम-ये सदा सनातन एक से रहने वाले पदार्थ हैं । इनके अनुसार जो बात उक्ति या मार्ग आज सत्य है, वह सदा सत्य रहने वाला है । किसी अनुचित कामना, इच्छा, वासना, तृष्णा आदि को कभी न बढ़ने देना चाहिये, अन्यथा जीव अधिकाधिक बन्धन में बँधता जाता है । इसलिए इस संस्कृति में त्याग और परोपकार का बहुत महत्त्व है । सच्चे परिश्रम और ईमानदारी से जो कुछ भी प्राप्त हो जाय, उसी पर निर्वाह करने पर जोर दिया गया है ।

सर्वेषा मेव शौचनामर्थ शौचं परं स्मृतम् ।
थोऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्थ मृद्धारिशुचिः शुचिः ।।

(मनु० ५-१०२)

सब शुद्धियों में धन की पवित्रता ही श्रेष्ठ कही गई है, क्योंकि जो कमाई शुद्ध है वह व्यक्ति धन की दृष्टि से शुद्ध कहा जा सकता है । मिट्टी या जल की शुद्धि, शुद्धि नहीं कही जाती । तात्पर्य यह है कि जो पराया धन नहीं हरता और न्याय से धन उपार्जन करता है वह शुद्ध है और जो अन्याय से द्रव्य हरता है, किंतु मिट्टी लगाकर स्नान करता है वह पवित्र नहीं है । हमारे यहाँ कहा गया है-

प्र पतेत पापि लश्च्यि

(अथर्ववेद ७/११५/१)

अर्थात् "पाप की कमाई छोड़ दो । पसीने की कमाई से ही मनुष्य सुखी बनता है ।"

देवः वार्य बनने

(ऋग १६६/११२)

" धन उन्हीं के पास ठहरता है, जो सद्गुणी होते हैं । दुगुर्णी की विपुल सम्पदा भी स्वल्प काल में नष्ट हो जाती है ।"

रयिं दानाय चोदव ।

(अथर्ववेद ३/२०/५)

" दान देने के लिए धन कमाओ । संग्रह करने या विलासिता के लिए धन नहीं है ।"

अपने को एकाकी नहीं, विश्व-मानव की महीन मशीन का एक पुर्जा मानना और स्वार्थ को विश्व-स्वार्थ (परमार्थ) में भुला देना :–

भारतीय संस्कृति में यह विशेषता है कि वैयक्तिक जीवन की चरितार्थता का विश्व के समष्टि जीवन की चरितार्थता के साथ कोई विरोध नहीं है । हम यह मानते आये हैं कि सब विश्व में स्वयं हमारा ही प्राण बिखरा पड़ा है । सबमें एक ही आत्मा समष्टि रूप से फैली हुयी है । वहाँ सब समान है । एक ही विराट मशीन के छोटे-बड़े कल-पुर्जे हैं । अतएव सबको समान ही समझना चाहिए । हिन्दू मानता है कि शरीर नहीं, आत्मा है । महान् आत्मा का एक अंश है । जब हम आत्मवाद में इतना अधिक विश्वास करते हैं, तो स्वभावतः भौतिकवाद को केवल उतना ही महत्त्व देना उचित है, जितना वह अनिवार्यतः आवश्यक है ।

एक ही प्राण सब में व्याप्त है । एक ही विराट आत्मा का सर्वत्र प्रकाश है, एक ही सूर्य का प्रतिबिम्ब सर्वत्र जगमगा रहा है । सम्पूर्ण समाज एक बड़ा शरीर है और हम सब उसके अंग मात्र हैं । नर नारायण, जनता-जर्नादन, विराट पुरुष आदि भारतीय संस्कृति के शब्दों में यही भाव भरा हुआ है। हम आत्मीयता के पुजारी हैं । आत्मीयता हमसे आग्रह करती है कि हम अपने स्वार्थ को विश्व स्वार्थ या परमार्थ में लय कर दें । प्रेम का दायरा खूब बढ़ा दें । यही भारतीय संस्कृति का सन्देश है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भारतीय शास्त्रा कहते हैं कि मनुष्य जीवन में परोपकार ही सार है । अपने स्वार्थ को छोड़कर हमें सदैव परोपकार में रत रहना चाहिये । परोपकार कर भूल जाना ही उचित है । मेरे कारण दूसरों का भला हुआ है यह सोचना मूर्खता है । हमारे बिना संसार का कोई काम अटक न रहेगा । हमारे पैदा होने से पूर्व भी संसार का काम ठीक चल रहा था और बाद में भी वैसा ही चलता रहेगा । परमात्मा इतना गरीब नहीं है कि हमारी सहायता बिना कार्य ही न चल सके । अतः जितना हमें उपकार करने का अवसर मिले, उतना ही कृतज्ञ होना चाहिये । हमारी उपकार बुद्धि को जागृत करके ईश्वर हमें ऋणी कर देता है इससे हमारी मानसिक उन्नति होती है और आत्मा को शक्ति प्राप्त होती है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय-एक योग साधना

भारतीय संस्कृति में सुख की वृद्धि करने के उपायों में स्वाध्याय एक प्रमुख उपाय है । स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है, मन में महानता, आचरण में पवित्रता तथा आत्मा में प्रकाश आता है ।

स्वाध्याय के अभाव में पढ़ी हुई विद्या भी विस्मृत हो जाती है । तब नूतन ज्ञान प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता ! कहीं भी और कभी भी देखा जा सकता है कि कक्षा पास कर लेने और उपाधि पा लेने के बाद जो विद्यार्थी वकील अथवा डाक्टर आदि अपना स्वाध्याय बन्द कर देते हैं वे आगे चलकर सफल नहीं हो पाते । संसार की विचारधारा को मोड़ देने वाले लेखक अथवा पत्रकार प्रतिदिन अनेक घण्टे स्वाध्याय में लगाते हैं । जो स्वाध्यायशील रहता है उसका ज्ञान आधुनिक और विद्या जागृत रहती है । प्रतिदन कुछ न कुछ पढ़ते रहने वाले अपने ज्ञान-कोष में बूँद-बूँद इकट्ठा करके उसे अक्षय बना लिया करते हैं ।

जीवन को सफल, उच्च एवं पवित्र बनाने के लिये स्वाध्याय की बड़ी आवश्यकता है । किसी भी ऐसे व्यक्ति का जीवन क्यों न देख लिया जाये, जिसने उच्चता के सोपानों पर चरण रक्खा है, उसके जीवन में स्वाध्याय को विशेष स्थान मिला होगा । स्वाध्याय के अभाव में कोई भी व्यक्ति महान् अथवा ज्ञानवान् नहीं बन सकता । प्रतिदिन नियमपूर्वक सद्ग्रन्थों का अध्ययन करते रहने से बुद्धि तीव्र होती है, विवेक बढ़ता है और अन्तः करण की शुद्धि होती है । इसका स्वस्थ एवं व्यावहारिक कारण है वह यह है कि सद्ग्रन्थों के अध्ययन करते समय मन उनमें रमा रहता है और ग्रन्थ के सद्वाक्य उस पर संस्कार डालते रहते हैं ।

स्वाध्यायशील व्यक्ति का जीवन अपेक्षाकृत अधिक पवित्र हो जाता है । ग्रन्थों में सन्निहित सद्वाणी तो अपना प्रभाव एवं संस्कार डालती ही है, साथ ही अध्ययन में रुचिमान होने से व्यक्ति अपना शेष समय पढ़ने में ही लगाता है । वह या तो अपने कमरे में बैठा हुआ एकान्त में अध्ययन किया करता है अथवा किसी पुस्तकालय अथवा वाचनालय में पुस्तकों के साथ संलग्न रहता है । उसके पास ऐसा कोई भी फालतू समय नहीं रहता जिसमें जाकर इधर-उधर बैठे अथवा घूमे और फिर वायुमण्डल अथवा संगति से अवांछित संस्कार ग्रहण करे । जब मनुष्य निरर्थकों की संगति में न जाकर जीवनोपयोगी सद्-साहित्य के अध्ययन में ही संलग्न रहेगा तो उसका आचार आप ही शुद्ध हो जायगा ।

अध्ययनशील व्यक्ति स्वयं तो बेकार रहकर कहीं नहीं जाता, उसके पास बेकार के निठल्ले व्यक्ति भी नहीं आते और वे यदि कभी आ भी जाते हैं तो अध्ययनशील व्यक्ति उसके आस–पास का व्यस्त वायु मण्डल उनके अनुकूल नहीं होता और वे शीघ्र उसका अधिक समय खराब किये बिना खिसक जाते हैं । इस प्रकार फिजूल के व्यक्तियों के संग से उत्पन्न होने वाली विकृतियों से अध्ययनशील व्यक्ति सहज ही बच जाता है जिससे उसके आचार-विचार पर कुसंस्कार नहीं पड़ने पाते

निरन्तर अध्ययन करते रहने से मनुष्य का ज्ञान जागृत रहता है जिसका उद्रेक उसकी वाणी द्वारा हुए बिना नहीं रहता । अस्तु अध्ययनशील व्यक्ति की वाणी, सफल, सार्थक तथा प्रभावोत्पादक बन जाती है । वह जिस सभा-समाज में जाता है, उसकी ज्ञान-मुखर वाणी उसे विशेष स्थान दिलाती है । अध्ययन शील व्यक्ति का ही कथन प्रामाणिक तथा तथ्यपूर्ण माना जा सकता है । निरध्ययन वक्ताओं की वाणी बकवास से अधिक कोई महत्त्व नहीं रखती । स्वाध्याय निःसन्देह सामाजिक प्रतिष्ठा का संवाहक होता है ।

संसार के इतिहास में ऐसे असंख्य व्यक्ति भरे पड़े हैं जिनको जीवन में विद्यालय के दर्शन न हो सके, किन्तु स्वाध्याय के बल पर वे विश्व के विशेष विद्वान व्यक्ति बने हैं । साथ ही ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं है जिनकी जिन्दगी का अच्छा खासा भाग विद्यालयों एवं विश्व-विद्यालयों में बीता किन्तु उसके बाद स्वाध्याय में प्रमाद करने के कारण उनकी एकत्रित योग्यता भी उन्हें छोड़कर चली गई और वे अपनी तपस्या का न तो कोई लाभ उठा पाये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और न सुख ! योग्यता को बनाये रखने और बढ़ाने के लिये स्वाध्याय नितान्त आवश्यक है ।

कथा कक्ष में अथवा सार्वजनिक मंच से धाराप्रवाह बोलने वाले प्रोफेसरों तथा वक्ताओं का दैनिक जीवन देखने से पता चलता है कि अपना नित्य कर्त्तव्य निबटाने के बाद उनका शेष सारा समय स्वाध्याय में ही व्यतीत होता है । उनके मुख द्वारा धाराप्रवाह वाणी का निर्गमन और कुछ नहीं उस तेजोपूर्ण योग्यता का ही प्रवहन होता हे जो वे अपने बहुमूल्य समय को क्षण-क्षण लगा कर स्वाध्याय द्वारा संचय किया करते हैं ।

संसार ज्ञान की जन्मभूमि है । यहाँ पर नित्य प्रति नई-नई जानकारियों, विचारणाओं, तर्कों, तथा विद्याओं का जन्म होता रहा है । जो व्यक्ति अध्ययनशील होता है वह नित्य नये ज्ञानों से अवगत रहा करता है । उसे पता रहता है कि संसार में कहाँ क्या हो रहा है । कौन-सी पुरानी मान्यतायें बदल गई हैं और उनके स्थान पर कौन-सी नई प्रतिस्थापनायें हो रही हैं । उसे यह भी ज्ञान रहता है कि इन बदलती हुई परिस्थितियों में उसका क्या स्थान और क्या कर्त्तव्य है । इस प्रकार अध्ययनशील व्यक्ति एक जागरूक नागरिक की तरह ही जीवन जीने का सुख पाता है न कि मूढ़मति आदमी की तरह जिसे अपने चारों ओर के, आस-पास के परिवर्तन का भी ज्ञान नहीं रहता ।

संयम, अध्ययनशीलता की सबसे बड़ी देन है । जो स्वाध्याय में रुचिमान् है वह अपनी अभिरुचि पूरी करने के लिये अधिक से अधिक समय प्राप्त करने के लिये प्रातःकाल उठेगा ! अवकाश के समय में सोयगा नहीं, अपनी मेधा को बलवती बनाने के लिए आहार-विहार तथा विचार में सावधान रहेगा । वह कोई भी ऐसा अवांछनीय कार्य करने के प्रति सावधान रहेगा जो उसमें आलस्य, प्रसाद की प्रवृत्तियाँ जगाने का कारण बन सकती हैं । वह अधिक से अधिक स्वस्थ एवं प्रसन्न रहने का प्रयत्न करेगा । रोग की दशा से भी अध्ययनशील व्यक्ति रोने-चिल्लाने अथवा रोग का चिन्तन करने के बजाय धीरे-धीरे अध्ययन ही करता रहता है जिससे न तो रोग उसे अधिक पीड़ित कर पाता है और न अधिक समय ठहर ही पाता है । अध्ययनशीलता, सुख-दुःख एवं सम्पत्ति-विपत्ति दोनों स्थितियों में सहायक होती है।

विद्वानों ने स्वाध्याय की महिमा को जानते हुए उसे सन्मार्ग-दशक सखा की संज्ञा दी है । वेदों में कहा गया है-जो मनुष्य सतपथ-दर्शक अपने सच्चे सखा स्वाध्याय का परित्याग कर देता है उसकी नाड़ी आदि अनर्गल एवं अन्तः इन्द्रियाँ उच्छृंखल हो जाती हैं जिससे उसे दुःखों का भागी बनना पड़ता है । स्वाध्यायसखा से सम्बन्ध विच्छेद कर देने वाले व्यक्ति की मानसिक-एकाग्रता चली जाती है ।

स्वाध्यायशील व्यक्ति अपनी आत्मा का सफल चिकित्सक होता है । स्वाध्याय से उपार्जित ज्ञान द्वारा वह अपनी आत्मिक व्याधियों को जान लेता और उनका निदान निर्धारित कर लेता है । निदान खोज लेने पर व्याधियों का उपचार तो सहज ही में हो जाता है । मानसिक एकाग्रता की उपलब्धि उसे इस मार्ग में सहायक बनकर बढ़ाया करती है जिससे उसका जीवन उच्छृंखलताओं एवं अवांछनीयताओं से मुक्त होकर महान् एवं सुखी बन जाता है ।

स्वाध्याय से ज्ञान की योग्यता की अपेक्षित वृद्धि होती है । इसीलिये गुरुकुल में विद्या पाकर चलते हुए शिष्य से ऋषि कहा करता था-'स्वाध्यायात्मा प्रमद' अर्थात्-हे शिष्य, तू अपने जीवन को यदि सफल एवम् सार्थक बनाना चाहता है तो स्वाध्याय में प्रमाद न करना ।

स्वाध्याय को मानसिक योग भी कहा गया है । जिस प्रकार प्रभु का नाम जपता हुआ योगी उस परमात्मा के प्रकाश रूप में तल्लीन हो जाता है उसी प्रकार एकाग्र होकर सद्विचारों के अध्ययन में तल्लीन हो जाने वाला अध्येता अक्षर ब्रह्म की सिद्धि से ज्ञान रूप प्रकाश का अधिकारी बनता है । केवल योग ही नहीं अध्ययन भी प्रभु का साक्षात्कार करने के उपायों में एक प्रमुख उपाय है । स्वाध्याय जैसे सरल एवं सरस योग में प्रतिष्ठित होने वाला व्यक्ति किसी न किसी रूप में अपने परम लक्ष्य मोक्ष को पाकर शाश्वत् सुख का अधिकारी बनता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाध्याय का एक रूप सत्संग भी है । किन्हीं कारणों से जिन्हें विद्याध्ययन का अवसर नहीं मिल सका जो स्वयं ग्रन्थों का पठन-पाठन नहीं कर सकते उन्हें चाहिये कि वे अध्ययनशील व्यक्तियों का सत्संग करें, महात्माओं एवं व्याख्यानदाताओं से सम्पर्क स्थापित करें और एकाग्रतापूर्वक आँखों के स्थान पर कानों से स्वाध्याय करें । ऐसा करते रहने से उन्हें भी कालान्तर में वे सब लाभ होंगे जो एक स्वाध्यायशील को हुआ करते हैं । 'मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ" ऐसा सोचने और कहने वाले अपने प्रमाद का ही परिचय देते हैं । जो पढ़ नहीं सकता उसे श्रवण रूपी स्वाध्याय में निरत रहना ही चाहिये ।

किन्तु अध्ययनशीलता के उपर्युक्त लाभ तब ही हो सकते हैं जब वेद, शास्त्र उपनिषद् अथवा चरित्र-निर्माण करने वाला साहित्य ही पढ़ा जाये । मनोरंजन कहानी तथा उपन्यास पढ़ने वाले अध्ययन से होने वाले लाभ से सदा वंचित ही रहेंगे और अवांछित अथवा अश्लील साहित्य पढ़ने वाले तो उन अभागों में होते हैं जो अपनी फूली-फली जीवन वाटिका में अपने हाथ से आग लगाया करते हैं ।

स्वाध्याय आत्मा का भोजन

मानव-जीवन को सुखी, समुन्नत और सुसंस्कारी बनाने के लिये सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करना अत्यन्त आवश्यक है । स्वाध्याय मानव-जीवन का सच्चा सुहृद एवं आत्मा का भोजन है । स्वाध्याय से हमें जीवन को आदर्श बनाने की सत्प्रेरणा मिलती है । स्वाध्याय हमारे जीवन विषयक सारी समस्याओं की कुँजी है। स्वाध्याय हमारे चरित्र-निर्माण में सहायक बनकर हमें प्रभु-प्राप्ति की ओर अग्रसर करता है । स्वाध्याय स्वर्ग का द्वार और मुक्ति का सोपान है ।

संसार में जितने भी महापुरुष, वैज्ञानिक, सन्त-महात्मा, ऋषि, महर्षि, आदि हुए हैं, वे सभी स्वाध्यायशील थे । स्वाध्याय का सत्साहित्य एवम् वेद उपनिषद्, गीता आदि आर्ष–ग्रन्थ तथा महापुरुषों के जीवन-वृत्तान्तों का अध्ययन तथा मनन करना है । कुछ भी पढ़ा जाय उसे स्वाध्याय नहीं कहा जा सकता। मनोरंजन प्रधान उपन्यास नाटक एवं शृंगार–रस पूर्ण पुस्तकों को पढ़ना स्वाध्याय नहीं है । इस प्रकार का साहित्य पढ़ना तो वास्तव में समय का दुरुपयोग करना एवम् अपनी आत्मा को कलुषित करना है । कुरुचिपूर्ण गन्दे साहित्य को छूना भी पाप समझना चाहिए ।

सच्चा स्वाध्याय वही है, जिससे हमारी चिन्तायें दूर हों, हमारी शंका-कुशकांओं का समाधान हो, मन में सद्भाव और शुभ संकल्पों का उदय हो तथा आत्मा को शांति का अनुभव हो । हमारे शास्त्रों में स्वाध्याय का बड़ा माहात्म्य बताया गया है । योग-शास्त्रों में कहा गया है-

स्वाध्यायाद् योगमासीत् योगत् स्वाध्यायमानयेत् ।
स्वाध्याय-योग-सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते ।।

अर्थात्–––"स्वाध्याय से योग की उपासना करे और योग से स्वाध्याय का अभ्यास करे । स्वाध्याय की सम्पति से परमात्मा का साक्षात्कार होता है ।"

त्रयो धर्म स्कन्धा यज्ञोऽध्यायनम् दानमिति ।

अर्थात्–– "धर्म के तीन स्कन्ध हैं । यज्ञ, स्वाध्याय और दान ।"

श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

स्वाध्यायाभ्यसन चैव वाड् मयं तप उच्येत ।
(१७/१५)

अर्थात्––"स्वाध्याय करना ही प्राणी का तप है ।"

छान्दोग्य उपनिषद में ही आगे और लिखा है–

आचार्य कुलाद्वेद मधीत्य यथा विधान गुरो कर्माति शेषेणाभि सहावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्याय मधीयानों धार्मिकान् विदधात्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठाप्याहिंसन् सर्वेभूतानि अन्यत्रा तीर्थेभ्यः स खल्वेष वर्तयन् यवादायुषं ब्रह्म लोकमभि सम्पद्यते
(८/१५/१)

अर्थात्––"ब्रह्मचारी आचार्य कुल से आर्ष-ग्रन्थों को पढ़कर यथा-विधि सेवा-सुश्रूषा आदि करता हुआ समावर्तन संस्कारयुक्त परिवार में रहकर पवित्र स्थान में स्वाध्याय द्वारा स्वयं अपने को, सन्तानों को एवं अन्य जनों को धार्मिक बनाता हुआ समस्त इन्द्रियों को, आत्मा के अधीन करता हुआ, तीर्थ-स्थानों के अन्यत्र भी प्राणियों की हिंसा न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करता हुआ, समस्त आयु इस प्रकार वर्त्तता हुआ मोक्ष-पद का अधिकारी बन जाता है तथा जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है ।"

इस प्रकार हम पवित्र ग्रन्थों एवं सुविचारपूर्ण सत्साहित्य के पठन-पाठन के द्वारा सदा स्वाध्याय कर अपने मन और बुद्धि को सुसंस्कृति बनाकर अपने जीवन को पवित्र बनाने का संकल्प धारण करें । सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय से हमारे आत्मा की सुषुप्त शक्तियाँ जागृत होकर हमारे जीवन को सरल, समुन्नत एवं सरस बना देती हैं ।

शरीर को स्वस्थ और सुदृढ़ बनाये रखने के लिये जिस प्रकार पौष्टिक आहार की आवश्यकता है । उसी प्रकार मन और बुद्धि को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाये रखने के लिये उत्तमोत्तम ग्रन्थों का अध्ययन अनिवार्य है । अध्ययन एवं स्वाध्याय के लिये निम्न कोटि का साहित्य हानिकर होगा, उसी प्रकार जैसे अखाद्य एवं दूषित पदार्थों का सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है । अतएव हमें इस सम्बन्ध में परिपूर्ण सतकर्ता और सावधानी से काम लेना होगा । सच्चा स्वाध्याय वही है, जिसके द्वारा हमारा मन बाह्य विषयों से अलिप्त रहकर आत्मा के अनुसन्धान में प्रयुक्त ही एवं हमारी मानसिक दुर्भावनाओं, दुर्बलताओं तथा दूषित मनोविकारों का दमन हो सके और हमारा मन एक अनिर्वचनीय अलौकिक आनन्द से परिप्लावित हो उठे।

मनुस्मृति में कहा गया है -

स्वध्याये नित्य युक्तः स्यादेव चैवेह कर्मणा ।

अर्थात –" स्वाध्याय और शुभ कर्म में मनुष्य सदा तत्पर रहे ।"

जिनके द्वारा 'स्व' आत्मा व परमात्मा का ज्ञान प्राप्त किया जा सके और जिसके द्वारा अभ्युदय निः श्रेयस की प्राप्ति की जा सके वही सच्चा स्वाध्याय है। अतएव प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अच्छे ग्रन्थों, सदाचार प्रवर्तक पत्र पत्रिकाओं एवं सत्प्रेरणादायी पुस्तकों का सदैव स्वाध्याय करता रहे । महाभारत के शान्ति-पर्व में कहा गया है - 'नित्य स्वाध्यायशीलश्च दुर्गान्याति तरन्ति ते' -नित्य स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति दुःखों से पार हो जाता है ।

स्वाध्याय ब्रह्मचर्य पालन में सहायक है । स्वाध्याय से चरित्र निमार्ण में भी सहायता मिलती है । इसके द्वारा दुराचारी, सदाचारी और व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी बन जाता है । अतः यदि आप समुन्नत होना चाहते हैं, अपने जीवन की पवित्र, शुद्ध और निर्मल बनाना चाहते हैं तो आलस्य और प्रमोद को छोड़कर नित्य सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय का आज से ही संकल्प कीजिए और उसका दृढ़ता से पालन कीजिए ।

सत्साहित्य से शक्ति और समुन्नति-

वर्तमान अवस्था से ऊँचे उठकर समुन्नत बनने की, शक्तिशाली बनने की भावना एक आध्यात्मिक तथ्य है । उत्थान ही जीवात्मा का मूलभूत उद्देश्य है । इसी की पूर्ति में लगे भी रहते है । यह दूसरी बात है कि वास्तविक प्रगति का सच्चा स्वरूप न हम समझ पायें, किन्तु आगे बढ़ने, उन्नत होने की आकांक्षा सभी में होती है ।

विचारकों का कथन है कि संसार में निर्बल प्राणियों के लिए कोई स्थान नहीं है । प्रकृति के सारे आघात भी निर्बलों पर ही होते हैं । संसार के संर्घष में योग्य व्यक्ति साहसी और सूरमा ही ठहर सकते हैं । जीवन के लिये शक्ति अवश्य चाहिए । शास्त्र का कथन है ।

या विभर्ति जगत्सर्वश्व मीरेच्छा ह्यलौकिकी ।
सैव धर्मा हि सुभगे ! नेह कश्चन संशयः ।
योग्यतावच्छिन्ना धर्मिणः शक्तिरेव धर्मः ।।

अर्थात्- इस संसार की परमात्मा ने अपनी अलौकिक शक्ति से धारण किया है । मनुष्य के लिए भी योग्यता बढ़ाकर शक्ति सम्पन्न होना यही सबसें बड़ा धर्म है ।

शक्ति उस साधना को कहते है जिससे विजय मिलती है । यों धन, जल पशु आदि का होना भी लौकिक दृष्टि से शक्तिमान होने का सबूत है । शारीरिक बल को भी मनुष्य की योग्यता मानते हैं, किन्तु यह देख चुके हैं कि समुन्नति के मार्ग में धन-जन का न होना अवरोधक नहीं है । गौतम बुद्ध तब शक्तिमान बन सकें, जब उन्होनें लौकिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्तिगों का परित्याग कर दिया । करोड़ों धनी, सत्तावानों की तुलना में उनकी महत्ता सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुई । उस समय के सम्राट् अशोक तक ने उनके समक्ष अपने घुटने टेके थे । गाँधीजी शरीर से बड़े दुबले-पतले और निर्बल थे । कुल ६६ पौंड वजन के गाँधीजी ने ब्रिटिश साम्राज्य को परास्त कर दिखाया जिसके शासन में कभी सूर्यास्त नहीं होता था । अतः धन की शक्ति, जन और शारीरिक शक्तियाँ स्वल्प हैं, अपूर्ण हैं, इससे शाक्तिशाली कहलाने का गौरव कभी नहीं मिल सकता ।

संसार की सर्वश्रेष्ठ शक्ति का नाम है विचार जैसे हमारे विचार होते हैं, वैसी ही हमारी शारीरिक स्थिति है । आंतरिक स्थिति का निर्माण भी विचारों के ही अनुरूप होता है । गुण, कर्म और सौभाव की त्रिवेणी में भी विचारों का यही जल रहता है । कोई व्यक्ति चाहे कि हमारी स्थिति इसके विपरीत हो तो सह असम्भव है । निश्चयात्मक विचारों से ही निमार्ण शक्ति का विकास होता है । स्वस्थ बनने का विचार न उठे, तो व्यायम करने, मालिश करने और पुष्टिकारक आहार जुटाने का कष्टसाध्य श्रम और समयसाध्य कर्म मनुष्य क्यों करे ? सत्याग्रह के दृढ़ विचारों से प्रभावित होकर ही महात्मा गाँधी स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूदे थे । विचारों से आवश्यकता पर ही सम्पूर्ण राष्ट्र ने उनके इस महान् कार्य में हाथ बँटाया था ।

विचारों का बल निःसन्देह बहुत बढ़–चढ़कर है । दार्शनिक एमर्सन का कथन है- 'आध्यात्मिक शक्ति भौतिक शक्तियों से बड़ी है, विचार ही संसार पर शासन करते हैं । अच्छे विचारों का परिणाम भी श्रेष्ठतर होता है । भविष्य का निर्माण भी विचारों के अनुरूप ही होता है । विचार ही शक्ति का स्रोत है, इस बात को संसार के सभी मनीषियों ने स्वीकार किया है । किसी भी उच्च साधन की सरलता के लिये विचारों की आवश्यकता प्रमुख है । विचार संचालन करते हैं इस लिये वे श्रेष्ठ हैं इस बात से इनकार करने का कोई कारण भी खोज में नहीं आया है ।

विचारों की शक्ति अलौकिक है यह निर्विवाद सत्य है । किन्तु यह न भूलना चाहिये कि व्यक्ति के पतन का कारण भी उनके विचार ही होते हैं । हीन विचारों के कारण मनुष्य दुष्कर्म करता है । शक्ति का अपव्यय करता है , जिससे उसकी योग्यता फीकी पड़ जाती है । अतः उत्थान के लिये शक्तिशाली विचार चाहिये, ऊर्ध्वगामी विचार चाहिये ।

विचार की योग्यता मनुष्य में साहित्य के द्वारा आती है । साहित्य में वह शक्ति होती है कि समाज की रूपरेखा बदलने में उसका महत्त्व सर्वोपरि है । यह कथन असत्य नहीं है कि "साहित्य ही समाज का दर्पण है" अर्थात् किसी भी समाज की शक्ति और योग्यता की परख उसके साहित्य से होती है । विचारों को ऊँचा उठाने वाला साहित्य यदि उपलब्ध हो सके तो आत्मोन्नति का प्रथम प्रयास सफल ही समझना है ।

साहित्य का अर्थ यहाँ उस साहित्य से है जिससे मनुष्य का चरित्र ऊँचा उठ सके और उसमें उच्च नैतिक सद्गुणों का समावेश हो । जीवन निर्माण के लिए ऐसे साहित्य की आवश्यकता होती है । जो हमारी भावनाओं को ऊँचा उठाने की क्षमता रखता हो । स्कूली किताबें, नाटक, भजन या धर्म की लकीरें पीटने वाली पुस्तकें ही इसके लिये पर्याप्त नहीं हैं । एक ऐसे साहित्य से हमारी सुरुचि नहीं जमती, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति नहीं मिलती उसे साहित्य कहने में संकोच होता है । जो साहित्य व्यक्ति और समाज में गति और शक्ति पैदा न कर सकें, सौन्दर्य प्रेम समुन्नत न कर सकें वह साहित्य नहीं प्रवंचना है । हमारा तात्पर्य उस साहित्य से है जो सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता उत्पन्न करे । सच्चा साहित्य उसे कहते हैं जिसके पढ़ने से पाठक का अन्तःकरण फूल की तरह सुविकसित हो जाय और उसके हृदय–मन में आध्यात्मिक सुवास छाय

पतनकरी साहित्य से व्यक्ति और राष्ट्र की शक्ति नष्ट होती है । आज इस बात के प्रमाण चारों तरफ फैले दिखाई दे रहे हैं । विलासिता, कामुकता और अनाचार फैलाने वाले साहित्य की जो बाढ़ आई हुई है, उससे सामाजिक सामर्थों का कितना विनाश हो रहा है यह किसी से छिपा नहीं है । लोगों का चरित्र इतनी तेजी से गिरता जा रहा है कि विचारवान् लोगों के हृदय इस आशंका से काँपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगे हैं कि कहीं सामाजिक विद्रोह की ज्वाला न भड़क उठे । अश्लील साहित्य भी बहुत कुछ इसके लिये जिम्मेदार है । ऐसे साहित्य से जितना ही बच सकें उतना ही परम सौभाग्य समझना चाहिये ।

सत्साहित्य से ग्रहण करते रहने की परम्परा चल पड़े तो मानसिक उत्थान होता रहेगा और दुर्गुणों से बचते रहेंगे । युग के युग में जब कि सन्तजनों और सहृदय पुरुषों का नितांत अभाव है, प्रेरणाप्रद विचार प्राप्त करने के लिये साहित्य का ही आश्रय लेना पड़ेगा, किन्तु यह ध्यान बना रहे कि साहित्य वही उपयोगी हो सकता है जो हमें ऊँचा उठा सके । हमारे अन्तकरण में प्रकाश उत्पन्न कर सके । जहाँ कोई अन्य साधन हों वहाँ नियमित रूप से सद्ग्रन्थों, आत्मनिर्माण करने वाली पुस्तकों का स्वाध्याय करते रहना चाहिये । इससे भी मन बुरे विचारों से बचा रहता है और सद्भावनाएँ उत्पन्न होती हैं ।

साहित्य की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए विद्वान सिसरो ने लिखा है—"साहित्य का अध्ययन युवकों का पालन—पोषण करता है, वृद्धों का मनोरंजन करता है, उन्नति का द्वार खोलता है, विपत्ति में धैर्य बँधाता है। घर में प्रमुदित रखना और बाहर विनीत रखना साहित्य का ही काम है ।"

उस सारे वाङमय को ऐसे साहित्य की श्रेणी में ले लेते हैं जिससे अर्थ—बोध के साथ भावनाओं का पष्किार भी होता हो और प्रत्येक तथ्य की समीक्षात्मक व्याख्या भी होती हो । केवल गूढ़ मन्त्रों को रट लेना मात्र पर्याप्त नहीं है । पढ़ना और उसे समझना, समझकर उसे सत्यासत्य पर विचार करना तथा जीवन—शोधक व्यावहारिक का अनुसरण करना—इतना कर सकें तो यह समझें कि साहित्य की आवश्यकता को हमने समझ लिया है । रामायण पढ़ने का लाभ तब है । जब हम भी राम, भरत या लक्ष्मण के सदृश बनने का प्रयत्न करें और रामायण का महत्त्व इसलिये है कि उससे आन्तरिक मलिनताओं पर द्वन्द्व उत्पन्न होता है और सदाचार की प्रेरणा मिलती है । इस तरह का तालमेल यदि बन सके तो विचार दृष्टि से शक्तिशाली बनने में कोई कठिनाई न रहेगी ।

बुरे सयोग से बचने के लिये और अपनी सहायता जगाने के लिये हमें भी विचारवान् बनना है । इसके लिए दूसरे साधनों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि ज्ञान—साधना की जरूरत है । इस जरूरत को पूरा करना है तो साहित्य की शरण लेनी ही पड़ेगी । ऐसा साहित्य खोजना पड़ेगा जिससे ज्ञान सवर्द्धन हो और आत्मा का परिष्कार हो । साहित्य हमारी शक्ति का उद्रेक है हमें साहित्य के द्वारा अपनी प्रतिभा जगाने का कार्य शुरू कर देना चाहिये ।

सत् अध्ययन आत्म-उत्थान का आधार-

ऋषियों ने "तमसो मा ज्योतिर्गमय' का सन्देश देते हुए मनुष्यों को अज्ञान की यातना से निकलने के लिये ज्ञान प्राप्ति का पुरुषार्थ करने के लिये कहा है । भारत का अध्यात्म—दर्शन ज्ञान—प्राप्ति के उपायों का प्रतिपादक है । अज्ञानी व्यक्ति को शास्त्रकारों ने अन्धे की उपमा दी है । जिस प्रकार बाह्य नेत्रों के नष्ट हो जाने से मनुष्य भौतिक जगत् का स्वरूप जानने में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार ज्ञान के अभाव में बौद्धिक अथवा विचार—जगत की निर्भान्त जानकारी नहीं हो पाती । बाह्य जगत के समान मनुष्य का एक आत्मिक जगत भी है, जो कि ज्ञान के अभाव में वैसे ही अँधेरा रहता है । जैसे आँख के अभाव में यह संसार ।

अन्धकार से प्रकाश और अज्ञान से ज्ञान की ओर जाने में मनुष्यों का प्रमुख पुरुषार्थ माना गया है । जिस प्रकार आलस्यवश दीपक न जलाकर अन्धकार में पड़े रहने वाले व्यक्ति को मूर्ख कहा जायेगा । उसी प्रकार प्रमादवश अज्ञान दूरकर ज्ञान के लिये प्रयत्न न करने वाले को भी मूर्ख ही कहा जायेगा । भारतवर्ष की महिमामयी संस्कृति अपने अनुयाइयों को विवेकशील बनने का सन्देश देती है अथवा अन्ध— विश्वासी ।

ज्ञानवान् अथवा विवेकशील बनने के लिये मनुष्य को अपने मन-मस्तिष्क को साफ-सुथरा बनाना होगा, उनका परिष्कार करना होगा । जिस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खेत में कंकड़-पत्थर तथा खरपतवार भरा होगा उसमें अन्न के दाने कभी भी अंकुरित नहीं हो सकते । वे तब ही अंकुरित होंगे । जब खेत से झाड़-झंखाड़ और कूड़ा-करकट साफ करके दाने बोये जायेंगे । उसी प्रकार मनुष्य में ज्ञान के बीज तब तक जड़ नहीं पकड़ सकते । जब तक, कि मानसिक एवं नैतिक धरातल उपयुक्त न बना लिया जायेगा ।

हमारे मन मस्तिष्क में इसी जन्म की ही नहीं, जन्म-जन्मान्तरों की विकृतियाँ भरी रहती हैं । न जाने कितने कुविचार, कुवृत्तियाँ एवं मूढ़ मान्यतायें हमारे मन मस्तिष्क को घेरे रहती हैं । ज्ञान पाने का अथवा विवेक जागृत करने के लिये आवश्यक है कि पहले हम विचारों एवं संस्कारों को परिष्कृत करें । विचार एवं संस्कार परिष्कार के अभाव में ज्ञान के लिये की हुई साधना निष्फल ही चली जायेगी ।

विचार-परिष्कार का अमोघ उपाय अध्ययन एवं सत्संग को ही बतलाया गया है । विचारों में संक्रमण एवं ग्रहणशीलता रहती है । जब मनुष्य अध्ययन में निरन्तर संलग्न रहता है । तब उसको अपने विचार द्वारा विद्वानों के विचारों के बीच से बार-बार गुजरना पड़ता है, पुस्तक में लिखे विचार अविचल एवं स्थिर होते हैं । उनके प्रभावित होने अथवा बदलने का प्रश्न ही नहीं उठता । स्वाभाविक है कि अध्ययनकर्त्ता के ही विचार प्रभाव ग्रहण करते हैं । जिस प्रकार के विचारों की पुस्तक पढ़ी जायेगी अध्येता के विचार उसी प्रकार ढलने लगेंगे । इसलिये अध्ययन के साथ यह प्रतिबन्ध भी लगा दिया गया है कि अध्येता उन्हीं ग्रन्थों का अध्ययन करें जो प्रामाणिक एवं सुलझे हुए विचारों वाले हों । विचार परिष्कार अथवा ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से पढ़ने वालों को एक मात्र जीवन एवं निर्माण सम्बन्धी साहित्य का ही अध्ययन करना चाहिये, उन्हें निठल्ले एवं निकम्मे लोगों की तरह निम्न मनोरथ वाले उपन्यास, कहानी, नाटक तथा कविता आदि नहीं पढ़नी चाहिये । अश्लील, अनैतिक वासनापूर्ण अथवा जासूसी आदि से भरे उपन्यास पढ़ने से लाभ तो कुछ नहीं ही होना है, उल्टे बहुत अधिक हानि ही होगी । अयुक्त साहित्य पढ़ने से विचारों की वह थोड़ी बहुत उदात्तता भी चली जायेगी, जो उसमें रही होगी । अध्ययन का तात्पर्य सत्यं, शिवं सुन्दरम् साहित्य पढ़ने से है । सद्विचारों तथा सदुद्देश्य से पूर्ण साहित्य ही पढ़ने योग्य होता है। इसके विपरीत अनुपयुक्त एवं अवांछनीय साहित्य का पठन पाठन विचारों को इस सीमा तक दूषित कर देगा कि फिर उनका पूर्ण परिष्कार एक समस्या बन जाएगी । आत्मोद्धारक ज्ञान प्राप्त करने के जिज्ञासु व्यक्तियों को तो सत्साहित्य को हाथ भी न लगाना चाहिये । सच्ची बात तो यह है कि अयुक्त अवांछनीय एवं निम्न मनोरंजनार्थ किये गये लिपि लेखन को साहित्य कहा ही नहीं जाना चाहिये । यह तो साहित्य के नाम पर लिखा गया कूड़ा-करकट होता है, जिसे समाज के हित-अहित से मतलब न रखने वाले कुछ स्वार्थी लेखक उसी प्रकार लिखकर पैसा कमाते हैं, जिस प्रकार कोई भ्रष्टाचारी खाने-पीने की चीजों में अवांछनीय चीजें मिलाकर लाभ कमाते हैं । व्यावसायिक भ्रष्टाचारी जहाँ राष्ट्र का शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट करते हैं, वहाँ अशिव लेखक राष्ट्र का मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक स्वास्थ्य नष्ट करते हैं । मनुष्य को चारित्रिक तथा आध्यात्मिक क्षति शारीरिक क्षति की अपेक्षा कहीं अधिक भयंकर एवं असहनीय होती है ।

मनुष्य के लिए विचार परिष्कार एवं ज्ञानोपार्जन के लिये यदि कोई मार्ग रह जाता है तो वह अध्ययन ही है । जीवन का अन्धकार दूर करना और प्रकाशपूर्ण स्थिति पाकर निर्द्वन्द्व एवं निर्भय रहना यदि वाँछित है तो समयानुसार अध्ययन में निमग्न रहना भी नितान्त आवश्यक है । अध्ययन के बिना विचार परिष्कार नहीं, विचार-परिष्कार के बिना विवेक और विवेक के बिना ज्ञान नहीं । जहाँ ज्ञान, नहीं वहाँ अन्धकार होना स्वाभाविक ही है और अँधेरा जीवन शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकार के भयों को उत्पन्न करने वाला है जिसमें अज्ञानी न केवल इस जन्म में ही बल्कि जन्म-जन्मान्तरों तक, जब तक कि वह ज्ञान का आलोक नहीं पा लेता त्रिविध तापों की यातना सहता रहेगा । जीवनोद्धार के उपायों में अध्ययन का उपाय सबसे श्रेष्ठ, सरल, सुगम एवं सुलभ है । आत्मवान् व्यक्ति को इसे ग्रहण कर भौतिक अज्ञान यातना से मुक्त होना ही चाहिये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सद्ज्ञान का संचय एवम् प्रसार-

भारत की जनता स्वभावतः धर्मपरायण जनता है । धर्म के प्रति जितनी आस्था भारतवासियों में पाई जाती है, उतनी कदाचित् ही किसी अन्य देश की जनता में पाई जाती हो । भारत एक आध्यात्मिक देश है । यहाँ के अधिकाँश वासियों में आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान रहती हैं । उसका कारण यही है कि आदि काल से ही भारत के ऋषि, मुनियों एवम् मनीषियों ने जनता में धर्म के बीज बोने के सतत प्रयत्न किये है । उन्होंने धर्म के तत्त्व महत्त्व तथा जीवन पर उसके सत्वभाव का मूल्य समझा और यह भी जाना कि धर्म की पृष्ठभूमि पर विकसित किया हुआ जीवन ही वह जीवन हो सकता है जिसे यथार्थ रूप में जीवन कहा जा सकता है और जिसको उपलब्ध करना मनुष्य के लिये वाँछनीय होकर उसका लक्ष्य भी होना चाहिये ।

भारतवासियों में आध्यात्मिक जिज्ञासा संस्कार रूप में विद्यमान है । हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में आध्यात्मिक प्रगति करने को उत्सुक रहा है और जिस उपलब्ध स्रोत अथवा सूत्र से वह जितना ज्ञान प्राप्त कर सकता है, करने का प्रयत्न करता है, किन्तु खेद है कि जनसाधारण अपनी इस जिज्ञासा पूर्ति में असफल ही नहीं हो रहे हैं, बल्कि पथ-भ्रष्ट होकर अज्ञान के अन्धकार में भटक रहे हैं ।

अनेकों लोगों ने जनसाधारण की इस लालसा को समझा और धर्म के प्रति उनकी अडिग आस्था का भी आभास पा लिया । फलस्वरूप अपना स्वार्थ सिद्ध करने के तथा जनता की भक्ति-भावना द्वारा प्रतिष्ठित होने के लिये उन्होंने आडम्बर धारण कर धर्म-गुरुओं का रूप बना लिया और धर्म अथवा अध्यात्म-ज्ञान के नाम पर जनता को भ्रमित करते हुए भटकाने और अपना उल्लू सीधा करने में लग गये । निदान ज्ञान के नाम पर समाज में अज्ञान का अन्धकार इतना घनीभूत हो उठा है कि धर्म का सच्चा स्वरूप समझ सकना दुरूह हो गया है । आज इस बात की नितांत आवश्यकता आ पड़ी है कि समाज में इस प्रकार फैलाये गये अज्ञानान्धकार के विरुद्ध अभियान चलाये जायें और सद् एवं सद्ज्ञान का प्रकाश प्रसारित करके अज्ञानरूपी अन्धकार को निर्मूल कर दिया जाये । यह एक बड़ा काम है । किसी एक दो या दस बीस अथवा सौ-पचास व्यक्तियों द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता । इसके लिये तो प्रत्येक समझदार व्यक्ति को अपना योगदान करना होगा। अज्ञान के कल्मष में फँसी जनता का उद्धार करना सर्वोपरि सत्कर्म है, पूरा करने के लिये अध्यात्मवादी धर्मनिष्ठों को आगे आना चाहिये ।

ज्ञान ही आध्यात्मिक जीवन की आधारशिला है। ज्ञान के अभाव में आत्मिक उन्नति असम्भव है। ज्ञानरहित मनुष्य अन्य पशओं की तरह ही मूल प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर अपना जीवन यापन किया करता है । और उन्हीं की तरह हाँके जाकर किसी भी ओर चल सकता है । अज्ञानी व्यक्ति में अपनी सूझ-बूझ नहीं होती और न वह जीवन-प्रगति की किसी भी दिशा में विचार ही कर पाता है । ज्ञान के आधार पर ही मनुष्य ही अपने भीतर छिपी ईश्वरीय शक्ति का परिचय पा सकता है और उसी के बल पर उन्हें प्रबुद्ध कर आत्म-कल्याण की दिशा में नियोजित कर पाता है । अज्ञानी व्यक्ति की सारी शक्तियाँ उसके भीतर निरुपयोगी बनी बन्द रहती हैं, और शीघ्र ही कुण्ठित होकर नष्ट हो जाती हैं। जिन व्यक्तियों के बल पर मनुष्य संसार में एक से एक ऊँचा कार्य कर सकता है, बड़े से बड़ा पुण्य परमार्थ सम्पादित कर अपनी आत्मा को भव-बन्धन से मुक्त करके मुक्ति मोक्ष जैसा परमपद प्राप्त कर सकता है । उन शक्तियों का इस प्रकार नष्ट हो जाना मानव-जीवन की सबसे बड़ी क्षति है । इस क्षति का दुर्भाग्य केवल इसलिये सहन करता है कि वह ज्ञानार्जन करने में प्रमाद करता है अथवा अज्ञान के कारण धूर्तों के बहकावे में आकर सत्य-धर्म के मार्ग से भटक जाता है मानव-जीवन को सार्थक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनाने , उसका पूरा-पूरा लाभ उठाने और आध्यात्मिक स्थिति पाने के लिये सद्ज्ञान के प्रति जिज्ञासु होना ही चाहिये और विधिपूर्वक जिस प्रकार भी हो सके उसकी प्राप्ति करनी चाहिये । जड़तावत् जीवन मृत्यु से बुरा है ।

ज्ञान की जन्मदात्री मनुष्य की विवेक बुद्धि को ही माना गया है और उसे ही सारी शक्तियों का स्रोत कहा गया है । जो मनुष्य अपनी बुद्धि का विकास और परिष्कार नहीं करता अथवा विवेक के वशीभूत होकर बुद्धि के विपरीत आचरण करता है, वह आध्यात्मिक के उच्च स्तर को पाना तो दूर साधारण मनुष्यता से भी गिर जाता है । उसकी प्रवृत्तियाँ अधोगामिनी एवं प्रतिगामिनी हो जाती हैं । वह एक जन्तु-जीवन जीता हुआ उन महान् सुखों से वंचित रह जाता है जो मानवीय मूल्यों को समझने और आदर करने से मिला करते हैं । निकृष्ट एवं अधो जीवन से उठकर उच्चस्तरीय आध्यात्मिक जीवन की ओर गतिमान होने के लिए मनुष्य को अपनी विवेक-बुद्धि का विकास, पालन तथा सम्बर्द्धन करना चाहिये । अन्य जीव-जन्तुओं की तरह प्राकृतिक प्रेरणाओं से परिचालित होकर सारहीन जीवन बिताते रहना मानवता का अनादर है, उस परमपिता परमात्मा का विरोध है जिसने मनुष्य को ऊर्ध्वगामी बनने के लिये आवश्यक क्षमता का अनुग्रह किया है ।

आध्यात्मिक ज्ञान सिद्ध करने में बुद्धि ही आवश्यक तत्त्व है । इसके संशोधन, सम्वर्धन, एवं परिमार्जन के लिये विचारों को ठीक दिशा में प्रचलित करना होगा । विचार-प्रक्रिया से ही बुद्धि का प्रबोधन एवं शोधन होता है । जिसके विचार अधोगामी अथवा निम्नस्तरीय होते हैं । उसका बौद्धिक पतन निश्चित ही है । विचारों का पतन होते ही मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन दूषित हो जाता है । फिर वह न तो किसी मांगलिक दशा में सोच पाता है, और न उस ओर उन्मुख ही हो पाता है अनायास ही वह गर्हित गर्त में गिरता हुआ अपने जीवन को नारकीय बनाता चला जाता है । पतित विचारों वाला व्यक्ति इतना अशक्त एवं असमर्थ हो जाता है कि अपने फिसलते पैरों को स्थिर कर सकना उसे वश की बात नहीं रहती ।

ज्ञानभूत आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने का यथार्थ अर्थ विचारों का उपयुक्त दिशा में विकसित करना ही है । विचारों के अनुरूप ही मनुष्य का जीवन निर्मित होता है । यदि विचार उदात्त एवं ऊर्ध्वगामी हैं तो निश्चय ही मनुष्य निम्न परिधियों को पार करता हुआ ऊँचा उठता जायेगा और उस सुख-शान्ति का अनुभावक बनेगा जो उस आत्मिक ऊँचाई पर स्वतः ही अभिसार किया करती है । स्वर्ग-नर्क किसी अज्ञान क्षितिज पर वसी बस्तियाँ नहीं हैं, इनका निवास मनुष्य के विचारों में ही होता है । सद्विचार स्वर्ग और असद्विचार नरक का रूप धारण कर लिया करते हैं ।

विचारों का विकास एवं उनकी निर्विकारिता दो बातों पर निर्भर है – सत्संग एवं स्वाध्याय । विचार बड़े ही संक्रामक, संवेदनशील तथा प्रभावग्राही होते हैं । जिस प्रकार के व्यक्तियों के संसर्ग में रहा जाता है, मनुष्य के विचार उसी प्रकार के बन जाते हैं । व्यवसायी व्यक्तियों के बीच रहने, उठने, बैठने उनका सत्संग करने से ही विचार व्यावसायिक, दुष्ट तथा दुराचारियों की संगति करने से कुटिल और कलुषित बन जाते हैं । उसी प्रकार चरित्रवान् तथा सदात्माओं की सत्संगति करने से मनुष्य के विचार महान एवं सदाशयतापूर्ण बनते हैं ।

किन्तु आज के युग में सन्त पुरुषों का समागम दुर्लभ है । न जाने कितने धूर्त तथा मक्कार व्यक्ति वाणी एवं वेश से महात्मा बनकर ज्ञान के जिज्ञासु भोले और भले लोगों प्रताड़ित करते घूमते हैं । किसी को आज वाणी अथवा वेश के आधार पर विद्वान अथवा चरित्रवान् मान लेना निरापद नहीं है। आज मन वचन कर्म से सच्चे और असंदिग्ध ज्ञान वाले महात्माओं का मिलना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है । सत्संग के लिये तो ऐसे पूर्ण विद्वानों की आवश्यकता है जो हमारे विचारों को ठीक दिशा दे सकें और आत्मा में आध्यात्मिक प्रकाश एवं प्रेरणा भर सकें । वक्तुता के बल पर मनचाही दिशा में भ्रमित कर देने वाले वाक् वीरों से सत्संग का प्रयोजन सिद्ध न हो सकेगा ।

ऐसे प्रामाणिक प्रेरणा पुञ्ज व्यक्तित्व आज के युग में बिरले हैं । जो हैं भी उनकी खोज तथा परख करने के लिये आज के व्यस्त समय में किसी के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पास पर्याप्त समय तथा बुद्धि नहीं है । जो प्रेरणा एवं प्रकाशदायक प्रज्ञामात्र विदित भी है उनका लाभ तो वही भाग्यवान उठा सकते हैं जो उनके सन्निकट रहते हैं । दूर-दूर के लोग पास न तो आसानी से रह सकते हैं और न पूर्ण प्रकाश पाने तक समय ही दे सकते हैं । इन सब कठिनाइयों के कारण विद्वानों का साक्षात् सत्संग असम्भव सा हो गया है । इसलिये ज्ञान के उत्सुक लोगों के लिये स्वाध्याय का ही एक ऐसा माध्यम रह गया है जिसके द्वारा वे सत्संग से अपेक्षित लाभ पुस्तकों से प्राप्त कर सकते हैं ।

पुस्तकें क्या हैं ? विद्वानों के 'विचार-शरीर' ही तो हैं । सत्संग का प्रयोजन विचारों का श्रवण मनन तथा ग्रहण ही है । विद्वानों तथा महापुरुषों के जो विचार उनके मुख से सुने जा सकते हैं, वे उनकी लिखी पुस्तकों से आँखों द्वारा पढ़े जा सकते हैं । एक बार बौद्धिक सत्संग में विचार अस्त-व्यस्त भी हो सकते हैं, किन्तु पुस्तकों में संचित विचार व्यवस्थित तथा स्थिर होते हैं । ग्रन्थकर्त्ता अपनी पुस्तक में ज्ञान को परिपक्वता से ओत-प्रोत विचार ही अकिंत किया करता है । स्वाध्यायरूपी सत्संग द्वारा कोई भी व्यक्ति उन विद्वानों का विचार-संग किसी समय भी किसी स्थान पर प्राप्त कर सकता है जो आज संसार में नहीं अथवा जो सुदूर देशान्तर में रह रहे हैं । परिचित भाषा ही नहीं अनुवादों द्वारा अपरिचित भाषाओं के विद्वानों के विचार-संग में आया जा सकता है । पुस्तकों के माध्यम से प्रामाणिक विद्वानों का सत्संग विचार विकास के लिये सबसे अधिक उपयोगी, सरल तथा निरापद है ।

जहाँ यह आवश्यक है कि मनुष्य स्वयं स्वाध्यायी बने, उसके लिये प्रेरणादायक पुस्तकें संचित करे और नित्य प्रति उनका परायण करता रहकर अपनी बुद्धि, विवेक तथा ज्ञान को विकसित करता रहे, वहाँ यह भी आवश्यक है कि स्वाध्याय की प्रेरणा दूसरे लोगों में भी भरे ।

आज हममें से प्रत्येक शिक्षित भारतीय का पुनीत कर्त्तव्य है कि वह स्वाध्याय द्वारा स्वयं तो ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करे और साथ ही यथासाध्य अपनी परिधि में निवास करने वाले लोगों को भी प्रकाश एवं प्रेरणा दे । आज के युग का यह सबसे बड़ा पुण्य परमार्थ है । यों भी ज्ञान पाना और ज्ञान से अन्यों में ज्ञान प्राप्ति की प्रेरणा भरना पुण्य कर्म ही कहा गया है । तब आज की भ्रान्त स्थिति में तो यह सर्वोपरि पुण्य कर्म बताया गया है ।

स्वाध्याय में प्रमाद न करें-

भारतीय संस्कृति में स्वाध्याय और सत्संग को जैसा महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, वैसा अन्यत्र शायद ही कहीं देखने को मिले । इस महत्ता का कारण भी समझ में आता है; क्योंकि स्वाध्याय और सत्संग निजी जीवन को जलाने और गढ़ने वाले दो अमोघ उपाय हैं । यह सत्य है कि नियमित स्वाध्याय से बौद्धिक प्रखरता बढ़ती है; पर अध्यात्म क्षेत्र में इसे अन्तरंग के परिष्कार और आत्मबल सम्वर्धन का सुनिश्चित और सरल माध्यम भी बताया गया है ।

व्यक्तित्व की उत्कृष्टता के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता उस विचारणा की है जो आदर्शवादिता से ओत-प्रोत होने के साथ-साथ हमारी रुचि और श्रद्धा के साथ जुड़ जाय । यह प्रयोजन दो प्रकार से पूरा हो सकता है । एक तो आदर्शवादी उच्च चरित्र महामानवों का दीर्घ कालीन सान्निध्य दूसरे उनके विचारों का अवगाहन व स्वाध्याय वर्तमान । परिस्थितियों में पहला तरीका काफी कठिन है । एक तो तत्वदर्शी महामानवों का एक प्रकार से सर्वनाश हो चला । श्रेष्ठता का लवादा ओढ़े कुटिल दिग्भ्रन्त और उलझे हुए लोग ही श्रद्धा की वेदी हथियाये बैठे हैं । उनके सान्निध्य में व्यक्ति कोई दिशा पाना तो दूर, उलटा भटक जाता है । इसके जो उपयुक्त है, वे समाज की वर्तमान परिस्थितियों को सुधारने के लिये इतनी तत्परता एवं व्यस्तता के साथ लगे हुए हैं कि सुविधापूर्वक लम्बा सत्संग दे सकना उनके लिये भी सम्भव नहीं, फिर जो सुनना चाहता है, वही खाली बैठता है । इसलिये जिन सौभाग्यशालियों को प्रामाणिक महापुरुषों का सान्निध्य जब कभी मिल जाय, तब उतने में ही संतोष कर लेना पड़ेगा ।

दूसरा मार्ग ही इन दिनों सुलभ है । स्वाध्याय के माध्यम से मस्तिष्क के सम्मुख यह वातावरण देर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक आच्छादित रखा जा सकता है जो हमें प्रखर और उत्कृष्ट जीवन जी सकने के लिये उपयुक्त प्रकाश दे सके । स्वाध्याय में बौद्धिक मूल और आध्यात्मिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये हमें पेट को रोटी और तन को कपड़ा जुटाने से भी अधिक तत्परता के साथ प्रयत्नशील होना चाहिये । स्वाध्याय दैनिक नित्य कर्मों में शामिल रखा जाय । क्योंकि चारों ओर की परिस्थितियाँ जो निष्कर्ष निकालती हैं उससे हमें निकृष्ट मान्यताऐं और गतिविधियाँ अपनाने का ही प्रोत्साहन मिलता है ।

स्नान करने, दाँत माजने, कपड़े धोने और झाड़ू लगाने की नित्य आवश्यकता इसलिये पड़ती है कि निरन्तर मलीनता की जो पर्त जमा होती रहती है, उसे जल्दी हटाये बिना स्वच्छता खतरे में पड़ जाती है । इसी प्रकार मन के ऊपर चारों ओर के गर्हित वातावरण का प्रभाव पड़ते रहने से जो मलीनता जमती है उसके परिष्कार का एक मात्र उपाय स्वाध्याय ही रह जाता है । जीवित या मृत महामानवों के विचारों, चरित्रों का प्रभाव जब चाहे तब जितनी देर तक चाहें उतनी देर तक उनके साथ सान्निध्य का लाभ ले सकते हैं । उनका साहित्य हमें हर समय उपलब्ध कर सकता है और अपना सुविधानुसार चाहे जितना सम्बन्ध उसके साथ जुड़ा रखा जा सकता है । यह सम्बन्ध माता का दूध पीने का लाभ उठाने वाले बच्चे तथा रक्तदान प्राप्त करने वाले रोगी की तरह हर किसी को स्वाध्याय द्वारा समुचित लाभ उठाने का अवसर मिल सकता है । पुस्तकों का मूल्य स्वल्प होता है, पर उनके द्वारा जो प्रभाव उपलब्ध किया जा सकता है, उसे बहुमूल्य या अमूल्य ही मानना पड़ेगा ।

सत्साहित्य ने अगणित व्यक्तियों को ऊँचे उठने और आत्मबल सम्पन्न हो सकने का अवसर दिया है । भगवान् श्री कृष्ण गीता का ज्ञान सुनाकर एक अर्जुन को ही लाभ दे सके, पर उस महाग्रन्थ से न्यूनाधिक मात्रा में उस प्रकाश के माध्यम से असंख्यों ने जीवन लक्ष्य प्राप्त करने में सफलता पाई है । प्रेरक साहित्य सदा व्यक्तित्व, चरित्र मनोबल और आत्म-निर्माण में सहायता करता रहा है । इस प्रेरणा से प्रभावित अगणित व्यक्ति तुच्छता के बन्धनों को तोड़कर महानता वरण करने में समर्थ हुए हैं अस्तु उपासना, पूजा, अर्चना, तप, व्रत, दान आदि के समक्ष ही "स्वाध्याय" को भी पुण्य प्रयोजनों में अति आदर पूर्वक सम्मिलित किया गया है ।

इन दिनों इस संदर्भ में एक चिन्ता की बात यह बन गई है कि रूढ़िवादिता ने इस क्षेत्र में भी गहराई तक अड्डा जमा लिया है । सड़ी-गली, अप्रासंगिक और बेतुकी पौराणिक कहानियों की पुस्तकों को ही लोग धर्मग्रन्थ मान बैठे हैं और जो पुराना सो अच्छा की पृष्ठभूमि में उन्हें ही रोज-रोज दुहराकर स्वाध्याय की लकीर पीटने लगे हैं ।

इस निरर्थक विडम्बना से भला किसका क्या भला हो सकता है ? स्वाध्याय के लिये वह चुना हुआ साहित्य ही उपयुक्त होगा जो व्यक्ति के गुण, स्वभाव को परिष्कृत करने का व्यावहारिक मार्ग-दर्शन करे और समाज में प्रस्तुत उलझनों को सुलझाने का बुद्धिसंगत समाधान प्रस्तुत करे । आज व्यक्ति और समाज की परिस्थितियाँ प्राचीन काल से भिन्न हैं, सो उनके समाधान भी युग के अनुरूप ही होने चाहिये । हर युग में स्थिति के अनुरूप मार्ग-दर्शन करने के लिये विचारक, तत्वदर्शी, युगदृष्टा और देवदूत अवतरित होते रहते हैं । समय की भिन्नता के कारण को ध्यान में रखते हुए ही बार-बार और नये-नये संदेश लेकर आने वाले संदेशवाहकों की आवश्यकता पड़ती है । आज परिस्थितियों के अनुरूप मार्ग-दर्शन इस युग के ऋषि ही दे सकते हैं और स्वाध्याय के लिये वैसे ही साहित्य की उपयोगिता हो सकती है ।

एक बार एक मित्र ने सर जॉन हर्शल नामक प्रख्यात परिश्रमीय विद्वान से प्रश्न किया-"आपको सृष्टि में सर्वोत्तम वस्तु कौन सी लगी ?" तो उन्होंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया–

"भाँति-भाँति के संयो -वियोग आये, पर वह दृढ़ता पूर्वक मेरे साथ जीवन के सुख और आनन्द

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का झरना बने रहे । मेरे खिलाफ हवा चले, लोग मुझे बुरा कहें, धिक्कारें, रास्ता रोकें उस समय मुझे बेपरवाह बना दें । जीवन से दुखों में मेरी ढाल बन जायें । ईश्वर से प्रार्थना करने का अवसर मुझे मिले तो मैं निवेदन करूँगा हे प्रभू ! मुझे विद्या पढ़ते रहने की रुचि दें । ज्ञान के धार्मिक महत्त्व को घटाये बिना यहाँ मैंने केवल उसके सांसारिक लाभ बताये हैं । विद्या की अभिरुचि कैसी आनन्ददायिनी है ? सन्तोष का कैसा उन्मुक्त साधन है ? इतना ही मैंने यहाँ स्पष्ट किया है ।"

यदि मनुष्य का जीवन सामान्य भोगोपभोग और सामाजिक जीवन के कुछ ही स्तर पर ऊँचा चढ़ने में बीता, सो सारा मनुष्य जीवन तुच्छ गया वह समझना चाहिए, महानता की उच्च सीढ़ी पर प्रतिष्ठित होना चाहिए, ज्ञान ही उसका आधार है ।

विद्वान किंग्सले ने एक स्थान पर लिखा है—ज्ञान से ही मनुष्य में ऊँचे उठने की पात्रता आती है, सुख और वैभव भी ज्ञान के बिना नहीं मिलते फिर आध्यात्मिक आनन्द तो उसके बिना मिलेगा ही कैसे? ईश्वर तक कोई चीज पहुँच सकती है तो वह विद्या ही हो सकती है ।

संसार विलक्षण है । यहाँ की प्रत्येक वस्तु विलक्षणता से परिपूर्ण है । संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है जो आश्चर्यों के प्रति आकर्षित न होता हो । इस सृष्टि की रचना क्यों की गयी और हमारा उसके प्रति क्या कर्त्तव्य है ? हम शरीर क्यों धारण किये हुए हैं? यह प्रश्न जानने बड़े जरूरी हैं । इसके लिए हमें अपनी धार्मिक वृत्ति को तेजस्विनी बनाकर आध्यात्मिक तत्त्व की खोज करनी चाहिए । ज्ञान ही धार्मिकता के साथ मिलकर विद्या कहलाती है, यह विद्या ही मनुष्य को बन्धनों से मुक्त करती है ।

जिन-जिन महापुरुषों ने बड़े-बड़े काम किये हैं, उन्होंने वे काम समय का सदुपयोग, विद्याध्ययन और बौद्धिक प्रतिभाओं के विकास के द्वारा ही किये हैं । दिन भर में २४ घण्टे होते हैं । आठ घण्टे सोने और आठ घण्टे काम करने के लिए निकाल दिये जायें तो अन्यान्य विकास कार्यों अथवा मनोरंजन के लिये आठ घण्टे बचते हैं । विद्याध्ययन सर्वोत्तम मनोरंजन है यदि इसके लिए प्रति दिन दो घण्टे का भी समय दिया जा सके तो संसार की अनेक वस्तुओं, परिस्थितियों, समस्याओं, जीवों, जीववृत्तियों, तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर सकते है । बढ़े हुए ज्ञान की पूँजी से सांसारिक सुख भी भुनाये जा सकते हैं और पारलौकिक अनुभूतियों का सुख भी प्राप्त कर सकता है ।

पहले लोगों में स्वाध्याय की स्वाभाविक वृत्ति हुआ करती थी—"काव्य शास्त्र विनोदेन कालोगच्छति धीमताम्" का सिद्धान्त प्रायः सभी मानते हैं । भारतीय संस्कृति की प्रतीक "देवी सरस्वती" स्वयं विद्या अथवा ज्ञान का ही स्वरूप है । लोग उनकी आजीवन उपासना किया करते थे और इस प्रकार बिना श्रम संसार समुद्र से पार उतर जाया करते थे ।

अब स्थिति तब से भिन्न है । विद्यार्थी विद्यालय की शिक्षा समाप्त होते ही पुस्तकों को दूर रख देते हैं और उनकी और देखते भी नहीं हैं । समस्याओं का उग्र होना शिक्षा की कमी नहीं बल्कि ज्ञान के अभाव के कारण है । ज्ञान मनुष्य की वृत्तियों को सतोगुणी बनाता है । विद्या मनुष्य को सोम्य, विनम्र और उदार बनाती है । जहाँ उसकी प्रतिष्ठा होगी तो वहाँ कलह और उपद्रव होंगे क्यों—समस्यायें खड़ी होंगी क्यों ? समस्याओं का अन्त करने के लिए सबसे पहले विद्या बल बढ़ाना होगा । उसके लिए अधिक से अधिक साधन जुटाना होगा ।

लोग अभाव और आर्थिक परिस्थितियों को कारण बताया करते हैं । कुछ लोगों को समय न होने की भी शिकायत होती है । मूल बात यह है कि ऐसे व्यक्तियों को विद्याध्ययन का न तो महत्त्व ही मालूम होता है और न उसकी रुचि ही होती है। अनेक दृष्टान्तों से यह सिद्ध हो चुका है कि गरीबी विद्याभ्यास में बाधक नहीं है । पब्लियस, साइरस, इसप, किलन्थिस, बुकर टी वाशिंगटन और टेरन्स आदि प्रतिभाशाली विद्वानों का प्रारम्भिक जीवन बड़ी ही कठिनाइयों में बीता है तो भी उन्होंने ज्ञानार्जन की महत्ता प्रतिपादित कर दिखाई है । एपिक टेटस १० वर्ष गुलाम रहा था । उसके मालिक ने उसका पैर ही तोड़ दिया था, किन्तु बाद में उसने अपनी झोंपड़ी में बैठ कर शास्त्रों का स्वाध्याय किया और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विद्वता उपलब्ध की । रोम के तत्कालीन सम्राट् आड्रियान भी उसके पाडित्य का लोहा मानते थे ।

पाइथागोरस ज्यामिति शास्त्र का प्रकांड विद्वान हुआ है, वह जीवन शास्त्र और नैतिक दर्शन का भी पण्डित था । बहुत कम लोग जानते होंगे कि वह जंगल से लकडियाँ काट कर लाता था और उन्हें बेच कर अपनी आजीविका चलाता था ।

टस्कनी की दुयोरण्टाइन एकेडेमी कौन्सिल के उच्च और महान् प्रतिष्ठा के पद पर नियुक्त होने वाला प्रसिद्ध इटालियन लेखक जेली जात का दर्जी था । उसने इतने ऊँचे पद पर पहुँच जाने पर भी अपना धन्धा दर्जीगिरी नहीं बन्द किया । वह कहा करते था "मैंने इसी व्यवसाय के सहारे विद्या पाई है, मुझे ज्ञान से इतना प्रेम हो गया है कि अपनी इसी आजीविका के सहारे मृत्यु पर्यन्त ज्ञानार्जन करते रहने की हार्दिक अभिलाषा है ।

इटली का मेटास्टासिओ जब बालक था तो शहर की सड़को में गाने गाया करता था । उससे जो पैसे मिलते थे उनकी किताबें और पत्र–पत्रिकायें खरीद कर अधिकांश समय पढ़ने में लगाया करता था । अन्त में उसकी भावना सिद्ध हुई और वह एक दिन इटली का मशहूर कवि हुआ । डॉ० जॉन प्रीडा जो बुर्स्टर के पोप नियुक्त हुए थे, उन्हें पढने की अभिलाषा इतनी तीव्र हुई कि वह आक्सफोर्ड तक पैदल चल कर गये, फीस और खाने के लिए कोई सहारा नहीं था इसलिए वह कॉलेज के होटल में काम करने वाले रसोइये की मदद करते थे, उसी से उन्हें इतने पैसे मिल जाते थे जिससे किसी तरह फीस और रोटी का साधन बन जाता था । वनस्पति शास्त्र के जन्मदाता मीनियस भी इसी तरह एक मोची के पास काम करते हुए पढ़े थे ।

यह उदाहरण इसलिए दिये गये हैं कि आर्थिक स्थिति विपरीत हो तो भी ज्ञान की आराधना की जा सकती है । पेट पालने के लिए कोई भी साधारण काम किया जा सकता है । पर ज्ञान की उपयोगिता और आवश्यकता देखते हुये उसका परित्याग करना अथवा उधर से मुख मोड़ना अपने लिए ही हानिकारक होता है । ज्ञान मनुष्य की शोध है । ज्ञान ही धन और ज्ञान ही जीवन है, उसके लिए किया गया कोई भी बलिदान व्यर्थ नहीं जाता ।

हम इस आध्यात्मिक आवश्यकता को भूल गये हैं । विद्या आत्म-कल्याण का साधन है, पर अब उसे अर्थोपार्जन का माध्यम बनाकर पंगु कर दिया गया है, इसलिए हम नैतिक, आत्मिक, आध्यात्मिक क्षेत्रों में पिछड़ गये हैं । यह उपलब्धियाँ अब हमें तभी मिल सकती हैं, जब ज्ञान को उचित प्रतिष्ठा दी जाय तथा उसके लिए सर्वस्व,न्यौछावर की भावना बनाई जाय ।

सर्वोत्तम विभूति–विद्वता––

शास्त्रकार ने सन्देश दिया है –

गतेऽपि वयसि ग्राह्य विद्या सर्वात्मना बुधैः ।
यद्यपि स्यान्न फलदा सुलभा सान्यजन्मनि ।।

"हे मनुष्यों ! उम्र बीत जाने पर भी यदि विद्या प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो तो तुम निश्चय ही बुद्धिमान हो । विद्या इस जीवन में फलवती न हुई तो भी दूसरे जन्मों में वह आपके लिए सुलभ बन जायेगी " मनुष्य का सबसे बड़ा विवेक, गौरव और उसकी विभूति उसकी विद्वता है, इससे बढ़कर और कोई सम्पत्ति इस संसार में नहीं है ।

विद्या शब्द ज्ञान की सार्थकता का पर्याय है। जो ज्ञान मनुष्य को लौकिक बन्धनों से मुक्त करे और उसे जीवात्मा की वस्तुस्थिति की बूझ कराये वस्तुतः वही विद्या सार्थक है । दुःख-क्लेश और अभाव हमें तब तक पीड़ित करते हैं, जब तक आत्म-स्वरूप का हमें ज्ञान नहीं होता । विद्या के प्रकाश में सब कुछ ऐसे झलकने लगता है जैसे सूर्य के प्रकाश में सारा संसार जगमग हो उठता है । मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी इसलिए धन नहीं, सत्ता और रूप सौंदर्य भी नहीं है । विद्या, बुद्धि,सद्ज्ञान, सद्बुद्धि और विवेक के मापदण्ड़ से ही व्यक्तित्व की श्रेष्ठता की परख होती है । बुद्धिमान ही सच्चे धनी होते हैं, विद्या ही सच्चा धन है, योग्यता, विद्वता और प्रतिभा ही बड़प्पन की कसोटी है ।

महान् पुरुष सदैव ऐसे ही अधिकारी पुरुषों का सान्निध्य प्राप्त करने की अभिलाष करते हैं, जिन्हें विद्या के माध्यम से ही प्रवीणता प्राप्त हुई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो । महाराज धृतराष्ट्र को कोरवों तथा पांड़वों को शस्त्र–प्रशिक्षण के लिए किसी सुयोग्य आचार्य की आवश्यकता थी, किन्तु कोई विद्वान् राजगुरु उन्हें दिखाई नहीं दिया । एक दिन द्रोणचार्य भी उनकी सभा में आये । धनुर्विद्या में प्रवीण आचार्य का पांड़ित्य देखकर महाराज मुग्ध हो गये और उन्होंने समझ लिया कि इनके समीप रहकर बालकों के चरित्र का विकास हो सकेगा । अकेले शस्त्र प्रशिक्षण की बात रही होती तो वह कार्य कोई भी कर सकता था । नैतिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए विद्वता भी आपेक्षित है ।

प्राचीन काल में अध्यापन कार्य इसीलिए सबसे कठिन कार्य माना जाता था और कोई विद्वान पुरुष ही शिक्षक बनने का साहस कर सकते थे । ऐसे व्यक्तियों को शिक्षण का कार्य सोंपा जाता था जो अक्षर ज्ञान के साथ मनुष्य की प्रतिभा विकसित करने के लिऐ समर्थ होते थे । वह वस्तु विद्या ही है जो मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती है और ऊँचा उठाती है । गिरे हुए समाज के उद्धार के लिए भी विद्या एक अनिवार्य आवश्यकता है ।

आधुनिक विद्या का स्वरूप कुछ बदल गया है। वह पूर्णतया अशक्त हो चुकी है । दोनों का चरित्र-वल, कर्म-शक्ति, आशा-विश्वास, उत्साह पौरुष, संयम और सात्विकता जागृत करने की शक्ति उसमें नहीं रही । जिस विद्या में कर्त्तव्य–शक्ति को प्रेरणा न मिलती हो, स्वतंत्र रूप से विचार करने की बुद्धि न आती हो, परिस्थितियों से न टकराने की सामर्थ्य जो न दे सके, वह विद्या निस्तेज है, निष्प्राण है । आज का युग कुछ ऐसा ही हो रहा है । विद्यार्थी डिग्रियाँ प्राप्त करके निकलते हैं तो उनमें छल, कपट, धूर्तता, दुश्चरित्रता, फैशन परस्ती, विलासिता और द्वेष, अहंकार के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता । स्वतत्र चिन्तन का उनमें बिलकुल अभाव होता है । विचारों की पराधीनता का नाम अविद्या है । जो मनुष्य को स्वाधीन बनाये, सर्वोपरि साहसी बनाये, विद्या कहलाने का गौरव उसे ही मिल सकता है ।

अध्यात्म रामायण में बड़े सुन्दर शब्दों में उल्लेख मिलता है —

देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता ।
नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्यति मन्यते ।।

अर्थात्— "मैं देह हूँ" इस बुद्धि का नाम अविद्या है । मैं देह नहीं चेतन आत्मा हूँ, इसका ज्ञान प्राप्त कराना ही सच्ची विद्या है ।

देह, उसकी विशेषतायें और उसके सुखों के प्रति जब मनुष्य की चेतना एक मुखी हो जाती है तो उसकी प्रतिभा का विकास रुक जाता है । विकास का अर्थ इहलौकिक सम्पदाओं की विपुलता प्राप्त कर लेना नहीं है, वह विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक जागृति का लक्षण है । मनुष्य का स्वत्व है उसकी आत्मा और उसकी विशेषताएँ-सदगुण, सद्प्रवृत्ति और सदाचार, । आत्मा की इन विशेषताओं को उपलब्ध करना ही इस जन्म का उददेश्य है और जो इस दिशा में हमारी चेतना को अग्रसर करे वही सच्ची विद्या है ।

यह ज्ञान वैदिक साहित्य में कूट-कूट कर भरा है, किन्तु बाह्य शक्तियों के संघात के कारण परिस्थितियाँ ऐसी बन गयी है कि यह वाड्मय आधुनिक शिक्षा के मलवे में दब कर रह गया है । इससे जीवन का आध्यात्मिक क्षेत्र बिलकुल उपेक्षित बनकर रह रहा है । सर्वत्र दुःख कलेश और अशांति के लिए इस युग का भौतिकवादी दृष्टिकोण ही अधिक दोषी है । एक कठिनाई यह है कि इस ज्ञान को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करने के प्रयत्न भी बिल्कुल निर्बल और कमजोर हो गये हैं, जहाँ-तहाँ कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ चलती भी हैं किन्तु व्यक्तित्व के अभाव के कारण वह प्रभाव उत्पन्न नहीं हो पाता जो जन-जीवन की दिशा बदल सके । भारतीय संस्कृति का पतन भी व्यक्तित्व के अभाव में ही हुआ है । देवालयों, शिक्षालयों, विहार श्रामण और संघों में लोगों की आस्था उठ जाने का कारण यही था कि उनमें व्यक्तित्व न रहा । देव-मन्दिर जड़ थे, भला वे, सांस्कृतिक शक्तियों का जवाब कैसे दे सकते थे ? इससे धर्म के प्रति लोगो की आस्था उठ गई और सर्वत्र अविद्या का ही अधिकार छाकर रह गया ।

वह विद्या जो मनुष्य को सही दिशा, सही मार्ग और सच्चा प्रकाश दिखाती है, उसे अध्यात्म कहते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । इस अध्यात्म को जागृत करने का काम अपने आपसे शुरू करना होगा । इसके लिए विद्वता प्राप्त करना हमारी पहली आवश्यकता है । दुनियावी शिक्षा के रंग–ढंग तो बहुत देख चुके, इनसे कोई समस्या हल न हो सकी । निष्कर्ष निकलता भी कैसे ? आत्म–ज्ञान के बिना परिस्थितियाँ बदल भी तो नहीं सकतीं। विवेक जगाने वाली विद्या न रही तो पतित होना स्वाभाविक ही था । इस पतन से जी उकता उठा है, प्रत्येक साँस के साथ जो गन्दगी भीतर जा रही है उसके कारण अब जन–जीवन बुरी तरह बैचेन है, छटपटा रहा है । इस घुटन को दूर करने का एक ही उपाय है और वह है अध्यात्म विद्या की प्रवीणता। साधना से और व्यवहार से जब तक जीवन की दिशा सात्विक नहीं होती, गुण, कर्म और स्वभाव में सद्तत्वों का समावेश नहीं होता, जड़ता तब तक दूर हो न हों सकती । आत्म–विद्या के देवालय में प्रवेश प्राप्त किये बिना न तो शन्ति मिल सकती है न संतोष । विद्या सुखी जीवन की प्रमुख आवश्यकता है इसे यों ही ठुकराया नहीं जा सकता।

जिस विद्वता से मनुष्य स्वयं ही अपना योग्य साथी बनाता है, उसे प्राप्त करने के लिये अधिक अनुभव, सहनशीलता और अध्ययन की आवश्यकता है । अनुभव का उपयोग जीवन को शुद्ध बनाने के लिये है, कदम-कदम पर जो कठिनाइयाँ मनुष्य का रास्ता रोकती हैं, उनसे बचते रहने का ज्ञान प्राप्त करना ही अनुभवी होना है । अनुभव विवेक का बड़ा भाई है, सत्य-असत्य की शिक्षा उसी से मिलती है, इसलिये प्रत्येक गतिविधि को एक पाठ समझकर उसकी विलक्षणताओं का अध्ययन सूक्ष्मता से करते रहना चाहिये । असंगत वस्तुओं का ज्ञान इसी तरह होगा ।

विद्या आत्मा की प्यास है । इसकी पूर्णाहुति आत्मज्ञान से ही होती है । अतः यह कहा जा सकता है कि अपने जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिए विद्या प्रमुख आवश्यकता है । कठोर प्रयत्नों से भी इसे प्राप्त किया जाना चाहिए । जो इसकी ओर ध्यान नहीं देता और अपने समय को व्यर्थ ही नष्ट किया करता है, वह सदा मनुष्य-जन्म के फल से वंचित रहता है । विद्या मनुष्य की मलिनताओं को मिटाकर उसे उज्ज्वल बनाती है । आग में तपाये हुये सोने की शुद्धता में कोई संदेह नहीं रहता । आत्मज्ञान का लक्षण विद्वता है, वह मनुष्य की सर्वोत्तम विभूति है,उसे प्राप्त करने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिए । विद्या से विनम्रता आती है, विनम्रता से योग्यता बढ़ती है, योग्यता से धन और धन से सुख मिलता है, यह आर्ष पुरुषों का कथन है । हमें भी इस सुख से वंचित न रहना चाहिए ।

स्वाध्याय तप--

गंगा तट पर स्थित महर्षि रैभ्य के आश्रम में कई ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करते थे । नीति, धर्म और सदाचार का अभ्यास करने के साथ-साथ शास्त्र विद्या में भी पारँगत होकर वे समाज में जाते तथा सुयोग्य नागरिक की भूमिका निभाते थे । वहीं पास में एक और तापस रहते थे जो दिन-रात कठोर साधनाओं में लगे रहते । उन तापस का एक पुत्र था यवक्रीत, वह भी अपने पिता के समान ही जप-तप में लगा रहता, परन्तु यवक्रीत की यह भी आकांक्षा थी कि वह वेद वेदान्तों का ज्ञाता शास्त्रों में निष्णात और पण्डित बने ।

इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए यवक्रीत ने अपने तापस पिता से पूछा । पिता ने कहा–'वत्स! विद्या प्राप्ति का तो एक ही उपाय है । स्वाध्याय किया जाय ।'

परन्तु तात उससे तो दीर्घकाल में सिद्धि होती है–यवक्रीत ने कहा ।

'यह साधक की अपनी लगन, योग्यता और ग्रहण शीलता पर निर्भर है, तापस ने कहा–'फिर भी इनके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है ।'

यवक्रीत चुप हो गया, परन्तु उसके मन में यह बात ठीक से समझ नहीं आयी कि एकमात्र अध्ययन ही ज्ञान प्राप्ति का साधन है । हो भी तो उसे यह बहुत लम्बा और श्रम साध्य लगा, इसलिए यवक्रीत ने तप द्वारा विद्या प्राप्ति के लिए अपने पिता के पास से प्रस्थान किया । फिर एकान्त स्थान में जाकर यवक्रीत तप करने लगा । पंचाग्नि तप करते हुए यवक्रीत अपने शरीर को निरन्तर संतप्त करने लगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यवक्रीत को कठोर तप करते देखकर देवराज इन्द्र उनके पास आये और उनसे तप का कारण पूछा। यवक्रीत ने बताया–"गुरु के मुख से वेदों की शिक्षा ठीक तरह से प्राप्त नहीं की जा सकती इसके लिए में तप के प्रभाव से ही सम्पूर्ण वेद शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ ।"

उपयुक्त गुरु न मिले यह बात तो समझ में आती है, परन्तु गुरु के बिना ही कोई ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय यह तो नितान्त असम्भव है । आपने सर्वथा उल्टा मार्ग पकड़ा है विप्रवर ! गुरु के पास जाकर अध्ययन कीजिये ।

इन्द्र तो चले गये, किन्तु यवक्रीत ने अपनी तपस्या नहीं छोडी कुछ वर्षों बाद इन्द्र फिर आये और पुनः समझाने लगे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आपका यह उद्योग बुद्धिमत्ता युक्त नहीं है । किसी को गुरुमुख से पढे बिना विद्या प्राप्त भी हो तो वह सफल नहीं होती । आप अपने दुराग्रह को छोड दीजिये ।'

इतना कहकर इन्द्र चले गये, परन्तु यवक्रीत ने अपना हठ नहीं छोडा । उन्होंने और कठिन तप आरम्भ कर दिया । यवक्रीत का संकल्प था कि वह तपस्या से ही विद्या प्राप्त करके रहेगा । इस प्रकार सिद्धि प्राप्त न होते देख यवक्रीत ने निश्चय किया कि यदि इस अनुष्ठान से विद्या की सिद्धि नहीं हुई तो वह गंगा में अपने शरीर को प्रवाहित कर देंगे। यह निश्चय कर वे एक विशेष तप अनुष्ठान पर बैठे । यवक्रीत के इस निश्चय को जानकर देवराज इन्द्र ने एक अत्यन्त वृद्धा एवं रोगी ब्राह्मण का रूप धारण किया तथा उस स्थान पर आकर बैठ गये जहाँ यवक्रीत स्नान करने के लिए आया करते थे ।

यवक्रीत जब स्नान करने आये तो उन्होंने देखा कि एक दुर्बल और रोगी ब्राह्मण अञ्जलि में बार-बार रेत लेकर गंगा में डाल रहा है । प्रथम द्वितीय बार तो यवक्रीत ने कुछ नहीं कहा, पर जब चार–पाँच दिन तक यवक्रीत ने उस ब्राह्मण को ऐसा करते देखा तो पूछ ही बैठा–विप्रवर ! आप यह क्या कर रहे हैं ?

'लोगों को यहाँ गंगा के उस पार जाने में बड़ा कष्ट होता है' वृद्ध ब्राह्मण ने कहा –'इसलिए मैं गंगा पर पुल बाँध देना चाहता हूँ ।

यवक्रीत ने कहा–भगवन् ! आप इस महाप्रवाह को बालू से किसी प्रकार बाँध नहीं सकते । इसलिए असम्भव उद्योग को छोड़कर सम्भव प्रयास कीजिए ।'

'आप जिस प्रकार तपस्या के द्वारा विद्या सिद्ध करना चाहते हैं, उसी प्रकार मैं भी यह कार्य कर रहा हूँ । आप असाध्य को यदि साध्य कर सकेंगे तो मैं क्यों नहीं कर सकूँगा–वृद्ध ब्राह्मण का वेश धारण किये इन्द्र ने कहा ।

ब्राह्मण कौन है यह यवक्रीत समझ गये और वे महर्षि रैभ्य के आश्रम में जाकर स्वाध्याय द्वारा ज्ञान प्राप्ति की साधना में संलग्न हो गये ।

ज्ञान ही मनुष्य की वास्तविक शक्ति-

ज्ञान को ही मनुष्य की वास्तविक शक्ति माना गया है । वास्तविक वस्तु वह है जो सदैव रहने वाली हो । संसार में हर वस्तु काल पाकर नष्ट हो जाती है । धन नष्ट हो जाता है, तन जर्जर हो जाता है, साथी और सहयोगी छूट जाते हैं । केवल ज्ञान ही एक ऐसा अक्षय तत्त्व है, जो कहीं भी किसी अवस्था और किसी काल में मनुष्य का साथ नहीं छोड़ता।

धन, जन को भी मनुष्य की एक शक्ति माना गया है । किन्तु यह उसकी वास्तविक शक्तियाँ नहीं हैं । इनका भी मूल स्रोत ज्ञान ही है । ज्ञान के आधार पर ही धन की उपलब्धि होती है और ज्ञान के बल पर ही समाज में लोगों को अपना सहायक तथा सहयोगी बनाया जाता है । अज्ञानी व्यक्ति के लिए संसार की कोई वस्तु सम्भव नहीं । धन के लिए व्यापार-व्यवसाय किया जाता है, नौकरी और शिल्पों का अवलम्बन किया जाता है, कला-कौशल की सिद्धि की जाती है, किन्तु इनकी उपलब्धि से पूर्व मनुष्य को इनके योग्य ज्ञान का अर्जन करना पड़ता है । यदि वह इन उपायों के विषय में अज्ञानी बना रहे तो किसी भी प्रकार इन विशेषताओं की सिद्धि नहीं कर सकता और तब फलस्वरूप धन से सर्वथा वंचित ही रह जायेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही बात जन-शक्ति के विषय में भी कही जा सकती है । जन-बल को भी अपने पक्ष में करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है । जब किसी को जन-मानस का ज्ञान होगा, उसकी आवश्यकताओं और समस्याओं की जानकारी होगी, उसे सत्पथ दिखला सकने की योग्यता होगी, उसके दुःख-दर्द और कष्ट-क्लेशों के निवारण कर सकने की बुद्धि होगी, तभी जन-बल पर अपनी छाप छोड़कर उसे अपने पक्ष में किया जा सकता है । जनता का सहज स्वभाव होता है कि वह अपने सच्चे हितैषी का ही पक्ष धारण किया करती है । जनता का हित किस बात में है और सम्पादन किस प्रकार किया जा सकता है, इसका ज्ञान हुए बिना ऐसा कौन है, जो जन-बल को अपनी शक्ति बना सके । जन-बल का उपार्जन भी ज्ञान द्वारा ही सम्भव हो सकता है ।

किसी शक्ति के उपलब्ध हो जाने के बाद भी उसकी रक्षा और उसके दुरुपयोग के लिए भी ज्ञान की आवश्यकता होती है । ज्ञान के अभाव में शक्ति का होना न होना बराबर होता है । उसका कोई लाभ अथवा कोई भी आनन्द नहीं उठाया जा सकता। उदाहरण के लिए मान लिया जाए कि कोई उपार्जन अथवा उत्तराधिकार में बहुत–सा धन पा जाता है या किसी संयोगवश उसे अकस्मात मिल जाता है, तो क्या यह माना जा सकता है कि वह धन-शक्ति वाला हो गया । क्योंकि धन में स्वयं अपनी कोई शक्ति नहीं होती । वह शक्ति तभी बन पाती है, जब उसके साथ उसके प्रयोग अथवा उपयोग से ज्ञान का समावेश होता है ।

यदि मनुष्य यह भी न जानता हो कि वह उस धन से कौन-सा व्यवसाय करे, किस जन-हितैषी संस्था को दान दे, समाज के लाभ के लिए कौन-सी क्या स्थापना करे । वह धन द्वारा किस प्रकार दीन-दुःखियों, अपाहिजों अथवा आवश्यकता-ग्रस्त लोगों की सहायता करे । उसको व्यय कर किस प्रकार का रहन-सहन बनाये, क्या और किस प्रकार के कामों में उसको भगाये, जिससे समाज में उसका आदर हो, आत्मा में प्रकाश हो और परमार्थ में रुचिता बढ़े, तो वह उसकी क्या शक्ति बनकर सहायक हो सकेगा ?

बल्कि अज्ञान की अवस्था में या तो वह धन को आबद्ध रखकर समाज और राष्ट्र की प्रगति रोकेगा, चोर–डाकुओं और ठगों को आकर्षित करेगा अथवा ऊल-जलूल विधि से उसका अपव्यय एवं अनुपयोग करके समाज में विकृतियाँ पैदा करेगा, अपना जीवन बिगाड़ेगा । यह तो मनुष्य की वास्तविक शक्ति का लक्षण नहीं है । धन की शक्ति में वास्तविकता तभी आती है, जब उसके संग्रह एवं उपयोग का ठीक-ठीक ज्ञान होता है । नहीं तो अपमार्गों द्वारा संचित धन मनुष्य की निर्बलता और आशंका का हेतु बनता है । दुरुपयोग द्वारा भी वह समाज में अपवाद, ईष्या, द्वेष आदि का लक्ष्य बनकर निर्बलता की ओर बढ़ता है । इसलिए यह मानना ही होगा कि वास्तविक शक्ति धन में होती है और न जन में, वह होती है उस ज्ञान में जो इन उपलब्धियों के उपार्जन एवं व्यय का नियन्त्रण किया करता है ।

शारीरिक शक्ति को तो प्रायः लोग निर्विवाद रूप से शक्ति ही मानते हैं । किन्तु वास्तविकता यही है कि इस शक्ति को भी नियन्त्रित तथा उपयोग करने का ठीक ज्ञान हो तो इसका कोई लाभ नहीं होता । शारीरिक शक्ति को कहाँ लगाया जाय, उसका उपयोग किस प्रकार किया जाए,––यदि इस बात की ठीक जानकारी न हो तो या तो वह शक्ति किसी शोषक के अर्थ लग जाएगी अथवा कोई कुटिल उसका उपयोग कर किसी संकट में उलझा देगा । यदि एक बार ऐसा न भी हो तो भी किसी सृजन में न लगकर या तो वह यों ही नष्ट हो जाएगी अथवा किसी ऐसे काम में स्थापित हो जाएगी, जिसका मूल्य नगण्यतम ही होगा ।

ज्ञान हीन शारीरिक शक्ति, पशु शक्ति होती है । वह अपना और दूसरों का बहुत कुछ अनिष्ट कर सकती है । अपना अनिष्ट तो इस तरह कि वह बल के अभिमान में कोई ऐसा प्रदर्शन करने का प्रयत्न कर सकता है, जिसमें अंग-भंग हो जाए, शक्तिमद से प्रेरित होकर किसी से अकारण उलझकर संकट उत्पन्न कर सकता है । अपनी धृष्टता और उद्दण्डता से समाज को विरोधी बना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता है । सदुपयोग का ज्ञान न होने से चुप न रहने वाली शारीरिक शक्ति गलत रास्तों पर जा सकती है और इसी अबूझ तथा अनियन्त्रित प्रवाह में पड़कर ही तो बहुत से लोग अपराधी अत्याचारी तथा दुस्साहसी बन जाया करते हैं और तब उनकी वह शक्ति विविध प्रकार के भयों का कारण बन जाती है । इसलिये तन, मन धन और जन-शक्ति को वास्तविक शक्ति न मानकर उस ज्ञान को ही मानना चाहिए, जो उनके उपार्जन, नियन्त्रण तथा उपयोग का संचालन किया करता है ।

मनुष्य की वास्तविक शक्ति ज्ञान है, पर वास्तविक ज्ञान क्या है ? इसका जान लेना भी नितान्त आवश्यक है । ऐसा किये बिना मनुष्य किसी भी जानकारी को ज्ञान समझकर पथ-भ्रान्त हो सकता है। यदि वह भौतिक विभूतियों के उपार्जन के उपायों की जानकारी को ज्ञान समझ ले अथवा किन्हीं गलत क्रियाओं की विधि या अपने किसी अन्ध-विश्वास को ही ज्ञान समझ बैठे तब तो उसका कल्याण ही नष्ट हो जाये और वह अज्ञान के अन्धकार में ही भटकता रह जाये ।

शास्त्रकारों और मनीषियों ने जिस वास्तविक ज्ञान का संचय करने का निर्देश किया है, वह स्कूल और कॉलिजों में मिलने वाली शिक्षा नहीं है और न इसे संचय करके ज्ञान प्राप्ति का सन्तोष कर लेना चाहिये । स्कूली शिक्षा तो लौकिक जीवन को साधन सम्पन्न बनाने और वास्तविक ज्ञान की ओर अग्रसर होने का एक माध्यम मात्र है, वास्तविक ज्ञान नहीं है।

बहुत से लोग शास्त्र और धार्मिक ग्रन्थों में दिये निर्देशों की जानकारी ही को ज्ञान मान बैठते हैं और बहुत से लोग महात्माओं अथवा आर्ष-ग्रन्थों के वाक्यों को रट लेना भर भी ज्ञान समझ बैठते हैं । किन्तु यह सब बातें भी वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति के लिये साधन मात्र हैं । वास्तविक ज्ञान नहीं है । शास्त्रों का स्वाध्याय और महात्माओं का सत्संग वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने में सहायक तो हो सकता है, किन्तु इसका उपार्जन तो मनुष्य को स्वयं ही आत्मचिन्तन एवं मनन द्वारा ही करना पड़ता है । पुस्तक पढ़ लेने अथवा किसी महात्मा का कथन सुन लेने भर से वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती । वास्तविक ज्ञान तो आत्मनुभूति के द्वारा ही सम्भव हो सकता है ।

आज के वैज्ञानिक काल में ज्ञान के विषय में और भी अधिक भ्रम फैला हुआ है । लोग वैज्ञानिक शोधों आविष्कारों और अन्वेषणों को ही वास्तविक ज्ञान मानकर मदमत्त हो रहे हैं । प्रकाश, ताप, विद्युत, वायु, जल, गति, चुम्बकत्व के ज्ञान और उसके उपयोग को ही सच्चा ज्ञान समझकर अज्ञान के घने अन्धकार में पड़ते चले जा रहे हैं । जबकि वास्तविकता यह है कि आज का सारा वैज्ञानिक ज्ञान विशुद्ध भौतिक अनुभूतियों को प्राप्त करने के लिये साधन भर है और आज के इन वैज्ञानिक साधनों ने मनुष्य को इस सीमा तक भ्रान्त कर दिया है कि वह आत्मा, परमात्मा को भूलकर बुरी तरह नास्तिक बनता जा रहा है । जिसकी परिसमाप्ति यदि शीघ्र ही अज्ञान और विज्ञान विषयक अन्धविश्वास का सुधार न किया गया तो भयानक ध्वंस में ही होगी। जिस ज्ञान का परिणाम विनाश हो उसे वास्तविक ज्ञान किस प्रकार माना जा सकता हैं ?

वास्तविक ज्ञान का लक्षण तो वह स्थिर बुद्धि और उसका निर्देशन है, जिसे पाकर मनुष्य अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर, असत्य से सत्य की ओर उन्मुख होता है । सच्चे ज्ञान में न तो असन्तोष होता है । और न लिप्साजन्य आवश्यताएँ । उनकी प्राप्ति तो आत्मज्ञता, आत्म–प्रतिष्ठा और आत्म–विश्वास का ही हेतु होती है । जिस ज्ञान से इन दिव्य विभूतियों एवं प्रेरणाओं की प्राप्ति नहीं होती, उसे वास्तविक ज्ञान मान लेना बड़ी भूल होगी ।

इस प्रकार का वास्तविक ज्ञान किसी का भौतिक ज्ञान नहीं शुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान ही हो सकता है और सांसारिक कर्म करते हुए भी उसे प्राप्त करने का उपाय करते ही रहना चाहिये । फिर इसके लिए चाहे स्वाध्याय करना पड़े, सत्संग अथवा चिन्तन मनन करना पड़े, आराधना उपासना अथवा पूजा-पाठ करना चाहिये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वास्तविक ज्ञान के बिना न तो जीवन में शांति मिलती है और न उसको परकल्याण प्राप्त होता है ।

वास्तविक ज्ञान ही जीवन का सार और आत्मा का प्रकाश है । एक मात्र सच्चा ज्ञान ही लोक परलोक में अक्षय तत्त्व और सच्चा साथी है, बाकी सब कुछ नश्वर तथ मिथ्या है । तथापि ज्ञानवान् पुरुष के लिये यह मिथ्या जगत और नश्वर पदार्थ भी आत्म-दर्पण में आत्मस्वरूप के रूप में प्रतिविम्बित होते हुए यथार्थ रूप में प्रतीत होने लगते हैं । ज्ञान का अमृत न केवल मनुष्य को ही बल्कि उसके जीवन जगत को भी अमरत्व प्रदान कर देता है । ज्ञान की महिमा अपार एवं अकथनीय है ।

ज्ञान की प्राप्ति ही मनुष्य का वास्तविक लक्ष्य है । अस्तु, इस सत्य को अच्छी प्रकार हृदयंगम करके सच्चे ज्ञान को प्राप्त करने का हर सम्भव उपाय करते ही रहना चाहिये कि तन, धन अथवा जन की शक्ति वास्तविक शक्ति नहीं है और उनकी प्राप्ति का उपाय ही ज्ञान है । यह सब भौतिक जीवन में साधनों का समावेश करने का माध्यम मात्र है । वास्तविक ज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान ही है और वही मनुष्य की सच्ची शक्ति भी है, जिसके सहारे वह आत्मा तक और आत्मा से परमात्मा तक पहुँचकर उस सुख, उस शान्ति और उस सन्तोष का अक्षय भण्डार हस्तगत कर सकता है, जिसको वह जन्म–जन्म से खोज रहा है किन्तु पा नही रहा है । ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य इच्छित जगत के निर्माण में समर्थ होता है । स्वाध्याय, सत्संग एवं चिन्तन मनन की त्रिपदा का अवलम्बन ही ज्ञान सिद्धि का उपाय है ।

स्वाध्याय-जीवन विकास की अनिवार्य आवश्यकता

बहुत बार हममें से अनेक लोग किसी की धारा प्रवाह बोलते एवं भाषण देते देखकर मन्त्र कीलित जैसे हो जाते हैं और वक्ता के ज्ञान एवं उनकी प्रतिभा की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगते हैं और कभी कभी यह भी मान लेते हैं कि इस व्यक्ति पर माता सरस्वती की प्रत्यक्ष कृपा है । इसके अन्तर्पट खुले हुए हैं, तभी तो ज्ञान का अविरल स्रोत इसके शब्दों में मुख के द्वारा बाहर बहता चला आ रहा है ।

बात भी सही है, श्रोताओं का इस प्रकार आश्चर्य विभोर हो जाना अस्वाभाविक भी नहीं है । सफल वक्ता अथवा समर्थ प्रध्यापक जिस विषय को लेते हैं, उस पर घण्टों एक बार बोलते चले जाते हैं और यह प्रमाणित कर देते हैं कि उनको उस विषय का सांगोपाग ज्ञान है और उनकी सारी विद्या जिह्वा के अग्रभाग पर रखी हुई है । यह बात लगती तो वास्तव में एक चमत्कार है, एक सिद्धि जैसी, जबकि वह कोई मांत्रिक सिद्धि नहीं होती है । वह सारा चमत्कार उनके उस स्वाध्याय का सुफल होता है, जिसे वे किसी दिन भी किसी अवस्था में नहीं छोड़ते । उनके जीवन में कदाचित् ही कोई अभागा, दिन जाता हो, जिसमें वे मनोयोगपूर्वक घण्टे दो घण्टे स्वाध्याय न करते हों । स्वाध्याय उनके जीवन का एक अंग और प्रति दिन की एक आवश्यकता बन जाता है । जिस दिन वे अपनी इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर पाते, उस दिन वे अपने तन-मन और आत्मा में एक भूख, एक रिक्तता का अनुभव किया करते हैं । उस दिन को वे जीवन का एक मनहूस दिन मानते और उस मनहूस दिन को कभी भी अपने जीवन में आने का अवसर नहीं देते ।

यही तो वह अवाध तप है जिसका ज्ञान मुखरता के रूप में वक्ताओं एवं विद्वानों की जिह्वा पर सरस्वती के वास का विश्वास उत्पन्न करा देता है । चौबीसों घण्टे सरस्वती की उपासना में लगे रहिये, जीवन भर ब्राह्मी मन्त्र एवं ब्राह्मी बूटी का सेवन करते रहिये, किन्तु स्वाध्याय किसी दिन भी न करिये और देखिये कि सरस्वती की सिद्धि तो दूर पास की पढ़ी हुई विद्या भी विलुप्त हो जायेगी । सरस्वती स्वाध्याय का अनुगमन करती है । इस सत्य का सम्मान करता हुआ जो साधक उसकी उपासना करता है, वह अवश्य उसकी कृपा का भागी बन जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्ययन के अभाव में इस आत्म-जगत में गति कठिन है । आत्मा के स्वरूप का ज्ञान अथवा परमात्मा के अस्तित्व का परिचय प्राप्त हुए बिना उनसे सम्पर्क किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है ? इस अविगत का ज्ञान तो उन महान् मनीषियों का अनुभव अध्ययन करने से ही प्राप्त हो सकना सम्भव है, जो अवतार रूप में संसार को वेदों का ज्ञान देने के लिए परमात्मा का प्रतिनिधित्व करते रहते हैं । आसन-ध्यान, पूजा-पाठ तो प्रधान रूप से बुद्धि को परिष्कृत और आचरण को उज्ज्वल बनाने के लिये, इस हेतु करना आवश्यक है कि अध्यात्म के वैदिक तत्त्व को समझने और ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त हो सके । इसके विपरीत यदि एक बार पूजा-पाठ को स्थगित भी रखा जाये और एकाग्रता एवं आस्थापूर्वक स्वाध्याय और उसका चिन्तन-मनन भी किया जाए तो बहुत कुछ उसी दिशा में बढ़ा जा सकता है । स्वाध्याय स्वयं ही एक तप, आसन और साधना के समान है । इसका नियम निर्वाह करने से आप ही आप अनेक नियम, संयमों का अभ्यास हो जाता है ।

स्वाध्याय में मनुष्य का अन्तःकरण निर्मल कर देने और उसके अन्तर्पट खोलने की सहज ही क्षमता विद्यमान् है । आन्तरिक उद्घाटन हो जाने से मनुष्य स्वयं ही आत्मा अथवा परमात्मा के प्रति जिज्ञासु हो उठता है । उसकी चेतना ऊर्ध्वमुखी होकर उसी ओर को उड़ने के लिए पर खोलने लगती है । उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियों का प्रस्फुटन स्वाध्याय के द्वारा ही हुआ करता है । स्वाध्याय निःसन्देह एक ऐसा अमृत है, जो मानस में प्रवेश कर मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों को नष्ट कर देता है ।

चारित्रिक उज्ज्वलता स्वाध्याय का एक साधारण और मनोवैज्ञानिक फल है । सद्ग्रन्थों में सन्निहित साधु-वाणियों का निरन्तर अध्ययन एवं मनन करते रहने से मन पर संस्कारों की स्थापना होती है, जिससे चित्त आपसे आप दुष्कृत्यों की ओर से फिर जाता है। स्वाध्यायी व्यक्ति पर कुसंग का भी प्रभाव नहीं पड़ने पाता, इसका भी एक वैज्ञानिक कारण है । जिसकी स्वाध्याय में रुचि है और जो उसको जीवन का एक ध्येय मानता है वह आवश्यकताओं से निवृत्त होकर अपना सारा समय स्वाध्याय में ही तो लगाता है । इसलिये उसके पास कोई फालतू समय नहीं रहता, जिसमें वह जाकर इधर-उधर यायावरी करेगा दूषित वातावरण से अवांछित तत्त्व ग्रहण कर लायेगा ।

इसी प्रकार 'रुचि साम्य सम्पर्क के सिद्धान्त के अनुसार भी यदि उसके पास कोई आवेगा तो प्रायः उसी रुचि का होगा और उन दोनों को एक सामयिक सत्संग का लाभ होगा । रुचि वैषम्य रखने वाला स्वाध्यायशील के पास जाने का कोई प्रयोजन अथवा साहस ही न रखेगा और यदि असंयोगवश ऐसे कोई व्यक्ति आ भी जाते हैं तो उनके पास का वातावरण अपने अनुकूल न पाकर देर तक ठहर ही न पायेंगे। निदान संगति जन्य आचरण दोषों का स्वाध्यायशील के पास को प्रश्न ही नहीं उठता ।

आत्मोन्नति के सम्बन्ध में विपरीत वृत्तियाँ आलस्य, प्रमाद अथवा असंयम आदि स्वाध्यायशील व्यक्ति के निकट नहीं जाने पातीं । इसका भी एक वैज्ञानिक हेतु ही है, कोई सुरक्षा कवच का प्रभाव नहीं है । जिसे पढ़ना है और नित्य नियम से जीवन का ध्येय समझ कर पढ़ना है, वह तो हर अवस्था में अपने उस व्रत का पालन करेगा ही । वह जानता है, अव्यवस्था अथवा अनियमितता, उसे एक रुचि पूर्ण व्रत में बाधक होगी । अस्तु वह जीवन की एक सुनिश्चित दिनचर्या बनाकर चलता है । उसका सोना, जागना, खाना-पीना, टहलना-घूमना और कारोबार करने के साथ-साथ पढ़ने-लिखने का कार्यक्रम व्यवस्थित रूप में बड़े अच्छे ढंग से चला करता है । जिसने जीवन के क्षणों को इस प्रकार उपयोगितापूर्वक नियमबद्ध कर दिया है, उसका तो एक एक-क्षण तपस्या का ही समय माना जायेगा । जिसने जीवन में व्यवस्था एवं नियमबद्धता का अभ्यास कर लिया, उसने मानो अपने आत्म-लक्ष्य के लिए एक सुन्दर नसैनी तैयार कर ली है, जिसके द्वारा वह सहज ही में ध्येय तक जा पहुँचेगा ।

अनुभव सिद्धि विद्वानों ने स्वाध्याय को मनुष्य का पथ-प्रदर्शक नेता और मित्र जैसा हितैषी बताता है । उनका कहना है कि जो व्यक्ति सत्पथ-प्रदर्शक अपने सच्चे सखा स्वाध्याय का परित्याग कर देता है । उसका नाड़ी आदि इन्द्रियों पर अधिकार नहीं रहता । उसका मन चञ्चल, विवेक-मन्द और बुद्धि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुण्ठित रहती है। इन सब दोषों के का उसे दुःखों का भागी बनना पड़ता है । इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति वही है, जो अपने सच्चे मित्र स्वाध्याय को कभी नहीं छोड़ता । इसीलिये तो गुरुकुल से अध्ययन पूरा करने के बाद विदा लेते समय गुरु, शिष्य को ही अन्तिम उपदेश दिया करता था––

"स्वाध्यायात् मा प्रमद ।"

अर्थात्-"हे प्यारे शिष्य ! अपने भावी जीवन में स्वाध्याय द्वारा योग्यता बढ़ाने में प्रमाद मत करना ।

स्वाध्याय से जहाँ संचित ज्ञान सुरक्षित तो रहता है, साथ ही उस ज्ञान कोश में नवीनता और वृद्धि भी होती रहती है । वहाँ स्वाध्याय से विरत हो जाने वाला नई पूँजी पाना तो क्या गाँठ की विद्या भी खो देता है ।

स्वाध्याय जीवन विकास के लिये एक अनिवार्य आवश्यकता है, जिसे हर व्यक्ति को पूरा करना चाहिये । अनेक लोग परिस्थितियोंवश अथवा प्रारम्भिक प्रमादवश पढ़-लिख नहीं पाते और जब उन्हें शिक्षा और स्वाध्याय के महत्त्व का ज्ञान होता है, तब हाथ मलमल कर पछताते हैं ।

किन्तु इसमें पछताने की बात होते हुए भी अधिक चिन्ता की बात नहीं है । ऐसे लोग जो स्वयं पढ़–लिख नहीं सकते, उन्हें विद्वानों का सत्संग करके और दूसरों द्वारा सद्ग्रन्थों को पढ़वाकर सुनने अथवा उनके प्रवचन का लाभ उठाकर अपनी इस कमी की पूर्ति करते रहना चाहिये । जिनके घर पढ़े–लिखे बेटी–बेटे अथवा नाती पोते हों, उन्हें चाहिये कि सन्ध्या समय उनको अपने पास बिठाल कर सद्ग्रन्थों का पाठ करायें ।

इस प्रकार उसका स्वयं तो लाभ होगा ही, बच्चों को भी सद्ग्रन्थों का अध्ययन करने का अभ्यास हो जायेगा । जहाँ चाह, वहाँ राह के सिद्धान्त के अनुसार यदि स्वाध्याय में रुचि है और उसके महत्त्व को हृदयंगम कर लिया गया है तो शिक्षा अथवा अशिक्षा का कोई व्यवधान नहीं आता, स्वाध्याय के ध्येय को अनेक तरह पूरा किया ही जा सकता है ।

महान् दार्शनिकों अन्वेषी सिद्ध तपस्वियों और श्रेष्ठ महापुरुषों के प्रचण्ड परिश्रम से उपार्जित उपलब्ध अमूल्य रत्न राशि का सहजता से हाथ लग जाना कितना बड़ा सौभाग्य है, यह उनके ही जीवन से जाना जा सकता है, जिन्होंने इस सौभाग्य को पाने का अवसर गँवाया नहीं है । इतने अनुभवपूर्ण ज्ञान को इतनी सुगमता से पा सकना सचमुच मनुष्य के लिए कितना श्रेष्ठ अनुदान है ।

व्यक्तित्व के उत्कर्ष के लिये प्रत्यक्ष प्रेरणा ही प्रभावी सिद्ध होती है । ऐसी प्रेरणा पाना ही सत्संग का लाभ उठाना कहा गया है । व्यक्तियों का सत्संग तो वैसे भी दुर्लभ ही है । सामान्यतः जो लोग कुछ आगे बढ़े-चढ़े होते भी हैं, उनसे जितना सद्ज्ञान मिलता है, उससे अधिक भ्रान्तियों का अम्बार मिलता है ,जबकि उत्तम पुस्तकों के रूप में हमें उत्कृष्ट मनीषा का सानिध्य सहज उपलब्ध हो जाता है ।

एस० डब्ल्यू० क्लेमेन्स के एक प्रश्न के उत्तर में गाँधीजी ने १९२० में एक बार कहा था कि जिन पुस्तकों ने मेरे जीवन और चिन्तन को रूप दिया वे हैं भगवद्गीता' 'बाइबिल', रस्किन की 'अनटु दिस लास्ट' तथा ताल्सताय की 'द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू' । उनके सचिव महादेव भाई देसाई का कहना है कि "गाँधीजी के जीवन का प्रत्येक क्षण गीता के सन्देश के अनुरूप जीवनयापन का सजग प्रयत्न है ।" गाँधी के सविनय अवज्ञा पर थोरो की कृतियों का प्रभाव रहा है । उन्होंने लिखा है, कि "थोरो की पुस्तक 'वाल्डेन' मैंने पहली बार १९०६ में दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सवर्ग में पढ़ी थोरो ने सविनय अवज्ञा के विचार का आविष्कार एवं व्यवहार दोनों ही किये थे । कान्कर्ड ने मैसासुचेट्स में अमेरिकन सरकार के प्रति अपना विरोध व्यक्त करने के लिए कर देने से इन्कार किया था । जेल भी गये थे । थोरो का निबन्ध पढ़ने के पहले मुझे अपने भारतीय शब्द 'सत्याग्रह' के लिये कोई उपयुक्त अंग्रेजी अनुवाद नहीं मिल सका था । थोरो के विचारों ने भारत में मेरे आन्दोलन को निश्चय ही पर्याप्त प्रभावित किया है ।

रस्किन के "अन टु दिस लास्ट" ने भी गाँधी जी को अभिभूतकर लिया । बाद में उन्होंने "सर्वोदय" नाम से इस कृति का गुजराती अनुवाद भी प्रस्तुत किया । उनकी गहनतम आस्थाएँ इसी पुस्तक को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पढ़ते हुए जागृत हुईं । इसी प्रकार गीता को वे अपना आध्यात्मिक सन्दर्भ ग्रन्थ मानते थे तथा संशय के किसी भी अवसर पर उसी प्रकाश स्रोत ग्रन्थ की शरण जाते एवं मार्ग-दर्शन प्राप्त करते थे । वे उसे अपनी माँ कहते थे ।

जार्ज वाशिंगटन के मन में स्वतन्त्रता की अमर आग पुस्तकों ने ही लगाई थी । रोम्यां रोलाँ के उपन्यास "जा क्रिस्तोफ" ने हजारों लोगों में नई जीवन--दृष्टि जगाई । मेरीस्टो की पुस्तक 'टाम काका की कुटिया" ने अमरीका एवं पाश्चातय जगत में हलचल मचा दी थी तो गोर्की की 'माँ' ने रूस को हिला दिया था ।

हीगेल के दर्शन के अध्ययन ने मार्क्स को अपनी जीवन दृष्टि के निर्धारण के लिए प्रचुर सामग्री दी तथा एडमस्मिथ, डेविड रिकार्डो आदि अर्थ शास्त्रियों की कृतियों ने अर्थशास्त्रीय दृष्टि दी । इस मेधावी सिद्धान्तकार के जीवन में सदैव पुस्तकों का अत्यधिक महत्त्व रहा और जीवन के बहुमूल्य वर्ष उसने गम्भीर अध्ययन में बिताए । लेनिन का रूसी समाजवादी क्रान्ति की प्रेरणा मार्क्सएंगेल्स की प्रभावी रचनाओं से ही मिली । इस प्रकार अमरीका और रूस दोनों के स्वतन्त्रता संग्राम में पुस्तकों की विशेष भूमिका रही। अफ्रीकी देशों में जो जागृति दिखाई पड़ रही है, उसमें भी पुस्तकों की प्रेरणाएँ अन्तर्निहित हैं । केनेथ काउन्डा, जोमो केन्याता, मकारियोस सभी ने किसी प्रत्यक्ष सत्संग से नहीं, प्रेरक पुस्तकों से ही संघर्ष की प्रेरणाएँ पाईं ।

माओत्सेतुंग को मार्क्स की ही नहीं, सनयात सेन की भी पुस्तकों ने प्रभावित किया । होची मिन्ह और चेम्वेवारा मार्क्सवादी साहित्य के अध्येता भी थे और प्रणेता भी ।

भारतीय क्रान्तिकारियों के जीवन में बंकिम के 'आनन्द मठ', शरत् के 'पथेर दावी' और लोकमान्य तिलक के गीता-रहस्य ' की विशिष्ट भूमिका रही है । विवेकानन्द और अरविन्द की कृतियों ने अनेक अभिनव राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों को शक्ति दी, जबकि खुद विवेकानन्द और अरविन्द ने वेद उपनिषद् एवं भारतीय शास्त्रों तथा पाश्चात्य दार्शनिक ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया था ।

दार्शनिक एमर्सन कहा करते थे कि पुस्तकों से प्रेम ईश्वर के राज्य में पहुँचने का विमान है । सिसरो के अनुसार "अच्छी पुस्तकों को घर में संचित संग्रहीत करना घर को देव मन्दिर बनाना है ।"

कैम्पिस ने एक बार अपने साथियों से कहा था-"अपना कोट वेकर भी अच्छी पुस्तकें खरीदो । कोट के बिना जाड़ों में शरीर को कष्ट होगा, किन्तु पुस्तकों के बिना तो आत्मा ही भूखी तड़पती रहेगी ।"

पुश्किन, ताल्सताय, तुर्गनेव, चेखव और गोर्की की पुस्तकों ने जितना रूसी जन-मानस को आन्दोलित स्पन्दित किया है, उससे कुछ कम बाहरी विश्व को नहीं । उपनिषदों का सन्देश दुनिया भर के तत्वान्वेषियों को नई अर्न्तदृष्टि तथा अभिनव चेतना से भरता रहा है । शेक्सपियर का प्रभाव-क्षेत्र इंगलैण्ड की सीमाओं से हजार गुना अधिक है । कालीदास की रचनाएँ अमरीकी, रूसी, जर्मन, फ्रेंच, ब्रिटिश, जापनी, एशियाई, अफ्रीकी साहित्यनुरागियों को समान रूप से आकर्षित करती हैं । पातञ्जलि के योगसूत्रों का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव विश्वभर की योगाभ्यास प्रकियाओं में देखा जाता है । जिन्होने गाँधी को नहीं देखा, ऐसे एशियाई, अफ्रीकी, यूरोपीय अनेक जन-नेताओं को गाँधी की पुस्तकें ही नई रणनीति एवं राजनीति का मार्ग दिखा रहीं हैं, फिर वे स्व० मार्टिन लूथर किंग हों या चेकोस्लोवाकिया के विद्रोही ।

मानवीय प्रगति के प्रमुख आधारों में स्वाध्याय का विशिष्ट महत्त्व है । स्वाध्याय का अर्थ है सद्ग्रन्थों का अध्ययन मनन । मनोरंजन मात्र के लिऐ पढ़ी जाने वाली पुस्तकें आस्था के आधार नहीं प्रस्तुत कर पातीं । ज्ञान की जिज्ञासा का समाधान एवं तृप्ति प्रदान करने वाली पुस्तकों को पढ़ना उन पर सोचना, मनन करना ही जीवन प्रगति का आधार बनता है । ऐसी पुस्तकें व्यक्ति की पथ-प्रदर्शक गुरु बनती हैं और उनके भीतर निहित क्षमताओं को उभार कर उन्हें विकसित व्यक्तित्व का स्वामी बनाती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्तम पुस्तकें जीवंत देवता हैं, उनकी नियमित उपासना करें

ज्ञान की वृद्धि के लिये ज्ञानोपासना के लिए पुस्तकों का अध्ययन एक महत्त्वपूर्ण आधार है । मानव-जाति द्वारा संचित समस्त ज्ञान पुस्तकों में संचित है । खासकर जब से लिखने और छापने का प्रचार हुआ तब से मानव द्वारा उपलब्ध ज्ञान लिपिबद्ध करके संचित किया जाने लगा । इसलिए उत्तम पुस्तकों का अध्ययन करना व्यक्ति के लिये बहुत ही आवश्यक होता है । अच्छी पुस्तकें एक विकसित मास्तिष्क का 'ग्राफ' होती हैं । मिल्टन ने कहा है "अच्छी पुस्तक एक महान् आत्मा का जीवन रक्त है ।" क्योंकि उसमें जीवन का विचारसार सन्निहित होता है । व्यक्ति मर जाते हैं, लेकिन ग्रन्थों में उनकी आत्मा का निवास होता है । ग्रन्थ सजीव होते हैं । इसीलिये लिटन ने कहा है "ग्रन्थों में आत्मा होती है । सद्ग्रन्थों का कभी नाश नहीं होता ।"

विकासशील जीवन के लिए पुस्तकों का साथ होना आवश्यक है, अनिवार्य है, क्योंकि पुस्तकों में ही जीवन का मार्ग-दर्शन प्रकाश स्रोत मिलता है । वस्तुतः संसार के सभी भीषण सागर में डूबते-उतराते मनुष्यों के लिये पुस्तकें उस प्रकाश स्तम्भ की तरह सहायक होती हैं, जैसे समुद्र में चलने वाले जहाजों को मार्ग दिखाने वाले प्रकाशगृह ।

सिसरो ने कहा है "ग्रन्थ रहित कमरा आत्मा रहित देह के समान है ।" तात्पर्य यह है कि उत्तम पुस्तकें नहीं होने से मनुष्य ज्ञान से वञ्चित रह जाता है और ज्ञान रहित जीवन मुर्दे के समान व्यर्थ होता है । जो व्यक्ति दिन-रात अच्छी पुस्तकों का सम्पर्क प्राप्त करते हैं उनमें मानवीय चेतना ज्ञान प्रकाश से दीप्त होकर जगमगा उठती है । ज्ञान का अभाव भी एक तरह की मृत्यु है ।

उत्तम पुस्तकों में उत्तम विचार होते हैं । उत्तम विचार उदात्त भावनायें, भव्य कल्पनायें जहाँ हैं, वहीं स्वर्ग है । लोकमान्य तिलक ने कहा है "मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि जहाँ ये रहेंगी, वहाँ अपने-अपने आप ही स्वर्ग बन जायगा ।" स्वर्ग का दृश्य-अस्तित्व कहीं नहीं है । मनुष्य की उत्कृष्ट मनःस्थिति जो उत्तम विचारों का फल है, वहीं स्वर्ग है । उत्तम पुस्तकों का सान्निध्य मनुष्य की बुद्धि को जहाँ भी मिलता है, वहीं उसे स्वर्गीय अनुभूति होने लगती है ।

सच्चे, निःस्वार्थी आत्मीय मित्र मिलना कठिन है । हममें से बहुतों को इस सम्बन्ध में निराश ही होना पड़ता है, लेकिन अच्छी पुस्तकें सहज ही हमारी सच्ची मित्र बन जाती हैं । वे हमें सही रास्ता दिखाती हैं ।जीवन पथ पर आगे बढ़ने में हमारा साथ देती हैं । महात्मा गाँधी ने कहा है "अच्छी पुस्तकें पास होने पर हमें भले मित्रों की कमी नहीं खटकती, वरन्, मैं जितना पुस्तकों का अध्ययन करता हूँ, उतनी ही वे मुझे उपयोगी मित्र मालूम होती है ।"

मानव-जीवन में संसार का ज्ञान असंख्यों और अनेकताओं से भरा पड़ा है । मनुष्य का अपना मानस ही इतने अधिक विचारों से भरा रहता है कि क्षण-क्षण नई लहरें उत्पन्न होतीं रहतीं हैं । इन अनेकताओं का परिणाम होता है-मनुष्य के अन्तर–बाह्य जीवन में अनेक संघर्ष । विचार संग्राम में पुस्तकें ही मनुष्य के लिये प्रभावशाली शस्त्र सिद्ध होती हैं । एक व्यक्ति का ज्ञान सीमित एकांकी हो सकता है, लेकिन उत्तम पुस्तकों के स्वाध्याय से मनुष्य अपने आपका सही-सही समाधान ढूढ़ सकता है । खासकर विचारों के संघर्ष में पुस्तकें ही सहायक सिद्ध होती हैं ।

पुस्तकें मन को एकाग्र और संयमित करने का सबसे सरल साधन है । अध्ययन करते-करते मनुष्य जीवन में समाधि अवस्था को प्राप्त कर सकता है । एक बार लोकमान्य तिलक का आपरेशन होना था । इसके लिये उन्हें क्लोरोफार्म सुंघाकर बेहोश करना था, लेकिन इसके लिए उन्होंने डाक्टर को मना कर दिया और कहा 'मुझे एक गीता की पुस्तक ला दो, मैं उसे पढ़ता रहूँगा और आपरेशन कर लेना । पुस्तक लाई गई । लोकमान्य उसके अध्ययन में ऐसे लीन हुए कि डाक्टरों ने आपरेशन किया तब तक वे तनिक हिले भी नहीं न कोई दुःख ही महसूस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया । पुस्तकों के अध्ययन में ऐसे तल्लीनता प्राप्त हो जाती है जो लम्बी योगसाधनाओं से भी प्राप्त नहीं होती है ।

पुस्तकों के अध्ययन के समय मनुष्य की गति एक सूक्ष्म विचार लोक में होने लगती है। दृश्य जगत, शरीर यहाँ के कई व्यापार हो-हुल्लड़ भी मनुष्य उस समय भूल जाता है । सूक्ष्म विचार लोक में भ्रमण करने का यह अनिर्वचनीय आनन्द योगियों की समाधि-अवस्था के आनन्द जैसे ही होता है । इस स्थिति में मनुष्य-दृश्य जगत से उठकर अदृश्य संसार में, सूक्ष्म लोक में विवरण करने लगता है और वहाँ कई दिव्य चेतन विचारों का मानसिक स्पर्श प्राप्त करता है। यह ठीक उसी तरह है जैसे योगी दिव्य चेतना का सान्निध्य प्राप्त करता है ध्यानावस्था में । पुस्तकों का अध्ययन ऐसा साधन है, जिससे मनुष्य अपने अन्तःब्रह्म-जीवन का पर्याप्त विकास कर सकता है ।

मनोविकारों से परेशान, दुःखी चिन्तित मनुष्य के लिए उसके दुख-दर्द के समय उत्तम पुस्तकें अमृत हैं, जिनका सान्निध्य प्राप्त कर वह अपना उस समय दुःख-दर्द, क्लेश सब कुछ भूल जाता है । अच्छी पुस्तकें मनुष्य को धैर्य, शान्ति, सान्त्वना प्रदान करती हैं। किसी ने कहा है 'सरस पुस्तकों से रोग पीड़ित व्यक्ति को बड़ी शान्ति मिलती है । जैसे स्नेहमयी जननी की मीठी-मीठी थपकियाँ बचनों को मीठी नींद में सुला देती हैं वैसे ही मन या शरीर की पीड़ा को शान्त करने के लिए उत्तम पुस्तकों का अवलम्बन लेना सुखकर होता है ।

उत्तम पुस्तकें, आदर्श-ग्रन्थ बहुत बड़ी सम्पत्ति हैं । अपनी सन्तति के लिए उत्तराधिकार में छोड़ने के लिए सर्वोपरि मूल्यवान् वस्तु है संसार में । जो अभिभावक अपनी सन्तान के लिये धन वस्त्र, सुख, आमोद-प्रमोद के साधन न छोड़कर उत्तम पुस्तकों का संग्रह छोड़ जाते हैं, बहुत बड़ी सम्पत्ति छोड़ते हैं । क्योंकि उत्तम-उत्तम ग्रन्थों का अध्ययन करके मनुष्य, ऋषि, देवता महात्मा, महापुरुष बन सकता है । जिन परिवारों में ज्ञानार्जन का क्रम पीढ़ियो से चलता रहता है, उनमें से पण्डित, ज्ञानी, विद्वान अवश्य निकलकर आते हैं । जहाँ उत्तम पुस्तकें होती हैं । वहाँ मानों देवता निवास करते हैं । वह स्थान मन्दिर है, जहाँ पुस्तकों के रूप में मूक किन्तु ज्ञान के चेतनायुक्त देवता निवास करते हैं । वे माता-पिता धन्य हैं जो अपनी सन्तान के लिये उत्तम पुस्तकों का एक संग्रह छोड़ जाते हैं, क्योंकि धन, सम्पत्ति, साधन सामग्री तो एक दिन नष्ट होकर मनुष्य को अपने भार से डुबो भी सकती हैं, किन्तु उत्तम पुस्तकों के सहारे मनुष्य भवसागर की भयंकर लहरों में भी सरलता से तैरकर उसे पार कर सकता है ।

जीवन में अन्य सामग्री की तरह हमें उत्तम पुस्तकों का संग्रह करना चाहिये । जीवन के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने वाले, विविध विषयों के उत्तम ग्रन्थ खरीदने के लिए खर्च के बजट में सुविधानुसार आवश्यक राशि रखनी चाहिये। कपड़े, भोजन, मकान की तरह ही हमें पुस्तकों के लिये भी आवश्यक खर्च की तरह ध्यान रखना चाहिये । स्मरण रखिये उत्तम पुस्तकों के लिये खर्च किया जाने वाला पैसा उसी प्रकार व्यर्थ नहीं जाता जिस तरह अन्धेरे बियावान जंगल में प्रकाश के लिये खर्च किया जाने वाला धन ।

एक बात और ध्यान में रखनी चाहिये । वह यह कि पुस्तकें कमरे को सजाने के लिये अथवा प्रदर्शनी लगाने के लिये न खरीदी जायें वरन् उनका नियमित अध्ययन जीवन के अन्य कार्यक्रमों की तरह ही आवश्यक अंक बना लेना चाहिये । उनसे अधिकाधिक लोगों को ज्ञान मिले, अध्ययन की प्रेरणा मिले ऐसी सुविधा जुटाते रहना चाहिये । पुस्तकों की उपयोगिता अध्ययन से ही है, अन्यथा वे कीड़ों का भोजन बनने के सिवा कुछ नहीं रहतीं । नई पुस्तकें खरीदना उनका अध्ययन करना उनको अधिकाधिक उपयोग में लाना ही पुस्तकों की सच्ची कद्र करना है ।

स्मरण रखिये पुस्तकें जीवन देवता हैं । उनके अध्ययन, मनन, चिन्तन के द्वारा पूजा करने पर तत्काल ही वरदान पाया जा सकता है । हमें नियमित रूप से सद्ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये । उत्तम पुस्तकों का स्वाध्याय जीवन का आवश्यक कर्त्तव्य बना लेना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुस्तकालयों का जाल बिछा दिया जाये-

स्वाध्याय की महिमा अतुल है, जिसने पढ़ने का महत्त्व जान लिया, उसने सौभाग्य का द्वार पा लिया। जिसने विचार की आवश्यकता अनुभव करली, उसने विकास का आधा पथ पार कर लिया, यह जानना चाहिए । "स्वाध्याय से बढ़कर आनन्द कुछ नहीं" (गाँधीजी) और "मुझे नरक में भेज दो वहाँ भी स्वर्ग बना दूँगा, यदि मेरे पास पुस्तकें हों" (लोकमान्य तिलक)--इन दोनों मूर्धन्य महापुरुषों ने ज्ञान की महत्ता उपरोक्त शब्दों में गाई है ।

डनफर्मलाइन (स्काटलैण्ड) में एक बालक जन्मा । उसकी माँ केक बनाती थी और एक छोटी-सी कोठरी में बैठकर उन्हें बेचा करती थी । पिता फेरी लगाता था, शाम को उतने पैसे मिल जाते थे, जितने से तीनों प्राणी पेट भर लेते थे और आधे फटे कपड़े पहन लेते थे । गरीबी से दुःखी लड़का एक दिन घर से भाग गया और अमेरिका पहुँचकर एक इस्पात कम्पनी में चपरासी हो गया । काम उतना था नहीं, इसलिये अपने साहब की अलमारी से कोई किताब निकाल लेता और पढ़ने लगता और कर्मचारी आते और उसे बातचीत में लगाना चाहते, पर वह उन्हें किसी न किसी बहाने से टरका देता और फिर अपने पढ़ने में लग जाता । वह इतनी तल्लीनता से पढ़ता कि पुस्तक की अधिकांश बातें एक पाठन में ही याद हो जातीं ।

एक दिन एक मीटिंग थी । कोई प्रश्न आ पड़ा उसे मैनेजिंग डाइरेक्टर भी सुलझाने में असमर्थता अनुभव कर रहे थे । वह लड़का पास ही खड़ा था, उसने एक किताब उठाई बीच में से शीघ्रता से एक पृष्ठ खोलकर डाइरेक्टर के आगे बढ़ा दिया । यही वह उत्तर था, जिसकी खोज हो रही थी । बालक की इस असाधारण प्रतिभा से सब हक्के-बक्के रह गये । वह बालक अपनी बुद्धि से उस उद्योग की तमाम तकनीक सीख गया और एक दिन करोड़पति होकर एन्डरू कार्नेगी के नाम से विख्यात हुआ । वह श्रेय, जिसने उसे जमीन से उठाकर आसमान पर पहुँचा दिया, उसकी स्वाध्याय बुद्धि को ही दिया जा सकता है ।

एक और वैसा ही निर्धन बालक दक्षिण भारत में भी हुआ है, जिसे अपनी स्वाध्याय की आकाक्षा को तृप्त करने के लिये सड़कों में जलने वाली बत्तियों के नीचे पढ़ना पड़ता था । किताबें खरीदने के लिये पैसे नहीं होते थे, इसलिए वह भी पुस्तकालय की शरण लेता था । इस तरह उसने ज्ञान वृद्धि की साधना सतत् जारी रखी और एक दिन उसकी बौद्धिक प्रतिभा इस योग्य हुई कि ब्रिटिश सरकार ने उसे मद्रास हाईकोर्ट का न्यायाधीश नियुक्त किया । वह बालक --सर टी० एस० मुत्तुस्वामी अय्यर पहले भारतीय थे, जिनको इस तरह का महत्त्वपूर्ण पद प्रदान किया गया ।

ज्ञानार्जन के इस लाभ को जिसने भी समझा, वह गई गुजरी स्थिति से निकलकर उससे कुछ हो गया । ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं, जिनसे पुस्तकालयों की उपयोगिता का पता चलता है । सम्पन्न घरों के लोगों को तो पुस्तकों की कोई कमी नहीं रहती, पर एक साधारण नागरिक को जिसे ज्ञान वृद्धि और व्यक्तित्व के विकास की इच्छा होती है, उनके लिए पुस्तकालय ही उपयोगी माध्यम हैं । उनसे हजारों व्यक्ति सम्पन्न परिवार की तरह अपनी ज्ञानार्जन पिपासा शान्त कर लेते हैं और इस तरह समाज के सैकड़ों लोग-जो विचार और बौद्धिक क्षमता के अभाव में आगे बढ़ने से रह जाते हैं, अपनी उन्नति के लिये भी मार्ग खोल लेते हैं।

इस तथ्य को कनाडा ने अनुभव किया । कनाडा तब निर्धन देश था, जिन दिनों की बात कह रहे हैं । अभी पौने दो-सौ वर्ष ही हुए होंगे, वहाँ शिक्षा की बड़ी कमी थी । सरकार ने बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर दी पर जो शेष नागरिक थे, क्या उन्हें इसी स्थिति पर पड़ा रहने दिया जाए, यह एक गम्भीर समस्या थी । उधर उद्योगों के लिए भी कुछ शिक्षित लोगों की आवश्यकता अनुभव की गई । वहाँ के नेताओं ने परस्पर विचार किया और सारे देश में पुस्तकालयों का जाल बिछा दिया। जो बालक पढ़ रहे थे, उन्हें बीच में पढ़ाई छुड़ाकर धन्धों में लगा दिया जाता था, इस बीच वे पुस्तकालयों में जाकर ज्ञानार्जन करते रहते थे, क्रम न टूटने पाता था । कुछ वर्ष बाद उन्हें फिर से विशेष हाईस्कूलों में शिक्षा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दी जाती थी । वयस्क हो जाने पर फिर उन्हें पुस्तकालयों में पढ़ने के लिए पुस्तकें दी जाती थीं। अधिक से अधिक सेवा के लिए वहाँ लाइब्रेरियनों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था बनाई गई । कुशल पुस्तकालयाध्यक्षों के मार्ग-दर्शन में लोगों को अपने व्यक्तित्व के विकास का समुचित अवसर मिला और कनाडा देखते ही देखते दुनियाँ के समृद्ध और विकसित देशों की पंक्ति में जा खड़ा हुआ ।

प्रसिद्ध विद्वान डा० एस० आर० रंगनाथन ने एक बार जापान की यात्रा की । ओसाका में उन्होंने एक स्थान पर बाहर कतार में खड़े लोगों को पुस्तकें पढ़ते देखा । पढ़ने वालों की अधिक संख्या देखकर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ, उन्होंने वहाँ जाकर पता लगाया तो मालूम हुआ कि यह एक पुस्तकालय है, जहाँ प्रतिदिन लोग भारी संख्या में पुस्तकें पढ़ने आते हैं। पूछने पर पुस्तकालय के अध्यक्ष ने बताया कि यह पुस्तकालय ३० वर्ष पहले बना था । तब थोड़े से आदमियों के आने का अनुमान था, इसलिए उतने ही स्थान की व्यवस्था की गई थी । अब लोग बहुत अधिक आते हैं, इसलिए सीट रिजर्व कर दी गई है। जिनका नम्बर नहीं आता वे लोग अपनी अध्ययन की आकांक्षा को तृप्त करने के लिए बाहर खड़े होकर पढ़ते हैं ! हम इस कमी को दूर करने के प्रयत्न में हैं ।

जापानी लोगों की इस स्वाध्याय वृत्ति से वहाँ के जीवन में क्या कोई क्रांति हुई ? इस प्रश्न पर विचार करें तो मालूम होगा कि जापान ने इतनी अधिक उन्नति करली है कि वह एशिया के विकसित देशों में अपना प्रथम स्थान रखता है ।

धन कमाना कोई बड़ी बात नहीं है। पढ़े-लिखे और विचारवान् व्यक्तियों के लिए तो वह सबसे छोटी समस्या है । ज्ञान का उद्देश्य व्यक्तिगत जीवन में, शांति और सामाजिक जीवन में सभ्यता और व्यवस्था लाना है, वह भी शिक्षा और ज्ञान के अभाव में पूरा नहीं हो सकता । इसलिए पढ़ना सब दृष्टि से आवश्यक है। पुस्तकालय एक ऐसी व्यवस्था है, जहाँ औसत नागरिक भी अधिकतम ज्ञान और विचार अर्जित कर सकता है ।

पुस्तकालय समाज की अनिवार्य आवश्यकता है । मनुष्य को भोजन कपड़े और आवास की व्यवस्था हो जाती है तो वह जिन्दा रह जाता है, शेष उन्नति तो वह उसके बाद सोचता है। समाज यदि विचारशील है तो वह शांति और सुव्यवस्था की अन्य आवश्यकताएँ बाद में भी पूरी कर सकता है, इसलिए पुस्तकालय समाज की पहली आवश्यकता है, किन्तु इतना ही काफी नहीं है कि एक स्थान पर पुस्तकें जमा कर दी जायें, उनके विषय चाहे जो कुछ हों।

गन्दे और दूषित विचार देने वाली पुस्तकों से तो अनपढ़ अच्छा जो बुराई करता है, पर बढ़ाता नहीं । जितनी बुराइयाँ बन चुकी हैं, उन्हीं तक सीमित रह जाता है । यथार्थ की आवश्यकता की पूर्ति उन पुस्तकों से होती है, जो प्रगतिशील विचार दे सकती हैं, जो समस्याएँ हल कर सकती हैं, जो नैतिक और सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक, सामाजिक और विश्वबन्धुत्व की प्रेरणायें और शिक्षायें भी दे सकती हैं ।

एक बार इंगलैण्ड में भी ऐसी ही क्रांति उठी थी । वहाँ भी जनता के लिए स्थान-स्थान पर पुस्तकालय स्थापित किये गये । काफी समय तक इसमें अधिक कोई दिलचस्पी न ली गई, पर द्वितीय विश्वयुद्ध के समय शासनाध्यक्षों ने पाया कि चारित्रिक और नैतिक दृष्टि से इंगलैण्ड का स्तर बहुत नीचे गिर गया है । उसके कारणों की विस्तृत खोज-बीन की गई तो यह पाया गया कि वे पुस्तकालय ही इसके कारण हैं, जिन्हें जनता के बौद्धिक विकास के लिए स्थापित किया गया था । हुआ यह कि वहाँ के अधिकांश युवकों ने उपन्यास और कोमोत्तेजक साहित्य में ही ज्यादा रुचि ली । सृजनात्मक साहित्य उपेक्षित पड़ा रहा । जैसे विचार लोगों ने पढ़े, वैसी ही मनोवृत्ति बनती गई ।

अब वहाँ एक योजना बनाई गई । पुस्तकालयाध्यक्ष प्रशिक्षित किये गये और उन्हें बताया गया कि यदि कोई स्त्री पुस्तक लेने आती है तो पहले यह पूछो कि उसकी समस्यायें क्या हैं ? उदाहरणार्थ यदि वह कम शिक्षित है तो उसे हल्की-फुल्की साहस और नैतिकता की पुस्तकें पढ़ने को दो और यह भी कहो कि वह यह कहानियाँ बच्चों को भी सुनाया करे । इसी प्रकार यदि कोई शिक्षित स्त्री है तो उसे बाल-समस्या, बाल-कल्याण, परिवार मनोविज्ञान की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुस्तकें दो। इस योजनाबद्ध तरीके से वहाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नये-नये अनुसन्धान प्रारम्भ हुए। अंग्रेजी साहित्य ही आज एकमात्र ऐसा साहित्य है, जिसमें मनुष्य जीवन के किसी भी पहलू पर विचार और शोध, जानकारियाँ मिल सकती हैं, यह उसी योजनाबद्ध 'पुस्तकें पढ़ाओ' अभियान का चमत्कार है। वहाँ ८० प्रतिशत से भी अधिक लोग पुस्तकालयों का लाभ उठाते हैं। जहाँ पुस्तकें नहीं हैं, वहाँ भी चल-पुस्तकालयों द्वारा पुस्तकें पहुँचाई जाती हैं ।

इससे लोगों की सुख-समृद्धि का द्वार खुल गया। बैकवेल नामक एक गाँव के एक युवक ने पुस्तकालय में उपलब्ध 'इलैक्ट्रानिक्स' की तमाम पुस्तकें पढ़ी, वह बेरोजगार था । इन पुस्तकों के सहारे वह रेडियो बनाना सीख गया, यही नहीं रेडियो इन्जीनियरों की भी बहुत-सी तकनीकें उसने सीखीं। इंगलैण्ड का औसत नागरिक विश्व समस्याओं, परिस्थितियों और ज्ञान-विज्ञान से लेकर छोटे-छोटे उद्योगों तक की इतनी जानकारी रखता है, जितनी भारतवर्ष का एम० ए० उत्तीर्ण छात्र भी नहीं जानता होगा, यह सब उनकी स्वाध्याय वृत्ति का ही प्रतिफल है ।

यह छोटे उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि मस्तिष्क को संस्कारवान् और ज्ञान से परिपूर्ण कर लेने पर मनुष्य व्यक्तिगत उन्नति ही नहीं, सामाजिक और राष्ट्रीय समृद्धि का भी पुस्तकालयों का जाल बिछाने की आवश्यकता अनुभव हो रही है । यदि कुछ विचारवान् व्यक्ति अथवा राजनैतिक नेता इसे एक अभियान का स्वरूप प्रदान कर दें तो देश देखते-देखते धरती से आकाश में पहुँच सकता है ।

अपने रहने की दुनियाँ आप बनाएँ

जिस दुनियाँ में हम रहते हैं उसमें श्रेष्ठता प्रयत्नपूर्वक तलाश करनी पड़ी है । निकृष्टता के तो हर दिशा में पहाड़ दिखाई देंगे । नैतिक, पराभव और पतन की परिस्थितियाँ मक्खी-मच्छरों की तरह उपजती, बढ़ती रहती हैं, पर उपयोगी प्राणियों को तो प्रसन्नपूर्वक ढूँढ़ना और पालना पड़ता है । ओछापन, ओछी परिस्थितियों की ओर आकर्षित होता है । सुसंस्कृत मनुष्य सदा अल्पमत में रहे हैं, फिर श्रेष्ठता का प्रभाव क्षेत्र भी उतना विस्तृत नहीं होता जितना निकृष्टता का पानी नीचे की ओर बहता है और मनुष्य की पशु-प्रवृत्तियाँ उसे नीचे की ओर धकेलती ही नहीं, पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की तरह अपनी ओर घसीटती भी हैं । सामान्य बुद्धि को सांसारिक विकृतियाँ ही प्रभावित करती हैं ।

संकीर्ण स्वार्थपरता का इन दिनों दौर-दौरा है। आदर्शों की ओर कदम बढ़ाने की अपेक्षा लोग निकृष्ट क्रिया कृत्यों की ही बात सोचते हैं । उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने की अपेक्षा लोगों को तात्कालिक लाभ कमाने में अधिक रुचि है भले ही उसके लिए अनीति का मार्ग ही क्यों न अपनाना पड़ता हो । परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि धूर्तों में से कितने ही सफल और सुसम्पन्न भी दीखते हैं । अस्तु सहज ही सामान्य बुद्धि का रुझान नीतिमत्ता की दूरदर्शिता अपनाने की अपेक्षा किसी भी उपाय से तुरन्त लाभान्वित होने की ओर ही होता है । दृष्टि पसार कर हम अपने चारों ओर ऐसा ही वातावरण छाया देखते हैं । उसका प्रभाव भी पड़ता है। बहुमत का अनुकरण मनुष्य की एक ऐसी ही दुर्बलता है जिसे कठिनाई से ही रोकना और बदलना सम्भव हो पाता है ।

श्रेष्ठता की दिशा में चलना हो, यदि उत्कृष्टता और आदर्शवादिता को लक्ष्य बनाना हो तो भी उसके लिए प्रेरक वातावरण बनाना पड़ेगा । ऐसा परिकर जहाँ हो, वहाँ रहने का भी प्रभाव पड़ता है । श्रेष्ठ व्यक्तियों का निकटवर्ती वातावरण सम्पर्क में आने वालों को प्रभावित करता है और उसकी गतिविधियों में उपयोगी परिवर्तन प्रस्तुत करता है । पर ऐसा वातावरण हर जगह, हर किसी के लिए कहाँ उपलब्ध होता है ? फिर उसमें रह सकने की परिस्थितियाँ कितनों को उपलब्ध होती हैं । जन-साधारण को तो आजीविका उपार्जन एवं परिवार पोषण के क्रिया-कृत्यों में ही व्यस्त रहना पड़ता है । दो-चार दिन कहीं चले भी जाय तो उतने भर से काम भी क्या बनेगा ? अधिक दिन सत्संग का लाभ लेने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए जा सकना आर्थिक तथा दूसरे कारणों से कहाँ बन पाता है ।

ऐसी दशा में श्रेष्ठता की दशा में अग्रसर कर सकने वाला प्रभावोत्पादक वातावरण अपने आप ही बनाना पढ़ता है । मस्तिष्क पर छाया छोड़ने वाला एक ऐसा समानान्तर संसार विनिर्मित करना होता है जो स्वार्थ संलग्न दुनिया के प्रभाव को निरस्त कर सके । यह निर्माण प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष ही हो सकता है। स्वाध्याय और चिन्तन के सहारे यह निर्माण खड़ा किया जा सकता है । अपनी रुचि के भविष्य का मार्ग-दर्शन कर सकने वाले जीवन चरित्रों का संग्रह करना चाहिए । उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए और उनमें जो प्रेरक प्रसंग हों, अपनी वर्तमान परिस्थितियाँ कार्यान्वित हो सकने योग्य हों, उन्हें अलग से नोट कर लेना चाहिए । जब भी अवकाश मिले उन प्रसंगों के कल्पना चित्र मस्तिष्क में एक सुनयोजित फिल्म की तरह प्रस्तुत करने चाहिये । श्रेष्ठ मार्ग पर चलते हुए समुन्नत स्थिति तक पहुँचे हुए महामानवों की जीवनियाँ, गतिविधियाँ, नीतियाँ यदि अपने कल्पना लोक में दृढ़तापूर्वक जड़े जमा सकें और अनायास ही स्मरण आती रहें तो समझना चाहिए कि बाहरी दुनिया के पतनोन्मुख प्रभाव को निरस्त कर सकने वाला स्वनिर्मित वातावरण बनकर तैयार हो गया ।

अपनी मानसिक दुर्बलताएँ अभ्यस्त आदतें, विकृत अभिरुचियाँ निकृष्टता की ओर खींचती हैं । कुटुम्बियों के स्वार्थ, मित्रों के दबाव तथा चाल लोक-प्रवाह अपनी संयुक्त शक्ति से सामान्य मनुष्य को वैसी ही गतिविधियाँ अपनाने के लिए प्रेरित करती हैं जैसी कि दुनियादारों ने अपना रखी है । श्रेष्ठता की प्रेरणा भर देने वाले और उत्कृष्टता की ओर बढ़ चलने का मार्ग-दर्शन करने वाले प्रेरक प्रसंगों को तो इतिहास के पृष्ठों पर ही खोजा जा सकता है । आज भी वैसे जो लोग हैं, उनके साथ मानिसिक सम्बन्ध ही बनाया जा सकता है । न तो अपने लिए उनके ही पास निरन्तर रहना सम्भव है और न वे ही अपना निवास अपने पड़ौस में बना सकते हैं । व्यावहारिक मार्ग एक ही है कि अपनी एक भावनात्मक दुनिया अलग ही बसाई जाय जिसमें श्रेष्ठ महामानवों को ही निवास करने के लिए आमन्त्रित किया जाय । उसमें प्रेरणाप्रद घटनाओं की हलचलें ही दृष्टिगोचर होती रहें, भले ही वे आज की न होकर भूतकाल में ही घटित क्यों न हुई हों । यही बात परामर्श के सम्बन्ध में भी है । श्रेष्ठ सज्जनों से वार्त्तालाप कर सकना उनके साहित्य व्दारा बड़ी सरलतापूर्वक सम्भव हो सकता है । जीवित लोगों से परामर्श के लिये उनके पास जाने और उन्हें अवकाश होने न होने की भी कठिनाई आती है, पर स्वाध्याय के माध्यम से तो यह सुविधा हर घड़ी उपलब्ध हो सकती है । जिस भी महामानव से कुछ पूछताछ करनी हो उसके साहित्य में से अपने काम के ढूँढने और पढ़ने का कार्य कठिन नहीं सरल है। वह हअपनी सुविधा के समय कभी भी किया जा सकता है ।

प्रस्तुत समस्याओं का समाधान और प्रगति-पथ पर अग्रसर होने का पथ-प्रदर्शन कर सकने वाली पुस्तकें खरीदने के लिए कुछ बजट नियत रखना चाहिए । शरीर और परिवार पर ढेरों समय और धन खर्च किया जाता है । यदि मन और अन्तःकरण का मूल्य महत्त्व समझा जा सके तो उनके परिपोषण पर कुछ खर्च करते रहना भी आवश्यक प्रतीत होगा । अनुपयोगी समझी जाने वाली बातों की उपेक्षा करनी पड़ती है और उन्हीं के लिए पैसे तथा समय की कमी का बहाना खोजना पड़ता है । महत्त्वपूर्ण समझे जाने वाली आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तो प्राथमिकता एवं प्रमुखता ही मिलती है । यदि बौद्धिक एवं भावना क्षेत्र का महत्त्व समझा जा सके और उसके परिष्कृत होने पर मिलने वाले लाभों की कल्पना की जा सके तो निश्चय ही उस प्रयोजन के लिए नियमित रूप से कुछ धन और समय लगाते रहने में तनिक भी कठिनाई प्रतीत न होगी । स्वास्थ्य को आहार के समतुल्य ही महत्त्वपूर्ण समझा जाना चाहिए ।

ऐसा सत्साहित्य समीपवर्ती पुस्तकालयों में भी मिल सकता है । थोड़ी मासिक फीस देते रहने पर उसकी सुविधा हो सकती है । सही रूप में वापिस लैटाने का विश्वास दिलाया जा सके तो अन्य उदार स्वाध्यायशील व्यक्ति भी अपनी पुस्तकें पढ़ने को दे सकते हैं । सरसरी नजर से पढ़ने और पुस्तकें एक ओर पटकते जाने से बहुपठित होने का दावा तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया जा सकता है, पर वह लाभ नहीं मिल सकता जो स्वाध्यायशीलों को मिला करता है । आवश्यक है कि प्रेरक प्रसंगों और सन्दर्भों की नोट बुक बनाकर रखी जाय और जो हृदयग्राही लगा हो उसे उसमें नोट करते चला जाय। यह संकलन निश्चय ही समुद्र मन्थन के फलस्वरूप निकले हुए रत्नों की तरह बहुमूल्य होगा । इस संग्रह को अवकाश के समय बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय और यह सोचा जाये कि इन प्रसंगों के अनुरूप कदम बढ़ सकना किस प्रकार सम्भव हो सकता है । सद्विचारों को व्यवहार में उतारने में क्या कठिनाई पड़ेगी और उसका किस सीमा तक निराकरण सम्भव हो सकता है ।

स्वाध्याय से मार्ग-दर्शन मिलता है । घटनाएँ सामने आती हैं और परामर्श मिलते हैं, पर बात इतने भर से ही नहीं बन जाती। सोचना यह भी होगा कि प्रगति पथ पर चलना आज की स्थिति में कितना और किस प्रकार सुलभ हो सकता है । योजना तो हर काम की बनानी पड़ती है । उसके बिना तो छुट-पुट दैनिक कार्य भी नहीं हो पाते । कृषि-व्यापार आदि में योजनाबद्ध कदम उठाते हैं । सरकारें तो योजना निर्माण विभाग पर ढेरों साधन खर्च करती हैं । जीवन विकास की प्रकिया भी अनायास ही नहीं बन जाती और इस दिशा की प्रगति जादू की छड़ी घुमाने भर से सम्भव नहीं हो सकती । अनभ्यस्त को अभ्यास में उतारना निश्चय ही एक बड़ी बहादुरी का काम है । ढर्रे को बदलकर नये सिरे से कोई नये आधार खड़े करने में सुदृढ़ संकल्प शक्ति की आवश्यकता पड़ती है । इस परिवर्तन में आने वाली कठिनाइयों की कल्पना करनी पड़ती है और उनके निवारण करने के उपाय खोजने होते हैं, किस क्रम से, क्या कदम कब उठाये जायें और किस तरह लम्बी मंजिल को निश्चय और साहस के साथ पूरा किया जाय, इसकी सुव्यवस्थित रूप-रेखा बनाकर चलने से ही अभीष्ट मनोरथ सिद्ध होता है ।

श्रेष्ठता के मार्ग पर चलने के सत्परिणामों की कल्पना करने से उत्साह बढ़ता है और उस दिशा में उत्कण्ठा प्रबल होती है । मात्र कठिनाई और हानि की बात सोचते रहने से मन छोटा पड़ता है और अचेतन उसे टालने या अस्वीकार करने की भूमिका बना देता है, फलतः सपने ज्यों के त्यों धरे रह जाते हैं । कल्पनाएँ तो उठती हैं, पर ऐसे ही पानी के बुदबुदों की तरह दूसरे ही क्षण समाप्त हो जाती हैं । महामानवों ने आदर्शवादिता को दृढ़तापूर्वक अपनाये रहने पर अन्ततः जिन सत्परिणामों को प्राप्त किया है उन पर विचार करने और अपनी स्थिति भी कभी उन्हीं जैसी हो जाने का कल्पना-चित्र यदि मनःक्षेत्र पर अधिक स्पष्ट रूप से उतारा जा सके तो उससे निश्चय ही उत्साहवर्धक प्रेरणा मिलेगी और उधर कदम उठाने का साहस बढ़ेगा ।

तत्काल थोड़ा सा लाभ उठाने के प्रलोभन में भविष्य को अन्धकारमय बना देने वाले लोगों के वृत्तान्त तो अपने इर्द-गिर्द ही खोजे जा सकते हैं। उनके लिए इतिहास पढ़ने या साहित्य पढ़ने की आवश्यकता नहीं है । कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्होंने जिस-तिस तरह कमाया तो बहुत पर वह दुर्व्यसनों में गँवाते रहे । जो बचा उसे कुपात्रों ने हड़प लिया । इन कुपात्रों में ठग, तस्कर भी हो सकते हैं और तथाकथित प्रियजन भी । उपयोगी वह, जिससे हितसाधन हो सके । अनुदान वह–जिससे सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ सकें । इन कसौटियों पर जो खरा नहीं उतरा वह उपयोग और अनुदान अबुद्धिमत्तापूर्ण ही माना जायेगा । ऐसी ही विडम्बनाओं मे उलझा और नष्ट हुआ जीवन किसी प्रकार सफल कहा जायेगा । ओछा हेय,एवं निकृष्ट जीवन किस प्रकार मौत के दिन पूरे कर लेने में क्या समझदारी रही ? उचित और उपयुक्त यही है कि इस सुर-दुर्लभ अवसर का ऐसा उपयोग किया जाय जिससे आत्म-गौरव बढ़े-अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत हो, लोकश्रद्धा बरसे और ईश्वर की प्रसन्नता का आनन्द मिले । यह सार्थकता श्रेष्ठता के सम्मान पर चलने से ही सम्भव हो सकती है । स्पष्ट है कि ऐसे अवसर उन्ही को मिलते हैं जिनने अपने लिये एक आदर्शवादी प्रेरणाओं से भरा पूरा भावनामय संसार अपने ही हाथों से गढ़ा और खड़ा किया है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्कृष्ट विचारों का सतत् सानिध्य रहे-

सद्विचारों की महत्ता का अनुभव तो हम करते हैं, पर उनकी दृढ़ता नहीं रह पाती । जब कोई अच्छी पुस्तक पढ़ते या सत्संग, प्रवचन सुनते हैं तो इच्छा होती है कि इसी अच्छे मार्ग पर चलें, पर जैसे ही वह प्रसंग पलटा कि दूसरी प्रकार के, पूर्व अभ्यास, विचार पुनः मस्तिष्क पर अधिकार जमा लेते हैं और वही पुराना घिसा--पिटा कार्यक्रम पुनः चलने लगता है । इस प्रकार उत्कृष्ट जीवन बनाने की आकांक्षा एक, कल्पना मात्र बनी रहती है, उनके चरितार्थ होने का अवसर प्रायः आने ही नहीं पाता ।

कारण यह है कि अभ्यस्त विचार बहुत दिनों से मस्तिष्क में अपनी जड़ जमाये हुए हैं, मन उनका अभ्यस्त भी बना हुआ है । शरीर ने एक स्वभाव एवं ढर्रे के रूप में उन्हें अपनाया हुआ है । इस प्रकार उन पुराने विचारों का पूरा आधिपत्य अपने मन और शरीर पर जमा हुआ है । यह आधिपत्य हटे और नये उत्कृष्ट विचार वह स्थान ग्रहण करें तो ही यह सम्भव है कि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और अन्तःकरण चतुष्टय बदलें । जब अन्तःभूमिका बदलेगी, तब उसका प्रकाश बाह्य कार्यक्रमों में दृष्टिगोचर होगा । परिवर्तन का यही तरीका है ।

उच्च विचारों को बहुत थोड़ी देर हमारी मनोभूमि में स्थान मिलता है । जितनी देर सत्संग, स्वाध्याय का अवसर मिलता है उतने थोड़े समय ही तो अच्छे विचार मस्तिष्क में ठहर पाते हैं । इसके बाद वही पुराने कुविचार आँधीः तूफान की तरह आकर उन श्रेष्ठ विचारों की छोटी-सी बदली को उड़ा कर एक ओर भगा देते हैं । निकृष्ट विचारों में तात्कालिक लाभ और आकर्षण स्वभावतः अधिक होता है, चिरकाल से अभ्यास में आते रहने के कारण उनकी जड़ें भी बहुत गहरी हो जाती हैं । इन्हें उखाड़ कर नये श्रेष्ठ विचारों की स्थापना करना सचमुच बड़े अध्यवसाय का काम है ।

किसी घने जंगल में कटीली झाड़ियाँ सारी भूमि को घेरे रहती हैं, गहराई तक अपनी जड़ें जमाये रहती हैं । यदि उस जंगल को कृषि योग्य बनाना हो तो वह झाड़--झंखाड़ काटने की व्यवस्था करनी पड़ती है । फिर भूमि खोदकर जड़े उखाड़नी पड़ती हैं । जोतकर खेत को एक समान करना पड़ता है । खाद और पानी की व्यवस्था जुटानी होती है । इतना प्रबन्ध करने पर ही वह घने जंगल की ऊबड़-खाबड़ भूमि परिपूर्ण अन्न उपजाने वाली कृषि भूमि योग्य बन पाती है । मनोभूमियों को सत्कर्मों की, सद्भावनाओं की हरी-भरी फसल उगने योग्य बनाने के लिए ऐसा ही पुरुषार्थ किया जाना आवश्यक होता है ।

दस-पाँच मिनट कुछ पढ़ने, सुनने या सोचने, चाहने से ही परिष्कृत मनोभूमि का बन जाना और उसके द्वारा सत्कर्मों का प्रवाह बहने लगना कठिन है । इसलिए क्रम-बद्ध, योजना-बद्ध, दीर्घकालीन और सुस्थिर प्रयत्न करना होता है । फैलाया हुआ पानी नीचे की ओर आसानी से बिना प्रयत्न के बहने लगता है, पर यदि उसे ऊपर पहुँचाना हो तो इसके लिये कई उपकरण जुटाने की व्यवस्था की जाती है। बिना विशेष प्रयत्नों के पानी ऊपर नहीं चढ़ सकता है, इसी प्रकार स्वल्प प्रयत्नों से मनोभूमि का परिवर्तन भी सम्भव नहीं और बिना आन्तरिक परिवर्तन के बाह्य जीवन में श्रेष्ठता की स्थापना हो ही कैसे सकती है ?

जैसे विचारों को जितनी तीव्रता और निष्ठा के साथ जितनी अधिक देर मस्तिष्क में निवास करने का अवसर मिलता है, वैसे ही प्रभाव की मनोभूमि में प्रबलता होती चलती है । देर तक स्वार्थपूर्ण विचार मन में रहें और थोड़ी देर सद्विचारों के लिये अवसर मिले, तो वह अधिक देर रहनें वाला प्रभाव कम समय वाले प्रभाव को परास्त कर देगा । इस लिए उत्कृष्ट जीवन की वास्तविक आकांक्षा करने वाले के लिए एक ही मार्ग रह जाता है कि मन में अधिक समय तक अधिक प्रौढ़, अधिक प्रेरणाप्रद उत्कृष्ट कोटि के विचारों को स्थान मिले ।

जिसका बहुमत होता है उसकी जीत होती है । बहती गंगा में यदि थोड़ा मैला पानी पड़ जाय तो उसकी गन्दगी प्रभावशाली न होगी, पर यदि गन्दे नाले में थोड़ा गंगाजल डाला जाय तो उसे पवित्र न बनाया जा सकेगा । इसी प्रकार यदि मन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक समय तक बुरे विचार भरे रहेंगे तो थोड़ी देर, थोड़े से अच्छे विचारों को स्थान देने से भी कितना काम चलेगा ? उचित यही है कि हमारा अधिकांश समय इस प्रकार बीते जिससे उच्च भावनायें ही मनोभूमि में विचरण करती रहें ।

संसार में बुराई इसलिए फैली है कि लोगों के मन में बुरे विचारों का बाहुल्य रहता है । चोर, डाकू, जुआरी, व्यभिचारी, व्यसनी अपने विचारों के पक्के होते हैं । जो उन्हें ठीक जँच गया है, उसी इच्छा की पूर्ति के लिये निरन्तर प्रयत्न करते हैं । निष्ठा के अनुरूप काम करने से भावनान्तर में परिपक्वता आती है और उस परिपक्वता में दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता भरी रहती है ।

शराबी अपने विचारों में पक्का होता है । बदनामी, धनहीनता और स्वास्थ्यनाश की परवाह न करके भी वह शराब पीता है । मन और कर्म की इस एकता से जो दृढ़ता उसमें रहती है उसके फलस्वरूप कई अन्य कमजोर प्रकृति के मनुष्य भी उसके प्रभाव में आकर शराब पीना सीख जाते हैं । चरित्र शिक्षण की यही पद्धति सफल होती है । बुरे स्तर के व्यक्ति अपनी बुराइयों में तन्मय रहकर दूसरे अनेकों को अपना साथी बनाते और बुराई सिखाते हैं ।

बुराई की ही भाँति अच्छाई में भी अपनी शक्ति एवं विशेषता होती है, पर वह प्रभावशाली तभी बनती है, जब मन वचन और कर्म में एकता हो । यदि प्रौढ़ और परिपक्व आचरण के श्रेष्ठ व्यक्ति कभी प्रकाश में आते हैं तो उनसे भी अगणित लोग प्रेरणा प्राप्त करते हैं । गाँधी का प्रभाव अभी पिछले ही दिनों हम लोगों ने आँखों से देखा है । उनकी प्रेरणा से अगणित व्यक्तियों की भावनायें बदलीं और लाखों व्यक्तियों ने हँसते-हँसते भारी बलिदान की जोखिम उठाई ।

अच्छाई इसीलिये पनप नहीं पाती कि उसका शिक्षण करने वाले ऐसे लोग नहीं निकल पाते जो अपनी एक निष्ठा के द्वारा दूसरों की अन्तरात्मा पर अपनी छाप छोड़ सकें । अपने अवगुणों को छिपाने के लिए या सस्ती प्रशंसा प्राप्त करने के लिये धर्म का आडम्बर मात्र ओढ़ लेते हैं । 'पर उपदेश कुशल' बहुत हैं, पर जो आदर्शों को दैनिक जीवन में कार्यान्वित करें ऐसे लोग कम हैं । यही कारण है कि अच्छाई बढ़ नहीं पाती, फैल नहीं पाती । यदि सज्जनता पूर्ण सच्चे व्यक्तित्व प्रकाश में आने लगें तो उनके प्रभाव से अच्छाइयाँ भी तेजी से फैलें । बुराई का स्थान अच्छाई को मिल जाये और युग परिवर्तन की बात कुछ भी कठिन दिखाई न दे ।

उत्कृष्ट एवं प्रौढ़ विचारों को अधिकाधिक समय तक हमारे मस्तिष्क में स्थान मिलता रहे ऐसा प्रबन्ध यदि कर लिया जाय तो कुछ ही दिनों में अपनी इच्छा अभिलाषा और प्रवृत्ति उसी दिशा में ढल जायेगी और बाह्य जीवन में यह सात्विक परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगेगा । विचारों की शक्ति महान् है, उससे हमारा जीवन तो बदलता ही है, संसार का नक्शा भी बदल सकता है ।

कैसा अच्छा होता कि प्राचीनकाल की तरह जीवन के प्रत्येक पहलू पर उत्कृष्ट समाधान प्रस्तुत करने वाले साधु, ब्राह्मण आज भी हमें उपलब्ध रहे होते । वे अपने उज्ज्वल चरित्र, सुलझे हुए मस्तिष्क और परिपक्व ज्ञान द्वारा सच्चा मार्ग दर्शन करा सकते तो कुमार्ग पर ले जाने वाली सभी दुष्प्रवृत्तियाँ शमन होतीं, पर आज उनके दर्शन दुर्लभ हैं । जो देश काल-पात्र की स्थिति का ध्यान रखते हुए आज के बुद्धिवादी एवं संघर्षमय युग के अनुरूप समाधान प्रस्तुत करके जीवन को ऊँचा उठाने वाले व्यावहारिक सुझाव दे सकें, आज ऐसे मनीषी कहाँ हैं ? उनका अभाव इतना अखरता है कि चारों ओर सूना दीखता है । ऋषियों की यह भूमि ऋषि-तत्त्व से रहित हो गई जैसी लगती है ।

दुर्भाग्य एक और भी है कि स्वाध्याय के उपयुक्त साहित्य भी कहीं-कहीं ही दृष्टिगोचर होता है । पुस्तक विक्रेताओ की दुकानें खोज मारने पर मुश्किल से ही कुछ पुस्तकें ऐसी मिलेगी जो जीवन निर्माण के लिए आज की परिस्थितियों को ध्यान में रखते व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करती हों । प्रेसों में ऐसा कूड़ा-कचरा दिन-रात छपता है, जिसे पढ़कर लोगों के दिमाग और भी अधिक खराब हों ।

आज की परिस्थितियों में जो भी सम्भव हो, ऐसा हमें साहित्य तलाश करना चाहिए जो प्रकाश एवं प्रेरणा प्रदान करने की क्षमता से सम्पन्न हो ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे पढ़ने के लिये कम से कम एक घण्टा निश्चित रूप से नियत करना चाहिये । धीरे–धीरे समझ कर विचारपूर्वक उसे पढ़ना चाहिये । पढ़ने के बाद उन विचारों पर बराबर मनन करना चाहिये । जब भी मस्तिष्क खाली रहे यह सोचना आरम्भ कर देना चाहिये कि आज के स्वाध्याय में जो पढ़ा गया था, उस आर्दश तक पहुँचने के लिये हम प्रयत्न करें, जो कुछ सुधार सम्भव है उसे किसी न किसी रूप में जल्दी ही आरभ करें । श्रेष्ठ लोगों के चरित्रों को पढ़ना और वैसा ही गौरव स्वयं भी प्राप्त करने की बात सोचते रहना, मनन और चिन्तन की दृष्टि से आवश्यक है।

जितनी अधिक देर तक मन में उच्च भावनाओं का प्रवाह बहता रहे उतना ही अच्छा है । ऐसा साहित्य हमारे लिये संजीवन बूटी का काम करेगा, उसे पढ़ना और अपने अत्यन्त प्राणप्रिय कामों में से एक बना लेना चाहिये । सुलझे हुए विचारों के सच्चे मार्ग-दर्शन न मिलने के अभाव की पूर्ति इस साहित्य से सम्भव है। आज उलझे हुए विचारों के लोग बहुत हैं । धर्म मे नाम पर आलस्य, अकर्मण्यता, निराशा, दीनता, कर्त्तव्य की उपेक्षा, स्वार्थपरता, संकीर्णता की शिक्षा देने वाले सत्संगों से जितनी दूर रहा जाय, उतना ही कल्याण है ।

कहीं से भी, किसी प्रकार से भी जीवन को समुचित बनाने वाले, सुलझे हुए उत्कृष्ट विचारों को मस्तिष्क में भरने का साधन जुटाना चाहिये । स्वाध्याय से, सत्संग से, मनन से, चिन्तन से जैसे भी बन पड़े, वैसे यह प्रयत्न करना चाहिये कि हमारा मस्तिष्क उच्च विचारधारा में निमग्न रहे । यदि इस प्रकार के विचारों में मन लगने लगे, उनकी उपयोगिता समझ में पड़ने लगे, उनको अपनाते हुए आनन्द का अनुभव होने लगे तो समझना चाहिये कि आधी-सी मंजिल पार कर ली गई ।

स्वाध्याय नित्य करना ही चाहिए

गीता में कहा गया है-"नहिं ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते" अर्थात् इस संसार में ज्ञान से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है । यदि हम इस संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु तलाश करना चाहें तो अन्ततः 'ज्ञान' को ही वह श्रेष्ठता की योग्यता एवं परिस्थितियों के व्यक्ति अत्यन्त उच्चकोटि का स्थान प्राप्त करते हैं । ज्ञान को ही पारसमाणि कहा गया है । लोहा पारस को छूकर सोना बन जाता है या नहीं ? पारस कहीं है या नहीं ? यह बातें संदिग्ध हैं । पर ज्ञान रूपी पारस को स्पर्श कर तुच्छ श्रेणी के व्यक्ति ऊँचे-ऊँचे स्थान पर पहुँचे हैं, यह निर्विवाद सत्य है ।

शरीर की दृष्टि से मनुष्य अल्पबुद्धि पशु-पक्षियों से भी गया बीता है । उनके शरीर में जो भागने, बोझ उठाने, सर्दी-गर्मी सहने, बीमार न होने आदि की विशेषतायें हैं, वे मनुष्य शरीर में नहीं हैं । फिर भी उन सबकी अपेक्षा अधिक साधन सम्पन्न हो सका इसका एक मात्र कारण उसका ज्ञान ही है । जब कभी किसी व्यक्ति का दिमाग खराब हो जाता है, ज्ञान शक्ति में अन्तर आ जाता है, तो उसका शरीर ज्यों का त्यों रहने पर भी उसकी स्थिति हास्यास्पद हो जाती है । इसके विपरीत ज्ञानवान् व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से गये बीते होने पर भी गौरव स्थान प्राप्त किये रहते हैं । ज्ञान की महिमा अपार है । गीताकार ने उसे सर्व श्रेष्ठ तत्त्व कह कर पुकारा तो उसमें तनिक भी अत्योक्ति नहीं है ।

शारीरिक और मानसिक बनावट की दृष्टि से भी मनुष्य लगभग एक से होते हैं । उनमें जो अन्तर होता है, उसे बहुत थोड़ा ही कहा जा सकता है, किन्तु आन्तरिक स्थिति की विचार और विवेक की भिन्नता के कारण उनमें जो अन्तर देखा जाता है, वह असामान्य है । संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनने अपने अन्तःकरण का विकास अवश्य ही किया । यदि वह न किया गया होता तो वे अन्य असंख्य साधन सुविधाओं के होते हुए भी उस उच्च स्थिति के अधिकारी न हुए होते ।

क्या सामाजिक, क्या व्यक्तिगत जीवन में सर्वत्र विचार शक्ति का ही बोलबाला है, जब अज्ञान पूर्ण विचारों की मात्रा बढ़ जाती है, तो पाप, अनाचार, ईर्ष्या, द्वेष स्वार्थपरता, क्रोध छल, शोषण, असंयम, तृष्णा, लोभ, विलासिता का साम्रज्य बढ़ता है । फलस्वरूप रोग, शोक, क्लेश भय, चिन्ता एवं दीनता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का अन्धकार छा जाता है । यदि व्यक्तिगत जीवन में यह परिस्थिति पैदा हुई तो वह नरक बनेगा और यदि यह प्रवृत्तियाँ सार्वजनिक सामाजिक जीवन में बढ़ीं तो सारा समाज इन दुःख-द्वन्द्वों में ग्रस्त होकर अधःपतन के सत्यानाशी मार्ग पर अग्रसर होगा । इसके विरीत यदि सद्ज्ञान के आधार पर अन्तः प्रदेश में सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ीं, दया, प्रेम, उदारता, संयम, सदाचार, स्नेह, सहयोग एवं सेवा की भवनायें विकसित हुई, तो चाहे व्यक्तिगत जीवन हो, चाहे सामाजिक जीवन, दोनों में ही सुख, शान्ति, समृद्धि, सहयोग संगठन, आरोग्य,मैत्री सुरक्षा, की स्वर्गीय परिस्थितियाँ स्वयमेव पैदा हो जायेंगी ।

ज्ञान के दो अंग हैं-एक शिक्षा दूसरा विद्या । शिक्षा वह है जो स्कूल कॉलेजों में पढ़ाई जाती है, जिसे पढ़कर लोग ग्रेजुएट, क्लर्क, डाक्टर, वकील, इन्जीनियर, प्रोफेसर, अफसर आदि बनते हैं । यह जीवकोपार्जन एवं लोक व्यवहार में निपुणता प्राप्त करने के लिए है । यह आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना सांसारिक जीवन में सुस्थिरता एवं उन्नति का मार्ग नहीं खुलता, पर इससे भी आवश्यक 'विद्या' है। जिस ज्ञान को प्राप्त कर मनुष्य अपनी मान्यताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं एवं आदर्शों का निर्माण करता है, उसी ज्ञान को विद्या कहा जाता है । इसे प्राप्त करने का माध्यम स्कूल कॉलेज नहीं वरन् 'स्वाध्याय' और सत्संग हैं । चिन्तन और मनन से, सत्साहित्य पढ़ने से सज्जनों के साथ रहने, उनके अभिवचन सुनने एवं कार्य-कलाप देखने से विद्या का आविर्भाव होता है ।

जिस ज्ञान को संसार का सर्वश्रेष्ठ पदार्थ कहा जाता है, वह विद्या ज्ञान ही है । स्कूली ज्ञान तो करोड़ों मनुष्यों को है । उससे थोड़ा लौकिक विकास तो जरूर होता है, पर आन्तरिक महानता किसी की नहीं बढ़ती । आत्म-निर्माण की, चरित्र गठन की, सत्प्रवृत्तियों की भावनायें जागृत करने वाले सद्विचारों को हो सच्चा ज्ञान कहा जा सकता है । यही जीवन को सफल बनाने वाला सर्वश्रेष्ठ पदार्थ है । इसे प्राप्त करने के लिए हममें से हर एक को शक्ति भर । सत्संग के साधन जब भी उपलब्ध हों, सत्पुरुषों के साथ विचार विनमय एवं सान्निध्य जब भी सम्भव हो, तब उसका लाभ उठाना चाहिये, पर यह है बहुत कठिन । क्योंकि ऐसे अनेक सत्पुरुषों का एक साथ मिलना दुर्लभ है, जिनके विचारों में से उचित अंश को ग्रहण करके अपना ज्ञान कोष पूरा किया जा सके । कोई व्यक्ति सत्पुरुष होते हुए भी सर्वथा निभ्रान्ति नहीं होता । यदि उसके सभी विचारों को ठीक माना जाय तो उस सत्पुरुष में जो भ्रान्ति थी वह भी अपने पल्ले बँध जायेगी । भगवान बुद्ध अत्यन्त उच्चकोटि के त्यागी, तपस्वी महापुरुष थे, उनकी अधिकाँश शिक्षायें बड़ी उत्तम हैं, पर ईश्वर को न मानने का उनका सिद्धान्त उचित नहीं माना जा सकता है । यदि कोई व्यक्ति बुद्ध भगवान पर अनन्य श्रद्धा करके उनके विचारों में से उचित अनुचित की काट–छाँट न करे तो उसे अनीश्वरवादी बनना पड़ेगा और उस मान्यता के दुष्परिणामों को भी भोगना पड़ेगा । संसार का हर व्यक्ति अपूर्ण है। इस लिये श्रेष्ठ पुरुषों के सब विचार निभ्रान्त ही होंगे, यह नहीं कहा जा सकता । उनकी बातों में से उपयोगी, बुद्धि संगत और देशकाल परिस्थिति के अनुरूप विचारों को छाँटकर ग्रहण किया जाय इसके लिये आवश्यक है कि सत्संग के लिए अनेक सत्पुरुषों का सानिध्य प्राप्त हो । यह कठिन है, क्योंकि ऐसे श्रेष्ठ विचार से सत्पुरुष न तो बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं न वे अपने समीप ही रहते हैं । फिर वे इतने कार्य- व्यस्त भी होते हैं । कि हर जिज्ञासु के लिये अभीष्ट सम्मति दे सकना उनके लिए सम्भव नहीं होता । इसलिये सत्संग को यदाकदा प्राप्त होते रह सकने वाला अवसर ही माना जायगा । ज्ञान लाभ का उद्देश्य पूर्ण करने वाला सर्व सुलभ स्वाध्याय ही है ।

संसार के सर्वश्रेष्ठ तत्त्व 'ज्ञान' को प्राप्त करके जीवन सफल बनाने, उसे श्रेष्ठ दिशा में विकसित करने के लिए स्वाध्याय ही प्रधान माध्यम है, इसलिए स्वाध्याय को एक आवश्यक धर्म कर्त्तव्य माना गया है । शास्त्र कहता है–– 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' अर्थात स्वाध्याय में प्रमाद न करो और 'अहरहस्वाध्यायमेध्येतव्यः' अर्थात् स्वाध्याय में लगे रहो । शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि––"भावन्तः वा इमां पृथिवी वितेन पूर्णाददल्लोकं जयति त्रिस्तावन्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जयतिभूयां सम्वाक्षम्य य एवम् विज्ञान अहरहस्वाध यायामेधीते ।" अर्थात् जितना पुण्य धन धान्य से पूर्ण इस समस्त पृथ्वी को दान देने से मिलता है, उसका तीन गुना पुण्य तथा उससे भी अधिक पुण्य स्वाध्याय करने वाले को प्राप्त होता है । इस कथन पर आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है । भावनाओं को प्रेरणा देने का प्रमुख आधार स्वाध्याय ही वह तथ्य माना गया है जिससे प्रेरित होकर मनुष्य के विचार और कार्य सन्मार्ग की दिशा में विकसित होते हैं और यही विकास क्रम अनन्तः अक्षय पुण्य फल प्राप्त होने का हेतु बनता है ।

शरीर, वस्त्र, मकान, आदि की सफाई नित्य करनी पड़ती है, क्योंकि नित्य ही उन पर मैल जमता रहता है । इसी प्रकार मन पर भी संसार के बुरे वातावरण का मैल और कुप्रभाव निरन्तर पड़ता रहता है । उसकी सफाई के लिये सत्संग और स्वाध्याय की बुहारी लगाने की नित्य ही आवश्यकता होती है इसलिये शास्त्रकारों ने भोजन, स्नान, शयन, आदि की भाँति ही स्वाध्याय को भी नित्य कर्म माना है । पानी को फैलाते ही वह तेजी से नीचे की ओर अपने आप बहने लगता है । उसी प्रकार मन का स्वभाव भी नीचे कर्मों की ओर आकर्षित होता है । यदि उसे न रोका जाय तो वह पशु-प्रवृत्तियों की ओर ही बढ़ेगा । पानी को ऊपर ले जाना होता है, तो रस्सी, बाल्टी, तथा पम्प आदि का प्रयोग करना पड़ता है, तब कहीं वह ऊपर को बढ़ाया जा सकता है । स्वाध्याय को वह व्यवधान कहा जा सकता है जो मन रूपी पानी को कुमार्ग की ओर बहने से रोकता है । आत्मशोधन और आत्म-निमार्ण का सबसे प्रधान विधान 'स्वाध्याय' ही माना गया है । इसी से परमात्मा की प्राप्ति भी होती है । महर्षि व्यास का कथन है– 'स्वाध्याय योग सभ्यता परमात्मा प्रकाशते' अर्थात् स्वाध्याय यु साधना से ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है ।

हमें अपने व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय चरित्र निर्माण के लिये स्वाध्याय को प्रमुख आधार मानना पड़ेगा और इसे जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में जन-जन को हृदयंगम कराना पड़ेगा । जो अनेकों दुष्प्रवृतियाँ हमारे वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में घर कर गई हैं उनकी हानियों को भली प्रकार समझने एवम् त्यागने के लिए प्रेरणा देने स्वाध याय की शक्ति को प्रमुख उपाय मानना होगा । इसी प्रकार जो सद्भावनायें एवं सत्प्रवृत्तियाँ विकसित की जानी आवश्यक हैं, उनकी उपयोगिता समझने एवं ग्रहण करने के लिए उत्साह उत्पन्न करने का कार्य भी स्वाध्याय की आदत को अधिकाधिक प्रोत्त्साहन देने से ही सम्भव हो सकेगा ।

हममें से प्रत्येक को स्वाध्याय के लिए नित्य कुछ समय नियमित रूप से निकालना चाहिये । जिस प्रकार स्नान के लिए एक समय नियत रहता है और रोज ही उस समय नहाया जाता है, उसी प्रकार नित्य स्वाध्याय के लिये भी एक समय नियत रहना चाहिये । यों पढ़ने को तो तरह-तरह की चीजें लोग पढ़ते हैं लेकिन पढ़ने का नाम स्वाध्याय नहीं है । स्वाध्याय वही कहा जायेगा जो हमारी जीवन समस्याओं पर आन्तरिक उलझनों पर प्रकाश डालता है और मानवता को उज्ज्वल करने वाली सत्प्रवृत्तियों को अपनाने की प्रेरणा देता है । इसीलिए स्वाध्याय एवं सत्संग दोनों पर हमारे मनीषी आग्रहपूर्वक बल देते रहे हैं । उद्देश्य एक ही है, भीतर की सत्प्रवृत्तियों को सत्प्रेरणा मिले, शक्ति मिले, चिन्तन-मनन की प्रक्रिया सही दिशा में आगे बढ़े और स्वर्गीय वातावरण की सृष्टि सम्भव हो । स्वाध्याय, सत्संग एवं चिन्तन मनन की सार्थकता उसी श्रेष्ठता की उपलब्धि में है । भारतीये संस्कृति में इसीलिए उन्हें आत्म-निर्माण के क्षेत्र में सर्वोपरि स्थान प्राप्त है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देव संस्कृति हमें भाग्यवादी नहीं, कर्मवादी बनाती है

अज्ञान एक प्रकार का अन्धकार है । अन्धकार में पास रखी हुई वस्तु का स्वरूप भी ठीक से दिखाई नहीं पड़ता, कुछ का कुछ प्रतीत होता है । कई बार तो चीज सामने रखी है । वह भी ढूँढ़नी पड़ती है फिर भी मिलती नहीं । अन्धकार ऐसा ही दोष पूर्ण है । इसी से उसकी निन्दा की जाती है । अंधेरा भय का कारण भी है । रात को सूने घर में डर लगता है । अकेले कहीं जंगल में सुनसान में जाना पड़े तो भी भय प्रतीत होता है, यद्यपि डर का कोई कारण नहीं होता । दिन में वहाँ रहें या गुजरें तो कुछ भी भय प्रतीत नहीं होता, पर रात डरावनी मालूम पड़ती है । मन में हर क्षण ऐसी आशंकाएँ उठती रहती हैं कि कहीं कोई खतरा न हो । चोर का, साँप का, भूत का और न जाने किस-किस का डर मन में उठता है और कहीं कोई पत्ता खड़के, चूहा कूदे तो बिलकुल यही लगता है कि कोई भूत उछला । कभी-कभी छोटे-छोटे निर्दोष पेड़-पौधे, रीछ-व्याघ्र, चोर, भूत, पलीत जैसे लगते हैं और कई बार तो उनमें आँख दाँत हाथ बढ़ते हुए तथा हरकत करते हुए दिखाई देते हैं । कहते हैं कि "शंका डायन, मनसा भूत" आशंका डायन की बराबर भयानक रूप धारण करती है और मन में उत्पन्न हुई भूत का डरावना रूप बनाकर खाने पकड़ने को दौड़ती है ।

अन्धकार और भय का जोड़ा––अन्धकार अपने आपमें एक प्रकार का भय भरे बैठा रहता है । अंधेरा वस्तुस्थिति का वास्तविक ज्ञान नहीं होने देता, फलस्वरूप डरावनी परिस्थितियाँ अनायास ही चारों ओर बन जाती हैं । इस विषम स्थिति में बचने के लिए रात को भी कृत्रिम प्रकाश उत्पन्न करना पड़ता है । दिन के प्रकाश में ६० प्रतिशत डर समाप्त हो जाता है और रात में अकारण ही डरावनी परिस्थितियों की घटा घिर आती है । प्रकाश की इसी लिए प्रशंसा और अंधेरे की इसीलिए निन्दा की जाती है । एक जहाँ हमें दूर दृष्टि एवं वस्तुस्थिति का वास्तविक ज्ञान कराता है, वहाँ दूसरा, हमसे ज्ञान परिधि को कुंठित कर देता है, अनजान बना देता है । अनजान स्थिति में सर्वत्र भय ही भय है । भय में हर दृष्टि में हानि ही हानि है । इसलिये उपनिषदकार ने "तमसो मा ज्योतिर्गमय" का उद्घोष करते हुए अंधकार से विरत होकर प्रकाश की ओर चलने का निर्देश किया है ।

अज्ञान की तुलना अन्धकार से की जाती है । जो दोष अन्धकार में हैं, वे सभी अज्ञान में मौजूद हैं । अज्ञान तो उसी तरह डराता है जिस तरह अँधेरा । वस्तुस्थिति की जानकारी के अभाव में हम कुछ का कुछ सोचते और कुछ का कुछ करते हैं । विचारण और कार्य-पद्धति गलत हो जाने का परिणाम त्रासदायक अनर्थ के रूप में ही सामने आता है । जिसमें ज्ञान का जितना अभाव है, वह उतना ही उद्विग्न और भ्रमित रहता है । मृगतृष्णा वाली बात विख्यात है । कहते हैं कि प्यासा हिरन रात की चाँदनी में जमीन पर फैले हुए सफेद नमक, रेह, को दूर से पानी समझता है और दौड़कर वहाँ पहुँचता है, पर वहाँ अभीष्ट वस्तु नहीं मिलती । पानी की कल्पना मिथ्या सिद्ध होती है और सफेद नमक जमीन पर बिखरा हुआ मिलता है । अँधेरे में पड़ी हुई रस्सी साँप प्रतीत होती है । भ्रम जंजाल में पड़ा हुआ मनुष्य वास्तविकता की जानकारी न होने के कारण अगणित कष्ट सहता और अपने श्रम व समय को बर्बाद करता रहता है । अन्त में जब उसे अपनी भूल मालूम पड़ती है तब आत्मग्लानि और पश्चाताप का नया दुख और सामने आ खड़ा होता है ।

ज्ञान-प्राप्ति का पुरुषार्थ-- ऋषियों ने अज्ञान से उबरने और ज्ञान को प्राप्त करने में मनुष्य का सर्वोपरि पुरुषार्थ माना है । अध्यात्म तत्व-ज्ञान का सारा ढाँचा ही "ज्ञान नेत्रोन्मीलन" के उद्देश्य से खड़ा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया गया है । शास्त्र मानता है कि अज्ञानी मनुष्य एक प्रकार से अन्धा है । सूरज के न रहने पर रात्रि का अँधेरा फैलता है । उससे भौतिक जगत् में बिखरी हुई वस्तुओं के बारे में जानकारी से वंचित एवं पदार्थों की वस्तुस्थिति के सम्बन्ध में भ्रमित होना पड़ता है, पर बौद्धिक अन्धकार से अज्ञान उत्पन्न होता है, उससे विचार जगत में भारी भ्रम उत्पन्न हो जाता है, कुछ का कुछ प्रतीत होने लगता है और मृगतृष्णा में भटकने वाले हिरन की अपेक्षा भी मनुष्य अनेक गुना भ्रमित होकर दुःख पाता, हानि उठाता एवं न करने लायक निन्दनीय कार्य, न सोचने लायक उपहासास्पद विचार करता देखा जाता है ।

मानव-जीवन का गौरव इस बात में है कि वह अन्धकार को परास्त कर प्रकाश की परिस्थितियाँ प्राप्त करे । जिसे अंधेरी रात में दीपक जलाले का भी सऊर न हो, घनघोर अँधेरे में ऐसे ही डरता-मरता पड़ा रहे, उसे गया-गुजरा ही माना जायगा । इसी प्रकार जो विचार क्षेत्र में फैले हुए अज्ञानान्धकार की निविड़ परिस्थितियों में पड़ा रहे, उससे छुटकारा पाने का प्रयत्न न करे, उसे निम्न स्तर का ही समझा जायगा । अध्यात्मवाद का उद्देश्य और आदर्श यह है कि मनुष्य विवेकशील बने । हर बात और हर परिस्थिति की गहराई में घुसे और वास्तविकता तलाश करने का प्रयत्न करे । इस संसार में भला बुरा सब कुछ है । बुरे से बुरे और अच्छे से अच्छे आदर्श उदाहरण, विश्वास, व्यक्ति एवं प्रचलन यहाँ विद्यमान है । प्रकाशवान उदाहरण ढूँढ़ना चाहें तो निकट या दूर उनका भी बाहुल्य मिल जायगा और यदि अन्धकार पूर्ण व्यक्तित्व एवं विश्वासों की खोज की जाय तो वे और भी अधिक मात्रा में उपलब्ध हो सकेंगे । ऐसी दशा में यह मानकर चलना कि जैसा सब कर रहे हैं, वैसा हम भी करेंगे एक प्रकार से असम्भ एवं उपहासास्पद है । अपने आस-पास ही हमें परस्पर घोर विरोधी आदर्श एवं उदाहरण दृष्टिगोचर हो सकते हैं । उनमें से हमें जो रुचते हैं, जिनके प्रति आकर्षण, झुकाव या पक्षपात होता है, उन्हें ही स्वीकार करते हैं और उसी रास्ते पर चलते हैं । 'जो सब करते हैं वह हम भी करेंगे यह उक्ति सर्वथा असत्य है । अपनी रुचि एवं रुझान के अनुकूल ही अनेक प्रकार के प्रचलनों में से कोई एक प्रचलन चुना एवं अपनाया जाता है ।

हर बात बारीकी से सोचें-- अध्यात्म तत्त्व ज्ञान की शिक्षा यह है कि हर समस्या, हर आदर्श, हर विचार, हर मान्यता एवं हर परम्परा पर बारीकी से विचार करें । उसके गुण-दोषों का विश्लेषण करें और जहाँ औचित्य एवं सत्य दिखाई पड़े, वहाँ अपनी निष्ठा को आश्रय दें । विचारण के विवेक को प्रकाश कहा गया है और छानबीन न करके प्रचलित किसी ढर्रे का अन्धानुकरण करते रहने को अन्धकार । दर्शन शास्त्र में अविचार को, अविवेक को, ढर्रे को अपनाये रहने को ही अन्धकार कहकर पुकारा गया है और कहा भी गया है कि इस मार्ग पर चलते रहने वालों की दुर्गति होती है । जिसे आत्मोत्कर्ष करना है, उसे सबसे पहला काम अपनी जिज्ञासा को, ज्ञान पिपासा को, अन्वेषण वृत्ति को तीव्र करना चाहिये । वेदान्त-दर्शन का प्रथम सूत्र हैं- "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" अर्थात् सबसे पहले अपनी जिज्ञासा सजग करनी चाहिये, प्रकाश की ओर उन्मुख होने का यही तरीका है । सद्गति एवं आत्म-कल्याण का उद्देश्य इसी मार्ग पर चलने से पूर्ण होता है ।

यों आलस्य हर प्रकार का बुरा है, पर मानसिक आलस्य सबसे बुरे स्तर का है । जो करने योग्य काम नहीं करते है, शरीर को परिश्रम से दूर रखना चाहते हैं, वे आलसी कहलाते हैं । ऐसे लोगों को अस्वस्थता एवं दरिद्रता घेरे रहती है । जो लोग उचित अनुचित का भेद नहीं करते, उपयुक्त अनुपयुक्त की परख करने का कष्ट नहीं उठाते और बुद्धि की वास्तविकता, अवास्तविकता का विश्लेषण करने का बोझ नहीं उठाने देते, ऐसे लोग मानसिक आलसी कहलाते हैं । उन्हें न विवेक का दर्शन होता है और न प्रकाश का । ऐसे लोग अज्ञानान्धकार में भटकते हुए, दिग्भ्रान्त बने अपने जीवन का नाश करते रहते हैं ।

भौतिक जीवन में शारीरिक आलस्य के कारण जिस प्रकार शारीरिक तेजस्विता एवं प्रखरता नष्ट हो जाती है, मुर्दनी, काहिली पराधीनता और मलीनता छाई रहती है, इसी प्रकार मानसिक दृष्टि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से आलसी बने हुए व्यक्ति भी अपनी मौलिकता, विवेकशीलता, विशेषता एवं श्रेष्ठता खो बैठते हैं । एक प्रकार से वे पड़ोसियों के मानसिक गुलाम बन जाते हैं । आस पास के लोग जैसा कुछ भला-बुरा सोचते मानते हैं, उसी भेड़िया धँसान में उन्हें भी अपना गुजारा करना पड़ता है । कहते हैं कि एक भेड़ जिधर चलती है, उधर ही पीछे वाली भेड़ें भी चलने लगती हैं । आगे वाली भेड़ कुएँ में गिरे तो पीछे वाली भी अगली का अनुकरण करती हुई उसी खड्ड में गिरती चली जाती है । मानसिक दासता एवं बौद्धिक आलस्य का यही चिन्ह है । यह लक्षण जिस समाज, राष्ट्र या व्यक्ति में पाये जायें, समझना चाहिये कि यह मानसिक दासता के दलदल में फँसकर चिरकाल तक दारुण दुःख सहता एवं दुर्गति की यातना भोगता हुआ पतन की ओर बढ़ता चला जायेगा ।

अन्धकार की बिरासत– हम पिछले दो हजार वर्षों से अज्ञानान्धकार के युग में रहते चले आये हैं । विदेशी आक्रमणों से जहाँ हमारा बहुत कुछ अपहरण हुआ, वहाँ बौद्धिक प्रखरता को भी कुंठित कर दिया । सम्भवतः इस मानसिक अधःपतन के पीछे उन लोगों का हाथ रहा है जो हमें देर तक शोषित, पतित और पराधीन देखना चाहते थे । अंग्रेजों ने छलबल पूर्वक जहाँ राजनैतिक एवं आर्थिक प्रभुत्व प्राप्त किया, वहाँ उन्होंने अपनी संस्कृति के प्रति हमारी श्रद्धा को आकर्षित करने के लिये भी प्रबल प्रयत्न किया । चुपके-चुपके उनके परोक्ष प्रयत्न यह रहे कि भारतीय जनता अपनी संस्कृति को हेय एवं हीन मानकर उसकी उपेक्षा करे । इस षड़यन्त्र में उन्हें आशाजनक सफलता मिली । फलस्वरूप अन्त में अंग्रेजों के चले जाने पर भी अंग्रेजी सभ्यता और अंग्रेजी भाषा दिन-दूनी रात-चौगुनी पनपती और फलती-फूलती चली जा रही है ।

अंग्रेजों से पूर्ववर्ती मुसलमान शासकों के जमाने में यह कार्य दूसरे विलक्षण ढंग से चला है । इस समय इतने अधिक अन्ध-विश्वासों, मूढ़ मान्यताओं और उद्धत परम्पराओं का प्रचलन हुआ जिसे देखकर आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता है । आर्ष ग्रन्थों में जहाँ पग-पग पर आत्म-निर्माण, पुरुषार्थ, उत्कर्ष, परमार्थ एवं कठोर कर्त्तव्य-निष्ठा का निर्देश पाया जाता है वहाँ उन दिनों ऐसी विचारधाराएँ प्रचलित हुईं जो हमें एक प्रकार से मानसिक गुलामी की जञ्जीरों में जकड़कर रख देती हैं । वे सिखाती हैं कि मनुष्य कुछ भी नहीं, किसी अदृश्य शक्ति की कठपुतली मात्र है, उसका प्रारब्ध पूर्व निश्चित है, जो होना है होकर रहेगा । संसार का भविष्य भी पूर्व निर्धारित है, जो होनी है, होतव्यता है, होकर रहेगी, उसे कोई टाल नहीं सकता । पुरुषार्थ का कोई महत्त्व नहीं, जो विधि का विधान है वही होगा ।

प्रस्तुत मान्यता का अनौचित्य-विचारणीय प्रश्न है कि क्या उपर्युक्त मान्यता ठीक है ? यदि ठीक हो तब फिर मानवीय प्रयत्नों का कोई महत्त्व एवं मूल्य नहीं रह जाता । फिर कठोर कर्म करने का झंझट और जोखिम उठाने से क्या लाभ ? जो होतव्यता है, जितना लाभ-हानि मिलने वाला है, जितना कष्ट उठाना है, वह तो विधि विधान के अनुसार उठाना ही होगा, इसलिये उसके प्रतिरोध का प्रयत्न करने या उपस्थित संकट को टालने के लिये उधेड़-बुन करने से क्या लाभ ? जब तक अच्छे दिन न आवेंगे, तब तक कुछ होना जाना नहीं है । जब समय बदलेगा तब देखते-देखते सब कुछ अपने आप सुधर जायगा । इस प्रकार की विचारणा हमें भाग्यवाद ने दी है । पुरुषार्थवादी भारतीय दर्शन भाग्यवादी कैसे बन गया? मान्यताएँ बिलकुल उलटी कैसे हो गई ? इस प्रश्न का कोई उत्तर सूझ नहीं पड़ता । लाखों वर्ष से एक सुनिश्चित दिशा में प्रवाहित होने वाली भारतीय संस्कृति की मूल धारा बिलकुल उलटी होकर पूरब से पच्छिम की तरफ कैसे मुड़ गई ? किसने उसे पलट कर रख दिया ? इस गुत्थी को हल करते नहीं बन पड़ता ।

भारतीय धर्म का प्रत्येक अनुयायी, भारतीय दर्शन का प्रत्येक आस्थावान् सदा से पुरुषार्थवादी, कर्मवादी रहा है । उसकी यह सुनिश्चित मान्यता रही है कि "मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है ।" उसके भीतर अनन्त शक्तियों का समुद्र लहरा रहा है । अपनी शक्तियों का सदुपयोग करने वाला हर मनुष्य उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच सकता है । पुरुषार्थ में परिस्थितियों को बदल डालने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पूरी-पूरी सामर्थ्य विद्यमान है । जिस प्रकार हिमालय का वक्ष चीरकर निकलने वाली गंगा अपने प्रियतम समुद्र से मिलने का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए तीर की तरह बहती सनसानाती बढ़ती चली जाती है और उसका मार्ग रोकने वाले चट्टान चूर-चूर होते चले जाते हैं, उसी प्रकार पुरुषार्थी मनुष्य अपने लक्ष्य को अपनी तत्परता एवं प्रखरता के आधार पर प्राप्त कर सकता है । हर अवरोध को उसका रास्ता छोड़कर हटना पड़ता है ।

हम और हमारे पूर्वज-- इन्हीं मान्यताओं को अपनाये रहने वाले हमारे पूर्वज विश्व विजय कर सकने और चक्रवर्ती धर्म साम्राज्य स्थापित कर सकने में समर्थ हुए थे। उनकी इसी गौरव-गरिमा के सामने संसार के मानव-समाज ने अपना मस्तक झुकाया था और जगद्गुरु स्वीकार किया था । किसी समय हमारा देश प्रगति के उच्च शिखर पर था। यहाँ धन, बल, कौशल, शिल्प, ज्ञान-विज्ञान किसी बात की कमी न थी । समस्त विश्व को हमने बहुत कुछ दिया था। देवताओं जैसा अपना उच्चस्तर बना सकने और संसार को अपने महान् अनुदानों से कृत-कृत्य बनाने का जो श्रेय किसी समय भारतवासियों ने प्राप्त किया था, उसके पीछे उनकी पुरुषार्थवादी कर्मठता ही थी । वे जानते थे कि हर कर्मठ व्यक्ति के पीछे ईश्वर की सहायता सन्निहित रहती है । शुभ कर्मों के साथ तो ईश्वर का साहाय्य सुनिश्चि ही है । कहने वाले तो यहाँ तक कहते हैं कि अशुभ और अनुचित दिशा में पुरुषार्थ करने वाले कर्मनिष्ठों को भी ईश्वरीय सहायता मिलती है । डाकू और तस्कर तक अपने पुरुषार्थ के बलबूते पर एक सीमा तक आश्चर्य जनक सफलताएँ प्राप्त करते रहे हैं । उनके बुरे कर्म का दण्ड मिलेगा यह दूसरी बात है, पर पुरुषार्थ का लाभ अपनी कतिपय सफलताओं के रूप में आये दिन प्राप्त करते रहते हैं । कहने का तात्पर्य इतना भर है कि पुरुषार्थ की सामर्थ्य अपरिमित है । ईश्वर को पुरुषार्थी ही सबसे अधिक प्रिय है । इसी से तो वह हर कर्मठ व्यक्ति को उसके प्रयत्न एवं श्रम के अनुरूप सफलता प्रदान करता है ।

प्राचीन काल में यही भारतीय दर्शन था । यहाँ का हर व्यक्ति इसी ढंग से सोचता था और इन्हीं भावनाओं के आधार पर अपनी नस-नाड़ियों को प्रगति के लिए अपार उत्साह और अनौचित्य को हटा-मिटा डालने के लिए प्रचण्ड शौर्य भरे रहता था । हमारी इन्हीं आस्थाओं ने तो हम तेतीस कोटि भारतवासियों को समस्त विश्व में तेतीस कोटि देवताओं के नाम से विख्यात कराया था और यह भारत-भूमि "स्वर्गादपि गरीयसी" कहकर सम्मानित की जाती थी ।

उलटे विचार उलटे परिणाम-- आज हमारी स्थिति कितनी उलट गई यह देखकर गहरा सन्ताप होता है । ऐसा आखिर हुआ क्यों ? इस प्रश्न पर विचार करते हुए एक ही उत्तर सूझता है कि हमारा जीवन दर्शन उलट गया । हम पुरुषार्थवादी कर्मठता को तिलाञ्जलि देकर मानसिक दासता के जंजाल में जकड़ गये और दीन-हीन, अकर्मण्य, कायर एवं अविवेकी लोगों की तरह भाग्यवाद का पल्ला पकड़कर बैठ गये । उलटी सोचने वाले को उलटा परिणाम सहने के लिए भी तैयार रहना चाहिये । लम्बी अवधि से हम अपनी भ्रान्त विचारणा का दुष्परिणाम सहते हुए चले भी आ रहे हैं ।

विचारणीय बात यह है कि यदि सब कुछ भाग्य में ही बदा लिखा है, जो कुछ होना है सब विधि के विधान से ही होने वाला है तो फिर मनुष्य को किसी असफलता या दुष्कर्म के लिये क्यों तो उसे दोषी ठहराया जाय ? और क्यों किसी सफलता या सत्कर्म का श्रेय दिया जाय ? फिर ईश्वर क्यों किसी का भाग्य बुरा बनाता है और क्यों किसी का अच्छा ? विधाता तो सहृदय है फिर किन्हीं प्राणियों को त्रास देने वाली परिस्थितियाँ क्यों उत्पन्न करता है ? ईश्वर को तो अपने सभी पुत्र समान रूप से प्रिय होने चाहिए, फिर वह क्यों किसी के साथ पक्षपात करके उसे उन्नतिशील बनाता और क्यों किसी के साथ निष्ठुरता बरतकर उसे दुःख दरिद्रता की विषम परिस्थितियों में धकेल देता है ? जब ईश्वर ही भाग्य बनाता है, कर्म करने की प्रेरणा देता है तो उपकरण मात्र बने हुए विवश मनुष्य को उस बलात् कराये दुष्कर्म का दण्ड क्यों भोगना पड़ता है ? वह उदाहरण उस विधाता को ही क्यों न मिले, जिसने किसी को बुरी प्रेरणा दी और बुराई कराई ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह ऐसे प्रश्न हैं जिनका भाग्यवाद के पास कोई उत्तर नहीं हैं । यदि वह विधि के विधान वाली मान्यता सही हो तो निश्रय ही किसी व्यक्ति को कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है । करता है तो बेकार कष्ट उठाता है और व्यर्थ ही झंझट में पडता है । तब तो "अजगर करे न चाकरी, पंक्षी करे न काम दास मलूका कह गये सबके दाता राम" की उक्ति के अनुसार व्यापार, व्यवसाय, कृषि, मजदूरी व्यायाम, अध्यापन आदि करने की भी आवश्यकता नहीं है, जितना भाग्य में लिखा है वह तो मिल ही जाने वाला है, फिर व्यर्थ श्रम क्यों किया जाय ?

यदि यह सत्य होता तो-- यदि यह बात सत्य होती तो किसी स्वजन सम्बन्धी की चिकित्सा कराना भी व्यर्थ होता । जितनी आयु लेकर जो आया है उसे उतने ही दिन जीना है, जिस रोग का कष्ट जितने दिन सहना है उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता तो फिर चिकित्सा कराने की क्या आवश्यकता ? रोगी का कष्ट निश्चित है और मृत्यु का दिन भी पूर्व निश्चित है तो फिर चिकित्सा में पैसा, समय और श्रम लगाने की न तो कोई उपयोगिता है और न आवश्यकता । देखा जाता है कि तथाकथित भाग्यवादी भी व्यवहार में अपनी मान्यता को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं । वे केवल पुरुषार्थ के कष्ट से बचने और अपनी अकर्मणता पर लीपा-पोती करने के लिए इस सिद्वान्त का प्रतिपादन भर करते हैं । यदि उन्हें अपने कथन पर विश्वास होता तो कोई भाग्यवादी न तो अपनी कष्ट निवृत्ति के लिये और न आजीविका उपार्जन के लिये कोई प्रयत्न करता, पर देखा इससे सर्वथा विपरीत जाता है । दिन-रात भाग्यवाद की दुहाई देने वाले और उसी से अपनी आजीविका चलाने वाले ज्योतिषी भी जब दरवाजे-दरवाजे पर मारे फिरते हैं और अनेक छल प्रपंच करके अपना धन्धा चलाते हैं तो यही कहना पडता है कि यदि इन्हें भाग्यवाद पर सच्चा विश्रास रहा होता तो अपने घर पर ही बैठे रहते और जो आमदनी उनके भाग्य में लिखी होती उसका ही लाभ उठाते रहते । कथनी और करनी में अन्तर रहने से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि हाथी के दाँत दिखाने भर के हैं ।

पुरुषार्थवादी आदर्शों के स्थान पर हमारी जाति में यह भाग्यवादी औंधी विचारधारा चल कैसे पडी, इसकी खोज इस निष्कर्ष पर पहुँचाती है कि आक्रमणकारियों और अत्याचारियों ने अपने अन्यायों से पीडित लोगों को विद्रोह करने पर उतारू न होने देने के लिये यह सम्मोहन अस्त्र चलाया । आपरेशन करते समय रोगी कराहना और हरकत करना बन्द रखे उसके लिये 'क्लोरोफार्म' नामक औषधि सुंघा दी जाती है । उसे सुँघ कर रोगी का मस्तिष्क मूर्छित हो जाता है, हाथ पैर शिथिल हो जाते हैं, शरीर सुन्न हो जाता है, ऐसी स्थिति में आकर लोग मन चाहे ढंग से किसी भी अंग को निश्चिन्ततापूर्वक चीरफांड करते रहे हैं । अन्यायपीडित शोषितों के मन में प्रतिकार की, विद्रोह की आग न भडकने लगे इसलिये अनाचारी लोगों ने यह भाग्यवादी विचारधारा तथा कथित पण्डितों और विद्वानों के माध्यम से प्रचलित करायी । वे स्वयं इस सिद्वान्त का प्रतिपादन करते तो सम्भव है लोगों को आशंका होती और उनकी बात न मानते, पर जब पण्डित लोग, विद्वान लोग, संस्कृत भाषा के लिखे श्लोकों के सहारे किसी सिद्वान्त का प्रतिपादन करते हैं और उसकी पुष्टि में कतिपय कथा उपाख्यान भी सुनाते हैं, तब भोली, भावुक, श्रद्वालु एवं भारत जैसे धार्मिक देश की जनता को उसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति होनी भी क्यों चाहिये ।

अतीत पर दृष्टिपात-- पिछले अज्ञानान्धकार वाले दिनों के इतिहास पर जब हम दृष्टिपात करते हैं, तब प्रतीत होता है कि भारत के भीतर उत्पन्न हुए अनाचारी सामन्तों ने जनता को विधि प्रकार के पद दलित किया है । छोटे-छोटे राज्यों में बँटे हुए जागीरदार अपनी लुटैरी सेना बनाकर चाहे जिस छोटे-से पडोसी स्वराज्य पर चढ दौडते थे । मारकाट मचाने के अतिरिक्त जनता की लूटपाट भी खूब होती थी । लड़कियों का अपहरण,एक-एक सामंत के घर में पचासों-सैकडों रखैलियों का रहना उन दिनों गौरव और गर्व का विषय समझा जाता था । मारकाट ही उन दिनों वीरता बनी हुई थी । शासक की मर्जी ही न्याय बना हुआ था । इस स्थिति में जनता को कितना त्रास मिलता होगा, सर्वसाधारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का मन कितना दुःख एवं क्षोभ से भरा रहता होगा इसका अनुमान लगा सकना भी आज कठिन है । उन दिनों पुरोहितगण राज्याश्रय पर ही निर्भर रहकर अपनी आजीविका चलाते थे । जो शासकों की मर्जी को शास्त्र सम्मत बताता था वही अधिक पुरुस्कार पाता था । इस वातावरण ने उन दिनों पुरोहितों को भी उसी ढाँचे में ढाल दिया था, वे भी जनहित की बात छोडकर अपने लाभ की ही बात सोचने लगे थे। भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य जैसे मनीषियों की अत्र-दोष से अनीति का समर्थन करना पड़ता था तो सामान्यस्तर के विद्वानों का तो कहना ही क्या ? चारण और पण्डितों का उन दिनों यही काम रह गया था कि शासक जो कुछ उचित, अनुचित करें उसका समर्थन करते रहा जाय । चारण वैसी ही कविताएँ बनाते थे और पण्डित वैसे ही श्लोक पढते थे । अशिक्षित जनता संस्कृत में लिखे पद्यों को शास्त्र या ऋषि वचन ही मानती थी। अतएव उन्हें शिरोधार्य भी करती थी । उसी मध्यकालीन सामन्तवादी युग में ऐसी अगणित मान्यताएँ प्रचलित की गई । जनता उन विचारधारा को स्वीकार करती गई । भाग्यवादी विचारधारा भी उसी युग की देन है ।

अशुभ प्रयोजन–जन्य मान्यता––इस विचारधारा का मूल प्रयोजन यह है कि जो कुछ हो रहा है उसे प्रारब्ध का योग एवं विधि का विधान समझ कर सहन करते रहा जाय । नृशंस शासक यदि कूरता बरतते हैं, उद्वत आचरण करते हैं और अनीति पूर्वक सुख साधन जुटाते हैं तो उसे इन पर ईश्वर की कृपा, उनके पूर्व जन्मों का पुण्योदय माना जाय । जिस पर अत्याचार हुआ है उसके बारे में यह समझा जाय कि इसने पूर्व जन्म में कोई पाप किया होगा जो कि आज सता रहा है उसने पहले सताया हो, इसलिए उसे उसका दंड मिल रहा है । इस विचारधारा ने शोषितों को दूसरों की सहानुभूति से वंचित कर दिया । जो जितना सताया गया वह पूर्व जन्म का उतना ही बड़ा पापी माना गया । जिसने अनीति पूर्वक जितना लाभ उठा लिया वह उतना ही पूर्वजन्म का पुण्यात्मा माने जाने के कारण श्रद्वा एवं प्रशंसा का अधिकारी बन गया ।

अनीति के प्रति विद्रोह करना अनुपयुक्त को बदल देना, मनुष्य का नितान्त आवश्यक एवं नैतिक कर्त्तव्य है । यह कर्त्तव्य-भावना यदि शोषितों में जाग पड़ें तो वे शोषकों को चूर–चूर कर सकते हैं । अतएव जन-साधारण की विद्रोह भावना दबी रहे वे झूठे आत्म संतोष में पड़े उस स्थिति को सहन करते रहे-इस दृष्टि से उन दिनों के सत्ताधारियों ने यह उचित ही सोचा कि भाग्यवाद की नशीली गोली खिला कर सर्वसाधारण की मनोभूमि को अर्ध मूर्च्छित एवं लुंज-पुंज बना दिया । गोली ठीक निशाने पर लगी। परिणाम वही हुआ जो सोचा गया था । लम्बी अवधि तक भारतीय जनता देशी और विदेशी अत्याचारियों के अनाचार सिर झुकाये सहन करती रही । उसमें विद्रोह की, प्रतिशोध की क्षमता नहीं थी, ऐसी बात नहीं । उलटे दर्शन ने जिसकी बुद्धि को भ्रमित कर दिया हो उसे आना सही रास्ता सूझता भी कहाँ है ।

कहाँ है ?

विदेशी आक्रमणकारी भारतीय जनता की इस अवसादग्रस्त मनोभूमि से परिचित हो चुके थे । इसलिए उनके छोटे–छोटे लुटेरे दल केवल लूट–पाट के उदेश्य से इस देश में आते रहे और जब यह देखा कि यहाँ पैर जमाने को बहुत बढिया स्थिति मौजूद है, तब वे शासक बनकर जम बैठते गये । इतनी कम संख्या वाले, इतनी कम शक्ति वाले विदेशी आक्रमणकारियों ने इतनी लम्बी अवधि तक, इतना नृशंस शासन कर सकने में कैसे सफलता प्राप्त कर ली ? इस प्रश्न का एक ही उत्तर है कि भाग्यवाद के नाम पर यहाँ की जन–मनोभूमि मूर्छित स्थिति में पड़ी हुई थी । जहाँ प्रतिरोध की सम्भावना न हो वहाँ हर बुराई मनमाने ढ़ग से पनपती और फलती–फूलती रह सकती है ।

दुहरा व्यवहार दुहरा प्रयोजन--हम देखते हैं कि मुसलमानी शासनकाल में जहाँ सचेष्ट, प्रबुद्व और भावनाशील लोगों के कत्ले-आम होते रहे हैं, तेजस्वी साधु और ब्राह्मणों का नृशंस उत्पीड़न होता रहा है, वहां उन्हीं दिनों कुछ साधु और पंडितों को खुलकर खेलने का अवसर मिला है । मुसलमान शासकों ने उनके मार्ग में तनिक भी असुविधा उत्पन्न नहीं की वरन् गुप्त रूप से उन्हें प्रचुर धन दिया एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनकी सिद्वि चमत्कारों की किम्बदन्तियाँ फैलाने में अपने जासूसों द्वारा पूरी-पूरी सहायता पहुँचायी । कारण एक ही था कि वे भारतीय जनता को अन्याय सहने करने के लिए अधिक अभ्यस्त बना रहे थे । भाग्यवाद का अधिकाधिक प्रचार कर रहे थे । अनीति के प्रतिरोध का उपाय वे विद्रोह न बताकर यह कह रहे थे कि ईश्वर की भक्ति करो, भजन कीर्तन में मन लगाओ । ऐसा करने से भगवान प्रसन्न होंगे । जो कष्ट उठाने पड़ रहे हैं, वे अपने आप सरल हो जायेंगे । "दिल्लीश्वरों वा जगदीश्वरों वा" का लोक शिक्षण उन्हीं दिनों जोर-शोर से किया गया । जो दिल्ली का राजा है, वही जगदीश्वर है। इस मान्यता ने अनीति के आगे शिर झुकाने की ही नहीं आत्म-समर्पण करने की भी पृष्ठभूमि तैयार की।

उपयुक्त अवसर देखकर इन भारतीय दर्शन को उलटा करने के प्रयत्न में संलग्न तथाकथित विद्वानों ने यह सोचा कि प्रस्तुत प्रयास का लाभ शासक वर्ग ही क्यों उठाये ? हमें भी अपने वर्ग और वंश के लिए कोई लाभ क्यों न उठाना चाहिए ? उनकी इस कल्पना ने नई पृष्ठभूमि तैयार कर दी। "हर मनुष्य ग्रह-नक्षत्रों का गुलाम है । उनकी कृपा एवं अकृपा से ही किसी का भला-बुरा समय आता जाता है । वे ग्रह नक्षत्र कब किसी की भलाई या बुराई करेंगे, इसकी जानकारी के लिए हमने शास्त्र तैयार कर लिया है और वैसे मंत्र-तत्र ढूँढ़ लिये हैं, जिनके आधार पर प्रतिकूल ग्रह-नक्षत्रों को अनुकूल और अनुकूलों को प्रतिकूल बनया जा सकता है ।" भाग्यवाद की यह नई शाखा बनकर देखते-देखते तैयार हो गई और इसे फलित ज्योतिष के नाम से जोर-शोर के साथ प्रख्यात कर दिया गया । देखते-देखते ढेरों ग्रन्थ इस संदर्भ में बनकर खड़े हो गये ।

ज्योतिष-शास्त्र की वास्तविकता– ज्योतिष-शास्त्र भारत में प्राचीन शास्त्र है । भारतीय ऋषियों ने उसकी खोज में अपने जीवन खपाये थे । ग्रहों की चाल उनकी कक्षाएँ, वेध, उदय-अस्त की गणना उन्होंने उन परिस्थितियों में कितनी सूझबूझ एवं परिश्रम के साथ की है, उसके लिए आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता है और उनके महान् प्रयासों के लिए हमारा मस्तक श्रद्वा से नत् हो जाता है । ज्योतिष विद्या का विस्तार भारत से ही समस्त संसार में हुआ । यहाँ बडी-बड़ी वेधशालाऐं बनीं । दुर्बीनों तथा इन दिनों जैसे परिष्कृत मंत्र उस समय न थे फिर भी उन्होंने वेधशालाएँ बनाकर ग्रहचार का महत्त्व-पूर्ण अनुसंधान करने में सफलता प्राप्त की । अनेक आर्य ग्रन्थ इस संदर्भ में लिखे गये । आज रूस, अमेरिका आदि देशों ने ज्योतिष-शास्त्र में असाधारण प्रगति की और उसी के आधार पर अन्तरिक्ष में कृत्रिम ग्रह उपग्रहों का भेज सकना, उन्हें निर्देशानुसार गति प्रदान करना, लौटाना आदि कैसे सम्भव होता यदि ज्योतिष-शास्त्र की इतनी उन्नति न होती । यह एक अत्यन्त उपयोगी विद्या है । विज्ञान के विद्यार्थी जानते हैं कि अब उस सम्बन्ध में जो शोध एवं अन्वेषण हो रहे हैं, उनने मानव-जाति का भविष्य अब ज्योतिष-शास्त्र के ही हाथ में सौंप दिया है । इस विद्या का सर्वोपरि ज्ञान जिस देश के पास होगा भविष्य में विश्व का राजनैतिक नेतृत्व उसी के हाथ में चला जायगा । आकाश से पृथ्वी के नियंत्रण की अनेक योजनाएँ अगले दिनों ज्योतिष विद्या के विद्वान कार्यान्वित करने जा रहे हैं।

यह सब ठीक है, पर यह सब समझ में आने लायक बात नहीं है कि आकाश में रहने वाले जड़ ग्रह-नक्षत्र मनुष्य कैसे प्रभावित करते हैं ? यह हो सकता है कि किसी ग्रह-नक्षत्र की कोई किरणें पृथ्वी पर आवें और उनका कोई विशेष प्रभाव समस्त पृथ्वी पर या उसके किसी भाग पर पड़े, पर यह कैसे सम्भव है कि एक ही घर या गाँव में रहने वाले, अलग-अलग व्यक्तियों पर, अलग-अलग प्रभाव वे ग्रह-नक्षत्र डालें और किसी को कोई लाभ तथा किसी को कोई हानि पहुँचावें ? अब विज्ञान की उन्नति ने ग्रह-नक्षत्रों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर ली है । किसी जमाने में भले ही उन्हें सर्वशाक्तिमान देवता माना जाता हो, पर अब तो वे निर्जीव पिण्ड मात्र सिद्व हो चुके हैं । चन्द्रमा के सम्बन्ध में तो इतनी अधिक जानकारी प्राप्त कर ली गई है कि अब उस पर मनुष्य के उतरने, ठहरने और बसने तक की योजना बनने लगी है । विज्ञान ने यह भ्रम दूर कर दिया है कि चन्द्रमा कोई देवता है कि अब उसकी एक निर्जीव भौतिक पिंड से अधिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और कोई स्थिति नहीं रह गई है । साहित्य और कविता में उसको भले ही अलंकार के रूप में प्रयुक्त किया जाता रहे पर बुद्धिजीवियों की दृष्टि में उसका वैसा मूल्य नहीं रह गया है । यही बात अन्य ग्रहों के बारे में भी हैं । अभी तक केवल मंगल के बारे में यह कल्पना की जा रही है कि शायद उस पर जीवधारियों के रह सकने की परिस्थिति हो । शेष में तो हवा पानी तक का अस्तित्व सन्दिग्ध बना हुआ है । कई तो सूर्य की तरह अग्नि–पिण्ड मात्र हैं । ऐसी दशा में वे वेचारे भारत वर्ष के भाग्यवादियों में से गिन-गिनकर कैसे इतना सब कर पावेंगे कि कब किस पर प्रसन्न और कब किस पर अप्रसन्न रहें ? कब किसे कितनी, किस प्रकार की हानि पहुँचावे और किसे कितना लाभ दें । निश्चित रूप से यह सर्वथा असम्भव बात है ।

आश्चर्य-जनक उलट बांसी-- फिर भी कितने आश्चर्य की बात है कि गणित ज्योतिष-शास्त्र के महा विज्ञान के साथ फलितवाद की यह कीचड़ चिपक गई । लोगों ने कैसे स्वीकार कर लिया कि उनकी क्रिया, प्रतिभा एवं योग्यता नहीं वरन् ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति उनके शुभ-अशुभ लाभ, हानि की उत्तरदायी है । यह भ्रम जंजाल उन्हीं दिनों की उपज है जिन दिनों अन्यायी सत्ताधारी शोषित जनता में प्रतिशोध और प्रतिरोध उत्पन्न न होने देने के लिए भाग्यवाद की अफीम वितरण करा रहे थे। पण्डितों ने एक कदम और आगे बढ़कर हाथ मारा। उन्होंने उसी शृंखला में एक नई शाखा और खड़ी कर दी । उन्होंने बताया कि केवल विधि का विधान एवं भाग्य की रचना ही नहीं वरन् ग्रह-नक्षत्र भी किसी व्यक्ति के सुख-दुःख का कारण होते हैं । भाग्य को अटल कहा जाता था, इसलिए उसमें तो किसी हेर-फेर की गुंजायश थी नहीं, ग्रह-नक्षत्रों के बारे में यह कहा गया कि वे बदलते-पलटते रहते हैं और कुछ मंत्र–तंत्र ऐसे हैं जिनसे उनकी प्रतिकूलता अनुकूलता में बदली जा सकती है । यह विश्वास तथाकथित फलित ज्योतिष की पुस्तकें गढ़ कर जब पैदा कर दिया गया तब यह सरल ही था कि ज्योतिषी लोग उसके सहारे अपनी पाँचों उगली घी में रखें और भ्रम-ग्रस्त जनता से मनमाना लाभ उठावें ।

फलादेश कहने में चतुरतार्वूक मनोविज्ञान का प्रयोग किया जाता है । हर व्यक्ति के बारे में उसके जन्म दिन को लेकर ऐसी बातें कहीं जाती हैं जिनमें से अधिकांश हर व्यक्ति के बारे में लागू हो सकती हैं । जो खाँचे ठीक बैठ जाते हैं उनके आधार पर मनुष्य यह अनुमान लगा लेता है कि ज्योतिष की बात बिल्कुल ठीक हैं । बेचारा उन बातों की उपेक्षा ही करता रहता है जो बिलकुल भी नहीं मिलतीं और सर्वथा गलत होती हैं । भाग्यवाद पर विश्वास करने वाले भोले लोगों के बहकाने और ठगने का यह सरल तरीका है जो आजकल फलित ज्योतिष के नाम पर चल रहा है ।

पद-दलितों के लिये अफीम-- भाग्यवाद के अनेकों प्रयोजन हैं और वे सभी एक से एक बढ़कर हेय हैं । भारत में कुछ वंशों को नीच और कुछ ऊँच माना जाता है । जिन्हें नीच माना जाता है, उन्हें मानवोचित नागरिक अधिकारों से वंचित रहना पड़ता है । लोग उन्हें छूते तक नहीं फिर अन्य प्रकार के सम्बन्ध रखने की तो बात ही क्या है ? अपना तिरस्कार और उपेक्षा भला किसे अच्छी लगेगी । जिनके नागरिक अधिकार छिने हैं, जिन्होंने तिरस्कृत और पद-दलित किया गया है, उनमें रोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है । शासकों के उत्पीड़ितों की तरह सामाजिक अन्याय भी तो मनुष्य को कष्टकर होता है । अन्याय की प्रतिक्रिया कभी भी उग्र रूप धारण कर सकती है । उससे कैसे बचा जाय ? उच्च वर्ण के तथाकथित अहंकारियों को यही तीर इस प्रयोजन के लिए भी उपयुक्त जँचा । ऊँच-नीच की परिपाटी ईश्वर ने चलाई है, शास्त्रों में लिखी है, भाग्य से ही ऊँच या नीच कुल में जन्म मिलता है । इस मान्यता को अन्याय-ग्रस्त लोगों के मन में बिठाये रखा जाय तो वे भी जो कुछ हो रहा है, उस पर सन्तोष करते रह सकते है, और यथा स्थिति को बचाये रहने में सहमत हो सकते है । जो लोग किसी वर्ग को पिछड़ा रखकर उनके शोषण का लाभ उठाना चाहते हैं उनके लिये यह भाग्यवादी विचारधारा बहुत ही लाभकर सिद्व हो सकती थी, हो रही है और जब तक यह जीवित है, तब तक होती भी रहेगी । अछूत जातियों की तरह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारी-जाति की भी पद-दलित स्थिति हमारे समाज में विद्यमान है । उसे पर्दे के अन्दर बन्द घर में पिंजड़े के पक्षी की तरह जिन्दगी गुजारनी पड़ती है । पुरुष की हर दृष्टि से बाधित दासता स्वीकार करनी होती है । न्याय और विवेक कहता है कि क्या नर, क्या नारी दोनों का स्तर और अधिकार समान है । इसलिए दोनों को समान अवसर उपलब्ध होने चाहिए, पर मनुष्य की शैतानी का अन्त नहीं । उसने पहले पशुओं को गुलाम बनया, फिर पिछड़े हुए मनुष्यों को, फिर स्त्रियों को । अपनी इस क्रूरता को उचित एवं ईश्वर-निर्देशित बनाने के लिए उसने एक दर्शन ही गढ़ दिया उसी दर्शन का नाम है-भाग्यवाद !

संसार की गतिविधियाँ देखें- संसार में अन्यत्र कहाँ क्या हो रहा है इस पर दृष्टि उठाकर देखिए । गोरे और काले रंग के नाम पर भारत के अछूतों जैसा जो अन्याय अफ्रीका महाद्वीप में चल रहा था वह देखते-देखते हवा हुआ जा रहा है । अमेरिका के नीग्रो मानवीय अधिकार प्राप्त कर चुके । राष्ट्र संघ के माध्यम से विश्व की जनता ने मनुष्य-मनुष्य के बची बरते जाने वाले भेद-भाव को अनैतिक ठहरा दिया और उसके उन्मूलन का विश्वव्यापी प्रयत्न हो रहा है । यदि भाग्य से ही ऊँच-नीच बनना पड़ता तो ईश्वर के अटल विधान में ऐसा परिवर्तन कैसे सम्भव होता । धनी और निर्धन के भेदभाव साम्यवादी देशों में समाप्त हो गये । यदि यह अन्तर ईश्वर कृत ही होता तो संसार की लगभग एक तिहाई आबादी इस अन्तर को मिटा डालने में सफल कैसे हो गई ? यदि "दिल्लीश्वरों वा जगदीश्वरों " की उक्ति ठीक रही होती तो अंग्रेज यहाँ से क्यों उखाड़ फेंके गये होते स्त्रियाँ यदि भाग्य से ही निकृष्ट स्तर की पैदा की गई होतीं तो संसार के प्रगतिशील देशों में वे क्यों पुरुषों से भी बढ़कर पुरुषार्थ दिखला रही होतीं ? यदि भाग्य ही उन्नति-अवनति का कारण रहा होता तो रूस वाले ४० वर्षों में और अमेरिका वाले ८० वर्षो में गई गुजरी स्थिति से उठकर सर्वोच्च स्थिति पर क्यों जा पहुँचे होते ? और भारत जैसा धार्मिक देश जहाँ ग्रह-नक्षत्रों और देवी-देवताओं की दिन-दिन पूजा-आराधना होती रहती है ? क्यों हजारों वर्षों से इस अधः पतित स्थिति में पड़ा होता । हमारे ज्योतिषी, तन्त्र—मंन्त्र, देवी-देवता, कुछ नहीं तो चीन और पाकिस्तान के आक्रमण-कारियों को ही पीछे हटा देते तो भी उनकी शक्ति एवं वास्तविकता का कुछ पता चल जाता ।

हमें विचार करने को अपनी पद्वति को सुधारना पड़ेगा । मानसिक आलस्य को छोड़ना पड़ेगा और वस्तुस्थिति को परखना पड़ेगा । विवेक की कसौटी को उपेक्षणीय ही बनाये रहेंगे तो लाभ कुछ नहीं हानि अपार है । अन्धकार के अव्यस्त हो जाने के कारण हो सकता है हमें प्रकाश की उपयोगिता न जँचे । उसे देखकर बुरा लगे और प्रकाश का विरोध एवं अन्धकार का समर्थन करना अच्छा लगे, पर इससे कुछ बनने वाला नहीं है । वस्तुस्थिति ज्यों-की त्यों बनी रहेगी । हमारे भ्रमग्रस्त बने रहने से वास्तविकता तो बदल जाने वाली नहीं है । शिकारी को सामने देखकर भयभीत शुतरमुर्ग अपने बचाव के लिए कोई और उपाय न देखकर बालू में मुँह गाड़ लेता है और सोचता है मैंने देखना बन्द कर दिया तो शिकारी का अस्तित्व भी समाप्त हो गया होगा, पर वैसा होता कहाँ है ? शिकारी उसे दवोच लेता है और बेचारे शुतरमुर्ग को अपनी जान गँवानी पड़ती है । हम अपनी कठिनाइयों की जिम्मेदारी भाग्य के ऊपर, विधाता के उपर, ग्रह नक्षत्रों के ऊपर थोपना चाहें तो थोंपें । इससे झूठा आत्म-संतोष मिल सकता है । अपनी हीनता के लिए आत्म-ग्लानि करने और सुधार के लिए पुरुषार्थ करने का झंझट जरूर बच सकता है, पर इससे प्रयोजन तो कुछ भी हल न होगा । कठिनाइयों में रत्ती भर भी कमी न होगी वरन् वे बढ़ती ही चली जायेंगी ।

किसी विशेष प्रयोजन के लिए-- जब कोई व्यक्ति असफलता, वियोग एवं हानि के आघात से क्षुब्ध उद्विग्न हो रहा हो, तब उसे शांति देने के लिए भाग्य, होतव्यता जैसी बात कहीं जा सकती है । शिर दर्द बहुत तेजी से होता है तो 'एस्प्रो' की गोली खा सकते हैं; पर वे गोलियाँ रोज की खुराक का एक अंग नहीं बन सकतीं । कोई आकस्मिक दुर्घटनाएँ ऐसी हो जाती हैं जिनमें मनुष्य का कोई बस नहीं होता, उसमें अपनी गलती भी नहीं होती, पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संयोगवश कुछ अप्रत्याशित कारण उपस्थित हो जाते हैं और कोई आकस्मिक हानि-लाभ सामने आ जाता है । यद्यपि वे संयोग मात्र ही होते हैं, पर उन्हें चाहें तो भाग्य भी कह सकते हैं । इसी प्रकार कोई जन्म-जात अन्धे-अपंग , पैतृक रोगों से ग्रस्त उत्पन्न होते हैं, इन्हें भाग्य कहा जा सकता है यद्यपि उसमें भी माता-पिता के कोई या अज्ञात दोष दिये रहते हैं । कुछ ऐसे कारणों को छोड़कर आमतौर से मनुष्य अपने ही शुभ-अशुभ पुरुषार्थ का भला-बुरा फल भोगता रहता है, उचित यही है कि अधिक प्रगति के लिए अधिक व्यवस्थित पुरुषार्थ की बात सोची जाय और जो असफलता मिली है उसमें अपना दोष जितने अंशों में रहा हो उसे सुधारा जाय । कभी-कभी परिस्थितियां भी असफलता का कारण होती हैं, पर उससे निराश क्यों हुआ जाय ? अमुक असफलताऐं सहते हुए भी जिसका पुरुषार्थ प्रबल बना रहे, उसे आज नहीं तो कल सफलता मिलनी ही है । एक बार की असफलता से निराश होकर पुरुषार्थ छोड़ बैठना और भाग्य की प्रतिकूलता को दोष देने लगना किसी विचारशील मनुष्य को शोभा नहीं देता ।

यदि पूर्व-जन्म के कर्मों के अनुसार भाग्य का बनना माना जाय तो भी प्रधानता कर्म की ही सिद्व होती है । कल जिस वस्तु का नाम दूध था जो पतला था, आज वह दही बन गया, गाढ़ा दीखने लगा तो भी प्रधानता तो दूध की ही रही । दूध न होता तो दही कहाँ से आता । यदि पिछले जन्म के शुभ-अशुभ कर्मों से ही इस जन्म में हमें भले-बुरे फल प्रारब्ध रूप में भोगने पड़ रहे हैं तो भी इतना तो मानना ही चाहिए कि कर्म ही प्रधान है । रामायण की वह उक्ति सार्थक ही है जिसमें कहा गया है कि-"कर्म प्रधान विश्व कर राखा । जो जस करे सो तस फल चाखा" अपने कर्मो के अतिरिक्त हमारे भाग्य और भविष्य के बनाने बिगाड़ने वाला जब कोई और है ही नहीं तो क्यों न हम अपने कर्मों की प्रखरता एवं उत्कृष्टता को बढ़ाने पर ही अपना सारा ध्यान केन्द्रित करें ।

बौद्धिक आलस्य छोड़ें-- बौद्धिक आलस्य हमें छोड़ना ही चाहिए । अन्धकार में भटकने की प्रवृति से बचना ही चाहिए । हमें अपने विचार-क्षेत्र में प्रविष्ट हुई हर मान्यता को खरे-खोटे की कसौटी पर कसना चाहिए और देखना चाहिए कि इनमें क्या उपयुक्त और क्या अनुपयुक्त है ? अन्ध-विश्वासों से हमें पीछा छुडाना ही होगा, उनसे लाभ कुछ नहीं, हानि बहुत है । ऐसे ही अनुपयुक्त विश्वासों में एक है बहुचर्चित "भाग्यवाद" । इस मान्यता पर विश्वास करने से हमारी किया शक्ति कुंठित होती है, निराशा घेरती है, उत्साह शिथिल पड़ता है और हीनता की वृत्ति उदय होती है । आत्म-निरीक्षण, आत्म-शोधन और आत्म-विकास का अवसर ही चला जाता है । जब अभावों और असफलताओं के सम्बन्ध में अपनी त्रुटि होने की बात सोचने की अपेक्षा भाग्य-दोष मानकर मिथ्या आत्म-संतोष कर लिया जाय तो फिर कोई क्यों अपनी गलती ढूँढ़ेगा और क्यों उसे सुधारेगा ? इस जंजाल में दूसरों द्वारा ठगे जाने की पूरी-पूरी गुंजायश है । ग्रह-नक्षत्र के एजेन्ट आम तौर से ऐसे ही मूढ़ विश्वासियों को ग्रह-शान्ति के नाम पर बुरी तरह ठगते और अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं ।

भाग्यवाद हमें वस्तुस्थिति को समझने और उसका निराकरण करने की क्षमता से वंचित करता है । उससे हमारा विवेक कुण्ठित होता है और तर्क-विचार एवं खोज-बीन करने में रुचि नहीं रह जाती । यह स्थिति मानवीय प्रगति में भारी बाधा है । अभावों और कठिनाइयों की वास्तविकता तभी समझ में आती है, जब उनका मूल कारण विदित हो और यह जानकारी तभी सम्भव है, जब मस्तिष्क की गतिशीलता को भाग्यवाद जैसी कुण्ठाओं ने अवरुद्ध न कर रखा हो । भलाई की प्रशंसा और बुराई की निन्दा होनी चाहिए । मनुष्य के कर्त्तव्य को उसकी उन्नति-अवनति के लिए उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए, तभी तो वह अपने मार्ग-निर्धारण में सावधानी बरतेगा, यदि भाग्यवाद की सरल आड़ मिल जाय तो हर आलसी, निकम्मा, काम-चोर, काहिल, कुमार्गगामी व्यक्ति अपनी त्रुटियों को न तो स्वीकार करेगा और न सुधारेगा, वरन् जब दुष्परिणामों के कारण भर्त्सना सुनने का अवसर आवेगा तब चट से भाग्यवाद की आड़ लेकर अपने आपको निर्दोष सिद्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने का प्रयत्न किया करेगा । इस स्थिति से बचने के लिये यही उचित है कि हम विचारशील बनें और भाग्यवाद जैसी अनुपयुक्त अविवेकपूर्ण और असंगत विचारधाराओं को अपने विचार क्षेत्र से हानिकारक झाड़-झंखाड़ों की तरह उखाड़ कर फेंक दें ।

कर्म से भाग्य का निर्माण– भाग्य का दूसरा नाम "कर्म" भी है । कहते हैं-"हमारे करम में ऐसा ही लिखा था ।" कहते है-"करम रेख नहि मिटै, करै कोई लाखों चतुराई" इस उक्तियों में कर्म शब्द का भी भाग्य के अर्थ में प्रयोग किया गया है । यही उचित भी है । जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फल मिलता है । मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं ही है । वह जैसे भले-बुरे कर्म करता है, उसी के अनुरूप अपनी उन्नति-अवनति का पथ-प्रशस्त करता चलता है । रामायण की वह उक्ति सार्थक ही है-"कर्म प्रधान विश्व कर राखा। जो जस करे सो तस फल चाखा।" जैसा बोते हैं, वैसा ही तो काटना पड़ता है । "बोवे पेड़ बबूल का आम कहाँ से होय" ।

करम में क्या लिखा है, क्या लिखाकर लाये हैं। इस खोज-बीन में समय नष्ट करना सर्वथा निरर्थक है । यदि भक्तिव्यता मिटने वाली ही नहीं है, तो भी उसका जानना हानिकारक है और यदि मिट सकती है तो भी उसके जानने की आवश्यकता नहीं है । मान लीजिए कि अपनी या अपने किसी प्रियजन की इतने दिन पश्चात् मृत्यु होने वाली है यदि यह बात मालूम हो जाय तो इतने दिन पूर्व से ही शोक मनाना, दुःखी एवं उद्विग्न रहना प्रारम्भ हो जायेगा, निराशा छा जायेगी । या तो मोह बढ़ेगा या उपेक्षा । भविष्य जानने के कारण उत्पन्न हुई इस मानसिक अस्त-व्यस्थता के कारण साधारण दैनिक कार्यों में भी कठिनाई उत्पन्न होने लगेगी । स्पष्टतः क्षुब्ध व्यक्ति न तो किसी से ठीक तरह व्यवहार कर सकता है और न उसका कोई काम ही ठीक तरह हो पाता है । फलतः नये-नये दुष्परिणाम सामने आने लगते है । यदि यह बुरा भविष्य पहले से प्रतीत न हुआ होता तो अन्तिम समय तक सामान्य स्थिति बनी रहती और जो कष्ट होने वाला होता, समय पर हो लेता ।

यदि भाग्य किसी जप, पूजन आदि से टल सकता है, तब उसका कोई महत्त्व ही नहीं रहता। उपाय करने से जो बदल गया वह भविष्यता कैसी? उसे तो एक खाँसी, जुकाम जैसी छोटी-सी सम्भावना मात्र समझना चाहिए । जो साधारण दवा–दारू से अच्छे होते रहते हैं । थोड़ी सी पूजा-पत्री करा देने पर जो शनिचर या राहू अपना दुष्परिणाम बन्द कर सकता है, जो सम्भावना किसी के आशीर्वादी वरदान या अनुष्ठान से टल सकती है, उससे कुछ भी डरने की आवश्यकता नहीं है । उसे किसी और उपाय से भी टाला जा सकता है। जो जुकाम होम्योपैथी की दवा खाने से अच्छा हो सकता है, उसके लिए आयुर्वेद ऐलोपैथी, प्राकृतिक चिकित्सा जैसे उपचार भी कारगर हो सकते हैं । पूजन के अतिरिक्त सत्प्रयत्न और उत्साहपूर्ण परिश्रम भी वह उपाय हो सकता है जिससे हम अब तक की कठिनाइयों एवं बुरी परिस्थितियों को बदल सकें और भविष्य के लिए अशुभ सम्भावनाओं के स्थान पर आशाजनक परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकें ।

कर्म ही प्रधान समझें और कर्मठता अपनावें- वस्तुतः इस संसार में कर्म की ही प्रधानंता है । भाग्य यदि कोई वस्तु होता भी हो तो उसे अपने कर्मों का प्रतिफल ही कहना चाहिये । कर्मों के द्वारा यदि बुरे भविष्य के बुरे परिणामों की स्थिति हमने उत्पन्न की है तो यह भी कर सकते हैं कि श्रेष्ठ कर्मों का सम्बल पकड़ें और उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करें । आहार में असंयम बरतने से पेट का दर्द हमने ही उत्पन्न किया वह दर्द कोई अमिट भाग्य रेखा नहीं है । औषधि लेकर उसका उपचार करके जितने समय तक दर्द की सम्भावना थी उसे कम या समाप्त भी कर सकते हैं । इसी प्रकार यदि पिछले दिनों कोई अशुभ कर्म किये हैं और उनके फलस्वरूप बुरे भविष्य की सम्भावना बन भी गई है तो नया सत्प्रयत्न उसे समाप्त भी कर सकता है । वाल्मीकि डाकू थे, उनने जो दुष्ट कर्म किये थे उनके फलस्वरूप उनका भविष्य अन्धकारमय एवं कष्टप्रद होना चाहिये था, पर जब उनने अपना जीवन क्रम बदल दिया और सन्त बन गये तो उस कार्य-परिवर्तन के साथ-साथ उनका भाग्य -परिवर्तन भी हो गया । उन्हें नारकीय यातनायें नहीं सहनी पड़ीं, वरन् वे सम्मानपूर्ण श्रेष्ठ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एवं सुखी जीवन बिता सकने के अधिकारी बन गये। नये सत्कर्म आरम्भ कर देने से पुरानी भूल-चूकों पर पर्दा पड़ सकता है । टूटी-फूटी, पुरानी मैली-कुचैली दीवार पर यदि सीमेन्ट, प्लास्टर, सफेदी, आदि की व्यवस्था कर दी जाय तो वह फिर नई एवं सुन्दर दीखने लगती है । पिछले दुष्कर्मों का प्रायश्चित करके यदि भविष्य के लिए सत्कर्मों की क्रम व्यवस्था बना ली जाय तो किसी का बुरे से बुरा भविष्य एवं भाग्य भी आनन्द एवं अच्छाई के रूप में परिणत हो सकता है ।

हमें व्यर्थ की शंका-आशंकाओं के जंजाल से निकलकर आशावान् उत्साही और कर्मशील बनना चाहिये । यह विश्वास करना चाहिये कि मनुष्य का प्रयत्न एवं परिश्रम ही उसका भाग्य एवं भविष्य का निर्माण करता है । उसे किसी दूसरे से नहीं अपने से ही पूछना चाहिये । ज्योतिषी की अपेक्षा हम अपना भाग्य अधिक अच्छी तरह जानते हैं, क्योंकि अपने को ही यह पता रहता है कि पिछले दिनों जीवन-क्रम क्या रहा है और उसका प्राकृतिक परिणाम क्या हो सकता है ? भविष्य वाणी का यही आधार सर्वोत्तम है । इसी प्रकार यदि भाग्योदय की आकांक्षा हो तो अपने मन देवता की मनौती मनानी चाहिये और उसे ही अपनी गति-विधियाँ सुधारने के लिये मनाना चाहिये ।

अपने भाग्य के निर्माता हम स्वयं हैं । भाग्य और कुछ नहीं पुरूषार्थ की छाया मात्र है । कर्मशील व्यक्ति का भाग्य अनुचर की तरह उसके पीछे-पीछे फिरता है । गम्भीरतापूर्वक अपनी कार्य–पद्धति एवं विचारधारा में रहने वाली त्रुटियों को ढूँढना चाहिये और उनके सुधारने के लिए तत्परतापूर्वक कटिबद्ध हो जाना चाहिये । हमारा भाग्योदय होकर रहेगा । भाग्यवान बनकर रहेंगें ।

समन्वय और सहिष्णुता--

सहिष्णुता भारतीय संस्कृति की एक विभूति है । हम दूसरों की परिस्थितियों को समझते हुए भी, विचार भिन्नता होते हुए भी सहिष्णु हैं । समस्त जीवों के प्रति उदार हैं । सभी मनुष्यों को अपने समान समझते हैं और उनके प्रति प्रेम-भाव रखते हैं । तदानुसार अपने कार्य करते है–यह विचार हमारी संस्कृति में सच्चे रूप में पाया जाता है ।

समाज में कुछ नीची, अछूत या संकर जातियाँ भी हैं । विकृति के कारण विबिध जातियाँ उत्पन्न हुई है । वर्णशंकर को दोष मानते हुए भी हमारे यहाँ यह विधान है कि वे अपने-अपने धर्म में रहकर अपना-अपना धन्धा करती रहें, तो वह किसी प्रकार मिथ्या नहीं है । भोजन के समय भी यदि कोई चाण्डाल अतिथि रूप से आये, तो उसका भी भोजन इत्यादि से सत्कार करने का हमारे यहाँ विधान है ।

इस संस्कृति में बीज-शुद्वि का विचार विशेष होने से अपने-अपने वर्ण में विवाह करना उचित माना गया है । उच्च वर्णों में उच्च संस्कार भरे हुए हैं । यदि उच्च वर्ण उच्चवर्णो में ही विवाह इत्यादि सम्बन्ध करेंगे, तो बीज-शौच बना रहेगा । बीज में खराबी नहीं आनी चाहिए, अन्यथा सारा समाज ही अपने संस्कारों को दूषित कर लेगा । इसीलिए स्त्रियों में बीज-शौच का महत्त्व है । हमारे यहाँ कहा गया है-

गोप्यः स्वायां मनोवृत्तिर्नासहिष्णुर्नरो भवेत् ।
स्थिति मज्यश्स्य वै वीक्ष्य तद्नुरूप माचरेत् ।।

अर्थात् "अपने मनो भावों को छिपाना नहीं चाहिये । मनुष्य को असहिष्णु नहीं होना चाहिये । सदा सर्वदा दूसरों की परिस्थिति का भी ध्यान रखना चाहिए ।"

भारतीय संस्कृति में संकुचितता नहीं है । वह यह स्वीकार करती है कि प्रत्येक मनुष्य का सदृष्टिकोण, विचार, अनुभव, अभ्यास, ज्ञान, स्वार्थ, रुचि एवं संस्कार अलग-अलग होते हैं । इसलिए हर व्यक्ति को दूसरों के प्रति उदार होना चाहिये। अपने से किसी भी बात में मतभेद रखने वाले को अज्ञानी मान लेना उचित नहीं है । ऐसी असहिष्णुता ही बहुधा झगड़ों की जड़ होती है । एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझकर समझौते के मार्ग से चलना उचित माना है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वत्र स्वच्छता रखना--

शौच हमारे यहाँ महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । हमारे यहाँ इस स्वच्छता को शिक्षा प्रारम्भ से ही ऋषि-मुनियों के आश्रमों में ब्रह्मचर्य साधना और विद्याध्ययन के साथ दी जाती रही है । प्रत्येक हिन्दू का कर्त्तव्य है कि वह स्वयं स्वच्छ रहे, अपने घर की वस्तुओं तथा वातावरण को स्वच्छ रखे । वस्त्र स्वच्छ पहिने, स्वच्छ वस्त्रों से भोजन पकाये और स्वच्छ चौके में बैठ कर भोजन करे । हर प्रकार से स्वच्छ और संयम से रहने पर हमारे यहाँ जोर दिया गया है ।

शौच का अर्थ केवल बाहरी सफाई नहीं है, प्रत्युत आंतिरिक स्वच्छता पर ही सदा हमारा ध्यान रहा है । पाप की भावनाएँ, विषय-भोग की कुत्सित वासनाओं से मन को गन्दा न करना भी इसी में सम्मिलित है । आन्तिरिक जीवन भी शुचि होना चाहिये। आन्तर-शौच, बीज-शौच और अर्थ-शौच इत्यादि नाना रूपों में आन्तरिक स्वच्छता बनाये रखने की गम्भीर व्यवस्था भारतीय संस्कृति में निहित है ।

बसतां मा पवित्रः सन् बाह्यतोऽभ्यन्तरस्तथा ।
यतः पवित्रासयां हि राजतेअति प्रसन्नता ।।

अर्थात् "मनुष्य को बाहर और भीतर से पवित्र रहना चाहिये, क्योंकि पवित्रता में ही प्रसन्नता रहती है ।"

पवित्रता में चरित्र की प्रसन्नता, शीलता, शांति, निश्चिन्तता, प्रतिष्ठा और सफाई छिपी रहती है । कूड़ा–करकट, मैल, विकार, पाप, गन्दगी, दुर्गन्ध, सड़न, अव्यवस्था एवं घिचपिच से मनुष्य की आन्तरिक निकृष्टता प्रतीत होती है । भारतीय संस्कृति सर्वत्र स्वच्छता पर जोर देती है । यह सत्य भी है कि आलस्य और दारिद्रय में मलीनता रहती है । जो मलीन प्रकृति के हैं, उनके वस्त्र, घर, सामान, शरीर, मन आदि सब गन्दगी और अव्यवस्था से भरे रहते हैं । इसके विपरीत हिन्दू संस्कृति सर्वत्र स्वच्छता चाहती है । हिन्दुओं में सर्वत्र चैतन्यता, जागरूकता, सुरुचि, सात्विकता पाई जाती है । स्वच्छता एक आध्यात्मिक गुण है। आत्मा स्वभावतः पवित्र और स्वच्छ है । अतः हिन्दू आत्म–परायण व्यक्ति, विचार और व्यवहार में सदा स्वच्छ और पवित्र है ।

शरीर की स्वच्छता पर तो इतना जोर दिया गया है कि स्नान हमारी संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग ही बन गया है । स्नान का बड़ा गहरा अर्थ है--

न जलाप्लुत देहस्य स्नानाभित्यभिधीयते ।
स स्नांतो यादमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः ।।

"जल में शरीर को डुबो लेना मात्र स्नान नहीं कहलाता । जिसने दम रूपी तीर्थ में स्नान किया है, मन इन्द्रियों को वश में कर रखा है, उसी ने वास्तव में स्नान किया है । जिसने मन के मैल को धो डाला, वही शुद्ध है ।"

भारतीय संस्कृति में शारीरिक स्वच्छता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है । मुसलिम और ईसाई संस्कृतियों में स्नान का कही उल्लेख तक नहीं है। मुसलमान केवल हाथ और पाँव धो लेने मात्र को ही शारीरिक स्वच्छता मान लेते हैं । ईसाई स्वच्छ वस्त्र धारण कर गिरजाघर में आराधना कर लेना यथेष्ट समझते हैं । यह शारीरिक स्वच्छता के बाहरी विधान मात्र हैं । यह हिंदू धर्म और भारतीय संस्कृति की ही विशेषता है जिसमें आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार की शुचिता का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। यही नहीं, स्नान को तो धर्म का एक अंग तक मान लिया गया है । हमारे जितने धार्मिक कृत्य या अनुष्ठान हैं, बिना स्नान द्वारा अपूर्ण हैं । सबमें पहले स्नान द्वारा शरीर को शुद्वि का विधान रखा गया है। स्नान करना स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बड़ा महत्त्वपूर्ण नियम है । इसकी अवहेलना करने से शारीरिक बीमारियाँ होने की सम्भावना है । अतः प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में शैय्या त्यागने के पश्चात् शौचादि कर्मों से निवृत्त होकर दैनिक स्नान का विधान है । स्नान के उपरान्त शारीरिक शुद्वि होने पर मन ईश्वर-चिंतन, भजन, स्वाध्याय में अधिक लगता है ।

"संस्कृति" शब्द का एक अर्थ है 'चमक' या बाहरी सफाई । संस्कृति में केवल संस्कारों का ही नहीं, बाहरी शारीरिक सफाई और शुद्वि का भी बड़ा महत्त्व है । स्वच्छ शरीर में ही स्वच्छ निर्मल आत्मा रह सकती है । जिसका शरीर गन्दगी है और मैल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से भरा हुआ है, वह भला क्यों कर सुसंकृत होगा । अतः स्नान द्वारा शारीरिक शुद्वि या शोभा बढाने का भी स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा हितकारी है ।

फिर भी कुछ ऐसे हिंदू बच रहते हैं, जो दैनिक स्नान नहीं कर पाते । उनके लिये कुछ ऐसे पर्वों या उत्सवों का विधान रखा गया है, जिनमें स्नान करने का अपेक्षाकृत अधिक पुण्य माना गया है । जैसे कुभ के दिनों में तीर्थों पर बड़े-बड़े पर्वों का विधान रखा गया है । हिन्दुओं के प्रायः सभी तीर्थ पवित्र नदियों के किनारे बसे हुए हैं, या उनके आस-पास पवित्र तालाबों का निर्माण किया गया है । नदियों को पवित्रता दी गई है और उनमें स्नान करने को धर्म में सम्मिलित कर लिया गया है। जो व्यक्ति साधारणतः स्नान नहीं भी करता, वह भी इन पवित्र नदियों या इन पर्वों पर तो विशेष रूप से स्नान करता ही है । फलतः स्वास्थ्य और सदीर्घ जीवन का सुख प्राप्त करता है ।

गंगा और यमुना आदि में स्नान को विशेष महत्त्व दिया गया है । हमारे प्राचीन ऋषियों ने गंगा जी को "सुधाकर" कहा है । सुधाकर वह है जो "सुधा" का घर हो, उपयोगी हो, जिसको ग्रहण करना मानव मात्र के लिए सुख और कल्याण का देने वाला हो । प्राणियों की प्रकृति, मन और आत्मा के सर्वथा अनुकूल होने के कारण गंगा जी को 'सुधा" संज्ञा सर्वथा सार्थक है । आयुर्वेद के मतानुसार गंगाजल शीतल, स्वच्छ, सुस्वादु, रोचक पथ्य, पाचक–पवित्र, तृष्णा एवं मोहनाशक, जठराग्नि और बुद्विवर्द्वक है । यों तो किसी भी जल से मनुष्य स्नान कर सकता है , किन्तु गंगाजी के जल में स्नान करने का बड़ा महात्म्य है। चित्तवृत्ति को शान्त रखने के लिए प्रातः ही गंगा-स्नान का विधान है । स्नान के अनेकानेक गुण होने पर भी केवल गंगा स्नान का सुयोग प्राप्त हो तो वह शरीर के सब विकारों को नष्ट करने वाला, जठराग्नि को दीप्त करने और शक्ति एवं प्रतिभा को बढ़ाने वाला है ।

श्री गौरीशंकर गुप्त का विचार है कि स्नान का स्वाभाविक गुण गंगाजल में विद्यमान है । यदि आप स्नान न भी करें, केवल पीने में उपयोग करें, तौ भी स्नान के गुण आपके शरीर में उत्पन्न हो जायेंगे । गंगाजल मानव-स्वास्थ्य के लिए परम उपयोगी और आरोग्यवर्द्धक है । स्वच्छ, रोचक एवं सुस्वादु होने के कारण ही मानव-रसना इसे सुगमता से ग्रहण कर लेती है । हिमालय की धातुओं, मणियों तथा दिव्य औषधियों के मिश्रण से लम्बी धारा में प्रवाहित होने के कारण गंगाजल विषनाशक, पुष्टिकारक व आरोग्य दायक है ।

वर्षा ऋतु में नदियों के जल का प्रयोग वर्जित है, किन्तु गंगा को छोड़कर "वर्जयित्व पुरायगाम्" ऐसा आदेश है । गंगा का जल स्नान तथा प्रयोग दोनों के लिए उपकारी है ।

भारतीय संस्कृति यह मानती है कि स्नान से केवल शरीर का, बाहर का ही मैल नहीं धुलता, वरन् इससे आन्तरिक शुद्वि में भी पर्याप्त सहायता मिलती है । जिसने शरीर को जल में डुबो लिया, वही स्नान नहीं कहलाता । जिसने दम रूपी तीर्थ में स्नान किया है, मन-इन्द्रियों को वश में कर रखा है, उसी ने वास्तव में स्नान किया है । जिसने मन का मैल धो डाला है, उसी ने सच्चा स्नान किया है । यह स्मरण रखना चाहिये, जो लोभी हैं, चुगलखोर है, निर्दय हैं, दम्भी हैं, वह सब तीर्थों में स्नान करके भी पापी और मलीन रह जाते हैं ।

"न शरीर मल त्यागान्नरो भवनि निर्मलः।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तः सुनिर्मलः।।"

अर्थात् केवल शरीर के मैल को उतार देने से ही मनुष्य निर्मल नहीं हो जाता । मानसिक मल का परित्याग करने पर ही वह भीतर से अत्यन्त निर्मल होता है ।

जल में निवास करने वाले जीव जल में ही जन्मते और मरते हैं, पर उनका मानसिक मल नहीं धुलता, इसी से वे स्वर्ग को नहीं जाते । विषयों के प्रति अत्यन्त आसक्ति को ही मानसिक मल कहा जाता है और उनमें वैराग होना ही निर्मलता कहलाती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों को पूरी तरह पालन करना

भारतीय संस्कृति अधिकारों के स्थान पर मनुष्यों के उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों पर अधिक जोर देती है । हम अनेक प्रकार के कर्त्तव्यों से बँधे हैं । माता, पिता, भाई, बहिन, पति, पत्नी, सन्तान, पड़ोसी, देश, विश्व तथा ईश्वर इन सबके प्रति हमारे कर्त्तव्य हैं । मनुष्यों को चाहिये कि वह अधिक से अधिक प्रयत्न कर इन जिम्मेदारियों को पूरी तरह निभाता चले । उत्तरदायित्व से शक्तियाँ बढ़ती हैं । मन में शान्ति रहती है । जहाँ कहीं उत्तदायित्व होता है, वहाँ कर्म द्वारा शक्ति बढ़ती जाती है । जिन मनुष्यों को जिम्मेदारी से काम नहीं करने पड़ते, उनकी वास्तविक शक्ति का कभी विकास नहीं होता ।

भारतीय संस्कृति में धर्म का अर्थ है कर्त्तव्य । भारतीय गृहस्थ हो चाहे संयासी, दूसरों की भलाई के लिये कर्त्तव्य धर्म समझ कर करेगा । ऐसे कर्त्तव्य धर्म को जो भी स्वीकार कर लेता है, उसे न कठिनाइयाँ प्रतीत होती हैं और न दुःख-शोक ही सताते हैं । उत्तरदायित्व में बँधे रहने वाला व्यक्ति अपने समय तथा शक्ति का सच्चा उपयोग करता है । आलस्य में कभी पड़े रहना नहीं चाहता ।

"निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वास्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेच्छम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।

"नीति विशारद लोग चाहे निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी आवे या स्वेच्छानुसार चली जाय, मृत्यु आज ही हो अथवा युगयुगान्तर में, किन्तु कर्त्तव्यनिष्ठ, धीर पुरुष न्याय के पथ से विचलित नहीं होते ।"

अपने उत्तरदायित्वों को पूर्ण करना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है । सत्यवादी हरिश्चन्द्र, वीर केशरी छत्रपति शिवाजी को कर्त्तव्य-पालन में जैसा कठोर दुःखों का अनुभव हुआ, वह सर्वविदित है । सतयुग में शिवि, दधीचि, त्रेता में मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, द्वापर में धर्मराज युधिष्ठिर ने कर्त्तव्यों के पालन में भारतीय संस्कृति का मान रखा था । आधुनिक युग में राणाप्रताप और छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह जैसे कर्त्तव्यनिष्ठ पुरुष उत्पन्न हुए हैं । कर्त्तव्य परायणता भारतीय संस्कृति का एक अमूल्य रत्न है, जिसके कारण राष्ट्र और समाज का अभ्युत्थान हुआ करता है ।

अनीति से लड़ना और धर्म-भावनाओं की रक्षा के लिये कष्ट सहने को तैयार रहना

सत् चित आनन्द रूप में आत्मा इसलिये इस भूलोक में भेजी गयी है कि सत्य के लिए, नीति के लिए, धर्म के लिए सदा प्रयत्न करती रहे । असत्य तथा अज्ञान के अन्धकार में न फँसे । असत्य तथा अज्ञान से बच कर धर्म और सत्यता को ग्रहण करे और अपनी बुद्धिमत्ता को समुचित पुरस्कार पाये । धर्म का उद्देश्य मनुष्य तथा समाज को सर्वतोमुखी उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करके अन्ततः चरमलक्ष्य—शाश्वत् सुख और परमानन्द की प्राप्ति कर लेना है । धार्मिक व्यक्ति का शरीर और मन स्वस्थ रहना चाहिए । उसके मुख और वाणी से अमृत का झरना बहना चाहिए, जिसको पान करने से प्राणियों में शीतलता का भाव हो । धार्मिक व्यक्ति ऐसा प्रकाश स्तम्भ होना चाहिए, जिसकी पुण्य रश्मियों से प्रकाश का आविर्भाव हो और उस प्रकाश की प्रेरणा में प्राणि मात्र को सुख का मार्ग प्राप्त हो। धर्म आत्मा का गुण है, जिससे संसार सुख शान्तिमय बनता है ।

इस प्रकार के धर्म की स्थापना के लिये भारतीय वीर संघर्ष करते रहे हैं । अनीति और अन्याय से लड़े हैं । धर्म की पुकार पर गृहस्थ वीरों तक ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है । भारत के असंख्य गृही नवयुवक अन्याय और अधर्म को दूर करने के लिये अपनी जान पर खेले हैं । प्राचीन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भारत में अनेक ऐसे महात्मा हुए हैं, जिन्होंने संसार और समाज के उपकार के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था और इस कारण आज भी आदर और प्रेम से उनका नाम लिया जा रहा है ।

वृक्षारोपण-

सघन वनों के रीतिमापूर्ण वातावरण में भारतीय संस्कृति का अभ्युदय और विकास हुआ है । हमारी संस्कृति के सजीव केन्द्र तपस्थल और आश्रम वन प्रान्तरों के अन्तराल में स्थित थे । वृक्ष और वन जन-जीवन के प्राण-स्रोत बने रहे हैं ।

भारतीय संस्कृति की उदारता की सीमा नहीं है। वृक्षों तक को हमारी सहानुभूति, प्रेम आदर प्राप्त है। हम वृक्षों में चेतनता को मानते हैं, सुख-दुःख के अनुभव की शक्ति में विश्वास करते हैं । वृक्षों की चेतनता का अनेक स्थानों पर वर्णन आया है। मनुस्मृति में एक-दो स्थानों पर वृक्षों की योनि पूर्व जन्म के कारण मानी गई है और इन्हें जीवित एवं दुःख-सुख का अनुभव करने वाला माना गया है । सर जगदीशचन्द्र वसु ने अब सिद्ध करके भी प्रयत्क्ष दिखा दिया है कि मनुष्य की तरह सुख, दुःख, मृत्यु, शोक, हर्ष इत्यादि सब का प्रभाव वृक्षों पर पड़ता है ।

वृक्ष मानव मात्र के सेवक हैं । पग–पग पर सहायता करने वाले और मानव-जीवन को ऊँचा उठाने वाले हैं । औषधि के रूप में तो उनके ऋण से मनुष्य, पशु कोई भी उऋण नहीं हो सकता। भोजन, छाया लकड़ी, बहुमूल्य रासायिनिक तत्त्व सभी का लाभ हमें वृक्षों से प्राप्त होता है । अतः हमारे यहाँ हरे वृक्ष को काटने से पाप लगना तक माना गया है। हिंदू जाति के आचार-विचार वैज्ञानिक तत्वों से ओत–प्रोत हैं । विशेष रूप से वृक्ष-पूजन विज्ञान तो सूक्ष्म अनुसनधान का सूचक है ।

यों तो सभी वृक्ष लाभ के हैं, पर बड़, नीम, पीपल, तुलसी, आँवला के वृक्ष रासायनिक दृष्टि से बड़े ही उपयोगी हैं । इसलिए इनकी पूजा को भारत में धर्म में सम्मिलित कर लिया गया है । तुलसी का वृक्ष घर में लगाना और नित्य प्रातः उसका पूजन तथा उसमें जल देना भारतीय नारियों का एक धार्मिक कृत्य रहा है । वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि तुलसी के संसर्ग से वायु शुद्ध रहती है, मलेरिया आदि विषैले कृमियों का नाश होता है । ज्वर में तो तुलसी अमृत-तुल्य है । मरण के समय तुलसी मिश्रित गंगाजल पिलाया जाता है । इससे आत्मा पवित्र होती है । राजयक्ष्मा के रोगी को पूर्ण लाभ होता है । तुलसी का दर्शन तक सभी शक्तियों को बढ़ाने वाला है । शरीर में सचिंत मल दूर हो जाते हैं । दूषित जल के शोधन में तुलसी-पत्र डाले जाते हैं ।

इसी प्रकार देव-मन्दिरों में पीपल रखने और उसे पूजने का विधान है । नारियाँ पीपल पर जल चढ़ाती और पुण्य प्राप्त करती हैं । पीपल में भी अनेक रासायनिक गुण विद्यमान हैं । पीपल के फलों में रासायनिक तत्त्व भरे हुए हैं । इसका चूर्ण पौष्टिक होता है । पीपल की जटा में बन्ध्यात्वनाशक विशेष गुण होता है । पीपल के पात्र में प्रतिदिन दूध पीने से गन्ध के पात्र की भाँति बिना ही टानिक दवाई पिये पुष्टि होती है । हिंदू महिलाओं का यह विश्वास है कि निरन्तर पीपल की पूजा करने से पुत्रोत्पत्ति होती है ।

इसी प्रकार पलाश आँवला और बड़ भी बड़े उपयोग वृक्ष हैं । इनमें जीवनी-शक्ति बढ़ाने के अनेक तत्त्व विद्यमान हैं । यही कारण है कि इनके उपयोग को दृष्टि में रखकर इन्हें धर्म में स्थान दे दिया गया है । भगवद्गीता में पीपल को तो भगवान् का स्वरूप कहा गया है ।

वृक्षारोपण एक परम पुनीत पुण्य

हमारे धर्म और संस्कृति में जो स्थान विद्या-व्रत, ब्रह्मचर्य, ब्राह्मणत्त्व, गऊ, देव, मन्दिर, गंगा, गायत्री एवं गीता-रामायण आदि धर्म-ग्रन्थ इन सबको दिया गया है, वैसा ही वृक्षों को भी महत्त्व दिया गया है । यह महत्त्व उन्हें उनके द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों को देखते हुए ही दिया गया है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शास्त्रकार ने लिखा है--

रविश्चन्द्रो द्यौ वृक्षा नद्योगावश्च सज्जनाः ।
ऐते परोपकाराय युगे दैवेन निर्मिताः ।।

परम पिता परमात्मा ने सूर्य, चन्द्रमा, बादल, वृक्ष नदियों, गायें और सज्जन पुरुषों का आविर्भाव संसार में परोपकार के लिए किया है । सब सदैव परोपकार में ही रत रहते हैं ।

उपरोक्त उक्ति में ऋषि ने अन्य परोपकारियों में वृक्ष को भी समान दर्जा दिया है और यह स्पष्ट किया है कि एक सज्जनपुरुष और वृक्ष में गुणों की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। जिस प्रकार सज्जन व्यक्ति समाज के हित और कल्याण में तत्पर रहते हैं, वृक्ष भी उसी तरह 'परोपकारातमिदंशरीर'' का लक्ष्य बनाकर प्राणिमात्र के हित में अपने आपको तिल-तिल कर उत्सर्ग करते रहते हैं ।

वृक्ष में देवत्व की प्रतिष्ठा स्वीकार करते हुए गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है-

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणं देवर्षीणं नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलोमुनिः ।।

अर्थात्- हे धनञ्जय ! सम्पूर्ण वृक्षों में मैं पीपल वृक्ष हूँ, देव ऋषियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ तथा सिद्धों में कपिल मुनि में ही हूँ ।

उपरोक्त कथन में जहॉ भगवान् कृष्ण ने अपने आपको पीपल वृक्ष में समासीन घोषित किया है, वहॉ उनके कथन से यह भी सिद्व हो जाता है कि वृक्ष देवऋषियों, सिद्धों और गन्धर्वों के समकक्ष प्रतिष्ठित होते हैं । देवत्व के समाज में इनकी श्रेणी छोटी नहीं है । संसार में यदि कल्याणकारी, परोपकारी, समदर्शी फलदायी और वरदायी व्यक्तियों में देवों या गन्धर्वों को प्रतिष्ठा दी जाय तो वृक्ष भी उनसे कम सम्मान के पात्र नहीं हैं ।

सम्भवतः इन्हीं बातों पर पूरी तरह विचार करने के बाद भारतीय आचार्यों ने वृक्षारोपण और वृक्ष की प्रतिष्ठा को महान् पुण्य माना है और उनसे अनेक प्रकार के वरदान मिलने की बात कही है । धर्म-ग्रन्थों में ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं । विष्णु स्मृति के 'कूपतडागखननं तदुत्सर्ग विधान'' में बतलाया है कि-

वृक्षारोपयितुर्वृक्षाः परलोके पुत्रा भवन्ति वृक्षप्रदो वृक्षप्रसूनैर्देवाहे प्रीणयित-फलैश्चतिथीन् छाययाचाभ्यागतान् देवे वषत्युदकेन पितृन । पुष्प प्रदानेन श्रीमान् भवति ! कूपारामतड़ागेषु देवताततनेषु च । पुनः संस्कारकर्त्ता च लभते मौलिकं फलन्।।

अर्थात् - जो मनुष्य वृक्षों का आरोपण करता है, वे वृक्ष परलोक में उसके पुत्र होकर जन्म लेते हैं । वृक्षों का दान करने वाला, वृक्षों के पुष्पों द्वारा देवताओं को प्रसन्न करता है और मेघ के बरसने पर छाता के द्वारा अभ्यागतों को तथा जल से पितरों को प्रसन्न करता है । पुष्पों का दान करने से समृद्धिशाली होता है । कुऑ उद्यान,तालाब और देवायतन का पुनः संस्कार अर्थात् जीर्णोद्धार कराने वाला व्यक्ति मौलिक फल प्राप्त किया करता है अर्थात् उनके नूतन निर्माण कराने के समय ही पुण्य फल पाता है ।

उसके विपरीत जो वृक्षों को नष्ट करते या काटते हैं, उनकी निंदा भर्त्सना की गई है । ऋग्वेद में ऋषि ने कहा है–

मा काकम्बीरमुद्वहो वनस्पतिन शस्तीतिर्वि हि नीनशः।
मोत सूरी अह एबा चन ग्रीवा आदधते वेः।।
(ऋग० ६/४८/१७)

अर्थात् - जिस प्रकार दुष्ट बाज पक्षी दूसरे पखेरुओं की गरदन मरोड़ कर उन्हें दुःख देता और मार डालता है, तुम वैसे न बनो और इन वृक्षों को दुःख न दो, इनका उच्छेदन न करो ये पशु-पक्षियों और जीव-जन्तुओं को शरण देते हैं ।

हम उन ऋषियों के आदेशों का पालन करते रहे हैं । भले ही उनके सूक्ष्मतिसूक्ष्म भावों को न जान पाये हों, पर उन आज्ञाओं का पालन करने से उन लाभों से तो लाभन्वित रहे ही हैं, हमारे देश में जब से उन आदेशों पर पर्याप्त ध्यान दिया जाने लगा तभी से भारतीय जीवन में मलीनता का प्रवेश हुआ है। वृक्षों के प्रति अवहेलना भी उनमें से एक महत्त्वपूर्ण कारण है । तुलसीदास जी ने रामराज्य के सुखों का वर्णन करते हुए लिखा है-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

फूलहिं फलहिं सदा तरू कानन।
रहहिं एक संग गज पंचानन।।
लता विटप माँगे मधु चवही।
मन भावती धेनु पय स्रवही।।

अर्थात् - उस समय जंगलों में वृक्ष खूब फलते थे । वृक्ष और लताएँ मनोवांछित फल देते थे। गायें दूध देती थी आदि ।

यह स्थिति तब रही होगी, जब वृक्षों के प्रति प्रजा में आदर का भाव रहा होगा । वृक्षों को अधिक मात्रा में लगाया जाता रहा होगा । उस समय की प्रकृति भी सन्तुलित थी, समय पर वर्षा होती थी । नदियाँ बराबर बहती रहती थीं । समुद्र अपनी मर्यादा में रहता था । इन सब सुविधाओं के पीछे वृक्षों एवं वनस्पतियों का बड़ा हाथ था और हमें इसका अनायास ही लाभ इसलिए मिल जाता था कि हम उन आदेशों का भली-भाँति पालन करते थे जो मानवीय जीवन की सुव्यवस्था के लिए उपयोगी और आवश्यक थे । अब जबकि इन आज्ञाओं की अवज्ञा ही हो रही है, तो उसके सामूहिक दुष्परिणाम भी हमारे सामने हैं, हमारे जीवन का हर क्षेत्र कष्ट और कठिनाइयों से घिरा हुआ है।

वृक्षों के विपुल वरदान

धरती माता को शस्य-श्यामला कह कर उसकी वन्दना की गई है । यह पुण्य नाम उसे इसलिए दिया गया था कि वह वृक्ष बेल और लता गुल्मों से सदैव आच्छादित रहा करती थी । ऊँचाई से इसका पिण्ड सर्वत्र हरा-भरा नजर आता है । वह शोभा बड़ी सुन्दर लगी । कवि ने उससे भाव नेत्रों से देखा तो वह इस मनोहर रूप पर मुग्ध होकर रह गया । तभी उसने इसे शस्य-श्यामला की उपाधि से विभूषित किया ।

वृक्ष प्रकृति के परिधान

पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले रूसी अन्तरिक्ष यात्री यूरी गगारिन सद्भावना यात्रा पर भारतवर्ष आये तो पत्रकारों ने उनसे अन्तरिक्ष यात्रा के संस्मरण पूछे। गगारिन ने बताया कि सम्भवतः पृथ्वी ही समस्त खगोल में एक ऐसा ग्रह पिण्ड है, जिससे सुन्दर और कोई दूसरा नक्षत्र नहीं । इस सौन्दर्य का कारण उन्होंने इसकी प्राकृतिक सुषमा, हरितिमा वृक्षावली को ही बताया ।

वृक्ष न होते तो यह धरती भी एक उजड़ी एवं सुनसान जैसी स्थिति में रही होती । तब अन्तरिक्षवासियों को तो क्या धरती वालों को ही यहाँ किसी सौन्दर्य के दर्शन न होते । यहाँ सर्वत्र उदासी-सी दिखाई देती और उसका प्रभाव लोगों की मानसिक स्थिति पर भी पड़े बिना न रहता । माघ-फाल्गुन के महीनों में जब पतझड़ हो जाता और वृक्षों के केवल ठूँठ मात्र रह जाते हैं, तो न जाने कैसी आत्मिक आकुलता उत्पन्न होती है । निर्वसन प्रकृति से मनुष्य की आत्मा में दुख की अनुभूति होना महत् आध्यात्मिक तथ्य है, जबकि दूसरी ओर सावन-भादों के महीनों में आन्तरिक उल्लास, प्रगाढ़ प्रेम भावनाएँ, प्रसन्नता, सरसता आदि के उद्गार अपने आप उमड़ने लगते हैं । उन दिनों प्रकृति सर्वत्र हरी-भरी जान पड़ती है। उसी के प्रभाव स्वरूप इस प्रकार की सरस भावनाएँ जागृत होती हैं ।

वृक्ष आध्यात्मिक-प्रशिक्षक

पुराने जमाने में विद्यालय वहीं चलाये जाते थे जो स्थान चारों ओर से वृक्षों से आच्छादित होते थे। वृक्षावली बढ़ाने के प्रयत्न भी सदैव चलते रहते थे। गुरुकुलों में वृक्षारोपण उत्सव मनाये जाते थे और बड़े-बड़े वृक्ष पीपल, बरगद, नीम, आम, इमली आदि के पौधे लगाये जाते थे। विद्यार्थीगण उनकी नियमित देखरेख रखते थे, उन्हें सब तरह से नष्ट होने से बचाया जाता था वृक्षों को इतना महत्त्व देने का यही कारण था कि उनके बीच रहने से आध्यात्मिक भावनाएँ जागृत होती थीं । लोगों के मन सुसंस्कारित बने रहते थे । इनसे आन्तरिक सौन्दर्य जागृत होता था । आत्म-प्रेरणा मिलती थी । बच्चों के विकासोन्मुख मस्तिष्क पर इनने प्रेरणाओं की नींव गहरी हो जाती थी, फलस्वरूप कठिन परीक्षा की घड़ियों में भी वह सदाचार से विचलित न होते थे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

वृक्षो द्वारा सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रशिक्षण निरन्तर मिलता रहे, इसके लिए केवल विद्यालयों में ही उनकी बहुतायत न होती थी । हर आश्रम, गाँव, मन्दिरों तथा सार्वजनिक स्थानों को भी वृक्षों से आच्छादित रखा जाता था। भारतवर्ष के इतिहास की अनेक विलक्षणताओं में यह भी एक विलक्षण, तथ्यपूर्ण और वैज्ञानिक बात रही है । जो वृक्ष दुनियाँ में कहीं नहीं पाये जाते वे भारतवर्ष में मौजूद हैं । नीम तथा पीपल केवल भारतवर्ष में ही पाये जाते हैं । भारतीय संस्कृति के बारे में अपना मत प्रकट करते हुए न्यूयार्क के प्रसिद्ध विद्वान मि. डेलमार ने लिखा है-''पश्चिमी संसार जिन बातों पर अभिमान करता है, वे असल में भारतवर्ष से ही वहाँ गई हैं और तरह-तरह के फल-फूल, पेड़ और पौधे जो इस समय यूरोप में पैदा होते हैं, हिन्दुस्तान से ही ले जा कर वहाँ लगाये गये । '' भगवान् बुद्ध द्वारा लंका में लगाया गया वट वृक्ष आज भी कीर्ति स्तम्भ बना हुआ है । संसार के अनेक देशों को यहाँ से वृक्ष, फल और फूल के पौधे भेजे गये, इसका मुख्य उद्देश्य सारे संसार में आध्यात्मिकता के मूल को ही विकसित करना रहा है ।

वृक्ष बनाम रेगिस्तान

रेगिस्तानों में पेड़ नहीं होते, ऐसा कहा जाता है । वस्तुतः कहना यह चाहिए कि जहाँ पेड़ नहीं होते, वहाँ रेगिस्तान होते हैं । पेड़ों के अभाव में हवा के वेग, शुष्कता और मौसम के असन्तुलन के कारण ही रेगिस्तान पैदा होते हैं । बरसात का आकर्षण करने के लिए पेड न होने से राजस्थान के इलाके में रेगिस्तान तेजी से बढ़ता जा रहा है, इससे राज्य सरकार बड़ी चिन्तित है । रेगिस्तान के प्रसार को रोकने के लिए जहाँ बाहर से जल लाने की व्यवस्था की गई है, वहाँ सरकार इस प्रयत्न में भी है कि इस इलाके में वृक्षारोपण आन्दोलन को अधिक गतिशील बनाया जाय, ताकि वहाँ रेगिस्तानी प्रसार को रोका जा सके और जलवायु में परिवर्तन लाकर उसे समाप्त किया जा सके । ऐसा हो जायेगा तो हजारों-लाखों एकड़ जमीन कृषि के लिए निकल आयेगी और हजारों किसानों को काम मिल जायगा । इससे न केवल समृद्धि ही बढ़ेगी वरन् खाद्य-समस्या का समाधान भी होगा ।

वन उद्योग से राष्ट्रीय सम्पत्ति का विकास-सन् १९५४-५५ में भारतीय वनों का कुल क्षेत्रफल २८१ लाख वर्गमील था जो देश के क्षेत्रफल का लगभग २२ प्रतिशत था । यह प्रतिशत अन्य देशों के प्रतिशत से अपेक्षाकृत कम है । इनकी उत्पादन क्षमता भी अन्य देशों के वनों की औसत उपज से काफी कम है। इसी वर्ष २१ करोड़ ६७ लाख ८४ हजार रुपये की ५० करोड़ ७० लाख ५४ हजार घनफुट इमारती लकड़ी शेष लट्ठे, लुगदी तथा दियासलाई के उपयोग की लकड़ी थी। ३० करोड़ ७२ लाख ४६ हजार घनफुट कोयला उपयोगी लकड़ी थी ।

प्लाईवुड के कच्चे माल, दियासलाई तथा कागज की आवश्यक सामग्री के साथ-साथ राल, गोंद, शहद तथा औषधि सम्बन्धी अनेक जड़ी-बूटियाँ भी प्राप्त होती हैं । बीड़ी उद्योग अधिकांश वनों के ही भरोसे चल रहा है । प्रतिवर्ष लगभग डेढ़ करोड़ रुपये का बाँस और बेंत, ५५ लाख रुपये के रेशे वाले पदार्थ, एक करोड़ रुपये का गोद तथा राल और ६ करोड़ रुपये का अन्य फुटकर सामान उपलब्ध होता है ।

इसके अतिरिक्त लगभग ५० लाख व्यक्तियों को इन वनों से ही आजीविका उपलब्ध होती है । पहाड़ी इलाकों में जहाँ कृषि-कार्य सम्भव नहीं है, वहाँ लोग वन उद्योगों के आसरे ही अपना पेट पालते हैं । शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ कागज की आवश्यकता भी बढ़ेगी और उसके लिए वन-सम्पत्ति की समृद्धि की आवश्यकता होगी ।

मकानों के लिए लकड़ियाँ

परमार्थी वृक्षों की कृपा से हम घरों में बड़ी सुविधापूर्वक बरसात, जाड़े और ग्रीष्म की तपन से बचकर रहते हैं । अब ईंट और सीमेण्ट का उपयोग होने लगा है, पर व्यवस्था इतनी महँगी है कि सब लोग पक्के मकान नहीं बनवा सकते । उनमें इतना अधिक खर्च पड़ता है कि ६० प्रतिशत सामान्य श्रेणी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के व्यक्ति पक्के घर नहीं बनवा सकते । आज से कुछ वर्ष पूर्व जब वृक्षों की हमारे यहाँ कोई कमी न थी और पक्की छतों वाले मकानों का प्रचलन न हुआ था, तब लोग बड़ी आसानी से कम खर्च में ही मकानों की व्यवस्था कर लेते थे । वृक्षों की बहुतायत से की गई कटाई ने तो अब मकान की समस्या को भी कठिन बना दिया है ।

शहरों में भारी किराये पर मकान मिलने का कारण एक ही है कि इमारती लकड़ी का अभाव, जिसके कारण मकान बनावने में लागत बढ़ जाती है, फलस्वरूप मकान मालिक उसका किराया भी डटकर वसूल करते हैं । अधिक खर्चीले होने के कारण हर कोई मकान बनवा भी नहीं सकता, इसलिए वे भी महँगे पड़ते हैं। यह समस्या अभी तक गाँव में नहीं थी । गल्ले की महँगाई और कृषि-उत्पादन में काफी वृद्धि हुई और उससे किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत हुई तो उनकी अनेक समस्यायें भी बढ़ गईं । मकान की समस्या उनमें मुख्य है । लकड़ी की कमी के कारण अब वहाँ भी पक्की छतों वाले मकान बनवाने के लिए लोगों को विवश होना पड़ता है । इसका परिणाम होता है कि लोगों को अपनी आय का एक बड़ा हिस्सा इसमें लगाकर शेष स्वास्थ्य एवं अर्थ विकास के साधनों में रोक लगा देनी पड़ती है, या फिर टूटे-फूटे मकानों में कष्टकर स्थिति में दिन गुजारने पड़ते हैं । ऐसी समस्याएँ गाँवों में ७० प्रतिशत जनता के सामने है और ऐसा अनुमान किया जाता है कि यदि वृक्षों को काटने की तेजी इसी तरह बनी रही तो एक दिन यह समस्या बड़ा विकराल रूप धारण करेगी और तब लकड़ियों के मकान कहीं देखने को भी नहीं मिलेगे । मकानों के किराये और उन्हें बनवाने में कितना अधिक खर्च होगा इसका अभी से अन्दाज लगाया जा सकता है ।

ईंधन और खाद

वृक्षों की सूखी डालियाँ हमारे बड़े काम की होती हैं । उनका मोटे तने का भाग मकानों की छत पाटने, पाटा, हल, बैलगाड़ी, किवाड़ आदि विविध उपयोगी वस्तुएँ बनाने के कामे आ जाता है, तो पतली लकड़ियों से भोजन पकाने का काम चलता है, किन्तु वृक्षों के अभाव से उत्पन्न यह परेशानी भी हम स्पष्ट देख रहे हैं । शहरों में जलाने की लकड़ियों के भाव एक डेढ़ रुपये प्रति मन से बढ़कर ३८ रुपये मन तक पहुँच गये हैं और गाँवों में इस कमी को पूरा करने के लिए ५० प्रतिशत गोबर की बहुमूल्य खाद को उपले बनाकर जला दिया जाता है ।

कदाचित इतनी खाद न जलती और लकड़ी का ईंधन मिलता रहता तो खेतों के लिए जितनी खाद अब मिल रही है, उतनी ही खाद और मिल जाती जिससे उतनी ही फसल में ड्यौढ़ा अन्न-उत्पादन किया जा सकता था । दूसरी रासायनिक खादों की अब बहुत चर्चा चल रही है, पर वे सब गोबर की खाद के आगे भीख माँगती हैं। इतनी सुन्दर, कम दाम की और सरलता से उपलब्ध हो जाने वाली दूसरी खाद नहीं है । इसमें मिट्टी को खारी-खराब करने वाला कोई दोष नहीं है, अतः इसकी रक्षा कृषि-हित में अनिवार्य हैं पर यह तभी सम्भव है, जब ईंधन की लकड़ियों का अभाव न हो और उसके लिए वृक्षों की सघनता हो ।

यह तो रही अप्रत्यक्ष बात, प्रत्यक्ष रूप से भी वृक्ष हमें सुन्दर प्राकृतिक खाद प्रदान करते हैं । पतझड़ के दिनों में सारे वृक्षों की पत्तियाँ जब गिर जाती हैं तो ये कूड़े की शक्ल में इधर-उधर बिखर जाती हैं, कुछ बगीचे के आस-पास ही जमा हो जाती हैं । इसके बाद वर्षा ऋतु आती है । वर्षा ऋतु में सारी पत्तियाँ सड़-गलकर मिट्टी में मिल जाती हैं। जमीन उनका उपजाऊ अंश स्वयं सोख लेती है । यह प्राकृति खाद वह है जो खेतों को बिना खाद दिये हुए भी उनसे कुछ न कुछ अनाज पैदा किया जाता रहा है ।

मानव-जाति के अनन्य सेवक वृक्ष

वृक्षों की आध्यात्मिक प्रेरणा का लाभ प्राप्त करने के लिए प्राचीनकाल में गुरुकुल, गुरु आश्रम, मन्दिर, जलाशय आदि वृक्ष-कुञ्जों से आच्छादित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुआ करते थे । उनकी शीतल छाया में विद्यार्थी पढ़ा करते थे । प्रकृति की सघन शोभा उनके मस्तिष्क में सदाचार, संयम, सेवा, सुरुचि, शुचिता और सुव्यवस्था के भाव भरा करती थी ।

जो लोग भूगोल पढ़ते हैं, उन्हें मालूम होगा कि अब पहाड़ों पर बर्फ का जमना धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। पहले जितनी मोटी परत जमती थीं, अब नहीं जमती, गर्मी आती है, सूर्य तपता है तो यह बर्फ थोड़े समय में ही गल कर बह जाती है । उत्तर भारत को वर्ष भर पानी दने वाली गंगा और यमुना में भी अब पहले जितना पानी नहीं आता । इसका मूल कारण है—वृक्षों और वनों का बढ़ता हुआ अभाव । हरे वृक्षों वाले वन आपको आकर्षित करते हैं और पानी बरसने में सहायक होते हैं । वृक्षों की संख्या घटने से वर्षा की सघनता भी कम होने लगी और उसका दुष्प्रभाव अब सिंचाई जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों पर पड़ रहा है ।

वृक्ष अधिक हों तो जल भी अधिक मिले और घरों में प्रयोग के लिए लकड़ियाँ भी मिलती रहें । इमारती लकड़ी के अभाव में भवन-निर्माण बहुंत महँगा हो गया है । भारतीय स्थापत्य कला का सम्पूर्ण गौरव ही नष्ट होता जा रहा है, क्योंकि अब वह बहुत महँगा कार्य हो गया है, पर साधारण काम जैसे रोटी आदि बनाने के लिए भी लकड़ियाँ पर्याप्त उपलब्ध नहीं होतीं । फलतः गाँवों की आधी खाद ईंधन के रूप में जला दी जाती है, उसका दुष्प्रभाव कृषि की उपज पर पड़ता है । पहले की अपेक्षा खेती की उपजाऊ शक्ति भी अब आधी रह गई है ।

अब यह परिस्थिति बिगड़ गई है । कल और भी बिगड़ेगी, क्योंकि कार्बनडाई ऑक्साइड और हम जो गन्दगी पैदा करते हैं, उसका विषपान करने वाले वृक्ष कम होते जा रहे हैं । वृक्ष न रहेंगे तो इस ढेर सारी गन्दगी का दबाव मनुष्य की सहन-शक्ति से बाहर हो जायेगा । उसकी आयु, स्वास्थ्य, शक्ति, शरीर सब पर बुरा प्रभाव पड़ेगा ।

वृक्ष स्वच्छ और ताजी वायु प्राणियों को देते रहते हैं, उससे शरीरों का पोषण होता है । वृक्ष फल देते हैं जिससे खाद्य समस्या का निदान होता है । प्रकृति की मधुरता, दया और मातृत्व का अनुभव हमें वृक्षों ने ही कराया । कितने-कितने सुन्दर, रस-युक्त, स्वादिष्ट व शक्तिवर्धक फल परमात्मा ने मनुष्य को दिये हैं, उनकी कल्पना करें, तो हृदय श्रद्धा से नत हो उठता है ।

पर कोरी श्रद्धा से काम भी तो नहीं चलता । जहाँ वृक्षों के सैकड़ों अनुदान और वरदान हमें मिलते हैं, वहाँ हमारा भी तो कर्त्तव्य है कि उनकी वंशावली बढ़ायें । पुराणों में यह बात धार्मिक महत्त्व देकर प्रकारान्तर से कही गई है । युग-निर्माण योजना ने उसे विज्ञान और बुद्धि-संगत रूप में प्रस्तुत किया है, उससे कोई भी व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता । इसलिए वृक्षारोपण को एक परम पुनीत कर्त्तव्य मान कर उसे एक अभियान के रूप में चलाया जाना चाहिए । वृक्षों के परिधान पृथ्वी माता की शोभा बढ़ाते हैं, उसके लिए हमें भी योगदान करना चाहिए।

वृक्षों से आर्थिक लाभ भी कम नहीं

आन्ध्र प्रदेश के नलगोण्डा जिले ऐरा पहाड़ गाँव के श्री सुधरी रेड्डी को १९६५ में आम के लिए 'उद्यान पण्डित' की उपाधि से विभूषित किया गया। इस समाचार ने वृक्षारोपण और उत्पादन के प्रति सैकड़ों लोगों का ध्यान आकर्षित किया । 'कृषि में अधिक लाभ है, फल उत्पादन में कम' इस भ्रान्त धारण को श्री सुधरी रेड्डी ने खण्डित करके रख दिया ।

२६ वर्षीय युवक रेड्डी के पास इस समय २६० हेक्टर भूमि में आम के बगीचे हैं । उनमें मलजोवा, नीलम, वैनिशान, तोतापरी और अल्फान्सों बहुसंख्यक जातियों के आमों के वृक्ष हैं । पढ़ने-लिखने के बाद श्री रेड्डी को १९५९ में बाग लगाने की धुन सवार हुई। उनकी ३८० हेक्टर जमीन बंजर पड़ी थी । गाँवों में हर किसान के पास कुछ न कुछ बंजर या कम उपजाऊ भूमि होता ही है । चाहें तो उसका वृक्षारोपण में अच्छा उपयोग किया जा सकता है, किन्तु आलस्यवश लोग उस भूमि का उपयोग नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर पाते । श्री रेड्डी के पास उस समय एक भी आम का पेड़ नहीं था । उन्हें इस बीच वृक्षारोपण की उपयोगिता का परिचय मिला तो उन्होंने उसमें सक्रिय रुचि ली ।

प्रारम्भ में उन्होंने ८ हेक्टेयर भूमि में आम के वृक्ष लगाये । कुछ में चीकू आदि के पौधे लगाये । उनकी पर्याप्त देखभाल, सिंचाई और गुड़ाई भी की। उसके परिणाम थोड़े ही दिनों में देखने को मिले । १९६५ में जब उन्होंने आम उत्पादन प्रतियोगिता में भाग लिया, उनके कुछ पेड़ों में ५ हजार तक आम पाये गये। आम देखने में सुन्दर, बड़े और स्वादिष्ट होते हैं । इनसे श्री सुधरी रेड्डी को लगभग ढाई हजार प्रति हेक्टर की आय होती है ।

बाग और वृक्ष लगाने में जमीन फँसने का जिन्हें डर रहता है, उन्हें इस समाचार से प्रकाश मिलेगा कि वृक्षों से मनुष्य को न कभी घाटा हुआ न होगा । उनसे जलाने के लिए लकड़ियाँ मिलती हैं । छतें पाटने के लिए शहतीरें और धन्नियाँ मिलती हैं । खाने और विक्रय के लिए भी स्वादिष्ट फल उपलब्ध होते हैं । औषधियाँ और तेल आदि मिलते हैं, सैकड़ों लोगों का जीवन लकड़ी, फल आदि के विक्रय के द्वारा वृक्षों पर ही आधारित रहता है । गाँवों में फसलों की रक्षा और सुशीतल छाया के लिए भीं यह वृक्ष अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक हैं ।

वृक्षों की उपयोगिता का लाभ उठाने के लिए सरकारी तौर पर वन-विभाग ही काम करता है । १९६१-६२ में भारतीय वन उद्योग से लगभग ५०१३७५००० रुपये के मूल्य की १६१८७००० घनमीटर इमारती तथा दूसरी लकड़ी उपलब्ध हुई ।

वृक्षों से कागज, दियासलाई, प्लाई वुड लकड़ी उद्योगो के लिए कच्चा माल गोंद, राल चमड़ा कमाने का सामान, जड़ी-बूटियाँ भी प्राप्त होती हैं १९६१-६२ में वनों से लगभग १२१०६१००० रुपये के मूल्य की उपर्युक्त तथा अन्य फुटकर वस्तुएँ प्रात हुईं। वृक्षों से और अधिक लाम प्राप्त करने के लिए केन्द्रीय बन-उद्योग आयोग भी नियुक्त किया गया है । यह आयोग वृक्षारोपण, वनों की रक्षा की स्थिति का अध्ययन और उनके विकास के प्रयत्न जुटायेगा ताकि राष्ट्रीय आय बढ़ाई जा सके ।

वृक्षारोपण के सार्वजनिक महत्त्व और व्यक्तिगत लाभ का कुछ अनुमान इस पंक्तियों से मिलता है, पर उसका पूरा और सही मूल्यान्न तो तभी किया जा सकता है, जब स्वयं भी कुछ वृक्ष लगा कर देखें। पहले लोग धार्मिक एवं आध्यात्मिक शान्ति के लिए वृक्ष लगाया करते थे, वह लाभ तो अब भी सुरक्षित और निश्चित हैं । हमें यह भी देखना चाहिए कि वृक्ष आर्थिक सहयोगी भी बनते हैं या नहीं । यदि पूरे मन और उत्साह के साथ श्री सुधरी रेड्डी की तरह हम वृक्षों की सेवा के लिए तैयार हों तो वृक्षों के आशीर्वाद और उनकी कृपा के सत्वर लाभ भी हम प्राप्त कर सकते हैं ।

प्राणदाता, आरोग्यदाता

कहते हैं भगवान् शंकर ने देव-दुनजों की रक्षार्थ विष का प्याला उठाकर उसे स्वयं पी लिया था और अमृत देवताओं को बाँट दिया था । सम्भव है सतयुग में कोई ऐसी घटना घटित हुई हो पर घटना को हम अभी देख रहे हैं कि वृक्ष निर्जीव होते हुए भी किसी प्रकार मनुष्य के हिस्से में पड़े विष को पीते रहते हैं और उन्हें प्राण दान देते रहते हैं। हमारे ऋषियों ने कहा है कि मनुष्य की आयु वृक्षों की कृपा पर आधारित है, यह कथन अक्षरशः सत्य है । वैज्ञानिक भी इस बात से सहमत हैं कि मनुष्य की आयु को वृक्ष बहुत प्रभावित करते हैं ।

वह किस तरह इसका एक सूक्ष्म, किन्तु विशद् विज्ञान है । शंकर की तरह यह संसार का विष पीकर ही अपना जीवन धारण किए रहते हैं । पेड़ अपनी पत्तियों द्वारा साँस लेकर कार्बनडाई आक्साइड जो एक प्रकार का विष ही है, खींचते हैं और उसी के कारण वे फलते-फूलते और विकसित होते रहते हैं। कार्बनडाई आक्साइड मनुष्यों और पशुओं के मुँह और अपान मार्ग से निकली हुई दूषित वायु है । और भी अनेक प्रकार की गन्दगी और सड़न पैदा होकर वायु को विकारग्रस्त बनाती रहती हैं । यदि इस दूषित वायु को विषपायी वृक्ष पीने से इन्कार कर दें तो हमारे ऊपर जितना १ घनफुट वायु का दबाव रहता है, उतना ही इस दुर्गन्धित गैस का हो जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उस अवस्था में हमारा जीवित रह सकना भी सम्भव न होता ।

यह विभीषिका तब नहीं तो अब आने वाली है। एक ओर आबादी बढ़ रही है तो गन्दगी बढ़ रही है और उससे वायु मण्डल के विकार बढ़ रहे हैं । दूसरी ओर पेड़ कट रहे हैं तो उस विष को पचाने वाली प्राकृतिक क्षमता घट रही है, उसका प्रभाव जन-जीवन पर प्रकट है । अनेक तरह के रोग बढ़ रहा है और उनके लिए दवाओं की व्यवस्था पर आर्थिक दबाव बढ़ा रहा है, फिर भी रोगियों की संख्या कम नहीं हो रही है । अब निरोग व्यक्तियों की संख्या उँगलियों में न गिनने योग्य बनती चली जा रही है । शरीर के किसी न किसी हिस्से के रोगी प्रायः सभी हैं, किसी का पेट ठीक नहीं, किसी का दिल ठीक नहीं, किसी का मस्तिष्क काम नहीं करता, किसी के फेंफड़े । तात्पर्य यह है कि रोग बढ़ रहे हैं, जो निरोग हैं भी उनके स्वास्थ्य भी सेरों में ही तौलने योग्य शेष रहा है । भीम, हनुमान, बालि, अंगद, घटोत्कच जैसे ब्रज शरीर वाले अब कहीं देखने को नहीं मिल रहे । इसका कारण खाद्य की कमी, पौष्टिकता का अभाव नहीं वरन् प्राकृतिक दबाव है, अब कोई अच्छा से अच्छा खाकर और पूर्ण संयमित रह कर ही भीमसेन या बजरंगवली नहीं बन सकता ।

वृक्षों में जितनी क्षमता है, उतना विष पी रहे हैं, विष की मात्रा बढे, और वृक्ष घटे तो उनका दोष क्या ? दोष मनुष्य जाति का है जो अपने जागृत शंकर पर जल डालने की अपेक्षा उन पर कुल्हाड़ी चलाती है ।

वृक्ष हैं जो इतनी मार खाकर भी अपने धर्म से विचलित नहीं होते । ये केवल विष नहीं पीते, प्राण दान भी देते हैं । वृक्ष एक ओर कार्बनडाई ऑक्साइड पीते हैं तो दूसरी ओर ऑक्सीजन गैस छोड़ते हैं । ऑक्सीजन प्रकृति से पर्याप्त मात्रा में मनुष्य या अन्य प्राणियों को उपलब्ध न हो तो वे एक दिन भी जीवित नहीं रह सकते । श्वाँस द्वारा प्राप्त होने वाला यह अमृत हमें बहुत करके वृक्ष-वनस्पतियों द्वारा ही प्राप्त होता है । इस बात को जानते हुए भी लोग वृक्ष काटते हैं और उनकी संख्या दिनों दिन कम करते जा रहे हैं, यह बड़ी चिन्ता की बात है ।

वृक्ष या धनवन्तरि

संसार में जितनी वनस्पति हैं, वह सब औषधि रूप हैं । ऐसा आयुर्वेद ग्रन्थों में बताया गया है। इस रूप में छोटे-बड़े सभी पेड़-पौधे मनुष्य जाति की सेवा करते हैं । अनेक वृक्षों के फल जैसे–बेल, आँवला, नीम, बहेड़ा आदि औषधियों में प्रयुक्त होते हैं । अनेक के फूल काम आते हैं । कितने ही वृक्षों की डालियाँ और छालें दवाओं के काम आती हैं । पीपल आदि की समिधाओं से यज्ञ करके बड़े-बड़े राज-रोगों को दूर करने के विधान हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थों में विस्तार से मिलते हैं । पहाड़ी इलाकों में पाये जाने वाले अनेक वृक्षों का उपयोग केवल औषधियों के रूप में ही किया जाता है । चन्दन की लकड़ियों की उपयोगिता और सुगन्ध प्रसिद्ध है । गूलर के फल, अंजीर के फल तथा जैतून के तेल की रोग निरोधक शक्ति की वैद्य लोग बड़ी प्रशंसा करते हैं । तुलसी की मंजरी से लेकर जड़, पत्ते, फूल आदि औषधि रूप में बड़े उपयोगी माने जाते हैं । देवप्रिय आँवला, पीपल, तुलसी आदि मनुष्य के लिए इतने उपयोगी हैं कि इन्हें देवता कहकर उनकी पूजा और उपासना का भी विधान बताया गया है । नीम की चर्म-रोग निरोधक शक्ति से सभी परिचित हैं ।

वृक्ष मीठे फल देते हैं

मनुष्य की सात्विक प्रवृत्तियों को प्रखर रखने में फलाहार का साधारण महत्त्व है । हमारे पूर्वज प्रमुख रूप से फलों पर ही अपना जीवन निर्वाह करते थे । यह फल वृक्षों से ही उपलब्ध होते हैं । कहना न होगा कि इस रूप में वृक्ष सामाजिक जीवन के नैतिक आधार हैं । व्रत और त्योहारों पर फलाहार करने की आज भी परम्परा शेष बनी हुई है, पर अब वह 'न' के बराबर है । तीखे, नमकीन, कसैले और गरिष्ठ अन्नाहार पर लोगों की रुचि बढ़ रही है तो उससे लोगों के स्वास्थ्य और मानसिक स्थिति पर भी अच्छा प्रभाव नहीं पड़ रहा है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी फलों का महत्त्व असाधारण है । चिकित्सा शास्त्रियों का मत है कि यदि मनुष्य को फलों के साथ दूध की पर्याप्त मात्रा मिलती रहे तो फल उसके पूर्ण आहार का काम दे सकते हैं और मनुष्य जीवन भर पूर्ण स्वस्थ व निरोग बना रह सकता है ।

इसका कारण यह है कि उनमें विटामिन्स और शक्ति तत्त्वों की पर्याप्त मात्रा तो होती है, साथ ही फलों के रेशे में एक विशेष गुण यह होता है कि यह मल नहीं बढ़ाता वरन् उसे आमाशय से मलद्वार की ओर धकेल देता है । मलाधार साफ रहने से पेट में गेस बनना, पाचन क्रिया की खराबी, मानिसिक विक्षिप्तता, उदर शूल आदि किसी तरह के रोग की सम्भावना नहीं । कुछ फल तो पेट के लिए औषधि से भी अधिक गुणकारी होते हैं । आम का कल्प कराया जाता है, जामुन से पेट की सफाई होती है, अमरूद में भी मल साफ करने की शक्ति है, आँवला रोगनाशक होता है, इसका भी कल्प कराया जाता है । "एक अनार सौ बीमार" की कहवात से सभी परिचित हैं। सेव, अंगूर, मौसम्मी, मालटा, सन्तरा की शक्ति से सभी परिचित हैं । पपीता, आलू-बुखारा, अनन्नास, बग्गूगोसा, नासपाती, लीची, चीकू इनके स्वास्थ्यवर्धक गुणों से सभी लाभ उठाते हैं । इन फलों में रस रक्त को उष्णता, शक्ति और प्रखरता प्रदान करने वाले सभी गुण मिल जाते हैं। वृक्ष न हों तो यह प्रकृति का अमृत मनुष्य को कहाँ से उपलब्ध हो । वृक्ष हमें रसदार, मीठे, स्वादिष्ट तरह-तरह के फल प्रत्येक ऋतु में प्रदान करते हैं । इनकी इन सेवाओं की जितनी अधिक सराहना की जाये और कृतज्ञता प्रकट की जाय वह कम ही है ।

सौन्दर्य और कला प्रेरक

वृक्षों की पंक्तियों और फलों से मनुष्य को सौन्दर्य और कलापूर्ण जीवन की प्रेरणा मिलती है । सेमर फूलता है तो चाँदनी रात में उस स्थान की चारुता अनुपम हो उठती है, अमलतास के पुष्पों का गहन आच्छादन देखत ही बनता है । आमों की बौर, कचनार की शोभा, तगर, मुल्म, गुलाब, हरसिंगार, मोगरा, चमेली, जुही, चम्पा, कनेर, गेंदा, कमल इससे वातावरण की सुवास बढ़ती है । ये पुष्प मनुष्य को हँसना सिखाते हैं, प्रसन्नता प्रदान करते हैं, सुगन्ध बिखेरते हैं और मनुष्य को सौन्दर्य के प्रति प्रेम की प्रेरणा देते हैं । परमात्मा का मुक्त हास उन फूलों में ही विकसित हुआ है ।

फलों से लोगों का स्वागत करने की प्रथा है। फूलों के गुलदस्ते से कमरे, ऑफिस सजाये जाते हैं । प्रेम के प्रतीक के रूप में लोगों को भेंट किए जाते हैं । पाश्चात्य देशों में दाम्पत्य प्रेम के रूप में मंगल मिलन में पुष्पों का आदान-प्रदान होता है। भारतवर्ष को तो कोई भी धर्मानुष्ठान या मंगल कार्य फलों के बिना सम्पन्न ही नहीं होता । देवता और भगवान तक फूलों को पाकर प्रसन्न होते हैं । मनुष्य की प्रवृत्तियों को इस प्रकार कलात्मक, सौन्दर्ययुक्त एवं ऊर्ध्वगनीं बनाने वाले ये फूल भी वृक्षों की ही कृपा की देन है ।

फसलों के रक्षक

पहले लोगों के पास जोत के लिए जमीनों की कमी थी, पर उतनी-सी जमीन से ही काफी अन्न पैदा हो जाता था । अब जंगलों को काटकर अधिक जमीन कर ली गई है और फसलों की काफी अच्छी उगती हैं, फिर भी अन्न की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध नहीं हो पाती इसका कारण भी वृक्षों को काटा जाना और वनों को साफ कर देना सच है, जिससे फसल के शत्रुओं की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है सन् १९६३–६४ में उत्तर प्रदेश में चूहों ने फसल इतनी बरबाद की थी कि चारों तरफ किसानों में त्राहि-त्राहि मच गई थी । सरकार ने गाँव-गाँव दवायें भिजवाईं, बिलों में चूहे मार गैस भरवाई, पर नतीजा कुछ नहीं निकला । किसी खेत से तो साबित बीज भी लौटकर नहीं आया ।

पहले जंगल अधिक थे, चूहे,जंगली जानवर, चिड़ियायें सब उन जंगलों के पेड़-पौधों से खाद्य सामग्री प्राप्त कर लिया करते थे । खेंतों में घुसने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी । अब चूहें, चिड़ियाँ,जंगली बिलाव, नील गायें, सियार, जंगली

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सूअर, घरेलू जानवर सब घात निकाल कर खेत में खड़ी फसलों पर ही हमला करते रहते हैं, जिससे अन्न का बहुत बड़ा भाग नष्ट हो जाता है। हमारे वृक्षों की जब से पहरेदारी नष्ट हुई, अन्न संकट तभी से जोर पकड़ता जा रहा है ।

सर्दी, गर्मी और वायु के तापमान में सन्तुलन रखने का कार्य भी यह वृक्ष ही करते हैं और इसका भी प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर पूरा प्रभाव पड़ा है । अब इस दिशा में नई-नई परेशानियाँ पैदा हो रही हैं। सर्दियों में कड़ाके की शीत से पाले की लहर को रोकने की बहुत बड़ी जिम्मेदारी यह वृक्ष निभाते थे, पर अब इनके बहुतायत से कटन का यह परिणाम हो रहा है कि हमारी फसल के एक बहुत बड़े हिस्से को शील लहर खा जाती है या फिर कड़ी धूप में बीज अपनी अवधि से पहले ही सुखकर हलका पड़ जाता है । प्रकृति की सर्दी-गर्मी में सन्तुलन बनाये रखने के लिए भी वृक्षों की सघनता अनिवार्य है ।

पक्षियों के आश्रय स्थल

गर्मियों की साँझ में जब वृक्षों में नई कोपलें फूटती और नये फल आते हैं तो उनमें पक्षियों का चहचहाना, कलरव करना, किलकारी भरना बड़ा मनोहर लगता है । प्रातः काल जल्दी उठने के लिए किसानों के पास घड़ी नहीं होती तो समय की सूचना देने का काम भी ये बेचारे छोटे-छोटे पक्षी कर देते हैं । चार बजे तड़के से ही चहचहने लगते हैं मानों प्रातःकाल की ईश्वरीय वन्दना कर रहे हों । पक्षी चहचहाये और किसानों ने अपने बिस्तर छोड़े और अपने काम पर चल पड़े । शहरों में भी बड़े-बड़े पेड़ों पर प्रातःकाल और सायंकाल पक्षियों का चहचहाना बड़ा भला प्रतीत होता है और उससे इन सन्ध्याकालों में अपना काम, निद्रा और तन्द्रा त्याग कर परमात्मा की उपासना की प्रेरणा मिलती है, जिसके द्वार पर इस प्रकार पक्षियों के आश्रय-स्थल वृक्ष विद्यमान हों उन्हें अपने आपको सौभाग्यशाली मानना चाहिए ।

शीतल और सुखद छाया

गाँव हों या वन कठिन धूप में घने वृक्षों की छाया बड़ी सुखद मालूम पड़ती है । देहातों में लोग गर्मियों की दोपहरी वृक्षों के नीचे ही गुजारते हैं, ओस से बचाव के लिए भी लोग रात में वृक्ष के नीचे सोते हैं । नीम के वृक्ष की महत्ता इस दृष्टि से बहुत अधिक है नीम की विशेषता यह है कि जहाँ इसकी छाया बहुत शीतल होती है वहाँ वह रात में ऑक्सीजन ही प्रदान करता है, जब कि दूसरे अन्य सभी वृक्ष रात में श्वास-प्रश्वांस की क्रिया में परिवर्तन कर देते है । भारतवर्ष के गाँवों में अभी भी अधिकांश घरों के सामने नीम के वृक्ष देखने को मिलते है । यह आश्चर्य है कि नीम संसार में केवल भारतवर्ष में ही पाया जाता है ।

बड़ी-बड़ी बारात टिकाने, सभायें आयोजित करने तथा विद्यालय चलाने के लिए बहुत से गाँवों में पेड़ों की छाया का ही उपयोग किया जाता है । नीम और बरगद के पेड़ इनमें से मुख्य हैं । बरगद के कोई-कोई पेड़ तो दो-दो हजार वर्ष तक की आयु के होते हैं और इनका फैलाव इतना विस्तृत होता है कि उनके नीचे कई हजार व्यक्ति तक बैठ सकते हैं । गर्मी के मौसम में बेचारे पशुओं को दोपहर में विश्राम करने का कोई उपयुक्त स्थान नहीं, उन्हें यह पेड़ ही शरण देते हैं । जलाशयों के किनारे पीपल और बरगद के वृक्षारोपण करने का सम्भवतः पूर्वजों का यही उद्देश्य रहा है कि जेठ-बैसाख की तपती धूप और लू में पशु-पक्षी दोपहर में पानी पीकर वहीं सोकर वहीं विश्राम कर सकें । जीवों के प्रति इस प्रकार की दया भावना भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही है, इस परम्परा को अभी भी जीवित रखना चाहिए ।

वृक्ष नहीं, कर्ण और दधीचि कहिए--

हिन्दू धर्म में दान, बलिदान, आत्मदान और सर्व स्वदान की गौरव गाथाएँ भरी पड़ी हैं । कर्ण, दधीचि, सत्य हरिश्चन्द, मोरध्वज, बलि और वाजिश्रवा के त्याग और बलिदान से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं, जो महापुरुषों के प्रति श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है । समाज के लिए जीवन उत्सर्ग कर देने वालों के प्रति यह सम्मान कोई बड़ी बात नहीं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसा करना तो जीवन का मुख्य कर्त्तव्य होना ही चाहिए। इस दृष्टि से इन पेड़ों की त्याग-वृत्ति भी कुछ कम नहीं । जड़ से लेकर फल-फूल तक सर्वस्व समाज के लिए होम देने की पुण्य साधना के प्रति जितनी श्रद्धा व्यक्त की जाय थोड़ी है ।

कदाचित् यह पेड़ पढ़े-लिखे होते और लेखनी चलाने की उनमें क्षमता रही होती तो उनके इतिहास में भी ऐसी करोड़ों गौरव-गाथायें लिखी गई होती । किस वृक्ष ने १०० वर्ष तक करोड़ों रुपये के फल दिये इसका उल्लेख होता, किसी की एक हजार वर्ष तक निरन्तर छाया, औषधि, फूल, लकड़ी छाल आदि देने का उल्लेख होता और तब हम भी साधुवाद दिये बिना न रहते । सचमुच वृक्षों ने वरदान मानवता को दिये, दे रहे हैं और आगे देंगे, मनुष्य उनका भी ऋण न चुका सकेगा ।

वृक्षों का ऋण कैसे चुकायें ?

शास्त्रीय आदेश, अध्यात्मिक महत्त्व और वृक्षों के अनुदानों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उनकी रक्षा करें, और उन्हें एक बहुमूल्य सम्पत्ति मानकर उनकी समृद्धि का प्रयत्न करें । इसमें मानव-जाति का बड़ा हित है । वृक्षों की सघनता जितनी बढ़ेगी उतना ही अधिक हमें आध्यात्मिक, प्राकृतिक, आर्थिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभ भी प्राप्त होंगे ।

श्रावणी पर्व और वृक्षारोपण-

पर्व मनाने और उन अवसरों पर विशेष पुण्य प्रयोजन रखने की परम्परा हमारे भारत देश में बहुत ही प्राचीनकाल से चली आ रही है । श्रावणी पर्व का महत्त्व इनमें से सर्वाधिक है । उस दिन अपने ऋषियों, पितरों, को ऋद्धा समर्पित करते हैं । आचार्यों ने देखा कि वृक्ष परोपकार के प्रतीक हैं जो बिना मोल माँगे मनुष्यों-पशुओं को छाया,फल,हरियाली प्रदान करते हैं । इसके अतिरिक्त और भी अनेक लाभ वृक्षों से मिलते हैं । मानव-जीवन में वृक्ष,वनस्पतियों का बहुत बड़ा हाथ है । भोजन, वस्त्र, निवास आदि में वृक्षों का ही योगदान अधिक रहता है, इसलिए वृक्षारोपण, उनका पूजन एवं अधिकाधिक हरियाली पैदा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है ।

श्रावणी पर्व पर इस कर्त्तव्य की पूर्ति का एक निश्चित विधान आदिकाल से चला आ रहा है, पर अब उसे बहुत थोड़े क्रिया काण्ड के रूप में मना लिया जाता है । उसके व्यावहारिक पहलू यों ही अछूते रह जाते हैं । इस पुण्य पर्व पर प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को एक वृक्ष लगाना चाहिए, उसका पूजन करना चाहिए और जब तक वह इतना समर्थ न हो जाय कि अपनी खुराक आदि स्वयं ग्रहण करने लगे, तब तक उसे खाद, पानी, मिट्टी और पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करते रहना चाहिए । देश की आबादी में से यदि पचास प्रतिशत व्यक्ति भी इस पर्व पर अपनी रचनात्मक श्रद्धाञ्जलि प्रति वर्ष प्रस्तुत करते रहें और २० करोड़ वृक्ष हर साल लगाते रहें तो यह धरती सचमुच फिर से शस्य-श्यामलता बन जाये । व्यक्तिगत रूप से यह कार्य हर हिन्दू को करना चाहिए ।

वृक्षारोपण सप्ताह

सामूहिक रूप से वृक्षारोपण सप्ताह भी मनाने चाहिए । ऐसे आयोजन धार्मिक रहें तो और भी अच्छा है । इसके लिए श्रावणी के आस-पास का समय ही अधिक उपयुक्त है । इन दिनों लगाये हुए वृक्षों की जड़े आसानी से मिट्टी पकड़ लेती है और उन्हें पानी अदि देने की भी जरूरत नहीं रहती ।

सप्ताह के कार्यक्रमों को तीन भागों में विभक्त कर दिया जाय ।

(१) धर्नानुष्ठान-अर्थात् प्रातःकाल लोग एकत्रित हों और यज्ञ, कथा, कीर्तन आदि के माध्यम से ईश्वर की सामूहिक प्रार्थना करें, धर्माचरण की प्रेरणा माँगें और युग-निर्माण सत्ससंकल्प का पाठ करें । थोड़े से प्रसाद आदि के वितरण की व्यवस्था हो सके तो वह और भी अच्छी बात है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२) सभा का आयोजन किया जाय जिसमें अधिक लोगों को इकट्ठा कर वृक्षों के धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक एवं अन्यान्य लाभों से अवगत कराया जाय और उन्हें वृक्षारोपण की प्रेरणा, हरे वृक्ष न काटने के सुझाव दिये जायें । रूपक दृष्टान्त देकर लोगों को समझाया जाय, वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी और आँकड़े दिये जायें । उपलब्ध हो सके तो इस प्रकार का साहित्य भी लोगों को पढ़ाया जाय। पहले से वृक्षों के महत्त्व बताने वाले पर्चे छपवाकर रखे जायें और उन्हें लोगों में बाँटा जाये । वृक्षों की परोपकार सम्बन्धी कविताएँ छापी जायें और उनका भी वितरण हो ।

(३) सामूहिक रूप से वृक्षारोपण किये जायें । गाँव के किन्हीं वयोवृद्ध, अध्यापक, सरपंच अथवा अन्य गण्यमान्य व्यक्ति से वृक्षरोपण कराये जायें और उनका घी, धूप, दीप से पूजन कर हर्ष मनाया जाये। इस तरह के कार्यक्रम एक सप्ताह तक चलाये जायें तो उससे जनता में एक रचनात्मक वातावरण का विकास हो सकता है ।

कीर्ति-स्तम्भ, स्मृति-स्तम्भ

पुण्य आत्माओं और प्रतापी पुरुषों की यादगार में कीर्ति-स्तम्भ बनाये जाते हैं । ऐसे स्तम्भ अधिकांश मिट्टी गारे और पत्थर के बने होते हैं । इनमें खर्च भी काफी होता है और धीरे-धीरे इनका महत्त्व भी कम होता जाता है । आवश्यक संरक्षण न मिले तो ये जल्दी ही टूट-टूट कर खण्डहर हो जाते हैं और उनका नाम निशान भी मिट जाता है । इस दृष्टि से वृक्षों के कीर्ति-स्तम्भ अधिक सुन्दर हो सकते हैं, इनमें खर्च भी कम होता है और किफायत भी उतनी नहीं करनी पड़ती है । यह वृक्ष किसके नाम पर लगाया गया है, भले ही लोग इस बात को न जानें, पर उससे अनायास ही अनेक प्राणियों की जो सेवा होगी उससे उस स्वर्गीय आत्मा को भी सुख-शान्ति मिले बिना न रहेगी जिसके नाम पर वह लगाया गया है ।

अपने परिवार के किन्हीं प्रियजन की याद में मृतक-श्राद्ध के रूप में इस तरह के स्मृति स्तम्भ बड़े प्रेरणादायक सिद्ध हो सकते हैं और उससे जन-मानस में एक नये तरह की पुण्य भावनाओं का पोषण हो सकता है । मृतात्माओं के लिए दुःख न करके इस प्रकार श्रद्धा व्यक्त करने का तरीका कहीं अधिक सुन्दर है ।

घरों के आस-पास विद्यालय और देवालय में भी वृक्ष उगायें

व्यक्तिगत रूप से अपने घरों के सामने तो जितना स्थान उपलब्ध हो सके उसमें जितने वृक्ष लगाये जा सकें उतना ही अच्छा । घर के आस-पास पेड़ होते हैं तो उसकी शोभा बढ़ती है, छाया मिलती है, वायु स्वच्छ रहती है और भी बहुत से लाभ हैं। इनकी देख-भला भी कुछ कठिन नहीं। नीम के वृक्ष तथा फलदार पौधे तो यथासम्भव हर घर के सामने रहें ही

अध्यापक विद्यालय की भूमि में कलात्मक ढंग से आम महुआ, नीम, जामुन, पाखर, अमलतास के वृक्ष और छोटे-छोटे फल वाले पौधे जैसे-अनार, अंगूर, संतरा, नींबू, पपीता, केला, अमरूद आदि की वाटिकायें लगवा सकते हैं । इसके लिए बुनियादी शिक्षा क्रम से एक घण्टा बागवानी के लिए रखा भी जाता है, इस समय का उपयोग करना चाहिए ।

ऐसा कोई देवालय और जलाशय न रहे जो वृक्षों से घिरा न हो । इनमें फूलों वाले छोटे पौधे तो रहें ही साथ ही बड़ी झाड़ वाले वृक्ष भी रहें । इन्हें इस दृष्टि से लगाया जाय जिससे देखने में भी अच्छे लगें और यदि कभी अनुष्ठान आदि रखे जायें तो उस समय लोगों को पर्याप्त छाया और बैठने के स्थान की भी गुञ्जायश बनी रहे ।

बड़े बाग और उनकी व्यवस्था

गाँवों में लम्बी उम्र के वृक्ष जैसे आम, महुआ, जामुन, गूलर, पीपल, पाखर, सेमर, इमली, बरगद और फलों वाले बाग अलग–अलग अथवा सम्मिलित रूप से लगाए जाने चाहिए । सरकार की ओर से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जितनी जमीन में बाग होता है, उसका लगान भी नहीं लिया जाता या लिया जाता है तो कम । यह कार्य अधिक श्रम व श्रम साध्य भी नहीं है । एक-दो एकड़ भूमि में चारों ओर से ४–५ फुट ऊँची दीवार उठाकर उसमें नागफनी या अन्य कँटीली झाड़ियाँ लगाकर बाउण्डरी बना ली जाये और बीच में गड्ढे खोद लिए जायें । उनमें अच्छी मिट्टी और खाद डालने से वृक्षारोपण की तैयारी हो जाती है ।

जब बरसात आती है तो अपने नजदीक के शहर के किसी पौध घर से फलों के पौधे लाकर अपनी रुचि के अनुसार इन गमलों में लगा दिये जायें । आमतौर पर एक-दो बरसातों में ये अपनी जड़ें जमीन में गहराई तक जमा लेते हैं उस समय अधिक देखरेख की जरूरत भी नहीं रहती । पानी की सिंचाई के लिए बाग के अन्दर ही एक कुआँ रहे और उससे सप्ताह या १५ दिन में एक बार उनकी सिंचाई की जाती रहे और समय-समय पर थोड़ी-थोड़ी खाद दी जाती रहे तो दो-तीन वर्ष में ही एक सुन्दर बाग तैयार हो सकता है ।

तुलसी और तुलसी कानन

तुलसी के लाभ और महत्त्व से हर हिन्दू परिचित है । किसी समय में हर घर में कम से कम एक तुलसी का बिरवा अवश्य होता था और बिना उसे जल दिए लोग अन्न ग्रहण नहीं करते थे । तुलसी का पौधा इतना छोटा होता है कि उसके लिए जमीन की कमी का प्रश्न किसी के सामने नहीं हो सकता । शहरों में जहाँ स्थान की बड़ी कमी रहती है, वहाँ भी निष्ठावान लोग गमलों में तुलसी का पौधा लगाकर रखते हैं । वह कार्य कुछ मुश्किल नहीं है । हर गृहस्थ दो-तीन गमले बड़े मजे से अपने घर में लगाये रख सकता है । गाँवों में इसके लिए स्थान भी दिया जा सकता है ।

तुलसी आन्दोलन को मुख्य रूप देना चहिए । इसके लिए जिनके पास अधिक स्थान उपलब्ध हो उन्हें तुलसी कानन लगाने चाहिए । किसानों को तुलसी की खेती के लिए एक दो बीघे जमीन रखने की प्रेरणा भी देनी चाहिए । इसकी डाल, पत्तियों तथा बीजों की छोटी-छोटी दवाएँ बनाकर रखनी चाहिए और उनका प्रयोग बढ़ाना चाहिए । तुलसी कानन से छोटे-छोटे पौधे निकाल कर गमलों में लगाकर ऐसे बहुत से घरों में जो तुलसी लगाने में आलस्य दिखायें उन्हें बाँटने चाहिए और उन्हें नियमित रूप से उसमें जल डालने,पत्तियाँ सेवन करने, पौधों की सुरक्षा रखने, अगरबत्ती जलाने और आरती करने की भी प्रेरणा देनी चहिए । जो लोग चाय पीने के अभ्यस्त हों उन्हें चाय की पत्तियों के स्थान पर तुलसी की पत्तियों का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करना चाहिए । तुलसी और उससे लाभ की विस्तृत जानकारी देने के लिए युग निर्माण -योजना द्वारा प्रकाशित पुस्तक "तुलसी के चमत्कारी गुण" से इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी और मार्ग-दर्शन प्राप्त किया जा सकता है ।

हम नये वृक्ष और बगीचे लगायें और दूसरों को प्रेरणा दें, यह तुक की बात है, पर कम से कम इतना तो सभी करें कि हरे वृक्ष न काटे जायें । इसे भी एक प्रकार की अमानवीयता ही कहना चाहिए । वृक्ष लगाने का पुण्य प्राप्त न करें, तो उनके काटने के पाप से भी हमें बचना चाहिए ।

वन-सम्पदा का सरंक्षण भी आवश्यक है

भारतीय सभ्यता-संस्कृति में वनश्री को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है । हमारे यहाँ पीपल, वट आदि वृक्षों की पूजा भी प्रचलित है । भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में चैत एकादश तथा अन्य अवसरों पर इस प्रकार की पूजा की जाती है। कई वृक्षों की लकड़ी जलाई नहीं जाती, उन्हें काटना पाप माना जाता है । पीपल और वट को जल चढ़ाया जाता है । तुलसी के पौधे को आज हमारे घरों में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला हुआ है । उसके तले सन्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

या को दीपक जलाया जाता है । उपासना के पश्चात् अर्ध्य दान के लिए वृक्षों व पौधों पर जल चढ़ाया जाता है ।

इन परम्पराओं के पीछे यदि कोई महत्त्वपूर्ण तथ्य है तो वह यही है कि मनुष्य वनों का, वृक्षों का महत्त्व समझे । अपने स्वास्थ्य व समृद्धि के साथ जुड़े हुए इस प्रकृति गत संरचना का महत्त्व समझे । हमारे धर्म ग्रन्थो में यत्र-तत्र तनों की महिमा वर्णित है ,क्योंकि हमारे महत्त्व पूर्ण आर्ष ग्रन्थों की रचना तपोवनों में ही हुई थी । हमारी देवोपम संस्कृति का उद्‌गम, उद्‌भव व विकास वन क्षेत्र से ही हुआ था।

आर्थिक और अन्यान्य दृष्टिकोणों से भी देखें तो हमें ज्ञात हो जायेगा कि वन-सम्पदा का हमारे लिए कितना महत्त्व है और उसका संरक्षण, सम्वर्धन कितना आवश्यक ।

भोजन के बिना मनुष्य कुछ दिनों तक जीवित रह सकता है, जल के बिना भी कुछ समय तक जीवित रह सकता है, किन्तु वायु के बिना वह कुछ ही क्षणों में मर जाता है । मनुष्य के लिए जो प्राणवायु चाहिए वे पेड़-पौधे ही प्रदान कर सकते हैं । वायुमण्डल में जो ऑक्सीजन है, उसे मनुष्य श्वांस लेकर कार्बनडाई ऑक्साइड में बदल देता है । वह कार्बनडाई ऑक्साइड जो मनुष्य के लिए प्राणघातक है, पेड़ पौधे स्वयं भक्षण करके पुनः मनुष्य के श्वांस लेने व जीवित रहने के लिए प्राणवायु ऑक्सीजन प्रदान करते हैं ।

प्रकृति के इस चक्र को मनुष्य इन दिनों बुरी तरह विशृंखलित कर रहे हैं । मनुष्य ही नही अब तो उसके द्वारा बनाये गये कलकारखाने व भवन टनों दूषित वायु वातावरण में छोड़ते रहते हैं जिससे ऑक्सीजन की मात्र कम पड़ती जाती है । यदि मनुष्य ने अपने अति आवश्यक खाद्यान्न शुद्ध वायु पाने के लिए वनों का क्षेत्र जनसंख्या तथा कल-कारखानों के साथ-साथ बढ़ाया नहीं तो उसके स्वास्थ्य के लिए यह बहुत बड़ा खतरा उपस्थित हो जायेगा । वायु प्रदूषण का सबसे मोटा इलाज वनों की समृद्धि है ।

खाद्य पदार्थों के लिए हमें कृषि पर निर्भर रहना होता है । वर्षा करने में वनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महासागरों से जो मानसून उठते हैं वे वनों के द्वारा शीतलता पाकर ही वर्षा करते है । यही कारण है कि सरकार ने इस तथ्य को ध्यान में रखकर वनों को सुरक्षित रखने की गरज से पृथक से वन विभाग खोला है तथा एक निश्चित सीमा तक वन-क्षेत्र बनाये रखा है । हमारी आर्थिक समृद्धि वनों के साथ जुड़ी होने से हमें इस ओर पूरा-पूरा ध्यान देना ही चाहिए ।

जब मूसलाधार वर्षा होती है तो भूमि का तल कट–कट कर सागर के पेट में पहुँचने लगता है। धरती माता के इस उपजाऊ पन का क्षरण उसे बन्ध्या बना देने को पर्याप्त होता है, किन्तु वे वन ही उसे इस क्षरण से बचाते हैं । वृक्ष अपनी जड़ों से भूमि को बाँधे रहते हैं, उसे कटने नहीं देता । पर्वतों पर वृक्ष न रहे होते तो उनका जीवन आधा ही रह जाता । अतः वनस्पति लगाने का अर्थ है, भूमि की उर्वरा शक्ति का रक्षण करना और वन काटने का अर्थ है उसे बन्ध्या बनने का अभिशाप दे देना ।

वनों से कई प्रकार की सम्पदाएँ मनुष्य को मिलती हैं । नार्वे, स्वीडन तथा रूस के कोणधारी वनों के क्षेत्रें के निवासियों का जीवन तो वनों पर ही आधारित है । उनकी अर्थ-व्यवस्था वन उद्योग पर ही टिकी हुई है ।

वनों से मूल्यवान इमारती लकड़ी, जलाऊ लकड़ी लाख, गोंद, रेशम, कत्था, फल-फूल, वनौषधियाँ आदि मिलती हैं । उनमें कितने ही वनचारी पशु-पक्षी रहते हैं । कितनी ही अरण्यवासी जनजातियों का जीवन इन वनों पर ही आधारित है। थोड़ी देरे के लिए यह कल्पना करें कि वनों से मिलने वाली लकड़ी आदि उपजें हमें मिलना बन्द हो जायें तो हमारी क्या स्थिति होगी ? तो हम उस कल्पना से ही सिहर जायँ । किन्तु यदि जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ वनों की, वनस्पतियों की वृद्धि आँकी गयी तो वह दिन आने वाला है जब हमारे हिस्से में बहुत कम वन क्षेत्र रह जायेगा । लकड़ी की बढ़ती हुई कीमतें तथा कमी इसी बात की पूर्व सूचना है ।

हमारे देश में जितना वन क्षेत्र होना चाहिए उतना नहीं है । हमारे यहाँ २, ७४, ००० वर्गमील पर ही वन है । यह देश के समूचे क्षेत्र फल का २२ प्रतिशत ही है, जो बहुत कम है । साथ ही साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रति एकड़ वनोत्पादन भी बहुत कम है । हमारे यहाँ प्रति एकड़ वनोत्पत्ति २५ घन फुट हैं जबकि फ्रांस में ५६.८ घन फुट, जापान में ३० घन फुट है । कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे वन उतने सघन नहीं हैं । जितने होने चाहिए ।

वनों से ही धरती की सुन्दरता निखरती है । प्राकृतिक स्थलों में जो नैसर्गिक सुषमा, सौन्दर्य तथा रमणीयता देखने को मिलती है, वह बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं व सुन्दर महानगरों में कहाँ देखने को मिलती है, प्राकृतिक स्थलों में पहुँचते ही, हरीतिमा के दर्शन होते ही चित्त आल्हाद से भर उठता है । यही कारण है कि नगरीय सभ्यता से ऊबा हुआ, त्रस्त हुआ व्यक्ति शान्ति पाने के लिए हिल स्टेशनों की ओर भागता है । माँ से बिछुड़े हुए शिशु की जो स्थिति होती है, वही स्थिति मनुष्य की हो जाती है और वह पुनः माँ प्रकृति की गोद में शान्ति पाने के लिए दौड़ पड़ता है ।

मोटे तौर पर वनों तथा वनस्पति जगत से मनुष्य को मिलने वाले लाभों का वर्णन ऊपर किया गया है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वनों का वृक्षों को मनुष्य के जीवन के साथ अटूट सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध जीवन-मरण के प्रश्न जैसा महत्त्वपूर्ण है। अतः हमें बढ़ती जनसंख्या, बढ़ती यान्त्रिक सभ्यता के साथ-साथ वनों का वृक्षों का संरक्षण अभिवर्धन करने के लिए समय रहते ही सचेष्ट हो जाना चाहिए

देव संस्कृति हमें भाग्यवादी नहीं, कर्मवादी बनाती है।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहाँ तीन महीने ही वर्षा होती है और वह भी अनिश्चित–सी । अतः वन संरक्षण की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया गया तो हमें निकट भविष्य में अकाल का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए । विशेषतः भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए तो वन ही अन्नदाता हैं । प्राचीनकाल में जबकि देश में वनों की बहुलता थी, वनवासी तपस्वियों का समस्त योगक्षेम वनों पर ही आधारित था । भोजन, छाजन यहाँ तक कि वस्त्र भी जंगलों से ही प्राप्त होते थे । कन्द-मूल, फल-पत्ते आदि का सात्विक आहार, बाँस, ताड़ एवं वट आदि से कुटरी, भोजन-पत्र, केला पत्र एवं कमल पत्र से वस्त्रें की आवश्यकता पूरी की जाती थी । गुरुकुलों के आचार्य और राजकुलों के राजकुमार, अभिजात्य वर्ग के छात्र अपने अध्ययन काल में सम्पूर्ण वनों पर ही आधारित रहते थे । इस प्रकार तत्कालीन समाज का प्रबद्ध वर्ग अपने जीवन का अधिकांश समय वनों में ही व्यतीत करता था ।

राज्यों की सीमाओं के वन प्रदेश अलघ्य होते थे । सुरक्षात्मक दृष्टि से किसी भी राज्य के लिए वनों का अत्यन्त महत्त्व था, इसीलिए वनों की रक्षा के लिए विशेष चौकी पहरे का प्रबन्ध होता था । सेना के वाहनों घोड़े तथा हाथियों का चारा-पानी पूर्णतः इन्हीं जंगलों से प्राप्त होता था । यदि यह कहें कि प्राचीन भारत के समस्त निवासियों का भरण-पोषण जंगलों पर ही आधारित था तो कोई अतिशयोक्ति न होगा ।

आज भी ईंधन, इमारती लकड़ी, औषधि, जड़ी-बूटी, गोंद, लाख, मधु तथा अन्य कई महत्त्वपूर्ण उद्योगों का कच्चा माल वनों से प्राप्त होता है । बीड़ी का तो समस्त उद्योग जंगलों पर ही निर्भर है । इस भाँति देश की जनसंख्या के अधिकांश भाग की रोटी-रोजी जंगलों से ही चलती है ।

विदेशी पर्यटकों के लिए भारत के जंगल अफ्रीका महाद्वीप के जंगलों से अधिक विचित्र और अधिक मनोहर हैं । जंगलों के शान्त और निरापद वातावरण में भारतीय तत्व-दर्शियों ने प्रकृति के गहनतम रहस्यों का अध्ययन किया है । श्री समृद्धि के कुबेर इन वन प्रदेशों का संरक्षण जनता एवं सरकार दोनों का अनिवार्य उत्तरदायित्व है, किन्तु यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्तरदायित्व केवल सरकार पर ही नहीं छोड़ा जा सकता । सरकार के काम अपने ढंग से होते हैं और सरकार भी तो जनता के आदमियों द्वारा ही चलती है । वनों का महत्त्व समझ लेने पर सरकार व जनता दोनों की तरफ से वन संरक्षण का काम हो सकता है । सरकार भी वनों से लाभ उठाने के लिए ठेकेदोरों को लकड़ी कटाई के ठेके देती है। उनमें भी पूरी-पूरी सावधानी रखने की आवश्यकता है, नहीं तो वन की सघनता को खतरा उत्पन्न हो सकता है ।

वनों की अन्धाधुन्ध कटाई रोक कर उन्हें सघन बनाने का प्रयास होना चहिए । यदि हम वन क्षेत्र को बढ़ा न सकें तो कम से कम उन्हें विरल होने से तो रोकना ही चाहिए । अभी तक अधिकांश जनता खाना पकान के लिए लकड़ी तथा लकड़ी के कायेले जलाती है । इससे हमारी वन-सम्पदा को बहुत हानि पहुँचती है । इसी गति से यदि ईंधन की खपत होती रही तो निकट भविष्य में हमारे सामने ईंधन की समस्या विकराल होकर आयेगी । अतः भोजन पकाने में कम से कम ईंधन लगे ऐसी पद्धति को अपनाया जाना आवश्यक है । भाप द्वारा पकाये जाने की विधि में लगभग एक तिहाई ईंधन ही खर्च होता है । नगरवासियों के लिए भाप द्वारा भोजन पकाने के उपकरण महँगे होते हुए भी ईंधन की बचत को देखते हुए सस्ते ही पड़ते हैं । अतः इनका उपयोग करना लाभकारी है ।

जहाँ फलों के बगीचे लगने की सुविधा है, जलवायु अनुकूल है, वहाँ खाद्यान्न तथा अन्य फसलें न उगाकर फलों के बगीचे लगाने पर ही कृषकों को ध्यान देना चाहिए । यों भी कम उपजाऊ भूमि पर आम, अमरूद, बेर आदि के बाग लगाकर अधिक व स्थाई लाभ कमाया जा सकता है । इस प्रकार देश की वानस्पतिक सम्पदा में अभिवृद्धि होगी ।

देश की घटती हुई वन-सम्पदा को दृष्टिगत रखकर स्वर्गीय कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने वन महोत्सव कार्यक्रम प्रतिवर्ष मनाने का अभियान चलाया था, किन्तु वह अभियान अभी तक सरकारी क्षेत्रों तक ही सीमित होकर रह गया है । यों यह अब भी प्रति वर्ष मनाया जाता है । पेड़ लगाये जाते है, किन्तु यह मात्र आँकड़े पूरे करने की बात बनकर रह गई है । इसे जनता का अभियान बनाने की आवश्यकता है । प्रत्येक समझदार व्यक्ति को अपने इस दायित्व को समझना चाहिए ।

हम अपने खाने जितना अन्न उगाते हैं, या नहीं उगाते तो उसे मेहनत की कमाई खर्च करके खरीदते हैं तो हमारा यह भी कर्त्तव्य है कि हम जितनी शवास लेते हैं, जितनी वायु गन्दी करते हैं, जितनी प्रकृति प्रदत्त लकड़ी जलाते हैं, उतनी ही वन-सम्पदा की वृद्धि भी करें नहीं तो एक प्रकार का प्रकृति द्रोह व भावी सन्तति के हित में अपराध होगा। हम उनके हक पर डाका डाल गये ।

जनता के सजग सचेष्ट रहने की आवश्यकता है कि वर्तमान वन कटने व विरल होने से बचे रहें। वृक्षारोपण परम पुनीति कार्य है। पुण्य लाभ हर कोई व्यक्ति कर सकता है । कम से कम जितनी लकड़ी काम में लेते हैं, उतनी क्षति पूर्ति तो हमें करनी ही चाहिए ।

सम्राट् अशोक एवं उनके पश्चात् १५ वीं शताब्दी तक वृक्षारोपण को एक धार्मिक कृत्य के रूप में महत्त्व दिया जाता रहा । हरे वृक्ष को काटना मनुष्य की हत्या कर देने जैसा जघन्य कृत्य समझ जाता था । अनावश्यक रूप में वृक्ष की पत्ती को तोड़ना भी नैतिक दृष्टि से अपराध ही समझा जाता था ।

१५ वीं शताब्दी में जबकि देश पर मुस्लिम शासकों का आधिपत्य था । शेरशाह, अकबर, जहाँगीर आदि मुस्लिम सम्राटों ने समस्त राजपथ के दोनों ओर विशाल और सघन छायादार वृक्ष लगवाये । स्थान-स्थान पर नवीन उद्यान लगाकर देश की श्री और सुषमा की अभिवृद्धि की । काश्मीर का शालीमार एवं निशात बाग आज भी इसके साक्षी हैं । पिछली दो शताब्दियों मे वृक्षों को बड़ी निर्दयता से काटा गया है, जिसका दुष्परिणाम आज हमारे सामने है । किसी समय वृक्ष के स्वतः सूख जाने पर उसकी लकड़ी काम में लाई जाती थी किन्तु पिछली इन दो-तीन शताब्दियों में तो सैकड़ों वर्ग मील में फैले हुए वनों को काटकर काश्त की जा रही है, जो कि राष्ट्रीय स्तर पर कोई अधिक मुनाफे का सौदा साबित नहीं हुआ है । बढ़ती हुई आबादी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को अन्न पैदा करने की दृष्टि से यदि इसे उचित मान भी लिया जाय तो दूसरी ओर मरुस्थल का बढ़ना, चरागाहों की कमी तथा वर्षा की कमी घोर व्यापक विभीषिका बनती जा रही है । किन्तु सन्तोष है कि देश के कुछ मनीषियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने वर्षा तथा वनों को एक-दूसरे का पूरक सिद्ध करके सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया ।

रोम, बैवीलोन तथा फारस के विद्वानों ने भी वर्षा के लिए वनों के संरक्षण को शासन का प्रमुख उत्तरदायित्व बताया और अपने देश की सरकारों को इस बात के लिए बाध्य किया कि राष्ट्र की समृद्धि के लिए वृक्षारोपण एवं वन संरक्षण को प्रमुख राजकीय उत्तरदायित्व समझा जाय । भारतवर्ष में भी तत्कालीन खाद्य मंत्री श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने वृक्षारोपण की योजना बनाई और अधिक वर्षा के लिए वन महोत्सव आन्दोलन का शुभारम्भ किया । आज परिस्थितियों का तकाजा है कि हम इस आन्दोलन को अपना पुनीत कर्त्तव्य एवं अनिवार्य उत्तरदायित्व समझें और तन-मन-धन से सरकार को सहयोग देकर राष्ट्र को सुखी एवं समृद्ध बनाने में भागीदार बनें ।

अवतारवाद

भारतीय संस्कृति अवतारवाद में विश्वास करती है । जब पृथ्वी का पाप-भार बढ़ जाता है, ईश्वर का अवतार होता है और वह अपनी शक्ति और सामर्थ्य से संसार का भार हलका कर पुण्य की स्थापना करता है । हमारे पूर्व अद्‌भुत शक्ति सम्पन्न अवतारी महापुरुष हुए हैं और उन्होंने चकित करने वाले कार्य किये हैं । यदि हम यह मानें कि एक हार्स पावर (यह कला) हममें हैं, तो हमारे अवतारों की कलाओं का कुछ सापेक्षित महत्त्व हमारे सम्मुख आ सकता है । परशुराम तीन कला के अवतार थे, श्रीरामचन्द्रजी १२ कला और श्रीकृष्ण सोलह कला के अवतार माने गए हैं । रावण में भी १० कलाएँ थीं, पर उसमें दस आसुरी प्रवृत्तियाँ भी विकसित थी । अतः उसकी प्रवृत्ति विपरीत दिशा मे चलती रही और उससे लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक हुई ।

सगुण रूप में ईश्वर के साकार स्वरूप का नाम ही अवतार है । निर्गुण निराकार का ध्यान तो सम्भव नहीं है, पर सगुण रूप में आकर वह इस संसार के कार्यों में फिर क्रम और व्यवस्था उत्पन्न करते हैं। हमारा प्रत्येक अवतार सर्व व्यापक चेतना सत्ता का मूर्त रूप है । श्री सुदर्शनसिंह ने लिखा है-

"अवतार शरीर प्रभु का नित्य-विग्रह है । वह न मायिक है और न पाँच भौतिक । उसमें स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों का भेद भी नहीं होता । जैसे दीपक की ज्योति में विशुद्ध अग्नि है, दीपक की बत्ती की मोटाई केवल उस अग्नि के आकार का तटस्थ उपादान कारण है, ऐसे ही भगवान् का श्री विग्रह शुद्ध सच्चिदानन्दघन हैं । भक्त का भाव उस आकार को व्यक्त करने का तटस्थ उपादन कारण है । यह आकार भी नित्य है, क्योंकि भक्त का भाव, भाव स्तर से उद्‌भूत है और भाव-स्तर नित्य धाम से । भगवान् का नित्य-विग्रह कर्मजन्य नहीं है । जीवन की भाँति किसी कर्म का परिणाम नहीं है । वह स्वेच्छामय है, इसी प्रकार भगवदावतार कर्म भी आसक्ति की कामना या वासना प्रेरित नहीं है, दिव्य लीला रूप है । भगवान् के अवतार के समय उनके शरीर का बाल्य-कौमारादि रूपों में परिवर्तन नहीं होता । उनका तो प्रत्येक रूप नित्य है । जो परिवर्तन दीखता है, वह रूपों के आविर्भाव तथा तिरोभाव के कारण ।"

भगवान् ! का अवतार नीति और धर्म की स्थापना के लिए होता रहा है । जब समाज में पापों, मिथ्याचारों, दूषित वृत्तियों, अन्याय का बाहुल्य हो जाता है, तब किसी न किसी रूप में पाप-निवृत्ति के लिए भगवान् का स्वरूप प्रकट होता है । वह एक असामान्य प्रतिभाशाली व्यक्ति के रूप में होता है । उसमें हर प्रकार की शक्ति भरी रहती थी । वह स्वार्थ, लिप्सा के मद को, पाप के पुञ्ज को अपने आत्म-बल से दूर कर देता है । दुराचार, छल कपट, धोखा, भय, अन्याय के वातावरण को दूर कर मनुष्य के हृदय में विराजमान देवत्व की स्थापना करता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पिता ने अपने पुत्रें को, परमात्मा ने आत्मा को, राजा ने राजकुमारों को इसलिए भेजा है कि मेरी सृष्टि की न्यायपूर्ण व्यवस्था रखो । सत्य, प्रेम, विवेक को फैलाकर इस वाटिका को सुरम्य बनाओ । उसे इतना अधिकार नहीं दिया गया है कि सर्वत्र पाप, अन्याय और अत्याचार फैला दे । ऐसी अव्यवस्था और अन्याय के समय के लिए शंरीर का तीसरा नेत्र सुरक्षित है। जब मनुष्य के शरीर में फोड़े उठते हैं और बढ़ने लगते हैं, तो निर्दय डाक्टर की तरह भगवान् चाकू घुसेड़ कर मवाद को निकाल डालना भी जानते है । भले ही रोगी हाय-हाय करता रहे और बेदना से विह्वल होकर हाथ-पाँव छटपटावे । तात्पर्य यह है कि ईश्वर अधिक दिन तक जगत् में पाप की प्रवृत्ती नहीं देख सकते । कारण आत्मा की अखण्डता ऐसी है कि एक व्यक्ति के पापों का फल अन्य व्यक्तियों को भी भोगना पड़ता है । इस प्रकार कुछ व्यक्तियों द्वारा फैलाये हुए पापों का फल सभी सृष्टि को परेशान कर देता है । शेष जीवित प्राणी अनीति के, अत्याचार और आपत्ति के राक्षस के कराल डाढ़ों में फँस जाते है । तब जगत् पिता अपनी सान्त्वनापूर्ण भुजाएँ फैलाकर करुण नेत्रों से सन्देश देते हुए मानों कह उठते हैं—"पुत्रों ! इस अत्याचारी को दण्ड देकर तो मैं दूर किए देता हूँ, पर भविष्य में कभी ऐसी भूल मत करना । तुम्हें इस पृथ्वी पर, संसार में सत्य, प्रेम और न्याय के सुमधुर फल चखने के लिए भेजा गया है, न कि इस सुरम्य वाटिका में दुराचार, छल, कपट, धोखा, अन्याय की आग लागने के लिए । अब पाप के बहकावे में मत आना । शैतान के पंजे से सावधान रहना । दण्ड सहकर तुम्हारे पाप संस्कार निवृत्त हो गये हैं । अब अपने कर्त्तव्य धर्म को समझो। तुम भोग-विलास या काम-वासना रत कीड़े नहीं हो, पवित्र निष्कलंक सात्विक प्रवृत्ति का आत्मा हो, निर्विकार हो । इन्द्रिय लालसा के लिए कदम मत बढ़ाना । पिछली भूलों का प्रायश्चित करो और नवीन सत्य-युग का निर्माण करों ।"

इस प्रकर हिन्दू अवतार का सत्य स्वरूप यह है कि पाप दंडित हो । दुराचार, छल-कपट से मनुष्य बचते रहें । उन पर दंडित होने का आतंक छाया रहे । मनुष्यता शोधित होकर, पवित्र होकर, अपने विकार छोड़कर कर्त्तव्य धर्म पर आरूढ़ होती रहे । प्रभु का न्याय, सत्य विवेक और प्रेम का संतुलन ठीक बना रहे । अवतार के बाद सतयुग का आरम्भ हेाता है । निर्विकार आत्माओं का राज्य छा जाता है । दुराचार का वायुमण्डल समाप्त हो जाता है और उज्वल भविष्य दृष्टिगत होने लगता है ।

अवतार कैसे होगा ?

निश्चय ही इस बात को महत्त्व नही देना चाहिए कि किसी शरीर में ईश्वरीय अंश की विशिष्ठ कलाएँ स्वीकार की जायेंगी, क्योंकि यह स्वीकार करना जनता की इच्छा के ऊपर होता है ।

एक काल में एक उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिए कभी-कभी कई अवतार एक साथ प्रकट होते हैं । रामचन्द्रजी के युग में भी परशुराम अवतार मौजूद थे । भरत और लक्ष्मण की आत्माएँ भी वैसी ही उच्चकोटि की थीं । हनुमानजी में भी दैवी कलाएँ बढ़ी–चढ़ी थी । श्रीकृष्ण के समय पाण्डव उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक प्रकार के अवतार ही थे ।

महात्मा गौतम बुद्ध और महावीर भी अपने-अपने युग के दिव्य अवतार ही तो थे । इन सब में पाप का विरोध और सत्य, न्याय की स्थापना के अंश थे। इन चमत्कारी महपुरुषों ने अपने आत्म-बल से दिव्य जीवन की स्थापन की थी ।

अवतार मल-मूत्र की गठरी में नहीं वरन् एक उच्च नैतिक आध्यात्मिक भावन-विशेष में होता है। यहा भावना अचानक बड़ी तीव्र गति से जब बढ़ जाती है, तो उसके कर्त्ता को चमत्कारी महापुरुष समझा जाता है ।

वास्तव में ईश्वरीय इच्छा का उस समय के व्यक्ति अनुकरण मात्र करते हैं और महत्त्व प्राप्त करते हैं । इन एक कालिक अवतारों में जो सर्वश्रेष्ठ होता है, उसे प्रधानता मिलती है । वैसे वह सब कार्य उस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अकेल का नहीं होता । अन्य आत्माओं की शक्ति भी उतनी ही और कई बार उससे भी अधिक लगती है, तब कहीं जाकर वह उद्देश्य पूर्ण होता है ।

राक्षसों का नाश करने में राम के अन्य साथियों की जो क्षमता थी, उसे भुलाया नहीं जा सकता । लंका का नाश करने में क्या वानर सेना तथा अन्य योद्धाओं ने कुछ नहीं किया था ? क्या श्री लक्ष्मणजी की वीरता कुछ कम थी ? अहिरावण के यहाँ कैद हुए राम-लक्ष्मण को छुड़ाने वाले महाबली हनुमान को क्या कुछ कम समझा जा सकता है ? गोवर्द्धन उठाने में ग्वालों का सहयोग क्या उपेक्षणीय था ? महाभारत के धर्म-युद्ध में क्या अनेक ही श्री कृष्ण विजेता थे ?

वास्तविकता यह है कि हिन्दू संस्कृति के दृष्टिकोण से एक समय में अनेक अवतार होते हैं और उन सब की संघ शक्ति से भौतिक परिवर्तन होते हैं।

सूक्ष्म परिवर्तनकारिणी आद्य शक्ति हैं। वह आद्य शक्ति जो देवकी के गर्भ से कंस को सचेत करने के लिए उत्पन्न हुई थी, जिसे कंस ने शिला पर पटक कर मार डाला था । वह आद्य शक्ति अन्तःकरण की प्रेरणा है ।

अवतार से पूर्व हर मानव के हृदय में एक प्रकार की सनसनाहट लिए हुए एक आध्यात्मिक पुकार उठती है, वह यह स्पष्ट संकेत करती है कि "बस, अब हद हो चुकी । ठहरों, रुकों, सोचो और गलती का संशोधन करों। मैं ईश्वरीय प्रेरणा लेकर आई हूँ। मेरा स्वागत करो ।" किन्तु खेद है कि हजारों कंस उस युग-वाणी को शिला पर पटक कर मार डालते हैं । आत्मा की उस दिव्य पुकार हो कुचल डालते हैं और नृशंसतापूर्वक अपने पिछले पाप व्यापार जारी रखते हैं ।

यह आद्यशक्ति अवतार की पूर्व सूचना दुन्दभी है, जो आकाश में, अन्त लोंको में बहुत पहले सावधान होने के लिए कुहराम मचाती है । जो इस वाणी को नहीं सुनना चाहते और ईश्वरीय संदेश की अवहेलना करते हैं, वे आने वाले अवतार की तलवार से टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं ।

"जब किसी प्रगट शरीर में अवतार होगा, तो उसकी आज्ञा मानने लगेंगे ।" इस प्रतीक्षा में बैठे रहने वाले उस अन्धें के समान हैं, जो सोचता है कि जब सूरज दिखाई देगा, तब चारपाई छोड़ कर उठ बैठूगाँ । आँखों के बिना उसे सूरज नहीं दीखता है । यह उसकी इच्छा है कि हमेशा चारपाई पर ही पड़ा-पड़ा मर जाय या उठ बैठे ।

अवतार को उसके जीवन-काल में पहचानने वाले बहुत ही कम होते हैं अधिकतर को तो वह विरोधी ही दिखाई पड़ता है, क्योंकि वह तो नए जीवन, नए विचार को स्थापित कर जनता की पुरानी सड़ी-गली आदतों को छुड़ाने के लिए आता है । शत्रुओं को प्रकाश से चिढ़ होती है, और उसे पानी पी-पी कर कोसते हैं । जब वह चला जाता है, तो पछताते हैं कि "हाय ? सूर्य भगवान् उदय हुए थे; पर हम अज्ञानवश उन्हें गालियाँ देने में ही लगे रहे ।"

अवतार की दिव्य कलाएँ पहचानना आसान नहीं है । इसमें बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। अनेक बार शरीर-धारी अवतारों को देख कर उनके पीछे-पीछे चलने की इच्छा रखने वाले प्रायः धोखा खा जाते हैं । इन्हें कोई दूसरा ठग बहका कर ले जाता है । हो सकता है अवतार के धोखे में वे शैतान की पूजा करते रहें, क्योंकि स्थूल आँखों का ज्ञान बहुत ही अधूरा है । मूर्खों के लिए मोर मुकुट पीताम्बर धारण करने वाले लड़के ही साक्षात् कृष्ण हैं किन्तु ज्ञानी पुरुष भगवान् की झाँकी ज्ञान पूर्वक दिव्य-दृष्टि द्वारा करता है ।

जो अपने मुँह से चिल्लाकर कहता है कि मैं अवतार हूँ । वह झूठ बोलता है । अवतार स्वयं अपने कार्य और विचारों से प्रगट हो जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारतीय संस्कृति की मान्यताएँ

१-पुनर्जन्म में विश्वास

भारतीय संस्कृति यह मानती है कि मृत्यु से जीवन का अन्त नहीं होता, जीव नाना योनियों में जन्म लेता है । चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के पश्चात् जीव मनुष्य जैसे दुर्लभ शरीर को प्राप्त करता है । योनियों में क्रमशः विकासवाद के सिद्धान्त का पालन किया जाता है । अर्थात् स्वेदज, उद्भिज, अन्डज, जरायुज क्रमशः एक के बाद दूसरी कक्षा की योग्यता और शक्ति बढ़ती जाती है । स्वेदज जीव में जितना ज्ञान और विचार है, उसकी अपेक्षा उद्भिजों की योग्यता बढ़ी हुई है । इसी प्रकार योग्यता बढ़ते-बढ़ते शरीरों की बनावटों में भी अन्तर होने लगता है और पूर्ण उन्नति एवं विकास होने पर मानव शरीर प्राप्त हो जाता है । मनुष्य योनि इस संसार की सर्वश्रेष्ठ योनि है । अन्ततः जीव इसी योनि तक आ पहुँचता है । इस प्रकार जीव नीचे से ऊपर की ओर या तुच्छता से महानता की ओर लगातार बढ़ते चले आ रहे हैं । आत्मवादी तो यह मानते हैं कि आत्मा ही बढ़ते-बढ़ते परमात्मा हो जाती है ।

इस मान्यता की धुरी नैतिकता में रखी गई है जिससे समाज तथा व्यक्ति दोनों को ही लाभ होता है । इस मान्यता में विश्वास करने वाला व्यक्ति यह मानता है कि "मेरी जैसी ही आत्मा सबकी है और सबकी जैसी ही मेरी आत्मा है ।" इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि "मेरी आत्मा की अवस्था भूतकाल में अन्य जीवों जैसी हुई है और भविष्य में भी हो सकती है । सभी जीव किसी न किसी समय मेरे माता-पिता आदि सम्बन्धी रहे हैं और भविष्य में भी रह सकते हैं ।"

इस प्रकार इस मान्यता से मनुष्य का सब जीवों के प्रति प्रेम और भ्रातृत्व भाव बढ़ता है । हम एक-दूसरे के समीप आते हैं । इससे यह भी स्पष्ट होता है कि जीव की कोई योनि शाश्वत नहीं है । हिन्दू धर्म के अनुसार परलोक में अनन्तकालीन स्वर्ग या अनन्तकालीन नरक नहीं है, जीव के किसी जन्म या किन्हीं जन्मों के पुण्य या पापों में ऐसी शक्ति नहीं है कि सदा के लिए उस जीव का भाग्य निश्चित कर दे । वह पुरुषार्थ से सुपथगामी होकर आत्म-उन्नत अवस्था को प्राप्त कर सकता है । दूसरी ओर बुरे कर्म करने के कारण सजा के रूप में अधःस्वरूप को भी धारण कर सकता है । इस प्रकार भारतीय संस्कृति में इसी जगत् में सद्कर्म, सद्व्यवहार तथा सद्आचरण द्वारा पुरुषार्थ, सत्प्रयत्न और आशा को प्रेरणा मिलती रहती है । पुनर्जन्म में अपने सद्प्रयत्नों से हम बहुत कुछ सुधार और उन्नति भी कर सकते हैं। हम स्वयं अपने भविष्य निर्माता हैं । सब कुछ हमारे हाथ की बात है ।

मनुष्य के अन्तर्मन तथा गुप्त मानसिक प्रदेश का विश्लेषण करने से पता चलता है कि वह ज्ञान का भण्डार है । साधारण व्यक्ति को भी देखें, तो मनुष्य मानसिक दृष्टि से बुद्धिमान से बुद्धिमान पक्षी की अपेक्षा विकसित और चतुर दिखाई देता है । इसका कारण यह है कि मनुष्य योनि में आने से पूर्व के असंख्य अनुभव उसकी सुप्त चेतना में भरे हुए हैं । वे पूर्व संचित संस्कार और पुराने अनुभव समयानुसार जाग्रत और प्रस्फुटित होते रहते हैं । चतुर व्यक्ति अनेकानेक असाधारण कार्य कर डालते हैं । उनकी योग्यताएँ असाधारण होती हैं । इसका यही कारण है कि उन्होंने जन्म-जन्मान्तरों के अनुभव रूपी गढ़े हुए खजाने को उखाड़ लिया है । वैज्ञानिकों ने भौतिक संसार में जो अनेक आविष्कार किए हैं, इन शोधों में प्रधान सहायता उनके गुप्त मन में पुरानी योनियों के संस्कारों से मिली है। आत्मा ज्ञानरूप है, परन्तु धुआँ रूप जीव तो आत्मा के ज्ञान से गतिवान होता है, और सांसारिक अनुभवों को यानियों की पाठशाला में पढ़ता है। जीव अपने जीवन सम्बन्धी अनुभवों को धीरे-धीरे संचय करता है। आत्मा साक्षी रूप और निर्विकार है, वह जीव के सुख-दुःख में भाग नहीं लेता । केवल उसे प्रेरणा देता रहता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

२-आस्तिकता

भारतीय संस्कृति ईश्वर की सत्ता में अखण्ड विश्वास करती है । ईश्वर सर्वव्यापक है, यह मान्यता हिन्दू-धर्म का आधार रूप है :

''ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।।

(मुण्डक २–२–११)

अर्थात् ''वह अमृत स्वरूप परब्रह्म ही सामने है। ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दायीं ओर तथा बायीं ओर, नीचे की ओर तथा ऊपर की ओर भी फैला हुआ है। यह जो सम्पूर्ण जगत् है, वह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है ।''

हम मानते हैं कि परंब्रह्म महान् परमात्मा दिव्य और अचिन्त्य स्वरूप है। वह सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म रूप में प्रकाशित होता है । वह दूर से भी अत्यन्त दूर है । इस शरीर में रहकर भी अति समीप है, यहाँ देखने वालों के भीतर ही उनकी हृदय रूपी गुफा है। जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ नामरूप को छोड़ कर समुद्र में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही ज्ञानी, महात्मा नामरूप से रहित होकर उत्तम से उत्तम दिव्य परम पुरुष परमात्मा को प्राप्त हो जाता है । कहा गया है कि :–

''यस्यान्तः सर्वमेदमच्युतस्यालयात्मनः ।
तमाराधय गोविन्दं स्थानमग्र्यं यदीच्छसि ।।''

(विष्णु पुराण १–११–४५)

अर्थात् ''यदि तू श्रेष्ठ स्थान का इच्छुक है, तो जिन अविनाशी अच्युत में यह सम्पूर्ण जगत् ओत-प्रोत है, उन गोविन्द की ही आराधना कर ।''

भारतीय संस्कृति भगवान् की साकार उपासना में विश्वास करती है । हमारा यह विश्वास रहा है कि संसार चक्र में पड़े हुए मनुष्यों के लिए, जिस साधन से उस भगवान् की अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाय, उसके अतिरिक्त और कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं है । भारतीय सन्तों, विचारकों, दार्शनिकों और ज्ञानियों ने आत्मस्वरूप भगवान् की कथा तथा लीला अमृत वचनों का प्रसाद मुक्तहस्त से बाँटा है ।

श्रुतः संकीर्तितो ध्यानः पूजितथ्याहतोंऽपि वा ।
नृणां धुनोति भगवान् हत्स्थो जन्मायुताशुभम् ।।

(श्रीमद्भाग.१२–३–४२)

"भगवान् के रूप, गुण, लीला, धाम और नाम के श्रवण, संकीर्तन, ध्यान पूजन और आदर से वे स्वयं मनुष्य के हृदय में आकर विराजमान हो जाते हैं । एक-दो जन्मों की तो बात ही क्या, हजारों जन्मों के पाप के ढेर के ढेर भी क्षण भर में भस्म हो जाते हैं ।"

तात्पर्य यह कि भारतीय संस्कृति मानव-जीवन का साफल्य आस्तिक्य में ही मानती है । मनुष्य की उन्नति के लिए यह भावना आवश्यक भी है । वह अन्य प्राणियों के प्रति अत्याचार और स्वयं अपने बन्धु-बान्धवों के प्रति नृशंसता करना तब ही छोड़ सकता है, जबकि वह मनुष्य की सत्ता की अपेक्षा अन्य उच्चतर दृढ़तर शक्तिवान् शासन को स्वीकार करे ।

मनोविज्ञान का यह अटल सत्य है कि भय से प्राणी सन्मार्ग के निकट रहता है । उसे सदा मन ही मन यह गुप्त भय रहता है कि यदि मैं कोई गलती करूँगा, पाप-मार्ग पर जाऊँगा, किसी के ऊपर अन्याय, अत्याचार इत्यादि करूँगा, तो मुझे सजा मिलेगी । हमारे पाप, अन्याय, अत्याचार या नृशंसता की रोक करने वाली सत्ता का नाम ईश्वर है । हम यह समझते हैं कि पाप-मार्ग पर चलने से हमें नर्क की यातनाएँ भोगनी होंगी । इसलिए हम उत्तम मार्ग न छोड़कर नीच वृत्ति से सदा बचे रहते हैं। आस्तिक्य वह शक्ति है, जो हमें पाप कर्म की ओर जाने से रोकती है । दीनों, अनाथों, गरीबों के प्रति अनादर पीड़ा पहुँचाने से बचाती है । यदि यह भावना न हो, तो पापियों की संख्या और भी बढ़ जायेगी, जो अच्छी वृत्तियों वाले लोगों को भी पापों में धकेल कर इस पृथ्वी का सर्वनाश कर देंगे ।

ईश्वर में विश्वास हमारे समाज के लिए कवच का काम करता है । जो दुष्ट विश्वासघाती हैं, व्रत का उल्लंघन करते हैं, समाज के द्वेषी हैं, वे इसी भाव से डरकर पाप कर्मों से बचते हैं ।

भारतीय संस्कृति यह मानती है कि ईश्वर शक्तिशाली है । असंख्य नेत्रों से हमें और हमारे कार्यों गुप्त मन्तव्यों, बुरी भावनाओं, झूठ, कपट, मिथ्या को देखते हैं और नाना रूपों में हमें उसकी सजा देते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । अतः हमें नीच वृत्तियों से बचना चाहिए ।

एक विद्वान् के शब्दों में हम यों कह सकते हैं:—

"भय से प्राणी सन्मार्ग के समीप रहता है । मानवी सभ्यता को उचित मार्ग पर बनाये रखने के लिए यह जरूरी है कि वह प्राणि-सत्ता से अधिक किसी विशेष बलशाली की सत्ता को स्वीकृत करे। उसके प्रति आदर की भावना हो । उसकी दया के लिए सदैव लालायित रहे; उसके कोपभाजन होने का भय ही मनुष्य को सन्मार्ग-गामी बनाकर उसे कर्त्तव्य पर स्थिर रख सकता है । मनुष्य की ऐसी धारणा ही उसे मनुष्य बनाये रखती है । यदि मनुष्य अपने को ही सर्वस्व मान ले तो अहम्मन्यता के कारण मानवता लुप्त होकर दानवता का ताण्डव प्रारम्भ हो जाता है। इसलिए आवश्यक है कि हम अपने ऊपर किसी के अस्तित्व को स्वीकार करें । मानव-जीवन का सर्वोत्कृष्ट साफल्य और बहुमूल्य निधि आस्तिक्य का यही मूल स्रोत है ।"

आस्तिक्य की भावना का हमारे यहाँ व्यापक प्रसार और विस्तृत व्याख्याएँ हुई हैं । ईश्वर के निर्धारित मार्ग पर न चलने वालों को नर्क में असंख्य यातनाएँ मिलती हैं-ऐसा माना गया है । पद्मपुराण में एक स्थान पर नर्क में कौन जाते हैं, इसकी व्याख्या की गई है । उसका सार इस प्रकार है :—

"जो द्विज लोभ से मोहित हो पावन ब्राह्मणत्व का परित्याग करके कुमार्ग से जीविका चलाते हैं, वे नरकगामी होते हैं ।"

"जो नास्तिक हैं, जिन्होंने धर्म की मर्यादा भंग की है, जो काम, क्रोध, भोग के लिए उत्कण्ठित, दम्भिक और कृतघ्न हैं, जो ब्राह्मणों को धन देने की अपेक्षा उन्हें दुःखी करते या धन नहीं देते, चुगली करते हैं, अभिमान रखते हैं और झूठ बोलते हैं, वे नर्क में जाते हैं ।"

"जिनकी बातें परस्पर विरोधी होती हैं, जो दूसरों का धन हड़प लेते हैं, दूसरों पर कलंक लगाने के लिए उत्सुक रहते हैं या पराई सम्पत्ति देखकर जलते हैं, वे नरक में जाते हैं ।"

"जो मनुष्य सदा प्राणियों के प्राण लेने में लगे रहते हैं, पराई निन्दा में प्रवृत्त होते, कुएँ, बगीचे, पोखरे और पौशाले को दूषित करते, सरोवरों को नष्ट-भ्रष्ट करते तथा शिशुओं, भृत्यों और अतिथियों को भोजन दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं, जिन्होंने श्राद्ध और यज्ञ को त्याग दिया है, जो संन्यास तथा अपने रहने के स्थान-आश्रम आदि को कलंकित करते हैं और मित्रों पर लांछन लगाते हैं, वे सब नरकगामी होते हैं ।"

सच्ची आस्तिकता अपनायें

जड़ पदार्थों का निर्माण एवं संचालन चेतन तत्व द्वारा होता है । संसार में जितनी भी निर्जीव वस्तुएँ गतिशील दिखाई पड़ती हैं, उनका संचालन चेतन प्राणियों द्वारा होता है । रेल, जहाज, मोटर, बैलगाड़ी, मशीनें, तार, रेडियो आदि में हलचल दिखाई देती है, वह मनुष्य कृत है । मनुष्य या पशुओं द्वारा यदि प्रयत्न परिश्रम न किया ज़ाय तो कृषि, उद्योग, परिवहन, शिक्षा, विज्ञान आदि की जितनी भी हलचलें दिखाई देती हैं, ये कहीं भी दिखाई न दें । जड़ पदार्थों का अस्तित्व तो है पर वे निर्जीव होने के कारण हलचल नहीं कर सकते । शरीरों को ही लीजिए कितने उपयोगी और आश्चर्यजनक कार्य करते हैं पर यदि प्राण निकल जायें तो सुन्दर एवं समर्थ देह भी निःचेष्ट होकर सड़ने लग जाती है ।

ईश्वर और उसका अस्तित्व—जिस प्रकार संसार में होने वाली हलचलों का संचालक जीव है उसी प्रकार इस विश्व ब्रह्माण्ड का, पंचतत्वों का निर्माता एवं संचालक परमेश्वर है । शरीर के भीतर रहने वाली चेतन सत्ता आत्मा कहलाती है और विश्व शरीर के भीतर रहने वाली चेतना को परमात्मा कहते हैं यदि परमात्मा न हो या निष्क्रिय हो जाय तो विश्व की समस्त शक्तियाँ एवं व्यवस्थायें विशृंखलित हो जायें और तब प्रलय होने में क्षणभर की भी देर न लगे ।

जिस प्रकार किसी मशीन का संचालन बिजली द्वारा, शरीर का जीव द्वारा होता है, उसी प्रकार समस्त विश्व की सक्रियता परमात्मा की उपस्थिति के कारण ही है । सूर्य चन्द्रमा का समय पर निकलना, अस्त होना, दिन और रात का नियमित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रीति से बदलना, ऋतुओं का परिवर्तन, भूमि की उर्वरता, पवन की गतिशीलता, जल की आर्द्रता, शरीरों एवं पेड़-पौधों का जन्म वृद्धि संग्रह मरण का क्रम, जीवों एवं बीजों द्वारा अपनी ही जाति का प्रजनन, ईश्वर आकर्षण आदि विभिन्न सूक्ष्म शक्तियों का अपने-अपने ढंग से नियमित संचरण आदि को गम्भीरता से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस विश्व का नियामक एवं संचालक कोई चेतन-तत्व है। यदि वह न हो तो आकाश में घूमने वाले अरबों-खरबों ग्रह-नक्षत्र, अपने स्थान से तनिक भी भटक जाने पर एक-दूसरे से जा टकरायें और यह सुन्दर विश्व देखते-देखते नष्ट-भ्रष्ट होकर धूल होकर बिखर जाय।

परमात्मा के अस्तित्व से इन्कार करना मूर्खता है । कुछ दिन पूर्व विज्ञानवादी यह कहते थे कि इस जगत् के मूल में जो विद्युत कण-इलैक्ट्रॉन प्रोटोन आदि हैं वे अपने–अपने स्वसंचालित काम कर रहे हैं । उन्हीं से अपने आप चेतना उत्पन्न होती है, इसलिए ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता । यह उपहासास्पद तर्क उन दिनों कुछ जोर पकड़ने लगा था जब वैज्ञानिक अन्वेषणों का प्रथम चरण ही उठा था। अब विश्वविख्यात मूर्धन्य वैज्ञानिक आइन्स्टीन तक यह स्वीकार कर चुके हैं कि अणुओं का नियमित रूप से अपनी गतिविधियाँ जारी रखना ही किसी चेतन तत्व का कार्य नहीं अपितु उन अणुओं के भीतर उनकी निज चेतना भी विद्यमान है । यह कण-कण में समाये हुई सर्वव्यापक सर्वेश्वर अस्तित्व की स्वीकृति ही है। जैसे-जैसे विज्ञानरूपी बालक में अधिक प्रौढ़ता एवं समर्थता आती जायेगी वैसे-वैसे अपने पिता को पिता के रूप में पहचानना कठिन न होगा ।

जीव और ईश्वर का सम्बन्ध–जीव उस परम चेतन परमेश्वर का अंश है। जिस प्रकार जल के प्रपात में पानी के अनेक छींटे उत्पन्न और विलय होते हैं उसी प्रकार विभिन्न जीवधारी परमात्मा में से उत्पन्न होकर उसी में लय होते रहते हैं । यह लय-विलय की लीला इसलिए रची गई है कि इस विश्व में जो प्रेम का अमृत भरा हुआ है उसका जीव रसास्वादन करे और उस आनन्द से परितृप्त होकर अपने को धन्य माने । इस विश्व का सृजन ऐसे सुन्दर ढंग से हुआ है कि जीव अपनी गतिविधि और भाव-दृष्टि ठीक रखे तो उसे पग-पग पर आनन्द, उल्लास, सौन्दर्य, सन्तोष और शांति का अनुभव होता रहे । स्वर्गीय अनुभूतियों की परितृप्ति मिले । किन्तु दुःख की बात है कि हम रास्ता भूलकर भ्रम जंजाल में पड़ते हैं, उलटी रीति से सोचते और उलटी नीति पर चलते हैं, फलस्वरूप जीवन नरक बन जाता है । चारों ओर दुःख-दुर्भाग्य की घटायें घिर आती हैं । रोग, अभाव, द्वेष, चिन्ता भय एवं शोक संतापों से कष्टदायक वातावरण बन जाता है । स्वर्गीय सुख-शांति भरे विश्व का नारकीय दुःख-दारिद्र से भर जाना, अपनी भावनात्मक भूल का ही दण्ड प्रतिफल है । हमें इसी को सुधारना चाहिए । यह सुधार ही आध्यात्मिकता का–आस्तिकता का एक मात्रा उद्देश्य है ।

आस्तिकता वह शुद्ध दृष्टि है जिसके आधार पर मनुष्य अपने जीवन की रीति-नीति का क्रम ठीक प्रकार बना सकने में समर्थ होता है । 'हम ईश्वर के पुत्र हैं, महान् महत्ता, शक्ति एवं सामर्थ्य के पुञ्ज हैं । अपने पिता के उत्तराधिकार में हमें वह प्रतिभा उपलब्ध है जिससे अपने सम्बन्धित जगत् का, समाज एवं परिवार का सुव्यवस्थित संचालन कर सकें। ईश्वर की विशेष प्रसन्नता अनुकम्पा एवं सहायता प्राप्त करने के लिए हमें परमेश्वर का आज्ञानुवर्ती, धर्म परायण होना चाहिए । प्रत्येक प्राणी में भगवान् व्याप्त है, इसलिए हमें हर किसी के साथ सज्जनता का सद्व्यवहार करना चाहिए । संसार के पदार्थों का निर्माण सभी के लिए है । इसलिए अनावश्यक उपयोग न करें । पाप से बचें क्योंकि पाप करना अपने ईश्वर के साथ ही दुर्व्यवहार करना है। कर्म का फल ईश्वरीय विधान का अविच्छिन्न अंग है। इसलिए सत्कर्म करें और सुखी रहें दुष्कर्मों से बचें ताकि दुःख न सहने पड़ें ।'' यह भावनायें एवं मान्यतायें जिसके मन में जितनी ही गहरी जमी होगी, जो इन्हीं मान्यताओं के अनुरूप अपनी रीति-नीति बना रहा होगा, वह उसी अनुपात से आस्तिक कहलावेगा और यह निश्चित है कि आस्तिकता का दृष्टिकोण मनुष्य को पग-पग पर उत्कृष्ट स्तर के आनन्द, उल्लास, सन्तोष एवं गौरव का अनुभव कराता है । उसे अपना जीवन हर घड़ी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूर्णतया सार्थक हुआ दीखता है । इसी स्थिति का नाम स्वर्ग है । नरक किसी स्थान विशेष का नाम नहीं वरन् वे मानसिक स्तर हैं जो निकृष्ट भावना स्तर पर है उसे हर घड़ी नरक की ज्वाला में जलते रहना होता है और जो उत्कृष्ट भावनाओं से सराबोर है उसे स्वर्ग की मंगलमय रसानुभूति इसी जीवन में होती रहती है। आस्तिकता की मान्यतायें हमें उसी ओर ले जाती हैं जिस ओर स्वर्गीय सुख-शांति की अजस्र धारा बहती रहती है ।

प्रशिक्षण एवं परीक्षा—मनुष्य को अनन्त प्रतिभा प्रदान करने के उपरान्त परमात्मा ने उसकी बुद्धिमत्ता परखने का भी एक विधान बनाया है। उपलब्ध प्रतिभा का वह सदुपयोग कर सकता है या नहीं, यही उसकी परीक्षा है जो इस परीक्षा में उत्तीर्ण होता है उसे वे उपकार मिलते हैं जिन्हें जीवन मुक्ति परमपद अनन्त ऐश्वर्य, सिद्धावस्था, ऋषित्व एवं देवत्व आदि नामों से पुकारते हैं, जो असफल होता है, उसे कक्षा में अनुत्तीर्ण विद्यार्थी की तरह एक वर्ष और पढ़ने के लिए, चौरासी लाख योनियों का एक चक्कर और पूरा करने के लिए रोक लिया जाता है । यह बुद्धिमत्ता की परीक्षा इस प्रकार होती है कि एक ओर पाप, प्रलोभन, स्वार्थ लोभ, अहंकार एवं वासना तृष्णा के शस्त्रों से सज्जित शैतान खड़ा रहता है और दूसरी ओर धर्म, कर्त्तव्य, स्नेह, संयम की मधुर मुसकान के साथ विहँसता हुआ भगवान् । इन दोनों में से जीव किसे अपनाता है, यही उसकी बुद्धि की परीक्षा है, यह परीक्षा ही ईश्वरीय लीला है । इसी प्रयोजन के लिए संसार की ऐसी विलक्षण द्विविधापूर्ण स्थिति बनी है हममें से अनेक दुर्बल व्यक्ति शैतान के प्रलोभन में फँसते और, गला काटते हैं । विवेक कुण्ठित हो जाता है । भगवान् पहचानने में नहीं आता, सन्मार्ग पर चलना नहीं बन पड़ता और हम चौकड़ी चूककर मानव जीवन में उपलब्ध हो सकने वाले स्वर्णिम सौभाग्य से वंचित रह जाते हैं ।

इस परीक्षा में हम अनुत्तीर्ण न हों अपने गौरव एवं लक्ष्य के अनुरूप उदात्त भावनाओं एवं उत्कृष्ट भावनाओं से नीचे न गिरने पावें इसका सम्बल आस्तिकता ही हो सकती है । ईश्वर पर अटूट-विश्वास और उसकी अविच्छिन्न समीपता का अनुभव, इसी स्थिति को आस्तिकता कहते हैं ! उस स्थिति को बनाये रहने के लिए जो साधन अपनाना पड़ता है, उसका नाम उपासना है ।

आस्तिकता का सच्चा स्वरूप

'ईश्वर है'—केवल इतना मान लेना मात्र ही आस्तिकता नहीं है । ईश्वर की सत्ता में विश्वास कर लेना भी आस्तिकता नहीं है क्योंकि आस्तिकता विश्वास नहीं अपितु एक अनुभूति है ।

'ईश्वर है'-यह बौद्धिक विश्वास है । ईश्वर को अपने हृदय में अनुभव करना, उसकी सत्ता को सम्पूर्ण चराचर जगत् में ओत-प्रोत देखना और उसकी अनुभूति से रोमांचित हो उठना ही सच्ची आस्तिकता हैं । आस्तिकता की अनुभूति ईश्वर की समीपता का अनुभव कराती है । आस्तिक व्यक्ति जगत् को ईश्वर में और ईश्वर को जगत में ओत-प्रोत देखता है । वह ईश्वर को अपने से और अपने को ईश्वर से भिन्न अनुभव नहीं करता । उनके लिए जड़-चेतनमय सारा संसार ईश्वर रूप ही होता है । वह ईश्वर के अतिरिक्त किसी भी सत्ता अथवा पदार्थ का अस्तित्व ही नहीं मानता ।

प्रायः जिन लोगों को धर्म करते देखा जाता है उन्हें आस्तिक मान लिया जाता है। यह सही है कि आस्तिकता से धर्म-प्रवृत्ति का जागरण होता है । किन्तु यह आवश्यक नहीं कि जो धर्म-कर्म करता हो वह आस्तिक भी हो। अनेक लोग प्रदर्शन के लिए भी धर्म-कार्य किया करते हैं । वे ईश्वर के प्रति अपना विश्वास, श्रद्धा, तथा भक्ति को व्यक्त करते हैं किन्तु उनकी वह अभिव्यक्ति मिथ्या एवं प्रदर्शन भर ही हुआ करती है—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार लोग आवश्यकता, परिस्थिति, शिष्टाचार अथवा स्वार्थवश किसी के प्रति भाव न होने पर भी स्नेह, प्रेम श्रद्धा अथवा भक्ति दिखाया करते हैं ।

आस्तिकता से उत्पन्न धर्म में प्रदर्शन सम्भव नहीं। जो अणु-अणु में ईश्वर की उपस्थिति अनुभव करता है, उससे प्रेम रखता है वह मिथ्या प्रदर्शन का साहस कर ही नहीं सकता । जो उस प्रेमास्पद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सर्वशक्तिमान को ही अन्दर बाहर सब जगह विद्यमान देखता है वह उसके लिए किसी अप्रिय व्यवहार को किस प्रकार कर सकता है ? वह उसके अप्रसन्न हो जाने का भय मानेगा । सच्चे धार्मिक जिनकी धार्मिकता का जन्म आस्तिकता से होता है स्वतः धर्माचरण में प्रवृत्त रहते हैं उन्हें प्रयत्न-पूर्वक वैसा करने की आवश्यकता नहीं होती । उनका प्रत्येक व्यवहार धर्म सम्मत एवं उसी से प्रेरित होता है । जीव मात्र को आत्मवत तथा सम्पूर्ण जगत् को परमात्मा का रूप मानने वाले धर्मात्मा से असंगत, अनुचित अथवा अकरणीय कार्य होना सम्भव नहीं ।

प्रदर्शनकारी धर्म-ध्वजियों में आस्तिकता का विश्वास करना एक बड़ा भ्रम है । लोग इसी भ्रम के वशीभूत होकर उनकी पूजा प्रतिष्ठा तथा आदर सत्कार करने लगते हैं, वे उसे भगवान का बड़ा भक्त समझते हैं । अपनी अन्ध-श्रद्धा के कारण लोग धर्मध्वजियों के उन कृत्यों को नहीं देखते जो किसी भी धर्मिक के लिए सर्वथा अनुचित होते है । प्रातः काल दो-दो घण्टे, घण्टी बजाने वाले बड़ी-बड़ी प्रार्थनायें करने और आसन, प्राणायाम करने वाले अपने व्यावहारिक जीवन में निकृष्ट, स्वार्थों एवं संकीर्णताओं का आश्रय लिया करते हैं। तनिक-तनिक सी बात में झूठ बोलना, एक पैसे के लिए किसी का बड़े से बड़ा अहित कर देना, सहसामाजिकों के साथ असहयोग करना, उनसे स्पर्धा मानना और उनके प्रति ईर्ष्या द्वेष मानना, हर समय लोभ, क्रोध, मोह से प्रेरित रहना उनका दैनिक जीवन का अंग बन जाता है । ऐसे आदमी भी यदि थोड़ी देर पूजा पाठ का प्रदर्शन कर देने पर धार्मिक अथवा आस्तिक माने जा सकते हैं तो फिर यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि संसार आस्तिक है और अपनी-अपनी तरह से धर्मात्मा भी ।

एक क्षण भी धर्म-कर्म न करने वाला यदि मनुष्यों का ठीक-ठीक मूल्याँकन करता है, समाज के प्रति अपने दायित्व का पालन करता है, सबको ईश्वर का रूप मान कर ईर्ष्या-द्वेष नहीं रखता, जिसका हृदय प्रेम सहानुभूति तथा सम्वेदना में भरा है वही सच्चा धार्मिक तथा आस्तिक है। किन्तु खेद है कि लोग धार्मिकता आस्तिकता के मूल तत्व न देखकर प्रदर्शन के प्रवाह में बह जाते हैं ।

ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करना, यह मानना कि ईश्वर कोई है—आस्तिकता नहीं है। यह आस्तिकता की ओर उन्मुख होने की उपक्रम विधि है । उसकी ओर जाने वाले पथ पर चरण भर रखना है, चलना नहीं । इस मान्यता से जिज्ञासा का जन्म होता है जिससे मनुष्य आस्तिकता की ओर डरते-डरते ही गतिशील होता है । फिर ज्यों-ज्यों जिज्ञासा बढ़ती जाती है गति तीव्र होती जाती है और मनुष्य ईश्वर के सान्निध्य की अनुभूति करना प्रारम्भ कर देता है ।

प्रारम्भ में ईश्वर की सत्ता अथवा अस्तित्व का विश्वास उसको ऐश्वर्य महिमा के प्रभाव से ही होता है । जब मनुष्य इस उन्नत एवं अनादि जगत् पर दृष्टि डालता है, जीवों के जन्म-मरण की अनुबूझ लीला देखता है, कण मात्र बीज से वट-वृक्ष का उदय देखता, जन्म, विकास, जरा एवं मृत्यु पर विचार करता, अनन्ताकाश में लटके तथा चक्कर लगाते ग्रह-नक्षत्रों का आधार ढूँढ़ता है तब उसका मन मान उठता है कि ईश्वर नाम की कोई सत्ता है अवश्य, जो इस समस्त सृष्टि का पालन, संचालन करती है।

वाह्य जगत् के अतिरिक्त जब वह अन्तर्जगत् में विवेक, बुद्धि, भावना तथा काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि विकारों एवं प्रेम, सौहार्द, सम्वेदना आदि गुणों का उदय-अस्त एक वैज्ञानिक विधि से होना अनुभव करता है, तब उसे किसी अदृश्य कर्त्ता में विश्वास किये बिना चैन नहीं पड़ता । परमात्मा की ऐश्वर्य-महिमा से उद्भूत विश्वास आस्तिकता नहीं बल्कि आस्तिकता का प्रारम्भ भर है, जो जिज्ञासा का आधार पाकर कालान्तर में चिन्तन करने, आस्तिकता की अनुभूति विकसित करने में लगाता है ।

ईश्वर की ऐश्वर्य-महिमा परिपक्व होकर जब आनन्द बन कर हृदय में उतरने लगती है तब मनुष्य में यथार्थ आस्तिकता का आविर्भाव प्रारम्भ हो जाता है । उसके लिए संसार का अणु-अणु आनन्द का स्रोत बन जाता है । जिस पर भी उसकी दृष्टि पड़ती है उसी में उसे परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं । उसका ईश्वर सम्बन्धी बौद्धिक विश्वास आत्मिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुभूति में बदल जाता है । संसार के सारे सुख-दुःख उसे आनन्द रूप बन जाते हैं । सच्ची आस्तिकता की उपलब्धि होते ही मनुष्य और ईश्वर के बीच पड़ा मोह, अज्ञान अथवा अन्धकार का आवरण हट जाता है और अन्दर-बाहर सब जगह ईश्वर के दर्शन करने लगता है । उसकी निष्ठा, उसकी श्रद्धा अपने अतिरेक में सारे तर्कों संदेहों तथा अनिश्चयों को अपने प्रवाह में निमग्न कर लेती है ।

आस्तिकता की यथार्थ अनुभूति मनुष्य में ईश्वरत्व का जागरण कर देती है। जिससे उसका सारा जीवन आध्यात्मिक भावों से भर कर उच्च से उच्चतम की ओर उठता चला जाता है और शीघ्र ही 'सोऽहम्' की स्थिति में पहुँच जाता है । मनुष्य का ध्यान जिस पर केन्द्रित हो जाता है उसके निरन्तर चिन्तन से मनुष्य मन, वचन, कर्म, से उसी का स्वरूप हो जाता है । आस्तिक भाव में एकनिष्ठ हो जाने से निरन्तर ईश्वर का चिन्तन करते और सभी ओर सब में उसको ही देखते रहने से मनुष्य स्वयं रूप हो जाता है ।

सच्ची आस्तिकता में जहाँ एक प्रेरणा होती है वहाँ एक आकर्षण भी होता है । आस्तिकता जहाँ मनुष्य को ईश्वर की ओर प्रेरित करती है वहाँ ईश्वरीय तत्व को भी मनुष्य की ओर आकृष्ट करती रहती है जिससे शीघ्र ही मनुष्य तथा ईश्वर के बीच की दूरी समाप्त हो जाती है । आस्तिक भगवान् के और भगवान् आस्तिक के द्वार तक पहुँचने के लिए एक साथ चल पड़ते हैं ।

आस्तिक मनुष्य का ध्यान हर घड़ी ईश्वर की ओर लगा रहता है । वह जीवन के सारे काम एक उसी के लिए ही किया करता है । उसी की ओर से उसी के लिए काम करने के कारण उनकी अच्छाई-बुराई का सारा दायित्व परमात्मा पर रहता है । अपने उत्तरदायित्व का ध्यान रखते हुए परमात्मा आस्तिक व्यक्ति को सदा ही असत् कर्मों से बचा कर सत्कर्मों की ओर चलाया करता है । वह पिता की तरह अभिभावक बनकर अपने पर निर्भर विश्वासी की अनिष्ट से रक्षा किया करता है । जग-प्रांगण में शिशु की तरह, कर्म क्षेत्र में खेलते हुए अपने आस्तिक को हारने अथवा गिरने से ममतामयी माता की तरह बचाये रहता है । अपने अस्तित्व को परमात्मा में विलीन कर देने पर आस्तिक को जीवन की सफलता-असफलता की चिन्ता नहीं रहती । आस्तिक भाव में उतर जाने का अर्थ है—परमात्मा की गोद में चला जाना, जहाँ केवल आनन्द ही आनन्द है ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करना आस्तिकता की ओर उन्मुख होने का प्रारम्भिक उपक्रम है और विश्वास से उत्पन्न जिज्ञासा उसकी ओर गतिशील होना है, किन्तु अशुद्ध भावना के कारण ईश्वर की ओर गतिशील होने वाले जिज्ञासु में एक भय एक अनिश्चितता रहा करती है । जिज्ञासु की इस शंकाजन्य भय से रक्षा करना ईश्वर का ही दायित्व होता है जिसे वह अवश्य ही अनुग्रह पूर्वक पूरा करता है । एक बार आस्तिकता के बीज साहस पूर्वक बो लेने के बाद मनुष्य को फिर किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए । ईश्वर की ओर उसी में ध्यान लगाये, उन्मुख हो चलने पर ईश्वर स्वयं ही उसकी रक्षा किया करता है ।

इतिहास में आस्तिक भावना के धनी, सन्तों एवं भक्तों के असंख्यों उदाहरण पाये जाते हैं । प्रहलाद, ध्रुव, मीरा, ईसा, मन्सूर आदि सब सच्ची आस्तिकता के जीते-जागते उदाहरण हैं । प्रहलाद को पहाड़ पर से समुद्र में गिराया गया, आग में जलाया गया, लोहे के गर्म खम्भे से बाँध कर खड्ग से डराया गया किन्तु सच्चे आस्तिक भावों के कारण उसे उन सब भय परिस्थितियों में भी ईश्वर के ही दर्शन होते रहे जिससे उसे कोई भय अनुभव न हुआ और उसने सारे अत्याचारों को हँसते-हँसते सहा । सात वर्ष की अवस्था में विजन-वन में शेर-चीतों और भालुओं के बीच तप करते हुए ध्रुव को कोई भय न लगा क्योंकि वह सच्चे आस्तिक थे और हिंसक जीवों में भी उस परमात्मा के दर्शन कर रहे थे । मीरा को विष दिया, साँप को गोद में खिलाया अडिग आस्तिकता के बल पर काला साँप और काला विष उसके लिए भावना के अनुसार कृष्ण रूप बन गये।

महात्मा मन्सूर और ईसा मसीह ने आस्तिकता के बल पर ही सूली एव क्रास पर लटककर अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विश्वासपूर्ण मुस्कान को जीवित रखा । अपनी भावना की वास्तविकता के प्रभाव से उन्हें मृत्यु में भी जीवन और यातना में भी सुख का अनुभव होता रहा । ऐसा नहीं कि ईश्वर भक्त का शरीर किसी जादू का हो जाता है और उस पर आघात-प्रतिघातों का कोई प्रभाव नहीं होता है ऐसी मान्यता मिथ्या है । प्रकृति अपना काम आस्तिक-नास्तिक सब पर समान रूप से करती है। घटनाओं की प्रतिक्रिया सब पर होती है । आस्तिक की विशेषता यह होती है कि वह उन कष्टों को नास्तिकता समझता और अपनी आदर्श भक्ति की रक्षा में जो सन्तोष मिलता है उसकी तुलना में उन कष्टों को कोई महत्व नहीं देता । उसी प्रकार उनकी मानसिक शक्ति किसी भी परिस्थिति में नष्ट नहीं होने पाती ।

आस्तिकता सच्ची भक्ति, सच्चा जीवन तथा सच्चा धर्म है, जिसे अपनाने से मनुष्य सुःख-दुःख से परे होकर ईश्वर भक्त हो जाता है ।

आस्तिकता का स्वरूप एवं प्रतिफल

आस्तिकता का अर्थ है ईश्वर को मानना, मानने का अर्थ है उसका अनुयायी होना, अनुयायी होने का तात्पर्य है उनके विचार, निर्देश एवं आदर्श के अनुसार चलना । जो अपने को आस्तिक मानता है उसे यह भी मानना होगा कि वह परम प्रभु परमात्मा का अनुयायी है, उसका प्रतिनिधि है उनका ऐसा प्रतिबिम्ब है जिसको देखकर परमात्मा के स्वरूप तथा उसके गुण तथा विशेषताओं का आभास पाया जा सकता है । परमात्मा में विश्वास करते हुए भी जो अपनी रीतिनीति उसके अनुरूप नहीं बनाता, पवित्रा एवं उन्नत आत्मा नहीं बनता वह धृष्ट विद्रोही तथा प्रच्छन्न नास्तिक है ।

आस्तिकता स्वयं में एक उदात्त भावना है जिसे हर मनुष्य को अपने में विकसित करना चाहिए । उस परमात्मा को मानना, उसमें विश्वास करना, मनुष्य का परम पावन कर्तव्य है जिसने चिदानन्द का साधक हर समर्थ जीवन दिया है, एक से एक बढ़कर विशेषतायें एवम् क्षमतायें दी हैं । साथ ही आस्तिकता का बहुत बड़ा सम्बल भी है । आस्तिक भावना एक ऐसी अक्षय एवं अमोघ शक्ति है जिसके सहारे मनुष्य भयानक से भयानक संकटसागर को सहज ही पार कर जाता है । संसार में किसी समय भी कोई संकट आ सकता है और ऐसी स्थिति भी हो सकती है कि उस समय उससे बचने अथवा उबरने का कोई साधन न हो, संसार के सारे मित्रों, प्रेमियों, हितैषियों ने साथ छोड़ दिया हो, मनुष्य हर तरह से निरुपाय एवं असहाय बन गया हो, ऐसी भयानक स्थिति के अवसर पर उस निरुपाय एवं असहाय मनुष्य को आस्तिकता बहुत बड़ी सहायता बन जाती है । सब ओर से निराश होकर आस्तिक व्यक्ति ईश्वर का सहारा पकड़ लेता है उसे ही अपना सबसे बड़ा सहायक एवं साथी समझ लेता है ।

सर्वशक्तिमान् परमात्मा का अंचल पकड़ते ही उसमें आत्मबल, आत्मविश्वास तथा उत्साहपूर्ण आशा का संचार होने लगता है प्रकाश पाते ही अन्धकार दूर हो जाता है । मनुष्य में संकट सहने अथवा उसको दूर कर सकने का साहस आ जाता है । ईश्वर में अखण्ड विश्वास रखने वाला सच्चा आस्तिक जीवन में कभी हानि नहीं मानता । एक तो उसे यह विश्वास रहता है कि परमात्मा जो भी सुख, दुःख अनुग्रह किया करता है उसमें मनुष्य का कल्याण ही निहित रहता है । इसलिए वह किसी हर्ष उल्लास अथवा कष्ट-क्लेश से प्रभावित नहीं होता । दूसरे परमात्मा के प्रति आस्थावान् होने से उसमें संकट सहने की शक्ति बनी रहती है । आस्तिक व्यक्ति परमात्मा का नाम लेकर संकट सहना क्या उसका नाम लेकर जहर पी जाते और सूली पर चढ़ जाते हैं । मीरा, प्रहलाद, ईसा और मन्सूर ऐसे ही आस्तिक थे ।

आस्तिक व्यक्ति के पास परमात्मा जैसा कोई अन्य सम्बल अथवा शक्ति साहस का स्रोत नहीं होता इसलिए वह निरुपाय अथवा निःसहाय की दशा में संकट आ जाने पर बहुत अस्त-व्यस्त, अशान्त एवं हताश हो जाता है । मानसिक सन्तुलन बनाए रहने के लिए उसके पास आस्तिक भाव जैसा कोई मानसिक आधार नहीं होता इस अभाव से या तो वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने जीवन से भटक जाता है, कुमार्गगामी, सिद्धान्त-हिंसक आदर्शहीन होकर अपनी रक्षा करता है अथवा हार मानकर मैदान से हट जाता है, अथवा विक्षिप्त होकर आत्महत्या तक कर लेता है । संसार में मानसिक संकटों से घबराकर विक्षिप्त होने अथवा आत्महत्या करने वालों की यदि मनःपरीक्षा सम्भव हो सके और उनके विचारों तथा विश्वासों का पता लगाया जा सके तो निश्चय ही वे नास्तिक भावना वाले निकलेंगे ।

आस्तिकता न केवल बाह्य संकटों में सहायक होने वाला सम्बल अथवा सहारा है, अपितु वह आन्तरिक पशुओं, काम, क्रोध, मद, लोभ आदि से भी रक्षा करती है । आस्तिक व्यक्ति अणु-अणु में परमात्मा का दर्शन करता है । उसका आत्म-विश्वास कहता है कि जिस प्रकार मैं परमपिता परमात्मा का प्रिय पुत्र, अनुयायी अथवा प्रतिबिम्ब हूँ, उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी भी है । इस विश्वास से पुलकित सच्चा आस्तिक प्रत्येक प्राणी को अपना भाई, बहिन ही मानता और तदनुरूप प्रेम व्यवहार करता है। सम्पर्क में आने वाला जब प्रत्येक व्यक्ति अपना भाई-बहन ही है तब सच्चा आस्तिक उनसे कठोर क्रूर, अथवा छल, कपटपूर्ण व्यवहार किस प्रकार कर सकता है ? वह तो सबसे प्रेमपूर्ण निश्छल एवं उपयुक्त व्यवहार ही करेगा । बन्धुभाव से प्रेरित वह प्रत्येक की सहायता करने को हर समय तैयार रहेगा । वह किसी से स्वार्थ अथवा विश्वासघातपूर्ण व्यवहार कदापि नहीं करेगा । इस प्रकार सच्चा अस्तिक सहज ही में आत्म कल्याणकारी भव्य भावना का अधिकारी बन जाता है । काम क्रोध अथवा लोभ ये शत्रु तभी आक्रमण करते हैं जब मनुष्य का मन मलीन अथवा अरक्षित रहता है । आस्तिक व्यक्ति का ईश्वरीय विश्वास एवं परमात्मा की अनुभूति उसके हृदय को प्रसन्न एवं उज्ज्वल बनाने में सहायक होते हैं । उनकी भावनाओं में हर समय परमात्मा का विश्वास रहता है जिससे उसके सुरक्षित हृदय पर आसुरी वृत्तियाँ आक्रमण नहीं कर पाती ।

आस्तिक भावना से परमात्मा का सहारा पाकर मनुष्य नितान्त निर्भय एवं निश्चिन्त हो जाता है। उसके अखण्ड विश्वास के रूप में उनका साथी मित्र, पिता तथा रक्षकर हर समय उनके साथ रहता है। परमात्मा रूपी पिता अथवा रक्षक साथ रहने पर भय अथवा चिन्ता किस बात की ? संसार में ऐसा शक्तिशाली दुष्ट कौन हो सकता है जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा से रक्षित किसी आस्तिक का बाल भी बाँका कर सके । अखण्ड विश्वास के साथ जब कोई आस्तिक भूत-भविष्य, वर्तमान के साथ अपना सम्पूर्ण जीवन परमात्मा अथवा उसके उद्देश्यों को सौंप देता है, तब उसे अपनी जीवन के प्रति किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं रहती । तब भी यदि वह चिन्ता करता है तो समझना चाहिए कि उसने अपना दायित्व पूरी तरह से सर्वशक्तिमान् को सौंपा नहीं है, अथवा उसकी ईमानदारी में विश्वास नहीं करता-कि धरोहर रूप में उसके पास सौंपें हुए जीवन की वह खोज खबर लेता ही रहेगा जो अपना सर्वस्व पूर्ण रूप से परमात्मा को सौंपकर उद्देश्य में नियोजित हो जाता है, पूरी तरह से उसका बन जाता है, परमात्मा उसके जीवन का सारा दायित्व खुशी-खुशी अपने ऊपर ले लेता है और कभी भी विश्वासघात नहीं करता आत्म-समर्पण में कमी अथवा दुरभिसंधि होने पर ही उसकी उपेक्षा बरती जा सकती है । अन्यथा अनुभूति से परमात्मा में समाहित हो जाने पर किसी प्रकार का भय अथवा चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं रहती । निश्चिन्तता एवम् निर्भयता में कितना अनिवर्चनीय सुख है इसको एक सच्चा आस्तिक ही अनुभव कर सकता है ।

असंदिग्ध आस्तिकता ईश्वर के साथ भावनात्मक सत्संग है। जब साधारण सज्जनों तथा सत्पुरुषों का संग असुर को देवता बना देता है तब ईश्वर जैसी परिपूर्ण एवम् सर्वगुण सम्पन्न सत्ता का संग मनुष्य को क्या बना देगा । इसकी प्रसन्न कल्पना उसका संग करके ही अनुभूत की जा सकती है, कही नहीं जा सकती है ।

मनोवैज्ञानिक तथ्य के अनुसर जो जिसके संसर्ग में रहता है वह उसी का अनुरूप एवम् अनुभाव हो जाता है। ऐसा तो तब हो जाता है जब मनुष्य वाह्य रूप में किसी के सम्पर्क से आता है। भावनाओ का समावेश होने पर तो यह अनुरूपता और भी अधिक गहरी होकर सद्रूपता में बदल जाती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब साधारण लौकिक व्यक्तियों का सत्संग इस प्रकार प्रतिफलित होता है तब उन सर्व एवं सम्पूर्ण श्रेष्ठ तथा श्रीमन्त सर्वशक्तिमान के सम्पर्क में आकर सोऽहं की भावना भूमि के स्तर पर आकर मनुष्य किस अनिर्वचनीय आत्मकल्प की दिशा में गतिमान हो उठेगा, इसे उस सौभाग्यपूर्ण स्थिति में पहुँचे बिना किस प्रकार बताया जा सकता है । केवल इतना ही कहा जा सकता है कि भृंगी कीट की तरह मनुष्य ईश्वर रूप हो जायेगा । इस कल्पनातीत एवं अन्तिम पदवी की प्रदायिनी आस्तिकता को कौन बुद्धिमान् अपने अन्तर एवं अणु-अणु में ओत-प्रोत करने का प्रयत्न नहीं करेगा ।

आस्तिकता सदाचार की जननी है । जो आस्तिक होगा, जो सबमें और सब जगह भगवान् की उपस्थित्ति देखेगा वह कोई दुराचार करने का साहस नहीं करेगा । सदा-सर्वदा ऐसे ही कार्य करने और भावनाएँ रखने का प्रयत्न करेगा, जो सच्चे आस्तिक-ईश्वर के अनुयायी के अनुरूप हों । ईश्वर निर्देश एवम् आदर्श, सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के अतिरिक्त कुछ हो ही नहीं सकता । प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, सत्य तथा सेवाभाव आस्तिक के विशेष गुण हैं । चोरी, मक्कारी, छल,कपट ईर्षा,द्वेष लोभ, मोह, काम आदि की दूषित प्रवृत्तियों से आस्तिक व्यक्ति का कोई सम्बन्ध नहीं रहता । आस्तिकता द्वारा ईश्वर से भावनात्मक सम्पर्क रखने वाला तो उसके अनुरूप ही अपने जीवन को उन्नत एवं उत्कृष्ट बनाने का प्रयत्न करेगा । आज संसार जिस शान्तिव्यवस्था तथा सहयोग भावना की आवश्यकता अनुभव कर रहा है वह आस्तिकता द्वारा सहज ही प्राप्त हो सकती है ।

यदि संसार का प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण रूप से आस्तिक होकर ईश्वरीय आदर्श पर चलने लगे तो न तो कोई किसी को सताये और न प्रवंचित करने का प्रयन्त करे । हर कोई अपनी सीमाओं में संतुष्ट होकर शान्तिपूर्वक जीवन यापन करे । आज संसार में फैला हुआ सारा अनाचार इसी कारण है कि लोग केवल अपने स्वार्थ को देखते हैं, किसी दूसरे की सुख-सुविधा अथवा अधिकार सीमा का ध्यान नहीं रखते । यदि आज आस्तिकता का व्यापक प्रचार हो जाये लोग ईश्वर को सच्ची भावना से जानने, मानने और उससे डरने लगें तो कल ही सारे अपराधों का अन्त हो जाये और चिरवांछित रामराज्य साकार हो उठे ।

जप-तप, पूजा पाठ कर लेने अथवा किसी देव प्रतिमा के सम्मुख सिर नवा देन मात्र से ही कोई आस्तिक नहीं हो जाता । आस्तिकता का अर्थ है अपनी भावनाओं एवं क्रिया को उत्कृष्ट बनाना । ईश्वर में विश्वास करता हुआ और अपने को आस्तिक घोषित करता हुआ भी जो व्यक्ति सांसारिक तृष्णा, वासना का दास बना हुआ है, वह आस्तिक नहीं आडम्बरी है किसी प्रकार भी आस्तिक मानकर उसका आदर नहीं किया जा सकता । आस्तिकता का अर्थ है प्राणीमात्र में परमात्मा की झाँकी देखना और तदनुसार ही प्रत्येक का आदर करना, उसके साथ उदारता, दया और प्रेम का व्यवहार करना ही आस्तिक जनों के श्रेष्ठ लक्षण हैं ।

आस्तिक भावना शक्ति रूप में परिपक्व होकर मनुष्य को कृतार्थ कर देती है । अपने को आस्तिक कहते हुए भी जिसमें भगवद् भक्ति का अभाव है, वह झूठा है, उसकी आस्तिकता अविश्वसनीय है। आस्तिकता के माध्यम से जिसके हृदय में भक्ति भावना का उदय हो जाता है, आनन्दमग्न होकर उसका जीवन सफल हो जाता है । भक्ति का उदय होते ही मनुष्य में सुख-शान्ति, सन्तोष आदि के ईश्वरीय गुण फूट पड़ते हैं । भक्त के पास अपने प्रियतम परमात्मा के प्रति आन्तरिक दुःख, क्षोभ, ईर्ष्या का कोई कारण नहीं रहता । भक्त का दृष्टिकोण उदार तथा व्यापक हो जाता है । उसे संसार में प्रत्येक प्राणी से प्रेम तथा बन्धुत्व अनुभव होता है। जन-जन उसका तथा वह जन-जन का होकर लघु से विराट् बन जाता है । आठों याम उसका ध्यान प्रभु में ही लगा रहता है । संसार की कोई भी बाधा-व्यथा उसे सता नहीं पाती । वह इसी शरीर में जीवन मुक्त होकर चिदानन्द का अधिकारी बन जाता है। यह है आस्तिकता की परिपक्वता का परिणाम । तब भला कौन ऐसा होगा जो भगवान् से सान्निध्य संसर्ग तथा उसकी भक्ति पाकर कृतार्थ होने के लिये सच्चा आस्तिक बनकर अपना जीवन धन्य न करना चाहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भक्ति का वास्तविक स्वरूप—प्रेमी को सदा देना ही देना पड़ता है । यदि हम सच्चे भक्त हों तो उससे कोई भौतिक उपलब्धि की कामना न रखें वरन् यह देखें कि वह हमसे क्या माँगता और क्या चहता है । उसी की पूर्ति में लग पड़ें तो उस त्याग की तुलना से असंख्य गुना प्रेमोपहार हमें प्राप्त होगा। देने से मिलता है यह अनादि सिद्धान्त हर-आस्तिक को सीखना चाहिए । गाँधी, बुद्ध आदि ने जितना त्याग किया उसकी तुलना में बहुत अधिक उन्हें मिला । ईश्वर त्यागने वाले को देता है और निरन्तर झोली पसारे रहने वाले भिखमंगे की ओर से मुँह फेर लेता है । हम भिखमंगे नहीं प्रेमी बनें। प्रेमी कहने से कोई प्रेमी नहीं होता वरन् उसे अपने प्रेम के प्रमाण स्वरूप त्याग का आचरण करना पड़ता है । हम अपनी प्रतिभा, विद्या, समृद्धि क्षमता का कितना अंश ईश्वरीय निर्देशों की पूर्ति में-विश्व मानव की पूजा में लोक-मंगल में लगाते हैं, यही एक मात्र वह कसौटी है जिस पर हमारी भक्ति भावना परखी जायेगी । हमें ईश्वर से निरन्तर प्रेम करना चाहिए ताकि प्रेम करना हमारा स्वभाव बन जाय । वह स्वभाव अपनी आत्मा से, अपने परिवार से, अपने समस्त संसार से प्रेम करने में प्रतिफलित होना चहिए । प्रेम इस विश्व का अमृत है । उसकी आन्तरिक अनुभूति ईश्वर दर्शन के समान ही मधुर होती है । यह अमृत जब मनुष्य के अन्तःकरण में से बाहर प्रकट होता है तो जिस पर भी उसके छींटे पड़ते हैं वह धन्य हो जाता है । इसकी मंगलमयी प्रतिक्रिया से उस सच्चे प्रेमी ईश्वर भक्त का आनन्द और भी दिन-दिन बढ़ता जाता है ।

इस संसार में ईश्वर भक्ति के द्वारा विकसित हुई प्रेम भावना यदि बिखर पड़े तो चारों ओर स्वर्ग का वातावरण दृष्टिगोचर होने लगे । कोई किसी को न तो सताये और न ठगे । एक-दूसरे को प्रेम और सहयोग प्रदान करें तो प्रगति की समृद्धि की कोई सीमा न रहे । अपराधों का कहीं पता भी न चले। विश्व-शान्ति का लक्ष्य साकार होकर सामने उपस्थित हो जाय । जिस सतयुग को, धर्मराज्य या रामराज्य को लाने की हम कामना करते हैं वह ईश्वर भक्ति के द्वारा, आस्तिकता की प्रतिष्ठापना के द्वारा ही सम्भव है । जेल, पुलिस, कचहरी एवं कानून से दुष्प्रवृत्तियाँ नहीं रुक सकतीं । मनुष्य के भीतर रहने वाली असुरता प्रतिबन्धों, जीवन दण्डों से बच निकलने के अनेकों मार्ग ढूँढ़ लेती है । दण्डित होने पर और भी अधिक ढीठ एवं निर्लज्ज बन जाता है । स्थिर उपाय तो यही है कि हर मनुष्य दूसरों में परमेश्वर की झाँकी करके उसके साथ सद्व्यवहार करना सीखें और उस सर्वज्ञ की निष्पक्ष न्यायशीलता का स्मरण रखते हुए हर बुरे काम से बचें । व्यापक सदाचरण की आधारशिला आस्तिकता ही हो सकती है और उसी आधार पर मानव जाति की हर समस्या को सुलझाया जा सकना सम्भव होगा ।

कृतज्ञता की भावना-कृतज्ञता मनुष्य का सबसे बड़ा आध्यात्मिक गुण है, जो दूसरों के किये उपकारों का स्मरण रखता है उस सहायता के लिए सद्भावना रखता है और यथासम्भव बदला चुकाने का प्रयत्न करता है उसे आध्यात्मिक व्यक्ति कहना चाहिए। आध्यात्मिकता में प्रेम भावना की तरह कृतज्ञता भी उसका दूसरा प्रतीक है । यदि हमें कृतज्ञता की दृष्टि उपलब्ध है तो यह सारा संसार ही उपकारी एवम् सहयोगी प्रतीत होने लगे । कृतघ्नता का असुर जब हमारी आँखों में बैठा होता है तब दूसरों की छोटी-छोटी कमियाँ भी पहाड़-सी मालूम देती हैं और उनके उपकार छोटे बनकर उस पहाड़ के पीछे जाते हैं, तब यह सारा संसार दुष्ट एवम् शत्रु प्रतीत होने लगता है । किन्तु यदि उपकारों को पहाड़ और त्रुटियों को उपेक्षणीय मानने की अपनी दृष्टि हो तो यह संसार स्नेही, सौभ्य एवं मित्र प्रतीत होगा । कृतज्ञता के दृष्टिकोण में स्वर्ग और कृतघ्नता की दृष्टि में नरक का निवास रहता है । दोनों में से हम जिस प्रवृत्ति के भी अभ्यस्त होते हैं उसी के अनुरूप इस संसार का वातावरण हमें दिखाई देने लगता है । हमारे चारों ओर सुखद वातावरण बना रहे इसके लिये कृतज्ञता की भावनायें हमें अपने स्वभाव में समाविष्ट करनी चाहिए । उपासना के द्वारा हम इस सद्प्रवृत्ति का भी सहज अभ्यास कर लेते हैं ।

ईश्वर के द्वारा हमारे ऊपर जो उपकार हैं, उनका स्मरण करने का स्तुतिगान उपासक के मन में परम प्रभु के प्रति कृतज्ञता का भाव भर देता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभ्य समाजों का यह उचित शिष्टाचार है कि उपकार करने वाले को धन्यवाद दिया जाय । पाश्चात्य देशों में छोटे-छोटे सहयोगों के लिए घर, कुटुम्ब में भी परस्पर धन्यवाद, 'थेंक्यू'-कहने का शिष्टाचार बरतते हैं । जिस ईश्वर के हमारे ऊपर अनन्त उपकार हैं उसके लिए हजार बार भी यदि प्रतिदिन सराहा जाय तो कम है । नाम जप या ईश्वर स्मरण का एक बड़ा प्रयोजन हमारी कृतज्ञता वृत्ति का विकास करना भी है । यह मनोवृत्ति संसार में जितनी ही अधिक बढ़ेगी, उतना ही सद्भाव एवम् सहयोग बढ़ेगा, परस्पर एक-दूसरे का सम्मान करेंगे और सुखी रहेंगे । व्यक्ति और समाज के लिए परम श्रेयस्कर इस कृतज्ञता की सद्प्रवृत्ति का उपासना द्वारा संसार में अभिवर्धन ही होता है।

समग्र सुविकसित व्यक्तित्व-परमात्मा का ध्यान करते हुए उपासक को एक समग्र सुविकसित परम पुरुष की कल्पना करनी होती है । राम, कृष्ण, शिव, सरस्वती, दुर्गा, गायत्री आदि के रूप में हम एक सर्वांगपूर्ण, सर्व सद्गुण सम्पन्न व्यक्तित्व का ध्यान करते हैं, उसे अपना इष्ट मानते हैं । जिसका भी हम तन्मयतापूर्वक ध्यान करेंगे उसके अनुरूप हमारा व्यक्तित्व भी बनता चलेगा । भृंग और झींगुर का उदाहरण प्रसिद्ध है । कहते हैं कि झींगुर भृंग के चंगुल में फँस जाता है, और उसका निरन्तर गुंजन सुनता एव स्वरूप देखता है । फलतः कुछ समय में वह स्वयं भी शरीर एव मन से भृंग बन जाता है । यह उदाहरण कितना सच है कह नहीं सकते। पर यह तथ्य मनोविज्ञान शास्त्र के आधार पर पूर्णतया सत्य है कि मनुष्य जैसा लक्ष्य बनाता है और उसका जितनी भावना एवम् तन्मयता के साथ चिन्तन करता है, उतना ही वह ऊँचे ढाँचे में ढलने लगता है। एक परिपूर्ण समस्त सद्गुणों और सत्प्रवृत्तियों से सुसम्पन्न व्यक्तित्व के रूप में परमेश्वर का जब ध्यान किया जाता है, उसको अपने में और अपने को उसमें देखने का अभ्यास किया जाता है तो उसका परिणाम यह होता है कि उस इष्टदेव की विशेषतायें अपने भीतर बीज रूप से विकसित हों और आगे चलकर वे मूर्तिमान बन जायें । आत्मविकास की दृष्टि से यह इष्टदेव के ध्यान वाली प्रक्रिया बहुत ही उत्तम है । इसमें इतनी ही सतर्कता की आवश्यकता है कि इष्टदेव को दोष, दुर्गुण अभाव एवम् कुरूपताओं से आच्छादित न किया जाय, अन्यथा वे दोष भी अपने में आने लगेंगे । माँन्साहार, मद्यपान, व्यभिचार, छल जैसे दूसरों का आरोपण किसी को भी अपने इष्टदेव में नही करना चाहिए । अच्छा यही है कि उन्हें पूर्ण ब्रह्म का प्रतीक माना जाय और कोई भला बुरा चरित्र उनके मन में चित्रित न किया जाय।

अन्तरात्मा की पुकार-अन्तरात्मा की अपनी एक आवाज होती है जो हमें ईश्वरीय मार्गदर्शक की तरह रास्ता बताती है । पाप कर्म में हाथ लगते ही अन्तःकरण काँपता एवं धिक्कारता है । सत्कर्म करने पर वह प्रफुल्लता, हल्कापन एव सन्तोष अनुभव करता है। आत्मा की इस पुकार को यदि हम सुनने लगें और उसका अनुसरण करें तो निश्चय ही इससे जीवन को सार्थक बनाने की प्रक्रिया पूर्ण होती है । जीवन-शोधन का प्रयत्न करते रहने पर आत्मा पर चढ़े हुए मल, आवरण, विक्षेप हट जाते हैं । अंगार के ऊपर राख की पर्त जम जाने से वह ठण्डा और काला प्रतीत होता है । जब राख हटा दी जाती है तो भीतर का अंगार फिर गर्मी और रोशनी के साथ प्रकट होता है । उपासना द्वारा आत्मा पर चढ़े हुए आवरण हटते हैं और वह राख हटाये हुए अंगारे की तरह अपने शुद्ध स्वरूप में प्रकट होती है । ऐसी दशा में वे ऋद्धि-सिद्धियाँ स्वयंमेव प्रकट होने लगती हैं जो कठिन योगाभ्यास द्वारा योगीजनों को उपलब्ध होती हैं । उपासना मनुष्य के आत्म-विकास का महत्वपूर्ण माध्यम है । कुछ कहने की आवश्यकता नहीं कि विकसित व्यक्तित्व ही पूर्णता के परम पद का अधिकारी होता है ।

जीव जब तक वासना और तृष्णा के बन्धनों में बँधा है तब तक वह माया ग्रसित एवं भवसागर में फँसा हुआ माना जायेगा और जब वह इन कषाय कल्मषों से ऊपर उठ जाता है तब उसे ब्रह्मलीन होने में—सायुज्यमुक्ति पाने में किसी प्रकार की बाधा नहीं रह जाती । लकड़ी जब तक मौजूद है तभी तक अग्नि की लौ उठेगी । जब लकड़ी समाप्त हुई तो लौ भी व्यापक अग्नि तत्व में लय हो जाती है। इसी प्रकार जब तक वासना, तृष्णा की लकड़ी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मौजूद है जीव बन्धन में पड़ा माना जाता है और जैसे ही संकीर्णता दूर हुई कि परमात्मा से मिलन प्रत्यक्ष होगा । हवा का आवरण ही पानी से बबूले को पृथक करता है हवा हटी कि बबूला फूटकर जल राशि में लय हुआ । उपासना हमारे आत्म-विकास का पथ प्रशस्त करती है और हम अपूर्णताओं को दोष दुर्गुणों को छोड़ते हुए पूर्ण परमात्मा की पूर्णता में लय हो जाते हैं । आत्मिक स्तर का विकास ही आत्म-कल्याण का एक मात्र उद्देश्य होता है ।

जीवन साथी का सहारा-उपासना के माध्यम से जब हम परमात्मा को अपने भीतर और बाहर समाया हुआ देखते हैं, अपना सखा, स्वामी, मित्र और घनिष्ठ आत्मीय मानते हैं तो स्वभावतः हमारा साहस असंख्य गुना बढ़ जाता है । सशस्त्र पुलिस गारद के पहरे में हम रात्रि को भयानक जंगलों के बीच भी निर्भय होकर जा सकते हैं क्योंकि तब यह विश्वास रहता है, कि साथी पुलिस गारद दुष्ट आक्रमणकारी की दाल न गलने देगा । इसी प्रकार अनन्त सामर्थ्य सम्पन्न परमेश्वर को जब हम हर घड़ी अपने साथ देखते और अपना विश्वास पात्र मित्र मानते हैं तो हर प्रकार के भय से छुटकारा मिल जाता है । भय ही आत्मिक अशान्ति का कारण है । निर्भयता के बराबर और कोई सुख नहीं । जो निर्भय है, निश्चिन्त है, जिसे अनन्त बलशाली का सहारा है उसे अपने भविष्य के बारे में आशंका ही क्या हो सकती है ? कुशल ड्राइवर के द्वारा चलाई जा रही रेल में हम सोते चले जाते हैं तो फिर जीवन की नाव परमात्मा के हाथ में सौंप देने वाले भगवान् के भक्त को अपने भविष्य के बारे में कोई चिन्ता एवं उद्विग्नता क्यों होगी ? सचमुच जो अटूट विश्वास परमात्मा पर रखते हैं और उसकी-मर्जी में अपनी मर्जी मिलाकर निश्चिन्त रह कर कठोर कर्म करते रहते हैं, ऐसे सच्चे विश्वासियों की नाव वह कभी डूबने भी नहीं देगा ।

आस्तिकता से शक्ति का अवतरण

विश्व में स्थायी शांति की स्थापना जिन आधारों पर सम्भव है उनमें आस्तिकता सर्वप्रधान है । ईश्वर के अस्तित्व पर, उनकी सर्वव्यापकता और न्यायशीलता पर विश्वास हुए बिना मनुष्य के लिए यह कठिन है कि वह प्रलोभनों के समय, आपत्तियों के समय भी अपने कर्त्तव्य धर्म से विचलित न हो । सामाजिक एवं राजकीय प्रतिबन्ध एक सीमा तक जन-साधारण को कुमार्गगामी होने से बचा सकते हैं । वे अधिक से अधिक इतना कर सकते हैं कि किसी व्यक्ति के दुष्कर्म कर लेने के पश्चात् उसकी भर्त्सना या दण्ड की व्यवस्था करें । पर यह तो बहुत पीछे की बात हुई। कुकर्म का प्रारम्भ कुविचारों से ही हो जाता है । मन में कुविचार उठते हैं तो मस्तिष्क उसके अनुरूप अनेक योजनायें बनाने लगता है और उन योजनाओं में से छोटे-बड़े रूप में कई फलित भी होती रहती हैं । पकड़ में तो कोई एकाध ही आती हैं और पकड़े जाने पर भी दण्ड का भागीदार कभी-कभी होना पड़ता है अन्यथा लोग अपनी चतुरता और सफाई के बल छूट भी जाते हैं ।

कुकर्मों के कारण ही इस संसार में सारी अशांति है। परस्पर जो राग-द्वेष और छीना-झपटी की अनीतिपूर्ण प्रक्रिया आज चल रही है उसी के फलस्वरूप विविध विधि के संघर्ष और क्लेश दृष्टिगोचर होते हैं । दैवी विपत्तियाँ भी हमारे पूर्व संचित दुष्कर्मों के फलस्वरूप ही आती हैं । संसार में जितना भी कष्ट है वह किसी न किसी कुकर्म का फल है । आक्रमणकारी एवं अपहरणकर्त्ता का कुकर्म उसके लिए तो दुखदायक होता ही है पर पहले दूसरे निर्देशों को भी अपनी चपेट में ले लेता है । संसार में जितने कुकर्म पनपेंगे उतने ही दुख भी बढ़ते रहेंगे । इसलिए हमें शांति की स्थापना करनी है तो कुकर्मों को हटाना पड़ेगा । यह कुकर्म कैसे घटें ? इस पर विचार करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि कुविचार ही कुकर्मों के उत्पादक हैं। मस्तिष्क में घूमती रहने वाली अधर्म मूलक विचारधारा ही अवसर पाकर कुकर्म का रूप धारण करती है । पानी ही जमकर बर्फ बनेगा । यदि हवा में पानी का अंश न हो तो बर्फ कैसे गिरेगी ? हवा में रहने वाला पानी अदृश्य और गिरने वाली बर्फ दृश्य है इसी प्रकार कुविचारों को सूक्ष्म अदृश्य एवं कुकर्म को स्थूल दृश्य पाप कहा जाता है । कुकर्मों को मिटाने के लिए कुविचारों पर प्रहार करना आवश्यक है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुविचारों में अनैतिक बातों का समावेश रहता है । अनैतिकता में एक आकर्षण है । जुआ, चोरी, लूट, व्यभिचार, बेईमानी आदि का परिणाम पीछे कुछ भी हो, तत्काल इनमें बहुत लाभ एवं बहुत आकर्षण दिखाई पड़ता है । इस लोभ एवं आकर्षण को नियन्त्रित रखने का एकमात्र उपाय यदि हो सकता है तो वह ईश्वरीय न्याय का भय ही है । पाप को छिपाये रहना और राजदण्ड से बचे रहना आज की दुनिया में कुछ बहुत मुश्किल नहीं है। इसलिए मनुष्य सोचता है कि जब पाप के प्रतिफल से बचा जा सकता है तो फिर उसके लाभ और लोभ को क्यों छोड़ा जाय ? आज यही विचारधारा दुष्कर्मों को बढ़ावा दे रही है और इसी कारण हमारे मनों में कुविचारों की घटायें स्वच्छन्द होकर विचरण करती हैं ।

कुविचारों पर अंकुश रखना किसी आन्तरिक एवं भावनात्मक आधार पर ही सम्भव है । ईश्वर की सर्वज्ञता एवं निष्पक्ष न्यायशीलता की बात जब तक मन में न जमेगी तब तक और किसी आधार पर मानसिक दुर्भावनाओं को रोका न जा सकेगा । कर्म फल, स्वर्ग नरक परलोक, पुनर्जन्म पर जिसका विश्वास है वही कुमार्ग पर बढ़ते हुए हिचकेगा । जिसका अन्तःकरण कुमार्ग पर चलने से रोकता है, केवल वही कुमार्गों में बच सकता है । आन्तरिक अंकुश हो सकता है । सत्कर्म का कोई तात्कालिक प्रत्यक्ष लाभ न मिले, या उस मार्ग में कष्ट उठाना पड़े तो भी आस्तिक विचार का आदमी यह सोचकर सन्तोष कर सकता है कि सर्वज्ञ ईश्वर की न्यायशीलता निश्चित है तो आज न सही कल मेरे सत्कर्म का फल मिलेगा । पर यदि किसी को ईश्वर पर आस्था न हुई, कर्मफल के बारे में सन्देह रहा तो फिर सत्कर्म के लिए कष्ट उठाना या त्याग करना निश्चय ही कठिन हो जायेगा ।

सत्कर्म का तुरन्त ही वैसा लाभ नहीं मिलता जैसा कुकर्म का । इसीलिए लोग सम्मार्ग छोड़कर कुमार्ग पर चलने को तत्पर होते हैं । इस कठिनाई के रहते हुए भी कोई व्यक्ति यदि कुकर्मों का लाभ छोड़कर सत्कर्म के होने वाले स्वल्प लाभ पर सन्तोष करता है तो उसे पुण्य-परमार्थ का, ईश्वरीय प्रसन्नता का एवं समयानुसार सत्परिणाम प्राप्त होने का विश्वास अवश्य होना चाहिए । इस विश्वास के अभाव में मनुष्य भटक जाता है और बिना पतवार की नाव की तरह उसका मन न सोचने योग्य सोचने में और न करने योग्य करने में अग्रसर हो चलता है । ईश्वरीय विश्वास के अभाव में मन की दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश और किस प्रकार लगाया जाना सम्भव, इसका और कोई सुनिश्चित विकल्प अभी तक किसी की समझ में नहीं आया है ।

पापी के सामाजिक बहिष्कार एवं सार्वजनिक निन्दा की एक प्रथा प्रचीनकाल में सबल थी और उस कारण से किसी कदर लोग बुराई से बचते थे, अब वह बन्धन भी टूट चले । कहीं है भी तो वे रोटी-बेटी की रूढ़ियों तक सीमित है । झूठ बोलने वाले, बेईमानी करने वाले, अनीति बरतने वाले का सामाजिक बहिष्कार होता अब कहीं दीखता नहीं । उल्टे ऐसे लोगों से डरकर या लाभ उठाने का अवसर देखकर अनेक लोग उसके समर्थक बन जाते हैं । यही बात राजदण्ड के बारे में है । एक तो कानून ही बहुत थोड़ा-सा दण्ड देते हैं । दूसरे पुलिस का इतना विस्तार भी नहीं कि छिपकर हुए दुष्कर्मों का भी पता प्राप्त कर सके । फिर दण्ड दिलाने के लिए जितना सबूत, जितने गवाह चाहिए वह नहीं जुट पाते तो असंख्य लोग अपराधी होते हुए भी छूट जाते हैं । धन खर्च कर सकने वालों के लिए तो इस प्रकार की छूट और भी सुलभ हो जाती है । इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक बहिष्कार एवं राजदण्ड की पद्धतियाँ कुकर्मों को रोकने तक में सफल नहीं हो पा रही हैं तो कुविचारों के उठने के गुप्त मनोभूमि की गहराई तक तो उनका प्रवेश हो सकना और भी कठिन है । लोकनिन्दा और राजदण्ड की उपेक्षा का भाव यदि मन में जम जाये तो मनुष्य और भी ढीठ एवं उच्छृंखल हो जाता है । आज ऐसी ही ढिठाई एवं उच्छृंखलता तेजी से बढ़ती चली जा रही है ।

समाजनिष्ठा, देश-भक्ति या आदर्शवाद के नाम पर एक और भी प्रयोग इस शताब्दी में ऐसा हो रहा है जिसमें ईश्वर की उपेक्षा करके इन आधारों पर मनुष्य को सदाचारी एवं आत्मसम्मान युक्त बनाने का परीक्षण किया गया है । साम्यवादी विचारधारा इसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की पोषक है। रूस आदि साम्यवादी देशों में इसका प्रयोग पिछले पचास वर्षों से चल रहा है । उस पर सूक्ष्म दृष्टि डालने पर स्पष्ट हो जाता है कि वह प्रयोग एक प्रकार से असफल ही रहा है । देश-भक्ति एवं समाज निष्ठा का भरपूर शिक्षण देने पर भी वहाँ अपराधों की संख्या आस्तिक देशों से भी कहीं अधिक है । इस देशों में जितना उत्पीड़न और रक्तपात जनता की दुष्प्रवृत्तियों को रोकने के लिए किया गया है वह लोमहर्षक है । इतने दमन और नियन्त्रण की परिस्थितियों ने आतंक तो पैदा कर दिया है, जिसके भय से निर्धारित प्रतिबन्धों के विरुद्ध कोई सिर न उठावे । पर हृदय परिवर्तन नहीं हुआ है । भीतर ही भीतर अनैतिकता की वह आग मौजूद है और समय-समय पर उसकी चिनगारियाँ सामने आती रहती हैं । रूस के शीर्षस्थ नेताओं को आये दिन देशद्रोही ठहरा कर मौत के घाट उतारा जाता रहता है । एक दिन देशभक्त दूसरे ही दिन देशद्रोही घोषित कर दिये जाते हैं । इस प्रक्रिया के शिकार जितने बहुसंख्यक शीर्षस्थ नेता रूस में हुए हैं उसे देखते हुए सोचना पड़ता है कि जब ऊँचे कहे जाने वाले लोगों का यह हाल है तो साधारण या निम्न वर्ग का क्या हाल होगा ? जर्मनी, इटली, स्पेन, आदि देशों में अधिनायकवाद का भी परीक्षण करके देख लिया है । बुरे कहे जाने वाले लोगों को दमन के बल पर कुचल डालने से लोग अच्छे रास्ते पर चलेंगे, इसका भयानक परीक्षण हुआ है पर जनता कितनी सुधरी, यह तो पीछे खोजा जायगा, पहले यही देख लिया जाय कि इस विचारधारा के शीर्षक लोग ही परस्पर कितने विश्वासघाती और निष्ठुर सिद्ध हुए और इन सत्ताधारियों ने आपस में ही एक-दूसरे से कितनी प्रतिद्वन्दिता, ईर्ष्या, विश्वासघात एवं निष्ठुरता की नीति बरती । शीर्षस्थ स्तर पर जो परीक्षण असफल रहा है वह सामान्य स्तर की जनता में सफल होगा, ऐसी आशा करना दुराशा मात्र ही कहा जायेगा।

सामूहिक भर्त्सना, राजदण्ड और समाज निष्ठा यह तीनों ही बातें अच्छी हैं और इन तीनों की उपयोगिता भी है पर मनुष्य के आन्तरिक स्तर को सद्विचारों में ओत-प्रोत रखने एवं सत्कर्मों के लिए कुछ भी कष्ट उठाने की सुदृढ़ प्रेरणा इसमें नहीं है। वह तो ईश्वर निष्ठा में ही है । उपर्युक्त तीन दृष्टिकोण उपयोगिता, अनुपयोगिता की कसौटी पर नैतिक मूल्यों को बदल लेते हैं इसलिए मनुष्य सोचता है कि सदाचार तो एक साधारण सा नीति नियम मात्र है, उसे आवश्यकतानुसार तोड़ा भी जा सकता है । मांसाहार को ही लीजिये—भौतिक दृष्टि से परखने वाले लोग आर्थिक या अन्य उपयोगिताओं के कारण उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं, और निरपराध प्राणी को मर्मान्तक कष्ट देकर उसका प्राणघात करने में संकोच नहीं करते । जब एक अवसर पर यह मान लिया गया कि अपने लाभ के लिए दूसरे के प्राणघात करने में कुछ हर्ज नहीं तो यह नीति दूसरे अवसर पर मनुष्यों के प्रति भी व्यवहार में लाई जा सकती है । प्रश्न हत्या में पाप होने का न रहा, उपयोगिता की न्यूनाधिकता का रह गया, जिसे भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपनी कसौटी पर अलग-अलग ढंग से भी कस सकते हैं और कोई अतिवादी चिड़ियों के शिकार खेलने की तरह मनुष्यों का भी शिकार खेल कर अपना मनोरंजन कर सकता है । कानपुर में एक कनपटी मार बाबा लोहे की कील से सड़क पर सोते हुए कितने ही निरीह मजदूरों को मौत के घाट उतार कर अपना मनोरंजन कर भी चुका है । यह उपयोगितावाद की विचारधारा मनुष्य को अवसरवादी ही बना सकती है, आदर्शवादी नहीं । और जब तक आदर्शवादी में सुदृढ़ निष्ठा न होगी तब तक मनुष्य अपने लाभ और लोभ को त्याग कर देर तक परमार्थवादी न बना रह सकेगा। स्वार्थ और परमार्थ के संघर्ष में ऐसे लोग देर तक पुण्य-पथ पर सुदृढ़ नहीं रह सकते ।

इन सब बातों पर विचार करते हुए ईश्वर विश्वास ही एक मात्र वह उपाय रह जाता है जो सत्प्रवृत्तियों को किसी नीति के रूप में नहीं, वरन् मानव जीवन की मूल-भूत आधारशिला मानकर हृदयंगम करने के लिए प्रेरणा दे सकती हैं । धर्म और कर्त्तव्य पालन आस्तिकता की दो भुजायें हैं। सच्चे ईश्वरविश्वासी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी धर्मशीलता और कर्त्तव्य-परायणता के आधार पर परमात्मा को प्रसन्न करे । सब प्राणियों में परमात्मा की ज्योति देखे और सबके साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिष्टता, सज्जनता एवं सहृदयता का व्यवहार करे। पाप का दण्ड मिलने और पुण्य का पुरस्कार प्राप्त होने की मान्यता उसके धैर्य को कायम रख सकती है । इस उलटी दुनियां में सन्मार्ग पर चलते हुए कष्ट भी उठाना पड़े तो परलोक या अगले जन्म में मिल जाने की आशा भी उसे कठिन अवसरों पर विचलित होने से रोके रह सकती है ।

आस्तिकता के आध्यात्मिक लाभ असंख्य हैं । स्वर्ग और मुक्ति का आनन्द प्राप्त होना, भव बन्धनों से छूटना, जीवन का आनन्द लेना, ऋद्धि-सिद्धियों की उपलब्धि, ईश्वर की कृपा से कष्टों से छुटकारा, आत्म-बल की वृद्धि आदि अगणित लाभ आस्तिकता एवं उपासना से सम्बन्धित हैं । पर सामाजिक एवं लौकिक दृष्टि से आस्तिकता का सबसे बड़ा लाभ है कि वह मनुष्य को कुकर्म करने से ही नहीं, कुविचारों से भी दूर रहने को प्रेरणा देती है । आत्म-नियन्त्रण का यही उपाय ऐसा है कि जो हमारे नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा को जन-मानस में गहराई तक जमाये रह सकता है । अपने सुधार और दूसरों के साथ सद्व्यवहार की जिस प्रक्रिया के ऊपर विश्व-शांति की सम्भावना निर्भर है उसके लिए आस्तिकता ही एक प्रेरक शक्ति का केन्द्र बन सकती है । जीव लघु से महान् बने, अणु के विभु के रूप में विकसित हो, आत्मा को परमात्मा के रूप में परिणत करे, यह आकांक्षा आस्तिकता के आधार पर ही तो जाग्रत होगी और इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए उसे धर्मनिष्ठा, आत्म संयम, परोपकार एवं सदाचार का अनिवार्यतः अवलम्बन करना पड़ेगा । यही वह मार्ग हो सकता है जो हमारी वैयक्तिक एवं सामाजिक दुरवस्था का समाधान करके वह परिस्थिति उत्पन्न करे जिसमें सब लोग सुखपूर्वक रह सकें और विश्वव्यापी शांति का सुखद आनन्द अनुभव कर सकें ।

सर्वोत्कृष्ट सत्संग की भूमिका—सांसारिक वातावरण में स्वार्थपरता, वासना, तृष्णा, काम-क्रोध, लोभ, मोह की प्रवृत्तियाँ भरी पड़ी हैं । हर घड़ी ऐसी ही सब कुछ हम देखते-सुनते हैं अतएव वैसे ही संस्कार भी अपने ऊपर जमते हैं । अपना जीवन क्रम भी उसी ढर्रे पर लुढ़कने लगता है । विशिष्ट उत्कृष्ट एवं आदर्शवादी मानव-जीवन जीने की प्रेरणा तब मिले जब वैसे ही उत्कृष्ट वातावरण या व्यक्ति के साथ रहना हो । यह प्रयोजन उपासना द्वारा पूरा होता है । ईश्वर में सब कुछ श्रेष्ठता है, वह सद्गुणों और सत्प्रवृत्तियों का आधार है । निरन्तर श्रम, निःस्वार्थ, उपकार, निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ से परे, उदारता, क्षमा, स्नेह, करुणा, मैत्री व्यवस्था पर दृष्टिपात करें तो उसमें सर्वांग पूर्णता मिलेगी । उपासना के समय ईश्वर का जप ध्यान करते हुए उसकी महिमा एवं गरिमा का भी ध्यान करना पड़ता है । इससे एक ऐसे श्रेष्ठ सत्संग की आवश्यकता मिलती है, जिसके आधार पर हमारी अंतःचेतना को उच्च-स्तरीय विकास के लिए प्रोत्साहन मिले । साँसारिक वातावरण की कलुषता, ईश्वरीय सान्निध्य से कट जाती है, इस प्रकार आध्यात्मिक प्रगति का एक बड़ा रोड़ा हटता है ।

जीवन अन्य क्षुद्र योनियों में से क्रमशः विकास करता हुआ मानवयोनि के उच्चस्तर तक आ पाया है । अब उसे ऋषित्व एवं देवत्व की कक्षाएँ पार करते हुए ईश्वर का अनन्त ऐश्वर्य प्राप्त करना है। यह कार्य अपूर्णताएँ दूर करते चलने में ही सम्भव है । पूर्ण परमात्मा में पूर्ण जीवों का ही लय होता है । जल में जल ही घुलता है लोहा नहीं । ईश्वर की जो प्रकृति, एवं प्रवृत्ति है, उसी प्रकार की अन्तःचेतना जिस दिन हमारी हो जायेगी, अपने आप पूर्णता लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे । उपासना हमें लघु में महान् बनने की प्रेरणा करती है । ईश्वर को अपने में धारण करना अथवा अपने को ईश्वर में समर्पण करना एक ही बात को दो ढंग से कहना मात्र है। यह प्रयोजन वाणी से करने और कल्पना से सोचने पर सिद्ध नहीं होता वरन् जीवन की रीति-नीति ऐसी बनानी पड़ती है जिसमें से अपूर्णताओं, त्रुटियों का निष्कासन एवं महानताओं का अभिवर्धन निरन्तर होता रहे । प्रातः उठते समय दिन भर का श्रेष्ठता युक्त कार्यक्रम बनाना और रात्रि को सोते समय दिनभर की क्रिया-पद्धति को इस कसौटी पर कसना कि वह पूर्णता की दिशा में प्रगति कराती है कि नहीं—उपासना का आवश्यक अंग है । भजन की तरह यह आत्म-निरीक्षण, आत्म-चिन्तन, एवं आत्म-विकास का हृदयमन्थन उपासना का अनिवार्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अंग है । हम जैसे-जैसे उदार एवं महान् होते जाते हैं वैसे-वैसे ही आत्मोत्कर्ष का उद्देश्य पूरा होता है लघु से महान्, अणु से विभु, आत्मा से परमात्मा, नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम बनने की विचारधारा का नाम आस्तिकता है और उसका दैनिक अभ्यास-भावनात्मक व्यायाम करने की प्रक्रिया को उपासना कहते हैं । सच्चे आधार पर की हुई उपासना का प्रभाव साधक के जीवन में दिन-दिन अधिक प्रखर होता चलता है और उसका व्यक्तित्व दूसरों की अपेक्षा अत्यधिक प्रकाशवान् बनने लगता है । जो आत्मविकास कर रहा होगा उसकी क्षमता, प्रतिभा, गरिमा, महिमा सभी कुछ बढ़ रही होगी। उसकी पहचान उसके सन्तुष्ट प्रभाव एवं समुन्नत अन्तःकरण के रूप में कभी भी देखी, परखी जा सकती है । मानव जीवन की सार्थकता इसी स्थिति को प्राप्त करने में अनुभव होती है ।

आत्म प्रवंचना एवं लोक विडम्बना-आज लाखों करोड़ों तथाकथित आस्तिक एवं उपासक दृष्टिगोचर होते हैं, पर उनका दृष्टिकोण गलत होने के कारण चिरकाल तक जप-तप करते रहने पर भी कोई लाभ या प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता । जिसका यह लोक उज्ज्वल नहीं, जिसकी आज प्रसन्नता नहीं उसे मरने के बाद स्वर्गीय आनन्द मिलेगा यह कल्पना सर्वथा असत्य है । स्वर्ग तो सद्भावनाओं की प्रतिक्रिया मात्र है, जिसके लिये मरने के बाद या मरने से पहले जैसा स्तर नहीं किया जा सकता। वह स्थिति तो जब भी जिसकी होगी तभी उसे आनन्द का अनुभव मिल रहा होगा । आज के तथाकथित आस्तिक न लौकिक दृष्टि से समृद्ध हैं और न आध्यात्मिक दृष्टि से समुन्नत । ऐसी दशा में यह मानना पड़ेगा कि उनकी क्रिया व्यवस्था में कहीं दोष है । सच्ची उपासना सच्चे हीरे या स्वर्ण की तरह है—जिसके बदले में सहज ही अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं । काँच का बना हीरा और मुलम्मे का नकली सोना जिस प्रकार किसी की समृद्धि नहीं बढ़ाता, उसी प्रकार भ्रान्त आस्तिकता भी किसी उपासक की प्रगति में कोई सहायक नहीं होती ।

आज लोग दस-बीस मिनट जो देव-दर्शन, जप ध्यान, स्तोत्र पाठ, वन्दन अर्चन में लगाते हैं, उसके पीछे निकृष्ट प्रयोजन काम करते रहते हैं । वे सोचते हैं इतने मात्र में ईश्वर प्रसन्न हो जायेगा और उन्हें जितनी भी सांसारिक कामनाएँ अभीष्ट हैं वे सभी पूरी कर देगा । इसी प्रकार वे निरन्तर दुर्भावग्रस्त एवं पापलिप्त रहते हैं । उसके दण्ड से बचा देने की भी ईश्वर से आशा करते हैं । यह दोनों ही मान्यताएँ ऐसी हैं जो उपासक की आत्मिक प्रगति में भारी बाधा उपस्थित करती हैं । सांसारिक सुख साधन मनुष्य की क्षमता, कुशलता एवं प्रतिभा के आधार पर उपलब्ध होते हैं । अनेकों नास्तिक भी अपनी इन विशेषताओं को विकसित करते और मनमाने लाभ उठाते हैं । यदि कोई व्यक्ति अपने हीन व्यक्तित्व को तो विकसित करता नहीं, पर जो लाभ पुरुषार्थियों को मिलना चाहिए वह बिना श्रम के थोड़ेसे पूजा द्वारा ही प्राप्त करना चाहता है तो वह एक प्रकार से ईश्वर की महान व्यवस्था को उलट देने की ही कल्पना करता है । ईश्वर की प्रसन्नता सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाये बिना सम्भव नहीं । भजन-पूजन तो इस मार्ग पर बढ़ने का एक आधार मात्र है । स्लेट-पेन्सिल तो गणित सीखने का अवलम्बन है । स्लेट-पेन्सिल हाथ में लेने मात्र से कोई गणितज्ञ नहीं हो सकता । इसी प्रकार माला सद्गुणों के विकास का पथ प्रशस्त करती है तब उससे समृद्धि की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं । यह बीच की प्रक्रिया पूर्ण न की जाय, आत्म विकास की वह साधना जिसमें हर आस्तिक को अपना जीवन सराबोर करना पड़ता है, छोड़ दिया जाय, तो फिर माला से कोई प्रयोजन पूरा नहीं होता । आज ऐसे ही तथाकथित भक्तों का बाहुल्य है जो आत्म-निर्माण के आवश्यक कर्त्तव्यों का परित्याग कर किसी कोने में बैठे माला जपते रहते हैं और इस लोक तथा परलोक में बड़े-बडे लाभ मिलने की कल्पना करते रहते हैं ।

इसी प्रकार आज गंगा स्नान से लेकर हनुमान चालीसा का पाठ अथवा एकादशी उपवास तक हर छोटा-मोटा कर्म काण्ड समस्त पापों को नाश करने का प्रमाण पत्र मान लिया जाता है । जब पाप इतने सस्ते में कट सकते हैं तो फिर पाप से डरने की क्या आवश्यकता ? फिर क्यों न भरपूर पाप करके इस लोक का मजा लूटा जाय ? उनका दण्ड तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन कर्मकाण्डों के माध्यम से नष्ट हो ही जायेगा। इस मान्यता से मनुष्य पाप से डरना छोड़ देता है। यही कारण है कि इस तथाकथित आस्तिकों में दोष-दुर्गुणों के अम्बार भरे पड़े रहते हैं और वे साधारण लोगों की अपेक्षा अधिक गये-गुजरे देखे जाते हैं । इसी शंका से शंकित होकर लोग कहते हैं कि जो उपासना व्यक्तित्व में निखार या परिष्कार न ला सकी वह परलोक में सद्गति का प्रयोजन कैसे पूरा करेगी ?

आधार सही करें—भौतिक कामनाओं की पूर्ति तथा पापनाश इन दोनों ही प्रयोजनों को छोड़कर हमें सर्वशक्तिमान सत्ता के सान्निध्य से प्राप्त होने वाली महानता के लिए ही उपासना करनी चाहिए । आस्तिकता का दृष्टिकोण अपनाकर प्रेम भावनाओं का अभिवर्धन करना चाहिए और मानसिक एवं शारीरिक पापों से बचना चाहिए । उपासना से आस्तिकता परिपक्व होती है । आस्तिकता, मानवता एवं उत्कृष्टता का ही दूसरा रूप है । उपासना इसी का अभ्यास करने के लिए एक महत्वपूर्ण विज्ञान सम्मत मानसिक व्यायाम के रूप से की जाती है । इससे आत्मबल निश्चित रूप से बढ़ता है । और जब शरीर बल, धन बल, बुद्धिबल जैसे भौतिक बलों का आशाजनक लाभ मिलता है तो आत्मबल जैसे इस विश्व के सर्वोत्कृष्ट बल का लाभ क्यों न मिलेगा ? ईश्वर का भक्त ईश्वर के सामने ही सामर्थ्यवान एवं महान बन जाता है इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। पर वह भक्ति होनी चाहिए । ढंग से बेढंगी भक्ति तो आत्म प्रवंचना और लोक विडम्बना ही कही जायेगी ।

हममें से प्रत्येक को आस्तिक बनना चाहिए और इसके लिए नित्य नियमित रूप से उपासना की क्रम व्यवस्था दैनिक जीवन में रखनी चाहिए । एक परिपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में ईश्वर की किसी छवि का ध्यान करें उसके गुणों का चिन्तन करें और उसी में तन्मय हो जावें उसे अपने में धारण कर लेने की भावना करें। जिह्वा से नाम जप होता रहे । वाणी से नाम जप मस्तिष्क से स्वरूप का ध्यान, हृदय से एकात्मकता का, परस्पर घुलन-मिलन के उल्लास का अनुभव यह तीनों क्रियायें साथ-साथ चलती रहनी चाहिए । भजन के समय कोई भाव ध्यान में न आवे यह सोचना उचित नहीं। विचारों का न उठाना योगाभ्यास का चित्तवृत्ति निरोध साधन तो है पर भजन में इसका कुछ उपयोग नहीं। भजन में भावनायें तो रहनी ही चाहिए । जो भावना से तरंगित न हो वह भजन कैसा ?

जिन्हें ईश्वर का निराकार स्वरूप प्रिय है वे उपासना के समय प्रकाश ज्योति अथवा समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का—विश्व मानव का विराट रूप ध्यान कर सकते हैं । जिन्हें साकार स्वरूप प्रिय है वे राम, कृष्ण, शिव, सूर्य, गायत्री माता, सरस्वती आदि का ध्यान कर सकते हैं । रूप कोई भी हो उसे पूर्ण ब्रह्म का प्रतीक माना जाय । देवताओं को औंधे-सीधे चरित्र बताये गये हैं उससे इस इष्ट ध्यान का कोई सम्बन्ध न जोड़ा गया । अन्यथा वे देवदोष हममें भी आने लगेंगे ।

आस्तिकता और समाज-कल्याण-आस्तिकता की भावना का एक महत्वपूर्ण और उज्ज्वल पहलू समाज-कल्याण की भावना का प्रसार भी है । नास्तिक मनुष्य के उच्छृंखल हो जाने की सम्भावना अधिक रहती है, जबकि भगवान पर विश्वास रखने वाला व्यक्ति दुष्कर्मों से बचने की न्यूनाधिक प्रेरणा किसी न किसी रूप में पाता ही रहता है और उससे प्रायः लाभ भी उठाता है । आस्तिकता का वास्तविक तात्पर्य होता है अन्य मनुष्यों को, एक ही भगवान का पुत्र मानकर उनके साथ भ्रातृभाव की भावना रखना । यद्यपि विदेशों के कितने ही दार्शनिकों तथा आन्दोलनकारियों ने भी, जो ईश्वर पर विश्वास नहीं रखते, भ्रातृभाव के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, पर ऐसी बातों का प्रभाव लोगों की अन्तरात्मा पर नहीं पड़ता। परिणाम यह होता है कि "भ्रातृभाव" और "समता" का नारा लगाते हुए भी वे स्वार्थपरता की अनुचित प्रवृत्ति से ऊँचा नहीं उठ पाते। वे अपने निकटवर्तियों के साथ भी समता का व्यवहार करने की बजाय "शोषण" का व्यवहार ही करते हैं और अन्य देश वालों का तो खुल्लम खुल्ला खून चूसने में भी संकोच नहीं करते । पर जिस व्यक्ति का ईश्वरीय शक्ति पर विश्वास है और जो मानव-मात्र में एक ही आत्मा के विद्यमान होने में थोड़ा भी विश्वास रखता है, वह दूसरों का उत्पीड़न करने को बुरा समझता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुत से लोग पूजा, पाठ, उपासना ध्यान, भजन कीर्तन, तीर्थ-यात्रा आदि में विशेष दिलचस्पी रखने वाले लोगों को ईश्वर प्रेमी और आस्तिक समझते हैं। साथ जब वे उनकी स्वार्थपरता के कारण दूसरे व्यक्तियों के साथ दुर्व्यवहार करते देखते हैं, तो उनको आस्तिकता के महत्व पर सन्देह होने लगता है । इसमें गलती यह होती है कि केवल पूजा-पाठ या भजन-कीर्तन को "आस्तिकता का प्रमाण मान लिया जाता है, जबकि यह उसके वाह्य लक्षण मात्र हैं, जो व्यक्ति इन कार्यों को करते हुए व्यवहार विपरीत मार्ग पर चलता हो, उसके लिए यही निश्चय कर लेना चाहिए कि या तो वह इन कार्यों का वास्तविक तात्पर्य नहीं समझता और केवल परम्परा का पालन करने के विचार से वैसा करता रहता है, अथवा दूसरी बात है यह कि अनेक लोग जानबूझकर अन्य लोगों को बहकाने के लिए भी ऐसा आचरण करते हैं । वे सोचते हैं कि ऐसा करने से अब लोग हमें ईश्वर भक्त समझने लगेंगे और इस प्रकार विश्वास जमा कर हम अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहेंगे । इसलिए आस्तिकता के प्रभाव का निर्णय करने के लिए हमको इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के नकलीपन को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए ।

आस्तिकता की सचाई का सबसे पहला प्रमाण यही है कि उस व्यक्ति में लोक-कल्याण की आन्तरिक भावना हो जो मनुष्य दूसरों के सुख-दुःख में हिस्सा बँटाता और दूसरों के हित के लिए अपने स्वयं का बलिदान करने के लिए प्रस्तुत रहता है, वही वास्तव में 'आस्तिकता' का अनुयायी माना जा सकता है । इस दृष्टि से हम तो प्रत्यक्ष में ईश्वर उपासना करने वाले, पर संसार के अन्धकार में संलग्न व्यक्तियों को नास्तिक' कहेंगे । इसके बजाय जन्म भर देवालय में न जाने वाले और भजन न करने वाले पर अपना जीवन लोक सेवा और परोपकार के लिए उत्सर्ग कर देने वालों का 'आस्तिक' मानेंगे ।

नियमित उपासना के अतिरिक्त हर समय भगवान् का ध्यान रखा जाय, उसे चौबीस घण्टे के साथी की तरह विश्वस्त, आत्मीय समझा जाय, उसे प्रसन्न करने के लिए आदर्शवादिता से परिपूर्ण आचरण किया जाय और उन कुविचारों एवं दुष्कर्मों से दूर रहा जाय जिनमें ईश्वर अप्रसन्न होता है । यह भूलना नहीं चाहिए कि पूजा-अर्चन का उद्देश्य जीवन के कण-कण में आस्तिकता का समावेश करना, दिव्य जीवन की प्रेरणा ग्रहण करना है । जीवन घृणित एवं अव्यवस्थित बना रहा तो समझना चाहिए कि हमने प्राण रहित कलेवर मात्र ही पूजा है । आस्तिक व्यक्ति का हर विचार एवं हर कार्य उत्कृष्ट ही होना चाहिए । इस कसौटी पर हम अपनी उपासना को सही सिद्ध करते हुए भजन ध्यान करें तो उससे ईश्वर की सच्ची प्रसन्नता का लाभ मिलना सुनिश्चित है ।

२-धर्म-ग्रन्थों में ईश्वरत्व

हिन्दू संस्कृति अपने अनेक ग्रन्थों को ईश्वर के वचनों से पूर्ण मानता है । उनमें दिव्यता, सात्विकता और वह उपयोगिता भरी हुई है कि वह ईश्वरीय प्रेरणा के ही फल हैं । गीता, उपनिषद्, वेद, रामायण, महाभारत, भागवत, योगसूत्र, स्मृतियाँ इत्यादि हमारी वे अमूल्य निधियाँ हैं, जिनमें हमें ईश्वरत्व के दर्शन हो जाते हैं। भारतीय संस्कृति में वेदों का स्थान बहुत गौरव का है । श्रुति (वेद) के ऊपर ही भारतीय धर्म, सभ्यता, आचार-विचार, रहन-सहन, कर्म आदि टिका हुआ है। उच्च आध्यात्मिक ज्ञान के भंडार का नाम ही वेद है । स्मृति और पुराणों में भी वेद का प्रचुर महत्व स्वीकार किया गया है ।

"शतपथ ब्राह्मण" में लिखा गया है–

"धन से भरी हुई पृथ्वी के दान से जितना पुण्य होता है, वेदों के अध्ययन और आचरण से उससे भी अधिक सुख मिलता है ।"

मनु भगवान ने वेद के जानने वाले विद्वान की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "वेद शास्त्र के तत्व को जानने वाला व्यक्ति किसी भी आश्रम में रहे, वह इसी लोक में रहते हुए ब्रह्म का साक्षात्कार करता है ।" मनु जी ने वेद का अध्ययन न करने वाले ब्राह्मण की बड़ी निन्दा की है । द्विज का द्विजत्व तभी सार्थक होता है जब वह वेदों का अध्ययन करे और गुरू से दीक्षा ले ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय धर्म ग्रन्थ दैवी संकेतों, उपयोगी ज्ञान, सदुपदेश, मंत्र, स्वर्णसूत्रों से भरे पड़े हैं । इनके अध्ययन और आचरण से हम बुद्धिमान और सद्गुणी बनते हैं, संसार में प्रतिष्ठा और आदर पाते हैं, गुप्त मानसिक उद्वेगों से बचते हैं, शत्रुओं के अनिष्ट प्रभाव से बचते हैं, कुविचार, कुसंस्कार और बुरी आदतों से छुटकारा पाते हैं, बुद्धि, सद्गुण और प्रतिभा का विकास करते और सद्गति प्राप्त करते हैं । इनकी शिक्षाओं से हम सच्चे धर्मात्मा और योगी बनते हैं। अपने वास्तविक आत्मस्वरूप को समझकर उच्च सत्ता परमात्मा से प्रेम करके उनके उच्च दैवी गुणों को आकर्षित करके अपने अन्दर धारण करते हैं ।

हिन्दू धर्म ग्रन्थ ईश्वरीय वाणी, ईश्वरीय गुण, उनकी विभूतियों, अतुल शक्तियों, विभिन्न लीलाओं के विपुल भंडार हैं । गरीबों को दरिद्रता से छुड़ाने की, दुखियों का दुख दूर करने की, शरीर और मन को निरोग करने और आधि-व्याधि को भुला देने की जितनी शक्ति इन धर्म-ग्रन्थों में छिपी हुई है, उतनी संसार की किसी अन्य वस्तु में नहीं है । ईश्वर ने हमें जिस पुण्य भूमि में कर्तव्य करने के लिए, जीवन का सद्व्यय करने के लिए भेजा है, उसके नियम और साधन, कर्त्तव्य और अधिकार सब इन अमूल्य ग्रन्थों में भरे हुए हैं ।

हम मरणशील प्राणियों के लिए परमात्मा ने यह मृत्यलोक ही क्रीड़ा भूमि बनाई है । हमें उसमें पुण्य, पवित्रता और महानता की दृष्टि रखनी चाहिए । इसे ही स्वर्ग समझना चाहिए । मनुष्य शरीर देवताओं से भी दुर्लभ है । इसमें सात्विकता और आध्यात्मिकता से जीवन व्यतीत करने से ही सबसे अधिक आनन्द उपलब्ध किया जा सकता है और सत्कार्यों द्वारा अपने जीवन को धन्य बनाते हुए परमपद प्राप्त किया जा सकता है—यह सब ज्ञान और नियम हमें अपने धर्म ग्रन्थों में मिलते हैं । भारत धर्म प्रधान देश है । इसलिए यहाँ धार्मिक ग्रन्थों और धर्म को महत्व देने वाले ऋषि मुनियों और पवित्र आत्माओं की प्रचुरता है ।

हिन्दू धर्म ग्रन्थों का वर्गीकरण करें, तो हमें प्रधानतः तीन वर्गों के ग्रन्थ मिलते हैं । जैसे—

१—कथानक प्रधानः—

जैसे रामायण, महाभारत, भागवत इत्यादि इनमें ज्ञान, भक्ति, कर्म इत्यादि के मार्ग को स्पष्ट करने वाली अनेक कथाएँ हैं । आदर्श महापुरुषों के चरित्र हैं। ये महापुरुष कहीं भगवान के रूप में अनेक लीलाएँ करते हैं, तो कहीं महापुरुषों की तरह रूढ़ियों, अनीतियों और कुप्रवृत्तियों से विरोध करते हुए मिलते हैं। जितनी देर तक हम इन पवित्र ग्रन्थों को पढ़ते हैं, उतनी देर तक उच्च संगति में रहते हैं । तदनुकूल कार्य करने की प्रेरणा हमें प्राप्त होती है ।

२—आचार—प्रधानः—जैसे "मनुस्मृति", "आचार संहिता" इत्यादि । इनमें मनुष्य के आचरण का गुप्त मर्म स्पष्ट कर दिया गया है ।

३—दार्शनिक विवेचना प्रधानः—जैसे श्रीमद्भगवद् गीता । इसमें जीवन की व्याख्या दार्शनिक सिद्धान्तों के रूप में की गई है ।

भौतिक जगत की जड़ता, नीरसता और वहिरंगता की कर्कशता से छुड़ाने की शक्ति हमारे धर्म ग्रन्थों में भरी पड़ी है । उनमें जीवन का वह रस भरा हुआ है, जिसे पान करके तुच्छ जीवन से उठकर हम महामानव बनते हैं । हिन्दू संस्कृति पुकार-पुकार कर यह कहती है कि हर एक को धर्म-ग्रन्थ प्रेमी होना चाहिए, विचारपूर्ण सद्ग्रन्थों का संग्रह और स्वाध्याय कर अपने को पशुता से देवत्व की ओर ले जाना चाहिए ।

किन्तु पुरानी प्रत्येक पुस्तक धर्म-ग्रन्थ नहीं है, यह स्मरण रखना चाहिए । जैसे "चाणक्य-सूत्र" राजनीति का प्राचीन ग्रन्थ मात्र है । वात्स्यायन का "कामसूत्र" काम-विज्ञान का ग्रन्थ है । हिन्दू धर्म की यह विशेषता रही है कि महापुरुषों के व्यक्तित्व का तो खूब सम्मान करना चाहिए, पर यह आवश्यक नहीं है कि आप उनके विचार मानें ही । विचार-स्वातन्त्र्य पूरा-पूरा है । इसीलिए समय-समय पर बहुत से ऋषियों ने विविध व्यवस्थाएँ तथा व्याख्याएँ की हैं। समय—काल के अनुसार धर्माचरण बदलता है, यह स्मरण रखना चाहिए ।

३-स्वर्ग और नर्क

भारतीय संस्कृति में स्वर्ग और नर्क का विधान है । शुभ कार्यों से स्वर्ग और निंद्य कार्यों, दुराचरण, पाप आदि से नर्क की कठोर यातनाएँ भुगतनी पड़ती हैं-हम यह मानते आये हैं । स्वर्ग को नाना नामों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से पुकारा गया है । इसका एक नाम ब्रह्मलोक भी है । कहा गया है :—

''तेषां मे वैष ब्रह्मलोको येषां,
तपो ब्रह्मचर्य येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ।''

''जिनमें तप ब्रह्मचर्य है, सत्य प्रतिष्ठित है, उन्हें ब्रह्मलोक मिलता है ।''

जिनमें न तो कुटिलता है और न मिथ्या आचरण है और न कपट है, उन्हीं को विशुद्ध ब्रह्मलोक मिलता है ।

जिस मानव में आशंका, दुःख, चिन्ता, भय, कष्ट, क्षोभ और निरुत्साह है; भोग-विलास और तृष्णा है वही नरक है जो धर्म-पालन, ईश्वर की सत्ता से विमुख है, नास्तिक है, वह नरक में जाते हैं । नष्ट हो जाते हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह ये चारों नर्क के द्वार हैं। इनमें से किसी के भी वश में पड़ जाने पर नर्क में पड़ा हुआ समझना चाहिए । अशुभ वासनाओं के भ्रम-जाल में पड़कर मनुष्य दारुण नर्क की यन्त्रणा में फँस सकता है । अन्य प्राणी तो क्षुधा और वासनाओं के जंजाल में बँधे हुए वासना-तृप्ति में ही जीवन नष्ट कर रहे हैं । वे नवीन कर्मों के द्वारा अपने को समुन्नत करने का प्रयत्न नहीं करते, पर मनुष्य कर्मयोनि में रहकर नये संस्कारों का उपार्जन करने वाला प्राणी है । उसके सामने दो मार्ग हैं, एक तो बन्धन या नरक का और दूसरा मोक्ष या स्वर्ग का । संसार के भोगों में फँसा हुआ मानव नर्क में ही पड़ा हुआ है । इसके विपरीत सत्संग, परोपकार, शुभ कार्य, समाज-सेवा, आत्म-सुधार द्वारा मनुष्य मोक्ष की ओर अग्रसर होता है ।

जो व्यक्ति शास्त्र-निषिद्ध कर्मों, में पाप-प्रवृतियों में लगे रहते हैं, वे बार-बार आसुरी योनि को तथा अधम गति को प्राप्त होते हैं । (गीता १२—२०) विषयासक्ति में पड़े हुए भोगों को लगातार भोगने वाले नर्क में जाते हैं । सांसारिक भोग सुखों की प्राप्ति के साधन रूप सकाम-रूप से भिन्न यथार्थ कल्याण को न जानने वाले व्यक्ति पापों के परिणामस्वरूप हीन योनियों (कीट, पत , शूकर या वृक्ष, पत्थर इत्यादि) में जाते हैं ।

पौराणिक मान्यता यह है कि स्वर्ग और नर्क दो भिन्न-भिन्न लोक हैं । दण्ड या पुरस्कार प्राप्ति के लिये मनुष्य वहाँ जाता है । वहाँ अपने पुण्य-पाप का पुरस्कार प्राप्त कर जीव पुनः इस लोक में आता है ।

दूसरी मान्यता यह है कि स्वर्ग और नर्क स्वयं मनुष्य में ही विद्यमान हैं । ये उसके मन के दो स्तर हैं । मनुष्य के मन में स्वर्ग की स्थिति वह है जिसमें देवत्व के सद्गुणों का पावन प्रकाश होता है । दया, प्रेम, करुणा, सहानुभूति, उदारता की धाराएँ बहती हैं । इस स्थिति में मन स्वतः प्रसन्न रहता है । यही मानसिक मार्ग कल्याणकारी है । अतः इसे स्वर्ग की स्थिति भी कहा जा सकता है । दूसरी मनःस्थिति वह है जिसमें मनुष्य उद्वेग, चिंता, भय, तृष्णा, प्रतिशोध, दम्भ आदि राक्षसी वृत्तियाँ मनुष्य को अन्धकूप में डाल देती हैं। अनुताप और क्लेश की काली और मनहूस मानसिक तस्वीरें चारों ओर दिखाई देती हैं । अन्तर्जगत् यन्त्रणा से व्याकुल रहता है । कुछ भी अच्छा नहीं लगता । शोक, संताप और विलाप की प्रेतों जैसी आकृतियाँ अशान्त रखती हैं। यही नर्क की मनःस्थिति है । इस प्रकार इस जगत् में रहते हुए मानव-जीवन में ही हमें स्वर्ग और नर्क के सुख-दुःख प्राप्त हो जाते हैं । भारतीय संस्कृति के अनुसार सम्भव है कि अपने पवित्र कर्मों द्वारा आपको इसी जगत् में मनःशान्ति, सुख, स्वास्थ्य, संतुलन, इत्यादि प्राप्त हो जाए, या अपने कुकृत्यों द्वारा अशांति, द्वेष, वैर, तृष्णा, लोभ आदि का नर्क मिले।

४-ब्राह्मणत्व

पवित्रता, बुद्धिमत्ता, विद्या, विवेक व सदाचरण, त्याग, तपस्या के आधार पर हमारे यहाँ मनुष्यों में श्रेष्ठता का विधान रखा गया है । मनुष्यों में कौन श्रेष्ठतम् है ? किन मानवों में मनुष्यत्व के सर्वोपरि गुण हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में हिन्दू संस्कृति के विचार महत्वपूर्ण हैं । भारतीय विचारकों ने साक्षेप और तुलनात्मक दृष्टि से इस प्रश्न का उत्तर दिया है ।

शंका उठती है कि वे क्या-क्या तत्व हैं जिनके ऊपर कस कर श्रेष्ठता का निर्णय किया गया है ? क्या यह शरीर-शक्ति है, या संस्कार, विषम-प्रवृत्ति, प्रेरक-तत्व, कार्य-संचालन, अथवा बुद्धि-वैभव है ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शारीरिक शक्ति में तो पशु ही ऊँचे माने जा सकते हैं । मनुष्य की मुख्यता तो उसके बुद्धि-विकास में ही है । बुद्धि और ज्ञान की श्रेष्ठता के बल पर ही मनुष्य अन्य जीवों पर राज्य करता है । इस मानव-जगत में आहार, निद्रा, सम्भोग तक ही सीमित रहने वाले अनेक मनुष्य हैं । ये पशु की कोटि से ऊँचे नहीं उठ पाये हैं । बुद्धि का विकास न होने के कारण ये समाज का साधारण मोटा कार्य ही कर पाते हैं । भारतीय संस्कृति में इन्हें शूद्र संज्ञा दी गई है । ये व्यक्ति मुख्यतः शारीरिक श्रम करते हैं । कठोर दैहिक तप ही इनकी विशेषता है ।

दूसरा वर्ग ऐसे व्यक्तियों का है, जो इस वर्ग से कुछ ऊँचे हैं । वे शरीर-श्रम तो करते हैं, पर बुद्धि का भी उपयोग करते हैं। उनका लक्ष्य केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र होता है । किसान खेती करके अपनी आवश्यकता की पूर्ति के साधन इकट्ठा करता है । इसी प्रकार वैश्य व्यापार द्वारा व्यवसाय कर जीविका उपार्जन करता है । इसका क्षेत्र अपने तक ही सीमित है ।

तीसरा वर्ग इससे ऊँचे उन व्यक्तियों का है जो पहले की अपेक्षा बुद्धि और शक्ति दोनों से ही अधिक काम लेते हैं । समाज की रक्षा का उपाय सोचते और शारीरिक शक्ति से रक्षा स्वयं करते हैं ।

सब प्रकार की कुटिलताओं की जानकारी रखना, उपयुक्त समय पर सचेत रहना, शारीरिक बल से देश और समाज की रक्षा करना, अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करना-यह कार्य क्षत्रिय वर्ग का है ।

इन तीनों से उच्च एक चौथा स्तर है । इसमें दो तत्वों की प्रधानता है । (१) बुद्धि और ज्ञान का चरम विकास, (२) दूसरों की भलाई और परोपकार के लिए इस ज्ञान का उपयोग । यह ब्राह्मण वर्ग है, जिसमें मानवता का चरम विकास पाया जाता है।

डा० मुन्शीराम शर्मा के शब्दों में ब्राह्मणत्व की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :-

"ब्राह्मण-वर्ग की चिंता न आयु है, न प्राण, न पशु, न प्रजा, न धन और न कीर्ति है । उसका प्रमुख लक्ष्य ब्रह्म वर्चस्व की प्राप्ति है, समष्टि दृष्टि से जो बुद्धितत्व 'द्यो' के रूप में सर्वत्र समाया हुआ है, सत् जो आलोक सर्वव्याप्त है, उसको पहचान लेना और उसके साथ अपने व्यष्टि बुद्धि तत्व को मिला देना अर्थात् धी योग को प्राप्त कर लेना उसके ध्यान का चरम बिंदु है । यह स्थिति चिंतन और मनन से भी ऊपर की है ।

"ब्राह्मण चिंतनशील तो होता ही है, इससे भी ऊपर वह प्रकाश स्तम्भ बनता है । ब्रह्म तेज से युक्त होकर वह अपनी गतिशील स्थिति से चारों ओर की परिस्थिति को प्रभावित करता है । उसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति इस प्रकाश का अनुभव करते हैं और इधर-उधर चलने के लिए उन्मुख होते हैं। दिव्यता का आविर्भाव और उसका प्रभाव ऐसा ही होता है । आर्य संस्कृति में इसे ब्राह्मी वृत्ति का सम्पादन कहा गया है । मनु ने इसकी प्राप्ति के लिए स्वाध्याय, व्रत, होम, त्रयी, विद्या, इज्या, सुत, महायज्ञ और यज्ञ रूप साधनों का वर्णन किया है। स्वाध्याय, अप्रमत्त होकर वेद शास्त्रादि, ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थों के अध्ययन में निरत रहना, व्रत रखना, उपवास आदि द्वारा इन्द्रिय-संयम को उपलब्ध करना, दैनिक अग्निहोत्र करना, ज्ञान-कर्म-उपासना रूप वेदत्रयी का आचरण, दर्श पौर्णमास आदि यज्ञों का करना, गृहस्थ धर्म का पालन, संतति का प्रसव, महायज्ञ, सर्वहुत तथा पंच महायज्ञों का करना और अन्त में समग्र यज्ञपूर्ण जीवन को यज्ञमय ही बना देना ब्राह्मणत्व प्राप्ति के साधन कहे गये हैं ।"

प्राचीन काल में भारत में धार्मिक सरकार की व्यवस्था थी । यह सरकार कम से कम व्यय लेकर अधिक से अधिक जन-सेवा, धार्मिक शिक्षण, जीवन-निर्माण और नैतिक स्तर ऊँचा उठाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया करती थी । ब्रह्मणों द्वारा यह धर्मतंत्र संचालित होता था । ब्राह्मणों के अनेक ऊँचे-नीचे पद-पदवियाँ निश्चित कार्य प्रणालियाँ, कर्त्तव्य और अधिकार थे । छोटे कार्यकर्त्ताओं के ऊपर कमशः ऊँचे धार्मिक पदाधिकारी होते थे । छोटे पद पर कार्य करने वाले ब्राह्मणों का कार्य मंदिरों में जिज्ञासुओं के लिए सद्ज्ञान, उपदेश, धर्म-शिक्षा, नीति तत्त्व ज्ञान, सदाचरण, धर्म ग्रन्थों की जानकारी कराना था । वे स्वयं बड़े विद्वान् स्वाध्याय के प्रेमी,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संयमी और प्राचीन ग्रन्थों के ज्ञाता होते थे । उनके ऊपर मठाधीश, महन्त इत्यादि बड़े अफसर होते थे, जो ऊँचे प्रश्नों पर विचार करते थे और धर्म तन्त्र के संचालन में प्रमुख भाग लेते थे । कार्य-प्रणालियों का निर्णय करना उन्हीं के हाथ की बात थी । मंदिरों में जो धन चढ़ाया जाता था, या जो भोजन खाद्य वस्तुऐं चढ़ावे के रूप में प्राप्त हो जाती थीं, उन्हीं से इनकी उदरपूर्ति की समस्या का हल होता था । इसके अतिरिक्त बड़े मंदिरों के पास जो जमीन जायदाद इत्यादि थी, उसकी आय से वहाँ ठहरने वाले अतिथियों, अभ्यागतों, पथिकों का आतिथ्य बिना किसी पर अनुचित बोझ डाले चल सकता था । तात्पर्य यह कि हमारे मठ-मंदिर एक प्रकार से धार्मिक तन्त्र के बँगले, थे, जिसमें जनता के जीवन निर्माण के सभी साधन आसानी से मिल जाते थे। ये ऐसी आदर्श संस्थाएँ थीं, जहाँ के रहने वाले समाज सेवक और धार्मिक पुरुष होते थे । इन्हीं के पथ-प्रदर्शन में नई पीढ़ी का निर्माण होता था । ये लोग केवल भोजन-वस्त्र मात्र लेकर समाज-कल्याण का कार्य करते थे । पथिक और यात्री भोजन और निवास की चिन्ताओं से मुक्त हो जाता था ।

लेकिन आज उस धर्म-तन्त्र में विकार आगया है । शिक्षण और निस्पृह कार्य करने की पद्धतियों को भूल गए हैं । समाज की सेवा तथा जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने की ओर उनका ध्यान नहीं है । मंदिरों पर चढ़े हुए धन का भी प्रायः दुरुपयोग ही होता है । स्वयं ब्राह्मणों और पुरोहितों का बौद्धिक स्तर भी बहुत नीचे आ गया है ।

ये लोग दान, दक्षिणा, भोजन, वस्त्र इत्यादि तो उसी प्रकार ले रहे हैं । लेने में कोई कमी नहीं आई है, पर अपना निर्दिष्ट कार्य-लोक-शिक्षण नहीं कर रहे हैं । बैठे-बैठे खाते हैं । इनका जीवन आलस्यपूर्ण हो गया है । विलास ने इन्हें परास्त कर दिया है । "बैठे रहो, काम न करो" जैसे हड़ताल का ही यह एक रूप है । इनका यह रवैया सर्वथा अनुचित है । इन्होंने अपने ऐसे आचरण के कारण हमारी धार्मिक संस्था को तोड़ दिया है । हमें चाहिये कि इनके विरुद्ध जनमत ऊँचा करें । जनता को चाहिये कि इन पर जोर डाल कर या तो इनसे समाज-सेवा और धर्म प्रवचन का कार्य करावे, या इनसे यह स्थान छोड़ देने के लिए कहा जाय । आज ब्राह्मणत्व के विकास तथा उसके द्वारा समाज की सेवा कराने की बड़ी आवश्कता है । कहा गया है—

तत्त्वज्ञास्तु विद्वान्सो ब्राह्मणः स्वतपश्चयैः ।
अन्धकारमया कुर्युर्लोकर ज्ञान सम्भवम् ।।

(गायत्री स्मृति)

अर्थात् "तत्त्वदर्शी विद्वान् ब्राह्मण अपने तप द्वारा संसार के अज्ञानजन्य अंधकार को दूर करें।"

आज जो आलस्य और अकर्मण्यता का अन्धकार फैला हुआ है । उससे समाज की प्रगति रुक गई है । हम दिशा भूल गये हैं । अवांछनीय विचार और कार्यों में हम उलझ रहे हैं । अज्ञान, अशक्ति और अभाव फैले हुए हैं ब्राह्मण ही अपने ब्राह्मणत्व का प्रसार कर हमें ठीक रास्ते पर लगा सकते हैं ।

ब्राह्मणत्व के पुनर्जीवन की आवश्यकता

ब्राह्मण को शास्त्रों में 'भू–सुर' कहा गया है । भूसुर का अर्थ है– पृथ्वी का देवता । एक देवता वे होते हैं, जो स्वर्ग में रहते हैं और उद्देश्य रूप से मनुष्यों की सेवा सहायता करते हैं । उनकी कृपा पात्र बनने के लिए लोग तरह-तरह के पूजा-उपचार करते हैं ताकि देवता प्रसन्न एवं परितुष्ट रहें और अपने अनुग्रह की वर्षा इस धरती के लोगों पर करते रहें । लगभग ऐसी ही स्थिति भूसुरों की भी है । इन पृथ्वी के देवता ब्राह्मणों की समुचित पूजा हिन्दू समाज में होती है। उन्हें अन्य वर्णों से ऊँचा माना जाता है । कम आयु के ब्राह्मण को भी बड़ी आयु के अन्य लोग प्रणाम करते हैं । समय-समय पर उन्हें दान-दक्षिणा देते हैं और भोजन कराते हैं। यह इसलिये किया जाता है कि अन्तरिक्ष में रहने वाले अदृश्य देवताओं की तरह यह प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले-भू-लोक वासी ब्राह्मण देवता भी हमारी श्रद्धा, भावना, दान-दक्षिणा आदि से परितुष्ट होकर हमारे कल्याण का आयोजन करेंगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज-पुरुष का शीर्ष-ब्राह्मण-ब्राह्मणों का स्वरूप ही ऐसा है । शास्त्रों में उनके कर्त्तव्य ऐसे कठोर बताये हैं जिनका पालन करने वाले को देवता ही कहना पड़ेगा । जो ब्राह्मण की कसौटी पर खरा उतरता है उसे देवता नहीं तो और क्या कहेंगे ? आस्तिकता के महान् आदर्शों के प्रति निष्ठावान् बने रहने के लिये भावनापूर्ण ईश्वर-उपासना, व्यक्तित्व को उत्कृष्ट स्तर का बनाने के लिये आत्म-निर्माण की कठोर जीवन-साधना और जनमानस में सत्प्रवृत्तियाँ विकसित करने के लिये अनवरत श्रम यह तीन कार्यक्रम जिन्होंने अपने लिये निर्धारित कर लिये हैं और जो इसी राजमार्ग पर निरन्तर चलते रहकर अपना ही नहीं समस्त संसार का कल्याण करते हैं उनके चरणों पर सभी का मस्तिष्क झुक जाना स्वाभाविक है ।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त मन्त्रों में समाज पुरुष के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए ब्राह्मण को 'मुख' की उपमा दी है । यह बड़ी सार्थक उपमा है। मुख अर्थात् सिर, उसी में मस्तिष्क, जीव, नाक, कान, आँख, वाणी, रसना आदि महत्त्वपूर्ण अवयव रहते हैं । जीवन की स्थिरता, प्रसन्नता एवं प्रगति का तीन चौथाई आधार उस कण्ठ के ऊपर वाले भाग पर ही निर्भर रहता है। मस्तिष्क की प्रखरता, बुद्धि, विचारधारा, तर्क-विवेचना, सूझ-बूझ आदि पर ही सारे शरीर को सुख-दुःख, सम्मान-अपमान, का अवसर मिलता है। दिमाग पागल, सनकी, मूढ़, विकृत बन जाय, उल्टी बातें सोचें, आशंकायें भरी रहें, पग-पग पर सनकता रहे तो ऐसा व्यक्ति हर जगह तिरस्कृत होगा और शरीर के अन्य अंगों की भी भोजन, वस्त्र जैसी आवश्यकताओं को यथावत् प्राप्त कर सकना कठिन हो जायगा । ब्राह्मण की विचारणा यदि उल्टी हो जाय तो उसका कष्ट सारे समाज को भोगना पड़ेगा । पागल आदमी के किस अंग को क्या सुख मिलता है ? समाज को मानसिक नेतृत्व की जिम्मेदारी अपने कन्धे पर उठाने वाला ब्राह्मण वर्ग यदि अपने कर्त्तव्यों से विचलित होने लगा तो उसका परिणाम ब्राह्मणत्व का ही नहीं, सारे समाज का भी पतन होगा ।

ब्राह्मण मस्तिष्क ही नहीं समाज की आँख भी है। वह दूर-दर्शिता पूर्वक, सूक्ष्म दृष्टि से बारीकी के साथ यह देखता रहता है कि मेरी निज की विचारधारा, भावना, आकांक्षा, कार्य-पद्धति एवं आदर्श-वादिता में कहीं कोई त्रुटि तो नहीं आ गई है, यदि कोई छिद्र दिखाई पड़ता है तो वह उसे बन्द करने के लिये प्राणपण से जुट जाता है । चरित्र ही तो ब्राह्मण का धन है । उसमें दोष आ गया तो फिर उसके पास बचा ही क्या ? इसी प्रकार वह समाज पुरुष को भी अपनी ही आत्मा का परिधन मानता है और यह भी देखता है कि मानव-समाज में कहीं चारित्रिक, मानसिक, भावनात्मक दोष दुर्गुण तो पैदा नहीं हो रहे हैं । स्वच्छ एवं सभ्य समाज के लिये भी ब्राह्मण को प्रहरी की तरह प्रयत्नशील रहना पड़ता है । जहाँ जो त्रुटियाँ दिखाई पड़ती हैं उन्हें सुधारने के लिये वह सारी सामर्थ्य लगा देता है । ऐसा उसे करना ही होगा । नेत्रों का काम ही यह है कि वस्तुस्थिति को सावधानी से देखे और जहाँ जो अव्यवस्था दीखे उसे ठीक कराने की व्यवस्था के लिये उपयुक्त अंगों को प्रेरणा दे । ब्राह्मण को भी यही सब तो करना होता है । इसीलिये तो उसे मुख कहा गया है ।

मुख के अवयव ही कान, नाक आदि हैं । इन माध्यमों से भी सूँघता, सुनता रहता है । हर वस्तु का देखा जाना सम्भव नहीं । उन्हें नाक, कान आदि के माध्यम से जाना जाता है । ब्राह्मण हर सम्भव उपाय से अपनी और अपने समाज की स्थिति को सूँघता, सुनता है और यह जानने के लिये प्रयत्नरत रहता है कि कहाँ क्या त्रुटि एवं विकृति उत्पन्न हो रही है । सुधारने से पूर्व जानना भी तो आवश्यक है । अच्छाइयों के प्रति प्रसन्नता व्यक्त करना और उन्हें प्रोत्साहित करना ब्राह्मण का धर्म है । जहाँ जो भी शुभ हो रहा हो उसे प्रोत्साहित करना, प्रशंसा करना समर्थन देना और सहयोग करना एक आवश्यक धर्म कर्त्तव्य है । इसी प्रकार जहाँ गड़बड़ी चल रही है वहाँ सुधारने का वातावरण भी उसे बनाना पड़ता है । जो अपने से बन पड़े सो स्वयं करता, अन्यथा समाज को उन विकृतियों के विरुद्ध असहयोग, विरोध एवं संघर्ष करने के लिये खड़ा कर देना इसके जीवन क्रम का एक आवश्यक अंग होता है । कान गालियाँ सुनते रहें, नाक दुर्गन्ध सूंघती रहे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भला यह कैसे हो सकता है ? ऐसी विकृतियाँ जहाँ भी वे देखेंगे उनके निराकरण का प्रयत्न करेंगे क्योंकि ब्राह्मण मुख है, मुख में कान, नाक भी हैं इसलिये उसे यह सब भी अनिवार्यतः करना ही होता है ।

मुख के भीतर जिह्वा रहती है जिसे दो काम करने पड़ते हैं एक भोजन नियमन, दूसरा वाणी उच्चारण । यह दोनों कार्य पिछले कार्यों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । क्या भक्ष्य है, क्या अभक्ष्य, क्या ग्राह्य क्या अग्राह्य है, उसका निर्णय जिह्वा को करना पड़ता है । जो उपयुक्त होता है उसे ही वह भीतर जाने देती है अन्यथा चखकर ही वापस लौटा देती है। कडुए, विषैले, दुर्गन्धित, पदार्थ वह भीतर नहीं जाने देती । इसी प्रकार ब्राह्मण-समाज शरीर में अवांछनीय तत्त्वों को घुसने नहीं देता । वह पूरी-पूरी चौकीदारी करता है कि कोई विषैली, दुष्प्रवृत्ति समाज पुरुषों के पेट में न चली जाय । दूषित विचारधाराओं और दुष्प्रवृत्तियों का अभक्ष्य कहीं जन-साधारण मन-शरीर में प्रवेश न कर जाय, उसकी सुरक्षा ब्राह्मण को रखनी ही पड़ती है ।

मुख जो पाता है उसे वह अपने आप नहीं रखता, वरन् पीस कूट कर रसायन बनाता है और पेट में भेज देता है ताकि उसका रस-रक्त बन कर सारे शरीर का पोषण हो । ब्राह्मण अपरिग्रही होता है । लोग उसे खूब दान-दक्षिणा देते हैं, स्वयं अपनी योग्यता एवं प्रतिभा से भी कमाता है, कमा सकता है, पर उस उपार्जन में से शरीर निर्वाह मात्र के लिये लेकर शेष सारा किसी न किसी रूप से समाज को लौटा देता है । उसकी सारी कमाई का लाभ समाज उठाता है। मुख को स्वादिष्ट पदार्थ दिये जाते हैं वह उन्हें लेता भी है, पर इस हाथ ले उस हाथ दे वाली नीति से तुरन्त ही वह उससे समाज को लाभान्वित करने की योजना बना लेता है । जो कण दाँतों में उलझे रह जाते हैं उन्हें भी वह कुल्ला करके बाहर निकाल देता है, ब्राह्मण को मुख की तरह अपरिग्रही होना ही चाहिए ।

जिह्वा दूसरा काम करती है—बोलने का । मधुर बोलना, श्रेयस्कर बोलना, सीमित बोलना, वाणी की विभूतियाँ हैं । यह विभूतियाँ जिसकी जिह्वा में हैं वे अपने व्यक्तित्व का विकास करते हैं, अपने लिये व्यक्तिगत जीवन की प्रगति का अनेक दिशाओं से पथ-प्रशस्त होता है । इतना ही नहीं जब दूसरों को उनके कल्याण का परामर्श सन्मार्ग की ओर चलने का मार्ग दर्शन एवं प्रगति के लिये प्रोत्साहन देने का क्रम बना लिया जाता है तो उसका परिणाम समस्त समाज के लिये शुभ होता है । जितना उपकार किसी को धन आदि की स्थूल सहायता देने से हो सकता है उससे हजार गुना पुण्य-परोपकार दूसरों को सत्प्रेरणा देकर कमाया जा सकता है । संसार की जितनी सेवा जिह्वा द्वारा हो सकती है उतनी और किसी प्रकार नहीं, इसलिये ब्राह्मण अपना सेवा धर्म वाणी द्वारा ही निभाता है । कथा, प्रवचन, सत्संग परामर्श, विचार-विनियम जैसे कार्यक्रम उसके चलते ही रहते हैं । फलस्वरूप समय-समय पर अगणित लोगों को वह प्रकाश मिलता रहता है, जिसके आधार पर वे अपने उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकें । यह सेवा का उच्चतम स्वरूप है। आज 'प्रेस युग' चल पड़ने से यह प्रवचन कार्य एक सीमा तक लेखनी द्वारा भी होने लगा है ।

उपर्युक्त आधार पर ब्राह्मण की तुलना मुख से ठीक ही की गई है । वह समाज का शीर्ष है। शीर्ष ठीक रहेगा तो सब कुछ ठीक हो जायगा, बिगड़ी बात भी बन जायगी पर यदि शीर्ष ने अपना काम छोड़ दिया तो बनी बात को बिगड़ने में भी देर न लगेगी । जिस व्यक्ति ने समाज रूपी शरीर में अपना स्थान एवं कर्त्तव्य शीर्ष के अनुरूप चुना है, उसकी जितनी महिमा गाई जाय उतनी ही कम है, जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है, जितनी उपयोगिता मानी जाय उतनी ही कम है । इसी आधार पर उसे 'भू-सुर' कहा जाता है। ब्राह्मण निश्चित रूप से पृथ्वी का देवता है । देवता उन्हें ही कहते हैं जो देते रहते हैं । जो दे वह देवता, जो ले वह लेवता । स्वार्थियों को लेवता पर परमार्थियों को देवता कहा जाता है। चूंकि ब्राह्मण का जीवन-क्रम परमार्थ से ही ओत-प्रोत है, अतएव उसे देवता कहना सर्वथा सार्थक है । देवताओं की पूजा होनी चाहिए । उन्हें प्रणाम अभिवन्दन, एवं भेट पूजा से सम्मानित किया ही जाना चाहिए । ब्राह्मण का ऐसा ही सम्मान किया भी जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्राह्मण और ब्राह्मणत्व-वेद भगवान् ने मनुष्य को ब्राह्मण बनने की ब्राह्मणत्व अपनाने की प्रेरणा दी है और कहा है–

मर्त्या हवा अग्ने देवा आसुः ।

अर्थात्-शुभ कर्म करो और इसी शरीर से भू–सुर का पद प्राप्त करो । "आर्याव्रता विसृ जन्तो अधिक्षमि" अर्थात् वे प्रत्यक्ष देवता हैं जो धर्म प्रेरणा को सजीव रखने के लिये मर मिटते हैं ।

"अग्निर्ऋषिः पावमानः पाञ्चजन्य पुरोहितः ।"

अर्थात् पुरोहित की पवित्र जिम्मेदारी केवल वे लोग उठावें, जिनमें आवश्यक गुण हों ।

"तमेव ऋषिं तमु ब्राह्मणमाहुर्यजन्य सामगा ।"

अर्थात् वही ऋषि एवं वही ब्राह्मण है जो अपने ज्ञान से दूसरों को सन्मार्ग पर लगाता रहता है।

"परातत सिच्यते राष्ट्रं ब्रह्मणे यत्र जीयते"

अर्थात् जहाँ ब्राह्मण हारते हैं वह देश खोखला हो जाता है ।

"ब्राह्मणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं दुच्दुना"

अर्थात् जहाँ ब्राह्मण की उपेक्षा होती है वह राष्ट्र दुःख पाता है ।

"न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रं जागारा कश्चून"

अर्थात् जहाँ ब्राह्मण का तिरस्कार होता है वहाँ से सुख-शांति चली जाती है ।

"देव उन्नयथा पुनः"

अर्थात् हे ब्राह्मणो ! गिरे हुओं को फिर उठाओ।

''प्रियं अतिथिं गृणीपणि''

–अर्थात् हे सम्मान योग्य ब्राह्मणो ! घूम-घूम कर धर्मोपदेश करते रहो।

इस प्रकार के अभिवचन शास्त्र में पग-पग पर भरे पड़े हैं जिससे ब्राह्मण के कर्त्तव्य, गौरव, महत्त्व एवं सम्मान का निर्देश किया गया है । देवता की अभ्यर्थना होनी भी चाहिए । जिसका चरित्र पवित्र है, आदर्श उत्कर्ष है और कर्म में सेवा-धर्म ओत-प्रोत है, उन देवता के प्रगति समुचित श्रद्धा की ही जानी चाहिए । उससे त्रुटि करना अनुचित है । जो ब्राह्मण का मूल्य महत्त्व नहीं समझते वे दुःख-दारिद्र के भागी बनते हैं, इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है । इसी संदर्भ में ब्राह्मण के गुण, कर्म, स्वभाव का भी समुचित निर्देश किया गया है, इन गुणों के कारण ही उसको मान एवं गौरव मिला है । यदि वे न रहें तो फिर उसका मूल्य ही क्या रह जाता है ?

ब्राह्मण की प्रथम प्रतिज्ञा है–**"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहितः''** अर्थात् हम ब्राह्मण राष्ट्र को जीवित एवं जाग्रत रखेंगे । अपने समाज में नवजीवन का संचार करते रहना एवं उसके कर्त्तव्य, धर्म अपनाये रहने के लिये जाग्रत रखना ब्राह्मण की ही परम पवित्र जिम्मेदारी है। उस जिम्मेदारी को पूर्ण तत्परता एवं सावधानी से निभाते रहना ही ब्राह्मण-धर्म है । ब्राह्मण वस्तुतः समाज का सच्चा नेता है, क्योंकि उसी के द्वारा जनमानस को पथ-भ्रष्ट होने से बचाया व रोका जाता है । राजनैतिक नेता, सामयिक समस्याओं को सुलझाने, भौतिक असुविधाओं को हल करने के लिये प्रयत्न करते हैं । उनका महत्त्व सामयिक होता है । इसी प्रकार सामयिक-आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध में जन-नेतृत्त्व करने वाले भी तात्कालिक व्यवस्थाओं के बारे में सोचते हैं । ब्राह्मण धार्मिक नेता है जिसे मानव-जीवन की चिरन्तन व्यवस्था को सुधार या सँभालना पड़ता है । वह मूल को सोचने वाला है। मनुष्य अपने समाज के सामने जितनी भी उलझनें, कठिनाइयाँ एवं समस्यायें हैं, इन सबका उद्गम मनुष्य के कुविचार, कुसंस्कार एवं कुकर्म ही हैं । इन्हें सुधारा-सँभाला न जाय तो एक समस्या के हल होते-होते दूसरी नई उलझन उठ खड़ी होगी। स्थायी शान्ति एवं प्रगति मनुष्यों की सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों पर ही निर्भर रहती है। वे बढ़ेंगी तो प्रगति की सम्भावनायें बढेंगी । वे घटेंगी तो अगणित कष्ट एवं क्लेशों का उद्भव होने लगेगा। इस तथ्य को समझने वाला जो व्यक्ति मानय समाज के अतिरिक्त स्तर को स्वस्थ बनाये रहने के लिये धार्मिक एवं आध्यात्मिकता की शिक्षा देता है, वस्तुतः वही सच्चा नेता कहला सकता है । उसी का प्रयत्न वट-वृक्ष की तरह दीर्घकालीन सत्परिणामों का सृजन करता है । इसलिये राजनैतिक एवं सामाजिक नेतृत्व की अपेक्षा धार्मिक नेतृत्व का महत्त्व अधिक है । इसी अनुपात से ब्राह्मण का मान, गौरव एव महत्त्व भी अधिक है ।

कठिन कर्त्तव्य और महान् उत्तरदायित्व-अपने पद के अनुरूप ब्राह्मण का कर्त्तव्य ही कठिन एवं महान् है । उसे सबसे पहले अपने को कसना पड़ता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, अपने दोष, दुर्गुणों से लड़ना पड़ता है, मनन एवं चिन्तन द्वारा अपनी वासना एवं तृष्णा को परास्त करना पड़ता है, संयम की कसौटी पर निरन्तर कसते रहना पड़ता है । यह इसलिये आवश्यक है कि दूसरे लोगों की तुलना में अपना चरित्र एवं व्यक्तित्व ऊँचा न हो तो फिर मार्ग-दर्शन करने की प्रक्रिया ही लड़खड़ा जायेगी। वक्ता को सुनने वालों की अपेक्षा कुछ ऊँचे स्थान पर बैठना पड़ता है, तभी वे उसका चेहरा देख पाते और प्रवचन सुन पाते हैं । यदि वक्ता श्रोताओं की पंक्ति में ही जा बैठे अथवा उनसे भी नीचे बैठ जाय और फिर प्रवचन करे तो सुनने वाले न तो उसका चेहरा देख पावेंगे और न आवाज ही ठीक तरह सुन पावेंगे । इसी प्रकार जनता का धार्मिक नेतृत्व करने वाला व्यक्ति यदि व्यक्तित्व एवं चरित्र की दृष्टि से दूसरों से ऊँचा न हो तो उसकी जन-नेतृत्व कार्य-पद्धति ही निरर्थक हो जायेगी ।

भारतीय जनता कृतघ्न नहीं है । उसने ब्राह्मणों द्वारा की जाने वाली समाज की सेवा की उपयोगिता एवं महत्ता को समझा है और बदले के रूप में अधिक नहीं तो इतना तो किया है कि उन्हें उच्चतम सामाजिक सम्मान प्रदान करने के अतिरक्ति आजीविका की भी निर्बाध व्यवस्था कर दी है । वेतन के रूप में नहीं, सम्मानसिक्त श्रद्धा के रूप में । नियमित वेतन भी दिया जा सकता था पर इसमें उनका सम्मान घटता । वे कर्मचारी स्तर पर आ जाते, इसलिये उनके गौरव के उपयुक्त यही था कि निर्वाह का प्रबन्ध भी हो जाय और सम्मान में कमी भी न आने पावे । हिन्दू धर्म में पग-पग पर धर्मोत्सवों, व्रत–उद्यापनों, कथा–प्रवचनों, संस्कार, त्यौहारों, श्राद्ध, जन्मदिनों का विधान है । हर गृहस्थ को यह सब कई बार करना होता है । सब में अन्न, वस्त्र, न, फल आदि का दान होता है और उसके अधिकारी ब्राह्मण ही होते हैं। इससे हर छोटे ग्राम के पीछे भी चार, छः ब्राह्मण परिवारों का अभी भी भली प्रकार गुजारा होता है । जनता की यह गुणग्राहकता, कृतज्ञता सब प्रकार सराहनीय है ।

यह क्रम दोनों ओर से जब तक ठीक चलता रहा, तब तक समाज की सुव्यवस्था भली प्रकार चलती रही । ब्राह्मण घर-घर जाकर अपने यजमानों को उपदेश करते थे, स्त्रियों, बच्चों, युवकों, युवतियों, वृद्धों सभी को उनके कर्त्तव्य समझाते थे । जो पथ-भ्रष्ट हो रहा होता था, उसे सँभालते थे । जिस प्रकार स्वस्थ्य का बीमा करने वाली कम्पनियों द्वारा नियुक्त 'फैमिली डाक्टर अपने बीमेदारों की स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी पूछ-ताछ और व्यवस्था स्वयं करते रहते हैं, उसी प्रकार पुरोहितों का कर्त्तव्य था कि अपने यजमानें मे से कोई बाल-वृद्ध कुसंस्कारों वाला एवं कुमार्गगामी न बने । यजमानें के घरों से प्रत्येक सदस्य से वे अपना प्रगाढ़, आत्मीय सम्बन्ध बनाये रहते थे और उनका समुचित पथ-प्रदर्शन करते रहते थे । जहाँ सद्बुद्धि रहेगी, नीतिपूर्वक जीवन जीने की पद्धति अपनाई गई होगी वहाँ सुख, समृद्धि की कमी क्यों रहेगी ? सारी जनता फलती-फूलती थी । पुरोहितों ने माली बनकर जिस बगीचे को बोया, सींचा, बढ़ाया, रखाया है, वह पत्र-पुष्पों से सुरक्षित और फलों से लदा हुआ क्यों न होगा ? यजमानें के घरों पर जाकर संस्कार पर्व आदि के अवसरों पर उद्बो न और अपने घर आश्रमों पर यजमानों के बालकों को पढ़ाने के लिय गुरुकुलों का संचालन यह ब्रह्मचर्य उनकी आत्मा को भी पूरा-पूरा सन्तोष देता था और सारी जनता उनके इसी सेवा-साधना का सत्परिणाम माँगती थी।

अवनित और पतन का क्रम-धीरे-धीरे यह क्रम बदला । श्रम का स्थान आलस्य ने ले लिया, अधिक उपार्जन का लोभ उपजा। उत्कृष्ट व्यक्तित्व रखने की कष्ट-साध्य जीवन-साधना की उपेक्षा की जाने लगी, स्वाध्याय से मुँह मोड़ा गया और सेवा से आँख चुराई जाने लगी । जहाँ ब्राह्मणसमाज की बहुमूल्य सेवा करते थे और बदले में निर्वाह की थोड़ी-सी सुविधा प्राप्त करते थे, अब अधिकाधिक दक्षिणा बटोरना तो याद रहा पर सेवा के कर्त्तव्य एक प्रकार से भुला ही दिए गये । पहले अपनी विद्या, नम्रता, सेवा एवं सद्गुणों के कारण उन्हें सम्मान मिलता था उससे सम्पन्न बनते थे, अब वंश को ही श्रेष्ठता का आधार मान लिया गया और ऐसा सोंच लिया गया कि अमुक वंश में जन्मने के कारण हम सबसे श्रेष्ठ हैं और इस वंशगत श्रेष्ठता के कारण ही हमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वह अधिकार मिल गया है कि बिना लोक-सेवा के भी जन सम्मान एवं दान-दक्षिणा प्राप्त करते रह सकें ।

क्या यह आधार उचित है ? क्या कोई बिना सेवा एवं श्रेष्ठता के भी सम्मानास्पद बन सकता है ? क्या वंश के कारण किसी को उच्च माना जा सकता है ? फिर कोई उच्च भी हो तो क्या उसे बिना समुचित प्रतिफल चुकाये किसी से दान आदि लेने का अधिकार है ? इन प्रश्नों का उत्तर 'नहीं' हो सकता है ।

हमारे पूर्वज ऋषि या ब्राह्मण थे, इसलिये हमें वैसा ही माना जाय, यह माँग सर्वथा हास्यास्पद है। किसी के पिता कलक्टर थे । किन्तु वह स्वयं चपरासी है तो ऐसी दशा में उस चपरासी का यह दावा कैसे स्वीकार किया जाय कि वंश परम्परा के कारण उसे भी कलक्टर माना जाय । डाक्टर का बेटा यदि अशिक्षित हो तो उसे डाक्टर मानकर चिकित्सा कराने के लिये कौन तैयार होगा ? किसी संगीतज्ञ की सन्तान को यदि गाना, बजाना कुछ भी न आता हो तो संगीत-सम्मेलन में उच्च पद कैसे मिलेगा ? मूल्य गुणों का है वंश परम्परा का नहीं-इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता। जब ब्राह्मण अपना कर्त्तव्य छोड़ते गये, और सम्मान और दान के लिये लालायित रहे, ऐसी दशा में जनसाधारण की दृष्टि में उनका मूल्य घटना स्वाभाविक ही था । मूल्य घटने के साथ आजीविका भी घटेगी ही । भौतिक-जीवन के उपकरणों में खर्च बढ़ता है, दान-दक्षिणा पर निर्भर रहा जाय और अपना मूल्य गिरा लिया जाय तो खर्च की पूर्ति में कमी पड़ेगी ही । इसकी पूर्ति कैसे हो ? सिवाय अनुपयुक्त ढंग की आमदनी बढ़ाने के और किया भी क्या जाय ?

पिछले दिनों भाग्यवाद, भविष्यवाणी, गृहवाद, देवपूजन से अमुक प्रकार की सिद्धियाँ, स्वल्प, कर्मकाण्ड से प्रचुर भौतिक लाभों की आशा, भूत-प्रेत, झाड़-फूंक, टमना-टोटका के बेसिर-पैर की ऐसी भ्रान्तियाँ फैलाई गईं जिनमें वास्तविकता कुछ भी न थी केवल लोगों के अज्ञान और अपने पूर्व संचित सम्मान का अशोभनीय तालमेल बिठाकर आमदनी की तरकीबें गढ़ी गईं । इससे ब्राह्मण की थोड़ी आमदनी बढ़ी भी हो पर उसका स्तर और भी गिरा । विचारशील लोगों से वस्तुस्थिति छिपी नहीं रहती, वे वास्तविकता को ताड़ जाते हैं । अज्ञानी लोग भले ही बहके रहें पर विचारवानों को तथ्य समझने में देर नहीं लगती । वे इस प्रकार के व्यवहार से खिन्न ही होते हैं ।

ब्राह्मण के पतन की यही दर्द भरी कहानी है । आज वंश परंपरा की दृष्टि से ब्राह्मणों की संख्या करोड़ों है । जनसंख्या की दृष्टि से अल्प जातियों की तुलना में वे ही सबसे अधिक हैं पर कर्म से जो ब्राह्मण हों एसे लोगों की संख्या लाखों क्या, हजारों क्या, सैकड़ों से भी कम होगी । किसान ब्राह्मण, व्यापारी ब्राह्मण, नौकर ब्राह्मण, नाई ब्राह्मण, दर्जी ब्राह्मण, बजाज ब्राह्मण, हलवाई ब्राह्मण, आदि अगणित वर्ग और श्रेणी के वे मौजूद हैं पर ब्रह्म कर्मपरायण ब्राह्मणों की संख्या तेजी से घटती चली जा रही है और खतरा यहाँ तक पैदा हो गया है कि कहीं यह परम्परा ही नष्ट न हो जाय । यदि यह पुण्य परम्परा नष्ट हो गई तो भारतीय धर्म एवं संस्कृति का ही नहीं, सारी मनुष्य जाति का बहुत बड़ा दुर्भाग्य होगा ।

यह ब्रह्म परम्परा नष्ट न हो-ब्रह्म परम्परा को नष्ट नहीं होने देना चाहिए। समाज-शरीर का शीर्ष ही अस्त-व्यस्त हो गया तो शेष अंगों का भी क्या बनेगा ? धार्मिक नेतृत्व ही नष्ट हो गया तो धार्मिकता कहाँ बचेगी ? अतएव नव-निर्माण की इन पुण्य घड़ियों में यह प्रयास होना ही चाहिए कि जन-मानस में आस्तिकता एवं धार्मिकता का प्रकाश उत्पन्न कर सकने वाले उत्कृष्ट व्यक्तित्व का अस्तित्व बना रहे । सच्चरित्रता भाषणों से नही अनुकरणीय आदर्श सामने प्रस्तुत करके सिखाई जाती है । प्राचीन काल में ऋषि जीभ से उतना प्रभाव नहीं डालते थे, जितना अपने उज्ज्वल चरित्र से । राजनीति में चतुरता और योग्यता के आधार पर नेतृत्व किया जा सकता है पर धार्मिक नेतृत्व तो चरित्रवानों के हाथ में ही रहेगा । उसमें थोड़ी-भी त्रुटि रहेगी तो वाणी का कोई विशेष प्रभाव न रह जायेगा । मोर जैसा बोलने वाले वक्ताओं के चरित्रगत दोष अब जनता के सामने आते हैं तो वे सभी की दृष्टि में गिर जाते हैं और फिर उनके प्रवचनों का भी कोई मूल्य नहीं रह जाता। अतएवं ब्रह्मपरम्परा को स्थिर रखने के लिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो आगे आयें उन्हें सबसे पहले अपने व्यक्तित्व का स्तर ऐसा उज्ज्वल एवं विकसित रखना होगा जिससे बिना कहे भी दूसरों को उत्साहवर्धक प्रेरण मिलती रहे ।

अन्तःकरण में उच्च आदर्शवाद सुदृढ़ बना रहे इसलिये आस्तिकता में गहन आस्था होना आवश्यक है । ईश्वर विश्वास का सम्बल पकड़े बिना मनुष्य भय एवं प्रलोभनों के अवसर सामने आने पर निर्धारित लक्ष्य से विचलित हो जाता है । इस स्थिति में केवल ईश्वर का विश्वास ही प्रकाश एवं साहस प्रदान करता है और कुमार्ग के भवसागर में डूबने से बचा लेता है । उपासना उसी प्रयोजन के लिये की जाती है। यह बहुत बड़ा लाभ है, जीवन नौका को सन्मार्ग की दिशा से चलाने वाला माँझी जिसे मिल सके उससे अधिक सौभाग्यशाली और कौन हो सकता है ? ईश्वर से धन, वैभव, स्वास्थ्य, सफलता, स्त्री, पुत्र आदि माँगना अपना, ईश्वर का और उपासना का मखौल बनाना है । यह वस्तुयें तो मनुष्य को अपनी प्रतिभा, क्षमता, योग्यता और श्रमशीलता बढ़ाकर उनके मूल्य पर प्राप्त करनी पड़ती हैं । उसके अभाव में दिन-रात प्रार्थना उपासना करते रहने वाले को भी खाली हाथ ही रहना पड़ता है । श्रेष्ठ ब्राह्मण की उपासना सच्ची उपासना होनी चाहिए । भौतिक दुकानदारी की प्रवंचना को उपासना कहा जाय तो उससे आत्मिक बल की वृद्धि नहीं हो सकती और आत्मबल के अभाव में ब्राह्मणत्व कहाँ ? अतएव ब्राह्मण को जो दूसरा काम करना है वह है—सदुद्देश्यपूर्वक उपासना । भले ही वह एक घन्टे या आधे घन्टे नित्य हो, पर यदि सही आधार पर की कई है तो वह आशा-जनक प्रतिफल उत्पन्न करेगी । महात्मा गाँधी को एक घन्टे की प्रार्थना उनमें अपार बल भर दिया करती थी ।

ब्राह्मणत्व का दर्शन और कर्त्तव्य-व्यक्तित्व एवं जीवन-निर्माण की साधना, आदर्शवाद को अन्तःकरण से परिपक्व करने वाली उपासना के साथ-साथ ब्राह्मण का तीसरा कर्त्तव्य अनबरत समाज सेवा का है । इसमें इसका तन, मन, धन सब कुछ समर्पित रहना चाहिए । मस्तिष्क उसी की बात सोचे और शरीर वही क्रिया करे तो समझना चाहिए, ब्राह्मण-जीवन सार्थक हुआ । उसमें न आलस्य के लिये गुंजायश है और न प्रमाद के लिये। विश्व-मानव को विराट् ब्रह्म की प्रत्यक्ष प्रतिमा मानकर उसका अभिषेक ज्ञानरूपी अमृत से करते रहना यह भगवान् का सर्वश्रेष्ठ भजन और आत्म-कल्याण का सबसे उत्तम साधन है । ब्रह्म-धर्म की आत्मा यही है । इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिये देवता ब्राह्मण का शरीर धारण कर इस धरती पर अवतार लेते हैं । धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश यही अवतार का उद्देश्य है । ब्राह्मण का देव अवतार भी इसीलिए है। वह ज्ञानरूपी तलवार लेकर मैदान में उतरता है और अन्याय एवं अज्ञान के शासन को दूर करता चला जाता है । परशुराम जी ने इस पृथ्वी पर ऐसा ही अज्ञानान्धकार अपने कुल्हाड़े के बल पर २१ बार मिटाया था । अज्ञानी को नहीं अज्ञान को मारने के लिये ब्राह्मण अब कुल्हाड़ा शूरवीर योद्धा की तरह निरन्तर चलता ही रहता है ।

देवताओं के आशीर्वाद वरदान से हमारा कल्याण होता है इसलिये उनकी आराधना करके हम उनका अनुग्रह प्राप्त करने का प्रयत्न किया करते हैं। भू-सुरों की ब्राह्मणों की अनुकम्पा से भी अगणित मानवों का अपार हित साधन होता है इसलिए उनके आगे हम मस्तक झुकाते हैं और उनका आशीर्वाद समय-समय पर प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। आत्मा-परमात्मा का ही तो अंग है । मल आवरण-विक्षेपों-कषाय-कल्मषों का कूड़ा-कचरा जमा हो जाने से ही उसका शुद्ध स्वरूप ढक जाता है, मलीन बन जाता है । इन आवरणों को हटा दिया जाय तो आत्मा में परमात्मा की झाँकी परिलक्षित होती है । उससे सारे ईश्वरीय गुण प्रकट होते हैं और अनेक बार तो ईश्वरीय सामर्थ्यें भी बड़ी मात्रा में उनके भीतर विद्यमान रहती हैं । जिस प्रकार परमात्मा का सान्निध्य एवं अनुग्रह प्राप्त करके मनुष्य श्रेय-सत्परिणाम प्राप्त करता है उसी प्रकार समुचित आत्मा वाले ब्राह्मणों का सम्पर्क भी उसके कल्याण का निमित्त बनता है । जबकि धनी, गुणी, विद्वान, सत्ताधारी बड़े आदमियों की समीपता एवं कृपा प्राप्त कर लेने पर साधारण मनुष्य कई तरह के लाभ प्राप्त कर लेते हैं तो आध्यात्मिक विभूतियों से परिपूर्ण सन्त-सज्जनों की कृपा का लाभ हमें क्यों न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलेगा। कल्पवृक्ष अपने नीचे बैठने वाले को कल्पवृक्ष नहीं बना सकता, केवल कुछ कामनायें पूर्ण कर सकता है, पारस लोहे को सोना बना सकता है पारस नहीं, अमृत पीकर व्यक्ति अमर बन सकता है वह स्वयं अमृत नहीं बन सकता, किन्तु साधु ब्राह्मण में यह विशेषता है कि उसका कृपा पात्र अपने समीप आने वाले व्यक्ति को अपने जैसा ही बना देता है । नारद के सम्पर्क से वाल्मीकि डाकू के ऋषि बनने की कथा प्रसिद्ध है । ध्रुव जैसा अज्ञान बालक विश्व-ब्रह्मांड का केन्द्र बिन्दु, अजर-अमर ध्रुव तारा नारद जी की ही कृपा से बन गया । भगवान् बुद्ध के सम्पर्क से अँगुलीमाल डाकू और अम्बाली वेश्या जैसे पतितों ने समुचित जीवन उपलब्ध किया था। समर्थ गुरु रामदास ने एक साधारण से मराठा बालक को छत्रपति शिवाजी बनाकर खड़ा कर दिया था । विश्वामित्र द्वारा परीक्षा में तपाया हुआ हरिश्चन्द्र एक साधारण सा राजा नहीं, इतिहास का सूर्य सत्यवादी हरिश्चन्द्र बन गया। अन्यथा उस बेचारे का नाम भी आज सुनने में न आता । गाँधी के सम्पर्क में आने वाले कितने जवाहर लालों को यशस्वी होने का अवसर मिला अन्यथा उन्हें पड़ोसी भी जान न पाते । साधु, ब्राह्मणों की कृपा का ऐसा ही फल होता है । चन्दन की सुगन्ध भी शीतल होती है । हिमालय में जाकर उष्णता के रोग व्यथित रोगी भी शीतलता भरी शान्ति अनुभव करता है। सन्त महान् होते हैं उनकी समीपता एवं अनुकम्पा का फल भी महान् ही होना चाहिए ।

प्रजातन्त्र की शासन-पद्धति 'रूसो' के मस्तिष्क की सूझ है । अर्थ, वर्ण एवं लिंग की समता का सन्देश विश्व को देने वाले कार्ल मार्क्स है । इन दार्शनिकों के विचारों से आज समस्त संसार लाभान्वित हो रहा है । गाँधी, तिलक जैसे विचारकों ने भारत को स्वतन्त्रता की प्रेरणा दी और वह उस लक्ष्य को प्राप्त भी कर सका, विचारों की शक्ति धन आदि स्थूल साधनों की अपेक्षा सहस्रों गुनी अधिक है। ज्ञान का दान ब्रह्म-दान कहलाता है, जिसका पुण्य सब पुण्यों से अधिक है । कहते हैं कि दानी कर्ण सवा मन सोने का दान नित्य किया करते थे, उनकी प्रशंसा है पर उनसे भी सहस्रों गुनी प्रशंसा उनकी होनी चाहिए जो ढेरों ज्ञान का अनुदान मानव समाज को निरन्तर देते रहते हैं और अगणित प्राणियों को नर-पशु के स्तर से ऊँचा उठा कर पुरुष–पुरुषोत्तम बना देने में सफल होगा । ऐसा ब्राह्मण भिक्षुक नहीं, कर्ण से भी बढ़कर दानी ही माना जायेगा जो जन-जागरण के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहता है ।

५-कर्म-फल

भारतीय संस्कृति कर्मफल में विश्वास करती है। हमारे यहाँ कर्म की गति पर गहन विचार किया गया है और बताया गया है कि जो कुछ फल प्राप्त होता है, वह अपने कर्म के ही कारण होता है:–

"मनुष्याः कर्मलक्षणः

(म० भा० अश्वमेघ पर्व ४३–२१)

अर्थात् "मनुष्य का लक्षण कर्म ही है । मनुष्य को कर्म करना ही चाहिए । कर्म करते हुए ही वह मनुष्य बनता है । "

"स्वकर्म निरतो यो हि स यशः प्राप्नुयान्महत्।

(महाभारत व० प० २१२–१६)

"जो अपने कर्म में संलग्न है, वही बड़े भारी यश को प्राप्त करता है ।"

" ध्रुव न नाशोऽस्तिकृतस्य लोके"

(महाभारत व० प० २३७–२७)

"संसार में किये हुए कर्म का कभी नाश नहीं होता ।"

यः क्रियावान् स पंडितः ।

(सुभाषित रत्न भंडागार २५१)

"जो कर्मपरायण है, वही वास्तव में पंडित है।"

भारतीय संस्कृति में चित्रगुप्त की कल्पना की गई है, जो पल-पल में मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्मो का लेखा-जोखा करता रहता है । मृत्यु के उपरान्त शुभ-अशुभ कर्मों के बल पर उसे स्वर्ग या नर्क में जाना होता है । इस अलंकारिक कथन में गहरी सत्यता है । गुप्त मन में हमारे सभी शुभ-अशुभ कार्यों की सूक्ष्म रेखाएँ अंकित होती रहती हैं । ये ही हमारी कर्म रेखा का निर्माण करती हैं । कहा गया है "कर्म रेख नहीं मिटे, करो कोई लाखन चतुराई ।" कर्म की रेखाएँ बिना फल दिये नहीं रहती। पाप पुण्य के सभी कर्मों का फल अवश्य देर सवेर मिलता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्मों की तीन श्रेणियाँ मानी गई हैं--१--संचित, २--प्रारब्ध, ३--क्रियमाण । इन तीनों प्रकार के कर्मों का संचय निरन्तर हमारी संस्कार भूमिका में होता रहता है । मनुष्य की अन्तश्चेतना ऐसी निष्पक्ष, निर्मल, न्यायशील और विवेकवान योजना है जो अपने-पराये का भेद न कर सत्यनिष्ठ न्यायाधीश की तरह भले-बुरे कार्य का विवरण अंकित करती रहती है ।

लाचारी में मन के विरुद्ध जो कार्य करने पड़े, उन्हें संचित कर्म कहा गया है । जो कार्य विवशता में दबाये जाने पर असहायावस्था में करने तो पड़ें, पर मन की आन्तरिक इच्छा यही रहे कि यदि विवशता न होती, तो इस कार्य को कदापि न करते, ऐसी लाचारी में किए गए कर्मों को संचित कर्म कहते हैं । इन संचित कर्मों के संस्कार बहुत कमजोर एवं हल्के होते हैं । इसलिए वे मनोभूमि में हजारों वर्षों तक किसी अज्ञात् कोने में सिमटे हुए हजारों वर्षों तक पड़े रहते हैं । यदि इन्हें प्रकट होने का कोई अवसर न मिले तो यों ही दबे-दबाये पड़े रहते हैं। यदि उन संचित संस्कारों को लगातार विपरीत स्वभाव के बलवान कर्म संस्कारों के साथ रहना पडे, तो वे नष्ट भी हो जाते हैं । आचार्य श्रीराम शर्मा के मतानुसार हमारे भले और बुरे दोनों ही प्रकार के संचित कर्म संस्कार अनुकूल परिस्थिति पाकर फलदायक होते हैं एवं तीव्र प्रतिकूल परिस्थितियों में नष्ट भी हो जाते हैं ।

प्रारब्ध उन मानसिक संचित कर्मों को कहते हैं, जो स्वेच्छापूर्वक जानवूझकर तीव्र भावनाओं से प्रेरित होकर विशेष मनोयोग से किए जाते है । इसलिए इनके संस्कार बहुत बलवान होते है । कर्म का परिपाक लेकर जब फल बनता है तब वह प्रारब्ध कहा जाता है । साधारण कार्य तदवीर है । संचित कर्मों का फल मिलना संदिग्ध है, विरोधी परिस्थितियों से टकराकर वे नष्ट हो जाते हैं ।

क्रियमाण कर्म शारीरिक हैं, जिनका फल प्रायः साथ-साथ ही मिलता रहता है । जिन शारीरिक कर्मों के पीछे कोई मानसिक गुत्थी नहीं होती केवल शरीर द्वारा शरीर के लिए ही किए जाते हैं, वे क्रियमाण कहलाते हैं ।

इस प्रकार सब कर्मों का फल अवश्य मिलता है। कितने समय और कितने दिनों में फल प्राप्त होगा, इसके सम्बन्ध में कुछ नियत मर्यादा नहीं है। कर्म-फल आज, कल, परसों या जन्मों के अन्तर से भी मिल सकता है, किन्तु वह मिलेगा अवश्य । यह निश्चय है । पुरुषार्थ की अवहेलना से जो असफलता मिलती है, उसे कदापि प्रारब्ध फल नहीं कहा जा सकता । कष्टों का स्वरूप अप्रिय अवश्य है, उनका तात्कालिक फल कटु होता है, पर ईश्वर की लीला ऐसी है कि अन्ततः वे जीव के लिए कल्याणकर और आनन्ददायी सिद्ध होते हैं ।

भारतीय संस्कृति यह मानती है कि संसार में सत, रज, तम तीनों का मिश्रण है, तीनों प्रकार की वस्तुएँ मौजूद हैं । स्वयं अपने स्वभाव, रुचि और गुणों के अनुसार हम वैसी ही वस्तुएँ प्रकृति से एकत्रित कर लेते हैं । अच्छाई, बुराई, कालापन, सफेदी, धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य, सुख, दुःख आदि सब संसार में बिखरे पड़े हैं । अपने मानसिक आकर्षण से हमारा मस्तिष्क अपने स्वभावानुकूल तत्वों को प्रकृति से स्वतः खींच लेता है । अपनी मनोभावनाओं, रूचियों, गुप्त इच्छाओं को मनुष्य आमने-सामने वालों पर थोप देता है और उन्हें वैसा ही समझता है जैसा कि वह स्वयं है । हर उन्नत आत्मा का यह कर्त्तव्य है कि वह स्वयं आत्म-विकास करे, समाज से तमोगुण दूर करे, पापवृत्तियों को रोके और अच्छाइयों का, धर्म का, नीति और सत्य का प्रसार करे । अपने शुभ कर्मों द्वारा स्वयं उठे और साथ ही अपने आस-पास पवित्रता, उदारता, प्रेम, भ्रातृभाव, स्नेह, दया, गुण-दर्शन का वातावरण तैयार कर ले ।

कर्म-फल आज नहीं तो कल भोगना ही पड़ेगा ।

यदि कर्म का फल तुरन्त नहीं मिलता तो इससे यह नही समझ लेना चाहिए कि उसके भले-बुरे परिणाम से हम सदा के लिये बच गये । कर्म-फल एक ऐसा अमिट तथ्य है जो आज नहीं तो कल भुगतना ही पड़ेगा । कभी-कभी इन परिणामों में देर इसलिये होती है कि ईश्वर मानवीय बुद्धि की परीक्षा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करना चाहता है कि व्यक्ति अपने कर्तव्य धर्म समझ सकने और निष्ठापूर्वक पालन करने लायक विवेक बुद्धि संचित कर सका या नहीं । जो दंड भय से डरे बिना दुष्कर्मों से बचना मनुष्यता का गौरव समझता है और सदा सत्कर्मों तक ही सीमित रहता है, समझना चाहिये कि उसने सज्जनता की परीक्षा पास करली और पशुता से देवत्व की ओर बढ़ने का शुभारम्भ कर दिया ।

दंडमय से तो विवेक रहित पशु को भी अवांछनीय मार्ग पर चलने से रोका जा सकता है। मानवीय अन्तःकरण की विकसित चेतना तभी अनुभव की जा सकेगी जब वह कुमार्ग पर चलने से रोके और सन्मार्ग के लिये प्रेरणा प्रदान करे। लाठी के बल पर भेड़ों को इस या उस रास्ते पर चलाने में गड़रिया सफल रहता है । सभी जानवर इसी प्रकार दंड भय दिखाकर अमुक प्रकार से जोते जाते हैं । यदि हर काम का तुरन्त दंड मिलता और ईश्वर बलपूर्वक अमुक मार्ग पर चलने के लिये विवश करता तो फिर मनुष्य भी पशुओं की श्रेणी में आता, उसकी स्वतंत्र आत्म-चेतना विकसित हुई या नहीं इसका पता ही नहीं चलता ।

भगवान ने मनुष्य को भले या बुरे कर्म करने की स्वतन्त्रता इसीलिये प्रदान की है कि वह अपने विवेक को विकसित करके भले-बुरे का अन्तर करना सीखे और दुष्परिणामों के शोक संतापों से बचने एवं सत्परिणामों का आनन्द लेने के लिए स्वतः अपना पथ निर्माण कर सकने में समर्थ हो । उन्नति को अपनाने वाला विवेक और कर्तव्य परायणता यह दो ही कसौटी मनुष्यता का आत्मिक स्तर विकसित होने की हैं । इस आत्म-विकास पर ही जीवनोद्देश्य की पूर्ति और नर जन्म की सफलता अवलम्बित है । ईश्वर चाहता है कि व्यक्ति अपनी स्वतंत्र चेतना का विकास करे और विकास के क्रम से आगे बढ़ता हुआ पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करने की सफलता प्राप्त करे।

यदि ईश्वर को यह प्रतीत होता कि बुद्धिमान बनाया गया मनुष्य पशुओं जितना मूर्ख ही बना रहेगा तो शायद उसने दंड के बल पर चलाने की व्यवस्था उसके लिये भी सोची होती । तब झूठ बोलते ही जीभ में छाले पड़ने, चोरी करते ही हाथ में फोड़ा उठ पड़ने बेईमानी करते ही बुखार आ जाने, कुदृष्टि डालते ही आँख दुखने लगने, कुविचार आते ही सिर दर्द होने जैसे दंड मिलने की तुर्त-फुर्त व्यवस्था बनी होती तो किसी के लिये भी दुष्कर्म करना सम्भव ही न होता। लोग जब उसमें लाभ की अपेक्षा प्रत्यक्ष हानि देखते तो दुष्कर्म करने की हिम्मत न करते । ऐसी स्थिति में मनुष्य की स्वतंत्र चेतना, विवेक बुद्धि और आन्तरिक महानता के विकसित होने का अवसर ही नहीं आता और आत्म-विकास के बिना पूर्णता के लक्ष्य को प्राप्त कर सकने की दिशा में प्रगति ही न होती । अतएव परमेश्वर के लिये यह उचित ही था कि मनुष्य को अपना सबसे बड़ा सबसे बुद्धिमान और सबसे जिम्मेदार बेटा समझकर उसे कर्म करने की स्वतंत्रता प्रदान करे और यह देखे कि वह मनुष्यता का उत्तरदायित्व सँभाल सकने में समर्थ है या नहीं ? परीक्षा के बिना वास्तविकता का पता भी कैसे चलता और उसे अपनी इस सर्वश्रेष्ठ रचना मनुष्य में कितने श्रम की सार्थकता हुई यह कैसे अनुभव होता।

यों समाज में भी कर्मफल मिलने की व्यवस्था है और सरकार द्वारा भी उसके लिये साधन जुटाये गये हैं । पुलिस, जेल, कचहरी, कानून, नियंत्रण निरीक्षण द्वारा ऐसे प्रबन्ध किये गये हैं कि अनाचार करने वालों को रोका और दंडित किया जा सके यद्यपि इस व्यवस्था में कई खामियाँ है और चतुर अपराधी तो सरकार की पकड़ में ही नहीं आते । कुछ आते हैं तो कानूनी बारीकियों की आड़ में तथा सम्बन्धित अफसरों को प्रभावित कर दण्ड से बच निकलने का रास्ता खोज लेते हैं तो भी आखिर एक व्यवस्था तो है ही और यदि कठोर शासन हो तो अधिकांश अपराधों, दुष्कर्मों को सहज ही रोका भी जा सकता है और अपराधियों को इतना दण्डित किया जा सकता है कि उसे तो क्या दूसरे देखने वालों को भी वैसा साहस न हो । जो हो आखिर एक सरकारी व्यवस्था तो है ही, जो हजारों लाखों कुमार्गगामियों को तिरस्कृत करने और दण्डित करने में लगी रहती है और किसी हद तक रोकथाम भी करती है ।

समाज में कुकर्मियों का तिरस्कार और अविश्वास होता है, लोग उनका सहयोग समर्थन नहीं करते और सम्पर्क बनाने से बचते हैं । मनुष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की उन्नति पारस्परिक सहयोग पर निर्भर है । जिसे दूसरों का जितना गहरा प्यार और सच्चा सहयोग मिला वह उतना ही उन्नतिशील बन सका है । यह लाभ कुमार्गगामियों को नहीं मिल सकता । उनसे सभी डरते हैं और सोचते हैं कि सम्पर्क बढ़ाने पर वह हमारे ही ऊपर घात चला सकता है । झंझट मोल न लेने की कायरता से डरकर कोई प्रत्यक्ष विरोध कर संघर्ष न करे, चुप भले ही बैठा रहे पर अनैतिक व्यक्ति को सच्चे मन से प्यार कोई नहीं कर सकता । व्यभिचारी भी अपने घर में दूसरे व्यभिचारी का और चोर भी अपने घर में दूसरे चोर का प्रवेश नहीं होने देता । क्योंकि वह उसे अविश्वस्त मानता है, भीतर ही भीतर घृणा करता है और चाहता है कि वह साँप-बिच्छू की तरह अलग ही बना रहे । दुष्कर्म छिपते नहीं, कुकर्म की दुष्प्रवृत्ति आखिर खुलकर ही रहती है । यह एक तथ्य है कि अनाचारी केवल घृणा के पात्र ही हो सकते हैं, उन्हें न तो सम्मान मिल सकता है और न सहयोग । इसके बिना न तो विकास सम्भव है और न आनन्द की गुंजाइश है । कुकर्मी थोड़े से साधन भर इकट्ठे कर सकते हैं और उनसे यत्किंचित शरीर एवं इन्द्रियों का क्षणिक सुख भोग सकते हैं पर सामाजिक प्राणी होने के नाते जिस श्रद्धा, सम्मान, प्यार और सहयोग की उसे भारी भूख और आवश्यकता रहती है उसे सदा अप्राप्त ही रहना पड़ेगा। सामाजिक असहयोग तिरस्कार एक ऐसा दंड है जो अप्रत्यक्ष होते हुये भी मनुष्य को घर में रहने वाले भूत-पिशाच की तरह उद्विग्न और संत्रक्त रखता है । यह स्थिति जेल का दंड भोगने वाले कैदी से कम कष्टकारक नहीं है ।

कुमार्गगामी आत्म प्रताड़ना के दंड से बच नहीं सकता । यदि आत्मा को सर्वथा कुचल मसल न दिया हो, उसमें थोड़ी सी चेतना बाकी रहने दी गई तो कुकर्म के लिये आत्मग्लानि और धिक्कार की आवाज भीतर से निरन्तर उठती रहेगी । दूसरों से पाप को छिपाया भी जा सकता है पर आत्मा से वस्तुस्थिति कहाँ छिपती है, वह अनीति अपनाकर बरती गई नीचता के लिये निरन्तर धिक्कारती रहेगी और पश्चाताप की आग में बुरी तरह जलाती रहेगी । पापी मनुष्य एक क्षण के लिये भी शान्ति अनुभव नहीं कर सकता । भीतर की प्रताड़ना बाहरी दण्डों से अधिक हानिकारक होती है। उसके कारण व्यक्ति निरन्तर दोष दुर्बल, उद्विन, एकाकी,नीरस और विक्षिप्त बनता चला जाता है । व्यक्तित्व को हेय, पतित और अस्त-व्यस्त बनाने में आत्मलानि ही सबसे बड़ा अवरोध सिद्ध होती है ।

फिर ईश्वरीय विधान भी निःस्वत्व नहीं हुआ है । आज नहीं तो कल उसकी व्यवस्था के अनुसार कर्मफल मिलकर ही रहेगा । देर हो सकती है अन्धेर नहीं । सरकार और समाज से पाप को छिपा लेने पर भी आत्मा और परमात्मा से उसे छिपाया नहीं जा सकता । इस जन्म या अगले जन्म में हर बुरे-भले कर्म का प्रतिफल निश्चित रूप से भोगना पड़ता है, आज का लिया कर्ज कल चुकाना पड़ेगा, इससे यही नहीं सोचा जा सकता कि कर्ज के नाम पर लिया हुआ पैसा मुफ्त में ही मिल गया । पाप का दंड आज नहीं भुगतना पड़ेगा तो किसी को यह नहीं समझ बैठना चाहिये कि उससे सदा के लिये छुट्टी हो गई। ईश्वरीय कठोर व्यवस्था उचित न्याय और उचित कर्म फल के आधार पर ही बनी हुई है सो तुरन्त न सही कुछ देर बाद अपने कर्मों का फल भोगने के लिये हर किसी को तैयार रहना चाहिये ।

मनुष्यता की कसौटी सन्मार्गगामिता है । विवेक की परख कुमार्ग से बचने में है । मानवीय गरिमा का तकाजा है कि हम न्याय औचित्य और कर्त्तव्य को ही अपनायें । न तो अशुभ सोचें और अनुचित कदत उठायें । इसी में बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता सन्निहित है ।

६-आध्यात्मवाद

भारतीय संस्कृति जीवन का सर्वोपरि लाभ आध्यात्म में मानती है । आध्यात्म का महत्व संसार की मह्यनतम वस्तुओं से ऊँचा है, उसका लाभ सृष्टि के समस्त लाभों से अधिक है । संसार में मनुष्य ने पशुत्व की कोटि से उठकर देवत्व की ओर जो प्रगति की है, आत्मा की अनन्त शक्तियों का जो भण्डार खोला है, उसका कारण आध्यात्मिक उन्नति ही है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"मैं पवित्र अविनाशी और निर्लिप्त आत्मा हूँ । ईश्वर का शक्तिशाली अंश हूँ । मुझमें वे सब दिव्य गुण और दिव्य शक्तियाँ भरी पड़ी हैं, जो सृष्टिकर्त्ता ईश्वर में हैं ।" यह मान्यता भारतीय आध्यात्मवाद का आधार है ।

भारतीय आध्यात्मवाद आपसे कहता हैं, "ऐ अविनाशी शक्तिशाली आत्माओ ! तुम शरीर नहीं हो, महान आत्मा हो । तुम्हें किसी प्रकार की अशक्तता का अनुभव नहीं करना है । तुम अनन्त शक्तिशाली हो। तुम्हारे बल का पारावार नहीं है । जिन साधनों, जिन ताकतों को लेकर तुम पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हो, वे अचूक ब्रह्मास्त्र है । तुम्हारी शक्तियाँ इन्द्र–वज्रों से भी अधिक हैं । सफलता और आनन्द तुम्हारे जन्मजात अधिकार हैं । उठो, अपने आत्म–स्वरूप को, अपने हथियारों को भली–भाँति पहचानो और बुद्धिपूर्वक कर्त्तव्यमार्ग में जुट जाओ । फिर देखें, तुम कैसे पीछे रहते हो। तुम कल्पवृक्ष हो । तुम पारस हो । तुम अमृत हो । तुम सफलता हो । तुम शरीर नहीं, जीव नहीं, मरणशील नहीं, वरन् आत्मा हो, परम आत्मा हो । तुम क्षुद्र वासना या इन्द्रियजन्य विकारों के गुलाम नहीं हो । आदतें तुम्हें बाध्य नहीं कर सकतीं । पाप या अज्ञान में इतनी शक्ति नहीं कि वे तुम्हारे ऊपर शासन कर सकें । तुम्हें अपने आपको दीन–हीन नीच, पतित, पराधीन नहीं समझना है । हे महान पिता के महान पुत्रो ! अपनी महानता को पहचानो । उसे समझने, खोजने में और प्राप्त करने में तत्परतापूर्वक जुट जाओ । तुम सत् हो । तुम चित हो । तुम आनन्द हो । अपनी वास्तविकता का अनुभव करो । स्वाधीनता का, मोक्ष का आनन्द प्राप्त करो ।"

भारतीय आत्मवाद हमें आत्म-विश्वास करना सिखाता है । अपनी आत्मा का सम्मान करना सिखाता है । अपनी सत्ता को श्रेष्ठ, पवित्र, महान एवं विश्वसनीय अनुभव करना सिखाता है । हमारा योगशास्त्र पुकार-पुकार कर कहता है,"जो समझता है कि मैं शिव हूँ, वह शिव है । जो समझता है कि मैं जीव हूँ, वह जीव है । यदि अपने आपको महान् बनाना चाहते हो, तो आत्मवादियो, अपनी महानता को देखिए, अनुभव कीजिये और उसे द्रुतगति से चरितार्थ करना प्रारम्भ कर दीजिये । आत्मा अमर है । जीव शरीर से भिन्न है । वह शरीर के साथ ही नहीं मर जाता वरन् मृत्यु के उपरांत भी जीवित रहता है और नया शरीर ग्रहण करता है । हमारे वेद–शास्त्रों में तो इन मन्तव्यों की पुष्टि करने वाले असंख्य प्रमाण भरे पड़े हुए हैं । जीवन उस दिन प्रारम्भ हुआ जिस दिन एक परमात्मा ने बहुत होने की इच्छा की । हम सबमें आत्मा का निवास है । सार्वभौम चैतन्य तत्व परमात्मा अविनाशी है , फिर उसका परमाणु नाशवान कैसे हो सकता है ? जब तक सूर्य है तब तक गर्मी है । इसी प्रकार परमात्मा का अंश भी अमर रहेगा। मनुष्य की महानता उसकी आत्मिक महानता में ही है। एक सद्गुणी, विद्वान, बुद्धिमान, कुशल, सूक्ष्म व्यक्ति की प्रतिष्ठा होती है, हर मोटे पेट वाले या गोरे चमड़े वाले निर्बुद्धि, दुर्गुणी मूर्ख या पागल का कोई आदर नहीं करता । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कपड़े से शरीर का और इसी प्रकार शरीर से आत्मा का दर्जा ऊँचा है। भारतीय संस्कृति कहती है कि मनुष्यो ! जीवन का मर्म समझो । जीवन की गूढ़ समस्या पर विचार करो । जीवन अखण्ड है, इस सत्य को समझो और हृदयंगम करो । सच्ची प्रगति उसी दिन होगी जिस दिन वास्तविक जीवन को, अखण्ड जीवन को आप प्रधानता देंगे और उसी महान जीवन के हानि-लाभ की दृष्टि से वर्तमान शरीर के सम्पूर्ण सिद्धान्तों और कार्यों पर विचार करेंगे ।

अध्यात्मवाद ही क्यों ?

१.व्यक्तिगत संदर्भ में

आज का व्यक्ति समस्याओं के जाल में दिन-दिन जकड़ता चला जा रहा है । क्या धनी, क्या निर्धन, क्या विद्वान, क्या अशिक्षित, क्या रुग्ण, क्या स्वस्थ, सभी स्तर के मनुष्य अपने को अभावग्रस्त और संकटत्रस्त स्थिति में पाते हैं । भूखे का पेट दर्द दूसरी तरह का और अतिभोजी का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरे ढंग का, पर कष्ट पीड़ित तो दोनों ही समान रूप से हैं। जीवन क्षेत्र में तथा संसार में समस्याओं के आकार-प्रकार अनेक प्रकार के दीखते हैं। उनमें भिन्नता भी बहुत रहती है। एक-दूसरे से असंबद्ध प्रतीत होती है और उनके कारण पृथक-पृथक दिखाई पड़ते है पर उनके मूल में एक ही कारण होता है, अध्यात्मवादी दृष्टिकोण। यदि इस तथ्य को समझ लिया जाय तो असंख्य समस्याओं और अगणित संकटों का समाधान एक ही उपाय से कर सकना संभव हो जायगा। प्रकाश के अभाव का ही नाम अन्धकार है। जब रोशनी होती है तो अंधकार चला जाता है। अध्यात्म की ज्योति बुझ जाने से संकट खड़े होते हैं और उस प्रकाश के धूमिल पड़ जाने से अनेकानेक समस्याएँ उठती और उलझती चली जाती हैं।

छुट-पुट उपचार तो अनेक ढंग से निकल आते हैं । किन्तु टिकाऊ हल अध्यात्म के सहारे से ही निकल सकता है। पेट में अपच होने से रक्त अशुद्ध होता है और बढ़ती हुई सड़न से अनेक नाम रूप वाले रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इनका स्थानीय और सामयिक उपचार करने से तात्कालिक राहत मिल सकती है पर स्थायी समाधान ढूँढ़ना हो तो रक्त शुद्धि और अपच निवारण की बात सोचनी पड़ेगी। सारे शरीर पर निकली चेचक की एक-एक फुँसी की मरहम पट्टी कैसे की जायेगी, उपाय वही सही है जिससे रक्त में घुले विष का निवारण करके आज की चेचक और कल की होने वाली अन्य बीमारियों की जड़ काटी जाय । सड़ी कीचड़ में रेंगने वाले कीड़े उपजते हैं और गंदगी के ढेर में मक्खी मच्छरों की उत्पत्ति होती है । हर कीड़े और मच्छर मारने के लिए लाठी लिये फिरना बेकार है । मार देने पर भी वे उपज पड़ेंगे। आधार बना रहेगा तो उत्पत्ति का क्रम रुकेगा नहीं। इन कृमि कीटकों से छुटकारे का एक ही उपाय है कि कीचड़ और गंदगी को साफ कर दिया जाय।

परमात्मा ने अपने पुत्र मनुष्य को इस विश्व उद्यान में बहुत कुछ पाने कमाने के लिए भेजा है। समस्याएँ उसकी भूलों से सचेत करने वाली लालबत्ती की तरह हैं।

यदि हम मनुष्योचित दृष्टिकोण अपनायें और शालीनता का जीवन जियें तो अवरोधों से जूझकर शक्ति नष्ट करने की समस्या न रहेगी, और न प्रगति पथ पर अनवरत गति से बढ़ते हुए पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करना ही तब अपने सामने एकमात्र कार्य रह जायेगा । आइए, विचार करें कि हमारे व्यक्तिगत जीवन में आये दिन कौन-कौन समस्यायें त्रास देती हैं, वे क्यों उत्पन्न होती हैं और उनका स्थिर समाधान क्या हो सकता है।

मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन की सारी समस्यायें इन पाँच वर्गों के अन्तर्गत आ जाती हैं । (१) शारीरिक (२) मानसिक (३) आर्थिक (४) पारिवारिक तथा (५) आत्मिक ।

(१) सर्वप्रथम समस्या स्वास्थ्य संकट की है। हममें से अधिकांश को शारीरिक दुर्बलता घेरे रहती है और बीमारियों का दौर चढ़ा रहता है, विचारणीय है कि ऐसा क्यों होता है ? सृष्टि में असंख्य प्राणी हैं । वे जन्मते-मरते तो हैं पर बीमार कोई नहीं पड़ता। मनुष्य और उसके शिकंजे में कसे हुए थोड़े से पालतू पशुओं को छोड़कर स्वच्छंद निर्वाह करने वाले जीव-जन्तुओं में से किसी को दुर्बलता या रुग्णता की व्यथा नहीं सहनी पड़ती । बुढ़ापा और मृत्यु का सामना तो सबको पड़ता है पर जब तक जीता है तब तक समूचा प्राणी जगत निरोग हो जाता है। अकेले मनुष्य पर ही दुर्बलता और रुग्णता की घटाएँ छाई रहती हैं । इस अपवाद का कारण एक ही है—उसका आहार-विहार सबंधी असंयम, प्रकृति के निर्देशों का धृष्टता पूर्वक उल्लंघन ।

जीभ का चटोरापन-स्वादिष्टता के नाम पर अभक्ष्य पदार्थों का समय-कुसमय अनावश्यक मात्रा में उदरस्थ करते रहने से पेट की क्षमता नष्ट होती है और वह अत्याचार पीड़ित दीन-दुर्बल की तरह अपना काम निपटाने में असमर्थ हो जाता है । पेट की अपच हजार बीमारियाँ उत्पन्न करती है यह तथ्य सर्वविदित है । लुकमान सही कहते थे कि "मनुष्य अपने असमय मरने और गढ़ने के लिए अपनी कब्र आप खोदता है ।" इन्द्रिय असंयम से वह अपने शक्ति भण्डार को होली की तरह जलाता है और बर्फ की तरह अपने पौरुष को गलाकर समाप्त करता है। अस्त-व्यस्त दिनचर्या, आलस्य, प्रमाद, गंदगी जैसे दुर्गुण अपनाने वाले, प्रकृति की प्रेरणाओं और नियत मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाले नियति की दंड

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवस्था से बच नहीं सकते । उन्हें रुग्णता की व्यथा सहनी ही पड़ेगी ।

इसका निवारण दवादारु की जादूगरी से नहीं हो सकता । यदि असंयमी जीवन जीने पर भी दवादारु के सहारे स्वास्थ्य रक्षा संभव रही होती तो अमीरों ने और चिकित्सकों ने अब तक हाथी जैसा स्वास्थ्य सँजो लिया होता । प्रकृति की उद्दण्ड अवज्ञा करने वाले अपराधी क्षमा नहीं होते और आये दिन रुग्णता से कराहते हैं । यदि हमें सचमुच ही स्वास्थ्य की स्थिरता अपेक्षित हो तो उसका एकमात्र उपाय प्राकृतिक जीवन है । आहार-विहार का संयम कड़ाई से पालन करने के अतिरिक्त और किसी उपाय से स्वास्थ्य रक्षा की समस्या हल नहीं हो सकती ।

कहना न होगा कि इन्द्रिय लिप्साओं से छुटकारा पाना सुव्यस्थित जीवनक्रम अपनाना शारीरिक क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली अध्यात्म प्रक्रिया ही है । आत्मसंयम और आत्मानुशासन का नाम ही अध्यात्म है । उसका प्रयोग यदि विवेकशीलता और दूरदर्शिता अपनाते हुए स्वास्थ्य प्रयोजन के लिए किया जाता रहे तो हममें से किसी को भी न तो दुर्बलता घेरेगी और न रुग्णता छाई रहेगी । अब या अब से हजार वर्ष बाद जब भी स्वास्थ्य संकट से निपटना आवश्यक प्रतीत होगा और उसका स्थिर समाधान खोजा जायेगा तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि जीवनचर्या का निर्धारण अध्यात्मवादी दृष्टिकोण से किया जाय और शारीरिक सम्पदा का उपयोग करने में प्रकृति निर्देशों का पालन करने के लिए कड़ाई के साथ संयम बरता जाय । जिस दिन यह तथ्य हृदयंगम कर लिया जायेगा, उसे व्यवहारिक जीवन में उतार लिया जायेगा, उस दिन स्वास्थ्य संकट का अन्धकार कहीं भी दृष्टिगोचर न होगा ।

२– मानसिक उद्विग्नता मनुष्य जीवन के अन्तर्गत उपस्थित दूसरा संकट है । हममें से अधिकांश व्यक्ति उद्विग्न, निराश, चिन्तित, विक्षुब्ध, भयभीत, कायर, असन्तुष्ट पाये जाते हैं । मानसिक दृष्टि से शान्त, सन्तुष्ट, सन्तुलित और प्रसन्न कोई विरले ही दीख पड़ेंगे । इसके लिए दूसरों के व्यवहार और परिस्थतियों को भी सर्वथा निर्दोष तो नहीं कहा जा सकता, पर यह स्वीकार करना ही होगा कि इससे बहुत बड़ा कारण अपने चिन्तन तन्त्र की दुर्बलता ही रहती है । हम अपनी ही इच्छा की पूर्ति चाहते हैं, हर किसी को अपने ही शासन में चलाना चाहते हैं और हर परिस्थिति को अपनी मर्जी के अनुरूप बचने की अपेक्षा करते हैं । यह मूल गति है कि यह संसार हमारे लिए ही नहीं बना है, इसमें व्यक्तियों का विकास अपने क्रम से हो रहा है और परिस्थितियाँ अपने प्रवाह से बह रही हैं । हमें उनके साथ तालमेल बिठाने की कुशलता प्राप्त करनी चाहिए ।

परिस्थितिजन्य असन्तोष भी अधिकांश में तो अपने चिन्तन दोष के कारण उत्पन्न होते हैं । यदि अमीरों के साथ अपनी तुलना की जाय तो स्थिति गरीबों जैसी प्रतीत होगी और दुख बना रहेगा । यदि उसी तुलना मापदण्ड को गरीबों के साथ सधा दिया जाय तो प्रतीत होगा कि अपनी वर्तमान स्थिति लाखों करोड़ों से अच्छी है । गरीबी और अमीरी सापेक्ष है । बड़े अमीरों की तुलना में हर कोई गरीब ठहरेगा और हर गरीब को अपने से अधिक अभावग्रस्त दिखाई पड़ेंगे । उनसे तुलना करने पर वह अपने को सुसम्पन्न अनुभव कर सकता है । दृष्टिकोण सही होने से व्यक्ति अपने विकास के लिए प्रयास करते हुए भी असन्तोष और घुटन से बचा जा सकता है ।

दूसरों के व्यवहार के सम्बन्ध में भी यही सिद्धान्त लागू होता है । हर व्यक्ति तम और सत के ईंट चूने से बना है । इसमें बुराइयाँ भी हैं और अच्छाइयाँ भी । जब छिद्रान्वेषण का हरा चश्मा पहन लिया जाता है तो हर वस्तु, हर प्राणी, हरा दीखेगा । दोष ही ढूँढ़ते रहें तो हर किसी में यहाँ तक कि सूर्य और भगवान में भी मिल जायेंगे और उन पर क्रोध करना पड़ेगा । किन्तु यदि अच्छाइयाँ तलाश की जायें तो एक भी पदार्थ या प्राणी ऐसा न मिलेगा कि जिसमें श्रेष्ठता का सर्वथा अभाव हों । यदि गुण दर्शन की दृष्टि हो तो बदला हुआ चश्मा सर्वत्र ईश्वर की सत्ता का आलोक देख सकेगा । जिन लोगों के अपकार गिनते रहा गया है वे शत्रुवत प्रतीत होंगे किन्तु जब उनके उपकारों का याद किया जाय तो प्रतीत होगा कि उनके मित्र व्यवहार की सूची भी छोटी नहीं है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुखों की अपनी उपयोगिता है साधन सम्पन्नता के सहारे प्रगति क्रम से सुविधा होती है । यह सर्वविदित है, पर यह भी भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि कठिनाइयों की आग में पक कर खरा और सुदृढ़ बना जाता है। सोने को अग्नि परीक्षा में और हीरे को खराद पर चढ़ने में कठिनाई का सामना तो करना पड़ता है, पर उसका मूल्यांकन उससे कम में हो भी तो नहीं सकता । कठिनाइयों के कारण मनुष्य में धैर्य, साहस, कौशल, पराक्रम जैसे कितने ही सद्गुण विकसित होते हैं, जागरूकता बढ़ती है और बहुमूल्य अनुभव एकत्रित होते हैं । अभावों और संकटों में दुर्बल मनःस्थिति के लोग तो टूट जाते हैं, पर जिनमें जीवन है वे चौगुनी सौगुनी शक्ति के साथ उभरते देखे गये हैं। सम्पन्नता की अपनी उपयोगिता है और विपन्नता का अपना महत्व है यदि दोनों का समुचित लाभ उठाया जा सके तो यह उभयपक्षीय अनुदान प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिए अपने-अपने ढंग से सहायता करते दिखाई पड़ेगा ।

नमक और मीठा परस्पर विरोधी हैं तो भी उनसे स्वाद संतुलन बनता है । तानों और बानों के धागे एक- दूसरे से विपरीत दिशा में चलते हैं पर उनका गुंथन उपयोगी वस्त्र बनकर सामने आता है । रात्रि और दिन की स्थिति में भिन्नता ही नहीं विपरीतता भी है, पर उनके समन्वय से ही समय चक्र घूमता है। विपरीतताओं का समन्वय ही संसार है । जीवन श्रृंखला इन विचित्रताओं की कड़ियों से मिलकर बनी है । हमें दोनों की उपयोगिता समझनी चाहिए ।

पुण्यात्माओं से बहुत कुछ सीखा जाता है और पापियों को सुधारने की नीति अपनाकर आत्म-परिष्कार कर अपनी करुणा, सहृदयता, सेवा भावना को विकसित होने का अवसर मिल सकता है । दुरंगी दुनिया की विचित्रता से खिन्न होने की अपेक्षा यह अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण है कि उसके सहारे खट्टे-मीठे अनुभव प्राप्त किये जायें और इन परस्पर परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के लाभ लिये जायें । जिनका चिन्तन आध्यात्मिक स्तर का होगा वे समुद्र में आने वाले ज्वार-भाटे से भयभीत न होंगे वरन् इतना भर साचेंगे कि किस स्थिति का किस प्रकार सामना किया जाय और उससे क्या लाभ उठाया जाय ।

मानसिक सन्तुलन बना रहे तो घाटा, शोक, विरोध, अभाव जैसी विपन्नता भी विचलित न कर सकेंगी । क्रान्तिकारी शहीदों ने फाँसी के तख्ते हँसते हुए चूमे थे । बढ़े-चढ़े त्याग बलिदान प्रस्तुत करने वाले महामानवों के चेहरे पर विषाद की एक भी लहर उत्पन्न नहीं होती । यदि घटनाओं में ही सारी शक्ति रही होती तो वे सभी पर एक जैसा असर डालती । पर देखा जाता है कि उसी स्थिति में एक व्यक्ति सिर धुनता है और दूसरा बिना किसी हैरानी के काम करता है । यह मानसिक स्तर का ही परिचय है ।

आत्मिक दृष्टिकोण मानसिक संतुलन की दृष्टिकोण के परिष्कार की प्रेरणा देता है । यदि उसे अपनाया जा सके तो मनुष्य जीवन में से शोक संतापों की, उद्वेग विक्षोभों की समस्या का सहज ही समधान हो सकता है । यह कार्य इच्छित परिस्थितियाँ बना देने से संभव नहीं हो सकता । इच्छाओं की कोई सीमा नहीं, एक की पूर्ति होना ही दूसरी उससे भी बड़ी दुखदायी होती है और अभाव असंतोष जहाँ का तहाँ बना रहता है । यदि साधन जुटा देने भर से सुख-संतोष प्राप्त करना संभव रहा होता तो सभी सा न सम्पन्न व्यक्ति सन्तुष्ट पाये जाते । किन्तु वे तो अभावग्रस्त लोगों की अपेक्षा और भी अधिक विक्षुब्ध पाये जाते हैं। मनुष्य की दूरदर्शिता जब कभी गम्भीरतापूर्वक आजीवन प्रसन्नता बनाये रहने का उपाय खोजेगी तब उसे एक ही मार्ग मिलेगा कि अध्यात्मवाद की नीति अपनाई जाय और मनःक्षेत्र को परिष्कृत किया जाय ।

(३) शारीरिक अस्वस्थता और मानसिक उद्विग्नता की समस्याओं पर विचार करने के उपरान्त आइए अब आर्थिक समस्या पर विचार करें। यह हर किसी के सामने मुँह बाये खड़ी हैं । ऐसे लोग कोई विरले ही मिलेंगे जो अपने को आर्थिक दृष्टि से सन्तुष्ट कह सकें। हर व्यक्ति अपने इस अभाव को दूर करने के लिए बहुत चिन्तित दिखाई पड़ता है। बहुत हाथ- पैर पीटने पर बात उतनी नहीं बनती है जितनी आवश्यकता अथवा इच्छा है । इसे व्यापक दरिद्रता का संकट कहा जा सकता है । इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समस्या पर भी विचार किया जाना चाहिए और उसका स्थिर समाधान खोजा जाना चाहिए ।

पहले यह विचार करना होगा कि धन आखिर है क्या ? मानवी बल और बुद्धिबल का विभिन्न प्रयोजनों में प्रयोग करने से जो उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं उन्हें सम्पत्ति कहा जा सकता है। धन की सही परिभाषा यही है। अर्थशास्त्र का आरम्भ यहीं से होता है। जुआ, सट्टा, लाटरी, ब्याज, उत्तराधिकार, गड़ा खजाना आदि के रूप में बिना श्रम की सम्पत्ति कई लोग प्राप्त कर लेते हैं। पर उसे अपवाद कहना चाहिए। इस प्रकार की सम्पदा के प्रति औचित्य की मान्यता बदली जानी चाहिए, अन्यथा विडम्बना बनी रहेगी। आज नहीं तो कल वह दिन आकर ही रहेगा जब अर्थशास्त्र का शुद्ध अध्यात्म सम्मत सिद्धान्त ही सर्वमान्य होगा। शारीरिक और मानसिक श्रम का उचित मूल्य ही लोग धन के रूप में प्राप्त कर सकेंगे।

अधिक धन उपार्जित करके अधिक सुख साधन प्राप्त करने की इच्छा हो तो अपनी शारीरिक श्रम क्षमता और मानसिक दक्षता बढ़ाई जानी चाहिए। इस दृष्टि से जो जितना आगे बढ़ेगा वह उतना धन प्राप्त करेगा। अपना दुर्भाग्य यह है कि हम श्रम से जी चुराने की प्रकृति अपनाते हैं और आरामतलबी से समय गुजारना चाहते हैं । श्रम की अप्रतिष्ठा हमारा सामाजिक दोष है। हरामखोरों को बड़ा आदमी एवं भाग्यवान कहा जाता है। श्रमजीवी अभागे और अछूत माने जाते हैं। यह प्रवृत्ति बदली जानी चाहिए। सम्पन्नता को खरीदने के लिए श्रम-क्षमता विकसित की जानी चाहिए।

शरीर की तरह ही मस्तिष्क भी उपार्जन का साधन है। शिक्षा, शिल्प, कला कौशल, व्यावहारिक मधुरता आदि वरिष्ठता के सहारे अधिक धन कमाया जा सकता है। हम लक्ष्मी पूजन जैसे किसी आकस्मिक संयोग से धन प्राप्त करने की बात सोचते हैं और चाहते हैं कि अकर्मण्यता अदक्षता जहाँ की तहाँ बनी रहे। आलस्य प्रमाद में कमी न करनी पड़े और प्रचुर मात्रा में धन ऐसे ही आसमान से छप्पर फाड़कर बरस पड़े। यह अनात्मवादी मान्यता ही अर्थ समस्या की मूल कारण बन जाती है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण सम्पन्नता का औचित्यपूर्ण मार्ग सुझाता है। हमें अधिक परिश्रम के लिए उत्साह उत्पन्न करना चाहिए। हरामखोरी और कामचोरी को भी नैतिक अपराधों की श्रेणी में गिनना चाहिए। दक्षता बढ़ाने के लिए अधिक सीखने अधिक जानने और अधिक सुयोग्य बनाने के लिए सदैव सचेष्ट रहना चाहिए। इस बढ़ी हुई दक्षता की कीमत पर निश्चय ही अधिक धन प्राप्त किया जा सकेगा और उससे उचित सुख-सुविधा का उपयोग किया जा सकेगा। आर्थिक प्रगति का यही राजमार्ग है। इसे छोड़कर सस्ते में सरलतापूर्वक बहुत जल्दी अधिक धन प्राप्त करने की बात सोचना प्रकारान्तर से अनैतिक एवं अपराधी प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए अग्रसर होना है।

ठगी, चोरी, बेईमानी, लूट, डकैती, रिश्वत, मिलावट कमतौल, मुनाफाखोरी, कर चोरी, तस्करी आदि अनैतिक अपराधों के पीछे उनके कर्ताओं की ही प्रकृति काम कर रही होती है कि बिना उचित क्षमता एवं श्रम-शीलता के स्वल्प काल में अधिक धन कमा लिया जाय। कमजोर प्रकृति के लोग मिलावट, कम तौलना जैसे सरल अपराध कर पाते हैं, दुस्साहसी भयंकर कुकृत्य कर गुजरते हैं। दिशा एक है प्रयोग करने की स्थिति भर अलग है। यह गंभीरतापूर्वक समझा जाना चाहिए कि यह अपराधी प्रकृति मानवी चरित्र का सर्वनाश करती है, उसकी प्रामाणिकता और प्रतिष्ठा नष्ट करके अस्पृश्य संक्रात्मक रोग से ग्रसित की तरह उसे घृणास्पद बना देती है ।

अनैतिकता अपनाकर जीवनयापन करने वाला मनुष्य अमीर भले ही हो जाय पर उसका व्यक्तित्व दिन- दिन पतन के गर्त में गिरता जायेगा। आत्म प्रताड़ना उसे जर्जर बना देती है। अपनी नजर में गिरा हुआ मनुष्य किसी अन्य की नजर में ऊँचा नहीं उठ सकता। आत्मा और परमात्मा की अदालत में जघन्य अपराधियों की तरह लज्जित खड़े होने वालों को अमीरी कितनी महँगी पड़ती है इसे गंभीरता-पूर्वक समझने का प्रयत्न किया जाय तो कदाचित ही किसी की हिम्मत उस मार्ग पर चलने की न हो। अवांछनीय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धनलिप्सा ही समस्त दुष्कर्मों की जननी है। वह व्यसन, अनाचार, विलासिता, फिजूलखर्ची जैसे अनुपयुक्त मार्गों में खर्च होता है और उससे अन्य प्रकार की नई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

उपार्जन की क्षमता बढ़ाने के अतिरिक्त आर्थिक सन्तुलन का दूसरा उचित उपाय यह है कि आमदनी के अनुरूप खर्च किया जाय और बजट बनाकर चला जाय। सादगी से रहा जाय। अपनी जितनी आमदनी के दूसरे समझदार लोग जिस स्तर का जीवन यापन करते हैं उसका अनुसरण किया जाय। यदि आमदनी नहीं बढ़ सकती तो खर्च सीमित रहने चाहिए विशेषतया नये खर्चे तो सिर पर लादने ही नहीं चाहिए। बच्चों की संख्या बढ़ाना भी आर्थिक संकट मोल लेने जैसा ही है। इसके कारण सारा परिवार अर्थाभाव में पिसता है। बच्चों का विकास भी नहीं हो पाता। उनकी आत्मा इस दयनीय स्थिति के लिए उन्हीं मूर्खों को कोसती हैं तो सन्तानोत्पादन से पूर्व इस नये उत्तरदायित्व के निर्वाह में असमर्थ होते हुए भी अँधेरे में कदम बढ़ाते चले गये।

अध्यात्मिक सिद्धान्त के अनुसार परिवार में क्रियाशीलता बढ़ाकर भी संकट की चिन्ता से बचा जा सकता है। एक कमाये सब खायें की परम्परा अपने घरों में चल रही है। इसे छोड़कर छोटे गृह उद्योगों की व्यवस्था हर घर में की जा सकती है और खाली समय में कुछ कमा लेने का उत्साह उत्पन्न हो तो ऐसे उपाय सहज ही खोजे जा सकते हैं जिनमें आजीविका वृद्धि की दिशा में प्रगति हो सके।

ऋण लेने की आदत बेईमानी का ही छोटा रूप है। आपत्तिकाल में अलग किसी व्यावसायिक प्रयोजन के लिए पूँजीरूप में ऋण लिया जा सकता है किन्तु खर्च बढ़ा लेने और उसकी पूर्ति ऋण लेकर करना ऐसा अविवेक है जिसका दुष्परिणाम एक दिन दिवालिया बन जाने, बेईमान कहलाने और तिरस्कार सहने के रूप में ही सामने आता है। आध्यात्मिक आदर्शों से प्रभावित व्यक्ति आवश्यकताओं को सीमित रखने में समर्थ होता है, तथा ऋणी बनना पसंद नहीं करता । इसलिए इस विडम्बना से बच जाता है।

अपने देश में सामाजिक कुरीतियाँ अर्थ संकट उत्पन्न करने का बहुत बड़ा कारण है। विवाह शादियों में होने वाले अपव्यय कुरीतियों में सर्वप्रथम है। अलन-चलन मृतक भोज, धर्माडम्बर की आड़ में कुपात्रों से जेब काटते रहना जैसी अनेक मूर्खताएँ अपने समाज में प्रचलित हैं जिनके कारण असाधारण रूप से न की बर्बादी होती है और लोगों को दरिद्र एवं बेईमान बनना पड़ता है और सभी कुप्रथाएँ भी ऐसी ही हैं जिनको चौधरी पंचों की—लोकचर्चा की परवाह किये बिना एक ही झटके में उखाड़ फेंकना चाहिए। यह साहस विवेकवान तथा आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं।

अविवेकी लोग ओछे रास्ते अपनाकर धनी बनना चाहते हैं किन्तु अनाचार एक दिन प्रकट होकर ही रहता है तब ग्राहकों के असहयोग का संकट उस उपार्जन को ठप्प करके रख देता है। कामचोर और बेईमान कर्मचारी कभी उन्नति नहीं कर सकते। ईमानदारी की नीति पर चलते हुए ही हर व्यक्ति प्रामाणिक बन सकता है। अपने श्रम एवं उत्पादन का प्रामाणिकता के आधार पर अधिक मूल्य पा सकता है एवं अधिक सम्मान भी।

अर्थक्षेत्र में श्रमनिष्ठा, मनोयोगपूर्वक कार्य संलग्नता, ईमानदारी, प्रामाणिकता, सादगी, मितव्ययिता यह सभी गुण अध्यात्म आदर्शों के अनुरूप हैं। इन्हें अपनाये बिना अर्थ संकट से बचे रहने का अर्थ उपार्जन और सन्तुलन का और कोई मार्ग नहीं। अनीति की कमाई का आकर्षण और मूर्खतापूर्ण अपव्यय की आदत ही अर्थ सम्बन्धी विकृतियों का कारण बनती है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण का व्यक्ति इन दोनों से सहज ही बच जाता है।

अनुत्पादक तथा जमाखोरी को आर्थिक सन्तुलन के लिए विष माना जाता है। कमाया सौ हाथ से जाय पर दान हजार हाथ से करें की नीति अध्यात्म की परम्परा है । वह सन्तोष हानिकारक है जिससे मनुष्य अकर्मण्य बनता है और उत्पादन से हाथ सिकोड़ता है। हर व्यक्ति को राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने के लिए अथक परिश्रम करना चाहिए। अन्तर इतना ही है कि वह उपार्जन एकाकी उपयोग में न लगकर सार्वजनीन हित साधन में लगाता रहे। निषेध एकाकी उपयोग का है उसी के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संबन्ध में कहा गया है कि "जो आप ही कमाता और आप ही खाता है वह चोर है।" यह अध्यात्म सम्मत अर्थनीति ही व्यक्ति और समाज की सुख-शान्ति में वृद्धि कर सकती है और इसी को अपनाकर अर्थ संकट से सदा सर्वदा के लिए छुटकारा पाया जाता है।

(४) चौथी समस्या पारिवारिक है। गृह कलह से लोग अशान्त पाये जाते हैं। ऐसे परिवार थोड़े से ही मिलेंगे जिनमें स्नेह, सौजन्य, सद्भाव, सहयोग का वातावरण हो और छोटे-छोटे घरों में स्वर्गीय हर्षोल्लास का जीवन जिया जा रहा हो। बाहर से एक दिखते हुए भी मनोमालिन्य, असहयोग, उपेक्षा, अवज्ञा आपा-धापी की स्थिति बनी रहती है और अनुशासनहीनता पनपती रहती है। इन कारणों से परिवार संस्था नष्ट-भ्रष्ट होती चली जा रही है।

परिवार संस्था का महत्व समझा जाना चाहिए। व्यक्ति और समाज के बीच की कड़ी परिवार है। यही वह खदान है जिसका वातावरण सुसंस्कृत बना रहे तो नररत्न निकलते रहेंगे। अपना गौरव और राष्ट्र का वर्चस्व बढ़ाते रहेंगे। परिवार घटकों का समूह ही समाज है। स्कूली शिक्षा से जानकारी भर बढ़ती है । गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर बनने वाला चरित्र तो परिवार की पाठशाला में ही बनता है। इसी व्यायाम शाला में अभ्यास करके व्यक्तित्व ढालने की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। इन तथ्यों की उपेक्षा कर देने के दुष्परिणाम ही पारिवारिक समस्याओं के रूप में सामने आते हैं।

आज परिवार की आर्थिक आवश्यकता पूरी करने भर का ध्यान रखा जाता है। अच्छा खिला-पहना दिया, पढ़ाई और शादी के साधन जुड़ा दिये, उत्तराधिकारियों के लिए न छोड़ दिया तो पारिवारिक उत्तरदायित्वों की इतिश्री समझ ली गई। इसका अर्थ तो यह हुआ कि परिवार के सदस्य भौतिक यन्त्र मात्र हैं जिनकी आवश्यकताएँ भौतिक साधनों तक जुटा दिया जाना पर्याप्त है। मोटर के लिए पेट्रोल, लुबरीकेशन, ग्रीस, पानी आदि जुटा देना पर्याप्त है, पर मनुष्य मशीन तो नहीं है। उसके भीतर जीवन और चेतना भी है। उस कल्पवृक्ष का पनपना और परिष्कृत बनना सद्भावना और सद्प्रवृत्तियों का खाद-पानी पाकर ही संभव हो सकता है। यह साधन जुटाये जा सकें तो गरीबी में रहते हुए भी किसी परिवार के सदस्य नैष्ठिक नागरिकों की–श्रेष्ठ सज्जनों की श्रेणी में गिने जा सकने योग्य बन सकते हैं।

परिवारों के सृजन, और परिपोषण के लिए अध्यात्म दृष्टिकोण से ही तो परिस्थितियाँ ऐसी बनेंगी जिसमें पलने वाले आजीवन अपने सौभाग्य को सराहते रहेंगे। विवाह वासना के लिए नहीं, विशुद्ध रूप से दो आत्माओं के बीच घनिष्टता मैत्री एवं सहयोग के लिए किए जायें और उसी आदर्श को दोनों पक्ष निभायें तो निश्चित रूप से उनके बीच उच्चस्तरीय आत्मीयता विकसित होगी। वे दोनों हर स्थिति में सन्तुष्ट रहेंगे और कर्तव्य उत्तरदायित्व को समझते हुए पूरे परिवार को समुन्नत बनाने में जुटे रहेंगे। ऐसे लोग सन्तानोत्पादन के लिए लालायित नहीं हो सकतें वे स्वतः ही समझेंगे कि घर के बड़ों की सेवा, बराबर वालों का सहयोग और छोटों को अनुदान देने की जिम्मेदारियाँ पूरा करना आवश्यक है। उनकी पूर्ति के लिए ही जब पर्याप्त धन और समय नहीं है तो अनावश्यक अतिथियों की घुसपैठ क्यों कर दी जाय।

आधुनिक वातावरण में पनप रहे परिवारों में आये दिन खींचतान, आपा-धापी, द्वेष दुर्भाव का, विकृत वातावरण बना रहता है। फलतः उस घुटन में जो भी रहते पलते हैं दुर्बुद्धि ग्रसित होते जाते हैं। यदि इस स्थिति को बदला जा सके और इस पाठशाला में सद्भावना और सत्प्रवृत्तियों के आधार पर दैनिक कार्य व्यवहार का ढाँचा खड़ा किया जा सके तो घर का हर व्यक्ति नित्य नियमित रूप से श्रमशीलता, स्वच्छता, मधुरता, मितव्ययिता, सहकारिता, सेवा, सहायता, ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता जैसे सद्गुणों को अपनाता और पनपाता चला जायेगा। परिवारों की नर्सरी में ठीक तरह उगाया गया पौधा जिस बगीचे में भी लगेगा, जहाँ भी फलेगा फूलेगा और अपने सुन्दर फूलों और मधुर फलों से लदा हुआ वातावरण उत्पन्न करेगा।

परिवारों का सृजन और संचालन अध्यात्म दृष्टिकोण अपनाकर किया जाय तो उसमें सद्भावना हिलोरें ले रही होंगी। सत्परम्पराएँ पनप रही होंगी और उसमें रहने पलने वाले अपने को धन्य अनुभव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर रहे होंगे । किन्तु यदि वासना के लिए विवाह, मोह के लिए संतान, लोभ के लिए उपार्जन और अहंकार का आधिपत्य चरितार्थ किया जा रहा होगा तो हर घर में नारकीय वातावरण ही बना रहेगा और उससे दम घुटने जैसी व्यथा सहन करते हुए हर सदस्य क्रमशः अधिक विकृत ही बन रहा होगा।

इस भौतिकतावादी दृष्टिकोण ने पाश्चात्य देशों में परिवार संस्था का दम घोंट दिया। वहाँ वासना के लिए विवाह होते हैं और इसी पशु प्रकृति से टकराकर हर दिन जोड़े जुड़ते बिछड़ते हैं। पति-पत्नी में से किसी को विश्वास नहीं होता कि हम लोगों का आज का सहचरत्व कल तक भी स्थिर रह सकेगा या नहीं। अविश्वास और अनिश्चय से भरे दम्पति जीवन कितने नीरस, कितने अस्थिर, कितने बनावटी होते हैं और पति-पत्नी के बीच कितनी बड़ी दीवार खड़ी रहती है इसे कोई उन तथाकथित सभ्य लोगों के बीच रहकर भली प्रकार देख सकता है। अभिभावकों को अपनी संतान की अवज्ञा मिलती है और संतान को अभिभावकों की उपेक्षा। ऐसी दशा में संयुक्त परिवारों का वह स्वर्गीय वातावरण कैसे स्थिर रह सकता है जो भारत की अपनी मौलिकता और अपनी विशेषता है। जिसके लिए आज भी समस्त संसार की आशा भरी दृष्टि लगी हुई है और सोचा जा रहा है कि इसी पद्धति को पुनर्जीवित करके व्यक्ति का निर्माण और समाज का विकास संभव है।

परिवार संस्था को नवजीवन मिल सके तो वह अपने छोटे घरौंदे स्वर्गीय अनुभूतियों को अपनी इसी धरती पर दृश्यमान कर सकते हैं। यह नर जीवन गृह विज्ञान के नाम से प्रचलित सुव्यवस्था और सुसज्जा का प्रकरण पूरा कर लेने भर से नहीं मिल सकता इसके लिए अध्यात्म दृष्टिकोण का गहराई तक समावेश करना होगा। घर की आदर्शवादिता की प्रयोगशाला, पाठशाला, व्यायामशाला के रूप में विकसित करना होगा। आहार-विहार से लेकर दैनिक क्रियाकलाप और पारस्परिक व्यवहार में ऐसे सूत्रों का समन्वय करना पड़ेगा जिसके सहारे परिवार के सदस्यों में से हर एक को उत्कृष्ट चिन्तन एवं आदर्श कर्तृत्व अपनाने के लिए अदम्य उत्साह पैदा हो सके।

धन अपनी जगह उपयोगी हो सकता है, सुव्यवस्था को भी सराहा जा सकता है पर स्मरण रहे इतने भर से ही परिवार संस्था प्राणवान न हो सकेगी। नई उच्च शिक्षा दिलाकर सन्तान को कमाऊ पूत बना देना उचित है । उनके लिए प्रचुर साधन जुटा देने का भी महत्व हो सकता है पर ध्यान रहे यदि उनमें सद्गुणों का बीजारोपण न हो सका—सद्भावनाएँ विकसित न की जा सकीं, न स्वभाव में सज्जनता का समावेश हुआ तो वे समृद्ध बन जाने पर भी व्यक्तित्व घटिया रहने पर सदा उलझनों में ही उलझे रहेंगे । स्वयं कुढ़ते रहेंगे और साथियों को भी कुढ़ाते रहेंगे। ऐसे व्यक्ति न स्वयं चैन से रहते हैं और न सम्पर्क में आने वाले किसी को चैन से रहने देते हैं । स्वयं गिरते हैं और साथियों को भी गिराते हैं। ऐसी पीढ़ियाँ बढ़ाकर कोई मिथ्या अहंकार भले ही कर ले कि हमने पीढ़ियों को पदवीधारी या कमाऊ बना दिया । वस्तुतः ऐसे उत्पादन पर किसी की आत्मा गर्व अनुभव नहीं कर सकती । परिवार तो वही धन्य हैं जिनमें से श्रेष्ठ परम्पराओं का निर्वाह कर सकने वाले चरित्र बल आदर्शवादी नर रत्नों का उद्भव हो सके । ऐसे सुसंस्कृत परिवार केवल वही बन सकते हैं जिनमें अध्यात्म दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी गई हो । इसकी उपेक्षा की जाती रहे तो फिर यह सोचना व्यर्थ है कि भारत के प्राचीन आदर्शों की मूर्तिमान प्रयोगशाला के रूप में स्वर्गीय उल्लास की प्रतिच्छवि प्रस्तुत करने वाले देव मन्दिरों के रूप हमें अपने परिवारों को विकसित कर सकने का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा ।

परिवार संस्था को यदि सच्चे अर्थों में जीवित रखना उसे मात्र भेड़ों का बाड़ा नहीं रहने देना है तो रास्ता एक ही है कि उसका स्वजन और संचालन अध्यात्म—आदर्शों को प्रमुखता देते हुए किया जाय। शरीर के अवयवों जैसा पारस्परिक सघन सहयोग घर के सदस्यों के बीच पनपते अधिकारों की उपेक्षा और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता का आदर्श यदि परिवार का हर व्यक्ति निभाये तो उस उद्यान के सभी पेड़-पौधे शोभा सुषमा से हरे-भरे दिखाई पड़ेंगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने सुगन्ध सौन्दर्य से सारे वातावरण को हर्षोल्लास से भर रहे होंगे ।

(५) व्यक्तिगत जीवन की पाँचवी समस्या आत्मिक विकास की है । आत्मिक जीवन में परमात्मा का अनुग्रह आन्तरिक शांति आत्म-सन्तोष एवं आत्म-लाभ होने की तृप्ति को सफलता का चिह्न माना जाता है । सिद्धियाँ और चमत्कार इसी स्तर पर पहुँचे हुए व्यक्तियों में देखे जाते हैं । वे महामानव बनते हैं । जीवात्मा के महात्मा देवात्मा और परमात्मा के स्तर पर विकसित होने का लाभ इसी मार्ग पर चलते रहने वालों को प्राप्त होता है । स्वर्ग और मुक्ति आनन्द इसी प्रगति के साथ सम्बद्ध है । जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिए आत्मशक्ति को प्राप्त करना होता है ।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूजा उपासना के उपचार काम में लाये जाते हैं जो उचित भी हैं और आवश्यक भी । किन्तु यह ध्यान में रखा जाय यह उपचारात्मक कर्मकाण्ड साध्य नहीं साधन हैं । इनका उद्देश्य अन्तरात्मा के गहन स्तर में आध्यात्म की आस्थाओं के लिए जगह बनाना और उन्हें विकसित होने की पृष्ठभूमि बनाना भर है । चापलूसी करने, प्रलोभन देने या रिझाने वाले उपक्रम बनाने से उस परमात्म सत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जो सर्वान्तर्यामी और सृष्टि संचालक होने की महानता धारण किये हुए है । उसे उपचारात्मक बाल क्रीड़ाओं में वशवर्ती नहीं किया जा सकता ।

ईश्वरीय अनुग्रह प्राप्त करने का अन्तरात्मा में परमात्मा के अवतरण का एक मात्र आधार एक ही है कि दोनों का स्तर एक जैसा हो । सजातीय ही आपस में घुलते हैं । दूध में पानी मिल सकता है। सन्तों का सन्त समागम होता है और दुष्टों की दुर्जन गोष्ठी दुरभिसंधियाँ रचती है । ईश्वर की समीपता का लाभ उसी स्तर के मनोभूमि बनाये बिना और किसी प्रकार संभव नहीं हो सकता । आत्मशांति, आत्मिक प्रगति और आत्मशक्ति के कारण दिव्य जीवन का लाभ मिलता है और उसी के सहारे उन विभूतियों की उपलब्धि होती है जो ईश्वर अनुग्रह के कारण मिलने वाली फलश्रुतियों के रूप में समझी, समझाई और बताई जाती है ।

आत्मा और परमात्मा के बीच की दीवार कलुष कषायों की ईंट से चुनी गई है । 'दोनों अति समीप होते हुए भी अति दूर इसीलिए बने हुए हैं कि अपनाई गई असुरता खाई बन कर बीच में अड़ गई है । इसे पाटे बिना दोनों का मिलन संभव नहीं । अंगारों पर राख की परत जम जाती है तो वह देखने में काला लगता है और छूने में गुनगुना भर रहता है । यदि इस परत को हटा दिया जाय तो अंगारा फिर पूर्व स्थिति में आ जायेगा और उसकी चमक तथा गर्मी वैसी ही दृष्टिगोचर होगी जैसी कि पहले रहती थी। आत्मा परमात्मा का अंश है । अंश में अंशी की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं । विक्षेप उसी अवांछनीयता द्वारा उत्पन्न किया हुआ है जिसे माया, भ्रान्ति, अवांछनीयता आदि के नामों से पुकारते हैं ।

पूजा पाठ की आरम्भिक और योग–तप की उच्चस्तरीय उपासना पद्धति बताई और अपनाई जाती है । गहराई से देखने पर इस समूची प्रक्रिया का उद्देश्य आत्म-सुधार और आत्म-परिष्कार के लिए अन्तःभूमिका में अभीष्ट पृष्ठभूमि बनाना भर है, जिसकी उपासना इस मूल प्रयोजन को जितनी मात्रा में पूरा कर देती है उसे उतनी ही मात्रा में आत्मोत्कर्ष का लाभ मिलता है । इस आत्मोत्कर्ष को ही दूसरे शब्दों में आत्म-साक्षात्कार एवं ईश्वरीय अनुग्रह के नाम से पुकारा जाता है । जिसकी उपासना इस मूल प्रयोजन को पूरा नहीं करती, रिझाने वाले उपचारों तक भटकती रहती है उसके पल्ले कुछ पड़ता नहीं रिझने वाले उपचारों तक भटकती रहती है उसके पल्ले कुछ पड़ता नहीं । ऐसे ही लोग साधन की निरर्थकता का रोना रोते और असफलता की शिकायत करते पाये जाते हैं । पूजा उपचारों से देवता के प्रसन्न होने और मनचाहे वरदान देने की आशा लगाये रहने वाले व्यक्ति भ्रान्तियों की भूलभुलैया में चक्कर भर काटते रहते हैं उन्हें वह लाभ नहीं मिलता जो आत्म-साधना से मिल सकते है, मिलता रहा है ।

आत्म-चिन्तन, आत्मसुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास की चार दीवारों पर आत्मिक प्रगति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का भवन खड़ा होता है । हवाई किला बनाकर कल्पना की उड़ानें तो उड़ी जा सकती हैं पर यदि मजबूत महल बनाना है और उसमें निवास करने का वास्तविक आनन्द लेना हो तो जमीन पर उसकी सुदृढ़ आधारशिला रखी जानी चाहिए । ईश्वरीय अनुग्रह की अमृत वर्षा तो सर्वत्र अनवरत रूप में होती रहती है उसके लिए माँगने कहीं नहीं जाना है, और अनुरोध आग्रह किसी से नहीं करना है । साधना का उद्देश्य एक ही है, आत्मशोधन । दुष्कर्म से स्थूल शरीर, दुर्बुद्धि से सूक्ष्म शरीर और दुर्भावों से कारण शरीर में, विकृतियाँ भर जाती है और समूचा व्यक्तित्व पतन के गर्त में जा गिरता है । इसी दुर्गति के खड्ड में पड़े हुए लोग नित्य उदय होने वाले सूर्य के प्रकाश से वंचित रहते हैं । ईश्वरीय अनुग्रह से वञ्चित रहते हैं । ईश्वरीय अनुग्रह से वंचित रहने का कारण हमारी अपनी ही कृतज्ञता होती है । कठोर चट्टान पर अनवरत वर्षा होते हुए भी हरियाली उत्पन्न नहीं होती । इसमें बादलों से अनुरोध करना व्यर्थ है । चट्टान को ही कोमल रेत में बदलना पड़ेगा।

ईश्वर से विविध विधि प्रार्थनाएँ की जाती हैं । उपासनाओं के अनेकानेक विधि विधान हैं । इनमें प्रकारान्तर से आत्मशोधन के सभी संकेतों की ही भरमार है । वेदान्त दर्शन के अनुसार अपनी परिष्कृत आत्मा ही परमात्मा है । यह परिष्कार ही साधना विज्ञान की पृष्ठभूमि है । ब्रह्मविद्या के अन्तर्गत तत्वज्ञान की सुविस्तृत विवेचना में लिए दर्शनशास्त्र का सृजन हुआ है । उसके अनेक निर्धारणों पर पैनी दृष्टि डाली जाय और खोजा जाय कि आध्यात्म जीवन का इतना विशालकाय कलेवर किस लिए खड़ा किया गया है तो इस प्रश्न के उत्तर में एक ही निष्कर्ष उभर कर आवेगा कि अन्तःकरण पर चढ़ी हुई पशु प्रवृत्तियों को निरस्त करके उस जगह दैवी विभूतियों को, उच्चस्तरीय आस्थाओं को प्रतिष्ठापित किया जाय। यही एकमात्र वह मार्ग है जिस पर चलते हुए आत्मा को परमात्मा बनने का अवसर प्राप्त होता है । नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम, अणु से विभु, लघु से महान बनने का एक उपाय है कि अपनी तुच्छताओं, सकीर्णताओं दुर्बलताओं की बेड़ियाँ काट डाली जाँय और महानता के उन्मुक्त आकाश में विचरण किया जाय ।

धुँधले दर्पण में मुँह दिखाई नहीं पड़ता, गँदले पानी की तली में पड़ी हुई वस्तु ओझल रहती है, अन्तर की मलीनताओं के कारण ही आत्मा मूर्छित पड़ी रहती है और परमात्मा खोजने से भी नहीं मिलता । वासना और तृष्णा के आवरण आँखों पर पट्टी बाँधे रहते हैं। लोभ मोह के रस्सों, भवबन्धनों में जकड़े रहते हैं । संकीर्ण स्वार्थपरता का ग्रह ही जीव रूप गज को अपने मुँह में निगले रहता है । इनसे छुटकारा मिल सके और उदात्त चिन्तन को दृष्टि मिल सके तो समझना चाहिए कि जीवन मुक्त हो गया, मुक्ति मिल गई। परिष्कृत दृष्टिकोण का नाम ही स्वर्ग है । जो अपनी मौलिक गरिमा को समझ सका, विश्व उद्यान में अपनी माली जैसा कर्तव्य परायणता निश्चित कर सका, अपनी बहिरंग एवं अन्तरंग गतिविधियों को उच्चस्तरीय बना सका, समझना चाहिए उसने अधिभौतिक, अधिदैविक और आध्यात्मिक व्यथा वेदनाओं की नरक वैतरणी पार कर ली और स्वर्ग के राज्य का आधिपत्य प्राप्त कर लिया । स्वर्ग एवं मुक्ति उस विवेक सम्मत दूरदर्शी दृष्टिकोण में सन्निहित हैं जिसे अध्यात्म के नाम से जाना माना जाता है ।

महामानव, सिद्ध पुरुष, महात्मा, देवात्मा, अवतारी, चमत्कारी आदि के नाम से जिन विशिष्ट आत्माओं के चरणों में जनसाधारण की श्रद्धाञ्जलि अर्पित होती है, जो स्वयं भार ढोते और दूसरों को अपनी नाव पर बिठाकर भवसागर से पार लगाते हैं इन्हें ही ऋषि एवं देवमानव कहते हैं । इनकी एक ही विशेषता, एक ही सफलता होती है कि उन्होंने अपने कषाय कल्मषों को धो डाला होता है । क्षुद्रता का परित्याग कर महानता को अपना लिया होता है। ऐसे आप्त पुरुषों में भगवान की दिव्य ज्योति आलोकित पाई जाती है और उनके सम्पर्क में आने वालों को पारस छूकर लोहे को सोना बनने जैसा लाभ प्राप्त होता है ।

महामानवों का सहयोग, देवताओं का वरदान, ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिकता को व्यावहारिक जीवन में उतारने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं । मनुष्य जीवन की पाँचवी सफलता है आत्मिक प्रगति के अवरोध का निवारण । इसी उलझन के कारण मनुष्य को पशु जीवन जीना पड़ता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है और नारकीय यातनाएँ सहनी पड़ती हैं । इसका समाधान भी आध्यात्मिक आदर्शों को अपना लेने के अतिरिक्त और किसी प्रकार संभव नहीं हो सकता है ।

यदि हम जीवन की उलझनें सुलझाना चाहते हैं, समस्याओं का हल पाना चाहते हैं तो अध्यात्म की रीति-नीति अपनाने के लिए साहस जुटाना चाहिए । इसी पथ पर चलते हुए मनुष्य जीवन का सच्चा आनंद और सच्चा लाभ लिया जा सकता ।

सुखी जीवन का उपाय एक ही है, समस्त समस्याओं का समाधान एक ही है कि हमारी आस्था बदले, उसमें उत्कृष्टता का अधिकाधिक समावेश हो और उसका प्रतिफल व्यक्तित्व में बढ़ते हुए देवत्व के रूप में परिलक्षित हो । देव समाज के लिए स्वर्गीय परिस्थितियाँ सुरक्षित हैं । सन्त इमर्सन कहते थे कि मुंझे नरक में भेज दो मैं वही अपने लिए स्वर्ग बना लूँगा ।" उनका यह दावा मिथ्या नहीं था । उत्कृष्टतावादी के लिए सामान्य परिस्थितियों में भी स्वर्गीय सुख शान्ति का सृजन कर सकना नितान्त सरल स्वाभाविक एवं संभव है । यदि हम आध्यात्मवादी रीति-नीति अपना सकें तो निश्चित रूप से वैज्ञानिक जीवन में प्रस्तुत अनेकानेक समस्याओं का समाधान पा सकते हैं ।

२. सामाजिक संदर्भ में

यह संसार भगवान का सुरम्य उद्यान है । मनुष्य उसका ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार । उसे इस उपवन की उल्लास भरी सैर करने भेजा है और पर्याप्त सुविधा साधन देकर यहाँ की परिस्थितियाँ अधिक अच्छी बनाने में कुशलता दिखाने का काम सौंपा गया है । इस स्थिति में मनुष्य प्राणी को निरन्तर ही हर्षोल्लास की अनुभूति होनी चाहिए । बुद्धि वैभव में वह क्षमता है कि मरुथल में फूल खिला सके फिर क्या कारण है कि उससे सम्पन्न होते हुए भी मनुष्य को रोना-रुलाना कलपना-कलपाना पाया जाता है ?

सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व पाने वाला मनुष्य प्राणी इस धरती को स्वर्ग बना सकने की संभावनाओं में पूरी तरह सुसज्जित है । यहाँ निर्वाह ही नहीं आनंद और उल्लास के प्रचुर साधन पग-पग पर उपलब्ध है । मनुष्य का इस पृथ्वी पर एकछत्र राज्य है । उसकी उपलब्धियों पर आश्चर्य प्रकट किया जाता है, किन्तु इससे भी बड़े आश्चर्य की बात यह है कि हर समस्या को सहज ही सुलझा सकने में समर्थ मनुष्य को किस कारण इतनी अधिक गुत्थियों में जकड़ना पड़ा है जो सुलझने में नहीं आती और डरावनी काली घटाओं की तरह निरन्तर अधिक सघन होती चली आती है ।

प्रगति के नाम पर जहाँ मनुष्य ने अनेक वस्तुएँ कमाई हैं वहाँ समस्यायें भी कम नहीं बढ़ाई हैं—कठिनाईयों में भी कम उन्नति नहीं की है । अब से कुछ शताब्दी पूर्व तक मनुष्य इतने विकृत और निराश नहीं थे जितने कि अपने प्रगतिशील कहे जाने वाले समय में उत्पन्न हुए हम लोग हैं । तब साधन भले ही कम रहे हों पर लोग मिल-जुल कर रहते थे और एक-दूसरे के प्रति सहयोग सद्भाव की उदार आत्मीयता अपनाकर अधिक सुखी और संतुष्ट रहते थे । लगता है वह सौभाग्य अपने हाथों से कोई और महादैत्य क्रमशः छीनता ही चला जा रहा है ।

सिंह व्याघ्र के आक्रमण—आतंक की बात समझ में आती है। साँप बिच्छू का, प्रकृति प्रकोप का भय समझ में आता है पर मनुष्य ही मनुष्य के शोषण का शिकार बने, मनुष्य ही मनुष्य का रक्तपान करने में संलग्न दिखाई पड़े, मनुष्य को मनुष्य के ही आतंक से काँपना पड़े, यह स्थिति अत्यन्त विलक्षण है । सहकारी स्वभाव का होने पर भी अपराधों और आक्रमणों की धूम क्यों बनी रहे ? उस विचित्रता का उत्तर तो प्राप्त किया ही जाना चाहिए ।

राजनीति के क्षेत्र में विग्रहों का अन्त नहीं । शासन तंत्र चलाने वाले नेताओं के मस्तिष्क पर इतना दबाव रहता है कि वे चैन से एक दिन भी नहीं रह पाते । तनाव के कारण उनका स्वास्थ्य क्षीण होता जा रहा है और अधिकांश को अकाल में ही काल कवलित होना पड़ता है । वे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का हल खोजने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न करते हैं पर कुछ बन नहीं पाता। एक सिरे को ढकने की बात बन नहीं पाती कि दूसरा सिरा उघड़ कर नई चिन्ता उत्पन्न कर देता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामाजिक समस्याएँ भी अपने युग में कम नहीं हैं। समाज के मूर्धन्य व्यक्ति उनसे चिन्तित हैं और समाधान के लिए अपने ढंग से प्रयत्न करते हैं पर देखने में यही आ रहा है कि एक गुत्थी सुलझने नही पाती कि दूसरी नई उठकर खड़ी हो जाती है । एक रोग अच्छा नहीं हो पाता कि दूसरा नया उठ खड़ा होता है। एक युद्ध समाप्त होने नहीं पाया कि नये युद्ध की नींव पड़ जाती है ।

यहाँ हमें समझना होगा कि समाज की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं, व्यक्तियों का समूह ही समाज है। व्यक्ति जैसे होंगे वैसा ही समाज बनेगा । वैयक्तिक समस्यायें ही इकट्ठी होकर सामाजिक समस्यायें बन जाती हैं । आज की परिस्थितियों में समाज और राष्ट्र एक ही बात है । किसी जमाने में वे दो भी थे पर आज तो सामाजिक परम्पराओं को राष्ट्रीय मानकर चलने में किसी को कोई बड़ी आपत्ति नहीं है । सामाजिक-राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रस्तुत असंख्य समस्याओं का वर्गीकरण किया जाय तो उन्हें पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१)जन स्वास्थ्य की समस्या (२)अपराध और युद्ध (३)आर्थिक असन्तुलन सम्पत्ति की कमी (४)बढ़ती हुई जनसंख्या (५)स्वार्थपरता और विकृत आग्रह । इन पाँचों के अन्तर्गत उन समस्त समस्याओं को लिया जा सकता है जो अनेक राष्ट्रों के सामने अनेक आकृति प्रकृति की बनकर सामने आती रहती हैं । इन्हीं को सुलझाने के लिए समाजसेवी, बुद्धिजीवी, राजनेता, वैज्ञानिक अर्थशास्त्री विभिन्न ढंगों से सोचते, विभिन्न उपाय खोजते और विभिन्न कदम उठाते देखे जाते हैं । कल्याणकारी एवं सुरक्षात्मक योजनाओं का निर्धारण उन्हीं प्रयोजनों के लिए संघ के मंच पर इन्हीं समाधानों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्न होते और कूटनीतिक आदान-प्रदान चलते हैं । इतने पर भी देखा यही जाता है कि बात कुछ बन नहीं रही है और वाँछित समाधान निकल नहीं रहे हैं ।

कुछ समय पहले यह समझा जाता था कि समृद्धि बढ़ने से समाज की इन समस्याओं का हल निकल आयेगा, किन्तु यह प्रयोग सुसम्पन्न कहे जाने वाले देशों में हो चुका है । अमेरिका और योरोप के अनेक देश भौतिक प्रगति के हर क्षेत्र में पिछड़े देशों की तुलना में अत्यधिक ऊँचाई तक बढ़ गए हैं । पर वहाँ के लोगों की अशान्त मनः स्थिति, बढ़ती हुई अपराधी प्रवृत्ति तथा दूसरी सामाजिक विकृतियों को देखकर लगता है कि मात्र भौतिक उन्नति को सब कुछ मान बैठना भूल है । समुन्नत कहलाने वाले देशों में इन व्यक्तियों की संख्या दिन-दिन बढ़ रही है जो थकान और तनाव की मनःस्थिति से निरन्तर क्षुब्ध रहते हैं और नींद की गोली खाकर कुछ देर आधी अधूरी नींद ले पाते हैं । स्वाभाविक स्नेह सद्भाव घट जाने से संयुक्त परिवार प्रणाली के आनन्द को गँवा बैठे । अनिश्चित और अविश्वस्त दाम्पत्य जीवन को कृत्रिम आकर्षणों के सहारे मधुर बनाने के प्रयोग सर्वथा असफल हो रहे हैं और परिवार संस्था टूट रही है । रोज तलाक, रोज विवाह की विडम्बना ने दाम्पत्य जीवन का आनन्द ही नष्ट कर दिया । सन्तान और अभिभावकों के बीच स्नेह-श्रद्धा के सूत्र अत्यन्त दुर्बल पड़ गये । पशु-पक्षियों में बच्चों और अभिभावकों का रिश्ता शिशु काल तक ही सीमित रहता है । समर्थ होते ही वह रिश्ता टूट जाता है । मनुष्य समाज में भी यही बात बढ़ रही है । विवाह का उद्देश्य काम-कौतुक बन रहा है । यह पशुता की ओर लौटना हुआ । फिर पशु-जीवन से बढ़कर पारिवारिक जीवन का आनन्द भी कैसे मिलेगा ? भटका हुआ मनुष्य, निष्ठारहित, परिवार-आदर्श विहीन समाज की जो दुर्गति होनी चाहिए उसे हम तथाकथित समृद्ध देशों के आन्तरिक खोखलेपन में झाँककर देख सकते है । यों वहाँ भी भौतिक प्रगति के नगाड़े बज रहे हैं और उपलब्धियों की गर्वोक्तियाँ की जा रही हैं ।

यह तथ्य ध्यान में रखा जाना चाहिये कि मानवी सत्ता दो भागों में विभक्त है—एक भौतिक, शरीर पक्ष है दूसरा आत्मिक चेतना का । भौतिक निर्वाह के लिए सुविधा साधन चाहिये और आत्मिक संतोष के लिए आदर्शवादी वातावरण । दोनों साधन जहाँ जुटेंगे वहाँ सच्ची प्रगति मानी जा सकेगी और वही सुख-शान्ति की सम्भावना बढ़ेगी । यहाँ एक बात और भी समझ लेने की है कि चेतना मुख्य है और कलेवर गौण । आत्मिक प्रगति के हित स्वल्प

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधनों में भी हँसते-हँसाते ऋषि जीवन जिया जा सकता है पर प्रचुर साधनों के होते हुए भी आन्तरिक विकृतियाँ असुर स्तर के उद्वेग अनाचारों का सृजन करती रहेंगी ।

सम्पत्ति एक प्रकार की आग है जिसे अध्यात्मवाद के चिमटे से ही पकड़ा जाना चाहिए । नंगे हाथ अंगार पकड़ लेने की चेष्टा में खतरा ही खतरा है । वासना, तृष्णा से, लोभ-मोह से संकीर्ण स्वार्थपरता से घिरा हुआ व्यक्ति कितना ही साधन सम्पन्न क्यों न हो अपनी उपलब्धियों का सदुपयोग न कर सकेगा । दुरुपयोग के दुष्परिणाम उसे पग-पग पर भुगतने पड़ेंगे । यही हो रहा है । हम अपनी प्रत्येक उलझन, समस्या, कठिनाई के पीछे उसी अनास्था को ताण्डव नृत्य करते देख सकते है ।

राजतंत्र की समर्थ सत्ता के माध्यम से समाधान निकालने की बात भी इसी पृष्ठभूमि पर सोची जा सकती है । आज सर्वत्र शासनतन्त्र में जनतान्त्रिक पद्धति ही कार्य कर रही है । इस स्थिति में जनसाधारण में आध्यात्मिक दृष्टि का विकास करके ही आदर्श शासन व्यवस्था की स्थापना सम्भव है । अपने मतदान का मूल्य और महत्व समझने वाले नागरिकों का चुना हुआ लोकतन्त्र रामराज्य की स्थापना करता है और उसी से सतयुगी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं । अधिनायकवाद और राजतन्त्र की बात दूसरी थी पर प्रजातन्त्र में तो प्रजा ही अपने शासन की व्यवस्था आप करती है । भ्रष्ट प्रलोभनों और उद्देश्यों से प्रेरित होकर मतदान करने वाले वोटर ही वस्तुतः प्रजातन्त्र की जड़ खोदते हैं और अवांछनीय शासनतन्त्र खड़ा करने के लिए हावी होते हैं ।

बात घूम फिरकर वहीं आ जाती है कि उत्कृष्ट शासन का आधार विवेकवान नागरिकों के दृष्टिकोण पर निर्भर है । शासन का स्वरूप कितना ही शक्तिशाली हो पर उसका संचालक नियुक्त करने का अधिकार तो मतदाताओं के हाथ में ही सुरक्षित रहता है । स्वस्थ प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए सर्वमान्य और सर्वोपरि उपाय एक ही है कि प्रजातन्त्र के प्रजाजनों को अपने उत्तरदायित्व का भान हो और उसका उपयोग करते समय राष्ट्र को इस पवित्र थाती का पवित्रतम उपयोग करने की बात को ध्यान में रखें ।

यह दृष्टि बिशुद्ध रूप से आध्यात्मिक कही जा सकती है । इसी बात को ऐसे भी कह सकते हैं कि स्वच्छ शासन की स्थापना उन प्रजाजनों के लिए ही संभव है जिन्हें परिष्कृत दृष्टिकोण अपनाने वाले "आध्यात्मवादी" की संज्ञा दी जा सकती है । शासनतन्त्र द्वारा राष्ट्रव्यापी, विश्वव्यापी समस्याओं का स्थिर समाधान इस पर निर्भर है कि नागरिकों, सरकारों और मूर्धन्य नेतृत्व द्वारा आध्यात्मवादी आदर्शों को किस सीमा तक अपनाया गया है ।

गहराई से देखा जाय तो ये सामाजिक सयमस्याएँ स्वतन्त्र रूप में कुछ नहीं वैयक्तिक समस्याओं का ही सामूहिक रूप हैं । असंयम से व्यक्ति दुर्बल और रुग्ण पड़ता है । उसी को सामूहिक रूप से बीमारी, महामारी, अकाल मृत्यु की व्यापक समस्या कहा जा सकता है । मानसिक विकृतियाँ व्यक्तिगत जीवन में मनोविकारों और उद्वेगों के ग्रसित रहने एवं लड़ने-झगड़ने के लिए प्रेरित करती है । यही दुष्प्रवृत्ति सामूहिक जीवन में दंगों उपद्रवों का रूप धारण करती है और अपराधी दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए भड़काती है । उपद्रवों और अपराधों को राष्ट्रीय समस्या के प्रकारान्तर में व्यक्तियों की दुर्बुद्धि का सामूहिक अभिशाप कहा जा सकता है ।

व्यक्ति की दरिद्रता ही देश की गरीबी और व्यक्तिगत अनैतिक धन की आकाँक्षा राष्ट्रीय अर्थ असन्तुलन का आधार है । सुसंस्कारी आधार से भटके हुए परिवार कुत्साओं और कुंठाओं से घिरे रहते हैं । अविवेकपूर्वक बच्चों का अन्धाधुन्ध उत्पादन राष्ट्रीय संकट बनकर खड़ा होता है । विकास के लिए जितने पैर पीछे जाते हैं उससे ज्यादा नये रोजी रोटी तथा सुविधा माँगने वाले उत्पन्न हो जाते हैं । विकास की उपलब्धियाँ नई आवश्यकता पूरी करने में सफल नहीं हो पाती फलतः समस्याएँ जहाँ की तहाँ अड़ी बैठी रहती हैं ।

व्यक्तिवाद के आधार पर पनपने वाली स्वार्थपरता समूह रूप से असंगठित और सहकारिता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की उपेक्षा करने वाले प्रजाजनों की समस्या बनती है । मुनाफाखोरी, कामचोरी, करचोरी, आपाधापी, सार्वजनिक प्रयोजनों की उपेक्षा, सहकारिता में अनुत्साह, वर्ग स्वार्थ और वर्ग संघर्ष जैसे आचरणों से ही कोई देश दुर्बल बनता है । इन्हीं को किसी राष्ट्र का आन्तरिक खोखलापन कहा जा सकता है। व्यक्तिगत जीवन में आत्मिक दुर्बलता को और सामूहिक जीवन में प्रजाजनों की चारित्रिक कमजोरी का नाम दिया जा सकता है । संक्षेप में व्यक्ति की छोटी दीखने वाली समस्याएँ ही सामूहिक रूप से विशालकाय राष्ट्रीय अथवा सामाजिक समस्याएँ कही जाती हैं । इन्हीं दुर्बलताओं से शिक्षा, सम्पत्ति, आदि साधनों से सम्पन्न देश आन्तरिक दृष्टि से दुर्बल बने रहते हैं । इसके विपरीत उन देशों में आन्तरिक दृढ़ता, भावनात्मक एकता, साहसिक प्रखरता एवं चरित्रनिष्ठा होती है । वे स्वल्प साधनों के सहारे अपना वर्चस्व सिद्ध करते हैं और न अन्तर्द्वन्दों में टूटते हैं और न बाहरी आक्रमणों से हारते हैं ।

जिन सत्प्रवृत्तियों की यहाँ चर्चा की जा रही है उनको समन्वय की सामाजिक प्रखरता अथवा सामूहिक आध्यात्मिकता कह सकते हैं । कर्तव्य पालन के लिए जागरूक आदर्शों के प्रति निष्ठावान एवं उदार आत्मीयता से प्रेरित होकर सेवा सहायता के लिए आतुर उत्साह को आध्यात्मिकता माना गया है, यही है वह दिव्यक्षमता जिसे आत्मशक्ति कहते हैं । यही व्यक्ति को लौह पुरुष बनाती है और उसी के सहारे राष्ट्रों की सुरक्षा लौह प्राचीरों से भी अधिक सुनिश्चित बनी रहती है । पूर्व वर्णित पाँचों सामाजिक समस्याओं का हल इसी माध्यम से निकाल सकते हैं ।

(१) राष्ट्रीय अस्वस्थता की समस्या का समाधान करने के लिए साफ सफाई, कृमिनाश एवं अस्पतालों का प्रबन्ध किया जाता है । सरकार अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप कर्मचारियों की संख्या नियत रखती है और सुविधा साधन जुटाती है । पर वे अस्पताल थोड़े से ही बीमारों को भर्ती कर सकते हैं । जो इनसे लाभ उठाते हैं उनकी तुलनायें वे कहीं अधिक हैं जिन्हें यातायात की तथा दूसरी कठिनाइयों के कारण वह सहायता नहीं मिल पाती । जो इनमें चिकित्सा कराते हैं वे सभी अच्छे भी कहाँ हो पाते हैं । जो अच्छे हो जायँ इनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें उसी कष्ट की पुनरावृत्ति न होगी अथवा दूसरे नये रंग रूप का रोग फिर न उठ खड़ा होगा ?

यहाँ अस्पतालों की निरर्थकता नहीं बताई जा रही है और न यह कहा जा रहा कि उन्हें न खोला जाय और लाभ न उठाया जाय । प्रतिपादन केवल इतना है कि यदि जनसाधारण ने अप्राकृतिक जीवन न छोड़ा—आहार-विहार का असंयम न सुधारा तो उपचार केवल सामयिक चमत्कार उत्पन्न भले ही कर दे, स्वास्थ्य समस्या का स्थायी समाधान न निकलेगा । असंयमी लोग प्रकृति की अवज्ञा का दंड भुगतेंगे और आये दिन बीमार पड़ेंगे । नई बीमारी नई दवा का कुचक्र अपनी धुरी पर यथावत् घूमता रहेगा । संकट टलेगा नहीं ।

सफाई कर्मचारी एक ओर कचरा साफ करेंगे दूसरी ओर वहाँ रहने वाले अथवा उधर से निकलने वाले फिर गंदगी बरसाने लगेंगे । हर आदमी के साथ एक मेहतर घूमे तो बात दूसरी है अन्यथा गन्दगी फैलाने की आदत सरकार की सफाई योजना को सफल न होने देगी । मक्खी, मच्छर आदि हानिकारक कीड़े गन्दगी की उपज हैं । डी० डी० टी० से एक दिन जितने मच्छर मारे जायेंगे दूसरे दिन सड़ी गन्दगी उतने ही नये पैदा कर देगी ।

स्वास्थ्य रक्षा के लिए जो उपाय किये जाते हैं वे आवश्यक तो हैं पर पर्याप्त नहीं । होना यह चाहिए कि शिक्षा संस्थाओं से लेकर धर्मतंत्र सहित प्रचार के प्रत्येक साधन में लोकमानस की स्वच्छता, संमय श्रम निष्ठा जैसी आरोग्यरक्षक आदतें सीखने के लिए प्रशिक्षित किया जाय । सामाजिक संगठन वैसा वातावरण बनायें और बीमार पड़ना भी एक अपरा घोषित किया जाय । बार-बार बीमार पड़ने वालों को दया का पात्र और सहायता का अधिकारी तो माना जाय पर साथ ही उनकी असावधानी और अव्यवस्थितता को कड़ाई से कसा भी जाय । जितने प्रयत्न गन्दगी साफ करने के लिए किये जाते हैं, जितने प्रबंध चिकित्सा उपचार के होते हैं उससे भी अधिक प्रयत्न इस स्तर के होने चाहिए कि हर मनुष्य स्वच्छता, संयम, श्रम निष्ठा जैसे आधारों का महत्व ही न समझें वरन् उन्हें जीवन नीति का अंग मानकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलें। यह कार्य कठिन कहा जा सकता है पर उतना कठिन नहीं है जितनी कि अस्वस्थता के कारण उत्पन्न होने वाली रुग्णताजन्य पीड़ा और आर्थिक हानि । समस्या के कारण को समझा जाय और उसका स्थिर समाधान ढूँढा जाय तो एकमात्र यही निष्कर्ष निकलेगा कि जीवन-यापन की उस पद्धति को अपनाया जाय जिसे शरीर क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली आध्यात्मिकता कहा जा सकता है । आध्यात्म एक मान्यता है जो विभिन्न क्षेत्र में विभिन्न रूपों में परिलक्षित होती है । शरीरक्षेत्र में बरती जाने वाली सतर्कता और संमयशीलता को आध्यात्म की प्रेरणा कही जायेगी । यही है वह आधार जिसे अपनाकर स्वास्थ्य संकट से सदा सर्वदा के लिए छुटकारा मिल सकता है ।

(२)मानसिक उद्वेगों से पीड़ित व्यक्ति उद्धत आचरण करते हैं । अपना स्तर गिराते हैं और दूसरों को कष्ट देते हैं । कभी-कभी मर्यादाओं के लिए अनास्थावान् बनकर ऐसे लोग मानवी और सामाजिक शील सदाचार को रोंदते हुए अपराधी बनते, गुण्डागर्दी अपनाते, आतंक उत्पन्न करते और चोरी ठगी पर उतारू पाये जाते हैं । नृशंस क्रूर कर्म करने में भी उन्हें संकोच नहीं होता । इस प्रकार के उद्धत आचरण रोकने के लिए पागलखाने, जेलखाने बनाये गये हैं और उन्हें रोकने पकड़ने की व्यवस्था की गई है । पर देखना यह है कि क्या यह प्रतिबंधात्मक उपाय पर्याप्त है। देखा यही जाता है कि कडे कानून, कठोर दंड और अपराध सूत्रों की खोजबीन की व्यवस्था रहते हुए भी वे दुष्प्रवृत्तियाँ रूक नहीं रही हैं । आत्महनन से लेकर परपीड़न तक के वर्गों में विभाजित होने वाले अपराध घट नहीं बढ़ ही रहे हैं । दंड भय से बच निकलने की असंख्य तदबीरें सोची और निकाली जाती रहती हैं और छिपे एवं खुले रूप में वह सब होता रहता है जिसे रोकने के लिए खर्चीले एवं कुशलतापूर्ण उपाय बरते जाते है ।

यहाँ भी दण्डनीति एवं रोकथाम के प्रयत्नों का उपहास नही उड़ाया जा रहा और न उन्हें अनावश्यक ठहराया जा रहा है । वे प्रयत्न तो होने ही चाहिए वरन् उन्हें अधिक विस्तृत एवं प्रामाणिक किया जाना चाहिए । सोचने की बात इतनी भर है कि क्या मनुष्य की दुर्बुद्धि से उत्पन्न अनाचारों दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने के लिए कानूनी पकड़ पर्याप्त है ? यह तभी हो सकता है जब हर आदमी के पीछे एक पुलिसमैन लगाया जाय और वह पुलिसमैन भी किसी अन्य लोक का निवासी हो ।

अपराध मात्र उतने ही नहीं है जितने न्याय संहिता में दंडनीय ठहराये गये हैं । छोटे और व्यक्तिगत अपराधों पर कानूनी अंकुश नहीं है । नशा पीना, असंयम बरतना, अस्वच्छ रहना, अनुशासनहीनता, अस्त-व्यस्तता, आलस्य प्रमाद, कटु भाषण, अशिष्ट आचरण, दुर्व्यसन, द्वेष, दुर्भाव, जैसे व्यक्तिगत अवांछनीयताओं पर सरकारी अंकुश नहीं है । पर वे आदतें व्यक्ति और समाज के लिए कम हानिकारक नहीं होतीं । यह अवांछनीयताएँ ही बढ़कर विक्षोभकारी विभीषिकाएँ उत्पन्न करती हैं । ऐसी ही छोटी-छोटी बातें व्यक्ति को गया-गुजरा बनातीं और समाज को खोखला करती हैं । पागल की तोड़-फोड़ हमें चौंकाती है पर सनकी एवं उद्धत प्रकृति के मनुष्य धीरे-धीरे कितनी विसंगतियाँ खड़ी कर देते हैं उसे खोजा जाय तो और भी अधिक हानि हुई दृष्टिगोचर होगी ।

अग्निकाण्ड से शहतीर जल जाने की चर्चा होती है पर घुन द्वारा उसे खोखला करके धराशायी बनाने देने को सामान्य कहकर टाल दिया जाता है। बड़े अपराधों की भयंकरता सर्वविदित है किन्तु छोटे अपराध जिन्हें नैतिक एवं नागरिक मर्यादाओं का उल्लंघन कह सकते हैं, कम भयानक नहीं हैं। खेत को हिरन चर गये अथवा फसल को कीड़ों ने साफ कर दिया विश्लेषण की दृष्टि से दो प्रसंग हो सकते हैं पर हानि की दृष्टि से दोनों को ही समान रूप से हानिकारक ठहराया जायेगा । अवांछनीयता हो तो अपराधी दुष्प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति और समाज दोनों को असामान्य क्षति उठानी पड़ती है ।

इनका नियन्त्रण जनसाधारण का दृष्टिकोण बदलने से ही सम्भव होगा । आस्तिकता, आध्यात्मिकता, धार्मिकता की आस्थाएँ ही अन्तःकरण को परिष्कृत करती हैं और उन्हीं की प्रेरणा से मनुष्य सज्जनता अपनाने के लिए विवश होता है । सुसंस्कृत व्यक्ति पर न सामाजिक अंकुश की आवश्यकता पड़ती है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और न सरकारी रोकथाम की । वह आन्तरिक सदाशयता से प्रेरित रहता है, अपना स्तर ऊँचा उठाता है और दूसरों को हानि पहुँचाना तो दूर उल्टे लोकमंगल के अनेक आधार खड़े करता है ।

बढ़ती हुई अनैतिकता का विकसित रूप अपराधों की बाढ़ के रूप में देखा जा सकता है । इसे न सम्पन्नता रोक सकती है न दण्डनीति ! अमेरिका की साधन सम्पन्नता सर्वविदित है फिर भी वहाँ अपराधों का ज्वार ऊपर उठ रहा है । दण्ड नीति में कमी कहाँ है । हर अपराध के विरुद्ध कड़े कानून मौजूद हैं । फिर भी जेल-खानों के भीतर तक अपराध होते रहते हैं । सामयिक उपचार जो हो रहे हैं वे उत्साहपूर्वक काम में लाये जायें पर साथ ही यह आवश्यकता भी समझी जाय कि मानवी अन्तःकरण को सुसंस्कृत बनाने के लिए समस्त साधन झोंक दिये जायें । चिकित्सा पर होने वाले खर्च की तुलना में अन्न, वस्त्र का खर्च स्वभावतः अधिक होता है । अपराधों की रोकथाम और अपराधियों को दण्ड देने पर जितना ध्यान दिया और खर्च किया जाता है उससे कम नहीं अधिक ही प्रयत्न सभ्यता एवं संस्कृति को हृदयंगम कराने के लिए होने चाहिए । इस प्रयत्न को पुराने शब्दों में आध्यात्मिकता का प्रसार कहा जायेगा । वस्तुतः यही वह आधार है जिसके सहारे हर व्यक्ति को 'पुलिस मैन' बनाया जा सकता है । स्वयं आदर्शवाद अपनाने वाले ही दूसरों को सही नागरिक बनकर रहने के लिए विवश कर सकते हैं । अपनी छाप छोड़कर वे सम्पर्क क्षेत्र को शालीनता से भरा-पूरा बना सकते हैं । ऐसी दशा में न तो दुष्प्रवृत्ति के पनपने की आशंका रहेगी और न उनकी रोकथाम के लिए उतना खर्चीला ढाँचा खड़ा रखने की आवश्यकता पड़ेगी ।

अपराधी दुष्प्रवृत्तियों और हेय अवांछनीयताओं का स्थायी उन्मूलन करने के लिए आध्यात्म की पुनः प्राण प्रतिष्ठा करना न तो असंभव है और न कठिन। वातावरण में व्यक्तित्वों का अन्तरंग और बहिरंग ढाँचा ढालने की पूरी क्षमता है । समाज के मूर्धन्य व्यक्ति यदि इसकी आवश्यकता अनुभव कर सकें तो बुद्धिजीवी, अर्थशास्त्री, साहित्य सृजेता, धर्माध्यक्ष, शासनाधिकारी एवं कलाकार व प्रतिभाशाली विभूतियों के संयुक्त प्रयास से ऐसा वातावरण सहज ही बन सकता है जिसमें जनसाधारण को उत्कृष्ट चिन्तन एव आदर्श कर्तत्व अपनाने की ही इच्छा उत्पन्न हो और वैसे ही कदम उठें ।

मानवी चिन्तन यदि मोड़ा जा सके तो भय, आशंका और अविश्वास के कारण पनपने वाली हिंसा और प्रतिहिंसा की जड़ें कट जायेंगी । आये दिन जो दंगे, फसाद, वर्ग संघर्ष, क्षेत्रीय युद्ध और विश्व युद्ध के बादल घुमड़ते रहते हैं उनका दर्शन भी न होगा। घृणा के स्थान पर आत्मीयता, द्वेष के स्थान पर प्रेम की, शोषण के स्थान पर सहयोग की स्थापना की जा सकती है । ऐसा हो सके तो आन्तरिक सुव्यवस्था और सीमा सुरक्षा के लिए समस्त संसार में जितनी धन शक्ति खर्च करनी पड़ रही है उसे शिक्षा, सिंचाई जैसे उपयोगी कार्यों में लगाया जा सकता है । तब अपनी दुनिया में एक भी आदमी अशिक्षित, एक भी विभुक्षित, एक भी रुग्ण और एक भी उद्विग्न दिखाई न पड़ेगा । परस्पर घात प्रतिघात में लगी हुई शक्ति यदि सृजन सहयोग में लगा सके तो उसका दोहरा लाभ होगा । ध्वंस के दुष्परिणामों से छुटकारा मिलेगा और सृजन की सुखद संभावनाएँ बढ़ेंगी ।

छोटे से परिवार में सभी लोग मिल-जुलकर स्नेह सद्भावपूर्वक गुजारा कर लेते हैं । उसमें बाल वृद्ध,-समर्थ, असमर्थ, विकसित-अविकसित सभी स्तर के लोग रहते हैं, पर किसी को एक-दूसरे से भय नहीं रहता । एक-दूसरे के प्रति संदेह अविश्वास नहीं करते, दुर्भाव नहीं रखते, और दुलार सहयोग में कमी नहीं देखते । पारस्परिक सद्भाव सम्पन्नता से घर के हर सदस्य को अपने-अपने ढंग का आनन्द और सन्तोष मिलता है । सभी एक-दूसरे से लाभ उठाते हैं और उस मिली-जुली उदार सहकारिता से पूरा परिवार सुदृढ़ सुविकसित बनता चला जाता है । सुसंस्कृत परिवारों में कई प्रकार की कठिनाइयाँ रहते हुए भी स्वर्गीय वातावरण बना रहता है । उसके सदस्यों को व्यक्तिगत उत्कर्ष का लाभ मिलता है और उन घटकों का सम्मिलित रूप समूचे समाज को समुन्नत बनाने में अप्रत्यक्ष किन्तु असाधारण योगदान करता है । विचारणीय यह है कि मानवी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्वभाव में सहकारिता कूट-कूट कर भरी होने पर भी वह लाभ समाज को क्यों नहीं मिलता जो सुसंस्कृत परिवारों को मिलता है ? आज समाज के सम्मुख सर्वग्रासी विभीषिकाएँ क्यों प्रस्तुत हैं ? यह प्रश्न भी कम गम्भीर और कम विचारणीय नहीं है।

यदि हम तथ्यों की ओर से आँखें फेर न लें तो यह समझा जा सकता है कि हमारे द्वारा विकृत दृष्टिकोण तथा निष्कृष्ट रीति-नीति अपनाई गई । फलतः अगणित कठिनाइयों की घटा घिर आई । यह समझ लिया जाय तो उसी निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि प्रस्तुत कष्टकारक उलझनों को सुलझाने के लिए हमारा क्रिया-कलाप बदलना चाहिए । यह परिवर्तन उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व के उसी समन्वय से संभव है जिसे तत्वज्ञानियों ने आध्यात्मवाद का नाम दिया है और जिसे बोलचाल की भाषा में आदर्शवाद कहा जा सकता है । मनुष्य को मानवतावादी होना चाहिए । उसे व्यक्तिवादी आपाधापी से विमुख होकर समूहवादी रीति-नीति अपनानी चाहिए । इसी को शास्त्रीय शब्दों में आध्यात्मवाद और राजनैतिक शब्दों में समाजवाद कह सकते हैं । अच्छा है इस तत्वदर्शन का नामकरण मानवतावाद किया जाय ।

ज्ञान विज्ञान और उद्योग की दिशा में गगनचुम्बी प्रगति हो रही है । उसके लिए मूर्धन्य लोग जी तोड़ परिश्रम कर रहे हैं । इन प्रयासों का प्रतिफल भी सामने है । भौतिक प्रगति को एक वरदान कहने में किसी को कोई संकोच नहीं हो सकता, किन्तु इतना ही तो सब कुछ नहीं है । आवश्यकता उस सद्भावना और दूरदर्शिता की भी है जिसके सहारे इन उपलब्धियों का सदुपयोग किया जा सके । यही वह मर्म स्थल है जहाँ हम चूकते, भटकते और गिरते है। फलतः वह वहाँ पहुँचा देगी जहाँ से सर्वनाश के, महाकाल के कराल दाँतों में पिस जाने और सभ्यता की उपलब्धियों को गँवा बैठने के अतिरिक्त और कुछ हाथ में न रह जायेगा । समझदारी की माँग हैं कि समय रहते रोग की भयंकरता को समझा जाय । निदान विश्लेषण के सहारे कारणों को ढूँढ निकाला जाय ।

कोई कारण नहीं कि मनुष्य मिल-जुलकर न रह सके । ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका हल न्याय और औचित्य को अपनाकर विवेकपूर्वक न खोजा जा सके । देश और देश का लड़ना आवश्यक नहीं। मनुष्य को मनुष्य से वर्गों का वर्गों से झगड़ना, मात्र बढ़ी हुई दुर्बद्धि के कारण ही होता है । इस पर अंकुश लग सकता है । विवेक और सृजन की शक्तियाँ मिल-जुलकर विध्वंसकारियों को मात दे सकती है । असुरता इतनी प्रबल नहीं है जो देवत्व को सर्वदा के लिए हरा सके । सद्भावना के समर्थक बिखरे रहते हैं । यदि एकजुट होकर ममत्व का प्रसार और सृजन का विस्तार करने के लिए कटिबद्ध हो जाय तो मनुष्य जाति का भविष्य उज्ज्वल बनाने वाली विश्वशान्ति की संभावनाएँ कल्पना न रहकर कल ही सुनिश्चित यथार्थता बन सकेंगी । तब इसे अध्यात्मवाद की विजय कहा जा सकेगा ।

(३)विश्वव्यापी अर्थसंकट वास्तवविक नहीं, पूर्णतया कृत्रिम है । धरती माता की उर्वरता इतनी न्यून नहीं है कि वह अपनी संतानों का भरण-पोषण न कर सके । कुछेक लोगों ने सम्पत्ति को, उपार्जन के साधनों को अपने कब्जे में कर रखा है । फलतः सर्वसाधारण को उनसे वंचित रहना पड़ रहा है । अपने देश में भूदान की, भूमि वितरण की दिशा में जो कदम बढ़ाये जा रहे हैं वे ही सार्वभौम बन सकते है । अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि विशालकाय भूखण्डों में खाली जमीनें पड़ी हैं और उस पर थोड़े लोगों का आधिपत्य है । यदि मनुष्य मनुष्य के बीच भाईचारा हो और प्रकृति सम्पदा पर उसके सभी पुत्रों का अधिकार स्वीकार कर लिया जाय तो उस भूमि से संसार की समस्त आबादी को लाभ मिल सकता है । धनाधीशों के हाथ में रुकी हुई पूँजी यदि सार्वजनकि उद्योगों में लग सके तो उससे संसार के हर आदमी को रोजी रोटी मिल सकती है । जो बुद्धि एवं पूँजी व्यक्तिगत स्वार्थ साधनों में, सुखोपभोग में लगी है उसी को यदि लोकमंगल के लिए नियोजित किया जा सके तो संसार में अज्ञान और दारिद्रय के टिके रहने का कोई कारण ही शेष न रहे ।

क्या ऐसा नहीं हो सकता ? निश्चित रूप से हो सकता है । व्यक्तिवादी स्वार्थपरता की असुरता से यदि संगठित देवत्व लड़ पड़े और आधिपत्य की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आपाधापी आत्मीयता के विराट विस्तार में लग सके। हर व्यक्ति अपने को समाज का अविछिन्न घटक मानकर सर्वहित में अपना हित अनुभव करने लगे तो उसका चिन्तन एवं कर्तृत्व लोकमंगल में लगेगा। साधनों को बाँटकर जो आनन्द पाया जाता है वह कितना बहुमूल्य है इसे आज तो समझ पाना कठिन हो रहा है किन्तु यदि वह व्यवहार में आने लगे तो उसके सुखद परिणामों को देखकर हम अपनी ही दुनियाँ की स्वर्गलोक से तुलना करने लगेंगे ।

यह कार्य तब तक अति कठिन बना रहेगा जब तक इसे कूटनीति एवं अर्थनीति के सहारे हल कर लेने की बात सोची जाती रहेगी । प्रयत्न राजनैतिक भी होते रहें और चेष्टा आर्थिक विकास की भी चलती रहे पर स्थिर समाधान मात्र अध्यात्मवाद की प्रतिष्ठापना में देखा जाय । मानवी सत्ता जड़ नहीं चेतन है । चेतन को चेतना ही उठाती गिराती है । यदि हमारी आस्थाएँ उपभोग की लिप्सा पर अटकी रहे तो धन सम्पदा पर एकाधिकार की, असीम उपभोग और उद्धत अपव्यय की प्रकृति बनी रहेगी । इससे कुछ लोगों की अमीरी रह सकती है कुछ की मनमानी चल सकती है पर सर्व जनीन अर्थसंकट का अन्त न हो सकेगा । उपार्जन, वितरण और उपभोग पर यदि अध्यात्मवादी अंकुश रखा जा सके तो ही हम सब दरिद्रता के अभिशाप से स्थायी मुक्ति पा सकते हैं ।

(४)बढ़ती हुई जनसंख्या की विश्वव्यापी समस्या के दो पहलू हैं—(१)बढ़ी हुई जनसंख्या की समुचित व्यवस्था तथा (२)परिवार नियोजन द्वारा जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण । इस समस्या के उचित समाधान न खोजे जा सके तो असंतुलन और विक्षोभ चरम सीमा तक पहुँच जायेंगे । ऐसी स्थिति में उसके संतुलन के लिए किसी महायुद्ध अथवा किसी प्राकृतिक प्रकोप द्वारा नर संहार ही एकमात्र हल हो सकता है जिसकी कल्पना तक से हृदय काँपने लगता है ।

उपर्युक्त समस्या के उपयुक्त हल में आध्यात्मिक प्रक्रिया हर दृष्टि से समर्थ है । संसार के विस्तृत भूखंडों और प्राकृतिक सम्पदा का उपयोग विवेकसम्मत ढंग से किया जा सके तो वर्तमान जनसंख्या की समुचित व्यवस्था कोई बड़ी बात नहीं है । किन्तु इसमें विकसित मानसिक स्थिति और उदार अन्तःकरण जैसे आध्यात्मिक गुणों का अभाव ही एकमात्र रुकावट है।

जनसंख्या की वृद्धि के लिए विभिन्न ढंग खोजे और अपनाये जावें यह ठीक है, किन्तु उसके पीछे सन्निहित मूल मान्यतायें भी बदलनी चाहिए । जब तक यह मान्यता बनी है कि अपना अर्थात् अपने रक्त से पैदा हुआ—तब तक अपनत्व के विस्तार और अपने अधिकारों—स्वत्वों की रक्षा के लिए प्रजनन की आवश्यकता अनुभव की ही जाती रहेगी । किन्तु यदि आध्यात्मिक स्तर पर अपनत्व की अनुभूति की जा सके तो मनुष्यमात्र क्या प्राणिमात्र अपने परिवार के रूप में दिखने लगता है । फिर किसी अभाव की पूर्ति अथवा भय आशंका के निवारण के लिए अपनों की संख्या बढ़ाने के प्रयास में निरर्थक प्रजनन सहज ही बंद हो जायेगा । जो कार्य ढेरों शक्ति लगाकर भी असंभव दिखता है वही आध्यात्मिक दृष्टिकोण विकसित करके सहज ही पूरा किया जा सकता है ।

(५) व्यक्तिवादी आपाधापी जितनी बढ़ेगी उतनी ही विषमता बढ़ेगी । एक ओर खड्ड होंगे, दूसरी ओर टीले । टीले आकर्षक हो सकते हैं । खड्डों की भयंकरता आतंकित कर सकती है । उपयोगिता तो समतल भूमि की है उसी में फसल बोई उगाई जा सकती है और उसी में फल फूलों से लदे हुए बगीचे लहलहा सकते हैं । अमीरी की चकाचौध से आँखें हतप्रभ हो सकती हैं । गरीबी देखकर आँखें बरस सकती हैं, पर इससे अवांछनीयता में तो कोई अन्तर नहीं आता । हमारे प्रयास समतल भूमि बनाने के लिए होने चाहिए । मानव समाज की प्रगति एकता—समता के आधार पर ही संभव है, अन्यथा एक ओर अहंकार अट्टहास कर रहा होगा, दूसरी ओर पिछड़ेपन के सींकचे में कसी हुई अधिकांश जनता चीत्कार करती हुई मरती खपती चली जायेगी ।

बिलगाव के कारण उत्पन्न होने वाले विग्रहों को यदि समझा जा सके तो बुद्धिमत्ता इसी में प्रतीत होगी कि संसार को एक परिवार बनाया जाय और हर मनुष्य को उसका सदस्य होने का गौरव अनुभव करने दिया जाय । हममें से हर व्यक्ति अपने को विश्व नागरिक माने, समस्त संसार को अपना घर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और समस्त मनुष्य जाति को एक परिवार के अन्तर्गत समेटे, तो वह दिन आ सकता है जिसमें हम सब देव जीवन का आनंद लेते हुए मानवता को धन्य बना रहे हों और सुख-शान्ति के सुनहरे स्वप्नों को साकार होते हुए देख रहे हों।

बिलगाव ने धर्मक्षेत्र में अनेकानेक सम्प्रदाय मत-मतान्तर खड़े किये है । क्या यह पृथकता आवश्यक है ? यदि एक सूर्य से संसार भर को प्रकाश मिल सकता है तो फिर एक धर्मसमस्त मानव जाति के लिए पर्याप्त क्यों नहीं होना चाहिए ? सभी धर्म अपने को ईश्वरकृत कहते हैं और ईश्वर एक है । ऐसी दशा में एक विश्व धर्म अथवा मानव धर्म होने में किसी को क्या आपत्ति होनी चाहिए । सभी धर्मों में सारतत्व है । उस सार की एकता अपना लेने में कोई पूर्वाग्रह या पक्षपात क्यों बाधक होना चाहिए ? प्रथा परम्पराएँ तो समयानुसार सदा से बदलती रही हैं और वे कभी भी स्थिर न रह सकेंगी। परिस्थितियाँ बदलने के साथ-साथ प्रथा परम्पराओं में परिवर्तन होते रहे हैं और होते रहेंगे । आज की परिस्थितियों के अनुरूप आचार संहिता और व्यवहार प्रक्रिया बनाई जा सकती है और धर्म की आत्मा को शाश्वत सनातन रूप में ही शिरोधार्य किया जा सकता है । ऐसा धर्म सर्वजनीन होगा और सार्वभौम बनेगा। भारतीय धर्म का निर्माण इसी आदर्श के अनुरूप हुआ। उसमें मानव धर्म कहलाने को विश्व धर्म के रूप में स्वीकार किये जाने की परिपूर्ण पात्रता विद्यमान है। समय ने, विवेक ने, न्याय ने यदि वही कुछ परिवर्तन चाहा हो तो उसे स्वीकार करने में भी हिचक की आवश्यकता नहीं है।

विश्व की एक मानव भाषा हो तो वे दीवारें सहज ही टूट जायेंगी, जिन्होंने एक क्षेत्र के मनुष्य को दूसरे क्षेत्र वालों के साथ विचार विनिमय करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है । भाषा की भिन्नता के कारण दो क्षेत्रों के निवासी गूंगे, बहरे की तरह मात्र इशारों से ही थोड़ा बहुत काम चला सकते हैं । मद्रासी और बंगाली में, मराठी और पंजाबी के बीच भाषा की दीवार मुँह पर पट्टी बाँधने जैसी रोक लगा देती हैं । अफ्रीकी और रुसी अपनी-अपनी भाषा में एक दूसरे से बात करने लगें तो वह उच्चारण निरर्थक ही सिद्ध होगा । दुभाषियों के सहारे काम चलते हैं। अथवा किसी जानी पहचानी भाषा का सहारा लेना पड़ता है । यदि यह और न रहे, सर्वत्र एक भाषा बोली जाने लगे तो सामान्य लोक व्यवहार का वार्तालाप ही नहीं गम्भीर ज्ञान विज्ञान का आदान -प्रदान भी अति सरल हो सकता है । एक लिपि में लिखी जाने वाली एक विश्व भाषा बन सके तो प्रेस और प्रकाशन उद्योग में आशातीत क्रान्ति हो सकती है । फिर क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद प्रकाशन की कठिनाई, महत्वपूर्ण विचारधारा का एक सीमित क्षेत्र में अवरुद्ध रहने का व्यवधान सहज ही मिट सकता है और देखते-देखते मानवी ज्ञान की परिधि गगन चुम्बी हो सकती है ।

छुटपुट पृथक-पृथक राष्ट्रों की सत्ता एक विश्व राष्ट्र में विलीन हो सकती है। जिस प्रकार एक देश के कई प्रान्त, कई जिले होते हैं, उसी प्रकार एक विश्व राष्ट्र के अन्तर्गत समस्त देश बने बने रहे और उनकी सीमा रेखाएँ भौगोलिक आधार पर नये सिरे से निर्धारित कर ली जायें तो उसमें किसका क्या हर्ज होगा ? विश्व राष्ट्र की फौज ही सर्वत्र सुरक्षा व्यवस्था की उत्तरदायी होगी और देश देशों के बीच आये दिन होते रहने वाले युद्धों के लिए कहीं कोई कारण शेष नहीं रहेगा । भूमि पर, प्रकृति सम्पदा पर किसी क्षेत्र के निवासी अपना अधिकार न रख सकेंगे । तब ऐसी दशा में किसी क्षेत्र की अमीर किसी को गरीब--किसी को अपच से व किसी को भुखमरी से मरना नहीं पड़ेगा । जलमार्ग, थलमार्ग, नभमार्ग से सर्वत्र सबको जाने की सुविधा हो । जनसंख्या के सुविधा साधनों के अनुरूप बसाहट कर दी जाय । खनिज तथा दूसरे प्रकृति साधनों का उपयोग सभी लोगों के लिए सुलभ बनाया जाय । हर किसी को श्रम करना पड़े और हर किसी को उत्पादन में हिस्सा मिले तो फिर विषमता कहीं रहेगी ही नहीं । तब विद्वेष और विद्रोह के कारण ही बच नहीं रहेंगे । युद्ध कौन करेगा किससे करेगा और किसलिए करेगा ? आज की सर्वनाशी युद्ध विभीषिका में अणु अस्त्रों का समावेश हो जाने से मानवी अस्तित्व के लिए संकट खड़ा हो गया है । इसकी सामयिक रोकथाम जिस किसी भी उपाय से संभव हो, की जानी चाहिए । पर इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अन्तिम विश्व शान्ति की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थापना, युद्धों की पूर्णतया समाप्ति 'विश्व राष्ट्र का निर्माण होने से ही संभव होगी ।

एक धर्म, एक संस्कृति, एक भाषा, एक राष्ट्र की आवश्यकता पर जितनी गंभीरता से विचार किया जायेगा उतनी ही उसकी उपयोगिता सिद्ध होती चली जायेगी । यह अध्यात्म का प्रतिपादन है। अद्वैत सिद्धान्त में सर्वत्र एक ही आत्मा का अस्तित्व माना गया है । सबमें एक ही आलोक की प्रतिबिम्ब जगमगा रहे है । हम सब मणि-माणिकों की तरह पृथक होते हुए भी एक ही सूत्र में बँधे हुए है । हम सबके हैं सब हमारे है । यह एकात्म भाव ही आत्मविकास की स्थापना है । सीमित अहंता को क्षुद्रता का चिह्न माना गया है । बिलगाव की संकीर्ण स्वार्थपरता को अध्यात्म तत्व ज्ञान में पग-पग पर भर्त्सना और उसके असीम दुष्परिणामों का विस्तारपूर्वक दिग्दर्शन कराया गया है । संकीर्णता के सीमाबंधन ही असंख्य समस्याएँ उत्पन्न करते है । उसी के कारण मानवी गरिमा का ह्रास होता है और अनेकानेक संकट खड़े होते है । स्नेह सौजन्य की, एकता और समानता की नीति अपनाई जा सके तो वर्तमान साधनों से ही अपने संसार में, अपने युग में, सुख-सम्पदा के बाहुल्य और आनंद से सर्वत्र हर्षोल्लास बिखरता देखा जा सकता है ।

कमी साधनों की नहीं,समस्या संकटों की नहीं, कठिनाई एक ही है कि आध्यात्मिक दृष्टिकोण की उपेक्षा की गई और उसका उपहास बनाया गया । यों अभी भी आध्यात्म की चर्चा खूब होती है और उसके नाम पर आडम्बर भी बहुत बनते हैं पर उस रीति-नीति को व्यवहारिक जीवन में उतारने का प्रयास नहीं किया जाता । अध्यात्म को व्याख्याओं में धूमिल कर दिया गया है, फलतः वह भ्रान्तियों का केन्द्र बनकर रह गयी है । आवश्यकता इस बात की भी है कि आध्यात्म के वास्तविक स्वरूप से जनसाधारण को परिचित कराया जाय ।

यह तथ्य हममें से प्रत्येक को हृदयंगम करना चाहिए कि उत्कृष्ट चिन्तन के आधार पर परिष्कृत व्यक्तित्व बनाने वाले दृष्टिकोण का नाम अध्यात्म का तत्वदर्शन है । आदर्शवादी गतिविधियों को कार्यान्वित करने की प्रखर कार्यपद्धति को, वैयक्तिक और सामाजिक क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली उदात्त कर्तव्यपरायणता को अध्यात्म का व्यवहार पक्ष कह सकते है । यही वह आधार है जिसे अपनाकर व्यक्ति और समाज की समस्त समस्याओं का हल पाया जा सकता है और समूची मानव जाति को स्थायी सुख–शान्ति से लाभान्वित किया जा सकता है ।

कहा जा चुका है कि संसार के सामने विशालकाय समस्याएँ अपराध , युद्ध, अभाव, अशिक्षा आदि की है । इन्हें परिस्थितिवश उत्पन्न हुआ माना जाता है, जबकि वे विकृत मनःस्थिति की उपज है । सुधार उद्गम केन्द्र का किया जाना चाहिए । समस्याओं की जड़ काटी जानी चाहिए । मानवी मस्तिष्क यदि दुर्बुद्धिग्रस्त रहेगा और दुष्प्रवृत्तियों से हमारी कार्यपद्धति लगेगी तो उनकी प्रतिक्रिया असंख्य समस्याओं के रूप में उसी प्रकार बनी रहेगी जैसी की आज है, वाह्य उपचारों से क्षणिक सहायता तो मिल सकती है पर विग्रहों का स्थायी समाधान नहीं निकल सकेगा । युद्ध समाप्त करने की दुहाई देकर प्रथम विश्वयुद्ध लड़ा गया था उसके समाप्त होते होते दूसरा विश्व युद्ध लड़ा गया उसका नारा भी यही था। उसके समाप्त होते-होते तीसरे महायुद्ध की तैयारियाँ जोरों से चल पड़ी हैं । कहा जा रहा है कि उसके बाद युद्ध न होंगे । यह कथन बर्ट्रेण्ड रसेल के शब्दों में इस आशय का हो सकता कि तीसरे युद्ध के बाद जो मनुष्य बच रहेंगे वे शस्त्रों से युद्ध लड़ सकने की स्थिति में ही नहीं रहेंगे । चौथा युद्ध लड़ना पड़ा तो वह ईंट पत्थर फेंककर ही लड़ा जा सकेगा ।

यह बात निराशा उत्पन्न करने और मनोबल गिराने के लिए नहीं कही गयी है । यह तो वस्तुस्थिति का विश्लेषण मात्र है । प्रगति पर प्रसन्नता व्यक्त करना अच्छी बात है । हम जिस दिशा में बढ़े हैं उसकी सराहना कौन नहीं करेगा? इस बात में दो राय नहीं हो सकती कि भौतिक साधनों को बढ़ाने में हम जुटे हैं और उसमें आशाजनक सफलता पाई है पर यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि साधनों के बढ़ने के साथ-साथ उनके सदुपयोग का उत्तरदायित्व भी बढ़ता है । भौतिक प्रगति के समानान्तर आत्मिक प्रगति भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होनी चाहिए अन्यथा उपभोग का संकट उत्पादन की उपलब्धियों को लाभदायक होने के स्थान पर और भी अधिक हानिकारक बना देगा ।

सामाजिक सुख-शान्ति की धुरी भी आध्यात्मिकता ही है । उसे कहने-सुनने की विडम्बना बनाकर नहीं रखा जाना चाहिए वरन् व्यावहारिक जीवन में उतारा जाना चाहिए । अध्यात्म कथा पुराणों के द्वारा सिखाया ही जाना चाहिए पर उसे सुनने-सुनाने की फलश्रुति में सीमाबद्ध नहीं किया जाना चाहिए । आज तो श्रवण और पठन तक ही अध्यात्मवादी आदर्शों का महात्म्य मान लिया गया है । कथा सुनने और सुनाने भर से लोग स्वर्ग जाने की उपहासास्पद आशा करते है । जबकि वह प्रशिक्षण विशुद्ध रूप से व्यावहारिक जीवन की रीति-नीति में समाविष्ट किए जाने के लिए ही विनिर्मित हुआ है । उसका मर्म समझे बिना, तत्व अपनाये बिना ही आध्यात्मिकता की दुहाइयाँ देने से कोई लाभ नहीं निकल सकता । ऐसा करने वाले तो और उस ओर से लोगों को अरुचि हो जाती है। अध्यात्म को उसके सही स्वरूप से समझा समझाया जाना चाहिए । यदि ऐसा हो सके तो हर क्षेत्र में इस ऋषि प्रणीत पद्धति का लाभ उठाया जाना संभव है ।

विज्ञान के विकास से लेकर अर्थ साधन बढ़ाने तक के अनेकानेक प्रयत्न समस्याओं के समाधान के लिए चल रहे हैं। यह सब उचित है और यह चलते भी रहें पर हमारे ध्यान में यह तथ्य बना ही रहना चाहिए कि आध्यात्म का आश्रय लिए बिना न तो व्यक्तिगत उलझने सुलझेंगी और न सामूहिक समस्याओं का समाधान निकलेगा । यदि प्रगति और शान्ति की वस्तुतः आवश्यकता और आकाँक्षा हो तो यह तथ्य समय रहते स्वीकार कर लिया जाना चाहिए कि अध्यात्मवाद के प्रकाश से ही समस्त समस्याओं को हल किया जा सकता है और उसे जीवन में प्रसन्नतापूर्वक, तत्परतापूर्वक अपनाया जाना चाहिए।

७- चार पुरुषार्थ

भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थ माने गये हैं– (१) धर्म, (२) अर्थ, (३) काम और (४) मोक्ष । इन चारों का बड़ा ही विस्तृत और व्यापक अर्थ है । उस पर विचार कर लेना चाहिए ।

धर्म, अर्थ और काम तो तुरन्त ही अर्जन करने योग्य हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध हमारे दैनिक जीवन से है । अन्तिम पुरुषार्थ (अर्थात् मोक्ष) हमारे पहले तीनों कार्यों पर आधारित है।

प्रथम पुरुषार्थ "धर्म" है । धर्म शब्द का बड़ा व्यापक अर्थ है । इसमें हमारे वे सभी कर्त्तव्य सम्मिलित हैं जो भिन्न-भिन्न धार्मिक, सामाजिक या नैतिक मान्यताओं से सम्बन्ध रखते हैं । प्रत्येक परिस्थिति में मनुष्य का क्या-क्या कर्त्तव्य होना चाहिए, यह सब धर्म शब्द के अन्तर्गत आ जाता है । हमारे शास्त्रों में आचरण को भी धर्म में स्थान दिया गया है । धर्म उन उपयोगी सिद्धान्तों का समूह है जो हमारे दैनिक जीवन और समस्याओं का हल प्रस्तुत करते हैं । धर्म तो जगत् को स्वर्ग बनाने वाले, समाज में से गरीबी और अज्ञान तथा शोषण का अन्त करने वाले उत्साही व्यक्तियों के हाथ में ही सुरक्षित रह सकता है । धर्म दूसरी दुनियाँ के लिए इतना जरूरी नहीं है, जितना इसी जीवन और इसी समाज के नैतिक जीवन और जागृति के लिए आवश्यक है । धर्म मनुष्य के विकास के लिए उपयोगी कर्त्तव्यों का समूह है । धर्म जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए उपयोगी है ।

धर्म आत्मा का गुण है । वह जिस पुण्य-पुरुष के अन्तःकरण में प्रवेश करता है, उसे प्रकाश का पुञ्ज बना देता है । वह भिखमंगा नहीं वरन् दानी होता है । विश्व उसके ऋण से ही दबा होता है। सच्चा धार्मिक पुरुष, जान बचाने के लिए धर्म पुस्तकों की आड़ नहीं ढूँढ़ता, वरन् वह दूसरों के लिए दधीचि की तरह अपनी हड्डियाँ दे देता है और नारद की तरह दिन रात धर्म-प्रचार की रट लगाता हुआ घूमता है । व्यास की तरह आयु सद्ग्रन्थों की रचना में लगा देता है । द्रोणाचार्य की तरह शस्त्र-विद्या का प्रचार करता है । पाणिनि की तरह व्याकरण बनाता है या परशुराम की तरह दुष्टों को दण्ड देता है और बुद्ध की तरह प्रेम धर्म का उपदेश देता है । वह समय और देश की आवश्यकताओं की ओर देखता है और उन्हें ऊँचा उठाने में अपनी शक्तियाँ लगा देता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'अर्थ' (अर्थात् आर्थिक शक्ति) को छठवीं इन्द्रिय कहा जा सकता है, कारण रुपये से ही समाज में हमारी स्थिति और मान्यता रहती है, बड़ाई या छोटाई नापी जाती है । आज का युग रुपये को बड़ा महत्व देता है । हिन्दू धर्म के अनुसार धन एक पवित्र शक्ति है । धन का व्यय शुभ सात्विक कार्यों में ही होना चाहिए और उसे ईमानदारी से ही कमाना चाहिए । हिन्दू संस्कृति के अनुसार गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने के लिए "अर्थ" शक्ति की जरूरत है, शेष आश्रम इसी गृहस्थ आश्रम के भरोसे रहते हैं । नित्य प्रति पंच यज्ञों का करना भी गृहस्थ का कर्त्तव्य माना गया है । इसलिए गृहस्थ का यह पुण्य कर्त्तव्य हो जाता है कि वह सत्य आचरण द्वारा सात्विक कमाई करे और स्वयं अपने तथा समाज के लिए कल्याणकारी कार्यों में उसका उपयोग करता रहे ।

"काम" का अर्थ है, कामना युक्त । काम का उदय मन में होता है । इसलिए काम को "मनसिज" कहा गया है । काम के दो भेद हैं– (१) वासनाजन्य कामेच्छा, जिसकी पूर्ति विवाहित जीवन में होती है। (२) भगवत् प्रेम, जिसकी पूर्ति ईश्वरोपासना में होती है और जो मुक्ति का कारण बनती है ।

"काम" सम्बन्ध भी एक पवित्र नैतिक उत्तरदायित्व पूर्ण धार्मिक कर्त्तव्य है । जब धर्माचरण की मर्यादा में रहकर एक पुरुष ही स्त्री से काम सम्बन्ध स्थापित करता है, तो संयम और मर्यादा का ध्यान रहता है। मनुष्य पग-पग पर अपने कर्त्तव्य, सन्तान से आने वाली असंख्य जिम्मेदारियों को सदा ध्यान में रखता है । फलतः "काम" नियन्त्रित रहता है । नियन्त्रण से शक्ति-वृद्धि होती है । असंयमित काम को हेय समझा जाता है और व्यभिचार की संज्ञा दी जाती है। हमारी संस्कृति हमें सिखाती है कि गृहस्थ जीवन में संयम और इन्द्रिय-निग्रह का सदा ध्यान रखें और भगवद् भक्ति द्वारा अपनी वासना को निकलने के लिए कल्याणकारी मार्ग प्रदान करें । इस प्रकार ऊँचे उठकर ईश्वर की प्राप्ति में संलग्न हो जायें ।

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन की एक ऐसी स्थिति की योजना है, जिसमें मनुष्य सुख शांति की चरमावस्था को प्राप्त होता है जहाँ इसके आत्म–तत्व को पूर्ण सुख सन्तोष की प्राप्ति हो जाती है । सब सांसारिक, सामाजिक और आर्थिक बन्धनों से छुटकारा प्राप्त हो जाता है । यह मोक्ष की स्थिति है । मोक्ष की स्थिति में पहुँच जाने वाले को हर प्रकार का सुख प्राप्त हो जाता है और शारीरिक, मानसिक या अन्य किसी प्रकार के विकार दुखी नहीं करते । विषय, तृष्णा, द्वेष, लोलुपता, अभिमान, दम्भ, लोभ, प्रतिशोध, प्रतिद्वन्द्विता, दीर्घद्वेष, शठे–शाठ्य, झूठी निन्दा, पीठ पीछे निन्दा, असत्य भाषण, चोरी, धोखेबाजी, क्रूरता, डाह ये वे पैशाचिक मोहान्ध मनोवृत्तियाँ हैं जो इस संसार में ही मनुष्य को नर्क की मनःस्थिति में डाले रहती है। अनुतप्त रखती हैं । मोक्ष की मनःस्थिति में पहुँचकर मनुष्य इन राक्षसी बन्धनों से मुक्त हो जाता है । इच्छाओं को अपनी मुट्ठी में रखने वाला साधक ही मुक्त है । मोक्ष की स्थिति में पहुँचकर मनुष्य इन कुत्सित वृत्तियों से ऊपर उठकर उन पर शासन करने लगता है ।

भारतीय संस्कृति में मोक्ष प्राप्ति के तीन उपायों पर विशेष जोर दिया गया है– (१) आत्म कृपा, (२) गुरू कृपा और (३) भगवत कृपा । आत्म कृपा के कारण ही गुरू कृपा व भगवत कृपा की प्राप्ति सुलभ होती है । "आत्म कृपा" का अर्थ है, आत्म–चेष्टा या अपना उद्यम, अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग । महर्षि अष्टावक्र अपने अदम्य उत्साह, चेष्टा व कठोर तपस्या से आत्मज्ञान प्राप्त कर पूर्वज्ञानी महातपा ऋषि के नाम से संसार में प्रसिद्ध हैं । जिस आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए अष्टावक्र जी ने कठिन तपस्या की थी, उसके उदय से मनुष्य के हृदय में सत्य–ज्ञान उद्भाषित होता है । ज्ञानदर्शन की अन्तरवाणी है। "आत्मानंविद्धि" अर्थात् आत्मा को जानो, क्योंकि–

"आत्मनि खलु, अरे द्रष्टे, श्रुते,
मते, विज्ञात, इदं सर्वविदितम् ।"

अर्थात् "दर्शन, श्रवण, मनन इत्यादि के द्वारा आत्म ज्ञान प्राप्त होने से सब प्रकार का ज्ञान मानव-चित्त में उद्भाषित होता है । आत्म–ज्ञान परमात्मा के आनन्द-रस-धन स्वरूप के ज्ञान से मनुष्य के सब भय का भी नाश होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन को चरम लक्ष्य तक ले जाने वाले चार पुरुषार्थ

मानव सृष्टि की गौरवमयी अभिव्यक्ति है तथा उसे ईश्वरीय सत्ता के प्रतिनिधि के रूप में देवसंस्कृति में वर्णित किया गया है । जीवधारी तो अनेक हैं, अनेकानेक प्रकार के हैं किन्तु उनमें भी मनुष्य का स्थान सर्वोपरि है । क्योंकि वही एक ऐसा प्राणी है जो विवेक बुद्धि से समन्वित है तथा ज्ञान–गरिमा का अधिकारी पात्र है । महाभारत के शान्तिपर्व में ऋषि कहते हैं–

''गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि, न मानुषात्श्रेष्ठतरं हि किंचित ।''

अर्थात् ''ब्रह्म का रहस्य यही है कि सृष्टि में मानव ही सर्वश्रेष्ठ है ।''

(महा० शां० प० १८०/१२)

यह देव संस्कृति की एक महत्वपूर्ण स्थापना है, जो हमें अन्यान्य किसी मत–संस्कृति–धर्म संप्रदाय में देखने को नहीं मिलती । अन्य सभी मतावलम्बियों का यह मानना है कि मनुष्य का विकास एक सीमा तक ही संभव है, वह पैगम्बर देवदूत बन सकता है , पर भगवान नहीं बन सकता। किन्तु हमारी संस्कृति कहती है ''जीवो ब्रह्मैव नापरः'' जीव की मनुष्य की सामर्थ्य अंतर्निहित शक्ति उसे ब्रह्म की परम सत्ता के समकक्ष बना देती है । कितना अद्भुत व विलक्षण यह चिन्तन है जो मनुष्य को सतत् पुरुषार्थ परायण बनाते हुए उसे लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सदा प्रेरित करता रहता है ।

श्रीमद्भागवत में एक आख्यायिका आती है जिसमें व्याख्या की गयी है कि जगद्रचयिता परब्रह्म ने पुरुष शरीर को सर्वाधिक प्रिय मानते हुए अपने लिए बनाया है । कहा जाता है कि ''प्रजापिता ब्रह्मा जब अपने को कृतकृत्य जैसा समझकर बड़े ही प्रसन्न थे, तब सारी सृष्टि के निर्माण के अंत में, अपने श्रेष्ठतम युवराज के रूप में उन्होंने अपने मन की सत्ता से अर्थात् मनःशक्ति से विश्व की अभिवृद्धि करने वाले मनुओं को रचकर उन्हें अपना वह पुरुषाकार शरीर दे दिया (स्वीयं पुरं पुरुषं)। उनसे पहले उत्पन्न देव, गंधर्व आदि सभी ने मिलकर हर्षपूर्वक ब्रह्मदेव को नमन कर धन्यवाद दिया व कहा कि–देव ! आपकी यह रचना सर्वश्रेष्ठ है । इससे उत्कृष्ट रचना कोई और नहीं हो सकती । इस नर देह में प्राणियों के अभ्युदय (अभितः उदभ्–सब तरह से आगे बढ़ना) तथा निःश्रेयस (निश्चितं श्रेयं निः श्रेयसम अर्थात् जिससे बढ़ कर कोई और उत्तम फल न हो) के समस्त साधन विद्यमान हैं । अतः इसकी सहायता से हम सब देवता भी अपनी सूक्ष्म हवि ग्रहण कर संतुष्ट होते रहेंगे।'' इस कथा का भाव यह है कि देवों, गधर्वो तक को मानव शरीर की कामना रहती है । वे मानवी काया को श्रेष्ठ मानते हुए उसके माध्यम से सिद्धि हस्तगत करते हैं । अतः ''सुरदुर्लभ मानुस तन पावा'' की उक्ति नितान्त सत्य है व हर मनुष्य के लिए मानव जन्म एक गौरव का विषय है।

''मनोः अपत्यं मानवः'' इस व्युत्पत्ति के अनुसार हम सभी पुरुष मनुओं से जन्मे मानव या पुरुष कहलाते हैं, इसी मानव के संबंध में पास्कल का मत है कि मनुष्य ही इस संसार का सर्वश्रेष्ठ बौद्धि कजीव है तो ऐतरेय उपनिषद का रचयिता कहता है– ''यह पुरुष परमात्मा का प्रकाश स्थान है, इसमें परमात्मा प्रकाशित होता है । मानव शरीर में आत्मा का आविर्भाव इतर सभी प्राणियों से अधिक है । उसमें ज्ञान भी है और प्रज्ञान भी'' – ''पुरुषे चा विस्तरात्मा। सहि प्रज्ञानेन संपन्नतमः, विज्ञातं वदति विज्ञातं पश्यति ।'' वस्तुतः मनुष्य में ज्ञान के विकास की विलक्षणता व असीम संभावनाओं को देखकर ही परमात्मसत्ता पुरुष देह को सबसे अधिक प्रिय मानती है । इस तथ्य को भगवान कृष्ण ने इस तरह कहा है–

''बहवः सन्ति पुरः स्रष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया।।''

''मैंने अनेक प्रकार के शरीरों का निर्माण किया किन्तु मुझे सबसे अधिक प्रिय यह मनुष्य शरीर है''। (श्रीमदभाग० ११–७–२२) शतपथ ब्राह्मण एक और स्थान पर कहता है ''**पुरुषो वै प्रजापतेन्नैदिष्ठम्**'' (२/५/१/१) अर्थात् ''नर ही नारायण के सर्वाधिक समीप है ।'' बाइबिल में जेनेसिस अध्याय में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थान-स्थान पर कहा गया है कि इस संसार में मनुष्य ही परमसत्ता का साकार रूप है (१/२, ६/२७, ५/१, ५/६) तथा कुरान की आयतें (सूरा २ व ३५/३५ कहती हैं कि मनुष्य पृथ्वी पर अल्लाह का प्रतिनिधि है तथा उसे अल्लाह ने श्रेष्ठ आकार का बनाया है ।

मनुष्य जन्म भारतीय संस्कृति के चिन्तन के अनुसार चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद मिलता है । वह भी प्राकृतिक विधान से व सौभाग्यवश आचार्य शंकर कहते हैं कि तीन अतिदुर्लभ पदार्थों, मनुष्यत्व, मुमुक्षत्व, तथा महापुरुसंश्रय में सर्वप्रथम मनुष्यत्व ही प्रधान है (सौंदर्य लहरी) ।

मनुष्य जन्म मिला व प्रमाद में, भोग में गँवा दिया तो इससे बड़ी अदूरदर्शिता क्या कही जा सकती है ? इसीलिए तीर्थंकर महावीर कहते हैं– "गाढ़ा य विवाग कम्मुणो संयम गोयम मा पमाय ए" अर्थात् "कर्मों के फल बड़े प्रगाढ़ तीव्र होते हैं। इसलिए हे जीव, क्षण भर के लिए भी तू प्रमाद न कर" (उत्तराध्यन सूत्र १०–४)। इसी कारण देवी भागवत में ऋषि कहते हैं–

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षण भंगुरः ।
तस्मिन प्राप्ते तु कर्तव्यं सर्वथैवाऽऽत्मसाधनम् ।।

अर्थात्–इस अस्थिर एवं अनित्य मानव देह को पा करके इसके द्वारा नित्य, शाश्वत सत्यतत्व को जानने का प्रयास कर आत्मकल्याण की प्राप्ति करनी चाहिए । यह मनुष्य जन्म का प्रमुख कर्त्तव्य है ।"

इस समग्र शास्त्र चर्चा का आशय यही है कि मनुष्य जन्म किन्हीं उद्देश्य विशेषों के लिए पुरुषार्थ करने के निमित्त मिला है तो मनुष्य को उनमें स्वयं को नियोजित कर अपनी जीवन यात्रा सफल बनानी चाहिए । श्रुति कहती है कि यदि यही मनुष्य अपना आपा मात्र देह ही मानता है, देह के अनुकूल ही उसकी खानपान में रुचि होती है, उसे ही पुरुषार्थ मानता है तो वह लौकिक जीवन जीकर बिना लक्ष्य सिद्धि के चला जाता है । दूसरी ओर जो आत्मसत्ता को देहादि से परे, नित्यसत्ता तथा परलोक में आने जाने वाली मानता है तो पारलौकिक पुरुषार्थ में उसकी रुचि बढ़ती है, वह तदनुसार जीवन बं नों से मुक्ति पाता हुआ चरम लक्ष्य को प्राप्त होता है । अपने-अपने अभिमान चिंतन-लक्ष्य निर्धारण के अनुरूप ही मनुष्य अपना पुरुषार्थ चुनता है । मनुष्य का यह पुरुषार्थ पक्ष व तत्संबंधी मार्गदर्शन ही भारतीय संस्कृति का आधार स्तंभ है । पाश्चात्य भोगवाद देह को प्रमुख मानता है अतः वहाँ वह पुरुषार्थ प्रधान है व पूर्वार्त्त्य रहस्यवादी अध्यात्म पारलौकिक जीवन व उसके लिए की गयी प्रगति को वरीयता देता है, अतः उसके अनुवर्तियों का प्रधान पुरुषार्थ यह है । देखा जाय तो पूरी जगती पर बहुसंख्य व्यक्तियों का जीवन भर का पुरुषार्थ देहादि बंधनों से परे नहीं जा पाता । जो मुक्त होने का प्रयास करता है, वह मोक्ष को प्राप्त करता हुआ पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि करता है । क्या हैं ये पुरुषार्थ चतुष्टय ? देव संस्कृति के ये चार प्रमुख आधार हैं, जिन पर सारा अध्यात्मदर्शन टिका हुआ है ।

ये चार आधार स्तम्भ हैं धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष । ये चारों ही मानव की जीवन यात्रा की परमावश्यक अनिवार्यताएँ हैं । इनके बिना जीवन का प्रगति-रथ अपनी यात्रा पूरी नहीं कर पाता । पुरुषार्थ में ईश्वरीय सत्ता के प्रतिनिधि मनुष्य की प्रवृत्ति सुख के लिए होती है । जीवमात्र सुख की ही कामना करता है, वही उसे अभीष्ट है अतः यह सही भी है । सुख दो प्रकार के हैं–विषय–सुख ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों से संपर्क होने पर जो दुखमिश्रित अस्थायी सुख प्राप्त हो वह विषय सुख तथा इनसे थक कर स्वयं को शरीर न मानकर सांसारिक विषय वासनाओं से रहित होकर आत्मिक उल्लास की स्थिति कहलाती है–ब्रह्मानन्द आत्मसुख। इस प्रकार व्यक्ति के द्वारा वांछित चाहे गए दो ही मूल प्रयोजन या लक्ष्य हैं–(१) काम और (२) मोक्ष। इन दोनों ही पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए दो ही साधन हैं (१) अर्थ और (२) धर्म । दो साध्य व दो साधन रूपी जोड़ों को मिला देने से बनता है पुरुषार्थ चतुष्टय–हर व्यक्ति की जीवन यात्रा के वे महत्वपूर्ण अंग जिनसे वह लक्ष्य सिद्धि की ओर बढ़ता है । ये चारों ही मनुष्य जीवन के मुख्य उद्देश्य हैं । कोई मनुष्य 'अर्थ' अर्थात् धन प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ करते हैं तो कोई 'काम' को अर्थात् सुख को चाहते हैं और कोई इन दोनों के मूल अर्थात् धर्म को चाहते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । 'धर्म' की प्राप्ति के पश्चात् अर्थ व काम तो स्वतः सिद्ध हो जाते है । इन तीनों ही वर्गों का विधिवत् उपार्जन होने पर पुरुष अंतिम पुरुषार्थ 'मोक्ष' बंधन्मुक्ति को अनायास ही प्राप्त कर लेता है । मानव जीवन की सफलता इस अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति ही है ।

मानव जीवन का मर्म, मनुष्यत्व की परिभाषा व मानवी पुरुषार्थ के इन चार वर्गों की एक बृहद रूपरेखा समझ लेने के बाद प्रत्येक के विस्तार में जाने से पूर्व थोड़ा चिंतन यह करें कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की युगानुकूल व्याख्या क्या हो सकती है ? मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य प्राप्त हो इसके लिए आज के समय के अनुकूल सही अर्थों में इन्हें कैसे समझा जाय तथा परम पूज्य गुरुदेव ने इन सभी के विषय में क्या-क्या परिभाषाएँ दीं, कैसे स्वयं अपने जीवन व्यवहार में उन्हें लागू करते हुए लक्ष्य सिद्धि को प्राप्त हुए, यह चर्चा अधिक लोकोपयोगी व व्यावहारिक आध्यात्म की परिधि में होगी ।

परम पूज्य गुरुदेव ने कहा कि इक्कीसवीं सदी का सतयुगी मानव सुसंस्कृत व सभ्य होगा । बिना धर्म के नीतिमत्ता व संवेदना को विकसित किये वह अर्थोपार्जन व उसका सुनियोजन नहीं कर सकता, न हीं परिष्कृत काम, सुख की सिद्धि ही कर सकता है । अतः 'अभ्युदय' रूपी इस सिद्धि के तीन साधन हुए—काम, अर्थ व धर्म । अभ्युदय अर्थात् मनुष्य की सर्वांगीण—आमूलचूल प्रगति—उन्नति । इनमें भी काम पर उन्होंने कम जोर देकर उसे परिष्कृत कर उल्लास में बदलने की बात कही है तथा उसके बाद अर्थ की बात कही है । अर्थ से भी बढ़कर है—धर्म। इस अभ्युदय की प्राप्ति के बाद 'धर्म' की परिभाषा जो प्रारम्भ में की गयी, के अनुसार अगली सिद्धि रह जाती है वह है "निःश्रेयस्" जिससे बढ़कर और कोई भी श्रेष्ठतम फल न हो, उसकी प्राप्ति को निःश्रेयस अथवा मोक्ष कहते हैं । मोक्ष चरम पुरुषार्थ है व हर मानव का अंतिम लक्ष्य भी । धर्म, अर्थ और काम का नाम त्रिवर्ग है । इस त्रिवर्ग के साथ चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष को मिला देने से चतुर्वर्ग हो जाता है । अमरकोष के अनुसार—

त्रिवर्गोधर्म कामार्थः चतुर्वर्गः समोक्षकः ।।

धर्म, अर्थ व काम तीनों ही हर मनुष्य के लिए अनिवार्य भी हैं, साधन सिद्धि में सहायक भी तथा निर्मल निर्दोष भी । इन तीनों का सही परिमार्जित सामंजस्यपूर्ण दैनन्दिन जीवन में व्यापार जीवन साधना की सफलता का हेतु बनता है किन्तु यदि इनमें दोष उत्पन्न हो जायें इनके अर्थ को न समझते हुए उनके विकृत रूप का जीवन में समावेश हो तो यह मनुष्य के लिए विपत्ति का कारण बन सकता है । कैसे ?

महाभारतकार ने शांतिपर्व में (१२३—१०) इसकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की है—

अपध्यानमलो धर्मो मलोऽर्थस्य निगूहनम् ।
सम्प्रमोहमलः कामो भूयस्तद्गुणवर्द्धितः ।।

अर्थात्— "धर्म में फल की अभिलाषा अर्थात् उसका सकाम हो जाना, अर्थ में निगूहन अर्थात् उसे छिपाना, न उसका दान में सुनियोजन करना, न उपभोग ही करना (परिग्रह) तथा काम में सम्प्रमोह, अधिकाधिक मोह-वासनाओं के जाल में फँसते चले जाना ये तीन मल अर्थात् दोष होते पाए जाते हैं ।" इन्हीं को अहंता, तृष्णा व वासना क्रमशः कहा गया है । इन तीन भव-बन्धनों से मुक्ति को जीवन्मुक्ति या मोक्ष बताया गया है ।

हमारे ऋषि वैज्ञानिक थे व चेतना जगत् के विलक्षण अनुसंधानकर्ता थे । उन्होंने मानवमात्र को मार्गदर्शन प्रदान करते हुए कहा कि सकामभाव से नहीं, निष्कामभाव से धर्म का अनुष्ठान करो । अर्थ का उपार्जन उपभोग हेतु नहीं त्याग के लिए करो। (**त्यागाय संभृतार्थानाम्**) तथा काम का सेवन "**शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्**" के अनुसार शरीर के रक्षण मात्र के लिए करो । कितना सशक्त विज्ञान सम्मत व सर्वकालीन चिन्तन है । जिस भी समाज में मनुष्य जाति इन तीनों पुरुषार्थों का सम्पादन कर रही होगी, सही रीति-नीति से जीवन को जी रही होगी, वह कभी दुःखी विक्षुब्ध हो ही नहीं सकती ।

वस्तुतः मानवमात्र को इस सृष्टि पर अवतरण के बाद दो प्रकार के कर्म-मार्गों का सामना करना पड़ता है—एक है 'प्रेय' मार्ग तथा दूसरा 'श्रेय' मार्ग। हर मानव का इन दोनों से पाला पड़ता है । सांसारिकता, भोगविलास-कामानुरक्तता वाला मार्ग प्रेय मार्ग है तथा ईश्वरीय सत्ता के प्रति अनुराग,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानवमात्र के अभ्युदय के प्रति अटूट निष्ठा, सब में समभाव देखते हुए सबका हित सोचने वाला मार्ग श्रेय मार्ग है । जहाँ प्रेय में व्यष्टिगत सुख कामना प्रधान होती है, वहाँ श्रेय में समष्टिगत सुख का भाव होता है । प्रेय मार्ग पर चलने वाला दो ही पुरुषार्थ प्रधान मानता है– अर्थ व काम तथा श्रेय मार्ग पर चलने वाला धर्म पर आरूढ़ होकर चलता है । धर्म से ही अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं एवं उसका वास्तविक फल मोक्ष है ।

पाश्चात्य उपभोग प्रधान सभ्यता आज जहाँ अर्थ पर जोर देती है वहाँ 'काम' रूपी धुरी पर ही उनका समग्र चिन्तन चलता है। धर्म अर्थात् नीतिमत्ता, संवेदना, वर्जनाएँ, मर्यादाएँ, जीवन को दिशा देने वाला तत्वज्ञान वहाँ न होने से भवबंधनों में जकड़ा मानव भोगों जन्य कष्टों को पाता दुःख नजर आता है मात्र पश्चिम नहीं, यह हर सभ्यता–हर समाज व हर युग पर तथ्य लागू होता है कि जब तक मानवी पुरुषार्थ धर्म पर आश्रित नहीं होता, वह संतापों–दुःखों व विग्रहों–विद्वेषों का ही निमित्त कारण बनता है । 'धर्म' पर आमूलचूल जोर देते हुए सारे पुरुषार्थ की त्याग में प्रतिष्ठा कर हमारे ऋषियों ने मानवी जीवन के उदात्तीकरण कां आदर्श प्रस्तुत किया है । वे इतने व्यावहारिक भी हैं कि धन संचय के लिए मना नहीं करते किन्तु उसका मुख्य फल धर्म हेतु (नश्वर विषय-सुख हेतु नहीं) करने की, संपदा के समुचित उपार्जन व वितरण की प्रक्रिया पर जोर देने को कहते हैं । आज का संकट 'अपरिग्रह' की परम्परा के लुप्त हो जाने से ही पैदा हुआ है । वे कामसेवन का मुख्य लाभ जीवन पुरुषार्थ हेतु दिये जाने की बात कहते हैं । भोग न करके धर्म हेतु ही उसका सुनियोजन उल्लास को जीवन में समाविष्ट करता है । जीवननिर्वाह ठीक से हो सके, इसके लिए देह का स्वस्थ होना जरूरी है । अतः काम की इतनी भर आवश्यकता है, उसमें लिप्त होने की नहीं ।

श्रीमद्भागवत् में शुकदेव जी कहते हैं–

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् ।
भ्रंशितो ज्ञान विज्ञानाद् येनाविशति मुख्यताम् ।।

(४–२२–३३)

अर्थात् "धर्म और मोक्ष के लिए प्रयत्नशील न होकर केवल अर्थ और काम की ही चिन्ता करना संपूर्ण पुरुषार्थों से ही हाथ धो बैठना है, क्योंकि इससे मनुष्य ज्ञान और विज्ञान दोनों से च्युत होकर स्थावर योनि को प्राप्त हो जाता है ।"

इसीलिए ऋषि कहते हैं कि जिस धर्म के अनुष्ठान से अर्थ और काम का विरोध हो इन दोनों में बाधा पड़े, जिस अर्थ के अनुष्ठान से धर्म और काम का ह्रास हो जाए तथा जिस काम के संपादन करने से धर्म और अर्थ में बाधा पड़े, न धर्माचरण हो, न अर्थोपार्जन–ऐसे परस्पर विरोधी द्विवर्गों का उपार्जन किसी को नहीं करना चाहिए । गृहस्थ जीवन जीते हुए मानव मात्र किस तरह इन पुरुषार्थों का संपादन करे, इस पर देव संस्कृति के निर्धारण अनुपम हैं ।

यही नहीं भारतीय संस्कृति की वर्ण व्यवस्था का मूल आधार भी पुरुषार्थ चतुष्टय है । इसे समझें । ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय एवं शूद्र यह वर्ण विभाजन जिस कर्म पुरुषार्थ के आधार पर किया गया है, वह नितान्त वैज्ञानिक है । कालक्रम में वह जातिगत आधार बन गया, यह विडम्बना है । ब्राह्मण कौन ? जो धर्माचरण करे वह ब्राह्मण । जिसके अर्थ व काम का सुनियोजन मोक्ष हेतु हो । जो विद्या रूपी तप द्वारा ब्राह्मणत्व की सिद्धि प्राप्त कर ज्ञान सम्पदा का वितरण करे । वर्जनाओं का महत्व सबको अपने जीवन द्वारा समझाए। वैश्य वह, जो अर्थ का सुनियोजन धर्म के आधार पर करे–"शतहस्तं समाकर–सहस्र हस्तं संकिर" का तत्वदर्शन समझें एवं दान परम्परा द्वारा अर्थ का सुव्यवस्थित वितरण करें । क्षत्रिय वह जो 'काम' को उल्लास–स्फूर्ति के रूप में परिमार्जित कर प्रशासन की व्यवस्था का भार सँभाले । उपभोग में ऊर्जा का अपव्यय न कर समाज की सुरक्षा का दायित्व निभाना ही उसका एक मात्र धर्म है । स्वस्थ मनोरंजन की प्रक्रिया को जन्म देकर काम बीज का परिष्कार जो कर सके, ऐसे धर्म पर आधारित काम ही उसका मूल पुरुषार्थ है । अब 'शूद्र' की परिभाषा समझ लेना यहाँ ठीक होगा । शूद्र वह जो धर्म पर नहीं चले तथा अर्थ व काम के वास्तविक रूप को विकृत कर दे । जो भोगवादी जीवन जीते हुए प्रजनन तक सीमित रहे, निरन्तर स्वयं को बंधनों में बाँधता चला जाए वह शूद्र है । जन्म से हम सब इसी स्थिति में होते हैं । क्रमशः जीवनयात्रा के लक्ष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को पार करते हुए काम, अर्थ व धर्म की सिद्धि द्वारा अंततः मोक्ष को प्राप्त होते हैं, जो जीवन लक्ष्य है।

मनुष्य को अपौरुषेयवाणी के माध्यम से वेदों में अमृत-पुत्र (श्रण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः) कहकर सम्मानित किया गया है । देवताओं ने उसके शरीर व मन में प्रवेश कर उसे जीता जागता देवालय बनाने का प्रयास किया है। (देवा देवेभ्यः पुरा) तथा इस मानवी काया को नौ द्वारों वाली देवों की नगरी अयोध्या "(अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या" (अथर्व–१०/२/३१) कहा गया है, तो फिर यह देवमानव पुरुषार्थ क्षेत्र में भटक क्यों जाता है ? बंधनों से मुक्त क्यों नहीं हो पाता ? भारतीय संस्कृति उसका मार्गदर्शन करते हुए कहती है–

सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ।।
शुक्रोऽसि, भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ।।

(अथर्व–२/११/४–५)

अर्थात् "हे नर ! तू तो विद्वान है, शरीर रक्षक है । अपने को पहचान । श्रेष्ठों तक पहुँच बराबर वालों से आगे बढ़ । हे नर ! तू तो शुक्र है, तेजस्वी है, आनन्दमय है, ज्योतिष्मान है । अपने को पहचान, श्रेष्ठों तक पहुँच बराबर वालों से आगे बढ़ ।"

मानव को पुरुषार्थपरायण बनाने वाला यह जीवन दर्शन ही देवसंस्कृति का प्राण है व मानव मात्र के लिए प्रेरणा का अनन्त स्रोत भी ।

व्यक्ति की संवेदना को परिष्कृत करने वाली विधा है "धर्म"

पुरुषार्थ चतुष्टय में सर्वाधिक प्रधान पुरुषार्थ जो मोक्ष प्राप्ति का साधन बताया गया है, धर्म है । धर्म शब्द की व्याख्या कई प्रकार से की जा सकती है । पहले शास्त्रों का प्रसंग लें, फिर आधुनिक चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में सोचें कि यह धर्म है क्या ? क्या यह वही धर्म है जिसके नाम पर निष्ठुर लोग एक-दूसरे को मारते–परस्पर विद्वेष फैलाते नजर आते हैं ? क्या धर्म उसे कहते हैं जिसमें बहिरंग का कर्मकाण्ड, वेश, विन्यास ही प्रमुख होता है एवं आचरण–व्यक्तित्व परिष्कार की कोई आवश्यकता नहीं होती ? क्या धर्म वह है जो व्यक्ति को अनैतिक आचरण की प्रेरणा देता है व इसके लिए साक्षियाँ भगवत् सत्ता की देता है ? क्या विशिष्ट पूजागृह में जाकर वैसा व्यवहार करना व मुँह चला लेना, यही धर्म है ? कर्म को प्रधानता न देते हुए समाज पर भारभूत बनकर अकर्मण्य बनते चले जाना ही क्या धर्म है ? ये सारे प्रश्न, उत्तर माँगते हैं, क्योंकि धर्म शब्द को जितना अधिक तोड़ा मरोड़ा व उसका दुरुपयोग किया गया है, उतना संभवतः और किसी के साथ नहीं हुआ । यह समझ में नहीं आता कि धर्म जैसी शाश्वत् अनित्य सत्ता कभी-कभी खतरे में कैसे पड़ जाती है व किसी की बलात् धर्म संबंधी मान्यताएँ बदल देने पर परलोक में किसी के लिए स्थान सुरक्षित कैसे हो जाता है ? इन सबका स्पष्टीकरण देने के लिए हमें 'धर्म' के वास्तविक स्वरूप को भारतीय संस्कृति के परप्रेक्ष्य में समझना होगा ।

गीताभाष्य में आद्यशंकराचार्य कहते हैं "जो इस जगत् की स्थिति का कारण एवं प्राणियों के अभ्युदय और मोक्ष का साक्षात हेतु है, श्रेय के अभिलाषी ब्राह्मणादि वर्ण और आश्रम वाले लोग जिसका आचरण करते हैं, उसका नाम धर्म है" (जगतः स्थिति कारणं प्राणिनां साक्षात् अभ्युदय निःश्रेयस हेतुः यः सधर्मो ब्राह्मणद्यै वर्णिभिराश्रमिभिश्च श्रेयोर्थिभिरनुष्ठीयमानः)। इसका भावार्थ यह हुआ कि जिस परमसत्ता के बनाये नियमों के अनुरूप इस जगत् का धारण–पोषण हो रहा है, उसके अनुशासनों के अंतर्गत अपनी जीवनचर्या का निर्धारण धर्माचरण है, जो मनुष्य की आमूलचूल प्रगति का–सर्वांगपूर्ण अभ्युदय तथा निःश्रेयस का निमित्त कारण है, वह धर्म है । प्रकृति के विश्व ब्रह्माण्ड के दायरे में रहकर सदाचरण द्वारा की गयी प्रगति अभ्यदुय कहलाती है तथा ब्रह्म की निःसीम सुखानुभूति को, प्रकृति की सीमा से परे प्राप्त होने वाली आत्मिक प्रगति को निःश्रेयस (नास्ति श्रेयान्यस्तात् तत् निःश्रेयम्–जिससे बढ़कर और कोई उत्तम फल न हो) कहते हैं । श्रेय पथ पर चलने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाले–श्रेष्ठ चिन्तन कर तदनुसार आचरण करने वाले ब्रह्मनिष्ठों के बताए पथ पर चलना धर्म है। वस्तुतः आचरण में नीतिमत्ता को उतारने की प्रेरणा देने वाला कारक तत्व धर्म है ।

धर्म की अगली व्याख्या महाभारतकार ने इस प्रकार की है–

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः।

–(महाभारत) क.प. ६६–५६

अर्थात् जो व्यक्ति को, समाज को, जनसामान्य को धारण करे, उसे धर्म कहते हैं । धर्म शब्द के मुख्य अर्थ तीन हैं–धारण करने वाला, पालन पोषण करने वाला, अवलम्बन देने वाला । किन्हें धारण करने वाला ? किन्हें संरक्षण देने वाला ? संपूर्ण जगत् को यहाँ रहने वाले जीवधारियों को । इस प्रकार सारी विश्व मानवता के लिए धर्म एक ही हुआ। जिसके मार्ग दर्शन संरक्षण में जिसके छाया तले सभी प्रकार की विचारधाराएँ समान रूप से पोषण पाती रहें, पारस्परिक कोई विग्रह न हो, वह धर्म शाश्वत है व एक ही है, देव संस्कृति इस संबंध में हमारा मार्गदर्शन आज की साम्प्रदायिक विद्वेष भरी परिथितियों में समुचित रीति-नीति से करती हुई कहती है कि वही धर्म कहलाने योग्य है जो सहिष्णु हो, जिसकी मर्यादा–अनुशासन का अवलम्बन सब लें, जो नीतिमत्ता पर आधारित हो तथा जो सबको समान संरक्षण प्रदान करता हो । इस प्रकार "धारयते लोकम् इति धर्मः" की उक्ति पर आज की परिस्थितियों में कौन सा ऐसा धर्म है, इसका निर्णय आसानी से किया जा सकता है व तदनुसार मानवधर्म का निर्धारण मानव मात्र के लिए किया जा सकता है ।

धर्म की परिभाषा बड़े विराट व्यापक रूप में समझी जानी चाहिए क्योंकि इसी पर समग्र विश्व मानवता की आचार संहिता अवलम्बित है । धर्म व संप्रदाय में अंतर है । धर्म एक शाश्वत नीतिदर्शन का नाम है जो मूलतः संवेदना की धुरी पर जन्म लेता है जबकि सम्प्रदाय एक मान्यता विशेष का, एक मार्ग का नाम है जिसे मानते हुए जिसका अवलम्बन लेते हुए व्यक्ति एक चरम लक्ष्य को प्राप्त होता है। देव संस्कृति ने धर्म को इसी अर्थ में लिया । यही कारण है कि इसके गर्भ में सभी मत–सम्प्रदाय–मतान्तर–मान्यताएँ पनपते–विकसित होते चले गये ।

धर्म का प्रथम अंग है नीति विज्ञान । नैतिकता पर आधारित एक ऐसा अनुशासन जो व्यक्ति की चेतना में संवेदना को जन्म दे, उसे अंकुरित–पोषित होने हेतु समुचित वातावरण प्रदान करे । सच्चा धर्म वही है जो व्यक्ति को नैतिकता के अनुशासन में बाँधता है । आर ऑस्बार्न अपनी पुस्तक "ह्यूमेनिज्म एण्ड मॉरल थ्योरी" में कहते हैं कि विभिन्न संप्रदायों में मान्यताओं संबधी मतभेद हो सकते हैं किन्तु नैतिक विचारों के संबंध में सभी में एकता है । रैल्कपैरी "द ह्यूमेनिटी ऑफ मैन" में कहते हैं कि धर्म की आवश्यकता मानव का गौरव व उसके आचरण की श्रेष्ठता बनाए रखने में है । नियमबद्ध, अनुशासित संयमपूर्ण जीवन ही समृद्ध व्यक्तित्व बनाता है व यह कार्य धर्माचरण से ही संभव होता है । संभवतः इसी कारण ऋषियों ने कहा–"**धर्मान्नप्रमदितव्यम्** ।" (अर्थात् धर्म में प्रमाद या असावधानी नहीं बरतनी चाहिए) । आधुनिक सभ्यताएँ नैतिक बधंनों से परे धर्म रहित अर्थ व काम की प्राप्ति–उपार्जन हेतु प्रेरित करती हैं, मन की पैशाचिक दासता को स्वीकारने की प्रेरणा देती हैं। परिणाम सामने है । प्रत्यक्षतः या लौकिक जीवन में जो रोग, दुर्बलताएँ दुःख, अशांति पारस्परिक विग्रह नजर आ रहे हैं, वह सब इसी कारण पनपे हैं। मनु कहते हैं "**परित्येदर्थकामौ यौ स्यातां धर्म वर्जिताम्**" अर्थात् "मनुष्य को ऐसे अर्थ और काम का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए जो कि धर्म से रहित हो।" इस प्रकार धर्म का अर्थ हुआ संवेदना मूलक नीतिमत्ता ।

धर्म का द्वितीय अंग है–आस्तिकता प्रधान तत्वदर्शन । मानव–मानव में पारस्परिक सामंजस्य एवं अनिवार्य घनिष्ठता स्थापित करने वाला तर्क सम्मत विवेचन । आर अस्गोली ने अपनी पुस्तक "साइकोसिन्थेसिस" में धर्म के इस पहलू को मानवी अतिचेतन के एक अनिवार्य गुण के रूप में प्रतिपादित करते हुए कहा है कि "यहीं से मनुष्य को ऊँचा उठाने वाली, दुर्बलताओं से मुक्ति दिलाने वाली, श्रेष्ठ व उदात्त भावनाओं का उदय होता है। प्रतिभा जागरण का मूल केन्द्र यही है । आध्यात्मिक ऊर्जा जगाकर व्यक्ति को श्रेष्ठता के पथ पर पहुँचाने वाली विधा है यह ।" वेदों का ऋषि धर्म के इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उदात्त व व्यापक रूप की व्याख्या करते हुए मानव मात्र के शुभ की कामना की अभिव्यक्ति इस प्रकार करता है–

ध्रुवां भूमि पृथिवीं धर्मणाधृताम् ।
शिवां स्थोनामनु चरेम विश्वहा ।

अथर्ववेद १२.१

अर्थात् "यह ध्रुव और अचलभूमि, यह पृथ्वी जो धर्म द्वारा धारण की गयी है, हम उस शिवसुखदायिनी भूमि पर विश्वान्त विचरण करें ।" ऋग्वेद में ऋषि कहते हैं–"सुगां ऋतस्य पंथा" अर्थात् धर्म का मार्ग मानव को सुख देता है, दुःख से मुक्त(ऋग्वेद ८/३/१३) करता है ।" कितनी व्यापक अर्थ वाली भावना वैदिक संस्कृति में धर्म के प्रति व्यक्त की गयी है । ऋग्वेद में 'ऋत्' ऐसी विश्व व्यवस्था संबंधी धारणा है जिसमें सार्वभौम प्रतिमानों द्वारा धर्म की परिपूर्ण व्याख्या तत्वदर्शन के परिप्रेक्ष्य में की गयी है ।

धर्म का तृतीय अंग है अनगढ़ मानव को देवमानव बनाने वाला उसे सही दिशा देने वाला एक गहन विज्ञान, जिसे हम "अध्यात्म" नाम से जानते हैं, धर्म को अध्यात्म से "स्प्रिचुअलिटी" से कभी अलग नहीं किया जा सकता । जो प्रयास–प्रयत्न मनुष्य को अन्तर्मुखी होने की प्रेरणा दे वह धर्म है, जो बहिर्मुखी बनाए उसे भोगवादी बनाकर उसके व्यक्तित्व को विखण्डित कर दे, वह अधर्म है । बहिर्मुखता मनुष्य को व समग्र समाज को असंयम की ओर, विनाश की ओर ले जाती है तथा अंतर्मुखता संयम–शांति–प्रेम तथा इनरब्लिस व परम लक्ष्य की ओर । विभिन्न कर्मकाण्डों द्वारा देव संस्कृति में यही प्रयोग मनुष्य को सिखाया जाता है एकाग्रता के चरमलक्ष्य की ओर अंतर्मुखता की ओर बढ़ने का । जिस समाज में जितने अधिक अंतर्मुखी वृत्ति के व्यक्ति होंगे वह समाज उनकी एकाग्रता से प्राप्त शक्ति से उतना ही लाभान्वित होगा। वह उतना ही अधिक टिकाऊ बनेगा । भारतीय संस्कृति इस कसौटी पर पूरी तरह खरी उतरती है।

वस्तुतः मानव की संवेदनशीलता का विकास ही धर्म है । एरिकफ्रॉम वह पहला व्यक्ति था जिसने मन की गहन परतों की सामाजिक परिप्रेक्ष्य में व्याख्या कर धर्म को मानव मात्र के लिए अनिवार्य बताया । इसके लिए उसने धर्म की व्याख्या की, मानवी क्षमताओं के जागरण की उसके समुन्नत व्यक्तित्व परिष्कार की विधा के रूप में (मेन एण्ड सोसायटी इन एरिकफ्रॉम–अदिति चौधुरी–पृष्ठ १८३) । फ्रॉम कहते हैं कि "वह धर्म झूठा है जो व्यक्ति की विकासोन्मुख मौलिक क्षमताओं को दबाने या कुन्द करने की उसे संवेदनाहीन बनाने की कोशिश करता है ।" स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि "धर्म के नाम पर आज हम सब "लिप सर्विस" । ओंठों से बुदबुदाने वाले कर्मकाण्ड मात्र का प्रयोग करते हैं जब कि धर्म व्यक्तित्व के परिष्कार की व उस माध्यम से उसके सारे समाज पर पड़ने वाले प्रभाव की विधा का नाम है । एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति चलती फिरती संस्था है ।" स्वामी विवेकानन्द की यह उक्ति कितनी सही है ।

तैत्तिरीय आरण्यक में धर्म को संपूर्ण जगत का आधार कहा गया है–"धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा ।" इसी कारण आगे श्रुति कहती है–"धर्म एवं हतो हन्ति धर्मोरक्षति रक्षितः" अर्थात् "धर्म का जो नाश करेगा, धर्म उसे विनष्ट कर देगा और जो धर्म की रक्षा करेगा, धर्म उसकी रक्षा करता है ।" धर्म के नाश से अर्थ है उसकी उपेक्षा तथा धर्म की रक्षा से यहाँ तात्पर्य है धर्माचरण । सारा समाज इसी अनुशासन पर टिका हुआ है । समाज के मानक दण्ड मानवीय मूल्यों का पतन होने पर उसका विनाश सुनिश्चित है । धर्म प्रधान पुरुषार्थ व्यक्ति,समाज, राष्ट्र व संस्कृति के सर्वांगीण अभ्युदय का निमित्त कारण बनता है, इसमें किसी प्रकार का संशय किसी भी विचारक को नहीं है ।

सारे विश्व के मनुष्यों की उत्पत्ति द्वारा मानव के रूप में एक प्राणी भगवान ने बनाया है । अतः उसके धर्म अनेक नहीं हो सकते । विश्व में दो या पाँच या दस धर्म हैं, यह एक भ्रांति है । अनादि, सनातन, वैदिक धर्म ही मानव धर्म है, यह प्रागैतिहासिक कालीन विश्वमान्य सत्य है । बाद में देश, काल, पात्र के अनुसार महापुरुषों ने धर्म के किसी विशेष अंग को कहीं प्रचलित किया और कालान्तर में वह मत धर्म कहा जाने लगा । धर्म के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभिन्न अंगों में पारस्परिक विग्रह या विद्वेष कैसा ? सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग आदि सार्वभौम धर्म है । किसी महामानव ने किसी पर बल दिया है, किसी ने दूसरे पर । तात्कालिक समाज की जो विकृतियाँ थीं, उन्हें मिटाने हेतु जिस साधन पर बल देना आवश्यक माना गया उसे उन्होंने प्रमुखता दी। किसी ने यह नहीं कहा कि हम नूतन धर्म का सृजन कर रहे है । यह तो मानवी दंभ है जो शाश्वत् धर्म को संप्रदायों का रूप देकर उन्हें परस्पर लड़वाकर समाज के पतन का कारण बनता है । इस संकट का निवारण तभी संभव है जब धर्म का शाश्वत् स्वरूप सभी को हृदयंगम कराया जा सके ।

मानवमात्र के लिए श्रेष्ठता के पथ पर बढ़ने में सहायक धर्मोत्पत्ति के दस साधन मनु महाराज ने बताये हैं, उन्हें धर्म के दस लक्षण भी कहा जाता है ।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।

(मनुस्मृति ६/६२)

अर्थात् धृति (धैर्य, सन्तोष, आत्मावलम्बन), क्षमा (औचित्य के प्रति उदारता), दम (मनःसंयम), अस्तेय (न्यायपूर्ण जीवन) शौच (बहिरंग व अंतरंग की पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (विषयों के अधोगामी प्रवाह को रोकना), धी (विवेकबुद्धि), विद्या (आत्मज्ञान पारलौकिक फल वाले सत्कर्मों में प्रवृत्ति), सत्य (मन–वचन–कर्म से व्यक्ति का शुद्ध होना व प्रिय सत्य बोलना), अक्रोध (मानसिक समस्वरता, आत्म नियंत्रण, आवेश में न आना)–ये दस लक्षण धर्म के बताये गए हैं । व्यावहारिक अध्यात्म की दृष्टि से कितने सही व परिष्कृत व्यक्तित्व हेतु अनिवार्य ये सद्गुण हैं । किसी भी सभ्यता–मान्यता को मानने वाले को इस संबंध में भ्रम नहीं होना चाहिए ।

कुछ धर्म सामान्य धर्म होते हैं, कुछ विशेष । दान सामान्य धर्म है परन्तु रोगी ऐसे पदार्थ आकर माँगे जो उसे नुकसान करेंगे तो उस समय इसे वह पदार्थ न देना विशेष धर्म है । इसी प्रकार आततायी को क्षमा कर देना अहिंसा नहीं कायरता है । फोड़े पर चीरा लगाना चिकित्सक का विशेष धर्म है हिंसा नहीं। इस प्रकार धर्म सदैव देश, काल, परिस्थिति व औचित्य के साथ देखकर उसका निर्धारण किया जाना चाहिए। आपद्धर्म केवल आपत्तिकाल तक के लिए होता है और वह भी उतने ही अंश जितने अंश में आपत्तिकाल चल रहा हो । मरणासन्न रोगी को वैद्य ने लहसुन दे दिया तो जरुरी नहीं कि अच्छा होने पर भी लहसुन उसका खाद्य हो जाय । युगधर्म वह है जो उस समय काल के लिए किया जाने योग्य कर्तव्य है । स्वतंत्रता संग्राम में देश के लिए लड़ना युगधर्म था तो आज देव संस्कृति का तत्वज्ञान घर-घर पहुँचाना, आस्था-संकट से जूझना, पीड़ित मानवता की सेवा युगधर्म है ।

वस्तुतः धर्म हमें कर्तव्य की प्रेरणा देता है, साथ ही फल की ओर से तटस्थ रहने का आदेश भी देता है । धर्म का एकमेव लक्ष्य अन्तर्मुखता है, त्याग है, संवेदना का जागरण है तथा पारस्परिक सद्भाव का विकास है । इस भावना का जितना विस्तार होगा, धर्म की उतनी ही रक्षा होगी, आस्था संकट की विभीषिका तभी मिटेगी तथा मानवी पुरुषार्थ अलसाई अवस्था से परिपूर्ण जागरण–मोक्ष की ओर अग्रसर होगा ।

'धर्म' व 'मोक्ष' की सिद्धि का उपाय 'अर्थ' व 'काम'

देव संस्कृति का एक-एक पक्ष इतना सर्वांगपूर्ण है कि देखकर आश्चर्य होता है कि वैदिककालीन ऋषिगणों ने मानव मात्र के अभ्युदय–लौकिक व पारलौकिक प्रगति के एक भी पहलू को अछूता नहीं छोड़ा है। पूर्व के लेख में मानवी पुरुषार्थ के मूल व प्राण ' धर्म' की चर्चा हो चुकी। धर्माचरण व उसके लिए व्यक्ति का अन्तर्मुखी होकर परिष्कृत संवेदनशील जीवन जीना ऋषियों ने अनिवार्य बताया है। ब्राह्मणत्व की यह सिद्धि व्यक्ति को ब्रह्मनिष्ठ बनाती हुई उसकी निज की प्रगति के साथ-साथ सबके उत्थान का पथ प्रशस्त करती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारतीय संस्कृति के प्रणेता मनीषी कहते हैं कि अर्थ व काम दोनों का ही उपार्जन–उपभोग करो, पर प्रमाण से सँभलकर, धर्म के साथ युक्त होकर। अध्यात्मवादी भौतिकता का समर्थन करने वाली भारतीय संस्कृति कहती है कि जिस 'अर्थ' के अनुष्ठान से ' धर्म' व काम का ह्रास हो जाए व जिस काम के संपादन से धर्म व अर्थ में बाधा पड़े ऐसा पुरुषार्थ संपन्न न किया जाय। अर्थ व काम को ऋषियों ने दोनों ओर से धर्म और मोक्ष से बाँध दिया है। काम शास्त्र के उपदेष्टा महर्षि वात्सायन "कामसूत्र" में लिखते हैं–

"लोकयात्राया हस्तगतस्य च बीजस्य भविष्यतः सस्यस्यार्थे त्याग दर्शनाच्चरेद्धर्मान।"

अर्थात् "जैसे हाथ में आए हुए अन्न (बीज) को भविष्य में होने वाले बहुत से अनाज के लोभ से त्याग दिया जाता है (अर्थात् जमीन में बो दिया जाता है) उसी प्रकार मोक्ष के लिए अर्थ और काम को भी संकुचित करके भी, धर्म का सेवन करना चाहिए।" कितना स्पष्ट विज्ञान सम्मत व्यावहारिक दृष्टिकोण है। वात्सायन का जिनके नाम व नीति वाक्यों का आज के भोगवादी मानव ने सबसे अधिक दुरुपयोग किया है।

सबसे पहले अर्थ के प्रसंग को लिया जाय। "अर्थ" से भावार्थ है सम्पदा के उत्पादन व वितरण की सुनियोजित प्रणाली ताकि समग्र समाज में सुख-शांति व धर्मनिष्ठा जीवन्त रहे। अर्थ के अभाव में प्रगति की अपेक्षा कैसे की जा सकती है। शुक्राचार्य नीति में महर्षि कहते हैं–

अर्थात् धर्मश्च कामश्च मोक्षश्चापि भवेत्त्रणाम्।
शस्त्रास्त्राभ्यां बिना शौर्यं गार्हस्थ्यं तु स्त्रियं बिना।।

(शुक्रा. नीति १–८४)

यानी "जैसे शस्त्रास्त्र के बिना शूरता नहीं सफल हो सकती, जैसे स्त्री के बिना गार्हस्थ्य नहीं निभ सकता, वैसे ही अर्थ के बिना धर्म और मोक्ष दोनों ही सिद्ध नहीं हो सकते।"

महर्षि चाणक्य ने कहा– **अर्थार्थं प्रवर्त्तते लोकः** "अर्थ से आशय है अभिलषित वस्तु। इस लोक (चा. सू. ७/२८) की प्रगति अर्थ पर ही निर्भर है । जिसे प्राप्त करने की सब इच्छा करें, वह अर्थ है । क्यों? क्योंकि "**सुखस्यमूलं धर्मः। धर्मस्य मूलम अर्थः**" (चा. सू. १–१,२)

धन-धन्य, वस्त्र, गृह-भूमि, सम्पत्ति, पशु विद्या कला, कृषि, गृहस्थी का सब सामान इन सबको ऋषियों ने अर्थ में गिना है व कहा है कि मानव मात्र अपरिग्रह का सिद्धान्त जीवन व्यवहार में लाए ताकि सम्पदा का समान वितरण हो सके। आदमी धनोपार्जन हेतु पुरुषार्थ तो करे परन्तु निज के लिए व्यवस्था ब्राह्मणोचित निर्वाह भर की रखे। अपने पास संग्रह न करे। थोड़ा विचार करे, आज की समस्याएँ जो पैदा हुईं हैं, वह किस कारण पैदा हुईं। इस शताब्दी में उपनिवेशवाद के समापन के बाद नार्थ ब्लॉक–साऊथ ब्लॉक विकसित देश व अविकसित विकासशील देशों के रूप में दो वर्गों में अर्थ सम्पदा का ध्रुवीकरण हुआ। कुछ देश धनी अत्यधिक धनी बने व कुछ निर्धन व अत्यन्त दीन-हीन स्थिति में। युद्ध लिप्सा से लेकर विश्व भर में फैली आर्थिक समस्याएँ जिनमें अन्यान्य राष्ट्रों की सम्पदा–व्यवस्था व प्रजा का मनचाहा शोषण भी आ जाता है, 'अर्थ' के धर्म प्रधान न होने से पैदा हुई हैं। जो अर्थशास्त्र किसी जाति विशेष धर्म विशेष या राष्ट्र विशेष का ही विचार करता है, वह अर्थशास्त्र धर्म पर आधारित नहीं है। जमींदारों के रूप में शोषक वर्ग के उभरने से लेकर मुनाफाखोरों–काला बाजारियों, दूसरों का शोषण करके धनी बनने वाले कारखानेदारों के पुरुषार्थ के मूल में पूर्व जन्म के पुण्य नहीं अपितु अधर्म पर आधारित अर्थशास्त्र है। किसी भी समाज में इस प्रकार की विषमता–सामाजिक विग्रह, हिंसक विद्रोह व क्रांति को जन्म देती है। सीधा सच्चा अहिंसक रास्ता है–सम्पदा का धर्म प्रधान सुनियोजन।

यदि हम विगत दो शताब्दियों पर दृष्टि डालें तो देखते हैं कि मार्क्स का अर्थशास्त्र एक संजीवनी के रूप में आया व मार्क्स गरीबों के मसीहा बनकर आए परन्तु साम्यवाद का यह प्रयोग असफल रहा क्योंकि मार्क्सवाद में केन्द्रीय तंत्र अर्थ प्रधान नहीं है । उसमें विनिमय की व्यवस्था मात्र है । मार्क्स ने मानव को अर्थमानव बना डाला जो बढ़ते औद्योगीकरण के साथ यंत्र मानव बनता चला गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभी तक व्यक्ति पूँजीवादी था अब समाज पूँजीवादी बन गया । कहाँ आया समाजवाद–साम्यवाद ? इसी कारण पूर्वी ब्लॉक में सोवियत रूस में एक जबर्दस्त क्रांति हुई व देखते-देखते लेकिन व मार्क्स की स्थापनाएँ धूलिधूसरित हो गयीं।

जब तक मानव मात्र की समता व एकता की 'अर्थ' को धर्म प्रधान बनाते हुए व्यवस्था नहीं की जाती, सांस्कृतिक रूप से आदर्श समाज की स्थापना नहीं होती । मनुष्य की मौलिक क्षमताओं को विकसित करने की विधा है धर्म–अध्यात्म तथा उन क्षमताओं का उपार्जन–उपभोग हेतु सुनियोजन करने की विधा है 'अर्थ'। दोनों का युग्म जब तक नहीं होगा, तब तक सही समाजवाद नहीं आ सकता । परमपूज्य गुरूदेव ने जिस आध्यात्मिक साम्यवाद की रूपदेखा हम सबके समक्ष रखी, उसका आधार है मनोसामाजिक क्रांति । व्यक्ति की सोयी प्रतिभा का परिष्कार–उन्नयन व उससे समाज की प्रगति के विभिन्न सोपानों का खुलना। आज की उपभोग प्रधान पूँजीवादी पाश्चात्य संस्कृति की सारी पीड़ाओं का समाधान यही क्रांति है जिसकी दिशा हमें भारतीय संस्कृति से मिलती है। सुप्रसिद्ध चिंतक अर्नाल्ड टायनबी श्री इकेडा के साथ अपनी वार्ता में कहते हैं–"निकट भविष्य में विश्वस्तर पर आर्थिक समाजवाद अध्यात्म की पृष्ठ भूमि पर ही आयेगा एवं यही समष्टिगत विभीषिका का हल निकालेगा।" वे कहते हैं, कि "उपभोगवादी संस्कृति ने साधन दिए किन्तु उनका सुनियोजन बताकर भोग को ही प्रधानता दी । इसका परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति का विकास अवरुद्ध हो गया व अर्थ-सम्पदा भी कुछ क्षेत्रों में संचित होकर रह गयी । इस आर्थिक वैषम्य का समाधान आध्यात्मिक धरातल पर ही निकल सकता है, जिसका मार्गदर्शन पूर्वात्य संस्कृति युगों से करती आयी है ("चूज लाइफ" आक्सफोर्ड यूनिव. प्रेस १९८७ पुस्तक से उद्धृत)।

कठोपनिषद में नचिकेता यमाचार्य से कहते हैं "न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य :"

अर्थात् मनुष्य संसार भर की दौलत पाकर भी तृप्त नहीं हो सकता। इसीलिए वैदिक विचारधारा में वित्तेषणा को परिग्रह को निन्दनीय ठहराते हुए अर्थ को धर्म का आधार देकर उसकी त्याग में मोक्ष में प्रतिष्ठा करने की बात जोर देकर कही गयी है। इसके लिए समाज में एक तंत्र कभी था जो वैश्य रूप में जाना जाता था । कालान्तर में यह वर्ण व्यवस्था जाति में बदल गई व आज कुछ अलग ही रूप में हम सबके समक्ष है परन्तु अर्थ के सुनियोजन का दायित्व वैश्य तंत्र पर था । मनुस्मृति कहती है–

यथा नदी नदः सर्वे समुद्रे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।

(मनु.६–९०)

अर्थात् जैसे नदी नालों का पानी समुद्र में जा पड़ता है, वैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी, संन्यासी ये सब लोग–गृहस्थ वैश्य के द्वारा पालित पोषित होते हैं । गृहस्थ वैश्य जो धन कमाये, उसे समाज के काम में नियोजित कर दे, ऐसी व्यवस्था थी।

वस्तुतः परिग्रह करने वाला विलासी–सुखसाधनों में लिप्त व्यक्ति का बहिरंग धार्मिक रूप कुछ भी दिखाई पड़े, यदि वह अर्थ की वितरण प्रणाली को बलवती नहीं कर रहा तो धीरे-धीरे संवेदना की दृष्टि से वह कुन्द–निष्ठुर होता चला जायगा व आत्मतत्व से धर्म से उतना ही दूर भी हो जाएगा। भारतीय संस्कृति का केन्द्रीयतत्व रहा है त्याग–दानवृत्ति संवेदनशीलता और संवेदनशील व्यक्ति कभी विलासी परिग्रही नहीं हो सकता। जब भी अर्थ की वितरण प्रणाली को अवरुद्ध कर दिया जाता है तो वह बाहर निकलने के लिए अनेकानेक मार्ग खोजता है राज्यकरों से लेकर व्यसनों में दुरुपयोग तथा ईर्ष्या से पैदा शत्रुता से प्राणहानि व धनहानि तक की बारी आ जाती है। समष्टिगत स्तर पर सामाजिक समता की मर्यादाएँ टूटती हैं तथा अराजकता प्रधान अव्यवस्थाओं का दौर चल पड़ता है।

भारतीय संस्कृति अर्थ संचय का समाधान बताती हुई कहती है–समाज में जहाँ कहीं भी दरिद्रता के गड्ढे हैं, उन्हें समर्थ व्यक्ति पाटें "**दरिद्रान भर कौन्तय**"- (महाभारत)। धर्म प्रधान अर्थशास्त्र की स्थापना हेतु ऋषिगणों का कहना है–**"शतहस्तं समाहरं सहस्त्रहस्तं संकिर"** (अथर्ववेद ३/२४/५) अर्थात् सैकड़ों हाथों से कमाओ किन्तु हजारों हाथों से बाँट दो। वितरण को, धन के प्रवाह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की प्रक्रिया को अवरुद्ध मत करो। इसे विवेक सम्मत दान की पुण्य प्रक्रिया का आश्रय लेकर समाज को श्रेष्ठ बनाने वाले कार्यों में नियोजित कर दो। "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया" का दर्शन देने वाली भारतीय संस्कृति अर्थोपार्जन व उसकी सुरक्षा हेतु शील–संयम व उदारता को प्रमुख मानती है व इस प्राकर अर्थ का पुरुषार्थ धर्म के आधार पर करने की प्रेरणा देती है। अर्थ की सार्थकता कैसे हो, यह बताते हुए महर्षि शुक्राचार्य कहते हैं–

संरक्षयेत् कृपणवत् काले दद्याद् विरक्तवत्।

(शुक्रा.नीति)

अर्थात् "अर्थ का उपार्जन व संरक्षण तो महान कृपण की तरह सावधानीपूर्वक किया जाय परन्तु जब उपयोग का समय आवे तो हृदय खोलकर विरक्त की तरह उदारता से उसे व्यय करना चाहिए।"

जिस प्रकार धर्ममय अर्थशास्त्र की ऊपर चर्चा की गयी, उसी प्रकार तीसरा पुरुषार्थ धर्ममय काम शास्त्र वैसा ही महत्वपूर्ण स्थान भारतीय संस्कृति में पाता है। श्रीमद्भगवद् गीता कहती है– "धर्माऽविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतवर्षभः !" अर्थात् "जिस 'काम' का धर्म से विरोध नहीं है, वह मर्यादित काम ही मेरा स्वरूप है ।" भारतीय संस्कृति काम को भी धर्म के स्थान पर प्रतिष्ठित करती है व कहती है कि हमारे विषयभोग से सामाजिक व्यवस्था न बिगड़े समाज में अशान्ति न पैदा हो, समाज में दुःख-दैन्य, दरिद्रता न उत्पन्न हो । हमारा विषयोपभोग भी समाज के लिए सुखकर हो । काम आखिर है क्या ?

"काम्यते इति कामः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार विषय और इन्द्रियों के संपर्क से उत्पन्न होने वाला मानसिक आनन्द ही मुख्यतया 'काम' कहलाता है । जो भी शरीर व इन्द्रियों को सुख देने वाले ऐहलौकिक और पारलौकिक इच्छित पदार्थ हैं, उनको 'काम' की परिधि में गिना जाता है । ऋग्वेद का ऋषि कहता है–कामः मनसो रेतः (काम चित्त का मन का, बीज है) एवं यह काम सुख का मुख्य साधन होने के कारण प्राणियों को अत्यन्त अभीष्ट है । वे यह भी कहते हैं कि इन सुखों को धर्मानुसार भोगने में कोई दोष नहीं है । काम का औचित्य की मर्यादा में रहकर यदि पुरुषार्थ सम्पादन किया जाय तो वह उल्लास, दीर्घायुष्य चिरयौवन तथा आत्मिक आनन्द देता है तथा धर्म प्रधान होने के कारण मोक्ष का निमित्त कारण बनता है, यह भारतीय संस्कृति के मनीषी बताते आए हैं । फिर भोग भोगने में काम का नियोजन होने के क्या परिणाम होते हैं, यह भी ऋषि हमें दिखाते हैं । ययाति की कथा सर्वविख्यात है जिसमें उसने लगातार पुत्रों की तरुणता लेकर, बार-बार भोग का प्रयोग करके देखा लेकिन अंत में बेचारा घबरा गया । एक सहस्रवर्ष पर्यन्त काम का अनुभव करके संसर भर के कामियों को सचेत वह कर गया । भागवतकार ययाति से कहलवाता है–

यत् पृथिव्या व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
न दुह्यन्ति मनः प्रीति पुंसः कामस्तस्य ते ।

(भाग.८–१६–१३)

"पृथ्वी में जितने भी धनधान्य, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ है, वे सब मिल करके भी उस पुरुष के मन को संतुष्ट नहीं कर सकते, जो कि कामनाओं के प्रहार से जर्जरित हो रहा है ।" इसी तथ्य को मनु महाराज ने मानवजाति के समक्ष रखा व कहा–

"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।"

(म.स्मृति)

अर्थात् यदि वर्षों तक काम का उपभोग किया जाय तो भी काम शांत नहीं होता । अग्नि में आहुति डालने से वह बुझती तो नहीं किन्तु अधिकाधिक प्रज्वलित ही होती है ।

इन सभी उद्धरणों से मन का असमंजस स्वाभाविक है कि विषयों का उपभोग धर्ममय तथा मोक्ष प्राप्ति का साधन कब बनता है तथा कब वह मनुष्य के लिए अधोगामी बन जाता है ? सामान्य व्यक्ति का शास्त्रवचनों तथा लौकिक जीवन में संव्याप्त मान्यताओं से भ्रमित हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं । कहीं कोई महामण्डलेश्वर ब्रह्मचर्य की महत्ता पर ढेरों वक्तृताएँ देते देखे जाते हैं किन्तु उनके जीवन में इन्द्रिय संयम सर्वाधिक दिखाई देता है । चूँकि काम को गोपनीय प्रसंग माना गया है अतः पारस्परिक चर्चा तक हमारे समाज में अश्लील मानी जाती है अतः काम संबंधी विकृतयाँ समाजगत व मनोगत दोनों ही क्षेत्रों में बड़े व्यापक स्तर पर फैली देखी जाती हैं । इसीलिए काम के परिष्कृत रूप की व्याख्या यहाँ अनिवार्य है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'काम प्रक्रिया जो सृष्टि के मूल कारण प्रकृति पुरुष के मिलन से लेकर दाम्पत्य जीवन बसाने तक चली आ रही है, विश्व की एक ऐसी अनिवार्यता है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता । काम मात्र कामसेवन ही नहीं है, अपितु विनोद उल्लास व आनन्द का नाम है जो व्यक्ति की प्राण विद्युत के माध्यम से उसके व्यक्तित्व से परिलक्षित होता है। यह पुरुषार्थों का प्राण व मानव मात्र का पौरुष रूपी वह गुण है जो व्यक्ति की दैनन्दिन जीवनचर्या में उत्साह स्फूर्ति मानसिक समस्वरता, प्रशासकीय सुव्यवस्था व शौर्य जैसी अभिव्यक्तियों के रूप में परिलक्षित होता है । जब यही कामतत्व विकृत हो जाता है तो विषयोपभोग से लेकर जीवनीशक्ति क्षरण तक, रोगों–दुर्बलताओं के आक्रमण से लेकर समाजगत वासना के ताण्डव के रूप में देखा जाता है । कुदृष्टि–कामुकता कामतत्व की विकृति का प्रमुख निमित्तकारण है । स्वच्छन्द यौनाचार से लेकर अश्लील प्रदर्शन, कला के माध्यम से यौन कुण्ठाओं की व नारी के रमणी भोग्या रूप की अभिव्यक्ति तथा सामूहिक बलात्कारों से लेकर कुरुचिपूर्ण साहित्य का सृजन इसी विकृत रूप की अभिव्यक्तियाँ हैं ।

सन्तति उत्पादन हेतु यौनाचार काम की एकांगी व्याख्या है । भौतिकवादी प्रतिपादनों में फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिकों ने तो काम को मानवी चेतना की मूल प्रवृत्ति ही ठहरा दिया है । कामुकता के धरातल पर ला पटकने के कारण ही काम का वह स्वरूप लुप्त हो चला है, जो मनुष्य को कभी श्रेष्ठ बनाता था । काम प्राणी के अंतराल में कार्य करने वाली एक ऐसी उल्लास भरी वृत्ति का नाम है जो सदा उसे आगे बढ़ने–ऊँचा उठने के लिए प्रेरित करती है। व्यक्ति की जिजीविधा, संकल्पशक्ति, असंभव दीख पड़ने वाली उपलब्धियाँ साहसिक प्रयासों व प्रचण्ड पुरुषार्थ के रूप में वही उभरती दिखाई देती है । इसी शक्ति के कारण प्राणी उछलते, फुदकते तथा उमंग, उत्साह से भरे रहते हैं । इसी का एक छोटा रूप यौनाचार भी है । संतान, सतेज, और नीरोग किस प्रकार हो उसका ठीक–ठीक पोषण कैसे हो, यह सारे पक्ष धर्ममय काम के अन्तर्गत आते हैं । यौनाचार के आकर्षण में प्रकृत्ति प्रेरणा का एक मात्र लक्ष्य यही है कि सृष्टि का प्रजनन क्रम चलता रहे । किन्तु उसे यौनतृप्ति का आधार मान लेना एक भूल है । आज मनुष्य ही इस क्षेत्र में अन्य जीवधारियों की तुलना में अधिक स्वेच्छाचारी बन गया है, यह एक विडम्बना है।

काम भाव संवेदनाओं का परिष्कृत रूप है जो स्वस्थ मनोरंजन के रूप में तो, कभी भक्ति या प्रेम के रूप में कभी कला की उच्चस्तरीय अभिव्यक्ति के रूप में तो कभी प्रशासकीय व्यवस्था व कुशलता के रूप में सामने आता है । समाज का क्षत्रिय कहा जाने वाला वर्ग काम रूपी पुरुषार्थ का उपार्जन ही करता था । लोकरंजन हेतु वही स्वस्थ प्रतिस्पर्धाओं, क्रीड़ समागमों, शौर्य के प्रदर्शनों की व्यवस्था भी करता था। राज्य व्यवस्था भी ऐसे व्यक्ति सँभालते थे जिनका कामतत्व धर्ममय हो । कालान्तर में क्षत्रिय वर्ण–जाति बन गया व यौनाचार काम का विकृत रूप बनकर क्षत्रियों की सबसे बड़ी दुर्बलता बनकर सामने आया।

काम धर्ममय तब बनता है जब काम बीज का ज्ञान बीज के रूप में परिष्कार किया जाता है । इन्द्रिय संयम से उसका आरंभ तो होता है किन्तु अंत होता हैं ब्रह्म से एकाकार होकर–मोक्ष में । इन्द्रिय संयम भी दमन प्रधान नहीं, कामनाओं के परिष्कार व भावनाओं के ऊर्ध्वीकरण का मार्ग है । ब्रह्मचर्य का सुन्दरतम स्वरूप आदर्शों व सिद्धान्तों के प्रति प्रगाढ़निष्ठा के रूप में दिखाई देता है । इस तथ्य से अवगत व इसकी अनूभुति हो जाने पर व्यक्ति यौन आकर्षणों को तुच्छ मानते हुए काम को मोक्ष में परिणत कर लेता है । वस्तुतः काम के स्थूल आकर्षण का आध्यात्मिक प्रेम में परिवर्तन ही ऊर्ध्वगमन है । प्रतिभा का जागरण, ओजस्विता का प्रकटीकरण, हृदय की विशालता का औदार्य के रूप में दिखाई पड़ना काम की सुन्दरतम अभिव्यक्ति है। मोक्ष की, जीवनबंधनों से मुक्ति की, ईश्वरीय सान्निध्य के दिव्य रसास्वादन की भूमिका यहीं से बनती है । अध्यात्म सम्मत काम विज्ञान ही आज की भोगप्रधान संस्कृति का उत्तर हो सकता है, इसमें किसी को संशय नहीं होना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज का आस्था संकट 'अर्थ' व 'काम' इन दोनों के धर्म से विलग हो जाने से पैदा हुआ है, यह निष्कर्ष सभी विचारकों का है । जब-जब भी जिस समाज में उपार्जन हेतु अर्थ तथा उपभोग हेतु काम का बिना किसी वर्जना के बिना मानव मात्र के प्रति संवेदना–करुणा को जगाए, नियोजन होगा तो वह समाज पतन के गर्त्त में गिरेगा । यदि हमें आज समाज को, व्यक्ति को सही दिशा में अग्रगामी बनाना है, सतयुगी दुनिया का प्रारूप विकसित करना है तो अर्थ व काम को धर्म के आधार पर प्रतिष्ठित करना होगा । सांस्कृतिक क्रान्ति अगले दिनों यही कार्य संपन्न करने जा रही है ।

मोक्ष अर्थात् बन्धनों से मुक्ति एवं ''त्याग की प्रतिष्ठा''

प्राच्यविद्या विशारद प्रो.मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया–व्हाट कैन इट टीच अस ?'' (भारत हमें क्या सिखा सकता है?) में लिखा है–''यदि मुझ से पूछा जाय कि अतंरिक्ष के नीचे कौन सा वह स्थल है जहाँ मानव के मानस ने अपने अन्तराल में निहित ईश्वर प्रदत्त अन्यतम सद्भावों को पूर्ण रूप से विकसित किया है, गहराई में उतरकर जीवन की कठिनतम समस्याओं पर विचार किया है, उनमें से अनेकों को इस प्रकार सुलझाया है–जिनको जानकर प्लेटो तथा काण्ट का अध्ययन करने वाले मनीषी भी आश्चर्यचकित होकर रह जायँ तो मेरी उँगली भारत की ओर उठेगी ।'' वस्तुतः यह अभिव्यक्ति देव संस्कृति के उन महत्वपूर्ण निर्धारणों के प्रति अगाध श्रद्धा के भाव से एक पाश्चात्य मनीषी द्वारा व्यक्त की गयी है, जिनके कारण भारतीय अध्यात्म जीवन की हर समस्याओं का समाधान बताते हुए सार्वकालिक, सार्वभौम व व्यावहारिक कहलाया। वैदिक युग के ऋषियों की सबसे बड़ी देन है व्यक्ति को पुरुषार्थ-परायण बनाते हुए, उसे कर्म क्षेत्र से जोड़े रहते हुए उसके चिन्तन में 'मोक्ष' की भावना की प्रतिष्ठापना करना । जो मोह का क्षय करे, वह मोक्ष है । भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि यह मोक्ष, मुक्ति, जीवन्मुक्ति जरूरी नहीं कि मरने के बाद मिले, यह संदेह जीवन में कभी भी हर कोई प्राप्त कर सकता है । इसके लिए यहाँ के ऋषियों ने मोक्ष की लक्ष्य प्राप्ति के लिए समुचित मार्गदर्शन मानव मात्र को दिया है ।

मोक्ष को धर्म के भी पार बताते हुए चेतना की उच्चतम स्थिति संबोधित करते हुए इसे ऋषि परिपूर्ण जागरण की स्थिति बताते हैं । मोक्ष का अर्थ है जीवन में त्याग की प्रतिष्ठा । वैदिक ऋषियों की मान्यता है कि यदि त्याग जीवित रहा तो मानव जाति व समग्र समाज प्रतिष्ठित रहेगा विकसित होता रहेगा । एक बड़ा सुन्दर संवाद बृहदारण्यकोपनिषद में आता है जिसमें वानप्रस्थ लेकर वन को प्रस्थान करने से पूर्व याज्ञवल्क्य अपनी दोनों पत्नियों को धन सम्पत्ति को समान बँटवारा करते हुए सुख से जीवनोपभोग करने को कहते हैं । गार्गी और मैत्रेयी दोनों में से मैत्रेयी उनसे पूछती है–हे स्वामी ! जो सांसारिक सम्पदा मुझे आप दे रहे हैं इनसे क्या मुझे अमरत्व की प्राप्ति हो जायेगी ? तो याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं कि धन से मोक्ष की आशा नहीं की जा सकती । तुम्हारा जीवन तो इन सब साधनों से अन्यान्य व्यक्तियों की तरह ही व्यतीत होगा । तब मैत्रेयी अंतराल को स्पर्श करने वाला, हम सबके चक्षु खोल देने वाला प्रश्न पूछती है– ''येनाहं नामृता दयाम् किमहं तेन कुर्याम् ?'' (वृहदा. २/४/३) ''हे नाथ ! जिस धन से मैं अमर नहीं हो सकती उस धन का मैं क्या करूँगी ? अतः आप मुझे अमरत्व–मोक्ष प्राप्ति के साधन बताइए ।'' तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य उसे चारों पुरुषार्थों की व्याख्या करते हुए मोक्ष के रूप में त्याग की प्रतिष्ठा, तृष्णा–वासना–अहंता से मुक्ति का उपदेश देते हुए उसे आत्मतत्व की ओर उन्मुख होकर मोक्ष प्राप्ति का स्वरूप व महत्व समझाते हैं ।

मोक्ष के संबंध में उपर्युक्त आख्यायिका का वर्णन इसलिए किया गया कि इस संबंध में अनेकानेक भ्रामक मान्यताएँ हैं । ऋषि याज्ञवल्क्य समझाते हैं कि सुख प्राप्ति के लिए व्यक्ति पुरुषार्थ तो करे परन्तु चिन्तन ''तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'' का (भोग भी त्याग के साथ) रहे तो ही जीवन यात्रा सफल है, नहीं तो यह जन्म-मरण का चक्र चलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू सम्प्रदाय : कर्मकाण्ड, परम्पराएँ और पूजा पद्धतियाँ

हिन्दू जाति की महान परम्परा और उसका पुनर्जीवन

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरात्तव विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियाँ के अन्य भागों में लिखना-पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार, पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिल्कुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्वल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्यवादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। जो अतुलित ज्ञान भण्डार उसके पास था उसे वितरण करने के लिए यहाँ के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ की जनता उन्हें देवदूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहाँ रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट-खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंप दी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहाँ के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुणसम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। एरावत हाथी, कामधेनु गौऐं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु वृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र-शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक के रूप में उन्होंने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान प्राप्त किया और लक्ष्मी, सरस्वती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दुर्गा के वरद पुत्र कहलाए। धन, विद्या और पराक्रम में उनका साथी दूसरा न था। अपने इन गुणों के कारण इस देश का प्रत्येक निवासी स्वर्गीय सुखों को भोगता हुआ जीवन व्यतीत करता था। आज हमारी वह दशा नहीं रही, तो भी पुरात्तव विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, नृविज्ञान, एवं इतिहास कें पंडित एक स्वर से यह बता रहे हैं, कि सभ्यता का आदि स्रोत भारत से ही प्रवाहित हुआ। निखिल भूमंडल की प्रजा को आर्य जाति ने ही संस्कृति एवं सभ्यता का पाठ पढ़ाया, जीवनोपयोगी अनेकों विज्ञानों की शिक्षा देकर, उन्नति, समृद्धि और सुख शान्ति के पथ पर अग्रसर किया।

आज भी हमारे पूर्वजों के यश एवं गौरव की धवल ध्वजा फहरा रही है। जैसे नर रत्न इस वीर भूमि ने प्रसव किये, वैसे अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ते। नाम गिनाने का अवसर नहीं, हमारे इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ एक से एक बढ़ कर, अनुपम नर रत्नों के गौरव से जगमगा रहा है। हमारी प्राचीन गौरव गरिमा आज एक चुनौती के समान हमारे सामने खड़ी है।

पर आज हमने उस नेतृत्व को गँवा दिया। उन अपनी जातीय विशेषताओं को खो बैठे जिनके कारण देव कहलाते थे, देवदूत की तरह सर्वत्र आदर पाते थे। इस संसार में ईश्वरीय विधान ऐसा ही है कि जो जिस वस्तु का पात्र है वह उसे मिलता है। पात्रता एक ऐसी अविचल कसौटी है जिस पर कसकर लोगों को वह वस्तुएँ परमात्मा दिया करता है जिसके वे अधिकारी हैं। रोगी को मोंठ का पानी पीते, पहलवानों को हलुआ रबड़ी खाते हुए हम नित्य देखते हैं। निर्बुद्धियों को गधे की तरह लदते और बुद्धिमानों को शासन करते हुए देखा जाता है, सद्गुणियों की प्रशंसा और दुष्ट दुराचारियों की निंदा सुनाई पड़ती है, "चींटी को कन भर और हाथी को मन भर" भोजन नित्य मिल जाता है। निर्बल पिसते और सबल मौज उड़ाते चारों ओर दीखते हैं। जिसके पास जितना, शरीर बल, बुद्धिबल, जनबल, चातुर्यबल, आत्मबल है वह उसी अनुपात से सुसम्पन्न बनता है। आज भी योरोप अमेरिका के निवासी स्वस्थ, दीर्घजीवी, धनी, विद्वान एवं साधन सम्पन्न हैं, उनकी तुलना में हम भारतवासी अनेक दृष्टियों से पीछे हैं। अविद्या, अज्ञान, अस्वस्थता, गरीबी, बेकारी से हम लोग परेशान हैं। नानाविधि शोषण, उत्पीड़न, बन्धन अपमान सहते-सहते तो हजार वर्ष होने को आये। आज स्वाधीनता मिल रही है तो उसका बोझ उठाने के लिए कंधों की बलिष्ठता और पचाने के लिए जठराग्नि उत्साहवर्धक जवाब नहीं दे रही हैं। नीतिकारों का वचन है कि वैभव को सुरक्षित रखने की क्षमता जिसमें नहीं है उसके पास लक्ष्मी का अधिक समय ठहरना कठिन है।

अपने प्राचीन गौरव को खोकर पिछले एक हजार वर्ष में मुट्ठी भर विदेशियों और विधर्मियों द्वारा नाना प्रकार से पददलित और पीड़ित होना पड़ा, इसका कारण इन आक्रमणकारियों की बलिष्ठता या परिस्थितियों की विलक्षणता नहीं वरन् हमारी भीतरी दुर्बलता थी जिसने अपने आकर्षण से अपने सिर पर आपदाओं की काली घटाएँ घुमड़ाईं। यही कमजोरियाँ हैं – जो अल्पसंख्यक कहे जाने वालों से जगह-जगह हमें पिटवातीं हैं। अन्यथा यदि हमारा जातीय शरीर स्वस्थ रहा होता तो उसकी समर्थता देखते ही अल्पसंख्यक वस्तुस्थिति को ठीक प्रकार समझते और आक्रमणकारी बनने की अपेक्षा कृपा पात्र बनने में अधिक लाभ देखते। पर आज दूसरी ही स्थिति है बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यकों के प्रसन्न करने के लिए सिर के बल चलना पड़ रहा है और धरती पर नाक रगड़नी पड़ रही है, फिर भी कुछ प्रयोजन सिद्ध होता नहीं दीखता। परिस्थिति सँभलने में नहीं आती। इसमें दोष अल्पसंख्यकों का नहीं है, उन पर कोई आरोप लगाना भी व्यर्थ है, यह तो सृष्टि का अनादि नियम है। बेचारी मधु मक्षिकाओं को मार कर उनका छत्ता लूटने का लोभ भला कौन त्याग सकता है ? मधुमक्खियों के नाना विधि प्रस्ताव, भाषण, वक्तव्य, लेख, अपील, समझौते उनके प्राणों की, घर की, मधु की रक्षा नहीं कर सकते। किसी एक मधु लोभी को मक्खियाँ किसी प्रकार मना भी लें तो इसकी क्या गारंटी है कि अन्य कोई मधुलोभी न आ धमकेगा?

इस बात में दो मत नहीं हो सकते कि हमने अपने प्राचीन गौरव को अपनी निर्बलताओं के कारण खोया और एक लम्बे समय से वैसी ही यातनाएँ भुगतते चले आ रहे हैं जैसी कि जर्जर शरीर, रोग ग्रस्त, शैया

सेवी, असहाय अभागों को भुगतनी पड़ती हैं। आज भी वह कमजोरी हमारा पीछा नहीं छोड़ रही है, फलस्वरूप पराधीनता के बन्धन शिथिल होते ही गृह युद्ध की लपटें उठने लगी हैं। इसमें कितने ही फूल से कोमल बालक-बालिकाएँ, बहिनें, बेटियाँ, एवं निरपराध व्यक्ति जल-भुन गये, लुट-मिट गये, औन न जाने अभी कितनी यातनाएँ सहनी शेष हैं। यह हत्यारी कमजोरी सर्वभक्षी डायन की तरह हमारे पीछे मुँह फाड़ कर दाँत निकाल कर विकराल रूप से दौड़ी आ रही है। भागने से, उसकी ओर से आँखें बन्द करने से, काम न चलेगा। यदि अपने प्राण बचाने हैं तो इससे लड़ना होगा, परास्त करना होगा अन्यथा निश्चित समझिए कल नहीं तो परसों वह हमारा नाम निशान मिटाकर छोड़ेगी।

पिछले पचास वर्षों से राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस ने राजनैतिक शक्ति संचार का प्रयत्न किया है। उस प्रयत्न से फलस्वरूप सर्वसाधारण में से हीनता और भय की भावना किसी कदर कम हुई है। राजनैतिक क्षेत्र में कितने ही व्यक्तियों ने प्रशंसनीय त्याग भी किये हैं। इस थोड़ी सी शक्ति का ही यह परिणाम हुआ कि विदेशी शासकों को यह दीख गया कि जिस शिला के ऊपर हम बैठे थे वह डगमगा रही है इसलिए उन्होंने ओंधे मुँह गिर पड़ने से पूर्व ही अपना स्थान खाली कर देने की दूरदर्शिता से काम लिया है और शासन सत्ता हमारे हाथ में आ गई है। परन्तु इस परिवर्तन से यह अन्दाज न लगा लेना चाहिए कि हमने उचित जातीय बल को प्राप्त कर लिया है, अभी उसमें भारी कमी है। उस कमी के कारण ही "स्वर्ग से गिरा अमर फल आकाश में ही लटक गया" वाली कहावत के अनुसार, स्वाधीनता से प्राप्त होने वाले सुखों से हमें वंचित ही रहना पड़ रहा है। अब चेतना का युग आरंभ हो रहा है, हमारे भाग्य ने करवट ली है। इस संक्रान्ति वेला में आइए विचार करें कि– हम क्या थे ? क्या से क्या हो गये ? कितने दीर्घकाल तक अंधकार के गहरे गर्त में पड़े रहे ? किन नगण्य शक्तियों के तुच्छ अंकुश से हमारा जातीय एरावत बन्दर की तरह नाचता रहा ? और आज भी हमारे पास अपार साधन होते हुए भी ऐसी हीन दशा का अनुभव करना पड़ रहा है ? भूलों से शिक्षा ग्रहण करते हुए, अज्ञान की निद्रा से उठना होगा और पुनः अपने उसी प्राचीन महान गौरव को प्राप्त करना होगा। यह सुनिश्चित है कि हिन्दू जाति में एक दैवी विशेषता है। संसार के इतिहास में अनेकों जातियों का उद्भव हुआ और वे नष्ट हो गईं उनका कहीं अता-पता भी नहीं है, पर यह हिन्दू जाति ही है जिसने बड़े-बडे बुरे और भले समय देखे हैं पर अभी तक जीवित है। पराधीन और पददलित होते हुए भी उसकी कोख से गाँधी और जवाहर जैसे नर रत्न पैदा होते हैं। हम महान थे आज गिर गये हैं तो भी हमारा भविष्य महान है।

हिन्दू-धर्म के लक्षण और तीन विभिन्न स्तर

दूसरे धर्मों की अपेक्षा हिन्दू धर्म में क्या विशेषता है, अर्थात् हिन्दू धर्म का लक्षणा क्या है, यह एक बहुत ही विवादग्रस्त प्रश्न है, क्योंकि हिन्दू धर्म में परस्पर विरोध रखने वाले सैकड़ों प्रकार के विभिन्न सिद्धान्त माने जा रहे हैं। हिन्दू धर्म के दो विभाग हैं। खास तरह के सामाजिक रीति-रिवाज अथवा समाज-रचना के खास नियम और विधियॉ इसका सबसे प्रधान अंग है। दूसरा अंग है परमार्थिक या पारलौकिक जिसके सम्बन्ध में विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों के मत एक-दूसरे से बहुत ही भिन्न हैं। इनमें से प्रथम अंग में वर्ण विभाग, जाति विभाग, खास तरह के विवाह-संस्कार, देश-जाति-कुल धर्म, उत्तराधिकार के नियम और सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा आदि का समावेश होता है। सत्य कहा जाय तो ये विशेष प्रकार के सामाजिक नियम और रीति-रिवाज हीं इस समय हिन्दू धर्म का मुख्य आधार माने जाते हैं। इनमें सबसे खास बात वर्ण-व्यवस्था और जाति-प्रथा है। पिछले दो हजार वर्षों से जाति-भेद ही हिन्दू धर्म का सबसे बड़ा लक्षण बन गया है। जो मनुष्य इस खास तरह के जाति-धर्म का पालन करता है तो वह ठीक हिन्दू समझा जाता है। इसमें विशेषता इतनी ही है कि समस्त सामाजिक और लौकिक रीति-रिवाजों का सम्बन्ध धर्म शास्त्रों के पारलौकिक जीवन से जोड़ दिया है। हिन्दू धर्म के विभिन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सम्प्रदायों के पारलौकिक और आध्यात्मिक सिद्धान्त एक-दूसरे से अत्यन्त विरूद्ध दिखाई पड़ते हैं। प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दू धर्म के संचालकों ने इस भेद-भाव को मिटाने का बड़ा प्रयत्न किया है, पर वह मिटने के बजाय नये-नये सम्प्रदायों और पंथों की उत्पत्ति का कारण बन रहा है। इसी कारण लोकमान्य तिलक ने 'हिन्दू धर्म' का यह लक्षण किया है–

प्रामाण्य बुद्धिर्वेदेषु साधना नाम नेकता।
उपास्या नाम नियमः एतद्धर्मस्य लक्षणम्।।

अर्थात् "वेदों का प्रमाण मानना साधनाओं की अनेकता और उपास्य-देवों का अनियम, यह धर्म के लक्षण हैं।"

इस लक्षण से यह बात तो स्पष्ट प्रकट हो जाती है कि हिन्दू धर्म की कोई विधायक (पॉजीटिव) व्यवस्थित, संगठित और सुसंगत, पारमार्थिक नींव नहीं है। यद्यपि तिलकजी ने यह कहा है कि वेद सारे हिन्दुओं का प्रमाण ग्रन्थ हैं, पर हिन्दू समाज में ऐसे लोगों की संख्या १०० में से ७० है, जिनको वेदाधिकार नहीं है और जिनके रीति-रिवाज वैदिक धर्म पर आश्रित नहीं हैं। जिन लोगों को वेद सुनने तक का अधिकार नहीं, बल्कि सुनने से महापातकी और नर्क का अधिकारी बनना पड़ता है, उन लोगों की वेदों पर श्रद्धा है या वे वेद के अनुयायी हैं, यह कहना ही निरर्थक है। इसी प्रकार साधनाओं की अनेकता और किसी एक उपास्य का अभाव भी यही बतलाता है कि सारे हिन्दुओं का हिन्दू धर्म कोई विशिष्ट सर्वसाधारण धर्म नहीं है। हिन्दुओं के धर्म अनेक हैं और उनमें एकसूत्रता नहीं पाई जाती।

हिन्दुओं की समाज-संस्था का अगर कोई विशिष्ट लक्षण बतलाया जा सकता है, तो वह यही है कि वे सब जाति-प्रथा को निश्चित रूप से मानते हैं। प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज आदि आधुनिक संस्थाओं को छोड़ दिया जाय तो हिन्दुओं का पूरा समुदाय जाति-प्रथा को मानता है। आर्य-समाज और प्रार्थना-समाज में भी जाति को मानकर चलने वाले बहुत से लोग हैं। जैन धर्म में जाति नहीं मानी गई है, तो भी जैनी लोग जाति मानते हैं। हिन्दुस्तान के मुसलमानों और ईसाइयों तक में जाति मानने वालों की भारी संख्या है। हिन्दू समाज के इस मुख्य लक्षण का असर उनमें भी बाकी रह गया है।

हिन्दू धर्म का एक सामान्य लक्षण निश्चित करके उसका संकलित रूप निश्चित करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि हिन्दू धर्म एक सीमाबद्ध, व्यवस्थित रूप की संस्था नहीं है, किन्तु वह विचित्रता और विरोध से युक्त और उलझन वाली रचना है। वह किसी सुनिश्चित पारलौकिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर निर्मित विशिष्ट प्रकार की वस्तु नहीं है, वरन् वह विविध आचार-विचारों का एक संग्रह है और उसमें अनेक परस्पर विरोधी आध्यात्मिक और पारलौकिक कल्पनायें भी मिला दी गई हैं। हिन्दू-धर्म सामाजिक रीति-रिवाजों से सांसरिक लाभ होना ही नहीं बतलाता, वरन् वह प्रत्येक सामाजिक संस्कार से पारलौकिक लाभ होने की भी घोषणा करता है। यह बात संसार के अन्य किसी धर्म या समाज में नहीं पाई जाती। जाति-प्रथा हिन्दू समाज का मुख्य लक्षण है, पर उसके सम्बन्ध में भी पूर्ण निश्चय के साथ कोई बात कह सकना कठिन है। उदाहरण के लिये अधिकांश जातियाँ ब्राह्मणों की श्रेष्ठता और उनका पुरोहिताई का अधिकार मानती हैं। फिर भी हिन्दुओं में ही ऐसी जातियाँ हैं, जिनमें पुरोहित स्वजातीय अथवा ब्राहमणेतर होते हैं। अब शूद्र जातियों में से तो अधिकांश ब्राह्मणों की प्रधानता को अस्वीकार करती जा रही हैं। मुसलमानों और ईसाई धर्म से कोई सम्पर्क न होने पर भी बहुत से हिन्दू मुसलमानों के पीरों और ईसाइयों के देवताओं की उपासना भी करते हैं। इससे यह जान पड़ता है कि हिन्दू समाज में देवता की उपासना का उतना अधिक महत्व नहीं है, जितना कि सामाजिक रीति-रिवाजों का। क्योंकि दूसरे के धर्म के देवता की उपासना करने के ऊपर किसी को बुरा-भला नहीं कहा जाता, न कोई दण्ड दिया जाता है, पर सामाजिक रीति-रिवाजों और रूढ़ियों को भंग करने से जाति बहिष्कार का भयंकर अस्त्र तुरन्त काम में लाया जाता है।

धर्म विकास के इतिहास में धार्मिक कल्पनाओं के प्रायः तीन स्तर मिलते हैं और फिर प्रत्येक स्तर में ऊँच-नीच उपभेद भी पाये जाते हैं। इन तीनों को हम इस प्रकार कह सकते हैं:–(१) जादू, प्रकृति-पूजा, भूत-राक्षस पूजा या पितृ-पूजा, (२) मानव सदृश्य देव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समूह की पूजा और शक्ति पूजा, (३) एकेश्वरवाद, ब्रह्मवाद और त्तववाद।

(अ) संसार की प्रायः सारी जंगली और सभ्यता में पिछड़ी हुई जातियों में जादू ही धर्म की तरह माना जाता है। जादू दो तरह का होता है, एक देवतावाद के पूर्व का और दूसरा देवता की मान्यता आरम्भ हो जाने के पश्चात् का। हिन्दू धर्म के प्राचीन रूप में दोनों तरह के जादू का प्रमाण मिलता है। अथर्ववेद और गृह्य-सूत्रों में जादू को भी स्थान दिया गया है। कुछ यज्ञ जादू के समान ही हैं और उनकी क्रियाओं में प्राचीन जादू का कुछ अंश पाया जाता है। जादू का अर्थ है साधना। अपने किसी खास मनोरथ की पूर्ति के लिये अथवा आने वाली आपत्तियों के निवारण के लिये किसी खास पदार्थ, खास क्रिया या खास मंत्रों का प्रयोग इस विश्वास से करना कि उनमें कोई खास प्रभाव समाया है, यही साधना का स्वरूप है और यही जादू है। (आ) प्राकृतिक वस्तु पूजा भी हिन्दू धर्म में पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। गंडकी नदी के काले शालिग्राम, नर्मदा के ताम्र वर्ण गोल पत्थर, गंगा, जमुना, कृष्णा, गोदावरी आदि नदियाँ, पीपल, बड़, बेल, तुलसी, आंवला आदि वनस्पतियाँ, गाय, बन्दर, महिष, मछली, कछुआ, हाथी, नाग, गरूण, मयूर, हंस आदि पशु-पक्षी, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल आदि का आकाशस्थ पिण्ड,अग्नि, वायु, वर्षा आदि प्राकृतिक घटनायें आदि सभी का पूजा करने का विधान हिन्दू धर्म में मौजूद है। नाग और गाय तो स्वतंत्र देव बने हुये हैं। सूर्य, चन्द्र आदि नवग्रहों की आराधना वर्तमान हिन्दू धर्म में बड़े महत्व की बात मानी गई है। गाय, गोमूत्र, गोबर, गंगोदक, सुवर्णादि धातु, पीपल, तुलसी आदि के स्पर्श से पवित्रता प्राप्त होती है और शूद्र, अन्त्यज, रजस्वला, गधा, कौआ, प्याज, लहसुन, गाजर आदि के स्पर्श से अपवित्रता। इस प्रकार की बातों को धर्म का अंग मानना अति प्राचीन अवस्था के ही धर्म का अवशेष भाग है। इस श्रेणी की कुछ वस्तुयें ऐसी हैं जो पहले स्वतंत्र रीति से पूज्य मानी जाती थीं, पर बाद में धर्म का विकास होने पर उनको अन्य देवताओं के साथ जोड़ दिया गया। इसके उदाहरण हैं– गरुड़, बैल, बन्दर। पहले ये सब यहाँ की भिन्न-भिन्न जातियाँ द्वारा पूजे जाते थे, पर बाद में गरुड़ को विष्णु तथा बैल को शिव का वाहन मानकर और बन्दर को राम का दूत समझ का पूजा जाने लगा।

(इ) भूत-पूजा या पितृ-पूजा तीसरा धर्म है। संघ या फिर्के के बड़े-बूढ़े मनुष्यों के आधीन छोटों का जीवन निर्वाह होता है। जब ये बूढ़े मुखिया मृत्यु के मुँह में पड़ते हैं, तब संघ की बड़ी हानि होती है। इसे संघ का प्रत्येक मनुष्य बड़ी तीव्रता से अनुभव करता है और इस कारण वे उन मुखियों के हमेशा के लिये सम्पूर्ण नाश की कल्पना करना बहुत खराब समझते हैं। इसलिये स्वप्न में एकान्त में उनके अस्तिव का भास होता रहता है। संघ पर किसी प्रकार का संकट आने पर ऐसा मालूम होने लगता है कि यह बाधा उक्त बड़े-बूढ़ों की असन्तुष्ट वासना ने उत्पन्न की है। तब उन पितरों की वासना तृप्त करने या पूजा करने की इच्छा जीवित रहने वाले लोगों को होती है। अनेक सम्प्रदायों का यह भी विश्वास है कि मनुष्य देह में एक सूक्ष्म देह वाला चेतन पुरुष भी रहता है, जो भौतिक देह का नाश हो जाने पर भी बना रहता है। इसी विचार के आधार पर भूत, प्रेत, पिशाच, बेताल की कल्पनाएँ की गई हैं। देवता और पुनर्जन्म की कल्पना भी इसी 'मूर्त पुरुषवाद' से उत्पन्न हुई है। पहाड़, नदी, वृक्ष, भूमि, क्षेत्र, गृह आदि में भी एक-एक देवता है, यह कल्पना भी मूर्त पुरुषवाद का ही एक अंग है। इसी विचार के आधार पर हिन्दू धर्म में श्राद्ध का बड़ा महत्व है। नित्य तर्पण, दर्श-श्राद्ध, महालय, अन्त्येष्टि, एकोदिष्ट, मासिक श्राद्ध, वार्षिक श्राद्ध, तीर्थ श्राद्ध आदि अनेक प्रकार के श्राद्ध बतलाये गये हैं।

इससे आगे चलकर हिन्दू धर्म में जिन स्वर्गस्थ देवताओं की कल्पना की गई है, उनमें अनेक बहुत ऊँचे दर्जे के हैं। वे मुख्य प्राकृतिक शक्तियों के प्रतिनिधि हैं जैसे इन्द्र, सविता, वरुण। दूसरे देवता राम, कृष्ण, हनुमान, शिव, गणपति आदि हैं जिनमें सभी प्रकार के मानव गुण पराकाष्ठा को पहुँचते हैं। देवताओं में ऐसी मनुष्यता या सूक्ष्मता का आरोप करने वाला हिन्दू धर्म श्रुति, स्मृति, पुराणों में मुख्यतः वर्णित है। इन देवताओं में से एक या अनेकों की उपासना और भक्ति करने वाले सम्प्रदाय प्राचीनकाल में ही उन्नत दशा को पहुँच चुके थे। उनके साथ–साथ ही गन्ध, मांला, वेश आदि खास तरह के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सम्प्रदाय चिह्न और भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों के पारस्परिक व्यवहार के नियम भी अस्तित्व में आये।

(३) हिन्दू धर्म का सबसे ऊँचा और श्रेष्ठ एक स्तर और है। उसमें ब्रह्मवाद, एकेश्वरवाद, तत्ववाद का समावेश होता है। सब देवता एक ही सर्वव्यापी तत्व में समाये हुये हैं अथवा सब देवता उसी एक तत्व के भाग हैं, पिण्ड और ब्रह्माण्ड एक ही सत्तत्व से उद्भूत होते हैं, इस विचार को ब्रह्मवाद कहते हैं। सर्वजगत् का संचालक और सर्वशक्तिमान अन्तरात्मा ही एक परमेश्वर है, बाकी सब उसके अधीन हैं, इस सिद्धान्त को एकेश्वरवाद कहते हैं। इससे भी आगे बढ़कर महर्षि कपिल आदि ने यहाँ तक माना है कि इस विश्व में तत्वों की ही प्रमुखता है और मनुष्य का आत्मा तत्वों का ज्ञान प्राप्त करके ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार हिन्दू धर्म में जादू और भूत-पूजा से लेकर तत्ववाद तक का समावेश है और सबके अनुयायी अपने को हिन्दू ही कहते हैं। यह हिन्दू-धर्म की एक बड़ी विशेषता है। अनेक लोग इसी को उसकी दुर्बलता मानते हैं।

हिन्दू धर्म की विशेषताएँ और हमारी अयोग्यता

किसी धर्म के जीवित या निर्जीव होने का, किसी धर्म की गुरुता और लघुता का पता उस धर्म पर चलने वालों के जीवन से चलता है। अगर इस कसौटी पर आज हिन्दू धर्म को कसा जाय तो स्पष्ट रूप से जान पड़ेगा कि आज हमारे धर्म का कैसा घोर पतन हुआ है। एक समय था जब हमारे यहाँ धर्म का सच्चा प्रचार था, जब धर्म ही जीवन था। पर अभी कुछ ही वर्ष पहले ऐसा भी समय आ गया जब पढ़े-लिखे विद्वान हिन्दू, अपने को हिन्दू कहने में शर्माते थे। विदेशी लोग हिन्दू-धर्म को जंगली, असभ्य लोगों का प्रारम्भिक धर्म बतलाते थे। भगवान की असीम दया से वह समय बदल गया और अब विदेशियों का भाव हमारे धर्म के सम्बन्ध में बिल्कुल दूसरा हो गया है। आज सारे संसार में इस धर्म की महत्ता, गम्भीरता और सत्यता की चर्चा है। वे ही विदेशी जो एक समय इसकी इतनी निन्दा करते थे आज इसकी ओर श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखते हैं और भारतवर्ष को तीर्थ स्थान समझते हैं। पर हम हिन्दुओं ने क्या किया ? ध्यान से देखा जाय तो हम जहाँ थे वहीं पड़े हैं। समय का प्रवाह सारी मनुष्य जाति को आगे की ओर बढ़ाये लिये चला जाता है, पर हिन्दू जाति अभी तक अजगर की तरह निष्क्रिय और बेखबर पड़ी है। हमारे जीवन में धर्म के वास्तविक तत्वों का उपयोग नहीं हो रहा है। हम आँख बन्द किये बिना सोचे समझे केवल लकीर के फकीर बने हुये हैं। धर्म को हमने बच्चों का खेल बना रखा है।

सोचने की बात है कि हमारे धर्म का बड़प्पन किस बात में है ? क्या कारण है कि जिसे दूसरे देश और दूसरे धर्म वाले पहले घृणा और अवहेलना की दृष्टि से देखते थे, वे ही पीछे उसे श्रद्धा के भाव से देखने लगे ? इसका खास कारण यही है कि जीवन सम्बन्धी प्राकृतिक स्वाभाविक नियमों का जितना खजाना हिन्दू धर्म की पुस्तकों में आज भी विद्यमान में है उतना अन्य धर्म की प्रचलित पुस्तकों में नहीं पाया जाता। इसका यह मतलब नहीं कि अन्य धर्म की पुस्तकों में सत्य अथवा ईश्वरोपासना का मार्ग नहीं है। प्रत्येक धर्म अपनी-अपनी जगह पर ठीक है। प्रत्येक में सत्य है। पर हिन्दू धर्म में जीवन सम्बन्धी प्राकृतिक नियमों का वर्णन विशेष अंश में और बहुत अधिक विस्तार से किया गया है।

हम प्रायः ऐसी बातें सुनकर फूल जाया करते है और समझने लगते हैं कि हमसे बढ़कर कौन है, क्योंकि हमारा धर्म तो सबसे बढ़कर है ! यह हमारी भूल है। धर्म की एक-दूसरे के साथ तुलना करके एक को बड़ा और दूसरे को छोटा बतलाना समझ की गलती है। वास्तव में सभी धर्म अपनी-अपनी जगह और अपनी परिस्थितियों में सही हैं। इसलिये फूलने या घमण्ड करने की कोई बात नहीं है।

वास्तव में धर्म तो हमारा वही है जिसको हम जीवन में बरत्ते हों। जो सिद्धान्त या जो आदर्श केवल किताबों में लिखे हैं और जिनका हमारे जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं, उन पर गर्व करना व्यर्थ है।

एक बात और देखने को यही भी है कि प्रत्येक प्राकृतिक नियम शक्ति का एक-एक अस्त्र है। यह एक साधारण कहावत है कि 'ज्ञान शक्ति है'। तो क्या

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू धर्म के महान प्राकृतिक नियमों के कारण हमारी शक्ति उसी परिमाण में बढ़ी हुई है ? नहीं, हमारी तरह शक्तिहीन अथवा निःस्वत्व गति संसार में कदाचित् ही दूसरी होगी। इसका प्रधान कारण यही है कि हमने धर्म को अर्थात् प्राकृतिक नियमों को जीवन से अलग हटा रखा है। सत्य, ब्रह्मचर्य, त्याग, परोपकार आदि की महिमा तो हम बराबर सुनते और कहते रहते हैं, पर इनका प्रयोग अपने जीवन में कितने आदमी, कितने परिमाण में करते हैं, यह हमसे छिपा नहीं है।

फिर भी परम्परा से ये नियम हमारे रक्त में समा गये हैं, अंग-अंग में प्रवेश कर गये हैं। किसी साधारण अनपढ़ आदमी के पास चले जाइये, वह भी ईश्वर, पुनर्जन्म, कर्म इत्यादि महान सत्यों की चर्चा साधारण बोलचाल में नित्य करता पाया जायेगा। वह इनमें से किसी के महत्व को नहीं जानता, लेकिन यह बातें उसके रक्त-माँस में समा गई है। समझे या न समझे, पर वह अपने को इनसे अलग नहीं कर सकता। इनमें से एक-एक नियम का ज्ञान ऐसा शक्तिशाली है कि ठीक से समझ में आ जाने पर वह सारे जीवन को बदल देता है, सारी दुनियाँ को पलटने की शक्ति रखता है। दूसरे देश वाले इसी बात को देखकर दंग रहते हैं कि भारत का एक साधारण से साधारण आदमी जीवन के इन गहन सिद्धान्तों को कैसे जानता है ? इन सिद्धान्तों का थोड़ा भी ज्ञान पाकर वे जीवन में कहाँ से कहाँ पहुँच जाते हैं और रात-दिन इनमें रहते हुए भी हम जहाँ के तहाँ ही पड़े रहते हैं, वरन् प्रायः नीचे की ओर खिसकते रहते हैं।

वास्तविक बात यह है कि हम जीवन के साथ और जीवन के नियमों के साथ बच्चों की तरह खेल कर रहे हैं। असलियत को खो बैठे हैं और नकल करते जा रहे हैं। लेकिन गौर करने से मालूम होता है कि हमारे रीति-रिवाजों रूपी खिलौनों के भीतर प्रकृति के गहन गम्भीर तत्व छिपे पड़े हैं।

हिन्दू धर्म की जो विशेषताएँ बतलाई जाती हैं—चाहे वह कर्म का नियम हो अथवा पुनर्जन्म का, अथवा वर्णाश्रम धर्म का या और कोई—वे सभी प्राकृतिक नियम हैं। इस बात को सुनकर अनेक लोग आश्चर्य करते हैं, क्योंकि हम धर्म अथवा इन नियमों के मूल तत्व को नहीं जानते और उदार भाव से देखने के बदले सभी वस्तुओं को संकीर्ण दृष्टि से देखा करते हैं। हमारे आश्चर्यचकित होने का सबसे बड़ा कारण यह है कि हम इन्ही बातों को हिन्दू धर्म का प्रधान स्तम्भ समझते हैं और इसलिए ऐसा सोचते हैं कि इन्ही के कारण हिन्दू धर्म अन्य धर्मों से भिन्न और विशिष्ट बना हुआ है। यदि हम इन बातों को प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक मान लें तो हमारे धर्म की विशेषता अवलम्ब ही नष्ट हो जायेगी। पर हम यह नहीं समझते कि इसी संकीर्णता के कारण हम अपने धर्म के महान सत्यों को समझने से और समझकर उनको व्यवहार में लाने से वंचित रह जाते हैं। इन सत्यों को ठीक से समझने के लिये सबसे पहले हृदय में उदारता और मन में निष्पक्षता के भावों को लाना आवश्यक है। यदि हम ऐसा कर सकें तो आगे चलकर हमको जान पड़ेगा कि हमसे हमारे धर्म की कोई क्षति नहीं हुई, वरन् उसका महत्व ही बढ़ता है।

इसलिए हमको निश्चित रूप से यह समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार आकर्षण, विद्युत, चुम्बक आदि के वैज्ञानिक नियम सभी देश वालों में समान रूप से सत्य हैं उसी प्रकार हिन्दू धर्म के मूल सिद्धांत भी पूर्णतः व्यापक हैं, अर्थात् देश और काल इनको बाधित नहीं कर सकते। कोई जाने अथवा न जाने किसी धर्म ग्रन्थ में इनका जिक्र हो या न हो— ये बराबर एक भाव से अपना कार्य करते रहते हैं। जिस प्रकार भिन्न—भिन्न देशों में किसी प्राकृतिक नियम विशेष का वैज्ञानिक आविष्कार आगे-पीछे होता रहता है, उस प्रकार इन सत्य सनातन नियमों का जिक्र कहीं आगे आता है, कहीं पीछे आता है। दुःख की बात तो यह है कि साधारण प्राकृतिक वस्तुओं जैसे, हवा, पानी, प्रकाश, आकाश आदि को तो हम अपना अथवा दूसरे का नहीं समझते, लेकिन जहाँ जीवन सम्बन्धी अत्यन्त गहन गम्भीर प्राकृतिक नियमों का सवाल आता है, वहाँ उनको अपना और दूसरे का समझने लगते हैं।

वास्तव में अन्धविश्वास बड़ा हानिकर होता है। जो धर्म को नहीं जानता उसका सुधार धर्म का नाम लेकर और ज्ञान कराके किया जा सकता है। पर जो धार्मिक नियमों को उलटा-पुलटा समझकर उसीको

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अपना धर्म बना लेता है, उसका सुधार अत्यन्त कठिन है और हम हिन्दुओं की ऐसी ही दुर्दशा है। हमारी पुस्तकें जीवन के गहन से गहन नियमों से भरी पड़ी हैं, पर उनका यथार्थ ज्ञान हमको नहीं है। उन्हीं का कुछ उलटा-पुलटा अर्थ निकालकर हमने रस्म-रिवाज कायम कर लिए हैं। इन्ही रस्मों-रूढ़ियों को हम आज हिन्दू धर्म समझ रहे हैं। अधिकांशतया, प्रायः सभी धार्मिक झगड़े इन्हीं नासमझियों तथा अन्धविश्वासों के कारण होते हैं। इस प्रकार धर्म ही के नाम पर धर्म का नाश किया जा रहा है।

हिन्दू धर्म की उदारता और महानता

संसार में मुख्यतः दो प्रकार के धर्म हैं। एक कर्म प्रधान दूसरे विश्वास प्रधान। हिन्दू धर्म कर्म प्रधान है, अहिन्दू धर्म विश्वास प्रधान है। जैन, बौद्ध, सिक्ख ये तीनों हिन्दू धर्म के अन्तर्गत हैं। इस्लाम, ईसाई, यहूदी ये तीनों अहिन्दू धर्म के अन्तर्गत हैं।

हिन्दू धर्म में सबसे बढ़कर यही उदारता है कि सबको निज विश्वासानुसार पूजा और उपासना करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है परन्तु सदाचार व सद्व्यवहार का बन्धन है। हिन्दू धर्म लोगों को निज विश्वासानुसार ईश्वर व देवी-देवताओं को मानने व पूजने की और यदि विश्वास न हो तो न मानने व न पूजने की पूर्ण स्वतन्त्रता देता है। अहिन्दू धर्म में ऐसी स्वतन्त्रता नहीं है। अहिन्दू धर्म (पैगम्बरी मजहब) मनु अपने अनुयायियों को किसी विशेष व्यक्ति और विशेष पुस्तक पर विश्वास लाने के लिए बाध्य या विवश करता है। उसे निज विश्वासानुसार देवता को मानने व उपासना करने की स्वतन्त्रता नहीं है।

अधिकांश का इस संबंध में यह आक्षेप हो सकता है कि हिन्दू धर्म में निज विश्वासानुसार देवताओं को मानने व पूजने की स्वतन्त्रता है, वह कौन सी खूबी है ? इससे तो "एक निराकार सर्वव्यापक ईश्वर का मानना" ही उत्तम और हितकर है। इसके उत्तर में निवेदन है कि यह सिद्धान्त अति उत्तम है परन्तु मनुष्यों का मन अद्भुत प्रकार का है। मनोविज्ञान की दृष्टि से "भिन्नरूचिर्हि लोकः" प्रसिद्ध है। पूजा-उपासना के सम्बन्ध में भी यही बात चरितार्थ होती है। आप प्रत्यक्ष देखिये, संसार में सैकड़ों प्रकार के मत या सम्प्रदाय हैं और पूजा व उपासना की पद्धति हजारों प्रकार की प्रचलित है। मुख्य-मुख्य सब मतों में बड़े-बड़े विद्वान मौजूद हैं। परन्तु उनका मन अपनी ही भावना के अनुकूल देवता को मानने व पूजने में सन्तुष्ट रहता है। उनको दूसरे मनुष्य की रुचि के अनुसार पूजा या उपासना करने में तनिक भी तुष्टि या प्रसन्नता नहीं होती। ईश्वर का स्वरूप कैसा है, इस विषय में भिन्न-भिन्न मतस्थ विद्वानों के भिन्न-भिन्न विचार या सिद्धान्त हैं। जब कि ईश्वर को मानने वाले बड़े-बड़े फिलॉसफर भी ईश्वर के विषय में मतभेद रखते हैं तब संसार के सब लोगों से ईश्वर के सम्बन्ध में एक ही सिद्धान्त के मानने की आशा रखना व्यर्थ है और प्रत्यक्ष देखिये बहुत से विद्वान ईश्वरास्तिव को अस्वीकार करने में ही अति प्रसन्न और परम सन्तुष्ट रहते हैं। इस प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है कि हिन्दू धर्म जो पूजा व उपासना के विषय में पूर्ण स्वतन्त्रता देता है वह बड़ा ही उत्तम, उदात्त और श्रेयस्कर है। हिन्दू धर्म का यह सिद्धान्त सर्वोपयोगी और सार्वभौम है।

मूल हिन्दू धर्म उपासना भेद के कारण किसी को पापी या नरकगामी नहीं मानता, किन्तु उसी को पापी मानता है जो सदाचार व सद्व्यवहार से रहित हो। इसके विपरीत अहिन्दू धर्म (पैगम्बरी मजहब) निज विश्वासानुसार देवी-देवता को मानने या पूजने की स्वतन्त्रता नहीं देता। वह तो व्यक्ति-विशेष व पुस्तक-विशेष पर विश्वास लाने को ही धर्म और स्वर्गप्रद मानता है। अहिन्दू धर्म कहता है, कि जो मनुष्य अमुक पैगम्बर व अमुक पुस्तक पर ईमान नहीं लावेगा वह ज्ञानी व सदाचारी व परोपकारी होने पर भी पापी और नरकगामी है। मूल हिन्दू धर्म कहता है कि भिन्न देवोपासना या उपासना विधि की भिन्नता के कारण किसी को पापी कहना या मानना अनुचित है। हिन्दू धर्म में धर्मात्मा वही है जो अपने विश्वासानुसार पूजा व उपासना करता हुआ (और यदि ईश्वर या किसी देवता पर विश्वास न रखता हो तो भजन-पूजन न करता हुआ) सदाचार व सद्व्यवहार में स्थिर रहे, और पापी वही है जो दुराचार व दुर्व्यवहार में लगा रहे ? कोई मनुष्य देवताओं का भजन-पूजन या ईश्वराराधन करता हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परन्तु दुष्कर्मों में लिप्त हो तो हिन्दू धर्म उसे पापी ही कहता और मानता है। हिन्दू धर्म में अद्वैतवादी, साकारवादी, निराकारवादी, ईश्वरवादी, अनीश्वरवादी, बहुदेववादी, मूर्तिपूजक और मूर्तिपूजा न करने वाले इन सबके लिए पूरा स्थान और पूर्ण सम्मान है। ऐसी उदारता किसी भी पैगम्बरी मज़हब में नहीं है। जिस दिन ऐसी उदारता उसमें आ जाएगी उस दिन वह मज़हब सार्वभौम धर्म के योग्य होगा।

हिन्दू धर्म सदाचार व सद्व्यवहार पर जोर देता है और विश्वास लाने न लाने के सम्बन्ध में बाध्य या विवश नहीं करता। अहिन्दू धर्म सदाचार व सद्व्यवहार पर जोर नहीं देता किन्तु विश्वास लाने के लिए बाध्य या विवश करता है। वह धर्मात्मा और स्वर्गगामी उसको मानता है जो विशेष व्यक्ति और विशेष पुस्तक पर ईमान रखता हो, फिर वह चाहे कैसा ही कर्म करे। कोई मनुष्य कितना ही ज्ञानी, सदाचारी और परोपकारी हो, यदि वह विशेष व्यक्ति और विशेष पुस्तक पर विश्वास नहीं रखता तो वे लोग उसे पापी व नरकगामी मानते हैं। हिन्दू धर्म और अहिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तों में यही भारी भेद है। यह ऐसी गहरी खाई है जो कभी पट नहीं सकती अर्थात् हिन्दू धर्म और अहिन्दू धर्म दोनों का मेल कभी नहीं हो सकता। ये दोनों धर्म गंगा और यमुना के समान एक कभी नहीं हो सकते। हिन्दू धर्म में उपासना-काण्ड में जो स्वतन्त्रता है वह मानो स्वतन्त्र विचार करने का स्पष्ट आदेश है। अहिन्दू धर्म में जो उपासना-कर्म में स्वतन्त्रता नहीं है वह मानो स्वतन्त्र विचार करने का निषेध है। सारांश यह कि हिन्दू धर्म स्वतन्त्र विचारों का पक्षपाती समर्थक है तथा अहिन्दू धर्म स्वतन्त्र विचारों का विरोधी और बाधक है। विद्वान व दूरदर्शी लोग भली-भाँति जानते हैं कि सांसारिक उन्नति और आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति के लिए स्वतन्त्र विचारों की कितनी बड़ी आवश्यकता रहती है। इस दृष्टि से देखिये कि संसार के लिए हिन्दू धर्म अधिक उपयोगी है अथवा सेमिटिक (पैगम्बरी) मजहब ? इस पर भी ध्यान दीजिए कि संसार में शुभ कर्मों के द्वारा अधिक सुख व शान्ति फैल सकती है अथवा किसी दूत व पुस्तक पर विश्वास लाने मात्र से ? भली-भाँति विचारने से सिद्ध है कि किसी पर ईमान लाने के बाद भी सांसारिक सुख व शांति के शुभ कर्मों की आवश्यकता ज्यों की त्यों बनी रहती है। अतः पैगम्बरी मतों के सिद्धान्तों की अपेक्षा हिन्दू धर्म के सिद्धान्त की उत्तमता और उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं।

१ - मूर्ति पूजाः चित्त एकाग्र करने का अमूल्य साधन

भारतीय संस्कृति में प्रतीकवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। सबके लिए सरल सीधी पूजा-पद्धति को आविष्कार करने का श्रेय भारत को ही प्राप्त है। पूजा-पद्धति की उपयोगिता और सरलता की दृष्टि से हिन्दू धर्म की तुलना अन्य सम्प्रदायों से नहीं हो सकती। हिन्दू धर्म में ऐसे वैज्ञानिक मूलभूत सिद्धांत दिखाई पड़ते हैं, जिनसे हिन्दुओं की कुशाग्र बुद्धि, विवेक और मनोविज्ञान की अपूर्व जानकारी का पता चलता है। मूर्ति-पूजा ऐसी ही प्रतीक पद्धति है।

मूर्ति-पूजा क्या है ? पत्थर, मिटटी, धातु या चित्र इत्यादि की प्रतिमा को मध्यस्थ बनाकर हम सर्वव्यापी अनन्त शक्तियों और गुणों से सम्पन्न परमात्मा को अपने सम्मुख उपस्थित देखते हैं। निराकार ब्रह्म का मानस चित्र निर्माण करना कष्टसाध्य है। बड़े योगी, विचारक, त्तववेत्ता सम्भव है यह कठिन कार्य कर दिखायें, किन्तु साधारण जन के लिए तो वह नितांत असम्भव सा है। भावुक भक्तों, विशेषतः नारी उपासकों के लिए तो किसी प्रकार की मूर्ति का आधार रहने से उपासना में बड़ी सहायता मिलती है। मानस चिन्तन और एकाग्रता की सुविधा को ध्यान में रखते हुए प्रतीक रूप में मूर्ति-पूजा की योजना बनी है। साधक अपनी श्रद्धा के अनुसार भगवान की कोई भी मूर्ति चुन लेता है और साधना करने लगता है। उस मूर्ति को देखकर हमारी अन्तःचेतना ऐसा अनुभव करती है मानो साक्षात् भगवान से हमारा मिलन हो रहा है।

मनीषियों का यह कथन सत्य है कि इस प्रकार की मूर्ति-पूजा में भावना प्रधान और प्रतिमा गौण है, तो भी प्रतिमा को ही यह श्रेय देना पड़ेगा कि वह भगवान की भावनाओं का उद्रेक और संचार विशेष रूप से हमारे अन्तःकरण में करती है। यों कोई चाहे, तो चाहे जब, चाहे जहाँ भगवान को स्मरण कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता है, पर मन्दिर में जाकर प्रभु-प्रतिमा के सम्मुख अनायास ही जो आनन्द प्राप्त होता है, वह बिना मन्दिर में जाये, चाहे, जब कठिनता से ही प्राप्त होगा। गंगा-तट पर बैठकर ईश्वरीय शक्तियों का जो चमत्कार मन में उत्पन्न होता है, वह अन्यत्र मुश्किल से ही हो सकता है।

मूर्ति-पूजा के साथ-साथ धर्म मार्ग में सिद्धांतमय प्रगति करने के लिए हमारे यहाँ त्याग और संयम पर बड़ा जोर दिया गया है। सोलह संस्कार, नाना प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्ड, व्रत, जप, तप, पूजा, अनुष्ठान, तीर्थ यात्राएँ, दान, पुण्य, स्वाध्याय, सत्संग ऐसे ही दिव्य प्रयोजन हैं, जिनसे मनुष्य में संयम और व्यवस्था आती है। मन दृढ़ बनकर दिव्यत्व की ओर बढ़ता है। आध्यात्मिक नियन्त्रण में रहने का अभ्यस्त बनता है।

मूर्ति-पूजा के पक्ष में पं० दीनानाथ शर्मा के विचार बहुमूल्य हैं। शर्मा जी लिखते हैं:—

"जड़ (मूल) ही सबका आधार हुआ करती है। जड़ सेवा के बिना किसी का भी कार्य नहीं चलता। दूसरे की आत्मा की प्रसन्नतार्थ उसके आधारभूत जड़ शरीर एवं उसके अंगों की सेवा करनी पड़ती है। परमात्मा की उपासना के लिए भी उसके आश्रय स्वरूप जड़ प्रकृति की पूजा करनी पड़ती है। हम वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, प्रकाश आदि की उपासना से प्रचुर लाभ उठाते हैं, तब मूर्ति-पूजा से क्यों घबराना चाहिए ? उसके द्वारा तो आप अणु-अणु में व्यापक चेतन (सच्चिदानन्द) की पूजा कर रहे होते हैं। आप जिस बुद्धि को या मन को आधारीभूत करके परमात्मा का अध्ययन कर रहे होते हैं क्या वे जड़ नहीं हैं ? परमात्मा भी जड़ प्रकृति के बिना कुछ नहीं कर सकता, सृष्टि भी नहीं रच सकता। तब सिद्ध हुआ कि जड़ और चेतन का परस्पर सम्बन्ध है। तब परमात्मा भी किसी मूर्ति के बिना उपास्य कैसे हो सकता है ?

हमारे यहाँ मूर्तियाँ मन्दिरों में स्थापित हैं, जिनमें भावुक जिज्ञासु पूजन, वन्दन, अर्चन के लिए जाते हैं और ईश्वर की मूर्तियों पर चित्त एकाग्र करते हैं। घर में परिवार की नाना चिन्ताओं से भरे रहने के कारण पूजा, अर्चन, ध्यान इत्यादि इतनी अच्छी तरह नहीं हो पाता, जितना मन्दिर के प्रशान्त स्वच्छ वातावरण में हो सकता है। अच्छे वातावरण का प्रभाव हमारी उत्तम वृत्तियों को शक्तिवान् बनाने वाला है। मन्दिर के सात्विक वातावरण में कुप्रवृत्तियाँ स्वयं फीकी पड़ जाती हैं। इसलिए हिन्दू संस्कृति में मन्दिर की स्थापना को बड़ा महत्व दिया गया है, जो उचित ही है।"

कुछ व्यक्ति कहते हैं कि मन्दिरों में अनाचार होते हैं। उनकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। उन पर बहुत व्यय हो रहा है। अतः उन्हें समाप्त कर देना चाहिए।

सम्भव है इनमें से कुछ आक्षेप सत्य हों, किंतु मन्दिरों को समाप्त कर देने या सरकार द्वारा जब्त कर लेने मात्र से क्या अनाचार दूर हो जायेंगे ? यदि किसी अंग में कोई विकार आ जाय, तो क्या उसे जड़मूल से नष्ट कर देना उचित है ?

कदापि नहीं। उसमें उचित परिष्कार और सुधार करना चाहिए। इसी बात की आवश्यकता आज हमारे मन्दिरों में है। मन्दिर स्वच्छ नैतिक शिक्षण के केन्द्र रहें। उनमें पढ़े-लिखे निस्पृह पुजारी रखे जायं, जो मूर्ति-पूजा कराने के साथ-साथ जनता को धर्म-ग्रन्थों, आचार शास्त्रों, नीति, ज्ञान का शिक्षण भी दें और जिनका चरित्र जनता के लिए आदर्श रूप हो।

मूर्ति-पूजा चित्त-शुद्धि का साधन

मनुष्य का यह स्वभाव है कि जब तक वह यह जानता है कि कोई उसके कामों, चरित्र, या विविध हाव-भाव विचारों को देख रहा है, तब तक वह बड़ा सावधान रहता है। बाह्य नियंत्रण हटते ही वह शिथिल-सा होकर पुनः पतन में बहक जाता है। मन्दिर में भगवान की मूर्ति के सम्मुख उसे सदैव ऐसा अनुभव होता रहता है कि वह ईश्वर के सम्मुख है, परमात्मा उसके कार्यों, मन्तव्यों और विचारों को सतर्कता से देख रहे हैं, अतः उसे चित्तशुद्धि में सहायता मिलती है। मूर्ति चित्तशुद्धि के लिए प्रत्यक्ष परमेश्वर का प्रतिनिधित्व करती है। जिन भारतीय ऋषियों ने भगवान की मूर्ति की कल्पना की थी, वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनोविज्ञान-वेत्ता भी थे। उनके इस उपाय से भोली भावुक जनता की चित्तशुद्धि हुई। मनुष्य ने अपनी सात्त्विक प्रवृत्तियों, कला और सौन्दर्यवृत्ति का सारा प्रदर्शन मन्दिरों में किया है। मूर्ति में भगवान की भावना और अपनी श्रद्धा भर कर उन्होंने आत्म-विकास किया।

आचार्य विनोबा भावे ने लिखा है कि "मूर्ति न होती तो बगीचे में से फूल तोड़कर मनुष्य केवल उसे अपनी नाक तक ही लगाता, किन्तु सात्विक भावना से भर कर भगवान की मूर्ति पर फूल चढ़ा कर, जो कि फूल के लिए शायद सर्वोच्च स्थान है– मनुष्य ने अपनी गंध वासना संयत और उन्नत की। अपनी वासना को उन्नत, परिष्कृत और संयमित करने के लिए भगवान के समर्पण की युक्ति निकाली।"

रामदास स्वामी ने एक स्थान पर लिखा है, "देवाचें वैभव बाढ़वावैं" (भगवान का वैभव बढ़ाओ)

अल्पज्ञ, अशक्त, अज्ञानी मनुष्य भला भगवान का वैभव क्या बढ़ायेगा ? वह महान है, स्वयं असीम शक्तियों का पुंज है। उधर हम रंक हैं, अशक्त हैं, अपनी शक्तियों में सीमित हैं।

लेकिन इस उक्ति का तात्पर्य यही है कि हम ऐसे कार्य, ऐसी भावना प्रकट करें जो हमारे माध्यम से हमारे पिता परमेश्वर के महत्व को प्रकट करने वाले हों। परमेश्वर का वैभव बढ़ाने की कोशिश करने में हम स्वयं अपना जीवन उन्नत कर लेते हैं, उसे ईश्वरीय शक्तियों से भर लेते हैं।

मंदिर में ईश्वर की कोई प्रतिमा स्थापित कर निरन्तर उन्हें अपने कार्यों का दृष्टा मान कर हम जो सदाचरण करते हैं, अपने कर्तव्यों को पूर्ण करते हैं, भजन, पूजन, स्वाध्याय, प्रार्थना करते हैं, वही भगवान का वैभव बढ़ाने वाली बातें हैं। जिन विचारों या कार्यों से हमारा देवत्व प्रकट होता है, वे ही इस दुर्लभ मानव देह से करने योग्य कार्य हैं। वाणी से भगवान के दिव्य गुणों, अतुल सामर्थ्यों का गुण-गान करें, हाथों से पवित्र कार्य करें, ब्रह्म चिन्तन, भजन गायन और अर्चन बुद्धि को शुद्ध बनायें, यही हमारे अहंकार को दूर कर सकता है और चित्त शुद्ध कर सकता है।

जब मूर्ति में हम भगवान की आस्था, श्रद्धा और विश्वास को स्थापित कर देते हैं, तो वही दिव्य सामर्थ्यों से पूर्ण हो जाता है। उसी पत्थर की प्रतिमा के सामने हमारा सिर अपने आप झुक जाता है। वह मनुष्य की श्रद्धा का ही चमत्कार है। इस मूर्ति के सामने निरन्तर रहने से चित्त-शुद्धि होती है और आत्मानुशासन प्राप्त हो जाता है। जीवन का चरम लक्ष्य होना चाहिए ईश्वर से तादात्मय और इसी को मानना चाहिए परम पुरुषार्थ। मूर्ति-पूजा वह प्रारम्भिक अवस्था है जिसमें मनुष्य दिव्य गुणों के विकास की पहली सीढ़ी पर चढ़ता है। योगसूत्र में भगवान की व्याख्या "रागद्वेषादि रहित पुरुष विशेषः" की है। इस प्रकार मूर्ति-पूजा करते-करते मनुष्य निरहंकार बनता है। जिस मूर्ति में वह जिन देवगुणों का आरोपण कर पूजा करने लगता है, कालान्तर में वे ही उसके चरित्र में प्रकट होने लगते हैं। इस प्रकार मूर्ति-पूजा उपयोगी है और आवश्यक भी।

भारत की संसार को अमिट देन-मूर्ति पूजा

संसार में मूर्ति पूजा तो सर्वत्र होती है, पर आश्चर्य है कि मूर्ति पूजा के नाम पर कुछ समूहों या सज्जनों द्वारा झूठा विरोध किया जाता है। मानव दैनिक जीवन में जो भी कार्य करता है या विचार करता है सर्वप्रथम उस कार्य या विचार का चित्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उसके मनः पटल पर अंकित होता है। बिना किसी प्रकार के मानसिक चित्र या कल्पना के मानव संसार में कोई भी कार्य करने में समर्थ नहीं। जब यह स्थिति प्रत्यक्ष थी तभी तो भारत के महान धार्मिक वैज्ञानिकों ने अलौकिक मूर्ति पूजा का विज्ञान जनसाधारण के हितार्थ संसार के समक्ष रखा। भाग्यवान मानवों ने उसका स्वागत किया।

इस सत्य से मुख मोड़ा नहीं जा सकता कि मूर्ति पूजा से संसार में कोई भी जीवित व्यक्ति वैराग्य नहीं ले सकता। ईसाई तो प्रत्यक्ष भी ईसा मसीह के चित्र, मूर्ति एवं क्रास, गिरजाघर आदि को पवित्र मानकर उनके समक्ष नतमस्तक होकर अपने को सौभाग्यशाली मानते हैं। इस्लाम धर्म के मानने वाले भी किसी न किसी प्रकार से अपने पैगम्बर के, मस्जिद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

के तथा ताजियों आदि के प्रति श्रद्धा प्रगट कर ईश्वर से सम्बन्धित आकारों की पूजा अपने विचारों के अनुसार कर परोक्ष रूप में साकार उपासना का प्रतिपादन करते हैं। मुसलमान अपने किसी भी धार्मिक चिह्न का अपमान सहन नहीं कर सकता। यदि उनके दिल में आकृति के प्रति श्रद्धा नहीं है तो अपमान के प्रति विरोध भावना कहाँ से प्रकट होती है ? किसी धार्मिक कृत्य पर सुगन्ध करना, स्वच्छ या नवीन वस्त्र पहनना, नियमित रूप से नमाज पढ़ना, रोजे रखना आदि कृत्य सब मूर्ति-पूजा के ही तो परोक्ष अंग हैं।

संसार की उत्पत्ति के उपरान्त किन्हीं विभूतियों ने वस्त्र से शरीर रक्षा एवं सामाजिक प्रतिष्ठा की मान्यता का विधान बनाया होगा। आज नाना प्रकार के फैशनों में उसके विस्तार को देखकर आश्चर्य होता है। कितने प्रकार के कपड़े मानव ने बना डाले, कितने प्रकार के रंग ढंग देश देशान्तरों में चले और समाप्त हो गये, आज कितने प्रकार के कपड़े चल रहे हैं अथवा पहने जा रहे हैं, कोई उनकी गणना करने में भी समर्थ नहीं है। पर वाह रे सिद्धांत तू तो अपनी जगह पर अटल खड़ा है। ठीक इसी प्रकार आध्यात्मवाद के आश्रय में विरले ही मानव भगवान के चरणों में पहुँचने में समर्थ थे और हैं। अतः साधारण जनों की रक्षार्थ मूर्ति-पूजन के सरल साधन द्वारा मानव को प्रभु चरणों से सम्बन्ध स्थापित करने का विधान बनाकर जिस अटूट सिद्धांत की रचना की गई, कोई कुछ भी कहे वह अखण्ड-ज्योति की भांति आज भी सारे संसार को प्रकाश दे रही है। संसार में अन्य देशों अथवा जातियों ने मूर्ति-पूजा का आन्तरिक महत्व नहीं समझा, वरन् मानवी आवश्यकता के कारण उसे अनजाने ही अपना लिया। अतः उसे अपनाने में मूल वस्तु तो रह गई, पर अन्य भौतिक साधन नष्ट हो गये। दूसरी ओर विशाल हिन्दू जाति ने उसके आन्तरिक महत्व और लाभ को समझते हुए उसका अनुसरण किया।

मानव, स्वभाव से अनेक प्रकार की भावनाओं के आश्रित होकर अपनी जीवनयात्रा पूरी करता है। सनातन धर्म ने वनस्पति, जल, जीव, तारागण, चन्द्र, सूर्य सारे चराचर को अपनी पवित्र पूजन पद्धति में स्थान देकर देवी–देवताओं आदि की इतनी बाहुल्यता कर दी कि मानव-मात्र अपनी बुद्धि और रूचि के अनुसार पूजन शैली छाँटने में स्वतन्त्र है। भारतीय पूजन विधि में पाँचों इन्द्रियों को तृप्ति देने का सरल साधन है। चारों वर्णों की रचना को सार्थक करने हेतु सभी वर्णों की अनुकूल तृप्ति भी पूजन से बनती है। अन्त में चार अवस्थाएँ हैं। भारतीय पूजन विधि में बालकों के मनोविज्ञान की पूर्ति बाजे एवं प्रसाद पंचामृत से होती है। बडे होने पर पाठ, श्रृंगार, कीर्तन आदि से मानव सन्तोष प्राप्त करता है। तृतीय अवस्था आने पर विचार, साधन, प्रवचन आदि सन्तोष के प्रत्यक्ष साधन हैं। सँन्यास लेने पर सारे जगत को ब्रह्ममय मानकर मानव सेवा कर जगत को सन्मार्ग पर लगाने की सच्ची मूर्ति-पूजा का विधान है।

इस महान मूर्ति-पूजन की किस भांति प्रशंसा की जावे। जिन महान आत्माओं द्वारा संसार में इसका प्रादुर्भाव हुआ, संसार उनका सदैव आभारी रहेगा। मूर्ति पूजन के विज्ञान को विदेशी तो गंभीरता से समझना चाहते हैं, पर खेद है कि जिनकी वह धरोहर है, ये हिन्दू अज्ञानतावश इस अमूल्य धरोहर पर गर्व अनुभव करने की अपेक्षा अनेक प्रकार का विरोध प्रदर्शित कर अपने को गर्त में गिराते हैं। भगवान उन्हें सद्बुद्धि दे यही प्रार्थना है।

भारतीय धर्म की शिक्षण पद्धति प्रतीक पूजा के रूप में प्रचलित है। धर्म और अध्यात्म के रहस्यों को भारतीय संस्कृति में प्रतीक प्रतिमाओं के माध्यम से समझाया गया है। विभिन्न देवताओं की चित्र-विचित्र कल्पनायें की गई हैं। उनकी मुखाकृति, वेष विन्यास, रहन सहन, वाहन आदि के ऐसे विचित्र कथानक जोड़कर तैयार किये गये हैं कि उन्हें पढ़कर यह अनुमान करना भी कठिन पड़ता है कि वस्तुतः ऐसे कोई देवी-देवता हैं भी अथवा नहीं। चार मुख के ब्रह्मा जी, पंचमुख महादेव, षटमुख कार्तिकेय, हाथी की सूंड वाले श्रीगणेशजी, पूँछ वाले हनुमानजी आदि– यह सब विचित्र सी कल्पनायें लगती है जिन पर मनुष्य की सीधी पहुँच नहीं हो पाती। उसे या तो श्रद्धावश देवताओं को सिर झुका कर चुप रह जाना पड़ता है या फिर तर्क बुद्धि से उन विचित्रताओं का खण्डन कर यही मान लेना पड़ता है कि ऐसे देवताओं का वस्तुतः कहीं कोई अस्तित्व नहीं है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गंभीरतापूर्वक विचार करने पर यह पता चलता है कि पौराणिक देवी देवताओं के जो वर्णन मिलते है उन विचित्रताओं के पीछे बड़ा समुन्नत आध्यात्मिक रहस्य छिपा हुआ है। ऋषियों ने समष्टिगत चेतना और उसके अनुशासनों का बोध प्रतीक पूजा के माध्यम से कराया है। भगवान की अनेकानेक विशेषताओं को ध्यान में रखकर आदर्शों के प्रतीक विभिन्न देवी-देवताओं को चित्रित किया गया है। सभी देव प्रतिमाओं के पीछे भाव भरे संकेत सूत्र सन्निहित हैं। हर देव प्रतिमा एक दृश्यमान पाठ्य पुस्तक है जिसके माध्यम से जीवन दर्शन और आत्म विज्ञान के गूढ़ रहस्यों को बालबोध की तरह समझा और समझाया जा सकता है, पुस्तकें तो शिक्षित वयस्क ही पढ़ समझ सकते हैं, पर प्रतिमा प्रतीकों के दृश्य स्वरूप के सहारे पढ़े वें-पढ़े सामान्य जन भी बहुत कुछ जान और सीख सकते हैं। प्रतिमाओं का स्वरूप ऐसा ही है। उनकी विभिन्न आकृतियाँ, उनके आयुध, वाहन एवं अनेक मुख, हाथ निर्धारित करने के पीछे यह उद्देश्य रहा है कि देव परम्पराओं के साथ जुड़े हुए नियमों, तथ्यों, रहस्यों को सर्व साधारण को समझने-समझाने का उत्साहवर्धक आकर्षण बना रहे। अनेकता के बीच एकता देखने की यह पद्धति ज्ञानवर्धक मनोरंजक भी है और सारगर्भित, व्यावहारिक और दूरदर्शिता पूर्ण भी। इस स्थापना में मानवी मनोविज्ञान का समुचित समावेश किया गया है जिसका अवगाहन करके मनुष्य बहुत थोड़े में सत्य और जीवन लक्ष्य की उन्मुक्त अवस्थाओं का ज्ञान सहज उपलब्ध कर सकता है।

२ - हिन्दू संस्कृति में प्रतीकों का महत्व और प्रभाव

मनुष्यों के लिए सब समय पूरी बात कहना या लिखना सम्भव नहीं होता। हमारे जीवन में बहुत से भाव इस प्रकार सूचित करने आवश्यक होते हैं, जिन्हें दूर से देखकर समझा जा सके। बहुत समय और स्थल ऐसे होते हैं जहाँ अपने और दूसरों के लिए पहिचानने का चिह्न निश्चित करना पड़ता है। यही चिह्न उस भाव या वस्तु के प्रतीक कहलाते हैं, जिसके लिए वे निश्चित किये गये हों। जैसे किसी व्यक्ति का नाम उसका प्रतीक होता है, नाम के द्वारा उसका सम्मान और अपमान होता है, वही बात अन्य प्रतीकों के सम्बन्ध में है।

प्राचीन काल के प्रसिद्ध योद्धा अपने-अपने पृथक ध्वज रखते थे। महाभारत में श्रीकृष्ण, भीष्म, द्रोण, कर्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम आदि के विभिन्न आकृतियों वालें रथ-ध्वजों का वर्णन मिलता है। ये ध्वज दूर से ही उस योद्धा को सूचित कर देते थे। बड़े आदमियों के भवनों पर भी अपने पारिवारिक ध्वज लगाये जाते थे। मन्दिरों पर और पण्डों के स्थानों पर अब भी ध्वज लगाने का नियम है, जिनसे उनकी पहचान हो सकती है। संस्थाओं के ध्वज तथा राष्ट्रध्वज का जो सम्मान है वह सभी जानते हैं। इनके अपमान के कारण कभी-कभी बड़े संग्राम तक हो जाते हैं।

व्यक्ति या संस्थाओं के अतिरिक्त भावों, क्रियाओं तथा घटनाओं के सूचक प्रतीक भी आज व्यवहृत होते हैं। कुछ नित्य प्रतीक हैं जो उस वस्तु के वास्तविक लक्षणों के अनुसार होते हैं और दूसरे कल्पित प्रतीक होते हैं। व्यक्तियों के नाम, राष्ट्रों की ध्वजाएं तथा दूसरे चिह्न कल्पित माने जाते हैं। जबकि राष्ट्र को किसी पदक, सिक्के या ध्वजा आदि के लिये कोई प्रतीक निश्चित करना पड़ता है तो उसके लिए विशेषज्ञों की बैठक होती है, क्योंकि ऐसा चिह्न निश्चित करना जो भाव को ठीक-ठीक सूचित करे और उससे भ्रम न हो, सरल काम नहीं है।

विश्व की सम्पूर्ण मानव जाति नित्य प्रतीकों को एक ही अर्थ के व्यवहार में लाती है। श्वेत ध्वज सब कहीं शांति का सूचक है, जैसे किसी अज्ञात शक्ति ने सबको उन प्रतीकों के चिह्न बतला दिये हैं। यह प्रतीकों की एकता भी सिद्ध करती है कि मनुष्य जाति किसी एक ही देश से विश्व में फैली है और वह देश वही हो सकता है, जहाँ नित्य प्रतीक अब भी अपने मूल और अविकृत रूप में मिल सकें। खोज करने पर मालूम पड़ता है कि भारत के प्राचीन प्रतीक ही विश्वव्यापी हो गए हैं।

भाषा का विवेचन करते समय यह बताया गया है कि किस प्रकार मूल शब्दों का उच्चारण भेद से असावधानी से रूप बदलता गया है, ठीक वही बात प्रतीकों के सम्बन्ध में है। प्रतीकों की धारणा में भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बराबर कल्पना और लाक्षणिकता आती गई, इसके कारण कल्पित प्रतीकों की संख्या बढ़ती गई। उदाहरण के लिए देवता का प्रतीक लीजिए। मनुष्य की आकृति के साथ मुख के चारों ओर तेजोमण्डल बना देना देवत्व का प्रतीक है। देवताओं के शरीर तेजस त्तव के बने हैं, वे पार्थिव नहीं हैं, यही बात तेजोमण्डल से प्रकट की जाती है। भारत से बाहर जाने पर जब लोग परिस्थितिवश शिक्षा से दूर होकर असभ्य हो गये तो वे देव-शक्ति को ही भूल गये। जब दूसरों के संसर्ग से उन्होंने देवताओं का वर्णन पाया तो देवताओं और उनके वाहनों में भेद न कर सके। इससे देवताओं की आकृति में उनके वाहनों के आकार भी मिल गये। साथ ही देवत्व को सूचित करने के लिए उड़ने के प्रतीक पंख आकृतियों में लगाये गये। विदेशों की परियों और फरिश्तों की धारणा इसी आधार पर उत्पन्न हुई है।

जैसे एक ही शब्द उपयोग भेद से अनेक अर्थ रखता है—'राम-राम' का अर्थ प्रणाम भी होता है और घृणा भी— वैसे ही प्रतीकों से भी अनेक भाव सूचित होते हैं। जब कोई जाति श्रोष्ठ प्रतीक को अपना चिह बनाकर अत्याचार करती है तो यह प्रतीक उसके अत्याचार का द्योतक हो जाता है। वह अपने नित्य अर्थ में नहीं रहता। जैसे हिटलर के अत्याचारों से 'स्वास्तिक' का चिह अत्याचारों का स्मारक बन गया। अग्नि की लपटों के समान लाल रंग का झण्डा वैदिक हिन्दू ध्वज होने पर भी, रूस में लाल-पताका के रूप में नास्तिकता तथा जड़ साम्यवाद का प्रतीक हो गया है।

हिन्दू-समाज के सर्वज्ञ ऋषियों ने आरम्भ में ध्वजा तथा दूसरे प्रतीकों को आजकल की भाँति कल्पित नहीं बनाया था। हमें कोई एक गुण अभीष्ट है इसलिए हम उसी को अपना प्रतीक बना लें ऐसी बात नहीं थी। उस समय के प्रतीक नित्य प्रतीक हैं, जो किसी व्यक्ति या भाव के पूर्ण रूप से सूचक होते थे। नित्य प्रतीक का अर्थ क्या है ? उनमें से कुछ तो विशेषता के कारण निश्चित किये जाते हैं। किसी जाति, देश या पदार्थ की वह विशेषता जो दूसरों में न हो, उसका प्रतीक हो जाता है। जैसे हाथी का प्रतीक सूँड़ के रूप में बनाया जा सकता है। इसी प्रकार जिन देशों में कोई विशेष पशु या पदार्थ होते हैं, उन देशों को उन पदार्थों से लक्षित किया जाता है। दूसरे प्रतीक वे हैं जो भाव-जगत से सम्बन्ध रखते हैं। कौनसा भाव किस पदार्थ से सम्बन्धित है यह बात वही जान सकता है, जिसने स्थूल के बन्धन से मन को पृथक करके जाग्रत दशा में ही भाव-जगत का साक्षात् कर लिया हो।

नित्य प्रतीकों का श्रेणी विभाजन करते समय हमको कई प्रकार के प्रतीक मिलते हैं। (१) चिह प्रतीक, जैसे अक्षराकृतियाँ, स्वास्तिक, त्रिभुज, चतुर्भुज आदि। (२) रंगों के प्रतीक, जैसे श्वेत, लाल आदि रंग भाव सूचक हैं। (३)पदार्थ-प्रतीक, जैसे शंख, स्वर्ण पाषाणादि। (४) प्राणी-प्रतीक गाय, वृषभ, मयूर, हंस आदि। (५) पुष्प-प्रतीक – कमल आदि। (६) शस्त्र-प्रतीक —चक्र, त्रिशूल, गदा आदि। (७) वाद्य प्रतीक —शंख, डमरू, भेरी, वंशी आदि। (८) वृक्ष-प्रतीक —आँवला, पीपल, तुलसी आदि। (९) वेश-प्रतीक —शिखा, यज्ञोपवीत, कण्ठी, माला, गेरूआ वस्त्र, दण्ड, तिलक आदि। (१०) संकेत-प्रतीक मुद्राएँ।

(१) चिह-प्रतीकों में हिन्दू-समाज में 'स्वास्तिक' सर्वप्रधान है। जैसे समस्त अक्षर 'अकार' से उत्पन्न हुए हैं वैसे ही समस्त रेखाकृतियाँ 'स्वास्तिक' के ही अन्तर्गत आ जाती हैं। प्रणव की आकृति नाद रहित होने पर स्वास्तिक ही मानी जाती है। केन्द्र के चारों ओर प्रगति, चारों ओर रक्षा, चारों तरफ उन्मुक्त द्वार यह स्वास्तिक में स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। स्वास्ति (कल्याण) के लिए यही आवश्यक है। स्वास्तिक प्रथम पूज्य श्री गणेशजी का चिह है। इसका अर्थ है कि स्वास्तिक द्वारा हम गणेशजी की शक्ति का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रधान मंगल चिह को पारसी धर्म ने उलटा कर लिया और नाम 'अपस्तिक' रखा। इसी प्रकार ईसाइयों का क्रास भी इसी का संक्षिप्त रूप है। प्रणव का यह रूप न लेकर जिन्होंने नाद को प्रतीक माना उनकी परम्परा में वह काल व क्रम से चांद और तारे के रूप में आ गया, जैसे कि मुसलमानों में। पर खोज करने से इन सबका उद्गम स्वास्तिक ही सिद्ध होता है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२) रंग-प्रतीक हिन्दू धर्म में पूजा में तो प्रयुक्त किये ही जाते हैं, उनके प्रभाव का सर्वत्र लाभ उठाया गया है। थोड़े ही भेद से लाल रंग उष्णता, अनुराग या क्रोध का सूचक है। क्रिया से उष्णता और उसका रंग लाल होगा यह स्पष्ट जान पड़ता है। इसी प्रकार कुछ अन्तर से श्वेत रंग सात्विकता, प्रतिभा, यश, शान्ति, सत्य, धर्म का प्रतीक है। अर्थात् रजोगुण के जो विशुद्ध कार्य हैं उन्हें लाल रंग और सत्वगुण के जो विशुद्ध कार्य हैं उन्हें श्वेत रंग सूचित करता है। तमोगुण का सूचक काला रंग है। वह अभाव, अन्धकार, मृत्यु आदि का सूचक है जो तमोगुण के स्वरूप हैं।

(३) पदार्थ-प्रतीकों में शंख मंगल का प्रतीक है। शंख में जो शक्ति है वह हम में पवित्रता का संचार करती है। इसी प्रकार स्वर्ण दृढ़ता, बहुमूल्यता और परीक्षण में स्थिरता का प्रतीक माना जाता है। अस्थि (हड्डी) को अपवित्रता का प्रतीक बताया गया है।

(४) प्राणी-प्रतीकों में गौ, पृथ्वी क्षमा का प्रतीक है। वृषभ धर्म का प्रतीक है। हंस, ज्ञान और निर्णय का प्रतीक है तथा सर्प बल और प्राण का प्रतीक हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं कि जिनका अर्थ स्पष्ट है जैसे हंस के शुभ्रता, तीव्रगति, नीर क्षीर विवेक आदि गुण ज्ञान और विवेक को प्रकट करते हैं। इसी प्रकार गाय भी पृथ्वी के समान मनुष्य मात्र की पालक, धारक और क्षमा की मूर्ति है।

(५) पुष्प-प्रतीकों में कमल भारतवर्ष का सबसे अधिक सुन्दर पुष्प है जिसकी उपमा आदर्श सौन्दर्य वाले नर-नारियों के लिए दी जाती है।

(६) शस्त्र-प्रतीक में चक्र और त्रिशूल सबसे महत्वपूर्ण हैं जो विष्णु और शिव के मुख्य शस्त्र हैं। इनसे इन देवताओं की शक्ति का बोध होता है।

इसी प्रकार वाद्य-प्रतीक, वृक्ष-प्रतीक, वेश-प्रतीक के द्वारा भी अनेक प्रकार के भावों और उद्देश्यों को प्रकट किया जाता है। इनसे प्रकट होता है कि प्राचीन हिन्दू संस्कृति में प्रतीकों का पर्याप्त प्रचार था और उनके द्वारा पठित-अपठित सभी थोड़े से संकेत से ही धार्मिक सिद्धान्तों के मर्म और आदेशों के समझने में समर्थ हो सकते थे।

भाव अभिव्यक्त व परिमार्जित होते हैं - प्रतीकों के माध्यम से

भारतीय संस्कृति की प्रतीकों के माध्यम से लोक शिक्षण की पद्धति की समीक्षा विश्व भर के मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों तथा मनीषियों ने की है व ऋषियों की इस खोज को स्वयं में एक अद्भुत विधा का नाम देते हुए लोक शिक्षण की इस प्रक्रिया की भूरि-भूरि सराहना की है। चेतना के महत्वपूर्ण सूत्रों के माध्यम से मानव जीवन की शोध करने वाले, वैज्ञानिक मनीषा धारण करने वाले ऋषिगणों की मानवी मनोविज्ञान पर पकड़ बड़ी गहरी थी। उन्होंने पाया कि मानवी मन प्रतीकों की भाषा को ठीक से समझ सकता है। भावों, क्रियाओं, घटनाक्रमों को प्रतीकों के माध्यम से समझाकर मन को तथा उसके माध्यम से अचेतन को भलीभाँति प्रशिक्षण दिया जा सकना तथा नए संस्कारों का, अवधारणाओं का आरापेण कर पाना संभव है। यह निष्कर्ष ऋषियों की प्रज्ञा ने निकाला व अनेकों प्रतीक खोज निकाले, जिनके गूढ़तम अर्थ हैं व जिनके माध्यम से एक विशाल समूह का शिक्षण कर पाना संभव है।

देखा जाय तो आदिकाल से ही प्रतीकों की भाषा का जीवन व्यवहार में उपयोग होता आया है। पुरातन समाज इसीलिए "सिम्बॉलिक सोसायटी" कहलाया। कुछ पाश्चात्य नेतृत्व विज्ञानी कहते हैं कि आदि मानव की भाषा नहीं थी, वह अनगढ़ प्रतीकों के माध्यम से बात करता था तथा भाषा का विकास तो बाद में सभ्यता के विकास के साथ हुआ। यह एक नितान्त बचकानी व अविवेकपूर्ण सोच है। मनुष्य यदि आदि काल में सभ्य एवं बुद्धिमान नहीं था तो उसने ऐसे प्रतीक व चिह्न कैसे निश्चित कर लिए कि आज के बड़े-बड़े विद्वान भी उन्हें देखकर चकरा जाते हैं उनका विकल्प सुझा नहीं पाते। आदिमतम कही जाने वाली भाषा चित्रों की भाषा कही जाती है। चीनी भाषा लिपि का शब्द विन्यास यदि हम देखें तो पाते हैं कि चित्र प्रतीकों ने ही धीरे-धीरे अक्षरों का आकार ले लिया। मेसोपोटामिया के आदिकालीन अवशेषों से भी यही निष्कर्ष निकलता है। भारत की भीमबेटका से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लेकर अजन्ता की गुफाओं तथा पुरात्तव की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों की खोज जिहोंने की है, उन्होंने चित्र प्रतीकों का बाहुल्य ही पाया है व इसे त्तकालीन समाज की शिक्षण प्रक्रिया माना है। आदि लिपि ''ब्राह्म'' के अक्षरों के आकार का विश्लेषण करने वाले विद्वानों के अनुसार ये अक्षर ध्वनि के अर्थ सूचक हैं तथा ध्वनि की उस आकृति के अनुरूप हैं जो उस ध्वनि से आकाश में बनती है। इस प्रकार कोई भी प्रतीक कभी कल्पित प्रतीक नहीं रहा। जो भी कुछ हमारे पूर्वजों ने सोचा, उसके पीछे विशिष्ट भाव या अर्थ था व उसे शिक्षण हेतु उपयुक्त मानकर उन्होंने उसे मान्यता दी।

भारतीय संस्कृति के प्रणेता ऋषिगण जीवन की अखण्डता में विश्वास करते आए हैं। उनका मत रहा है कि हमारी सृष्टि चैतन्यमयी है। चैतन्य सत्ता का प्रवाह ही अनेकानेक रूपों में अभिव्यक्त होता है, ऐसी उनकी धारणा है। यही कारण है कि वे चर-अचर अप्राणियों जैसे नदी, पर्वत, पत्थर, पेड़-पौधों से लेकर प्राणियों तक में उसी ब्राह्म सत्ता-चैतन्य की सत्ता का निवास मानते हैं ''डीप इकॉलाजी'' की अवधारणा तो विज्ञान जगत में अभी आई है किन्तु देव संस्कृति पहले से ही अंतः प्रकृति व वाह्य प्रकृति में साम्य मानते हुए प्रकृति व जीवजगत को परस्पर अन्योन्याश्रित दोनों में एक ही चेतना का अस्तित्व बताते हुए एक-दूसरे के संरक्षण की महत्ता का प्रतिपादन करती आयी है। यही कारण है कि ऋषियों ने प्रतीक के रूप में सृष्टि के हर अंग को स्वीकार कर उनसे शिक्षण या प्रेरणा लेने का प्रयास किया। ऋषि यह जानते थे कि प्रतीकों के माध्यम से निराकार ब्रह्म की सत्ता का ध्यान कराते हुए मन को एकाग्र कराना संभव है। मन के एकाग्र होने के बाद प्रक्रिया के माध्यम से संस्कारों का आरोपण भी किया जा सकता है। प्रतीकवाद के मूल में ऋषियों का यही मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रधान है जो मूर्ति-पूजा से लेकर-तुलसी, पीपल जैसे वृक्ष-वनस्पति तक, गंगा से लेकर नर्मदा तथा सूर्य से लेकर गौ माता तक अभिव्यक्त होता है।

प्रतीकों को जुंग व अर्नाल्ड टायनबी ने आर्चीटाइप्स (भाव प्रतिमाओं) से संगति बिठाते हुए अपने व्याख्यानों में उन्हें अचेतन मन के शिक्षण की विधा के रूप में भारतीय संस्कृति की विश्व संस्कृति को विलक्षण देन बताया है। कुंडलिनी शक्ति का बड़े गहराई से चक्र रूपी प्रतीकों के माध्यम से विवेचन अपनी कृतियों में जुंग ने किया है व अंतश्चेतना की अभिव्यक्ति हेतु उन्हें सुपरचेतन सत्ता का माध्यम माना है। मातृसत्ता के रूप में ''मदर आर्चीटाइप'' की महाकाली आद्यशक्ति गायत्री की तथा गुरुसत्ता के रूप में ''गुरुआर्चीटाइप'' की व्याख्या सर जॉन वुडरफ के ग्रन्थों में विस्तार से देखी जाती है। फ्रायड ने प्रतीकों को मानव जाति की सबसे पुरातन व मौलिक कल्पनाओं की अभिव्यक्ति नाम दिया है। वस्तुतः प्रतीकवाद के माध्यम से सृष्टि के विभिन्न घटकों में मेक्रोकॉस्माँस की, चैतन्य की अभिव्यक्ति की प्राच्य अवधारणा की विदेशी विद्वान भूरि-भूरि सराहना करते आए हैं, क्योंकि इससे मन के शिक्षण की विलक्षण विधा उन्हें प्राप्त हुई है।

राष्ट्रों के झण्डे, महापुरुषों के स्मारक, उनकी मूर्तियों व चित्र लौकिक जगत के वे वाह्य प्रतीक हैं जिनके माध्यम से लोक अपनी भावाभिव्यक्ति उनके प्रति करता है। अध्यात्म क्षेत्र में भी मूर्ति पूजा भाव के प्रतीक के रूप में उपासना हेतु विकसित हुई। अव्यक्त निराकार सत्ता के प्रति अनुराग व्यक्त माध्यम से ही संभव है। उपासना भाव के मार्ग में इसलिए व्यक्त मूर्ति या चित्र की आवश्यकता पड़ती है। लक्ष्य एक ही है आदर्शों का समुच्चय परमसत्ता को मानते हुए उसके गुणों के साथ तन्मय एकाकार हो जाना। मूर्ति भाव के लिए है, यह बात नहीं भुलायी जानी चाहिए। मूर्ति किसी की दृष्टि में पत्थर भी हो सकती है पर भावों का आरोपण होने के बाद वही दक्षिणेश्वर के ठाकुर की महाकाली भी बन सकती है। जैसे प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि वह पिता के जिस शरीर की सेवा करता है, वह हडडी-रूधिर-मांस का पंच भौतिक शरीर है, सेव्य शरीर नहीं। उसमें संव्याप्त चेतना है। जैसे झण्डे के प्रति सम्मान वस्त्र खण्ड का सम्मान नहीं, उसमें स्थापित भाव रूप देश का सम्मान है, वैसे ही मूर्ति का आराधक मूर्ति में भावरूप आराध्य की आराधना करता है। वह मूर्ति में केवल भाव देखता है, नहीं तो शिवलिंग या शालिग्राम में कोई आकार कहाँ होता है ? मूर्ति पूजा का एक ही अर्थ है ध्यान को अधिकाधिक एकाग्र करना।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दूओं को बुतपरस्त कहा जाता है अर्थात् वे मूर्ति पूजक हैं। यह शब्द तब निकला जब अपने संप्रदाय के विस्तार के लिए निकले इस्लाम धर्मियों ने स्थान-स्थान पर बुद्ध की मूर्ति को स्थापित देखा। "बुद्धपरस्त" शब्द ही बाद में "बुतपरस्त" बन गया। जब कि बुद्ध की मूर्ति प्रतीक है मानसिक शान्ति-एकाग्रता, आत्मबोध की। वैसे देखा जाय तो मूर्ति पूजा अन्यान्य प्रतीकों की तरह आर्यों के वैदिक काल से प्रचलित है। आर्यसमाज के कतिपय विद्वान इस पर कई प्रकार से शास्त्रार्थ करने का प्रयास करते हैं पर इस तथ्य को भुला देते हैं कि स्वामी दयानन्द जी ने किन परिस्थितियों में व क्यों मूर्ति पूजा तक ही सीमित कर्मकाण्डों के बहिरंग उपचार तक ही अवरूद्ध धर्मप्रधान समुदाय को उससे उबरकर मानव मात्र में भगवत सत्ता को देखने के लिए कहा था। धर्म के नाम पर पाखण्ड जो रचा जा रहा था, उसकी उन्होंने अवमानना की थी, प्रतीक पूजा की नहीं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में (१५५/३) दारू ब्रह्म श्री पुरुषोत्तम की मूर्ति का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। दारू ब्रह्म अर्थात् काष्ठमय पुरुषो माख्य देवशरीर। कैम्ब्रिज हिस्ट्री में इन्द्र की मूर्ति की उपासना का उल्लेख वैदिक काल में होता मिलता है। कल्याण के "हिन्दू संस्कृति" अंक में इसकी स्पष्ट विवेचना (पृष्ठ २२५) हुई है। यहाँ किसी शास्त्रार्थ को छेड़ने की दृष्टि से नहीं अपितु मूर्ति प्रतीकों के पीछे छिपी अभिव्यंजना को समझाने हेतु इतना कुछ स्पष्ट करने का प्रयास किया है। जिस देश की भूमि पर अनगिनत शिवालय–देवालय बसे हों, वह कितना अध्यात्म प्रधान रहा होगा, यह कल्पना की जा सकती है।

वस्तुतः मानव मनोविज्ञान के ज्ञाता ऋषियों ने प्रतीक पूजन की प्रथा चलाई ही इसलिए ताकि इन प्रतीकों के माध्यम से व्यक्ति अनन्त सत्ता को साकार रूप में अपने सामने देख सके, आस्तिक बन सके। यदि प्रतीकवाद न होता तो निराकार को देख न पाने वाले बौद्धिक स्तर पर अक्षम बहुसंख्य व्यक्तियों का आत्मिक विकास रुक जाता, धर्म का व्यापक विस्तार न हुआ होता, घोर अनास्था व अराजकता फैल गयी होती। मात्र मूर्ति ही नहीं, पीपल, आँवला व तुलसी जैसे वृक्ष-वनस्पतियों को, नदी-पर्वतों को, पदार्थ प्रतीक यथा शंख-स्वर्ण को, प्राणी प्रतीक यथा गाय, वृषभ, मयूर, पुष्प प्रतीक यथा कमल को, शस्त्र प्रतीक यथा–चक्र, त्रिशूल गदादि को, वाद्यप्रतीक यथा–शंख, डमरू, वंशी, भेरी को, वेश प्रतीक यथा–शिखा, यज्ञोपवीत, कण्ठी, माला गैरिक वस्त्र, दण्ड, तिलकादि को, संकेत प्रतीक यथा मुद्राएं, चिह्नप्रतीक यथा स्वास्तिक, त्रिभुज-चतुर्भुजादि यंत्र तथा रंग प्रतीक यथा श्वेत, लाल, बसंती आदि रंगों को भारतीय प्रतीकवाद पवित्रता से लेकर परमात्म सत्ता के गुणों के प्रतिनिधि के रूप में मान्यता देता आया है।

तुलसी, अश्वत्थ (पीपल), आँवला, वट, अशोक, बिल्व आदि कुछ वृक्षों की हिन्दू समाज में भिन्न-भिन्न अवसरों पर या नित्य पूजा होती है। इनके स्थूल आयुर्वेदिक प्रभाव की दृष्टि मात्र से नहीं, अपितु इन दिव्य वनस्पतियों के कारण सत्ता पर प्रभाव की दृष्टि से इन्हें पूजा जाता है। कुश और दूर्वा जहाँ मन को शांत करने की शक्ति रखते हैं, वहाँ इन वनस्पतियों का सान्निध्य व्यक्ति के चिन्तन को सतोगुणी बना देता है।

गंगा, यमुना, नर्मदा से लेकर गोदावरी, कावेरी तक हर सरिता व हिमालय से लेकर गोवर्धन, विध्यांचल जैसे पर्वत सभी हिन्दू अध्यात्म में पावन प्रतीक के रूप में पूजे जाते हैं। हिमालय को तो देवसंस्कृति का उद्गम केन्द्र–अध्यात्म चेतना का ध्रुव केन्द्र माना गया है। पदार्थों में शंख मंगल प्रतीक तथा स्वर्ण दृढ़ता, बहुगुण संपन्नता व परीक्षण में स्थिरता का प्रतीक है। प्राणियों में गौ को क्षमा का प्रतीक बताते हुए हविर्दुधा (हवि को देने वाली) कहा गया है। भारतीय संस्कृति व गाय का अविच्छिन्न संबंध है। अथर्ववेद कहता है "एतद् वै विश्व रूपं सर्वरूपम् गोरूपम्।" इसी प्रकार सभी शास्त्र गौ के शरीर में सारे देवताओं की स्थिति बतलाते हैं। पृथ्वी के समान ही धारक होने के कारण गौ क्षमा की मूर्ति व पालक भी है। वृषभ धर्म का प्रतीक है, तो हंस प्रतीक है– ज्ञान एवं विवेक दृष्टि का। सर्प बल और प्राण का प्रतीक है।

पुष्पों में कमल को हिन्दू अध्यात्म मुख्य प्रतीक मानता आया है। यह ऐश्वर्य तथा सुख का सूचक है। पृथ्वी की आकृति भी कमल समान बतायी गयी है व आत्म जगत में विद्यमान षटचक्र भी कमल के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

रूप में वर्णित हैं। देवता अपना आसन कमल ही बनाते हैं। कीचड़ में से भी कमल का खिलना अवांछनीयताओं के परिमार्जन द्वारा श्रेष्ठता के अभिवर्धन की अभिव्यंजना है। मंदिरों के शिखर भी बंद कमल आकार के होते हैं। यह ऋषियों का निर्धारण ही था कि आत्मसत्ता में निहित चक्र तथा लोकों के रूप में कमलाकृति को उन्होंने देवालयों की शिल्पकला में प्रयुक्त कर शान्ति-पवित्रता देने वाला केन्द्र उन्हें बनाया। शस्त्रों में त्रिशूल की चर्चा शिव के संदर्भ में हो चुकी, गदा शक्ति बल का प्रतीक है तो चक्र निरंतर घूमने वाली गतिशील प्राण ऊर्जा का। वाद्यों में शंख मंगल प्रतीक है। उसकी ध्वनि प्रणवनाद है जो मंत्रों का मूल है। मंगल कार्यों में वह मंगल का तथा युद्ध में विजय का प्रतीक है। शंख की ध्वनि बाधक विघ्नकारी त्तवों को दूर करने तथा रोगाणुओं को दूर भगाने में सक्षम है। भेरी, वंशी, वीणा, मृदंग, डमरू उन सबके अपने-अपने गुण व भाव हैं।

शिखा, यज्ञोपवीत, मेखला, तिलक, माला, गैरिक वस्त्र, दण्ड आदि भारतीय संस्कृति में वेश प्रतीक माने जाते हैं। मेखला (कटिसूत्र संयम का, तिलक निष्ठा तथा ललाट को उन्नत बनाए रखने का, गैरिक रंग वैराग्य का, बासंती वस्त्र उल्लास का त्याग का तथा दण्ड मन्यु का व्रतशीलता का ब्राह्मणत्व का प्रतीक है। संकेत प्रतीकों में मौन मुद्रा–तर्जन मुद्रा–ज्ञान मुद्रा आदि विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति के लिए हैं तो चिह्नों में विभिन्न मंत्र देवशक्तियों के भिन्न-भिन्न गुह्य रूपों के प्रतीक हैं। आगामी साधना अंक में इन सबका विस्तार से वर्णन है।

हिन्दू अध्यात्म मूर्तियों से लेकर ऊपर बताये प्रतीकों तक सृष्टि के एक-एक घटक में परमात्मा का वास मानता है–पृथ्वी के लिए ऋषि की मान्यता है–"माता भूमिः पुत्रोऽहंपृथिव्या"। पृथ्वी को माँ कहकर उसकी क्षमाशीलता–धारणशीलता की वृत्ति ग्रहण करने व राष्ट्र भूमि जन्मभूमि के लिए मर मिटने की शपथ खायी जाती है। सूर्य को सविता देवता माना गया है व सूर्योपासना गायत्री साधना पद्धति का प्राण है। देवसंस्कृति के अनुयायी के लिए सूर्य आग का गोला या हीलियम-हाईड्रोजन का समन्वय नहीं, वरन् पाप-नाशक भर्ग है, प्रतिभा परिष्कृत करने वाला दैवी शक्ति का पुंज है। पंचोपचार से लेकर षोडषोपचार पूजन तक इसी प्रकार दैवी प्रेरणा से भरा पूरा देवसंस्कृति का प्रतीक शास्त्र एक ही सत्य का प्रतिपादन करता है कि भावों की अभिव्यक्ति हेतु निमित्त व आकृत्ति चाहिए। ईश्वरीय सत्ता का निवास बताते हुए उसे समझाने व आत्मसात करने हेतु हिन्दू अध्यात्म प्रतीकों की महत्ता का प्रतिपादन करता आया है। मन प्रतीकों से ही एकाग्र हो सकता है व इस प्रकार सृष्टि के कण-कण में ईश्वरीय सत्ता का निवास बताते हुए उसे समझने व आत्मसात करने हेतु हिन्दू अध्यात्म प्रतीकों की महत्ता का प्रतिपादन करता आया है।

प्रतीकों के पीछे छिपे उद्देश्य

भारतीय संस्कृति में प्रतीक पूजा का प्रचलन है। मूर्तियों में, नदी, पर्वत, वृक्ष, पशु-पक्षियों में, यहाँ तक कि चूल्हे, चक्की, ऊखल, फसल जैसे उपकरणों की पूजा का प्रावधान रखा गया है। स्थूल दृष्टि से यह सब जड़ पूजा का उपहासास्पद प्रयोग प्रतीत होता है, किन्तु वस्तुतः वैसा है नहीं। सूक्ष्म तक पहुँचने के लिए स्थूल का प्रयोग किया जा सकता है। सूक्ष्म जीवाणुओं एवं विषाणुओं को खुली आँख से नहीं देख पाते, तो इसके लिए माइक्रोस्कोप का प्रयोग करते हैं। मनुष्य की भाव संवेदनायें अति सूक्ष्म होती हैं। उनकी स्मृति एवं जागृति के लिए उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। प्रतीक इसी की पूर्ति करते हैं। भाव संवेदनाओं के उभार एवं परिष्कार के लिए अध्यात्मवेत्ताओं ने इसे उचित एवं आवश्यक माना है।

ज्ञानवृद्धि के लिए पुस्तक की आवश्यकता पड़ती है। विचार अभिव्यक्ति के लिए लेखनी का उपयोग करना पड़ता है। विचार सूक्ष्म हैं, उनकी कोई आकृति नहीं बन सकती, पर लेखनी से लिपिबद्ध करके उन्हें मूर्तिमान बना दिया जाता है। इन लिखे पृष्ठों को पढ़ने से उन्हीं भावों के साथ पाठक का संबंध स्थापित हो जाता है जो लेखक के मन-मस्तिष्क में थे। इस प्रकार कागज पर लिखे अक्षर सर्वथा स्थूल होते हुए भी अभीष्ट चिंतन के आदान-प्रदान का माध्यम बन जाते हैं। प्रतीक पूजा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की–प्रतीकवाद की उपयोगिता इस आधार पर सहज ही समझी जा सकती है।

निराकारवादी भी कई प्रकार के प्रतीकों का उपयोग अपनी श्रद्धाभिव्यक्ति के लिए करते हैं। ईसाइयों में क्रूस के चिह्न का सम्मान है। मुसलमान काबा की तरफ मुँह करके नमाज पढ़ते हैं और हज जाकर 'संगे असवद' का बोसा लेकर अपनी यात्रा को सफल मानते हैं। ताजिये निकालने और मस्जिद को खुदा का घर मानने की मान्यता भी प्रतीक पूजा कही जा सकती है। राष्ट्रीय झंडे का सम्मान और अभिवादन किया जाता है। बुद्धिवादी लोग भी अपने पूर्वजों के चित्र टाँगते और उनका सम्मान करते हैं। आर्यसमाजी तथा पारसी धर्मावलम्बी अग्नि पूजा करते हैं। बच्चों को 'क' कबूतर तथा 'ख' खरगोश पढ़ाया जाता है साथ ही गिनती सीखने के लिए बाल-फ्रेम की गोलियों का प्रयोग होता है। किन्डर-गार्टन पद्धति में लकड़ी के टुकड़े जोड़कर अक्षरों की शक्ल बनाने की विधि शिक्षण-प्रक्रिया में सम्मिलित रखी गयी है। इन्हें भी कहने वाले प्रतीक पूजा कह सकते हैं, पर इससे किसी को कोई हानि नहीं होती और न प्रयोगकर्ताओं को उपहासास्पद ठहराया जाता है।

भारतीय धर्म-संस्कृति में प्रतीक पूजा के माध्यम से उपयोगी–उपकारी पदार्थों, शक्तियों एवं व्यक्तियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की जाती है और उनमें जो श्रेष्ठता सन्निहित है, उसके प्रति सम्मान व्यक्त करने एवं अपनाने का भाव है। यह सोचना व्यर्थ है कि प्रतीक पूजा वाले इतने मूर्ख हैं जो प्रतिमाओं को ही देवता या परमेश्वर मान लेते होंगे। मूर्ति खंडित हो जाने पर उसे जल प्रवाह कर देते हैं और उसके स्थान पर नयी प्रतिमा स्थापित करते हैं। नवरात्रि में देवी की, भाद्रपद में गणेश की प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं और धूमधाम के साथ किसी जलाशय में विसर्जित कर दी जाती हैं। यदि उन प्रतीकों को ही भगवान या देवता माना जाता तो उन्हें इस प्रकार प्रवाहित करने की धृष्टता करने की बात कोई सोच नहीं सकता था। हर कोई जानता है कि प्रतीक प्रतीक ही हैं, उनके माध्यम से भावनाओं के उभारने का प्रयोजन सिद्ध किया जाता है। वेद, कुरान, गीता, बाइबिल, जेन्दावस्ता, गुरु ग्रंथ साहिब आदि ग्रंथों के प्रति हर धर्म में श्रद्धा सम्मान भरी अभिव्यक्ति होती है। यह छपे कागजों का नहीं, उनके ग्रंथों में लिखे विचारों का ही सम्मान है। भारतीय संस्कृति में प्रतीक पूजा को इसी दृष्टि से स्थान दिया गया है। उसमें न तो उपहास की कोई बात है और न जड़ पूजा पर आक्षेप करने की। यह उत्कृष्ट चिंतन को दिशा देने की सरल, सुबोध एवं सर्वोपयोगी प्रक्रिया है।

भारतीय तत्ववेत्ताओं का प्रतीकवाद की स्थापना में यही प्रयोजन रहा है कि ब्राह्मी चेतना में सन्निहित मानवी गरिमा को समुन्नत करने वाली सत्प्रवृत्तियों की महत्ता मनुष्य को समझायी जाय और उसके प्रति असीम श्रद्धा रखने के लिए कहा जाय। देव प्रतिमाएँ भावात्मक उत्कृष्टता की प्रतीक हैं। देवत्व की परिधि में जो भी गुण, कर्म, स्वभाव आते हैं, उन सभी को आकृतियाँ देकर कल्पनात्मक रहस्यवाद का परिचय दिया गया है। महामनीषियों के इस उद्देश्य को समझा जा सके तो ही हम देव मान्यता और प्रतीक पूजन का समुचित लाभ उठा सकते हैं।

प्रतीकवाद या देववाद का एक पक्ष है– दिव्य भावनाओं को अलंकारिक आकृतियाँ देकर उनके प्रति जन साधारण में अगाध आस्था उत्पन्न करना, उनकी स्थापना अंतःकरण में करना और व्यवहार में उतारने की चेष्टा को प्रदीप्त करना–देव आराधना के लिए किये जाने वाले उपचारों का उद्देश्य है। प्रतीक उपासना से प्रेरणा पाकर मनुष्य दिव्य गुण सम्पन्न बन सके, ऋषिगणों का यही उददेय इस पुण्य प्रयोजन के पीछे रहा है।

आध्यात्मिक प्रतीकों का रहस्य

धार्मिक साहित्य में अनेक बातें चिह्नों अथवा संकेतों द्वारा प्रकट की जाती हैं। उदाहरणार्थ भगवान विष्णु के चार हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म बतलाये गये हैं। इसका अर्थ यह समझना कि भगवान वास्तव में इन स्थूल पदार्थों को लिये रहते हैं ठीक नहीं। वरन् ये वस्तुएँ उनकी चार प्रकार की शक्तियों के प्रतीक हैं। इनके द्वारा अनेक बड़ी-बड़ी बातों को अति संक्षेप में कहा जा सकता है और साधकों को निराकार शक्ति की अपेक्षा साकार वस्तुओं का ध्यान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने में भी सुगमता रहती है। यह संकेत अथवा प्रतीक शास्त्र बहुत बड़ा है और आर्य जाति के मूल प्रतीक ॐ की व्याख्या ही इतनी विस्तृत है कि उससे एक विशाल ग्रंथ भर जाये। इसी प्रकार गणेश जी की सूँड़ और चूहे की सवारी, देवी की दस भुजाएँ और सिंह की सवारी, शिवजी का त्रिशूल सर्पों की माला और बैल की सवारी आदि सैकड़ों प्रतीक हिन्दू धर्म ग्रंथों में पाये जाते हैं जिनमें बहुत सा धार्मिक और आध्यात्मिक ज्ञान भरा हुआ है। इसका प्रकार के गूढ़ प्रतीकों की व्याख्या करने का प्रयत्न अनेक विद्वानों ने किया है और उससे हमारी बहुत कुछ ज्ञान-वुद्धि होती है। इस प्रकार की व्याख्या कुछ थियोसोफी (ब्रह्म विद्या) समाज के कुछ आत्म ज्ञानियों ने की है। इन विद्वानों के कथनानुसार संसार की आध्यात्मिक व्यवस्था करने वाला एक गुप्त ऋषि संघ है, जिसका आश्रम साधारण लोगों के लिए अगम्य स्थान में है। उसमें पाये जाने वाले एक ग्रंथ में से कुछ प्रतीकों का वर्णन इस प्रकार है।

इस ग्रंथ में जिसका नाम "ज्ञान" है पहले पृष्ठ में एक श्वेत वर्तुल या घेरा दिया हुआ है, यह परमात्मा की निराकार (अव्यक्त) अवस्था का सूचक है। दूसरे पृष्ठ में श्वेत-शक्र के मध्य में एक बिन्दु है जो व्यक्त ईश्वर (महेश) का सूचक है। तीसरे पृष्ठ में यह मध्य बिन्दु रेखा के आकार का हो जाता है जिससे उस चक्र के दो समान भाग हो जाते हैं, इससे पुरुष और प्रकृति की भिन्नता का और द्वितीय ईश्वर (विष्णु) का बोध होता है। इसे सदैव द्वैत भाव युक्त कहते हैं। चौथे पृष्ठ में इस रेखा पर दूसरी खड़ी रेखा लंब रूप में उसे काटती है जिससे वह चार बराबर भागों में बँट जाता है। इससे तीसरे ईश्वर (ब्रह्म) की निश्चेष्ट अवस्था का बोध होता है। आगे के पृष्ठ में परिधि (वृत्त) का लोप हो जाता है और केवल एक दूसरे को समकोण पर काटती हुई दोनों रेखाएँ ही रह जाती है। यही हिन्दुओं का "स्वास्तिक" और ईसाइयों का "क्रास" चिह्न है। यह "ब्रह्मा" की उस अवस्था का द्योतक है जब वह सृष्टि रचना के लिए और अपने जगत की प्रकृति में अवतीर्ण होने के लिए तैयार हो जाता है। यह चिह्न दुनिया के हर एक देश में और हर एक धर्म के सम्बन्ध में पाया जाता है।

जिस "ज्ञान ग्रंथ" में उपर्युक्त संकेत दिये हैं, उसको कई व्यक्ति "महात्माओं" के आश्रम में जाकर देख चुके हैं। उसमें ऐसी ओजस् शक्ति भरी है कि उसका एक पन्ना हाथ में लेते ही एक विचित्र प्रभाव पड़ता है। लेने वाले की दृष्टि में, उस पन्ने से जिस बात का संकेत होता है, उस बात का चित्र सा खिंच जाता है और जिन वाक्यों में उसका वर्णन होता है वे सुनाई देने लगते हैं। इस अनुभव को शब्दों द्वारा प्रकट कर सकना बड़ा कठिन है। यह ग्रथ जिसे लोगों ने देखा है मूल ग्रंथ नहीं है, वरन् उसकी नकल है जो गुप्त विद्या सम्बन्धी अजायबघर में रखा है। मूल ग्रंथ तो शम्बाला या शम्बल देश में सिद्ध-संघ के अधिष्ठाता के अधिकार में है और संसार का सबसे पुराना ग्रंथ है जो सृष्टि के आदि में ही बना था। महात्माओं के पास वाली नकल भी लाखों वर्ष पुरानी है।

दूसरा प्रसिद्ध संकेत "पक्षिराज" अथवा गरुड़ का है। वह ईश्वर के अपने जगत पर मँडराने का, जल रूप में जगत पर छा जाने का, अथवा विकासक्रम से नीची अवस्था में प्रकट होने का बोध कराता है। पक्षिराज के पंखों में विश्राम करने का अर्थ इस प्रकार का ध्यान करना है कि जिससे ध्यान करने वाला 'ब्रह्म' में लीन हो जावें।

अब से आठ लाख वर्ष पूर्व 'एटलान्टिस' नामक महाद्वीप था, जिसका अधिकांश भाग उस स्थान में था जहाँ आजकल अटलांटिक महासागर लहरें मार रहा है। उसके "गोल्डिन गेट" नामक शहर के सबसे बड़े मंदिर की सबसे भीतरी वेदी तक पर सोने की संदूक रखी रहती थी जिसका आकार एक बहुत बड़े हृदय की तरह था। उसके खोलने की गुप्त रीति केवल बड़े पुजारी को मालूम थी और उसे संसार का हृदय कहा जाता था। जितनी गुप्त रहस्य क्रियाएँ उन लोगों को मालूम थीं उन सबकी स्रोत वही संदूक थी। उसमें वे अपनी सबसे अधिक पवित्र वस्तुएँ रखते थे और धार्मिक चिह्नों का सम्बन्ध भी उसी से था। वे जानते थे कि प्रत्येक परमाणु हृदय के समान धड़कता है और समझते थे कि सूर्य में भी इसी प्रकार की गति हुआ करती है। उनके ग्रंथों में कहीं-कहीं ऐसी बातें मिलती थीं जिनसे विदित होता है कि वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भौतिक विद्या (विज्ञान) का हम लोगों से अधिक ज्ञान रखते थे। पर वे उसे पदार्थ विद्या (साइंस) की दृष्टि से न देखकर कवि की दृष्टि से देखते थे। उदाहरणार्थ वे समझते थे कि पृथ्वी साँस लेती और चलती है। आधुनिक विज्ञान वेत्ताओं ने भी हाल ही में यह पता लगाया है कि पृथ्वी धरातल पर हर रोज नियमित रूप से परिवर्तन हुआ करता है और एक प्रकार से उसे साँस लेना ही कहा जा सकता है।

दूसरा अर्थ युक्त चिह्न कमल का है। इससे सूर्य मंडल या सौरलोक का उसके ईश्वर के साथ का सम्बन्ध सूचित होता है। इस प्रकार की तुलना सृष्टि की कुछ यथार्थ बातों के आधार पर की गई है। सात ग्रहों के अधिपति वास्तव में बड़े विशाल व्यक्ति हैं तथापि वे इसके साथ-साथ सूर्य मंडल के ईश्वर की मूर्ति किम्बा उसके शरीर के चक्र भी हैं। अब इन विशाल ग्रहाधिपतियों में से प्रत्येक में नियमित समय पर कुछ विकार या गति उत्पन्न हुआ करती है। उसकी तुलना भी हृदय के धड़कने या साँस के लेने और छोड़ने से हो सकती है।

ऊँचे लोकों में प्रत्येक पदार्थ ऐसी अवस्था में है जिसको हम यहाँ प्रकाशमान कह सकते हैं। एक विशेष लोक के बाद प्रत्येक वस्तु अग्नियुक्त है। पर वह अग्नि ऐसी नहीं होती जैसी कि हमको भूर्लोक (पृथ्वी मंडल) पर अनुभव में आती है। जिसको हम यहाँ पर अग्नि कहते हैं वह जलते हुए या चमकते हुये पदार्थ के आधार बिना नहीं रह सकती। हमारी यह अग्नि उस ऊँचे लोकों के अग्नि त्तव का आभास या प्रतिबिम्ब है। हमको उस अग्नि त्तव को जानने के लिए एक ऐसी अग्नि का विचार करना चाहिये जो जलती नहीं किन्तु जल के समान द्रव रूप में है। यह बात प्रथम पारसी धर्म के मूल आचार्य "जरथ्रुस्त" को मालूम थी। वे उस अग्नि का उपयोग करते थे जो उनकी वेदी में बिना ईंधन के जलती थी। वह एक पवित्र अग्नि थी जो ईश्वरीय जीवन का संकेत करती थी।

इस दृष्टि से ईश्वर को प्राप्त करने का अग्नि एक संकेत या प्रतीक है। पुराने पारसी लोग इस बात को अच्छी तरह जानते थे और अपनी इतनी आध्यात्मिक उन्नति करते थे कि उन्हें अग्नि के साथ एकत्व प्राप्त हो जाता था और उससे ईश्वर प्राप्ति होती थी। यह कार्य एक प्रकार के देवों की सहायता से संभव हो पाता था। परन्तु वर्तमान समय में हम लोगों में जड़ता की इतनी अधिकता है कि इस प्रकार के कार्य की योग्यता बहुत कम लोगों में है। प्रथम जरथुश्त के बहुत से ऐसे अनुयायी थे जो इस मार्ग को ग्रहण कर सके। वर्तमान समय में यदि हम इसके लिये प्रयत्न करें तो कदाचित् हमारे नीचे के कोष (अन्नमय) नष्ट हो जायें। परन्तु भविष्य में नई जातियों अथवा दूसरे ग्रहों में जन्म लेने पर हम इस कार्य को साध सकने में समर्थ हो सकेंगे।

विश्व कल्याण का प्रतीक स्वस्तिक

'स्वस्तिक' वैदिक-संस्कृति का एक अत्यन्त महत्वशाली प्रतीक है। इसका अर्थ चिरन्तन सत्य, शाश्वत शांति और अनन्त सौंदर्य समझा जाता है। इसे धारण करने में आसुरी शक्ति सर्वथा असमर्थ है। सत्य और शांति का कोई सन्देश तो कोई भाग्यशाली ही दिया करता है। यह गौरव सदा से भारत को ही प्राप्त है। 'स्वस्ति' का उल्लेख सबसे पहले वेदों में ही मिलता है। सत्य, शिव और सुन्दर के रंगमंच पर अवस्थित विवेकी आर्य ही सभ्यता के आदिकाल में कहने का साहस कर सकता था :-

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु,
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं
नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यामा।।

(अथर्व. १/३१/४)

"हमारा माता के लिये कल्याण हो। पिता के लिये कल्याण हो। हमारे गोधन का मंगल हो विश्व के समस्त प्राणियों का मंगल हो। हमारा यह सम्पूर्ण विश्व उत्तम धन और उत्तम ज्ञान से सम्पन्न हो। हम लोग चिरकाल तक प्रतिदिन सूर्य का दर्शन करते रहें। हम दीर्घजीवी हों।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आर्यों ने ऐसे ही स्वस्ति वचनों के बल पर समस्त विश्व के लिये सुख और शान्ति के साम्राज्य स्थापन की घोषणा पर जन-कल्याण की सिद्धि की थी। स्वास्तिक आर्यों का आदि मांगलिक प्रतीक है। स्वास्तिक आयु, प्रकाश, सूर्य और आकाश का मूर्त स्वरूप है। जैन, बौद्ध तथा अन्य भारतीय धर्मग्रन्थों में भी स्वस्तिक के महत्व पर बड़ा प्रकाश डाला गया है। उनमें स्वस्तिक के विभिन्न आकार-प्रकार तथा रूपरेखा की जानकारी मिलती है।

'स्वस्तिक' शब्द की ऐतिहासिकता के अध्ययन से पता चलता है कि स्वास्तिक हठयोग का एक आसन है।' यह एक प्रकार के यन्त्र का नाम है जो शरीर में गड़े शल्य आदि को बाहर निकाल देता है। चतुष्पथ अथवा 'चौराहा' के लिए भी इसका प्रयोग होता है। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार यह एक मांगलिक चिह्न का नाम है, जो बहुत शुभ माना जाता है और गणेश पूजन के पहले मांगलिक द्रव्यों से विशेष उत्सवों और शुभ अवसरों पर अंकित किया जाता है। भगवान श्री रामचन्द्र और श्रीकृष्ण के चरण में इस प्रकार का चिह्न था। जैनी लोग 'जिन देवता' के चौबीस लक्षणों में से एक इसे भी मानते हैं। हिन्दू-संस्कृति से तो इसका सम्बन्ध सृष्टि के आदि काल से चला आता है। विश्व की समस्त जातियों में हिन्दू जाति ही प्रतीक उपासना को सर्वाधिक महत्व देती है। जिस विषय को समझने में मस्तिष्क और जिव्हा की सामर्थ्य समाप्त हो जाती है उसके बोध के लिए प्रतीक का हाथ पकड़ा जाता है।

स्वस्तिक की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में हम इतना ही कह सकते हैं कि यह उतना ही पुराना है जितने पुराने वेद हैं। वेदों में प्रकाश, कल्याण, दीर्घायु के अर्थ में अनेक स्थलों पर 'स्वस्ति' का प्रयोग मिलता है। कुछ विचारकों का मत है कि कहीं-कहीं इसे भ्रमणशील चक्र के आकार में इस लिये दिखलाया गया है कि उससे सूर्य के प्रतीक होने का बोध होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि स्वस्तिक उन दो अरणियों (काठ के डण्डों) का प्रतीक है, जिनसे यज्ञ के लिए अग्नि पैदा की जाती है। इसका तात्पर्य यह कि स्वस्तिक प्रकाश का प्रतीक है। दक्षिण भारत में बहुत प्राचीन काल के बने कुछ मिट्टी के बर्तन मिले हैं जिन पर स्वस्तिक अंकित है। गौतम बुद्ध से भी पहले इसका प्रचार पाया गया है। प्राचीन शास्त्रों से यह भली प्रकार सिद्ध किया जा चुका है हिन्दू जाति ने ही संसार के अनेक भागों में अपने उपनिवेश बनाकर इस प्रतीक का विश्वव्यापी प्रचार किया था। मोहन जोदड़ो की खुदाई में मुद्राओं और पहियों पर स्वस्तिक अंकित मिलता है। पारसियों के एक प्राचीन मन्दिर के द्वार पर सूर्य, चन्द्र और स्वस्तिक के चिह्न बने हैं। ईस्वी सन् से चार सौ वर्ष पहले कुछ सिक्के भी ऐसे मिले हैं कि जिन पर स्वस्तिक का चिह्न है। इससे प्रकट होता है कि अशोक कालीन भारत में स्वस्तिक का पर्याप्त महत्व था।

वैदिक काल से ही स्वस्तिक की परम्परा अक्षुण्ण चली आई थी, और महाकाव्य काल तक स्वस्तिक का अर्थ एक प्रतीक ही नहीं रहा वरन् और भी अनेक वस्तुओं का यही नामकरण हो गया। रामायण में एक ऐसे जहाज का वर्णन मिलता है जिस पर स्वस्तिक का चिह्न अंकित था। महाभारत के सभा पर्व में जरासन्ध वध का वर्णन करते हुए एक ऐसे नाग का नाम मिलता है जिसका नाम स्वस्तिक था। कुछ समय पहले हस्तलिखित पुस्तकों की समाप्ति स्वस्तिक चिह्न अंकित कर सूचित की जाती थी। बौद्धों और जैनियों ने भी इस चिह्न को बड़ा महत्व दिया है। बौद्ध और जैन लेखों से संबंधित प्राचीन गुफाओं में स्वस्तिक का चित्रण मिलता है। अशोक के शिलालेखों में स्वस्तिक चिह्न का बाहुल्य है। जैनियों के समस्त कर्म-विज्ञान का आधार स्वस्तिक है। जैन दर्शन के अनुसार एक-दूसरे को परस्पर काटने वाली स्वस्तिक रेखाएँ आत्मा और पुद्गल (पुरुष और प्रकृति) की प्रतीक हैं। दोनों रेखाओं के एक-दूसरे को परस्पर काटने पर चार भाग हो जाते हैं जो प्राकृत जगत के चार क्रम—पूर्ववर्ती सर्ग, वनस्पति सर्ग, मनुष्य सर्ग और देव सर्ग— के द्योतक हैं। मंदिरों में पूजा करते समय जैन स्वस्तिक चिह्न का उपयोग करते हैं। आशीर्वाद अथवा स्वस्ति-दान में भी वे स्वस्तिक चिह्न से काम लेते हैं। बौद्ध धर्म में भी यह चिह्न अत्यन्त पूज्य माना जाता है। बुद्ध भगवान के चरणों के लक्षणों में स्वस्तिक की भी गिनती की जाती है। अमरावती के स्तूप में जो बौद्ध पद पर अंकित

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, उसमें स्वस्तिक बना हुआ है। जापान, चीन आदि देशों में बुद्ध भगवान के चरणों की पूजा होने से वहाँ भी स्वस्तिक का प्रचार हो गया। बुद्ध धर्मानुयायी स्वस्तिक को बुद्ध भगवान के वक्ष का भी एक शुभ लक्षण मानते हैं। निस्संदेह भारत ने अपने उपनिवेशों और विदेशों में स्वस्तिक का प्रचार किया। अनेक देशों के सिक्कों में स्वस्तिक का चिह्न देखने को मिलता है।

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में 'मावरी' जाति के लोग स्वस्तिक को अपने जीवन के शुभ प्रतीकों में से एक मानते हैं। जापान स्वस्तिक को 'मनजी' के नाम से पुकारते हैं और बुद्ध की प्रतिमाओं में यह विशेष रूप से बनाया जाता है। जापान के परम पवित्र पहाड़ फ्यूजी यामा की चोटी पर जब यात्री पहुँचता है, तब उसे ऐसे घड़ों का जल पीने को दिया जाता है जिन पर स्वस्तिक के चिह्न बने रहते हैं। यह जल दीर्घायु देने वाला माना जाता है। कोरिया में स्वस्तिक तामझाम और पालकी आदि में चित्रित दीख पड़ता है। चीन में स्वस्तिक असंख्यता का बोधक है, अधिकता का प्रतीक है। चीन निवासी भी इसे हिन्दुओं की तरह कल्याण, दीर्घायु और प्रकाश का प्रतीक मानते हैं। हजार वर्ष पहले भी स्वस्तिक का चिह्न बनाते थे और सूर्य का प्रतीक मानकर उसकी उपासना करते थे। तिब्बत के लोग अपने शरीर में स्वस्तिक के आकार का गोदना गोदवाते हैं। फारस में पुरोहितों के चोगों पर स्वस्तिक का चिह्न बनाया जाता है। अल्जीरिया औरि मिस्र में भी इसका काफी प्रचार है। मिस्र वालों का विश्वास है कि स्वस्तिक उनके देश में यूनान से आया। यूनान में मिट्टी, पीतल और सोने के बर्तनों पर स्वस्तिक का चिह्न बनाया था। साइप्रस द्वीप में देवताओं की मूर्ति पर स्वस्तिक का चिह्न मिलता है। इटली में स्वस्तिक का प्रचार है और अन्य योरोपीय देशों में वहीं से इसका प्रचार हुआ है। पुराने ईसाइयों में यह विशेष और अत्यन्त पवित्र प्रतीक के रूप में प्रचलित था। स्काटलैंड के एवरडीन कस्बे में चालीस अक्षरों का एक शिलालेख मिला है, जिसके मध्य भाग में स्वस्तिक बना हुआ है। इस शिलालेख की लिपि पढ़ी नहीं जा सकी, जिससे उसका वास्तविक रहस्य जाना जा सकता। अमरीका में योरोपियनों के आगमन से बहुत पूर्व स्वस्तिक का प्रयोग होता था। कुछ टीलों की खुदाई में ऐसे सामान प्राप्त हुये हैं, जिन पर स्वस्तिक अंकित है। अमरीका में भगवान बुद्ध की एक प्रतिमा भी मिली है, जिस पर स्वस्तिक अंकित है।

स्वस्तिक सर्वथा स्वस्ति अथवा कल्याणकारी है। हिन्दुओं तथा विदेशी जातियों के सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक जीवन में स्वस्तिक का उपयोग दिखाई पड़ता है। समस्त संसार ने इसे एक स्वर से मांगलिक प्रतीक स्वीकार कर लिया है। ईसाइयों का क्रास स्वस्तिक का ही एक रूपान्तर है। ॐ शब्द की बनावट और वैज्ञानिक आकार की समीक्षा करने पर उसमें और स्वस्तिक में पूरा सादृश्य दिखलाई पड़ता है। ॐ अखण्ड चिदानन्द की सत्ता का प्रतीक है, भगवान का अक्षर-रूप है। इसलिये हम कह सकते हैं कि स्वस्तिक ही ॐ रूप में परमात्मा का प्रतीक है। परम सत्य, शान्ति और स्वस्ति का आश्रय है। इतिहास की पुनरावृत्ति तो होती ही रहती है। इसलिये निस्संकोच कहा जा सकता है कि विश्व एक दिन स्वस्तिक में समाविष्ट आदर्शों को अपना सकता है। उसकी सबसे बड़ी चाह है सत्य की प्राप्ति। उसकी सबसे बड़ी भूख है शान्ति की अनुभूति। उसका लक्ष्य है आत्मराज अथवा स्वराज्य। वस्तुतः स्वस्तिक विश्व-कल्याण का दूत है।

धर्म प्राण भारतवर्ष के धार्मिक इतिवृत्त में जिस भांति वेदान्त ज्ञान को प्रधानता दी गई है और जिसकी गम्भीरता तथा सत्यता को प्रकारान्तर से समस्त भूमण्डल के तत्वज्ञानियों ने उन्मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है उसी भाँति एतद्देशीय धार्मिक चिह्नों में 'स्वस्तिक' की प्राचीनता, समीचीनता और उपादेयता आदि सर्वतोभावेन अपरिहार्य है और इसका पृथ्वी के सुदूर देशों तक में धार्मिक कार्यों से लेकर राष्ट्रीय कार्यों तक के लिये मंगल भावना की पवित्रता के नाम पर विविध रूप से प्रयोग अथवा व्यवहार होता हुआ देखा जाता है। जीवन विज्ञान का प्रकृत रूप से प्रबोध कराने वाले वेदादि ग्रन्थों में जहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चक्र रूपी धार्मिक चिह्न का उल्लेख हुआ है, वहाँ स्वस्तिक का पूर्ण भावार्थ उससे हम लेते हैं। स्वस्तिक 'ॐ' अथवा '०' शून्य का ही दूसरा स्वरूप है। शून्य से उत्पत्ति होकर शून्य में ही सृष्टि का लय होता है। (Everything enters to zero) की थ्यूरी इसी मंगलिक चिह्न 'स्वस्तिक' में सन्निहित है। 'ॐ' के और 'शून्य' के इस दूसरे स्वरूप को केवल पवित्र और कल्याणकारी ही नहीं माना गया अपितु समग्र संसार का प्राकृतिक सुख और शांति इसी एक चिह्न में केन्द्रित है। उनकी सत्ता इसी स्वस्तिक में समाई है। ऐसा आर्य ग्रंथों और सद्गुरु के अनमोल, सुनहरी वचनों पर से प्रमाणित है।

विश्व की प्रत्येक सभ्य और प्राचीन जाति के अपने-अपने अलग धार्मिक या राष्ट्रीय चिह्न मिलते हैं। इन पवित्र धार्मिक चिह्नों (religious inscriptions) और संसार प्रसिद्ध भाषाओं की लिपियों scripts के इतिहास को उलटने से हम मानव मस्तिष्क की अनुसन्धानमयी सूझों और विकासोन्मुख बुद्धि के अपूर्व चमत्कारों को समझने का बल प्राप्त करते हैं। पृथ्वी की अन्य सभ्य जातियों प्रश्न गौण रखकर तब की आर्य और अब की हिंदू जाति के प्रचलित धार्मिक चिह्नों और विविध जन्मों पर ही हम विवेक की दृष्टि से सोचने बैठें तो यह विषय एक अबूझ पहेली जैसा ही जान पड़ेगा। क्योंकि इन चिह्नों का देश में प्रचार और व्यवहार जारी रहने पर भी काल और अवस्था के भेदानुसार इनका महत्व और यथार्थता जन साधारण के ज्ञान के क्षेत्र से कोसों दूर जा छिपे हैं। इस विषय में विरोधियों की तर्क और युक्तियों को विफल सिद्ध करने वाली कोई पुस्तक भी सुप्राय नहीं है, जिसमें इनका सांगोपांग वर्णन दिया गया हो। चिह्न और लिपिशास्त्र के विद्वानों की प्रतिभा का सुन्दर उपयोग होने के लिये यह क्षेत्र आज भी खाली पड़ा है।

वेदादि ग्रन्थों के अतिरिक्त पुराण ग्रन्थों को टटोलने पर गणेश पुराण में स्वस्तिक का कई स्थलों पर स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है। गणेश पुराण के मतानुसार भी स्वस्तिक 'ॐ' का ही प्रतिरूप सिद्ध है। कल्याण, शुभ, लाभ और मंगल का जो भाव है, उसी का नाम स्वस्तिक है। गणेश पुराण में उल्लेख है कि स्वस्तिक, गणपति, गजानन का स्वरूप है। मांगलिक कार्यों में इसकी प्रतिष्ठा अनिवार्यतः आवश्यक है। अतः इसे नियमानुसार प्रतिष्ठित न किया जाय और आरम्भ में न बनाया जाय तो कार्य की सिद्धि नहीं होती, ऐसा भाव एतद्देशीय हिन्दू जाति में स्मरणातीत काल से ही दृढ़ीभूत अवस्था में पाया जा रहा है। समुद्र मंथन की जग प्रसिद्ध दैवी घटना के समय भयंकर कालकूट की उत्पत्ति होने पर समग्र पृथ्वी के जीव कण्ठ गत प्राण हो चुके थे। तब जगत जननी महामाया पार्वती ने संसार को इस महान दुख से निष्कृति दिलाने के निमित्त अपने शरणायन्न देव और दनुजों को उपदेश दिया कि हे देव ! और दैत्य !! तुमने 'स्वस्तिक' रूपी गणाध्यक्ष गणपति की पूजार्चा नहीं की, इसी कारण पृथ्वी में यह संहार का दुर्दृश्य उपस्थित हुआ है। तब दैव और दनुजों ने 'स्वस्तिक' प्रथम गणपति का स्वरूप बनाकर लिखा और तब महामाया पार्वती के स्नेहानुरोध तथा प्रार्थना करने पर त्रिशूलपाणि, त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर महादेव क्षण में कालकूट का पान कर गये। तभी से मृत्युंजय ! भगवान शंकर का कालकूट नाम पड़ा। कहने का तात्पर्य यह है कि समुद्र मन्थन की घटना के पीछे भी 'स्वस्तिक' का अपना सुनहरा इतिहास छिपा है। संसार के उस महान दैवी संकट में स्वस्तिक की उपयोगिता दुख निवारणार्थ किस रूप में कारणीभूत हुये, यह इस घटना पर से स्पष्ट प्रगट है।

धन लाभ, विजय प्राप्ति,सुख और कीर्ति की उपलब्धि तथा परलौकिक सुगति के प्रीत्यर्थ भी भारत की विभिन्न जातियों में लोग स्वस्तिक की मर्यादा मानने और पालने के अभ्यासी हैं। भारतवर्षीय वणिक समाज में स्वस्तिक का स्थान और प्रयोजनीयता और भी महत्वपूर्ण हैं। उनके गृह, द्वार तिजोरियाँ, बही-खाते आदि लक्ष्मी और सिद्धि की प्रसन्नता प्राप्त करने के उद्देश्य से सिन्दूर रंजित स्वस्तिक द्वारा सदैव अभिसिक्त रहते हैं। दीपोत्सव पर लक्ष्मी पूजा में स्वस्तिक को जिस भांति प्रधानता दी जाती है वह किसी से अप्रगट नहीं है। इस प्रकार भारतीयों की धार्मिक दृष्टि में 'स्वस्तिक' कल्याण का प्रदाता, मोक्ष का दाता और अष्ट सिद्धि नवनिद्धि की प्रकृत वृष्टि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने वाला सिद्ध है। दूसरे शब्दों में "स्वस्तिक" स्वमेव स्वस्ति और मंगल का स्परूप है। जीवन के द्वन्द्व-द्वेष, कलह, विघ्न, कठिनाइयाँ इससे कट जाती हैं। उनके अग्रिम परिहार का एकमात्र धार्मिक उपाय, शुभ और मांगलिक कार्यों में स्वस्तिक का विधिवत प्रयोग होना है। पहले की आर्य और अब की हिन्दू जाति सदैव काल से पुण्यानुष्ठान आदि में स्वस्तिक को मान्यता देती आई है, आज भी दे रही है और भविष्यत् में भी इसी भाँति प्रतिष्ठा और मान्य देती जायेगी।

चर्खा जिसे मैं अपनी भाषा में चक्र भगवान ही कहूँगा, हिन्दुओं का एक प्राचीनतम अस्त्र है। यद्यपि विश्ववंद्य महात्मा गांधी के सदुपदेश से हिंदू जाति का ध्यान अब पुनः चर्खे के प्रति आकृष्ट हुआ है परन्तु प्राचीन काल में यह चर्खा इस देश की राष्ट्रीय ही नहीं अपितु महान धार्मिक निधि के रूप में परिगणित होता था। सुप्रसिद्ध ग्रन्थ वृतराज में उल्लेख आया है कि इस देश की स्त्रियों के पक्ष में सिंही की संक्रान्त के दिन चर्खे का वृत रखना और पुरोहित से चर्खे की कथा सुनना विधेय था। हिन्दू स्त्रियाँ आज के दिन चर्खे को धो-पोंछकर उसमें सिन्दूर रंजित स्वस्तिक के चिह्न अंकित करती थीं। यह वृत और त्यौहार काल और अवस्था के भेदानुसार अब हिन्दू समाज से लुप्त प्रायः हो गया है। अब कहीं भी हिन्दू रमणियाँ चर्खे का वृत देखकर उसमें स्वस्तिक की प्रतिष्ठा करती हुई नहीं देखी जाती। अस्तु ।

इस अवनीतल पर भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहाँ हिन्दुओं के मन्दिर, जैनियों के देवालय, चैत्यालय, बौद्धों के उपासना गृह, यहूदियों के सिनोनोगोंग, पारसियों के अग्नि मन्दिर, मुसलमानों की मस्जिदें और ईसाईयों के गिरजे एक साथ मिलते हैं। यदि विवेकपूर्वक सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो आर्यों के इस पवित्रतम धार्मिक चिह्न स्वस्तिक किसी न किसी रूप में इन मन्दिरों और इबादतगाहों के लिए, धर्मकार्यों के लिये सबने ही पारसी लोग आतिशपरस्त अर्थात् कहलाते हैं इनमें धारित्री के क्रोड़ पर धार्मिक चिह्न लिखने की आर्यों जैसी प्रचलित है।

स्वस्तिक सार्वभौम संस्कृति का प्रतीक चिह्न

ऋग्वेद की एक ऋचा में स्वस्तिक को सूर्य का प्रतीक माना गया है और उसकी चार भुजाओं को चार दिशाओं की उपमा दी गई है। सूर्य को समस्त देव शक्तियों का केन्द्र और भूतल तथा अन्तरिक्ष में जीवनदाता माना गया है। स्वस्तिक को सूर्य की प्रतिमा मान कर इन्हीं विशेषताओं के प्रति श्रद्धाभिव्यक्ति जाग्रत करने का उपक्रम किया जाता है।

पुराणों में स्वस्तिक को विष्णु का सुदर्शन चक्र माना गया है। उसमें शक्ति, प्रगति, प्रेरणा और शोभा का समन्वय है। इन्हीं चारों के समन्वय से यह जीवन और संसार समृद्ध बनता है। विष्णु की चार भुजाओं की संगति भी कहीं-कहीं सुदर्शन चक्र के साथ बिठाई गई है।

गणेश की प्रतिमा की स्वस्तिक चिह्न के साथ संगति बैठ जाती है। गणपति की सूँड़, हाथ, पैर, सिर आदि को इस तरह चित्रित किया जा सकता है जिसमें स्वस्तिक की चार भुजाओं का ठीक तरह समन्वय हो जाय। "ॐ" को स्वस्तिक रूप में लिखा जा सकता है। लिपि विज्ञान के आरम्भिक काल में गोलाई के अक्षर नहीं रेखा आधार पर उनकी रचना हुई थी। ॐ को लिपिबद्ध करने के आरम्भिक प्रयास में उसका स्वरूप स्वस्तिक जैसा बना था। ईश्वर के नामों में सर्वोपरि मान्यता 'ॐ' की है। उसको उच्चारण से जब लिपि लेखन में उतारा गया तो सहज ही उसकी आकृति स्वस्तिक जैसी बन गई।

आर्य, धर्म और उसकी शाखा प्रशाखाओं में स्वस्तिक का समान रूप से सम्मान है। बौद्ध, जैन, सिख धर्मों में उसकी समान मान्यता है। योरोप और अमेरिका की प्राचीन सभ्यता में स्वस्तिक का प्रयोग होते रहने के प्रमाण मिलते हैं। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैन्ड के मावरी आदिवासी स्वस्तिक को अभी भी मंगल प्रतीक की तरह प्रयुक्त करते हैं। साइप्रस की खुदाई में जो मूर्तियाँ मिली हैं उन पर स्वस्तिक अंकित है। ऐसे ही प्रमाण मिस्र, यूनान आदि की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

खुदाई में उपलब्ध हुए हैं। जापानी लोग स्वस्तिक को 'मन जी' कहते हैं और धर्म प्रतीकों में उसका समावेश करते हैं।

यास्क ने 'स्वस्तिक' को अविनाशी ब्रह्म की संज्ञा दी है। अमर कोश में उसे पुण्य, मंगल, क्षेम एवं आशीर्वाद के अर्थ में लिया है। निरुक्ति है– "स्वस्ति क्षेमं कायति कथयति इति स्वस्तिकः। स्वस्तिक अर्थात् –कुशल एवं कल्याण, संस्कृत में 'सु–अस्' धातु से स्वस्तिक शब्द बनता है। सु अर्थात् सुन्दर श्रेयस्कर अस् अर्थात् उपस्थिति अस्तिव।

स्वस्ति वाचन के प्रथम मन्त्र में लगता है– स्वस्तिक का ही निरूपण हुआ है। उसकी चार भुजाओं को ईश्वर की चार दिव्य सत्ताओं का प्रतीक माना गया है। 'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध श्रवाः" में कीर्तिवान इन्द्र को "स्वस्ति नः पूषा विश्व वेदाः सर्वज्ञ पूषा को – 'स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्ट नेमिः" में अरिष्ट निवारक तार्क्ष्य को और "स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु" में सर्वतोमुखी समृद्धि दाता बृहस्पति को कल्याण में योगदान देने के लिए आमन्त्रित किया गया है।

सिद्धान्त सार ग्रन्थ में उसे विश्व ब्रह्माण्ड का प्रतीक चित्र माना है। उसके मध्यभाग को विष्णु की कमल नाभि और रेखाओं को ब्रह्माजी के चार मुख, चार हाथ और चार वेदों के रूप में निरूपित किया गया है।

अन्य ग्रन्थों में चार युग, चार वर्ण, चार आश्रम एवं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चार प्रतिफल प्राप्त करने वाली समाज व्यवस्था एवं वैयक्तिक आस्था को जीवन्त रखने वाले संकेतों को स्वस्तिक में ओत-प्रोत बताया गया है।

हम स्वस्तिक का महत्व समझें और उसे समुचित श्रद्धा मान्यता प्रदान करते हुए अभीष्ट प्रेरणा ग्रहण करें, यही उचित है।

बौद्ध मतावलम्बी आदि काल से ही स्वस्तिक को मानते बनाते आये हैं। ईसाइयों ने उसके अधोलिखित और बिगड़े हुये स्वरूप क्रास (Cross Mark) को अपनाया है और मुसलमानों ने हमारे अपने चन्द्रमा के शास्त्रीय स्वरूप को लेकर अर्द्धचन्द्र की प्रतिष्ठा से यथार्थ में स्वस्तिक की ही प्रतिष्ठा की है।

जैन जाति की मुख्यतः दो श्रेणियाँ हैं – दिगम्बर और श्वेताम्बर तथा इन दो में से भी अन्य शाखायें प्रस्फुटित हुई हैं। इस सबों में 'स्वस्तिक' और 'ॐ' दोनों का सचराचर व्यवहार होता हुआ हम पाते हैं। इनके २४ तीर्थंकरों में से एक का यह खास चिह्न भी माना जाता है। दिगम्बर संप्रदाय वाले जैन अपनी नित्य पूजा में केशर, चन्दन द्वारा अथवा अन्य पवित्र द्रव्य की सहायता से 'स्वस्तिक' अंकित करते हैं और उसके चारों कोण तथा मध्य भाग को पाँच बिंदियाँ देकर और भी शोभायुक्त बनाते हैं। स्वस्तिक के ऊपरी भाग में 'ॐ' ही लिख दिया जाता है। स्वस्तिक से पंच परमेष्ठी और पाँच बिन्दियों से अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पुरुषों के आवाहन या प्रतिष्ठा का तात्पर्य लिया जाता है।

इसी भाँति श्वेताम्बर समाज वाले नित्य पूजा में चावल चर्चित स्वस्तिक खींचकर उसके शिरो भाग में अर्द्ध चन्द्राकर बिंदी बना उसके नीचे तीन बिंदियां अलग से जोड़ते हैं जिसका भाव यह है कि सम्यक ज्ञान, सम्यक चारित्र्य और सम्यक दर्शन को लाभ करते हुए हम मोक्ष को प्राप्त हों। समग्र जैन जगत में स्वस्तिक का महात्म्य मानने और स्वस्तिक बनाने की प्रथा चिरकाल से चली आ रही है। इसकी पवित्रता और धार्मिकता का भाव जैन मतावलम्बियों के रोम-रोम में समाया है।

समुद्र पार सुदूर देशों में जर्मनी का उदाहरण सामने है। जर्मन लोग अपने को आर्य जाति का अभिहित करते हैं। स्वस्तिक को ये लोग राष्ट्रीय पवित्र चिह्न के रूप में धारण करते और मानते हैं। एडोल्फ हिटलर का बेज, और उसकी सेनावाहिनी के सैनिकों के बेजों में यही विश्व विश्रुत चिह्न स्वस्तिक रहता है। जर्मनी क राष्ट्रीय ध्वज में भी यही स्वस्तिक है।

स्वस्तिक, शुभ विषय, मंगल द्रव्य, कल्याण आदि के भाव का बोध करता है। हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि जातियों के प्रत्येक शुभ और कल्याणकारी कार्य में स्वस्तिक का चिह्न सर्वप्रथम प्रतिष्ठित करने का आदिकाल से ही नियम है। उनका यह चिराचरित विधान है। मंगल कार्यों में स्वस्तिक, गृह, प्रांगण, द्वार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से लेकर मुहूर्त पात्रों, जन्मांगों आदि तक में सिन्दूर, हल्दी या अन्य पवित्र द्रव्य की सहायता से बनाया जाता है। इसी को "साथिये रखना" भी कहते हैं। 'ॐ' का यह रूपांतर अथवा ॐ लिखने का यह दूसरा ढंग स्वस्तिक (!) धर्म प्रेमियों को पवित्रता, भलाई और निवृत्ति की ओर खींचता है।

एक इतिहासज्ञ का कथन है कि सातवीं शताब्दी में 'स्वस्तिक' का चिह्न मवेशियों पर दाग दिया जाता था। विक्रम से २०० वर्ष पहले के बने हुए एक स्वर्ण पात्र के ऊपर भी स्वस्तिक बना हुआ पाया गया है। इस पात्र में ब्रह्मीभूत भगवान् बुद्धदेव की अस्थि रखी हुई मिली हैं। २६०० वर्ष के प्राचीन यूनानी बर्तनों पर भी 'स्वस्तिक' खचित अवस्था में पाया गया है। अत्यंत प्राचीन स्वस्तिक का चिह्न एक चर्खे पर बना हुआ मिला है जो ट्रोय के तीसरे नगर से प्राप्त हुआ है और जो प्रायः ३८०० वर्ष पुराना बताया जाता है। भारत सरकार के पुरातत्व विभाग की अन्य कई महत्वपूर्ण खोजें भी स्वस्तिक की प्राचीनता और पवित्रता के प्रमाणों पर अच्छा प्रकाश डालती हैं।

कहने का हेतु यह कि 'स्वस्तिक' में व्यष्टि और समष्टि के कल्याण का भाव ग्रथित है। स्वस्तिक विश्व के प्राणियों को कल्याण की ओर जाने का अपूर्व और अमर संदेश देता है। स्वस्तिक अनादि है, अभेद्य है, अनन्त पृथ्वियाँ, स्वस्तिक में आबद्ध हैं और स्वस्तिक उनमें अपने जुदे-जुदे स्वरूप को लिये हुए अंकित और प्रकाशित है।

ॐ और स्वस्तिक आर्य संस्कृति में ऐसे दो प्रतीक हैं, जो विश्व-ब्रह्मांड के भेदों को अपने में बहुतायत में संजोये हुए हैं। इन्हें अक्षर और आकृति कहकर टाल देना उचित नहीं। यह सत्य और संदेश के दो महान तत्वों को धारण किये हुए हैं। प्रणव यानी ओंकार यदि ब्रह्मांड उत्पत्ति संबंधी रहस्य उद्घाटित करता है, तो उस ब्रह्मांड के चराचर जीवों की स्वस्ति-कामना स्वस्तिक में सन्निहित है। इस दृष्टि से व्यावहारिक जीवन में स्वस्तिक अधिक उपयोगी और उद्देश्यपूर्ण है। यह स्वस्तिक ही है, जो व्यक्ति को लोकव्यवहार में सौमनस्य और सामंजस्य की प्रेरणा देता है। वह जीव-जीव और मनुष्य-मनुष्य के बीच विभेद की दीवार खड़ी नहीं करता, वरन् एक ही परमात्म तत्व की भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियाँ होने के कारण समान मानते हुए उनके सौभाग्य की मंगल कामना करता है। व्यक्तित्व में वह श्रेष्ठता का संदेशवाहक है। सदाचार, संयम, सेवा, सहिष्णुता, साहस, सात्विकता, श्रमशीलता, शुचिता, स्नेह, सौजन्यता जैसे मानवोचित गुण, जिनसे मनुष्य और समाज का सर्वोपरि कल्याण होता है, इन सभी का प्रेरणा स्रोत स्वस्तिक ही है। जहाँ अनुराग और प्रेम है वहाँ प्रच्छन्न रूप से इसकी ही शक्ति क्रियाशील होती है। यह शक्ति जहाँ जितनी अधिक होगी, वहाँ उसी परिमाण में देवत्व विद्यमान होगा। मांगलिक अवसरों पर दीवारों-दरवाजों, मकानों-दुकानों पर इस शुभ संकेत को अंकित करने के पीछे यही प्रयोजन होता है कि उस मुहूर्त में पवित्र शक्ति का अधिकाधिक परिमाण विद्यमान रहे और आयोजन निर्विघ्न संपन्न हो जाय, किसी प्रकार का कोई अवरोध-अड़चन न आने पाये। बच्चों के मुंडन संस्कार के समय मुण्डित मस्तक पर इसी चिह्न को बनाया जाता है, ताकि मस्तिष्क की उस सर्वथा खाली भूमि में श्रेष्ठता का आकर्षण होकर सुसंस्कारों का बीजारोपण हो सके। प्राचीन काल में इसी कारण इस आकार के आवास विनिर्मित किये जाते थे, ताकि उनमें व्याप्त शक्ति का ज्यादा से ज्यादा लाभ लिया जा सके।

इसके अतिरिक्त इसका एक मनोवैज्ञानिक पहलू भी है। शुभ सूचक होने के कारण जब भी जिस किसी की भी नजर इस पर पड़ती है, तो उसका अवचेतन इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। उसमें एक सात्विक भाव संचार हो जाता है। विवाह अवसर पर परिणय–मंडप और घर में यत्र-तत्र इसी निमित्त इसका अंकन किया जाता है। शादी के निमंत्रण पत्रों पर इसे प्रमुख स्थान प्राप्त होता है। इसके अलावा पूजा की वेदी पर सुशोभित होकर यह आकृति वातावरण की दिव्यता को और अधिक बढ़ाती है। दक्षिण भारत के द्वारों पर बनी अल्पनाओं में इन्हीं के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। कर्नाटक में 'स्वस्तिक' नाम का एक व्रत अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें बहुरंगी स्वस्तिक निर्माण कर भगवान विष्णु की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्चना की जाती है। इस प्रकार इस आकृति–निर्माण के पीछे दो ही उद्देश्य कारण भूत माने जाते हैं– प्रथम इसमें निहित देवशक्ति को आकर्षित करना और द्वितीय मन की भीतरी परतों को प्रभावित–उत्तेजित कर उन्हें अधिक सक्रिय बनाना। इसे देखते ही एक प्रकार का उत्साह उमड़ पड़ना उसके इसी मनोवैज्ञानिक प्रभाव को इंगित करता है। इसी कारण तंत्र शास्त्रों में इसे एक मांगलिक यंत्र की संज्ञा दी गई है। यंत्रों में यही एकमात्र ऐसी आकृति है, जो निर्द्वन्द्व है, अन्यथा संसार की हर एक वस्तु द्वंद्वात्मक है, उनमें से प्रत्येक में दो विपरीत सत्ताओं की उपस्थिति है। स्वयं सृष्टि भी इसका अपवाद नहीं। वह प्रकृति और पुरुष के विरोधी युग्म का परिणाम है। द्रव्यों में ऋण-धन नामक दो प्रकार के विद्युत कण मौजूद हैं। आग जलाती है, तो यह जीवनरक्षक भी है। भोजन पकाने में उसका रचनात्मक गुण काम आता है, तो मकान को भस्मीभूत करने में ध्वंसात्मक प्रकृति निमित्त बनती है। वायु सबसे बड़ी जीवनदायी है, तो तूफान उतना ही बड़ा विनाशलीला मचाने वाला, किंतु स्वस्तिक इन सबसे परे कल्याण का उद्घोषक है। उसमें मात्र शुभ-ही-शुभ की कामना है। अशुभ का रंचमात्र भी नहीं। इस दृष्टि से जीवन में उसकी उपादेयता कहीं अधिक बढ़ जाती है।

मनुष्य की वास्तविक उन्नति और संसार में शांति स्वस्तिक में छिपी अवधारणा के बिना हो ही नहीं सकती। आकृति विज्ञान की यह अनुपम देन सार्थक तभी समझी जायेगी, जब हम इसकी शिक्षा को समझ कर अंगीकार कर सकें ।

हिन्दू संस्कृति के प्रतीक

१- यज्ञोपवीत-

हिन्दू धर्म में अनेक प्रतीकों का विधान है। हमारे अनेक देवी-देवता प्रतीक ही तो हैं, मूर्ति-पूजा का आधार यह प्रतीकवाद ही है। इसी प्रकार यज्ञोपवीत का भारतीय संस्कृति में सर्वोपरि स्थान है। इसे द्विजत्व का प्रतीक माना गया है। यज्ञोपवीत धारण करने का तात्पर्य यह है कि अब यह व्यक्ति मनुष्यता की जिम्मेदारियों को स्वीकार करता है और उन्हें पूरी तरह निभा रहा है। जनेऊ वही धारण कर सकता है, जो मनुष्यता, समाज तथा ईश्वर के प्रति अपने महान् कर्त्तव्य पालन करने को तैयार है। यह कठोर कर्त्तव्यों एवं जिम्मेदारियों को जीवन भर निभाये चलने का प्रतीक है। हर पल मनुष्य को यह याद दिलाया करता है कि दायित्व को निभाने में किसी तरह की कमी न आ जाये।

यज्ञोपवीत के डोरे में भारतीय धर्माचार्यों ने ऐसा तत्त्वज्ञान जोड़ दिया है जिसको अपनाने पर मनुष्य सच्चे अर्थों में "मनुष्य बन सकता है।" स्थूल दृष्टि से देखने में यह कुछ डोरे मात्र हैं, पर सूक्ष्म दृष्टि से देखने में यह जिम्मेदारियों का हार है। दिव्य मन्त्रों से सम्पन्न सूत्रों को माध्यम बनाकर हर समय कंन्धे पर धारण किए रहकर जितना अपने उत्तरदायित्व को स्मरण रखना सुगम है, उसे बिना उसे धारण किए सुगम नहीं है।

जिन उच्च भावनाओं के साथ वेदमन्त्र के माध्यम से अग्नि और देवताओं की साक्षी में यज्ञोपवीत धारण किया जाता है, उससे मनुष्य के सुप्त मानस पर एक विशेष छाप पड़ती है। "यह सूत्र यज्ञमय एवं अत्यन्त पवित्र है। इसके धारण करने से मेरा शरीर पवित्र है। इसलिए इसे सब प्रकार की अपवित्रताओं से बचाना चाहिए। शारीरिक और मानसिक गन्दगियों से इस दैवी पवित्रता की रक्षा की जानी चाहिए।" यह भावना उस व्यक्ति के मन में उठती रहती है।

इस प्रकार मनुष्य यज्ञोपवीत धारण करने से यज्ञमय जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा करेगा और प्रभु का आशीर्वाद उसे हर समय मिलता रहेगा। यज्ञोपवीत श्रेष्ठता का एक आवरण है जिसको धारण कर लेने से मनुष्य पतन के गड्ढों से बच जाता है।

ऋण से सच्ची मुक्ति

हम तीन तार का यज्ञोपवीत पहनते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि हमारे कन्धे पर देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण का भार रखा हुआ है। इसे चुकाना आवश्यक है, यदि न चुकावेंगे तो कर्जदार बने रहेंगे और वारंट द्वारा पकड़-पकड़ कर इसी कैद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खाने में डाले जावेंगे। तीन सत्ताओं द्वारा तीन तत्त्व प्राप्त करके हमने जीवन यात्रा आरंभ करने योग्य क्षमता पाई है। मानव जीवन की सारी महत्ता और सरसता इन्हीं तत्त्वों के आधार पर है । इनके अभाव में हम केवल पशु रह सकते थे ।

पशु और मनुष्य के बीच में जो अन्तर है वह यह है कि (१) मनुष्य आत्म कल्याण का मार्ग जानता है और उसमें प्रवृत्त होने की योग्यता रखता है। (२) मनुष्य स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ का महत्व समझता है। (३) मनुष्य जो वस्तु प्राप्त करता है उसका बदला चुकाने की इच्छा करता है । पशुओं में यह तीनों बातें बहुत ही अल्प मात्रा में होती हैं। जीवन में यह दैवी त्तव जितने अधिक बढ़ते जाते हैं उतना ही मनुष्यत्व का विकास होता जाता है। आत्म चेतना, दैवी–ईश्वरीय सत्ता का अंश है, परमार्थ इच्छा ऋषि सत्ता का भाग है और ऋण प्रतिशोध पितृ सत्ता की देन है। इस प्रकार हम आत्म चेतना को देव ऋण, परमार्थ इच्छा को ऋषि ऋण और ऋण प्रतिशोध आकांक्षा को पितृ ऋण कह सकते हैं।

आत्मचेतना उत्पन्न करके ईश्वर ने हमें अपने खजाने की सारी कुंजियाँ दे दी हैं। आत्मा के अन्दर इतनी चमत्कारिक बहुमूल्य शक्तियाँ भरी पड़ी हैं कि उनमें से कुछ का भी यदि ठीक प्रकार उपयोग किया जाय तो ऐसी ऐसी अद्भुत सफलताएँ मिल सकती हैं, जिन्हें देखकर दुनिया हैरान रह जाये। अष्ट सिद्धि, नव निद्धि का खजाना अपने अन्दर है, योग के अपरिचित चमत्कार तंत्र विज्ञान की अलौकिक करामातें यह सब अपने अन्दर ही तो भरा हुआ है। इसकी कुछ बूँदें पाकर रावण, हिरण्यकश्यप, सहस्रबाहु सरीखे वाम मार्गी और राम, कृष्ण, बुद्ध सरीखे दक्षिण मार्गी इस संसार में अपना प्रताप प्रकट कर चुके हैं। मोची का मुसोलिनी, आवारे का हिटलर बन जाना इसी शक्ति का छोटा सा प्रताप है। मनुष्य को करीब-करीब ईश्वर की बराबर योग्यता दी गई है और उसका प्रयोग करने या न करने की पूरी-पूरी आजादी देकर परमात्मा ने उसे बड़ा गौरवपूर्ण पद प्रदान किया है। यदि आध्यात्मिक योग्यता प्राप्त न हुई होती तो हम भी कीड़े-मकोड़े से तुच्छ होते और लोक-परलोक का आनन्द लाभ करने से वंचित रह जाते। ईश्वर की यह कितनी बड़ी अनुकम्पा हमारे ऊपर है, इस कृपा के लिए हमें ऋणी होना चाहिए और देव ऋण को सदैव स्मरण रखना चाहिए।

संसार इतना परमार्थी है उदार और देने वाला है कि उसकी कृपा का परिचय एक-एक पग पर प्राप्त होता है। जन्म लेते ही माता का पवित्र और निर्मल प्रेम तैयार मिलता है, वह कितने कष्ट सहकर पालन-पोषण करती है, अपने शरीर का रस निचोड़ कर पिलाती है और अन्त समय तक अपनी शीतल छाया से अलग नहीं होने देती। पिता हमारे लिए नाना प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ इकट्ठी करते हैं, बहिन खिलाती है, स्कूल के साथी बड़ा प्रेम करते हैं, अध्यापक शिक्षा देते हैं, विवाह होने पर धर्मपत्नी सेवा-सुश्रूषा करती है, सेवक आज्ञा में खड़े रहते हैं, दुकानदार हमारे लिए नाना प्रकार की उपयोगी वस्तुए देते हैं, गौएँ, घोड़े, बैल, कुत्ते अपनी सेवाओं से आनन्द देते हैं, प्रकृति माता के दान का तो कुछ अन्त ही नहीं, इस प्रकार हम जिधर भी दृष्टि उठा कर देखते हैं, उधर ही संसार को दान देता हुआ, परमार्थ करता हुआ, उपकार में प्रवृत्त देखते हैं, संसार ने हमें इतना अधिक दिया है कि उसकी उदारता के लिए सहज ही मस्तक नत हो जाता है। परमार्थ की यह ऋषिसत्ता हमारे अधूरे और लँगड़े लूले जीवन को पूर्ण और प्रसन्न बनाने में कितने परिश्रम के साथ निरन्तर लगी रहती है, उसका आभार माननां आवश्यक है। कौन अभावा ऋषि-ऋण को स्वीकार करने से इन्कार कर सकता है।

दुनिया हम से जो लेती है, वह हमें ज्यों का त्यों लौटा देती है। भूमि में जो बीज बोया जाता है वह उग आता है, दुकानदार को पैसा देते ही वह बदले की वस्तु दे देता है, मजदूर श्रम कर देता है, अध्यापक शिक्षा दे देता है, जिसके लिए, जब, जैसा, जितना काम किया जाता है, उसका फल निस्संदेह देर या सवेर में प्राप्त हो ही जाता है। पूर्वजों से प्राप्त हुई वस्तु आगे वालों को देना यह क्रम-सृष्टि के आदि से चला आता है। प्रपितामह ने पितामह का पोषण किया था, उन्होंने अपने पुत्र का पोषण किया, पिता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जी ने हमारा पोषण किया है, तो हमें अपने बच्चों का करना होगा। यह श्रृंखला केवल बच्चे उत्पन्न करने तक ही सीमित नहीं है और न केवल जन्म देने वाले को ही पितृ कहा जायेगा। जिन महानुभावों द्वारा हमें आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक और सांसारिक दान प्राप्त होते हैं, वे सभी हमारे पितृ हैं। इन पितृों ने अपने पितृओं से जो पाया था, वह हमें दिया, अब हमारा भी कर्तवय है कि जितनी योग्यता, शक्ति, बुद्धि, विद्या, संपत्ति आदि प्राप्त की है, उसे अपनी आगामी संतति के लिए छोड़ जावें। जिस प्रकार, सभी प्रकार की योग्यता देने वाले महानुभाव हमारे पितृ हैं, उसी प्रकार हमारी संतति भी हमसे पिछड़ी हुई जनसंख्या होगी। जिन व्यक्तियों के जीवन को किसी प्रकार की प्रेरणा देकर उनके किन्ही अंशों में कुछ निर्माण कर सकते हैं, वे सभी हमारी संतति कहलावेंगे। बेटे-बेटी को संतति कहना यहाँ उस आध्यात्मिक विवेचना में अप्रासंगिक होगा। ऋण प्रतिशोध, पितृ से प्राप्त वस्तु की संतति को देने का क्रम अत्यन्त महत्व का है। हमें इसे चालू रखना होगा। अपने पितृ ऋण को भली-भाँति हृदयंगम करना होगा।

कंधे पर रखा हुआ तीन तार का यज्ञोपवीत हमें बार-बार सचेत करता है कि कंधे पर रखे हुए तीन कर्जों को चुकाने में भूल न करो। इन्हें चुकाये बिना न कोई व्यक्ति उऋण हो सकता है न ईमानदार कहला सकता है और न छुटकारा पा सकता है इसलिए विवेकवान् मनुष्य का कर्तव्य है कि इन ऋणों को चुकाने में जरा भी भूल न करे। मनुष्य तीन ऋण से त्राण प्राप्त करके मुक्ति का अधिकारी बने। सत्य, प्रेम, न्याय की त्रिवेणी से उन ऋणों की उऋणता हो सकती है। दैव ऋण का सत्य द्वारा, ऋषि ऋण का प्रेम द्वारा, पितृ ऋण का न्याय द्वारा परिशोध हो सकता है। ईश्वर की कृपा से सत्य का जागरण हमारी आत्मा, चेतना से होता है । हमें चाहिए कि उस संदेश को दूसरे लोगों तक पहुँचावें। विश्व का ऋषि त्तव निस्वार्थ भाव से हमारे ऊपर पग-पग पर कृपा करता हुआ अपना प्रेम प्रदर्शित करता है। हमें चाहिए कि संसार के अन्य प्राणियों को अपने प्रेम का अमृत चखावें। पितृ गण हमें अपनी संपदा प्रदान करते हैं, हमें चाहिए कि न्यायपूर्वक संसार की वस्तु संसार को लौटा दें।

ईश्वर के सम्मुख हमें उसका देव ऋण चुकाने के लिए उपस्थित होना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए कि हे परमात्मन्! आपने मेरी आत्मा में अमूल्य खजाना भर देने की कृपा की है, मैं आपके प्रयत्न को व्यर्थ न करूँगा, इस खजाने को खोलूँगा और काम में लाऊँगा। पिता अब आपसे दूर न भटकूँगा, वरन् आपकी शान्तिप्रद शरण में विश्राम करूँगा। आत्मानन्द का स्वर्गीय रस पान करूँगा। अपनी आत्मा के सम्मुख हमें विश्व के ऋषित्तव का ऋण चुकाने के लिए उपस्थित होना चाहिए और प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि—हे मेरी आत्मा में बैठे हुए ऋषित्व! मुझे विश्व का प्रेम प्राप्त होता है, मैं विश्व के कण-कण से प्रेम करूँगा। मैं प्राप्त करता हूँ, इसके बदले में दूंगा। देना मेरा धर्म होगा 'त्याग' को मेरे जीवनक्रम में प्रमुख स्थान रहेगा।

संसार के सम्मुख हमें उसका पितृ ऋण चुकाने के लिए उपस्थित होना चाहिए और उसे विश्वास दिलाना चाहिए कि—हे पितृ ! आपके ऋण का प्रतिशोध करूँगा, आपने मुझे दिया है मैं आपको दूँगा। न्याय की श्रृंखला को भंग न करूँगा। अपने को निर्बल बना कर अपना अनावश्यक भार आप पर न डालूँगा। अन्यायपूर्वक किसी को उसके अधिकार से वंचित न करूँगा। भूतल पर से अनीति मिटाने के लिए तप करूँगा, धर्म युद्ध में प्रवृत्त रहूँगा। हे पितृ, आपने मेरे साथ न्याय किया है, मै अपनी संतति के साथ न्याय करके ऋण का प्रतिशोध करूँगा।

सत्य, प्रेम और न्याय की भावनाओं को हृदयंगम करने और उसके अनुसार आचरण में प्रवृत्त होने पर हम देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण से छुटकारा पाते हैं और जीवनमुक्त होकर परम पद पाने के लिए स्वतन्त्र हो जाते हैं। यही यज्ञोपवीत के तीन तारों में निहित प्रेरणा और शिक्षा है।

२- तिलक, माला, कण्ठी इत्यादि

यज्ञोपवीत के समान ही हिन्दू धर्म में तिलक, छाप, माला, कण्ठी, राम-नाम का तौलिया, धोती या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूमाल इत्यादि धारण करना श्रेष्ठता का, पवित्रता का, उच्च भावनाओं का सत्संग करना है। मनोविज्ञान का यह अकाट्य नियम है कि मनुष्य अपने आपको जैसा बाहर से प्रदर्शित करता है, धीरे-धीरे वस्तुतः वह अन्दर से वैसा ही होता भी जाता है। जैसा आवरण पहन लेते हैं, अपने को जैसे पवित्र बन्धनों में बाँध लेते हैं, उसी को देखकर हम स्वयं और बाहर के व्यक्ति हमारे विषय में अपनी धारणाएँ बनाते हैं। लोकमत की दृष्टि से यदि कोई व्यक्ति अच्छा बन गया है तो उसे अपनी प्रतिष्ठा का सदा ध्यान रहता है। मन विचलित होकर कुमार्गगामी होने को तैयार हो जाता है, तब हमारी वेश-भूषा और लोक लाज ही एक ऐसा बन्धन सिद्ध होती है, जो हमें पतन के मार्ग से बचाती है।

जिस हिन्दू ने तिलक, माला, कण्ठी, जनेऊ इत्यादि धारण कर रखा है, वह सदा उच्च जीवन से सम्पर्क बनाये रहता है। ऐसा व्यक्ति सबके सामने निर्भीकतापूर्वक मद्य, माँस का सेवन, जुआ, चोरी, व्यभिचार आदि कुकर्म करने में समर्थ न हो सकेगा। यदि फिर भी पशुत्व जोर मारेगा तो बहुत डरता-डरता छिपकर अल्प मात्रा में करेगा। वह फिर भी बच सकेगा और स्वास्थ्य, मनः शान्ति और दीर्घ जीवन का आनन्द उठा सकेगा। यह वे बाह्य उपकरण हैं, जिनके द्वारा हिन्दुओं को श्रेष्ठता और द्विजत्व की शिक्षा मिलती रहती है। ये सब वे प्रतीक हैं, जो धारण करने वाले को कर्त्तव्यमय, धर्ममय जीवन साधना और संयम का स्मरण कराते रहते हैं। जो व्यक्ति तिलक लगाये हुए हैं, या राम नाम का तौलिया शरीर पर धारण किए हुए हैं, उसे पवित्र मार्ग से विचलित होते हुए झिझक लगेगी। वह सोचेगा कि "मैं जब अपने ऊपर ये श्रेष्ठ चिह्न धारण किये हुए हूँ, तो कुमार्ग पर जाते हुए देखकर मुझ जैसे सज्जन को दुनिया क्या कहेगी ?" माला और कण्ठी पहिनकर मनुष्य पाप या कुमार्ग से प्रायः रुक जायेगा। ये वे दिव्य अंकुश हैं जो हमें पवित्रता की ओर, द्विजत्व की जिम्मेदारियों की ओर खींचते रहते हैं। मन को धार्मिक कर्मकाण्ड, तप, सत्संग की ओर प्रभावित करते रहते हैं।

यदि आप इन साधनों का चमत्कार देखना चाहते हैं, तो एक राम नाम का तौलिया खरीद लीजिए, गंगा-तट पर स्नान कर उसे धारण कीजिए, माथे पर तिलक, गले में कण्ठी और हाथ में माला लेकर जप कीजिए । आप आश्चर्य से देखेंगे कि आपका मन पशुता और असुरत्व से घृणा करने लगेगा, स्वार्थ, मिथ्याचार, हिंसा, अभक्ष पदार्थों के सेवन, पाशविक आहार-विहार, मैथुन इत्यादि से स्वतः आपको घृणा हो जायेगी। द्विजत्व और पवित्रता की ओर आपकी आत्मा बढ़ेगी। गिरते हुए आप संभल जाएगे। व्यभिचार और कुकर्म, जुआ, चोरी, मद्य, मांस के सेवन से आप बच जायेंगे। इस प्रकार श्रेष्ठता और पवित्रता के आवरण या प्रतीक को धारण करने से दैवी शक्तियाँ हमारे सद्संकल्पों को दृढ़ करती हैं, नई प्रेरणा और साहस देती हैं और गिरे हुए शरीर और आत्मा को उठाती हैं। इससे मन में उच्च मार्ग के प्रति ललक उपस्थित हो जायेगी।

स्थूल दृष्टि से ये प्रतीक साधारण से प्रतीत होते हैं, पर उनके अन्दर जो सूक्ष्म महत्व छिपा हुआ है, वह भुक्तभोगी ही समझ और अनुभव कर सकता है। जिस तरह मिलिटरी का बैज या तमगा जैसे पदक धारण कर लेने से मनुष्य में बहादुरी, श्रेष्ठता और महानता की भव्य भावनाएँ भर जाती हैं, वैसे ही इन तिलक, छाप, कण्ठी, जनेऊ इत्यादि से मनुष्य आदर्शपूर्ण, धर्ममयी सत्परिणामों को उत्पन्न करने वाली वृत्तियों से भर जाता है। उसमें अपनी पवित्रता, श्रेष्ठता, धर्ममयता के प्रति आत्मविश्वास उत्पन्न हो जाता है। वह भीतरी-बाहरी दोनों प्रकार की पवित्रता से भर जाता है।

माला जप में हमारी सहायक होती है। प्रत्येक माला में १०८ दाने रखने का विधान है। इन्ही पर सभी मन्त्रों का जाप किया जाता है। अंगिरा स्मृति में कहा गया है –

"बिना दर्भैश्च यत्कृत्यं यच्चदानं विनोदकम्।
असंख्यया तु यज्ञप्तं त्तसर्व निष्फल भवेत्।।"

अर्थात् बिना कुशा के जो सत्त धर्मानुष्ठान और बिना जल संस्पर्श के जो दान तथा बिना माला संख्या ही जो जप किये जाते हैं, वे सब निष्फल होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माला की सहायता से जाप करने के कई प्रत्यक्ष लाभ हैं। इससे यह सरलता से ज्ञान हो जाता है कि हमने मंत्रों के कितने जाप किये हैं। फिर अँगूठे और अँगुली के संघर्ष से एक विलक्षण विद्युत् उत्पन्न होती है, जो धमनी के तार द्वारा सीधी हृदय–चक्र को प्रभावित कर मन को तुरन्त ही निश्चल कर देता है। माला के इन १०८ दानों का विशुद्ध वैज्ञानिक रहस्य है। प्रो० अवधूत के शब्दों मे वह इस प्रकार है:–

(१) प्रकृति-विज्ञान की दृष्टि से विश्व में प्रमुख रूप से कुल सत्ताईस नक्षत्रों को मान्यता दी गई है तथा प्रत्येक नक्षत्र के चार चरण ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध हैं। सत्ताईस को चार चरणों से गुणा करने पर एक सौ आठ संख्या होती है। अतः १०८ संख्या समस्त विश्व का प्रतिनिधित्व करने वाली सिद्ध होती है। ब्रह्माण्ड में सुमेरु (जो माला के दानों के अतिरिक्त ऊपरी भाग में पृथक होता है) की स्थिति सर्वोपरि मानी गई है। अतः मालो में भी सुमेरु का स्थान सर्वोपरि ही रखा जाता है तथा उसका उल्लंघन नहीं किया जाता।

(२) दिन–रात में मनुष्य मात्र के श्वाँसों की संख्या इक्कीस हजार छः सौ वेद शास्त्रों में दी गई है। इस हिसाब से दिन भर के श्वाँस १०८०० हुए तथा रात भर के श्वाँसों की संख्या भी १०८०० ही हुई। जप प्रमुख रूप से उपांशु किया जाता है, जिसका फल सामान्य रूप से सौ गुना बताया गया है। अतः प्रातः, सायं, संध्या में १०८–१०८ जप करने से १०८×१००=१०८०० हुआ।

(३) ज्योतिष शास्त्र में समस्त विश्व ब्रह्माण्ड को १२ भागों में विभाजित किया गया है। जिन्हें "राशि" संज्ञा प्रदान की गई है तथा प्रमुख रूप से ९ ग्रह माने गये हैं। अतः १२ राशि तथा ९ ग्रह का गुणनफल १०८ होता है।

(४) सृष्टि का मूल है ब्रह्म, जो कि निर्गुण, निर्विकार, नित्य, सत्य एवं एकत्व युक्त है। उससे उत्पन्न अव्यक्त में इस गुण के अतिरिक्त आवरण शक्ति का प्राधान्य है, जिससे उसका स्वभाव दो प्रकार का हो ही जाता है। इससे आगे महत् है, जिसमें उपर्युक्त दो गुणों के अतिरिक्त विक्षेप शक्ति का समावेश भी है। फलतः वह त्रिगुणात्मक हुआ। अहंकार ब्रह्म का चतुर्थावकार है, जो त्तवों के आधिक्य और पूर्ववर्ती पदार्थ के तीन गुणों के भी धारण करने से चार गुणों वाला हुआ।

इस प्रकार हिंदू संस्कृति में माला के १०८ दाने अपना-अपना पृथक महत्व रखते हैं। सभी मन्त्रों का जाप इन्हीं पर करने का विधान है, जो विशुद्ध वैज्ञानिकता से परिपूर्ण है।

३-शिखा का महत्त्व और लाभ

भारतीय संस्कृति में शिखा हिन्दुत्व की प्रतीक है, कारण इसे धारण करने में अनेक शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक लाभ हैं। शिखा-स्थान मस्तिष्क की नाभि है, इस केन्द्र से उन सूक्ष्म तन्तुओं का संचालन होता है, जिनका प्रसार समस्त मस्तिष्क में हो रहा है और जिनके बल पर अनेक मानसिक शक्तियों का पोषण और विकास होता है। इस केन्द्र स्थान से विवेक, दृढ़ता , दूरदर्शिता ,प्रेमशक्ति और संयम शक्तियों का विकास होता है। ऐसे मर्मस्थान पर केश रखने से सुरक्षा हो जाती है। बालों में बाहरी प्रभाव को रोकने की शक्ति है। शिखा स्थान पर बाल रहने से अनावश्यक सर्दी-गर्मी का प्रभाव नहीं पड़ता। उसकी सुरक्षा सदा बनी रहती है।

शिखा से मानसिक शक्तियों का पोषण होता है। जब बाल नहीं काटे जाते, तो एक नियत सीमा पर पहुँच कर उनका बढ़ना बन्द हो जाता है। जब बढ़ना बन्द हो गया तो केशों की जड़ों को बाल बढ़ने के लिए रक्त लेकर खर्च करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बचा हुआ रक्त उन पाँच शक्तियों का पोषण करने में खर्च होता है, जिससे उनका पोषण और विकास अच्छी तरह होता है। इससे मनुष्य विवेकशील, दृढ़ स्वभाव, दूरदर्शी, प्रेमी और संयमी बनता है।

वासना को वश में रखने का एक उपाय शिखा रखना है। बाल कटाने से जड़ों में एक प्रकार की हलचल मचती है। यह खुजली मस्तिष्क से सम्बद्ध वासना तन्तुओं में उतर जाती है। फलस्वरूप वासना भड़कती है। इस अनिष्ट से परिचित होने के कारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषि-मुनि केश रखते हैं और उत्तेजना से बचते हैं।

बालों में एक प्रकार का तेज होता है। स्त्रियां लम्बे बाल रखती हैं, तो उनकी तेजस्विता बढ़ जाती है। पूर्व काल के महापुरुष बाल रखाया करते थे, और वे तेजस्वी होते थे। शिखा स्थान पर बाल रखने से विशेष रूप से तेजस्विता बढ़ती है।

शिखा स्पर्श से शक्ति का संचार होता है। यह शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि चाणक्य ने शिखा को हाथ में लेकर अर्थात् दुर्गा को साक्षी बनाकर नन्द वंश के नाश की प्रतिज्ञा की थी और वह अन्तः पूरी हुई थी। शक्ति रूपी शिखा को श्रद्धापूर्वक धारण करने से मनुष्य शक्ति सम्पन्न बनता है। हिन्दू धर्म, हिन्दू राष्ट्र, हिन्दू संस्कृति की ध्वजा इस शिखा को धारण करना एक प्रकार से हिन्दुत्व का गौरव है। शिखा के निचले प्रदेश में आत्मा का निवास योगियों ने माना है। इस प्रकार इस स्थान पर शिखा रूपी मंदिर बनाना ईश्वर प्राप्ति में सहायक होता है।

मनुष्य शरीर पर जो बाल हैं, ये भी छिद्र युक्त हैं। आकाश में से प्राण वायु खींचते हैं, जिससे मस्तिष्क चैतन्य, पुष्ट और निरोग रहता है। सिर के बालों का महत्व अधिक है, क्योंकि वे मस्तिष्क का पोषण करने के अतिरिक्त आकाश से प्राण वायु खींचते हैं।

अनुष्ठान काल में बाल कटाना वर्जित है। किसी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए बाल कटाना वर्जित है। इसका कारण यह है कि बाल रखने से मनोबल की वृद्धि होती है और दृढ़ता आती है। संकल्प पूर्ण करने का मार्ग सुगम हो जाता है । मनोबल की वृद्धि के लिए शिखा आवश्यक है।

प्राचीन काल में जिसे तिरस्कृत, लज्जित या अपमानित करना होता था, उसका सिर मुँडा दिया जाता था। सिर मुँडा देने से मन गिर जाता है और जोश ठन्डा पड़ जाता है। नाड़ी तन्तु शिथिल पड़ जाता है। यदि अकारण मुंडन कराया जाय, तो उत्साह और स्फूर्ति में कमी आ जाती है।

सिक्ख धर्म में शिखा का विशेष महत्व है। गुरु नानक तथा अन्य सिक्ख गुरुओं ने अपने आध्यात्म बल से शिखा के असाधारण लाभों को समझकर अपने सम्प्रदाय वालों को पाँच शिखाएँ अर्थात् पाँच स्थानों पर बाल रखने का आदेश दिया।

शिखा को सिर पर स्थान देना धार्मिकता या आस्तिकता को स्वीकार करना है। ईश्वरीय संदेशों को शिखा के स्तम्भ द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। शिखाधारी मनुष्य दैवी शुभ संदेशों को प्राप्त करता है और ईश्वरीय सन्निकटता सुगमतापूर्वक सुनता है। शिखा हिन्दुत्व की पहचान है, जो सदा अन्त समय तक मनुष्य के साथ चलता है।

इस प्रकार विवेकशील हिन्दू को सिर पर शिखा धारण करनी चाहिए।

४- हिन्दू तीर्थयात्राओं तथा धार्मिक मेलों का उद्देश्य और असंख्य लाभ

भारतीय संस्कृति में "तीर्थ" शब्द बड़ा व्यापक और गहन अर्थों वाला है, भारतीय तत्वज्ञानियों ने इस शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया है। "तीर्थ' शब्द का प्रयोग आत्मिक विकास और आध्यात्मिक उन्नति के नाना वर्गों और पहलुओं के लिए किया गया है। "तीर्थ" पवित्रता का द्योतक है। त्याग, तपस्या, परोपकार और उच्च प्रवृत्तियों के विकास का सम्बन्ध तीर्थ से है। धार्मिक स्थानों में केवल मनोरंजन मात्र के लिए घूमना-फिरना तीर्थ करना नहीं है। तीर्थ का उद्देश्य आत्म-सुधार है। तीर्थों में भगवान् का ज्ञान देने वाले और काम, क्रोध, लोभमुक्त साधु संग होता है, भगवत्प्राप्ति होती हैं। तीर्थों में कौन मिलते है, इसका उल्लेख पद्मपुराण के पातालखण्ड में इस प्रकार किया गया है:-

"स हरिर्ज्ञायते साधुसंगमात् पापवर्जितात्।
येषां कृपातः पुरुषा भवन्त्य सुख वर्जिताः।।
ते साधवः शान्तरागाः कामलोभविवर्जिताः।
ब्रुवन्ति यन्महाराज त्त् संसारनिवर्तकम्।।
तीर्थेषु लभ्यते साधु रामचन्द्रपरायणः ।
यद्दर्शनं नृणां पापराशिदाहाशुशुक्षणिः।।
तस्मात् तीर्थेषु गन्तव्यं नरैः संसारभीरुभिः।
पुण्योदकेषु सत्तं साधुश्रेणिविराजिषु।।"

"अर्थात् (तीर्थों में) उन भगवान् का (उनके स्वरूप, त्तव, गुण, लीला, नाम आदि का) ज्ञान होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है। हम तीर्थों में निवास करने वाले पाप रहित साधु-सत्संग से सांसारिक दुःख से छूट जाते हैं।

साधु वे नहीं हैं, जो केवल नामधारी हैं और मन से साधु नहीं हैं साधु तो वास्तव में वे हैं, जिनकी लोक-परलोक के विषयों में कोई आसक्ति नहीं रह गई है, जिनके पास मन में काम संकल्प नहीं है तथा जो लोभ रहित हैं, अर्थात् जो अनासक्त हैं। धन और स्त्री से किसी प्रकार का मानसिक सम्पर्क नहीं रखते हैं। ऐसे साधु तीर्थों में रहते हैं । उनके उपदेशों से संसार का बन्धन छूट जाता है और भगवत्प्राप्ति हो जाती है। तीर्थों में निवास करने वाले ऐसे साधुओं के दर्शनों से मनुष्यों की पाप-राशि जल जाती है। इसलिए संसार-बन्धन से छूटने के लिए पवित्र जल वाले तीर्थों में, जो सदा साधु-महात्माओं के सहवास से सुशोभित रहते हैं, जाना चाहिये।"

हमारे यहाँ तीर्थ यात्राओं का बड़ा महात्म्य है। जब तक वृद्धजन तीर्थयात्रा कर पुण्य प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक उनकी मुक्ति नहीं होती। बद्रीनाथ, रामेश्वर तथा द्वारिका आदि चारों धाम, सात पुरी, सात ज्योतिर्लिंगम् तथा अनेक सर, सरिता, वन, उपवन आदि हमारे यहाँ के प्रमुख तीर्थों में आते हैं, जिनका दर्शन, निवास, स्नान, भजन, पूजन, अर्चन करने में प्रचुर पुण्य लाभ माना गया है। प्रश्न उठता है कि इसका क्या कारण है ?

तीर्थयात्रा का धार्मिक, नैतिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी, व्यवहारिक, व्यापारिक, ज्ञानवर्द्धक आदि सभी प्रकार का महत्त्व है। अन्य सब लाभों से पूर्व हम धार्मिक दृष्टि से देखें। मनुष्य पर वातावरण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। हम जहाँ जिस वातावरण में निवास करते हैं और उन स्थानों के विषय में लोक-मानस की जो-जो मान्यताएँ होती हैं, वैसा ही प्रभाव स्वतः हमारें अन्तर्मन पर पड़ता रहता है। तीर्थों के साथ युगों से असंख्य मनुष्यों को शुभ सात्त्विक पवित्र भावनाएं, शुभ विचार, अच्छी कल्पनाएँ संयुक्त हैं। प्रत्येक हिन्दू ऐसा मानता आया है कि तीर्थ स्थल पर रहने से मन की समस्त अपवित्रता, गन्दगी, पाप, पतन, शरीर के मैल धुल जाते हैं और सत्यनिष्ठा, पवित्रता, प्राणिमात्र के लिए आत्मीयता, सद्भावना, सात्विकता और दिव्य गुण स्वभाव एवं कार्य में आ जाते हैं। मनुष्यों की इस दृढ़ और व्यापक पवित्र विचारधारा का सामूहिक प्रभाव यह हुआ है कि हिन्दू तीर्थों में एक आध्यात्मिक पवित्रता का वातावरण बन गया है। पवित्रता हमारी आत्मा का एक गुण है। आत्मा स्वतः अपने उपयुक्त साफ, स्वच्छ और पवित्र वातावरण की इच्छा करती है। आस्तिकता के पवित्र वातावरण में रहने में ही उसे सच्चा सुख मिलता है। अतः तीर्थ स्थलों में जाकर हमारी आत्मा के गुण निखर उठते हैं, पवित्रता, सात्विकता और सद्व्यवहार विकसित होने लगते हैं। जैसे-सैसे हम तीर्थों में अधिक दिन तक निवास करते हैं, वैसे-जैसे अपने आप ही हमारे छल-कपट, अहंकार, अपहरण, पाप, द्वेष, विषय-विकार, क्रोध, लोभ, मोह, स्वार्थपरता आदि विकार मलीन पड़ जाते हैं। आप हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन, काशी, प्रयाग आदि किसी भी तीर्थस्थल पर रहिये। गंगा, यमुना किसी में भी स्नान कीजिए, हमारा दावा है कि आपकी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, व्यावहारिक, आध्यात्मिक पवित्रताएँ अपने आप उभर आयेंगी। आप कदापि मलिनता से सम्बन्ध नहीं रख सकेंगे। असुरत्व स्वतः फीका पड़ जायेगा और देवत्व निखर उठेगा। यदि आप उद्विग्नता में फँसे रहते हैं, तो वह गंगाजी के शीतल जल में स्नान करने से छूट जायेगी। रिश्वतखोरी, चोरबाजारी, चोरी, दगाबाजी एवं अनीति करते हुए आपको अपने आप लज्जा आयेगी। जुआ, व्यभिचार, कर्कशता, निष्ठुरता, स्वार्थपरायणता, धूर्तता आदि का कोई भी कार्य करते हुए आपको मानसिक दुःख पहुँचने लगेगा। यह सब तीर्थस्थलों में युग-युग से व्याप्त सर्वांगीण पवित्रता के शुभ वातावरण का ही गुप्त प्रभाव है। यदि आप चिन्तित हैं, मानसिक विक्षोभ या उत्तेजना के शिकार हैं, तो तीर्थ के सुख-शान्तिमय वातावरण में मानसिक शान्ति प्राप्त होगी। आत्मा पर जो विकार सांसारिकता के कारण जम गये हैं, वे स्वतः छूट जायेंगे। तीर्थयात्रा करने से मनुष्य की आध्यात्मिक पवित्रता की वृद्धि होती है। सात्विक और दिव्य विचार मन में ठहरने लगते हैं। सांसारिकता से लगाव हट जाता है।

जब आप गंगा या यमुना जी में स्नान करते हैं, तो आपके मन में यह भाव रहता है कि मैं पवित्र बन रहा हूँ। शारीरिक स्वच्छता के साथ मेरे मन में पवित्रता आ रही है। मैल और विकार से मेरा सम्बन्ध

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छूट रहा है। मेरी चैतन्यता, जागरूकता, सुरुचि और सात्त्विकता में वृद्धि हो रही है । इस शुभ चिन्तन का आध्यात्मिक प्रभाव यह होता है कि हमारे चरित्र में सात्त्विकता, आस्तिकता का समावेश होता है और गन्दगी से बच कर संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करने की प्रवृत्ति हो जाती है।

प्रत्येक तीर्थ उत्तम आध्यात्मिक वातावरण के केन्द्र हैं। उनमें प्रायः अच्छे विचार वाले विद्वानों, महात्माओं, ऋषियों, मुनियों, ज्ञान-पिपासुओं का निवास होता है । शुभ संदेश, व्याख्यान, स्वाध्याय, कीर्तन, भजन-पूजन चलते रहते हैं। असंख्य मन्दिर रहते हैं । ये सभी पवित्रता की ओर ले जाने वाले हैं। मनुष्य में देवत्व का विकास करने वाले हैं। ऐसे सात्विक वातावरण में निवास करने से एक बार तो पापी भी पुण्यात्मा बन जाता है। इन्द्रिय भोगों से दूर हट जाता है। उसमें त्याग-प्रवृत्ति ऊँची उठ आती है और वह ब्रह्म चिन्तन की ओर चलने लगता है। उसे 'जगन्मिथ्या' प्रतीत होने लगता है।

अपनी संचित गंदगी को बाहर फेंक देने के लिए तीर्थ यात्राओं का बड़ा ही अच्छा विधान है। हिन्दू तत्त्वज्ञानी चाहते हैं कि वर्ष के कुछ दिनों आप तीर्थों के पुण्य प्रेरक शुभ वातावरण में निवास करें और अपने शारीरिक एवं मानसिक विकारों को बाहर फेंक दें। पूरी सफाई कर डालें। अपने अन्दर ईश्वरत्व को प्रतिष्ठित करें और इस प्रकार नये रूप में संसार के कार्यों में प्रवृत्त हों। तीर्थ यात्रा कर लेने वाले के साथ देव-शक्तियों का साथ बना रहता है। दैनिक जीवन में पवित्रता के साथ उसमें व्यावहारिक और सामाजिक पवित्रता भी आ जाती है। स्वाध्याय, ब्रह्म चिन्तन, सद्भावना, सात्त्विकता और दिव्य विचार उसमें सदा बने रहते हैं।

स्वास्थ्य, दीर्घजीवन और यौवन स्थिर रखने की दृष्टि से तीर्थयात्राएँ अतीव उपयोगी हैं। जलवायु, उत्तम स्वास्थ्य, दर्शनीय स्थल, प्राकृतिक सुषमा आदि को दृष्टि में रखकर भारतीय तत्त्वदर्शियों ने तीर्थों की स्थापना की है। जिन-जिन सरिताओं का जल और आस-पास की वायु स्वास्थ्य के लिए विशेष उपयोगी है, उन्हीं के तटों पर तीर्थों का विधान है। स्वर्ण, पारा, गन्धक तथा अभ्रक जैसे स्वास्थ्योपयोगी खनिज पदार्थ हमारे गंगाजल में पाये जाते हैं, जिसके प्रयोग से उदर, चर्म और अनेक रक्त-विकार दूर हो जाते हैं। कुष्ठ रोग तक गंगाजल से दूर हो जाता है। अन्य धार्मिक सरिताओं के जलों में भी उपयोगी त्तव मिलते हैं।

हमारे तीर्थ रमणीय स्थानों पर रखे गये हैं, जिनमें पैदल चल कर जाने का बड़ा पुण्य माना गया है। अनेक पर्वतीय स्थल, ऊँची-नीची भूमि, वन सरिता–तटों पर पैदल चलने से वायु परिवर्तन भी हो जाता है और शरीर सुगठित हो जाता है, नाड़ी समूह तथा माँस पेशियाँ बलवान हो जाती हैं। पैदल चलने से स्वप्नदोष, प्रमेह, शीघ्र पतन, बहुमूत्र आदि दूर हो जाते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक संसर्ग से शारीरिक रोगों से छुटकारा मिल जाता है।

जो व्यक्ति लम्बी दूरस्थ तीर्थ-यात्राएँ नहीं करते, उन्हें अपने समीप के मन्दिरों की ही परिक्रमा का विधान है। कहीं-कहीं तो पेट के बल दंडवती परिक्रमा का पुण्य माना गया है। इसका एक स्वास्थ्यमय पहलू भी है। जो साधक दंडवती परिक्रमाएं करते हैं, उन्हें आत्र रोग नहीं होते, तिल्ली और जिगर मज़बूत बनते हैं। पहाड़ों पर चढ़ने से हडिडयाँ सबल बनती हैं और जोड़ों का दर्द, गठिया इत्यादि जाता रहता है। पहाड़ो पर रहने से यों भी स्वास्थ्य अच्छा रहता है। कंधे पर गंगाजल की कांवर रख कर शिवरात्रि पर यात्रा का विधान भी स्वास्थ्य स्थिर रखने का एक उपाय है।

देशाटन और ज्ञानवृद्धि का लाभ भी कुछ कम नहीं है। नए शहर, नए प्रान्त, नए वातावरण में रहने से मनुष्य की ज्ञानवृद्धि होती है। हम नए प्रकार के मनुष्यों, नए स्वभाव, विचार, व्यवहार, रहन-सहन, परिपाटी, अर्थ, नीति, विश्वास, कार्यक्रम का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार धर्म की वृद्धि के साथ मनोरंजन और बौद्धिक उन्नति भी बहुत होती है। हमें अनेक कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है। ठग, दुष्ट या चोरों से भी सावधान रहना पड़ता है। इससे हमारी चेतना, जागरूकता, सतर्कता एवं विवेचना शक्तियां बढ़ती हैं।

व्यापारियों के लिए तीर्थ अच्छे व्यापार के साधन सुलभ करते हैं। तीर्थों पर अनेक प्रकार के समृद्ध महानुभाव पधारते रहते हैं। वे दुष्प्राप्य वस्तुओं को भी सरलतापूर्वक खरीद लेते हैं। कोई न कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कला-प्रदर्शनी, सभा-सम्मेलन, अभिनय आदि भी चलता ही रहता है। अतः आगन्तुकों को सब प्रकार की सुविधाएँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं।

हमारे अधिकांश तीर्थों का सम्बन्ध ऐतिहासिक या पौराणिक महापुरुषों से भी है। इन्हीं स्थलों पर उन्हें प्रकाश मिला था। स्वयं तीर्थ करने वाला भी ऐसा अनुभव करता है, जैसे उसे उन महा पुरुषों से आज भी बल, प्रेरणा, साहस और प्रकाश मिल रहा हो। आज भी अनेक तीर्थों पर बहुत से आत्मबल वाले सिद्ध पुरुषों का सत्संग मिल जाता है। उनके निवास से वहाँ का वातावरण शान्तिदायक बन जाता है। उनका आत्मतेज समस्त वातावरण में फैला रहता है। वस्तुतः वहाँ के वातावरण में सिद्धि, स्वास्थ्य और शान्ति प्रदान करने वाले आत्म त्तव प्रचुरता से भरे रहते हैं, जिनमें निवास कर आत्म-कल्याण के इच्छुकों को असाधारण सफलताएँ प्राप्त होती हैं। कभी–कभी तो ऐसे अप्रत्याशित लाभ देखने को मिलते हैं, कि ईश्वर की गुप्त शक्ति पर दृढ़ निष्ठा जम जाती है।

हिन्दू तीर्थों को इस प्रकार विभिन्न स्थानों पर रखा गया है जिससे यात्री को सम्पूर्ण भारत-भ्रमण का अवसर प्राप्त हो जाय, भूगोल और देश की सारी संस्कृति से उसका परिचय हो जाय, वह विभिन्न वेशभूषा, आचार-व्यवहार, रहन-सहन, आचार-विचार, रंग-रूप के भारतवासियों से मिल ले और एकता की ग्रन्थि में बंध जाय। भारत की सात पवित्र पुरियां हैं– १–अयोध्या, २–मथुरा, ३–हरिद्वार, ४–काशी, ५–कांचीवरम्, ६–उज्जैन तथा ७–द्वारिका । भारत के विभिन्न भागों में स्थित हैं। इसी प्रकार हमारे प्रसिद्ध बारह ज्योतिर्लिंग इस प्रकार हैं – १–सोमनाथ, २–त्रयम्बकेश्वर, ३–ओंकारेश्वर, ४–महाबलेश्वर, ५–केदारनाथ, ६–विश्वनाथ, ७–वैद्यनाथ, ८–रामेश्वर, ९–मल्लिकार्जुन, १०–नागनाथ, ११–घृषणेश्वर, १२–भीमाशंकर। जो पथिक इन सब तीर्थों की यात्रा करेगा वह अनायास ही सारा भारत देख लेगा, कूपमंडूक न रहेगा। ज्ञान-वृद्धि की दृष्टि से भी तीर्थयात्रा महत्वपूर्ण है। इस प्रकार तीर्थयात्रा करने से हर प्रकार का लाभ है।

"तीर्थ" शब्द उच्चता और पवित्रता का द्योतक है। अपने व्यापक अर्थ में तीर्थ के अन्तर्गत वे सब प्रकार के कार्य आ जाते हैं, जिनसे मनुष्य की व्यक्तिगत और सामूहिक उन्नति हो सकती है। जैसे "स्कन्दपुराण" में "तीर्थ" शब्द की विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा गया है कि–

"सत्यं तीर्थ क्षमा तीर्थ तीर्थ मिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया तीर्थ तीर्थमार्जव मेव च।।"

"सत्य तीर्थ है। क्षमा करना तीर्थ के समान फलदायक है। इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना तीर्थ के समान उपकारी है। सब प्राणियों पर दया करना तीर्थ के समान पुण्य देने वाला है और सरल जीवन भी तीर्थ ही समझना चाहिए।"

"दानं तीर्थ दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्य परं तीर्थं तीर्थ च प्रियवादिता।।"

"दान तीर्थ है, मन का संयम तीर्थ है। सन्तोष भी तीर्थ कहा जाता है। ब्रह्मचर्य परम तीर्थ है और प्रिय वचन बोलना भी तीर्थ है।"

"ज्ञानं तीर्थ धृतिस्तीर्थ तपस्तीर्थमुदाहृतम।
तीर्थानामपि तीर्थ विशुद्धिर्मनसः परा।।"

"ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है, तप को भी तीर्थ कहा जाता है। तीर्थों में सबसे श्रेष्ठ है, अन्तःकरण की अत्यन्त विशुद्धि।"

चित्त के भीतर यदि दोष भरा है, तो वह तीर्थ स्नान से शुद्ध नहीं होता। जैसे मदिरा से भरे हुए घड़े को ऊपर से जल द्वारा सैकड़ों बार भी धोया जाय, तो भी वह पवित्र नहीं बनता, उसी प्रकार दूषित अन्तःकरण वाला मनुष्य तीर्थ स्नान से शुद्ध नहीं होता। भीतर का भाव शुद्ध न हो तो दान, यज्ञ, तप, तीर्थ-सेवन, शास्त्र-श्रवण और स्वाध्याय– ये सभी अतीर्थ हो जाते हैं।

तीर्थों में सुधार की आवश्यकता

तीर्थों का प्रयोजन सात्विक, संयमित और पवित्र जीवन को प्रोत्साहित करना है। तीर्थों का वातावरण ऐसा पवित्र होना चाहिए कि मन प्रसन्न हो, आत्मा तृप्त हो और चित्त की शुद्धि हो। वहाँ जाकर तप, त्याग, दान, तितिक्षा, भगवतस्मरण, पूजन आदि द्वारा सद्गुणों का विकास करना और विकृतियों से मुक्ति का उपक्रम करना चाहिए। सांसारिकता से मुक्ति मिलनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वच्छता एक दैवी गुण है। जो यात्री तीर्थों पर जायें, उन्हें चाहिए कि किसी प्रकार की भी गन्दगी न फैलायें। शौचादि से निवृत्त होने के लिए दूर जायें, घर, नगर, घाट और धर्मशालाओं आदि को स्वच्छ रखें। जल को स्वच्छ रखें। वस्त्र धोने का कार्य दूर रखें जिससे पीने या स्नान के जल में गन्दगी न फैलने पावे।

पंडा पुरोहित प्रायः यात्रियों से अनुचित लाभ उठाने, बलपूर्वक दान लेने की कोशिश करते हैं। उनमें कभी-कभी ठग और पाखण्डी भी मिले रहते हैं। उन्हें रोकने का प्रयत्न होना चाहिए।

मन्दिरों में चढ़ाई जाने वाली धन सम्पत्ति का उपयोग सर्व जन हितकारी कार्यों में होना चाहिए। निस्वार्थ, सेवा-भावी, निर्लोभ विद्वान सच्चे सदाचारी एवं सहृदय पंडा-पुरोहितों से ही सम्पर्क होना चाहिए। दान देते समय सुपात्र अथवा कुपात्र का विवेक कर लेना चाहिए। उन्हें भी चाहिए कि यात्रियों को अतिथि देव के रूप में मानकर उसकी समुचित सेवा और सहायता करें। जो कुछ भी सेवा संस्थायें हों, वे यथासम्भव सहायता करें। अनुचित लाभ करने वालों से रक्षा करें। मन्दिरों में एकत्रित होने वाली भीड़ का नियन्त्रण भी प्रेमपूर्ण आग्रह से ही किया जाय। महिलाओं का नियंत्रण करने में केवल महिलायें ही प्रबन्ध करने वाली रहें।

तीर्थों का लाभ विद्वानों का सत्संग है। सच्चे विद्वान ब्राह्मणों को तीर्थों में ऐसे आश्रम स्थापित करने चाहिए, जहाँ जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान हो सके और उच्च जीवन के लिए नव प्रेरणा मिल सके। हर तीर्थ का विस्तृत परिचय देने वाली पुस्तकें सस्ते मूल्य पर उपलब्ध होनी चाहिए।

देव मन्दिरों में वेजीटेबिल घी, विदेशी वस्त्र, चर्बी की मोमबत्ती आदि अपवित्र पदार्थों का उपयोग न किया जाय। यात्रियों के लिए तीर्थ हर दृष्टि से उपयोगी बन सकें, ऐसी शिक्षण शालाएँ खुलनी चाहिए। पैदल तीर्थ-यात्रा को प्रोत्साहन मिलना चाहिए, जिससे स्वास्थ्य-सुधार हो सके।

जो महानुभाव जनता जनार्दन की सेवा में अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे धर्मशालाओं के अध्यक्ष बनें या निस्वार्थ सेवा-व्रत धारण करें। ऐसा प्रयत्न करें कि यात्री से किसी प्रकार का दवाब डालकर कुछ न लिया जाये। यात्रियों को ठहरने, स्नान, पूजा आदि करने और भोजन के साथ चिकित्सा आदि की भी सुविधाएँ प्राप्त हो सकें। धर्मशालाओं, मार्गों, मन्दिरों, घाटों के समीप दौने, मल-मूत्र, थूक इत्यादि न डाला जाय। स्वच्छता हमारे तीर्थों का एक महत्त्वपूर्ण गुण होना चाहिए, जिससे स्वास्थ्यप्रद वायुमण्डल और स्वच्छ वातावरण बना रहे।

तीर्थों में मानवता की वृद्धि करने वाले अध्यात्म मार्ग या ऊँचा उठाने वाले गुणों की वृद्धि का निरन्तर अभ्यास चलते रहना चाहिए। यज्ञ, तप, दान, श्राद्ध, तर्पण, पिण्डदान, व्रत, उपवास आदि अपने–अपने सामर्थ्य के अनुसार करते रहना चाहिए। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप यमों और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रविधान रूप नियमों का पालन विशेष रूप से करना चाहिए । भोगों से मन को हटाते हुए वैराग्य द्वारा मन और इन्द्रियों को वश में करना, कीर्तन स्वाध्याय द्वारा ज्ञान अर्जन और मौन द्वारा आत्मबल वृद्धि करनी चाहिए।

तीर्थों की उपयोगिता

तीर्थ यात्रा के महात्म्यों का धर्मशास्त्रों में सुविस्तृत वर्णन मिलता है। चारों धाम, सात पुरी, सात ज्योतिर्लिंगम्, तथा अनेक सरिता, सर, वन, उपवन तीर्थों की श्रेणी में गिने जाते हैं, इनके दर्शन, निवास, स्नान, भजन, पूजन, अर्चन करने में धर्म लाभ होने की हिन्दू धर्म में सुस्थिर मान्यता है। इन तीर्थों में लाखों करोड़ों की, संख्या में हिन्दू जनता धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर जाती है। विशेष पर्वों पर तो तीर्थों में असाधारण भीड़ें होती हैं। करोड़ों रुपया इस अवसर पर हस्तान्तरित होता है।

आधुनिक युग बुद्धिवाद का युग कहा जाता है। इस युग में हर बात को बुद्धिवाद की तराजू पर तोलने की प्रथा है। जब सभी विषयों में खोजें और अन्वेषण हो रहे हैं तो धार्मिक प्रथाओं के सम्बन्ध में विचार विमर्श होना स्वाभाविक है। तीर्थों के सम्बन्ध में भी नई पीढ़ी की बुद्धिवादी जनता विचार करती है। किन्तु जब वह नव विकसित बाल बुद्धि उनकी वास्तविकता और उपयोगिता को ठीक प्रकार समझ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं पाती तो कुतर्क करने लगती है। तीर्थों में अस्तिव को अनुपयोगी, हानिकारक तथा अवांछनीय तक बताया जाता है। आइये, इस प्रश्न पर एक विवेचनात्मक दृष्टि डालें।

तीर्थों की स्थापना करने में हमारे त्तवदर्शी पूर्वजों ने बड़ी बुद्धिमता का परिचय दिया है। जिन स्थानों पर तीर्थ स्थान स्थापित किये गए हैं वे जलवायु की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी हैं। जिन सरिताओं का जल विशेष शुद्ध, उपयोगी, हल्का तथा स्वास्थ्यप्रद पाया गया है उनके तटों पर तीर्थ स्थापित किये गए हैं। गंगा के तट पर सबसे अधिक तीर्थ हैं, कारण यह है कि गंगा का जल संसार की समस्त नदियों से अधिक उपयोगी है । उस जल में स्वर्ण, पारा, गंधक तथा अभ्रक जैसे उपयोगी खनिज पदार्थ मिले रहते हैं, जिसके संमिश्रण से गंगाजल एक प्रकार की दवा बन जाता है, जिसके प्रयोग से उदर रोग, चर्म रोग तथा रक्त विकार आश्चर्यजनक रीति से अच्छे होते हैं। कुष्ठ रोग को दूर करने की गंगाजल में महत्वपूर्ण क्षमता मौजूद है। इसी प्रकार अन्य नदी सरोवरों में अपने-अपने गुण हैं। इन गुणों की उपयोगिता का तीर्थों के निर्माण में प्रधान रूप से ध्यान रखा गया है।

आजकल वायु परिवर्तन के लिए लोग पहाड़ों पर जाया करते हैं। रोगी और दुर्बलों को डाक्टर लोग वायु परिवर्तन के लिए किन्हीं स्वास्थ्यप्रद स्थानों में भेजते हैं। यह दृष्टिकोण तीर्थों में भी रखा गया है। जहाँ की भूमि, वनस्पति, ऋतु, आदि के आधार पर स्वास्थ्यप्रद वायु पाई गई है वहाँ तीर्थ कायम किये गए हैं। इन स्थानों पर कुछ समय निवास करके वहाँ की जलवायु का सेवन करने से तीर्थ यात्रियों के स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है । इस तथ्य से प्रोत्साहित होकर विवेकशील आचार्यों ने वहाँ तीर्थ बना दिये।

तीर्थ यात्रा में पैदल चलने का विशेष महत्व बताया गया है। पैदल चलना शरीर को सुगठित करने और नाड़ी समूह तथा माँस पेशियों को बलवान बनाने के लिए आवश्यक उपाय है। आयुर्वेद शास्त्रों में प्रमेह चिकित्सा के लिए सौ योजन अर्थात चार सौ कोस पैदल चलने का आदेश दिया है। अधिक चलने से जंघाओं की नाड़ियों और माँस पेशियों का अच्छा व्यायाम होता है और वे परिपुष्ट हो जाती हैं। ढीली नस नाड़ियों की संकुचन शक्ति शिथिल पड़ जाने के कारण वीर्य नीचे की ओर स्रवित होता रहता है, और स्वप्नदोष, प्रमेह, पेशाब के साथ चिकनाई जाना, शीघ्र पतन, बहुमूत्र आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस व्यथा से छुटकारा पाने के लिए कटि प्रदेश तथा जंघाओं के नाड़ी समूह तथा माँस पेशियों को ठीक करना पड़ता है। आयुर्वेद की सम्मति में इसका अच्छा उपचार नियमित रूप से पैदल चलना है जिससे कटि, पेडू और जंघाएँ सुदृढ़ हो जावें। तीर्थ यात्रा इस उद्देश्य को बड़ी अच्छी तरह पूरा करती है। पैदल तीर्थ यात्रा करने से स्वस्थ व्यक्तियों का शरीर गठन ऐसा अच्छा हो जाता है जिसमें प्रमेह आदि का आक्रमण नहीं हो पाता। जिन्हें मूत्र रोग होते हैं उन्हें उन व्यथाओं से बिना दवा दारू में धन लुटाये स्थायी रूप से लाभ हो जाता है।

जो लोग लम्बी यात्राएँ नहीं कर पाते थे सुदूर देश में जाने की जिन्हें सुविधाएँ न होती थीं उन्हें किसी एक ही तीर्थ की परिक्रमाएँ करने को कहा जाता। पेट के बल दंडवती परिक्रमाएँ करना आँतों के रोगों के लिए उपयोगी है, तिल्ली एवं जिगर भी इससे मजबूत होते हैं और उनके बहुत से विकार दूर हो जाते हैं। पर्वतों पर बहुत ऊँचे कुछ तीर्थ बनाए गए हैं। ऊँची चढ़ाई चढ़ने से हड्डियों की संधियाँ मजबूत होती हैं तथा गठिया होने का भय नहीं रहता। फेफड़ों को मजबूत बनाने के लिए ऊँचा चढ़ना और नीचे उतरना असाधारण रूप से उपयोगी है। पहाड़ी प्रदेशों के रहने वाले व्यक्ति, जिन्हें ऊँचा चढ़ना और नीचे उतरना पड़ता है चौड़ी छाती वाले होते हैं उन्हें तपैदिक जैसे फेफड़े के रोगों से ग्रसित नहीं होना पड़ता। कंधे पर गंगाजल की काँवर रखकर शिवरात्रि पर यात्रा की जाती है। इससे कंधे की नसों पर दबाव पड़ता है। इन नसों का मूलाधार चक्र की गुदा नाड़ियों से संबंध है। अतएव गुदा स्थान पर उसका प्रभाव होता है और बवासीर सरीखे रोगों की संभावना नष्ट हो जाती है।

स्वास्थ्य लाभ के उपर्युक्त दृष्टिकोण से तीर्थ यात्रा महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त देशाटन से ज्ञानवृद्धि का जो लाभ होता है वह भी कम उपयोगी नहीं है। जीवन की बहुमुखी उन्नति के लिए मनुष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाति के स्वभाव, आचार, विचार, व्यवहार, रहन-सहन, प्रथा, विश्वास, कार्यक्रम, प्रथा, परिपाटी, अर्थ, नीति आदि का अध्ययन करने की बड़ी भारी आवश्यकता है। देशाटन करने से मूर्ख मनुष्य भी बहुत अंशों में बुद्धिमान बन जाते हैं और घर से बाहर पैर न रखने वाले कूप मंडूक, ऊँची शिक्षा प्राप्त कर लेने पर अर्ध मूर्ख बने रहते हैं। देशाटन केवल मनोरंजन नहीं है वरन् एक ठोस शिक्षाक्रम है । जितना वास्तविक ज्ञान मनुष्य दो महीने के देशाटन में प्राप्त कर सकता है उतना दो वर्ष तक पुस्तकें पढ़ने पर नहीं पा सकता। उच्च श्रेणी के मनुष्य अपनी आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक तथा शारीरिक स्थिति अच्छी बनाने के लिए प्रतिवर्ष कुछ न कुछ समय देशाटन के लिए अवश्य निकालते हैं। बेवकूफ लोग अन्दाज लगाते हैं कि यह सैर सपाटे का समय व्यर्थ जाता है। पर सच बात यह है कि दस घंटे पिले रह कर आदमी जितना उपार्जन करता है, उन सैर सपाटे के दिनों में कई दृष्टियों से बहुत ऊँची चीजें कमा लेता है, तीर्थ यात्रा के अवसर पर अनेक स्थलों को देखने, अनेक प्रकार के मनुष्यों की विभिन्नताएँ समझने का, विविध स्थलों की विशेषताएँ जानने का अलभ्य अवसर मिलता है। अनेक कठिनाइयों का एवं दुष्ट, चोर, ठग और धूर्तों का सामना करना पड़ता है, इस संघर्ष में मनुष्य की चेतना, जागरूकता, सतर्कता एवं विवेचना शक्ति बढ़ती है, यात्राा के अनुभवों से परिपुष्ट होकर मनुष्य का बौद्धिक स्वास्थ्य बढ़ता है और वह बढ़ोत्तरी शारीरिक स्वास्थ्य की तरह ही महत्वपूर्ण है।

देश के विविध भागों के एक स्थान पर जब एक समय में बहुत लोग पहुँचते हैं तो ऐसा अवसर, स्वर्ण अवसर होता है। व्यापारी लोग अपनी वस्तुएँ उस वृहद् जन समूह के हाथों बेचते हैं, ग्राहक लोग उन एकत्रित व्यापारियों से नई-नई वस्तुएँ देखते हैं और दुष्प्राप्य चीजों को सुविधापूर्वक खरीद लेते हैं। इससे देश की व्यापारिक, औद्योगिक एवं आर्थिक स्थिति मजबूत होती है। आगन्तुक लोग एक ही स्थान पर विविध प्रदेशों की विभिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। एक-दूसरे से परिचय, संपर्क और हेल-मेल बढ़ा सकते हैं। कोई प्रचारक अपने विचारों को एक स्थान पर रहकर भी अनेकों व्यक्ति में फैला सकता है। जन संपर्क के इस स्वर्ण संयोग से आगन्तुकों को लाभ पहुँचे इस दृष्टिकोण से तीर्थों में अनेकों प्रकार के आयोजन होते थे। कला, प्रदर्शनी, संगीत, वक्ता, कीर्तन, प्रवचन, सत्संग, सभा, सम्मेलन, अभिनय, आदि द्वारा उपयोगी ज्ञान सामग्री प्राप्त करने की आगन्तुकों को यहाँ अनेक सुविधाएँ होती थीं।

तीर्थपुरोहित--पण्ड्या(सद्बुद्धि के भंडार)--तपस्वी विद्वान, बुद्धिमान, पथ प्रदर्शक, ऋषि कल्प, निस्पृह, ब्रह्मवेत्ताओं के आश्रमों में जाकर यात्री लोग ठहरते थे। इन स्थावर और जंगम दोनों ही प्रकार के तीर्थों में स्नान करने से यात्री का तन और मन, स्वस्थ, पुष्ट, चैतन्य एवं प्रफुल्लित हो जाता था। भूमि पर मंदिर जलाशय आदि के रूप में स्थिति स्थावर तीर्थ हैं और ऋषि, तपस्वी, परोपकारी, उच्च आत्मा वाले महापुरुष जंगम तीर्थ कहे जाते हैं। शास्त्रकारों ने स्थावर तीर्थ से भी जंगम तीर्थों का महात्म्य अधिक विस्तारपूर्वक बताया है। तीर्थ यात्रा में दोनों ही प्रकार के तीर्थों का समन्वय होता था। अतएव शारीरिक और बौद्धिक दोनों ही दृष्टियों से वहाँ जाने वालों को समुचित लाभ मिल जाता था।

जीवन की व्यावहारिक कठिनाइयों को सुलझाने के लिए वे तीर्थ पुरोहित महत्वपूर्ण पथ प्रदर्शन करते थे। उन्हें विविध स्थानों की सुविस्तृत जानकारी होती थी । फलस्वरूप बेटी बेटों के विवाह विविध स्थानों की,फसल, व्यापारिक स्थिति, जीविका, शिक्षा, चिकित्सा आदि अनेकों विषयों में इन तीर्थ केन्द्रों पर पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो जाती थी औन उन जानकारियों के आधार पर ऐसे ऐसे लाभ होते थे जो यात्रा में लगे समय तथा पैसे की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान होते थे। यात्री लोग अनेक दृष्टियों से इतने लाभ में रहते थे कि सांसारिक व्यापारिक बुद्धि से देखने पर भी तीर्थ यात्री फायदे में रहते थे।

तीर्थ स्थानों के ऐतिहासिक महत्व भी हैं, उन स्थानों पर हमारे पूर्वज महापुरुषों के पुनीत चरित्रों का सीधा संबंध है। यह स्थान उन महापुरुषों की महत्वपूर्ण घटनाओं की स्मृति दिलाते हैं जिससे दर्शक को प्रेरणा, प्रोत्साहन, जीवन, बल, साहस, तथा प्रकाश मिलता है। इतिहास स्वयं जीवन निर्माता है। अतीत काल के अनुभवों से भविष्य निर्माण का अत्यन्त घनिष्ठ संबंध है। पुस्तकों में अंकित इतिहास की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपेक्षा उन संबंधित स्थलों के स्मृति चिह्नों के आधापर पर पढ़ा हुआ इतिहास अधिक प्रेरणा-प्रद होता है, अधिक हृदयंगम बन जाता है।

तीर्थों की स्थापना इस प्रकार की गई है कि देश में महत्वपूर्ण भागों की यात्रा छूटने न पावे। चारों धाम (बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वर तथा द्वारिका) देश के चार कोनों पर स्थित है। इनकी यात्रा करने वाले को सारे देश की परिक्रमा करनी पड़ती है और भारत की समस्त संस्कृतियों, नीति नीतियाँ, भाषाओं तथा भावनाओं के सम्पर्क में आना पड़ता है, ज्योतिर्लिंगों, पुरियों, पुण्य सरितासरों, एवं क्षेत्रों की यात्रा का क्रम भी ऐसा ही है जिनकी यात्रा में बड़े महत्व पूर्ण भूखंडों, का संपर्क होता है। यह संपर्क देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा बौद्धिक उन्नति के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है।

मानवीय विद्युत विज्ञान की दृष्टि से यह सिद्ध है कि जिन स्थानों में विशिष्ट आत्मबल वाले महापुरुष निवास करते हैं वहाँ का वातावरण उनकी आत्म विद्युत से भर जाता है। जहाँ कोई अहिंसा की साधना वाले तेजस्वी महात्मा निवास करते हैं वहाँ का वातावरण ऐसा शान्तिदायक हो जाता है कि गौ और सिंह आपस में प्रेम पूर्वक निर्भय होकर रहते हैं। अपना स्वाभाविक बैर भाव भूल जाते हैं। इस प्रकार जहाँ कोई अवतारी, कलाधारी, अलौकिक आत्माएं रही हैं वहाँ का वातावरण भी उनके दिव्य तेज से भर जाता है और वह बहुत समय तक उन आत्माओं के चले जाने के चिरकाल पश्चात् तक बना रहता है। तपस्वी महात्मा अपनी तपश्चर्या के लिए प्रायः ऐसे स्थानों को चुना करते हैं जहाँ इस प्रकार के आत्म तेज पूर्वकाल से ही विद्यमान हों। क्योंकि इससे उनको बल प्राप्त होता है, साधना के विघ्नों से अनायास ही बहुत अंशों में छुटकारा मिलता है। इस परम्परा के अनुसार एक उन स्थानों पर एक-एक करके अनेकों महात्माओं के आत्म तेज के परत जमा होते जाते हैं। उस भूमि, जल, वायु, आकाश में वह दिव्य तेज भरा रहता है। कल्प कल्पान्त से असंख्य महात्माओं, अवतारी पुरुषों का सुदृढ़ आत्म तेज जिन स्थानों में पाया गया है वह त्तवदर्शी मनीषियों से तीर्थ स्थापित किये हैं। वस्तुतः वह स्थान "सिद्धपीठ" हैं। वहाँ के वातावरण में सुलभता से सिद्ध प्रदान करने वाले त्तव भरे रहते हैं। इन त्तवों के प्रभाव से अध्यात्म मार्ग के पथिकों को असाधारण सफलता प्राप्त होती है। जिस प्रकार वृक्ष की छाया में बैठने से सभी प्रकार के लोागों को शीतलता अनुभव होती है उसी प्रकार इन सिद्धपीठों की छाया में पदार्पण करने से सुख शान्ति एवं संकट निवारण की आशीर्वादात्मक भावनाएँ सुलभतापूर्वक हर एक को प्राप्त होती हैं। कभी-कभी तो ऐसे अप्रत्याशित लाभ लोगों को मिलते देखे जाते हैं जिन्हें दैवी कृपा, तीर्थ महात्म्य, या पूर्व पुण्यों का फल, या क्या नाम दिया जाय यह समझ नहीं आता।

यह ठीक है कि वर्तमान काल में तीर्थों की स्थिति बड़ी लज्जाजनक हो गई है। वहाँ अनाचार, व्यभिचार, ठगी, धूर्तता, आदि का बोलवाला है। इस सच्चाई से कोई इनकार नहीं कर सकता। संसार व्यापी अनैतिकता से तीर्थ भी अछूते नहीं रहे हैं। हर क्षेत्र में काम करने वाली बुराइयाँ तीर्थों में भी घुस पड़ी है। चोर, ठग, धूर्त, बेईमान, उठाईगीरे, व्यभिचारी, पाखण्डी, लोभी, नीच, निर्लज्ज व्यक्ति धर्म की खाल ओढ़कर इन पुनीत स्थानों में कुछ से कुछ बन जाते हैं। हत्यारे, डाकू, चोर तथा अनेक भयंकर प्रकार के अपराधी अपनी सुरक्षा के लिए तथा जीविका की सुविधा के लिए साधु संत बन जाते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणत्व एवं पौरोहित्य गुणों से रहित व्यक्ति ब्राह्मणों के वेष ओढ़कर जनता को ठगते हैं। सच्चे ब्राह्मणों तथा महात्माओं की कमी तथा धूर्तों की बढ़ोत्तरी ने आज तीर्थों को बदनाम कर दिया है। उन्हें अब धूर्तता, बदमाशी, ढोंग और लूट का घर समझा जाने लगा है। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए जनता की यह मान्यता उचित भी है। यह सब होते हुए भी तीर्थों की आधारशिला एक बड़े उपयोगितावाद के ऊपर खड़ी होने के कारण उनका महत्व पूर्णतया किसी भी प्रकार नष्ट नहीं हो सकता।

विषधर सर्प लिपटे रहने से चन्दन का वृक्ष त्याज्य नहीं माना जाता, काँटेदार डाली पर लगा हुआ गुलाब का फूल निन्दित नहीं होता, गंदी नालियाँ गिरने पर भी गंगाजी की महिमा मिट नहीं जाती, कुछ स्वार्थी धूर्त एवं दुश्चरित्र लोगों की उपस्थिति के कारण तीर्थों की महिमा समाप्त नहीं हो सकती। हानिकारक विकार उत्पन्न होने पर उन विकारों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूर करना चाहिए, उन विकारों के भय से मूल वस्तु को त्याग बैठना बुद्धिमत्ता नहीं। जुओं के भय से न तो कोई कपड़े फेंक देता है और न सिर के बाल घुटा डालता है, खटमलों के भय से चारपाई पर सोना कोई नहीं त्यागता। कुछ स्वार्थियों की दुष्टता के कारण तीर्थों की उपयोगिता से इंकार नहीं किया जा सकता। उनके द्वारा होने वाले लाभ इतने अधिक गंभीर एवं महान हैं कि इस छोटे से कारण की वजह से वे उपेक्षणीय नहीं हो सकते।

तीर्थों में दोष उत्पन्न हो गये हैं उन्हें सुधारना चाहिए। (१) दर्शनीय स्थानों को स्वच्छ, शुद्ध एवं स्वास्थ्यप्रद बनाया जाना चाहिए। (२) भीड़ में स्त्रियों से कुचेष्टा करने वालों, जेबकटों, उठाईगीरों, ठगों तथा पाखण्डियों को रोकने का प्रयत्न होना चाहिये। (३) मन्दिरों में जमा तथा चढ़ावे के रूप में चढ़ने वाली सम्पत्ति का अधिकांश भाग लोक हितकारी सार्वजनिक कार्यों में व्यय होना चाहिए। (४) निस्वार्थ, सेवाभावी, निर्लोभ, विद्वान, सच्चे, सदाचारी एवं सहृदय पण्डा पुरोहितो से ही सम्पर्क रखना चाहिये। (५) दान देते समय पात्र कुपात्र का पूरी तरह अन्वेषण कर लेना चाहिए। (६) यात्रियों को अतिथि देव समझकर उनकी समुचित सेवा सहायता करने वाली सेवा-सम्मितियाँ होनी चाहिये। (७) सच्चे विद्वान ब्राह्मणों की तीर्थों में ऐसे आश्रम स्थापित करने चाहिये जहाँ जिज्ञासुओं को आत्मिक क्षुधा बुझाने के लिए सच्चा बौद्धिक भोजन मिल सके। (८) हर तीर्थों में वहाँ का परिचय देने वाली पुस्तकें ऐसी सस्ते मूल्य की पुस्तकें उपलब्ध होनी चाहिए जिसमें वहाँ के ऐतिहासिक तथ्यों का तर्कसंगत विज्ञान बुद्धि के साथ शिक्षात्मक ढंग से वर्णन हो। (९) देव मन्दिरों में वेजीटेबिल घी, विदेशी वस्त्र, चर्बी की मोमबत्ती आदि अपवित्र पदार्थों का उपयोग न किया जाय। (१०) यात्रियों के लिये तीर्थ हर दृष्टि से उपयोगी बन सकें, ऐसी व्यवस्था करने वाली शिक्षण शालाएँ तथा संस्थाएँ खुलनी चाहिए। (११) पैदल तीर्थ यात्रा को प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

इस प्रकार के सुधार होने से तीर्थों की वास्तविक महिमा पुनः उज्ज्वल हो सकती है। जो दोष दृष्टिगोचर हों उनका संशोधन करते हुए तीर्थों की उपयोगिता का हम सबको लाभ उठाना चाहिए।

५- कथा कहने और सुनने की पद्धति

भारतीय संस्कृति में कथा कहने और सुनने का बड़ा महत्व माना गया है। हमारे यहाँ पुराण, उपनिषद्, महाभारत, भागवत, रामायण आदि के साथ संयुक्त छोटी-छोटी अनेक उपदेश कथाएँ हैं। प्रायः हिन्दू व्रत त्यौहारों के अवसरों पर इन्हें कहने का विशेष महात्म्य माना गया है। प्रत्येक कथा कहानी का निर्माण किसी उद्देश्य विशेष को सम्मुख रखकर किया गया है। वृद्ध सज्जन प्रायः इन्हें बच्चों को सुनाया करते हैं, जिससे हिन्दू बालकों में बचपन से ही सात्विक संस्कार जम जाते हैं। सत्य बोलना, वचन का पालन करना, कठोर परिश्रम से सिद्धि, दृढ़ संकल्प की महत्ता, दानशीलता, प्रेम, सहानुभूति, सेवा और सहयोग, पात्यत्रत्य या पत्नीव्रत, न्यायशीलता आदि को स्पष्ट करने के लिए भारतीय ऋषियों ने बड़ी ही सुन्दर बोधगम्य कहानियों का निर्माण किया है। आज भी ये कथाएँ अनेक स्थानों पर सुनी जाती हैं।

कथा कहने वाला और सुनने वाला दोनों ही पुण्य के भागी माने गये हैं। जब कोई व्यक्ति उपदेश प्रधान, कल्याणकारी कथा कहता है, तो कुछ देर के लिए उसकी मानसिक भूमि में समग्र कल्याणकारी, विश्व-हितकारी भावनाएँ और विचारों का एक वातावरण बनता है। कुछ देर के लिए वह स्वयं कथा के पात्रों के साथ घुल-मिलकर तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। उसका अलग कोई व्यक्तिव नहीं रह जाता। इसलिए वे सद्गुण उसके ऊपर जादू जैसा प्रभाव डालते हैं। संगति का व्यापक प्रभाव होता है। देव-पूजा, देव आराधना से संयुक्त इन पवित्र गाथाओं के सत्संग से कहने तथा सुनने वाले की आत्मा शुद्ध होती है, उनके ऊपर समाज के कुसंस्कार नष्ट हो जाते हैं, मनोविकार घटते हैं और कथाओं के शुभ संकल्प मजबूत बनते हैं।

प्रत्येक हिन्दू धार्मिक कथा का गुप्त तात्पर्य आत्म-कल्याण है, इसी में पवित्र विचारों को सर्वत्र प्रधानता दी गई है। इनमें ऐसे-ऐसे रोचक त्तव भरे पड़े हैं कि सुनने वाला बड़ी उत्सुकता से कथा को सुनता जाता है। स्त्रियाँ तो इसमें बेहद दिलचस्पी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेती हैं। वास्तव में ये हिन्दू ऋषियों के मस्तिष्क के चमत्कार ही हैं, जिनमें ज्ञान, उपदेश, भक्ति, दान, तप, कर्म की सद् शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं। मनुष्य के असुरत्व को घटाकर उसमें देवत्व की, न्याय की, सतोगुण की, धर्मपक्ष की प्रवृत्ति उत्पन्न करना, ठीक दिशा में कदम आगे बढ़वाना और सत्य से लड़ना या उसका विरोध करने के लिए सदा त्तपर बनना, इन कथाओं का उद्देश्य है।

इस पद्धति से अच्छा कल्याणकारी वातावरण उत्पन्न होता है और नारियों के चरित्र-निर्माण में इनका विशेष महत्व है। आवश्यकता इस बात की है कि इन सब धार्मिक लोक कथाओं को एकत्रित कर इनके सस्ते सर्वसुलभ संस्करण तैयार कराये जायँ और स्कूलों में इनका व्यापक प्रचार किया जाय। इनकी भाषा सरल और बोधगम्य रखी जाय जिससे हमारे ग्रामीण भाई भी इन्हें आसानी से समझ सकें।

हमारे पुराणों में जो छोटी-छोटी कथाएँ हैं, उनमें भारतीय संस्कृति का खजाना छिपा हुआ है। अनेक प्रकार के उच्च कोटि के उपदेश, ज्ञानसूत्र, प्रतीक, उपयोगी त्तव इनमें भरे पड़े हैं। हमारे पुराणों में हमारे उन पूर्वजों की यशोगाथाओं का संग्रह है, जिनसे हमारा संस्कारों और रक्त का सम्बन्ध है। वे स्वभावतः हमें प्रिय हैं। उनका प्रभाव केवल हमारे मस्तिष्क पर ही नहीं, हृदय पर भी पड़ता है। यदि हम पुराणों की कथाओं को ही सुनाएँ, तो उन अलौकिक कथाओं के साथ ऐसी कथाएँ भी सुनने को मिलती हैं, जो हमारे अन्धकारमय जीवन में प्रकाश उत्पन्न करती हैं और इतिहास की कसौटी पर भी सत्य उतरती हैं। पुराण स्वयं अपने पाठकों की त्रुटियों को पहचानते और शंकाओं का समाधान करते हैं। उनकी कथाओं को कह और सुनकर जो आनन्द और उच्च जीवन के लिए प्रेरणा मिलती है, वह वर्णनातीत है। पौराणिक गाथाएँ तो हमारे वे भण्डार हैं, जिनमें छोटी से छोटी वस्तु से लेकर बड़ी से बड़ी वस्तु एक स्थान पर सरल ढंग से सजा कर रख दी गई है। हम उनके एकमात्र अधिकारी हैं। फिर यदि हम उनकी उपेक्षा करते हैं, तो यह हमारा दुर्भाग्य ही है।

६- देववाद (परमात्मा की नाना शक्तियों के प्रतीक)

भारतीय संस्कृति में नाना देवी-देवताओं का विधान है। ईश्वर वह त्तव है जिससे इस विस्तृत प्रकृति का कार्य नियमपूर्वक चलता है, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र सब अपना-अपना निर्धारित कार्य पूरी नियमित्ता से करते हैं, तनिक भी अन्तर नहीं पड़ता । दिन, रात या मौसमों, बचपन, यौवन, वृद्धावस्था आदि सभी के क्रम ठीक-ठीक तरह चलते रहते हैं। ईश्वर की ये कृतियाँ पुकार-पुकार कर अपने निर्माता की साक्षी दे रही हैं।

ईश्वर-तत्त्व केवल निर्माता या पालनकर्ता ही नहीं है, उसके नाना गुण हैं, नाना शक्तियाँ हैं। ईश्वर की निर्माण करने वाली शक्तियों को पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश आदि पाँच भूतों के नाम से पुकारा जाता है। इनसे जड़ पदार्थों की रचना होती है। सजीव रचना को प्राणी जगत कहते हैं। जड़ और चेतन इन दो नामों में सृष्टि विभक्त है। चेतन प्राणियों में जीवन बनाए रखना, उन्नति करना तथा आनन्द भोगना—ये चेतन सृष्टि के तीन गुण हैं, जिन्हें सत्, चित्, आनन्द नाम से पुकारते हैं। जड़—जगत की रचना पंच भूतों की क्रियाशीलता है, वैसे ही चेतन-जगत की मूल प्रकृति सत्, चित्, आनन्द त्तवों के कारण से है। जड़ और चेतन दोनों ही पक्षों की रचना करने वाले यह पृथक-पृथक त्तव मूल रूप से एक ही ईश्वर-तत्त्व की धाराएँ हैं। ईश्वर-तत्त्व हर एक स्थान पर व्यापक है, अणु—अणु में व्याप्त है, पर जहाँ सत्य, प्रेम, विवेक, सदाचरण हैं, वहाँ ईश्वर-तत्त्व विशेष रूप से विद्यमान है। धर्मात्मा, मनस्वी, उपकारी, विवेकवान् और तेजस्वी व्यक्तियों में ईश्वर-तत्त्व की अधिकता के कारण ही उन्हें 'अवतार' कहा जाता है। ईश्वर-तत्त्व लाभप्रद है। मानव तथा पशु समाज दोनों के लिए समान रूप से कल्याणकारी है। इसी को हम यों भी कह सकते हैं, कि जो-जो पशु या प्राणी कल्याणकारी त्तवों से भरे हुए हैं, उन्हें ईश्वर त्तव के अधिक समीप मानना चाहिए। अन्य पशुओं की अपेक्षा गौ में तथा अन्य जातियों की अपेक्षा हिन्दू में, अन्य वर्णों की अपेक्षा ब्राह्मण में उपकारी तत्त्व अधिक होने से इनको ईश्वर-शक्ति से भरपूर माना गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कम बुद्धि वाले व्यक्तियों को ईश्वर जैसी आद्य बीज-शक्ति के भेद-विभेदों को समझाना कठिन है। एक ही स्थान पर इतने प्रकार के त्तव कैसे रह सकते हैं ? इस गुप्त भेद को समझाने के लिए भारतीय अध्यात्म वेत्ताओं ने साधना के सरल मार्ग निकाले हैं। साधना में ध्यान-योग प्रधान है। मनोविज्ञान के अनुसार ध्यान उसी वस्तु का हो सकता है, जो स्थूल हो, जिसे हम अपनी पाँचों इन्द्रियों (विशेषतः नेत्रों) से अनुभव कर सकें। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में ध्यान के लिए रूप का स्थान सर्वोपरि है। जिसे हम अपनी आँख से देख सकें, उस पर हम अपना ध्यान देर तक जमाये रह सकते हैं। आचार्यों ने मनोविज्ञान के उपर्युक्त मर्म का ध्यान रखते हुए ईश्वर के रूप की कल्पना की है। चूँकि साधना करने वाले मनुष्य हैं, मनुष्य के रूप को ही सबसे श्रेष्ठ समझते हैं, ईश्वर के लिये उन्नतिशील मनुष्य के रूप की ही कल्पना की गई है। राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, गणेश, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि मनुष्य रूपधारी ईश्वर नाना शक्तियों की प्रतिमाएँ बनाई गई। इन भिन्न-भिन्न ईश्वरीय प्रतिमाओं को हम देवी-देवता कहते हैं। करोड़ों देवी-देवता हैं। वास्तव में ये पृथक सत्ताऐं न होकर एक ईश्वर की ही प्रतीक हैं। ध्यान योग के लिए इन असंख्य देवताओं की मूर्तियों का निर्माण हुआ है।

जब हम ध्यान करने बैठते हैं, तो किसी देवी-देवता की काल्पनिक मूर्ति को मन में आधार रूप से जमा लेते हैं। उच्च शक्तियों से पूर्ण आदर्श मानसिक मूर्ति की सहायता से हमारा ध्यान अच्छी तरह जम जाता है। अधिक दिन साधन-पूजा और ध्यान-साधना से उन्ही गुणों का विकास साधक में होने लगता है। मूर्ति-पूजा उन साधकों के लिए विशेष उपयोगी है, जो अल्प बुद्धि के कारण निराकार ईश्वर का चिंतन नहीं कर पाते। मूर्ति-पूजा से हम मानसिक उन्नति कर सकते हैं और ऐसी-ऐसी शक्तियों को मन में बसा सकते हैं, जो प्रारम्भ से हम में न हों।

जब हम हिंदू देवी-देवताओं को किसी भी मूर्ति को चुन कर उसकी गुप्त शक्तियों पर ध्यान करने का आग्रह करते हैं, तो हमारा तात्पर्य केवल यही होता है कि इन्हें आधार मानकर चलना चाहिए। धातु, पत्थरों या चित्रों को ईश्वर कदापि नहीं मानना चाहिए। ये चित्र और हिंदू देवमूर्तियाँ तो आपके लिए निराकार ईश्वर-तत्त्व के आधार मात्र हैं। आपके चिंतन में सहायक हैं। प्रत्येक मूर्ति का जो निहित तात्पर्य है, शक्तियों के जो-जो गुप्त भण्डार उनमें स्पष्ट किए गए हैं, उन पर चिंतन करने से वे ही दिव्य गुण मनुष्य में स्वतः विकसित हो जाते हैं। देववाद हमारे व्यक्तिव को दिव्य गुणों से ओत-प्रोत करने और प्रभावशाली बनाने का एक प्रतीकवादी मनोवैज्ञानिक साधन है। हमारे ऋषि-मुनियों ने ईश्वर की प्रत्येक गुप्त शक्ति को देवताओं तथा देवियों के प्रतीकों से चित्रित कर दिया है। ऐसी प्रतीक पद्धति अन्य धर्मों में कहीं भी नहीं पाई जाती। हिन्दू धर्म साधारण बुद्धि और योग्यता वाले साधकों के लिए भी इसीलिए उपयोगी और बुद्धि की पहुँच के भीतर है। देवी-देवताओं के पूजन से प्रारम्भ कर साधक धीरे-धीरे देवताओं की शक्तियों पर मानस नेत्र केन्द्रित करता है और अपने व्यक्तिव का नए ढंग से विकास करता है।

कालान्तर में लोग देवताओं की इन मूर्तियों के प्रतीक को भूल गए। किस-किस देव-मूर्ति का क्या गुप्त अर्थ है, इसे समझने की चेष्टा भी नहीं की गई। ब्राह्मणों ने इस दिशा में कुछ भी विशेष प्रयत्न न किया। फल यह हुआ कि यह पूजा केवल ढकोसला मात्र रह गई। धीरे-धीरे जनता प्रतीकों का गुप्त अर्थ भी भूलती गई। हमारी देव मूर्तियाँ केवल खिलौने मात्र रह गईं। आज भी देववाद की यही दुर्गति है। अस्थिर और अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति उनके प्रतीकों का अर्थ न समझ कर उन्हें कौतूहल की वस्तु समझते हैं। दूसरे धर्म वाले उनको उपहासास्पद मान बैठते हैं। यह नासमझी के कारण ही हुआ है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक भारतीय स्वयं इन प्रतीकों का अर्थ समझे और वाणी द्वारा अपने भाई-बहिनों को उसका अर्थ समझावे। हमें यह मानकर चलना चाहिए कि देववाद का आधार मनोवैज्ञानिक है, पूरे-पूरे आधारों पर टिका हुआ है, तथ्यपूर्ण है और सर्वथा मान्य है। इसके स्पष्टीकरण मात्र की जरूरत है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देव-पूजा का विधान

भारतीय संस्कृति देव–पूजा में विश्वास करती है। 'देव' शब्द का स्थूल अर्थ है 'देने वाला', ज्ञानी, विद्वान आदि श्रेष्ठ व्यक्ति। देवता हमसे दूर नहीं है, वरन् पास ही हैं। हिंदू धर्मग्रन्थों में जिन तेंतीस करोड़ देवताओं का वर्णन किया गया है, वे वास्तव में देव-शक्तियाँ हैं। ये ही गुप्त रूप से संसार में नाना प्रकार के परिवर्तन, उपद्रव, उत्कर्ष उत्पन्न करती रहती हैं।

हमारे यहाँ कहा गया है कि देवता ३३ प्रकार के हैं, पितर आठ प्रकार के हैं, असुर ६६ प्रकार के, गन्धर्व २७ प्रकार के, पवन ४६ प्रकार के बताए गए हैं। इन भिन्न-भिन्न शक्तियों को देखने से विदित होता है कि भारतवासियों को सूक्ष्म-विज्ञान की कितनी अच्छी जानकारी थी और वे उनसे लाभ उठाकर प्रकृति के स्वामी बने हुए थे। कहा जाता है कि रावण के यहाँ देवता कैद रहते थे, उसने देवों को जीत लिया था।

हिंदुओं के जो इतने अधिक देवता हैं, उनसे यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने मानवता के चरम-विकास में असंख्य दैवी गुणों के विकास पर गम्भीरता से विचार किया था। प्रत्येक देवता एक गुण का ही मूर्त रूप है। देव-पूजा एक प्रकार से सद्गुणों, उत्तम सामर्थ्यों और उन्नति के गुप्त त्तवों की पूजा है। जीवन में धारण करने योग्य उत्तमोत्तम सद्गुणों को देवता का रूप देकर समाज का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया गया। गुणों को मूर्त स्वरूप प्रदान कर भिन्न-भिन्न देवताओं का निर्माण हुआ है। इस सरल प्रतीक पद्धति से जनता को अपने जीवन को ऊँचाई की ओर ले जाने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ।

आप चाहे जिस हिन्दू देवी-देवता की पूजा-आराधना करें, वह उसी जगत नियन्ता की एक शक्ति का रूप है। वह देवत्व का एक पहलू है जो आपके व्यक्तित्व में विकसित होकर आपको सामर्थ्यवान् बना सकता है।

''आरोग्यं भास्करादिच्छेत्
धनामिच्छेदधुताशनात्।
ज्ञान च शंकरादिच्छेत्
मुक्तिमिच्छेत जनार्दनात्।।

अर्थात्– ''आरोग्य की कामना सूर्यनारायण से करें, धन की इच्छा हुताशन (अग्निहोत्र) से पूरी करें। ज्ञान के लिए शंकर जी की आराधना करें और मुक्ति के लिए जनार्दन का आश्रय ग्रहण करें।''

इस श्लोक का स्थूल अर्थ तो यही है कि अमुक-अमुक अभिलाषा के लिए अमुक-अमुक देवता की पूजा, आराधना, चिंतन इत्यादि करे। पूजा-अर्चा का साधारण अर्थ हम लोग गन्ध, अक्षत, धूप, दीप, पुष्प, नैवेद्य, ताम्बूल, अर्घ्य, स्तोत्र, नमस्कार आदि ही समझते हैं और इतना कर्मकाण्ड कर लेने मात्र से यह आशा करते हैं कि देवता लोग प्रसन्न होकर हमें मनोवांछित वस्तुएँ प्रदान कर देंगे। परन्तु हम देखते हैं कि अनेकों मनुष्य इस प्रकार की ऊपरी पूजा-अर्चाओं में बहुत समय तक लगे रहते हैं, तो भी उनकी इच्छाएँ पूर्ण नहीं होती हैं। ऐसी दशा में उपर्युक्त शास्त्र वचन की सत्यता पर सन्देह सा होने लगता है।

गम्भीर दृष्टि से देखा जाय, तो इस वचन में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। असफलता का कारण हमारा एकांगी दृष्टिकोण है।

हम समझते हैं कि हिंदू देवताओं को प्रसन्न करने के लिए धार्मिक कर्मकाण्ड की पूजा-पत्री ही पर्याप्त है, पर वास्तविक बात ऐसी नहीं हैं, हिंदू देवी-देवताओं का वास्तविक रूप समझना चाहिए। प्रत्येक देवी-देवता का एक व्यावहारिक रूप है, जो हमारे दैनिक जीवन में कर्म पर निर्भर है। ये देवता हमसे यह माँग करते हैं कि हम उन्हें प्रसन्न करने के लिए इस जगत में ठोस कर्म करें, उनके द्वारा दिखाई हुई दिशा में परिश्रम करें, अपने उद्देश्य में तन्मय हो जायें, संक्षेप में अपने मन वचन से इनमें अपने को नियोजित कर दें, तभी सच्ची पूजा सम्भव हो सकती है। कर्म से प्रसन्न होकर ही ये देवता मनोवांछित फल दिया करते हैं । ये कार्य शक्तियों के प्रतीक हैं। जब हम किसी मनोवांछित देवता को चुनें तो हमें उसके व्यावहारिक मनोरूप को अवश्य समझ लेना चाहिए।

उदाहरण के लिए सूर्य देवता से हम आरोग्य, बल, स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन की कामना करें। इसका व्यावहारिक अर्थ यह है कि हम सूर्य की किरणों,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाश, वायु, खुला जीवन से घनिष्टता रखें। शरीर को प्रकृति के सहयोग में आने दें। प्राकृतिक जीवन जियें। बदन को कपड़ों से ऐसा न लपेट लें कि त्वचा तक प्रकाश और वायु ही न पहुँच सके। सूर्य को "नारायण" विशेषण दिया गया है, जिसका गुप्त तात्पर्य यह है कि उसकी किरणों में जीवनदायी शक्तियाँ हैं ये रोग के कीटाणुओं को मारने की प्रचण्ड शक्ति रखती हैं, जितनी किसी बहुमूल्य दवाई में भी नहीं मिल सकती। जो व्यक्ति प्रकृति से निकट सम्पर्क रखते हैं और खुली धूप, वायु प्रकाश आदि में कार्य करते हैं, वे दीर्घजीवी और निरोग रहते हैं। कहा भी है कि "जहाँ धूप और हवा नहीं पहुँचती, वहीं डाक्टर पहुँचते हैं।" प्रकृति के फल–फूल, जीवों को देखिए। फल, वनस्पति, वृक्ष आदि का जो भाग धूप से सीधा सम्बन्ध रखता है, वहाँ प्राण शक्ति अधिक पाई जाती है। फलों के, शाक-भाजियों के, अन्नों के छिलके सूर्य-किरणों के सीधे सम्पर्क में आते हैं। इसलिए भीतरी भाग की अपेक्षा उनके छिलकों में पोषक त्तव (विटामिन) अधिक पाये जाते हैं। सूर्य-स्नान, सूर्य किरण चिकित्सा, सूर्य-नमस्कार, सूर्य-सेवन, सूर्य-उपासना, सूर्य-महात्म्य आदि सभी का चिकित्सा पद्धतियों और वैद्यक में बड़ा महत्व माना गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि सूर्य के इन असंख्य लाभों को देखकर ही हिंदू तत्त्वज्ञानियों ने सूर्य को "नारायण" का दिव्य विशेषण प्रदान किया है। सूर्य शक्ति को जीवन में अधिक से अधिक व्यवहार करना यही सूर्य-पूजा है, जिससे आरोग्य की वृद्धि होती है।

हुताशन–अग्निहोत्र–का वास्तविक अर्थ है– "साहसपूर्ण त्याग"। अग्निहोत्र में पहले हम अपनी मूल्यवान हवन–सामग्री श्रद्धापूर्वक हवन करते हैं, तब उस यज्ञ का फल मिलता है। जो व्यक्ति कठिन श्रम, जिम्मेदारी, ईमानदारी तथा जोखिम उठाने के लिए तैयार रहते हैं, वे ही धन कमा पाते हैं। भाग्य के भरोसे बैठे रहने वाले, आलसी, साहसहीन, व्यक्ति कोई ऊँचा काम नहीं कर सकते और न धन कमा सकते हैं। किसान अपना अन्न खेत में बिखेर देता है, धैर्यपूर्वक छः महीने खेत को अपने पसीने से सींचता रहता है, एक बीज के बदले सौ बीज उसे मिलते हैं। साहसी पुरुषों के गले में लक्ष्मी की जयमाला पड़ते देखी जाती है। धैर्यवान, अग्नि तप सा कठोर परिश्रम करने वाले, अपने कारोबार पर एकाग्र चित्त से श्रद्धा रखने वाले लोग सफलता प्राप्त करते हैं। यही अग्नि-पूजा का वास्तविक व्यावहारिक स्वरूप है। जो व्यक्ति अग्नि देवता की पूजा का विधान समझता है उसे अग्नि जैसा कठोर तप करना चाहिए।

ज्ञान के लिए शंकर भगवान की आराधना का विधान है। शिवशंकर संयमी, निस्पृह, त्यागी, योगस्थित (एकाग्रचित्त), उदारमना हैं। शंकरजी के इन गुणों को अपने चरित्र तथा दैनिक कार्यों में प्रकट करने वाले व्यक्ति ही सच्चे अर्थों में ज्ञानवान बनते हैं। उन्हें तत्त्व-दर्शन प्राप्त होता है। असंयमी, ममताग्रस्त, लोभी, डांवाडोल चित्त वाले, अनुदार वृत्तियों वाले लोग शिक्षा की उत्तम व्यवस्था होने पर भी अधूरा और उल्टा ज्ञान ही प्राप्त करते हैं। वह ज्ञान नहीं, एक प्रकार का अज्ञान है, जिससे उनमें असत्य, छल, अपहरण, शोषण, अहंकार, असंयम जैसे दुर्गुणों की वृद्धि होती है। जिनमें शंकर त्तव की स्थिति मौजूद है, वे कोई गुरु न होते हुए भी एकलव्य की तरह मिट्टी की मूर्ति को गुरु बना लेते हैं, कबीर की तरह गुरु की बिना जानकारी में ही दीक्षा ले लेते हैं। दत्तात्रेय की तरह मकड़ी, मक्खी, कौवे, कुत्ते जैसे निम्न कोटि के जीवों को गुरु बनाकर उनसे अपना ज्ञान भंडार भर लेते हैं। ज्ञान-प्राप्ति के लिए अपने अन्दर शंकर त्तव की स्थापना आवश्यक है। इसका यही व्यावहारिक रूप है।

मुक्ति के लिए जनार्दन की पूजा की जाती है। जनता-जनार्दन की पूजा को, लोक-सेवा को, अनेक त्तवदर्शियों ने मुक्ति का साधन माना है। प्राणिमात्र में समाये हुए सजीव भगवान की पूजा करना कितने ही महर्षियों ने निर्जीव प्रतिमा पूजा की अपेक्षा कहीं ऊँचा माना है। इस प्रकार लोक-सेवा, ईश्वर-पूजा ही ठहरती है, उससे मुक्ति का द्वार खुल जाता है।

हिन्दू देव-पूजा प्रत्यक्ष फलदायी साधना है। हिन्दू अपने चारों ओर प्रत्येक जीव, वृक्ष, पशु, मनुष्य सब में भगवान् को ही व्यापक देखता है। संसार के सब प्राणियों और अपने आस-पास के मनुष्यों को जनार्दनमय समझता है। ऐसा व्यक्ति गुप्त या प्रकट रूप से किसी के प्रति कोई बुराई नहीं कर सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसा सात्त्विक आचार और विचार वाला व्यक्ति अपने सतोगुण के कारण दूसरों को मुक्त करता और स्वयं जीवनमुक्त हो जाता है।

हमारी देव-पूजा में इसी प्रकार के गुप्त अभिप्राय कूट-कूट कर भरे हुए हैं। ये हमारे अन्दर छिपे हुए पौरुष एवं पराक्रम को जाग्रत करने के प्रतीक हैं। ये गुणों की स्थूल प्रतिमाएँ हैं। आज अज्ञानवश हिन्दू अपनी इन छिपी हुई शक्तियों को भूल गये हैं, अन्यथा इनमें ज्ञान, अध्यात्म, धर्म, विवेक, रसायन का अतुलित ज्ञान भंडार भरा हुआ है।

पंचदेवों का आध्यात्मिक रहस्य

सदा भवानी दाहिनी, सन्मुख रहे गणेश।
पांच देव रक्षा करें, ब्रह्मा विष्णु महेश।।

(१) ब्रह्मा-भगवान् के नाभि कमल से चतुर्मुख ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। शरीर के अन्यान्य अंगों में से नाभि के साथ सृष्टि कार्य का सम्बन्ध अधिक है, इसलिए परमात्मा की नाभि सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी का उत्पन्न होना विज्ञान सिद्ध है। कमल अव्यक्त से व्यक्त अभिर्मुखी प्रकृति का रूप है और उसी से ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मा जी प्रकृति के अन्तर्गत राजसिक भाव पर अधिष्ठान करते हैं, इसलिए ब्रह्माजी का रंग लाल है। क्योंकि रजोगुण का रंग लाल है।

''अजामेकां लोहितशुक्ल कृष्णाम्''

(श्वेताश्वनर उपनिषद्)

त्रिगुणमयी प्रकृति लोहित, शुक्ल और कृष्णवर्ण है। रजोगुण लोहित, सतोगुण शुक्ल और तमोगुण कृष्णवर्ण है। समष्टि–अन्तःकरण ब्रह्माजी का शरीर और उनके चार मुख माने गये हैं क्योंकि– मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार– ये अन्तः करण के चार अंग हैं। क्रियाकाल में ज्ञान की अप्रधानता रहने पर भी ज्ञान की सहायता बिना क्रिया ठीक-ठीक नहीं चल सकती है। इसलिए नीर-क्षीर विवेकी हंस को ब्रह्मा जी का वाहन माना गया है।

ब्रह्माजी की मूर्ति की ओर देखने से, उसमें निहित सूक्ष्म व स्थूल भावों पर विचार कर देखने से पता लग जायेगा कि प्रकृति के राजसिक भाव की लीला के अनुसार ही ब्रह्माजी की मूर्ति-कल्पना की गई है।

(२) विष्णु-विष्णुशास्त्रों में शेषशायी भगवान् विष्णु का ध्यान इस प्रकार किया गया है कि –

ध्यायन्ति दुग्धादि भुजंग भोगे, शयानमाधं कमलासहायम्।
प्रफुल्लनेत्रोत्पलमंजनाभ, चतुर्मुखेनाश्रितनाभिपद्म।
आम्नायगं त्रिचरणं घननीलमुद्यछ्रोवत्स कौन्तुभगदाम्बुजशंखचक्रम्।
हृत्पुण्डरीकनिलयं जगदेकमूलमालोकयन्ति कृतिनः पुरुषं पुराणम्।।

अर्थात्– भगवान् क्षीर 'सागर में शेषनाग पर सोये हुए हैं, लक्ष्मी रूपणी प्रकृति उनकी पादसेवा कर रही है, उनके नाभिकमल से चतुर्मुख ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई है, उनका रंग घननील है, उनके गलदेश में कौस्तुभ मणि विभूषित माला है, उनके चार हाथ हैं जिनमें शंख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित हैं–वे जगत् के आदि कारण तथा भक्त-जन हृत्सरोज बिहारी हैं।

इनके ध्यान तथा इनकी भावमयी मूर्ति में तन्मयता प्राप्त करने से भक्त का भवभ्रम दूर होता है।

क्षीर का अनन्त समुद्र सृष्टि उत्पत्तिकारी अनन्त संस्कार समुद्र है जिसको 'कारणवारि' करके भी शास्त्र में वर्णन किया है। 'कारणवारि' जन्म न होकर, संसारोत्पत्ति के कारण अनन्त संस्कार है।

संस्कारों को क्षीर इसलिये कहा गया है कि क्षीर की तरह इनमें उत्पत्ति और स्थिति विधान की शक्ति विद्यमान है। ये सब संस्कार प्रलय के गर्भ में विलीन जीवों के समष्टि संस्कार हैं।

अनन्त नाश अथवा शेषनाग अनन्त आकाश का रूप है जिसके ऊपर भगवान् विष्णु शयन करते हैं।

शेष भगवान् की सहस्रफण महाकाश की सर्वव्यापकता प्रतिपादन करती है, क्योंकि शास्त्र में ''सहस्र''शब्द अनन्तता-वाचक है।

आकाश ही सबसे सूक्ष्म भूत है, उसकी व्यापकता से ही ब्रह्म की व्यापकता अनुभव होती है और उससे परे ही परम-पुरुष का भाव है इस कारण महाकाशरूपी अनन्तशैया पर भगवान सोये हुए हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्मी अर्थात् प्रकृति उनकी पादसेवा कर रही है। इस भाव में प्रकृति के साथ भगवान का सम्बन्ध बताया गया है। प्रकृति रूपी माया परमेश्वर की दासी बनकर उनके अधीन होकर उनकी प्रेरणा के अनुसार सृष्टि, स्थिति, प्रलयंकारनी है।

इसी दासी भाव को दिखाने के अर्थ में शेषशायी भगवान की पादसेविका रूप से माया की मूर्ति बनाई गई है।

भगवान के शरीर का रंग घननील है। आकाश रंग नील है। निराकार ब्रह्म का शरीर निर्देश करते समय शास्त्र में उनको आकाश शरीर कहा है, क्योंकि सर्वव्यापक अतिसूक्ष्म आकाश के साथ ही उनके रूप की कुछ तुलना हो सकती है।

अतः आकाश शरीर ब्रह्म का रंग नील होना विज्ञानसिद्ध है।

भगवान के गलदेश में कौस्तुभ मणि विभूषित माला है। उन्होंने गीता में कहा है :—

मनः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय।
मुचि सर्वमिद प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव।।

भगवान की सत्ता को छोड़कर कोई भी जीव पृथक नहीं रह सकता, समस्त जीव सूत्र में मणियों की तरह परमात्मा में ही ग्रथित है। सारे जीव मणि हैं, परमात्मा सारे जीवों में विराजमान सूत्र है।

गले में माला की तरह जीव भगवान में ही स्थित हैं। इसी भावन को बताने के लिए उनके गले में माला है।

उक्त माला की मणियों के बीच में उज्ज्वलतम कौस्तुभमणि नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव कूटस्थ चैतन्य है।

ज्ञान रूप तथा मुक्तस्वरूप होने से ही कूटस्थरूपी कौस्तुभ की इतनी ज्योति है। माला की अन्यान्य मणियाँ जीवात्मा और कौस्तुभ कूटस्थ चैतन्य हैं।

यही कौस्तुभ और मणि से युक्त माला का भाव है।

भगवान के चार हाथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चतुर्वर्ग के प्रदान करने वाले हैं।

शंख, चक्र, गदा और पद्म भी इसी चतुर्वर्ग के परिचायक हैं।

शेषशायी भगवान विष्णु के साथ सर्व शक्तिमान् जगन्माता द्वारा सेवित, त्तवातीत और जीव को चतुर्वर्ग फल देने वाले भगवान का सम्बन्ध रहने से उनके भावों में चित्र विलीन करके भक्त लोग शीघ्र ही प्रकृति से असीम ब्रह्मपद को प्राप्त कर सकते हैं।

(३) शिव-योगशास्त्र में देवाधिदेव महादेव जी का रूप जो वर्णन किया गया है, वह इस प्रकार है:—

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चरूचन्द्राऽवतंसम्।
रत्नाकल्पोज्जवलांगं परशुमृगवराऽभीतिहस्त्रं प्रसन्नम्।।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्र कृतिंवसानम्।
विश्वद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रम्।

भगवान् शिव के इस ध्यान में वे चाँदी के पर्वत के समान श्वेतवर्ण तथा चन्द्रकला से भूषित हैं।

वे उज्ज्वलांग, प्रसन्नचित्त तथा चतुर्हस्त में परशु, मृग, वर और अभय के धारण करने वाले हैं।

व्याघ्रचर्म के पहनने वाले देवादिदेव परमात्मा सभी देवताओं के आराध्य हैं और संसार के आदिकारण भवभयनाशी पंचमुख तथा त्रिनेत्र हैं।

शिवजी का यह भाव सृष्टि स्थिति प्रलयंकारी ईश्वर का भाव है जो सृष्टि के साथ ही साथ जीव को आत्यन्तिक प्रलय के द्वारा भवभयनाशन मुक्ति पद प्रदान भी करते हैं।

इस शिव रूप परमात्मा के तमोगुणमय संहारभाव को धारण करने से रुद्रमूर्ति भी प्रकट होती है जो प्रलय के समय समस्त ब्रह्माण्ड का नाश करती है।

अतः शिवरूप में एक शांतिमय ईश्वर भाव और दूसरा संहारकारी रूद्रभाव विराजमान है।

प्रकृति का समस्त विलास उन्हीं की कृपा से उनके अन्दर प्रकाशमान है। इसीलिए उनके शरीर का रंग श्वेत है। क्योंकि जहाँ प्राकृतिक समस्त वर्णों का विकास होता है, वहाँ श्वेतवर्ण ही होता है।

उनका पंचमुख स्वरूप प्राकृतिक पंचत्तवों का रूप है, जिसके विलास के द्वारा अपूर्व शोभामय ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है, इसीलिए शिवजी के पंचमुखों का हास्य ही प्रकृति की ब्रह्माण्ड विकासमयी दिव्य छटा है।

उनके दो नेत्र पृथ्वी के तथा आकाश के हैं, तृतीय नेत्र सूर्य अथवा ज्ञानाग्नि है। क्योंकि सूर्यात्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्धि का अधिदैव है, इसलिए इसी ज्ञाननेत्र के द्वारा मदन भस्म हुआ था।

चतुर्थ ज्योति का स्थान चन्द्रकला है, जो ज्योति का भी आधार और मन का भी अधिदैव होने से संसार का प्रकाशक है।

उनके ईश्वरभावों में 'त्रिशूल' त्रिगुण का रूप है, जिसके ऊपर विश्वरूपी वाराणसी स्थित है। जब तक शिव की सत्ता त्रिगुणमयी प्रकृति के भीतर प्रकट रहेगी, तब तक वाराणसी का नाश नहीं हो सकता।

शिवजी के चारों हाथों में 'परशुमृगवराभीतिमुक्ता' के द्वारा चतुर्वर्ग फल-दान शक्ति सूचित की गई है। यथा—जिस हस्त में मृग है, उसी हस्त में काम अर्थात् सकल मनोरथ पूर्णकारी मृगमुद्रा है।

जिस हस्त में वर है, उसी में धर्म है, क्योंकि बिना धर्म के वरणीय सुख की प्राप्ति असम्भव है और जिस हस्त में अभय है, उसी हस्त में मोक्ष है क्योंकि बिना मोक्ष के आत्यान्त्रिक भयनाश अथवा भव भयनाश नहीं हो सकता।

शिवजी के अन्य दो भाव और हैं, जिनमें से एक में प्राकृतिक-प्रलय और दूसरे में आत्यन्तिक-प्रलय अर्थात् मुक्ति का भाव बताया गया है।

इस भाव में शिवजी त्रिशूलधारी, भुजंगभूषण, भस्मविभूषित, श्मसानवासी, कपालमन्त्री, श्वेतकाय, हरिप्रिय, व्याघ्राम्बरधारी तथा भिखारी हैं।

शिवजी के ये सब रूप प्राकृतिक-प्रलय तथा आत्यन्तिक-प्रलय के भावानुसार प्रकट होते हैं। जिस समय एक ब्रह्माण्ड का नाश हो जाता है, वही प्राकृतिक या महाप्रलय का काल है।

उस समय ईश्वर की तामसिक शक्ति रुद्ररूप या कालरूप धारण करके संसार को नष्ट कर देती है। द्वितीय अर्थात् आत्यन्तिक-प्रलय मुक्ति को कहते हैं, जिस समय जीव ब्रह्म में विलीन होकर पृथक् सत्ता को छोड़ देता है। इस प्रलय के साथ महाकालरूपी परमात्मा का सम्बन्ध रहता है—यह भी शिवजी का एक भाव है।

शिवजी का त्रिशूल सृष्टि नाशकारी रूद्रभाव में अदृष्ट का चिह्न है। जो सर्वथा अबाधित, सर्वनाशकारी और अति प्रबल पराक्रान्त है, जिसके तेज से समस्त संसार को प्रलयकाल में काल के गर्भ में निमग्न होना पड़ता है, परन्तु शिवजी के मुक्तिप्रदाता महाकालभाव में यही त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख रूपी "त्रिविध शूल" का रूप है, क्योंकि इन्ही विविध शूलों के द्वारा पीड़ित होकर ही जीव मुक्ति के लिए महाकाल रूपी शिवजी की शरण लेता है।

आध्यात्मिक, आधिदैविक व आधिभौतिक—इन तीनों प्रकार के दुःखों के द्वारा पीड़ित होकर ही जीव त्रिविध-दुःख-नाशक मुक्ति के लिए जिज्ञासा करता है।

रुद्रभाव में भुजंगभूषण, भस्मलेपक, श्मसानवास, अस्थिमाला, नरकपाल आदि नाश का रूप प्रकाश करने वाला है।

जब रुद्र के द्वारा संसार का नाश होता है जो उनका अलंकार सोने-चाँदी से निर्मित न होकर अत्यन्त तमोगुणी और प्राणनाशकारी सर्प ही होना चाहिए इसलिए, रूद्रमूर्ति भुजंगभूषण है तथा यह भी इसमें दूसरा भाव है कि सर्प जैसा क्रूर तथा हिंस्र जीव भी काल के द्वारा वशीभूत रहता है जिससे काल की सर्वग्रासकारी अमोघ गति सिद्ध होती है।

प्रलयकाल में समस्त संसार का नाश होकर भस्म ही शेष रह जाता है तथा प्रत्येक जीव का अन्तिम परिणाम भस्म ही है तथा इसी परिणाम के कर्ता रुद्रजी हैं, इसीलिए उनका शरीर भस्म भूषित है, चन्दन चर्चित नहीं है।

समस्त संसार को नष्ट करके श्मसान बनाने वाले रुद्रजी के लिए श्मसानवास विज्ञानसिद्ध होगा, अट्टालिकावास विज्ञानविरुद्ध होगा, इसीलिए रुद्र श्मसानवासी हैं।

अब इन सब वर्णनों के साथ महाकालरूपी मुक्ति प्रदाता शिवजी का क्या सम्बन्ध है ? आओ, इस पर हम कुछ विचार करें।

महाकाल में अपनी सत्ता को विलीन करके जीव जिस समय मुक्तिपद प्राप्त करता है, उस समय उसकी द्वन्द्वबहु प्रकृति शांत हो जाने से धर्म, अधर्म, पाप-पुण्य, सत्वगुण-तमोगुण आदि समस्त विरूद्धवृत्तियाँ उसमें लय होकर एकाकार भाव को प्राप्त हो जाती हैं।

इसकी सूचना के लिए महाकाल भुजंग भूषण हैं अर्थात् महाकाल की प्रकृति में प्रबल तमोगुण का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप सर्प भी अपनी हिंसावृत्ति को भूलकर सत्वगुण के साथ शोभायमान है।

"जगदम्बा गृहिणी और कुवेर उनका भण्डारी होने पर भी महाकाल रूपी शिवजी का श्मसानवास भस्मविभूषण भिक्षापात्र हस्त में लेकर भिक्षार्थ पर्यटन, त्याग और वैराग्य भाव की सूचना करता है क्योंकि त्याग तथा वैराग्य का ही सम्बन्ध मुक्ति के साथ है।

समस्त संसार की विभूति को छोड़कर जो मुमुक्षु भिक्षापात्र हाथ में लेकर सन्यासी बन सकते हैं, वे ही मुक्ति के अधिकारी हो सकते हैं और महाकाल के प्रिय बन सकते हैं।

कालरूप रुद्र व्याघ्राम्बरधारी हैं, परन्तु महाकाल दिग्वसन या नग्न है। चाहे कितना ही बलशाली जीव हो, काल सभी को ग्रास करता है और सभी की खाल खींचकर उसे मृत्यु के ग्रास में डालता है, इसी भाव के प्रकाश करने के अर्थ रुद्र व्याघ्राम्बरधारी हैं, क्योंकि हिंस्र पशुओं में शेर सबसे बलवान है, परन्तु उसकी भी खाल खींचकर रुद्र ने अपना वस्त्र बनाया है।

अन्य वेश में महाकाल के शरीर में कोई वस्त्र नहीं है, जिसका यह तात्पर्य है कि महाकाल रूपी परमात्मा देशकाल के द्वारा अपरिच्छिन्न और अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड में सर्वव्यापक है। जो वस्तु असीम और सर्वव्यापक है उसे वस्त्र के द्वारा ससीम और आवृत्त नहीं कर सकते इसलिये महाकाल दिग्वसन है परन्तु काल का सम्बन्ध एक–एक ब्रह्माण्ड के साथ रहने के कारण काल की सीमा ब्रह्माण्ड की आयु के द्वारा परिच्छिन्न है, इसलिये कालरूप रूद्र वस्त्र पहना करते हैं।

महाकाल का तृतीय नेत्र ज्ञाननेत्र है। इसलिये, उसकी स्थिति कूटस्थ चैतन्य के स्थान के ऊपर ललाट में है।

ज्ञाननेत्र का स्वरूप बताने के लिये ही उसी नेत्र के द्वारा मदन दहन का वृत्तांत शास्त्र में प्रसिद्ध किया गया है। यही ज्ञानस्वरूप शिवजी का तृतीय नेत्र है।

शिवजी पृथ्वी तत्त्व के अधीश्वर हैं, इसलिये पृथ्वी त्तव की सर्वश्रेष्ठ विकास भूमि हिमालय का सर्वोच्च शिखर कैलाश शिवजी का स्थान है।

शिवजी का वाहन वृषभ "धर्म" का रूप है, क्योंकि धर्म का ही आश्रय करके संसार में शिव राजा के द्वारा समस्त कार्य होता है।

पशुजाति में सत्वगुण का पूर्ण विकास गौ में ही है और सत्वगुण की पूर्णता में ही धर्म का पूर्ण विकास है। इसलिये शिवजी का वाहन वृषभ है।

यही सब प्रकृति लीला मूलक भावों के अनुसार सगुण शिवोपासना परायण-भक्त की सहायता के लिए शिवजी की मूर्ति का रहस्य है।

(४) दुर्गा-शक्ति की माता भवानी के विभिन्न रूपों में देवी का रूप "दुर्गा" माना गया है:–

"महिषासुर रूप तमोगुण को सिंहरूपी रजोगुण ने परास्त किया है। ऐसे सिंह के ऊपर आरोहण की हुई सिंहवासनी माता दुर्गा हैं जो कि शुद्ध सत्वगुणमयी ब्रह्मरूपिणी सर्वव्यापिनी और दशदिगरूपी दस हस्तों में शस्त्र धारण पूर्वक पूर्ण शक्तिशालिनी है।"

उनके एक ओर बुद्धि के अधिष्ठाता गणपति तथा धन की अधिष्ठात्री लक्ष्मीदेवी और दूसरी ओर बल के अधिष्ठाता कार्तिकेय तथा विद्या की अधिष्ठाता सरस्वती विराजमान हैं । अतः बुद्धि, धन, विद्या और बलसंयुक्ता सर्वशक्तिमयी सगुण ब्रह्मरूपिणी दुर्गादेवी "जगज्जननी महामाया" है।

प्रकृति की अनन्त शोभा, अनन्त विलास, और दिगन्तव्यापिनी अनन्त शक्ति के अनुसार ही उनकी मूर्ति बनाई जाती है। संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के विधानान्तर्गत दश महाविद्या आदि अनेक भावों में उनका रूप वर्णन ध्यान और पूजा होती है।

विष्णु के प्रधान सात भेद, शिवरूप के प्रधान पाँच भेद और शक्तिरूप के प्रधान २४ भेद तन्त्रों में कहे गये हैं, जिनमें से दस प्रधान भेद "दशामह विद्या" कहलाते हैं।

उक्त दशमहाविद्याओं में काली, भवानी रूप प्रथम हैं। काल के साथ सम्बन्ध होने से तथा आद्या स्वरूपा होने से "आद्या-काली" माता भवानी का नाम है।

काली सबकी आदि, अनादि रूपिणी और समस्त संसार की सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारिणी हैं।

निराकार और साकार भेद से उनका ध्यान द्विविध है। उनके रूप रहित स्वरूप का ध्यान योगी लोग समाधि अवस्था में करते हैं, वह स्थूल इन्द्रियों से अगम्य, वाक्य और मन के अतीत, अव्यक्त, सर्वव्यापी और अनिर्देश्य है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार के निराकार स्वरुप का ध्यान अति कठिन होने से मन की धारणा और शीघ्र अभीष्ट सिद्धि के लिए सूक्ष्म ध्यान में अधिकार प्राप्ति के अर्थ स्थुल ध्यान का विधान किया गया है।

जिस प्रकार श्वेत, पति आदि सभी वर्ण कृष्ण वर्ण में लय हो जाते हैं, उसी प्रकार महाशक्ति रूपिणी काली के गर्भ में सभी जीव लय प्राप्त होते हैं–इसी भाव को प्रकट करने के लिए काली का वर्ण कृष्ण निरूपित किया गया है।

नित्या, कालरूपी, अव्यया और शिवात्मारूपिणी माता के अमृत रूप होने से सुधाधर चन्द्रमा का चिह्न ललाट में रखा गया है।

शशि, सूर्य और अग्नि रूपी त्रिनेत्र के द्वारा प्रकृतिमाता विश्व का निरीक्षण करती है–इसलिये उनके तीन नेत्र हैं।

समस्त जीव को काली ग्रास करती है और कालदन्त से चर्वण करती है इसलिए ग्रस्त जीवों की रक्त राशि ही उनका वस्त्ररूप है।

समय-समय पर विपत्तियों से जीवों की रक्षा तथा सकल कार्य-प्रेरणा के कारण वर और अभय उनके हस्त में है।

रजोगुण से उत्पन्न विश्व को आवृत्त करके विराजमान रहती हैं, इसलिए माता रक्त पद्मासनास्था करके वर्णित की गई है।

मोहमयी मदिरा को पान करके काल नृत्य करता है और चिन्मयी माता साक्षी रूप से काल की लीला को देखकर हास्य करती है । यही उनके हास्यमय मुखविकास का कारण है।

इस प्रकार के साधारण अधिकारी के कल्याण के लिये गुणों के अनुसार जगज्जननी प्रकृति की विविध रूप कल्पना की गई है।

संसार का मायाजाल ही उनका केशपाश है, जो महामाया के पृष्ठ पर सुशोभित रहता है। केश समूह चंचल है इसलिए मायामुग्ध जीव सदा ही चंचल और परिणाम स्वभाव है। पक्षान्तर में मुक्तात्मागण माया में बन्द और चंचल न होकर स्थिर रहते हैं–इसलिए आद्या शक्ति मुक्त पुरुषों के लिए मुक्तकेशी अर्थात् मुक्तबन्धना है।

इस प्रकार देवी मूर्ति के और भी अनेक भावों पर विचार किया जा सकता है।

अतः यह सिद्ध होता है कि "भवानी" का विश्व रूप–गुण क्रियानुसार अनन्त भावों का ही विकास मात्र है।

(५) **गणेश**-शास्त्रों में गणपति को ब्रह्माण्ड के सात्विक सुबुद्धि राज्य पर अधिष्ठात्र देवता कहा गया है। गणपति परमात्मा के बुद्धि रूप है, सूर्य–चक्षुरूप है, शिव आत्मारूप और आद्या–प्रकृति जगदम्बा शक्ति रूप है। गणेश भगवान का शरीर स्थूल है, मुख गजेन्द्र का है और उदर विशाल है, आकृति सर्व है, जिनके गण्डस्थल से मदधारा प्रवाहित हो रही है और भ्रमरगण मन्त्रलोभ से चंचल होकर गण्डस्थल में एकत्रित हो रहे हैं, जिन्होंने अपने दन्तों के आघात से शत्रुओं को विदीर्ण करके उनके रुधिर से सिन्दूर शोभा को धारण किया है और उनका स्वरूप समस्त कर्मों में सिद्धि प्रदान करने वाला है।

गणेशजी का लम्बोदर स्वरूप सुबुद्धि की गंभीरता का सूचक है। द्वैतभाव में प्रपंच का विस्तार है, गाम्भीर्य नहीं और सुबुद्धि परिणामी अद्वैतभाव में प्रपंच का विस्तार नहीं, किन्तु भाव की गम्भीरता अवश्य है, यही लम्बोदर होने का तात्पर्य है।

गजेन्द्रवहन का मदस्राव सुबुद्धि मथित ज्ञानाभूत है, जिसके पान करने के लिए "मुमुक्षु मधुकर" सदा ही व्यग्र रहते हैं।

सुबुद्धि की सहायता से सकल कार्य सिद्ध होते हैं, इसीलिये गणेश जी सिद्धिदाता के रूप में प्रसिद्ध हैं।

गणेशजी सुबुद्धि के साकार स्वरूप हैं जो उनका वाहन मूषक कुतर्क का रूप है। जिस प्रकार किसी वस्तु का मूल्य और आवश्यकता न समझकर सभी को काट देना मूषक का स्वभाव है, उसी प्रकार कुतर्की का भी स्वभाव यह है कि किसी विज्ञान अथवा उसकी गंभीरता आदि को न समझकर सबका खण्डन कर देवे।

इसीलिये सुबुद्धि के देवता गणेशजी के वाहन रूप में मूषक रूपी कुबुद्धि को दिखाया गया है।

प्रज्ञा-बुद्धि तर्क के द्वारा नहीं प्राप्त होती। वो चिन्ता से अतीत भाव समूह है उन्हें तर्क के द्वारा प्राप्त करने की स्पर्द्धा नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार विचार तथा शास्त्र प्रमाण द्वारा जितनी सुबुद्धि सुलभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रद्धा भक्ति आदि वृद्धिगत होती हैं, उतनी ही चित्त में से तर्क बुद्धि कम होती जाती है। इसलिये–

सुबुद्धि के संचालक गणेश भगवान जितने बृहत्काय हैं, कुतर्करूपी मूषक भी उतना ही क्षुद्रकाय है।

यही सब प्रकृति लीला जनित भाषानुसार गणपति भगवान के रूप वर्णन का तात्पर्य है।

देवता-तथ्य और विज्ञान की कसौटी पर

भारतीय संस्कृति सदैव से ही देवोपासक रही है। ऐसी मान्यता है कि निखिल आकाश में कोई ऐसे स्थान हैं, जहाँ देवता रहते हैं, उन्हें मंत्र, जप, ध्यान आदि के माध्यम से प्रसन्न और प्रभावित किया जा सकता है, उनसे शक्ति और वरदान प्राप्त किया जा सकता है। शिव, वरुण, अग्नि, इन्द्र, गणेश, सरस्वती, सोम, ऊषा, सूर्य, धन्वन्तरी, वृहस्पति आदि अनेक देवता अपनी-अपनी तरह के शक्ति और क्षमता वाले हैं और अपने उपासक को वैसी ही शक्ति से आविर्भूत कर देते हैं, इसलिये न केवल लौकिक दृष्टि से समर्थ और बलवान बनने के लिए देवताओं की शरण ली जाती थी वरन् आत्म-कल्याण और ईश्वर प्राप्ति के लिये भी देवाश्रय ग्रहण करते थे। सभी देवता परमात्मा की विभिन्न अलौकिक शक्तियाँ हैं, किसी के भी आश्रय से उस परम प्रभु को प्राप्त करने का विज्ञान था, उसे अब केवल कल्पना ही समझा जाता है।

कठोपनिषद् में नचिकेता यम से प्रश्न करता है–

स त्वमग्निं स्वग्यंमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहिं तं श्रद्दधानाय मह्यमे।
स्वर्गलोका अमृत्तवं भजंत एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण।।
(१/१/१३)

हे यमराज ! आज स्वर्ग के साधनभूत अग्निको जानते हैं। मैं श्रद्धाप्लावित होकर आपसे पूछता हूँ कि जिनके द्वारा स्वर्गीय पुरुष अमृतत्व प्राप्त करते हैं, उन अग्नि का मुझसे वर्णन कीजिये।'' यह प्रश्न सुनकर आचार्य यम कहते हैं–

प्रते ब्रवीमि तदुभे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन्।
अनंत लोकाप्तिमयी प्रतिष्ठों, विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम्।।
(कठो० १/१/१४)

हे नचिकेता ! मैं तुझसे अच्छी प्रकार अग्नि का उपदेश करता हूँ। वह अग्नि स्वर्ग को प्रदान करने वाली है, अनन्त लोक की प्राप्ति कराने वाली है, उसका आधार बुद्धि रूपी गुहा में निहित है, तू उसे अच्छी प्रकार समझ ले।

इस मन्त्र में निःसंदेह अग्नि के परमाण्विक स्वरूप को स्थिर करने का प्रयास किया गया है। मैत्रायणी उपनिषद् में उसे और अच्छी प्रकार स्पष्ट करते हुए शास्त्रकार ने बताया कि अग्नि हृदय कमल से स्थित है, वह जो अन्न खाता है, वह जो मोक्षधाम द्यौः में स्थित कालाग्नि नामक परमेश्वर रूप अग्नि है, जो प्रलय काल में समस्त भूतों को खा जाता है, अपने आप में लीन कर लेता है।

उपर्युक्त कथन में अग्नि का तात्विक विश्लेषण है। सचमुच शरीर में अग्नि न हो तो अन्न न पचे। मन्दाग्नि पुरुष को सदैव अपच और अवसाद की बीमारी बनी रहती है, इसलिये वैद्य वह औषधियाँ देते हैं, जिससे जठराग्नि प्रदीप्त हो। अन्न से भी शरीर में गर्मी पैदा होती है, अर्थात् अग्नि एक व्यापक त्तव है, जो दृश्य भी है और अदृश्य भी है। अदृश्य अवस्था वाले अग्नि के परमाणु ही ईश्वरीय सत्ता का बोध कराते हैं, इसलिये अग्नि को देवता और भगवान कहा गया है। शरीर मन और वाणी की तेजस्विता अग्नि त्तव की प्रधानता से ही विकसित होती है।

ऋग्वेद के ७।८७।२ मंत्र में वरुण देवता की स्तुति करते हुए मंत्रदृष्टा कहते हैं–''समस्त नदियां वरूण के आदेश से ही बहती हैं, यह आकाश देव है, अन्य देव इनके अनुयायी हैं। इनका आदेश सर्वोपरि है, यह देव जिस व्यवस्था का संरक्षक है, उसे 'ऋत' कहते हैं, विश्व सृजन के पूर्व भी 'ऋतु' था इसके रहस्य को जानने वाला ऋताचारी होता है।''

वरूण 'वर' धातु से बना है, जिसका अर्थ आच्छादन करना होता है–एक त्तव जो समस्त देवलोकों में अवस्थानुसार परिवर्तित होकर ऋतु नियमन करता है। यदि ऋतुयें न हों तो संसार शून्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो जाये यह बात प्लेटो के यूनिवर्सल सिद्धान्त से बहुत मिलती-जुलती है। रूस तो अब विस्तृत रूप से ऋतु-विज्ञान की खोज कर रहा है। अमेरिका इस बात से भयभीत है कि यदि रूस ने जलवायु पर नियंत्रण कर लिया तो वह बिना कोई युद्ध लड़े हुए अमेरिका को रेगिस्तान में बदल देगा। रूस परमाणु शक्ति से परिचालित सैकड़ों मशीन पम्पों के द्वारा प्रशान्त महासागर के जल को स्थानान्तरित करने की योजना बना रहा है, उससे साइबेरिया तो हरा-भरा हो जायेगा पर अमेरिका की जलवायु एकदम बदल जायेगी। ऐसी आशंका अमेरिका के डा० एडवर्ड टाड और डा० हेनरी बेवस्लर भी कर चुके हैं। इस सम्बन्ध में कभी अन्यत्र विस्तृत प्रकाश डालेंगे। यहाँ तो हमें अपने इस कथन की पुष्टि करनी थी कि ऋतु का नियमन करने वाली ऐसी कोई अदृश्य सत्ता है, जिसे हम वरूण देवता के नाम से जानते हैं।

सन्देह नहीं कि उसको जानने वाला व्यक्ति ऋताचारी या मौसम विज्ञान का पंडित हो सकता है। क्रेमलिन वैज्ञानिकों को इच्छानुसार कहीं भी वर्षा करा लेने का सिद्धान्त ढूँढ़ निकालने की सफलता मिल गई है, वह इस वरुण विज्ञान की एक छोटी-सी स्फुलिंग मात्र है, विस्तृत खजाना तो भारतीय धर्म के अंचल में छिपा पड़ा है। सूत्र मिल रहा है, आगे की जानकारी की आवश्यकता है।

सोम, उषा, अदिति आदि के बारे में भी विस्तृत विवेचन शास्त्रों में मिलते हैं, किन्तु खेद है कि आज के पढ़े-लिखे भारतीय भी देवताओं की इन शक्तियों और स्वरूपों को मात्र बाल कल्पना मान कर उपेक्षित कर देते हैं।फ्लीडरट और ब्लूमफील्ड नामक पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने देवताओं के सम्बन्ध में भारतीय त्तव दर्शन का जो मजाक बनाया था, पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित व्यक्ति उसी को ठीक माने चले आ रहे हैं। प्रसन्नता की बात है कि आज का विज्ञान ही उनकी इस भ्रान्त धारणा को खण्डित कर देता है।

देवता किसी की प्रतिकृति नहीं वरन् विशिष्ट गुण या शक्ति के प्रतीक मात्र हैं और वह शक्तियां सूक्ष्म जगत् में सचमुच क्रियाशील हैं, उनसे सम्पर्क या यान्त्रिक संबन्ध स्थापित करने में जो सफलता मिली है, वह वेद और उपनिषदों की मान्यता को ही पुष्ट करती है। इस विज्ञान को आज संगणक विज्ञान (कम्प्यूटर) के नाम से जाना जाता है। वेद के जिन देवताओं की शक्तियों पर लोग उपहास करते थे, वही अब लोहे के यन्त्रों में आकर सुनती हैं, गुनती हैं, अपने विवेक से निर्णय और सुझाव ही नहीं देती, बोलती भी हैं। चन्द्रमा की यात्रा से लेकर गणित के प्रश्न हल करने तक में कम्प्यूटर एक चमत्कार की तरह काम कर रहा है। वह इन अदृश्य सत्ताओं के सूक्ष्म परमाणुओं के इच्छानुवर्ती संचालन के फलस्वरूप ही है।

जिस तरह अध्यात्म विद्या के जानकारों के लिये देव शक्तियाँ सामान्य-सी लगती हैं, उसी प्रकार विज्ञान की दृष्टि में कम्प्यूटर भी कोई बड़ा भारी आश्चर्य नहीं रह गया। यह सब सृष्टि में विभिन्न प्रकार के इलेकट्रॉन्स के स्मृति पुंजों का खेल है, जिस प्रकार अग्नि के इलेक्ट्रान्स अन्न को पचाते हैं, शरीर में शक्ति संतुलन बनाये रखते और जीवन के अस्तिव रूप में प्रकट होते हैं, उसी प्रकार वरूण शक्ति के इलेक्ट्रॉन्स सारी सृष्टि में फैलकर ऋतु नियमन करते हों तो उसमें आश्चर्य क्या? इलेक्ट्रॉन्स की विविध स्थिति के रूप में ही तो कम्प्यूटर भी बोलता, सुनता, उत्तर देता और अगली पंक्तियों में दिये गये आश्चर्यजनक कार्य करता रहता है। यह बात किसी स्थान विशेष के लिए अपवाद नहीं सार्वभौमिक नियम है। केलीफोर्निया विश्वविद्यालय के डा० हाबेर महोदय का भी कहना है ठोस और तरल पदार्थों की तरह गैस पदार्थों में भी जीव का निर्माण हो सकता है।

अर्थात् गैस जैसा किसी स्थिति में भी जीवन का अस्तिव यदि हो सकता है तो वह यह देव शक्तियाँ ही हो सकती हैं, जिनका वेद, उपनिषदों में ब्रह्माण्ड व्यापी शक्तियों के रूप में वर्णन मिलता है। उन्हें केवल चेतन समझने भर की कठिनाई थी, उसे यह कम्प्यूटर विज्ञान दूर कर देता है। लीजिये अब इलेक्ट्रॉन्स के स्मृति पुंजों के उन करिश्मों का भी वर्णन पढ़ लीजिये, जो आज संगणक (कम्प्यूटरों) के अन्दर विभिन्न प्रकार का ज्ञान और शक्ति संयोजित किये पड़े हैं।

गणेश को असाधारण स्मृति और लेखन सामर्थ्य वाला देवता मानते हैं। पौराणिक कथा है कि व्यास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जी द्वारा बोले गये १८ पुराणों को सुनकर उन्हें शब्दबद्ध कर सकने का गुरुतर कार्य गणेश जी ही सम्पन्न कर सके थे। इस असाधारण मानवीय स्मृति शक्ति पर अर्धदग्ध मनुष्य शंका और सन्देह कर सकते हैं, वैज्ञानिक नहीं। जर्मनी में ऐसे ही कम्प्यूटर का निर्माण हुआ है, जिससे दफ्तरों, बैकों आदि के काम में १० हजार गुना तीव्रता आई है। १६०० फाइलें रखने में ही कई अलमारियाँ लग सकती हैं पर यह कम्प्यूटर (संगणक) कुल ३ घन फुट में इतनी फाइलों की जानकारी को जज्ब (आब्जर्व) कर लेता है, जब भी आप चाहें किसी पन्ने को खोलकर सारा ब्यौरा प्राप्त कर सकते हैं।

मनुष्य हाथ से जब तक एक अंक लिखता है, यह कम्प्यूटर तब तक १६ बड़े-बड़े अंकों का गुणनफल, लघुत्तम या महत्तम समापवर्तक निकालकर दे सकता है। मनुष्य अधिक से अधिक ५००० शब्द याद रख सकता है तो उसकी स्मरण क्षमता ६० हजार शब्दों से भी अधिक है। मनुष्य कठिनाई से चार-छः भाषायें सीख सकता है पर यह संगणक १५–१५ भाषाओं का वेत्ता हो सकता है। एक भाषण का एक ही समय में १५ भाषाओं में अनुवाद कर देने की क्षमता उसमें मिलेगी। मनुष्य एक बार यदि २४० शब्द टाइप करेगा तो वह ६० हजार एकांश प्रति सेकंड टाइप करके रख देगा। टेलीफोन, टेलीप्रिन्टर पर आने वाले सम्वादों को यह संगणक १५ भाषाओं में अनुवाद कर देता है, जिससे सभी भाषाओं के अखबार एक भाषा में खबर प्रचारित होने के बावजूद भी साथ-साथ छप जाते हैं और दूसरी भाषायें पढ़ने वालों को कोई दिक्कत नहीं आती।

स्मरण शक्ति का यह छोटा-सा चमत्कार है, इससे भी अनन्त गुना स्मरण शक्ति वाली कोई गणेश सत्ता है, मनुष्य उससे सम्पर्क साधकर इससे भी अधिक बौद्धिक क्षमता वाला हो सकता है । अनेक शतावधानी व्यक्ति अब भी हैं, उनका वर्णन कभी अन्यत्र करेंगे।

ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने एक संगणक (कम्प्यूटर) ऐसा बनाया है, जो बिना जन्म समय कुण्डली, राशि-चक्र, सूर्यास्त, सूर्योदय अथवा ग्रहयोग की जानकारी के बिना भी युवक-युवतियों को यह बता देता है कि उनका विवाह सफल रहेगा या असफल। ज्योतिष झूठ दे सकता है किन्तु इस संगणक का भविष्य ज्ञान कभी झूठा नहीं हो सकता। यही नहीं कुछ कम्प्यूटर ऐसे भी बने हैं, जो वायु कम्पनों के आधार पर नये शब्द भी गढ़ते हैं, जो व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध नहीं होते। जर्मनी में ही एक ऐसा कम्प्यूटर बना है, जो गीत बनाकर सुनाता भी है, उसकी मधुरिमा मानव कण्ठ और भावनाओं की उड़ान को भी परास्त कर देती है। यह संगणक (कम्प्यूटर) आज से सैकड़ों हजारों वर्षों पूर्व गाये गये गीत उन्ही भाषाओं में सुनाने की क्षमता रखते हैं, उसका विकास किया जा रहा है। एक दिन वह आयेगा जब भगवान कृष्ण ने अर्जुन से क्या कहा था, यह सब उनके मुख से ही सुन लेंगे, तब महाभारत की कथा सुनने के लिए किसी पण्डित की आवश्यकता न होगी। वैशम्पायन महाराज स्वयं अपने मुख से वह कथा सुनाया करेंगे।

यह सब सृष्टि में फैले विभिन्न संवेदनाओं के सूक्ष्म कणों का खेल है वैज्ञानिकों ने उन्हें पकड़ने की कला जान ली है। इसलिये वे इस तरह के अचम्भे जैसे करतब दिखा रहे हैं, दरअसल मनुष्य की आध्यात्मिक क्षमतायें इनसे भी लाख गुना अधिक परिपूर्ण हैं। देव-शक्तियों का यह विधान अपने आप में वैज्ञानिक सिद्धान्तों से अलग नहीं, उस विज्ञान को आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित किया जा सके तो मनुष्य की सुख-सुविधाओं में अनन्त गुनी वृद्धि की जा सकती है।

यह देव-शक्तियाँ अन्तरिक्ष में अनन्त काल से विद्यमान् हैं और उनका सूक्ष्म प्रतिनिधित्व मानव शरीर में भी भरा पड़ा है। भारतीय तत्ववेत्ता इन शक्तियों के साथ संपर्क बनाने में आध्यात्मिक स्तर पर प्रयत्न करते रहे हैं। उपासना और तपश्चर्या वस्तुतः एक ऐसे उच्च स्तरीय विज्ञान का ही प्रतिपादन करती है, जिसके लिए मशीनों की नही वरन् पवित्रता और सात्विकता से निर्मल बने व्यक्तिवों की आवश्यकता होती है। देव-शक्तियों को भौतिक विज्ञान धीरे-धीरे यन्त्रबद्ध करता चला जा रहा है। अध्यात्म विद्या के आचार्यों ने इन्हें मन्त्रबद्ध किया था, जो अपेक्षाकृत अधिक सरल और अधिक उपादेय है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्गा पूजा का तत्त्वार्थ

दसभुजी दुर्गा माता सिंह और असुर पर सवार हैं। दाहिना पैर सिंह पर और बायाँ पैर असुर पर स्थापित है। दश हस्तों में दश विध अस्त्र-शस्त्र हैं। दाहिनी ओर गणपति और सरस्ती। बायीं ओर कार्तिक (कुमार) और लक्ष्मी।

गणपति का वाहन चूहा, सरस्वती का वाहन राजहंस, लक्ष्मी का वाहन उल्लू, स्वामिकार्तिक का वाहन मोर। महादेवी दुर्गा के ऊर्ध्व अश में महादेव वृषभारूढ़ हैं। जिनके दाहिने हाथ में त्रिशूल और बायें हाथ में डमरू। महादेवजी के दाये-बायें अनन्त कोटि देवता विभिन्न वाहनों पर आरूढ़ हैं। ब्रह्मा हंस पर, इन्द्र ऐरावत पर, यमराज महिष पर इत्यादि।

महादेवी के सन्मुख पृथ्वी पर मृण्मय कलश स्थापित है जिसके बीच में जल, ऊपर नारियल। माता के दक्षिण दिशा में छाज पर घट, कनक, घट, दीप, पंखा, शंख आदि स्थापना का लक्ष्यार्थ यही है कि साधक पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इत्यादि पाँच तत्त्व और तन्मात्रा से निर्मित शरीर और मन महाशक्ति को अर्पण करते हुए परम शरणागत हो जावे।

घट में प्रेम रूपी जल में ब्रह्मानन्द रूपी मीठा रस गुप्त रूप में स्थित है। घट पर सूर्यकिरण पड़ने से उसकी छाया ओंकार रूप में नजर आती है।

पंच भौतिक शरीर और मन की हृदय रूपी गुफा में परमानन्द रूपी आत्मा स्थित है।गुरुदीक्षा पाकर मंत्र चेतन होने पर वही महाशक्ति अष्ट ऋद्धि सिद्धि में विभूषित होकर ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न ब्रह्म वेत्ता गुरु को जगत हितार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष दायी परम शक्ति संचार का अधिकार देती है।

मन्त्र, गुरु, इष्ट अर्थात् शब्द, अर्थ, लक्ष्य इन तीनों का त्रिकुटी ज्ञान न होने पर सिद्ध असंभव है। ब्रह्मवेत्ता ज्ञान विज्ञान सम्पन्न गुरु महादेवी की पूजा में त्तपर है। यही देवी पूजन का यथार्थ दृश्य है। इसका लक्ष्यार्थ यही है कि निर्गुण परब्रह्म ने साकार रूप धारण किया है जिनकी दश भुज दश दिशा है। दश हाथ में दश अस्त्र धारित हैं जो विभिन्न दिशाओं में विभिन्न रूप मंगल अमंगल दर्शाते हैं।

माता का दाहिना पैर सिंह पर धारण करने का गूढ़ लक्ष्यार्थ यही है कि महायोगी, महाबली, महात्यागी उद्योगी पुरुषसिंह साधक पर ही माता का दक्षिण चरण स्थापित है और महा असुर, महादैय के ऊपर उसको बायाँ चरण स्थापित है। क्योंकि देव दैत्य उभय ही माता के प्रिय पुत्र हैं। बलवान के ऊपर ही माता सन्तुष्ट रहती है। दुर्बल, निर्बल इस संसार में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से और परलोक से वंचित रहता है। जब-जब महापाप रूप महाअसुर अत्यन्त भक्त श्रेष्ठ सिंह पर हमला करता है तब-तब भक्त श्रेष्ठ की रक्षा करने के लिए माता संहार रूप धारण करके दुष्टा का निर्मूल करती है।

असुर के गले में साँप और छाती में शूल है इसका लक्ष्यार्थ यही है कि जब माया रूप सर्पदंशन के जहर में विह्वल होकर ऊपर ताकता है अर्थात् ईश्वर की तरफ ताकता है तो विवेक रूपी भाला से छाती पर अचानक बेधने पर महामाया के हाथ से संहार होता है अर्थात् माया मुक्त होता है।

महादेवी के अर्धांश में महादेव आदि विभिन्न देवों का भिन्न-भिन्न वाहन पर आरूढ़ रहने का लक्ष्यार्थ यही है कि सब देवता सूक्ष्म रूप में देवी की असुर संहार रूपी विराट लीला दर्शन करने के लिये स्वर्ग धाम अर्थात् महाआकाश में स्थित हैं। देवी का लक्ष्मी, शारदा, गणपति, कार्तिक रूपी पुत्र-पुत्री अर्थ, ज्ञान, सिद्धि शक्ति दायिनी चार क्षुद्र शक्ति दायिनी चार क्षुद्र शक्ति हैं। उल्लू, हंस, चूहा, मोर भी उन्हीं शक्तियों का वाहन होने का लक्ष्यार्थ है।

गणपति का आशीर्वाद पाने पर ही मूषक रूपी साधक माया बन्धन, भव समुद्र से पार हो सकता है लक्ष्मी का वाहन उलूक। लक्ष्यार्थ यही है कि परमार्थी संस्कारहीन जीव पर जब इस देवी की कृपा होती है तब वह परमार्थ रूप दिवस में अन्धा होकर अनर्थ रूपी रात्रि में पाप पंक रूपी विषय में उन्मत्त होता है। कार्तिक का वाहन मोर यही दर्शाता है कि जब साधक रूपी मोर कुण्डलिनी महाशक्ति रूपी सर्प को भक्षण कर सकता है तभी महाशक्तिवान होकर सर्व-सिद्धि सम्पन्न होते हुए महा ऐश्वर्यशाली होता है। महादेवी वीणावादिनी शारदा साक्षात ज्ञानशक्ति की प्रत्यक्ष मूर्ति हैं। जिनके दाहिने हाथ में वेद, बायें में वीणा है। इसका लक्ष्यार्थ यही है कि ऋग, यजुः,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साम, अथर्व का परम ज्ञान इस शक्ति का दाहिना हाथ है अर्थात् ये ज्ञान दात्री हैं।

बायें हाथ में वीणा का तात्पर्य यही है कि साधक शरीर रूपी वीणा के इडा, सुषुम्ना, पिंगला रूपी तीन तारों का सहारा लेकर योग साधन करने पर साधक श्रेष्ठ परमपद को प्राप्त होकर परमहंस की पदवी में विभूषित होते हैं। परमहंस महात्मा की ही प्रत्यक्ष मूर्ति हंस रूप माता का वाहन लखाया गया है जो माया रूपी जल त्याग कर परमानन्द रूपी दूध पान करके सदा परमपद में लवलीन है।

स्वर्ग धाम में महाबली असुर के देवताओं पर आक्रमण करने पर इन्द्र, चन्द्र, वरुण, यम आदि सब देवताओं के स्वर्गधाम से वंचित होकर भगवान की स्तुति करने पर सर्व दैवी शक्ति एकत्रित होकर महाशक्ति दुर्गा रूप को धारण करके उस ने असुर संहार करके देवताओं को पुनः स्वर्गराज्य प्रदान किया। भगवान श्री कृष्ण गीता में भी यही लखाते हैं कि जब-जब पारमार्थिक जीव पर अनाचारियों का अत्याचार होता है तब-तब ही भगवान प्रकट होकर भक्तों की रक्षा अनाचारियों को दण्ड देकर धरती माता को आश्वासन देते हैं।

आइये हम सब उसी सच्चिदानन्द परमब्रह्म के साकार रूप के ध्यान पूजन में मग्न हो जावें। परमानन्द रूपी माता हमारे समूल विघ्न नाश करके अपनी परमानन्द पवित्र गोद में हमें निश्चय स्थान देगी।

देवता तथा हिन्दू धर्म को कलंकित न किया जाय

जब असुरता बढ़ जाती है और धर्म की हानि होने लगती है तब असुरता का नाश करने और धर्म की रक्षा करने के लिए भगवान अवतार लिया करते हैं। समय-समय पर उस समय की आवश्यकता के अनुसार अनेक देवताओं और अनेक अवतारों के रूप में भगवान का अवतरण हुआ है। उन अवतारों की हम पूजा करते हैं क्योंकि उनके दिखाये हुए मार्ग का अनुसरण करने की शक्ति हमारी आत्मा में भी बढ़े। धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश में हम भी उन अवतारों के बताये मार्ग पर चलें, कष्ट सहें, संघर्ष करें इसके लिए आवश्यक आत्मबल प्राप्त करने के लिए देव पूजा की जाती है।

एक समय शुंभ, निशुंभ, महिषासुर आदि असुरों के भ्रष्टाचार से पृथ्वी पर धर्म की जड़ें हिलने लगीं थीं। ये मांसाहारी, मदिरा पीने वाले, व्यभिचारी, लुटेरे, हत्यारे असुर जब देव पुरुषों को नाना प्रकार के दुख देने लगे तो देवताओं ने अपनी बिखरी हुई अलग-अलग शक्तियों को संगठित किया। वह संगठित शक्ति देवी, दुर्गा, काली, चण्डी, अम्बिका आदि नामों से प्रसिद्ध हुई। उसने असुरों को मारा और देवी त्तवों की रक्षा की तभी से देवी की पूजा चलने लगी। भगवान नाना रूपों में अवतार लेकर धर्म की रक्षा किया करते हैं। एक समय उन्होंने देवी के रूप में भी अवतार लेकर संसार को यह शिक्षा दी है कि हम देव स्वभाव के व्यक्ति यदि अधर्मी असुरों के मुकाबले में अपनी सज्जनता और धर्म धारणा के कारण कमजोर पड़ते हैं तो संगठित होकर अपनी संगठित शक्ति का उपयोग करें तो निश्चय ही बड़े से बड़े असुरों को भूमिसात कर सकते हैं।

देवी, भगवान की दिव्य शक्ति का नाम है। यों तो दीन दयाल, भक्त वत्सल, करुणा सिंधु भगवान भी अपने पुत्रों को इस संसार के प्राणियों को अपार स्नेह करते हैं, पर माता भगवती की करुणा एव वात्सल्यता का तो कहना ही क्या है। माता का हृदय पिता के हृदय की अपेक्षा अनेक गुरु अधिक करुणा पूर्ण होता है। जब मनुष्य योनि की साधारण स्त्रियाँ अपने बच्चों को प्राण के समान प्यार करती हैं, किसी बालक को तनिक भी कष्ट हो जाय तो व्याकुल हो जाती हैं तो दिव्य माता की करुणा का तो कहना ही क्या है। सृष्टि के सभी प्राणी इस जगत् जननी के पुत्र हैं। वे मनुष्यों की ही नहीं पशु पक्षियों की भी माता हैं। उनका मातृ हृदय अपने सभी बालकों के लिए करुणा, स्नेह और वात्सल्य से भरा रहता है। वे सभी को सुखी बनाना चाहती हैं, दुख तो उनसे किसी का भी नहीं देखा जाता। माता शब्द में ही अनन्त करुणा भरी है। जो माता कहलावेगी वे अपनी सन्तान के प्रति प्यार दुलार भी करेगी।

माता देवी की पूजा का हिन्दू धर्म में बहुत महात्म्य है। देवी दुर्गा के अनेकों नाम हैं। उनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सहस्रों मन्दिर भारत भूमि के कोने-कोने में बने हैं। उनकी पूजा उपासना सर्वत्र बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ होती है। होनी भी चाहिए। सांसारिक माता की भाँति जगत् माता भगवती भी हमारी उपास्य हैं। उनकी पूजा करना हमारा धार्मिक कर्तव्य है। चिरकाल से देवी की पूजा होती भी आई है।

पर पिछले मुसलमानी शासन काल में एक बड़ी ही दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण बात देवी के पूजा विधान में जुड़ गई है। वह है—पशु बलि। मुसलमान बकरीद के दिन बकरे तथा दूसरे जानवर काटकर कुर्बानी करते हैं। हिन्दुओं ने भी उनकी नकल की और भैरव भवानी आदि कुछ देवी-देवताओं के नाम पर माँसाहार के लोभ से बकरीद की तरह कुर्बानी चढ़ाने लगे। हिन्दू धर्म में माँस को अभक्ष असुरों का भोजन माना गया है। उसे खाने की किसी धर्मशास्त्र में आज्ञा नहीं है। पूर्व काल में माँसाहारी को समाज बहिष्कृत करके असुर श्रेणी में कर देते थे। हिन्दू धर्म दया और अहिंसा का धर्म है। इसमें सब प्राणियों में एक ही आत्मा समझने और सबके दुख को अपना दुःख समझने की शिक्षा है। ऐसी दशा में धार्मिक दृष्टि से माँसाहार की उसमें कोई गुंजाइश नहीं है।

यवन शासन काल में माँसाहार बहुत चल पड़ा। उनकी प्रेरणा और इच्छा से प्रेरित होकर कुछ लोग उनका अनुकरण करके माँसाहार के लिए ललचाने लगे। उन्होंने कुछ पंडितों के साथ षड्यंत्र करके ऐसे श्लोक लिखवाये जिनमें यह कहा गया कि देवी माता भी पशु-पक्षियों का माँस खाना पसंद करती है। यह श्लोक पुराणों में जोड़ दिये गये। साधारण जनता इस भुलावे में आ गई। देवी के नाम पर पशु काटे जाने लगे और माँसाहारों की चाल पूरी हो गई। वे बड़े प्रसन्न हुए कि धर्म के नाम पर अधर्म करने की उन्हें छूट मिली। दूसरी और यवन शासक भी बहुत प्रसन्न हुए कि सत्य और अहिंसा की महिमा जानने वाले हिन्दू जो दूसरे धर्म वालों की अपेक्षा इसी उच्च आदर्श के कारण संसार भर में श्रेष्ठ माने जाते थे, अब सिर ऊँचा न कर सकेंगे। उनका धर्म भी अब माँसाहारी असुरों की श्रेणी में आ गया। अब वे अपने धर्म की, देवताओं की, महिमा वर्णन न कर सकेंगे। अब तो उन्हें भी अपने धर्म को अपने देवताओं का किसी अन्य धर्म से बढ़िया सिद्ध करने का कोई अवसर न रहा, यह बात सचमुच ही विधर्मियों के लिए बड़ी प्रसन्नता की बात थी। उनके मन के चीते हो गये।

आज माता भगवती के पवित्र नाम पर जहाँ-जहाँ पशु बलि होती है, बेचारे निरीह बकरे, भैंसे माता के आगे निर्दयतापूर्वक कत्ल किये जाते हैं और उनका रक्त माँस माता को खाने के लिए उपस्थित किया जाता है। यह कितना नृशंस कार्य है। इससे देवता तो क्या मनुष्यता की भी आत्मा काँप जाती है। यदि कोई दुष्ट मनुष्य किसी माता की गोदी से उसका बच्चा छीनकर उसकी आँखों के आगे ही कत्ल करे और फिर उसके कलेजे के टुकड़े, उस बच्चे के खून को माता के मुँह में ठूंसे तो उस नृशंस दृश्य को देखकर माता को कितनी व्यथा होगी । इसकी कल्पना कोई भी सहृदय व्यक्ति कर सकता है। जिस दुष्ट व्यक्ति ने यह नृशंस कर्म किया है क्या उससे वह माता कभी प्रसन्न हो सकती है ? उस पर तो वह क्रोध ही करेगी और उसका वश चलेगा तो उस क्रूरकर्मी को दंड ही देगी।

माता पर बलि चढ़ाने वाले भाई ठंडे दिल और खुले मस्तिष्क में विचार करें कि क्या उनका यह कृत्य दया और करुणा का संदेश देने वाले हिन्दू धर्म को कलंकित करने वाला नहीं है ? क्या कोई माता कहलाने वाली अपने बच्चों का खून पीना और माँस खाना पसन्द कर सकती है ? अपने लिए धन सन्तान माँगने के लिए दूसरे गरीब जानवरों का गला काटने का पाप करने से क्या भगवान कभी प्रसन्न हो सकते हैं ? और क्या ऐसे पाप कर्म के बदले में किसी को धन, संतान, सुख, सौभाग्य का वरदान मिल सकता है ? यह बातें सर्वथा असंभव हैं। दुष्ट कर्म करने का परिणाम दुख और नरक ही हो सकता है। देवी पर बलि चढ़ाने के नाम पर जो भोले भाई अज्ञानवश यह कुकर्म करते हैं वे भारी भूल करते हैं। उन्हें न तो माता की प्रसन्नता मिल सकती है और न धन संतान आदि ही प्राप्त हो सकते हैं। उन्हें केवल पाप और उसके दंडस्वरूप दुख ही मिल सकता है।

इसलिए हर विचारशील, विवेकवान् , धर्म प्रेमी और सहृदय व्यक्ति का कर्तव्य है कि पशु बलि का

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विरोध करके माता भगवती तथा हिन्दू धर्म को कलंकित होने से बचावे। दया हिन्दू का प्रधान गुण है। निरपराध मूक पशुओं की निर्दयतापूर्वक हत्या करना और वह भी धर्म के नाम पर सर्वथा अनुचित है। यह अनुचित कार्य जितनी जल्दी बन्द हो जाय उतना ही उत्तम है।

देवताओं के वाहनों का रहस्य

हमारे धर्म ग्रन्थों में हर एक देवता अथवा देवी का एक विशेष वाहन बतलाया गया है। जैसे—गणेश जी का वाहन मूषक, सरस्वती का हंस, लक्ष्मी का उलूक, दुर्गा का सिंह आदि।

वाहनों के स्वरूप को आध्यात्मिक दृष्टिकोंण से देखने पर हमें धर्म का अत्यन्त ही सूक्ष्म, अद्‌भुत रहस्य दृष्टिगोचर होता है। इन रहस्यों के प्रकाशित हो जाने पर मनुष्य की आन्तरिक स्थिति इतनी सुदृढ़ हो जाती है कि वह प्रबल से प्रबल झंझावात में भी विचलित नहीं हो पाता।

इस स्थिति के आने तक "धर्म" स्थित रहता है किन्तु धर्म में स्थित हो जाने पर यह धर्म रूपी साध्य उसका साधन बन जाता है तथा उसके मानवी जीवन का वास्तविक प्रारम्भ यहीं से होता है और तब वह परमपद की प्राप्ति की दिशा में निरन्तर प्रगति करता चलता है।

गणेश जी सिद्धियों के देने वाले, विघ्न-बाधाओं का हरण करने वाले और बुद्धि के देवता माने गये हैं।

गणेशजी का वाहन मूषक है। अथर्ववेद के सायण भाष्य में लिखा है— 'मुष्णाति अपहस्ति कर्म फलानि इति मूषकः'।

जीव के कर्म फलों का अपहरण करना ही गणेश जी के वाहन मूषक का प्रमुख कर्तव्य है। जीव और शिव के मिलन में कर्म फल ही मुख्य रूप से बाधक बनते हैं। जब तक कर्म फल शेष है, जीव का शिव से मिलन क्यों कर हो सकता है ?

गणेश जी और उनके वाहन मूषक पर एक कवि की उक्ति है :—

'मन मूषक पर गज तन भारी।'

गज के समान विशाल मानव शरीर का वाहन सूक्ष्म मन रूपी मूषक ही है। वाहन की स्वच्छन्दता की स्थिति में वाहनारूढ़ का अस्थिर होना स्वाभाविक है, किन्तु नियन्त्रित कर लिये जाने पर, मन की एकाग्रता हो जाने पर संसार के सभी सुखों की प्राप्ति से लेकर भगवद्-प्राप्ति तक की जा सकती है

"मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः"

'मन ही मानव प्राणी के बन्धन और मोक्ष का कारण है।

इस प्रकार मन रूपी मूषक के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर मनुष्य को अपना आत्मिक-ज्ञान होने में विलम्ब नहीं लगता, कम से कम वह आत्मज्ञान का अधिकारी तो अवश्य हो जाता है। मन रूपी मूषक का असली स्वरूप सामने आते ही उसकी चंचलता पलायमान हो जाती है और उसे बाध्य होकर स्थिर हो जाना पड़ता है तथा स्थिर मन ही संसार की समस्त साधनाओं को सफलीभूत करने का सर्वोपरि साधन है।

सरस्वती विद्या एवं वाणी की अधिष्ठात्री देवी है, सरस्वती का वाहन हंस है। 'हन्' धातु से हंस बना है।

नीर-क्षीर-विवेक, दूध का दूध और पानी का पानी कर देना हंस की ही विशेषता है। मानसरोवर में उसका निवास माना गया है। मोती चुगना उसका प्राथमिक कर्तव्य है। पक्षी श्रेष्ठ के रूप में वह सर्व पूज्य है।

सरस्वती का कृपा पात्र भी जहाँ नीर-क्षीर-विवेकी बन जाता है वहाँ ब्रह्म और माया से ओत-प्रोत, सने हुए हम संसार में माया और ब्रह्म का पृथक्करण करने में समर्थ हो जाता है और माया रूपी जल का परित्याग कर ब्रह्म रूपी दुग्ध पान कर लेता है तथा ब्रह्म पद को प्राप्त हो जाता है।

वागीश्वरी देवी सरस्वती के वाहन का कितना अद्‌भुत रहस्य है यह ? यही नहीं, सरस्वती का कृपा पात्र लोक में अप्रचलित अनेकों आध्यात्मिक रहस्यों का ज्ञाता होकर अपना जीवन सफल कर लेता है, उसका जीवन धन्य-धन्य हो जाता है !

लक्ष्मी को सामान्य दृष्टि से धन, धान्य, समृद्धि, ऐश्वर्यादि की अधिष्ठात्री देवी माना गया है किन्तु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्मी का सर्वोपरि रूप शेष-शय्या पर भगवान विष्णु की अर्द्धांगिनी के रूप में माना गया है।

अतः लोक-भावना के अनुरूप लक्ष्मी का वाहन उलूक आध्यात्मिक दृष्टि से दिवान्धता और मूर्खता का प्रतीक है। सांसारिक-लक्ष्मी के अधिपति उलूकधर्मी होकर आत्म ज्ञान रूपी सूर्य को नहीं देख पाता। सूर्य रूपी प्रकाश पुंज उसे अन्धकार का समूह ही दिखाई देता है। ऐसा व्यक्ति आधिभौतिक सुख को ही अपना सर्वस्व मानकर माया में ही बद्ध रहता है। अतः ऋतु मार्ग, हृदय-केन्द्र में होते हुए भी वह अपने आपको माया रूपी मृग-तृष्णा के पीछे भरमाये रखता है।

दूसरी ओर कमलाक्षी, भगवान–विष्णु की अर्धांगिनी के रूप लक्ष्मी का चिन्तन करने वाला व्यक्ति परम-पावन कल्याणकारी लक्ष्मी को प्राप्त कर भुक्ति और मुक्ति का अधिकारी बन जाता है। उसके अन्तर में शेष-भगवान का स्वरूप प्रगट हो जाता है, उसका जीवन कृतार्थ हो जाता है तथा वह लक्ष्मी के परम धाम को प्राप्त होकर धन्य हो जाता है।

दुर्गा को भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने वाली, भगवान शिव की शाश्वत शक्ति माना गया है। दुर्गा का उपासक एक ओर शक्तिशाली होकर जहाँ मदान्ध हो जाता है, वहाँ दूसरी ओर अपने जीवत्व का नाश कर शिवत्व को प्राप्त हो जाता है।

दुर्गा का वाहन सिंह है। सिंह जहाँ बल और पौरुष का प्रतीक है वहाँ पशुराज, वनराज आदि के रूप में सर्वमान्य भी है।

सिंह हिंसक प्राणी है। अतः दुर्गा के उपासक में भी बल और पौरुष का उदय होगा, सिंहत्व आना स्वाभाविक है। सकाम-साधना से मनुष्य जहाँ अपने शत्रुओं का दमन करने में समर्थ होता है वहाँ वह मदान्ध होते भी देखा गया है। सर्वत्र विजय प्राप्त करने वाले व्यक्ति अहं रहित कम ही पाये जाते हैं। इसीलिये शक्तिशाली अधिकतर पतनोन्मुख हो जाते हैं।

किन्तु निष्काम साधक में आने वाला बल और पौरुष, सिंहत्व, हिंसा का भाव उसके अपने जीवत्व की हिंसा का कारण बन जाता है और उसे शिवत्व प्राप्त हो जाता है। वह जीव से शिव बन जाता है।

भगवान शिव का वाहन वृषराज नंदीश्वर है। वृष शब्द से धर्म का बोध होता है। नंदी का वर्ण श्वेत माना गया है। श्वेत सत्वगुण का सूचक है। नंदीश्वर के चार पैर धर्म के चार स्तम्भ–तप, शौच, दया और दान हैं।

भगवान शिव का चरणामृत पाने के लिये वृष रूपी धर्म को जानना अनिवार्य है। चतुष्पाद-धर्म का पालन करते हुए हमें शिव लोक की प्राप्ति होती है तथा भोलाशंकर के कृपा-पात्र बनकर हमारे लिये ब्रह्म-पद की प्राप्ति सुगम हो जाती है।

भगवान विष्णु लक्ष्मी के स्वामी और सृष्टि की पालन शक्ति के प्रतीक हैं। ये परम चैतन्य स्वरूप मुक्ति दाता माने गये हैं। कौस्तुभमणि से विभूषित विष्णु का वाहन गरुड़ है :–

''त्रियृद् वेदः सुषवस्तु यज्ञ वहित पुरुषम''

गरुड़ ही वेद है और यज्ञ-पुरुष विष्णु को वहन करता है। दीर्घ-दृष्टि के लिये गरुड़ प्रसिद्ध है। साथ ही उसका भक्ष्य सर्प है। आकाश में दूर तक गमन करने का अद्वितीय सामर्थ्य गरुड़ में पाया जाता है।

गरुड़ धर्मी होकर मनुष्य इस असार संसार की आसक्ति रूप कुटिल सर्प का भक्षण करने में समर्थ हो जाता है। दीर्घ-दृष्टि रूपी अर्न्तदृष्टि पाकर वह अपने इष्ट का साक्षात्कार कर विष्णु-पद की प्राप्ति कर लेता है।

इस प्रकार गरुड़ रूपी वेद के ज्ञान-कर्म रूपी पंखों का आश्रय लेकर सुदूर आकाश में गमन करने की शक्ति मनुष्य अपने में उत्पन्न कर लेता है तब भगवान विष्णु उसके हृदयासन पर विराजमान होकर उसको धन्य-धन्य कर देते हैं।

विघ्नराज गणेश जी और उनकी उत्पत्ति

गणेश जी का हिन्दू-धर्म में बड़ा ऊँचा स्थान है। प्रत्येक शुभ कार्य का आरम्भ करने के पूर्व उनका स्मरण कर लेना, उनकी पूजा करना आवश्यक माना गया है। इसका कारण यह है कि गणेश जी जिस प्रकार विघ्न-विनाशक हैं, उसी प्रकार उनको विघ्नेश्वर भी माना गया है। इसका आशय यह है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि आरम्भ में ही गणेश जी की पूजा न की जायेगी तो उस कार्य में वे विघ्न उपस्थित करेंगे, और यदि उनको प्रसन्न रखा जायेगा तो वे समस्त विघ्नों का परिहार करके कार्य को सिद्ध करने में सहायक बनेंगे।

कुछ भी हो, गणेश जी का स्थान देव-समाज में बड़े महत्व का है। उनका व्यक्तिव भी अनोखा है। मनुष्य का शरीर, हाथी का सिर, लम्बा पेट, चूहे की सवारी सभी बातें निराली हैं। साधारण लोग तो इन बातों को कौतूहल की निगाह से देखते हैं, पर विद्वानों के मतानुसार ये बातें गणेश जी में पाये जाने वाले विशेष गुणों और शक्तियों के चिह्न हैं। इन विषयों का विवेचन करते हुये भी सम्पूर्णानन्द जी ने कुछ वर्ष पूर्व "गणेश"नाम की एक पुस्तक लिखी थी जिसमें विविध पुराणों के आधार पर गणेश जी की उत्पत्ति और उनसे सम्बन्ध रखने वाली भिन्न-भिन्न कथाओं का उल्लेख करके उनके स्वरूप पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। उनमें से कुछ कथायें यहाँ दी जाती हैं।

पुराणों में गणेश जी के उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई प्रकार की कथायें कही गई हैं जिनसे उनके वास्तविक स्वरूप और महत्व पर प्रकाश पड़ता है। गणेश जी का एक मुख्य नाम विनायक भी है। इसके सम्बन्ध में "बाराह पुराण" में निम्न कथा दी गई है–

"एक बार देवताओं और तपस्वी ऋषियों के चित्त में इस विषय में चिन्ता उत्पन्न हुई कि बहुत से अवसरों पर सन्मार्ग गामियों के कामों में बाधा उपस्थित हो जाती है और असद् गामियों के काम निर्विघ्न पूरे हो जाते हैं। इस विषय में बहुत विचार करने पर निश्चय किया गया कि रुद्र की शरण में जाने से इसका कोई उपाय मालूम पड़ सकता है। वहाँ पहुँच कर सबने देवादि देव शिव की स्तुति की और उनसे प्रार्थना की, कि कोई ऐसी युक्ति कीजिये कि जो अकर्म करने वाले हैं उन्हीं के कार्यों में बाधा पड़ा करे। देवगण की प्रार्थना सुनकर महादेव जी ने उमा की ओर निर्निमेष नेत्रों से देखा। उसी समय रुद्र के मुख रूपी आकाश से एक परम सुन्दर तेजस्वी कुमार वहाँ प्रकट हो गया। उसमें परमेष्ठी (ब्रह्मा) के सब गुण विद्यमान थे और वह दूसरा रुद्र जैसा ही लगता था। उसके रूप को देखकर पार्वती जी को क्रोध आ गया और उन्होंने शाप दिया कि "हे कुमार ! तू गजवक्त्र (हाथी के सिर वाला), प्रलम्ब जठर (लम्बे पेटवाला) और सर्पेरूपवीत (साँपों के जनेऊ वाला) हो जायगा। इस पर शंकर जी ने क्रोधित होकर जो अपने शरीर को धुना तो उनके रोमों से हाथी के सिर वाले, नीले अंजन के से रंग वाले, अनेक शस्त्रों को धारण किये हुये इतने विनायक उत्पन्न हुये कि पृथ्वी क्षुब्ध हो उठी, देवगण भी घबरा गये। तब ब्रह्मा जी ने आकाश में प्रकट होकर देवताओं को धैर्य धारण करने को कहा और महादेव जी से प्रार्थना की कि " हे त्रिशूलधर, आपके ये सब विनायक उसके वश में रहें जो आपके मुख से पैदा हुआ है। आप प्रसन्न होकर इन सब को ऐसा ही वर दें।" तब महादेव ने अपने उस पुत्र से कहा कि "तुम्हारे भव पुत्र, गजास्व, गणेश और विनायक नाम होंगे। यह सब क्रूर दृष्टि प्रचण्ड विनायक तुम्हारे भृत्य होंगे। यज्ञादि कार्यों में तुम्हारी सबसे पहले पूजा होगी, अन्यथा तुम कार्य के सिद्ध होने में विघ्न उपस्थित कर दोगे। इसके अनन्तर देवगण ने गणेश की स्तुति की और शंकर ने उनका अभिषेक किया। विनायक का जन्म जिस तिथि को हुआ उसी को गणेश चतुर्थी कहते हैं।"

शिवपुराण की गणेश-जन्म वाली यह कथा तो सर्वाधिक प्रसिद्ध है जिसमें कहा गया है कि पार्वती जी ने स्नान करते समय अपने शरीर के मैल से गणेश जी की रचना की थी और शंकर जी ने उसे काट डाला था। पर ब्रहावैवर्तपुराण में इसको कुछ भिन्न रूप में लिखा गया है। उसके अनुसार "जब शिव पार्वती के विवाह को बहुत समय व्यतीत हो गया और उनके कोई सन्तान न हुई तो पार्वती जी ने कृष्ण का व्रत किया और इससे उन्होंने गणेश को जन्म दिया। उस अवसर पर शनि देवता के सिवाय और सब देव देवियाँ बालक को देखने आये। बहुत आग्रह करने पर शनि आये भी तो नीचा सिर करके खड़े रहे। पार्वती जी के पूछने पर उन्होंने बतलाया कि मुझे ऐसा शाप है कि जिस बालक को देखूँगा उसी का अनिष्ट होगा। पार्वती ने न माना। शनि के सिर उठाते ही बच्चे का सिर कट कर गिर गया। तब विष्णु ने एक हाथी का सिर काट कर जोड़ दिया, जिससे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बालक पुनर्जीवित हो उठा। तब से उसको "गणपति" पद मिला।"

"सुप्रभेदागम" ग्रंथ में एक और कथा दी गई है कि "शिव के सोमेश्वर लिंग की पूजा करने से बड़े-बड़े पातकी भी स्वर्ग पहुँचने लगे। इससे देवगण घबरा गये। उन्होंने शंकरजी से कहा कि इन अनधिकारियों का स्वर्ग में आना रोकिये । महादेव ने कहा कि मैं तो कुछ नहीं कर सकता, पार्वती से कहो। पार्वती को देवों पर दया आ गई और उन्होंने विघ्नेश्वर की सृष्टि करने का निश्चय किया। वे उबटन के साथ अपने शरीर के मैल को मिला कर गंगासागर पर पहुँची, जहाँ मालिनी नाम की हाथी के से मुख वाली एक राक्षसी उस पदार्थ को खा गई। इससे उसे गर्भ रह गया और समय आने पर पाँच सूंड वाला लड़का पैदा हुआ। शंकर ने इसको अपना पुत्र मान लिया और पाँचों सूँड को मिला कर एक कर दिया। यह लड़का गणपति हुआ। यह साधारणतः लोगों के कार्य में विघ्न डालता है, इसलिये विघ्नेश्वर कहलाता है। परन्तु जो लोग इसकी पूजा करते हैं उनके मार्ग को निष्कंटक बना देता है, इसलिये "विघ्नहर भी है।"

इस प्रकार पुराणों में गणेश जी के सम्बन्ध में बहुत प्रकार की कथायें दी गई हैं, जिनमें कुछ बातें मिलती हुई हैं और कुछ में अन्तर है। पर सबसे यह आशय निकलता है कि (१) गणेश स्वभावतः विघ्नकर्ता देवता हैं (२) उनको संतुष्ट करने से विघ्न दूर हो जाते हैं (३) किसी न किसी प्रकार पार्वती जी ने उनको जन्म दिया (४) शिव जी ने उनको अपना पुत्र मानकर गणों का स्वामी बनाया (५) आरम्भ में वे गज बदन नहीं थे, न कहीं से लाकर हाथी का मस्तक उन पर रखा गया।

इन्ही तथ्यों को लेकर सर्वसाधारण में गणेश के सम्बन्ध में और भी बहुत सी कथाएँ प्रचलित हो गयी हैं जो गणेशजी के व्रत अथवा अन्य प्रसंगों में कही जाती हैं। पर इनका प्रचार प्रायः साधारण जनता और स्त्रियों में ही है। विद्वान लोग वर्णनों को रूपक मानकर इनका लोकोपकारी वर्णन करते हैं। उदाहरणार्थ श्री चम्पतराम जी ने धर्म समन्वय सम्बन्धी ग्रंथ में लिखा है–

"गणेश जी के साथ का चूहा विवेचक, जक, भेदकारक, विस्तारक, विश्लेषक बुद्धि का है। गणेश जी का सिर कटना अहंकार का होना है और हाथी का सिर लगाना संयोजक, यकारक, संश्लेषक बुद्धि का उदय होना है और तन्मूलक व्यवहार के लिये सामान्य और दोनों परिचय आवश्यक हैं–विभाजक और समाहाकारक दोनों प्रकार की बुद्धियाँ चाहिये, परन्तु प्रधानता समन्वय बुद्धि की ही है, इसलिये गजानन चूहों पर सवारी करते हैं। इस संश्लेषक बुद्धि के कारण ही गणेश जी बुद्धिसागर माने जाते हैं। गणेश जी एक दन्ता उनकी अद्वैत प्रियता की सूचक है। उनके मोदक प्रिय होने का अर्थ है 'मोद' (आनन्द) देने वाला।"

इतिहास की खोज करने वाले विद्वानों का कहना है कि वेदों में गणेश जी का नाम कहीं पर नहीं आया है। जिन दो-एक मन्त्रों में "गणपति" शब्द आया है वह वृहस्पति के लिये प्रयुक्त किया गया है। गणेश जी का जिक्र गुप्त-काल में बने पुराणों में ही पाया जाता है जिससे विदित होता है कि जब वैदिक धर्मावलम्बी ब्रह्मावर्त से आगे चलकर इस देश के भीतरी भागों में प्रविष्ट हुये और वहाँ उनका आदि वासियों से सम्पर्क हुआ तो वे अपने देवताओं के साथ उनके भी कुछ देवताओं को पूजने लग गये और धीरे-धीरे उनको अपना ही बना लिया। गणेश जी ऐसे देवताओं में सर्वप्रमुख हैं।

कुछ भी हो गणेश जी की मान्यता इस समय देशव्यापी है। जब कि वैदिक कालीन अनेक बड़े-बड़े देवताओं जैसे वरुण, मित्र, अर्यमा, अश्विनी कुमार आदि का इस समय पता भी नहीं है, गणेश जी का सम्मान समस्त हिन्दू जाति में सर्वाधिक है। किसी भी देवता की पूजा क्यों न हो, कोई भी धार्मिक संस्कार क्यों न हो, विघ्नविनाशक के रूप में गणेश की पूजा सबसे पहले की जानी अनिवार्य है। इतना ही नहीं उन्होंने बौद्ध और जैन धर्मावलम्बियों पर भी अपना प्रभाव विस्तृत किया और उनकी लोकप्रियता को देखकर उन धर्मों के शास्त्रों में भी उनका उल्लेख किया गया। जैनियों में विवाह के अवसर पर "विनायक-मंत्र" की पूजा की जाती है। उस अवसर पर जो श्लोक पढ़े जाते हैं, वे विचारणीय हैं–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गणा नां मुनीनामधीशस्त्वतस्ते
गणेशाख्यया मे भवन्त स्तुवन्ति।
सदा विघ्न सन्दोह शान्तिर्जनानां
करे संलुठत्यायत श्रेयसा नाम।।
कलेः प्रभावात्कलुपाशयस्थ
जनेषु मिथ्यामद वासिते पु।
प्रवर्तितोऽन्यो गणराजनाम्ना,
लम्बोदरो दन्तिमुखो गणेशः।।
य तस्त्वमेवासि विनायको मे
दृष्टेष्टयोगानवरुद्धभावः।
त्वन्नाम मात्रेण परा भवन्ति
विघ्नारयस्तर्हि किमत्र चित्रम।।

अर्थात्—(हे जिनेन्द्र) आप मुनियों के गणों के अधीश हैं इसलिये जो लोग आपकी "गणेश" के नाम से स्तुति करते हैं, उनके विघ्न शान्त हो जाते हैं और कल्याण का भण्डार उनके हाथ में आता है। मलिन कलिकाल के प्रभाव से लोगों में लम्बोदर और हस्तिमुख के रूप में दूसरे ही गणराज का प्रचार हो गया है।

क्योंकि आप ही पूर्ण रूप से विलयक हैं, इस लिये इसमें आश्चर्य ही क्या है कि आपके नाम मात्र से विघ्न रूप शत्रु हार जाते हैं।

बौद्ध धर्म में "साधन-माला" नाम का एक प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसमें अनेक देव-देवियों को सिद्ध करने के मन्त्र लिखे हैं। उनमें एक मन्त्र गणेश जी का भी है जो ज्यों का त्यों नीचे दिया जाता है।

"ॐ नमः श्रीगणपतये। ॐ आः गः शान्ति कुरु ष्व मां ह्रीं भूं हुँ, स्वाहा, हृदयः। ॐ राग सिद्धि सर्वार्थ मे प्रसादय प्रसादय हुँ ज ज स्वाहा, उप हृदयः। ॐ आः गः स्वाहा, ॐ वरदकराय स्वाहा, ॐ वक्त्रैक दष्ट्र विघ्नेश हुँ फट स्वाहा, ॐ गणपत्यै स्वाहा, ॐ शान्तिंकटि भ्रुं हारिणेश डाकिनि हुँ फट स्वाहा, ॐ जः मेसि हुं कुरू बँ ॐ अन्ये होः ज ज स्वाहा।"

इस मन्त्र के आरम्भ में तो पुरुष रूपी गणपति की ओर संकेत किया गया है और अंतिम भाग में स्त्री रूपी गणपति शक्ति का उल्लेख है। इस मन्त्र के साथ "गणपति-भावना" (ध्यान) भी दिया हुआ है। उसमें गणपति का स्वरूप इस प्रकार वर्णन किया गया है—

"भगवन्त गणपति रक्तवर्ण जटामुकुटकिरीटिनं सर्वाभरण भूषितं द्वादशभुजं लम्बोदरैक वदनं अर्द्धपर्य्यंकताण्डवं त्रिनेत्रमप्येक दन्तं सत्य भुजेषुकुठार शरअंकुशवज्रषंगशलं च वाम भुजेषु भूवल चाप षटषांग अष्टकूपाल शुषूमाँस कपाल फठकं च रक्त पद्मे मूषकोपस्थितमिति।"

अर्थात्—"भगवान गणपति का, जो रक्तवर्ण, जटा मुकुट किरीट धारी, समस्त अभरण युक्त, बारह भुजा वाले, लम्बोदर, एक मुख, अर्द्धपर्त्यंकताण्डव मुद्रा से बैठे, तीन नेत्र वाले, एक दन्त, दाहिने हाथों में कुठार, तीर या खंग और शूल धारी और बायें हाथों में मूसल, धनुष, खटवांग, रक्त या सूखे माँस का पात्र और फट धारी और लाल कमल पर मूषक के ऊपर स्थित हैं, (ध्यान करें)।"

बौद्ध धर्म के साथ गणेश जी की मूर्ति चीन, जापान, बर्मा आदि देशों में भी पहुँच गयी और वहाँ अनेक मन्दिरों तथा प्राचीन भग्नावशेषों में गणेश जी की मूर्तियाँ मिलती है। इनमें भारतीय मूर्तियों से कुछ अन्तर दिखलाई पड़ता है पर गणेश जी की सूँड़, उनकी सवारी का मूषक, उनके हाथों में लिये अस्त्र शस्त्र, सब पृषतः मिलते-जुलते हैं। इस प्रकार वैदिक देवताओं से भिन्न होते हुये भी गणेश जी का प्रभाव अन्य समस्त देवताओं की अपेक्षा विस्तृत भूभाग में फैला हुआ है और वे ही सबसे अधिक पूजनीय माने जाते हैं।

वक्रतुण्डाय नमोनमः

एक बार सभी देवता एक गोष्ठी में बैठे विचार-विमर्श कर रहे थे कि सर्वप्रथम किस देवता की पूजा की जाये। अन्त में निश्चय हुआ कि जो देवता तीनों लोगों की परिक्रमा सबसे पहले कर लेगा, उसे ही यह सम्मानित पद दिया जायेगा। अतः सभी देवता अपने वाहनों पर चढ़कर चल दिये, परन्तु गणेश जी ने अपनी विवशता को विचारा कि उनका भारी शरीर एवं नन्हा-सा मूषक वाहन है इतने से ही यह महात् कार्य कैसे सम्भव हो सकता है ? तभी उनकी बुद्धि मे स्फुरणा हुई। अपने माता-पिता की परिक्रमा करके निर्णयस्थल पर जा पहुँचे और इस प्रकार प्रथम पूजे जाने का सम्मान प्राप्त किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुतः इसमें उनकी प्रखर बुद्धि की ही मुख्य भूमिका थी। उनका गजमस्तक इसी का परिचायक है।

उनका एक ही दाँत है, क्योंकि दूसरे की लेखनी बनायी थी। महाभारत ग्रन्थ की रचना का समय आया, तो प्रश्न उठा कि उसे लिखें कौन ? व्यास जी ने इसके लिए गणेश जी को उपयुक्त समझा और उनसे लिखने का आग्रह किया। इसके हेतु एक सुदृढ़ लेखनी की आवश्यकता थी। गणेश जी ने अपना दांत उत्तम समझा और उसका प्रयोग किया। विद्योपार्जन के लिए, धर्म और न्याय के लिए, श्रेष्ठ कार्यों के लिए प्रिय-से-प्रिय वस्तु का भी त्याग करना पड़े, तो पीछे नहीं हटना चाहिए। यही इसके पीछे भाव है। उनके अपने सिर की जगह हाथी सिर का होना अहंकार नाश का द्योतक है। उनके मस्तक पर चन्द्रमा की-सी शोभा उनके शान्त, संतुलित, उज्ज्वल ज्ञान का प्रतीक है। गणेशजी के कान तथा पेट दोनों बड़े, अर्थात् हमें उनके समान सब की बातें श्रवण करके अपने आप में, अपने बड़े पेट में सुरक्षित रख लेना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर समय आने पर ही उसका उद्घाटन करना चाहिये। छोटी आँखें हमें बुरी बातों को देखने से रोकती हैं। उनके आयुधों में पाश और अंकुश प्रमुख हैं। पाश व्यामोह और बन्धन का प्रतीक है। यह हमें भवबन्धनों से उबरने का स्मरण दिलाता है जबकि अंकुश दुष्प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखने की चेतावनी देता है। विशाल शरीर में महानता का, विशाल व्यक्तिव का संदेश है।

उनके विशाल शरीर का वाहन छोटा मूषक है, इसमें अन्तर्विरोध जैसी कोई बात नहीं है। वस्तुतः मूषक, मूषक-प्रवृति का द्योतक है, इस की प्रवृत्ति है -चोरी करना। मनुष्य में जो पाप की वृत्ति है, यह उसी का बोधक है। गणेश जी उस पर सवारी करते हैं, उस पर चरण प्रहार करके उसे दबाये रहते हैं, ताकि ऐसी वृत्ति किसी में पनपे नहीं। चूहे का एक और गुण है—संचय-वृत्ति। वह आगे की बात सोचता है। अनुकूल समय में ही प्रतिकूल स्थिति का भी भोजन इकट्ठा कर लेता है, ताकि अगले समय में अन्न संकट की स्थिति न देखनी पड़े। यह इसकी दूरदर्शिता है। मनुष्य को हर कार्य में ऐसी ही दूरदर्शिता—विवेकशीलता का परिचय देना चाहिए, तभी वह सफल जीवन जी सकता है। मोदक उनका प्रिय भोजन है। यह संघ शक्ति—संगठन शक्ति—एकता की प्रेरणा देती है। अकेला व्यक्ति तो उस चने के समान है, जो भाड़ नहीं फोड़ पाता। व्यक्तियों का सुसंगठित समाज ही बड़ा कार्य कर सकता है—प्रगतिशील बन सकता है। अकेलेपन में तो प्रतिगामिता ही हाथ लगती है। लम्बोदर का एक नाम गणेश गणपति भी है, जिसका अर्थ है—गणों का स्वामी। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन— यह ग्यारह गण मनुष्य के भी हैं। उसे इन्हें वशवर्ती बनाकर उनका स्वामी होने का गौरव प्राप्त करना चाहिए।

यह सब गुण, साथ ही मौन के रूप में वाणी संयम की शक्ति होने के कारण ही वे महाभारत जैसा महान ग्रन्थ लिख सके। असीम प्राण शक्ति किसी में नहीं होती। संयम द्वारा ही उसका संवर्धन कर सिद्धियों को करतलगत किया जा सकता है। विनायक श्री गणेश के इन गुणों का अनुकरण करके हम भी सच्चे ईश्वर भक्त बन सकते हैं।

"गणपति" शब्द ईश्वर का एक विशेषण है। गणपति की मूर्ति ओ३म् प्रणव का ही अपभ्रंश है। ओ३म् शब्द ध्यान से देखने पर हाथी का 'गडाल' सूर्य कर्ण सुन्डादण्ड एवं चन्द्रकान्ता से सुशोभित गणपति का मुख ही प्रतीत होता है। शिव और पार्वती पुरुष और प्रकृति के दूसरे रूप हैं। प्रकृति के दो भेद हैं परा और अपरा । इसी वास्ते "शंकर" के भी दो पत्नियाँ है सती और पार्वती। सती तो परा विद्या द्योतक है और पार्वती "अपरा" विद्या की द्योतक है। भोला—पार्वती के दो पुत्र हैं स्कन्द और गणेश । स्कन्द को "कार्तिकेय" सेनापति भी कहते हैं। अपरा प्रकृति पार्वती अर्थात् राज हिमालय की पुत्री कही गई हैं। क्योंकि प्रकृति जड़ है और पुरुष चेतन है। जड़, प्रकृति का विकास गजराज और चेतना अंश का अन्तिम परिणाम बुद्धिजीवी मानव है। अतः गणपति में मनुष्य और हाथी दोनों का ही सामंजस्य व्यक्ति है। वह गजवदन है, परन्तु उसका शरीर मानव जैसा है। चेतन जीव और जड़ प्रकृति के सम्मेलन से तीसरा पदार्थ मन उत्पन्न हुआ। इस वास्ते गणपति को मन का अवतार बताया गया है क्योंकि उपनिषद में कहा है जो मन से मनन होता है वही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाणी से बोला जाता है और जो वाणी से बोला जाता है, वह कार्य रूप में किया जाता है। मनोयोग जितना प्रबल होगा उतनी ही कार्य की सिद्धि सरल हो जायेगी। साधना के लिये हमें शिरोभाग के विभिन्न अंग चाहिये। गज का मस्तक उसका अर्थ स्थल होता है। इसी कारण सिर पर नन्हे से अंकुश से हाथी वश में आ जाता है। इससे हमें यह संकेत लेना चाहिये कि सिद्धि की कामना रखने वाले व्यक्ति को अपना मस्तक व्यर्थ के वितण्डावादों और संघर्षों से बचाये रखना चाहिये। हाथी की आँखें छोटी होती हैं, इससे हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि हमें हर एक चीज सूक्ष्म दृष्टि से देखनी चाहिये, गज के नेत्रों में यह विलक्षणता है कि वह अपने सामने दिखने वाली प्रत्येक वस्तु के उसके मूल आकार से बड़ी दिखती है, इससे हमें भी यह शिक्षा लेनी चाहिये यदि हमें सिद्धि प्राप्त करनी है तो हमें दूसरे व्यक्ति को नीच और हीन समझकर उसका तिरस्कार अथवा अपमान नहीं करना चाहिये । हाथी के बड़े-बड़े कान होते हैं और मुख के आगे लटकता हुआ सूँड़ होता है, इससे हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि हमें सब कुछ बुरी-भली सुनने की क्षमता होनी चाहिये और अपनी वाणी पर नियन्त्रण रखना चाहिये। हाथी की जीभ दाँतों से कण्ठ की ओर लपलपाती रहती है, इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि यदि सिद्धि चाहते हो, तो साधक को दूसरों का आलोचक न बनकर अपना ही समीक्षक बनना चाहिये। इसमें ऋषि मुनियों ने अद्‌भुत कल्पना शक्ति और सूझ-बूझ का परिचय देकर मूर्ति बनाई है। वे विदेशी मूर्ख हैं, जो इस अलंकार का अर्थ न समझकर हिन्दुओं के देवताओं की हँसी उड़ाते हैं। पश्चिम वाले कहते हैं कि हिन्दू कैसे मूर्ख थे कि इतने बड़े हाथी को सवारी के लिये चूहा दिया। परन्तु इसमें भी बड़ा रहस्य भरा हुआ है। तर्क और चूहे का एक ही गुण माना गया। चूहा हर बात की काट-छाँट करता रहता है। वह अच्छी से अच्छी वस्तु को भी अपने दाँतों से कुतर कर फेंक देता है। तर्क करने वाले आदमी भी चूहे के समान हर एक की निन्दा, स्तुति करते रहते हैं और कहीं लोग भी कुतर्क करके सिद्ध वस्तु को खराब रूप में रख देते हैं। सुबुद्धि ही ऐसे कुतर्कियों को दबा सकती है। इस वास्ते सुबुद्धि हाथी को कुर्तक रूपी चूहे को दबाने के लिए सवारी में दिया है। सुबुद्धि जितनी बढ़ती है, उतना कुतर्क घटता है। इसी वास्ते गणपति का वाहन छोटा चूहा रखा है। गणपति को बुद्धि का देवता माना है। क्योंकि हाथी का शरीर स्थूल होता है, और इसकी बुद्धि बड़ी सूक्ष्म होती है। यह सर्कसों में समझदार होने के कारण ही इतने हल्के पैर रखकर मनुष्य के शरीर के ऊपर होकर या लकड़ी के छोटे से टुकड़े पर होकर बिना उसके तोड़े या हानि पहुँचाये निकल जाता है। उसको एक दन्त इसीलिये कहते हैं कि परमात्मा का किसी से द्वेष नहीं और लम्बोदर इसलिए कहा है कि सारा ब्रह्माण्ड भगवान के उदर में माना जाता है। उसे विनायक इसलिये कहते हैं कि वह नेतृत्व कर सकता है। सब सुनना, कम बोलना यह एक नेता के गुण हैं। इसी वास्ते उसके बड़े कान और लम्बी सूँड़ है और मोटा पेट है, क्योंकि रहस्य की सुनकर उसको पेट में रखे रहना एक राजनैतिक के लिय अत्यन्त आवश्यक है। राजनैतिक नेता को गुप्त मंत्रणा करके शत्रु को हराना पड़ता है।

प्रजापति दुहित् की कथा :

पुराणों में यह कथा इस प्रकार लिखी है कि प्रजापति के दो पुत्रियाँ थी। 'सूर्य' ने उनसे समागम किया। समागम से 'दिवस' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वास्तव में इस कथा में वेद मन्त्र को रूपकालंकार में समझाया है। प्रजापति सूर्य को कहते हैं। सूर्य से प्रकाश होता है और प्रातःकाल उषा की लाली भी सूर्य की किरणों के कारण होती है। इस वास्ते उषा और प्रकाश को सूर्य से उत्पन्न होने के कारण उसकी पुत्रियाँ कहा है। क्योंकि सूर्य की किरणें प्रातःकाल उषा के सम्मुख प्रथम जाकर पड़ती हैं तो वह वीर्य स्थापन के समान है। अतः सूर्य की किरण के गिरने के कारण उषा विलीन हो जाती है और दिन निकल आता है, इस वास्ते दिन को सूर्य पुत्र कहते हैं। इसी सामान्य तथ्य को अलौकिक रूप से यों कह दिया गया कि सूर्य पिता ने अपनी लड़कियों के साथ व्यभिचार करके दिवस रूपी पुत्र उत्पन्न किया। पिता के समान पर्जन्य अर्थात् जलरूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो मेघ है, उसकी पृथ्वी रूपी कन्या है क्योंकि पृथ्वी की उत्पत्ति जल से है। अतः जब वह उस कन्या में वृष्टि द्वारा जल रूप वीर्य को स्थापित करता है, तब उसमें गर्भ रह कर अनेक औषधियाँ और वनस्पतियाँ रूपी संतान उत्पन्न होते हैं। वास्तव में मूल ऋग्वेद के मन्त्र का अर्थ यह है कि द्वये जो सूर्य का प्रकाश है। जो सब सुखों का हित होने से पिता के समान है और पृथ्वी बड़ा स्थान होने से माता के तुल्य है। उस पर सूर्य चाँदनी के समान तना हुआ है और पृथ्वी बिछोने के समान है, इसमें योनि अर्थात् गर्भ स्थान का स्थान पृथ्वी और गर्भ स्थापन करने वाला पति के समान मेघ है। वह अपने बिन्दु रूप वीर्य के स्थापन से उसको गर्भ धारण कराके औषध इत्यादि अनेक सन्तान उत्पन्न करता है, जिससे सब जगत का पालन होता है। जो यह रूपकालंकार की कथा अच्छी प्रकार वेद ब्राह्मण और विरूपत आदि सत्य ग्रन्थों में प्रसिद्ध है।

इन्द्र अहिल्या की कथा

एक कथा "इन्द्र अहिल्या" की है, और पुराणों में इस कथा को इस प्रकार वर्णन किया है कि देवों के राजा इन्द्र ने 'गौतम' ऋषि की स्त्री अहिल्या के साथ जार कर्म किया। गौतम ने उनको देख लिया तब उसने इन्द्र को श्राप दिया कि हे इन्द्र ? तू हजार भग वाला हो जा तथा अहिल्या को यह श्राप दिया कि तू पाषाण रूप हो जा। इस पर इन्द्र और अहिल्या ने गौतम ऋषि से प्रार्थना की कि हमारे श्राप से बचाव कैसे और कब होगा ?

तब 'गौतम' ऋषि ने इन्द्र से कहा कि तुम्हारे हजार भग के स्थान में हजार नेत्र हो जायेंगे और अहिल्या को वचन दिया कि जिस समय श्री राजचन्द्रजी अवतार लेकर तेरे पर चरण अपना लगावेंगे उस समय तू अपने स्वरूप में आ जावेगी। योगिक संस्कृत में इन्द्र के अर्थ 'सूर्य' के होते हैं। और अहिल्या के अर्थ रात्रि होते हैं। गौतम के अर्थ 'चन्द्रमा' के होते हैं। वेद काव्य है, इस वास्ते रुपकालंकारों से यह भरपूर है। इस वास्ते रात्रि और चन्द्रमा को स्त्री और पुरुष के समान मानकर बतलाया है कि चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि से सब प्राणियों को चाँदनी रात में आनन्दित्त करता है। सूर्य प्रातःकाल उदय होते ही रात्रि अन्तर्ध्यान हो जाती है। अर्थात 'सूर्य' रात्रि के साथ जार कर्म रूपकालंकार से करता है और उसके रूप श्रृंगार का बिगाड़ने वाला है।

चन्द्रमा का नाम गौतम इसलिये है कि वह अत्यन्त वेग से चलता है और रात्रि को अहिल्या इसलिये कहते हैं कि उसमें दिन लय हो जाता है तथा सूर्य रात्रि को निवृत कर देता है इसलिये उसका जार कहलाता है।

इन्द्र और वृत्रासुर की कथा

पौराणिकों में एक कथा यह है कि त्वाष्ठा के पुत्र वृत्रासुर ने देवों के राजा इन्द्र को निगल लिया। तब सब देवता लोग भय युक्त होकर विष्णु के समीप में गये और विष्णु ने उसके मारने का उपाय बतलाया कि मैं समुद्र के फेन में प्रविष्ट होऊँगा, तुम लोग उस फेन को उठाकर वृत्रासुर को मारना वह मर जायेगा। (इन्द्रस्थ नु०) यहाँ सूर्य का इन्द्र नाम है । उसके पराक्रमों को हम लोग कहते हैं जो कि परमेश्वर होने का हेतु अर्थात बड़ा तेज धारी है । वह अपनी किरणों से वृत्र अर्थात मेघ को मारता है । जब वह मरकर पृथ्वी पर गिरता है तब अपने जल रूप शरीर को सब पृथ्वी पर फैला देता है। फिर उससे अनेक बड़ी-बड़ी नदी परिपूर्ण होकर समुद्र में जा मिलती हैं। कैसी वे नदी हैं कि पर्वत अर्थात मेघों से उत्पन्न होकर जल्दी बहने के लिये होती है, जिस समय इन्द्र मेघ रूप वृत्रासुर को मार कर आकाश से पृथ्वी पर गिराता है तब वह पृथ्वी पर सो जाता है। फिर वही मेघ आकाश में से नीचे गिर कर पर्वत अर्थात् मेघ मण्डल का पुनः आश्रय लेता है। जिसको सूर्य अपनी किरणों से फिर हनन करता है जैसे कोई लकड़ी को छील कर सूक्ष्म कर देता है वैसे ही वह मेघ को भी बिन्दु-बिन्दु करके पृथ्वी पर गिरा देता है और उसके शरीर रूप जल सिमट-सिमट कर नदियों के द्वारा समुद्र को ऐसे प्राप्त होते हैं कि जैसे अपने बछड़ों को गाय दौड़ कर मिलती है।

नघण्टु में मेघ का नाम वृत्र है और वृत्र का शत्रु निवारक सूर्य है, सूर्य की किरणों के द्वारा जल कण-कण होकर ऊपर को जाकर वहाँ मिलकर मेघ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप हो जाते हैं, वृत्र के इस जल रूप शरीर से बड़ी-बड़ी नदियाँ उत्पन्न होकर अगाध समुद्र में जाकर मिलती हैं और जितना जल तालाबों, कुओं या बाँधों आदि में रह जाता है, वह मानो पृथ्वी में शयन कर रहा है। इस वास्ते वृत्र अपनी बिजली और गति रूप भय से भी इन्द्र को कभी नहीं जीत सकता। इस प्रकार अलंकार रूप वर्णन से इन्द्र और वृत्र का परस्पर युद्ध बतलाया गया है। अर्थात् जब बादल बढ़ते हैं तब सूर्य के प्रकाश को हरा देते हैं और जब सूर्य की किरणें तेजी से बढ़ती हैं, तब वे बादल को छिन्न-भिन्न कर देती हैं। सूर्य के हनन से मेघ बरसता है। मेघ का जल पर्वतों में पड़ कर नदियों के रूप में पृथ्वी को सींचता हुआ समुद्र में जाता है। फिर समुद्र से वाष्प बन-बन कर जल उड़-उड़ कर आकाश में जाता है फिर वहाँ जल और बादल की लड़ाई होती है और वह जल बादल से पृथ्वी पर गिरता है और पृथ्वी पर गिर कर नाना प्रकार की औषधियां, वनस्पतियाँ, अन्न, कन्द, मूल, फल इत्यादि उत्पन्न करता है। इसी मेघ को वृत्रासुर कहते हैं। वायु और सूर्य को इन्द्र कहते हैं। इसी वृत्रासुर और इन्द्र का आकाश में सदा देवासुर संग्राम चलता रहता है। अन्त में मेघ की पराजय और सूर्य की विजय होती है।

देवासुर संग्राम की कथा

पौराणिकों में देवासुर संग्राम की कथा इस प्रकार है कि एक दैत्यों की सेना थी जिनके शुक्राचार्य पुरोहित थे। एक देवों की सेना थी जिनके राजा इन्द्र थे और उनके सेनापति अग्नि और पुरोहित वृहस्पति थे। असुर लोगों ने तप करके ब्रह्मा, विष्णु, महादेव से वर माँग लिये, अतः असुरों को मारने के लिये भगवान ने अवतार लिया और देवासुर संग्राम हुआ।

इसका वास्तविक अर्थ यह है कि जो लोग विद्वान् सत्यवादी सत्य कर्म करने वाले हैं वे तो देवता कहलाते हैं, और जो लोग मूर्ख, झूँठ बोलते हैं छली कपटी हैं, वे असुर कहलाते हैं। इनका इस संसार में सदा से विरोध चलता आया है और इसी का नाम देवासुर संग्राम है। हमारे पिण्ड शरीर में भी हमारा मन और ज्ञानेन्द्रियां देव कहलाती हैं और प्राण असुर है और उनका राजा प्राण है और अपान उसकी सेना है। असुर इसलिये कहलाते हैं, क्योंकि ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और दस प्राण प्रकाश रहित हैं। पुण्यात्मा देव कहलाते हैं, पापात्मा असुर कहलाते हैं। दिन को देव कहते हैं, रात्रि को असुर कहते हैं। शुक्ल पक्ष को देव कहते हैं और कृष्ण पक्ष को असुर कहते हैं। उत्तरायण की देव संज्ञा है और दक्षिणायण की असुर संज्ञा है। इन सबों का परस्पर युद्ध हर समय चलता रहता है और यह देवासुर संग्राम रूप का अलंकार है। शरीर में प्राण आदि असुर कहलाते हैं, वे परमात्मा के बड़े पुत्र माने जाते हैं। क्योंकि वे प्रथम उत्पन्न हुए और बाल्यावस्था में सब मनुष्य अविद्वान् होते हैं और सूर्य ज्ञानेन्द्रियाँ छोटे भाई इसलिये माने जाते हैं क्योंकि वे पीछे प्रकाशित होते हैं, जो लोग परोपकारी या दुखभंजन तथा धर्मात्मा हैं, वे देव हैं। अतः देवासुर संग्राम की कथा को इस रूपकालंकार में मान कर लोगों को उनका कर्तव्य कर्म समझना चाहिए और इसी प्रकार कश्यप और गया आदि की कथा इस प्रकार है कि मरीचि के पुत्र एक कश्यप ऋषि हुए थे, उनको दक्ष प्रजापति ने विवाह विधान से तेरह कन्या दीं कि जिनसे सब संसार की उत्पत्ति हुई अर्थात् 'दिति' से 'दैत्य', 'आदित' से 'आदित्य' दनु से दानव, 'करद्रू' से 'सर्प' और 'विनता' से 'पक्षी' तथा 'और' से 'वानर' ऋच्छ, घास, आदि पदार्थ भी उत्पन्न हुये। इसी प्रकार चन्द्रमा को सत्ताईस कन्या दीं। देखिये ये ही कथा सत्य शास्त्रों में किस प्रकार की उत्तम लिखी है। प्रजा को उत्पन्न करने से कर्म तथा अपने ज्ञान से देखने के कारण इस परमेश्वर को कश्यप भी कहते हैं। (कश्यप) यह शब्द (पश्यकः) इस शब्द के आध्यान्तर पर्याय से बनता है।

गया का अर्थ बिहार प्रान्त के फलगु नदी पर बने हुये पाषाण को विष्णुपाद कह दिया है और कहा जाता है कि यहाँ श्राद्ध करने से पितरों की मुक्ति हो जाती है। गया के अर्थ योगिक संस्कृत में कोई बिहार के फलगू नदी पर बने हुए विष्णुवाद का नाम नहीं है। गया कहते हैं गायत्री मंत्र को। श्रद्धा सहित परमेश्वर की भक्ति करने से जीव सब दुखों से छूट जाता है, इस वास्ते इसका नाम गया है। योगिक संस्कृत में प्राण का नाम भी गया है। प्राणायाम की रीति से प्राणों को रोक कर परमेश्वर की भक्ति के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रताप से पितर अर्थात् ज्ञानी लोग सब दुखों से रहित हो जाते हैं। इस वास्ते इसे गया कहा है । गायत्री और प्राणों के अतिरिक्त 'निघण्टु' में गया का अर्थ घर, संतान और प्रजा भी बताया है। इनकी सेवा करने से अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न होती है इस वास्ते इसका नाम गया श्राद्ध है। धर्म से प्रजा का पालन, दुष्टों को दण्ड देना यह सर्वश्रेष्ठ कर्म गया श्राद्ध योगिक संस्कृत में कहलाते हैं, निरूक्तकार ने विष्णु शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है कि यह शब्द विपृल धातु से बना है। इसका अर्थ व्यापक होता है, परमात्मा जगत् में व्यापक है, इसलिये वह विष्णु है। 'गया' के अर्थ प्राण के होते हैं।

इसी प्रकार गंगादि के अर्थ तीर्थों के इसीलिए पड़े हैं कि उसके जल से पृथ्वी सिंचित होती है और खेतियाँ लहलहाती हैं । तीर्थ के मायने दुखों से उतरने हैं। गंगा आदि शब्द जो वेदों में आये हैं, उनके योगिक अर्थ वर्तमान गंगा नदी है, परन्तु मन्त्र में गंगा आदि नाम 'इड़ा' 'पिंगला' 'सुषुम्ना' 'कर्म' और जठराग्नि की नदियों के हैं । उनमें योगाभ्यास से परमेश्वर की उपासना करने से मनुष्य सब दुखों से तर जाते हैं। 'शित्' 'इड़ा' और 'अशित' 'पिंगला' ये दोनों यहाँ मिलती हैं उनको सुषुम्ना कहते हैं । उसमें योगाभ्यास से स्नान करके जीव शुद्ध हो जाता है और फिर शुद्ध रूप परमेश्वर को प्राप्त होकर सदा आनन्दमय रहता है । इस वास्ते योगाभ्यास को सच्चा तीर्थ मानकर परमात्मा की उपासना करनी चाहिये।

हनुमान जी को पूजिए पर वैसे ही बनिए भी

संसार सागर की यात्रा के लिए हमारा शरीर एक नाव है। शरीर के ऊपर हमारा पार उतरना या डूब जाना, बहुत कुछ निर्भर करता है। जिस तरह छिद्रयुक्त जीर्ण-शीर्ण, कमजोर नाव से चंचल, गतिशील संघर्षयुक्त जल धारा को पार करना कठिन है उसी तरह रोगी, निर्बल, असमर्थ शरीर से जीवन यात्रा भली प्रकार पूरी करना सम्भव नहीं होता। विजय सफलता आनन्द उल्लासमय जीवन बहुत कुछ स्वस्थ एवं बलवान शरीर पर निर्भर करता है। शरीर मनुष्य के लिए एक ऐसी ईश्वरीय देन है जिस के अभाव की पूर्ति संसार में अन्य कोई वस्तु नहीं कर सकती।

हृदय बुद्धि जैसे महत्वपूर्ण उपकरण भी अपना अस्तिव–सतेज स्वस्थ शरीर में ही कायम रख सकते हैं। शरीर के अस्वस्थ होते ही बुद्धि मंद हो जाती है। विवेक जाता रहता है। हृदय अपना आनन्द संगीत बन्द कर देता है। मनुष्य के लिए शेष रह जाती है जीवन की भयानकता, कठोरता, अशान्ति, क्लेश, अपमान। वह जीवित होते हुए भी मृत तुल्य हो जाता है।

हमारा शरीर उस शीशे के ग्लोब की तरह है जिसके माध्यम से लाल्टेन की दीपशिखा अपनी ज्योति बाहर प्रगट करती है। गन्दा, कालिख धुयें से खराब शीशा रोशनी को भली प्रकार बाहर प्रकट नहीं होने देता। जीर्ण-शीर्ण कमजोर शरीर भी आत्म ज्योति की प्रकाश किरणों को संसार में व्यक्त होने नहीं देता। स्वस्थ एवं तेजस्वी शरीर ही आत्मा के तेजस्वी प्रकाश को धारण करके जीवन को आभामय-ज्योतिर्मय बना सकता है।

शास्त्रकार ने शरीर को ही सब धर्मों का साधन बताते हुए कहा है "शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्।" स्वस्थ शरीर के द्वारा ही जीवन और जगत के धर्म-कर्तव्यों का भार वहन किया जा सकता है। वस्तुतः बिना मजबूत शरीर के न हम किसी का ऋण चुका सकते न अपना कर्तव्य पूर्ण कर सकते हैं। दुर्बल शरीर से न किसी की सेवा ही हो सकती है।

शरीर आत्मा का मन्दिर है। बापू ने कहा है "शरीर आत्मा के रहने की जगह होने से तीर्थ जैसा पवित्र है।" आवश्यकता इस बात की है कि हम इसे तीर्थ की तरह ही स्वच्छ-सुन्दर विकारशून्य बनाने का प्रयत्न करें।

शरीर के माध्यम से ही जीवन और जगत का सौंदर्य आनन्द लाभ किया जा सकता है। शरीर में जब भरपूर उछल-कूद, मन में अपार उत्साह होता है तो यह संसार क्रीड़ा भूमि सा दीखता है। स्वर्ग लगने लगता है और जब शरीर असमर्थ अयोग्य बलहीन हो जाता है तो यह संसार नरक तुल्य जान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ता है। जीवन भार स्वरूप लगने लगता है। पाश्चात्य विद्वान बीयर ने कहा है "शरीर वीणा है और आनन्द संगीत। यह जरूरी है कि यन्त्र दुरुस्त रहे।" आनन्द का संगीत स्वस्थ शरीर में ही स्पन्दित होने लगता है।

शरीर का रोगी जीर्ण-शीर्ण, कमजोर होना अपने आप में एक बहुत बड़ा पाप है। जॉर्ज बर्नार्ड शा ने कहा है "यदि कोई बीमार पड़ेगा तो मैं उसे जेल भेज दूँगा।" बीमारी सजा है प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने की। रोगी होना अपने आप में अपराधी होना है। मुख्यतया मनुष्य की अपनी भूलें, वे परिस्थितियाँ जिनमें वह रहता है और जिनके निर्माण में खासतौर से वह स्वयं ही उत्तरदायी है, मुख्य होती हैं। रोगी हो जहाँ मनुष्य अपने लिए नरक या जीवन का द्वार खोलता है वहाँ समाज की उन्नति में भी बाधा पहुँचाता है। क्योंकि एक ओर तो वह व्यक्ति समाज के लिए जो कुछ करता वह रुक जाता है, दूसरे अन्य लोगों का समय-श्रम-धन रोगी के लिए लगने लगता है। परिवार के लोगों में चिन्ता फैलती है।

स्वस्थ बलवान शरीर फटे कपड़ों में भी सुन्दर लगता है। रोगी और निस्तेज व्यक्ति सुन्दर कपड़ों के सौंदर्य को भी भद्दा बना देता है। उसे कितना ही सजायें वह अनाकर्षक और कुरूप ही लगेगा।

उत्तम स्वास्थ्य ही जीवन का सौंदर्य है, आनन्द की खान है। स्वास्थ्य और बल की उपासना की प्रथम कक्षा मानव देह है। शरीर को स्वस्थ, बलवान, तरोताजा, स्फूर्तिवान, तेजस्वी बनाना आवश्यक है। यही वह आधार है जिससे जीवन में अन्य शक्ति स्रोत खुलने की सम्भावना हो सकती है। स्मरण रहे स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है। बलवान शरीर ही आत्मा का तेज गुण धारण करने में समर्थ होता है। कान्तिवान हँसमुख चेहरा, तेज ओज ही दूसरों के लिए आकर्षण का प्रकृत केन्द्र होता है। मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ पर ही शक्ति, सामर्थ्य के अन्य स्रोत निर्भर करते हैं। इसलिये शरीर को सर्वप्रथम बलवान, स्वस्थ, तेजस्वी बनाने पर ध्यान देना चाहिए।

वैयक्तिक जीवन में शरीर के बाद नम्बर आता है हृदय और बुद्धि का। कवीन्द्र रवीन्द्र ने कहा है "हे भगवान ! यह शरीर तेरा मन्दिर है अतः इसे मैं हमेशा पवित्र रखूँगा, आपने मुझे यह हृदय दिया है, मैं इसे प्रेम से भर दूँगा, आपने मुझे यह बुद्धि दी है मैं इस दीपक को हमेशा निर्मल और तेजस्वी बनाये रखूँगा।" शरीर के साथ-साथ हृदय बुद्धि का भी अपने-अपने क्षेत्र में स्वस्थ सतेज होना आवश्यक है।

अक्सर देखा जाता है कि कई व्यक्ति शरीर से स्वस्थ होते हैं लेकिन उनका हृदय बुद्धि अविकसित ही रह जाते हैं। बहुत से पहलवान कहाने वाले लोग बुद्धि के ठस और हृदय से प्रेम, आनन्द, निर्मलताशून्य होते हैं। आज तो यह एक धारणा-सी बन गई है कि जो शरीर से तगड़ा होगा बुद्धि से कमजोर रहेगा। जो बुद्धिमान होगा उसका शरीर दुर्बल होगा लेकिन वस्तुतः यह विश्वास गलत है। शरीर, मन, हृदय तीनों में से एक के निर्बल होने पर भी मनुष्य बलवान नहीं कहा जा सकता।

हमारे यहाँ हनुमान को सर्वांगीण बल का प्रतीक माना गया है। स्थान-स्थान पर हनुमान की मूर्ति कहीं न कहीं बगीचे, शहर से बाहर खुले मैदान में मिलती हैं। यह हमारे यहाँ किसी समय बलोपासना के व्यापक प्रसार का स्मृति चिह्न है। श्री हनुमान के व्यक्तिव का परिचय देते हुए कहा है–

मनोजवं मारुत तुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम।
वातात्मजं वानरयूथ मुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये।।

इस छोटे से श्लोक में सर्वतोमुखी शक्ति के प्रतीक हनुमान का चित्रण मिलता है। वे केवल शरीर से ही बलवान नहीं थे, मन की भांति चंचल–स्फूर्तिवान भी थे। 'मारूत तुल्य वेग' हवा के सदृश्य वे वेगवान थे। शक्ति उपासना का आदर्श शरीर को वज्र के समान बनाने की प्रेरणा देता है तो उसे वायु के सदृश्य वेगवान भी। हनुमान का शरीर ऐसा ही था। वे चट्टानों को चूर-चूर कर देते थे तो दस कोस भी चले जाते थे। वे वायु जैसे गतिवान थे।

शक्ति प्रतीक हनुमान शरीर के साथ-साथ मन से भी अपार बलशाली थे। उन्होंने वासना को जीत लिया था। वे जितेन्द्रिय थे, बुद्धिमान थे। उनका शक्ति, व्रत, तप प्रधान जीवन सभी प्रकार श्रेष्ठ था। शरीर और मन पर उनका पूरा-पूरा अधिकार था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वे बुद्धिमानों में भी श्रेष्ठतम थे। हृदय से वे सभी प्रकार निर्मल पवित्र और सरल थे, तो परम भक्त भी थे। हनुमान राम के अनन्य भक्त थे।

शरीर मन बुद्धि हृदय के साथ-साथ मनुष्य का एक बल और होता है वह है संगठन बल। संगठन के साथ ही व्यक्ति जीवित रह सकता है। शक्तिवान् मनुष्य भी समाज के सहयोग के अभाव में प्रभावशील नहीं रह सकता। असंगठित समाज-जातियाँ बहुत जल्दी ही नष्ट हो जाती हैं। व्यक्ति अपने आप में तो बलवान, सामर्थ्यवान हो सकता है लेकिन समाज के लिए वह किसी काम का नहीं तो व्यर्थ है। आवश्यकता इस बात की है कि अन्य शक्तियों के साथ-साथ संगठन कुशलता भी होनी चाहिए। समूह में रह कर काम करना और समाज को संगठित बनाने का सामर्थ्य भी होना आवश्यक है। हनुमान जी वानर सेना में प्रधान थे। उनके नेतृत्व में वानर सेना ने बड़े-बड़े काम किए।

शरीर-मन-बुद्धि-हृदय के विकास के साथ-साथ हम को संगठन को शक्तिशाली, सामर्थ्यवान बनाने के लिए भी प्रयत्न करना आवश्यक है। क्योंकि संगठन में ही शक्ति है। असंगठित रहने वाले बड़े-बड़े योद्धा भी नष्ट हो जाते हैं।

शारीरिक, मानसिक एवं संगठन सम्बन्धी शक्तियों का क्या उद्देश्य है, ऐसा क्यों आवश्यक है ? शक्ति के प्रतीक हनुमानजी के जीवन से सहज ही इन प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है। शक्ति साधनों का उपयोग किस लिए ? राम-सेवा के लिए। रामदूत बनने में ही हनुमान जी अपना गौरव समझते हैं। भगवान का अवतार अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना करना होता है। सच्चे भगवद् भक्त को भी अपनी गतिविधियों का निर्धारण इसी आधार पर करना होता है। राम सेवा का तात्पर्य है आसुरी शक्तियों का उन्मूलन। रावण की तरह समाज को पददलित करने वाले तत्वों के खिलाफ संघर्ष करके समाज को सभी भाँति सुरक्षित, स्वतन्त्र, सुखी बनाने की राम सेवा में लग जाना शक्ति का सर्वोत्तम उपयोग है। हनुमानजी अपने तन-मन संगठन सभी शक्तियों के साथ राम-सेवा के पुनीत उद्देश्य में लग गये थे।

शक्तियों का उपयोग दूसरों का शोषण दलन, अपहरण करने में करना समाज के लिए आतंक, अत्याचार असुरता की भावना पैदा करना रावण का मार्ग अपनाना है। शक्ति तो हनुमान की तरह राम के पीछे चल कर ही पुण्यवान हो पाती है। ऋषि कहता है--

"आर्तत्राणाय यः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।"

"तेरे शस्त्र पीड़ितों की रक्षा करने के लिए हैं, निरपराधों को सताने के लिए नहीं।" किसी सच्चे बलवान का बल समाज की निर्बलता की कमी की पूर्ति करने के लिए होना चाहिए न कि समाज को और भी निर्बल सिद्ध करने के लिए। जो निर्बल हैं, कमजोर हैं, असमर्थ हैं उन्हें अपनी शक्ति का सहारा देकर बलवान बनाना, जीवन के सहज स्वाभाविक अधिकार प्रदान करना यही बलवान का धर्म है। बलवान माँ अपने नन्हे शिशु को अपनी शक्तियों से पाल-पोस कर एक दिन सामर्थ्यवान बना देती है। स्मरण रहे शक्तियों का महत्व बनाने में है--निर्माण में है, नष्ट करने में नहीं। समाज को कमजोर बनाने के लिए शक्तियाँ नहीं हैं। इससे शक्तिवान का पतन होता है। उसकी शक्तियाँ भी धीरे-धीरे नष्ट हो जाती हैं। शक्ति का रचनात्मक उपयोग शक्तियों को बढ़ाता है और शक्तिशाली को तेज सामर्थ्य प्रदान करता है।

शरीर मन हृदय बुद्धि की शक्तियों का विकास कीजिए। शरीर से मन, बुद्धि की शक्ति बलवान है। मन से हृदय की प्रेम शक्ति निर्मलता पवित्रता सदाचार की शक्ति महान है और इन सब शक्तियों का समाज की रचना में उपयोग करना, संगठित होकर कार्य करना और भी महत्वपूर्ण है। सभी भाँति शक्तिशाली बनिये। स्मरण रखिये शक्ति ही जीवन है। चहुमुँखी बल का संचय करके हनुमान की प्रत्यक्ष उपासना कीजिए।

अतुलित बलधामं स्वर्ण शैलाभदेहम्।
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।।
सकल गुण निधानं वानराणामधीशं।
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि।।

हनुमानजी की स्तुति करते हुए प्रायः यह श्लोक पढ़ा जाता है। उनमें अनेक विशेषताएँ थीं -- (१) बल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपार था (२) विशाल देह ब्रह्मचर्य से दीप्तिवान् थी (३) दुष्टों का दमन करने वाले थे (४) ज्ञानियों में अग्रगण्य थे (५) गुणवान थे (६) भगवान् के प्रिय भक्तों में से थे।

अर्जुन इन गुणों का अनुकरण करना चाहते थे और उन्होंने ये गुण प्राप्त भी कर लिये थे। इसी कारण अपनी ध्वजा का चिह्न हनुमान लिया। योग ग्रन्थों में लिखा है–

"वायु स्थिर होने से मनुष्य मुक्त होता है।"

"प्राण चंचल हुआ, तो मन चंचल होता है, प्राण स्थिर होने से मन स्थिर हो जाता है।"

हनुमान वायुपुत्र प्रसिद्ध हैं। हनुमान का चिह्न धारण करने से स्पष्ट है कि अर्जुन ने वायु अर्थात् प्राणों पर विजय प्राप्त की थी। उसका अन्तःकरण निर्मल था, वायु की भाँति पवित्र था पर इन गुणों के रहते हुए भी वायु में चंचलता स्वभावतः होती है। अर्जुन का भी स्वभाव उसी प्रकार चंचल था और यही कारण हुआ कि वीर, चरित्रवान्, ज्ञान, और भक्त होते हुए भी अर्जुन चंचलतावश विषम मनःस्थिति में रहे।

ब्रह्मसत्ता की तीन मूल शक्तियाँ-त्रिदेव

निर्गुण, निराकार, अचिन्त्य, सृष्टा, दृष्टा, साक्षी, नियन्ता, ब्रह्म सत्ता, एक अखण्ड, अविभाज्य अविवेच्य है। सृष्टि-सृजन उस ब्रह्म सत्ता के संकल्प की चमत्कारिक परिणति है। ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता निर्विकार है किन्तु सृष्टि-व्यवहार में प्रयुक्त उसकी सगुण सत्ता या व्यावहारिक सत्ता सृष्टि-व्यापार के संचालन में सक्रिय रहती है। सम्पूर्ण विश्व में ओत-प्रोत यह सत्ता त्रिगुणात्मिका प्रकृति को निरन्तर क्रियाशील रखती है। इस व्यावहारिक सत्ता या सगुण सत्ता की तीन मूल शक्तियों को ही त्रिदेव कहा जाता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन्ही तीन दिव्य मूल शक्तियों की संज्ञाएँ हैं।

ब्रह्म सूत्र में कहा है–

त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च।

(ब्र०सू० १-४-६)

अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि में तीन शक्तियों का ही उपन्यास यानी व्याप्ति एवं विस्तार है तथा इन्हीं की विवेचना है। त्रिगुणमयी प्रकृति में इन्हीं की चेतना प्रतिबिम्बित है। सांख्य सूत्र में त्रिगुणा प्रकृति के बारे में यह स्पष्ट किया गया है, कि इन तीनों ही गुणों या, क्रिया-शक्तियों में साधर्म्य अथवा साम्य यह है कि ये तीनों ही सूक्ष्म हैं। उन सूक्ष्म क्रियाशक्तियों को चेतना का प्रकाश त्रिदेव सत्ताओं से ही मिलता है। सांख्य दर्शन इन क्रिया शक्तियों को जड़ प्रकृति की ही शक्ति मानता है। देववाद में इन्हें चेतन शक्तियाँ कहा जाता है। यह भेद दोनों में अवश्य है, किन्तु तीन मूल शक्तियों की विद्यमानता के बारे में दोनों में मतैक्य है। वेदान्त-दर्शन के अनुसार मूला प्रकृति स्वयं में निश्चेतन है, अतः प्रकृति के क्रियाकलापों में चेतना की विद्यमानता ब्रह्म की व्यावहारिक सत्ता के ही कारण है। इसे ही ब्रह्म की विराट्-लीला, योग माया आदि कहा गया है।

भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने विश्व की रचना-प्रक्रिया से लेकर नीति, सदाचार की प्रेरणा-प्रक्रिया तक को समझाने के लिए देव प्रतीकों की संरचना की है। अनन्त सत्य की अभिव्यक्तियों को इन पुराण-प्रतीकों द्वारा अभिव्यंजित किया गया है।

सत्यान्वेषी को देव प्रतीकों में सन्निहित त्तवज्ञान को ही प्रधानता देनी चाहिए। जैसा कि जर्मन विद्वान हेनरिख जीमर ने अपने ग्रन्थ "मिथ्स एण्ड सिम्बॉल्स इन इण्डियन आर्ट एण्ड सिविलाइजेशन" में कहा है, "विष्णु, रुद्र, शिव, ब्रह्मा आदि विविध पौराणिक प्रतीक युगों के अनुभूत जीवन-तथ्यों तथा सत्य की ही अभिव्यक्तियाँ है।" अतः हमें उन मूलभूत तथ्यों तथा सत्य को ही समझना चाहिए, तभी पूर्वज मनीषियों के त्तवज्ञान का लाभ उठाना सम्भव है।

प्रकृति के मूल में जो चेतन-सत्ता है, उसकी क्रियात्मिका-शक्ति त्रिविध है–प्रकाशन, प्रवर्तन एवं नियमन। ये तीन शक्तियाँ सृष्टि के अणु-अणु, कण-कण में मात्रा-भेद एवं स्तर-भेद से परिव्याप्त है।

प्रकृति शब्द का व्युत्पत्यात्मक अर्थ यह है कि सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करने वाली जो शक्ति है, वह प्रकृति है। "प्रकरोतीति प्रकृतिः।" आधुनिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भौतिकी की भाषा में इसे "कॉस्मिक एनर्जी" या "क्रिएटेवि पोटेन्सी" कह सकते हैं। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है और उससे उत्पन्न होने वाले समस्त त्तवों में ये तीनों ही गुण पाये जाते हैं। भौतिक जगत एवं मनोजगत् दोनों में ही ये तीनों गुण विद्यमान रहते हैं।

सम्पूर्ण प्रकृति में जो चेतना-शक्ति विद्यमान है, वही ब्रह्म की सगुण सत्ता है, उसकी त्रिविध अभिव्यक्तियाँ ही त्रिदेव हैं। इस सृष्टि में ऐसा कुछ भी नहीं जो इन त्रिदेवों के नियन्त्रण से परे हो। क्योंकि सृष्टि-मात्र वस्तुतः इन्हीं तीन दिव्यशक्तियों की लीला है। सृष्टि इनकी ही प्रजा है। ये सृष्टि के प्रजापति हैं।

'प्रजा' शब्द के भी भिन्न-भिन्न प्रयोग हैं। प्रारम्भिक प्रयोग में 'प्रजा' शब्द महत्तत्व आदि मूल सृष्टि-कार्यों यानी ऊर्जा-तरंगों के लिए ही किया गया है—"प्रकर्षेण व्यक्त रूपेण जायन्ते, आविर्भवन्ति इति प्रजाः महदादयो विकाराः" अर्थात् आद्या प्रकृति में प्रकर्ष के द्वारा जो महत्तत्व आदि विकार व्यक्त हुए आविर्भूत हुए, वे ही 'प्रजा' हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में त्रिगुणात्मिका प्रकृति से इसी प्रारम्भिक प्रजा के प्रथमतः रचे जाने का संकेत है—

"अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां
बहवीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमारगेऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।"

(श्वे० ४।५)

अर्थात्—त्रिगुणात्मिका अनादि प्रकृति जो शुक्ल लोहित, कृष्णवर्णी यानी सत्व—रज—तमोमयी है वह अपने ही सदृश त्रिगुणमय अनेक प्रजाओं यानी महत्तत्व आदि से प्रारम्भ कर प्रभूत भूत-समुदायों तक को जन्म देती है। आसक्त जीव उन्हीं में लिप्त भोग भोगता रहता है,दूसरा जो अज चैतन्य पुरुष है, वह उससे दूर ही रहता है, उस भुक्तभोगी प्रकृति के वैविध्य में वह बँधता नहीं।

इस प्रकार प्रकृति अपनी ऊर्जा तरंगों के विविध परिमाण युक्त परिणामों को नाना नाम रूपों में व्यक्त करती है।

वे सभी क्रियाएं त्रिगुणात्मिका हैं। वाह्य जगत में भी और अन्तर्जगत में भी तीन भावसत्ताएं, त्रिविध क्रिया शीलताएँ ही मूलतः विद्यमान हैं—ये हैं—प्रकाशशील सत्व, क्रियाशील रजः और स्थितिशील तमः। विशुद्ध सत्व ही ब्रह्मा हैं, विशुद्ध रजः शक्ति ही विष्णु हैं और विशुद्ध तमः शक्ति ही शिव हैं। तीनों गुण इन्हीं तीन दिव्यसत्ताओं की क्रियाएँ हैं।

तीनों ही गुण क्रमशः प्रकाशन, प्रवर्तन एवं नियमन करते हैं। जैसे कि सांख्यकारिका की १२ वीं कारिका में कहा गया है—

"प्रीत्य प्रीतिविषादात्मकाः
प्रकाश प्रवृत्ति नियमार्थी।
अन्योऽन्याभिभवाश्रय जनन्
मिथुन वृत्तयश्च गुणम्।"

अर्थात्—ये तीनों गुण क्रमशः प्रीति परक या सुखात्मक, अप्रीति परक या दुःखात्मक और मोहात्मक या विषादात्मक परिणाम उत्पन्न करते हैं। इनके कार्य हैं प्रकाशन, संचालन और नियन्त्रण। साथ ही ये एक-दूसरे के अभिभावक, उत्पादक एवं सहचारी होते हैं। इसीलिए ये तीनों देवाधिपति कहलाते हैं। तीनों में कोई बड़ा या छोटा नहीं। क्योंकि तीनों ही एक-दूसरे के अभिभावक हैं, सहकारी है और परस्पर उत्पादक भी हैं। प्रकृति के सम्पूर्ण कार्य व्यापार इनकी उपस्थिति में ही सम्भव हैं।

श्री अरविन्द ने इन तीन गुणों को "प्रकृति के कार्य व्यापार के तीन अनिवार्य प्रकार" (थ्री एसेन्शियल मोड्स ऑफ एक्शन ऑफ नेचर) कहा है। इनकी न्यूटन के "गति के तीन नियमों" (थ्री लॉज ऑफ मोशन) से भी तुलना की जा सकती है। न्यूटन ने गति की तीनों विधाओं को क्रमशः "इनर्शिया", "एक्सीलियरेशन" तथा "रिएक्शन" नाम दिया था। आधुनिक भौतिकी में इन्हें (१) 'इनर्जी' या 'मास', (२) "मूमेन्टम" तथा (३) "स्ट्रेस" कहा जाता है।

भौतिक जगत में सत्व गुण गतिशील वस्तुओं को उनकी सहज अवस्था में प्रकाशित करता है। रजः गुण क्रिया या प्रवृत्ति उत्पन्न करता है। वृद्धि, क्षय, विनाश आदि परिणाम इसी कारण होते हैं। 'तमस्' गति क्रिया का निरोध अथवा नियमन करता है। ये तीनों ही गुण एक ही क्रिया-शक्ति के व्यापारों के तीन विशिष्ट प्रकार मात्र हैं। ये कभी भी पृथक्-पृथक् नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहते। एक समय में एक गुण प्रधानतया कार्य करता है, शेष दो उस कार्य में सहायता करते हैं। इसीलिए इन्हें एक-दूसरे का अभिभावकत्व करने वाला और परस्पर मिथुन भाव या युग्म भाव से रहने वाला कहा गया है।

इनकी सर्वव्यापकता का संकेत करते हुए सांख्याचार्य कहते हैं–

''ऊर्ध्वं सत्व विशालस्तमोविशालश्च मूलतः सर्गः।
मध्ये रजोविशालो ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यन्तः।।''

(सांख्यकारिका ५४)

अर्थात्–ब्रह्मा से लेकर तृणादि पर्यन्त जो सृष्टि है वह सब त्रिगुणात्मक है। उसके ऊर्ध्व स्तर में सत्व-प्राधान्य रहता है। और निम्न स्तर में या सर्गमूल में तम-प्राधान्य रहता है। बीच में रजः प्राधान्य होता है।

यही क्रमशः सृष्टि का आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक स्तर है। मात्रा-भेद एवं गुण भेद से सम्पूर्ण सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में ये तीनों गुण या तीनों स्तर विद्यमान हैं।

वृक्ष में जो बाढ़ हो रही है, वह रजस् का परिणाम है। यदि मात्र यही व्यापार जारी रहे, तो पेड़ बढ़ता ही चला जाय, इसीलिए सत्व उस बाढ़ में संतुलन लाता है तथा तमस् इस वृद्धि-क्रम को सद्ध करता है। सत्व न रहे, तो तमस् वृक्ष की बाढ़ को रोक ही दे। सत्व इस निरोध का परिहार करता है। ये तीनों ही व्यापार वृक्ष में अति तीव्रता से निरन्तर होते रहते हैं, इसलिए सामान्यतः वे अलग-अलग दृष्टव्य नहीं हो पाते। इसी प्रकार वृक्ष ज्ञान का उदाहरण लें–

वृक्ष का बोधांश ही प्रकाश है। जिस क्रिया विशेष द्वारा यह बोध उत्पन्न हुआ वह इस ज्ञान में संलग्न क्रिया है और जो शक्ति अवस्था उद्रिक्त होकर ज्ञान स्वरूप होती है, वही धृति या स्थिति है।

यह अन्तर्जगत का उदाहरण हुआ क्योंकि ज्ञान तो अन्तर्जगत की ही प्रक्रिया है।

वाह्य जगत में भी सर्वत्र यही स्थिति देखी जाती है। अट्रैक्शन या आकर्षण, रिपल्सन या विकर्षण और उदासीनता यानी न्यूट्रल प्रवृत्तियाँ सर्वत्र एक दूसरे में गुँथी देखी जाती हैं। वैज्ञानिक शब्दावली में इन्हें ही पॉजिटिव, निगेटिव और न्यूट्रल नाम दिया जा सकता है। परमाणु को ही लें, तो उसके केन्द्र यानी नाभिक में न्यूट्रॉन और प्रोटॉन रहते हैं, जो क्रमशः तमस् और सत्व गुण सम्पन्न कहते जा सकते हैं। न्यूट्रॉन की स्थिति शक्ति न्यूट्रल होती है। प्रोटॉन धनावेशी (पॉजिटिव) विद्युत् से सम्पन्न होता है। इलेक्ट्रॉन ऋणावेशी (निगेटिव) विद्युत् या रजोगुण से सम्पन्न होते हैं और नाभिक के चारों ओर द्रुतगति से घूमते रहते हैं।

परमाणु से महत्तत्व तक समस्त सृष्टि प्रजाएँ त्रिगुणात्मक हैं। बोध से लेकर गति तक प्रत्येक व्यापार में प्रकाश, क्रिया और स्थिति की विविध शक्तियाँ आधार रूप में विद्यमान रहती है।

पदार्थ जगत की ही तरह अनुभूति-जगत में भी तीनों ही शक्तियाँ साथ-साथ क्रियाशील रहती हैं।

अन्तःकरण, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय एवं प्राण–इन सब करणों में जो बोध उपलब्ध होता है वह प्रकाश है। जो गति मिलती है और परिवर्तन मिलता है, वह क्रिया है तथा जो 'स्टोर्ड एनर्जी' की दशा है वही स्थिति है।

वस्तुतः प्रकाश, क्रिया एवं स्थिति के अतिरिक्त बहिर्जगत तथा अन्तर्जगत का अन्य कोई त्तव ज्ञेय नहीं है।

बाहरी जगत का ज्ञान शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध द्वारा ही होता है। इसमें, उदाहरणार्थ शब्द में जो बोध है वह प्रकाश है, उस बोध का कारण क्रिया है और उस क्रिया का कारण शक्ति है। चित्त में भी प्रख्या, प्रवृत्ति और धृति रूप तीन गुण ही देखे जाते हैं।

इस प्रकार अन्तर्जगत हो या बहिर्जगत्, सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही मूल चैतन्य-सत्ता की त्रिविध शक्तियाँ सर्वत्र विद्यमान पायी जाती हैं। ये ही सर्वव्यापक, सब की आधारभूत त्रिदेव सत्ताएँ हैं, जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश की संज्ञा भारतीय तत्त्व वेत्ताओं ने दी हैं। इन तीनों शक्तियों के स्वरूप को समझना और उनसे लाभ उठाकर अपने समग्र उत्कर्ष की दिशा में निरन्तर आगे बढ़ना ही त्रिदेवों की उपासना तथा उनसे महत्वपूर्ण वरदानों, अनुदानों की उपलब्धि की यथार्थ प्रक्रिया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चतुर्मुखी ब्रह्मा

ब्रह्माजी की मूर्तियों में हम उनके चार मुख देखते हैं। यह चतुर्मुखी ब्रह्मा की सत्ता का एक अलंकारिक चित्र है। चार मुख उसके चार भेदों का दिग्दर्शन कराते हैं। इन चार मुखों को (१) ब्रह्म (२) ईश्वर (३) विष्णु (४) भगवान कहा जाता है। वह एक ही महातथ्य है तो भी समझने की सुविधा के लिए उसे चार भेदों के साथ वर्णन किया गया है।

ब्रह्म-सात्विकता की ऊँची कक्षा को ब्रह्म कहते हैं। वैसे तो परमात्मा सत्,रज, तम तीनों गुणों में मौजूद है पर उसकी ब्राह्मी ज्योति सतोगुण में ही है। सात्विक विचार, सात्विक भाव, ब्रह्म केन्द्र से ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के मन में यों तो अनेक प्रकार की इच्छाएँ उत्पन्न होती रहती हैं पर जब सतोगुणी आकांक्षाऐं उत्पन्न होती हैं तो उनके, उद्गम केन्द्र–प्रेरक बिन्दु वह ब्रह्म ही होता है। ऋषियों में, महात्माओं में, संतों, में, सत्पुरुषों में हम परमात्मा का अधिक अंश देखते हैं, उन्हें परमात्मा के समीप समझते हैं और ऐसा मानते हैं कि परमात्मा की उन पर कृपा है। परमात्मा की विशेष सत्ता उनमें मौजूद है इसका प्रमाण यही है उनमें सत तत्व अधिक मात्रा में मौजूद है। यह सत् का आधिक्य ही बाह्मी स्थिति है। पूर्ण सात्विकता में जो आधिष्ठित हो जाते हैं वे 'ब्रह्म निर्वाण' प्राप्त कहे जाते हैं।

मनुष्य की अन्तः चेतना प्रकृति और पुरुष दोनों के संयोग से बनी हुई है। मन, बुद्धि और चित्त अहंकार प्रकृति के भौतिक तत्त्वों द्वारा निर्मित है, जो कुछ हम सोचते, विचारते, धारण या अनुभव करते हैं वह कार्य मस्तिष्क द्वारा होता है। मस्तिष्क की इच्छा आकांक्षा, रूचि तथा भावना इन्द्रिय रसों तथा सांसारिक पदार्थों की भली बुरी अनुभूति के कारण होती है। मस्तिष्क में जो कुछ ज्ञान, गति और इच्छा है वह सांसारिक स्थूल पदार्थों के आधार पर ही बनती है, स्वयं मस्तिष्क भी शरीर का एक अंग है और अन्य अंगों की तरह वह भी पंचत्तवों, से प्रकृति से बना हुआ है । इस अन्तःकरण चतुष्टय से परे एक और सूक्ष्म चेतना केन्द्र है जिसे आत्मा या ब्रह्म कहते हैं। यह ब्रह्म सात्विकता के केन्द्र हैं। आत्मा में से सदा ही सतोगुणी प्रेरणाएँ उत्पन्न होती हैं। चोरी, व्यभिचार, हत्या, ठगी आदि दुष्कर्म करते हुए हमारा दिल धड़कता है, कलेजा काँपता है, पैर थरथराते हैं, मुँह सूखता है, भय लगता है, और मन में तूफान सा चलता है, भीतर ही भीतर एक सत्ता ऐसा दुष्कर्म न करने के लिए रोकती है। यह रोकने वाली सत्ता आत्मा है इसी को ब्रह्म कहते हैं। असात्विक कार्य–नीचता तमोगुण, पाप और पशुता से भरे हुये कार्य– उसकी स्थिति से विपरीत पड़ते हैं इसलिये उन्हें रोकने की भीतर ही भीतर प्रेरणा उत्पन्न होती है। यह प्रेरणा शुभ-सतोगुणी पुण्य कर्मों को करने के लिये भी उत्पन्न होती है। कीर्ति से प्रसन्न होना मनुष्य का स्वभाव है और यह स्वभाव अच्छे-अच्छे प्रशंसनीय, श्रेष्ठ कर्म करने के लिऐ प्रोत्साहन करता है। शुभ कर्मों से यश प्राप्त होता है और यश से प्रसन्नता होती है। यश न भी मिले तो भी सत्कर्म करने के उपरान्त अन्तरात्मा में एक शान्ति अनुभव होती है, यह आत्म-तृप्ति इस बात का प्रमाण है कि अन्तःकरण की अन्तरंग आकांक्षा के अनुकूल कार्य हुआ है। दया, प्रेम, उदारता, त्याग, सहिष्णुता, उपकार, सेवा, सहायता, दान, ज्ञान, विवेक की सुख शान्तिमयी इच्छा तरंगें आत्मा में से ही उद्भूत होती हैं। यह उद्गम केन्द्र ब्रह्म है।

वेदान्त दर्शन ने सारी शक्ति के साथ यही प्रतिपादित किया है कि आत्मा ही ईश्वर है। 'त्तवमसि', 'सोऽहम, शिवोऽहम' अयमांत्मा ब्रह्म सरीखे सूत्रों का अभिप्राय यही है कि आत्मा ही ब्रह्म है। ईश्वर का प्रत्यक्ष अस्तिव अपनी आत्मा में ही देखने की वेदान्त की साधना है। अन्य ईश्वर भक्त भी अन्तःकरण में परमात्मा की झाँकी करते हैं असंख्यों कविताएं एवं श्रुतिवच, ऐसे उपलब्ध होते हैं जिनमें यह प्रतिपादन किया गया है कि "बाहर ढूंढने से नही अन्दर ढूँढने से परमात्मा मिलता है" संत कबीर ने कहा है कि परमात्मा हमसे चौबीस अंगुल दूर है। मन का स्थान मस्तिष्क और आत्मा का स्थान हृदय है। मस्तिष्क से हृदय की दूरी २४ अंगुल है। इस प्रतिपादन में भी ईश्वर को अन्तःकरण में स्थित बताया है।

मनुष्य दैवी और भौतिक त्तवों से मिलकर बना है। इसमें मन भौतिक और आत्मा दैवी त्तव है। आत्मा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के तीन गुण हैं–सत्, चित् और आनन्द। वह सतोगुणी है । श्रेष्ठ शुभ, दिव्य मार्ग की ओर प्रवृत्ति वाला एवं सत्त हमेशा रहने वाला अविनाशी है। चित–चैतन्य, जाग्रत, क्रियाशील, गतिवान है, किसी भी अवस्था में वह क्रिया रहित नहीं हो सकती। आनन्द–प्रसन्नता, उल्लास, आशा तथा तृप्ति उसका गुण है। आनन्द की दिशा में उसकी अभिरुचि सदा ही बनी रहती है, आनन्द अधिक आनन्द–अति-आनन्द उपलब्ध करना उसके लिए वैसा ही प्रिय है जैसा मछली के लिए जल। मछली जलमग्न रहना चाहती है । आत्मा को आनन्द मग्न रहना सुहाता है, सत्, चित्, आनन्द गुण वाली आत्मा हर एक के अन्तःकरण में अधिष्ठित है। मन और आत्मा में जैसे जैसे निकटता होती जाती है वैसे ही वैसे मनुष्य अधिक सात्विक अधिक क्रियाशील और अधिक आनन्दमग्न रहने लगता है। योगी जन ब्रह्म प्राप्ति के लिए साधना करते हैं, इस साधना का कार्यक्रम यह होता है कि आत्मा की प्रेरणा के अनुसार मन की सारी इच्छा और कार्य प्रणाली हो। भौतिक पदार्थों के नाशवान् अस्थिर और हानिकर आकर्षणों की ओर से मुँह मोड़कर जब आत्मा की प्रेरणा के अनुसार जीवन चक्र चलने लगता है तो मनुष्य साधारण मनुष्य न रहकर महान मनुष्य बन जाता है । ऐसे महापुरुषों के विचार और कार्य सात्विकता, चैतन्यता और आनन्ददायक स्थिति से परिपूर्ण होते हैं। उन्हें संत, महात्मा, योगी, तपस्वी, परमहंस, सिद्ध, आत्मदर्शी या ब्रह्म परायण कहते हैं। जिनका ब्रह्म भाव, आत्म विकास पूर्ण सात्विकता तक विकसित हो गया है समझना चाहिए कि उन्होंने ब्रह्म को प्राप्त कर लिया, उन्हें आत्म दर्शन हो गया।

ईश्वर-इस समस्त विश्व के मूल में एक शासक, संचालक एवं प्रेरक शक्ति काम करती है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह निरन्तर अपनी नियत चाल से अविश्रान्त यात्रा जारी रखे हुए हैं। त्तवों के समिश्रण से एक नियत व्यवस्था के अनुसार तीसरा पदार्थ बन जाता है, बीज अपनी ही जाति के पौधे उत्पन्न करता है, सूर्य एक पल का विलम्ब किये बिना ठीक समय पर उदय और अस्त होता है। समुद्र के ज्वार भाटा नियत समय पर आते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सब की क्रियाऐं अचूक हैं। नन्हें नन्हें अदृश्य परमाणु अत्यन्त द्रुत गति से हरकत करते हैं पर उनकी इस गति में रंच मात्र भी अन्तर नहीं आता। एक परमाणु को दूसरे परमाणु से लड़ाने के रहस्य को ढूंढ कर वैज्ञानिकों ने प्रलयकारी 'परमाणु बम' बनाये है। यदि यह एक सैकण्ड में हजारों मील की गति से घूमने वाले यह परमणु आपस में लड़ जाया करते तो आये दिन प्रलय उपस्थित हो जाया करती परन्तु हम देखते हैं कि प्रकृति का हर एक परमाणु अपने गुण, कर्म को ठीक प्रकार कर रहा है।

यदि सृष्टि में नियमित्ता न होती तो एक भी वैज्ञानिक आविष्कार सफल न होता। आग कभी गर्मी देती, कभी ठण्डक, तो भला उसके भरोसे कोई काम कैसे होता। नित्य अनेकों वैज्ञानिक अविष्कार हो रहे हैं । इनका आधार इसी पर निर्भर है कि प्रकृति की दृश्य एवं अदृश्य शक्तियाँ अपने नियत नियमों से रंच मात्र भी विचलित नहीं होतीं। यह सर्व मान्य और सर्वविदित तथ्य है कि प्रकृति की समस्त क्रिया प्रणाली नियमित है, उसके मूलभूत नियमों में कभी अन्तर नहीं पड़ता।

इस नियमित्ता और गतिशीलता के मूल में एक सत्ता अवश्य है। विचार और प्राण से रहित जड़ प्रकृति अपने आप इस क्रियाकलाप को नहीं चला सकती। रेल, मोटर, इंजन, हवाई जहाज, तलवार, कलम आदि जितने भी निर्जीव यन्त्र हैं उनको चलाने वाला कोई न कोई सजीव प्राणी अवश्य होता है।, इसी प्रकार प्रकृति की नियमित्ता और गतिशीलता का उद्गम केन्द्र भी कोई न कोई अवश्य है। इस केन्द्र को हम ईश्वर कहते हैं। ईश्वर का अर्थ है स्वामी। जड़ प्रकृति के निर्माण, व्यवस्था एवं संचालन में जो शक्ति काम करती है वह ईश्वर है।

केवल जड़ प्रकृति का ही नहीं, चेतन जगत का भी वह पूरी तरह नियमन करती है। इसने अपने नियमों के अन्तर्गत प्राणिमात्र को बाँध रखा है। जो उस ईश्वर के नियमों के अनुसार चलते हैं वे सुखी रहते हैं, विकसित होते हैं और जो उन नियमों को तोड़ते हैं वे दुख पाते और हानि उठाते हैं। स्वास्थ्य के नियमों पर चलने वाले, सदाचारी संयमी मिताहारी लोग स्वस्थ रहते हैं और चटोरे, दुराचारी, स्वेच्छाचारी लोग बीमारी, कमजोरी एवं अकाल मृत्यु के शिकार होते हैं। इसी प्रकार सामाजिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों में काम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करने वाले ईश्वरीय नियमों का ठीक प्रकार पालन करते हैं वे उन क्षेत्रों में स्वस्थता, समृद्धि एवं उन्नति प्राप्त करते हैं। जो उन नियमों के प्रतिकूल कार्य करते हैं वे उन क्षेत्रों में दुष्परिणाम भुगत्ते हैं। पराक्रम, पुरुषार्थ, प्रयत्न, लगन, साहस, उत्साह एवं धैर्य यह सब सफलता के मार्ग की ईश्वरीय पगडंडियाँ हैं । इन पर जो चलते हैं वे अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। जो इस राजमार्ग पर नहीं चलते वे पिछड़ जाते हैं।

ईश्वर पूर्णतया निष्पक्ष, न्यायकारी नियत रूप है। वह किसी के साथ रत्ती भर भी रियायत नहीं करता। जो जैसा करता है वह वैसा भोगता है। अग्नि या बिजली के नियमों के अनुसार यदि उनसे काम लिया जाय तो वे हमारे लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती है पर यदि अग्नि का या बिजली का दुरुपयोग किया जाय तो वह भयंकर दुर्घटना उपस्थित कर देती है। इसी प्रकार जो लोग ईश्वरीय नियमों के अनुसार काम करते हैं उनके लिये ईश्वर वरदाता, त्राता, रक्षक, सहायक, कृपासिन्धु, भक्त वत्सल है पर जो उसके नियमों में गड़बड़ी करता है उसके लिये वह यम, काल, अग्नि, शंकर, वज्र, एवं दुर्देव बन जाता है। मनुष्य को स्वतन्त्र बुद्धि देकर ईश्वर ने उसे काम करने के लिए स्वच्छन्द अवश्य बना दिया है पर नियमन अपने ही हाथ में रखा है। वह जैसे को तैसा फल दिये बिना नहीं छोड़ता। आग और लकड़ी का इकट्ठा करना या न करना यह हमारी इच्छा पर निर्भर है पर उन दोनों के इकट्ठा होने पर ईश्वरीय नियमों के अनुसार जो ज्वलन क्रिया होगी उसे रोकना अपने बस की बात नहीं है। इसी प्रकार शुभ अशुभ कर्म करना तो हमारे अपने हाथ में है पर उनसे जिन भले-बुरे परिणामों की उत्पत्ति होगी वह ईश्वरीय नियामक शक्ति के हाथ में है।

जैन और बौद्ध कर्म के फल की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं । अतएव वे ईश्वर को, ब्रह्म की द्वितीय सत्ता को मानते हैं। सत्कर्म करना प्रकृति के कठोर अपरिवर्तनशील नियमों का ध्यान रखना, अपने आचरणों और विचारों को ईश्वरीय नियमों की मर्यादा में रखना ईश्वर पूजा है। अपनी योग्यता और शक्तियों को समुन्नत करना, बाहुबल के आधार पर आगे बढ़ना, अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करना ईश्वरवादियों का प्रधान स्वभाव होता है क्योंकि वे जानते हैं कि निबलों, क्रियाशीलों और जागरूकों को बढ़ाना और कमजोरों, अकर्मण्यों एवं असावधानों को नष्ट करना प्रकृति का नियम है। इस कठोर नियम में किसी के बूते कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। ईश्वरवादी इस नग्न सत्य को भली-भाँति जानते हैं कि – "ईश्वर उन्हीं की मदद करता है जो अपनी मदद आप करता है।" इसलिए वे ईश्वरीय कृपा प्राप्त करके उसके नियमों से लाभ उठाने के लिए सदा शक्ति संचय करने एवं आगे बढ़ने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। आत्म-निर्भर और आत्मावलम्बी होते हैं। अपने भाग्य का आप निर्माण करते हैं। ईश्वरीय नियमों को ध्यानपूर्वक देखते, परखते और हृदयंगम करते हैं तथा उनकी वज्रोपम कठोरता एवं अपरिवर्तनशीलता का ध्यान रखते हुए अपने आचरणों को "औचित्य" की, धर्म की, सीमा के अन्तर्गत रखते हैं।

क्रमशः यदि तुम संसार में कुछ करना चाहते हो तो महत्ता के विचारों को ही सदा सर्वदा मस्तिष्क में संग्रह करो। तुम्हारे मस्तिष्क में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है। तुम दुर्भाग्य की ठोकरें खाने के लिये नहीं उत्पन्न हुये हो।

विष्णु-संसार में एक संतुलन शक्ति भी काम कर रही है जो किसी वस्तु की अतिवृद्धि को रोककर उसे यथास्थान ले आती है। संसार की सुन्दरता और वैभवशालीनता को वह कुरूपता और विनाश से बचाती है। प्रजनन शक्ति को ही लीजिये। एक-एक जोड़ा कई कई बच्चे पैदा करता है, यदि यह वृद्धि पीढ़ी दर पीढ़ी निर्बाध गति से चलती रहे तो थोड़े ही दिन में सारी पृथ्वी इतनी भर जाय कि संसार में प्राणियों को खड़ा होने के लिये भी जगह न मिले। मछली एक वर्ष में करीब सत्रह हजार अंडे देती है, मक्खी, मच्छर, जैसे कीट पतंग एक हजार से लेकर साठ हजार तक अंडे प्रति वर्ष देते हैं। वे अंडे एक दो सप्ताह में ही पककर बच्चे की शक्ल में आ जाते हैं और फिर दो चार हफ्ते बाद ही वे भी अंडे देने लगते हैं। इनकी एक ही साल में प्राय आठ पीढ़ी हो जाती हैं, यदि यह सब बच्चे जीवित रहें तो दस पांच साल में ही सारा संसार उनमें से एक जाति के रहने के लिये भी पर्याप्त न रहेगा। चींटी, दीमक,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टिड्डी आदि कीड़े भी बड़ी तेजी से बढ़ते हैं। सूर, बकरी आदि भी तेजी से प्रचुर संतान वृद्धि करते है। एक जोड़ा स्त्री-पुरुष भी औसतन आठ-दस बच्चे पैदा करता है। यह अभिवृद्धि यदि न रूके तो संसार के सम्मुख दस पाँच वर्ष में ही बड़ी विकट परिस्थिति उत्पन्न होकर खड़ी हो सकती है। परन्तु लाखों करोड़ों वर्ष प्राणियों को इस पृथ्वी पर ही हुए हो गए, ऐसी परिस्थिति कभी भी उत्पन्न नहीं हुई। सृष्टि की संतुलन शक्ति उस विषमता को उत्पन होने से रोके रहती है। दुर्भिक्ष, भूचाल, महामारी, युद्ध तथा किसी न किसी दैवी प्रकोप द्वारा प्राणियों की प्रजनन शक्ति से उत्पन्न होने वाले खतरे का निराकरण करती रहती है।

रात्रि का अन्धकार एक सीमा तक बढ़ता है। उस बाढ़ को प्रकृति रोकती है और पुनः दिन का प्रकाश लाती है। मध्याह्न तक सूर्य की तेजी बढ़ती है फिर वह घटने लगती है। समुद्र में ज्वार आते हैं, फिर थोड़े समय बाद उसका प्रतिरोधी भाटा आता है। चन्द्रमा घटते-घटते क्षीण होता है। फिर बढ़ने लगता है। गर्मी के बाद सर्दी और सर्दी के बाद गर्मी का मौसम आता है। मरने वाला जन्मता है और जन्मने वाला मृत्यु की तैयारी करता है। सृष्टि के सौन्दर्य का क्रम यथावत चला आता है। उसका बैलेन्स बराबर कायम रहता है—संतुलन बिगड़ने नहीं पाता।

पुराणों में ऐसे वर्णन आते हैं कि देवताओं को जब असुर सताते हैं तो वे इकट्ठे होकर विष्णु भगवान् के पास जाते हैं और प्रार्थना करते हैं कि हमारी रक्षा कीजिये। कई पुराणों में ऐसी कथाएँ मिलती हैं कि पृथ्वी पर जब अधर्म बढ़ा तो धरती माता गौ का रूप धारण कर विष्णु भगवान के पास गई और प्रार्थना की कि अब मुझसे पाप का बोझ नहीं सहा जाता, मेरा उद्धार कीजिये। देवताओं की रक्षा करने तथा पृथ्वी का भार उतारने के लिए विष्णु भगवान अवतार धारण करते हैं। गीता में भी ऐसी ही प्रतिज्ञा है (यदा यदा हि धर्मस्य.... तदात्मानम् सृजाम्यहम) बुराइयों में यह गुण है कि वे आसानी से और तेजी के साथ बढ़ती हैं। पानी ऊपर से नीचे की ओर बड़ी तेजी से स्वयंमेव दौड़ता है पर यदि उसे नीचे से ऊपर चढाना हो तो बड़ा प्रयत्न करना पड़ेगा। पत्थर को ऊपर से नीचे की ओर फेंके तो जरा से संकेत के साथ वह तेजी से नीचे गिरेगा और अगर बीच में कोई रोकने वाली चीज न आवे तो सैकड़ों मील नीचे गिरता चला जायेगा। परन्तु यदि उस पत्थर को ऊपर फेंकें तो बड़ा जोर लगाकर फेंकना पड़ेगा, सो भी थोड़ी ऊँचाई तक जायेगा फिर गिर पड़ेगा। इसी प्रकार बुराई के मार्ग पर पतन की ओर मन तेजी से गिरता है पर अच्छाई की ओर कठिनाई से चढ़ता है। लोगों का झुकाव पाप की ओर अधिक होने के कारण थोड़े ही समय में पाप छा जाता है और फिर उसे दूर करने के लिए संतुलन ठीक करने के लिये इस विष्णु शक्ति को किसी न किसी रूप में प्रकट होना पड़ता है, उस प्राकट्य को 'अवतार' कहते हैं। शरीर में रोगों के विजातीय विषैले परमाणु इकट्ठे हो जाने पर रक्त की जीवनी शक्ति उत्तेजित होती है और उन विषैले परमाणुओं को मार भगाने के लिए युद्ध आरम्भ कर देती है। रक्त के श्वेत कणों और रोग कणों में भारी मारकाट मचती है, खून खच्चर होता है। इस संघर्ष को बीमारी कहते हैं । बीमारी में पीड़ा, फोड़ा, पीव, पसीव, दस्त, उल्टी जलन आदि के लक्षण होते हैं। युद्ध में चोट लगती है, दर्द होता है यही बीमारी की पीड़ा है, खून खच्चर होता है, यही पीव, दस्त आदि है। बीमारी का प्रयोजन शरीर को निर्दोष बनाना है। अवतार शक्ति का भी यही कार्य होता है। जब रावण, कंस, हिरण्यकश्यप सरीखे कुविचारों के प्रतिनिधि अधिक बढ़ जाते हैं तो पापों की प्रतिक्रिया स्वरूप अन्तरिक्ष लोकों में हलचल मचती है और उस विषमता को हटाने के लिए अवतार प्रकट होता है। जब ग्रीष्मऋतु का ताप असह्य हो जाता है तो उसे शान्त करने के लिये मेघ मालाएँ गरजती हुई चली आती हैं। पापों की अतिवृद्धि का नियमन करने के लिये वैष्णवी सत्ता अवतार धारण करके प्रकट होती है और भीषण संघर्ष उत्पन्न करके शान्ति स्थापित करती है। "**परित्राणाय साधूनाम विनाशायच दुष्कृताम्**" अवतार का यही उद्देश्य होता है। धर्म की संस्थापना के लिये वह बार-बार प्रकट होता है।

अवतार समिष्टि आत्मा का, परमात्मा का प्रतीक है। सभी आत्माओं की एक सम्मिलित सत्ता है जिसे 'विश्वमानव' या समाज की सम्मिलित आत्मा कहते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। यही परमात्मा है। एक मनुष्य यह चाहता है कि मैं सुखपूर्वक रहूँ मेरे साथ में सब प्रेम, भलाई, एवं सहयोग का बर्ताव करें । कोई यह नहीं चाहता है कि मेरे साथ चोरी, हिंसा, ठगी, कठोरता, अन्याय का बर्ताव करें। यही इच्छा 'विश्वमानव' की समिति आत्मा या परमात्मा की है। परमात्मा की विश्वमानव की—इच्छा को ही धर्म कहते हैं। अवतार धर्म की रक्षा के लिए होता है। अधर्म अर्थात् विश्वमानव की इच्छाओं के प्रतिकूल कार्य जब संसार में अधिक बढ़ जाते हैं तो उन्हें दूर करने के लिए विश्वमानव के अन्तस्तल में प्रतिक्रिया होती है और विरोध का उफान उबल पड़ता है। इस उफान को अवतार के नाम से पुकारा जाता है।

अवतार एक अदृश्य प्रेरणा है। सूक्ष्म वातावरण में परमात्मा की इच्छा का आवेश भर जाता है। जैसे आकाश में आँधी छाई हुई हो और उसी समय पानी बरसे तो वर्षा की बूँदे उस आँधी की धूलि से मिश्रित होती हैं। बसन्त ऋतु में प्रकृति के सूक्ष्म अन्तराल में 'काम क्षोभ' का आवेश आता है। उन दिनों सभी नर नारियों में जीव जन्तुओं में कामेच्छा फूट पड़ती है। भय, क्रोध, हिंसा, साम्प्रदायिक राजनैतिक तनाव, घृणा तथा सत्कर्मों की भी एक लहर आती है वातावरण जैसा बन जाता है वैसे ही काम बहुत बड़ी संख्या में होने लगते हैं। इसी प्रकार विश्वमानव—परमात्मा की इच्छा पूर्ण करने के लिए सूक्ष्मलोक में अदृश्य वातावरण में आवेश आता है। उस आवेश में प्रेरित होकर कुछ विशिष्ट पुण्यात्मा, जीवन युक्त महापुरुष संसार में आते हैं और परमात्मा की इच्छा को पूरा करते हैं। एक समय में अनेकों अवतार होते हैं, किसी में न्यून किसी में अधिक शक्ति होती है। इस शक्ति का माप करने का पैमाना 'कला' है। बिजली को नापने के लिये 'यूनिट', गर्मी को नापने के लिये 'डिग्री', लम्बाई को नापने के लिये 'इंच', दूरी को नापने के लिये मील जैसे होते हैं वैसे ही किस व्यक्ति में कितना अवतारी अंश है इसका नाप 'कला' के पैमाने से होती है। त्रेता में परशुरामजी और श्रीरामचन्द्रजी एक ही समय में दो अवतार थे। परशुरामजी को तीन कला का और रामचन्द्र जी को बारह कला का अवतार कहा जाता है। यह तो उस समय के विशिष्ट अवतार थे। वैसे अवतार का आवेश तो अनेकों में था । वानरों की महती सेना को तथा अनेकों अन्य व्यक्तियों को अवतार के समतुल्य कार्य करते हुये देखा जाता है।

इस प्रकार समय-समय पर युग-युग में आवश्यकतानुसार अवतार होते हैं। बड़े कार्यों के लिये बड़े और छोटे कार्यों के लिये छोटे अवतार होते हैं। सृष्टि को सन्तुलन करने वाली विष्णुशक्ति वैसे तो सदा ही अपनी क्रिया जारी रखती है। पर बड़ा रोग इकट्ठा हो जाने पर बड़ा डाक्टर भेजती है। उस बड़े डाक्टरो को उनके महान कार्यों के अनुरूप यश एवं सम्मान प्राप्त होता है। अवतारी महापुरुषों की पूजा यथार्थ में विष्णुशक्ति की पूजा है जिसके कि वे प्रतीक होते हैं।

लक्ष्मीपति विष्णु सृष्टि की, सुन्दरता की, सम्पन्नता की, सद्बुद्धि की और सात्विकता की रक्षा करते हैं। लक्ष्मीजी के चार हाथ, सुन्दरता, सम्पन्नता, सद्बुद्धि और सात्विकता के प्रतीक हैं। समस्त प्राणियों की समिष्टि सम्मिलित आत्मा लक्ष्मी है। यह लक्ष्मी विष्णु का अर्धांग है। परमात्मा की सत्ता जीवों की आत्मा में समाई हुई है, संसार का नियमन करती है साथ-साथ लक्ष्मी की, विश्वमानव की इच्छा की रक्षा भी करती है। लक्ष्मी विष्णु से अभिन्न है।

विष्णु के उपासक वैष्णव वे हैं जो विश्व मानव की इच्छाओं के अनुकूल कार्य करने में अपनी शक्ति लगाते हैं। मीरा का प्रसिद्ध भजन है—"वैष्णव जनतो तेने कहिये जे पीर पराई जाने रे।" समाज का लाभ, संसार की सेवा, विश्व की श्री वृद्धि, विश्वमानव की सुख-शान्ति के लिये सच्चे अन्तःकरण से हर घड़ी लगे रहने वाले मनुष्य असली वैष्णव हैं। विष्णु की इच्छा ही उन वैष्णवों की इच्छा और विष्णु की कार्य-प्रणाली ही उनकी कार्य-प्रणाली होती है। वे पाप को घटाकर धर्म की स्थापना के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। जनता जनार्दन को विष्णु रूप समझकर लोक सेवा में, विष्णु पूजा में, प्रवृत्त रहते हैं।

भगवान-ब्रह्म की चौथी शक्ति 'भगवान' है, भगवान भक्तों के वश में होते हैं। भक्त जैसे चाहते हैं उन्हें नचाते हैं। भक्त जिस रूप में उनके दर्शन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना चाहते हैं उसी रूप में प्रकट होते हैं और उनसे जो याचना या कामना करते हैं उसे पूरा करते हैं। भगवान की कृपा से भक्तों को बड़े-बड़े लाभ होते हैं। परन्तु यह भी स्मरण रखने की बात है कि वे केवल भक्तों को ही लाभ पहुँचाते हैं। जिनमें भक्ति नहीं है उनको भगवान से कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। अनेक देवी देवता भगवान के ही रूप हैं। जिस देवता के रूप में भगवान का भजन किया जाता है, उसी रूप में वैसे ही फल उपस्थित करते हुए भगवान प्रकट होते हैं।

भगवान की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। आत्मा के सशक्त क्रिया रूप को भगवान कहते हैं। आत्मा अनन्त शक्तियों का पुंज है। उसकी जिस शक्ति को प्रदीप्त, प्रचण्ड एवं प्रस्फुटित बनाया जाय वही शक्ति एक बलवान देवता के रूप में प्रकट होती और कार्य करती हैं। किसी पक्के गुम्बददार मकान में आवाज करने से वह मकान गूंज उठता है। आवाज की प्रतिध्वनि चारों ओर बोलने लगती है, रबड़ की गेंद को किसी दीवार पर फेंककर मारा जाय तो जितने जोर से उसे फेंका था टक्कर खाने के बाद वह उतने ही जोर से लौट आती है। इसी प्रकार अन्तरंग शक्तियों को विश्वास के आधार पर जब एकीकरण किया जाता है तो उससे आश्चर्यजनक परिणाम उत्पन्न होते हैं।

सूर्य की किरणों को आतिशी शीशे के द्वारा एक केन्द्र बिन्दु पर एकत्रित किया जाय तो इतनी गर्मी उत्पन्न हो जाती है कि उस केन्द्र में अग्नि जलने लगती है। मानसिक शक्तियों को किसी इष्टदेव को केन्द्र मान कर यदि एकत्रित किया जाय तो एक सूक्ष्म सजीव चेतना उत्पन्न हो जाती है। यह श्रद्धा निर्मित सजीव चेतना ही भगवान है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में 'भवानी शंकरौ बन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ' श्लोक में यही भाव प्रकट किया है। उन्होंने भवानी तथा शंकर को श्रद्धा विश्वास बताया है। श्रद्धा साक्षात् भवानी हैं और विश्वास साक्षात् शंकर हैं। विश्वास मनुष्य को मृत्यु के मुख में से बचा सकता और जीवित मनुष्य को क्षण भर में रोगी बनाकर मृत्यु के मुख में धकेल सकता है। 'शंका डायन--मनसा भूत' कहावत किसी बड़े अनुभवी ने प्रचलित की है। चित्त से उत्पन्न हुई शंका डायन बन जाती है और मन का भय भूत का रूप धारण करके सामने आ खड़ा होता है। रस्सी को साँप, झाड़ी को भूत, कडुए पानी को जहर बना देने की और मृत्यु का खतरा उत्पन्न करने की शक्ति विश्वास में मौजूद है। केवल घातक ही नहीं निर्माणात्मक शक्ति भी उसमें है। कहते हैं 'मानो तो देव नहीं तो पत्थर सो है ही।' पत्थर को देव बना देने वाला विश्वास है। विश्वास की शक्ति अपार है। शास्त्र कहता है--'विश्वासो फलदायकः।

हम अपनी 'ईश्वर कौन है ? कहाँ है ? कैसा है ? में, गायत्री की चमत्कारी साधना में ब्रह्मविद्या के रहस्योद्घाटन' पुस्तकों में सविस्तार यह बता चुके हैं कि मन्त्र शक्ति तथा देवशक्ति और कुछ नहीं आत्म शक्ति या इच्छा शक्ति का दूसरा नाम है। ध्यान, जप, अनुष्ठान आदि की योगमयी साधनाएँ एक प्रकार के मानसिक व्यायाम हैं। जैसे शारीरिक व्यायाम करने से देह पुष्ट होती है और निरोगता, सुन्दरता, दीर्घायु, भोग सुख, सहनशक्ति, धन उपार्जन तथा कठिन कष्ट-साध्य कामों को पूरा करने की प्रत्यक्ष सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं वैसे ही मानसिक साधनाओं द्वारा, आराधना उपासना द्वारा, मनोबल बढ़ता है और उससे नाना प्रकार की अलौकिक शक्तियां प्राप्त होती हैं। मंत्र शक्ति देवशक्ति से जो कार्य पूरे होते हैं वे किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं होते वरन् अपने ही पुरुषार्थ द्वारा अपनी ही आत्म शक्तियों द्वारा उपलब्ध होते हैं। साधना एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा आत्म शक्तियाँ बलवान होती हैं और मन चाहे परिणाम उपस्थित करती हैं।

भक्त, भगवान का पिता है। अपनी भक्ति द्वारा साधना द्वारा वह अपने भगवान को उत्पन्न करता और पुष्ट करता है। जो अपने भगवान को जितना भक्ति का, साधना का, दूध पिलाता है उसका भगवान उतना ही बलवान हो जाता है और जितना उसमें बल होता है उतना ही महत्वपूर्ण परिणाम उपस्थित कर देता है। प्रहलाद का भगवान इतना बलवान था कि खंभ चीर कर नृसिंह रूप में निकल पड़ा और हिरण्यकश्यपु का पेट चीर डाला। नरसी भगत का भगवान हुण्डी बरसा सकता था। परन्तु हमारे भगवानों में वह बल नहीं है। किसी के भगवान स्वप्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में या जाग्रत अवस्था में दर्शन दे सकते हैं। किसी के भगवान भविष्य का कोई संकेत कर सकते हैं। किसी के भगवान विपत्ति में सहाई हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि जिसने अपने भगवान को जिस योग्य बनाया होगा वह वैसे वरदान देने के लिए, वैसी सहायता करने के लिए वह तैयार रहेगा।

वस्तुतः मनोबल ही भगवान है। मनोबल को बढ़ाने के तरीके अनेकों हैं। योग साधना का भारतीय तरीका ही एक मात्र उपाय नहीं है, संसार में अनेकों साधन और उपाय इसके हैं। विश्वास के आधार पर मनोबल बढ़ता है। कई व्यक्ति बिना योग साधना के भी अपने स्वावलम्बन, आत्मविश्वास, अध्यवसाय, साहस, सत्संग एर्व पराक्रम द्वारा अपना मनोबल बढ़ा लेते हैं और वही लाभ प्राप्त करते हैं जो भक्तों को भगवान प्रदान करते हैं। अनेक अनीश्वरवादी व्यक्ति भी बड़े-बड़े सिद्ध हुए हैं, राक्षस लोग देवताओं से अधिक साधन सम्पन्न थे, असुरों को बड़े-बड़े अद्भुत वरदान प्राप्त थे, आज भी वैज्ञानिक लोग बड़े-बड़े अद्भुत आविष्कार कर रहे हैं। विद्वान विद्या के और धनी धन के चमत्कार दिखा रहे हैं। इस सब के मूल में उनकी मानसिक विलक्षण शक्तियाँ काम कर रही हैं। यह भगवान की ही कृपा है। भगवान को सुर और असुर सभी बिना भेदभाव के प्रसन्न कर सकते हैं उनका अनुग्रह और वरदान प्राप्त कर सकते हैं।

ब्रह्म की मूल सत्ता निर्लिप्त है। यह नियम रूप है, व्यक्तिगत रूप से किसी पर प्रसन्न-अप्रसन्न नहीं होती। उस पर आराधना, पूजा या निन्दा से कोई प्रभाव नहीं होता। अग्नि देवता को गाली देने वाले या पूजा करने वाले में भेद करने की कोई आवश्यकता नहीं। जो भी उसके नियमों के अनुरूप चलेगा लाभ उठावेगा और जो अग्नि को अनियमित रूप में छूवेगा निश्चयपूर्वक जल जायेगा। आत्मा का, ईश्वर का, विष्णु का यही नियम है। पर भगवान की लीला विचित्र है। वे भक्त वत्सल हैं। उन्हें जो जिस भाव से भजता है कुएँ की आवाज की तरह से उसे वैसे ही भजने लगते हैं। कीर्तन, कथा, जप, तप, पूजा, पाठ, ध्यान, भजन यह भगवान की प्रसन्नता के लिये ही है। श्रद्धा और विश्वास भगवत् प्राप्ति का मूल साधन है। यदि श्रद्धा या विश्वास न हो तो सारे अनुष्ठान निष्फल हैं।

भगवान् से, आत्मबल से, आस्तिक, नास्तिक सभी अपने-अपने ढंग से लाभ उठाते हैं। संसार के महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़ने का, उनके अद्भुत आश्चर्यजनक कार्यों का जो विवरण मिलता है उससे हम आश्चर्यान्वित रह जाते हैं और सोचते हैं कि किसी देवता की कृपा से ही वे इतने बड़े कार्यों को पूरा कर सके होंगे। वह देवता भगवान है– जिसे मनोबल भी कहते हैं। प्रयत्न से, साधना से, विश्वास से, श्रद्धा भक्ति से, मनोबल बढ़ता है और फिर उसकी सहायता से बड़े-बड़े कठिन कार्य पूरे हो जाते हैं। मैस्मरेजम विद्या जानने वाले अपने अकिंचन मनोबल से बड़े-बड़े खेल दिखाते हैं। यह बल अधिक हो जाता है तो जिस दिशा में भी चाहे मनुष्य मोर्चे पर मोर्चा फतह करता हुआ आगे बढ़ता जाता है। अनायास, अप्रत्याशित सुअवसर भी उसे प्राप्त होते हैं। धन को देखकर धन, वैभव को देखकर वैभव और सौभाग्य को देखकर सौभाग्य अपने आप अनायास टपक पड़ते हैं। इन अनायास लाभों में भी 'सबल की सहायता' का ईश्वरीय नियम काम किया करता है।

भगवान कल्पवृक्ष हैं। उन्हें जो जिस भाव से भजता है, उसकी इच्छा पूर्ण करते हैं। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि मनतत्तव के जिस पहलू को बलवान बना लेता है उसे उस दिशा में पर्याप्त सफलताएँ मिलती हैं।

इस प्रकार चतुर्मुखी ब्रह्म (ब्रह्मा) की क्रिया पद्धति इस सृष्टि में दृष्टिगोचर हो रही है। उपनिषदों में इसे चार वर्ण वाला ब्रह्म भी कहा है। सत्प्रधान आत्मा को ब्राह्मण, शासनकर्ता स्वामी, ईश्वर को क्षत्रिय, लक्ष्मीपति विष्णु को वैश्य एवं भक्त के वंश में पड़े हुए, भक्त की इच्छानुसार कार्य करने वाले भगवान को शूद्र कहा है। यह चार भेद उसकी शक्तियों का रूप समझने-समझाने के लिए आचार्यों ने उपस्थित किया है। वस्तुतः ब्रह्म एक ही है । उसकी चार शक्तियों के आधार पर चार वेद बने हैं, परन्तु वस्तुतः उसकी अनन्त शक्तियाँ हैं और वह मनुष्य की बुद्धि की पहुँच से बहुत अधिक आगे हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिव का तत्त्व ज्ञान

शिव भारतीय धर्म के प्रमुख देवता हैं। ब्रह्मा और विष्णु के त्रिवर्ग में उनकी गणना होती है। पूजा, उपासना में शिव और उनकी शक्ति की ही प्रमुखता है। उन्हें सरलता की मूर्ति माना जाता है। द्वादश ज्योतिर्लिंगों के नाम से उनके विशालकाय तीर्थ स्वरूप देवालय भी हैं। साथ ही यह भी होता है कि खेत की मेंड़ पर किसी वृक्ष की छाया में छोटी चबूतरी बनाकर गोल पत्थर की उनकी प्रतिमा बना ली जाय। पूजा के लिए एक लोटा जल चढ़ा देना पर्याप्त है। सम्भव हो तो बेल पत्र भी चढ़ाये जा सकते हैं। फलों की अपेक्षा वे नही करते। न धूप-दीप, नैवेद्य, चन्दन, पुष्प, जैसे उपचार अलंकारों के प्रति उनका आकर्षण है।

क्या शिव कहीं हैं ? हैं तो उनकी क्रिया पद्धति क्या है ? इन प्रश्नों का उत्तर बालविनोद की तरह नहीं दिया जाना चाहिए। उनका वर्चस्व साधारण मनुष्यों जैसा नहीं है कि उन्हें रोटी, कपड़ा और मकान जैसी अनिवार्य साधन सामग्री जुटानी पड़े। वे सर्वव्यापी और निराकार हैं। सूक्ष्म तत्वों को शरीर धारण नहीं करना पड़ता। सूक्ष्म अपने आप में एक आकार है। इतना विस्तृत और व्यापक, जिसमें यह अपना विश्व और ब्रह्माण्ड, सभी आसानी से समा सकें।

इस सृष्टि के प्राणी और सभी पदार्थ तीन स्थितियों में होकर गुजरते हैं– एक उत्पादन, दूसरा अभिवर्धन और तीसरा परिवर्तन है। सृष्टि की उत्पादक प्रक्रिया को ब्रह्मा, अभिवर्धन को विष्णु और परिवर्तन को शिव कहते हैं। मरण के साथ जन्म का यहाँ अनवरत क्रम है। बीज गलता है तो नया पौधा पैदा होता है। गोबर सड़ता है तो उसका खाद पौधों की बढ़ोत्तरी में असाधारण रूप से सहायक होता है। पुराना कपड़ा छोटा पड़ने या फटने पर उसे गलाया और कागज बनाया जाता है। नये वस्त्र की तत्काल व्यवस्था होती है। इसी उपक्रम को शिव कहा जा सकता है। वह शरीरगत अगणित जीव कोशाओं के मरते जन्मते रहने से भी देखा जाता है और सृष्टि के जरा जीर्ण होने पर महाप्रलय के रूप में भी। स्थिरता तो जड़ता है। शिव को निष्क्रियता नहीं सुहाती। गतिशीलता ही उन्हें अभीष्ट है। गति के साथ परिवर्तन अनिवार्य है। शिव तत्व को सृष्टि की अनवरत परिवर्तन प्रक्रिया में झाँकते देखा जा सकता है। भारतीय तत्वज्ञान के अध्यवसायी कलाकार और कल्पना भाव संवेदना के धनी भी रहे हैं। उन्होंने प्रवृत्तियों को मानुषी काया का स्वरूप दिया है। विद्या को सरस्वती, सम्पदा को लक्ष्मी एवं पराक्रम को दुर्गा का रूप दिया है। इसी प्रकार अनेकानेक तत्व और तथ्य देवी देवताओं के नाम से किन्हीं काय कलेवरों में प्रतिष्ठित किये गये हैं। तत्व ज्ञानियों के अनुसार देवता एक से बहुत बने हैं। समुद्र का जल एक होते हुए भी उसकी लहरें ऊँची-नीची भी दीखती हैं और विभिन्न आकार-प्रकार की भी। परब्रह्म एक है तो भी उसके अंग-अवयवों की तरह देव वर्ग की मान्यता आवश्यक जान पड़ी। इसी अलंकारिक संरचना में शिव को भी मूर्धन्य स्थान मिला।

वे प्रकृति क्रम के साथ गुँथकर पतझड़ के पीले पत्तों को गिराते और बसन्त के पल्लव और फूल खिलाते रहते हैं। इसीलिए उन्हें श्मशानवासी कहा जाता है। मरण भयावह नहीं है और न उसमें अशुचिता है। गंदगी तो सड़न से फैलती है। काया की विधिवत् अन्त्येष्टि कर दी गई तो सड़न का प्रश्न ही नहीं रहा। हर व्यक्ति को मरण के रूप में शिव सत्ता का ज्ञान बना रहे, इसलिए उन्होंने अपना डेरा श्मशान में डाला है। वहीं बिखरी भस्म को शरीर पर मल लेते हैं। ताकि ऋतु प्रभावों का असर न पड़े। मृत्यु को जो भी जीवन के साथ गुँथा हुआ देखता है उस पर न आक्रोश के आतप का आक्रमण होता है और न भीरूता के शीत का। वह निर्विकल्प निर्भय बना रहता है। वे बाघ का चर्म धारण करते हैं। जीवन में ऐसे ही साहस और पौरुष की आवश्यकता है जिसमें बाघ जैसे अनर्थों और अनिष्टों की चमड़ी उधेड़ी जा सके और उसे कमर में कसकर बाँधा जा सके। शिव जब उल्लास विभोर होते हैं तो मुण्डों की माला गले में धारण करते हैं। यह जीवन की अन्तिम परिणति और सौगात है जिसे राजा व रंक समानता से छोड़ते हैं। न प्रबुद्ध ऊँचा रहता है और न अनपढ़ नीचा। सभी एक सूत्र में पिरो दिये जाते हैं। यही समत्व योग है, विषमता यहाँ नहीं फटकती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिव को नीलकण्ठ भी कहते हैं। कथा है कि समुद्र मंथन में जब सर्वप्रथम अहंता की वारुणी और दर्प का विष निकला तो शिव ने उस हलाहल को अपने गले में धारण कर लिया, न उगला न पिया। उगलते तो वातावरण में विषाक्त फैलती, पीने पर पेट में कोलाहल मचता। मध्यवर्ती नीति यही अपनाई गई। शिक्षा यह है कि विषाक्ता को न तो आत्मसात करें, न ही विक्षोभ उत्पन्न कर उसे उगलें। उसे कण्ठ तक ही प्रतिबन्धित रखें।

इसका तात्पर्य योग सिद्धि से भी है। योगी पुरुष अपने सूक्ष्म शरीर पर अधिकार पा लेते हैं जिससे उनके स्थूल शरीर पर कड़े तीक्ष्ण विषों का भी प्रभाव नहीं होता। उन्हें भी वह सामान्य मानकर पचा लेता है। इसका अर्थ यह भी है कि संसार में अपमान, कटुता आदि दुख कष्टों का उस पर कोई प्रभाव नहीं होता। उन्हें भी वह साधारण घटनायें मानकर आत्मसात कर लेता है और विश्व-कल्याण की अपनी आत्मिक वृत्ति निश्चल भाव से बनाये रहता है। दूसरे व्यक्तियों की तरह लोकोपकार करते समय आदि का कोई ध्यान नहीं होता। वह निर्विकार भाव से सबकी भलाई में जुटा रहता है। खुद विष पीता है पर औरों के लिए अमृत लुटाता रहता है।

शिव का वाहन वृषभ है जो शक्ति का पुंज भी है, सौम्य-सात्विक भी। ऐसी ही आत्माएँ शिव त्तव से लदी रहती और नन्दी जैसा श्रेय पाती हैं। शिव का परिवार भूत-पलीत जैसे अनगढ़ों का परिवार है। पिछड़ों, अपंगों, विक्षिप्तों को हमेशा साथ लेकर चलने से ही सेवा सहयोग का प्रयोजन बनता है।

शिवजी का मस्तक ऐसी विभूतियों से सुसज्जित है जिन्हें हर दृष्टि से उत्कृष्ट एवं आदर्श कहा जा सकता है। मस्तक पर चन्दन स्तर की नहीं, चन्द्रमा जैसी संतुलन शीलता धारण की हुई है। शिव के मस्तक पर चन्द्रमा है जिसका अर्थ है—शान्ति,सन्तुलन। चन्द्रमा मन की मुदितावस्था का प्रतीक है अर्थात् योगी का मन सदैव चन्द्रमा की भाँति उत्फुल्ल और उसी के समान खिला निःशंक होता है। चन्द्रमा पूर्ण ज्ञान का प्रतीक भी है अर्थात् उसे जीवन की अनेक गहन परिस्थितियों में रहते हुए भी किसी प्रकार का विभ्रम अथवा ऊहापोह नहीं होता। वह प्रत्येक अवस्था में प्रमुदित रहता है, विषमताओं का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सिर से गंगा की जलधारा बहने से आशय ज्ञान गंगा से है। मस्तिष्क के अन्तराल में मात्र "ग्रेमैटर" न भरा रहे, ज्ञान-विज्ञान का भण्डार भी भरा रहना चाहिए, ताकि अपनी समस्याओं का समाधान हो एवं दूसरों को भी उलझन से उबारें। वातावरण को सुख-शान्तिमय कर दें। सिर से गंगा का उद्‌भव शिवजी की आध्यात्मिक शक्तियों पर उनके जीवन के आदर्शों पर प्रकाश डालती है। गंगा जी विष्णु लोक से आती हैं। यह अवतरण महान आध्यात्मिक शक्ति के रूप में होता है। उसे सँभालने का प्रश्न बड़ा विकट था। शिवजी को इसके उपयुक्त समझा गया और भगवती गंगा को उनकी जटाओं में आश्रय मिला। गंगा जी यहाँ ज्ञान की प्रचण्ड आध्यात्मिक शक्ति के रूप में अवतरित होती हैं। लोक कल्याण के लिए उन्हें धरती पर उतार लेने की यह प्रक्रिया इस कारण होती बतायी गई है ताकि अज्ञान से भरे लोगों को जीवन दान मिल सके। पर उस ज्ञान को धारण करना भी तो कठिन बात थी जिसे शिव जैसा संकल्प-शक्ति वाला महापुरुष ही धारण कर सकता है अर्थात् महान बौद्धिक क्रान्तियों का सृजन भी कोई ऐसा व्यक्ति ही कर सकता है जिसके जीवन में भगवान शिव के आदर्श समाये हुए हों। वही ब्रह्म ज्ञान को धारण कर उसे लोक हितार्थ प्रवाहित कर सकता है।

शिव के तीन नेत्र हैं। तीसरा नेत्र ज्ञान चक्षु है, दूरदर्शी विवेकशीलता का प्रतीक जिसकी पलकें उघरते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया। सद्‌भाव के भागीरथ के साथ ही यह तृतीय नेत्र का दुर्वासा भी विद्यमान है और अपना ऋषित्व स्थिर रखते हुए भी दुष्टता को उन्मुक्त नहीं विचरने देता, मदमर्दन करके ही रहता है।

वस्तुतः यह तृतीय नेत्र सृष्टा ने प्रत्येक मनुष्य को दिया है। सामान्य परिस्थितियों में वह विवेक के रूप में जाग्रत रहता है पर वह अपने आप में इतना सशक्त और पूर्ण होता है कि काम वासना जैसे गहन प्रकोप भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। उन्हें भी जला डालने की क्षमता उसके विवेक में बनी रहती है। यदि यह तीसरा नेत्र खुल जाय तो सामान्य मनुष्य भी बीज गलने जैसा दुस्साहस करके विशाल वट वृक्ष बनने का असंख्य गुना लाभ प्राप्त कर सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तृतीय नेत्र उन्मीलन का तात्पर्य है—अपने आपको साधारण क्षमता से उठाकर विशिष्ट श्रेणी में पहुँचा देना।

तीन भव बन्धन माने जाते हैं—लोभ, मोह, अहंता। इन तीनों को ही नष्ट करने वाले ऐसे एक अस्त्र की त्रिपुरारि शिव को आवश्यकता है जो हर क्षेत्र में औचित्य की स्थापना कर सके। यह शस्त्र त्रिशूल रूप में धारण किया गया—ज्ञान, कर्म और भक्ति की पैनी धाराओं का है।

शिव डंमरू बजाते और मौज आने पर नृत्य भी करते हैं। यह प्रलयंकर की मस्ती का प्रतीक है। व्यक्ति उदास, निराश और खिन्न, विपन्न बैठकर अपनी उपलब्ध शक्तियों को न खोए, पुलकित-प्रफुल्लित जीवन जिए। शिव यही करते हैं, इसी नीति को अपनाते हैं । उनका डमरू ज्ञान, कला, साहित्य और विजय का प्रतीक है। वह पुकार-पुकार कर कहता है कि शिव कल्याण के देवता हैं। उनके विचारों रूपी खेत में कल्याणकारी योजनाओं के अतिरिक्त और किसी वस्तु की उपज नहीं होती। विचारों में कल्याण की समुद्री लहरें हिलोरें लेती हैं। उनके हर शब्द में सत्यम् शिवम् की ही ध्वनि निकलती है। डमरू से निकलने वाली सात्विकता की ध्वनि सभी को मंत्र मुग्ध सा कर देती है और जो भी उनके समीप आता है, अपना सा बना लेती है। सर्पों को वे गले लगाते हैं ताकि वे काटना छोड़ें, अपनी सुन्दर चमक-दमक से जन-जन का मन मोहें।

शिव का आकार लिंग माना जाता है। उसका अर्थ यह है कि सृष्टि साकार होते हुए भी उसका आधार आत्मा है। ज्ञान की दृष्टि से उसके भौतिक सौन्दर्य का कोई बड़ा महत्व नहीं है। मनुष्य को आत्मा की उपासना करनी चाहिए, उसी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। सांसारिक रूप सौन्दर्य और विविधता में घसीट कर उस मौलिक सौन्दर्य को तिरोहित नहीं करना चाहिए।

गृहस्थ होकर भी पूर्ण योगी होना शिव जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटना है। सांसारिक व्यवस्था को चलाते हुए भी वे योगी रहते हैं, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। वे अपनी धर्म पत्नी को भी मातृ शक्ति के रूप में देखते हैं। यह उनकी महानता का दूसरा आदर्श है। ऋद्धि सिद्धियाँ उनके पास रहने में गर्व अनुभव करती हैं। यहाँ उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि गृहस्थ रहकर भी आत्म-कल्याण की साधना असंभव नहीं। जीवन में पवित्रता रख कर उसे हँसते खेलते पूरा किया जा सकता है।

शिव के प्रिय आहार में एक सम्मिलित है—भांग भंग अर्थात् विच्छेद—विनाश। माया और जीव की एकता को भंग, अज्ञान आवरण का भंग संकीर्ण स्वार्थपरता का भंग, कषाय-कल्मषों का भंग। यही है शिव का रुचि आहार। जहाँ शिव की कृपा होगी वहाँ अन्धकार भी निशा भंग हो रही होगी और कल्याणकारण अरुणोदय का पुण्य दर्शन मिल रहा होगा।

शिव को पशु-पति कहा गया है। पशुत्व की परिधि में आने वाली दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों का नियन्त्रण करना पशुपति का काम है। नर पशु के रूप में रह रहा जीव जब कल्याणकर्ता शिव की शरण में जाता है तो सहज ही पशुता का निराकरण हो जाता है और क्रमशः मनुष्यत्व और देवत्व विकसित होने लगता है।

महामृत्युंजय मन्त्र में शिव को त्र्यम्बक और सुगन्धि पुष्टि वर्धकम् कहा गया है। अम्बक अर्थात् त्रिवर्ग। संयम विवेकदान को त्रिवर्ग कहते हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति भी त्र्यम्बक है। इस त्रिवर्ग को अपनाकर मनुष्य का व्यक्तिव प्रत्येक दृष्टि से परिपुष्ट व परिपक्व होता है। उसकी समर्थता और सम्पन्नता बढ़ती है। साथ ही श्रद्धा, सम्मान भरा सहयोग उपलब्ध करने वाली यशस्वी उपलब्धियाँ भी करतलगत होती हैं। यही सुगन्ध है। गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता का प्रतिफल यश और बल के रूप में प्राप्त होता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं। इसी रहस्य का उद्घाटन महामृत्युंजय मन्त्र में विस्तारपूर्वक किया गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि शिव मानव जीवन की उन सभी आध्यात्मिक विशेषताओं के प्रतीक हैं जिनके बिना मनुष्य जीवन पाने का अर्थ हल नहीं होता। मनुष्य का धर्म उसकी विवेक बुद्धि है। जिसके सहारे वह ज्ञान-विज्ञान की ओर अग्रसर होता है और मनुष्य से देव, नर से नारायण बनने में समर्थ होता है। इसकी सामर्थ्य प्राप्त करके ही आत्म कल्याण और लोकहित की परम्परा जीवित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रखी जा सकती है। यह सन्देश हमें आदि काल से भगवान शिव देते चले आ रहे हैं। इन आध्यात्मिक रहस्यों को हृदयंगम करना और तदनुरूप जीवन की रीति-नीति बनाना सच्चे शिव भक्त का परम लक्ष्य है। अच्छा हो शिव रात्रि के दिन हम मात्र पूजा कर्मकाण्ड तक सीमित न रह देवाधिदेव महादेव से जुड़ी दिव्य विभूतियों का चिन्तन करें, उन गुणों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करें। तभी सही अर्थों में हम उनके सच्चे भक्त कहलाने के अधिकारी बन सकेंगे, अन्यथा नहीं।

अग्निहोत्र और शिवलिंग

परमात्मा भले-बुरे सभी रूप में व्याप्त है, परन्तु पूजा के लिए उपयोगी त्तवों को ही ग्रहण किया गया है। पूजन, यज्ञ, अनुष्ठान में उपयोगी और उत्तम त्तव ही प्रयुक्त होते हैं। यद्यपि अनुपयोगी, निकृष्ट और घृणित पदार्थ भी परमात्मा की वैसी ही कृति हैं जैसे कि उत्तम पदार्थ। इसी प्रकार महत्व पूर्ण, सुन्दर, उपयोगी पदार्थों में ही परमात्मा की झाँकी की जाती है यद्यपि हानिकर और असुन्दर पदार्थों में भी परमात्मा मौजूद है।

इस उपयोगितावाद के अनुसार ऋषियों ने सबसे प्रथम ईश्वर को अग्नि रूप में देखा। आरंभिक युग में जब मनुष्य ने अग्नि को खोज निकाला तो यह आविष्कार उस समय असाधारण था। इसके अद्‌भुत शक्तिशाली, दिव्य शक्ति अग्नि को ईश्वर का प्रतिनिधि मानकर उसकी पूजा की गई।

आदि वेद, ऋग्वेद में प्रारंभिक मंत्र अग्नि की प्रार्थना में है।

''अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।''
''अग्ने नय सुपथाराये ऽस्मान्।।''

परम तेजस्वी एवं जीवन की अत्यंत उपयोगी अग्नि को विश्व के कोने-कोने में ईश्वरीय भाव के साथ देखा गया। आदि यहूदी—इसरायली, चीनी, पारसी, रोमन, ईसाई, यूनानी आदि के प्राचीन ग्रन्थों में अग्नि की प्रार्थना और पूजा के विषय में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध होता है। हजरत मूसा को तूर पर्वत पर परमात्मा के दर्शन अग्नि के रूप में हुए थे। यूनान तथा रोम के मंदिरों में अग्नि को निरन्तर प्रज्वलित रखा जाता था, उसे कभी बुझने न देते थे। पारसियों में तो अब भी अग्नि मन्दिर, आतिशकदे, धार्मिक भावना के साथ उसी प्रकार प्रतिष्ठित होते हैं जैसे कि ईसाइयों में गिरजे।

अग्नि की प्रज्वलित ज्योति को अखण्ड रूप से जलती रखने का आर्यों का धार्मिक कृत्य था। इसी अग्नि में नित्य पंच यज्ञ होते थे। इस अखण्ड अग्नि को गार्हस्पति अग्नि कहा जाता था, जन्म से लेकर अन्त्येष्टि तक हर एक संस्कार इसी अग्नि द्वारा होता था। अब तक मृतक का दाह करने के लिए घर से ही अग्नि ले जाने की प्रथा उस गार्हस्पति अग्नि की महत्ता का स्मरण दिलाती है। सन्यासी लोग धूनी की अग्नि को बुझने न देना एक धार्मिक कृत्य मानते हैं।

इस अखंड अग्नि को प्रज्वलित रखने के लिए अग्नि कुण्ड के ऊपर एक तिपाई पर घृत से भरा हुआ घड़ा—घृत कुंभ रख दिया जाता है। घड़े के पेंदे में एक छोटा छेद होता था जिसमें होकर थोड़ा थोड़ा घी चुचाता रहता था और उसके कारण अग्नि की लौ जलती रहती थी। घड़ा इतना ऊँचा रखा जाता था कि घी अग्नि तक पहुँचने में सौ बूंदों की लड़ी बन जाती थी।

-पूर्णं नारि प्रभर कुंभमेतं घृतस्य धाराममृतेन संभृताम्।
(अथर्व ३-१२-८)

-एता अर्षन्ति शलबजाः.... घृतस्य धाराः।
-एते अर्षन्त्युर्मयो घृतस्य मृगाइव।
-घृमस्य धाराः भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः।
-अभि प्रवन्त समनेव योषा.... अग्निं घृतस्य धाराः।
(ऋ० ४-५८-५,८)

इन श्रुतियों से अखण्ड अग्निज्योति प्रज्वलित रखने का उपर्युक्त विधान भली प्रकार सिद्ध हो जाता है। मन्दिरों की ज्योति के स्वरूप वाले शिखर, सिर के ऊपर शिखा उसी ज्योति पूजा के चिह्न हैं। किसी बड़े पर्व पर अग्निपूजन के लिए अनेक धार्मिक व्यक्ति अपनी अग्निज्योतियों तथा कुंभों को ले-लेकर एकत्रित होते थे। उसे कुंभ पर्व कहते थे। अब भी प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन आदि में कुंभ और कुंभी के मेले होते हैं। यद्यपि अग्नि पूजन के घृत कुंभ अब उन पर्वों पर नहीं पहुँचते तो भी कुंभ या कुंभी नाम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का होना एक ऐतिहासिक तथ्य की स्मृति दिलाता है।

समय परिवर्तनशील है। अग्नि पूजन का वह विधान सुलभ न रहा। घृत की न्यूनता तथा अन्य कारणों से यह सब अधिक दिन तक चल न सका। तब चिह्न पूजा चलाना उचित प्रतीत हुआ। अग्निज्योति के स्थान पर पत्थर की ज्योति शिखा स्थापित की गई। घृत कुंभ के स्थान पर जल कुंभ रखे जाने लगे। अग्नि कुंड के स्थान पर जलहरी बनाई गई। शैव काल के शिव भक्तों ने इस अग्नि पूजन के चिह्नावशेष को अपने धर्म चिह्नों में सम्मिलित कर लिया अग्नि का स्थान रुद्र ने ग्रहण कर लिया।

-रुद्रमग्नि उमा स्वाहाम् प्रदेशेषु महाबलम्।

(महाभारत बन० २२८-५)

-रुद्रमग्नि द्विजा प्राहुः।

-रुद्रास्य वन्हेः स्वाहायाः षणांस्त्रीणांच भारत।

(महा० बन० २२६-२७-३१)

अग्नि का रुद्र रूप में परिवर्तन हुआ। तृतीय नेत्र खुलने से अग्निकाण्ड होकर कामदेव का जल जाना, ताण्डव नृत्य से भयंकर अग्नि उत्पन्न होकर प्रलय होना, शंकर का संहारक देव होना, आदि गाथाएँ रुद्र का अग्नि से संबंध बताती हैं। इस दृष्टि से वर्तमान शिव पूजन वैदिक अग्निहोत्रों का रूपान्तर प्रतीत होता है। प्रधान शिव मन्दिरों को 'ज्योतिर्लिंगम्' कहा जाना भी इसी की परिपुष्टि करता है।

देववाद की रहस्यमयी अभिव्यंजनाएँ

पौराणिक देव प्रतीकों के सम्बन्ध में उनके स्वरूप, आयुध, वाहन, गुण आदि का जो वर्णन किया गया है, उसे वस्तुस्थिति माने बिना भी काम चल सकता है। प्रतीकों का उपयोग उसी तथ्य को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए जिनके लिए कि तत्ववेत्ताओं ने उनकी संरचना की है। इस प्रतीक मान्यता के पीछे विश्व की रचना प्रक्रिया से लेकर नीति और सदाचार के व्यवहारवाद तक का समावेश है। इन गूढ़ रहस्यों को समझने का प्रयत्न करने के लिए गहराई में उतरना होगा तभी हम देव पहेलियों में छिपे अति महत्वपूर्ण तत्वज्ञान का लाभ उठा सकेंगे।

आइन्स्टीन की यह उक्ति कि "अन्वेषक को अधिकार है कि वह ऐसी कोई भी नियम-पद्धति एवं व्याख्या सूत्र रच डाले, जो नये वैज्ञानिक प्रेक्षणों से भी पुष्ट हो सके", आध्यात्मिक एवं पौराणिक क्षेत्र के लिए भी उतनी ही लागू होती है। पौराणिक कथा-चित्र और प्रतीक निरंकुश कल्पना की मनोरंजक रचनाएँ नहीं हैं, बल्कि, जैसा कि जर्मन विद्वान हेनरिख जीभर ने अपने ग्रंथ 'मिथ्स एण्ड सिम्बल्स इन इण्डियन आर्ट एण्ड सिविलाइजेशन' में कहा है– "विष्णु, रुद्र, शक्ति, शिव, ब्रह्मा आदि विविध पौराणिक प्रतीक युगों के अनुभूत जीवन तथ्यों तथा सत्य की ही अभिव्यक्तियाँ हैं।"

भारतीय मेधा ने ब्रह्म की विराट-लीला को, अनन्त सत्य की विभिन्न अभिव्यक्तियों को, पुराण प्रतीकों द्वारा अभिव्यंजित किया है। इन अभिव्यंजनाओं को समझने के लिए भारतीय दर्शन, सांस्कृतिक चेतना, सौन्दर्य दृष्टि, कला-प्रतिमान, जीवन-मूल्य, सामाजिक गठन और सामाजिक सम्प्रेषणीयता के विविध स्वरूप तथा अभिव्यक्तियों के प्रचलित उपकरणों को समझना होगा।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शक्ति आदि की बहुरंगी मिथकीय गाथाएँ सृष्टि, स्थिति, प्रलय और गति के विराट् यथार्थ की, लोक-मानस के अनुकूल भाषा में की गई, अभिव्यक्तियाँ हैं। इसी अभिव्यक्ति का प्रयास विभिन्न मन्दिरों एवं भित्ति चित्रों आदि द्वारा किया गया है।

भारतीय मेधा की प्रचण्ड सामर्थ्य और प्रखर ऐश्वर्य इन पौराणिक-प्रतीकों में अभिव्यक्त हुआ है। इनकी अभिव्यंजनाएँ एक साथ बहुआयामी हैं। जब हम इनके यथार्थ स्वरूप को न समझकर इनका सपाट अर्थ निकालकर असम्भव, कल्पनाओं और स्वप्नों के संसार में खोये रहते हैं, हम वस्तुतः इन देव-शक्तियों का भी अपमान करते हैं और भारतीय मेधा का भी, अपने पूर्वज ऋषियों का भी।

उदाहरण के लिए हम शिव से सम्बन्धित विभिन्न पुरा-कथाओं और प्रतीकों को देखें। एक फ्रांसीसी विद्वान ने शिव को "नान डाइमेंशनल मिथ"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कहा है यानी सीमातीत पुराण-प्रतीक। मिथ्स और पुरा-कथाएँ सम्पूर्ण विश्व में हैं, लेकिन उनके 'डाइमेन्शन्स' हैं, पर शिव का मिथ, उस फ्रांसीसी लेखक के अनुसार 'नान डाइमेन्शनल' है।"

शिव के मन्दिरों और मूर्तियों के स्वरूप और प्रकार भी अनन्त हैं। भव्य और विराट शिव-मंदिरों में भी शिव हैं तथा पत्थर की एक छोटी-सी बंटियाँ के रूप में किसी वट-वृक्ष या अन्य किसी वृक्ष के सहारे भी वे उतनी ही मस्ती से खड़े हैं।

शिव-पूजा भारत में आदिकाल से ही प्रचलित है। लिंग-पूजा तो उत्तर–पाषाणकाल में भी होती थी। मोहन जोदड़ो से पशुपति की आकृति प्राप्त हुई है। हड़प्पा में नटराज का धड़ पाया गया है। हजारों वर्ष से शिर्व पूजा की परम्परा के प्रमाण मिले हैं।

नेपाल के पुशपति नाथ का मन्दिर विश्व प्रसिद्ध है। भूटान में भी शिव पूजा प्रचलित है। मक्का में मौजूद "संगे-असवद" भी शिवलिंग का ही प्रतिरूप बताया जाता है। ईरान जैसे मुस्लिम देशों में भी शिव मन्दिर पाये गये हैं। भारत में उत्तर में बद्रीनाथ–केदारनाथ और धुरदक्षिण में रामेश्वर तक महादेव की महिमा व्याप्त है।

शिव शब्द ही मंगल का पर्याय है। हेनरिख जीभर के अनुसार सृजन के प्रारम्भिक उपक्रम में, ब्रह्म त्तव का मिथकीय विभाजन नारी त्तव तथा पुरुष त्तव के रूप में व्यक्त हुआ है। यही ब्रह्म-माया, शिव-शक्ति, विष्णु आदि के रूप में वर्णित हुआ है।

इतिहास मर्मज्ञ विद्वानों के अनुसार शिव एक ऐतिहासिक पुरुष थे। कालान्तर में लोकश्रद्धा एवं लोक-प्रवृत्तियों के विभिन्न संघातों से शिव के विविध प्रतीक स्वरूपों का विकास हुआ। शिव की पुरा–कथाएँ लोक-संस्कृति की अनूठी अभिव्यंजनाएँ हैं।

शिव का नटराज स्वरूप सृजन और विध्वंस की परस्पर विरोधी प्रक्रियाओं की संयुक्त अभिव्यक्ति है। बिना विनाश के सृजन अर्थहीन है और बिना सृजन के विनाश अनर्थकारी है। उन्मुक्त सृजन और निर्द्वन्द्व विनाश, दोनों स्थितियाँ एक आन्तरिक उल्लास पर टिकी है, जिससे मस्त होकर नटराज नृत्य करते हैं। उनके ऊपरी दक्षिण हाथ में है डमरू, जो अपने आप में एक अर्थ गर्भ प्रतीक है। डमरू को ध्वनि का प्रतीक कहा जाता है।

कालिदास ने पार्वती और परमेश्वर शिव को वाक् और अर्थ की तरह संयुक्त एवं अभिन्न कहा है तथा जगत का माता-पिता कहकर वन्दना की है। यह शिव के अर्द्ध नारीश्वर स्वरूप की ही स्तुति है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भवानी और शंकर को श्रद्धा एवं विश्वास का स्वरूप कहा है।

एक ओर शिव गहन साधना, तपश्चर्या के देवता हैं, तो दूसरी ओर अनूठे दाम्पत्य प्रेम के, अनुपम प्रणय के, प्रेम, सद्भाव और समाज-कल्याण के। वे नृत्य-उल्लास, लास्य और लालित्य के, भाषा, शास्त्रों, कलाओं के प्रवर्तक हैं, तो विनाशकारी रुद्र भी हैं, प्रलयंकर शंकर हैं।

शिव का तीसरा नेत्र विवेक-ज्योति के रूप में प्रसिद्ध है। शिव इसी तीसरे नेत्र के, विवेक-ज्योति के कारण ज्ञान के देवता हैं।

एलोरा की गुफा में अर्द्ध नारीश्वर की भव्य मूर्ति है। शिव का अर्द्ध नारीश्वर रूप तो भारतीय संस्कृति के सर्वोच्च आदर्श की अभिव्यक्ति है। पुरुष अर्थ है, तो नारी वाणी। बिना वाणी के अर्थ प्रकट ही नहीं हो सकता। बिना अर्थ के वाणी की सार्थकता नहीं। दोनों का मेल ही मनुष्य की समस्त प्रवृत्तियों का आधार है।

पुरा तात्विक प्रमाणों से पता लगता है कि शिव पूजा कभी विश्व व्यापी थी। मध्य एशिया तथा बृहत्तर भारत में अभी भी उसके अवशेष हैं।

अठारह पुराणों में से पाँच का शिव के साथ सम्बन्ध है। पुराणों में शिव के बारह ज्योतिर्लिंगों का वर्णन है, जो सम्पूर्ण भारत में फैले हैं।

शिव का तांडव नृत्य रौद्र भी है और सुन्दर भी। यह युग-चक्र है, इतिहास-प्रवाह है। नृत्य के पद-चालन में, विभिन्न भंगिमाओं में इतिहास की बहुरंगी घटनाएँ हैं, जय-पराजय हैं, किन्तु इन सबके बीच हैं निर्विकार सर्वशक्तिमान, विराट्, समाधिमान शिव निर्दोष और निर्लिप्त।

शिव-नटराज के कलात्मक निरूपणों में पदार्थ और ऊर्जा की चक्रीय गति का प्रतीक रहता है। मुद्रा में समाधि की शान्ति और ताण्डव का रौद्र भाव संयुक्त है। शिव के नृत्य में अनूठा लालित्य है, निर्मलता है, गहन प्रशान्त गतिमयता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिव महाकाल हैं। ऐतिहासिक घटना-चक्र उनमें उठने वाली तरंगें मात्र हैं। महत्वपूर्ण घटनाएँ भी हैं, पर दृष्टि घटनाओं में नहीं उलझनी चाहिए, बल्कि सदा प्रवाह पर रहनी चाहिए। ऐसा ही डा० राममनोहर लोहिया ने भी कहा था—"घटना को नहीं, प्रवाह को देखो।

शिव का दाम्पत्य प्रेम अद्वितीय और अनिर्वचनीय है। सती ने सहसा मृत्युवरण कर लिया, तो शोक-संतप्त, दुःख कातर, वियोग-विह्वल शिव सती का शव कन्धे पर रखकर सम्पूर्ण संसार को अपने सशक्त कदमों से नापते चल दिये। देवगण डर गये शिव को इस तरह डग भरते देख। उन्होंने सती के शव को खण्ड-खण्ड कर दिया। शिव विचलित हो गये। जहाँ—जहाँ उनके पैर पड़े, वहीं-वहीं सती के पवित्र शव के खण्ड भी गिरे और वे स्थान पवित्र तीर्थ-स्थल हो गये, शक्ति-पीठ हो गये।

शिव एक ओर करुणा और प्रेम के, सादगी और कोमलता के उद्‌गम हैं, तो दूसरी ओर प्रचण्ड उग्रता के, संहार के भी। उनके तृतीय नेत्र के, विवेक-ज्योति के दोनों ही पक्ष समान महत्व के हैं।

शैव-दर्शन में रसेश्वर सम्प्रदाय भी आता है। इससे स्पष्ट है कि आयुर्वेद, रसायनशास्त्र में भी शैव विद्वान पारंगत रहे हैं। इसी तरह पाणिनि का व्याकरण भी शैव-आगम के ही अन्तर्गत माना जाता है। भर्तृहरि ने वाक् के विभिन्न स्तरों—बैखरी, मध्यमा व पश्यन्ती की विवेचना की है। इससे पता चलता है कि शिव उपासक किसी तरह ज्ञान साधक भी होते हैं। लेकिन आज तो बैखरी वाणी के भी अर्थ-विस्तार को समझने में असमर्थ लोग शिव के उपासक बनते हैं, जब कि शास्त्र का कथन है—'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्।'

पौराणिक उपाख्यानों की प्रतीकात्मकता की पुष्टि विश्व भर के पौराणिक प्रतीकों के साम्य से भी होती है।

भारत के शिव और यूनान के डायोनिसस में साम्य है और पुराणविद इन्हें एक ही मानते हैं। मिस्र में ओसाइरिस की उपासना का भी इससे ही साम्य पाया जाता है।

शिव और डायोनिसस दोनों को नृत्य का जनक और प्रवर्तक माना जाता है। इसी तरह यह साम्य भी विचारणीय है कि यूनान व भारत, दोनों जगह इन नृत्यों तथा संगीतों का उद्‌देश्य सौन्दर्य चेतना की सन्तुष्टि के साथ ही विभिन्न मनोवैज्ञानिक तथा रहस्यात्मक भावनाओं की सन्तुष्टि भी रहा है।

विश्व भर में इन नृत्यों तथा संगीत का प्रयोग मन को एक तीव्र हर्षोन्मादक स्थिति तक पहुँचाने के साथ ही आध्यात्मिक विश्व से सम्पर्क के लिए भी होता रहा है। डायोनिसस के सम्मान में गाये जाने वाले 'डाई थ्रम्स' और भारत में चण्डी—गीता के भाव तथा नृत्य-मुद्राओं में भी कई चीजें समान हैं।

सीरिया, लेबनान, ईरान, यूगोस्लाविया, अलजीरिया, मोरक्को, तुर्की आदि देशों में 'जिक्र' (एक धार्मिक विधि) किया जाता है। इनके संगीत के ढंग व विविध हाव-भाव पूरी तरह भारतीय हाव-भावों से साम्य रखते हैं। 'जिक्र' के कई तरीके तान्त्रिक योग के कुछ अभ्यासों से सर्वथा साम्य रखते हैं।

विभिन्न यूनानी पुरा-कथाओं तथा भारतीय पुराण प्रतीकों में अद्‌भुत साम्य है। इससे यही स्पष्ट है कि उस युग में भाव-सम्प्रेषण की यही युग-भाषा थी। उसके गहन अनुशीलन से ही हम वास्तविक अभिप्रायों को समझ सकते हैं।

शिव की ही तरह अन्य देवताओं के चित्र-चरित्र रहस्यों से भरे-पूरे हैं। देववाद के स्वरूप एवं प्रतिपादन के पीछे छिपे हुए रहस्यों को समझने का यदि गम्भीरता-पूर्वक प्रयत्न किया जाय तो प्रतीत होगा कि उसमें व्यक्ति के चिन्तन तथा व्यवहार को उच्चस्तरीय बनाने वाली ऐसी कितनी ही महत्वपूर्ण दिशा धाराओं का समावेश है, जिनका अवगाहन करके हम स्वयं देव स्तर पर पहुँच सकते हैं।

देवपूजा का स्वरूप और प्रतिफल

भगवान एक है। उन्हीं की विशिष्ट विभूतियों को देव नाम दिया गया है। ऐसा नहीं समझा जाना चाहिए कि देवता कोई व्यक्ति विशेष हैं। भगवान की सत्ता में न कोई साझीदार है और न उनका कोई सहायक। इस समूची सृष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता वह एक ही है। उसके विभिन्न गुणों को विभिन्न देवताओं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के नाम से ऋषियों ने पुकारा है। कहा है–

''एको विश्वस्य भुवनस्य राजा''

अर्थात्–एक ही परब्रह्म को विद्वानों ने अनेक नामों से सम्बोधित किया है।

''सर्वबल्विद मेवाहं, नान्यदसि सतानम्''।

(देवी भागवत् १।१५।५५)

महाभाग्याद् देवलाया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।

(निसक्त ७।१।४)

अर्थात्–एक ही परमात्मा को बहुत देवताओं के नाम से सम्बोधन किया जाता है।

देवताओं के अनेक नाम हैं। यहाँ तक कि उन्हें ३३ या ३३ कोटि भी कहा है। इनमें पाँच प्रमुख हैं–

(१) सूर्य (२) गणेश (३) ब्रह्मा (४) विष्णु (५) महेश।

यह शरीर के पाँच तत्त्वों अथवा चेतना के पाँच प्राणों के प्रतीक माने जाते हैं। सूक्ष्म शरीर में पंचकोश हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच है और कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच हैं। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इन महान शक्ति स्त्रोतों को देव संज्ञा दी गई हैं।

महत्वपूर्ण तथ्यों का स्मरण दिलाने के लिए उनके प्रतीक बनाने की परम्परा है।ऐसा भी है कि उनसे हमें लाभ मिलता है उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए उनकी प्रतीक पूजा की जाती है। इन सब बातों का समन्वय करते हुए देव पूजा का प्रचलन हुआ है।

पंचत्तवों का हम सदुपयोग करें, उन्हें अनावश्यक मात्रा में नष्ट न करें। मलीन न होने दें। जब जितने उपयोग की आवश्यकता है तब उन्हें बरतने में कृपणता भी न करें ? आदि बातों की स्मृति दिलाने के लिए पंच देव पूजा का विधान है।

मिट्टी, पानी, हवा, गर्मी, आकाश इन पंच देवों की सहायता से खोया हुआ आरोग्य फिर से प्राप्त हो सकता है। यह विद्या प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकों में विस्तारपूर्वक बताई गई है। साथ ही यह भी कहा गया है कि इनके सदुपयोग करने की प्रक्रिया अपनाते हुए प्राकृतिक जीवन जिया जाय तो निरोग एवं दीर्घजीवी रहा जा सकता है।

पाँच प्राण पाँच सदगुणों के प्रतीक हैं– श्रम, निष्ठा, मनोयोग, साहस, सज्जनता एवं उदारता। यह पाँच गुण पाँच प्राणों से सम्बन्धित हैं । इन्हें व्यावहारिक अध्यात्म भी कह सकते हैं। पांच उप प्राणों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि सद्गुणों का समावेश है। इनकी आराधना की जाय अर्थात् जीवन क्रम में इनका प्रयोग समावेश रखा जाय तो इनका प्रतिफल हाथों-हाथ व्यक्तिव को सुविकसित रूप में उपलब्ध होता है। यह शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य सम्वर्धन की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है।

गणेश सद्बुद्धि के देवता हैं। सूर्य प्रखरता तेजस्विता के। ब्रह्मा सृजन प्रिय हैं। विष्णु परिपोषण के शिव । परिवर्तन एवं अनुशासन के। यह सभी प्रयास ऐसे हैं जिनके लिए सदा सर्वदा सचेष्ट रहना चाहिए। विद्या बुद्धि को विकसित करने के लिए अध्ययन, परामर्श एवं अनुभव का सम्पादन किया जाता है। यह गणेश पूजा हुई। साहसिकता, बलिष्ठता, प्रतिभा आदि को तेजस्विता कहते हैं। अपने व्यक्तिव में इन विभूतियों का समावेश करना सूर्य पूजा है। हमारी कार्य पद्धति सृजन प्रिय हो। निर्माण कार्यों में समुचित अभिरुचि का होना विष्णु पूजन है। अनुशासन का पालन समयानुसार परिवर्तन की सूझ-बूझ यह शिव आराधना है। दैवी गुणों को जीवन में समाविष्ट करना ही देव पूजा है। सद्गुणों की संख्या और प्रकृति असीम है पर उनमें पाँच प्रमुख हैं। उन्हें अपनाते हुए हम देव पूजा का सत्परिणाम निरन्तर प्राप्त करते रह सकते हैं।

तेतीस कोटि देवता क्या हैं ?

हिन्दू धर्म में अनेक देवी देवताओं की मान्यता है। ब्रह्मा, विष्णु , महेश तीन प्रधान देवता हैं। दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती देवियाँ एवं इन्द्र, गणेश, वरुण, मरुत, अर्यमा, सूर्य, चन्द्र, भौम, बुद्ध, गुरु, शुक्र, शनि, अग्नि, प्रजापति आदि देवताओं का स्थान है। गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियाँ, गोवर्धन, चित्रकूट, विन्ध्याचल आदि पर्वत तुलसी, पीपल आदि वृक्ष, गौ, बैल आदि पशु, गरुड़, नीलकण्ठ आदि पक्षी, सर्प आदि कीड़े भी देवता कोटि में गिने जाते हैं। भूत, प्रेतों से कुछ ऊँची श्रेणी के देवता भैरव, क्षेत्रपाल, यक्ष, ब्रह्म-राक्षस, बैताल, कूष्माण्ड, पीर, बली, औलिया आदि हैं। फिर ग्राम्य देवता और भूत, प्रेत,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मसान, चुड़ैल आदि हैं। राम, कृष्ण, नृसिंह, वराह, वामन आदि अवतारों को भी देवताओं की कोटि में गिना जा सकता है।

इन देवताओं की संख्या तेतीस कोटि बताई जाती है। कोटि के शब्द के दो अर्थ किये जाते हैं। (१) श्रेणी (२) करोड़ः तेतीस प्रकार के तेतीस जाति के ये देवता हैं। जाति, श्रेणी या कोटि शब्द बहु वचन का बोधक है। इससे समझा जाता है कि हर कोटि में अनेकों देव होंगे और तेतीस कोटियों—श्रेणियों के देव तो सब मिलकर बहुत बड़ी संख्या में होंगे। कोटि शब्द का दूसरा अर्थ 'करोड़' है। उससे तेतीस करोड़ देवताओं के अस्तिव का पता चलता है। जो हो यह तो मानना ही पड़ेगा कि हिन्दू धर्म में देवों की बहुत बड़ी संख्या मानी जाती है। वेदों में भी तीस से ऊपर देवताओं का वर्णन मिलता है।

देवताओं की इतनी बड़ी संख्या एक सत्य शोधक को बड़ी उलझन में डाल देती है। वह सोचता है कि इतने अगणित देवताओं के अस्तिव का क्या तो प्रमाण है, और क्या उपयोग ? इन देवताओं में अनेकों की तो ईश्वर से समता है। इस प्रकार 'बहु ईश्वरवाद' उपज खड़ा होता है। संसार के प्रायः सभी प्रमुख धर्म 'एक ईश्वरवाद' को मानते हैं। हिन्दू धर्म शास्त्रों में भी अनेकों अभिवचन एक ईश्वर होने के समर्थन में भरे पड़े हैं। फिर यह अनेक ईश्वर कैसे ? ईश्वर की ईश्वरता में साझेदारी का होना कुछ बुद्धि संगत प्रतीत नहीं होता। अनेक देवताओं का अपनी-अपनी मर्जी से मनुष्यों पर शासन करना, शाप, वरदान देना, सहायता या विघ्न उपस्थित करना एक प्रकार से ईश्वरीय जगत की अराजकता है। कर्म फल के अविचल सिद्धान्त की परवाह न करके भेंट पूजा से प्रसन्न-अप्रसन्न होकर शाप-वरदान देने वाले देवता लोग एक प्रकार से ईश्वरीय शासक में चोर बजार, घूसखोरी, डाकैजनी एवं अनाचार उत्पन्न करते हैं। इस अवांछनीय स्थिति को सामने देखकर किसी भी सत्य शोधक का सिर चकराने लगता है। वह समझ नहीं पाता कि आखिर यह सब है क्या प्रपंच ?

देवतावाद पर सूक्ष्म रूप से विचार करने से प्रतीत होता है कि एक ही ईश्वर की अनेक शक्तियों के नाम अलग-अलग हैं और सब नामों को ही देवता कहते हैं। जैसे सूर्य की किरणों में सात रंग हैं उन रंगों के हरा, पीला, लाल, नीला आदि अलग अलग नाम हैं। हरी किरणें अल्ट्रावायलेट किरणें, एक्स किरणें, विल्डन किरणें आदि अनेकों प्रकार की किरणें हैं । उनके कार्य और गुण अलग-अलग होने के कारण उनके नाम भी अलग-अलग हैं। इतने पर भी वे एक ही सूर्य की अंश हैं। अनेक किरणें होने पर भी सूर्य एक ही रहता है। इसी प्रकार एक ही ईश्वर की अनेक शक्तियां अपने गुण कर्म के अनुसार विविध देव नामों से पुकारी जाती हैं। मूलतः ईश्वर तो एक ही है। एक मात्र ईश्वर ही इस सृष्टि का निर्माता, पालनकर्ता और नाश करने वाला है। उस ईश्वर की जो शक्ति निर्माण एवं उत्पत्ति करती है उसे ब्रह्मा, जो पालन, विकास एवं शासन करती है वह विष्णु, जो जीर्णता, अवनति एवं संहार करती है उसे शंकर कहते हैं। दुष्टों को दण्ड देने वाली दुर्गा, सिद्धिदाता गणेश, ज्ञान दाता सरस्वती, श्री समृद्धि प्रदान करने वाली लक्ष्मी, जल बरसाने वाली इन्द्र, इसी प्रकार हनुमान आदि समझने चाहिये। जैसे एक ही मनुष्य के विविध अंगों को हाथ, पैर, नाक, कान, आँख आदि कहते हैं उसी प्रकार ईश्वरीय सूक्ष्म शक्तियों के उनके गुणों के अनुसार विविध नाम हैं, वही देवता हैं।

कैवल्योपनिषद्कार ऋषि का कथन है—'स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्य शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट्। स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः।' अर्थात् वह परमात्मा ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव, अक्षर, स्वराट्, इन्द्र, काल, अग्नि और चन्द्रमा है। इसी प्रकार ऋग्वेद मं० १ सू० १६४ मं० ४६ में कहा गया है कि 'इन्द्र मित्रं वरुणमन्निमाहुरथो दिव्यस्य सुपर्णो गरुत्मान्। एवं सद्विप्रा यहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वान माहु।' अर्थात् विद्वान लोग ईश्वर को ही इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, गरुत्मान्, दिव्य, सुपर्ण, यम, मातरिश्वा नाम से पुकारते हैं। उस एक ईश्वर को ही अनेक नामों से कहते हैं।

इनसे प्रकट होता है कि देवताओं का पृथक् पृथक् अस्तिव नहीं है, ईश्वर का उसका गुणों के अनुसार देव वाची नामकरण किया है। जैसे—अग्नि—तेजस्वी। प्रजापति—प्रजा का पालन करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाला। इन्द्र–ऐश्वर्यवान। ब्रह्मा–बनाने वाला। विष्णु–व्यापक। रुद्र–भयंकर। शिव–कल्याण करने वाला। मातरिश्वा–अत्यन्त बलवान। वायु–गतिवान। आदित्य–अविनाशी। मित्र–मित्रता रखने वाला। वरुण–ग्रहण करने योग्य। अर्यमा–न्यायवान् सविता–उत्पादक। कुबेर–व्यापक। बसु–सब में बसने वाला। चन्द्र–आनन्द देने वाला। मंगल–कल्याणकारी। बुध–ज्ञानस्वरूप। बृहस्पति–समस्त ब्रह्मांडों का स्वामी। शुक्र–पवित्र। शनिश्चर–सहज में प्राप्त होने वाला। राहु–निर्लिप्त। केतु–निर्दोष। निरंजन–कामना रहित। गणेश–प्रजा का स्वामी। धर्मराज–धर्म का स्वामी। यम–फलदाता। काल–समय रूप। शेष–उत्पत्ति और प्रलय से बचा हुआ। शंकर–कल्याण करने वाला। इसी प्रकार अन्य देवों के नामों का अर्थ ढूँढा जाय तो वह परमात्मा का ही बोध कराता है।

अब यह प्रश्न उठता है कि इन देवताओं की विविध प्रकार की आकृतियाँ क्यों हैं ? आकृतियों की आवश्यकता किसी बात की कल्पना करने या स्मरण रखने के लिए आवश्यक है। किसी बात का विचार या ध्यान करने के लिए मस्तिष्क में एक आकृति अवश्य ही बनानी पड़ती है। यदि कोई मस्तिष्क इस प्रकार के मानसिक रोग से ग्रस्त हो कि मन में आकृतियों का चिन्तन न कर सके तो निश्चय ही वह किसी प्रकार का विचार भी न कर सकेगा। जो कीड़े मकोड़े आकृतियों की कल्पना नहीं कर पाते उनके मन में किसी प्रकार के भाव भी उत्पन्न नहीं होते। ईश्वर एवं उसकी शक्तियों के सम्बन्ध में विचार करने के लिए मनः लोक में स्वतः किसी न किसी प्रकार की आकृति उत्पन्न होती है। इन अदृश्य कारणों से उत्पन्न होने वाली सूक्ष्म आकृतियों को दिव्य दृष्टि से अवलोकन करने वाले योगी जनों ने उन ईश्वरीय शक्तियों की, देवी, देवताओं की–आकृतियाँ निर्मित की हैं।

चीन और जापान देश की भाषा लिपि में जो अक्षर हैं वे पेड़, पशु, पक्षी आदि की आकृति के आधार पर बनाये गये हैं। उन भाषाओं के निर्माताओं का आधार यह था कि जिस वस्तु को पुकारने के लिए जो शब्द प्रयोग होता था, उस शब्द को उस वस्तु की आकृति का बना दिया। इस प्रणाली में धीरे-धीरे विकास करके एक व्यवस्थित लिपि बना ली गई। देवनागरी लिपि का अक्षर विज्ञान शब्द की सूक्ष्म आकृतियों पर निर्भर है । किसी शब्द का उच्चारण होते ही आकाश में एक आकृति बनती है, इस आकृति को दिव्य दृष्टि से देखकर योगी जनों ने देवनागरी लिपि का निर्माण किया है। शरीर के मर्मस्थलों में जो सूक्ष्म ग्रन्थियाँ हैं उनके भीतरी रूप को देख कर षट् चक्रों का सिद्धान्त निर्धारित किया गया है। जो आधार चीनी भाषा की लिपि का है, जो आधार देवनागरी लिपि के अक्षरों का है, जो आधार षट्चक्रों की आकृति का है, उस आधार पर ही देवताओं की आकृतियाँ प्रस्तुत की गई हैं। जिन ईश्वरीय शक्तियों के स्पर्श से मनुष्य के अन्तःकरण में जैसे संवेदन उत्पन्न होते हैं, सूक्ष्म शरीर की जैसी मुद्रा बनती है, उसी के आधार पर देवताओं की आकृतियाँ बना दी गई हैं।

संहार, पतन एवं नाश होते देखकर मनुष्य के मन में वैराग्य का भाव उत्पन्न होता है इसलिये शंकर जी का रूप वैरागी जैसा है। किसी चीज का उत्पादन होने पर वयोवृद्धों के समान हर मनुष्य अपना उत्तरदायित्व समझने लगता है, इसलिये ब्रह्मा जी वृद्ध के रूप में हैं। चार वेद या चार दिशाएँ ब्रह्मा जी के चार मुख हैं। पूर्णता प्रौढ़ता की अवस्था में मनुष्य रूपवान, सशक्त, संपत्नीक एवं विलासप्रिय होता है, सहस्रों सर्प सी विपरीत परिस्थितियां भी उस प्रौढ़ के अनुकूल बन जाती हैं। शेष शैयाशायी विष्णु के चित्र में हम इसी भाव की झाँकी देखते हैं। लक्ष्मी बड़ी सुन्दर और कमनीय लगती हैं, उनका रूप वैसा ही है। ज्ञान में बुद्धि में सौम्यता एवं पवित्रता है, सरस्वती की मूर्ति को हम वैसी ही देखते हैं। क्रोध आने पर हमारी अन्तरात्मा विकराल रूप धारण करती है, उस विकरालता की आकृति ही दुर्गा है। विषय वासनाओं की मधुर-मधुर अग्नि सुलगाने वाला देवता पुष्प वाणधारी कामदेव है। ज्ञान का देवता गणेश हाथी के समान गंभीर है, उसका पेट ओछा नहीं जिसमें कोई बात ठहरे नहीं, उसके बड़े पेट में अनेकों बातें पड़ी रहती हैं और बिना उचित अवसर आये प्रकट नहीं होतीं। "जिसके पास अकल होगी वह लड्डू खायेगा" इस कहावत को हम गणेश जी के साथ चरितार्थ होता देखते हैं। उनकी नाक लम्बी है अर्थात् प्रतिष्ठा ऊँची है। ईश्वर की ज्ञान शक्ति का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महत्व दिव्यदर्शी कवि ने गणेश के रूप में चित्रित कर दिया है। इसी प्रकार अनेकों देवों की आकृतियाँ विभिन्न कारणों से निर्मित की गई हैं।

तेतीस कोटि के देवता माने जायँ तो अनेकों क्षेत्र में काम करने वाली शक्तियाँ तेतीस हो सकती हैं। शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, धार्मिक, आर्थिक, पारिवारिक, वैज्ञानिक भौगोलिक आदि क्षेत्रों की श्रेणियों की गणना की जाय तो उनकी संख्या तेतीस से कम न होगी उन कोटियों में परमात्मा की विविध शक्तियाँ काम करती हैं, वे देव ही तो हैं। दूसरी बात यह है कि जिस समय देवतावाद का सिद्धान्त प्रयुक्त हुआ उस समय भारतवर्ष की जनसंख्या ३३ कोटि--तेतीस करोड़ थी। इस पुण्य भारत भूमि पर निवास करने वाले सभी लोगों के आचरण और विचार देवोपम थे। संसार भर में वे भूसुर (पृथ्वी के देवता) कह कर पुकारे जाते थे। तीसरी बात यह है कि हर मनुष्य के अन्तःकरण में रहने वाला देवता अपने ढंग का आप ही होता है। जैसे किन्ही दो व्यक्तियों की शकल सूरत आपस में पूर्ण रूप से नहीं मिलती वैसे ही सब मनुष्यों के अन्तःकरण भी एक से नहीं होते उनमें कुछ न कुछ अन्तर रहता ही है। इस भेद के कारण हर मनुष्य का विचार विश्वास, श्रद्धा, निष्ठा के द्वारा बना हुआ अन्तःकरण रूपी देवता पृथक-पृथक हैं। इस प्रकार तेतीस कोटि मनुष्यों के देवता भी तेतीस कोटि ही होते हैं।

देवताओं की आकृतियाँ चित्रों के रूप में और मूर्तियों के रूप में हम देखते हैं। कागज पर अंकित किये गये चित्र अस्थायी होते हैं। पर पाषाण एवं धातुओं की मूर्तियाँ चिरस्थायी होती हैं। साधना विज्ञान के आचार्यों का अभिमत है कि ईश्वर की जिस शक्ति को अपने में अभिप्रेत करना हो उसका विचार, चिन्तन, ध्यान और धारण करना चाहिये। विचार शक्ति का चुम्बकत्व ही मनुष्य के पास एक ऐसा अस्त्र है जो अदृश्य लोक की सूक्ष्म शक्तियों को खींच खींच कर लाता है। धनवान बनने के लिये धन का चिन्तन और विद्वान बनने के लिए विद्या का चिन्तन आवश्यक है। संसार का जो भी मनुष्य जिस विषय में आगे बढ़ा है, पारंगत हुआ है, उसमें उसने एकाग्रता और आस्था उत्पन्न की है। इसका एक आध्यात्मिक उपाय यह है कि ईश्वर की उस शक्ति का चिन्तन किया जाय। चिन्तन के लिये आकृति की आवश्यकता है, उस आकृति की मूर्ति या चित्र के आधार पर हमारी कल्पना आसानी से ग्रहण कर सकती है। इस साधन की सुविधा के लिए मूर्तियों का आविर्भाव हुआ है।

धनवान बनने के लिए सबसे पहले धन के प्रति प्रगाढ़ प्रेम भाव होना चाहिये। बिना इसके धन कमाने की योजना अधूरी और असफल रहेगी। क्योंकि पूरी दिलचस्पी और रुचि के बिना कोई कार्य पूरी सफलता तक नहीं पहुँच सकता। धन के प्रति प्रगाढ़ प्रेम, विश्वास आशा पाने के लिए आध्यात्मिक शास्त्र के अनुसार मार्ग यह है कि ईश्वर की धन शक्ति को लक्ष्मी जी को अपने मानस लोग में प्रमुख स्थान दिया जाय। चूँकि ईश्वर की धन शक्ति का रूप दिव्यदर्शियों ने लक्ष्मी जी जैसा निर्धारित किया है अतएव लक्ष्मी जी की आकृति गुण कर्म स्वभाव युक्त उनकी छाया मन में धारण की जाती है। इस ध्यान साधना में मूर्ति बड़ी सहायक होती है। लक्ष्मी जी की मूर्ति की उपासना करने से मानस लोक में धन के भाव उत्पन्न होते हैं और वे भाव ही अभीष्ट सफलता तक ले पहुँचते हैं। इस प्रकार लक्ष्मी जी की उपासना से श्री वृद्धि होने में सहायता मिलती है। यही बात गणेश, शिव, विष्णु, हनुमान, दुर्गा आदि देवताओं के संबंध में है।

इष्ट देव चुनने का उद्देश्य भी यही है। जीवन लक्ष्य नियुक्त करने को ही आध्यात्मिक भाषा में इष्ट देव चुनना कहा जाता है। अखाड़ों में, व्यायाम शालाओं में, हनुमान जी की मूर्तियां दीखती हैं। व्यापारी लोग लक्ष्मी जी की उपासना करते हैं। साधु सन्यासी शिवजी का इष्ट रखते हैं। गृहस्थ लोग, विष्णु (राम, कृष्ण आदि अवतार) को भजते हैं। शक्ति के इच्छुक दुर्गा को पूजते हैं। स्थूल दृष्टि से देखने में यह देवता अनेकों मालूम पडते हैं, उपासकों की साधना में अन्तर दिखाई देता है पर वास्तव में कोई अन्तर है नहीं। मान लीजिये माता के कई बालक हैं एक बालक रोटी खाने के लिए रसोई घर में बैठा है, दूसरा धुले कपड़ों की मांग करता हुआ कपड़ों के बक्स के पास खड़ा है, तीसरा पैसे लेने के लिए माता का बटुआ टटोल रहा है, चौथा गोदी में चढ़ने के लिए मचल रहा है। बालकों की आकांक्षाएँ भिन्न हैं वे माता के उसी गुण पर सारा ध्यान लगाये बैठे हैं जिसकी उन्हें आवश्यकता है। गोदी के लिए मचलने वाले बालक के लिए माता एक मुलायम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पालना, या बढ़िया घोड़ा है। पैसे चाहने वाले बालक के लिए वह एक चलती-फिरती बैंक है, भोजन के इच्छुक के लिए वह एक हलवाई है, कपड़े चाहने वाले के लिए वह घरेलू दर्जी या धोबी है। चारों बालक अपनी अच्छा के अनुसार माता को पृथक-पृथक दृष्टि से देखते हैं, उससे पृथक-पृथक आशा करते हैं फिर भी माता एक ही है। यही बात विभिन्न देव पूजकों के बारे में कही जा सकती है। वस्तुतः इस विश्व में एक ही सत्ता है—परमात्मा एक ही है। उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं, तो भी मनुष्य अपने विचार एवं साधना की दृष्टि से उसकी शक्तियों को पृथक-पृथक देवताओं के रूप में मान लेता है।

श्रीमद् भागवद्गीता के अध्याय ६ श्लोक २३ में इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया गया है—

येऽप्यन्य देवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधि पूर्वकम्।।

अर्थात्—हे अर्जुन, जो भक्त अन्य देवताओं को श्रद्धा पूर्वक पूजते हैं, वे भी अविधि पूर्वक मुझे ही पूजते हैं।

गीता अध्याय ११ श्लोक २६ में अर्जुन कहता है—

वायुर्यमोऽग्निवरुणः शशांक प्रजापतिस्त्व प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्र कृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।।

अर्थात्—वायु, यम, अग्नि, वरुण, शशि, प्रजापति, आदि आप ही हैं। आपको बार-बार नमस्कार है।

जैसे सब नदियों का जल समुद्र में जाता है वैसे ही सब देवों को किया हुआ नमस्कार केशव के लिए ही जाता है — 'सर्व देव नमस्कारं केशवं प्रति गच्छति।'

इन सब बातों पर विचार करने के उपरान्त हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि वस्तुतः निखिल विश्व ब्रह्माण्ड का एक ही देव परमात्मा है। विभिन्न देवता उसी की शक्तियों के विभिन्न नाम हैं। इन देवताओं का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है।

देवताओं की मूर्तियाँ परमात्मा की उन शक्तियों का स्मरण दिलाने के लिये हैं। कागज पर लिखे हुए अक्षर स्वतः कोई वस्तु नहीं है पर उन अक्षरों को पढ़ने से वस्तुओं का स्वरूप सामने आ जाता है। जैसे 'हाथी' यह दो अक्षर जहाँ लिखे हैं उस स्थान पर कोई पशु अवस्थित भले ही न हो पर इन दो अक्षरों को पढ़ते ही उस विशालकाय हाथी का चित्र मस्तिष्क में दौड़ जाता है। भक्ति रस के भजन पढ़ने से मनुष्य का हृदय भक्ति भाव में सराबोर हो जाता है और घासलेटी पुस्तकें पढ़ने से विषय वासना, व्यभिचार आदि के दूषित भाव मन में घुड़दौड़ मचाने लगते हैं। अक्षर एक प्रकार के चित्र हैं, उन चित्रों से मन में कोई आकृतियाँ आती हैं और फिर उन आकृतियों से संबंधित भाव-कुभाव मन में उत्पन्न होते हैं, महापुरुषों के चित्रों एवं मूर्तियों को यदि हम आदर पूर्वक श्रद्धांजलि चढ़ायें तो स्वभावतः उनके गुणों की प्रभाव छाया मनः पटल पर अंकित होती है। मूर्तियाँ एक प्रकार की पुस्तकें हैं। वे अपने संबंधित विषय की भावनाएँ दर्शक के मन में उत्पन्न करती हैं। मूर्ति पूजा का यही तात्पर्य है।

मन्दिरों की स्थापना, उनमें भोग प्रसाद, भेंट, दक्षिणा चढ़ाना क्यों होता है ? इसके संबंध में हम अपनी 'ईश्वर कौन है ? कहाँ है ? कैसा है ?' पुस्तक में सविस्तार लिख चुके हैं। मन्दिरों का प्रारम्भ एक धर्म संस्था के रूप में हुआ था, मन्दिर के साथ साथ पाठशाला, पुस्तकालय, औषधालय, व्यायामशाला, संगीतशाला, प्रार्थना भवन, उपदेश मंच आदि अनेकों सार्वजनिक प्रवृत्तियाँ जुड़ी रहती थीं। उन प्रवृत्तियों का संचालन करने के लिए एक निस्पृह, त्यागी, विद्वान, परोपकारी ब्राह्मण रहता था जिसे गुरु पुरोहित, आचार्य या पुजारी कहते थे। उस पुरोहित के जीवन निर्वाह के लिए एवं मन्दिर से सम्बन्धित प्रवृत्तियों के आयोजन के लिए जनता स्वेच्छापूर्वक धर्म भाव से दान करती थी, यह दान मन्दिरों में देव मूर्तियों के सम्मुख भोग, प्रसाद, भेंट, दक्षिणा आदि के रूप में चढ़ाया जाता था। उस धन से मन्दिर रूपी सार्वजनिक संस्था चलती थी और जनता को उस भेंट पूजा की अपेक्षा अनेक गुना लाभ पहुँचाती थी।

आज समय के प्रभाव, अज्ञान एवं अन्धश्रद्धा के कारण देववाद में भारी दोष आ गये हैं। देवता के सामने निरीह पशुओं का बलिदान, मन्दिर के चढ़ावे का लोक सेवा में व्यय न होना, मन्दिर से संबंधित सार्वजनिक प्रवृत्तियों का न होना, देवताओं को घूंसखोर, जालिम एवं पक्षपाती हाकिमों की तरह समझना, देवताओं की कृपा से बिना प्रयत्न के सम्पदाएँ मिलने की आशा करना, उनमें अलौकिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चमत्कारों का मानना, मन्दिरों का व्यक्तिगत तुच्छ स्वार्थों के लिये उपयोग होना आदि अनेकों दोष आज 'देवतावाद के साथ जुड़ गये हैं, इनका संशोधन और निराकरण होना आवश्यक है। इन दोषों के कारण जनता को हानि होती है, और इस पवित्र एवं महत्वपूर्ण तथ्य को कलंकित होना पड़ता है।

हिन्दू धर्म देवताओं की पूजा करना स्वीकार करता है। 'देव' का अर्थ है– देने वाला। लेव का अर्थ है–लेने वाला। देव वे हैं जो परोपकारी, लोक सेवी, सदाचारी, सत्यनिष्ठ, विद्वान एवं सद्गुणों से परिपूर्ण हैं। ऐसे देवताओं की पूजा, प्रतिष्ठा, प्रशंसा, अर्थव्यवस्था करना सर्वसाधारण का पुनीत कर्तव्य है। उनका आदर्श हमें तथा हमारी भावी पीढ़ी को प्रकाश देता रहे, इसलिये देवताओं के स्मारक स्थापित करना उचित एवं आवश्यक हैं।

परमात्मा की महामहिमा को हमारी मनोभूमि में भरने वाली उसकी महाशक्तियाँ यदि चित्र रूप में, मूर्ति रूप में, अक्षर रूप में, विचार या विश्वास रूप में हमारे सामने उपस्थित रहें तो उससे लाभ की ही आशा है। हमारा देवतावाद मिथ्या भ्रमों, अन्ध-विश्वासों एवं निर्मूल कल्पनाओं के ऊपर अवलम्बित नहीं है, वरन् मनोविज्ञान, अध्यात्म विज्ञान एवं सूक्ष्म शक्तियों के विज्ञान द्वारा अनुमोदित है। हमें देवत्व पर विश्वास करना चाहिये और उसकी उपासना भी।

बहुदेववाद में समाया एकेश्वरवाद

हिन्दू धर्म पर एक सबसे बड़ा आक्षेप यह लगाया जाता रहा है कि इसमें अनगिनत देवी-देवता हैं। इतना पुराना धर्म होते हुए भी इनमें इस बात पर सहमति नहीं है कि किसे मानें, किसे न मानें ? वैदिक काल से लेकर पुराणों तक तथा अवतारी लीला पुरुषों तक अनगिनत आराध्य इष्ट हिन्दुओं के हैं व इनका कोई एक सनातन धर्म नहीं है, कोई एक ईश्वर नहीं है। ऐसा दोषारोपण प्रायः वे लोग करते हैं जो तथ्यों से अवगत न होने के कारण देव संस्कृति का मात्र बहिरंग पक्ष ही देखकर अपना मत बना लेते हैं।

उपर्युक्त आक्षेप के उत्तर में एकेश्वरवाद बहुदेववाद की व्याख्या से भ्रान्तियों का वह कुहासा मिटाने का हम प्रयास करेंगे जो सनातन धर्म पर छाया दिखाई पड़ता है, पर वैसा नहीं है। अपूर्ण जानकारी के कारण भारतीय संस्कृति के आधार पर ही जीवन वृत्ति चलाने वाले धर्मोपदेशक भी अन्यान्य मतावलम्बियों के साथ हाँ में हाँ मिलाते देखे गए हैं कि हिन्दू धर्म में देवी-देवता तो बहुत हैं व यही एक इसकी बड़ी कमी है। इनके प्रत्युत्तर पर हँसी भी आती है व इस विडम्बना पर दुःख भी होता है। क्रान्तदर्शी चिन्तक स्तर के ऋषिगण क्या इतने अदूरदर्शी थे कि वे भगवान का स्वरूप बनाते समय सही ढंग से चिन्तन नहीं कर पाए ? आखिर यह कल्पना हमारे मन में आई कैसे ?

इस संबंध में ऋग्वेद का एक मंत्र हमारा चिन्तन स्पष्ट करता है। ऋषि उसमें कहते हैं–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमा हुथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वान माहुः।।

(ऋग्वेद १।१६४।४६)

अर्थात् "एक सत्स्वरूप परमेश्वर को बुद्धिमान ज्ञानी लोग अनेक प्रकारों से अनेक नामों से पुकारते हैं। उसी को वे अग्नि, यम, मातरिश्वा, इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान इत्यादि नामों से याद करते हैं, सारा वैदिक वाङ्मय इसी प्रकार की घोषणाओं से भरा है, जिसमें एक ही सद्घन, चिद्घन और आनन्दघन् त्तव को मूलतः स्वीकार करके उसी के अनेक रूपों के रूप में ईश्वर को मान्यता दी गयी है। विश्व के समस्त नाना प्रकार के रूपों में उसी एक का साक्षात्कार किया गया है। एक प्रकार से एकत्व में अनेकत्व तथा अनेकत्व में एकत्व, यह एक निराले प्रकार का दर्शन भारतीय संस्कृति का है, जो कहीं और देखने को नहीं मिलता। जब अधिकार भेद से आराध्य रूप भी विविध हो जाते हैं तो दार्शनिक चकराकर हिन्दुओं को बहुदेववादी (पालीथीस्टीक) ठहरा देते हैं व कहते हैं कि संभवतः हिन्दू सभ्यता एक ईश्वर की सत्ता से अनभिज्ञ थी। जबकि एक ही सत्य, एक ही चिन्मय सत्ता की स्वीकृति "भारतीय अध्यात्म स्थान-स्थान पर देता आया है।

मैक्समूलर कहते हैं कि वैदिक काल के ऋषि बड़े विद्वान थे। विभिन्न देवताओं के रूप में ऋषियों ने परमेश्वर की विभिन्न शक्तिधाराओं की गुण रूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में चर्चा करके उनकी महिमा का बखान किया है। मैक्समूलर ने वेदों में हेनोथीइज्म या उपास्य श्रेष्ठतावाद का प्रतिपादन किया जिसे बाद के अध्येयताओं ने अलग-अलग ढंग से समझकर उसकी व्याख्या की। "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" स्वर जितनी बार हमारे समक्ष गूँजता है, हर बार एक महान प्रेरणा व संजीवनी हमें मिलती है, उस एक ईश्वरीय सत्ता के बारे में जिसे विभिन्न संप्रदाय विभिन्न मत अलग-अलग नामों से जानते हैं पर वैदिक आधार पर वह एक ही है।

'वैदिक एज' ग्रन्थ में लेखक लिखते हैं कि "ऋग्वेद का धर्म प्रधानतया मूल रूप में अनेकेश्वरवादी है किन्तु क्रमशः व्याख्यान करते-करते वह अद्वैतवाद की दिशा धारा पकड़ लेता है। कुछ सूक्तों के अध्ययन से उस लम्बी यात्रा की जानकारी मिलती है जो प्रारम्भिक असभ्य अनेकेश्रववाद से क्रमबद्ध तत्त्वज्ञान की ओर प्राकृतिक बहुदेवतावाद, एकेश्वरवाद, अद्वैतवाद की मंजिलों से गुजरकर इस संस्कृति ने पार की है।" संभवतः लेखक महोदय अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि सभी को भगवान मान बैठे तथा चिरपुरातन श्रेष्ठतम् भागवत् संदेश के रूप में उतरी अपौरुषेय वाणी को उन्होंने "असभ्य" तक कहने का दुस्साहस कर लिया जो मात्र अर्थ न समझने की नादानी की प्रतिक्रिया है।

आचार्य यास्क ने देव शब्द की निरुक्ति 'दा', दयुत, दीप, दिवु इन धातुओं से की है। इसके अनुसार ज्ञान, प्रकाश, शान्ति, आनन्द तथा सुख देने वाली सब वस्तुओं को देव कहा जाता है। यजुर्वेद में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, बसु, रुद्र, आदित्य, इन्द्र इत्यादि को देव नाम से इसलिये पुकारा गया है कि यह शब्द सत्यविद्या का प्रकाशन करने वाले ब्रह्मनिष्ठ—सत्यनिष्ठ विद्वानों के लिए प्रयुक्त होता है। ज्ञान दान करने वाले वे देवता वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को कुहासे से निकाल कर उसे प्रकाशवान बनाते हैं अतः उन्हें देव कहा जाता है। ऋग्वेद में षष्ठ मण्डल में कहा गया है —

य एकएत् तमुष्टुहि कृष्टीना विचर्षणिः।
पतिर्जज्ञो वृषक्रतुः
(ऋग ६।४५।१६)

अर्थात्—"जो परमेश्वर एक है, तू उसी की स्तुति कर। वह परम पिता परमात्मा सब मनुष्यों की भली-भाँति देखभाल करने वाला है। वही सुखवर्षक ज्ञान और कर्म वाला सारे जगत का स्वामी है।" अथर्ववेद में तो साफ कह दिया गया है—"वह सर्वव्यापक एक है, एक ही है। एक होकर वह सर्वव्यापक, तथा प्राणी-अप्राणी सबको विशेष रूप से पूर्णतया देखने वाला है।" (तमिदं विगतं सहः स एष एक एकवृद एक एव—अथर्व १३।४।२०) सामवेद के एक मंत्र में कहा गया है —"हे मनुष्यो ! तुम सब सरलभाव और आत्मिक बल से एक परमेश्वर की ओर उसका भजन करने के लिए आओ जो समस्त मनुष्यों में एक ही अतिथि की तरह पूजनीय है, सनातन है, नयों के अंदर भी वही व्याप रहा है। ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि के सभी मार्ग उसी की ओर जाते हैं, वह निश्चय रूप से एक ही है।" साम० (४।३।३)

छान्दोग्योपनिषद में ओंकार एवेदं सर्वम् (३०२।२३।३) गायत्री वा इदं सर्वम् (३।१२।१), प्राणो वा इदं सर्वभूतम् (३।१५।४), तथा बृहदारण्यकोपनिषद में एत्त् ब्रह्म एत्त् सर्वम् (५।३।१) इदं सर्वं यदयमात्मा (२।४।६), यही अभिव्यक्ति स्थान-स्थान पर आयी है। समग्र अध्ययन करने वाले विद्वानों ने एक स्वर से माना है कि हिन्दू अध्यात्म एक ही परमेश्वर की सत्ता का वर्णन करता आया है। यह मान्यता भ्रान्तिपूर्ण है कि आर्यों के बहुत से देवता थे तथा सभी को चापलूसी से प्रसन्न करना ही उनका स्वभाव था। डब्ल्यू डी० ब्राउन ने "सुपिरीयॉरिटी ऑफ वैदिक रिलीजन" में लिखा है कि "वैदिक धर्म एक ही परमसत्ता को मान्यता देता है।" श्री चार्ल्स कोलमैन "माइथोलॉजी ऑफ हिन्दूज" में लिखते हैं कि "आराध्य सत्ता की परिभाषा वेदों में विभिन्न रूपों में की गयी है। जो सब कुछ देखता है पर स्वयं नहीं दिखाई देता वह ब्रह्म है। उसके अनेकानेक गुण हैं पर इन गुणों को भिन्न-भिन्न परमात्मा मान लेना तो सरासर बेवकूफी होगी।" श्लेगेल सभी विवादों का एकमत से उत्तर देते हुए लिखते हैं कि "यह एक स्वर से कहा जा सकता है कि वैदिक काल के भारतीय उच्च कोटि के विद्वान थे व उनकी "मोनोथीज्म" की मान्यता ही सर्वोपरि है अर्थात्—वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एकेश्वरवादी ही हैं।" ("विज्डम ऑफ एशिएण्ट इंडियन्स")–वेद मात्र एक ही आराध्यसत्ता की शिक्षा हमें देते हैं यह तथ्य श्री डचान्जू "फिलासफी ऑफ जेरोएस्ट्रिएनिज्म एण्ड कम्पेरेटिव रिलीजन" पुस्तक में लिखते हैं। आर्षग्रन्थों में वस्तुतः यह घोषणा है कि सभी प्राकृतिक नियमों के मूल में जड़त्तव और शक्ति के प्रत्येक अणु परमाणु में ओतप्रोत वही एक सत्ता विराजमान है, जिसके आदेश से वायु चलती है, अग्नि दहकती है, बादल बरसते हैं, मृत्यु पृथ्वी पर नाचती है।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः।

(कठोप, २।३।३)

और वह सत्ता क्या तथा कौन है, जिसके आदेश पर यह सब होता है। "अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिवचस्थितम्" (गीता अध्याय १३।१६) अर्थात्– वह विभाग रहित एक रूप से आकाश के सदृश परिपूर्ण होने पर भी चराचर, संपूर्ण भूतों में विभक्त सास्थित प्रतीत होता है " एवं उसको–

ज्योतिषामपि तज्ज्यो तिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं गेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्"

गीता (१३।१७)

अर्थात्– "वह परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोध स्वरूप, जानने के योग्य एवं तत्त्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदय में विशेष रूप से स्थित है।"

वस्तुतः किसी ने गंभीरता से आर्ष साहित्य को पढ़कर ईश्वर के स्वरूप को समझने की कोशिश नहीं की है। ईश्वर एक ही है , उसकी शक्ति धारायें अनेकों हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, पृथ्वी, द्यौ का एक समुदाय देवगणों का है जो पूर्व से लेकर पूर्वोत्तर कोण तक की आठ दिशाओं व ऊपर नीचे के स्थानों में उस परमसत्ता के प्रतिनिधि के रूप में अपना कार्य करते बताये गये है। ब्रह्मा सृजन के , उत्पत्ति के देवता हैं, समस्त सृष्टि का पालन करने वाले नियन्ता, व्यवस्था बनाए रखने वाले विष्णु हैं तथा अनीति से मोर्चा, लेने वाले असंतुलन को संतुलन में बदलने वाले, सृष्टि का लय करने वाले देवता शिव हैं। इन तीनों को मिलाकर त्रिमूर्ति कहते हैं व हैं यह एक ही परब्रह्म के तीन रूप।

विश्व के सभी धर्मों में सभी मनुष्यों के लिए एक ही साधन बतलाए गए हैं। एक ही मार्ग उनके मत में है। हिन्दू अध्यात्म मानवीबुद्धि की रुचि प्रधान वृत्ति को समझता है व अपने मनोवैज्ञानिक चिन्तन के आधार पर उसके प्रणेताओं ने उपास्य का रूप, साधनादि चुनने का अधिकार सबको दे दिया। जो जिस मार्ग से चाहे, परमात्मा के रूप को माने, उसका ध्यान करे। अंत्तः वह आस्तिकवादी तो बनेगा, यह चिन्तन ऋषियों का रहा है। गुरु अपने शिष्य की रुचि व अधिकार के अनुसार उसे विभिन्न साधनों में से एक बतलाते आए हैं। एक ही गुरु के विभिन्न शिष्यों में कोई योगी कोई ज्ञान मार्गी, कोई भक्त, कोई वैष्णव, कोई शैव तथा कोई शाक्त कुछ भी बन सकता है। रुचि भेद के अनुसार इष्ट की आकृति बदल दी जाय तो मनोवैज्ञानिक प्रयोग यह नही बताता कि परमेश्वर भी ढेरों हो गए। विश्वभुवन का एक ही स्वामी–"एकोविश्वस्य भुवनस्य राजा" बताते हुए आर्षवाङ्मय मूलतः बहुत्व में एकेश्वरवाद का ही प्रतिपादन करता आया है।

साकारोपासना से लेकर निराकारोपासना तथा प्रतीक पूजा आदि के मूल में एक ही तथ्य है कि परब्रह्म श्रेष्ठता का समुच्चय है। उसके विभिन्न सद्गुणों को, सत्प्रवृत्तियों को हम अपनी रुचि, विश्वास, मान्यता के अनुसार चुनते हुए एक ही लक्ष्य पर चलें। स्वयं में श्रेष्ठताओं का समावेश करें। परम पूज्य गुरुदेव ने परमेश्वर को सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय, आदर्शों का समूह, सद्गुणों का एकाकार रूप "सम्मम बोनम ऑफ वरच्यूज" कहा है। हम चाहें वैदिक देवता को मानें चाहे, सूर्योपासक हों, हम चाहे साकार विष्णु रूप कृष्ण को मानें, चाहे देवी रूप में दुर्गा को, भक्त शिरोमणि हनुमान जी को मानें अथवा उनके इष्ट श्रीराम को, हम एक ही कार्य अपनी उपासना द्वारा करते हैं–श्रेष्ठता का अपने अंदर अभिवर्धन करते हुए अपनी अपूर्णता को पूर्णता में बदलना। हमें यह सीखना ही होगा कि मात्र हिन्दू धर्म में ही नहीं सभी धर्मों में चाहे वह बौद्ध, मुस्लिम, पारसी, ताओ, ईसाई, शिण्टो, जैन कुछ भी क्यों न हो, सबका ईश्वर एक ही है। मत संप्रदाय बदलने से ईश्वर नहीं बदल जाते। जो इनमें से किसी के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भी धर्म या ईश्वर की निन्दा करता है या हँसी उड़ाता है, वह वस्तुतः अपने ही ईश्वर का उपहास उड़ाकर पाप का भागीदार बनता है।

देव संस्कृति की यह महानता है कि यहाँ विचार स्वातंत्र्य को बौद्धिक प्रजातंत्र को, प्रधानता मिली। यहाँ आस्तिक भी पनपते हैं तथाकथित नास्तिक भी। यहाँ चार्वाकवाद, जैनों का शून्यवाद भी वैसा ही सम्मान पाता है जैसा त्रेतवाद, द्वैतवाद तथा अद्वैतवाद। ईश्वर के स्वरूप व कल्पना के लिए पूरी छूट दे दी गयी है। माना यह गया है कि अंत्तः व्यक्ति नीतिमत्ता को मानेगा परमसत्ता के अनुशासन को मानेगा व जीवन में ईश्वरीय त्तवदर्शन को उतारेगा। चाहे किसी का भी नाम ले, बनेगा तो वह ईश्वरपरायण। यही कारण है कि इस्लाम, ईसाई धर्म यहाँ की उर्वर भूमि में भली-भाँति पनपते गए जब कि अपनी जन्मभूमि छोड़कर अन्य स्थानों पर उन्हें संघर्ष हिंसा द्वारा, अपना प्रचार करना पड़ा।

आदि पुरुष की कल्पना जिन ऋषियों ने की, "कस्मै देवाय हविषा विधेम" का उत्तर जिन्होंने एक ही विश्वाधार के विभिन्न रूपों के रूप में दिया, उनके निर्धारणों पर उँगली उठाना कुतर्की, विवादों में उलझने वाले नास्तिकों का काम है। बहुदेववाद में एकेश्वरवाद का अर्थ है परमसत्ता की विभिन्न रूप रश्मियों में उस एक ही सत्ता का दर्शन करना। यदि यह हो सके तो आस्तिकवादी मान्यताओं का विस्तार हो आस्था संकट से मोर्चा भली-भाँति लिया जा सकता है। आज की धर्म संप्रदायगत विद्वेष की स्थिति में हिन्दू अध्यात्म व देव संस्कृति ही एकमात्र समाधान है, इसमें कोई संशय नहीं।

देववाद पर एक दृष्टि

अपने देश में देवताओं की सत्ता और समस्या प्रायः उतनी ही बड़ी और उतनी ही प्रभावोत्पादक है जितनी मनुष्यों की अपनी समस्याएँ। मानवी आवश्यकताओं को जुटाने में ही हमारी अधिकांश शक्ति लगती है। उसके बाद दूसरा नम्बर देवताओं का आता है। उनके निवास के लिए विशालकाय देवालय बने हैं और निर्वाह सुविधा के लिए प्रचुर साधन लगे हैं। लाखों मनुष्यों का श्रम उनकी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए लगता है।

इतना ही नहीं उनके प्रकोप से होने वाली हानियों की कल्पना करके लोगों की मनःस्थिति भयभीत बनी रहती है। राहु, केतु, शनिश्चर आदि की ग्रहदशा की कल्पना से कितने लोग भयभीत रहते हैं। दिशाशूल, योगिनी, कालराहू आदि के भय से लोग यात्रा नहीं कर पाते और अनुकूल समय की प्रतीक्षा में ढेरों समय गुजारते हैं। जन्म कुण्डली में जो ग्रह अनिष्टकर होते हैं वे सदा अशुभ आशंका बनाये रहते हैं। कितने उपयुक्त विवाह इसी आधार पर रद्द हो जाते हैं कि ग्रह-नक्षत्र आपस में टकराते हैं। मंगली लड़कियों और मंगले लड़कों की दुर्दशा तो देखते ही बनती है। एक ही समय में विवाहों की धमाचौकड़ी और शेष समय सुनसान पड़े रहने में कितनी असुविधा होती है यह सर्वविदित है। यह सब देवताओं की अनुकूलता प्रतिकूलता के आधार पर ही होता है।

पुरुषार्थ करके अभीष्ट सफलता पाने का सीधा रास्ता छोड़कर जब अमुक देवता की अमुक प्रकार से पूजा अर्चा कर लेने पर सस्ते मूल्य में मनोकामनाएं पूरी हो जाने की भ्रान्ति में पड़े हुए न जाने कितने लोग उचित मार्ग से भटकते और शक्तियों का अपव्यय करते हैं, इसे देखकर भारी दुःख होता है।

हमें तथ्य एवं सत्य का अनुयायी होना चाहिए और देववाद की यथार्थता समझने का प्रयत्न करना चाहिए। तभी भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण प्रतिपादन देववाद का समुचित सत्परिणाम प्राप्त हो सकता है। भ्रान्तियों में उलझ कर तो हम समय और शक्ति का अपव्यय ही करते रहेंगे।

हमें देवसत्ता के सम्बन्ध में अपनी प्राचीन मान्यताओं एवं ऋषि प्रणीत स्थापनाओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए और यथार्थता का अन्वेषण करते हुए तह तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए। इस पर्ववेक्षण में अनेकों महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर आते हैं। देव शब्द का अर्थ है दिव्य, श्रेष्ठ देने वाला। जो शक्तियाँ इस विशेषता से युक्त हैं वे 'देव' कहलाती हैं। इस संदर्भ में पहला स्थान भगवान का आता है उसे वैदिक वाङ्मय में इसी नाम से संबोधित

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया गया है। आगे चलकर भगवान की दिव्य शक्तियों को भी देवसंज्ञा दी गई है। ये शक्तियां दो भागों में विभक्त हैं–एक चेतनात्मक सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों के रूप में, दूसरी प्रकृति की प्रभावशाली शक्तियों के रूप में। इन दोनों की उपयोगिता ध्यान में रखी जाय, उनसे सम्पर्क साधा जाय और अधिकाधिक लाभ लिया जाय, इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए देव सम्पर्क का, देव पूजन का आधार त्तवदर्शी ऋषियों ने खड़ा किया है।

निश्चित रूप से इस विश्व ब्रह्माण्ड का अधिपति एक है। उसे सृष्टा पोषक एवं परिवर्तनकर्ता कहा गया है। ये तीनों विशेषताएँ एक ही ब्रह्मसत्ता की हैं। एक ही व्यक्ति विद्वान, बलवान और धनवान हो सकता है। एक व्यक्ति में वक्ता, गायक एवं चित्रकार की विशेषताएँ पाई जा सकती हैं। आवश्यक नहीं कि एक विशेषता ही एक व्यक्ति में हो। भगवान में उत्पादन, अभिवर्धन एवं परिवर्तन की वे तीनों ही विशेषताएं विद्यमान हैं जिनके आधार पर यह सारा सृष्टि-क्रम चल रहा है इन विशेषताओं का अलग-अलग मूल्यांकन करने में भी कोई हर्ज नहीं है।

एक ही व्यक्ति की सम्पत्ति का मूल्यांकन इनकम टैक्स के अफसर अथवा देन-लेन के इच्छुक करते हैं उनकी दृष्टि में वह व्यक्ति धनी होने के कारण मूल्यवान होता है। दूसरे, खिलाड़ी साथी उसे अपनी टीम में रखते हैं और इस आधार पर महत्व देते हैं कि वह कितना बलवान एवं खेलों के लिए आवश्यक कुशलता से सम्पन्न है। खेल प्रतियोगिताओं में उसे क्रीड़ाकौशल के आधार पर मान मिलता है। धनी होने की बात का खेलों के मैदान में कोई व्यक्ति ध्यान नहीं रखता। विद्वान मण्डली में उसके ज्ञान की गरिमा सम्मानित होती है। उसके पहलवान या धनवान होने की विशेषता पर विद्वान लोग विशेष ध्यान नहीं देते और उसकी विद्या सम्पदा को ही मान प्रदान करते हैं। इस प्रकार एक ही व्यक्ति को उसकी तीन विशेषताओं के कारण तीन क्षेत्रों में प्रथम मान मिलता है और उसकी चर्चा पृथक् आधारों पर अलग स्तरों की होती है। इतने पर भी व्यक्ति एक ही रहता है। उसे तीन मानने का आग्रह कोई नहीं करता। ठीक इसी प्रकार एक परम देव– परमात्मा को, तीन देवों के नाम से भी संबोधित किया गया है। उत्पादनकर्ता ब्रह्मा, अभिवर्धनकर्ता विष्णु, परिवर्तनकर्ता शिव। इन तीनों को एक दूसरे से प्रथक् एवं स्वतन्त्र मानने की तनिक भी आवश्यकता नहीं।

इसी प्रकार प्रकृति की वे अन्य महत्वपूर्ण शक्तियाँ जो सृष्टि संचालन में योगदान करती हैं देवता मानी गयी हैं। उसका वर्णन एवं स्तवन श्रुति में अनेक स्थानों पर हुआ है। जल त्तव को वरुण, हवा को वायु, ऊष्मा को अग्नि, आकाश को द्यौ, विद्युत् को इन्द्र कहा गया है। सूर्य, चन्द्र तो प्रत्यक्ष देवता हैं ही। इसी प्रकार प्रकृति की अनेक शक्तियों को अनेक देव नामों से पुकारा गया है और आवश्यकतानुसार एक ही शक्ति को कई-कई नाम भी दिए गये हैं। देवसेना में प्रकृति की महत्वपूर्ण शक्तियों की विशेष रूप से गणना की गई है।

चेतना क्षेत्र की विचारधाराएँ भी देवी अथवा देवता कही गई है। विवेक को गणेश, कला को सरस्वती, प्रज्ञा को गायत्री, प्रखरता को दुर्गा, सुरुचि को लक्ष्मी, साहस को हनुमान आदि नाम दिये गये हैं।

प्रकृति की अन्य विभूतियों को भी देव संज्ञा दी गई है। बादल-समुद्र, पर्वत, नदी, सरोवर, निर्झर जीवन के आधार हैं। धरती की गोद में हम खेलते और उसी की वनस्पतियों एवं खनिज सम्पदाओं पर जीवित रहते हैं। इन सभी को देव संज्ञा दी गई है। दैनिक उपयोग में आने वाली–दवात, कलम, पुस्तक, चक्की, चूल्हा, ऊखल, मूसल आदि तक की विशेष अवसरों पर पूजा होती है। गौ को माता कहा गया है और इसे देव संज्ञा दी गई है। गोबर, गौमूत्र एवं गोरस के प्रति श्रद्धा व्यक्त की जाती है। तुलसी, पीपल, आंवला जैसे वृक्ष, मोर, गरुड, नीलकंठ जैसे पक्षी देववाहन मानकर पूजे जाते हैं। अमुक पर्व पर कुत्ते, गधे, घोड़े भी पूजित होते हैं। चूहों से कृषि की रक्षा करने के कारण सर्पों को भी दूध पिलाने और उन्हें देवता मानने का वर्ष में एक दिन आता है।

इन मान्यताओं के पीछे यही भाव है कि प्रकृति की शक्तियाँ, चेतनात्मक सद्भावना एवं सत्प्रवृत्तियाँ– उपयोगी प्राणी एवं पदार्थ सभी को देव मान्यता से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सम्मानित किया गया है। इस सम्मान का सर्वोपरि लाभ अपनी कृतज्ञता भावना को जगाता है। यह मनुष्य की श्रेष्ठतम सद्भावनाएँ हैं जिनके सहयोग से हम सुविधाएँ पाते, जीवित रहते और आगे बढ़ते हैं। उन सबके प्रति हमें कृतज्ञ होना चाहिए। उपकार का बदला उसी रूप में न चुकाया जा सके तो भी हमें उन उपकारकर्ताओं के प्रति सच्चे हृदय से कृतज्ञ तो रहना ही चाहिए। इस सम्मान प्रदान से उन्हें लाभ भले ही न हो पर अपनी अन्तरात्मा संवेदनशील एवं पवित्र तो बनती ही है। इससे अहंकार घटता और सज्जनोचित नम्रता का विकास होता है। अपने पुरुषार्थ पर गर्व किया जा सकता है पर यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि सृष्टि के, सृष्टा के, कितने उपयोगी तत्त्व मिलकर हमारे अस्तित्व एवं आनंद में योगदान देते हैं। इस चिन्तन से श्रद्धा बढ़ती है और उपकार परम्परा के निर्वाह में अपना योगदान देने की इच्छा होती है। इस दृष्टि से देव मान्यता की, देव शक्तियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने की आवश्यकता एवं उपयोगिता सहज ही स्वीकार की जा सकती है।

यह हजार बार समझा और लाख बार समझाया जाना चाहिए कि सृष्टि की नियामक सत्ता एक है। उसमें बहुतों की साझेदारी नहीं है। इस तथ्य को शास्त्रकारों ने अत्यन्त स्पष्ट कर दिया है – "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" एक ही ब्रह्म को बहुत तरह, बहुत नाम रूपों से, कहा गया है। बहुत से नाम रूप वाले देवताओं का पृथक्-पृथक् अस्त्वि नहीं है। वे सभी एक ही सत्ता के विभिन्न नाम अथवा गुण हैं। एक ही सूर्य की किरणों में सात रंग होते हैं। इन्हें सूर्य-रथ के सात घोड़े कहा गया है और समझने की सरलता को ध्यान में रखते हुए इनकी आकृतियां अलग-अलग बना दी गई हैं। यह कलाकार की अलंकारिक कल्पना है। यथार्थता जानने के इच्छुक वैज्ञानिक को रथ का, घोड़ों का, उनके स्थान तथा आहार का कहीं कोई अता-पता नहीं चलेगा। यहाँ चित्रकार और वैज्ञानिक के बीच झंझट खड़ा हो सकता है। पर तत्त्ववेत्ता दोनों परस्पर विरोधी प्रतिपादनों के बीच तालमेल बिठा सकता है और दोनों को सही कह सकता है। कला का अपना क्षेत्र है। उसमें सत्ताओं, शक्तियों और संवेदनाओं को मूर्तिमान करने की, आकृति गढ़ने की पूरी छूट है। इससे सर्वसाधारण की कोमल भावनाओं को प्रसुप्ति से ऊँचा उठाकर जागृति में परिणत किया जा सकता है।

मन की दौड़ को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता है और न भाव संवेदनाओं पर कोई प्रतिबध लग सकते हैं। कला को उन्मुक्त आकाश में उड़ने के लिए भावनाओं को आकृति देने की आवश्यकता पड़ती है। सारा भविष्य इसी पर ठहरा हुआ है। उपमाओं की कल्पनाओं का अपना संसार है। सुन्दरी को चन्द्रमुखी, कमल नयनी कहा गया है। रात्रि को रत्नों से जड़ी काली चादर ओढ़े सुन्दरी कहा गया हैं। चाँदनी से अमृत बरसता है– पपीहा पिया की रट लगाता है। चकोर चन्द्रमा के रूप पर मुग्ध है। हंस मोती चुगते हैं, पतंगा प्रेम में व्याकुल होकर दीपक पर प्राण देता है, किसी विरही की आँखें वर्षा की बूंदें बनकर बरसती हैं। स्वाति नक्षत्र की बूँदों से सीप में मोती बनते हैं, चन्दन के समीपवर्ती पौधे सुगन्धित हो जाते हैं और पुष्प की प्रशंसा में गीत गाते हैं– जैसी मृदुल कवि कल्पनाओं को तथ्य और तर्क की कसौटी पर सहज ही झुठलाया जा सकता है, पर इस प्रकार के प्रत्यक्षवाद से हमारी समूची भाव सम्पदा की इतिश्री हो जायेगी। तब किसी की अन्तःपीड़ा की मरोड़ से निकलने वाले आँसुओं की व्याख्या पानी में रहने वाले रासायनिक पदार्थों के रूप में की जाने लगेगी। इस प्रकार हम यथार्थता का प्रतिपादन तो कर सकते हैं पर भाव संवेदनाओं के सहारे खड़े हुए कोमल कल्पनाओं के संसार को ही ढहा देंगे जो मानवी अन्तरात्मा में कलात्मक कोमलता दिव्य परिकल्पना बनाये रहने के लिए नितान्त आवश्यक है।

विज्ञान और कला को अपने क्षेत्र में मान्यता मिलनी चाहिए। किसी को किसी से उलझना नहीं चाहिए और तालमेल बिठाकर एक-दूसरे के पूरक बनने का प्रयत्न करना चाहिए। देवता होते हैं या नहीं ? क्या उनके प्रतिपादित स्वरूप और क्रियाकलाप सही हैं ? इस प्रश्न पर संतुलित, सूक्ष्म और तात्विक दृष्टिकोण अपनाकर विचार करना होगा। जहाँ तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कवि कल्पना का सम्बन्ध है वहाँ ईश्वर को जड़-चेतन दिव्य शक्तियों को शरीरधारी व्यक्तियों के रूप में अलंकृत करने की कलाकारिता को सराहा ही जा सकता है। इस चित्रांकन से उन दिव्यसत्ताओं की विशेषताएँ समझने में सहायता मिलती है और उनसे लाभान्वित होने का उत्साह बढ़ता है। देवी देवताओं की चित्र-विचित्र आकृतियाँ अनेक मुख, अनेक हाथ-पैर, अनेक आयुध–अद्भुत वाहन देख कर यर्थाथवादी की बुद्धि हतप्रभ हो सकती है और इस अनबूझ पहेली का हल ढूँढने में असमर्थ हो सकती है, पर जिन्होंने कबीर की 'उलटवासियाँ' के अर्थ निकाले हैं और बाल मनोरंजन की महत्वपूर्ण पद्धति 'पहेली बुझौअल' में रस लिया है वे जानते हैं कि यह प्रतिपादन अवास्तविक होते हुए भी उपयोगिता की दृष्टि से 'वास्तविकता' जितने ही महत्वपूर्ण हैं। इनमें रहस्यवाद और संगतिवाद का अद्भुत समन्वय है। देवताओं की आकृतियाँ, अनेक मुख, हाथ, आयुध वाहनों की संगति रहस्यवाद के आधार पर बिठाई जाय तो उनमें से अनेकों उपयोगी सिद्धान्त एवं प्रतिपादन सामने आकर खड़े हो जाते हैं।

गड़बड़ी तब उत्पन्न होती है जब इन काव्य अलंकारों की विवेचना वैज्ञानिक आधार पर करने का प्रयत्न किया जाता है। बाल पोथियों में लिखी कहानियों में पशु-पक्षियों के वार्तालाप जुड़े होने की बात का बुद्धिजीवी इस आधार पर विरोध नहीं करते कि 'बच्चों को मिथ्या बात बताई जा रही है। वे जानते हैं कि बाल बुद्धि के लिए ऐसी संगतियाँ आवश्यक हैं। प्रथम पुस्तक में 'अ' के लिए अनार 'आ' के लिए आम, 'इ' के लिए इमली, 'ई' के लिए ईख के चित्र बनाये जाते हैं। यथार्थवाद यहाँ उलझ सकता है और खण्डन पर उतर सकता है। 'अ' के लिए अनार ही क्यों? अजगर, अहमक, अमलताश आदि क्यों नहीं? और यदि यह सब भी सम्मिलित कर लिये जायं तो फिर यह कहा जाने लगेगा कि अज्ञान, अन्याय, अन्धकार आदि की भी 'अ' की व्याख्या में क्यों न जोड़ा जाय। ऐसे तो व्यर्थ का वितंडावाद खड़ा हो जायेगा। बच्चों को अविकसित मनःस्थिति में ज्ञान वृद्धि का जो आधार उपलब्ध था, उसे भी गंवा दिया जायेगा।

पंच तन्त्र और हितोपदेश–पुस्तकों में दी हुई कहानियों के आधार पर एक कुशल अध्यापक ने राजकुमारी को पढ़ाकर सुयोग्य बनाया था। अभी भी वे पुस्तकें चावपूर्वक पढ़ी जाती हैं और उनका संसार की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है। कहीं से भी यह विरोध खड़ा नहीं हुआ कि इन अवास्तविक कल्पनाओं का क्यों प्रसार किया जाता है। ठीक इसी प्रकार संसार भर के पुराण साहित्य में एक से एक उपयोगी किन्तु काल्पनिक प्रसंगों की भरमार है उनमें अत्युक्तियों के घटाटोप भरे पड़े हैं। हर कोई विचारशील जानता है कि पौराणिक गाथाओं के पात्र काल्पनिक तथा घटनाक्रम अवास्तविक हैं। फिर भी उनके सहारे जो उपयोगी शिक्षण प्रस्तुत किये गये हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए पुराण साहित्य को सदा सम्मान मिलता रहेगा।

बाल पोथियों, पौराणिक कथा-गाथाओं कवि कल्पनाओं का महत्व एवं उद्देश्य समझा जाना चाहिए और सृजनकर्ताओं की कवि कल्पना के साथ जुड़ी हुई सदाशयता का लाभ उठाया जाना चाहिए। मूल तथ्य को भुलाकर जब लोग भटकना आरम्भ करते हैं तो दुहरी भूल करते हैं। एक पक्ष शुष्क यथार्थवादिता पर उतारू होकर इन काव्य संवेदनाओं को मिथ्यावाद कहता और उनके विरोध में विष उगलता है। यह शुष्क तर्कवाद है। इससे काव्य कला पर कुठाराघात होता है और जनमानस को भाव तरंगित करने का एक उपयोगी आधार नष्ट होता है। दूसरा अतिवादी पक्ष उन भोले भावुक लोगों का है जो इन काव्य प्रतिपादनों के निष्कर्ष पर ध्यान न देकर वर्णित घटनाक्रमों अथवा प्रतीक प्रतिमाओं को ही सब कुछ मान बैठता है। ऐसे ही लोग पुराण–पाठ कथा–श्रवण के महात्म्य को आकाश-पाताल जितना महत्व देते हैं और उतने भर से स्वर्ग-मुक्ति, पुण्यफल आदि न जाने क्या-क्या लाभ मिलने की कल्पना करते रहते हैं। ऐसे ही लोग देवी-देवताओं की प्रतिमाओं की सज्जा-प्रतिष्ठा और पूजा-अर्चा के घटाटोप खड़े करते हैं और सोचते हैं कि प्रस्तुत प्रतिमा के भीतर बैठा देवता इस अभ्यर्थना से प्रभावित होकर सिद्धि, चमत्कार, अनुग्रह प्रदान करेंगे और मनोवांच्छा पूर्ति का वरदान देंगे। यह दूसरी किस्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का अतिवाद है। देव मान्यताओं के संबंध में उनके तीव्र खण्डन और उन्मूलन पर उतारू अतिवादियों की तरह वे भी असंतुलित ही रहे जायेंगे जो देवताओं को मनुष्य स्तर के सूक्ष्म शरीरधारी मानते हैं। सोचा जाता है कि देवताओं के पास तीन ही काम हैं – (१) पूजा, प्रार्थना बटोरना (२) भक्तजनों की मनोकामना पूरी करना (३) जो उपेक्षा करे उन पर बरस पड़ना और त्रास देकर भारी जुर्माना वसूल करना। इस आरोपण में यदि देवता मनुष्य जैसी सत्ता वाले होते भी होंगे तो अपने को बहुत गये गुजरे स्तर का बना दिये जाने के कारण भक्तों की मूर्खता पर क्षुब्ध और अपनी दुर्गति पर खिन्न ही होते होंगे।

हमें अतिवाद से बचना चाहिए और देववाद के सिद्धान्त के स्वरूप एवं उद्देश्य को गम्भीरतापूर्वक समझने का प्रयत्न करना चाहिए। निश्चित रूप से इस सृष्टि का नियन्ता एक ही परमेश्वर है। उसकी विभूतियों को देवी-देवता का नाम दिया गया है और उनकी विशेषता एवं उपयोगिता समझाने के लिए रूपों का निर्माण किया गया है। उन्हें व्यक्ति स्तर के, एक-दूसरे से भिन्न और स्वतन्त्र सत्ता-सम्पन्न मानना सर्वथा भ्रमपूर्ण है। फिर अमुक जातिवंश और क्षेत्र के पृथक्-पृथक् देवताओं का होना तथा अपने ही भक्तजनों तक गतिविधियाँ सीमित रखने की बात तो नितान्त उपहासास्पद है। पूजा करने वालों से प्रसन्न और न करने वालों से अप्रसन्न होने की बात तो और भी अधिक अटपटी है। देव स्तर की सत्ताएँ इतनी ओछी, दरिद्र, घटिया और संकीर्ण हो ही नहीं सकती। यदि होती तो उन्हें देवता जैसे पवित्र सम्मान से कभी सम्मानित न किया जाता। यदि प्रचलित मूढ़ मान्यताओं के अनुसार इतने असंख्य देवी देवता हुए होते और उन्होंने अपना सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद, अव्यवस्थावाद फैलाया होता तो निश्चय ही सूक्ष्म जगत में गदर मच गया होता। देवता लोग आपस में ही भक्तों की छीना-झपटी के लिए लड़ते-मरते और उनका स्वच्छन्दतावाद इस ईश्वरीय कर्म व्यवस्था में पूरी तरह अन्धेर मचा देता, तब लोग सफलता के लिए उपयुक्त प्रयास करने के स्थान पर देवी-देवताओं को मनुहार का सस्ता तरीका अपना कर उल्लू सीधा कर लिया करते। विपत्ति निवारण के लिए, मनोकामना पूरी करने के लिए जब देवता की मनुहार से काम चल सकता है तो अभीष्ट सफलताओं के लिए प्रबल पुरुषार्थ करने के झंझट में भला कोई क्यों फँसना चाहेगा ? तब पुरुषार्थ प्रक्रिया का कर्मफल मिलने की ईश्वरीय व्यवस्था का तो पूरी तरह मटियामेट ही हो जायेगा। ऐसी दशा में देवपूजा करने से बढ़कर लाभदायक और कोई धन्धा दीख ही नहीं पड़ेगा। इसी स्तर के भ्रमग्रस्त लोग देव प्रतिमाओं के आगे सिर पटकते और अपने अंग काटकर अथवा निरीह पशु-पक्षियों की बलि चढ़ाकर मनचाहे वरदान पाने की अपेक्षा करते रहते हैं। इस प्रकार के भ्रम जंजाल में उलझे हुए लोग स्वयं अपार हानि उठाते हैं और उन देवताओं को उपहासास्पद बनाते हैं जिनके भक्त होने का दावा उन्होंने किया था। पशु बलि जैसे घिनौने उपहार देकर देवता से नैतिक-अनैतिक कुछ भी काम लेने की बात पर विश्वास करना कितना गहरा किन्तु कितना बहुप्रचलित अज्ञान है यह देखकर किसी विचारशील को भारी दुख हुए बिना नहीं रह सकता।

देवता की आकृतियों, आयुधों, वाहनों और कथानकों के पीछे महत्वपूर्ण शिक्षाएँ तथा प्रेरणाएँ भरी हुई हैं। उनमें प्रकारान्तर से यह कहा गया है कि यदि इन सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों को अपनाया जा सके तो देवत्व का अनुग्रह मिल सकता है और उस आधार पर भौतिक समृद्धियों एवं आत्मिक विभूतियों का लाभ वरदान उपलब्ध हो सकता है।

उदाहरणों के लिए ब्रह्मा को लिया जा सकता है। ब्रह्मा कमल पर विराजमान हैं। जिसका कमल जैसा सुविकसित अन्तःकरण हो उसी में ब्रह्म तत्व का उद्भव होता है। चार मुख—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिए पुरुषार्थ करना, ईश्वर की प्रेरणा—आत्मचिन्तन, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण, आत्मविकास, आत्मोत्कर्ष की चार विद्याएँ। चार वर्गों—शिक्षा, सुरक्षा, समृद्धि एवं श्रमशीलता के प्रति निष्ठा। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास की चार आश्रम व्यवस्थाओं का पालन। चारों दिशाओं में ईश्वरीय सत्ता का दर्शन आदि संकेत ब्रह्म के स्वरूप के साथ जुड़े हैं।

विष्णु-शेषशायी। संसार को सब आवश्यक वस्तुयें देकर स्वयं शेष पर संतोष करते हैं। इतनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विशाल जिम्मेदारी निभाते हुए भी शान्त रहते हैं। क्षीरसागर में मस्तिष्कीय वसा धवलता में सद्विचार वृत्ति के रूप में भगवान का निवास किन्तु प्रसुप्त स्थिति में। सहस्र फन के सर्प पर शैया, ब्रह्म रंध्र में अवस्थित सहस्र कमल की पंखुरियों का सहस्र दल कमल के रूप में चित्रण। लक्ष्मी जी का पैर दबाना, दिव्य चेतना की अनुगामिनी के रूप में विभूतियों का चरण सेविका रहना। चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म की धारणा। शंख–दिव्य उद्बोधन। चक्र–गतिशीलता, क्रियाशीलता। गदा–न्याय, दण्ड। पद्म–प्रेम पुलकन, सौन्दर्य, कोमल संवेदन, आनन्द, उल्लास का प्रतीक। विष्णु प्रतिमा की आराधन करने का तात्पर्य है इन सद्गुणों की अन्तःकरण में प्रतिष्ठापना।

गणेश-गणतंत्र के समर्थक। बड़े कान–अधिक सुनने जानने की जिज्ञासा, बड़ा पेट– आन्तरिक गम्भीरता, लम्बी नाक–यथार्थता को सूँघ कर जान लेने की क्षमता, सुविस्तृत आत्म-गौरव एवं असंदिग्ध प्रामाणिकता। एक हाथ में मोदक–मोद अर्थात् प्रसन्न, क अर्थात् करने वाला। एक हाथ में प्रसन्न कर सकने वाला मधुर प्रसाद। दूसरे हाथ में अंकुश। अंकुश अर्थात् अनुशासन। विवेक का अनुशासन रहने से अनायास ही ऋद्धि सिद्धियाँ मिलती हैं। भौतिक सिद्धियाँ और आत्मिक ऋद्धियाँ–सम्पदाएँ और विभूतियाँ गणेश पत्नी कही गयी हैं। विवेकवानों को दुहरे लाभों का मिलन स्पष्ट है। गणेश को सद्बुद्धि का देवता माना गया है। स्वस्तिक, ॐ की आकृति से भी गणेश आकृति की तुलना की जाती है।

दुर्गा-संघशक्ति। परास्त देवताओं की शक्ति को संगठित करके प्रजापति ने उसका निर्माण किया और बताया कि देवत्व को जीतना है तो उन्हें संगठित होना चाहिए। देवी ने जिन तीन प्रमुख असुरों को मारा उनके नाम महिषासुर, मधुकैटभ एवं शुंभनिशुंभ कहे गये हैं। महिषासुर, अर्थात आलस्य। मधुकैटभ अर्थात् असंयम। शुंभनिशुंभ अर्थात् लोभ मोह। आत्मशक्ति के प्रकट होने से व्यक्तिगत जीवन में यह त्रिविध असुर कुत्साओं का दमन होता है। लौकिक जगत में इन तीन असुरों की व्याख्या अज्ञान, अन्याय और अभाव के रूप में की गई है और व्यापक क्षेत्र में फैले हुए इन समस्त संकटों के मूलभूत कारणों का निराकरण दैवी त्तवों की संगठित शक्ति से हो सकना संभव है। यह संदेश दुर्गा की अंकित प्रतिमा से मिलता है।

गायत्री-दूरदर्शी विवेक प्रज्ञा की देवी। नारी में देवत्व की विशिष्टता का भान। उसके प्रति पवित्रतम श्रद्धा सद्भावना की धारणा। वाहन–हंस, नीर-क्षीर विवेक, उचित अनुचित के वर्गीकरण की प्रखरता, दाग धब्बे रहित धवल कलेवर। मोती चुगने अथवा लंघन करने की प्रवृत्ति, श्रेष्ठतम को ही स्वीकार करने की प्रतिज्ञा। एक हाथ में पुस्तक–स्वाध्याय में अगाध रूचि। दूसरे में कमंडलु–जल की शीतलता और प्रामणिकता पात्रता से भरा पूरा स्वभाव। गायत्री का दूसरा नाम सावित्री भी है। सावित्री ने सत्यवान का वरण किया था और उसे मृत्यु मुख से छुड़ाया था। इस कथा में गायत्री का अनुग्रह सत्यनिष्ठ को मिलना तथा उसका जन्म-मरण से छूटना अन्तर्निहित है। सरस्वती–विद्या की देवी। एक हाथ में पुस्तक अर्थात् साहित्य। दूसरे में वीणा अर्थात् कला। इन्हें लेखनी और वाणी भी कह सकते हैं। ज्ञान वृद्धि के यही दो प्रमुख आधार हैं। वाहन–मयूर। मयूर–मधुर भाषण में सुरुचि, सुसज्जा का, सर्पों को उदरस्थ कर जाने की वृत्ति का प्रतीक माना गया है। इन प्रवृतियों को अपनाने वाला सरस्वती का उपासक माना जा सकता है। अन्यान्य देवताओं की आकृतियों से भी इसी प्रकार की दिव्य भावनाओं का, उनकी विशेषताओं के आधार पर चित्रण किया गया है। उनके स्वरूप, आयुध वाहन, स्वभाव एवं क्रियाकलाप में पहेली बुझौअल, की तरह ऐसा अलंकारिक चित्रण है, जिसका निष्कर्ष उन सद्भावनाओं को अपनाने वाले को देव अनुग्रह से लाभान्वित होने के संकेत के रूप मिला है।

सन्तोषी माता-सन्तोष की देवी। भौतिक महत्वाकांक्षाओं की–लोकेषणा, वित्तेषणा, पुत्रेषणा से विरत रहा जाय, निर्वाह के नितान्त आवश्यक साधनों को जुटाने भर से संतुष्ट रहा जाय और अपनी क्षमताओं को आत्मिक प्रगति में–आदर्शवादी कामों में लगाया जाय, तो यह संतोषी वृत्ति कही जायेगी। इसी को अपनाकर महामानव बना जाता है। चना, गुड़ खाकर अर्थात् सस्ता सादगी का जीवनक्रम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अपनाकर गुजारा किया जाय। खटाई, मिठाई का लालच छोड़ा जाय। शुक्रवार को सन्तोषी माता का व्रत किया जाय। सन्तोष का व्रत लेने वाले जो उपलब्ध हैं उसी के लिए ईश्वर का शुकर मनायें, धन्यवाद दें और तृष्णाओं में उलझने के स्थान पर जीवन को सार्थक बनाने वाली गतिविधियां अपनायें। यही सन्तोषी माता की भक्ति है।

देवपूजन में षोडषोपचार, पंचोपचार आदि की पूजा विधि प्रयुक्त की जाती है। इनमें भी भाव संवेदनाएँ उभारना ही प्रयोजन हैं। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान के लिए जल के चम्मच अर्पित किये जाते हैं। इसका अर्थ है सत्प्रयोजन के लिए श्रम बिन्दु समर्पित किये जाते हैं। पुरुषार्थ किया जाना है और समय दिया जाना है। यह चार चम्मच जल देवता को समर्पित करने का एक उद्देश्य शरीर शुद्धि, मन शुद्धि, व्यवहार शुद्धि और अर्थ शुद्धि भी है।

अक्षत, चावल, अन्न इसलिए अर्पित करते हैं कि हमारे कमाये अन्न कणों से, धन में से परमार्थ प्रयोजनों के लिए अंशदान नियमित रूप से होते रहना है।

पुष्प का स्वरूप है – कोमलता, सुरुचि, मृदुल हास्य। वातावरण में उल्लास एवं त्तिली, मधुमक्खी, भौंरे आदि हर समीपवर्ती को अजस्र अनुदान देना। पुष्प जीवन की सार्थकता देव चरणों पर समर्पित होने में है। इसके लिए वह छिदता है और संघबद्ध होकर माला बनता है। यही दिशा देवलक्ष्य रखने वाले मनुष्य की होनी चाहिए।

दीपक–पात्रता, वर्तिका, स्नेह और ज्योति का समन्वय। दीपक किसी पात्र में बनता है, पात्र अर्थात् पात्रता–प्रामाणिकता। तेल, घी आदि चिकनाई को स्नेह कहते हैं और प्यार को भी। दीपक में उस तरह प्रत्यक्ष स्नेह भरा होता है हमारे अन्तःकरण में उसी प्रकार दिव्य, प्रेम भरा होना चाहिए। बत्ती को संस्कृत में वर्तिका कहते हैं जिसका एक अर्थ लगन भी होता है। सन्मार्ग की त्तपरता एवं निष्ठा की तुलना दीपक की वर्तिका से की जा सकती है। ज्योति धारण से दीपक ज्वलन्त होता है। मानवी चेतना में सद्ज्ञान का, विवेक का प्रकाश दीप्तिमान रहेगा तो व्यक्ति स्वयं भी आलोकित रहेगा और अपने प्रभाव क्षेत्र को भी प्रकाश देगा। देवता के सन्मुख दीपक जलाकर इसी भावनिष्ठा को ज्वलन्त बनाना भक्तजनों का उद्देश्य है।

धूप-सुगन्धि का विस्तार। यशस्वी श्रद्धासिक्त, अभिनन्दनीय और अनुकरणीय जीवन प्रकिया की तुलना धूप द्वारा फैलाने वाली सुगन्धि से की जा सकती है। चन्दन की विशेषताएं वातावरण में शान्ति शीतलता उत्पन्न करना, समीप उगे हुए झाड़ झंखड़ों को अपने समान ही सुगंधित बना लेना, डालियों पर लदे रहने वाले सांप बिच्छुओं को भी शान्ति देना किन्तु उसके विष प्रभाव को स्वीकार न करना, अपनी शरीर सम्पदा की माला, धूप आदि दिव्य उपकरणों का माध्यम बनाना, काटने वाली कुल्हाड़ी को भी सुगंधित कर देना। चंदन का दूवपूजा में उपयोग होने का तात्पर्य है सर्मपणकर्ता देव उपासक इन दिव्य गुणों को अपने में धारण करने की आवश्यकता अनुभव करता है और उसके लिए प्रयत्नशील है।

नैवेद्य में मीठे पदार्थ ही प्रयुक्त होते हैं। देवता को मिठास ही प्रिय है– मिठास का संकेत है–मधुरता। मधुर वचन, मधु व्यवहार में घुली हुई मिठास से देवता प्रसन्न होते हैं। देवत्व की झांकी सौम्य, सरल, सेवा भावी सज्जनोचित स्वभाव से की जा सकती है। नैवेद्य अर्पित करके यही स्वसंकेत अपने आपको दिये जाते हैं।

पुंगीफल, श्रीफल, ऋतुफल आदि अर्पित करने का तात्पर्य है– कर्मनिष्ठा में प्रगाढ़ तत्परता किन्तु फल का श्रेय देवता को समर्पित करना।

वस्त्र–लज्जा ढके रहना, निर्लज्ज न बने रहना, शालीनता को निष्ठापूर्वक ओढ़े रहना। रोली-रक्त में चेहरे पर लालिमा बनाये रहना, आरोग्य और साहस की ओर इसमें अंगुलि निर्देश है। यज्ञोपवीत अर्पण अर्थात् इस पुण्य प्रतीक धारणों के माध्यम से तो मानवी-गुणों के प्रति आस्था का प्रकटीकरण। सत्य, प्रेम, न्याय, संयम, अस्तेय, अपरिग्रह, शौच, स्वाध्याय एवं आस्तिक यह नौ गुण मानवता को अलंकृत करते हैं। इन्हें विकसित करने का उत्तरदायित्व कंधे पर लादा जाता है। आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता की तीन दिव्य भावनाएं यज्ञोपवीत की तीन ग्रन्थियों के आधार पर व्यवहार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में गाँठ बाँधकर समन्वित रखी जानी चाहिए। यज्ञोपवीत की बड़ी गाँठ को ब्रह्म ग्रन्थि कहते हैं। यह आदर्शवादी आस्था की ओर ब्रह्म चेतना हृदयंगम किये जाने की ओर संकेत करती है। देवता को यज्ञोपवीत अर्पित करके हम प्रकारान्तर से आत्मचेतना को ही प्रशिक्षित करते हैं। इन्हें स्वसंकेत समझा जाना चाहिए।

स्पष्ट है कि देवता व्यक्ति नहीं शक्ति होते हैं। व्यक्ति को पदार्थों की आवश्यकता हो सकती है पर देवता इस उपचार पदार्थों को लेकर क्या करेंगे? उनका इन स्वल्प मात्र में दी हुई वस्तुओं से क्या लाभ होगा ? उन्हें इन वस्तुओं की क्या और क्यों आवश्यकता होगी ? इन अति स्वल्प मूल्य की वस्तुओं को पाकर वे क्यों किसी को अपना भक्त मान लेंगे और इतने मात्र से प्रसन्न होकर क्यों किसी पर वरदान अनुग्रह की वर्षा करने लग जायेंगे ? यह प्रश्न अत्यन्त गम्भीर और विचारणीय है। देवताओं को यदि व्यक्ति मानना हो तो भी उन्हें इतना नासमझ नहीं मानना चाहिए कि इस नगण्य से उपहारों से ही किसी को वरदान पाने योग्य सत्पात्र मान लेंगे। पात्रता के अभाव में भी वरदान पाने के लिए दिये गये उपहारों को लौकिक प्रचलन में प्रयुक्त होने वाली रिश्वत से तुलना कर सकते हैं। अनाधिकारी लोग अतिरिक्त लाभ पाने के लिए इस अनैतिक प्रकिया को अपनाते हैं। यदि वही प्रक्रिया भक्त और भगवान के बीच चल पड़े और उसे मान्यता मिल जाय, तब समझना चाहिए कि इस क्षेत्र में भी अनैतिकता का साम्राज्य छा गया। जब सस्ते उपचारों से देव अनुग्रह का लाभ मिल सकता है तब कोई आदर्शजीवन जीने और परमार्थ प्रयोजन में त्याग बलिदान करने की कष्ट साध्य रीति अपनाने की क्यों आवश्यकता अनुभव करेगा ?

देवता का स्तोत्र पाठ करने से तात्पर्य है, प्रकारान्तर से दिव्य गुणों को महत्ता का स्मरण एक ही देवता के अनेक नाम, सौ अथवा हजार नाम दिये जाते हैं। इन नामों के अर्थों पर विचार किया जाय तो वे किन्हीं दिव्य गुण, कर्म स्वभाव के बोधक होते हैं। महिमा गान एवं प्रार्थना में भी प्रायः देवता की दिव्य विशेषताओं का उल्लेख होता है। स्तवन का तात्पर्य इतना ही है कि देवता में आरोपित सद्गुणों को हम अपने में धारण करें।

अग्नि को भी देवता माना गया है। ऋग्वेद में 'अग्निमीले पुरोहितं' कह कर उनकी स्तुति की गयी है। पुरोहित कह कर यही भाव प्रकट किया गया है कि अग्नि देव से हमें जीवन की महत्वपूर्ण शिक्षायें, प्रेरणायें प्राप्त करनी चाहिए। अग्नि प्रकाशवान् है, उसके सानिध्य से प्रकाश पाया जा सकता है। अग्नि की उष्णता से– जीवन्त प्राणवान रहने की, जड़ता निवारण की प्रेरणा मिलती है। अग्नि की लौ हमेशा ऊपर की ओर उठती है, इससे आदर्श निष्ठ–ऊर्ध्वगामी जीवन जीने की शिक्षा मिलती है। अग्नि में हर वस्तु अग्नि रूप हो जाती है, यह गुण हमें अपने सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति को बिना भेदभाव किये, अपनी श्रेष्ठता का लाभ देने को प्रेरित करता है। अग्नि अपने पास कुछ नहीं रखता, सब कुछ वातावरण में बिखेर देता है, यह अपरिग्रह तथा समान वितरण का महत्वपूर्ण शिक्षण है। अन्त में भस्म शेष रह जाती है, जो 'भस्मातं शरीरं' का तत्वबोध कराती हुई सार्थक जीवन जीने की प्रेरणा देती है। अग्निदेव अथवा किन्हीं अन्य देवों के प्रति प्रयुक्त सम्बोधनों तथा स्तुतियों में इसी प्रकार की महत्वपूर्ण दिशायें भरी रहती हैं।

हनुमान चालीसा पाठ का तात्पर्य यश गान करके, हनुमान जी को फुसलाना नहीं समझा जाना चाहिए वरन् यह माना जाना चाहिए कि ब्रह्मचर्य, सत्साहस, ईश्वर भक्ति, अपरिग्रह, विनय जैसे सद्गुणों से ओतप्रोत होने की आवश्यकता भक्तजनों को, अनुभव करनी चाहिए। प्रशंसा सुनने मात्र से फूलकर कुप्पा हो जाने वाले और हर्ष आवेश में आकर, चारणों को कुछ भी उपहार देने की बात उथले सामन्तों से ही बन पड़ती है। उच्चस्तरीय देवसत्ता इतने ओछेपन का परिचय नहीं दे सकती कि चापलूसी अथवा चमचागीरी करके कोई भी उनकी हजामत बना सके।

भारतीय तत्ववेत्ताओं का देववाद की स्थापना में यही प्रयोजन रहा है कि ब्रह्म चेतना में सन्निहित, मानवी गरिमा को समुन्नत करने वाली सत्प्रवृत्तियों की महत्ता किसी को समझाई जाय और उसके प्रति असीम श्रद्धा रखने के लिए कहा जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

देवत्व, भावनात्मक, उत्कृष्टता का ही दूसरा नाम है। इस परिधि में जो भी गुण, कर्म, स्वभाव आते हैं उन सभी को आकृतियाँ देकर कल्पनात्मक रहस्यवाद का परिचय दिया गया है। महामनीषियों के इस उद्देश्य को समझा जा सके तो ही हम देव मान्यता और देव पूजन का समुचित लाभ उठा सकते हैं।

देववाद का एक पक्ष है दिव्य भावनाओं को अलंकारिक आकृतियां देकर उनके प्रति जन साधारण में अगाध आस्था उत्पन्न करना। उनकी स्थापना अन्तःकरण में करना और व्यवहार में लिए किये जाने वाले उपचारों का उद्देश्य है। देव उपासना से प्रेरणा पाकर मनुष्य दिव्य गुण सम्पन्न बन सके, महामनीषियों का यही उद्देश्य इस पुण्य प्रयोजन के पीछे रहा है। एक परमेश्वर के अनेक विकल्प करके भेड़ बुद्धि में भटकाने और ईश्वरीय अनुग्रह को अनावश्यक रूप से सत्ता बना देना उनका उददेश्य रहा होगा ऐसी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

यह अदृश्य देव शक्तियों की उच्चस्तरीय भावनाओं की बात हुई। विद्युत, प्रकाश, वर्षा, वायु आदि प्रकृति की जिन शक्तियों से हम लाभान्वित होते हैं उनके प्रति कृतज्ञतापूर्वक नमन करना अपनी कृतज्ञता प्रवृत्ति को प्रदीप्त करने के लिए आवश्यक है। यह बात उपकारी प्राणियों एवं पदार्थों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

देवत्व की सत्प्रवृत्तियों से सम्पन्न महामानवों को भी देव कहा जाता है। अधर्म को निरस्त करके धर्म की स्थापना करने वाले युग संतुलन बनाने वाली आत्माओं को 'अवतार' कहा जाता रहा है। ऋषियों, तपस्वियों और तत्वदर्शी मनीषियों को भी भूदेव, सुर आदि नामों से संबोधित किया जाता है। साधु और ब्राह्मण इसी श्रेणी में आते हैं। नामों के साथ देव शब्द जोड़ने का तात्पर्य उनमें देवत्व के आरोपण की अभिव्यक्ति एवं आकांक्षा है। भारतीय ललनाओं को देवी उपनाम दिये जाने की परम्परा है। उनके नाम के साथ देवी शब्द का उपयोग होता है। सरला देवी, शान्ति देवी, पुष्पा देवी, दया देवी, श्रद्धादेवी आदि नामों से नारी में पाई जाने वाली सहज देवत्व की विशेषता का संकेत है। कुमारिकाओं को नवरात्रि में एवं दूसरों अवसरों पर देवी का प्रतीक प्रतिनिधि मानकर पूजा जाता है। इस कन्यापूजन की बालिकाओं में रहने वाली असाधारण सौम्य सरल सहृदयता के प्रति सर्वजनीन श्रद्धाभिव्यक्ति ही कहा जा सकता है।

इतिहास पुराणों में से अनेक देवताओं और देवियों का वर्णन है जिन्होंने अपनी समस्त गतिविधियों को सदुद्देश्य में नियोजित रखा और सर्वसाधारण को आदर्शवादी प्रेरणा देने वाला अनुकरणीय जीवन जिया। इनके प्रति लोकमानस द्वारा असीम श्रद्धा की अभिव्यक्ति देव सम्मान के रूप में प्रस्तुत की गई है। ऐसे महामानवों की जयन्तियाँ हर वर्ष मनाई जाती हैं। कितने ही पर्व त्यौहार ऐसी ही स्मृतियों को सजीव करने के लिए हमारी धर्म परम्परा के अंग बनकर रह रहे हैं।

हमें देववाद के यथार्थ स्वरूप को समझना चाहिए और वैयक्तिक तथा सार्वजनिक जीवन में देवत्व के प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न करने का प्रबल प्रयत्न करना चाहिए। देवता की पूजा आराधना में जो भी प्रयत्न हो उनमें यह ध्यान रखा जाय कि आस्तिकता की श्रद्धा को दिग्भ्रान्त न होने दिया जाय। उपासना का प्रत्येक क्रिया कलाप लोकमानस में देवत्व का प्रतीक सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों को उभारने में सहायक होना चाहिए। उन्हें अन्ध विश्वासों और मूढ़ मान्यताओं का केन्द्र नहीं बनने देना चाहिए। पाषाण प्रतिभा को देवता मानकर उन्हें छुटपुट स्तवन उपहार के सहारे प्रसन्न करने और सस्ते में बहुमूल्य वरदान पाने की प्रचलित भ्रान्तियों को जितनी जल्दी निरस्त किया जा सके उतना ही उत्तम है। यह अन्धविश्वास जब पशु बलि द्वारा देवता के प्रसन्न करने जैसे घृणित स्तर पर उतर आता है तब तो आस्तिकवाद की आत्मा ही रो पड़ती है। आज ऐसे ही अन्धविश्वासों की भरमार है। उछल कूद और खर्चीले कर्मकाण्डों की धूम से देवताओं को रिझाने के जो उपक्रम आये दिन चलते रहते हैं उन्हें देखकर इतना ही कहा जा सकता है कि देववाद की आत्मा को धकेल कर उस सिंहासन पर भ्रम जंजाल ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है। इस अवांछनीयता को सुधारा और बदला जाना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवालयों की स्थापना का उद्देश्य यह था कि उस दिव्य संस्थान द्वारा उस क्षेत्र में रचनात्मक धर्म प्रवृत्तियों का सुनियोजित संचालन होता रहे। देवता के निवास के लिए तो तनिक सा स्थान भी पर्याप्त था। इतने विशालकाय भवन तो धर्म प्रवृत्तियों के सुसंचालन को ध्यान में रखकर ही बनाये जाते थे। प्राचीनकाल में देव मन्दिर कथा सत्संगों के लिए, पाठशाला–पुस्तकालयों के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होते थे। वहाँ धर्म सेवी व्यक्ति निवास करते और निर्वाह पाते थे। अपंग, असहायों को वहाँ आश्रय मिलता था तथा अन्यान्य सामयिक प्रेरणाओं और प्रवृत्तियों का सुसंचालन वहाँ से होता था।

आज तो वे सेवापूजा करने वालों के निवास मात्र की आवश्यकता पूरी करते हैं। भक्तजन मनौती माँगने भर के लिए आते हैं। यदि देवालयों के विशाल भवन और उनके साधन मात्र देव अकर्मण्यता तर्क सीमित न रह कर प्राचीनकाल की तरह धर्म चेतना उत्पन्न करने और लोकोपयोगी सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन में लग सकें तो देवश्रद्धा का सच्चा सदुपयोग हो सकता है और उस आधार पर पनपने वाले बहुमुखी रचनात्मक प्रयोजनों से लोकहित की आवश्यकता पूरी कर सकने वाला देववाद सच्चे अर्थों में सार्थक हो सकता है।

यदि हम सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन परिपोषण में संलग्न हों, मनुष्य में देवत्व के अवतरण का प्रयत्न करें, देव मानवों का सम्मान करें और उनसे प्रकाश ग्रहण को तो देववाद की स्थापना का मूल प्रयोजन पूरा हो सकता है। आवश्यक नहीं कि हर देवता की स्वतन्त्र सत्ता मानी जाय और उनके नाम पर अलग–अलग अखाड़े खड़े किये जायं। एक ही सूर्य की अनेक किरणों की तरह एक ही परब्रह्म की अनेक देवशक्तियाँ मान कर पृथकता की एकता में परिणत किया जा सकता है।

आज का देववाद तथ्यों की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, देवताओं को पूजा अर्चा का भूखा, उपहार पाकर वरदान देने और उपेक्षा करने पर संकट छाने वाले के रूप में उन्हें देखा जाता रहा तो इससे देवताओं की देववाद की ओर उनके पूजनकर्ताओं की स्थिति उपहासास्पद ही बनती चली जायेगी। हम तथ्य को समझें और उसे विवेकपूर्वक अपना कर सच्चे अध्यात्मवादी होने का परिचय दें।

देवऋण का परिशोध

देवता अनेक हैं पर बृहदारण्यक उपनिषद् के मतानुसार इनमें से तेतीस देवता ही मुख्य हैं। (एवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवाः)। यथा आठ बसु, ग्यारह रूद्र, बारह आदित्य, इन्द्र और यज्ञ। आठ वसुदेवता परोक्षतः यथाक्रम से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, भृ, भुव और स्व हैं। किंतु बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार ये सब यथाक्रम से पृथिवी, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, स्वर्ग, चन्द्रमा और नक्षत्र हैं। पांच कर्मेन्द्रियां (मुख, हस्त, पाद, उपस्थ और वायु), पांच ज्ञानेन्द्रियां (श्रोत्र, नेत्र, नासिका, जिह्वा, त्वक्) और वागिन्द्रिय (मन) ही एकादश रूद्र देवता हैं किन्तु बृहदारण्यक के कथनानुसार दश प्राण (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाम, कृर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय) और आत्मा ही रूद्र देवता हैं। द्वादश आदित्य यथाक्रम से वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन एवं चैत्र हैं। इन्द्र देवता मेघ हैं और यज्ञ देवता प्रजापति है।

उपरोक्त देवताओं की पूजा को ही नित्य नैमित्तिक कर्म कहते हैं। इन्हीं कर्तव्य कर्मों द्वारा देव ऋण का परिशोध होता है। वसु और रूद्र देवताओं की पूजा को नित्य कर्म तथा आदित्य इन्द्र और यज्ञ देवताओं की पूजा को नैमित्तिक कर्म कहते हैं।

पृथिवी को पवित्र रखने का प्रयत्न करते रहना अर्थात् मकान, आंगन, हाट, बाट, घाट, तथा गांव के समस्त स्थानों को स्वच्छ एवं निर्मल रखना पृथिवी देवता की पूजा है। उसी प्रकार कूप, तालाब, नदी, नाले एवं जलपात्रों को स्वच्छ एवं निर्मल रखना, जिससे कि जल सदा सर्वदा सर्वत्र ही पवित्र अवस्था में मिल सके जल देवता की पूजा है। शुष्क काष्ट के ईंधन, स्वच्छ दीप एवं जलाने के लिये स्वच्छ तेल का व्यवहार करना जिससे कि हानिकारक धूम्र की अधिक उत्पत्ति न हो सके अग्निदेव की पूजा है। वायु को शुद्ध रखने के लिए चन्दन, कर्पूर, अष्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सुगंधी एवं घृत जलाना वायु, देवता की पूजा है। आकाश को जो कि विचारतरंगों और ध्वनि, विद्युत् आदि सूक्ष्म शक्तियों को वहन करने के लिए माध्यम का कार्य करता है, सुन्दर विचार तरंगों और ध्वनियों से गुंजरित करना तथा लड़ाई झगड़ा न करना, गाली आदि कटुवचन न बोलना सुमधुर गीत नृत्य आदि करना आकाश देवता की पूजा है। दूर दूर मकान बनाना, हवादार मकान बनाना और मकान को चारों ओर से फल फूल आदि के सुन्दर चित्रों से सुशोभित करना भू देवता की पूजा है। मृत शरीरों का अग्नि संस्कार करना भुव देवता की पूजा है। प्रातः काल में स्नान करने के उपरान्त एवं सन्ध्याकाल में भक्ति पूर्व परमात्मोपासना करना स्व देवता की पूजा है।

वागिन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को बलवान् एवं स्वस्थ बनाने का प्रयत्न करना, अर्थात् नित्यप्रति नियमित रूप से व्यवस्थित व्यायाम, आसन, प्राणायाम द्वारा शरीर के अंग–प्रत्यंगों को बलवान बनाना, नित्य स्नान कर तथा शुद्ध वस्त्र पहनकर और शुद्ध भोजन कर शरीर को स्वस्थ एवं चैतन्य रखना एवं देव, ऋषि, पितृ, नर और पशु इन सबको खिलाकर पश्चात् भोजन करना रूद्र देवताओं की पूजा है।

जिस महीने में जिस विधि से रहने से और जैसा खान–पान रखने से शरीर नीरोग, सबल और सुखी रहता है, उस महीने में उस विधि से रहना और वैसा ही खान–पान रखना, जिससे कि वर्ष सुखद हो, आदित्य देवताओं की पूजा का एक अंग है। उसी प्रकार जिस महीने में जिस वस्तु को बोने से प्रचुर शस्य उत्पन्न होता है, वह सब विचार–पूर्वक उत्पन्न करना, समस्त ऋतुओं का ज्ञान प्राप्त कर विवाह, ऋतुदर्शन आदि संस्कारों का विधिपूर्वक पालन करना एवं ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों का निर्वाह करना आदित्य देवताओं की पूजा है। सप्ताह, पक्ष, महीनें और वर्ष के अन्त में और प्रत्येक विशेष दिन में अर्थात् सभा सम्मेलन, उत्सव और शोभा यात्रा के अवसर पर यश एवं सार्वजनीन हवन करना जिससे कि उचित मात्र में पर्जन्य की प्राप्ति हो मेघ देवता की पूजा है। मेघोदय के समय, वर्षा के समय, अन्नोत्पादन के समय, भोजन के समय एवं गर्भाधान के समय विचार–पूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करना, जिससे कि प्रजा की वृद्धि हो, यज्ञ देवता या प्रजापति की पूजा है। इस तरह पूजा करने से ही देव–ऋण का परिशोध हो जाता है।

जो लोग उपरोक्त देवताओं की उपासना नहीं करते वे लोग अपने जीवन को दुखी बना लेते हैं। इसका यह प्रयोजन नहीं कि देव–ऋण का परिशोध न करने वालों से देवतागण क्रुद्ध होकर प्रतिशोध लेते हैं। देवताओं की पूजा न करने वाले व्यक्ति सुख समृद्धि से वंचित रहते हैं, इसी को बाल–बुद्धि वाले व्यक्ति प्रतिशोध कहकर पुकारते हैं। प्रतिशोध सदैव क्रोध ईर्ष्या, द्वेष, बैर आदि दुर्विकारों द्वारा प्रेरित होता है परन्तु देवताओं में ये दूषित मनोविकार किंचित्मात्र भी नहीं होते। वे तो समदर्शी होते हैं और उनमें तनिक भी पक्षपात नहीं होता। यह अवश्य है कि जो उनकी जितनी अधिक पूजा करता है उसे उतना ही अधिक शुभ फल मिलता है किंतु यह उनका पक्षपात नहीं है और न इससे उनके सब पर एक जैसे प्रेम होने के सिद्धान्त में बाधा ही पड़ती है। समदर्शन यह नहीं कि सबको जो पुरस्कार मिले उसमें साम्य हो किंतु वास्तविक समदर्शन तथा साम्यवाद यही है कि प्रत्येक को जो फल मिले वह उसके पुरूषार्थ के अनुसार हो। परीक्षक अधिक योग्यतापूर्ण प्रश्नोत्तरों पर अधिक गुण देता है, सौदागर अधिक रूपये देने वाले ग्राहक को अधिक वस्तु देता है और अग्नि अधिक घृत हवन करने वाले को अधिक सुगंध देता है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति को वस्तुएं भिन्न–भिन्न परिमाण में ही प्राप्त होती हैं पर वे सबको ठीक–ठीक हिसाब से और समभाव से ही बितरित की गई हैं, ऐसा ही कहा जायेगा।

देवतागण पूर्ण काम होते हैं। उन्हें अपने व्यक्तिगत हित के लिए किसी भी वस्तु की कामना नहीं होती और न वे अपने लिए कुछ लेते ही हैं। जो कुछ भी वे आपसे स्वीकार करते हैं वे वह सब आपके लिए ही स्वीकार करते हैं और आप की अर्पित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की हुई सारी वस्तु को अनेकों गुना लाभदायक रूप देकर आपको ही लौटा देते हैं। जब आप अग्निदेव को एक बूँद घी अर्पित करते हैं तो वे उसका लगभग एक घनफुट वायुमंडल को शुद्ध करने वाला धूम्र बनाकर, आपको बदले में आपकी लागत से भी कई गुना मूल्य चुका देते हैं। यदि आप अपने शरीरस्थ इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं को दस आने का भोजन अर्पित करते हैं तो वे उसके द्वारा आपको दस रूपये पैदा करने शक्ति एवं स्फूर्ति भी प्रदान कर देते हैं। अतः देवतागण वास्तव में दिव्य स्वभाव वाले होते हैं, वे संतोषी, निस्वार्थी और निष्काम सेवी होते हैं और सदा देना ही जानते हैं।

जिन देवताओं का जिक्र हम ऊपर कर आए हैं उनकी पूजा न्यूनाधिक परिमाण में प्रत्येक व्यक्ति करता है चाहे वह नास्तिक हो या आस्तिक चाहे वह हिन्दुस्तानी हो या जापानी। किंतु जो जातियाँ और जिन देशों के लोग इन देवताओं के ऋण का पूर्णतया प्रतिशोध कर देते हैं वे तो उन्नति करते जाते हैं परंतु जो लोग इनकी विधिवत् पूजाअर्चनां नहीं करते वे सुख–संपत्ति से वंचित रहते हैं। अतः अब स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठता है कि यह कैसे जाना जाय कि हमने अपने ऋण का पूर्णतया परिशोध कर दिया अथवा नहीं ? यह जानने के लिए हमें विचार कर लेना चाहिए कि हम पर देवताओं का कितना ऋण होता है और फिर उसी ऋण के अनुसार हमें उसका परिशोध भी करना चाहिए। हम पृथ्वी पर कूड़ा कचड़ा फेंकते हैं, उच्छिष्ट भोजन गिराते हैं, थूकते और मल–मूत्र आदि का त्याग करते हैं, इस तरह हम जो भूमि को अपवित्र करते हैं वही हम पर ऋण है। इस ऋण का परिशोध करने के लिए हमें चाहिये कि जिन स्थानों को हम पुनः पवित्र करवा सकें उन्हें पुनः पवित्र करवादें, व्यर्थ ही वहाँ न थूकें और निश्चित स्थानों में ही मल–मूत्र का त्याग करें। हम लोग जहरीला और गंदा धुआं फैलाकर मल–मूत्र आदि की बदबू फैलाकर, सड़ी गली चीजों की दुर्गंध फैलाकर वातावरण को अशुद्ध बनाते रहते हैं अतएव हमारा कर्तव्य है कि वायु देवता के ऋण के परिशोध के लिए हम चंदन घी आदि सुगंधित द्रव्यों का हवन कर तथा तुलसी आदि वायु को शुद्ध करने वाले पौधों को उपजाकर वातावरण को शुद्ध बनायें। तात्पर्य यह कि देव ऋण के परिशोध द्वारा हम प्रकृति को कम से कम उस अवस्था में लाने का प्रयत्न अवश्य करें जिसमें कि हमने उसे पाया था। यदि हम ऐसा न कर सकेंगे तो हमारे ऋण का परिशोध न होगा और हम पतित हो जावेंगे। दूसरे शब्दों इसका यह अर्थ हुआ कि बिना सेवा किये या प्रतिदान में कुछ दिए हम जो कुछ भी स्वीकार करेंगे वह हमें नीचे गिरावेगा। भगवान कृष्ण इसे ऋण–परिशोध को यज्ञ कहते जान पड़ते हैं। वे कहते हैं "यज्ञ द्वारा बढ़ाए हुए देवता लोग हमारे लिए बिना माँगे ही प्रिय भोगों को देंगे। उनके द्वारा दिये हुए भोगों को जो पुरूष इनको बिना दिए ही भोगता है वह निश्चय चोर है।" यदि हम विश्व की उपयोगी वस्तुओं को कम से कम उनके पूर्वरूप में ही लाकर न रख देंगे तो भविष्य में इतनी क्षीण हो जावेंगी कि हमें उनकी सेवा सहायता से सर्वथा वंचित रहना पड़ेगा।

विश्व की उपयोगी वस्तुओं को उनकी पूर्व अवस्था में लाने का क्या उपाय है ? यदि आप नित्यप्रति तुलसी–दल तोड़ते हैं तो पौधे की क्षति पूर्ति के लिए आप उसे पानी दिया कीजिए। यदि आप गाय का दूध दुहें तो उसे आप भरपेट भोजन अवश्य दें। यदि आप घोड़े को गाड़ी में जोतते हों, तो उसे दाना घास दें प्रेम उसे पुकारें, पुचकारें, खरहरा करें, त्यौहारों के समय अच्छा भोजन दें और कभी–कभी उसे छुटटी भी दें। यदि आप कुएं या तालाब का उपयोग करते हों तो उसकी सदा मरम्मत करते रहें और चारों तरफ सफाई रखें। इस तरह जब हम प्रकृति की वस्तुओं का सम्मान करेंगे तो वे भी हमारी सेवा निरंतन करती रहेंगी। इसी यज्ञ द्वारा हम लोग अपनी और देवताओं की परस्पर उन्नति करते हुए वृद्धि को प्राप्त होवेंगे और यही यज्ञ हम लोगों को इच्छित कामनाओं का देने वाला होवेगा।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

७ - व्रत और त्यौहार

भारतीय संस्कृति में व्रत, त्यौहार, उत्सव, मेँले आदि अपना विशेष महत्व रखते हैं। हिन्दुओं के ही सबसे अधिक त्यौहार मनाये जाते हैं, कारण हिन्दू ऋषि–मुनियों ने त्यौहारों के रूप में जीवन को सरस और सुन्दर बनाने की योजनाएँ रखी हैं। प्रत्येक त्यौहार, व्रत, उत्सव, मेले आदि का एक गुप्त महत्त्व है । प्रत्येक के साथ भारतीय संस्कृति जुड़ी हुई है। वे विशेष विचार अथवा उद्देश्य को सामने रखकर निश्चित किये गये हैं।

प्रथम विचार तो ऋतुओं के परिवर्तन का है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति का साहचर्य अपना विशेष महत्त्व रखता है । प्रत्येक ऋतु-परिवर्तन अपने साथ विशेष निर्देश लाता है, खेती में कुछ स्थान रखता है। कृषि प्रधान होने के कारण प्रत्येक ऋतु-परिवर्तन हँसी-खुशी मनोरंजन के साथ अपना-अपना उपयोग रखता है। इन्हीं अवसरों पर त्यौहारों का समावेश किया गया है, जो उचित है। ये त्यौहार दो प्रकार के होते हैं और उद्देश्य की दृष्टि से इन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम श्रेणी में वे व्रत, उत्सव, त्यौहार और मेले हैं, जो सांस्कृतिक हैं और जिनका उद्देश्य भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों और विचारों की रक्षा करना है। इस वर्ग में हिन्दुओं के सभी बड़े-बड़े त्यौहार आ जाते हैं, जैसे– होलिका-उत्सव, दीपावली, बसन्त, श्रावणी, संक्रान्ति आदि। संस्कृति की रक्षा इनकी आत्मा है।

दूसरी श्रेणी में वे त्यौहार आते हैं, जिन्हें किसी महापुरुष की पुण्य स्मृति में बनाया गया है। जिस महापुरुष की स्मृति के ये सूचक हैं, उसके गुणों, लीलाओं, पावन चरित्र, महानताओं को स्मरण रखने के लिए इनका विधान है। इस श्रेणी में रामनवमी, कृष्णाष्टमी, भीष्म-पंचमी, हनुमान-जयन्ती, नाग-पंचमी आदि त्यौहार रखे जा सकते हैं।

दोनों वर्गों में मुख्य बात यह है कि लोग सांसारिकता में न डूब गये या उनका जीवन नीरस, चिन्ताग्रस्त, भारस्वरूप न हो जाय; उन्हें ईश्वर की दिव्य शक्तियों और अतुल सामर्थ्य के विषय में चिन्तन, मनन, स्वाध्याय के लिए पर्याप्त अवकाश मिले। त्यौहारों के कारण सांसारिक आधि–व्याधि से पिसे हुए लोगों में नये प्रकार की उमंग और जागृति उत्पन्न हो जाती है। बहुत दिन पूर्व से ही त्यौहार मनाने में उत्साह और औत्सुक्य में आनन्द लेने लगते हैं।

हमारा होलिका–उत्सव गेंहूँ और चने की नई फसल का स्वागत, गर्मी के आगमन का सूचक, हँसी–खुशी और मनोरंजन का त्यौहार है। ऊँच–नीच, अमीर–गरीब, जाति–वर्ण का भेद–भाव भूलकर सब हिन्दू प्रसन्न मन से एक–दूसरे के गले मिलते और गुलाल, चन्दन, रोली, रंग, अबीर लगाते हैं। पारस्परिक मन–मुटाव और वैमनस्य की पुण्य गंगा बहाई जाती है। यह वैदिककालीन और अति प्राचीन त्यौहार है। ऋतुराज बसन्त का उत्सव है। बसन्त पशु–पक्षी, कीट, पतंग, मानव सभी के लिए मादक, मोहक ऋतु है। इसमें मनुष्य का स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। होलिका दहन प्राचीन यज्ञ–व्यवस्था का ही बिगड़ा हुआ रूप है, जब सब नागरिक भेद–भाव छोड़कर छोटे–छोटे यज्ञों की योजना करते थे, मिल–जुल कर प्रेमपूर्वक बैठते थे, गायन–वादन करते और शिष्ट मनोरंजन से आनन्द मनाते थे। आजकल इस उत्सव में जो अपवित्रता आ गई है, उसे दूर करना चाहिए। अश्लीलता और अशिष्टता को दूर करना आवश्यक है।

दीपावली लक्ष्मी–पूजन का त्यौहार है। गणेश चतुर्थी, संकट नाशक त्यौहार है। गणेश में राजनीति, वैदिक और पौराणिक महत्त्व भरा हुआ है। तत्कालीन राजनीति का परिचायक है। बसन्त पंचमी प्रकृति की शोभा का उत्सव है। ऋतुराज बसन्त के आगमन का स्वागत इसमें किया जाता है। प्रकृति का जो सौन्दर्य इस ऋतु में देखा जाता है, अन्य ऋतुओं में नहीं मिलता। इस दिन सरस्वती पूजन भी किया जाता है। प्रकृति की मादकता के कारण यह उत्सव प्रसन्नता का त्यौहार है। इस प्रकार हमारे अन्य त्यौहारों का भी सांस्कृतिक महत्त्व है। सामूहिक रूप से सब को मिलकर आनन्द मनाने, एकता के सूत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में बाँधने का गुप्त रहस्य हमारे त्यौहार और उत्सवों में छिपा हुआ है।

पर्व और त्यौहार

यह विश्व-प्रकृति, जिससे मानव तथा अन्य समस्त प्राणियों और भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति हुई है, एक विशेष नियम से बँधी है। उस नियम के अनुसार ही मानव-प्रकृति का भी विकास हुआ है। इस व्यापक नियम के नियन्त्रण में ही हम को दिखलाई पड़ने वाले इस जड़-चैतन्य संसार के सब कार्य चल रहे हैं। इन्हीं नियमों को, जिनके आधार पर यह विश्व-संसार टिका हुआ है, जान लेना और उनके अनुकूल व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन की व्यवस्था करना यही भारतीय संस्कृति और सभ्यता का सार है। यहाँ के प्राचीन ऋषि-मुनियों ने समाज और व्यक्तियों के लिये जो आचरण और कर्तव्य नियत किये हैं, उन सब में इसी गहन तत्व को दृष्टिगोचर रखा गया है। वे जानते थे कि मनुष्य का समस्त जीवन इन्हीं नियमों की एक शृंखला के रूप में है, इसलिये उसका कोई भी कार्य इनके विपरीत नहीं होना चाहिए अन्यथा प्रकृति उसे अवश्य दण्ड देगी। इसलिये उन्होंने हमारे छोटे-बड़े सभी कर्तव्यों और प्रातःकाल से लेकर शयनकाल तक दैनिक कृत्यों को धर्म का रूप दे दिया, जिन पर आचरण करके ही हम सुख और शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

जिस प्रकार हिन्दू शास्त्रों में हमारे व्यक्तिगत कृत्यों को धर्म का रूप दिया गया है, उसी प्रकार सामाजिक कार्यों को भी धर्म का अंग बना दिया गया है, जिससे लोग उनके पालन में ढिलाई न करें और उनसे यथोचित प्रेरणा प्राप्त करते रहें। त्यौहार, धार्मिक और सामाजिक उत्सव तथा व्रत आदि का विधान वैसे संसार की सभी जातियों और देशों में पाया जाता है। सभी मजहबों के संस्थापकों और आचार्यों ने कुछ ऐसे विशेष दिन नियत कर दिये हैं, जिन पर वे अपने विशेष मनोभावों को प्रकट करने के लिए कुछ विशेष कृत्य करते देखे जाते हैं। दूसरा कारण यह भी है कि अपनी स्वाभाविक प्रवृति के अनुसार मनुष्य सदा एक ही रस में रहना पसन्द नहीं करता। अगर वह वर्ष के ३६५ दिन नित्य प्रति के कार्यों और नियमित व्यवसाय या नौकरी आदि में ही लगा रहे तो उसके चित में अवश्य उद्विग्नता का भाव उत्पन्न हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि उसको बीच-बीच में कभी ऐसा अवसर मिलता रहे जिससे वह अपने जीवन में कुछ नवीनता तथा आमोद-प्रमोद का अनुभव कर सके और विश्राम भी पा सके।

अन्य समस्त जातियों के त्यौहारों की भाँति उपर्युक्त सब उद्देश्य हिन्दू-जाति के त्यौहारों में भी पाये जाते हैं। पर हमारे यहाँ इतनी विशेषता और है कि त्यौहारों को केवल छुट्टी का अथवा धर्माचार्यों की जयन्ती आदि का दिन ही न समझकर उससे मनुष्यों की आध्यात्मिक उन्नति और सामाजिक विकास का भी उद्देश्य सिद्ध किया है। सच पूछा जाय तो हिन्दू-जाति अपनी प्राचीन सभ्यता और आचार-विचार को इतनी शताब्दियों के परिवर्तन के बाद भी जो अभी तक कायम रख सकी है, इसका बहुत कुछ श्रेय इन त्यौहारों और उत्सवों को ही है। साधारण जनता धर्म के गंभीर उपदेशों को नहीं समझ सकती और न आध्यात्मिक तत्वों पर अमल कर सकती है। उसको शिक्षा देने और सुमार्ग पर चलाने का एकमात्र मार्ग धार्मिक कथा-कहानी श्रवण कराना और मनोरंजन के साथ धार्मिक कृत्यों के करने की विधि बतलाना ही है। यह उद्देश्य त्यौहारों और व्रतोत्सव आदि से ही सुगमतापूर्वक सिद्ध हो सकता है।

त्यौहारों की स्थापना मुख्यतः निम्नलिखित उद्देश्यों को लेकर की गई है—

(१) जनता में जागृति, सद्भावना, ऐक्य, संगठन की वृद्धि करना, लोगों को सुसंस्कृत, शिष्ट और सुयोग्य नागरिक बनाना, उनमें सच्ची सामाजिकता की भावना उत्पन्न करना।

(२) किसी विशेष अवसर पर बड़े यज्ञ के लिये। यद्यपि शास्त्रों के मतानुसार 'यज्ञ' शब्द का अर्थ परोपकार के कार्यों के लिये होता है तथापि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वैदिककालीन पर्वों में यज्ञ का अर्थ बड़े हवन से ही लिया जाता है।

(३) किसी विशेष ऋतु के परिवर्तन या फसल के तैयार होने पर सामाजिक समारोह के रूप में।

(४) सर्व साधारण के मनोरंजन और हृदयोल्लास-प्रकाश के लिये।

(५) किसी युग-प्रवर्तक महापुरुष, अद्वितीय कर्मवीर, शूरवीर, प्रणवीर, दानवीर, महान् विद्वान, आदर्श प्रतापी की अथवा किसी महान् राष्ट्रीय घटना की स्मृति मनाने के निमित्त।

हमारे तत्ववेत्ता, पूज्यपाद ऋषि-महर्षियों के ऊपर बतलाये पाँचों उद्देश्यों के अनुकूल अनेक त्यौहार और पर्व के दिवस नियत कर दिये हैं और उन सब में लौकिक कार्यों के साथ ही धार्मिक तत्वों का ऐसा समावेश कर दिया है कि उनसे हम को अपने जीवन-निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है और समाज भी सुमार्ग पर अग्रसर हो सकता है। मनुष्य स्वभाव से ही अनुकरणशील प्राणी है। दूसरों को कोई शुभ काम करता देख कर उसके मन में भी वैसा ही काम करने की इच्छा स्वतः उत्पन्न होती है। फिर यदि उस कार्य के करने वाले उसके कुटुम्बीजन अथवा पूर्वज हों तो उस कार्य में उसका अनुराग और भी बढ़ जाता है । यही कारण है कि प्राचीन काल में जिनके कुलों में उत्तम और सत्कर्म होते चले आये थे, उनकी सन्तान भी प्रायः सन्मार्गगामी होती थी। इसके विरूद्ध जिनके पूर्व पुरुष बहुत समय से जघन्य आचार वाले अथवा निन्दनीय कृति वाले रहे हों, उनकी संतान का सुधार बड़ी कठिनता से होता था, क्योंकि बालक अधिकांश में अपने बड़ों से ही आचरण सीखते हैं और उसी साँचे में ढ़लते हैं, जिसमें उनके पूर्व पुरुष ढले होते हैं।

जो बात एक व्यक्ति के सम्बन्ध में कही गई है, वही समाज के सम्बन्ध में सत्य है, क्योंकि समाज या जाति व्यक्तियों के समूह का ही नाम है। जिस समाज या जिस जाति में अधिक संख्या जैसे भले या बुरे, उन्नतशील अथवा अवनतशील लोगों की होगी, वैसी ही वह जाति बन जायेगी। इसीलिये सभ्य जातियाँ अपने महान् कार्य करने वाले पूर्व पुरुषों, महात्माओं, प्रतापवान् व्यक्तियों की स्मृति को सुरक्षित बनाये रखने के लिये प्राणपण से यत्न करती हैं, जिससे आगामी पीढ़ियों को उनका श्रेष्ठ आदर्श प्रेरणा देता रहे। इस स्मृति को स्थिर रखने और ताजा बनाये रखने के दो उपाय हैं –

एक ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना और उनका पठन-पाठन जिससे बालकों और युवकों के हृदयों में अपने प्रातः स्मरणीय पुरुषों के कीर्ति-कलाप और उच्च आदर्श स्थान बना लेते हैं। दूसरी विधि उन खास तिथियों को, जब उन महापुरुषों के जीवन की कोई महान् घटना घटी हो अथवा जिस दिन उनका जन्म हुआ हो, उत्सव अथवा त्यौहार मनाना है। इससे साधारण मनुष्यों को भी उन महापुरुषों के नाम लेने और उनके सम्बन्ध में कुछ चर्चा करने का अवसर प्राप्त होता है, जिससे वे सत् शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, अपने जीवन को किसी उच्च लक्ष्य की तरफ मोड़ सकते हैं। संसार की सभी सभ्य जातियों में इस प्रकार के स्मारक-दिवस बड़े उत्साह और समारोह के साथ मनाये जाते हैं और किसी जाति की सभ्यता और उच्चता का अनुमान पूर्व पुरुषों के प्रति उसके सम्मान और वीर-पूजा से लगाया जाता है। कहा जाता है कि यूरोप में फ्रांस देश इस विषय में अग्रगण्य है और पूर्व पुरुषों के जितने स्मारक तथा स्मृति-दिवस वहाँ पाये जाते हैं, उतने और किसी देश में नहीं पाये जाते। जापान वाले तो अपना मुख्य धर्म ही पूर्वजों की पूजा करना मानते हैं और वहाँ जो ११ मुख्य त्यौहार प्रचलित हैं, उनमें से नौ पूर्व पुरुषों के स्मारक दिवस ही हैं।

सौभाग्य से हमारा भारतवर्ष भी इस विषय में किसी जाति से पीछे नहीं है। एक प्रकार से तो हम कह सकते हैं कि हिन्दुओं के बराबर त्यौहार और पर्व-दिवस संसार की किसी भी जाति में प्रचलित नहीं हैं। यदि यहाँ के सब त्यौहारों, पर्वों तथा व्रतोत्सव आदि की गणना की जाय तो उनकी संख्या इतनी अधिक है कि १ वर्ष के ३६५ दिन में से एक भी दिन ऐसा नहीं मिल सकता, जो किसी न किसी दृष्टि से पवित्र पर्व और विशेष धार्मिक कृत्य से शून्य हो। इसी से कहावत प्रचलित हो गई कि – 'सात वार और नौ त्यौहार'।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

यों तो समाज में आज ऐसे भी सज्जन मौजूद हैं जो पण्डित और ज्ञानी होने का दावा करते हुए तरह-तरह की दलीलें देकर इन पर्वों के साथ सम्मिलित कुरीतियों का समर्थन करते हैं, पर हम त्यौहारों के नाम पर या प्राचीन रूढ़ियों के बहाने किसी ऐसी बात को स्वीकार नहीं कर सकते जिनसे व्यक्तियों और समाज को हानि उठानी पड़े। अधिकांश मनुष्यों की प्रकृति प्रायः अधोगामिनी होती है और उसे जरा भी सहारा या बहाना मिल जाय तो फौरन दुर्व्यसनों की तरफ प्रेरित होती है। यही कारण है कि मनुष्यों को सदैव सन्मार्ग, पुण्य कार्यों का ही उपदेश दिया जाता है। हानिकारक कार्यों, दुर्व्यसनों अथवा गन्दे आमोद-प्रमोद के लिए किसी को उपदेश देने की जरूरत नहीं होती, इनके सिखाने वाले 'गुरू लोग' तो सब जगह बिना कोशिश किये स्वयं ही मिल जाते हैं। इसलिए कोई त्यौहार किसी भी उद्देश्य की सिद्वि के लिए क्यों न स्थापित किया गया हो, अगर उसमें कुछ हानिकारक बातों का समावेश हो गया है तो उनका त्याग अवश्य करना चाहिए। ये बातें व्यक्तिगत रूप से तो किसी प्रकार सहन करनी भी पड़ती हैं, पर इनको सामाजिक रूप दे देना महापाप समझना चाहिए, क्योंकि फिर तो उसका प्रभाव भले-बुरे सभी श्रेणियों के लोगों पर पड़ता है।

त्यौहार और धार्मिक उत्सव जाति के लिए नव-जीवन प्रदान करने वाले और स्फूर्ति प्रदायक होते हैं, इसलिए उनका प्रचार बढ़ाना और उनको उत्साह से मनाना तो सभी समाज-हितैषियों का परम कर्त्तव्य है, पर साथ ही यह ध्यान रखना भी परमावश्यक है कि हम उनके वास्तविक उद्देश्य और रूप को न भूलें। समय के प्रभाव से व्यक्ति और वस्तुओं की तरह संस्थाएँ और प्रथाएँ भी जीर्ण पड़ जाती हैं और उनमें अनेक प्रकार की कमजोरियाँ, दूषण प्रवेश कर जाते हैं। समझदार समाज-नेताओं का कर्त्तव्य है कि इस तरफ ध्यान देते रहें और जिस प्रकार हम प्रतिवर्ष अपने गृहों, वस्तुओं की सफाई, मरम्मत आदि कराते रहते हैं, उसी प्रकार सामाजिक प्रथाओं में भी समयानुकूल संशोधन और परिवर्तन करते रहें। प्रत्येक सामाजिक प्रथा, त्यौहार या उत्सव आदि को अटल-अचल समझ लेना मूर्खता का लक्षण है। हमें इस सम्बन्ध में सबसे पहले यह सूत्र याद कर लेना चाहिए कि "तमाम प्रथायें मनुष्यों के लिये बनाई गई हैं, न कि मनुष्य इन प्रथाओं के लिए।" जो व्यक्ति ऐसा समझते हैं या ऐसा कहते हैं कि ये तमाम त्यौहार और उनकी पद्धतियाँ सदा से ऐसी ही चली आई हैं और सदा ऐसी ही रहनी चाहिए, वे विचारशील कदापि नहीं हो सकते, बुरा न माना जाय तो उनको 'कूप-मंडूक' भी कहा जा सकता है। त्यौहार और समाजिक उत्सव सदैव कुछ न कुछ बदलते रहते हैं और उनके करने की विधियाँ तो आज भी हर प्रदेश में कुछ न कुछ भिन्न हैं। हजार दो हजार वर्ष की बात तो छोड़ दीजिये, अब से पाँच-सात सौ वर्ष पहले के साहित्य और ऐतिहासिक ग्रन्थों की भी भली प्रकार खोज कीजिये तो आपको मालूम पड़ेगा कि उस समय मनाये जाने वाले अनेक त्यौहार आज समाप्त हो गये हैं और कितने ही नये प्रचलित हो गये हैं। इतनी दूर भी जाने की जरूरत नहीं, हम अपनी आयु के भीतर ही विचार करके देखें और पता लगावें तो कितने ही त्यौहार और उत्सव जो हमारी बाल्यावस्था में धूमधाम से मनाये जाते थे, आज बिलकुल खत्म हो गये हैं या कम पड़ गये हैं। पर खेद है कि जो लोग विचारशीलता से कोई नाता ही नहीं रखते, 'खोज करना' किस चिड़िया का नाम है, यह जानते ही नहीं और जिनकी निगाह अपनी गली से बाहर भी नहीं जाती, वे किसी भी प्रथा के लिए लाखों और करोड़ों वर्ष से कम की बात ही नहीं कहते। ऐसे लोग समाज को पीछे की तरफ धकेलने वाले होते हैं।

त्यौहारों और सार्वजनिक उत्सवों की विवेचना में हमारा लक्ष्य यही है कि अपने पूर्व पुरुषों के अनुकरणीय और उज्ज्वल सत्कार्यों की स्मृति को कायम रखते हुए, हम उनको इस प्रकार मनावें जिससे वे हमारे लिए ही नहीं, मनुष्यमात्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध हों। हमें सदैव उनसे कोई सत्शिक्षा, सत्प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। हमें उनको

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ऐसे समयानुकूल ढंग से मानना चाहिए जिससे वे हमारी किसी आवश्यकता की पूर्ति करें और त्रुटियों को दूर करें।

एक आवश्यक बात यह भी है कि त्यौहारों की संख्या बहुत बड़ी होना कोई प्रशंसा की बात नहीं है। इस स्थिति का नतीजा यह होता है कि त्यौहारों का महत्त्व और विशेषता अनेक अंगों में खत्म हो जाती है और लोग उनको भाररूप समझने लगते हैं। जैसा हम आरम्भ में लिख चुके हैं, त्यौहारों का एक बहुत बड़ा उद्देश्य यह है कि मनुष्य बहुत समय तक एक सा काम करते हुए और एक रस जीवन व्यतीत करते हुए जब ऊब जाता है तो उसकी तबियत को बदलने के लिए, थकावट को दूर करके विश्राम पाने के लिए उसके सामने कोई नवीन कार्यक्रम, कोई नवीन आकर्षण उपस्थित किया जाय। यह उद्देश्य तभी सिद्ध हो सकता है जबकि त्यौहारों का अवसर उचित समय और फासले से आये। अगर हम हर रोज ही त्यौहार और व्रतोत्सव मनाते रहें तो उनकी विशेषता कैसे टिक सकती है? फिर तो वे लोगों को समय और धन खर्च कराने वाले एक बोझ की तरह जान पड़ेंगें। इसलिए आवश्यकता है कि हम चाहे दस या बीस ही त्यौहार मनायें, पर उनको पूरे उत्साह और व्यवस्था के साथ मनायें। तभी उनके मानने का उद्देश्य पूरा हो सकता है और हमारी दृष्टि में उनकी श्रद्धा और प्रतिष्ठा कायम रह सकती है।

हर व्यक्ति का इस संदर्भ में लक्ष्य यही होना चाहिए कि वह प्रत्येक त्यौहार के वास्तविक रूप को समझकर उसे ऐसे तरीके से मनावे जो समाज के लिये हितकारी सिद्ध हो। उसको यह समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार हिन्दूशास्त्रों में बतलाये षोडश या द्वादश संस्कार मनुष्य के व्यक्तिगत चरित्र का निर्माण करके उसकी उन्नति में सहायक होते हैं, उसी प्रकार ये त्यौहार और पर्वोत्सव आदि सामाजिक विकास और उसके संगठन को सुदृढ़ करने वाले संस्कार हैं। इनका उद्देश्य सदैव समाज का हित होना चाहिए और जो कोई बात इसके विपरीत जान पड़े उसका धर्म के वास्तविक तत्वों को दृष्टिगोचर रखाते हुए संशोधन करना चाहिए।

प्रत्येक त्यौहार के अवसर पर यज्ञ (हवन), अध्ययन (शास्त्रों का पठन–पाठन) और दान (सत्पुरुषों और लाभकारी संस्थाओं की सहायता) तो हमारा कर्त्तव्य ही है। इनके सिवाय जो लौकिक या आमोद-प्रमोद की विधियाँ हैं, वे सभी स्थानों में कुछ-न-कुछ भिन्न हुआ करती हैं। इसलिये उनको अपने स्थान की प्रथा के अनुसार सुरूचिपूर्ण ढ़ंग से मनाने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। हाँ, जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, कि उन सब में समाज हित के मूल सिद्धान्त का ध्यान अवश्य रखा जाय, उसके विपरीत कोई कार्य न किया जाय और जहाँ ऐसी कोई बात दिखलाई पड़े उसका समझदारी और प्रेमपूर्वक संशोधन कर दिया जाय।

पर्व और त्यौहारों की उपयोगिता

हिन्दू-धर्म में पर्व और धार्मिक त्यौहारों का इतना बाहुल्य है कि उनके लिये जनता में "सात बार और नौ त्यौहार" की कहावत प्रचलित हो गई है। यदि खोज और विचार करके देखा जाय तो इस कहावत में कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है। हिन्दू-धर्म में वास्तव में प्रत्येक तिथि और बार को पर्व माना गया है और उसे मनाने के लिये विशेष धार्मिक विधान भी बतलाया है। इनके सिवाय देवताओं, अवतारों, महापुरुषों की स्मृति अथवा जयन्ती के लिये भी त्यौहार नियत किये गये हैं। कुछ अन्य पर्व जैसे संक्रांति, ग्रहण, कुम्भ आदि आकाशस्थित ग्रहों के योग और उनसे पृथ्वी पर पड़ने वाले शुभाशुभ प्रभाव को दृष्टिगोचर रखकर मनाये जाते हैं।

ये पर्व या त्यौहार किसी भी श्रेणी के क्यों न हों, और उनका बाह्यरूप कैसा भी क्यों न हो, उनको स्थापित करने में हमारे पूर्वजों का मुख्य उद्देश्य यही था कि सर्व साधारण में धार्मिकता, सामाजिकता और परोपकार आदि की भावनायें बढ़ें तथा लोगों की प्रवृति भौतिकता की तरफ से आध्यात्मिकता की ओर हो। भारतीय संस्कृति का एक मुख्य लक्षण अन्तर्मुख होना है। बाहरी चीजें चाहे कितनी भी चमक-दमक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाली और आकर्षक जान पड़ें पर उनके द्वारा आत्मा का विकास नहीं हो सकता, उल्टा वे मनुष्य के विचारों को परमार्थ से स्वार्थ की तरफ प्रेरित करने वाली ही होती हैं इसलिये भारतीय ऋषि-मुनियों ने लोगों को यथाशक्ति अधिक से अधिक समय धार्मिक कृत्यों, धर्मोत्सवों, धार्मिक विधि-विधानों में लगाने की व्यवस्था की है जिससे वे जीवन के वास्तविक लक्ष्य को याद रखते हुये सन्मार्ग पर स्थिर रहें।

धर्म और आध्यात्मिकता के भावों की वृद्धि के साथ ही धार्मिक और सामाजिक त्यौहारों का एक दूसरा बड़ा उद्देश्य सामूहिक की वृद्वि करना भी हैं। मानव-जीवन की सफलता के लिये जहाँ व्यक्तिगत उन्नति और सत्प्रवृतियों को ग्रहण करने की आवश्यकता है, वहाँ समाज संगठन का सुदृढ़ बनाना और पारस्परिक सहयोग के द्वारा सामाजिक हित की बड़ी योजनाओं की पूर्ति करना भी अत्यावश्यक है। इसके लिये लोगों में पारस्परिक एकता—भाई चारे की मनोवृति का उत्पन्न होना आवश्यक है। हमारे यहाँ होली, दिवाली, दशहरा और स्नान आदि के जो त्यौहार और पर्व नियत किये गये हैं उनका विशेष उद्देश्य यही है कि लोग परस्परप्रेम पूर्वक मिलें और सामूहिकता की भावना को सुदृढ़ बनावें।

जो त्यौहार या उत्सव किसी प्राचीन महापुरुष या अवतार की जयन्ती के रूप में मनाये जाते हैं उनका एक बहुत बड़ा लाभ यह होता है कि जनता को उनके द्वारा सच्चरित्रता, नैतिकता, सेवा, सद्भावना आदि की शिक्षा मिलती है। इस प्रकार के उत्सव संसार के सभी देशों में मनाये जाते हैं, और इस बात का ध्यान रखा जाता है कि जन साधारण अपने उन महान् पूर्वजों से उच्च कोटि के सद्गुणों की प्रेरणा प्राप्त करें। वास्तव में जिस जाति के यहाँ ऐसे-ऐसे महापुरुषों का अभाव है, वह उन्नति की आशा नहीं रख सकती क्योंकि साधारण मनुष्य के लिए बिना किसी मार्ग-दर्शक अथवा प्रकाशस्तम्भ के संसार में सफलताापूर्वक अग्रसर हो सकना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि उन्नति की कामना रखने वाली जातियाँ अपने पूर्व पुरुषों के चरित्रों और महान् कार्यों को बड़े गौरव के साथ याद करती हैं। उदाहरण के लिये यूरोप में फ्रांस और एशिया में जापान का उल्लेख कर सकते हैं। ये दोनों देश अपेक्षाकृत छोटे होने पर भी वीर-पूजा के गुण के कारण ही संसार की राष्ट्र मण्ड़ली में अग्रगण्य बन गये।

उस दृष्टि से जब हम भारतवर्ष की अवस्था पर विचार करते हैं तो यहाँ भी महापुरुषों का कोई अभाव दिखलाई नहीं पड़ता। वरन् सत्य बात तो यह है कि हमारे देश में जितने अधिक आदर्श चरित्र के व्यक्ति हुए हैं, उतने संसार के किसी भी बड़े से बड़े देश में मिल सकना असम्भव है। राम, कृष्ण, बुद्ध आदि ईश्वरीय श्रेणी के महामानवों की बाता छोड़ दीजिए, हमारे जितने भी मुनि, ऋषि, नरेश, संत आदि हुए। वे सभी आदर्श जीवन बिताने वाले महापुरुष थे और उनमें से प्रत्येक का जीवन हमारे लिए अनुकरणीय है। हिन्दुओं के अधिकांश त्यौहारों का ऐसी ही किसी न किसी दैवी विभूति से सम्बन्ध है और इस कारण वे हमारे लिए हर प्रकार से शिक्षाप्रद और कल्याणकारी मार्ग के प्रदर्शक हैं।

पर खेद का विषय है कि जिस प्रकार हिन्दू समाज के संगठन में अन्य अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न हो गई हैं, उसी प्रकार इन पर्वों और त्यौहारों के स्वरूप में भी बड़ा अन्तर पड़ गया हैं। लोग उनके मूल उद्देश्य और वास्तविक नियमों को भूल गए हैं और स्वार्थी अथवा अशिक्षित लोगों द्वारा बीच में पैदा की गई रूढ़ियों की लकीर को ही पीट रहें हैं। इतना ही नहीं कितने ही हीन चरित्र के अथवा दुर्व्यसनी लोगों ने तो इन त्यौहारों में अनेक हानिकारक और गन्दी बातें शामिल करदी हैं और उनकी निगाह में वे ही सार रूप होती हैं। उदाहरण के लिए अनेक जुएवाज दिवाली की राह बड़े शौक से देखते रहते हैं और उसके आने पर एक दिन, घंटे दो घंटे के लिये नहीं, जितना संभव होता है दस-दस, बीस-बीस दिन तक जुए का बाजार गर्म रखते हैं। इसी प्रकार होली के अवसर पर गुण्डा और बदमाश श्रेणी के लोग तरह-तरह के उपद्रव मचाने और भले आदमियों को तंग करने के मौके ढूँढते रहते हैं। वे जान बूझकर दूसरों की वस्तुओं को नष्ट करते हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और हर किसी को बेइज्जत करने की कोशिश करते हैं जहाँ होली सामूहिकता की भावना को बढ़ाने वाला हमारा सब से प्रमुख त्यौहार था, वहाँ ऐसे नीच लोग उसे वैमनस्य और झगड़े फसाद का कारण बना देते हैं।

अब समय बदल रहा है और हिन्दू जाति सावधान होकर अपनी त्रुटियों को दूर करके, अपने संगठन को सुदृढ़ बनाने की कोशिश कर रही है, करने लगती है कि इस सृष्टि में भी सभी सुखी, आरोग्य , शुभ दृष्टि वाले एवं आनन्दमय बनें। उनकी यही अभीष्ट संसार में फलवती-चरितार्थ हो । इसके लिये उन्होंने भिन्न-भिन्न, सद्गुणों का चयन, दुर्गुणों का परित्याग, संयम, नियम, जप, तप, उपासना, दान, उपकार, सत्कर्मों के विधान रचे। पर ये बाह्य कर्म विधानों के रूप एक ही लक्ष्य स्थान पर जाने वाले विविध पंथों की भाँति कभी एक नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त व्यक्तियों और समुदायों की मनोवृति तथा रूचि में देश, काल और पात्र के कारण जो भेद रहता है उसके अनुसार भी विभिन्न प्रकार के मार्गों की आवश्यकता पड़ती है । इसीलिये भिन्न-भिन्न ऋषियों द्वारा एक ही काल, देश एवं पात्र के लिये भिन्न-भिन्न विधान रचे गये। परिस्थिति की परिवर्तित स्थिति के अनुसार उन विधानों के स्वरूपों की विविधता बढ़ती ही गयी, पर लक्ष्य एकता के कारण इन विविध विधानों को एक दूसरे के विरोध में कभी खड़ा नहीं किया गया। जब कभी मन-बुद्धि की सीमितता, अज्ञानता और खण्ड़ित अपूर्ण दृष्टि के कारण व्यापक विस्तृत विरोध हुआ उसी समय किसी ऋषि के प्रगटीकरण द्वारा उसे प्रेम, ज्ञान, अनुभूति और सामंजस्य से दूर किया गया, समाधानपूर्वक अज्ञान के अन्धकार का नाश हुआ।

भारतीयों की इसी आस्था, श्रद्धा, विश्वास एवं निष्ठा के कारण ही भारतीय संस्कृति अनेक बाह्य रूप परिवर्तनों के बीच बहती हुई भी अपनी अखण्डता-अजस्रता-निरन्तरता संरक्षित रखे रही साथ ही सदा समय-समय पर आवश्यक परिमार्जन होते रहने के कारण कोई कालिमा-कलंक और कोई इसमें नहीं लगने पाई और न आज भी उस में कोई धूमिलता का लवलेश वहाँ टिकने पाया है – भले ही यह कहा जा सकता है कि आज उसके लक्ष्य के अनुसार आचरण करने वालों की संख्या में भारी कमी आ गयी है, पर व्यक्तिगत रूप से ही नहीं, सामाजिक रूप से भी उसका स्वरूप अव्यात और अक्षुण्ण रहा है। इसीलिये इस संस्कृति और धर्म को सनातन कहा जाता है।

भारत की आध्यात्मिकता में ही भारतीय संस्कृति का निवास है, यही भारतीयता है, इसीलिये ही भारतीय संस्कृति एकमात्र आध्यात्मिक, अति मानसिक, – अतिबौद्धिक संस्कृति है। जिस प्रकार परमात्मा सृष्टि के सभी प्राणियों के कल्याण का विधान करता हुआ सृष्टि, रक्षा और संहार करता है, उसी भाँति भारतीय संस्कृति भी सदा सद्गुणों की सृष्टि, उनका संरक्षण एवं कल्याण विरोधी दुष्ट तत्त्वों के विनाश की व्यवस्था करती है। वस्तुतः यह मानवीय, विश्वव्यापी एवं सर्वलोक हितकारिणी संकृति है जो उसका अपनी अज्ञानता के कारण विरोध करता है, उसका भी कल्याण करने की ही यह संस्कृति सोचती और मार्ग बताती है।

अभी तक मनुष्य ही इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ या सर्वाधिक विकसित प्राणी है। इससे इतर सभी प्राणियों की अपेक्षा मनस्तत्व (मन-बुद्वि) का उन्नत विकास इसी में आकर हुआ है। पर मन-बुद्धि का स्वभाव ही है सभी वस्तुओं का विश्लेषण करना, सभी को अलग-अलग करके देखना, एक-दूसरे के विरोध में खड़ा करना, समष्टि रूप से भी अनुकूल और प्रतिकूल की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ बनाना आदि-आदि। यदि इसके द्वारा कहीं संगठन-एकता मिलन कराये भी जाते हैं तो उसका अन्तर भेद ज्यों–का–त्यों अविचल रखा जाता है। इसका एक श्रेष्ठतर नाम रखा गया हैं "आत्म स्वातन्त्र्य"। यह वैयक्तिक स्वतन्त्रता का संरक्षण एवं पोषण करते हुए आत्म-स्वार्थ (अपने आपके सुख स्वार्थ) में आकर परिणत हो जाता है। यदि यह उदार भाव उपना विस्तार भी करता है तो कभी अनन्तता असीम विस्तार की ओर – जो अध्यात्म दृष्टि की गति है, पग नहीं बढ़ाता, क्योंकि ऐसा करने से उस की भेदवादी वृत्ति

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नष्ट होती है। भेदवादी दृष्टि को खेाना – उसे नष्ट होने जाने देने में वह अज्ञानता से अपना ही अस्तित्व विनाश होता हुआ देखता है। अपना अस्तित्व नष्ट होने देना कौन पसन्द करता है ? अतः इसी भय के कारण वह विस्तार में जाते हूए कहीं अटक कर अपनी सीमा बना लेता है और इस सीमा से बाहर के व्यक्तियों, समूहों और दलों को यदि अपना विरोधी नहीं तो पराया बना लेता है और यही कारण है कि (आत्म-चेतना हीन) बुद्धिवादी संस्कृति, चाहे वह सुख, वैभव, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, कला एवं विज्ञान में कितनी ही उन्नति क्यों न प्राप्त कर ले, आध्यात्मिक (भारतीय) संस्कृति की विरोधिनी होती है।

बुद्धिवादी संस्कृति, और दर्शन वैयक्तिक सत्ता के विलय (अहं तत्त्व के विनाश) को सदा भय की दृष्टि से देखते हैं। लगता है कि इसके बिना तो जीवन, जीवन ही नहीं रह सकता। पर भारतीय संस्कृति ने इसी के द्वारा जो खोज पाया है उपलब्ध किया है, वही इसे अमर बनाता है। व्यक्ति सत्ता को विकसित कर समष्टि रूप होना, मन–बुद्धि के व्यापार को शान्त कर अखण्ड में प्रवेश पाना, भारतीय संस्कृति का भावात्मक आदर्श है। बुद्धि जिसकी कल्पना करने में असमर्थ है, फिर उसकी प्राप्ति करने-कराने की बात ही नहीं, इस आदर्श को कोरी भावुकता, कह कर उपेक्षा या मजाक कर सकती है और इसे असम्भव कह कर मानव जीवन को इसके लिये खपाना व्यर्थ बना सकती है, फिर भी भारतीय संस्कृति उसे भेद कर अपनी दिव्यता समय-समय पर उद्‌भासित करती रही है।

सामूहिकता की आवश्यकता

भारतीय संस्कृति का उद्‌देश्य व्यक्ति को और उसके द्वारा समाज को धर्म-परायण एवं कर्तव्यनिष्ठ बनाना है। ये ही दो बातें किसी भी मनुष्य को सुसंस्कृत कहलाने का अधिकार देती हैं। इसलिये हमारी प्राचीन संस्कृति के सभी आदर्श और विधि-विधान ऐसे रखे गये हैं कि उनके द्वारा मनुष्य की भौतिक उन्नति होने के साथ–साथ मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी उसका उत्थान हो।

हिन्दू–समाज में प्रचलित जात कर्म, यज्ञोपवीत, विवाह आदि से लेकर अन्त्येष्टि क्रिया तक जो सोलह संस्कार प्रचलित हैं, उनका मुख्य उद्‌देश्य यही है कि उनके द्वारा संस्कार किये जाने वाले व्यक्ति पर और दर्शकों पर भी कल्याणकारी प्रभाव पड़े। इन संस्कारों में प्रयोग किये जाने वाले वैदिक मन्त्रों में एक विशेष प्रकार की सूक्ष्मशक्ति पाई जाती है और शिक्षाएँ भी उच्च कोटि की दी गई हैं। उनसे लोगों पर बहुत उत्तम मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ सकता है बशर्ते कि संस्कारों को उनका आशय समझकर उपयुक्त ढंग से किया जाय। जिस समय हमारे समाज में उनका वास्तविक रूप में प्रचार था और ज्ञानी ऋषि–मुनियों द्वारा वे शास्त्री विधान से प्रयुक्त किये जाते थे उसी काल में ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हुये हैं जिनका नाम व यश सहस्रों वर्ष बीत जाने पर अभी तक स्थिर है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मनुष्य के चरित्र–निर्माण और मनोभूमि को सुसंस्कृत बनाने के लिये ये संस्कार भारतीय संस्कृति की महान देन हैं।

इन संस्कारों के महत्त्व और लाभों को देखते हुये हमारा कर्तव्य है कि उनमें समयानुकूल थोड़ा–बहुत परिवर्तन करके उनका अपने घरों में प्रचार करें। यदि समस्त संस्कारों का करना कठिन जान पड़े तो भी जन्मोत्सव तथा यज्ञोपवीत संस्कार तो अच्छे रूप में मनाना ही चाहिए। इनमें सबसे पहली बात इनको सामूहिक रूप देने की है। यज्ञोपवीत संस्कार को तो यदि बड़े-बड़े यज्ञों के अवसर पर सामूहिक रूप से किया जाय तो समाज का बड़ा उपकार हो सकता है। वर्तमान समय में इस संस्कार को बड़ा खर्चीला बना दिया गया है जिससे अधिकांश व्यक्तियों ने उसका करना ही बन्द कर दिया है और बहुत से विवाह के समय ही उसकी रस्म भी नाम मात्र को पूरी कर देते हैं। इसलिये आजकल इस संस्कार को यदि बड़े-बड़े यज्ञों के अवसर पर सामूहिक रूप से किया जाय तो सब तरह लाभ ही है। इन यज्ञों में सब प्रकार की व्यवस्था,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

योग्य आचार्य, उत्सव की तैयारियाँ पहले से होती हैं। उस समय यज्ञोपवीत पूर्णतः शास्त्रानुकूल रीति से हो सकता है और इतने बड़े जन–समुदाय के समक्ष प्रतिष्ठित व्यक्तियों के हाथ से ग्रहण करने के कारण उसका महत्त्व भी हृदय पर अंकित हो जाता है। यज्ञोपवीत की यह व्यवस्था लाभदायक ही नहीं वरन् वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए हम तो इसे अनिवार्य ही मानते हैं। यदि इसे नहीं अपनाया जायेगा तो धन तथा श्रद्धा दोनों के अभाव से कुछ समय में इसका चिह्न भी शेष न रहेगा।

इसी प्रकार जन्मदिन का जन्मोत्सव संस्कार भी कम से कम खर्च में सामूहिक हवन करके या केवल सत्संग करके ही अवश्य करना चाहिए। इसमें मुख्य बात तो वे शिक्षायें हैं जो इस अवसर पर विद्वान और अनुभवी जनों से प्राप्त होती हैं। इन सब अवसरों पर सामूहिकता का ध्यान अवश्य रखना चाहिए, क्योंकि कलियुग में इसी का सर्वाधिक महत्त्व है। सामूहिक कार्यक्रमों से पारस्परिक प्रेमभाव, आत्मीयता एवं संगठन शक्ति की वृद्धि होती है और अनेकों कठिन समस्याएँ स्वयमेव हल हो जाती हैं।

जिस प्रकार व्यक्तिगत जीवन के उत्थान और निर्माण के लिये संस्कारों की रचना की गई है उसी प्रकार समस्त समाज को संगठित और सुसंस्कृत बताने के लिए हमारे पूर्वजों ने विभिन्न त्यौहारों की स्थापना की थी। इनमें से प्रत्येक त्यौहार के भीतर एक विशेष आदर्श निहित है जिससे व्यक्ति को समाज के प्रति अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व की शिक्षा मिलती है। यह एक प्रत्यक्ष बात है कि केवल लिखने–पढ़ने ये उपदेश देने से मनुष्य पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है, पर बड़े-बड़े प्रदर्शनों और उत्सवों द्वारा उसे ये उपयोगी शिक्षाएँ सहज ही में दी जा सकती हैं। फिर हमारे देश में तो अभी पढ़े-लिखे व्यक्तियों की संख्या ही नाम मात्र को है। खास कर ग्रामीण जनता तो अब भी अधिकांश में निरक्षर ही है। इसलिये प्राचीनकाल के महापुरुषों और सच्ची देवियों के चरित्रों का स्मरण कराने वाले त्यौहारों का आदर्श रूप में मनाना समाज के लिये सब प्रकार से हितकारी है।

पर इसके लिये सबसे पहली बात यह है कि समय के प्रभाव से त्यौहारों के मनाने में जो हानिकारक रूढ़ियाँ घुस गई हैं और उनका जो विकृत रूप हो गया है, उसका सुधार अवश्य करना चाहिए। उदाहरण के लिए होली हमारे यहाँ का सबसे बड़ा सामूहिक त्यौहार है, और समाज के संगठन का उससे बढ़कर दूसरा अवसर मिल नहीं सकता। पर धीरे-धीरे लोगों ने उसको ऐसा बिगाड़ दिया है और इतनी अधिक गन्दगी उसमें भर दी है, कि ज्यादातर भले आदमी तो उसमें भाग लेना तो दूर उस दिन घर से बाहर निकलना भी पसन्द नहीं करते। वह एक प्रकार से हुल्लड़बाजों और आवारा ढंग के लोगों का उत्सव बन गया है। इसी प्रकार दिवाली में भी जुआ खेलने की ऐसी परिपाटी चलादी है कि उससे हजारों व्यक्तियों का सर्वनाश हो जाता है। जो त्यौहार इतने अधिक नहीं बिगड़े हैं, वे भी केवल चिह्न-पूजा के रूप में रह गये हैं, और उनका उद्देश्य पकवान, मिष्ठान बनाकर खा लेना और कोई छोटा–मोटा कर्मकाण्ड कर लेना ही रह गया है। यह स्थिति वास्तव में बड़ी निराशाजनक है। जिस देश या जाति के प्रेरणादायक सामाजिक उत्सव और त्यौहार शिथिल और विकृत हो जाते हैं, वहाँ का समाज भी दुर्बल हो जाता है।

हमारा हर एक संस्कार और त्यौहार, व्रतोत्सव, पर्व आदि एक सार्वजनिक सामूहिक सम्मेलन का रूप धारण करके समाज के लिये हितकारी सिद्ध हो सकता है। इसका मुख्य उद्देश्य जनता में नैतिकता और सच्चरित्रता के भावों का उत्पन्न करना ही होना चाहिए। इससे हमारे सांस्कृतिक पुनरूत्थान में भी काफी सहायता मिल सकती है।

८ - श्राद्ध (मृत्यु-भोज) और तर्पण

भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म में श्राद्ध का अपना विशेष स्थान है। श्राद्ध शब्द श्रद्धा से बना है और उसी से उसके गुप्त तात्पर्य पर प्रकाश पड़ता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। सत्कर्मों के लिये, सत्पुरुषों के लिए आदर की, कृतज्ञता की भावना रखना श्रद्धा कहलाता है। जिस व्यक्ति ने हमारे साथ उपकार किया है, हम उसका श्रद्धा सहित सस्मरण करते हैं। इस स्मरण में भजन-पूजन के साथ-साथ भोजन की व्यवस्था भी रहती है। यह सम्मिलित रूप श्राद्ध कहलाता है। श्राद्ध एक प्रकार से मृत पूज्य व्यक्तियों के प्रति कृतज्ञता की भावना स्पष्ट करना है। गुरूजनों के चरण स्पर्श, अभिनन्दन, सेवा आदि भावों की वृद्धि हमारे यहाँ महत्त्वपूर्ण मानी गई है। जब तक गुरूजन रहें, उनके प्रति कृतज्ञता चलती रहती है; स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् भी वही श्रद्धा कायम रहनी चाहिए। इस दृष्टि से मृत्यु के पश्चात् पितृ पक्षों में मृत्यु की वर्ष तिथि के दिन, पर्व समारोहों पर श्राद्ध करने का श्रुति-स्मृतियों में विधान पाया जाता है। नित्य की संध्या के साथ तर्पण जुड़ा हुआ है। जल की एक अंजलि भर कर कृतज्ञता के भाव से भर कर हम स्वर्गीय पितृ-देवों के चरणों में उसे अर्पित कर देते हैं। इस प्रकार श्रद्धा, प्रेम, कृतज्ञता, अभिनन्दन सभी का मिश्रित रूप हमारे श्राद्ध हैं।

श्राद्धों के द्वारा हमारी संस्कृति ने श्रद्धा तत्व को जीवित रखने का प्रयत्न किया है। जीवित पितृ को तो हम सेवा-पूजा, आराधना से प्रसन्न कर लेते हैं, पर स्वर्गीय पितरों को कृतज्ञता प्रकट करने का यही उपाय है। हिन्दू श्राद्ध करके ही मृतकों के उपकार, प्रेम, आत्मीयता से कृतज्ञ हो जाता है।

हिन्दू संस्कृति की उदारता महान् है। उसमें संकीर्णता कहीं नहीं है। कर्मकाण्ड़ों में आधे से अधिक श्राद्ध तत्त्व भरा पड़ा है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी, अग्नि, जल, कुआँ, तालाब, नदी, मरघट, खेत, खलिहान, चक्की, चूल्हा, तलवार, कलम, जेवर, रूपया, घड़ा, पुस्तक आदि निर्जीव पदार्थो तक के प्रेम हम अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता प्रकट करते रहे हैं। विवाह संस्कारों के अवसरों पर नाली या घूरे तक की पूजा होती है। वृक्षों में तुलसी, पीपल, बड़, आंवला आदि तथा पशुओं में गौ, बैल, घोड़ा, हाथी तक पूजे जाते हैं।

श्राद्ध किस तत्त्व पर टिका है? भारतीय संस्कृति यह मानती है कि शरीर के नष्ट हो जाने पर भी जीव का आस्तित्त्व नहीं मिटता। वह सूक्ष्म रूप में हमारे चारों ओर के वातावरण में घूमते रहते हैं। जीव को फिर भी अपने परिवार के प्रति कुछ न कुछ ममत्व रह जाता है। सूक्ष्म आत्माएँ आसानी से सब लोकों से आकर हमारे चारों ओर चक्कर लगाया करती हैं। हमारे विचार और भावनाएँ इस सूक्ष्म वातावरण में फैलते हैं। इन्हें हम जिस तेजी से बाहर के वातावरण में फेंकते हैं, ये उसी गति से दूर-दूर तक फैल जाते हैं। अतः श्राद्ध में प्रकट किये गये पूर्वजों के प्रति हमारे आत्मीयता, सद्भावना, कृतज्ञता के भाव उन आत्माओं के पास पहुँच जाते हैं। उसे इनसे सुख, शान्ति, प्रसन्नता और स्वस्थता मिलती है।

इसी प्रकार तर्पण का वह जल पितरों के चरणों में एक प्रकार की श्रद्धांजलि माना गया है। यद्यपि यह जल तो यहीं गिर जाता है, पर जल ग्रहण करते समय हमारे मन में जो पवित्र कृतज्ञता के भाव आते हैं, उनका बड़ा महत्त्व है। हमारे मन की संकीर्णता, दुष्टता, ईर्ष्या, द्वेष आदि दूषित तमोगुणी नीच भावनाएँ नष्ट होती हैं और प्रेम, त्याग, कृतज्ञता के भाव फैलते हैं। मन में पितरों की उपकारमयी, स्नेहमयी देवोपम मूर्तियाँ आती हैं। सद्विचार फैलते हैं। विचारों को अनुकूल बनाना ही पुरुषार्थ है। अभ्यास से विचार अनुकूल या प्रतिकूल बनते हैं। जो पुरुष जिस प्रकार के विचार बार-बार मन में लाता है, वह उसी प्रकार का स्वयं बनता जाता है। श्राद्ध और तर्पण में कृतज्ञता, उपकार, प्रेम, त्याग आदि की सद्भावनएँ हमारे मन में आती हैं और हमें सुख-सन्तोष प्राप्त होता है। कृतज्ञता से इच्छा शक्ति बलवान् बनती है। श्रद्धा की भावना बढ़ती जाती है। सात्विक, परमार्थिक और धार्मिक दृष्टिकोण से हमारी उच्च वृत्तियाँ पनपती हैं। प्रति वर्ष श्राद्ध हमें यह याद दिलाते हैं कि हमारे जो उपकारी पूजनीय एवं आत्मीय पुरुष स्वर्ग सिधार गये हैं, उनके प्रति कृतज्ञता की भावना रहना और प्रकट करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

श्राद्ध का रहस्य

श्रद्धा से श्राद्ध शब्द बना है। श्रद्धा पूर्वक किये हुए कार्य को श्राद्ध कहते हैं। सत्कार्यों के लिए, सत्पुरुषों के लिए आदर की, कृतज्ञता की, भावना रखना श्रद्धा कहलाता है। उपकारी, तत्त्वों के प्रति आदर प्रकट करना, जिन्होंने अपने को किसी प्रकार लाभ पहुँचाया है, उनके लिए कृतज्ञ होना श्रद्धालु का आवश्यक कर्तव्य है। ऐसी श्रद्धा हिन्दू धर्म का मेरूदण्ड है। इस श्रद्धा को हटा दिया जाय तो हिन्दू धर्म की सारी महत्ता नष्ट हो जायेगी और वह एक निःस्वत्व छूंछ मात्र रह जायेगा। श्रद्धा हिन्दू धर्म का एक अंग है इसलिए श्रद्धा उसका धार्मिक कृत्य है।

माता पिता और गुरू के प्रयत्न से बालक का विकास होता है। इन तीनों का उपकार मनुष्य के ऊपर बहुत अधिक होता है। उस उपकार के बदले में बालक को इन तीनों के प्रति अटूट श्रद्धा मन में धारण किये रहने का शास्त्रकारों ने आदेश किया है। "मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव" इन श्रुतियों में इन्हें देव–नरतन धारी देव–मानने और श्रद्धा रखने का विधान किया है। स्मृतिकारों ने माता को ब्रह्मा, पिता को विष्णु और आचार्य को शिव का स्थान दिया है। यह कृतज्ञता की भावना सदैव बनी रहे, इसलिए गुरूजनों का चरण स्पर्श, अभिवन्दन करना नित्य के धर्म कृत्यों में सम्मिलित किया गया है। यह कृतज्ञता की भावना जीवन भर धारण किये रहना आवश्यक है। यदि इन गुरूजनों का स्वर्गवास हो जाय तो भी मनुष्य की वह श्रद्धा कायम रखनी चाहिए। इस दृष्टि से मृत्यु के पश्चात् पितृ पक्षों में मृत्यु की वर्ष तिथि के दिन, पर्व समारोहों पर श्राद्ध करने का श्रुति स्मृतियों में विधान पाया जाता है। नित्य की संध्या के साथ तर्पण जुड़ा हुआ है। जल की एक अंजली भर कर हम स्वर्गीय पितृ देवों के चरणों में उसे अर्पित कर देते हैं। उसके नित्य चरण स्पर्श अभिवन्दन की क्रिया दूसरे रूप में इस प्रकार पूरी होती है। जीवित और मृत पितरों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का यह धर्मकृत्य किसी न किसी रूप में मनुष्य पूरा करता है और एक आत्म-संतोष का अनुभव करता है।

इन्हीं विशेष अवसरों पर श्राद्ध पर्वों में–हम अपने पूर्वजों के लिये ब्राह्मणों को अन्न, वस्त्र, पात्र आदि का दान करते हैं, और यह आशा करते हैं कि यह वस्तुयें हमारे पितृ देवों को प्राप्त होंगी। इस सम्बन्ध में आज एक तर्क उपस्थित किया जाता है कि दान की हुई वस्तुएँ पितरों को न पहुँचेंगी। स्थूल दृष्टि से, भौतिकवादी दृष्टिकोण से, यह विचार ठीक भी है। जो पदार्थ श्राद्ध में दान दिये जाते हैं वे सब उसी के पास रहते हैं जिसे दिये जाते हैं। खिलाया हुआ भोजन निमन्त्रित व्यक्ति के पेट में जाता है तथा अन्न, वस्त्र आदि उसके घर जाते हैं। यह बात इतनी स्पष्ट है जिसके लिये कोई तर्क उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं। जो व्यक्ति श्राद्ध करता है वह भी इस बात को भली प्रकार जानता है कि जो वस्तुएँ दान दी गई थीं वे कहीं उड़ नहीं गई वरन् जिसने दान लिया था उसी के प्रयोग में आई हैं। इस प्रत्यक्ष बात में किसी तर्क की गुंजायश नहीं है।

अब प्रश्न दान के फल के सम्बन्ध में रह जाता है। यदि यह भी कहा जाय कि दान का पुण्य फल, दाता को ही मिलता है तो इसमें श्राद्ध की अनुपयोगिता सिद्ध नहीं होती। मनुष्य को लोभवश दान आदि सत्कर्मों में प्रायः अरूचि रहती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए आचार्यों ने कुछ पर्व, उत्सव, स्थान, काल, ऐसे नियत किये हैं, इन पर दान करने के लिये विशेष रूप से प्रेरित किया गया है। उन विशिष्ठ पर्वों, अवसरों पर दान करने के विविध भेद, प्रभेद और महात्म्यों का वर्णन किया गया है। मनुष्य में विवेक से रूढ़ि का अंश अधिक होता है। जैसे स्वास्थ्य ठीक न होते हुए भी त्यौहारों के दिन रूढ़ि वश लोग पकवान ही बनाते और खाते हैं उसी प्रकार नियत अवसरों पर अनिच्छा होते हुए भी दानादि सत्कर्म करने पड़ते हैं। उत्तम कर्म का फल उत्तम ही होता है चाहे वह इच्छा से, अनिच्छा से, या किसी विशेष अभिप्राय से किया जाय। श्राद्ध के बहाने जो दान धर्म किया जाता है उसका फल उस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वर्गीय व्यक्ति को अवश्य ही प्राप्त न होता हो तो भी दान करने वाले के लिये वह कल्याण कारक है ही। सत्कर्म कभी भी निरर्थक नहीं जाते। श्राद्ध की उपयोगिता इसलिये भी है कि इस रूढ़ि के कारण अनिच्छापूर्वक भी धर्म करने के लिए विवश होना पड़ता है।

श्राद्ध से श्रद्धा जीवित रहती है। श्रद्धा को प्रकट करने का जो प्रदर्शन होता है, वह श्राद्ध कहा जाता है। जीवित पितरों और गुरूजनों के लिये श्रद्धा प्रकट करने, श्राद्ध करने के लिये उनकी अनेक प्रकार से सेवा, पूजा तथा सन्तुष्टि की जा सकती है। परन्तु स्वर्गीय पितरों के लिये श्रद्धा प्रकट करने का, अपनी कृतज्ञता को प्रकट करने का, कोई निमित निर्माण करना पड़ता है। यह निमित्त, श्राद्ध है। स्वर्गीय गुरूजनों के कार्यों—उपकारों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने से ही छुटकारा नहीं मिल जाता। हम अपने अवतारों, देवताओं, ऋषियों, महापुरुषों और पूजनीय पूर्वजों की जयन्तियाँ धूमधाम से मनाते हैं, उनके गुणों का वर्णन करते हैं, उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उनके चरित्रों एवं विचारों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। यदि कहा जाय कि मृत व्यक्तियों ने तो दूसरी जगह जन्म ले लिया होगा उनकी जयन्तियाँ मनाने से क्या लाभ ? तो यह तर्क बहुत अविवेक पूर्ण होगा। मनुष्य मिट्टी का खिलौना नहीं है जो फूट जाने पर कूड़े के ढेर में तिरष्कार पूर्वक फेंक दिया जाय। उसका कीर्ति शरीर युग युगान्तरों तक बना रहता है, और वह उतना ही काम करता है जितना कि जीवित शरीर करता है। आज मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर कृष्ण, दानी कर्ण, त्यागी दधीचि, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, ध्रुव, प्रह्लाद, वीर हकीकतराय, वन्दा, वैरागी, शिवाजी, राणाप्रताप, तपस्वी तिलक, शंकराचार्य, गौतम बुद्ध, महावीर, नानक, कबीर आदि जीवित नहीं है, पर उनका कीर्ति—शरीर उतना ही काम करता है जितना कि उनके जीवित शरीर ने किया था। करोड़ों व्यक्तियों को उनसे प्रेरणा और प्रकाश प्राप्त होता है।

मनुष्य प्राणी भावना प्रधान है। व्यापारिक दृष्टिकोण से ही वह हर पहलू को नहीं सोचता, वरन् अधिकांश कार्य अपनी अन्तःवृत्तियों को तृप्त करने के लिये करता है। वृद्ध पुरुषों की सेवा, बालकों के भरण-पोषण की कठिनाई, पीड़ितों सहायता, पुण्य परोपकार आदि में व्यापारिक दृष्टि से कोई फायदा नहीं। यदि केवल व्यापार बुद्धि ही प्रधान हो तो बूढ़े माता-पिता को कोई रोटी क्यों दे ? बच्चों को पालने-पोषने, पढ़ाने, विवाह आदि करने का झंझट उठाने के लिये कोई तैयार क्यों हो ? दीन-दुःखियों की सहायता में कोई समय या पैसा क्यों दे ? ऐसी प्रवृति हो जाने पर तो मानव जाति पिशाचों की सेना बन जायगी। पर सौभाग्य से ऐसी नहीं है। मनुष्य भावनाशील प्राणी है, वह प्रत्यक्ष लाभ की अपेक्षा अप्रत्यक्ष, हृदयगत भावनाओं को प्रधानता देता है। कृतज्ञता उसकी श्रेष्ठ वृति है। इसे वह जीवितों के प्रति ही प्रकट करके संतुष्ट नहीं रह सकता। मृतकों के उपकारों के लिये भी उसे श्राद्ध करना पड़ता है।

संसार के सभी देशों में, सभी धर्मों में, सभी जातियों में, किसी न किसी रूप में मृतकों का श्राद्ध होता है। मृतकों के स्मारक, कब्र, मकबरे, संसार भर में देखे जाते हैं। पूर्वजों के नाम पर नगर, मुहल्ले, संस्थाएँ, मकान, कुएँ, तालाब, मन्दिर, मीनार आदि बना कर उनके नाम तथा यश को चिरस्थायी रखने का प्रयत्न किया जाता है। उनकी स्मृति में पर्वों एवं जयन्तियों का आयोजन किया जाता है। यह अपने-अपने ढंग के श्राद्ध ही हैं। "क्या फायदा" वाला तर्क केवल हिन्दू श्राद्ध पर ही नहीं समस्त संसार की मानव प्रवृति पर लागू होता है। असल बात यह है कि प्रेम, उपकार, आत्मीयता एवं महानता के लिये मनुष्य स्वभावतः कृतज्ञ होता है और जब तक उस कृतज्ञता के प्रकट करने का प्रत्युपकार स्वरूप कुछ प्रदर्शन न करले तब तक उसे आन्तरिक बेचैनी रहती है, इस बेचैनी को वह श्राद्ध द्वारा ही पूरी करता है। ताजमहल क्या है ? एक पत्नी का उसके पति द्वारा किया हुआ श्राद्ध है। इस श्राद्ध से उस पति को क्या फायदा हुआ यह नहीं कहा जा सकता पर इतना निश्चित है कि पति की अन्तरात्मा को इससे बड़ी शान्ति मिली होगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

औरंगजेब को उसके पुत्र शाहजहाँ ने कैद करके जेल में पटक दिया और स्वयं राजा बन गया। जेल में सड़ते-सड़ते औरंगजेब जब मृत्यु के निकट पहुँचा तो उसने आँखों में आंसू भर कर कहा—"मेरे इस्लाम परस्त बेटे से तो वे काफिर (हिन्दू) अच्छे जो मृतक पितरों तक को पानी पिलाते हैं।" श्राद्ध और तर्पण का मूल आधार अपनी कृतज्ञता और आत्मीयता की सात्विक वृत्तियों को जागृत रखना है। इन प्रवृत्तियों का जीवित, जागृत रहना संसार की सुख-शान्ति के लिये नितान्त आवश्यक है। उस आवश्यक वृत्ति का पोषण करने वाले श्राद्ध जैसे अनुष्ठान भी आवश्यक हैं।

हिन्दू धर्म के कर्मकाण्डों में आधे से अधिक श्राद्ध तत्त्व भरा हुआ है। सूरज, चाँद, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी, अग्नि, जल कुआँ, तालाब, नदी, मरघट, खेत, खलिहान, भोजन, चक्की, चूल्हा, तलबार, कलम, जेबर, रूपया, घड़ा, पुस्तक आदि निर्जीव पदार्थों की विवाह या अन्य संस्कारों में अथवा किन्हीं विशेष अवसरों पर पूजा होती है। यहाँ तक कि नाली या घूरे तक की पूजा होती है। तुलसी, पीपल, वट, आँवला आदि पेड़-पौधे तथा गौ, बैल, घोड़ा, हाथी आदि पशु पूजे जाते हैं। इन पूजाओं में उन जड़ पदार्थों या पशुओं को कोई लाभ नहीं होता, परन्तु पूजा करने वाले के मन में श्रद्वा एवं कृतज्ञता का भाव जरूर उदय होता है। जिन जड़ चेतन पदार्थों से हमें लाभ मिलता है उनके प्रति हमारी बुद्वि में उपकृत भाव होना चाहिए। और उसे किसी न किसी रूप में प्रकट करना ही चाहिये । यह श्राद्ध ही तो है। मृतकों का ही नहीं, जीवितों, जानदारों और बेजानों का भी हम श्राद्ध करते हैं। ऐसे श्राद्व के लिए हमारे शास्त्रों में पग पग पर आदेश हैं।

मरे हुए व्यक्तियों को श्राद्ध कर्म से कुछ लाभ होता है कि नहीं ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि—होता है, अवश्य होता है। संसार एक समुद्र के समान है जिसमें जल कणों की भांति हर एक जीव है। विश्व एक शिला है तो व्यक्ति उसका एक परमाणु। हर एक आत्मा जो जीवित या मृत रूप में इस विश्व में मौजूद है अन्य समस्त आत्माओं से सम्बद्ध है। संसार में कहीं भी अनीति युद्ध, कष्ट अनाचार, अत्याचार हो रहे हैं तो सुदूर देशों के निवासियों के मन में भी उद्वेग उत्पन होता है। जब जाड़े का प्रवाह आता है तो हर चीज ठण्डी होने लगती है और गर्मी की ऋतु में हर चीज की उष्णता बढ़ जाती है, छोटा सा यज्ञ करने से उसकी दिव्यगन्धा तथा दिव्य भावना समस्त संसार के प्राणियों को लाभ पहुँचाती है । इसी प्रकार कृतज्ञता की भावना प्रकट करने के लिये किया हुआ श्राद्ध समस्त प्राणियों में शान्तिमयी सद्भावना की लहरें को लाभ पहुँचाता है। यह सूक्ष्म भाव तरंगें सुगन्धित पुष्पों की सुगन्ध की तरह तृप्तिकारक आनन्द और उल्लासवर्द्धक होती है, सद्भावना की सुगन्ध जीवित और मृतक सभी को तृप्त करती है। इन सभी में अपने स्वर्गीय पितर भी आ जाते हैं। उन्हें भी श्राद्धयज्ञ की दिव्य तरंगें आत्म-शान्ति प्रदान करती हैं।

मर जाने के उपरान्त जीव का अस्तिव मिट नहीं जाता वह किसी न किसी रूप में इस संसार में ही रहता है। स्वर्ग, नरक, निर्देह, गर्भ, सदेह आदि किसी न किसी अवस्था में इस लोक में ही बना रहता है। इसके प्रति दूसरों की सद्भावनाएँ तथा दुर्भावनायें आसानी से पहुँचती रहती हैं। स्थूल वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान तक देर में कठिनाई से पहुँचती हैं परन्तु सूक्ष्म तत्त्वों के सम्बन्ध में यह कठिनाई नहीं है उनका यहाँ से वहाँ आवागमन आसानी से हो जाता है। हवा, गर्मी, प्रकाश, शब्द आदि को बहुत बड़ी दूरी पार करते हुए कुछ विलम्ब नहीं लगता। विचार और भाव इससे भी सूक्ष्म हैं वे उस व्यक्ति के पास जा पहुँचते हैं जिसके लिए वे फेंके जायें। सताये हुए व्यक्तियों की आत्मा को जो क्लेश पहुँचाता है उसका शाप शब्दभेदी तीर या राकेट बम की तरह निश्चित स्थान पर जा पहुँचता है। सेवा, संतुष्ट, उपकृत, अहसानमन्द, कष्ट उद्धरित व्यक्ति की सद्भावना दुआ, वरदान, आशीर्वाद भी इसी प्रकार उपकारी व्यक्ति के पास पहुँचते हैं जिसने कोई परोपकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया है। कोई व्यक्ति जीवित हो या मृतक उसके पास जहाँ कहीं भी वह रहे लोगों के शाप, वरदान पहुँचते हैं उसे मालूम हो पावे या न हो पावे वे शाप, वरदान उसे दुःख या सुख देने वाले परिणाम उसके सामने उपस्थित करते रहते हैं। इसी प्रकार कृतज्ञता की श्रद्धा की भावना भी उस व्यक्ति के पास पहुँचती है जिसके लिए वह भेजी जाती है। फिर चाहे वह स्वर्गीय व्यक्ति किसी भी योनि या किसी भी अवस्था में क्यों न हो। श्राद्ध करने वाले का प्रेम, आत्मीयता कृतज्ञता की पुण्य युक्त सद्भावना उस पिता आत्मा के पास पहुँचती है, और उसे आकस्मिक, अनायास, अप्रत्याशित, सुख, शान्ति, प्रसन्नता, स्वस्थता एवं बलिष्ठता प्रदान करती है। कई बार कई व्यक्तियों को आकस्मिक, अकारण आनन्द एवं संतोष का अनुभव होता है । संभव है यह उनके पूर्व सम्बन्धियों के श्राद्ध का ही फल हो।

श्रद्धा—कृतज्ञता हमारे धार्मिक जीवन का मेरूदण्ड है। यह भाव निकल जाये तो धार्मिक समस्त कियाऐ व्यर्थ, नीरस एवं निष्प्रयोजन हो जायगी श्रद्धा के अभाव में यज्ञ करना और भट्टी जलाना एक समान है। देव मूर्तियों और बालकों के खिलौनों में, शास्त्र श्रवण और कहानी कहने में, प्रवचनों और ग्रामोफोन के रिकार्डों में कोई अन्तर न रह जायगा। अश्रद्धा एक दावानल है जिसमें ईश्वर, परलोक, कर्मफल, धर्म, सदाचार, दान, पुण्य, परोपकार, प्रेम, एवं सेवा सहायता पर से विश्वास उठता है और अन्त में अश्रद्धालु व्यक्ति अपनी छाया पर, अपने आप पर भी अविश्वास करने लगता है। भौतिक वादी नास्तिक दृष्टिकोण और धार्मिक आस्तिक दृष्टिकोण में प्रधान अन्तर यही है। भौतिकवादी नीरस, शुष्क, कठोर दृष्टिकोण वाला व्यक्ति स्थूल व्यापार बुद्धि से सोचता है, वह कहता है पिता मर गया—अब उससे हमारा क्या रिस्ता ? जहां होगा अपनी करनी भुगत रहा होगा उसके लिये परेशान होने से हमें क्या मतलब ? इसके विपरीत धार्मिक दृष्टि वाला व्यक्ति स्वर्गीय पिता के अपरिमित उपकारों का स्मरण करके कृतज्ञता के बोझ से नत मस्तक हो जाता है, उस उपकार-मयी, स्नेहमयी, देवोपन्न स्वर्गीय मूर्ति के निःस्वार्थ प्रेम और त्याग का स्मरण करके उसका हृदय भर आता है। उसका हृदय पुकाता है "स्वर्गीय पितृ देव। तुम सशरीर यहाँ नहीं हो, पर कहीं न कहीं इस लोक में आपकी आत्मा मौजूद है। आपके ऋण भार से दबा हुआ मैं बालक आपके चरणों में श्रद्धा की अंजुली चढ़ाता हूँ।" इस भावना से प्रेरित होकर वह बालक जल की एक अंजुली भर कर तर्पण करता है।

तर्पण का वह जल उस पितर के पास नहीं पहुँचा। वहीं धरती में गिर कर विलीन हो गया, यह सत्य है। यज्ञ की आहुति दी गई सामग्री जल कर वहीं खाक हो गई यह भी सत्य है, पर यह असत्य है कि 'इस यज्ञ या तर्पण से किसी का कुछ लाभ नहीं हुआ।' धार्मिक कर्मकाण्ड स्वयं अपने आप में कोई बहुत बड़ा महत्त्व नहीं रखते, महत्त्वपूर्ण तो वे भावनाएँ हैं जो उन अनुष्ठानों के पीछे काम करती हैं। मनुष्य भावनाशील प्राणी है। दूषित, तमोगुणी, नीच भावनाओं को ग्रहण करने से वह असुर, पिशाच, राक्षस एवं शैतान बनता है और ऊँची सात्विक, पवित्र, धर्ममयी भावनाएँ धारण करके वह महापुरुष ऋषि, देवता अवतार बन जाता है। यह भावनाएँ ही मनुष्य को सुखी, समृद्ध, स्वस्थ, सम्पन्न, वैभवशाली, यशस्वी, पराक्रमी तथा महान बनाती हैं और इन भावनाओं के कारण ही दुःखी, रोगी, दीन, दास, तिरस्कृत तथा तुच्छ हो जाता है। शारीरिक दृष्टि से लगभग सभी एक समान एक से ही होते हैं पर उनके बीच जो जमीन आसमान का अन्तर दिखाई पड़ता है यह भावनाओं का ही अन्तर है। धार्मिक दृष्टिकोण, सद्भावनाओं, सात्विक, परमार्थिक वृत्तियों को ऊँचा उठाता है। धार्मिक कर्म-काण्डो का आयोजन इसी आधार पर है। धर्म हृदय का ज्ञान है। अन्तरात्मा में सतोगुणों तरलता उत्पन्न करना धर्म का, धार्मिक कर्मकाण्डों का मूल प्रयोजन है। समस्त कर्म-काण्डो की रचना का यही आधार हैं। स्थूल व्यापार बुद्धि से धार्मिक कृत्यों और भावों की उपयोगिता किसी की समझ में आवे चाहे न आवे पर इस दृष्टि से उनका असाधारण महत्व है। इन कर्म-काण्डो में कुछ समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और धन अवश्य खर्च होता है पर उसके फलस्वरूप वे तत्त्व प्राप्त होते हैं जो मनुष्य के प्रेरणा केन्द्र का निर्माण करते हैं। उसके अन्तरंग तथा बहिरंग जीवन को सुख-शान्ति से पूरित करते हैं।

ब्रह्मत्व रहित; विद्या, विवेक, आचरण, त्याग, तपस्या में रहित, वे व्यक्ति जो शूद्रोपम होते हुए भी वंश-परंपरा के कारण ब्राह्मण कहलाते हैं, उन्हें श्राद्ध का या अन्य किसी प्रकार दान प्राप्त करने का अधिकार नहीं है। श्राद्ध के निमित्त किया हुआ दान या भोजन उन्हीं सच्चे ब्राह्मणों को दिया जाना चाहिये जो वस्तुतः उसके अधिकारी हैं। श्रुतियों में कहा गया है कि ब्राह्मण अग्निमुख है उसमें डाला हुआ अन्न देव एवं पितरों को प्राप्त होता है, उससे विश्व का कल्याण होता है परन्तु वे ब्राह्मण होने चाहिये। अग्निमुख त्याग, तपस्या, विद्या और विवेक की यज्ञ अग्नि जिनके अन्तःकरण में प्रज्ज्वलित है वही अग्निमुख हैं। अग्नि में न डाल कर कीचड़ में यदि हवन सामग्री डाली जाय तो कुछ पुण्य न होगा, इसी प्रकार अग्निमुख ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्यों को दिया हुआ दान भी निरर्थक होता हैं । शास्त्र का मत है कि कुपात्रों को दिया हुआ दान, दाता को नरक में ले जाता है।

श्राद्ध करना चाहिये जीवितों का भी, मृतकों का भी। जिन्होंने अपने साथ में किसी भी प्रकार की कोई भलाई की है उसे बार-बार प्रकट चाहिये क्योंकि इससे उपकार करने वालों को संतोष तथा प्रोत्साहन प्राप्त होता है। वे अपने ऊपर अधिक प्रेम करते हैं और अधिक घनिष्ठ बनते हैं, साथ-साथ अहसान स्वीकार करने से अपनी नम्रता एवं मधुरता बढ़तीं है। उपकारों का बदला चुकाने के लिये किसी न किसी रूप में सदा ही प्रयत्न करते रहना चाहिये जिससे अपने ऊपर रखा हुआ ऋण भार हलका हो। जो उपकारी, पूजनीय एवं आत्मीय पुरुष स्वर्ग सिधार गये हैं उनके प्रति भी हमें मन में कृतज्ञता रखनी चाहिये और समय–समय पर उस कृतज्ञता को प्रकट भी करना चाहिये। जल की एक अंजली, दीपक या पुष्प से श्राद्ध किया जा सकता है। श्राद्ध में भावना ही प्रधान है। श्रद्धा भावना का हमें कभी परित्याग न करना चाहिये। श्रद्धा की परम्परा समाप्त हो जाने पर तो पिता को कैद कर लेने वाले औरंगजेब ही चारों ओर दृष्टिगोचर होने लगेंगे।

मृतक भोज की क्या आवश्यकता ?

वर्तमान समय में मृतात्मा की सद्गति के लिए सात्विक दान-पुण्य के शास्त्रीय विधान के बजाय लोगों में 'मृतक–भोज' की ऐसी प्रथा का प्रचलन हो गया है जो प्राचीन या नवीन किसी सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है और जिससे मृतक सद्गति का कुछ भी सम्बन्ध नहीं माना जा सकता। ये मृतकभोज प्रायः बड़ी-बड़ी दावतों के रूप में होते हैं जिनमें एक-एक हजार पाँच–पाँच सौ तक सजातीय व्यक्ति और परिचित इष्टमित्र पूरी मिठाई पकवान खाने को बुलाये जाते हैं। उस अवसर पर ऐसा जान पड़ता है मानो इस घर में कोई बड़ा हर्षोत्सव है, जिसके उपलक्ष में इतनी बड़ी संख्या में लोगों को खिलाया-पिलाया जा रहा है। भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों में तो ऐसे भोजों का रिवाज कम ही है परन्तु राजस्थान, परिश्चमी यू. पी., मालवा और मध्य प्रदेश के उतरी भाग में इनका विशेष जोर-शोर देखा जाता है। इस भू–भाग की छोटी, बड़ी सभी जातियाँ, यहाँ तक कि कई मुसलमान जातियों में भी इसका प्रचलन है।

वर्तमान समय में भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति गिरी हुई है। थोड़े से व्यवसायी लोगों या ऐसे सरकारी नौकरों को छोड़कर जिनको रिश्वत का अनाप-शनाप रूपया मिलता है , शेष सब लोग अपना निर्वाह कठिनाई के साथ ही करते हैं। खाना, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य-रक्षा, शिक्षा, यात्रा आदि की ठीक व्यवस्था कर सके ऐसे सौभाग्यशाली परिवार सौ में से पच्चीस भी कठिनाई से निकलेंगे। शेष लोगों को सदैव किसी न किसी बात का अभाव बना ही रहता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। अनेक लोग अपने बच्चों की शिक्षा पर खर्च करने की सामर्थ्य नहीं रखते और कितने ही बीमार होने पर दवादारू के लिए भी तरसते रहते हैं। ऐसे भी करोड़ों व्यक्ति मौजूद है जिनको दोनों वक्त भर पेट रोटी नसीब नहीं हो पाती। ऐसी दशा में किसी तरह का अनावश्यक व्यय किसी भी गृहस्थ व्यक्ति के लिए भार स्वरूप ही सिद्ध होगा।

हिन्दू समाज में पहले तो लड़के, लड़कियों के कई प्रकार के संस्कार विवाह आदि में ही इतना खर्च करना पड़ता है कि उनकी आर्थिक अवस्था निरन्तर कठिन बनी रहती है। इसके सिवाय नाते रिश्ते के लेन-देन तरह-तरह की रस्में और नेग-जोग में भी समय-समय पर कुछ खर्च करते ही रहना पड़ता है। ऐसी दशा में यदि मृतक-भोज का भी अनावश्यक भारी व्यय ऊपर लाद लिया जाय तो इसे बुद्धिमानी का चिह्न नहीं समझा जा सकता । इससे हमारी पहले से ही अस्त-व्यस्त आर्थिक दशा और भी शोचनीय हो जायगी । हम जीवन-निर्वाह के अत्यावश्यक कार्यों की भी पूर्ति न कर सकेंगे और हमको अपने परिवार सहित भयंकर संकटों का सामना करना पड़ेगा ।

इस प्रकार की गलती समझदार लोग भी क्यों करते हैं। इसका एकमात्र कारण यही जान पड़ता है कि वे अपना बड़प्पन दिखाने के लिये या अपनी, नाक ऊँची रखने के उद्देश्य से ही ऐसा करते हैं । मृतक-भोज के मूल में प्रायः यही भावना काम करती है जब अन्य लोगों ने अपने बाप-दादे के मरने पर इतना बड़ा भोज दिया तो हमको भी देना चाहिए। यदि हम इसमें कमी करेंगे या इसे बन्द कर देंगे तो हमारी बदनामी होगी, या लोग हमें कंजूस कंगाल समझेंगे । इस प्रकार के विचारों से प्रेरित होकर और दूसरे लोगों द्वारा बढ़ावा दिए जाने पर वे अपनी हैसियत न होने पर भी मृतक-भोज या, नुकते, के नाम पर इतना अधिक खर्च कर डालते हैं जिससे उनकी आर्थिक स्थिति लड़खड़ा जाती है वे सदा के लिये कर्ज के बोझ से दब जाते हैं और उन्नति करने के बजाय अवनति के मार्ग पर फिसलने लगते हैं ।

अनेक बार इसमें बदले की भावना का भी समावेश हो जाता है, और यह विचार आता है कि जब हम दूसरों के यहाँ मृतक-भोजों में जाकर पूरी मिठाई खा चुके हैं तो हमको भी उन्हें खिलाना पड़ेगा। आसपास के इष्टमित्र, विशेषतः जाति के पंच चौधरी कहलाने वाले इन विचारों को प्रोत्साहन देते हैं और प्रायः दबाव डालकर भी 'नुक्ता' करा देते हैं । राजस्थान में तो इनकी ऐसी प्रबलता है कि उनके दबाव से लोगों को अपना घर, द्वार बेचकर कर्ज लेकर भी मृतक-भोज करना पड़ता है। जिस परिवार में कमाने वाला मुख्य व्यक्ति मर गया है और अपनी विधवा पत्नी और दो-चार छोटे बच्चों को निराश्रित छोड़ गया है, उससे भी ये निष्ठुर लकीर के फकीर मृतक-भोज करा लेते हैं । नतीजा यह होता है कि बाद में उस विधवा को अपने बच्चों के सहित दाने-दाने के लिये तरसना पड़ता है और मेहनत-मजदूरी करके किसी तरह जीवन व्यतीत करना पड़ता है । यदि कोई विवशतावश उनके आदेश का पालन नहीं कर सकता तो उसको जाति बहिष्कार का दण्ड़ देकर अत्यन्त दुर्दशा की जाती है। हिन्दी के प्रसिद्ध दैनिक–पत्र, विश्वामित्र, के संस्थापक श्री मूलचन्द्र अग्रवाल की आत्म–कथा में हमने पढ़ा है कि उनके पिता पर कर्ज हो जाने के कारण वे कुये में कूदकर मर गये थे । जब उनकी विधवा गरीबी के कारण प्रायश्चित और भोज आदि न करा सकी तो उनको जाति बहिष्कृत करके ऐसे कष्ट दिये गये कि उनका स्मरण करके ऐसे क्रूर लोगों के प्रति अत्यन्त धृणा की भावना उत्पन्न होती है इस प्रकार की प्रथा या परम्परा को अमानुषी ही कहा जा सकता है और उसका जितना शीघ्र अन्त हो सकता हो उतना ही अच्छा है ।

अब हम मृतक–भोज की प्रथा के मूल स्वरूप और उसकी वास्तविकता पर विचार करते हैं तो यही प्रतीत होता है कि इसकी जड़ में कोई धार्मिक सिद्धान्त या तथ्य नहीं है। हमारे धर्म-शास्त्रों में तो आत्मा को अमर माना गया है। उसका कथन है कि जब हमारा यह दिखाई पड़ने वाला पंच–भौतिक देह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नष्ट हो जाता है, तो आत्मा का उसके साथ अन्त नहीं हो जाता वरन यह किसी रूप में कहीं न कहीं स्थित रहता ही है। कई पुराणों में बतलाया गया है कि मृतात्मा दूसरा जन्म ग्रहण करने के पहले कुछ समय तक परलोक में रह कर अपने भले-बुरे कर्मो का फल भोगती है। उसमें एक पितृलोक का भी उल्लेख किया गया है जहाँ सभी मृतात्माएँ एक बार जाती हैं। वेदों में भी पितृयान और देवयान मार्गो का जिक्र आया है, यद्यपि उनमें पुराणों की तरह उसका विस्तार नहीं है और न सदैव श्राद्ध आदि कर्म करते रहने का विधान है।

मरणोत्तर जीवन की वास्तविकता को मालूम कर सकना एक प्रकार से असंभव है। अन्य धर्म के विद्वानों की बात तो छोड़ दीजिये स्वयं हिन्दू धर्म के आचार्यों ने ही उसके सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह एक-दूसरे से सर्वथा पृथक हैं। जहाँ पौराणिक विद्वान् स्थायी पितृलोक की कल्पना करके मृतात्मा के नाम पर सदैव जलदान, पिण्डदान, ब्राह्मण भोजन आदि को आवश्यक बतलाते है, वहाँ वेदान्त, सांख्य आदि सिद्धान्तों के अनुयायी आत्मा को इस प्रकार के बन्धनों से सर्वथा अलग मानते हैं और आश्रम–धर्म के अनुसार भी सन्यास ग्रहण करके देह त्याग करने वाले के लिये एकादशी, तेरहवीं, वार्षिक श्राद्ध आदि सब क्रिया-काण्ड़ों को अनावश्यक बतलाया गया है। प्रत्यक्ष देखने में भी आता है कि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, तुलसीदासजी, सूरदास, रामकृष्ण परमहंस, दयानन्द जी, विवेकानन्द, रामतीर्थ, महात्मा गाँधी आदि महापुरुषों का प्रतिवर्ष श्राद्ध नहीं किया जाता न उनको तर्पण और पिण्डदान आदि किया जाता है तो क्या वे परलोक में दुर्दशा ही भोग रहे होंगे।

फिर भी हम साधारण श्रेणी के व्यक्तियों के लिये उनको अनुचित नहीं समझते कि वे अपने परिवार के मृत व्यक्तियों के नाम पर शास्त्रों के विधानानुसार कुछ दान–पुण्य करें। एक तो इससे मृतात्मा के सम्बन्धियों को कुछ सान्त्वना प्राप्त होती है कि ऐसा करने से हमारे प्रियजनों को परलोक में सुख-शान्ति की उपलब्धि होगी और दूसरे अधिकांश व्यक्ति जो जीवन भर सांसारिक मायामोह में पड़े रहकर सब प्रकार के उतम मध्यम कार्य करते हैं, – उनकी आत्मा इस प्रकार के क्रिया-कलापों से कुछ सहायता भी पा सकती है । इसी दृष्टि से किसी व्यक्ति का देहान्त होने पर वेदमन्त्रों तथा सुगन्धित सामग्री तथा घृत की आहुतियों के साथ उसका अन्त्येष्टि संस्कार करने का नियम है। फिर दस दिन बाद पिंडदान, तर्पण श्राद्ध, गृह–शुद्धि आदि की क्रियायें की जाती हैं। इन सबके साथ दीनजनों की सेवा अथवा अन्य लोक हितकारी कार्यों के लिये विश्वस्त संस्थाओं या सत्पात्र व्यक्तियों को दान देना भी प्रशंसनीय माना गया है । इसके लिये वर्तमान समय में जो कुछ भोजन कराना या दान देना होता है, वह सब ब्राह्मणों को ही दिया जाता है, क्योंकि किसी जमाने में वे ही सच्चे समाज-सेवी थे, और उनका समस्त जीवन लोक-कल्याण के लिये उत्सर्ग होता था। इसलिये मृतात्मा की पवित्र स्मृति में दान का श्रेष्ठ अधिकारी उन्हीं को समझा जाता था। पर अब परिस्थिति के बदल जाने पर भी जो लोग उसी रूढ़ि का पालन करते हैं वे परिश्रम तथा अर्थ व्यय करने पर भी मृतक श्राद्ध के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर पाते ।

जो लोग ऐसा सोचते या कहते है कि इस प्रकार के मृतक-भोज से मृतात्मा को कोई पुण्य फल प्राप्त होता होगा और परलोक में उसे अच्छी गति मिलती होगी वे बड़े भ्रम में हैं। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने तो स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि जीव को जो कुछ शुभ या अशुभ परिणाम प्राप्त होता है वह उसके कर्मानुसार ही होता है। जो जैसा भला-बुरा करता है उसका फल उसको अवश्य भोगना पड़ता है।, कर्मफल का सिद्धान्त अटल है और अपरिवर्तनीय है । गीता में अर्जुन ने भगवान् कृष्ण से प्रश्न किया कि क्या जो व्यक्ति साधना करते-करते बाद में उससे च्युत हो जाता है । उसका सब परिश्रम और प्रयत्न व्यर्थ चला जाता है ? इसका उतर देते हुये कृष्ण जी ने कहा –

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याण कृत्कश्चिद्द दुर्गति तात गच्छति।।

(गीता ६-४०)

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात् – "हे अर्जुन किसी भी मनुष्य का कोई शुभ कर्म कभी नष्ट नहीं होता और इसलिये ऐसी साधना वाला इस लोक और परलोक में अपने कर्म के परिणाम के अनुसार अच्छी गति पाता ही है ।

आगे चलकर अशुभ कर्मों के फलस्वरूप परलोक में दुर्गति होने का वर्णन भी स्पष्ट शब्दों किया गया है ।

अहंकारं बलं दर्प कामं क्रोधं च संश्रिता ।
मामात्म परदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयका ।।
नानाहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजसत्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।।
आसुरी योनिमापन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि।
मामयाप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधर्मा गतिम् ।।

(गीता १६,१८,१६,२०)

अर्थात् – जो व्यक्ति अहंकार बल, धमंड, लोभ और क्रोध आदि के वशीभूत होकर दूसरों से द्वेष करते हैं उनकी निन्दा करते हैं, वे पापी होते है। मैं उनको संसार में बारम्बार सूकर-कूकर की अधम योनियों में ही गिराता हूँ। ऐसे कुकर्मी व्यक्ति जन्म-जन्म में आसुरी योनियों में पड़कर मुझे भगवान से दूर होते जाते हैं और घोर नरकों में पड़कर कष्ट भोगते हैं।"

इस कर्म सिद्धान्त के अनुसार मृतात्मा को परलोक में सुख या दुःख प्राप्त होता है, वह मुख्यत जीवित अवस्था में किये गये शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार ही होता है। जिनका जीवन छल, कपट, निन्दा, कुत्सा, ठगी, जालसाजी करते बीता है उनके लिये आशा करना कि बहुत-सा क्रिया-कर्म या विशाल मृतक–भोज करने से उनके पाप मिट जायेंगे और वे परलोक में अच्छी गति के अधिकारी बन सकेंगे, स्वयं अपने को धोखा देना है। भगवान कृष्ण ने कहीं पर यह नहीं कहा है कि भोजन भट्ट ब्राह्मणों अथवा जाति बिरादरी वालों को खूब लड्डू पूरी खिला देने या मृतक के नाम पर नशेबाज पण्डे पुरोहितों को बहुत-सा अन्न, वस्त्र, गाय, सोना, चाँदी, का दान देने से उसे अच्छी गति मिल जायेगी। उन्होंने साफ बतला दिया कि जो अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष के भावों से अन्य लोगों के साथ बुरा व्यवहार करेगा, उन्हें हनि पहुँचायेगा उसे बार–बार नीच स्थिति में ही जन्म लेना पड़ता है और अपने पापों का फल भोगना पड़ता है।

हाँ, इतना सम्भव है कि यदि शुद्ध भाव से अवसर पर मरते हुये और मरणोत्तर संस्कार के अवसर पर मृतात्मा के नाम पर कुछ लोक-कल्याणकारी कार्यों के लिये निःस्वार्थ भाव से दान किया जाय, राष्ट्र की प्रगति के लिये स्कूल, पुस्कालय, उद्योग-कला विद्यालय आदि की स्थापना की जाय, या जो संस्थायें इन कार्यों को सचाई के साथ कर रही हैं उनको सहयोग दिया जाय, तो उससे मृतात्मा को कुछ शान्ति प्राप्त हो सकती है और परलोक में उसके कष्ट और अभावों में कमी हो सकती है। अब भी अनेक विचारशील व्यक्ति अपने पिता, पितामह, माता आदि की मृत्यु होने पर मृतक-भोज करने के बजाय उसमें खर्च होने वाला समस्त धन किसी सार्वजनिक हित कार्य में खर्च कर देते हैं। इस प्रथा का अवलम्बन करने से मृतक-भोजों में प्रतिवर्ष खर्च होने वाला दो-चार करोड़ रुपया जनहितकारी कार्यों के लिये प्राप्त हो सकता है और उससे भारत की प्रगति में पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है।

ब्राह्मण और साधुओं को कब दिया जाय ? कुछ लोग इस अवसर पर ब्राह्मण, साधु, सन्त, भिक्षुक आदि को दान देने पर जोर देते हैं। निःसन्देह प्राचीनकाल में यही प्रथा थी और यह समाज कल्याण की दृष्टि से ही प्रचलित की गई थी। उस समय के ब्राह्मण और साधु पूर्णरूपेण स्वार्थत्यागी, अपरिग्रही और लोक सेवक होते थे। वे अपना सारा समय और शक्ति सार्वजनिक हित के कार्यों में ही व्यय किया करते थे और अपने निर्वाह अथवा हानि-लाभ की किञ्चित मात्र चिन्ता नहीं करते थे । ऐसे निःस्पृह लोक-सेवकों के भरण-पोषण और जीवन-निर्वाह का भार स्वभावतः समाज और राज्य पर ही रहता था और इसी दृष्टि से उस समय जन्म-मरण विवाह आदि समस्त अवसरों पर ऐसे लोगों को यथाशक्ति दान देने का विधान था। वे दान लेने वाले भी अपने उतरदायित्व को समझते थे और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्राप्त धन में से अपने लिये कम से कम खर्च करके शेष को परोपकारार्थ ही व्यय कर देते थे। इस प्रकार समाज में सात्विक दान और त्याग की एक स्वस्थ परम्परा प्रचलित होती थी और उसके कारण अनेक असमर्थों तथा किसी आकस्मिक कारणवश विपदाग्रस्त हो जाने वालों का निर्वाह बिना मांगे हो जाता था और उन्हें क्षुधा निवारण के लिये स्वाभिमान को नष्ट नहीं करना पड़ता था।

पर आज दशा इससे बिल्कुल विपरीत हो गई है अब न दान लेने वाले सुपात्र मिलते हैं न देने वालों के मन में सात्विक भावना होती है। इस समय इस प्रथा ने एक पेशे का रूप धारण कर लिया है और इस कार्य को करने वाले चाहे जन्म से और नाम के लिए ब्राह्मण हो, पर आचार व्यवहार की दृष्टि से उनका बहुत कुछ पतन हो गया है। उनमें तरह-तरह के दुर्व्यसन घुस गये है, नैतिकता और चरित्र गिरे हुए हैं और धन की खातिर वे करने, न करने योग्य सभी कार्मों के लिये तैयार हो जाते हैं। वे जानते भी नहीं कि आध्यात्म किस चिड़िया का नाम है जब कि प्राचीनकाल में उनकी सबसे बड़ी विशेषता यही थी। वे संसार को सर्वथा नगण्य और अध्यात्म को ही साररूप मानते थे । इस प्रसंग में हमें महाभारत की वह कथा याद आती है जिसमें एक ब्राह्मण को महाराज युधिष्ठिर ने एक बड़ी धन राशि देने को कहा था । वह ब्राह्मण पहले तो दान ग्रहण करने को बिल्कुल तैयार ही नहीं हुआ, फिर राजा के बहुत अधिक आग्रह करने पर राजी भी हुआ तो बीच में ही रोने लग गया । उसे रोता देखकर युधिष्ठिर भी रो दिये और तब भगवान कृष्ण भी जो वहाँ उपस्थित थे रो पड़े । इस लीला को देखकर भीम सेन जो शान्ति रक्षार्थ वहाँ निरीक्षण करता हुआ आया था आश्चर्य में पड़ गया और कृष्ण जी से इस रहस्य को समझाने की प्रार्थना करने लगा । उन्होंने कहा कि यह ब्राह्मण इसलिए रोया, कि वह राज-धन को ग्रहण करना आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रतिकूल समझता है । युधिष्ठिर इस लिये रोने लगे कि मेंरा धन कितना निकृष्ट है जिसे ग्रहण करना ब्राह्मण अधर्म समझता है। मैं इसलिए रो पड़ा कि मैं देख रहा हूँ कि आज तो ब्राह्मणों में धर्म का इतना ध्यान है कि वे सात्विक, राजसी दान ग्रहण करना भी बुरा समझते हैं, पर आगे चलकर ऐसा समय आयेगा जब कि राजसी की क्या बात ब्राह्मण तामसी दान के लिए भी दौड़ेंगे और उसके लिए मानापमान का भी कुछ ध्यान न रखेंगे।

दान का दुरूपयोग न हो – वर्तमान समय में दान लेने वाले समुदाय का ऐसा पतन हो जाने के कारण मरणोत्तर कर्म में दान की समस्या और भी अधिक विचारणीय हो गई है। हम जिस धन को अपने किसी प्रियजन की आत्मा के कल्याणार्थ दान दे रहे हैं यदि उसका उपयोग नशा करने की दम लगाने, भंग छानने आदि जैसे किसी दुर्व्यसन में हो, या उसके द्वारा जुआ खेलने, व्यभिचार करने, ठगी जालसाजी में भाग लेने जैसी दुष्प्रवृतियों की वृद्धि हो तो हमको कैसा लगेगा ? इसी प्रकार जिन लोगों को भोज दिया जाता है, वे भी मृतात्मा के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं रखते वरन् उल्टा उसकी आलोचना करके तरह–तरह की निन्दा की बातें करते हैं। भोजन को खाने के बाद उसमें भी प्रायः त्रुटियाँ ही निकालते हैं। इस प्रकार मृतक श्राद्ध में इन दिनों हजार या इससे भी अधिक जितना रूपया व्यय किया जाता वह अकारथ ही जाता है। उससे न किसी दूसरे की भलाई होती है और न हमारी ही कोई प्रशंसा होती है। मृतात्मा की सद्गति की कल्पना तो ऐसे निरर्थक अपव्यय से ही किस प्रकार की जा सकती है।

मृतात्मा के उपलक्ष्य में दान का उचित मार्ग– भौतिक, शरीर से छूटने के बाद मृतात्मा सूक्ष्म शरीर में और सूक्ष्म वातावरण में ही रहती है। परलोक एक अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व है, जिसमें आत्मा का आवागमन प्रकाश की किरणों द्वारा ही होता रहता है। ऐसे अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व में अगर कोई चीज प्रभाव ड़ाल सकती है तो वह आध्यात्मिक भावना और तद्नुकूल कार्य-कलाप ही हो सकते हैं। मरणोत्तर कृत्य में ऐसी भावना तभी उत्पन्न हो सकती है जब कि उसके कराने वाले पूर्ण सात्विक वृति के सदाचारी और समस्त नीच विचारों से परे रहने वाले हों। ऐसे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तियों का इस समय अभाव ही दिखाई पड़ता है। प्रथम तो उच्च मनोभूमि के व्यक्ति इस क्षेत्र में आते ही नहीं और अगर कोई आ भी गया तो उनकी संख्या इतनी नगण्य है और उनकी पहिचान इतनी कठिन है कि सामान्यतः उनका प्राप्त हो सकना असंभव-सा है। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि अब हम समयानुसार अपनी रीति-नीतियों में परिवर्तन करें और उनको उपयोगी तथा सार्थक बनाने की चेष्टा करें। दान का मुख्य उद्देश्य यही है कि उसके द्वारा अधिक से अधिक व्यक्तियों का अधिकतम हित हो सके। अथवा किसी समुदाय विशेष का हित हो सके। इसी दृष्टि से प्राचीन समय में त्यागी और तपस्वी ऋषियों को दान के रूप में धन अर्पण किया जाता था ताकि वे उसका दुरूपयोग न होने दें और वह वास्तव में उन लोगों की सहायतार्थ खर्च किया जाय जो सहायता पाने के अधिकारी हैं।

अब यह कार्य व्यक्तियों के बजाय सार्वजनिक संस्थाओं के जिम्मे आ गया है। यों इन संस्थाओं में भी दो एक व्यक्ति ही प्रमुख कार्यकर्ता होते हैं, तो भी उनका संगठन इस प्रकार किया जाता है कि उनके कार्यों पर सभी लोगों की निगाह रहती है और जब वे कोई अनियमित कार्यवाही करती हैं तो लोग उनकी आलोचना और नुकताचीनी करने लगते हैं। इससे उनको चन्दा या दान के रूप में प्राप्त धन का उपयोग करने में सावधान रहना पड़ता है। अगर कोई बेईमानी कर भी लेता है तो वह दो-एक बार ही ऐसा कर सकता है, क्योंकि भेद खुलते ही उनकी बदनामी हो जाती है और उसे अपने स्थान से राजी या दबाव से हटना पड़ता है। जो संस्थायें प्राप्त धन का उपयोग ईमानदारी से नहीं कर सकती वे शीघ्र ही बदनाम भी हो जाती है और फिर लोग उनका भरोसा नहीं करते। इसलिए संस्थाओं के लिए ईमानदारी ही ऐसा गुण है जिससे उनको निरन्तर वृद्धि होती रहती है और लोग उन पर विश्वास करके सार्वजनिक कार्यों के लिए उचित सहायता देते रहते हैं।

मरणोत्तर क्रिया की शास्त्रीय विधि- मरणोत्तर कृत्य के लिए धर्मशास्त्र के निर्देशानुसार तर्पण, पिण्ड, बलि आदि का संक्षिप्त कार्यक्रम पूर्ण करना ही अधिक सुविधाजनक है। किसी विद्वान् और सदाचारी व्यक्ति द्वारा कर्मकाण्ड काम सविधि पूरा करा सकना न तो बहुत बड़ी उलझन का काम है, न विशेष खर्च करना। अपनी परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति उसे दस-बीस रूपये में निबटा सकता है। इसके पश्चात् बारहवें या तेरहवें दिन श्राद्ध के रूप में दो-चार ब्राह्मणों का विधानानुसार सादा भोजन करा सकते हैं। बस अन्त्येष्टि और मरणोत्तर क्रिया के रूप में इतना कार्यक्रम पर्याप्त है जिससे शास्त्र का निर्देश पूरा हो जाता है और जिसका छोटे बड़े प्रायः सभी व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार पालन भी कर सकते हैं। इसी अवसर पर मृतात्मा के उपलक्ष्य में परोपकारी और सार्वजनिक हित के कार्य सम्पादन करने वाली संस्थाओं को श्रद्धापूर्ण वातावरण में दान दिया जाय। यह दान अपनी शक्ति और स्थिति के अनुसार कम या ज्यादा हो सकता है,पर इसमें किसी का व्यक्तिगत स्वार्थ न होने से देने वालों के ऊपर कोई ऐसा दबाव नहीं पड़ता जिससे विवश होकर उसे शक्ति से बाहर खर्च करने को विवश होना पड़े और उनके कारण आगामी जीवन में घोर कष्ट सहन करना पड़े। यही वर्तमान समय में प्रचलित मृतक-भोज और ऊपर प्रस्तावित दान प्रणाली में एक बहुत बड़ा अन्तर है। जो लोग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं वे अधिक परिमाण में दान देकर मृतक के नाम पर कोई स्वतन्त्र परोपकारी कार्य, छोटा या बड़ा स्कूल, पुस्तकालय आदि की स्थापना करा सकते हैं। जहाँ आवश्यकता हो वहाँ धर्मशाला, जलशाला प्याऊ आदि की व्यवस्था भी की जा सकती है। तात्पर्य यही है कि मनुष्य श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार उतना ही व्यय करें जिससे भविष्य में उसे किसी प्रकार परेशानी न उठानी पड़े और साथ ही कर्तव्य का उचित पालन भी हो जाय। लालच या उपेक्षावश सामर्थ्य और सुविधा होते हुए भी ऐसे अवसर पर दान पुण्य की तरफ से बिल्कुल हाथ खींच लेना भी अनुचित है और उससे स्वार्थपरता, संकीर्णता और मृतात्मा के प्रति उपेक्षा भाव प्रकट होना है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बड़प्पन की भावना वाले - एक श्रेणी उन मनुष्यों की भी होती है जो बड़े मृतक-भोज बड़प्पन की भावना से करते हैं। जब वे देखते हैं कि बिरादरी में अमुक व्यक्ति ने अपने मृत पिता या अन्य सम्बधी का भोज इतना खर्च करके किया जिससे उसकी बड़ी नामवरी हुई, तो वे सोचते हैं कि हम भी उन्हीं के मुकाबले का या उनसे भी बढ़कर भोज दे जिससे लोग हमको बड़ा समझें और आदर सम्मान करें। ऐसे लोग बड़ी छिछोरी बुद्धि के होते हैं। उनको ज्ञान नहीं होता कि संसार में स्थायी बड़प्पन कैसे मिल सकता है? जो अपव्यय का उपाय वे सोचते हैं उससे तो एक-दो दिन चर्चा या वाहवाही हो जाती है। इन वाहवाही करने वालों में भी अधिकांश ऐसे होते हैं जो मुँह पर तो बड़ाई पर पीछे बुराई और हँसी करते हैं। परिणाम यह होता है कि ऐसे बड़प्पन के शौकीन अपना धन भी बर्बाद करते हैं और जब इसके फल से उनकी स्थिति बिगड़ जाती है तो वे दूसरों की हँसी के पात्र बन जाते हैं। उस समय भोज की प्रेरणा देने वाले और बड़प्पन का सब्जबाग दिखाने वालों की सूरत दिखाई नहीं देती।

जब लोगों में अविद्या और मूढ़ता का अन्धकार अधिक फैला था तब लोग ऐसे दिखाऊ कामों की तारीफ भी करते थे, पर अब वह जमाना बदल गया है। अब साधारण जनता भी प्रत्येक काम को उपयोगिता और लोकहित की कसौटी पर कसकर देखती है। पैसा बड़े परिश्रम और संयमित व्यवहार से ही एकत्रित हो पाता है,अवएव उसका उपयोग ऐसे कार्यों में ही होना चाहिए, जिससे हमारा शारीरिक, मानसिक, आत्मिक कल्याण हो सके। उससे क्षणिक वाह वाही या झूँठी शानशौकत के कार्यों से उड़ा देना कदापि बुद्धिमानी का काम नहीं कहा जा सकता वर्तमान में प्रचलित मृतक-भोज की सार्थकता ऐसे ही कामों में समझी जा सकती है, क्योंकि उससे किसी का हित तो नहीं उल्टा अन्य लोगों के सामने एक गलत उदाहरण पेश होता है और वे समर्थ न होते हुए भी इतना खर्च कर बैठते हैं जिससे उनको जन्म भर दुःख उठाना और पछताना पड़ता है। इसलिए जो लोग नामबरी या बड़प्पन की खातिर बड़े–बड़े मृतक–भोज करते हैं वे अपनी ही बर्बादी नहीं करते वरन् दूसरों की दुर्दशा के भी कारण बनते हैं।

मरणोत्तर क्रियाकर्म में अपव्यय- मृतक-भोज की तरह अनेक लोग मृतक की क्रियाकर्म में भी बहुत अधिक व्यय करते हैं। धनवान् और राजाओं को कपड़े, बिस्तर, चारपाई आदि दान देते हैं। बहुत बड़े उनके नाम पर बर्तन, तो घोड़ा, गाड़ी, आदि का भी दान करते देखा गया है। पुराने जमाने में मिस्र के निवासी भी अन्ध–विश्वास के कारण बादशाह के मरने पर उनके साथ सब प्रकार की जीवनोपयोगी सामग्रियाँ जो बहुत ऊँचे दर्जे की सुवर्ण आदि कीमती धातुओं से बनी होती थीं और जिनकी लागत करोड़ो रुपये होती थी, उनकी समाधि के भीतर रख देते थे। इस प्रथा का पालन करने वाले लोगों का विश्वास होता था कि परलोक भी इस लोक की तरह ही है और वहाँ भी मनुष्यों को खाने-पीने ,पहनने सोने के लिए सब चीजो की आवश्यकता होती है। पर अब लोगों को मालूम हो गया कि परलोक अत्यन्त सूक्ष्म त्तव से निर्मित है और वहाँ मनोभावनाओं के अतिरिक्त किसी स्थूल पदार्थ का प्रवेश नहीं है। अतएव किसी पुरोहित को वस्त्र, बर्तन, बिस्तर, हाथी, घोड़ा, देकर यह ख्याल करना कि इसके फल से मृतात्मा को ये वस्तुएँ प्राप्त हो सकेगीं हद दर्जे का भोलापन है। इस प्रकार की प्रथाएँ मध्यकाल में कुछ स्वार्थी और लालची पुरोहितों ने सीधे-साधे व्यक्तियों को बहकाकर प्रचलित करादी थीं उन्हीं का बचा-खुचा प्रभाव अभी तक अशिक्षित अथवा रूढ़िवादी लोगों में चला आता है। पर इस समय शिक्षा और विज्ञान के प्रकाश में आत्मा और परलोक के सम्बन्ध में हम जितने वास्तविक तथ्यों की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं, उन्हें देखते हुए इस प्रकार लकीर को पीटते रहना निरर्थक है।

मरणोत्तर क्रियाकर्म का रूप, जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, बहुत सादा होना चाहिए। उसमें बजाय खाने-पीने, पहिनने-ओढ़ने की बहुत अधिक साम्रगी के आन्तरिक श्रद्धा भावना की विशेषता होनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शास्त्र में उस समय जिस हवन, ईश्वर प्रार्थना, श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने का विधान बतलाया गया है उनका ही कृत्य खूब शान्ति और मनोयोगपूर्वक करना चाहिए । एकाग्रचित से किये हुये कर्मकाण्ड ही वास्तव में परलोक में कुछ प्रभावशाली हो सकते हैं। केवल जोर–जोर से शुद्ध–अशुद्ध मन्त्रों का उच्चारण करते रहना और अपना ध्यान वेदी पर रखी जाने वाली दक्षिणा के पैसों पर लगाये रखने से मृतात्मा की कोई भलाई नहीं हो सकती।

मृतक के लिए शोक करने का गलत तरीका–किसी की मृत्यु होने के अवसर पर हिन्दू घरों में जिस प्रकार शोक मनाया जाता है वह भी एक गलत और हानिकारक ढंग है। ज्ञानीजनों का तो कथन है कि मानव–जीवन ईश्वर की एक धरोहर की तरह है, इसलिए जब कभी वह इसे वापस लेलें उसमें किसी प्रकार का शोक या खेद करने की आवश्यकता नहीं। यह ठीक है कि इस प्रकार का मोहमाया शून्य मनोभाव रख सकना साधारण संसारी मनुष्यों के वश से बाहर की बात है। फिर भी मृत्यु पर बहुत अधिक रोना-पीटना और माथा, छाती कूटना कोई प्रशंसनीय कार्य नहीं है। लोग समझते हैं कि ऐसा करने से मृतक के प्रति हमारा प्रेम प्रकट होता है, पर अन्य दर्शकों को इसमें दिखावे का भाव ही जान पड़ता है। प्रायः देखा जाता है कि यदि किसी को अत्यन्त निकट आत्मीय के मरने से वास्तव में बड़ा धक्का लगता है, तो उस समय उससे अधिक रोया भी नहीं जाता वरन् मन का शोकोद्गार भीतर ही रह जाता है।

दूसरी वर्जनीय बात यह है कि जो लोग किसी आत्मीय के प्राण निकलते समय वही पर बहुत अधिक रोना पीटना करते हैं वे परलोक यात्रा करने वाले व्यक्ति के मार्ग में बाधक बनते हैं। उस समय उस व्यक्ति की आत्मा इस लोक को छोड़ते हुए अपने जीवन भर के कर्मों का लेखा–जोखा करती है और आगामी जीवन की सम्भावनाओं पर भी विचार करती है। ऐसे समय में यदि उसके निकट ही रोना–पीटना करके उसकी शक्ति को भंग किया जायगा तो इससे अवश्य ही उसकी यात्रा में बाधा पड़ेगी और उसका भविष्य बिगड़ेगा। इस अवसर पर तो हमको पूर्ण शान्त रहकर धर्मग्रन्थों आदि का पाठ करके उससे शान्तिपूर्वक प्रयाण कर सकने का वातावरण उत्पन्न करना चाहिए, जिससे वह आशा और विश्वास के साथ नये जीवन में प्रविष्ट हो और तदनुसार उतम फल प्राप्त कर सके।

यह भी एक स्मरणीय विषय है कि अधिकांश मनुष्यों को अपने परिवार, धन–सम्पति, इष्ट–मित्रों में जरूरत से ज्यादा मोह रहता है और मरते समय वे उनके वियोग में व्याकुलता का अनुभव करते हैं। ऐसे अवसर पर यदि उनके सम्बन्ध में अधिक रोना–धोना करते हैं तो उनका मोह का भाव और अधिक भड़कता है तथा वे उन सबको छोड़ने में अधिक व्याकुलता का अनुभव करते हैं। इसके फलस्वरूप उनकी आत्मा शीघ्र अपने लक्ष्य की तरफ अग्रसर नहीं हो पाती वरन् अपने घर तथा परिवार के मोह बन्धन में जकड़ी हुई वही आसपास बनी रहती है। यह भी एक अनुचित और हानिकारक बात है। आत्मा को तो अन्त में अपने निर्दिष्ट स्थल पर जाना ही होगा और उसका पृथ्वी पर मौजूद अपने सम्बन्धियों से सम्बन्ध टूटेगा ही, पर इस प्रकार मोह का बन्धन दृढ़ होने से आत्मा उच्च गति में जाने के बजाय बहुत समय तक निम्न गति में ही बनी रहती है और उसको सद्गति होने में बड़ी बाधा उपस्थित हो जाती है।

वैसे भी आजकल अनेक जातियों में किसी के देहान्त होने के पश्चात जो रोना–पीटना या स्यापा कई दिन तक जाता है वह किसी दृष्टि से युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता। उसमें प्रायः ऐसी स्त्रियाँ मृत व्यक्ति के लिए घण्टों तक रुदन करती हैं जिनको उससे न तो मोह होता है न किसी प्रकार का सम्बन्ध होता है। ये स्त्रियाँ इस प्रकार छाती पीट–पीट कर रोती हैं कि उससे उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है। कभी–कभी तो जाति में अधिक मृत्यु हो जाने पर उनको दिन में एक से अधिक बार भी यह कृत्य करना पड़ता है। यद्यपि यह शोक प्रदर्शन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिल्कुल दिखावटी होता है, क्योंकि मृतक के घर से निकलने के बाद ही मनाया जा सकता है।

मृतक के परिवार की सहायता करें– यदि इस समस्या पर सामाजिक हित की दृष्टि से गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो अधिक सही तरीका यह जान पड़ता है कि लोग ऐसे अवसर पर अधिक शोक और सहानुभूति का भाव प्रकट करने के बजाय मृतक के परिवार को सब तरह से धैर्य बँधावे और उसकी सहायता करने को तपर हों। वास्तव में किसी समय जातियो का संगठन इस उद्देश्य से भी किया गया था कि हर्ष–विषाद और कठिनाइयों के अवसर पर जाति वाले एक-दूसरे को सहयोग देकर परिस्थिति को सुधारने का प्रयत्न करें। कितने ही परिवारों में जब कमाने वाले एकाकी व्यक्ति की कुसमय में मृत्यु हो जाती है तो वास्तव में उसके आश्रित व्यक्तियों के सम्मुख अन्धकार छा जाता है, कि जीवन-निर्वाह कैसे होगा? ऐसे अवसर पर जाति के पंचचौधरी या मुखिया बनने वाले किसी भी रूप में उस विपत्ति-ग्रस्त परिवार की सहायता को आगें बढ़े और उसके बचे हुए साधनों तथा जातीय सहायता द्वारा ऐसी व्यवस्था करें जिससे उनका जीवन-निर्वाह सम्भव हो जाय तो यह एक निःसन्देह प्रशंसनीय बात समझी जायगी। ऐसा होने से विभिन्न जातियों का अस्तित्व कुछ अंशों में सार्थक माना जा सकता है।

यदि विभिन्न जातियों के मुखिया इस प्रकार का शुभ संकल्प करके एक जातीय फण्ड़ की स्थापना करें और सामर्थ्यवान् व्यक्ति मृतक-भोज के लिए खर्च होने वाले धन को उस फण्ड में दान स्वरूप जमा करके उसको पुष्ट करें तो निःसंदेह यह एक लाभकारी कार्य माना जा सकता है। इस धन के द्वारा जाति के असहाय और असमर्थ व्यक्तियों की अनेक प्रकार से सहायता की जा सकती है। आकस्मिक घटनाओं के समय आपतिग्रस्त जातीय सहायता पहुँचाना तो इससे सम्भव ही होगा, साथ ही शिक्षा व्यवस्था, बीमारी आदि के लिए विशेष कार्यक्रमों की भी पूर्ति की जा सकती है। अब भी पारसी जाति के दूरदर्शी व्यक्तियों ने अपने समाज में इस प्रकार के फण्ड की स्थापना कर रखी है और उनके द्वारा वे जातीय कल्याण की अनेको उपयोगी प्रवृतियों का संचालन करते रहते है। सुव्यवस्था के परिणामस्वरूप किसी पारसी को कभी आपति या गरीबी के कारण दर–दर का भिखारी नहीं बनना पड़ता। अवसर पड़ने पर वह हर प्रकार की विपति से छुटकारा पाने के लिए अपनी जातीय निधि से सहायता प्राप्त कर सकता है और कुछ समय में पुनः अपने पैरों पर खड़ा होकर अपनी स्थिति को सुधारने में समर्थ हो जाता है।

और भी कई जातियों में ऐसी प्रथा प्रचलित की गई कि जिस व्यक्ति के कोई पुत्र या निकट उत्तराधिकारी न हो, वह अपने घर में अकेला हो तो, वह जीवितावस्था में ही लिखा-पढ़ी करके अपनी स्थावर या जंगम सम्पति को पञ्चायती मन्दिर को दान कर जाते हैं। इस प्रकार से कालान्तर में मन्दिरों के पास काफी जायदाद और सम्पत्ति एकत्रित हो जाती है जिससे वे अनेक समाज हितकारी कार्य कर सकते हैं। यह सच है कि वर्तमान समय में ऐसे मन्दिर अपना कार्यकम प्रायः धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित रखते हैं, पर यदि हम धर्म की व्यवस्था को विस्तृत रूप दे दें और जिस प्रकार कुछ धार्मिक संस्थाएँ शिक्षा, चिकित्सा, उद्योग आदि के सम्बन्ध में उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं उसी का अनुकरण करने लगें तो कुछ ही समय में समाज की काया–पलट हो सकती है। अब समय आ गया है कि हम अपने धन को बिना सोचे समझे व्यर्थ के दिखावे या मूढ़तापूर्ण रस्मों की पूर्ति में खर्च करने के बजाय ऐसे तरीके से खर्च करें जिससे उनके द्वारा देश और जाति का अधिक से अधिक हित हो सके और अभावग्रस्त लोगों को अपनी स्थिति सुधारने में किसी प्रकार की सहायता प्राप्त हो सके।

यदि हम एक मृतक-भोज का औसत व्यय पाँच सौ रुपया भी मान लें और इस पैंतालीस करोड़ की आबादी वाले देश में प्रति वर्ष पचास लाख मृत व्यक्तियों के लिए भी ऐसे भोज दिये जाते हों तो यह रकम कई अरब तक पहुँच जाती है। इतनी बड़ी धन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राशि की यदि उचित व्यवस्था के साथ एकत्रित करके देश के हित के कार्यों में लगाया जाय तो उससे कुछ ही समय में हमारे सैकड़ों अभावों की पूर्ति हो सकती है और भारतीय समाज की वर्तमान अवस्था में जमीन आसमान का अन्तर पड़ सकता है। इस धन से यदि शिक्षा संस्थाओं का विस्तार ही किया जाय तो कम से कम एक लाख नये स्कूल चलाये जा सकते हैं जिनमें दो तीन करोड़ विद्यार्थी प्रतिवर्ष शिक्षा पा सकते है। यदि पुस्तकालय, प्रौढ़ पाठशालाएँ, व्यायाम शालाएँ आदि की स्थापना की जाये तो भी देश भर में इनका जाल फैल सकता है और करोड़ों व्यक्तियों को बौद्धिक तथा शारीरिक उन्नति कर सकने के साधन प्राप्त हो सकते हैं। यदि इसका उपयोग किसी प्रकार से उद्योग-धन्धे के विस्तार करने में किया जाय तो कितनी ही आवश्यक वस्तुओं का निर्माण होने लग सकता और लाखों व्यक्तियों को रोजगार मिल सकता है। भारतवर्ष में अब भी करोड़ों लोगों का स्तर इतना नीचा और अर्थिक हीनता का है कि उनको इच्छा करने पर भी आगे जीवन में बढ़ने का अवसर नहीं मिलता। यदि हम मृतक भोजों में प्रतिवर्ष खर्चों की जाने वाली अरबों रुपये की रकम का सदुपयोग करने लग जायें तो अनेक ऐसे कार्यों का श्रीगणेश हो सकता है जिनमें लाखों व्यक्तियों को काम करने का अवसर मिल सकता है और वे अपने विकास तथा उन्नति के साधन पाकर जीवन को सार्थक बना सकते हैं।

जब हम संसार के अन्य देशों की सामाजिक प्रथाओं से अपनी प्रथाओं की तुलना करते हैं तो स्पष्ट प्रकट होता है कि हमारे यहाँ साधारण संस्कारों में भी उनकी अपेक्षा बहुत अधिक खर्च किया जाता है और वह भी बड़े निरुपयोगी ढंग से। इंग्लैण्ड अमरीका आदि के व्यक्ति भी मरणोपरान्त बड़ी-बड़ी रकमें खर्च करते हैं, पर उनका उद्देश्य चन्द लोगों को पूरी मिठाई खिलाना नहीं होता वरन् वे उसका उपयोग प्रायः समाज हितकारी कार्यों के लिये करते हैं। वहाँ पर मृत्यु के अवसर पर दिये हुए दान द्वारा हजारों बड़े-बड़े अस्पताल चल रहे हैं जिनमें करोड़ों व्यक्तियों को कष्ट के समय सहायता प्राप्त होती है। हजारों स्कूलों को भी ऐसी सहायता दी जाती है और उनके द्वारा वे निरक्षरता तथा अविद्या के उन्मूलन में उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं। एक धनी व्यक्ति की स्मृति में बहुत बड़ी धनराशी लगाकर देश हजार कृत्रिम फेफड़ें के मरीजों को उधार दिये जाते हैं। इनकी सहायता से ऐसे व्यक्ति जिनकी मृत्यु श्वास सम्बन्धी रोग से एक-दो महीने में ही हो जाती हैं। कई–कई वर्ष तक जीवित रह कर अपना कारवार नियमित रूप में करने में समर्थ हो जाते हैं। उनकी मृत्यु के उपरान्त वे फेंफड़े मूलसंस्था को लौटा दिये जाते हैं और तब वे किसी अन्य मरीज की प्राण रक्षा के लिए प्रयुक्त होते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य उद्योगपति की स्मृति के उपलक्ष में एक ऐसी निधि स्थापित की गई है जिससे विभिन्न देशों के कई हजार चुने हुए होनहार विद्यार्थियों को प्रतिवर्ष बड़ी-बड़ी छात्रवृतियाँ दी जाती हैं, जिनकी सहायता से वे अमरीका जाकर किसी विशेष कला विज्ञान या कारीगरी की शिक्षा पास कर सकते हैं। इस पवित्र दान के फलस्वरूप भारतवर्ष के भी सैकड़ो विद्यार्थी जो सामान्य स्थिति के थे लाभान्वित हो चुके हैं और अमरीका में इञ्जीनियरिंग विद्युत यन्त्र विज्ञान या किसी अन्य उपयोगी विषय की शिक्षा प्राप्त करके बड़े–बड़े पदों पर कार्य करने में समर्थ होते हैं। कुछ लोगों ने अपना नाम कायम रखने के लिए ऐसी संस्थायें कायम करादी है जिनके द्वारा बेकार लोगों की सहायता की जाती है और उनको सदा के लिए भिखारी अथवा पराश्रित बनने से बचाकर सामायिक सहायता प्रदान की जाती है और उनके लिए कुछ ही महीनों में कोई काम ढूँढकर फिर से समाज का उपयोगी सदस्य बना लिया जाता है। उन देशों में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जिन्होंने अपनी स्मृति के लिए लाखों करोड़ों रुपये दान करके व्यायाम शालायें, स्वास्थ्यप्रद खेल शक्ति और साहस सम्बन्धी प्रतियोगितायें पर्वतों के अभियान अगम्य प्रदेशों का अन्वेषण जैसे मानव सभ्यता को अग्रगामी बनाने वाली प्रवृतियों को बढ़ाने की व्यवस्था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की है। हम सदैव जो अनेक साहसी विदेशी व्यक्तियों के ज्ञानवर्द्धक अन्वेषणों पर्यटकों के साहसपूर्ण अभियानों की कथायें पढ़ते रहते हैं वे सब ऐसे ही देशकाल के अनुकूल मरणोत्तर क्रिया करने वाले विवेकशील व्यक्तियों की करनी का परिणाम होता है।

इसके मुकाबले में एक हम हैं जो अपने किसी सम्माननीय व्यक्ति की मृत्यु होने पर दो चार सौ अथवा हजार पाँच सौ व्यक्तियों को पकवान या खीर पुआ की दावत धन और अन्न की बर्बादी करते हैं। इस तरह की दावतों में कई सौ मन अन्न एक दिन में खर्च हो जाता है और उस समय खाने वालों की जो भावना होती है, उससे उसका अधिकांश नष्ट ही होता है। भोज के अतिरिक्त जिनके पास अधिक साधन हुए तो वे किसी पण्डा पुजारी पाधा महाब्राह्मण को दो-चार हजार या इससे भी अधिक की सामग्री दान कर देते हैं जिसमें से अधिकांश उसके किसी काम नहीं आती और औने-पौने दामों बेचकर ठिकाने लगानी पड़ती है। हमने एक बड़े तीर्थ में अवध के एक राजा को देखा जो अपनी मरणोत्तर क्रिया स्वयम् ही करने के एक रूप में एक पण्डा को भोजन-सामग्री कपड़े और बर्तनों से लेकर हाथी घोड़े तक दान दे रहा था । कहा गया कि वह समस्त सामग्री सवा लाख रुपये के करीब मूल्य की है और वह राजा पन्द्रह-सोलह तीर्थों में ऐसा ही दान कर चुका है या करने का संकल्प कर चुका है। वंशगत पण्डे को वह दान दिया गया– वह बहुत साधारण स्थिति का था, उसके छोटे से खपरैल के मकान में न घोड़े को जगह थी और हाथी को और न उसमें पालकी न घोड़ा गाड़ी ही रखी जा सकती थी। अन्त में वह कुछ समय धीरे-धीरे सब चीजों को बेचकर खा गया और दो-चार वर्ष में उस रकम को बर्बाद करके फिर जैसा का तैसा गंगा किनारे हाथ फैलाकर माँगने और खाने वाला बन गया।

जो लोग इस प्रकार दस-पाँच घन्टे का दिखावा करने की मूर्खता से आगे बढ़कर कुछ अधिक बुद्धिमानी का परिचय देते हैं वे इस प्रकार की रकम को किसी मन्दिर आदि के रूप में परिवर्तित कर देते हैं और उसके नाम कोई ऐसी स्थायी जायदाद कर देते हैं जिससे नियमित आमदनी होती रहे। पर यह धन भी प्रायः मन्दिरों की पूजा, भोग, उत्सव, नाच, गाना आदि में खर्च किया जाता है। उससे किसी व्यक्ति या समाज का उपकार होने के बजाय कुछ लोगों का जीवन निकम्मा ही बनता है। जिन्होंने ऐसे मन्दिरों में रहने वाले कर्मचारियों की दिनचर्या को देखा है और उनकी हीनता प्रकट करने वाले वार्तालाप को सुना है स्पष्टतः यही अनुभव करते हैं कि वर्तमान समय में यह मन्दिर रूपी संस्था लोगों का उत्थान करने के बजाय उनके अधःपतन का कारण बन गई है और उसके फलस्वरूप समाज में अनैतिक और हानिकारक प्रवृतियों की ही वृद्धि होती है।

इसमें सन्देह नहीं कि यह मन्दिर रूपी संस्था बड़ी उपयोगी थी और हमारी समस्त सामाजिक हलचलों और कार्यक्रमों का केन्द्र उन्हीं को माना जाता था। प्रत्येक मन्दिर में एकाध पाठशाला होती थी जिसमें छोटे–बड़े विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। वर्मा में तो अब भी प्रत्येक बौद्ध मन्दिर में रहने वाला भिक्षु अपने अवकाश के समय में अपने गाँव के बालकों को पढ़ाने में ही लगाया करता है जिसका परिणाम यह है कि उस देश के ग्रामीणों में भी निरक्षरों की संख्या नाम मात्र को है। मन्दिरों में प्रातः और सायंकाल शास्त्रों का स्वाध्याय या कथा प्रवचन आदि होते थे जिनको बहुसंख्यक व्यक्ति श्रवण करके अप्रत्यक्ष रूप से धार्मिक और नैतिक शिक्षा प्राप्त करते थे। कितने ही मन्दिरों में दवादारू बाँटने का भी इन्तजाम होता था और असमर्थ रोगी उन्हीं के द्वारा आरोग्य लाभ कर लेते थे। मन्दिरो की तरफ से जो वार्षिक उत्सव, मेंले, होते थे अथवा बड़े त्योहारों पर जो सार्वजनिक समारोह किये जाते थे उनमें जगह –जगह के व्यवसायी आकर उद्योग-धन्धों द्वारा प्रस्तुत पदार्थों का क्रय-विक्रय करके देश की अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ बनाते थे। साथ ही उन अवसरो पर विभिन्न स्थानों के व्यक्ति परस्पर विचार विनिमय करके सार्वजनिक विषयों के सम्बन्ध में निर्णय करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

थे जिससे धर्म और समाज को एकरूपता प्राप्त होती थी। ऐसी उपयोगी और लोक कल्याणकारी संस्था होने के कारण ही मन्दिर को उस समय बहुत ऊँचा और सम्मानास्पद स्थान प्राप्त हुआ था। आज भी मन्दिरों को जो जनसाधारण की श्रद्धा तथा सहयोग प्राप्त है वह उस समय के कार्यों तथा ख्याति का परिणाम है। यदि अब भी हम इन देवस्थानों को पुनः सार्वजनिक हितकारी कार्यों के केन्द्र बनादें तो वे फिर अपने पुराने गौरवशाली स्थान को प्राप्त कर सकते हैं और जन-जीवन के उत्थान में महत्त्वपूर्ण भाग ले सकते हैं।

सारांश यही कि हम अपनी सामर्थ्य और स्थिति के अनुसार मृत व्यक्ति के प्रति अपनी श्रद्धा अवश्य प्रकट करें, पर उसमें समयानुकूल और विवेकशीलता का ध्यान रखना न भूलें। कोई भी कार्य क्यों न हो, उसके भले–बुरे होने का निर्णय उसके नतीजा को देखकर ही किया जा सकता है। हम मृतक–भोज की वर्तमान प्रणाली का निषेध इसलिए करते हैं क्योंकि उसमें कोई सार नहीं है और न किसी का उसके द्वारा वास्तव में हित साधन होता है। क्योंकि वर्तमान समय में जातियों का प्राचीन संगठन टूट चुका है, उनमें पेशे, वेष, शिक्षा आदि की एकरूपता नहीं पाई जाती और न वह संगठन तथा सहयोग का भाव शेष है जिसके लिए किसी समय उनका प्रादुर्भाव हुआ था। इसलिए अब जातीय नियमों के नाम पर केवल मृतक–भोज जैसी व्यय करने वाली और अनेक संकटों को जन्म देने वाली प्रथाओं को जीवित रखना बुद्धिमता का परिचायक नहीं है। उनको समयोचित उपयोगी रूप देना नितान्त आवश्यक है।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मृतक–संस्कार एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक प्रकिया है, जिसमें दिखावट या कृत्रिमता का भाव रहना न तो हमारे लिए और न हमारे दिवंगत स्वजन के लिए लाभदायक हो सकता है। उस अवसर पर हमको पूरी सात्विकता, शुद्धता और सत्य का परिचय ही देना चाहिए और अपने मन में या काम में कोई ऐसा भाव न आने देना चाहिए जिससे मृतात्मा का अनिष्ट हो। वर्तमान समय में जो मृतक–भोज किये जाते हैं वे सर्वथा लौकिक दृष्टि से होते हैं और उनमें दिखावा, नामवरी और कभी–कभी किसी प्रत्यक्षस्वार्थ-सिद्धि की भावनायें भी सम्मिलित होती हैं। ऐसे अवसरों पर अनेक बार घर वालों में या सगे सम्बन्धियों में मतभेद भी हो जाते हैं और उनके कारण जो मनोमालिन्य उत्पन्न होता है। उससे बहुत अधिक समय तक तरह–तरह के कुपरिणाम उत्पन्न होते रहते हैं। ये बातें मृतात्मा के कल्याण की दृष्टि से अनुचित ही होती हैं। इसलिए यदि मृतक–संस्कार, को धार्मिक विधि-विधान और यथाशक्ति निःस्वार्थ भाव से दान-पुण्य तक ही सीमित रखा जाय तो वह प्रशसंनीय माना जायेगा।

यह समय बड़े व्यापक परिवर्तनों का है और संसार के उन्नतशील देशों के निवासी जल, थल और आकाश में अपना पूरा अधिकार जमाने का प्रयत्न कर रहे हैं। वे प्रकृति की गूढ़ से गूढ़ शक्ति का स्वामित्व प्राप्त करके ऐसे-ऐसे कार्य करके दिखा रहे हैं जो अभी तक असम्भव समझे जाते थे। यदि हम कहें कि इस समय संसार की कायापलट हो रही है और एक नई दुनिया का निर्माण हो रहा है, तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। ऐसे समय में मृतक-भोज जैसी सामयिक रीति रिवाजों को, जो पिछले दो-सौ वर्षो के अधःपतन के युग में ही भ्रमवश प्रचलित हो गई हैं, अधिक महत्त्व देना और परिस्थिति के पूर्णतः बदल जाने पर भी उससे चिपटे रहने का प्रयत्न करना हमारी बुद्धिहीनता का ही प्रमाण है। इस समय जब कि जनसंख्या की वृद्धि के कारण में अन्न का अभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है और लोगों को भूखों मरने से बचाने के लिए समय-समय पर हजारों कोस की दूरी पर विदेशों से अनाज मँगाना पड़ता है तब मृतक-भोज जैसे खाद्य–पदार्थों की बर्बादी करने वाली प्रथा को बनाये रखना बुद्धि हीनता ही कही जायेगी।

वास्तव में मृतक संस्कार एक ऐसा स्वाभाविक और अनिवार्य कर्म है जो सभी सभ्य जातियों में किसी न किसी रूप में प्रचलित है। यह ख्याल करना कि हम हिन्दू ही मृतक की सद्गति का सबसे अधिक

ध्यान रखते हैं ठीक नहीं है। मुसलमान भी अपने मुर्दो का 'जनाजा', निकालते हैं और हम कह सकते हैं कि वे लोग मृतक-संस्कार में हमसे अधिक ही खर्च करते है। उनके कफन का कपड़ा हमारी अपेक्षा १५–२० गुना अधिक होता है। ईसाई भी अपने मृतकों का संस्कार ताबूत बना कर करते हैं जिसमें कम से कम सौ रु० तो लगते ही होंगे। पारसी चाहे अपने दार्शनिक विचारों के कारण मुर्दे को जलाने या गाढ़ने के बजाय पक्षियों के आहार के लिए दे देते हैं पर वे भी उनके सम्मान के व्यय में कमी नहीं करते। जापानी लोगों ने तो अपना धर्म ही पूर्वज पूजा बना लिया है और वे आजीवन उनके स्मारक चिह्नों की पूजा उपासना किया करते हैं।

इस प्रकार संसार के सभी लोग अपने–अपने विचार और धर्म सिद्धान्तों के अनुसार मृतकों की अन्तिम क्रिया करते हैं। जंगली लोग भले ही उनको फेंक देते हों या भक्षण भी कर लेते हों। पर सब लोग इस अवसर पर अपनी सामर्थ्य और परिस्थिति का ध्यान रखते हैं और मृतक संस्कार के बाद 'मृतक–भोज' जैसा कोई कार्य नहीं करते जिसका कोई औचित्य नहीं और जिसके कारण उनकी आर्थिक स्थिति पर कुप्रभाव पड़े। उन लोगों तो यह बात आश्चर्यजनक जान पड़ती है कि किसी जाति वाले अपने घर में किसी के मर जाने पर हर्षोत्सव के समान मनावें तथा परिचितों को मिठाई या पकवान खिलाये जाये । यूरोप अमरीका के व्यक्ति मरणोपरान्त अपनी स्मृति के लिए लाखों करोड़ों का दान कर जाते हैं जिससे सदैव लाखों व्यक्ति लाभ उठाते हैं इसी निमित वे बड़ी–बड़ी संस्थायें स्थापित कर जाते हैं जिनसे लाखों व्यक्तियों का कल्याण होता है पर उनमें से कोई भी अपने मरने के बाद दस बीस हजार रुपया लगा कर कर दो–चार सौ व्यक्तियों को खिलाने की बात नहीं सोचता।

हमारे देश के बड़े लोगों में भी अब वसीयत नामा लिखने की प्रथा प्रचलित होती जाती है। अच्छा तो यह है कि वे स्वयम् अपनी सम्पति का एक भाग लोकोपकारी संस्थाओं तथा अन्य कार्यों के लिए दान कर जायें और साथ ही यह भी लिख जाये कि मरने के पश्चात उनके नाम पर मृतक भोज या ब्रह्म-भोज जैसा कोई कार्य नहीं किया जाये। इससे जहाँ वे धन सदुपयोग करके सुयश के भागी बनेंगे वहाँ दूसरे लोगों के लिए एक उदाहरण बनकर एक हानिकारक सामाजिक प्रथा को रोकने में भी सहायक माने जायेंगे। आजकल तो अधिकांश गरीब लोगों को इस प्रथा का पालन अनिच्छापूर्वक करना पड़ता है, क्योंकि उनके पास इतना फालतू पैसा नहीं होता कि वे मृतक भोज या 'कारज' बिना किसी दिक्कत के कर सकें। पर लोक-लाज वश उनको कर्ज लेकर अपना घर बाहर गिरवीं रखकर अपनी कोई आवश्यक वस्तु बेचकर भी इस रूढ़ि का पालन करना पड़ता। इस तरह की परम्परा न तो मनुष्य की बुद्धिमता की परिचायक है और न किसी प्रकार उसे लाभान्वित कर सकते हैं।

हमारा कर्तव्य है कि अब इसमें समयानुकूल परिवर्तन करें और हमें मृतात्मा के उपलक्ष्य में जो कुछ व्यय करना हो तो उसे ऐसे ढंग से करें जिससे देश और समाज की भलाई हो और हमारी निजी अर्थ व्यवस्था पर कोई हानिकारक प्रभाव न पड़े।

शायद कोई जमाना ऐसा रहा हो जब घर के प्रमुख व्यक्ति के मर जाने पर समाज के या उस विशेष समुदाय के सदस्य मृतक के परिवार को सहायता और आश्वासन देने के लिये एकत्रित होते हों और जिस बात की जरूरत हो उसमें सहयोग देकर काम को बना देते हों। हमने देखा है कि अब भी कितनी ही जातियों में ऐसे अवसर पर बहुसंख्यक व्यक्ति इकट्ठे होते हैं और किसी रस्म के नाम पर दो-दो रुपया देते चले जाते हैं। इस प्रकार जितना उनको खिलाने में लगता है उससे अधिक वे दे जाते हैं जिससे अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने में सहायता मिलती है। कुछ स्थानो में आपस के लोग थोड़ा–थोड़ा एकत्रित करके भोज की व्यवस्था करते थे। यह एक प्रकार का सहयोग होता था जिस उद्देश्य से निकट सम्बन्धियों और जातीय व्यक्तियों का मिलकर परिस्थिति पर विचार विनिमय करना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता था। उस समय इस प्रकार सामूहिक आयोजनों का मुख्य उद्देश्य खाना-पीना न होकर पारस्परिक मिलन और एक-दूसरे की जानकारी प्राप्त करके सहयोग की वृद्धि करना होता था। याद रखना चाहिए कि उस समय आवागमन और समाचारों के भेजने की सुविधा बहुत कम होने से लोग सौ-पचास मील के क्षेत्र की परिस्थितियों से भी सहज में परिचित नहीं हो पाते थे।

पर अब वे सब बातें बदल चुकी हैं तरह-तरह के नये साधनों और परिवर्तनों के फलस्वरूप आजकल सामान्य मनुष्य भी देश भर की घटनाओं को सुनते और समझते रहते हैं। अब बड़े मृत्युभोजों का परिणाम सिवाय धन तथा समय के अपव्यय के कुछ नहीं होता। अब अधिकांश मनुष्य अपने–अपने कामों में और समस्याओं में इतने व्यस्त होते हैं कि इस काम के लिए दो-चार घण्टा खर्च करने में भी वे लाभ के बजाय घाटे में ही अधिक रहते हैं। फिर वर्तमान समय में सब चीजों की महँगाई नकली वस्तुओं का प्रचलन प्रत्येक खाद्य सामग्री में मिलावट शुद्ध वस्तुओं के मिलने में कठिनाई ऐसी बाते है जिनसे इस प्रकार के भोजों में भाग लेना स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हानिकारक होता है हम सामाचार पत्रों में समय–समय पर ऐसी घटनायें भी पढ़ते रहते हैं कि अमुक भोज के पश्चात् उसमें भाग लेने वाले सौ, दो सौ व्यक्ति यकायक बीमार हो गये जिनमें से कुछ मर भी गये। यह सब खाद्य सामग्रियों के दूषित होने का ही परिणाम होता है जिसकी आशंका बड़े भोजो का आयोजन करने में बहुत बढ़ जाती है। इस दृष्टि से मृत्यु भोज की प्रथा वर्तमान समय में हर तरह से हानिकारक ही प्रतीत होती है।

६- षोडश संस्कार

हिन्दू धर्म का आधार मनोविज्ञान है। प्रत्येक बात गुप्त मनोवैज्ञानिक सत्यों पर आधारित है। हमारे यहाँ संस्कारों को विशेष महत्त्व प्रदान किया जाता है। माता-पिता, वंश, वातावरण इत्यादि का जो गुप्त संस्कार बालक पर पड़ता है, वह उसके जीवन को सदा प्रभावित किया करता है। सत्संस्कारों से ही बालक सद्गुणी, सद्विचार सम्पन्न, सत्कर्मपरायण, आदर्शभूत, अनुशासनप्रिय, सेवा परायण और साहसी बनते हैं।

हमारे ऋषियों के अनुसार गर्भाधान से ही शिशु पर संस्कार पड़ने प्रारम्भ हो जाते हैं। जैसा माता-पिता का अन्तरंग होगा, वैसे ही विचार बच्चे में भर जायेंगे। गर्भाधान से पूर्व ही माता-पिता के आचार, विहार और विचारों का गुप्त प्रभाव शिशु पर पड़ना प्रारम्भ हो जाता है। अतः उसी समय से संस्कारों को सम्भालने की ओर ध्यान दिया गया है। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक हमारे भिन्न-भिन्न सोलह संस्कारों को मन्त्रों सहित करने का विधान है।

मनुस्मृति के आधार पर सोलह संस्कार इस प्रकार हैं––

१ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ चूड़ाकरण, ९ कर्णबेध, १० उपनयन–वेदारम्भ (ब्रह्मचर्य-व्रत) ११ केशान्त, १२ ब्रह्मचर्य समाप्ति, १३ विवाह, १४ वानप्रस्थ, १५ परिव्रज्या, १६ पितृमेध। विद्वानों का मतभेद होने पर भी इनमें सभी अन्य संस्कार भी सम्मिलित हो जाते हैं। पं० दीनानाथ शर्मा के अनुसार इन संस्कारों के निम्नलिखित फल होते है।

(१) गर्भाधान से वीर्य सम्बन्धी तथा गर्भ सम्बन्धी पाप का नाश होता तथा क्षेत्र का संस्कार भी गर्भाधान का फल कहा गया है।

(२) पुंसवन से गर्भ में पुरुष का चिह्न प्रकट होता है।

(३) सीमन्तोन्नयन का फल गर्भाधान के फल के समान ही होता है।

(४) जातकर्म से गर्भस्रावजन्य सारा दोष नष्ट हो जाता है। आयु व तेज की वृद्धि तथा लौकिक व्यवहार की सिद्धि होती है।

(५) नामकरण में उच्च सद्गुण सूचक नाम मिलना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

(६) अन्नप्राशन से गर्भ में माता का मल खाने आदि का दोष दूर होता है।

(७) बल, आयु एवं तेज की वृद्धि चूड़ाकर्म का फल कहा गया है।

(८) द्विजत्व की प्राप्ति के साथ-साथ वेदाध्ययन के अधिकार की प्राप्ति उपनयन का फल बताया है।

(९) कर्णावेध– शिखायुक्त पाँचवें वर्ष के बालक का यह संस्कार किया जाता है। इसमें दोनों कानों को वेधकर उसकी नस को ठीक करने के लिए उसमें सुवर्ण कुण्डल धारण किया जाता है। इससे शारीरिक रक्षा होती है।

(१०) उपनयन– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वेश्यों में यह संस्कार ८,११, १२ वर्षों में किया जाता है। यह संस्कार आचार्य कुल में विद्या ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त है। इसमें लँगोट भी धारण करना पड़ता है, जिससे इन्द्रिय–निग्रह, मन का एकाग्र होना और अण्डवृद्धि रोग की आशंका दूर होती है। इसमें भिक्षा का भी विधान है, जिससे धनी-निर्धन की समता देश का ऋण अपने ऊपर चढ़वाना लक्ष्य है, जिससे हम अपने आपको देश का ऋणी समझ कर देश की सेवा करते रहें। यह वेदारम्भ, ब्रह्मचर्याश्रम का संस्कार है।

(११) केशान्त संस्कार– शिखा को छोड़कर बचे हुए बाल काट देना इसका उद्देश्य है। ब्राह्मण का १६ वें, क्षत्रिय का २२वें और वैश्य का २४वें वर्ष में हुआ करता है।

(१२) समावर्तन (स्नान) संस्कार– इस संस्कार से विद्यार्थी गुरु दक्षिणा देकर व्रतान्त– स्नान कर विद्याध्ययन की समाप्ति करता है। २४वें वर्ष में आचार्य–कुल में विशेष स्नान भी करना पढता है। ब्रह्मचर्य के चिह्नों को त्याग कर गार्हस्थ के उपयुक्त चन्दन, पुष्पमाला, पगड़ी, भूषण, शीशा, देखना, सुरमा लगाना, जूता पहनना आचार्य की देख-रेख में करना होता है।

(१३) विवाह तथ्य अग्न्याधान का रहस्य– पितृ ऋण के शोधन के लिए यह संस्कार किया जाता है। इसमें धर्मानुकूल विधियों से स्त्री ग्रहण किया जाता है। धर्मानुकूल विधिपूर्वक विवाह करके ही धर्मपत्नी बनती है और धर्मानुष्ठान भी पुरुष का पूर्ण होता है।

(१४) धर्मानुकूल गृहस्थाश्रम व्यतीत करने के बाद ५१ वर्ष से ७५वर्ष तक वानप्रस्थाश्रम संस्कार करना पड़ता है। इसमें घर का भार बड़े पुत्र पर डालकर पत्नी के साथ बन में निवास करना पड़ता है। शहर से दूर रह कर परलोक लाभार्थी धर्म-कर्म में संलग्न रहते है। इसमें स्वाध्याय और तपस्या का विधान है।

(१५) परिव्रज्या या सन्यास का रहस्य– ७५ वर्ष के पश्चात् समस्त कर्मों का त्याग करना पड़ता है। पत्नी को भी छोड़ना पड़ता है, क्योंकि स्त्री धर्म, अर्थ, काम की ही प्राप्ति का साधन है, मोक्ष का नहीं। इस आश्रम में ज्ञान का सञ्जय करना पड़ता हैं। यहाँ तो 'वसुधैब कुटुम्बकम्', का उदार भाव धारण करना पड़ता है। इसमें भिक्षा से निर्वाह करना पड़ता है।

(१६) पितृमेधव वा अन्त्य कर्म– वैध संस्कार से मृतक के आत्मा की परलोक में सद्गति हुआ करती है। अतः विधिपूर्वक अन्त्येष्टि का विधान है।

इस प्रकार १६ संस्कारों के विधान से जीवन संतुलित और संयमित रहता है। ये गुप्त शुभ संस्कार और गर्भाधान से अन्त तक चलने वाले विविध शास्त्रीय धार्मिक कृत्य हिन्दुत्व को स्थिर रखने वाले हैं। वेदमन्त्रों के उच्चारण द्वारा नये बालक पर जो पवित्र भाव अंकित कर दिए जाते है। उनके प्रभाव से वह एक अच्छा नागरिक और सभ्य समाज का प्राणी बन जाता है। ये मनुष्य के जीवन को सुसंस्कृत बनाने वाले और जीवन को उन्नत बनाने वाले हैं। अच्छे संस्कार ही मनुष्य के उत्कर्ष के मूल आधार है। जैसे सोना खान से निकलने पर साफ किया जाता है, वैसे ही संस्कारों से मनुष्य के दोष दूर हो कर परिष्कृत मानवता का प्रकाश होता है। ये संस्कार ही लोक और परलोक को सुधारने तथा बीजगत दोषों को दूर करने वाले हैं।

संस्कारों से प्रेरणा ग्रहण करें!

भारतीय संस्कृति के दार्शनिक और व्यावहारिक दोनों ही पक्ष मानव जाति के अत्यान्तिक कल्याण का ध्यान रखकर विनिर्मित किये गये हैं। तत्त्वदर्शी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषियों को विदित था कि मनुष्य, पशु–वर्ग से ही विकसित होकर मानव–योनि तक आया है, उसमें वे संस्कार कम नहीं हैं जो निम्न योनियों में रहते हुए उसके अभ्यास में आते रहे हैं, उन्हें सुधारना आवश्यक है। मनुष्य का देवदुर्लभ योनि में रहते हुए भी यदि व्यवहार पाशविक ही रहे तो फिर इस सौभाग्य का प्रयोजन एवं आनन्द ही क्या रहा ? नर–तन की सार्थकता तभी है, जब उसमें नारायण का अवतरण दृष्टिगोचर हो, अन्यथा नरपशु की तरह जिन्दगी के दिन पूरे कर लेना एक शोचनीय एवं अवांछनीय स्थिति ही कही जायगी। इस स्थिति में पड़ने का अवसर हमारे सामने न आवे, इसके प्रतिरोधस्वरूप एक विशालकाय सांस्कृतिक दुर्ग हमारे दूरदर्शी मनीषी पूर्वजों ने खड़ा किया था। भारतीय धर्म एवं संस्कृति का सारा कलेवर इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिये है।

भारतीय संस्कृति का दर्शनिक पक्ष धर्मग्रन्थों में उपलब्ध होता है। वेदशास्त्र, दर्शन, उपनिषद, ब्राह्मण आरण्यक, सूत्र, पुराण, नीति, धर्म आदि अनेक धर्म–ग्रन्थ हमें उस विचारधारा का अनुयायी बनाते हैं, जो मानव प्राणी को आदर्शवादी, निर्मल चरित्र, कर्तव्यपरायण, सहृदय एवं संयमी बनाने में पूर्णतया समर्थ हैं। इन धर्म–ग्रन्थों का पठन–पाठन, अध्ययन, अध्यापन, श्रवण, मनन, प्रवचन, प्रशिक्षण इसीलिये आवश्यक माना गया है कि लोग जितना ही अधिक उन्हें पढ़ेंगे–सुनेंगे, उतनी ही धर्मभावनाएँ उनके अन्दर जागृत होंगी और उसी अनुपात से वे मानवीय आदर्शों के अनुभव, अपनी विचारधारा एवं कार्यपद्धति विनिर्मित करने में समर्थ होंगे। पुण्य का स्वरूप यही है। उत्कृष्टता का ही दूसरा नाम तो धार्मिकता, आध्यात्मिकता, पुण्यपरायणता है। इसी स्तर पर पहुँचे हुए व्यक्ति-ऋषि, देवदूत, अवतार, जीवनमुक्त, सिद्धपुरुष आदि कहलाते हैं। धर्मशास्त्र का श्रवण, प्रवचन हम इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए करते हैं। विभिन्न कथाएँ इसी निमित्त कही और सुनी जाती हैं। धर्मग्रन्थों का पाठ इसी निमित्त होता है। पूजा की तरह ही 'पाठ' की भी महिमा गाई जाती है यह पाठ इसीलिये इतना आवश्यक एवं उपयोगी माना गया है कि इस आधार का अवलम्बन लेते हुए लोग अपने विचारसंस्थान को, भावनास्तर को अधिकाधिक निर्मल एवम् परिष्कृत करते चलें। हमारे धर्म में इस प्रकार का प्रचलन बहुत है। कथा, प्रवचन, सत्संग, स्वाध्याय, समारोह, सम्मेलन ऐसी ही धर्मचर्चा से भरे रहते हैं।

आज लोगों ने भ्रम–वश यह मान लिया है कि इन धर्मचर्चाओं के सुनने पढ़ने मात्र से आत्मकल्याण का प्रयोजन पूरा हो जायेगा। यह मान्यता उपहासास्पद है। कोई औषधि कितनी ही उपयोगी, कीमती, गुणकारी क्यों न हो, उसके गुणवर्णन करने मात्र से रोग दूर नहीं हो सकता। औषधि की चर्चाविवेचना का प्रयोजन यही है कि रोगी उसे भावना एवं तत्परतापूर्वक सेवन करें। जब औषधि शरीर में प्रवेश करेगी, तभी तो उसका कुछ प्रभाव होगा। चर्चा करते रहने मात्र से तब तक कुछ लाभ न होगा, जब तक उसे सेवन न करें। धर्म–पुराणों में जिन शिक्षाओं, आदर्शों, कर्तव्यों पर चलना आवश्यक बताया गया है, सुनने और पढ़ने वालों को उन्हें हृदयंगम करना चाहिए और अपनी गतिविधियों को उसी ढांचे में ढालना चाहिए। जो ऐसा कर पावेंगे, उन्हें गीता, रामायण, भागवत आदि पढ़ने सुनने का परिपूर्ण लाभ मिलेगा। पर जो केवल तोतारटन्त ही मचाये रहेंगे, उन्हें इतना ही लाभ मिलेगा कि जो समय निरर्थक कार्यों में नष्ट होता, वह उपयोगी विचारों के सम्पर्क में लग गया। इतना तनिक-सा लाभ तो है, पर वह महात्म्य और पुण्य, जो धर्मशास्त्रों के अनुशीलन का लिखा कहा गया है, केवल तभी मिलता है, जब धर्मशिक्षाएँ जीवन की नीतिरीति बनकर व्यवहार में आने लगें। प्राचीनकाल में धर्मशास्त्रों का पठनश्रवण इसी प्रकार इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए होता था। फलतः लाभ भी परिपूर्ण मिलता है। आज लोग सुनने पढ़ने मात्र की कान और जीभ की हरकत मात्र से बड़े पुण्य की आशा रखते हैं, तो उन्हें निराश एवं खाली हाथ भी रहना पड़ता है। भारतीय संस्कृति के दार्शनिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्वरूप को धर्म–चर्चा के माध्यम से यदि हम उचित आधार पर पढ़ते सुनते रहें तो निस्संदेह उससे मानवीय स्तर का उत्साहवर्द्धक विकास हो और पूर्वकाल की तरह हमारा समाज, सुख-शान्ति का आगार बनकर धरती पर स्वर्ग अवतरित करने की भूमिका प्रस्तुत करें।

आचार और व्यवहार- भारतीय संस्कृति का दूसरा व्यावहारिक पक्ष है जिसके अनुसार हमारे आचारव्यवहार, रीतिरिवाज, विधि–निषेध, पूजा अर्चा, प्रतीकउपचार, विधानकर्मकाण्ड आदि बनते हैं। कब, किस समय, क्यों कर, क्या करना चाहिए ? इसका विस्तृत विवेचन धर्मग्रन्थों में हुआ है। इन्हीं के आधार पर भारतीय परम्पराओं का ढाँचा खड़ा किया गया है। इस व्यवहार के आधार पर हम किसी के भारतीय धर्मानुयायी होने, न होने का परिचय प्राप्त करते हैं। शिखासूत्र इसी परम्परा के प्रतीक माने जाते हैं। इस सारे कलेवर का प्रयोजन भी मनुष्य को नीतिवान्, धर्मपरायण, कर्तव्यनिष्ठ, सदाचारी एवं सद्गुणी बनाये रहना ही है। हमारी हर परम्परा इसी दिशा में प्रेरणा एवं प्रकाश प्रदान करती है। धर्माचरण की परम्पराओं को पालन करने वाला व्यक्ति उत्कृष्ट चरित्र एवं जनमंगल में तत्पर रहने के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। आज तो सब कुछ उल्टा हो रहा है। धर्म–चर्चा सुनने मात्र से जिस प्रकार स्वर्ग और मुक्ति की आशा लोग लगाये रहते हैं, उसी प्रकार संस्कृति के व्यवहार पक्ष के निमित्त प्रचलित अमुक परम्पराओं को भी चिह्न पूजा की तरह किसी प्रकार पूरा करते हुए ऐसा मान लिया जाता है कि धर्मकर्तव्य पूरा हो गया और अब उसके सत्य परिणाम आने की सम्भावना बन गई। चौका-चूल्हा, स्नानध्यान, तिलकछापा, कण्ठीजनेऊ, शिखासूत्र, तीर्थस्नान जैसे प्रतीकों को लोग अपनाते तो हैं, पर उनमें सन्निहित प्रेरणाओं को भुला ही देते हैं। लकीर पीटने से साँप नहीं मरता, लकीर से तो यह पता चल सकता है कि सांप किधर से गया है, उसे ढूँढा, पकड़ा और मारा जायगा, तभी सांप मारने का उद्देश्य सधेगा। इसी प्रकार इन कर्मकाण्ड़ों, प्रतीकों और परम्पराओं के पीछे जो भावनाएँ, शिक्षाएँ एवं प्रेरणाएँ काम करती हैं, उन्हें खोजा, समझा और अपनाया जायगा, तभी हम अपने व्यावहारिक जीवन की गतिविधियों को सुसंस्कृत बना सकेंगे। तभी हमारा सांस्कृतिक उद्देश्य पूर्ण होगा। उस सत्परिणाम को भी हम तभी प्राप्त कर सकेंगे, जिसके लिये यह सारा धर्म-कलेवर ऋषियों ने खड़ा किया है।

संस्कारों की आवश्यकता और उपयोगिता

मानवजाति की सुख-शान्ति एवं प्रगति की सर्वोपरि आवश्यकता का महत्त्व हमारे तत्त्वदर्शी पूर्वज, ऋषिमहर्षि भली प्रकार समझते थे। अतएव इसके लिये उन्होंने प्रबल प्रयत्न भी किये, अपने बहुमूल्य जीवनों को इसी आवश्यकता की पूर्ति के साधन विनिर्मित एवम् प्रचलित करने में घुला दिया। उनकी इस पुण्यप्रक्रिया की संस्कृति को सृजन कहा जाय तो उपयुक्त ही होगा। हमारा सारा धर्मसाहित्य इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए लिखा गया है। योगाभ्यास, ईश्वर, उपासना, तपश्चर्या, इन्द्रिय निग्रह, संयम, सदाचार, व्रतउपवास, तीर्थयात्रा, देव दर्शन, दान–पुण्य, कथा–प्रवचन, यज्ञ–अनुष्ठान आदि का जितना भर भी धर्म कलेवर हमें दृष्टिगोचर होता है उसके मूल में केवल मात्र एक ही प्रयोजन सन्निहित है कि व्यक्ति अधिकाधिक निर्मल, उदार सद्गुणी, संयमी एवं परमार्थ परायण बनता चला जाय। इसी स्थिति के लिये जिस स्तर की उच्च विचारणा अभीष्ट है, उसका क्रमिक निर्माण उपरोक्त प्रकार की विचारणा एवं कार्यपद्धति से सम्भव होता है। यह धर्मप्रयोजन कर्मकाण्ड हमारी चेतना को उस स्तर पर विकसित करने का प्रयत्न करते हैं जिसे अपनाने पर जीवन अधिक पवित्र, उत्फुल्ल एवं लोकोपयोगी बन सके।

धरती पर स्वर्ग अवतरित करने की ऋषि प्रणाली– केवल शास्त्र रचना एवं धार्मिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विधि निषेधों का प्रचलन करने तक ही ऋषियों ने अपना कर्त्तव्य समाप्त नहीं समझा वरन् यह भी स्मरण रखा कि इस प्रेरणा को स्थिर एवं अग्रगामी रखने के लिए उन्हें निरन्तर कठोर श्रम भी करना होगा और अपने शक्ति सामर्थ्य को उसी पुण्य प्रयोजन में खपा भी देना होगा जो उनकी जीवन-यापन पद्धति में सर्वोपरि, सर्वाधिक स्थान इसी बात का था कि वे जनजीवन में धर्मचेतना सजीव एवम् सुविकसित रखने के लिए निरन्तर प्रवचन द्वारा प्रशिक्षित करते रहे और साथ ही ऐसे रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत करते रहे, जिनके माध्यम से धर्म प्रवृत्तियों को सचमुच विकास का अवसर मिलता रहे, ब्राह्मणों और सन्तों की जीवन–प्रणाली यही है। वे अपने व्यक्तिगत जीवन की सुरक्षा एवं प्रखरता के लिये स्वाध्याय, उपासना, तपश्चर्या, गोपालन, कृषि आदि की व्यवस्था भी रखते थे, पर यह तो शरीर यात्रा मात्र की व्यवस्था हुई। लक्ष्य तो उनका जनजागरण रहता था। जनजागरण का अर्थ है– व्यक्ति के अन्तःकरण में धर्मभावना एवम् आदर्शवादिता पर सुदृढ़ रहने का सुदृढ़ संकल्प और उस ओर ऊँचे से ऊँचे स्तर तक बढ़ते हुए महापुरुष नररत्न बनने का उत्साह एवं साहस। ब्राह्मण एवं सन्त जन समाज के अन्तःकरणों में इसी प्रकार की सद्–प्रवृत्तियों को उगाने-बढ़ाने की कृषि किया करते थे। यही कार्यक्रम उनकी जीवन साधना का सबसे उज्ज्वलपन था। जब तक ब्राह्मण का यह त्याग बलिदान भरा सत्प्रयत्न प्रकाशवान् बना रहा तब तक इस देश में सुख-शान्ति की ऐसी अमृतधारा बहती रही, ऐसी शीतल-मन्द सुगन्ध मलय समीर उठती रही, जिससे सारा विश्व अपने को धन्य मानता रहा। आज तो सब कुछ उल्टा हो गया है। दुर्भाग्य ने ब्राह्मण और सन्त का लक्ष्य भी उलट दिया। वे अपनी व्यक्तिगत समृद्धि के ऋद्धि–सिद्धियों का उपार्जन करने की अभिलाषा के लोभ में पड़े हैं, बेचारों को मिलना तो है क्या।

सर्वश्रेष्ठ परम्परा–मानव-कल्याण की महान् परम्पराओं में जितने भी आयोजन एवं अनुष्ठान है उनमें सबसे बड़ी परम्परा संस्कारों एवं पर्वों की है। संस्कारों धर्मानुष्ठानों द्वारा व्यक्ति एवं परिवार को और पर्व-त्योहारों के माध्यम से समाज को प्रशिक्षित किया जाता है। इन पुण्य-परम्पराओं पर जितनी ही बारीकी से हम ध्यान देते हैं उतना ही अधिक उनका महत्त्व एवं उपयोग विदित होता है। पर्व–त्योहारों की चर्चा अन्यत्र करेंगे, यहाँ तो हम षोडस संस्कारों की उपयोगिता एवम् आवश्यकता पर थोड़ा प्रकाश ड़ालेंगे।

यों स्वाध्याय-सत्संग, प्रशिक्षण, चिन्तन, मनन आदि का प्रभाव मनुष्य की मनोभूमि पर पड़ता ही है और उनसे व्यक्ति के भावनान्तर को विकसित करने में सहायता मिलती ही है और इनकी उपयोगिता को स्वीकार करते हुए सर्वत्र इनका प्रचलन रखा भी जाता है पर साथ ही एक बात यह भी ध्यान में रखनी चाहिए कि अन्तः चेतना को उच्च प्रयोजन के लिए उल्लसित एवं सूक्ष्म बनाने के कुछ वैज्ञानिक उपकरण भी हैं और उनका महत्त्व स्वाध्याय, सत्संग आदि चलित उपकरणों की अपेक्षा किसी भी प्रकार कम नहीं है। इन व्यक्तित्व निर्माण के वैज्ञानिक माध्यमों को ही 'संस्कार' कहा जा सकता है। संस्कार वे उपचार हैं जिनके माध्यम से मनुष्य को सुसंस्कृत बनाना, सबसे अधिक सम्भव एवं सरल है। कहने की आवश्यकता नहीं कि सुसंस्कारित व्यक्ति के निजी, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में कितनी श्रेयस्कर एवं मंगलमय सिद्धि हो सकती है।

विज्ञान-सम्मत प्रक्रिया–बालक के गर्भ में प्रवेश करने से लेकर जीवन-यापन की विविध परिस्थितियों में से गुजरते हुए शरीर छोड़ने तक विविध अवसरों पर 'संस्कारों' का आयोजन करने का हमारे धर्म शास्त्रों में विधान है। इन विधानों से व्यक्ति की अन्तः चेतना पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है और उसका सुसंस्कारी बन सकना सरल हो जाता है। विशिष्ट प्रयोजनों के लिये उपयुक्त, विशिष्ट शक्ति सम्पन्न वेद-मन्त्रों में अपनी विशिष्ट क्षमता होती है, उनका निराकतण ऐसे विज्ञानिक पद्धति से हुआ है कि विधिवत् सस्वर उच्चारण किये जाने पर वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आकाश तत्त्व में एक विशिष्ट विद्युत प्रवाह तरंगित करते हैं। उनका प्रयोजन पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा उस मन्त्र का उद्देश्य है। मन्त्रों की शक्ति प्रसिद्ध है। फिर वेद-मन्त्रों की शक्ति का तो कहना ही क्या ? शब्द शास्त्र के सूक्ष्मदर्शी वैज्ञानिकों ने अगणित प्रयोग परीक्षणों से पूर्वकाल में यह पता चलाया था कि किन शब्दों का किन-किन शब्दों के साथ तालमेल बिठाया जाय और उनका किस प्रकार उच्चारण किया जाय तो उससे किस प्रकार का प्रवाह निसृत होगा और उसका सुनने वालों पर अथवा जिनके निमित्त उनका उच्चारण किया जा रहा है, उन पर क्या प्रभाव होगा ? इसी निष्कर्ष के आधार पर वेद मन्त्र बने हैं और उनमें से किस का किस प्रयोजन के लिये, किस प्रकार प्रयोग किया जाय । इसका निर्धारण गृह-सूत्रों एवम् कर्मकाण्ड प्रयोजन के लिये विनिर्मित धर्म-ग्रन्थों में हुआ है यज्ञ उपचार के साथ–साथ इन मन्त्रों की शक्ति और भी बढ़ जाती है। जो लोग आहुतियाँ देते हैं, उन पर इन मन्त्रों का सीधा प्रभाव पड़ता। जिस प्रकार बिजली भाप अणु, रसायन, पदार्थ-विद्या आदि का अपना विज्ञान है। उसी प्रकार मन्त्र शास्त्र एवं यज्ञादि कर्मकाण्डो का भी अपना विज्ञान है। यदि कोई उसे ठीक तरह प्रयुक्त कर सके तो मनुष्य के ऊपर उसका असाधारण प्रभाव पड़ सकता है और उस प्रभाव का असाधारण लाभ उठाया जा सकता। व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने में संस्कार पद्धति का क्रिया-कलाप इतना अधिक सफल हो सकता है कि उससे आज भी आश्चर्य चकित हुआ जा सकता है।

मानसिक चिकित्सा की प्रखर पद्धति- जिस प्रकार अभ्रक आदि सामान्य पदार्थों को आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञाता अनेक बार अग्नि संस्कार करते हैं और उससे मकरध्वज सरीखी बहुमूल्य रसायनें बनाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य पर षोडस संस्कारों का सोलह बार प्रयोग करके भारतीय धर्मानुगामी को सुसंस्कारी बनाया जाता है, यह विज्ञान अद्भुत है। अब तक शरीर गत दुर्बलताओं बीमारियों के समाधान का ही बहुत करके अन्वेषण प्रयास किया गया है। आयुर्वेद, होम्योपेथी, बिब्बी ऐलोपेथी, नेचरोपेथी आदि चिकित्सा पद्धतियाँ प्रायः शरीरगत कष्टों को ही दूर करती हैं। अब हुआ तो पागलों के इलाज के लिए मानसिक अस्पतालों में एक लंगड़ी–लूली, परीक्षणात्मक व्यवस्था चल रही है। सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है मनुष्य की मानसिक विकृतियों एवम् दुर्बलताओं के समाधान की। इन्हीं के कारण मानव-जाति को सबसे अधिक कष्ट भोगना पड़ता है। प्रगति के पथ को अवरुद्ध करने वाली प्रधान बाधा यह विकृतियाँ ही हैं, पर इनके निराकरण का कोई उपाय न किसी चिकित्सा पद्धति ने ढूंढ़ा और न प्राप्त ही किया।

सनकी तुनकमिजाज, बहमी, कंजूस, संशयी, अविश्वासी, ओछे, निर्दयी, स्वार्थी, रूखे, कामुक, व्यसनी, चंचल, अस्त-व्यस्त, उद्विग्नि, आवेशग्रस्त, क्रोधी, अस्थिरमति, भावुक, अन्ध-विश्वासी, दुराग्रही, उच्छृंखल, अहम्मन्य, दुस्साहसी, अतिवादी, शेखीखोर, ईर्ष्यालु मनुष्यों की समाज में कमी नहीं। इस प्रकार के मनोविकार वस्तुतः एक प्रकार के हल्के मानसिक रोग ही हैं। जिस प्रकार शरीर में अनेक रोग ऐसे भी होते हैं जिनका कष्ट तो सहते रहना पड़ता है, पर चारपाई पर गिरने का अवसर नहीं आता। उसी प्रकार मन मस्तिष्क में भी ऐसे कितने ही रोग होते हैं, जिनका प्रभाव मनुष्य को अधपगले जैसी स्थिति में ले जाकर पटक देता है। यद्यपि वह देखने में सामान्य श्रेणी का ही प्रतीत होता है और उसमें ऐसा लक्षण नहीं दीखता जिससे उसे पागलखाने में बन्द किया जा सके। कुसंस्कारी व्यक्ति प्रायः अधपगले जैसी स्थिति में रहते हैं। वे अपनी आदतों के कारण अपने साथी सम्बन्धियों की नाक में दम किये रहते हैं। उनसे प्रायः सभी लोग खिन्न एवं असन्तुष्ट रहते हैं, महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकने की उनकी प्रतिभा भी नष्ट हो जाती है, ऐसी दशा में कोई ऊँची सफलता प्राप्त कर सकेंगे इसकी तनिक भी आशा या सम्भावना नहीं रहती। जिन्दगी के दिन किसी प्रकार पूर्ण कर लें, यही उनके लिए बहुत होता है। इस प्रकार की मानसिक अस्त-व्यस्तता मनुष्य का एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य है। खेद है, इस व्यापक दुर्भाग्य के निराकरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए भौतिकवादी जगत में कोई ठोस प्रयत्न नहीं किया गया अथवा यों कहना चाहिए कि इस दिशा में जो छुट-पुट प्रयत्न किये गये उनमें कोई सफलता नहीं मिली।

व्यक्ति निर्माण का उपयुक्त माध्यम- इस महत्त्वपूर्ण समस्या पर ऋषियों ने अत्यधिक गम्भीरता पूर्वक विचार किया था वह उपाय ढूंढ निकाला था जिसके आधार पर मानवीय मन को एक विशिष्ट वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर निर्मल, सन्तुलित एवं सुसंस्कृत बनाया जा सके। इस प्रक्रिया का नाम है–संस्कार पद्धति। समय–समय पर षोडस संस्कारों का प्रयोग उपचार मनुष्य के ऊपर इस प्रकार किया जा सकता है कि उसके मनोविकारों का शमन हो और उन सत्प्रवृतियों का विकास हो जिनसे व्यक्तित्व प्रखर बनता है। जीवन में सतत् काम आने वाली, सत्प्रवृत्तियों का बीजारोपण भी इन संस्कारों के समय ही होता है। यदि किसी बालक के सभी संस्कार ठीक रीति से समुचित वातावरण में किये जायें तो उसका ऐसे सुविकसित व्यक्तित्व से सम्पन्न होना पूर्णतया सम्भव है, जिससे उन संस्कारों का जीवन आनन्दमय, प्रतिभा सम्पन्न प्रगतिशील एवं सफल बन सकें। संस्कार पद्धति को एक प्रकार से मनोविकारों के निराकरण की विज्ञान-सम्मत चिकित्सा प्रणाली कहा जा सकता है उसे व्यक्तित्वों को प्रतिभा सम्पन्न बनाने की सृजनात्मक प्रक्रिया कहा जाय तो कुछ भी अत्युक्ति न होगी।

यज्ञ चिकित्सा पद्धति से उन रोगों का निराकरण हो सकना सम्भव है जो शरीर चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से असाध्य घोषित किये जा चुके हैं। इसी प्रकार उससे मनोविकारों का शमन भी होता है। ब्राह्मण के छः कार्य बताये गये हैं। १–यज्ञ करना, २– यज्ञ कराना, ३–विद्या पढ़ना, ४–विद्या पढ़ाना, ५–दान देना, ६–दान दिलाना। इन छः को तीन जोड़े ही समझना चाहिए। यज्ञ, शिक्षण और दान, इन तीन प्रयोजनों में ही ब्राह्मण को लगा रहना चाहिये । इसका तात्पर्य यह हुआ कि उसका एक तिहाई जीवन यज्ञ-प्रयोजन में संलग्न रहे। स्पष्ट है कि यज्ञ प्रक्रिया किसी व्यक्ति के साथ जितनी अधिक जुड़ी रहेगी वह उतना ही अधिक मानसिक दृष्टि से निर्मल बनेगा। ब्राह्मण इसी आधार पर अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक पवित्र होते थे, यज्ञानुष्ठानों से उनका अन्तःकरण अधिकाधिक पवित्र होता चला जाता था और वे इस पृथ्वी के मूर्तिमान देवता भूसुर कहलाते थे। यज्ञानुष्ठानों को छोड़ देने के कारण आज ब्राह्मण समाज अपनी इस प्रतिभा एवम् विशेषता को ही खो बैठा। यह यज्ञानुष्ठान ब्राह्मण जाति के लिये ही आवश्यक नहीं होते, वरन् उन सभी के लिए श्रेयस्कर हैं जो अपना मानसिक स्तर उत्कृष्ट बनाना चाहते हैं, देवत्व की भूमिका में विकसित होना चाहते हैं। संस्कारों के साथ जो धर्मानुष्ठा न जुड़ा हुआ है वह उसी प्रयोजन की पूर्ति करता है। नित्य न सही जीवन का मोड़ उपस्थित करने वाले महत्त्वपूर्ण अवसरों पर भी यदि वे यज्ञानुष्ठान-संस्कार प्रयोजन के लिये किये जायें तो उतने से भी आशाजनक परिणाम होता है। व्यक्ति निर्माण के प्रयोजन की पूर्ति में भारी सहायतायें मिला करती है।

कर्मकाण्ड और प्रशिक्षण–संस्कारों की प्रक्रिया को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–एक उसका वैज्ञानिक स्वरुप जो मंत्रोच्चारण, यज्ञानुष्ठान आदि कर्मकाण्डों के रूप में प्रयुक्त होता है। दूसरा प्रशिक्षण जो मन्त्रों की व्याख्या तथा विधि-विधानों के रहस्योद्घाटन के रूप में उपस्थित व्यक्तियों तथा जिसका संस्कार हो उसके सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। कर्मकाण्ड की वैज्ञानिक प्रक्रिया की थोड़ी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, उसके सम्बन्ध में जितना अधिक कहा जाय उतना ही कम है। जिस प्रकार तीव्र औषधियाँ शरीर पर तत्काल प्रभाव करती हैं उसी प्रकार इन कर्मकाण्डों का भी सुनिश्चित प्रभाव होता है। यदि ठीक विधि-विधान से उचित समय और उचित वातावरण में इन संस्कारों को कराया जा सके तो उसका प्रभाव असाधारण ही होगा। जिसका अन्नप्राशन ठीक तरह हुआ हो, उसे उदर विकारों से ग्रसित नहीं रहना पड़ेगा, जिसका विद्यारम्भ विधिवत् किया गया है। उसका अध्ययन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

रुकेगा नहीं, जिसका यज्ञोपवीत ठीक तरीके से किया जाय वह आजीवन मानव धर्म का अनुयायी ही रहेगा। जिन वर-वधू का विवाह उचित रीति के साथ सम्पन्न किया जाय उनके जीवन में प्रेम की गंगा अविच्छिन्न रूप से ही बहेगी और उनमें द्वेष दुर्भाव का कदापि बीजारोपण न होगा। इसी प्रकार अन्य संस्कारों की बात है। हर संस्कार का अपना महत्त्व, प्रभाव और परिणाम होता है। आज उन वैज्ञानिक क्रिया कलापों को लोग भूल गये हैं या अधूरे, लंगड़े और बेगार टालने जैसे वातावरण में करते हैं। फलस्वरूप उनका प्रभाव भी नगण्य ही होता है। अब हम जब कि भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के लिये कटिबद्ध हुए हैं और प्राचीन भारत के गौरव को पुनः वापस लाने का स्वप्न साकार करने चले हैं तो हमें अपनी महान् संस्कृति के मूलाधार–संस्कारों की प्रक्रिया को भी सजीव करना होगा। अब उनको विधि-विधानों की लकीर पीटने की तरह बेगार या उपेक्षा के वातावरण में नहीं, वरन् पूर्ण उत्साह, श्रद्धा एवम् तत्परता के साथ सम्पन्न करने की ओर ध्यान देना होगा। इस ओर जितना ही अधिक ध्यान दिया जायगा उतना ही उसका सत्परिणाम भी सामने आवेगा। हमें वह उपाय करने ही होंगे जिससे प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी परिवार में प्रत्येक व्यक्ति के संस्कारों का कराया जाना उतना ही उपयोगी एवम् आवश्यक माना जाय, जितना कि उसकी भोजन, वस्त्र, शिक्षा चिकित्सा आदि की जरूरतों का पूरा किया जाना। साथ ही विधि-विधानों को सुव्यवस्थित रीति से सम्पन्न करा सकने वाले व्यक्तियों को प्रशिक्षण करने की आवश्यकता पूरी करनी होगी।

उद्बोधन आवश्यक–संस्कार में प्रयुक्त होने वाली कर्मकाण्ड प्रक्रिया का प्रत्येक अंग अपने आप में रहस्यपूर्ण है उसमें बड़ा एवम् मर्म छिपा पड़ा है। कर्मकाण्ड कराते समय इन रहस्यों को व्याख्यापूर्वक समझाया जाना चाहिए। साथ ही उन मन्त्रों अथवा प्रसंगों के माध्यम से जो प्रशिक्षण दिया जाना है वह भी ऐसे प्रभावशाली ढंग से दिया जाना चाहिए कि जिसका संस्कार हो रहा है केवल वही नहीं वरन् अन्य जो भी व्यक्ति उस अवसर पर उपस्थित हों वे सभी प्रभाव ग्रहण करें। संस्कार कराने वाले को उत्तम प्रवक्ता भी होना चाहिए जो विधानों के रहस्य और मन्त्रों के मर्म को ऐसे ढंग से समझा सके कि सुनने वाले उसे भावनापूर्वक हृदयंगम कर सकें। धर्म प्रचार का, कर्तव्य उद्बोधन का, व्यक्ति निर्माण का यह प्रशिक्षण ही आगे चलकर हमें प्रमुख आधार बनाना पड़ेगा। इसलिए संस्कार कर्ताओं को धर्म एवम् संस्कृति का सन्देश वाहक बनकर युग–निर्माता की भूमिका प्रस्तुत करने के लिए तैयार होना होगा। प्राचीनकाल में ब्राह्मण ऐसे ही माध्यमों से जन-साधारण तक पहुँचते थे और उनकी व्यक्तिगत एवम् पारिवारिक समस्याओं का समाधान करने वाले हल प्रस्तुत करते थे। उपयुक्त वातावरण में, उपयुक्त प्रकार के प्रशिक्षण का प्रभाव भी उपयुक्त ही होना चाहिए। होता भी था और आगे होने वाला भी है। इन दिनों इस सम्बन्ध में जो लज्जाजनक दुर्दशा परिलक्षित हो रही है, उसका कायाकल्प ही करना होगा। आज तो ग्राम–गुरु और पण्डा, पण्ड़ित जिन्हें नाममात्र की शिक्षा प्राप्त हुई है, उलटे-सीधे इधर-उधर गन्ध, अक्षत डाल-पटक कर अशुद्ध मन्त्रोच्चारण करते हुए किसी प्रकार कर्मकाण्ड की उलटी लकीर पीट देते हैं। वे न तो उन संस्कारों का महत्त्व एवं रहस्य स्वयं समझते हैं और न यजमानों को समझा सकते हैं। गन्ध, अक्षत इधर-उधर कराने में ही उनका कृत्य पूरा हो जाता है। यह चिह्न–पूजा वह प्रयोजन पूरा नहीं कर सकती, जिसके लिए इन महान् परम्पराओं का निर्माण किया गया था।

कर्मकाण्ड की वैज्ञानिक प्रक्रिया से यजमान परिवार को प्रभावित करने के अतिरिक्त यह भी उतना ही आवश्यक है कि इन शुभ अवसरों पर उनके सामयिक कर्तव्यों का उद्बोधन भी कराया जाय। संस्कार–उत्सव के अवसर पर स्वभावतः उस परिवार के, पड़ोस के तथा सम्बन्ध परिचय के नर-नारी एकत्रित होते हैं। दुःख और सुख को बांटकर खाने की प्रथा भारतीय संस्कृति का अंग है। किसी का श्रेय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधन करने वाले संस्कार उत्सव हों और उसके स्वजन सम्बन्धी एकत्रित न हों भला यह कैसे हो सकता है ? घर के सभी लोग अपने इस हर्षोत्सव में सम्मिलित होने के लिए स्वयं ही तैयार नहीं रहते वरन् प्रीति और अनुरोधपूर्वक अन्य मित्र परिवारों को भी आमन्त्रित करके लाते हैं। उस समय स्वभावतः पांच-पचास व्यक्ति एकत्रित हो जाते हैं। यदि कहीं "कुलिया में गुड़ फोड़ने" की तरह अभी तक यह बेगार भुगती जाती रही हो तो अब उसमें प्रथम सुधार यह किया जाना चाहिए कि कोई भी छोटा–बड़ा संस्कार क्यों न हो उसमें घर पविार, पड़ोस और परिचय के अधिकाधिक नर-नारी बाल, वृद्ध आमंत्रित किये जायें, ताकि केवल जिसका संस्कार हो रहा है वही नहीं, वरन् उस वातावरण के शक्ति प्रवाह से एवं धर्म प्रशिक्षण से सभी एकत्रित लोग लाभ उठा सकें।

विचार-गोष्ठी आयोजन– प्राचीनकाल में यही होता था। संस्कार के अवसर पर उपस्थित उस परिवार एवं पड़ोस के लोगों को संस्कार कराने वाले विद्वान् आचार्य उनके सामयिक कर्तव्यों का प्रेरणाप्रद उद्‌बोधन कराते थे। जीवन जीने की कला, धर्म, अध्यात्म एवम् कर्तव्य का मार्ग–दर्शन करते थे। संस्कार के माध्यम से आयोजित इस जनगोष्ठी में मन्त्रों की व्याख्या करते हुए आचार्य जो प्रेरणा–प्रदान करते थे उससे सुनने वालों की भावनाएँ तरंगित हो उठती थी। वे अपने कर्तव्यो के प्रति अधिक जागरुक, सावधान होते थे। इस प्रकार यह दो-तीन घण्टे की धर्म-गोष्ठी एक महत्त्वपूर्ण शिक्षण का प्रयोजन पूरा कर देती थी। चूंकि हर परिवार में कई-कई व्यक्ति होते हैं और हर व्यक्ति के १६-१६ संस्कार होते हैं तो स्वभावतः थोड़े-थोड़े दिनों बाद ऐसी धर्म गोष्ठियाँ भी उन घरों में होती रहेंगी। फिर पड़ोस में भी यही सब होता है, तो इसका परिणाम यही होगा कि आये दिन इन धर्म-गोष्ठियों का प्रचलन होता रहेगा। जहाँ ऐसी सुविधा उपलब्ध हो वहाँ के लोग कैसे कुमार्गगामी हो सकेंगे और कैसे पथ भ्रष्ट ?

साधारण वातावरण में किया हुआ प्रशिक्षण इतना प्रभावशाली नहीं होता, जितना धर्मोत्साह, उल्लास एवं उत्साह भरे वातावरण में दी हुई शिक्षा हृदयंगम होती है। दाम्पत्य कर्तव्यों की बात किसी पुस्तक में पढ़ ली जाय या बता दी जाय तो वह उतनी प्रभावशाली न होगी, जितनी कि विवाह-समारोह के समय जब वर-वधू दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर पाणिग्रहण करते हैं तब उस समय खड़े होकर उपस्थित सम्भ्रान्त गुरुजनों के, देवताओं के, जनसाधारण के सामने की हुई प्रतिज्ञाएँ। वे प्रतिज्ञाएँ यदि स्वस्थ मन से की गई हों तो आजीवन स्मरण रहेंगी, और यदि कोई भूल कर रहा होगा तो एक-दूसरे को उस बात का स्मरण दिलाकर लज्जित एवं सावधान भी कर सकेगा। गंगा में खड़े होकर या गंगाजली हाथ पर रख कसम खाने का अवसर आने पर लोग झूंठ बोलते हुए कांपते हैं। पर साधारण स्थिति में बार–बार बोलते रहते हैं। धर्मानुष्ठानों का एक बड़ा मनोवैज्ञानिक लाभ या रहस्य यह भी है कि उस समय जो कहा या सुना जायगा वह अत्यधिक प्रभावयुक्त होगा। समाजशास्त्र और मनोविज्ञान–शास्त्र दोनों ही इस तथ्य की प्रबल पुष्टि करते हैं कि उपयुक्त वातावरण एवं परिस्थितियों में दी गई शिक्षा सामान्य रीति से कहने सुनने की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली होती है। संस्कारों के निमित्त आयोजित गोष्ठियां इसी प्रयोजन को पूरा करती है। उनके माध्यम से दिये गये प्रशिक्षण का प्रभाव सुनने वालों के अन्तःकरणों में गहराई तक प्रवेश करने वाला होना ही चाहिए

लोकशिक्षा का अनुपम माध्यम– लोकशिक्षण का यह तरीका बहुत ही उत्तम है। जन–जन के पास अलग–अलग पहुँच सकता और उन्हें अलग–अलग प्रशिक्षित कर सकना धर्म प्रचारकों के लिए कठिन है। जनता को एकत्रित करने से ही जन जागरण के उपयुक्त धर्म चर्चा की व्यवस्था बन सकती है। यह कार्य संस्कारों की स्वस्थ परम्परा प्रचलित करने के अतिरिक्त और किसी प्रकार उतनी अच्छी तरह नहीं हो सकता। इन संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति-निर्माण एवम् परिवार निर्माण के हर पहलू को समझाया जा सकता है और उपयुक्त प्रेरणा को हर वर्ण एवं हर स्तर के लोगों के मन में गहराई तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उतारा जा सकता है। धर्म के लिये मंच तो होना ही चाहिए। जनता को इकट्ठा तो किया ही जाना चाहिए। बड़े सभा सम्मेलनों की अपेक्षा परिवार-परिवार में चलने वाला यह प्रशिक्षण कितना उपयोगी हो सकता है, इसका प्रयोग परीक्षण हजारों लाखों वर्ष तक इस देश में होता रहा है। विद्वान ब्राह्मणों ने इन्हीं प्रक्रियाओं के द्वारा इस देश की जनता को प्रबुद्ध बनाये रखा था और तदनुरूप यहाँ शक्ति, सामर्थ्य, विद्या, बल, वैभव, शौर्य, पराक्रम आदि किसी भी तत्त्व की कमी नहीं रहती थी। अब पुनः हमें उसी परिपाटी का अवलम्बन करके नव–निर्माण का सांस्कृतिक पुनरुत्थान का प्रयोजन पूरा करना होगा।

आज इन संस्कारों का प्रचलन एक प्रकार से समाप्त ही हो गया है। हमें क्रमशः उनका विकास करना चाहिए। १६ के स्थान पर अभी १० संस्कारों का प्रचलन पर्याप्त होगा ताकि इस महँगाई के युग में लोग इस भार को वहन करने से कतराने न लगें। इन दिनों समय, धन उत्साह, पारस्परिक सहयोग, धर्मनिष्ठा आदि सभी बातों की कमी है, इसलिए देश, काल, पात्र के अनुसार, व्यवस्था बनाते, बदलते चलने की ऋषि परम्परा के अनुरूप यह उचित ही होगा कि अभी १० संस्कारों का प्रचलन किया जाय।

१०- सन्ध्या, वन्दन, प्रार्थना इत्यादि

भारतीय संस्कृति में मन्त्र, स्तुति, सन्ध्यावन्दन, प्रार्थना आदि का महत्त्व है। अधिकांश देवी-देवताओं के लिए हमारे यहाँ निश्चित स्तुतियाँ हैं, भजन हैं, प्रार्थनायें हैं, आरतियां हैं। प्रार्थना मंत्र, स्तुति आदि द्वारा देवताओं से भी बल, कीर्ति आदि विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। ये सब कार्य हमारी अंतः शुद्धि के मनोवैज्ञानिक साधन हैं।

जैसे भिन्न-भिन्न मनुष्यों की भिन्न-भिन्न रुचियाँ होती हैं, वैसे ही हमारे पृथक-पृथक देवताओं की मन्त्र, आरतियाँ, पूजा प्रार्थना की विधियाँ भी पृथक-पृथक ही हैं। ये देवी-देवता हमारे भावों के ही मूर्त रूप हे। जैसे हनुमान हमारी शारीरिक शक्ति के मूर्त स्वरूप हैं, शिव कल्याण के मूर्त रूप हैं, लक्ष्मी आर्थिक बल की मूर्त रूप हैं आदि। अपने उद्देश्य के अनुसार जिस देवी-देवता की स्तुति या आरती करते हैं, उसी प्रकार के भावों या विचारों का प्रादुर्भाव निरन्तर हमारे मन में होने लगता है। हम जिन शब्दों अथवा विचारों, नाम अथवा गुणों का पुनः-पुनः उच्चारण, ध्यान या निरन्तर चिंतन करते हैं, वे ही हमारी अन्तश्चेतना में इकट्ठे हो जाते हैं। इन दिव्य गुणों का निरन्तर उच्चारण ही अपनी चेतना में इन्हें धारण करने का साधन है। मन्त्र, प्रार्थना या वन्दन द्वारा हम उस दिव्य चेतना का आह्वान करके उसको मन, बुद्धि और शरीर में धारण करते हैं। अतः ये वे उपाय हैं जिनसे सद्गुणों का विकास होता है और चित्त शुद्धि हो जाती है।

प्रत्येक देवता की जो स्तुति, मन्त्र या प्रार्थना है, वह उच्चरित होकर आस-पास के वातावरण में कम्पन उत्पन्न करती है। उस भाव की आकृतियॉं समूचे वातावरण में फैल जाती हैं। हमारा मन और आत्मा उससे पूर्णतः सिक्त हो जाता है। हमारा मन उन कम्पनों से उस उच्च भाव–स्तर में पहुँचता है, जो उस देवता का भाव–स्तर है, जिसका हम मन्त्र जपते हैं, या जिसकी अर्चना करते हैं, प्रार्थना द्वारा मन उस देवता के सम्पर्क में आता है। उन मन्त्रों के जाप से बाहर-भीतर एक सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार मन्त्र, जप, प्रार्थना, स्तुतियाँ कम्पनात्मक शक्ति हैं।

११- योग-भारतीय संस्कृति की अमूल्य देन

भारतीय दर्शन के छः विभागों में योग हिन्दुओं की और भारत की विश्व को एक महा देन है। संसार की और शुष्क विचाराधाराओं से यह भिन्न है क्योंकि यह क्रियात्मक या (प्रैक्टीकल) है। योग अपने आप में एक विज्ञान है। इसे हम चाहें तो पूर्वात्य मनोविज्ञान भी कह सकते हैं। भारतीय संस्कृति में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रुचि रखने वाले योग को बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि यह आध्यात्मिक चमत्कारों से परिपूर्ण है। योग का प्रारम्भ महर्षि पतंजलि ने किया था। उनके अनुसार योग वह विद्या है जिससे मनुष्य अपने मन को पूर्ण वश में कर ईश्वरीय आत्मा में अपने आपको लय कर सकता है।

"योग" शब्द का अर्थ है "मिलन" या "जुड़ना"। दो बिछुड़े हुए व्यक्तियों का मिलन भी कितना सुखद होता है। परस्पर एक-दूसरे से जुड़कर हम दृढ़ और मजबूत बनते हैं। आन्तरिक आह्लाद का अनुभव करते हैं। हमारी आत्मा को सुख मिलता है। मनुष्य के अन्तःस्थल में जो शुद्ध, बुद्ध चैतन्य, सत् चित, आनन्द, शिव सुन्दर, अजर-अमर है, वह आत्मा ही है। इस आत्मा का जगत्पिता ईश्वर की आत्मा-विश्वात्मा से घनिष्ट सम्बन्ध है। योग-साधना द्वारा आत्मा का जब परमात्मा से मिलन होता है, तो बिछुड़ी हुई माता और छोटी स्तनपान करने वाली कन्या के मिलने से मन की जो दशा होती है, वही आनन्ददायक अनुभूति हमें प्राप्त होती है।

आत्मा से परमात्मा के मिलन की जो अनुभूति होती है, वह सर्वाधिक आनन्द और शाश्वत शांति देने वाली है। भक्त ईश्वर की आराधना और अन्तः मिलन के द्वारा जो सुख प्राप्त करते हैं, वह अनिर्वचनीय है। एक उदाहरण लीजिए।

मृत्यु–शय्या पर पड़े हुए बालि से भगवान् राम ने पूछा कि तुम स्वर्ग, मुक्ति या जो सद्गति चाहे मुझसे इसी समय प्राप्त कर सकते हो। तो बालि ने उत्तर दिया–

"जेहि योनि जन्मों कर्मवश,
तहँ राम-पद अनुरागऊँ।"

"हे भगवन्! मुझे स्वर्ग या मुक्ति नहीं चाहिए, मुझे तो यह वरदान दीजिए कि कर्मवश जहाँ जिस योनि में मेंरा जन्म हो, उस जन्म में मुझे राम के चरणों का अनुराग (या भक्ति) प्राप्त होती रहे। मुझे अपनी अक्षय भक्ति दीजिए।"

यही भावनाएँ प्रायः अन्य सभी योगियों को अपनी आत्मा को ईश्वर में लय कर देने से प्राप्त होती हैं। योग वह विद्या है जिसके द्वारा स्वर्ग और मुक्ति का सुख यही प्राप्त हो जाता है। अनेक साधक अपनी भौतिक सम्पदाओं में लात मार कर आत्मिक साधनाओं (योगासन, प्राणायाम, ध्यान, यम नियम) में तल्लीन होते हैं, क्योंकि भौतिक सुख की अपेक्षा आत्मिक सुख को ही वे प्रधानता देते हैं। योगियों ने विश्वात्मा से मिलन के अपने अनुभव लेखबद्ध किए हैं। अतः योग का चमत्कार जानने और अनुभव करने के लिए यह आवश्यक है कि जिज्ञासु स्वाध्याय तथा आत्मवादियों, योगियों एवं विद्वानों के सत्संग द्वारा योग–विद्या को भली प्रकार समझें। आजकल तो केवल आसन और प्राणायाम मात्र ही करना योग हो गया है। ये तो शरीर के स्वास्थ्य के लिए गौण योगिक साधन हैं, प्रधान तो मनोयोग और आत्मयोग हैं। योगशास्त्र के अध्ययन में पर्याप्त उत्साह, सद्गुरु की प्राप्ति और दीर्घकालीन अभ्यास ये आवश्यकताऐं योग-साधना के लिए जरूरी हैं।

योग के कई अंग हैं जैसे कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्ति योग और राजयोग। यम–नियम वे आधार हैं जिनके बिना कोई योग-मार्ग पर प्रवृत्त नहीं हो सकता। योगी श्री अरविंद ने आत्म-समर्पण पर बहुत बल दिया है।

योग-साधना क्या है ? मानव अन्तःस्थल में जो शुद्ध–बुद्ध चैतन्य अमर सत्ता है, वही परमात्मा है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के चतुष्टय को जीव कहते हैं। यह जीव आत्मा से भिन्न भी है और अभिन्न भी है। इसे द्वैत भी कह सकते हैं, अद्वैत भी। अग्नि में लकड़ी जलने से धुआँ उत्पन्न होता है। धुएँ को अग्नि से अलग कहा जा सकता है। पर अग्नि बिना उसका कोई अस्तित्त्व नहीं अतः वह अग्नि का ही अंग है, यह अद्वैत है। आत्मा अग्नि है और जीव धुआँ है। दोनों अलग भी हैं और एक भी। उपनिषदों में इसे एक वृक्ष पर बैठे हुए दो पक्षियों की उपमा दी गई है। गीता में इन दोनों का अस्तित्त्व स्वीकार करते हुए एक को क्षर (नाशवान) एक को अक्षर (अविनाशी) कहा गया है।

भ्रम से, अज्ञान या माया से अथवा शैतान के नाना प्रलोभनों से दोनों की (जीव और परमात्मा) की एकता पृथकता में बदल जाती है। वही दुःख और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शोक का कारण है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई, सास-बहू में जब तक एकता रहती है, दोनों पक्ष आपस में प्रेम रखते हैं, एक-दूसरे का हित चाहते हैं, सामन्जस्य रखते हैं, तो घर में सुख रहता है, श्री–वृद्धि होती है और सभी स्वर्ग का आनन्द लेते हैं। यही स्थिति मानव-जीवन की भी है। जहाँ मन और आत्मा का एकीकरण होता है, जहाँ जीव की इच्छा, रुचि एवं कार्य प्रणाली विश्वात्मा की इच्छा रुचि प्रणाली के अनुसार होती है, वहाँ अपार आनन्द का स्रोत उमड़ता रहता है, पर जहाँ दोनों में विरोध होता है, जहाँ नाना प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व चलते रहते हैं, वहाँ आत्मिक शांति के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं।

मन और आत्मा का प्रबन्ध पति-पत्नी और पिता-पुत्र की अपेक्षा अधिक घनिष्ट है। इसलिए उन दोनों की एकता की और भी आवश्यकता है। दोनों का दृष्टिकोण एक होना चाहिए। दोनों की इच्छा, रुचि एवं कार्य प्रणाली एक होनी चाहिए। तभी जीवन में सच्ची शांति के दर्शन हो सकते हैं। पर इस स्थिति को विरले ही प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार हमारे घर या परिवार में अनैक्य के कारण कलह, क्लेश और सन्तापों की भरमार है, वैसे ही आंतरिक, आत्मिक एकता न होने से मनुष्य के मनः क्षेत्र में घोर अशांति मची रहती है। इस अव्यवस्था के सन्ताप से उसका अन्तः लोक दावानल की तरह जलता रहता है। मनुष्य के पास भौतिक सुख-साधन कितने ही क्यों न हो, उसके अन्तःकरण को तनिक भी शांति उपलब्ध नहीं होती। अनेक धन-दौलत के स्वामी सेठ पूँजीपति अनेक चिंताओं, आवेशों, वेदनाओं और सन्तापों से घिर रहते हैं। इससे प्रकट है कि धन–दौलत से कोई भी व्यक्ति जीवन का सच्चा और स्थायी आनन्द या सुख प्राप्त नहीं कर सकता।

इसी प्रकार अनेक ऐसे भी व्यक्ति हैं, जिनके पास रुपया पैसा या अन्य भौतिक सम्पदाएँ नहीं है, फिर भी वे खूब मस्त रहते हैं। सुख की नींद सोते हैं और अपने चारों ओर आनन्द देखते हैं। इससे प्रकट है कि धन-दौलत के या साधनों के न होने से सच्चे सुख में कोई कमी नहीं आती। अमीरों का भी दुःखी रहना और गरीबों का भी सुखी होना इस बात का प्रमाण है कि सुख का वास्तविक स्थान बाहर नहीं है, बाहर की वस्तुओं में नहीं है।

मन और अन्तःकरण की एकता में, दोनों के मिलन में ही सुख है। इसी को योगिक शब्दावलि में आत्मा और परमात्मा का मिलन कह सकते हैं। इस मिलन का ही दूसरा नाम "योग" है। आत्मा और परमात्मा के मिलन से, दोनों के योग से एक ऐसे आनन्द का आविर्भाव होता है, जिसकी तुलना संसार के अन्य किसी भी सुख से नहीं की जा सकती। इस सुख को परमानन्द, जीवनमुक्ति, ब्रह्म निर्वाह, आत्मोपलब्धि, प्रभुदर्शन आदि नामों से पुकारा जाता है।

मनुष्य के मन का वस्तुतः कोई अस्तित्त्व नहीं है। वह आत्मा का ही एक उपकरण, औजार या यन्त्र है। आत्मा की कार्य पद्धति को सुसंचालित करके चरितार्थ करके स्थूल रूप देने के लिए मन का अस्तित्व है। इसका वास्तविक कार्य यह है कि आत्मा की इच्छा एवं रुचि के अनुसार विचारधारा एवं कार्यप्रणाली को अपनावे। इस उचित एवं स्वाभाविक मार्ग पर यदि मन की यात्रा चलती रहे, तो मानव प्राणी जीवन के सच्चे सुख का रसास्वादन करता है। पर दुर्भाग्य की बात है कि आज हम में से अधिकांश को वह स्थिति उपलब्ध नहीं है। आत्मा सत् प्रधान है। उसकी इच्छा एवं रुचि सात्विकता की दिशा में होती है। जीवन की हर घड़ी सात्विकता में सराबोर हो, हर विचार और कार्य सात्विकता से परिपूर्ण हो, यह आत्मा की माँग है।

पर माया या अविद्या के कुचक्र में फंसकर वे दूसरी ओर चल देते हैं। रज और तम में उसकी प्रवृत्ति दौड़ती है। इस कार्य–विधि को निरन्तर प्रोत्साहन मिलने से वह इतनी प्रबल हो जाती है कि आत्मा की पुकार के स्थान पर मन की तृष्णा ही प्रधानता प्राप्त कर लेती है।

मन और अन्तःकरण के मेल अथवा एकता से ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। इस मेल अथवा एकता को एवं उसकी कार्य पद्धति को योग-साधना कहते हैं। यह योग साधना प्रत्येक उच्च प्रवृत्तियों वाले साधक के जीवन का नित्य कर्म होना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारतीय संस्कृति के अनुसार सच्ची सुख-शान्ति का आधार योग-साधना ही है। योग द्वारा सांसारिक संघर्षों से व्यथित मनुष्य अन्तर्मुखी होकर आत्मा के निकट बैठता है, तो उसे अमित शान्ति का अनुभव होता है।

उपर्युक्त पंक्तियों से भारतीय योग पद्धति की महत्ता पर कुछ प्रकाश पड़ता है। योग पूर्वीय दृष्टिकोण का मनोविज्ञान है। इसके अनुसार मनुष्य को अपनी वासना को परमात्मा में लय कर देना और इस प्रकार ऊँचा उठना चाहिए। इसके विपरीत पाश्चात्य मनोविज्ञान यह कहता है कि वासना को खोल देना चाहिए। भारतीय मनोविज्ञान–यह योग पद्धति ही श्रेष्ठ है, क्योंकि इससे मनुष्य की रुचि और प्रवृत्ति ऊँची रहती हैं। सात्विकता, देवत्व को विकसित होने का प्रचुर अवसर मिलता है। योग–साधना का प्रथम लाभ तो यह होता है कि मन शान्त हो जाता है। अशान्त मन में योग का आधार नहीं हो सकता। विचारों का तूफान आने पर भी योगी का मन स्थिर और अविचल बना रहता है। दूसरा लाभ एकाग्रता है। निरन्तर ध्यान और चिन्तन करने से एकाग्रता की वृद्धि होती है। आध्यात्मिक शक्तियाँ बढ़ती हैं। आजकल की पाश्चात्य मनोविज्ञान की प्रणालियाँ जैसे साइकोथिरैपी, मेरमेंरिज्म, थाटरीड़िंग, क्लेरोबेन्स आदि सभी योग द्वारा संभव हैं।

आज योग-विद्या के सही दृष्टिकोण को निखारने की अतीव आवश्यकता है। आसन और प्राणायाम मात्र ही करना आजकल योग हो गया है। पर वास्तविक महत्त्व आन्तरिक साधना का ही है। उस समय योगी मृगछाला इसलिये पहनते थे कि वह आसानी से मरे पड़े हुए मृगों से मिल जाती थी। आजकल बन्दूक की गोली से मरे हुए जानवर की खाल होती है, यह निन्दनीय है। अब चिमटे की आवश्यकता ही नहीं रह गई है। योगिराज अरविन्द, महात्मा गांधीजी, स्वामी दयानन्दजी, स्वामी शिवानन्द जी आदि की तरह का सीधा–साधा जीवन ही उपयुक्त है।

ज्ञानयोग की साधना

ज्ञान का महत्त्व समझिये

जीवन की समस्त विकृतियों, अनुभव होने वाले सुख-दुःख, उलझनों अशांति आदि का बहुत कुछ मूल कारण मनुष्य का अपना अज्ञान ही होता है, यही मनुष्य का परम शत्रु है। चाणक्य ने कहा– "अज्ञान के समान मनुष्य का और कोई दूसरा शत्रु नहीं है।" हितोपदेश में आया है–

"आरभन्तेऽल्पमेंवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।"

"अज्ञानी लोग थोड़ा–सा काम शुरू करते हैं किन्तु बहुत ज्यादा व्याकुल होते हैं।" शेक्सपीयर ने लिखा है– "अज्ञान ही अन्धकार है।" प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने कहा– "अज्ञानी रहने से जन्म न लेना ही अच्छा है, क्योंकि अज्ञान समस्त विपत्तियों का मूल है।"

इस तरह अज्ञान जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। यही जीवन की समस्त विकृतियों और कुरुपता का कारण है। कुरुपता का सम्बन्ध मनुष्य की शारीरिक बनावट से इतना नहीं है जितना अज्ञान और अविद्या से उत्पन्न होने वाली बुराइयों से है। समस्त विकृतियों, बुराइयों, शारीरिक व मानसिक अस्वस्थता का कारण अज्ञान और अज्ञान और अविद्या ही है। सुख–सुविधापूर्ण जीवन बिताने के पर्याप्त साधन उपलब्ध होने पर भी कई लोग अपने अज्ञान और अविद्या के कारण सन्तप्त, उद्विग्नमना, अशान्त देखे जाते हैं। इसके विपरीत ज्ञान और विद्या के धनी सन्त, महात्मा, ऋषि प्रवृत्ति के व्यक्ति सामान्य साधनों में, यहाँ तक कि अभावों में भी सुख, शान्ति, सन्तोष का जीवन बिता लेते हैं। जीवन के सहज आनन्द को प्राप्त करते हैं।

अंतः ज्ञान की उपलब्धि–विद्यार्जन और अज्ञान का निवारण जीवन की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। ज्ञान संसार का सर्वोपरि उत्कृष्ट और पवित्र तत्त्व है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

"इस संसार में ज्ञान के समान और कुछ पवित्र नहीं है।" (गीता)

"ज्ञान बहूमूल्य रत्नों से भी अधिक मूल्यवान् है।"

ज्ञान ही जीवन का सार है, ज्ञान आत्मा का प्रकाश है जो सदा एकरस और बन्धनों से मुक्त रहने वाला है। सर ड़ब्लू० टेम्पिल ने लिखा है– "ज्ञान ही मनुष्य का परम मित्र है और अज्ञान ही उसका परम शत्रु है।" बेकर ने कहा है– "ज्ञान ही शक्ति है।"

इस तरह ज्ञान जीवन का सर्वोपरि तत्त्व है। ज्ञान-धन जीवन का बहूमूल्य धन है। सभी प्रकार की भौतिक सम्पत्तियाँ समय पर नष्ट हो जाती हैं किन्तु ज्ञान-धन हर स्थिति में मनुष्य के पास रहता है और दिनों दिन विकास को प्राप्त करता है। ज्ञान अमोघ शक्ति है जिसके समक्ष सभी शक्तियाँ निष्प्रभ हो जाती हैं। ज्ञान जीवन का प्रकाश–बिन्दु है जो मनुष्य को सभी द्वन्द्वों, उलझनों, अन्धकारों की दीवार से निकालकर शाश्वत पथ पर अग्रसर करता है।

शुभाशुभ कर्मों से उत्पन्न होने वाले हर्ष, शोक, विक्षोभ, प्रसन्नता, मानसिक असन्तुलन मनुष्य के मन और शरीर में तीव्र प्रतिक्रिया पैदा करते हैं। हर्ष के प्रति आसक्ति, शोक से उत्पन्न होने वाली दुःखानुभूति दोनों ही मानव मन को मोहित कर उसे विवेकशून्य बना देते हैं और इसका परिणाम होता है गलत कार्य, गलत विद्या, जिनका पर्यवसान दुःख, द्वन्द्व, क्लेश, शोक आदि में ही होता है किन्तु ज्ञान का प्रकाश मनुष्य को इन दोनों ही प्रपञ्चों से मुक्त कर आत्मस्थिर, निःस्पृह और मुक्त बना देता है। इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए गीताकार ने लिखा है–

''यथैधाँसि समिद्धोग्निर्भस्मसात्कुरुतेर्जुन। ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।''

"हे अर्जुन! जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों को जलाकर नष्ट कर देती है। ज्ञानी कर्म में लिप्त और आसक्त नहीं होता वरन् तटस्थ, निःस्पृह, निष्काम भाव से अपने कर्म में लगा रहता है। इसलिये वह कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

ज्ञान मनुष्य के चरित्र और व्यावहारिक जीवन को उत्कृष्ट बनाता है। ज्ञानी शुभ कर्म, शुभाचरण करके अपने आन्तरिक व ब्राह्य जीवन को पवित्र और उत्कृष्ट बना लेता है। महर्षि व्यास ने लिखा है–"ज्ञान जीवन के सत्य का दर्शन ही नहीं कराता वरन् वह मनुष्य को बोलना, व्यवहार करना सिखाता है।" सन्त विनोबा भावे ने कहा है– "मनुष्य जितना ज्ञान में घुसता जाता है उतना ही वह कर्म के रंग में रंगता है। ज्ञानी अपने कर्मों को अधिक उत्कृष्टता के साथ कर सकता है बजाय एक अज्ञानी के।" कर्म को पोषण देने वाला ज्ञान ही वस्तुतः सच्चा ज्ञान है। जो कर्म त्याग या अकर्मण्यता की ओर प्रेरित करें वह ज्ञान नहीं अज्ञान और अविद्या ही है।

ज्ञान का ध्येय सत्य है और सत्य की आत्मा का लक्ष्य है। ज्ञान मनुष्य को सत्य के दर्शन कराता है। 'बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् माम् प्रपद्यते।" अर्थात् बहुत जन्मों के अन्त में ज्ञानी ही मुझे पाता है। (गीता)

स्वर्ग और नर्क मनुष्य के ज्ञान और अज्ञान का परिणाम है। ज्ञानी मनुष्य के लिए यह संसार स्वर्ग है। वह जहाँ भी रहता है स्वर्गीय वातावरण का सृजन कर लेता है तो अज्ञानी को पग-पग कर अपने दुष्कृत्य और कुविचारों के कारण नारकीय प्रेरणाओं का सामना करना पड़ता है। इसलिए अज्ञान से निकल कर ज्ञान प्रकाश को प्राप्त करने की प्रेरणा देते हुए वेद भगवान् ने कहा है–

''आरोह तमसो ज्योतिः।''

''अज्ञानान्धकार से निकल कर ज्ञान-प्रकाश की ओर बढ़ो।''

''केतुं कृण्वन्न केतवे पेशोमर्या आपेशसे। समुषद्रिभजायथाः।''

" हे मनुष्यो ! अज्ञानियों के लिये ज्ञान देते हुए, कुरूप को रूप देते हुए विद्यादि से प्रकाशित लोगों के साथ प्रसिद्धि प्राप्त करो।" इन शब्दों में मानव-जीवन के एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम पर प्रकाश ड़ालते हुए बताया है कि जीवन में अज्ञान को हटाकर ज्ञान की स्थापना की जाय और अपने अर्जित ज्ञान से उन लोगों की सहायता की जाय जिनका जीवन अज्ञान की विभीषिकाओं से कुरूप हो गया है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो सदैव अपने आपको दुःखी, पीड़ित, असहाय महसूस करते हैं।

ज्ञान की साधना करना और उसके अनुसार आचरण करना, अपने उपार्जित ज्ञान से दूसरों का मार्ग-दर्शन करना ज्ञान-यज्ञ कहा गया है जिसे सर्वोत्कृष्ट बताते हुए गीताकार ने लिखा है–

''श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाद् ज्ञान यज्ञः परंतपः।
सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।''

'' हे परंतप ? द्रव्ययज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है क्योंकि जितने भी कर्म हैं वे सब ज्ञान में ही समाप्त होते हैं। ज्ञानदान सर्वोपरि पुण्य है, शुभ कार्य है।'' पदार्थ, धन सामग्री से किसी सीमा तक ही किसी की सहायता की जा सकती है और लेने वाला इनका दुरुपयोग करके उल्टी अपनी हानि भी कर सकता है, किन्तु ज्ञान–दान मनुष्य का स्थायी रूप से भला करता है, उसे जीवन जीने में सहायक बनता है। इसलिये ज्ञानी को सबसे बड़ा वृद्ध माना गया है चाहे वह कितनी ही उम्र का क्यों न हो।

न तेन स्थगिरो भवति येनास्य पलितं शिरः।
बालोपि यः प्रजानाति तं देवाः स्थविरं विदुः।।

(महर्षि व्यास)

"कोई सिर के बाल सफेद होने से वृद्ध नहीं होता। बालक होकर भी यदि कोई ज्ञान सम्पन्न है तो वही वृद्ध माना जाता है।"

शास्त्रकार, मनीषियों ने जिस ज्ञान और शिक्षा के सञ्जय और प्रचार की आवश्यकता पर बल दिया है वह यह स्कूली, शिक्षा नहीं है। इसे तो लौकिक जीवन को साधन सम्पन्न बनाने की दृष्टि से प्राप्त करना ही चाहिये। लोग अपने आप भी करते रहते हैं। इससे लौकिक आवश्यकताओं की ही एक अंश तक पूर्ति हो सकती है पर अपनी आत्मा का कल्याण, आत्मतोष प्राप्त करने एवं दूसरों को अज्ञानान्धकर से छुड़ाकर सदाचार और शान्ति के मार्ग पर चलने की शक्ति जिस ज्ञान में है वह लौकिक नहीं, आध्यात्मिक ज्ञान है।

आत्मा की अमरता का, परमात्मा की न्यायशीलता का और मानव-जीवन के कर्तव्य की जिससे जानकारी होती हो और जिससे कुविचारों और दुष्कर्मों के प्रति घृणा एवं सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती हो वही ज्ञान है यह शिक्षा ऋषियों ने धर्मग्रन्थों के अक्षय भाण्डागारों में पर्याप्त मात्रा में भर अपने उत्तराधिकार के रूप में हमारे लिये छोड़ी है। इस धर्म-ज्ञान का अधिकाधिक प्रसार करना प्रत्येक ज्ञानी का कर्तव्य है। जो स्वंय ऐसा नहीं कर सकते वे ज्ञान प्रसार साहित्य को जुटाकर तथा अन्य तरह सहयोग देकर सहायता कर सकते हैं।

सद्ज्ञान और जीवन-फल

प्रगति के लिए ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। ज्ञान के अभाव में मनुष्य भी अन्य जीव–जन्तुओं की तरह आत्मिक दृष्टि से हीन अवस्था में ही पड़ा रह सकता है। अन्य प्रदेशों में एकाकी रहने वाले आदिवासी अनेको मानवीय सत्प्रवृत्तियों से वंचित रह जाते हैं। शिक्षण के अभाव में न तो प्रमुख क्षमताओं का विकास हो सकता है और न परिष्कार। ऐसी दशा में शरीर को प्रेरणाओं के आधार पर ही जीवन-यापन करना पड़ता है। ऐसे जीवन को पाशविक जीवन ही कहा जा सकता है। ज्ञान प्राप्ति की व्यवस्था जो न कर सकेगा विवेक की आँखें जिसकी न खुल सकेंगी उसे अज्ञान के अंधकार में भटकते हुए निम्न स्तरीय दिनचर्या के आधार पर अपनी जिन्दगी काटनी पड़ेगी।

मनुष्य में मूलतः अनेक महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ मौजूद हैं। उसका सदपुयोग करने की गिरी हुई परिस्थितियों का व्यक्ति भी निरन्तर प्रगति करने की सुविधाएँ एकत्रित कर सकता है और बड़ी से बड़ी बाधाओं को पार करते हुए उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँच सकता है। पर यह सम्भव तभी है जब वह ज्ञान का महत्त्व समझे और उसकी प्राप्ति के लिए निरन्त प्रयत्नशील रहे। सीखने में जिसे रुचि न होगी या जिसे प्रशिक्षण के साधन न मिलेंगे, उसके लिए अपनी आन्तरिक क्षमताओं को पहचान सकना तक कठिन है। फिर उनका जागरण, अभिवर्द्धन और परिष्कार तो हो ही कैसे सकेगा ? इसीलिए मनीषियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने इस बात पर अधिक जोर दिया है कि मानवता को सार्थक बनाने वाले ज्ञान की साधना में निरन्तर संलग्न रहा जाय। एक दिन भी ऐसा न बीते जिसमें ज्ञान की आराधना न की गई हो।

लोहा एक साधारण पदार्थ है, पर उसका स्पर्श जब पारसमणि से हो जाता है तो उसे सोने के रूप में बदलते देर नहीं लगती। मनुष्य भी साधारण तथा एक दुर्बलकाय नगण्य पशु मात्र है पर उसे जब ज्ञान का लाभ होता है, तो वह अपनी मानसिक क्षमता का पूरा लाभ उठा सकता है और उस मार्ग पर चल सकता है जिसके लिए उसे इस सुरदुर्लभ सौभाग्य की प्राप्ति हुई है।

स्वाध्याय और सत्संग मानवीय जीवन के आकाश में सूर्य और चन्द्रमा की तरह चमकने वाले दो उज्ज्वल प्रकाश-केन्द्र हैं। जहाँ उनका अस्तित्त्व न होगा वहाँ चिरस्थायी अन्धकार छाया रहेगा। अन्तरात्मा में विकास की अनेक सम्भावनाएं मौजूद हैं। पर वे प्रस्फुटित और पल्लवित तभी होती है जब उन्हें उपयुक्त साधक मिलें। बीज में वृक्ष बनने की सम्भावना निश्चित रूप से मौजूद है, पर उसको मूर्त रूप तभी मिल सकेगा जब खाद पानी की आवश्यकता की उचित रूप से पूर्ति होती रहे। उसके अभाव में सशक्त बीज भी अंकुरित न हो सकेगा। व्यक्ति में बीज की ही भाँति ईश्वर प्रदत्त अनेक सुसम्भावनाएँ विद्यमान हैं पर उनका विकास सत्संग और स्वाध्याय के ही आधार पर होता है।

दर्पण के सामने जो भी वस्तुएँ आती हैं उनकी वैसी ही छाया दीखने लगती है। कपड़े को जैसे रंग में रंगा जाय वह वैसा ही बन जाता है। बालक जन्मतः सभी समान मनोभूमि लेकर आते हैं, पर उन्हें अपने परिवार एवं वातावरण में जो कुछ सीखने को मिलता है वे उसी ढाँचे में ढलने लगते हैं। भाषा, स्वभाव, संस्कार, आहार, अभ्यास, दृष्टिकोण आदि का निर्माण मनुष्य का बालक अपने समीपवर्ती वातावरण से ही ग्रहण करता है। सज्जन माता से जन्में बालक का पालन-पोषण यदि कुसंस्कारी वातावरण में हो तो वह कुसंस्कारी ही बनेगा। इसी प्रकार निम्न स्तर के घर में जन्मा बालक यदि सुसंस्कारी लोगों द्वारा पाला जाय, तो उसका वैसा ही सुसंस्कृत होना निश्चित है।

कभी-कभी कुछ अपवाद भी ऐसे दीखने में आते हैं कि अच्छे लोगों के घर जन्में बच्चे कुसंस्कारी और बुरी स्थितियों में जन्में बालक प्रबुद्ध स्तर के बने हैं। ऐसे उदाहरणों में से कुछ में तो पूर्व जन्मों की प्राप्त प्ररेणा प्रधान कारण रखती है और कुछ में ऐसा होता है कि वे बालक किसी प्रभावशाली सम्पर्क में आ जाते हैं और निकटवर्ती परिस्थितियों के प्रभाव को हटाकर किसी मनस्वी व्यक्ति की प्रेरणा से उत्थान या पतन के मार्ग पर चल पड़ते हैं। प्रेरणा कहीं न कहीं से उन्हें जरूर प्राप्त हुई होती है। यदि किसी बालक को बाह्य वातावरण से सर्वथा पृथक रखा जाय तो वह नर पशु के अतिरिक्त और कुछ भी न बन सकेगा। भेड़िये की मांद में पकड़े गये बालक रामू का लखनऊ अस्पताल में अभी बहुत कुछ वैसा ही स्वभाव बना हुआ है जैसा कि उसका पालन करने वाले भेड़िये ने उसे सिखा दिया था।

हनुमान जी में बहुत बल विद्यमान था पर ज्ञान के अभाव में वे समुद्र लाँघने को तैयार नहीं हो पा रहे थे। जामवन्त ने उन्हें आत्मबोध कराया तो वे खुशी-खुशी तैयार हो गये और सहज ही उस कार्य को सम्पन्न कर सकने में भी सफल हो गये। हनुमान की उस सफलता में जामवन्त का उद्‌बोधन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। यदि जामवन्त के स्थान पर उस समय कोई कायर और डरपोक सलाहकार रहा होता तो वह अनेक आशंकायें व्यक्त करके हनुमान के मनोबल को और भी अधिक गिरा सकता था, ऐसी दशा में उनके लिये समुद्र लांघने की बात को सोच सकना भी कठिन हो जाता। संगति का प्रभाव अन्य जीवों के लिये महत्त्वहीन भले ही हो मानव-प्राणी के लिये तो वही सबसे बड़ा प्रश्न है। सुसंगति और कुसंगति को उसके जीवन-मरण एवं उत्थान पतन की समस्या कहा जा सकता है।

जीवनोत्कर्ष के लिए जिस सद्‌ज्ञान की आवश्यकता है वह सत्संग में प्राप्त होता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपर्युक्त सत्संग के लिये आज सबसे सरल और सबसे प्रभावशाली उपाय यह है कि स्वाध्याय के माध्यम से सत्पुरुषों का सान्निध्य निरन्तर प्राप्त करते रहा जाय। यह कार्य श्रेष्ठ साहित्य द्वारा ही सम्भव हो सकता है। सद्ग्रन्थों में महापुरुषों के जीवन चरित्र खुले पृष्ठों की तरह सर्वसाधारण के लिये उपलब्ध हैं। बहुत पूछ-ताछ करने पर जो बातें जानी जा सकती हैं वे उन जीवन–चरित्रों में सहज ही लिखी मिल जाती है। फिर जिन महापुरुषों के प्रवचन जिस विषय पर सुनने हों, जिस शंका का समाधान उनसे प्राप्त करना हो उसके लिये उनका साहित्य पढ़ लेना चाहिये। इस रीति से हर घड़ी हर विषय पर हमें महापुरुष का सत्संग लाभ घर बैठे हो सकता है।

ऐसा सत्साहित्य मानव–जीवन के विकास का सर्वश्रेष्ठ माध्यम हो सकता है, जो उसे जिन्दगी जीने की कला सिखा सके। गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कार करते हुए सुविकसित एवं सुसंस्कृत बनाने की प्रेरणा को संजीवनी बूटी कह सकते हैं। यही अमरता प्रदान करने वाला अमृत है, इसी को कायाकल्प करने वाला पारस कह सकते हैं और इसी की सच्ची तृप्ति और शाश्वत शान्ति प्राप्त करने के कारण उसे कल्पवृक्ष भी कहा जा सकता है। जिसकी सत्साहित्य में अभिरुचि उत्पन्न हो गई और जो जीवन–निर्माण के सद्ज्ञान को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करने लगा उसका कल्याण अति निकट है यही समझना चाहिए।

सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय- एक योग साधना

जीवन को सफल, उच्च एवं पवित्र बनाने के लिये स्वाध्याय की बड़ी आवश्यकता है। किसी भी ऐसे व्यक्ति का जीवन क्यों न देख लिया जाये, जिसने उच्चता के सोपानों पर चरण रखा है। उसके जीवन में स्वाध्याय को विशेष स्थान मिला होगा। स्वाध्याय के अभाव में कोई भी व्यक्ति महान अथवा ज्ञानवान नहीं बन सकता। प्रतिदिन नियमपूर्वक सद्ग्रन्थों का अध्ययन करते रहने से बुद्धि तीव्र होती है, विवेक बढ़ता है और अन्तःकरण की शुद्धि होती है। इसका स्वस्थ एवं व्यावहारिक कारण है– वह यह है कि सद्ग्रन्थों के अध्ययन करते समय मन उसमें रमा रहता है और ग्रन्थ के सद्वाक्य उस पर संस्कार ड़ालते रहते हैं।

स्वाध्याय द्वारा अन्तःकरण के निर्मल हो जाने पर मनुष्य के बाह्य अन्तर पट खुल जाते हैं, जिससे वह आत्मा द्वारा परमात्मा को पहचानने के लिए जिज्ञासु हो उठता है। मनुष्य की यह जिज्ञासा भी स्वाध्याय के निरन्तर बढ़ती एवं बलवती होती रहती है और कर भी लेता है। परमात्मा के इस पावन साक्षात्कार का उपाय तथा मार्ग का भी स्वाध्याय से ही पता चल सकता है। इस प्रकार नित्य प्रति का स्वाध्याय मनुष्य को उसके चरम लक्ष्य तक पहुँचा देने में बड़ी सहायता करता है।

स्वाध्यायशील व्यक्ति का जीवन अपेक्षाकृत अधिक पवित्र हो जाता है। ग्रन्थों में सन्निहित सद्वाणी तो अपना प्रभाव एवं संस्कार डालती ही है, साथ ही अध्ययन में रुचिमान् होने से व्यक्ति अपना शेष समय पढ़ने में ही लगाता है। वह या तो अपने कमरे में बैठा हुआ एकान्त अध्ययन किया करता है अथवा किसी पुस्तकालय अथवा वाचनालय से पुस्तकों के साथ संलग्न रहता है। उसके पास ऐसा कोई भी फालतू समय नहीं रहता जिसमें जाकर इधर-उधर बैठे अथवा घूमें और फिर वायु मण्डल अथवा संगति से अवांछित संस्कार ग्रहण करें। जब मनुष्य निरर्थकों की संगति में न जाकर जीवनोपयोगी सद्साहित्य के अध्ययन में ही संलग्न रहेगा तो उसका आचार आप ही शुद्ध हो जायेगा।

अध्ययनशील व्यक्ति स्वयं तो बेकार रहकर कहीं नहीं जाता, उसके पास बेकार के निठल्ले व्यक्ति भी नहीं आते और वे यदि कभी आ भी जाते हैं तो अध्ययनशील व्यक्ति के आस–पास का व्यस्त वायुमण्ड़ल उनके अनुकूल नहीं होता और वे शीघ्र उसका अधिक समय खराब किये बिना खिसक जाते हैं। इस प्रकार फिजूल के व्यक्तियों के संग से उत्पन्न होने वाली विकृतियों से अध्ययनशील व्यक्ति सहज ही बच जाता है जिससे उसके आचार-विचार पर कुसंस्कार नहीं पड़ने पाते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

निरन्तर अध्ययन करते रहने से मनुष्य का ज्ञान जाग्रत रहता है जिसका उद्रेक उसकी वाणी द्वारा हुए बिना नहीं रहता। अस्तु अध्ययनशील व्यक्ति की वाणी सफल, सार्थक तथा प्रभावोत्पादक बन जाती है। वह जिस सभा-समाज में जाता है, उसकी ज्ञान-मुखर वाणी उसे विशेष स्थान दिलाती है। अध्ययन शील व्यक्ति का ही कथन प्रामणिक तथा तथ्य पूर्ण माना जा सकता है। निरध्ययन वक्ताओं की वाणी बकवास से अधिक कोई महत्त्व नहीं रखती। स्वाध्याय निःसन्देह सामाजिक प्रतिष्ठा का संवाहक होता है।

संसार के इतिहास में ऐसे असंख्य व्यक्ति भरे पड़े हैं जिनको जीवन में विद्यालय के दर्शन न हो सके किन्तु स्वाध्याय के बल पर वे विश्व के विशेष विद्वान व्यक्ति बने हैं। साथ ही ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं है जिनकी जिन्दगी का अच्छा खासा भाग विद्यालयों एवं विश्व–विद्यालयों में बीता किन्तु उसके बाद स्वाध्याय में प्रमाद करने के कारण उनकी एकत्रित योग्यता भी उन्हें छोड़कर चली गयी और वे अपनी तपस्या का न तो कोई लाभ उठा पाये और न सुख योग्यता को बनाये रखने और बढ़ाने के लिए स्वाध्याय नितान्त आवश्यक है।

कथा कक्ष में अथवा सार्वजनिक मंच से धाराप्रवाह बोलने वाले प्रोफेसरों तथा वक्ताओं का दैनिक जीवन देखने से पता चलता है कि अपना नित्य कर्तव्य निबटाने के बाद उनका शेष सारा समय स्वाध्याय में ही व्यतीत होता है उनके मुख द्वारा धाराप्रवाह वाणी का निर्गमन और कुछ नहीं उस तेजोपूर्ण योग्यता का ही प्रवहन होता है जो वे अपने बहुमूल्य समय को क्षण–क्षण लगा कर स्वाध्याय द्वारा संचय किया करते हैं।

संसार ज्ञान की जन्मभूमि है। यहाँ पर नित्य प्रति नई-नई जानकारियों, विचारणाओं, तर्कों तथा विद्याओं का जन्म होता है। जो व्यक्ति अध्ययनशील होता है वह नित्य नये ज्ञानों से अवगत रहा करता है। उसे पता रहता है कि संसार में कहाँ क्या हो रहा है ? कौन–सी पुरानी मान्यतायें बदल गई हैं और उनके स्थान पर कौन–सी नई प्रतिस्थापनायें हो रही हैं। उसे यह भी ज्ञान रहता है कि इन बदलती हुई परिस्थितियों में उनका क्या स्थान और क्या कर्तव्य है ? इस प्रकार अध्ययनशील व्यक्ति एक जागरुक नागरिक की तरह ही जीवन जीने का सुख पाता है न कि मूढ़मति आदमी की तरह जिसे अपने चारों ओर के, आस-पास के परिवर्तन का भी ज्ञान नहीं रहता।

संयम, अध्ययनशीलता की सबसे बड़ी देन है। जो स्वाध्याय में रुचिमान है वह अपनी अभिरुचि पूरी करने के लिए अधिक से अधिक समय प्राप्त करने के लिए प्रातःकाल उठेगा। अवकाश के समय में सोयेगा नहीं, अपनी मेधा को बलवती बनाने के लिए आहार–विहार तथा विचार में सावधान रहेगा। वह कोई भी ऐसा अवांछनीय कार्य करने के प्रति सावधान रहेगा जो उसमें आलस्य, प्रमाद की प्रवृतियाँ जगाने का कारण बन सकती है। वह अधिक से अधिक स्वस्थ एवं प्रसन्न रहने का प्रयत्न करेंगा ! रोग की दशा में भी अध्ययनशील व्यक्ति रोने-चिल्लाने अथवा रोग का चिन्तन करने के बजाय धीरे–धीरे अध्ययन ही करता रहता है जिससे न तो रोग उसे अधिक पीड़ित कर पाता है और न अधिक समय ठहर ही पाता है। अध्ययनशीलता, सुख-दुःख एवं सम्पत्ति-विपत्ति दोनों स्थिति में सहायक होती है।

विद्वानों ने स्वाध्याय की महिमा को जानते हुए उसे सन्मार्ग दर्शकसखा की संज्ञा दी है। वेदों में कहा गया है– जो मनुष्य सतपथ-दर्शक अपने सच्चे सखा स्वाध्याय का परित्याग कर देता है उसकी नाड़ी आदि अनगंत एवं अंतः इन्द्रियाँ उच्छृंखल हो जाती हैं जिससे उसे दुःखों का भागी बनना पड़ता है। स्वाध्याय सखा से सम्बन्ध विच्छेदन कर देने वाले व्यक्ति की मानसिक एकाग्रता चली जाती है।

स्वाध्यायशील व्यक्ति अपनी आत्मा का सफल चिकित्सक होता है। स्वाध्याय से उपार्जित ज्ञान द्वारा वह अपनी आत्मिक व्याधियों को जान लेता और उनका निदान निर्धारित कर लेता है। निदान खोज लेने पर व्याधियों का उपचार तो सहज ही में हो जाता है। मानसिक एकाग्रता की उपलब्धि उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस मार्ग में सहायक बनकर बढ़ाया करती है जिससे उसका जीवन उच्छृंखलताओं एवं अवांछनीयताओं से मुक्त होकर महान् एवं सुखी बन जाता है।

स्वाध्याय से ज्ञान की, योग्यता की अपेक्षित वृद्धि होती है। इसलिये गुरुकुल में विद्या पाकर चलते हुए शिष्य से ऋषि कहा करता था – 'स्वाध्यायात्मा प्रमद' अर्थात्– हे शिष्य, तू अपने जीवन को यदि सफल एवम् सार्थक बनाना चाहता है तो स्वाध्याय में प्रमाद न करना।

स्वाध्याय को मानसिक योग भी कहा गया हैं। जिस प्रकार प्रभु का नाम जपता हुआ योगी उस परमात्मा के प्रकाश रूप में तल्लीन हो जाता है उसी प्रकार एकाग्र होकर सद्विचारों के अध्ययन में तल्लीन हो जाने वाला अध्येता अक्षर ब्रह्म की सिद्धि से ज्ञान रूप प्रकाश का अधिकारी बनता है। केवल योग ही नहीं अध्ययन भी प्रभु का साक्षात्कार करने के उपायों में एक प्रमुख उपाय है। स्वाध्याय जैसे सरल एवं सरस योग में प्रतिष्ठित होने वाला व्यक्ति किसी न किसी रूप में अपने परम लक्ष्य मोक्ष को पाकर शाश्वत सुख का अधिकारी बनता है।

स्वाध्याय आत्मा का भोजन

संसार में जितने भी महापुरुष, वैज्ञानिक, सन्त, महात्मा, ऋषि, महर्षि आदि हुए हैं, वे सभी स्वाध्यायशील थे। स्वाध्याय सत्साहित्य का एवम् वेद, उपनिषद्, गीता आदि आर्ष-ग्रन्थ तथा महापुरुषों के जीवनवृतान्तों का अध्ययन तथा मनन करना है। कुछ भी पढ़ा जाये उसे स्वाध्याय नहीं कहा जा सकता। मनोरंजन प्रधान उपन्यास नाटक एवं शृंगार-रस पूर्ण पुस्तकों को पढ़ना स्वाध्याय नहीं है। इस प्रकार का साहित्य पढ़ना तो वास्तव में समय का दुरुपयोग करना एवं अपनी आत्मा को कलुषित करना है। कुरुचिपूर्ण गन्दे साहित्य को छूना भी पाप समझना चाहिये।

सच्चा स्वाध्याय वही है, जिससे हमारी चिन्तायें दूर हों हमारी शंका-कुशंकाओं का समाधान हो, मन में सद्भाव और शुभ संकल्पों का उदय हो तथा आत्मा को शांति का अनुभव हो। हमारे शास्त्रों में स्वाध्याय का बड़ा महात्म्य बताया गया है। योग-शास्त्रों में कहा गया है–

स्वाध्यायाद् योगमासीत् योगात् स्वाध्यायमानयेत्।
स्वाध्याय-योग-सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात्– "स्वाध्याय से योग की उपासना करें और योग से स्वाध्याय का अभ्यास करें। स्वाध्याय की सम्पति से परमात्मा का साक्षात्कार होता है।"

त्रयो धर्म स्कन्धा यज्ञोऽध्ययनम् दानमिति।

अर्थात् – "धर्म के तीन स्कन्ध हैं। यज्ञ, स्वाध्याय और दान।"

श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

स्वाध्यायाभ्यसन चैव वांड्.मयं तप उच्यते। *(१७/११)*

अर्थात् – "स्वाध्याय करना ही प्राणी का तप है।"

शरीर को स्वस्थ और सुदृढ़ बनाये रखने के लिये जिस प्रकार पौष्टिक आहार की आवश्यकता है उसी प्रकार मन और बुद्धि को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाये रखने के लिये उत्तमोत्तम ग्रन्थों का अध्ययन अनिवार्य है। अध्ययन एवं स्वाध्याय के लिये निम्न कोटि का साहित्य हानिकर होगा, उसी प्रकार जैसे अखाद्य एवं दूषित पदार्थों का सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। अतएव हमें इस सम्बन्ध में परिपूर्ण सतर्कता और सावधानी से काम लेना होगा। सच्चा स्वाध्याय वही है, जिसके द्वारा हमारा मन बाह्य विषयों से अलिप्त रहकर आत्मा के अनुसंधान में प्रवृत हो एवं हमारी मानसिक दुर्भावनाओं, दुर्बलताओं तथा दूषित मनोविकारों का दमन हो सके और हमारा मन एक अनिर्वचनीय अलौकिक आनन्द से परिप्लावित हो उठे।

मनुस्मृति में कहा गया है–

स्वाध्याये नित्य युक्तः स्यादेव चैवेह कर्मणा।

अर्थात् – "स्वाध्याय और शुभ कर्म में मनुष्य सदा तत्पर रहे।"

जिसके द्वारा 'स्व' आत्मा व परमात्मा का ज्ञान प्राप्त किया जा सके और जिसके द्वारा अभ्युदय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

निःश्रेयस् की प्राप्ति की जा सके वही सच्चा स्वाध्याय है। अतएव प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अच्छे ग्रन्थों, सदाचार प्रवर्तक पत्र-पत्रिकाओं एवं सत्प्रेरणादायी पुस्तकों का सदैव स्वाध्याय करता रहे। महाभारत के शांति–पर्व में कहा गया है – **'नित्य स्वाध्यायशीलश्च दुर्गान्याति तरन्ति ते'** – नित्य स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति दुःखों से मुक्त हो जाता है।

स्वाध्याय ब्रह्मचर्य पालन में सहायक है। स्वाध्याय से चरित्र निर्माण में भी सहायता मिलती है। इसके द्वारा दुराचारी, सदाचारी और व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी बन जाता है अतः यदि आप समुन्नत होना चाहते हैं, अपने जीवन को पवित्र, शुद्ध और निर्मल बनाना चाहते हैं तो आलस्य और प्रमाद को छोड़कर नित्य सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय का आज से ही संकल्प कीजिए और उसका दृढ़ता से पालन कीजिए।

सत् अध्ययन आत्म-उत्थान का आधार

ऋषियों ने "तमसो मा ज्योतिर्गमय" का संदेश देते हुए मनुष्यों को अज्ञान की यातना से निकलने के लिये ज्ञान प्राप्ति का पुरुषार्थ करने के लिये कहा है। भारत का अध्यात्म–दर्शन ज्ञान–प्राप्ति के उपायों का प्रतिपादक है। अज्ञानी व्यक्ति को शास्त्रकारों ने अन्धे की उपमा दी है। जिस प्रकार बाह्य नेत्रों के नष्ट हो जाने से मनुष्य भौतिक जगत् का स्वरूप जानने में असमर्थ रहता है उसी प्रकार ज्ञान के अभाव में बौद्धिक अथवा विचार–जगत की निभ्रान्त जानकारी नहीं हो पाती। बाह्य जगत के समान मनुष्य का एक आत्मिक जगत भी है, जो कि ज्ञान के अभाव में वैसे ही अंधेरा रहता है जैसे आँख के अभाव में यह संसार।

अन्धकार से प्रकाश और अज्ञान से ज्ञान की ओर जाने में मनुष्य का प्रमुख पुरुषार्थ माना गया है। जिस प्रकार आलस्यवश दीपक न जलाकर अन्धकार में पड़े रहने वाले व्यक्ति को मूर्ख कहा जायेगा उसी प्रकार प्रमादवश अज्ञान दूर कर ज्ञान के लिए प्रयत्न न करने वाले को भी मूर्ख ही कहा जायेगा। भारतवर्ष की महिमामयी संस्कृति अपने अनुयाइयों को विवेकशील बनने का संदेश देती है न कि अन्ध-विश्वासी।

ज्ञानवान् अथवा विवेकशील बनने के लिये मनुष्य को अपने मन-मस्तिष्क को साफ-सुथरा बनाना होगा, उनका परिष्कार करना होगा। जिस खेत में कंकड़-पत्थर तथा खर पतवार भरा होगा उसमें अन्न के दाने कभी भी अंकुरित नहीं हो सकते। वे तब ही अंकुरित होंगे जब खेत से झाड़-झंखाड़ और कूड़ा-करकट साफ करके दाने बोये जायेंगे। उसी प्रकार मनुष्य में ज्ञान के बीज तब तक जड़ नहीं पकड़ सकते जब तक कि मानसिक एवं नैतिक धरातल उपयुक्त न बना लिया जायेगा।

हमारे मन मस्तिष्क में इसी जन्म की ही नहीं, जन्म–जन्मान्तरों की विकृतियाँ भरी रहती हैं। न जाने कितने कुविचार, कुवृत्तियाँ एवं मूढ़ मान्यतायें हमारे मन मस्तिष्क को घेरे रहती हैं। ज्ञान पाने का अथवा विवेक जागृत करने के लिए आवश्यक है कि पहले हम विचारों एवं संस्कारों को परिष्कृत करें। विचार एवं संस्कार परिष्कार के अभाव में ज्ञान के लिये की हुई साधना निष्फल ही चली जायेगी।

विचार परिष्कार का अमोघ उपाय अध्ययन एवं सत्संग को ही बतलाया गया है। विचारों में संक्रमण एवं ग्रहणशीलता रहती है। जब मनुष्य अध्ययन में निरन्तर संलग्न रहता है तब उसको अपने विचारों द्वारा विद्वानों के विचारों के बीच से बार-बार गुजरना पड़ता है पुस्तक में लिखे विचार अविचल एवं अस्थिर होते हैं। उनके प्रभावित होने अथवा बदलने का प्रश्न ही नहीं उठता। स्वाभाविक है कि अध्ययनकर्ता के ही विचार प्रभाव ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार के विचारों की पुस्तक पढ़ी जायेगी अध्येता के विचार उसी प्रकार ढलने लगेंगे। इसलिये अध्ययन के साथ यह प्रतिबन्ध भी लगा दिया गया है कि अध्येता उन्हीं ग्रन्थों का अध्ययन करें जो प्रामाणिक एवं सुलझे हुए विचारों वाले हों। विचार-परिष्कार अथवा ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से पढ़ने वालों को एकमात्र जीवन निर्माण सम्बन्धी साहित्य का ही अध्ययन करना चाहिये।

जीवन का अन्धकार दूर करना और प्रकाशपूर्ण स्थिति पाकर निर्द्वन्द्व एवं निर्भय रहना यदि वांछित है तो समयानुसार अध्ययन में निमग्न रहना भी नितान्त आवश्यक है। अध्ययन के बिना विचार-परिष्कार नहीं, विचार-परिष्कार के बिना विवेक और विवेक के बिना ज्ञान नहीं। जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ अन्धकार होना स्वाभाविक ही है और अन्धेरा जीवन शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकार के भयों को उत्पन्न करने वाला है जिसमें अज्ञानी न केवल इस जन्म में ही बल्कि जन्म-जन्मान्तरों तक, जब तक कि वह ज्ञान का आलोक नहीं पा लेता त्रिविध तापों की यातना सहता रहेगा। जीवनोद्धार के उपायों में अध्ययन का उपाय सबसे श्रेष्ठ, सरल, सुगम एवम् सुलभ है। आत्मावान व्यक्ति को इसे ग्रहण कर भौतिक अज्ञान-यातना से मुक्त होना ही चाहिये।

संसार की सर्वोपरि सम्पत्ति : ज्ञान

सांसारिक सुखों की उपलब्धि के लिये शरीर-बल आवश्यक है। धन हो तो प्रत्येक मनोवांछित वस्तु सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकते हैं। जन-शक्ति के आधार पर अयोग्य व्यक्ति तक सत्तारुढ़ हुए हैं। चातुर्य, पद, सत्ता आदि से कोई भी व्यक्ति मनचाही इच्छायें पूरी कर सका है, किन्तु ज्ञान के अभाव में यह सारी शक्तियाँ लघु प्रतीत होती हैं। ज्ञान संसार का सर्वोत्तम बल है इसी के आधार पर दूसरी सफलतायें प्राप्त की जा सकती हैं। अज्ञानवश मनुष्य तन, धन, जन सभी का नाश कर लेता है। दुष्कर्म में लगे व्यक्ति का कहाँ तो शरीर ठीक रहेगा, कितने दिन धन ठहरेगा और कब तक दूसरों में सहयोग सहानुभूति व आत्मीयता मिलेगी? मनुष्य ज्ञान के अभाव में ही बुरे कर्मों की ओर प्रेरित होता है। इसलिये संसार में ज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ बल कहा गया है।

बुद्धिमान व्यक्ति कम-कम से साधनों में भी संतुष्ट दिखाई देते हैं। इसका कारण यह है कि अज्ञानता के दुष्परिणामों से वे बचे रहते हैं। उनके प्रत्येक कार्य में विवेक होता है, जो कुछ करते हैं उसे पहिले भली प्रकार सोच-समझ लेते हैं। पूरी तरह विचार करने के बाद किये गये कार्यों से हानि की सम्भावना प्रायः समाप्त हो जाती है और उस कार्य में पड़ने वाली बाधाओं, परेशानियों और मुसीबतों से बचने का रास्ता मिल जाता है। ज्ञान मनुष्य को जीवन का सही रास्ता प्रदर्शित करता है, जिससे उसे कठिनाइयाँ कम और सफलतायें अधिक मिलती हैं। कदाचित परिस्थितिवश कोई विघ्न आ जाए तो अपनी दूरदर्शिता के कारण बुद्धिमान व्यक्ति ही उसे आसानी से हल कर लेते हैं।

ओछे काम करने वाले लोगों का अध्ययन करें तो पता चलता है कि ऐसे कार्य अधिकांश अज्ञानता-वश ही करते हैं। जीवन की सही दिशा निर्माण करने की क्षमता न तो धन में है, न पद और प्रतिष्ठा में। आत्म-निर्माण की प्रक्रिया सत्कर्मों से पूरी होती है। सन्मार्ग में भी कोई स्वतः प्रवृत्त होता हो यह भी नहीं कहा जा सकता। यह प्रेरणा हमें औरों से मिलती है। दूसरों की इच्छाओं का अनुकरण करते हुए भी महानता की मंजिल तक पहुँचने का नियम बना हुआ है। ऐसी बुद्धि किसी को मिल जाये तो उसे यह समझना चाहिए कि परमात्मा की उस पर बड़ी कृपा है। ज्ञान से मनुष्य को ऐसी ही धर्म-बुद्धि जागृत होती है, इसलिये ज्ञान को परमात्मा का सर्वोत्तम वरदान मानना पड़ता है।

अज्ञानता के दुष्परिणामों से बचने का सही तरीका सबसे अच्छा है कि हम अपनी मानसिक चेष्टाओं को संसार का रहस्य समझने में लगायें। विचार करने की शक्ति हमें इसलिये मिली है कि हम सृष्टि की वस्तुस्थिति को समझें और इसका लाभ अपने सजातीयों को भी दें, किन्तु यह सब कुछ तभी सम्भव है जब हमारा ज्ञान बढ़े। जब तक हम ज्ञानवान् नहीं बनते, अज्ञानता का शैतान हमारे पीछे पड़ा रहेगा ऐसी अवस्था में हमारी मोह-ग्रन्थियाँ ज्यों की त्यों बंधी रहेंगी। अज्ञानता का अन्धकार और विश्व-रहस्य की जानकारी के लिये ज्ञान के प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की आवश्यकता पड़ती है। इसी से भव-बन्धन टूटते हैं।

व्यक्ति की पात्रत्व की सच्ची कसौटी उसके ज्ञान से होती है। समाज में अधिक देर तक सम्मान व प्रतिष्ठा उन्हीं को मिलती है जो शीलवान् शिष्ट व नम्र होते हैं। उद्दण्ड, दुराचारी व अशिष्ट व्यक्ति को सभी जगह तिरस्कार ही मिलता है। इन आध्यात्मिक सद्गुणों का आन्तरिक प्रतिष्ठान ज्ञान से होता है, इससे सदाचार में रुचि बढ़ती है। आप्त वचन है **"विद्या ददाति विनयम् विनयाद्याति पात्रताम्"** अर्थात् विद्या से ज्ञान विनयशीलता आती है। विनयशीलता युक्त ही पात्रत्व के सच्चे अधिकारी होते हैं।

मानवीय-प्रतिभा का विकास ज्ञान से होता है। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं उन सभी के महान् व्यक्तित्व का विकास ज्ञान से हुआ है। भगवान् राम,कृष्ण, गौतम बुद्ध, ईसा मसीह, सुकरात आदि सभी महापुरुषों ने ज्ञान की श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। सांसारिक दुःखों से परित्राणपाने के लिये मानव जाति को सदैव ही इसकी आवश्यकता हुई है। शास्त्रकार ने ज्ञान की महत्ता प्रतिपादित करते हुए लिखा है–

मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमे वा।
अज्ञान हृदयग्रन्थिर्नाशौ मोक्ष इति स्मृतः ।।
(शिव-गीता)

अर्थात् मोक्ष किसी स्थान विशेष में उपलब्ध नहीं होता। इसे पाने के लिये गाँव–गाँव भटकने की भी आवश्यकता नहीं। हृदय की अज्ञान ग्रन्थि का नष्ट हो जाना ही मोक्ष है। दूसरे शब्दों में स्वर्ग, मुक्ति का साधन है–ज्ञान। इसे पा लिया तो इसी जीवन में जीवन-सुक्ति मिल गई समझनी चाहिये।

इस युग में विज्ञान की शाखा-प्रशाखायें सर्वत्र फैली हैं। प्रकाश, ताप, स्वर, विद्युत, चुम्बकत्व और पदार्थों की जितनी वैज्ञानिक शोध इस युग में हुई है उसी को ज्ञान मानने की आज परम्परा चल पड़ी है। इसी के आधार पर मनुष्य का मूल्यांकन भी हो रहा है। तथाकथित विज्ञान को ही ज्ञान मान लेने की भूल सभी कर रहे हैं किन्तु यह जान लेना नितान्त आवश्यक है कि ज्ञान वृद्धि की उस सूक्ष्म क्रियाशीलता का नाम है जो मनुष्य को सन्मार्ग की दिशा में प्रेरित करता है। विज्ञान का फल है इह लौकिक कामना पूर्ति और ज्ञान का सम्बन्ध है अन्तर्जगत् से। ज्ञान वह है जो मनुष्य को आत्मदर्शन में लगावे।

इसके लिये प्रमाद को त्याग कर विनम्र बनना पड़ता है। जो केवल अपनी ही अहंता प्रतिपादित करते रहते हैं, जिन्हें केवल अहंकार प्यारा है वे अपने संकुचित दृष्टिकोण के कारण ज्ञान के आनन्द और अनुभूति को जान नहीं पाते। छोटे से छोटा बन जाने पर ही महानता की पहचान की जा सकती है। गल्ले के भारी ढेर पंसेरियों से तौले जाते हैं। कपड़ों के थान गजों से नापते हैं। अमुक स्थान कितनी दूर है, यह मील के पत्थर बताते हैं। ऐसे ही विराट् के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिये महानता से गठबन्धन करने के लिये–हमें विनम्र बनना पड़ता है। भय, लज्जा और संकोच को त्याग कर तत्परतापूर्वक अपनी चेष्टाओं को उस ओर मोड़ना पड़ता है। तब कहीं ज्ञानवान् बनने की सौभाग्य प्राप्त होता है।

अपने पास धन हो तो संसार की अनेक वस्तुयें क्रय की जा सकती हैं। शारीरिक शक्ति हो तो दूसरों पर रौब जमाया जा सकता है। इससे दूसरों पर शासन भी कर सकते हैं औरों के अधिकारों का अपहरण भी कोई बलशाली कर सकता है। किन्तु विद्या किसी से खरीदी नहीं जा सकती, दूसरों से छीन भी नहीं सकती। इसके लिए एकान्त में रहकर निरन्तर शोध, अध्ययन और पर्यवेक्षण की आवश्यकता पड़ती है। अपनी मानसिक चेष्टाओं को सरस व मनोरंजक कार्यक्रमों से मोड़ कर इसमें लगाना पड़ता है। ज्ञानार्जन एक महान् तप है। इर्स प्राप्त करने के लिए दृढ़ता, मनस्विता और अध्ययनशीलता अपेक्षित है। इसे प्राप्त कर लेने के बाद खो जाने का भय नहीं रहता।

किन्हीं बालकों में किशोरावस्था में ही अलौकिक बौद्धिक क्षमता या प्रतिभा देखते हैं तो यह सोचने को विवश होना पड़ता है कि एक ही पथ,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थान व वातावरण में अनुकूल स्थिति प्राप्त होने पर भी दो बालकों की मानसिक शक्ति में यह अन्तर क्यों होता है ? तब यह मानना पड़ता है कि एक में पूर्व जन्मों के ज्ञान के संस्कार प्रबल होते हैं दूसरे में क्षीण। भरत, ध्रुव, प्रह्लाद, अभिमन्यु आदि में जन्म से ही प्रखर–ज्ञान के उज्ज्वल संस्कार पड़े थे। जगद्गुरु शंकराचार्य ने थोड़ी ही अवस्था में पूर्णता प्राप्त कर ली थी। यह उनके पिछले जन्मों के परिपक्व ज्ञान के कारण ही हुआ मानना पड़ता है। इससे इस मत की पुष्टि होती है कि चिर-सहयोग के रूप में जन्म-जन्मान्तरों तक साथ रहने वाला ज्ञान ही है। ज्ञान का नाश नहीं होता। वह अजर है, अमर है।

सार्थक-जीवन की आधार-शिला ज्ञान है। बुद्धिमता की सच्ची कसौटी यह है कि मनुष्य अपनी सच्ची जीवन-दिशा निर्धारित करें। कुछ न कुछ करते रहें चाहे वह अहितकर क्यों न हो, यह बात तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती। कर्म का महत्त्व तब है जब उससे हमें अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त करने में सफलता मिलती है। यह प्रतिक्रिया मानव–जीवन में सन्मार्ग पर चलने से पूरी होती है और सन्मार्ग पर देर तक टिके रहना ज्ञान प्राप्ति से ही सम्भव है। इसे प्राप्त करने के लिये अपने जीवन को साधनामय बनायें तो ही ज्ञानवान् बनने का सच्चा सुख प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान ही इस संसार की सर्वोपरि सम्पत्ति है।

ज्ञान को आत्मा का नेत्र कहा गया है। नेत्रविहीन व्यक्ति के लिये सारा संसार अन्धकारमय है। इसी प्रकार ज्ञानविहीन व्यक्ति के लिये इस संसार में जो कुछ उत्कृष्ट है उसे देख सकना असम्भव है। ज्ञान के आधार पर धर्म का, कर्तव्य का, शुभ–अशुभ का, उचित–अनुचित का विवेक होता है और पाप प्रलोभनों के आकर्षणों के पार यह देख सकना सम्भव होता है कि अन्तः दूरवर्ती हित किसमें है। अज्ञानी व्यक्ति यह सब जान नहीं पाते। इन्द्रियों की वासना और प्रलोभनों की तृष्णा जीव को मनमाना नचाती रहती है और अन्त में उसे पतन के गहरे गर्त में धकेल देती है। इस दुर्दशा से बचाव तभी हो सकता है। जब ज्ञान दीपक का प्रकाश हो रहा हो और विवेक के नेत्र खुले हुए हों।

भौतिक जीवन की सफलता और आत्मिक जीवन की पूर्णता के लिए सबसे प्रथम सोपान ज्ञान की प्राप्ति है। स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन के आधार पर जीवन की गुत्थियों को समझना और उन्हें सुलझाने का मार्ग खोजना मनुष्य को ज्ञानवान् बनना चाहिए। अत्यन्त आवश्यक कार्यक्रमों में एक कार्यक्रम ज्ञान सम्पादन का भी रहना चाहिए।

स्कूली शिक्षा 'ज्ञान' की श्रेणी में नहीं आती। वह ज्ञान प्राप्ति के लिये एक साधन मात्र है क्योंकि भाषा ज्ञान के बिना शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं हो सकता। कठिन अभिव्यक्तियों को समझा नहीं जा सकता। इसलिये शिक्षा की भी आवश्यकता एवं उपयोगिता माननी ही पड़ेगी। ज्ञान का स्तर इससे ऊपर है। स्वाध्याय, सत्संग यह दो ज्ञान प्राप्ति के बाह्य उपाय हैं और चिन्तन, मनन यह आन्तरिक उपाय है। इन चारों चरणों से मिलकर सर्वांगपूर्ण ज्ञान साधना बनती है और उसी के आधार पर जीव अपने लक्ष्य मार्ग की ओर गतिशील होता है।

भगवान राम ने जब गुरु वशिष्ठजी से सांसारिक क्लेशों के भव बन्धनों से छुटकारे का उपाय पूछा तो उन्होंने यही कहा कि– यह सब बिना 'ज्ञान' प्राप्ति के सम्भव नहीं। यदि भव सागर से पार होने की इंच्छा है तो सबसे प्रथम ज्ञान-संचय का प्रयत्न करो। योग वशिष्ठ में इस सम्बन्ध में बहुत बल दिया गया है –

ज्ञानान्निर्दुःखतामेति ज्ञानादज्ञान संक्षयः।
ज्ञानादेवपरासिद्धिर्नान्यस्मादाम वस्तुतः।।

(येगवशिष्ठ ५/८८/१२)

हे राम, ज्ञान से ही दुःख दूर होते हैं, ज्ञान से अज्ञान का निवारण होता है ज्ञान से ही परम सिद्धि प्राप्त होती है और किसी उपाय से नहीं।

ज्ञानवानेन सुखवान् ज्ञानवानेन जीवति।
ज्ञानवानेन बलवास्तस्माज्ज्ञानमयी भव।।

(योगवशिष्ठ ५/६२/४६)

ज्ञानी ही सुखी है, ज्ञानी ही जीवित है, ज्ञानी ही बलवान् है इसलिये ज्ञानी बनना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यथा दीपः प्रकाशात्मा स्वल्पो वा यदि वा महान।
ज्ञानात्मानं तथा विद्यादात्मानं सर्वजन्तुषु।।

जैसे छोटा या बड़ा दीपक प्रकाशवान् ही होता है, वैसे ही सब छोटे–बड़े प्राणियों की आत्मा भी ज्ञानरूप ही है।

ज्ञानमेव परं ब्रह्मज्ञान बंधाय चेष्यते।
ज्ञानात्मकमिद विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम्।।

ज्ञान से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है, विपरीत ज्ञान से ही बन्धन बाँधते । इस संसार में जो कुछ है ज्ञानात्मक ही है। ज्ञान से परे कुछ भी नहीं है।

अस्त देवाधि देवस्य परस्य परमात्मनः।
ज्ञानादेव परा सिद्धिर्नत्वनुष्ठानदुःखतः।।
(योगवशिष्ठ ३/६/१)

उस परमदेव परमात्मा को ज्ञान द्वारा ही प्राप्त किया जाता है और किसी अनुष्ठान से उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं।

एकेनैवाऽमृतेनैव बोधेन स्वेन पूज्यते।
एतदेव पर ध्यान पूजैर्षव परा स्मृता।।
(योगवशिष्ठ ६/३८/२५)

उस आत्मा की एक ही प्रकार से ज्ञान द्वारा पूजा की जाती है। ध्यान ही उस आत्म–देवता का सबसे बड़ा पूजन है।

अत्रज्ञानमनुष्ठानं न त्वन्यदुपयुज्यते ।
(योगवशिष्ठ ३/६/२)

मुक्ति प्राप्त करने के लिये ज्ञान ही एक मात्र उपाय है। दूसरा और कोई नहीं।

ज्ञानादेव परोसिद्धिर्नत्वनुष्ठानदुःखतः ।
(योगवशिष्ठ ३/६/१)

परम सिद्धि ज्ञान से ही प्राप्त होती है और किसी अनुष्ठान से नहीं।

ज्ञानवानुदितानन्दो न क्वचित्परिमज्जति।
(योगवशिष्ठ ४/६३/२४)

ज्ञानी ही परम आनन्द प्राप्त करता है, वही पार होता है।

त्तो वच्मि महाबाहो यथाज्ञानेतरा गतिः।
नास्ति संसार तरणे पाशबन्धस्य चेतसः।।
(योगवशिष्ठ ५/६/७२)

बन्धन में पड़े हुए तन को मुक्त करने और संसार सागर तारने के लिये ज्ञान के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं।

ज्ञानयुक्तिं प्लवेनैव संसाराब्धि सुदुस्तरम्।
महाधियः समुत्तीर्णा निमेषेण रघूद्वह।।
(योगवशिष्ठ २/११/१६)

संसाररूपी समुद्र को बुद्धिमान लोग ज्ञानरूपी नौका पर सवार होकर आसानी से पार कर जाते हैं।

संसारोत्तरणे जन्तोरूपायो ज्ञानमेव हि।
तपो दानं तथा तीर्थमनुहायाः प्रकीर्तियाः।।
(योगवशिष्ठ)

संसार से पार होने का एक मात्र उपाय ज्ञान ही है। तप, ज्ञान, तीर्थ आदि उपाय नहीं।

दुरूत्तरा या विपदो दुःख कल्लोल संकुलाः।
तीर्यते प्रज्ञया ताभ्योनानाऽपद्धयो महामते।।
(योगवशिष्ठ ५/१२/२०)

विभिन्न प्रकार की कठिन विपत्तियों के समुद्र को ज्ञान द्वारा ही तरा जाता है।

कलना सर्व जन्तूनां विज्ञानेन शमेन च।
प्रबुद्धा ब्रह्म तामेति भ्रमतीतरथा जगत्।।
(योगवशिष्ठ ५/१३/५६)

ज्ञान और शम के द्वारा ही प्राणी ब्रह्म रूप हो जाता है। इनके अभाव में वह संसार में भटकता ही रहता है।

ज्ञान के समान इस संसार में श्रेष्ठ वस्तु कोई नहीं। ज्ञान से ही जीव की सारी गुत्थियाँ सुलझती हैं और उसके अभाव में नाना प्रकार के शोक संतप्त सहने पड़ते हैं। ज्ञान की प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये। स्वाध्याय एवं सत्संग के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

ज्ञानेनतु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः,
तेषामादि यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्,
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाति गच्छति।
(गीता)

जिसने अपने ज्ञान से अज्ञान का नाश कर लिया है उसका ज्ञान सूर्य के समान चमकता है और परम तत्त्व को प्रकाशित कर देता है। ज्ञान प्राप्त होने पर तुरन्त ही परम शान्ति प्राप्त होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राज्ञं विज्ञात विज्ञेयं सम्यग् दर्शनमाधयः।
न दहन्ति वनं वर्षा सिक्तमग्नि शिखा इव।।
(योगवशिष्ठ)

जिसने जानने योग्य को जान लिया है और विवेक दृष्टि प्राप्त कर ली है उस ज्ञानी को मानसिक दुःख उसी प्रकार नहीं सताते जैसे वर्षा के भीगे जंगल को अग्नि नहीं जलाती।

आधयो व्याधयश्चैव द्वय दुःखस्य कारणम्।
तन्निवृत्तिः सुखं विद्यात् त्तक्षयो मोक्ष उच्यते।
(योगवशिष्ठ ६/८७/१२)

शारीरिक और मानसिक यह दो ही प्रकार के दुःख इस संसार में हैं। इनकी निवृत्ति ज्ञान द्वारा होती है। इस दुःख निवृत्ति का नाम ही मोक्ष है।

एकः शत्रुर्न द्वितोयोऽस्ति शत्रुरज्ञानतुल्यः पुरुषस्यराजन्।
येनावृतः कुरुते सप्रयुक्तो धोराणि कर्माणि सुदारुणानि।
(महा० शान्ति०)

इस संसार में मनुष्य का एक ही शत्रु है—अज्ञान ? इसके अतिरिक्त उसका और कोई शत्रु नहीं है। इस अज्ञान के कारण ही मनुष्य दारुण कर्म करने लगता है।

पाताले भूतले स्वर्गे सुखमैश्र्यमें व।
न त्तपश्यामि यन्न म पाण्डित्यादतिरिच्यते।।
(स्कन्द पुराण (६/१४३/३)

पाताल, भूतल और स्वर्ग में वह सुख कहीं भी नहीं दिखाई देता जो ज्ञानवान् होने पर प्राप्त होता है।

प्रज्ञा प्रासाद मारूह्य शोच्यः शोचतो जनान्।
तमिष्ठानिव शैलस्थः, सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

प्रज्ञा प्राप्त विवेकवान् योगी संसार में शोकग्रस्त मानवों को ऐसे देखता है जैसे पहाड़ की चोटी पर खड़ा मनुष्य पृथ्वी पर नीचे खड़े हुये मनुष्यों को देखता है।

बीजान्यग्न्युप दग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः।
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्वात्मना सम्पद्यते पुनः।।

जिस प्रकार आग में भुने हुये बीज फिर नहीं उगते वैसे ही विवेक रूप अग्नि से जले हुए क्लेश फिर उत्पन्न नहीं होते।

विशोक आनन्दमयी विपश्चित,
स्वयं कुतश्चितन्न विभेति कश्चित्।

विज्ञ व्यक्ति शोकरहित होकर आनन्दपूर्वक रहते हैं। वे किसी से भी नहीं डरते।

विचारात् ज्ञायते तत्त्व तत्त्वाद्विश्रान्तिरात्मनि
(योगवशिष्ठ २/१४/५३)

विचार से तत्त्व दर्शन होता है और उससे आत्म—शान्ति उपलब्ध होती है।

देह दुःख विदुर्व्याधिमाध्याख्यं मानसामयम्।
मौर्ख्य मूले हिते विद्यातत्त्व ज्ञानेरक्षयः।।
(योगवशिष्ठ ६/८१/१४)

शारीरिक दुःखों को व्याधि और मानसिक दुःखों को आधि कहते हैं। यह दोनों मूर्खता से उत्पन्न होती हैं और ज्ञान से नष्ट हो जाती है।

ज्ञान की उपासना कीजिये

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है—इसकी बुद्धि—निष्ठा ज्ञान के प्रति आग्रह। अन्ध—श्रद्धा, अन्ध मान्यता के लिये हमारे यहाँ कोई स्थान नहीं है। भारतीय संस्कृति के आदि आविष्कर्ताओं ने प्रारम्भ से ही किसी एक प्रमाण तथ्य को महत्त्व न देकर बुद्धि को ही धर्म संस्कृति का निर्णायक बनाया विवेक एवं ज्ञान भारतीय संस्कृति की आत्मा है। इसका इतना बड़ा महल अद्धबुद्ध के ऊपर ही खड़ा है। बौद्धिक आधारशिला पर ज्ञान का सर्वांगीण विकास और उसका शोध हमारी अपनी एक विशेषता रही है। इस विशेषता को दूर कर दो, भारतीय संस्कृति का कोई अस्तित्त्व ही नहीं रहेगा।

हमारे यहाँ जिसने भी कोई नई शोध की उसे पूज्य माना गया है। ऋषि का पद प्रदान कर उसे समाज में सर्वोपरि महत्त्व दिया, फिर चाहे उसका दर्शन पूर्व खोजों से भिन्न ही क्यो न रहा हो, जहां अनन्त अंशों में नई खोज करने वालों को जिन्दा जला दिया गया, अनेक कष्ट दिए गए, मर्मान्तक पीड़ाओं से प्राण लिये, वहाँ हमारे यहाँ प्रत्येक नवीन तथ्य के प्रतिपादन की, जीवन जगत् के सूक्ष्म या स्थूल क्षेत्रों में नई खोज करने वालों की पूजा की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गई। यह हमारी बुद्धि–निष्ठा और ज्ञान के प्रति रचनात्मक प्रेम का परिचायक है। यही कारण है कि हमारे धर्म–ग्रन्थ, ऋषि–सन्त, समाज के मार्ग–दर्शक एक नहीं अनेक हैं और विशेषता यह है कि प्रत्येक के दर्शन का दृष्टिकोण एक–दूसरे से भिन्न है, फिर भी वे सबके सब भारतीय धर्म संस्कृति के हैं। ज्ञान की इतनी विस्तृत शोध, बुद्धि की निरन्तर साधना और कहीं भी देखने को नहीं मिलती। संसार में सबसे अधिक अवतार (युग पुरुष) दार्शनिक, ऋषि–मुनि, सन्त–महात्माओं की उपज हमारी इस स्वतन्त्र बुद्धि–निष्ठा और ज्ञान के प्रति स्वतन्त्र चिन्तन का ही परिणाम है।

गायत्री को गुरुमन्त्र माना गया है। उसे वेद–माता कहा गया है और गायत्री उपासना प्रत्येक हिन्दू के लिए आवश्यक धर्म कर्तव्य बताया है। क्यों ? किस लिये ? यह गायत्री की मूल भावना से अपने आप स्पष्ट हो जाता है जिसमें उस शक्तिशाली, तेजस्वी, सर्वव्यापी दिव्य तत्त्व का ध्यान करके, उससे बुद्धि की निर्मलता, शुद्धि पवित्रता की प्रार्थना की गई है। स्पष्ट है कि गायत्री ज्ञान का, बुद्धि का, शोध अभिवृद्धि का साधना मन्त्र है। नित्य–प्रति प्रत्येक द्विजाति दिन में कम से कम तीन समय परमात्म-तत्त्व का ध्यान करते हुये उससे 'सद्बुद्धि' की, विवेक की प्रार्थना करता है।

वेद का अर्थ है– ज्ञान और ज्ञान बुद्धि की साधना का परिणाम है। इसलिये गायत्री को वेद माता कहा गया है। भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के मूल स्रोत आधार वेद अर्थात् ज्ञान है और ज्ञान बुद्धि की देन है। अस्तु हमारी समस्त जीवन पद्धति का संचालन बुद्धि के द्वारा होता आया है। कौटिल्य ने कहा है "जिस मनुष्य की बुद्धि का विकास नहीं होता अथवा जो बुद्धि द्रोही या अविवेकी होता है वह मनुष्यता से गिर जाता है।" शास्त्रकार ने बुद्धि को सर्वोपरि बल बतलाया है। "बुद्धिर्यस्य बल तस्य मन्तिबुद्धे स्तुकुतो बलम्।" जिसमें बुद्धि है उसी में बल है, बुद्धिहीन के पास बल कहाँ ?

पितामह भीष्म से पूछा गया – "कोऽयं धर्मः कुतो धर्मः। " यह धर्म कौन है, कहाँ से आता है। पितामह न कहा–मिसलत्तम" विचारशील व्यक्ति चिन्तन, मनन, अध्ययन करके धर्म का निर्माण करते हैं तात्पर्य है कि हमारा धर्म हमारी संस्कृति विचार प्रधान है, बुद्धि प्रधान है, वेद प्रधान है, अर्थात् ज्ञान के द्वारा प्रेरित है। वह किसी प्रकार के आग्रह को लेकर नहीं चलती।

हमारे शास्त्रकारों ने, धर्म संस्थापकों ने, ज्ञान देने वालों ने भी अपनी बात को ही सत्य बता कर उसके बिना कुछ कहे सुने मान लेने की बात कहीं नहीं कही है। उन्होनें अपनी ही बात पर जोर नहीं दिया है – 'बुद्धिफेलमनाग्रह" दुराग्रह न करना ही बुद्धिमता का चिह्न है। वे कहते हैं "मनःपूतं समाचरेत्" तुम्हारे मन को जो अच्छा लगे वही करो। अपनी बुद्धि के कपाट बन्द मत करो, अपने ज्ञान के प्रकाश को धूमिल न होने दो। गीता का लम्बा-चौड़ा उपदेश देने पर भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन की स्वतन्त्र बुद्धि का अपहरण नहीं किया उन्होंने कहा अर्जुन– "यथेच्छसि तथा कुरु" जो तुझे अच्छा लगे वही कर।"

सच पूछो तो आत्मा को कुछ करने की आवश्यकता भी नहीं है। वह स्वयं पूर्ण है। आत्मा की गति स्वतः ही उर्ध्वगामी है, परन्तु जिस तरह किसी वस्तु के साथ कोई भारी वजन बाँध दिया जाता है, तो वह नीचे खिंचती चली जाती है, उसी तरह "मैं यह शरीर हूँ " के अज्ञान का बोझा आत्मा को नीचे खींच ले जाता है। अतः यदि हम किसी भी उपाय से देह और आत्मा को पृथक कर सकें तो हमारी प्रगति हो सकती है। यह काम भले ही कठिन हो, पर इसका फल भी महान है। आत्मा के पाँव की यह देह रूपी बेड़ी यदि हम काट सकें, तो हम बड़े आनन्द का अनुभव करेंगे। फिर मनुष्य देह के दुख से दुखी न होगा। वह स्वतन्त्र हो जायगा। यदि इस देह रूपी वस्तु को मनुष्य जीत ले, तो फिर संसार में कौन उस पर सत्ता चला सकता है ? जो अपने आप पर राज्य करता है, वह विश्व का सम्राट हो जाता है अतः आत्मा पर देह की जो सत्ता हो गई है, उसे हटा दो। देह में ये जो सुख-दुःख हैं, सब विदेशी हैं। सब विजातीय हैं। आत्मा से उनका तिल मात्र भी सम्बन्ध नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन सब दुःख-द्वन्द्वों को किसी अंश तक देह से अलग किया जाय इसे प्रभु ईसा के उदाहरण से समझिये। उन्होंने दिखा दिया है कि देह टूट रही हो, फिर भी मन को शान्त और आनन्दमय रखा जा सकता है, परन्तु इस तरह देह को आत्मा से अलग रखना जहाँ एक ओर निग्रह का काम है वहीं दूसरी ओर विवेक का भी काम हैं। जिस नौका को खेने का काम बल्लियाँ और पतवार दोनों ही करती हैं उसी तरह देह के सुख-दुःखों से आत्मा को अलग रखने के लिये विवेक और निग्रह दोनों की आवश्यकता है।

स्वाध्याय से हमें सत्यासत्य का विवेक होता है, उस समय देह और आत्मा की विषमता समाप्त होकर जीवन का चरमलक्ष्य आनन्द सहज रूप से प्राप्त हो जाता है। स्वाध्याय ज्ञानार्जन का वह सुलभ साधन है जिससे व्यक्ति अपना आत्म-कल्याण कर सकता है।

श्रेष्ठतम विभूति-ज्ञान

सच्चा ज्ञान वह है जो हमें हमारे गुण, कर्म, स्वभाव की त्रुटियाँ सुधारने, अच्छाइयां बढ़ाने एवम् आत्म-निर्माण की प्रेरणा प्रस्तुत करता है। यह सच्चा ज्ञान ही हमारे स्वाध्याय और सत्संग का चिन्तन और मनन का विषय होना चाहिये। कहते हैं कि संजीवनी बूटी का सेवन करने से मृतक व्यक्ति जीवित हो जाते हैं। हनुमान द्वारा पर्वत समेत यह बूटी लक्ष्मण जी की मूर्छा जगाने के लिये काम में लाई गई थी। वह बूटी औषधि के रूप में तो मिलती नहीं है पर सूक्ष्म रूप में अभी भी मौजूद है। आत्म-निर्माण की विद्यासंजीवनी विद्या कही जाती है। इससे मूर्छित पड़ा हुआ मृतक तुल्य अन्तकरणः पुनः जागृत हो जाता है और प्रगति में बाधक अपनी आदत को, विचारशृंखलाओं को सुव्यवस्थित बनाने में लगाकर अपने आपका कायाकल्प ही कर लेता है। सुधरी विचारधारा का मनुष्य ही देवता कहलाता है। कहते हैं देवता स्वर्ग में रहते हैं। देव वृत्तियों वाले मनुष्य जहाँ कहीं भी रहते हैं वहाँ स्वर्ग जैसी परिस्थितियाँ अपने आप बन जाती हैं। अपने सुधरने से चारों ओर बिखरी हुई परिस्थितियाँ उसी प्रकार सुधर जाती हैं जैसे दीपक के जलते ही चारों ओर फैला हुआ अन्धेरा प्रकाश में बदल जाता है।

स्वाध्याय और सत्संग विषय प्राचीनकाल में आत्म–विश्लेषण और आत्म–निर्माण ही हुआ करता था। गुरुजन इसी विषय की शिक्षा दिया करते थे। उच्च शिक्षा वस्तुतः यही है। कला–कौशल की अर्थभरी जो विद्या स्कूल कालेजों में पढ़ाई जाती है वह हमारी जानकारी और कार्य कुशलता को तो बढ़ा सकती है पर आदतों और दृष्टिकोण को सुधारने की उसमें कोई विशेष व्यवस्था नहीं है। इसी प्रकार कथा वार्ता के आधार पर होने वाले सत्संग प्राचीनकाल में किन्हीं देवताओं या अवतारों के चरित्र सुनने या ब्रह्मप्राप्ति, स्वर्ग मुक्ति जैसी दार्शनिक बातों पर तो कुछ चर्चा करते हैं पर यह नहीं बताते कि हम अपने व्यक्तित्व का विकास कैसे करें ? आत्म–निर्माण का विषय इतना महत्त्वहीन नहीं है कि उसे विधिवत जानने–समझने के लिये कहीं कोई स्थान न मिले। ज्ञान की प्रशंसा तो लोग करते हैं, उसकी आवश्यकता भी अनुभव करते हैं पर आत्म–ज्ञान उपयोगी विषय की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। आत्म–विद्या और आत्म–ज्ञान का आरम्भ अपनी छोटी–छोटी आदतों के बारे में जानने और छोटी–छोटी बातों को सुधारने से ही हो सकता है। सोना, जागना, बोलना, बात करना, सोचना, समझना, खाना पीना, चलना–फिरना भी सही ढंग से नहीं आता वह आत्मा और परमात्मा की अत्यन्त ऊँची शिक्षा को व्यावहारिक जीवन में ढाल सकेगा इसमें पूरा–पूरा संदेह है। आत्म–ज्ञान का आरम्भ अपनी आन्तरिक स्थिति को जानने और छोटी आदतों के द्वारा उत्पन्न हो सकने वाले बड़े–बड़े परिणामों को समझने से किया जाना चाहिये। आत्म–विद्या का तात्पर्य है अपने आपको, अपने व्यक्तित्व और दृष्टिकोण को उपयुक्त ढांचे में ढालने की कुशलता मोटर–विद्या में कुशल वहीं कहा जायगा जो मोटर चलाना और उसे सुधारना जानता है। आत्म–विद्या का ज्ञाता वही है जो आत्म–संयम और आत्म–निर्माण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर क्रियात्मक रूप से निष्णात हो चुका है। वेदान्त और दर्शनशास्त्र को घोंटते रहने वाले या उन लम्बे–चौड़े प्रवचन करने वाले आचरण रहित वक्ता को नहीं, आत्मज्ञानी उस व्यक्ति की कहा जायगा जो अपने मन की दुर्बलता से सतर्क रहता है और अपने आपको ठीक दिशा में ढालने के लिये निरन्तर प्रयत्न शील रहता है, चाहे वह अशिक्षित ही क्यों न हो।

आत्म-ज्ञान सबसे बड़ा ज्ञान

छान्दोग्य उपनिषद् में एक कथा आती है। एक बार इन्द्र और विरोचन– दो व्यक्तियों में एक जिज्ञासा पैदा हुई "मैं क्या हूँ।" वे बार–बार सोचते–विचारते लेकिन उन्हें "मैं" का पता नहीं लगा। आखिर दोनों मिलकर आदर–पूर्वक शिष्य भाव से हाथ में समिधायें लेकर आचार्य प्रजापति के पास गये और नम्रतापूर्वक उनसे अपनी जिज्ञासा प्रकट की। उनके प्रश्न का जवाब देते इसके पूर्व ही प्रजापति ने उसकी योग्यता, पात्रता को जानने के लिए एक युक्ति निकाली। उन्होंने कहा " थाली में पानी भरकर अपना–अपना मुँह देखो, उसमें तुम्हें अपना स्वरूप दिखायी देगा।

इन्द्र और विरोचन दोनों झट से सजधज कर पानी की थाली में अपने को देखने लगे। विरोचन को अपना सजा सवाँरा रूप देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई और अपने साथियों में जाकर अभिमान से कहने लगा–भाई मैंने तो "मैं" का पता लगा लिया है। इन्द्र कुछ बुद्धिमान् था उसे सन्तोष नहीं हुआ और वह आचार्य प्रजापति के पास जाकर कहने लगा–"भगवान् असंस्कृत शरीर की प्रतिच्छाया ही प्रतिबिम्ब में दिखायी देती है। यदि यह शरीर काना, लूला, लंगड़ा होता तो प्रतिच्छाया भी वैसी ही दिखायी देती, वस्त्र–अलंकारों को उतार देने पर प्रतिबिम्ब का सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है और शरीर के नष्ट हो जाने पर यह भी नहीं रहता। इसलिये इसे अपना स्वरूप कैसे मानूँ। मुझे इससे शान्ति नहीं मिलती।"

(छान्दोग्य ८/६/२)

फट जाने वाले, नष्ट हो जाने वाले वस्त्राभूषणों से युक्त प्रतिबिम्ब को 'मैं' का स्वरूप जान लेने से हमारी जिज्ञासा शान्त नहीं होती क्योंकि उन्हें धारण करके हम अच्छे लगते हैं और उतार फेंकने पर कुरुप। इस तरह स्पष्ट है कि वस्त्र आभूषण "मैं" का परिचय नहीं हो सकते। अपना वस्त्र फट जाने पर यह भास नहीं होता है कि मैं फट गया। वस्त्राभूषण उतार देने या पहने रहने पर "मैं" का अस्तित्त्व बना ही रहता है।

ठीक यही स्थिति शरीर के साथ भी है। वस्त्रों की तरह हमारा शरीर नित्य ही किसी न किसी रूप में नष्ट होता रहता है। मल शरीर से निकलने वाले दूषित तत्त्व क्या हैं ? नष्ट हुये शरीर का अवशेष। रसायन शास्त्रियों, वैज्ञानिकों के प्रयोग से यह सिद्ध हो चुका है कि शरीर में नित्य असंख्यों कोष नष्ट होते हैं असंख्यों ही नये पैदा हो जाते हैं इस तरह शरीर की दृष्टि से तो हम नित्य ही मरते हैं। और नित्य ही जन्म लेते हैं। लेकिन "मैं" के अस्तित्त्व में कोई परिवर्तन नहीं होता।

"मैं" की खोज में हम आगे बढ़ें इससे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि आखिर "मैं" को जान लेने की आवश्यकता क्यों है ? बहुत से लोग तो इस सम्बन्ध में कुछ सोचते-विचारते ही नहीं। ऐसे लोगों को खाने-पीने, मौज-मजे उड़ाने से फुर्सत नहीं मिलती लेकिन इस तरह की प्रवृत्ति पशुत्व का द्योतक है।

कुछ बुद्धिमान् कहे जाने वाले लोग इस महा-प्रश्न में बेकार न लगकर अपना काम करना ही अधिक अच्छा समझते हैं। वे इस जटिल प्रश्न को सुलझाने में व्यर्थ श्रम करना अच्छा नहीं समझते। लेकिन हमें क्या करना चाहिए यह निश्चय करना इससे भी कठिन है। और बिना निश्चय के किये गये कार्य अन्तः मनुष्य के लिए अशान्ति, असन्तोष के कारण ही बनते हैं। कर्तव्य का निश्चय भी तभी हो सकता है जब हम अपने असली अस्तिव की जानकारी कर सकें। यदि हम शरीर ही हैं तो फिर हमारे कर्तव्यों की सीमा भी शरीर तक ही सीमित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहेगी। किसी भी कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय हमें वहीं तक करना होगा जितना इसी जीवन से सम्बन्धित है।

तात्पर्य यह है कि अपने जाने बिना जीवन-पथ पर, कर्तव्य-मार्ग पर हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। इसके अभाव में तो हमारी स्थिति ठीक वैसी होगी जैसे कोई मनुष्य आँखें बन्द किये जंगल में तेजी से दौड़ रहा हो। उससे पूछा जाय, 'भाई तुम क्यों दौड़ रहे हो, तुम्हें कहाँ जाना है, कहाँ से आये हो ?' और इनका उत्तर वह अपनी जानकारी में दे तो हम उसे पागल ही कहेंगे। क्या हमारी स्थिति भी अपने स्वरूप को जाने बिना कुछ ऐसी ही नहीं है इसलिये "मैं" के स्वरूप की जानकारी करना इस सम्बन्ध में प्रारम्भिक आधार खोजकर आगे बढ़ना नितान्त आवश्यक है। इसके बिना हम अपने जीवन की सही-सही रूपरेखा न बना सकेंगे न अपने कर्तव्यों का, अपनी गति की दिशा का, सही-सही निर्धारण कर सकेंगे।

सचमुच जीवन का वास्तविक लाभ वे ही उठा पाते हैं जो पहले अपने आपको जानने का प्रयत्न करते हैं। अपने को न जानने वाले व्यक्ति तो उन आधारहीन वस्तुओं की तरह हैं जिन्हें वायु का झोंका किधर भी बहा कर ले जा सकता है। ऐसे लोगों को संसार-प्रवाह में बलात् बहते रहना पड़ता है।

कर्मयोग की रीति-नीति

अनासक्त जीवन में सुख-शान्ति

मनुष्य का जीवन एक वाटिका है। वाटिका को अच्छी स्थिति में रखने के लिये उस पर चारों ओर की दृष्टि रखनी पड़ती है। किस पौधे को पानी देना है, कहाँ निकाई की जाय, कौन-सी मेंड़ टूट रही है, कौन–सा पौधा फूलने लगा आदि इन सब बातों का ध्यान रखने वाला ही कुशल माली कहा जाता है। उसी का बाग भी सुन्दर सुरभित और हरा-भरा रहता है। पौधे खूब फूलते-फलते हैं, आस-पास का वातावरण भी सुवास से भरा रहता है। माली को भी प्रसन्नता होती है और मालिक को भी। पास से आने-जाने वालों को भी उतनी ही प्रसन्नता होती है। पूर्ण विकसित, पुष्पित, पल्लवित और सुरभित वाटिका से सभी को प्रेरणा और प्रसन्नता मिलती है।

इतने प्रबन्ध न जुटाकर माली यदि किसी आकर्षक फूल की डाली के पास ही बैठा रहे या केवल फल ही ढूंढता रहे तो सारी वाटिका अव्यवस्थित हो जायगी, पौधे मुरझा जायेंगे, सूख जायेंगे। न हरियाली रहेगी न सुवास। पतझर की तरह सारा वातावरण शुष्क, निष्प्राण और नीरस लगेगा। वहाँ कुछ भी आनन्द दिखाई नहीं देगा।

मनुष्य का जीवन भी ठीक इसी तरह का है। उसमें अनेक तरह की व्यवस्थायें मनुष्य को करनी पड़ती हैं। परिवार के लिये अन्न वस्त्र आदि की व्यवस्था, बच्चों की पढ़ाई, रोजगार, बीमारियों के चक्कर, शादी-विवाह, मेल-मिलाप आदि तरह-तरह के कर्म उसे करने होते हैं। जहाँ पर जीवन के सम्पूर्ण विधान में ऐसी व्यवस्था होगी, वहा जरूर सुख-शांति और सन्तोष की परिस्थितियाँ होंगी। प्रत्येक कार्य को चतुराई के साथ पूरा करने से ही यह व्यवस्था ठीक रह सकती है। इनमें से कोई कर्म ऐसा नहीं जो छोड़ दिया जाय। समय और परिस्थिति के अनुसार सभी पूरे करने पड़ते हैं। यदि किसी ओर ध्यान न दिया जाए तो उधर ही अव्यवस्था फैलेगी, गड़बड़ी उत्पन्न होगी। दिन भर काम खूब करें, पर आहार की व्यवस्था न रहे तो काम न चलेगा। धन खूब कमाया जाय, पर बच्चे सुशिक्षित न हों तो पारिवारिक व्यवस्था ठीक न जमेंगी। रोगी को दवा का प्रबन्ध, रहने को मकान, खेती के लिये हल बैल आदि अनेक, उपकरण, पहनने के लिए कपड़े, यात्रा के लिये सवारी प्रत्येक वस्तु का यथास्थान उपयोग है । कोई भी वस्तु उपेक्षणीय नहीं। समय के अनुसार आवश्यकताओं की मांग बदलती रहती है। उन्हें उसी क्रम से पूरा भी किया जाना चाहिये तभी जीवन में ठीक व्यवस्था रह सकती है।

व्यवस्था को चौपट करने वाली स्थिति का नाम है, आसक्ति। किसी खास तरह के सुख या इच्छा पूर्ति के लिए अपने आपको एक स्थान पर रोक देना ही आसक्ति कहलाती है। सुख की इच्छा से बंध जाना आसक्ति है। जो वस्तु प्रिय लगे, आकर्षक लगे, उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

साथ गठ-बन्धन बाँध कर लिप्त रहना ही उसका प्रधान लक्षण है। दुराव, अव्यवस्था और असन्तोष का कारण यह आसक्ति ही है।

यदि शरीर का कोई भी अंग अपने नियत कार्य करने में प्रमाद करें तो उसका फल सारे शरीर को भुगतना पड़ता है और शारीरिक मशीन के चलने में बाधा आ जाती है। जैसे हाथ यदि भोजन को ग्रहण करके बैठा रहे, उसे मुँह तक न पहुँचावे तो शरीर की दुर्बलता के साथ ही हाथ भी दुर्बल पड़ जायगा। मुँह भोजन का पूरा स्वाद तो ले, पर उसे पेट में न पहुँचावे तो भी यही दशा होगी। पेट उस खाये हुये अन्न को अपने में ही रखे रहे, उसका रक्त बनाकर शरीर को न दे और मल विसर्जन की क्रिया का परित्याग कर दे तो सारा शरीर रोगग्रस्त हो जाएगा। प्रत्येक कार्य को नियत समय, क्रम और आवश्यकता के अनुसार उचित परिमाण में करते रहना ही कर्मयोग या अनासक्ति कहा जा सकता है। मनुष्य जीवन की सारी सुन्दरता इसी बात पर निर्भर है कि वाटिका की तरह उसके प्रत्येक अंग प्रत्येक विभाग की समुचित देख-रेख होती रहे। चित्त-वृत्तियाँ तथा इच्छायें एक ही स्थान पर केन्द्रित न होने पावें अन्यथा गड़बड़ी फैलने की आशंका बनी रहेगी।

अतः यह आवश्यक हो जाता है कि अपनी इच्छाओं की, भोगों की कल्पना को कम करें, पर यह तभी हो सकता है जब यज्ञीय जीवन की महत्ता का भान हो। संतोषी जीवन, स्वल्प-निर्वाह और निर्लेप आचरण से ही ऐसी सुविधा उत्पन्न हो सकती है। मन शुभकामनाओं में लगा रहे, बुद्धि के पीछे तक जुड़ा हुआ हो, हाथ में जो काम लें उसमें तन्मय हो जायें, पर जैसे ही वह काम पूरा हो जाये, उसे इस तरह भूल जायें, जैसे हमसे उस काम का कोई सम्बन्ध ही न रहा हो। मनुष्य के सामने जो भी कर्तव्य आये उन्हें निष्काम भावना से पूरा करता रहे।

भारतीय परम्परा सदैव ऐसी ही रही है। यहाँ सदैव प्रवृत्ति में ही निवृत्ति के दर्शन हुए हैं। बलि, दधीचि, कर्ण, हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव आदि महापुरुषों के उदाहरण मौजूद हैं, जिनसे जीवन को यज्ञमय बनाकर उदारतापूर्वक जीने, खिलाड़ियों की तरह खेलने की ही प्रेरणा मिलती है। शरीर-सुख और सांसारिक भोग सामयिक हैं। अतः उनमें आसक्त होकर अजर-अमर जीवन को कष्टमय बना लेना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। यह बहुत बड़ा अनुसन्धान है, दर्शन है जिसे ऋषियों ने दीर्घकालीन तप के बाद निर्धारित किया है। वर्णाश्रम का मूल मन्त्र भी अनासक्ति ही है। लोक-धर्म की मर्यादा के लिये सन्तान उत्पन्न की जाती थी। इससे कुल और संसार चलने की बात कही जा सकती है। आज की तरह पुत्र न होना कोई दुर्भाग्य नहीं समझा जाता था।

मातायें अपने बच्चों को छोटी अवस्था में ही गुरुकुलों में भेज देती थीं और देश सेवा में गृह-कार्यों में लग जाती थीं। प्राकृतिक जीवन में रह कर वह बालक शरीर,मन और बुद्धि-विवेक से पूर्ण परिपक्व होकर निकलते थे। रूप, गुण, यौवन तथा बल सम्पन्न होकर गृहस्थ में प्रवेश करते थे तो एक सफल नाविक की भाँति गृहस्थी की नाव को ठीक तरह से संचालित करते थे। जब उनके बालक इस योग्य हो जाते थे कि आश्रितों का पालन-पोषण भली-भाँति कर सकें, तो धीरे-धीरे उन्हें पारिवारिक उत्तदायित्व सौंप कर वानप्रस्थ आश्रम के लिए उद्यत हो जाते थे। तीर्थाटन आदि करते हुए मुक्त प्रकृति का ज्ञान लाभ प्राप्त करते थे और अन्तिम अवस्था में घर परिवार आदि का बिल्कुल मोह त्याग कर केवल ब्रह्मानुभूति में तल्लीन होकर इस मनुष्य जीवन को सार्थक बना जाते थे। जब तक यह व्यवस्था हमारे राष्ट्र में रही तब तक इस देश में किसी तरह के दुःख-दारिद्रय तथा अभाव भी नहीं रहे।

दुःख को दूर करने के लिये अनासक्ति ही सर्वोत्तम उपाय है। आसक्ति सभी प्रकार के दुःखों की जननी है। मोह के कारण ही सम्बन्धियों से बिछुड़ने पर वियोग जनित दुःख का अनुभव होता है। अतः मोह को नष्ट कर दीजिये। देहाभिमान के कारण ही थोड़ा–सा सम्मान न मिलने या अपमान हो जाने से असह्य दुःख प्राप्त होता है। अतः देहाभिमान का नाश करना चाहिये। जो लोग संसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उसके सुखोपभोग के साधनों की आशा लगाये बैठे हैं, उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि यह तन्मात्रायें केवल तब तक हैं, जब तक शरीर जीवित है। प्राण निकलते ही इनका कुछ भी मूल्य न रह जायगा। केवल मन में बसा हुआ मोह, ममत्व और राग ही शेष रह जायगा। इसी के कारण लोग जन्म मरण के भव–बन्धन में बंधे हुए सांसारिक कष्ट भोगते रहते हैं।

मनुष्य आनन्द की खोज में है। आनन्द में ही उसे तृप्ति मिलती है। यह आनन्द मिलता उन्हीं को है जिन्होंने सुख और दुःख की वास्तविकता को समझ लिया है। अर्थात् जिन्होंने संसार और उसके प्रपंच, आत्मा और उसके स्वरूप को जान लिया है। यह स्थिति बन जाने पर वह मोहग्रसित नहीं होता, दमन करना ही उसका ध्येय बन जाता है। इस तरह के कर्तव्य पालन में ही सर्वांगीण व्यवस्था रहती है और व्यवस्था रहते हुए दुःख का कोई नाम नहीं रहता। कर्मयोग का लक्ष्य वही रहता है कि मनुष्य कर्म को पाकर कर्तापन का अभिमान न करें। इसमें सांसारिक सुख भी है और पारलौकिक हित भी। अनासक्त जीवन ही शुद्ध और सच्चा जीवन है।

काम में लगन भी हो और भावना भी

मनुष्य की आन्तरिक अभिव्यक्ति उसके काम करने की लगन और भावना से ही परखी जा सकती है। कर्म का सुख वस्तुतः उसकी लगन, भावना और निष्ठा में ही है। इस तरह सम्पन्न किये गये कर्म प्रफुल्लता दे जाते हैं किन्तु अनुत्साहपूर्वक काम करने से निराशा, क्षोभ और असफलता ही हाथ लगती है।

काम करने की एक भावना होनी चाहिये उत्कट और विशाल भावना। आपका आत्म-विश्वास यह कहता हो कि हम इस कार्य को करके ही छोड़ेंगे, इसमें आत्महित है और पुरुषार्थ है तो आप सच मानिये उस कार्य में आपको असीम आनन्द आयेगा।

मनुष्य का जीवन, एक आदर्श कर्म-विद्यालय है। इसमें नैष्ठिक स्नातक वे समझे जाते हैं जो कर्म को जीवन ध्येय का मानकर उसे कुशलतापूर्वक निभाते हैं। विद्यार्थी अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने का लाभ तब पाता है जब वह लगनपूर्वक, भावनापूर्वक अध्ययन कार्यों में लगा रहता है। जिस तरह स्वाध्याय की चमक यह व्यक्त करती है कि विद्यार्थी का भविष्य उज्ज्वल है उसी प्रकार कर्म की उत्कट भावना यह बताती है कि इस मनुष्य का हृदय उत्कृष्ट और विशाल है। इन गुणों के कारण ही उसका व्यक्तिव निखरता, समुन्नत होता और श्रेय प्राप्त करता है।

जो शक्ति परिस्थितियों को अनुकूल बनाती है वह है काम करने की लगन और भावना। मानवीय गुणों में एक गुण यह भी है कि वह भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के साथ भी आश्चर्यजनक ढंग से अपना मेंल पैदा कर सकता है। मन की तन्मयता में वह शक्ति है जो एक ही लक्ष्य के हजार रास्ते खोलकर रख देती है। इनमें से कोई भी मनुष्य अपनी रुचि, शक्ति और सामर्थ्य के अनुरूप अपना चुनाव कर सकता है।

यह दुनियाँ वैसे ही बड़ी नीरस है। यहाँ का रहा-सहा आनन्द भी व्यवसाय की अरूचि में चला जाता है। बिना उद्देश्य और भावना से मशीन की तरह काम करने से इस जीवन के सारे आनन्द नष्ट हो जाते हैं। अतः आवश्यकता यह है कि मन और आत्म-विस्तार के लिये यह जीवन कलापूर्ण ढंग से जीने का अभ्यास डाला जाय। काम चाहे जैसा हो अपनी लगन के द्वारा उसमें सफलता की सम्भावनायें बढ़ाते हैं और भावनाओं के द्वारा इसमें सरसता उत्पन्न करते हैं बस यही सर्वोत्तम जीवन जीने का गुरु–मन्त्र है। इसे अपने जीवन में विकसित कर सकें, तो बस इस जीवन में सफलता ही सफलता और आनन्द ही आनन्द है। जिसने काम करने की ललित कला सीख ली उसे सुख प्राप्त करने के लिय अन्यत्र भटकने की क्या आवश्यकता है? कर्म ही मनुष्य जीवन का सच्चा सुख है। हमें भी इसी में अपने आपको घुलाकर इस जीवन का श्रेय प्राप्त करना ही चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कर्म कुशल होना ही योग है।

कर्मयोग में कुशलता प्राप्त करने का नाम योग है। अच्छी भावपूर्ण कविता लिख लेने वाले को कहते हैं कि वह एक कुशल कवि है। अच्छा मकान बना लेने वाला कुशल कारीगर, नाटक में सुड़ौल भाव भंगिमायें प्रदर्शित कर सके उसे कुशल कलाकार मानते हैं। किसी काम की दक्षता प्राप्त कर लेना ही उस कर्म की कुशलता हुई। आध्यात्मिक भाषा में इसे ही योग कहते हैं।

नट तरह-तरह की कलाबाजी दिखाता है, बांस पर चढ़ने, तार पर नाचने, उछलने-कूदने की क्रियाओं का सफल प्रदर्शन करता है। इन कार्यों में उससे राई रत्तीभर भी चूक नहीं होती है। जिस कार्य में कर्ता को पूर्ण दक्ष कहे जाने का यश मिले यह उसकी कुशलता हुई। काम न बिगड़े और सामान्य व्यक्तियों से उसमें कुछ अधिक सफलता दिखलाई दे तो कहेंगे इसे इस कार्य में कुशलता प्राप्त है। इसे यों भी कह सकते हैं कि वह अमुक कार्य का योगी है।

काम करते समय हमारी कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों मन या चित्त ये सब एक ही दिशा में क्रियाशील रहते हैं किसी दीवार की चूने से पुताई करनी हो तो एक हाथ से बाल्टी पकड़ते हैं, पैरों से सीढ़ी पर खड़े होकर दूसरे हाथ से पुताई करते हैं। भिन्न-भिन्न कार्य होते हुए भी हाथ, पांव, अँगुलियों आदि अवयवों का लक्ष्य एक ही था, पुताई करना। आँखें यह बताती जाती हैं कि अभी यह जगह छूट गई है, इतनी जगह बाकी है, यहाँ बाल्टी है, यहाँ चूना है। चित्त की दिशा भी उसी में थी कि चूना गाढ़ा है, ठीक है पानी कम तो नहीं, पुताई कितनी सुन्दर है इस तरह से चित्त वृत्तियाँ सजग थीं। क्रियात्मक, निरीक्षणात्मक और विश्लेषणात्मक तीनों प्रक्रियाओं के एक साथ चलते रहने के कारण दीवाल की सुन्दर पुताई सम्भव हो सकी। इनमें से एक विभाग भी काम करने से इनकार कर देता है तो काम में गड़बड़ हो जाती और उसका पूरा किया जाना सम्भव न होता।

इन्द्रियाँ कार्य को पूर्ण करने में स्वतः समर्थ नहीं होतीं। मन उनका संचालन और नियन्त्रण करता है इसलिए सफलता या असफलता का कारण उसे ही मानते हैं, सवार बैलगाड़ी को ले जा कर किसी खड्ड़े में ड़ाल दे तो दोष गाड़ी का नहीं क्योंकि उसे ज्ञान नहीं होता, वह स्वतः चालित नहीं होती। बैलों को भी दोष नहीं दे सकते, उन बेचारों का कसूर भी क्या था, जिधर नकेल घुमा दी उधर चल पड़े। "नाथ" पड़ी थी उनके नथुनों में, जिधर का इशारा मिलता था उधर ही चलते थे। दोष यदि हो सकता है तो वह सवार का है, क्योंकि गाड़ी चलाने की सम्पूर्ण जिम्मेंदारी उसी की थी। शरीर द्वारा किसी काम को सफल बनाने में मन का ही उत्तरदायित्व अधिक माना जाता है क्योंकि वह संचालक है। उसी से आज्ञा पाकर दूसरे अवयव कार्य पर जुटते हैं।

दोषयुक्त, कर्म या असफलता का कारण होता है, मन की विश्रृंखलित दशा। अस्त-व्यस्त, अनेकाग्र होकर काम करने से ही प्रायः गलत परिणाम निकलते हैं। जब भी काम अपूर्ण रहेगा तो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मन ही दोषी ठहराया जायगा। ज्ञान और अनुभव की कमी के कारण या दत्त-चित्त न होकर यों ही बिखरे-बिखरे रह कर काम करेंगे तो कार्य की यथोचित पूर्णता संदिग्ध ही रहेगी। कार्य का न होना, पूर्णतया चित्त की अस्थिरता और असावधानी के कारण ही होता है।

जिस काम को जानते ही न हो, उसमें भूल सम्भव है, उसे सीखना पड़ता है किन्तु सीखने के बाद भी काम की सारी जटिलतायें दूर हो जायेंगी ऐसा नहीं कहा जा सकता। इन कठिनाइयों का हल भी स्थिर चित्त और मन को पूर्ण एकाग्र करने से हो जाता है। भिन्न हल करने का नियम एक ही है विद्यार्थी जानते हैं कि पहले – "मोटी लकीर" फिर 'कोष्ठ' फिर 'का' "भाग" "गुणा" और तब "धन" तथा "ऋण" को हल करते हैं। 'भिन्न' हल करने का यह सामान्य नियम समस्त विद्यार्थी सीख लेते हैं किन्तु नियमों की तोड़-फोड़ करते समय एक विद्यार्थी गलती कर जाता है, दूसरा उसे नियमानुसार हल करता जाता है। एक विद्यार्थी का

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्तर सही होता है दूसरे विद्यार्थी का गलत। नियमों का ठीक–ठीक जिसने पालन किया सवाल उसी का सही था। अस्थिरता के कारण दूसरे ने सही ढ़ंग से काम नहीं किया, बीच की क्रियायें गलत कर दीं, फलस्वरूप सवाल गलत हो गया। यह सिद्धान्त जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है। जिस उद्देश्य को पूर्ण तन्मयता के साथ हल करते हैं वह जरूर सिद्ध होता है। बिना लगन, बिना तत्परता से काम करने की सही दिशा का निर्माण नहीं होता। एकाग्रता कार्य की सफलता के लिये सदैव अपेक्षित है, इसके बिना परिणाम प्रायः सही नहीं निकलते।

वस्तु के स्वरूप के विषय में मनुष्य अनजान हो सकता है किन्तु कर्म में असफलता का कारण मनुष्य की अस्थिरता को ही कहा जायगा। चित्त का तिरोधान करके पागलपन से जो काम किये जाते हैं उनमें असफलता मिले तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?

पातञ्जलि योग में आया है– **''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः''** अर्थात् चित्त की वृत्तियों को वश में रखना ही योग है। दूसरे शब्दों में इसे पूर्ण तन्मयता भी कह सकते हैं। हल ढूंढने में पूर्ण रूप से तन्मय हो जाना ही योग है। गीता में इसी भाग को इस तरह प्रस्तुत किया गया है **'योगः कर्मसु कौशलम्'** अर्थात् कर्म में कुशलता प्राप्त करना ही योग है। दोनों बातें एक सी हैं। चाहे कर्म की कुशलता को योग कहें या चित्त–वृत्तियों के निरोध को। चित्त–वृत्तियों के निरोध से, एकाग्रता से ही काम में पूर्ण सफलता प्राप्त होती है, इसलिए दोनों बातें एक जैसी ही हैं। भाव प्रत्येक अवस्था में यही है किसी भी विषय की सफलता के लिये चित्त की स्थिरता या पूर्ण तन्मयता होनी चाहिये।

भूल प्रायः अशान्त चित्त होने से ही होनी है एकाग्र चित्त होकर काम करने से वह अच्छे से अच्छे ढंग से होता है। भूल का पता भी तभी चलता है जब चित्त शान्त होता है। अशान्त मन से काम करने से संचालक की स्थिति ही कहीं अन्यत्र होती है इसलिये फल के विषय में जागरूक नहीं रहता। ऐसी दशा में बनते भी उल्टे सीधे परिणाम ही हैं। अन्यमनस्कता के कारण कोई काम ढंग से, शऊर से नहीं होते। सही स्थिति में किये गये कार्यों के सही परिणाम निकलते हैं।

सीखने और जानने के लिये भी सही तरीका यही है कि बताने पर सिखाने वाले को ध्यानपूर्वक सुनते हैं या नहीं। स्वाध्याय में जो केवल पढ़ जाने की क्रिया पूरी करता है उससे किसी तरह का मानसिक या शारीरिक विकास नहीं होता। कोई विद्यार्थी यह कहे कि उसने दो-दो बार सारी पुस्तकें पढ़ी हैं फिर किस तरह से उसे फेल कर दिया गया, तो यही समझना चाहिये कि उसने पढ़ा है, मनन नहीं किया। शब्द दुहराते चले जायें और आशय कुछ न निकालें तो उस अध्ययन का लाभ ही क्या होगा ? जो कुछ पढ़ें, उसे भली प्रकार मनन करें तो यह बात परिपक्व होकर ज्ञान का रूप धारण करती हैं, विचारों को तदनुरूप कार्यों में प्रसारित करें, 'स्वाध्याय' शब्द तब कहीं सार्थक होता है। अक्षरों को शब्द रूप दे देना ही काफी नहीं है। उनका अर्थ भी समझें तो आपका सीखना सही माना जायेगा।

बिना विश्राम के किया हुआ कर्म, अनिच्छापूर्वक तथा पाप की भावना से किये गये कृत्य कभी मनुष्य को सुखी नहीं रख सकते। व्यग्रता बढ़ाने वाले और कर्म भला किसी को सन्तोष दे पाये हैं ? शान्ति प्राप्त करने के लिए सत्कर्मों में कुशल होना अनिवार्य है।

भोगवाद मनुष्य के दुष्कर्मों को बढ़ावा देता है। ऐसी अविनयशीलता आज लोगों में प्रचुर मात्रा में आ गई है, इसलिये इस समाज को योग-भ्रष्ट समाज कहना ही उपयुक्त होगा। शरीर और मन की शक्तियाँ विशृंखलित होकर समाज में बुराइयाँ पैदा कर रही हैं । मनुष्यों के दुःखों का शतशः कारण यही है।

शान्ति पाने के लिए हमें अतीत को जागृत करना पड़ेगा। अतीत का अर्थ उन विचारणाओं से है जिनमें राष्ट्र की सद्वृत्तियां जागृत हों। लोगों का विवेक, ज्ञान और वैभव समृद्ध बने तो सच्चे योग के दर्शन दिखाई देने लगेंगे। चिर-शान्ति का आधार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मनुष्यों में सत्कर्मों के प्रति गहन आस्था है। इस विश्वास को जगायें तो हमारी वह कमियाँ दूर हो सकती हैं जिनमें आधुनिक जीवन में उदासीनता और निष्प्राणता छाई हुई है।

हम भी कर्म साधना क्यों न करें ?

कर्म साधना के लिए कोई विशेष कार्य ही होना चाहिए ऐसी बात नहीं, सभी तरह के कार्य, व्यवसाय, खेती, शिल्प, कला, नौकरी मजदूरी आदि अपने–अपने स्थान पर अपना महत्त्व रखते हैं। प्रत्येक अपने स्थान पर उतना ही उपयुक्त है जितना दूसरे छोटे काम को भी भली प्रकार करते हुए, मनुष्य जीवन में उत्कृष्टता प्राप्त कर सकता है। इसी तरह बड़े काम को ठीक-ठीक तरह न करके वह जीवन में असफल भी हो सकता है। काम के छोटे-बड़े होने का इतना अधिक महत्त्व नहीं है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है काम को करने का ढंग और उसमें सन्निहित भावना। एक व्यक्ति किसी अच्छे काम को भी लापरवाही एवं अपनी कमजोरियों से बिगाड़ कर जीवन में असफल हो सकता है तो दूसरा व्यक्ति अपने साधारण से काम को रुचिः लगन एवं तत्परता के साथ पूर्ण करके उसे जीवन की सफलता का आधार बना लेता है। अन्तर यही है कि पहला व्यक्ति कार्य को भार मानता है और दूसरा उसे साधना मानकर चलता है।

'बाटा' नाम का एक मोची का लड़का शहर की सड़कों पर बैठकर जूतों की मरम्मत पालिस आदि करता था। किन्तु अपने काम को भली प्रकार करते वह अपने जीवन काल में जूतों का सम्राट बन गया। आज भी बाटा कम्पनी जूतों के लिए प्रसिद्ध मानी जाती है। वाशिंगटन साधारण व्यक्ति से बढ़कर अमेरिका के राष्ट्रपति बन गये थे। वे प्रारम्भ में एक दीन–हीन किसान परिवार के सदस्य थे। कालिदास अपने ही प्रयत्नों के कारण महामूर्ख से प्रकाण्ड विद्वान बन गये। इस तरह इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनमें दीन–हीन सामान्य परिस्थितियों से उठकर अनेक व्यक्तियों ने महानता प्राप्त की। यह कोई जादू या करामात नहीं थी वरन् अपने सामने आये हुए काम के प्रति उनकी लगन, निष्ठा, परिश्रम, दिलचस्पी, जागरूकता एवं अन्य सद्गुणों का परिणाम था।

एक छोटे बच्चे एडीसन को उसकी मां वैज्ञानिक बनाने के विचार से एक बड़े वैज्ञानिक के पास ले गई और उनके पास अपने बच्चे को रखने की प्रार्थना की। उस वैज्ञानिक ने बच्चे को अपने पास रख लिया और मकान में झाड़ू लगाने का काम सौंपा। वह बालक बड़ी तन्मयता के साथ मकान में झाड़ू लगाता। मकान के कोने, दीवार, छतें, अलमारियाँ फर्श आदि को वह खूब साफ रखता। वैज्ञानिक, बालक की कार्य कुशलता से बड़ा प्रसन्न हुआ। उसमें उसने कर्मयोगी के लक्षण देखे तथा उसी आधार पर उसे विकसित होने का अवसर दिया और वही उस वैज्ञानिक की देख-रेख में आगे चलकर महान् वैज्ञानिक बना। यदि बालक पहले ही यह सोच लेता कि यहाँ तो झाड़ू लगाने का काम है यहाँ क्या सीखने को मिलेगा चलें ? तो शायद वह अपने जीवन की महानता को प्राप्त न कर पाता। अन्य साधारण व्यक्तियों की तरह ही अपना जीवन बिताता।

जब किसी काम को पूर्ण लगन और दिलचस्पी के साथ किया जाय तो मनुष्य की सोयी हुई शक्तियाँ जागृत हो उठती हैं। उनमें काम करने की क्षमता, शक्तियों का विकास हो जाता है और इसी से वह एक से दूसरे काम में सफलता प्राप्त करता चला जाता है। काम में मन का न जमना, शिकायतें करना ऐसी बातें है जिससे काम में रूचि नष्ट हो जाती है और फिर छोटा हो या बड़ा कोई भी काम पूरा नहीं हो पाता। मनुष्य को असफलताओं का सामना करना पड़ता है, इसी के साथ-साथ उसकी अकर्मण्यता भी बढ़ती जाती है।

प्रत्येक कार्य एक कला है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। प्रत्येक कार्य का मौलिक आधार समान है। जिस तरह एक कलाकार अपनी कला से प्रेम करता है उसमें तन्मयता के साथ खो जाता है, उसके प्रति दिलचस्पी और लगन का अटूट स्रोत उमड़ पड़ता है, उसी तरह प्रत्येक काम को किया जाय तो वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काम ही निश्चित समय पर वरदान बनकर मनुष्य को धन्य कर देता है। प्रत्येक कार्य एक खेल, एक कला मालूम हो, बोझ न लगे, तभी मनुष्य उसमें सफलता अर्जित कर सकता है।

दिलचस्पी, लगन, तन्मयता के साथ ही अपने काम में सतत् जागरूकता, सतर्कता बरतना भी आवश्यक है। इससे दुतरफा लाभ होता है। सर्वप्रथम मनुष्य की मानसिक, शारीरिक शक्तियों का नियन्त्रण और व्यवस्था कायम होती है। अन्तः क्षेत्र में उठने वाली विघटनात्मक, ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों का संयम होता है। बुद्धिमता, शक्ति, सफलता की सतर्कता, जागरूकता से संरक्षण और पोषण मिलता है। बाह्य क्षेत्र में इससे काम की ठीक-ठीक व्यवस्था क्रम निर्धारित होते हैं। काम की आवश्यकतायें महसूस होती है और मनुष्य उसके प्रति अपना पूरा श्रम अन्जाम देता है। अपने कार्यों में ढीलापन, सतर्कता का अभाव गैर जिम्मेंदारी, अव्यवस्था, अनिश्चित्ता का होना असफलता को निमन्त्रण देना ही है। किसी देश का रक्षक दल अपनी ड्यूटी पर तैनात हो किन्तु सतर्क और जागरूक न हो, ढीली ढीली प्रवृत्ति हो, कोई जोश न हो तो उस पर दुश्मन का आक्रमण और देश में दुश्मन की घुसपैठ, तोड़-फोड़ और एक दिन अधिकार हो जाना सम्भव है। इसी तरह सतर्कता जागरूकता का मनुष्य के कामों में भी इतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इंग्लैण्ड की एक घटना है। एक भारतीय ने अपने कपड़े एक दर्जी को सिलने के लिए दिए। दर्जी ने कपड़ों को तैयार कर लौटाने की निश्चित तिथि बतला दी। निश्चित दिन वे महाशय अपना कपड़ा लेने उस दर्जी के यहाँ गये। उन्होंने देखा दुकान बन्द है किन्तु एक खिड़की खुली हुई है और उसमें एक लड़का बैठा हुआ है। लड़के से पूछ-ताछ करने पर उसने कहा "आज मालिक के घर में एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई है सब लोग उसे दफनाने गये हुये हैं। केवल मैं ही आपके कपड़े देने के लिए बैठा हुआ हूं।" कर्मयोग की साधना में अपने कार्य के प्रति ऐसी ही जागरूकता और तत्परता का अभ्यास साधक को करना पड़ता है।

किसी भी व्यवसाय, काम की सफलता के लिए उसमें व्यवस्था, सफाई, स्वच्छता, रखना उतना ही आवश्यक है जितना उसके प्रति दिलचस्पी, लगन जागरूकता आदि। स्वच्छता, व्यवस्था, क्रम से ही काम में सौन्दर्य, आकर्षण और उत्कृष्टता पैदा होती है। किसी भी छोटी दुकान, शिल्पकार, कलाकार के मकान से लेकर बड़े होटल, व्यावसायिक केन्द्र, कारखाने तक में यदि अव्यवस्था, गन्दगी होगी, अस्त-व्यस्त सामान बिखरा पड़ा होगा तो कोई भी वहाँ आने वाला व्यक्ति उससे प्रभावित न होकर दूर हटने का ही प्रयत्न करेंगा। गन्दगी, अव्यवस्था, फूहड़पन के वातावरण में लोगों का सर चकराने लगना, जी मिचलाना, मिजाज खराब होना स्वाभाविक ही है। ऐसी स्थिति में किसी व्यवसाय की सफलता होने की आशा करना विडम्बना ही होगी। व्यवस्था, स्वच्छता, क्रम सही तरीके के अभाव में कई व्यक्ति अपने वर्षों से चालू किये गये काम की प्रारम्भिक स्थिति, गई बीती हालत में ही पड़े रहते हैं। अपना दीन–हीन घिनौना जीवन बोझे की तरह बिताया करते हैं। ऐसे व्यक्ति तो लौकिक सफलता भी नहीं पा सकते कर्मयोगी के स्तर की उच्च आध्यात्मिक सफलता तो उनके लिए सम्भव ही कहाँ होगी।

सतर्कता, तन्मयता, उत्साह तथा प्रसन्नता के साथ भविष्य की आशा रखकर सुव्यवस्था, स्वच्छता, सफाई, क्रमबद्ध रूप से मनोयोग पूर्वक किये गये कार्यों में कुछ अपवादों को छोड़कर आमतौर पर मनुष्य को सफलता मिलती ही है। सामान्य से महान् बनने के लिये अपने काम के प्रति पूरा-पूरा अन्जाम देना और निष्ठा लगन के साथ कर्मोपासना करना आवश्यक है।

कर्म का ब्रह्मार्पण

केनोपनिषद् में एक उपाख्यान है। उसमें बताया गया है कि जल, वायु, अग्नि आदि देवता अपने–अपने बल का बड़ा अभिमान करते थे। एक दिन इन्द्र सभा में सभी देवता अपनी शक्ति को बड़ा बताते हुए शेखी बघार रहे थे। इतने में ही एक देवी प्रकट हुई और उसने एक तिनका रखकर प्रत्येक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

देवता से उसे नष्ट करने के लिये कहा। बड़े–बड़े पहाड़ों को उड़ा देने वाले, प्रलयंकारी तूफान पैदा करने वाले पवन ने बड़े गर्व के साथ उस तिनके को उड़ाना चाहा जैसे वह उसके लिये सामान्य चीज हो। उसने धीरे–धीरे पूरी शक्ति लगा दी किन्तु तिनका टस से मस नहीं हुआ। अग्नि जो समस्त ब्रह्माण्ड को भस्म करने का गर्व करता था, वह उस छोटे से तिनके को न जला सका। वरूण उसे बहा नहीं सका। इस तरह उस तिनके को नष्ट करने में सभी देवता असफल रहे। इतने में यह देवी अन्तर्धान हो गई। सभी देवता बड़े असमंजस में थे। इन्द्र ने वस्तुस्थिति के मर्म को समझते हुए कहा–"देवताओं ! तुम अपने कार्यों और बल का व्यर्थ अभिमान करते हो। वह बल तुम्हारा नहीं वरन् उस देवी का ही है। ब्रह्म ही उस देवी के रूप में आपकी परीक्षा लेने आये थे। संसार में जो कुछ भी हो रहा है उस ब्रह्म की प्रेरणा से ही हो रहा है। हम सब तो केवल माध्यम मात्र हैं।" इन्द्र की बात सुनकर देवताओं को अपनी–अपनी असलियत का पता चला।

मनुष्य की शक्ति सत्ता और सामर्थ्य सीमित है। वह विश्व–ब्रह्माण्ड की एक सामान्य इकाई है। मनुष्य जो सोचता है उसके विपरीत भी परिणाम मिल सकते हैं। जो कुछ मनुष्य करता है उसका अच्छा या बुरा परिणाम क्या होगा इसका सही–सही निर्णय वही नहीं कर पाता। विश्व नियम के अन्तर्गत ही मनुष्य के जीवन का संचालन और नियमन होता है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निष्काम कर्मयोग, कर्मफल में अनासक्ति का उपदेश देते हुए विराट् स्वरूप का दर्शन कराते हुए बताया है कि– "समस्त संसार के कर्मों का कारण विराट् स्वरूप परमात्मा ही है, तू नहीं।" आगे अर्जुन को केवल एक माध्यम, यन्त्र रूप में रह कर काम करने की शिक्षा दी है।

संसार के सभी धर्मों ने कर्मफल और कर्म के अभिमान के त्याग की शिक्षा दी हैं। अपने कर्म और कर्मफल ईश्वर को समर्पण करने, उस पर छोड़ने का आदेश दिया है।

उपनिन्दक ऋषि ने कहा है–

"यदयत् कर्म प्रकुर्वीत तद् ब्रह्माणि समर्पयेत्।"

"जो-जो कर्म करें वह सब ब्रह्म को समर्पित कर दें।"

कर्मफल को और अपने कर्म को ईश्वरीय सत्ता पर छोड़ देना जीवन का एक बहुत बड़ा समाधान है। अपने कर्म और उसके अच्छे, बुरे, अनुकूल, प्रतिकूल परिणामों का बोझा उठाये रखने वाला आदमी चैन, सुख, शान्ति, सन्तोष अनुभव नहीं कर सकता। उसकी स्थिति समुद्री लहर में पड़े उस दुर्बल मनुष्य जैसी हो जाती है जो कभी इधर कभी उधर थपेड़े खाता रहता है और हांफता रहता है। कर्म और कर्मफल ईश्वरार्पण कर देने पर मनुष्य एक बहुत बड़े बोझ से मुक्त हो जाता है।

डेल कार्नेगी ने अपना एक संस्मरण लिखा है कि "हेनरी फोर्ड के पास जाकर मैंने पूछा कि इतना कार्य-भार होते हुए भी आप स्वस्थ कैसे रहते हैं ?" इस पर उन्होंने कहा, "मैं ईश्वर को अपने कार्यों का प्रबन्धक, स्वामी मानता हूँ और अपने आपको काम करने वाला श्रमिक। ईश्वर को अपने कार्यों का प्रबन्धक और स्वामी मानने से फिर मुझे कोई चिन्ता नहीं रहती और इसी निश्चिन्ता से मैं अधिक स्वस्थ और सन्तुष्ट रहता हूँ।

कर्म और कर्मफल में आसक्ति रहने से मनुष्य को अनुकूल प्रतिकूल स्थितियों से गुजरना पड़ता है और इसी के अनुसार आशा-निराशा का भी सामना करना पड़ता है और इससे मनुष्य की शक्तियों का काफी क्षय होता है। अपने कर्म और कर्मफल को ईश्वर पर छोड़ देने से निराशा, चिन्ता, असन्तोष का कोई स्थान नहीं रह जाता। मनुष्य का आशावाद ही एकमेव अजर-अमर रहता है। तत्त्ववेत्ता अरस्तू ने लिखा है– "अपने कर्मों और उसके फल को ईश्वर पर छोड़ देने से आशावाद अजर-अमर बनता है। ईश्वर सभी तरह आशावाद का केन्द्र हैं आशावाद और ईश्वरवाद एक ही है।" ईश्वर का अवलम्बन लेने पर, अपने कर्म और कर्मफल का समर्पण ईश्वर को कर देने से सफलता–असफलता मनुष्य को प्रभावित नहीं करती अजर–अमर आशावाद के सहारे वह दोनों में सन्तुलित रहकर कर्म-पथ पर अग्रसर होता रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वार्थ में ही नहीं वरन् परोपकार, रचनात्मक भले कार्यों में लगने पर भी यदि मनुष्य इसमें कर्तापन के अभिमान और फलासक्ति से ग्रस्त रहता है तो वे भी मनुष्य के बन्धन का कारण बन जायेंगे और बन्धन ही अशान्ति, क्लेश, असन्तोष का कारण बनता है। अच्छे काम करते हुए प्रतिकूल परिणाम असफलता आदि मिलने पर ऐसा व्यक्ति पत्ति हो सकता है। फलासक्ति के कारण मनुष्य सुधार पथ पर बहुत दूर आगे बढ़कर भी फिर से लौट सकता हैं ऐसी स्थिति में कोई विशेष सफलता, महानता, विकास की आशा नहीं की जा सकती है। जिनकी बड़ी–बड़ी आशायें, आकांक्षायें थीं, कुछ अच्छे कार्य कर गुजरने की अभिलाषायें थीं, उन्होंने कार्य की आरम्भिक कठोरता या असफलताओं से निराश होकर सब कुछ छोड़ दिया। अतः फलासक्ति कर्तापन का अभिमान एक बहुत बड़ी फिसलन है जिसमें गिरने के बाद अधिकांश लोग उठ नहीं पाते और निम्न स्तर पर गिरते चले जाते हैं।

प्रत्येक मनुष्य का आत्म–तत्त्व अनन्त विश्व–चेतना से जुड़ा हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सार्वभौमिक विश्व–नियम की प्रेरणा से चलता है। आत्म–चेतना विश्व–चेतना की एकता, आत्मा और परमात्मा की एकता होने पर सामान्य व्यक्ति भी असाधारण, अनन्त शक्तियों का केन्द्र बन जाता है। पानी की बूंदें अपने आप में कुछ नहीं, यदि वह अपने रूप का, अपनी संकीर्ण दुनिया का अस्तिव ध्यान में रख कर विच्युत रहेगी तो उसकी कोई शक्ति–सामर्थ्य नहीं रहेगी। किसी भी क्षण उसके अस्तित्त्व का ही लोप हो जायगा। किन्तु यही बूंद विशाल महासागर के साथ एकरूप होकर उतनी ही शक्ति–सामर्थ्य सम्पन्न बन जायगी। मनुष्य की भी विश्व–विराट में यही स्थिति है। जब वह अपने अभिमान और कर्तापन कर्मफल के अस्तित्त्व को लेकर चलेगा तो उसकी शक्ति सीमित, क्षुद्र, संकीर्ण नाशवान होगी। उसकी शक्ति–सामर्थ्य बाह्य सफलता–असफलता से टकरा कर वहीं नष्ट हो जायगी। किन्तु इन्हीं मानवीय शक्ति–सामर्थ का सम्बन्ध विश्व–विराट के साथ हो जाय तो वह असीम और महान् बन जायगी। इसका मार्ग है, अपने समस्त जीवन, कर्म, कर्तापन, कर्म फलों का समर्पण उस विश्वात्मा को परब्रह्म परमात्मा को किया जाय। यही सच्ची पूजा, उपासना, अर्चना है। **यद्यद् कर्म प्रकुर्वीत तद्ब्रह्माणि समर्पयते**। हम जो कुछ भी करें हमारा जो कुछ भी है, सब कुछ परमात्मा को परम प्रभु को समर्पण करें। विश्व भुवन की समस्त चेष्टाओं के प्रेरक परम प्रभु को अपनी सकल चेष्टाओं को समर्पण करके स्वयं को मुक्त, बन्धन रहित, आनन्दमय बना सकेंगे तभी जीवन की चिरसाध पूरी होगी।

अनासक्ति योग सम्बन्धी भ्रान्ति

अनासक्ति का अर्थ यह नहीं कि जो कुछ करें आप करें उसमें आपकी रुचि न हो। उसकी अच्छाई–बुराई, सफलता–असफलता की चिन्ता न करें ऐसा करने से तो कोई भी कार्य करने में लापरवाही ही रहेगी। यदि अनासक्ति का अर्थ असम्बन्ध, अरुचि अथवा निरपेक्षिता लिया जायेगा तो कोई भी कार्य कुशलता पूर्वक नहीं किया जा सकता। बिना कोई आशा रखे कोई भी काम करने में मनुष्य का मन न लगेगा। किसी कर्म में लाभालाभ का विचार ही उस कर्म में रुचि उत्पन्न करता है जब मनुष्य असफलता का भय और सफलता की आशा लेकर कार्य करेंगा तभी उसकी संलग्नता और उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से कर सकेगा अन्यथा नहीं।

एक ओर कहा गया है कि मनुष्य का कर्म में अधिकार है उसे हर अच्छा–बुरा काम करने की स्वतन्त्रता है। पर दूसरी ओर निर्देश है कि मनुष्य सब कुछ करता हुआ भी कुछ नहीं करता। वह एक माध्यम मात्र है उसकी समस्त क्रियायें परमात्मा द्वारा प्रेरित होती हैं। विराट पुरुष परमात्मा ही सारे कर्मों का कारण है।

यह दोनों कथन देखने में एक-दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं जब मनुष्य किसी शक्ति की प्रेरणा से यन्त्रवत कार्य करता है तब वह कर्मों में स्वतंत्र उसका उत्तरदायी कैसे ठहराया जा सकता है ? और यदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वह कर्मों में स्वतन्त्र है, अच्छा-बुरा जो चाहे कर सकता है तब किसी शक्ति की प्रेरणा की बात कैसे टिक सकती है ?

इन कथनों के विरोधाभास को समझने के लिए गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। मनुष्य में जो चेतनापूर्ण गतिमान है उसका कारण तो वह विराट् शक्ति है किन्तु कर्मगति की दिशा मनुष्य की अपनी है। परमात्मा विद्युत की भाँति गतिशीलता की शक्ति तो देता है किन्तु उस शक्ति से संचालित मनुष्य-यन्त्र किस ओर जाता है इसका उत्तरदायी वह नहीं है विद्युत धारायें केवल प्रेरणा देती हैं अब आगे उपभोक्ता का कर्तव्य है कि वह उनका उपयोग रोशनी करने में करता है या किसी के प्राण लेने में। गैस मोटर को ढकेलती भर है उसके चलने से ढंग का उत्तरादायित्व संचालक पर है।

संसार में जो कुछ अच्छा-बुरा, हितकर अथवा अहितकर होता है वह सब परमात्मा की प्रेरणा तथा इच्छा से होता है। मनुष्य का उसमें कोई हाथ नहीं है। वह स्वयं कुछ नहीं करता। किसी विराट् शक्ति द्वारा उससे बलात् कराया जाता है, ऐसा विश्वास धारण करने से मनुष्य भले ही अपने कर्मफल का भागी न बने, पर यह विश्वास व्यवहार जगत् में हितकर नहीं है। स्वभावतः बुराई की ओर दौड़ने वाला मनुष्य इस विश्वास के बल पर और भी भयंकर हो जायेगा। उसके किसी कर्म का फल भले ही न भोगना पड़े, किन्तु उसके कुकर्म दूसरों के लिये तो कष्ट एवं अनष्टिकर होंगे ही।

किसी को मारने वाला यह सोचकर अपने कृत्य की जिम्मेंदारी से मुक्त हो जाये कि उसने वैसा स्वयं नहीं बल्कि सर्वशक्तिमान् परमात्मा की प्रेरणा से किया और मरने वाला अथवा उसके सम्बन्धी यह सोचकर सन्तोष कर लें कि इसमें मारने वाले का दोष नहीं, मरने वाला परमात्मा की इच्छा से मृत्यु को प्राप्त हुआ है। यह भला किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?

यदि इस नियम को सार्वभौम मानकर यह कल्पना भी कर ली जाय कि संसार का प्रत्येक मनुष्य यह विश्वास रखने लगा है कि कोई किसी काम का उत्तरदायी नहीं है और न कोई किसी को कष्ट अथवा हानि पहुँचाने का दोषी तब तो संसार में एक भयानक अव्यवस्था ही उत्पन्न हो जाय। न कोई किसी को मारने–लूटने में संकोच करें और न कोई उसका प्रतिकार। सबल व्यक्ति निर्बलों को एक मिनट में मिटाकर रख दें। किसी कृत्य के परिणाम, उसके दण्ड तथा प्रतिकार के भय से ही मनुष्य एक साधारण अनुशासन में चलता है।

सब कुछ परमात्मा की इच्छा से होता है ऐसा विश्वास बना लेने पर मनुष्य के ज्ञानी होने की कम, किन्तु निरंकुश होने की अधिक सम्भावना है। यदि मनुष्य के प्रत्येक कर्म में सर्वशक्तिमान् की प्रेरणा रहती है तो फिर कर्म करने वाले को उसका परिणाम क्यों भुगतना पड़ता है। मनुष्य असंयम करता है किन्तु ईश्वर की इच्छा से, तो फिर उसे रोग के रूप में उसका दण्ड क्यों मिलता है ? एक प्रकार से तो यह परमात्मा का अन्याय ही प्रतीत होता है। पहले तो वह किसी को कुछ बुरा करने को प्रेरित करता है और फिर उसके वैसा करने का दण्ड देता है, वह कहाँ का न्याय हुआ ? और यदि यह मान लिया जाय कि सर्वशक्तिमान् मनुष्य से शुभाशुभ कर्म करा कर फिर जो उसे उसका पुरस्कार अथवा दण्ड देता है यह उसकी लीला है, खेल है– तब भी यह उस सर्वशक्तिमान विराट् पुरुष के अनुरूप नहीं है। यह बचकाना खेल न तो उसके गौरवयुक्त है और न वह ऐसा खेल खेलेगा ही।

विराट् स्वरूप द्वारा प्रेरित यान्त्रिकता जड़ प्रकृति तथा विवेक रहित पशु–पक्षियों से तो किसी हद तक मानी जा सकती है, किन्तु सचेतन तथा विवेक–शक्ति सम्पन्न मनुष्य के विषय में नहीं मानी जा सकती।

परमात्मा ने मनुष्य को अनेक आश्चर्यजनक शक्तियां देकर स्वतन्त्र कर दिया है कि यदि वह चाहे तो शक्तियों का सदुपयोग करके परम पद प्राप्त कर ले अथवा उसके दुरुपयोग द्वारा अधोगति में जा पड़े। उसने मनुष्य को सारे उपादान देकर खिलाड़ी की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरह संसार के मैदान में छोड़ दिया है और स्वयं एक निष्पक्ष दर्शक की भाँति उसका खेल देखता है कि सुगति-दुर्गति के इस विशाल खेल में कौन खिलाड़ी जीतता है और कौन हारता है ? जो अपने स्रोत अर्थात् लक्ष्य को पाता जाता है वह उस परमपद परमात्मा की गोद में पहुँचता है और जो हारता है वह खेलने के लिए दुबारा संसार में भेज दिया जाता है। मनुष्य की आयु खेल के एक अवसर की अवधि है। समाप्त हो जाने के बाद यदि खिलाड़ी सफल नहीं हो पाता तो उसे समयानुसार पुनः अवसर व समय दिया जाता है।

विवेकवान मनुष्य को इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि उसके शुभाशुभ कर्मों का प्रेरक तथा संचालक सर्वशक्तिमान् परमात्मा है, उसका अपना कोई दायित्व नहीं है। न वह कुछ करने को स्वतन्त्र है और न करता ही है।

अनासक्ति कर्मयोग का यह फल कदापि नहीं है कि तटस्थ रहकर कुछ भी अच्छा-बुरा किये जाओ कोई भी गुण-दोष हमारे लिये नहीं आयेगा। अनासक्ति कर्मयोग का केवल यह अर्थ है कि अपने कर्मों के फलाफल से प्रभावित होकर कर्मगति में व्यवधान अथवा विराम न आने दें। जिससे दिन-प्रतिदिन अपने कर्मों में सुधार करते हुए परमपद की ओर बढ़ते जायें।

पुरुषार्थ धर्म है-कामनायें बन्धन

पूर्व जन्मों के प्रारब्धवश इस जीवन में जो काम, संयोग और परिस्थितियाँ मनुष्य को उपलब्ध हों, उसमें सन्तोष रखते हुए आगे की उन्नति के लिये उद्योग करना धर्म है। शरीर जिस साधना में तत्पर हो उसी को पूरा करना मनुष्य का कर्तव्य है। अपनी परिस्थिति से बहुत अधिक की कामना करना ही मनुष्य की दुःखद स्थिति का कारण है। अनियन्त्रित मनोरथ का त्याग करना ही अपने पूर्व-प्रारब्ध के लिये सन्तोष करने का अच्छा उपाय है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि आगे के लिए अधिक सुन्दर परिस्थितियों को प्राप्त करने की चेष्टा न करें। श्रेय की इच्छा करने वाले मनुष्य को न तो निष्क्रिय रहना चाहिए और न विविध-कामनायें ही करनी चाहिये।

सेना में सिपाही की योग्यता के अनुसार कमाण्डर उसे कोई एक काम सौंप देता है। योग्यता बढ़ा लेने पर कमाण्डर क्रमशः उसे उच्च पद देता चला जाता है, किन्तु सिपाही की स्थिति में रहते हुए सेनानायक के पद की आकांक्षा करने से न तो वह सिपाही के कर्तव्यों का भली-भाँति पालन कर सकेगा और न सेनानायक का पद ही मिल सकेगा। इससे दुःख तो मिलेगा ही दुष्परिणाम भी उपस्थित हो सकते हैं।

एक ही परिस्थिति में यदि दत्तचित्त से लगे रहें तो उससे भी आशाजनक परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। कभी इधर कभी उधर की दौड़-भाग करना मनुष्य को अस्थिरता का चिन्ह है। जो तरह-तरह की कामनायें मन में करते हैं उन्हें ही यह परेशानी भुगतनी पड़ती है। अधिक से अधिक धन, अधिक सुख सुविधाओं की लिप्सा ही मनुष्य को कमजोर और दुःखी बनाती है। क्योंकि यदि उन्नति की उचित योग्यता, शक्ति और परिस्थितियाँ न हुई तो आकांक्षाओं की कभी पूर्ति नहीं हो सकेगी और उसमें दुःखी, अधीर, चिन्तित और निराश ही बने रहेंगे।

दूसरों को अधिक सुखी और सम्पन्न देखकर ईर्ष्या करना और परमात्मा को दोषी ठहराना, मनुष्य की बहुत बड़ी भूल है ऐसा इसलिये करता है कि उसे केवल अपने अधिकार प्रिय हैं। पूर्व जीवन में उसने क्या किया है इसकी भी तो कुछ संगति होनी चाहिये। किसी को कम किसी को अधिक देने का अन्याय भला परमात्मा क्यों करेंगा ? मनुष्य ही अपने कर्मों का लाभ या घाटा उठाता है। एक रूपया देकर किसी को भला पांच रूपये की कीमत की भी कोई वस्तु मिली ? योग्यता से अधिक दे देने की भूल भला परमात्मा क्यों करेंगा ? यदि ऐसा हो तो उसे लोग अन्यायी ही तो कहेंगे। यही क्या कुछ कम उपकार है जो उसने आपको मनुष्य जीवन जैसा अलभ्य अवसर प्रदान किया है। आप चाहें तो अपने जीवन का मूल्य बढ़ा सकते हैं और कर्तव्य पालन तथा अन्य सद्गुणों द्वारा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आगे के लिये शुभ परिस्थितियाँ, अच्छे परिणाम और मंगल संयोग प्राप्त कर सकते हैं।

बच्चों का पालन-पोषण, व्यापार, देश-रक्षा, मेंहनत, मजदूरी, ज्ञान-सम्मान और जन-मार्गदर्शन, इन कामों से ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, कम महत्त्वपूर्ण या अधिक महत्त्वपूर्ण होने की एक ही कसौटी है और वह है –मनुष्य की भावना। स्वार्थ सम्मुख रखकर परोपकार दिखाई देने वाले कर्म भी फलदायक नहीं होते। निष्काम भाव से की हुई बच्चों की सेवा और प्राणी मात्र के हित के लिये किया गया उपदेश दोनों का फल समान है क्योंकि उनकी भावना एक ही है। कर्म की विविधता में उनका मूल्य भावना स्तर पर आंका जाता है। किसी व्यक्ति की आप चोरों से रक्षा करें और बदले में आधा धन मांगने लगें तो आपकी यह सेवा प्रभावशील न रहेगी। कर्म का महत्त्व फल त्याग से है। सच्चा सुख, सन्तोष तो तब मिलता है जब मनुष्य अपने आप को परमात्मा का एक उपकरण मान कर विशुद्ध त्याग भावना से परोपकार करता है। जीवन-मुक्त का लक्षण फल प्राप्ति की कामना का परित्याग ही बताया गया है।

मुक्ति के लिए मनुष्य को तरह-तरह के साधन ढूंढने की आवश्यकता है। वेष बदलना या काम छोड़ देना भी बुद्धि संगत नहीं है। ऐसा करके भी मनुष्य निष्क्रिय नहीं हो सकता। खाने, पीने, चलने, उठने के सामान्य कर्म तो मनुष्य को प्रत्येक अवस्था में करने ही पड़ते हैं। कर्म करते हुए फल प्राप्ति की कामना अथवा मनोरथ का परित्याग होना चाहिए। क्योंकि आकांक्षायें स्वार्थपरता की जननी है। इस तरह से लोकोपकारी कर्तव्य कर्मों का सम्पदान नहीं हो सकता।

प्रकृति हमें नित्य निरन्तर निष्काम कर्म करने की शिक्षा देती रहती है। सूर्य–चन्द्रमा प्रकाश देते हैं बदले में कुछ प्राप्त करने की उनकी कोई इच्छा नहीं होती। वृक्ष अपने फलों का उपभोग अपने लिए नहीं करते। पहाड़ लोगों को असीम खनिज देते हैं, नदियाँ शीतल जल से लोगों को तृप्त करती रहती हैं। इन्हें कभी किसी तरह की कोई भी कामना नहीं होती लोक-कल्याण के लिये निरन्तर एक सी स्थिति में चलते रहना ही उनका धर्म है। मनुष्य की दशा भी इसी तरह की होनी चाहिये। सुख कर्म में है, फल तो उसके विनाश का प्रारम्भ मात्र है।

आत्म-कल्याण के विविध साधनों में प्रत्येक स्थिति में हर मनुष्य के लिए सरल और सुलभ साधन निष्काम कर्म की भावना ही है। कठोर साधनों की अपेक्षा यह मार्ग अधिक सरल है जिसे गीता में 'निष्काम कर्मयोग के नाम से प्रतिपादित किया गया है। कर्तव्य भाव के ज्ञान और मनोरथ के परित्याग से परमात्मा की स्थिति का बोध हो जाता है और मनुष्य जन्म-मरण के भव-बन्धन से मुक्ति पा लेता है। यही मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है। इसके लिए निष्काम-कर्म से बढ़कर और कोई दूसरा उपाय श्रेष्ठ नहीं है।

गौरव निरन्तर चलते रहने में है

वेद भगवान् का मत है– **''आरोहणमाक्रमण जीवतो जीवतोऽनम्''** जीवन के लिए सबसे आवश्यक बात यह है कि उसे रुकना नहीं चाहिये। उन्नत होना और आगे बढ़ना जीवन का स्वाभाविक धर्म है। यह विकास यात्रा द्रुत गति से सर्वत्र चल रही है। वैज्ञानिकों का कथन है कि यह पृथ्वी जिस पर हम निवास करते हैं ३६५ दिन में सूर्य की परिक्रमा कर लेती है। सूर्य को भी चुपचाप बैठने में चैन नहीं मिलता। वह भी सौर-मण्डल के समस्त दो खरब नक्षत्रों को लेकर कृतिका की यात्रा पर निकल पड़ा। कृतिका अभिजित की और अभिजित किसी चौथे ग्रह की ओर। सभी के सभी चलायमान हैं, किसी को चुपचाप बैठने में आनन्द नहीं आता। चलते रहना, क्रियाशील बने रहना सृष्टि का सनातन नियम है। जहाँ रुके वहीं मौत है, वहीं जड़ता है। चलना जीवन का प्रतीक है, रूक जाना ही मृत्यु है।

कहते हैं– ''आलसी को पाप खा जाता है।'' यह बात सच है कि अकर्मण्यता से अवांछनीय तत्त्वों को प्रोत्साहन मिलता है, फलतः विनाश के क्षण मानवीय प्रगति पर हावी हो जाते हैं। परिश्रम के अभाव में सौभाग्य की प्राप्ति सम्भव नहीं। जो चलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है वह ऐश्वर्यों और महान् विभूतियों का स्वामी बन जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण का प्रेरक विचार है :–

नाऽनाश्रान्ताय श्रीरस्ति -----
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा।
चरैवेति चरैवेति।।

अर्थात्– जो चलता है उसकी जाघें पुष्ट बनती हैं। फल प्राप्ति तक उद्योग करने वाला व्यक्ति पुरुषार्थी होता है। प्रयत्नशील पुरुष के पाप-ताप, भव-बन्धन मार्ग में ही नष्ट हो जाते हैं। इसलिये चलते रहो, चलते रहो।

भगवान कृष्ण ने कहा है–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्व भूतानि यात्रारुढानि मायया।।

अर्थात्– संसार की प्रत्येक वस्तु में एक ही आध्यात्मिक प्राण–शक्ति परमात्मा विद्यमान है। प्रकृति अपने सम्पूर्ण पार्थिव शक्तियों के साथ निश्चित योजना के अनुसार जीवन का निर्माण करती हुई आगे बढ़ती दिखायी देती है। प्रकृति में न तो आलस्य है न स्तब्धता। मनुष्य की अन्तः प्रकृति भी यही चाहती है कि हम रूके नहीं। जर्मनी के महाकवि गेटे ने लिखा है कि अपनी प्रगति और विकास क्रम में प्रकृति जिस प्रकार रुकना नहीं जानती, मनुष्य भी वैसे ही सक्रिय रहे तो वह सहज ही अपना जीवन लक्ष्य प्राप्त कर लेता है। प्रकृति के इस गुण की अवहेलना ही मृत्यु का कारण है।

जीवन एक महान् यात्रा है जिसकी सुघड़ता सदैव चलते रहने में है। जब तक हम चलते रहते हैं तब तक हमारी शक्तियों का उपयोग होता रहता है। रेलगाड़ी जब किसी स्टेशन पर थोड़ी देर खड़ी रहती है तो इन्जन की सुरक्षा के लिए उसके अन्दर भरी सारी भाप शक्ति को बाहर निकाल देना पड़ता है। ऐसा न किया जाय तो अपनी ही शक्ति अपना ही विनाश करने को तत्त्पर हो जाती है। शक्ति का सदुपयोग तभी तक बना रहता है जब तक पाँव आगे बढ़ते रहते हैं। रुक जाते हैं तो शक्ति विघटन का खतरा पैदा हो जाता है। इसलिए जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग अपनी विकास–यात्रा की पूर्ति में होना चाहिए।

जीवन को एक संग्राम मानें तो मनुष्य को एक सैनिक मानना पड़ेगा। सिपाही का प्रमुख कर्म है लड़ना, संघर्ष करना। मनुष्य जीवन में शत्रुओं की कमी नहीं है। काम, क्रोध,मद,मोह, मत्सर के षडरिपु हर क्षेत्र में मनुष्य को परास्त करने की ताक में बैठे रहते हैं। दुश्मन को जीतने के लिये जब बन्दूक में संगीन चढ़ाकर सिपाही आगे बढ़ता है तो अपने दुश्मनों को रौंदता, मारता, काटता हुआ बढ़ता जाता है। सिपाही होने का गौरव भी इसी में है कि उसके पांव पीछे न पड़ें। विजय और स्वच्छन्दता भी इसी में है। जो डर कर पीछे रह जाते हैं उन्हें पराधीन होकर ही जीना पड़ता है। उस जीवन का कोई मूल्य नहीं जो हिम्मत–पस्त होकर जीवन संग्राम में आगे बढ़ने से इनकार कर देता है।

आगे बढ़ने का अर्थ यहाँ जमीन नापने या पैदल चलने से नहीं है, यह संकेत आध्यात्मिक विकास के लिये है। आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जो उद्योग करना पड़ता है उसे आगे बढ़ना, चलना, यात्रा करना कहा जा सकता है। यह मंजिल विचार और व्यवहार दोनों से प्राप्त की जाती है। विचार मनुष्य की असाधारण शक्ति है। इसके बल पर संसार का सत्य–असत्य प्रकट होता है। ज्ञान की विशेषता मनुष्य में न रही होती तो उसका जीवन भी पशुओं जैसा होता। बेचारा आदमी रीछ, भालू, बन्दर, लोमड़ी, खरगोश के समान ही इधर–उधर निरुद्देश्य भटक रहा होता। पर विचार शक्ति के द्वारा वह एक आध्यात्मिक जगत् का निर्माण करता है। इसी से उसकी जीव–धारण की प्रक्रिया पूरी होती है। अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान मनुष्य को विचार शक्ति के ही द्वारा होता है।

मानव–जीवन का प्रमुख आदर्श है नैतिक विकास करना। इससे मनुष्य विकास सम्भव नहीं होगा। सहयोगपूर्वक नैतिक जीवन जीने से ही परस्पर हित संरक्षित बने रहते हैं। सूर्य का मार्ग भिन्न है। चन्द्रमा अपनी दूसरी राह जाता है। सभी अपने–अपने निर्दिष्ट पथ पर चलते हुये अपनी विकास यात्रा पूरी कर रहे हैं। आत्मा का ध्यान बनाये रखने से मनुष्य कुमार्गगामी नहीं होता जिस प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दूसरे ग्रह–उपग्रह अपनी निश्चित कक्षा में बढ़ते रहते हैं उसी प्रकार मनुष्य की भी एक कक्षा है, आध्यात्मिक कक्षा। वह अपने इसी निश्चित पथ पर चलता हुआ निरन्तर आगे बढ़ता रहे– इसी में उसकी सफलता है, इसी में मानव–जीवन का गौरव है।

कर्मों का सामूहिक फल

कर्मफल के सम्बन्ध में मनीषियों का विचार है कि हम जो कर्म करते हैं उनका फल हमें तो भोगना पड़ता ही है, साथ ही अन्य प्राणियों को भी भोगना पड़ता है। मनुष्य सामाजिक पद्धति पर चलने वाला प्राणी है और उसे अधिकांश नियमों का पालन सामूहिक रूप से करना पड़ता है। इसलिये हमारे कर्मों का फल समूह को मिलेगा और समूह द्वारा किये गये कर्मों के फल भोगने में हमारा भी भाग होगा।

समाज व्यवस्था द्वारा दोषों या उत्पन्न श्रेष्ठ कर्मों का फल सभी व्यक्तियों को बांट कर भोगना है। परन्तु जिस व्यक्ति द्वारा जो कर्म किये जाते हैं, उसे अपने कर्मों का अधिकांश भोगना पड़ेगा। कुछ स्वल्प भाग ही समूह में जायगा। इस प्रकार व्यक्ति का हित समष्टि में और समष्टि का व्यक्ति में निहित है।

यह विश्वास इसलिये भी आवश्यक है कि इससे परस्पर प्रेम, विश्वास और समत्व भाव उत्पन्न होता है इससे हम मानवता की ओर दृढ़तापूर्वक बढ़ेंगे। इसलिए हमें श्रेष्ठ कर्मों में स्वयं तो प्रवृत्त होना ही चाहिये साथ ही अन्य लोगों को भी वैसा करने के लिये प्रेरित करना चाहिये।

पृथ्वी के एक भाग में दुर्भिक्ष पड़े और सुभिक्ष की स्थिति उत्पन्न करने के लिए यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म किये जायें तो उसका फल–सुभिक्ष द्वारा अन्न की उत्पत्ति का लाभ सभी उठायेंगे। केवल कर्ता को ही उस अन्न का लाभ नहीं मिलेगा। हां, उसके शुभ कर्म का फल परोक्ष रूप से उसे अवश्य प्राप्त होगा, जिसकी प्राप्ति इस जन्म अथवा अन्य जन्मों में भी सम्भव है।

एक व्यक्ति ने कोई धर्मशाला बनवाई तो उसके उस श्रेष्ठ कार्य का थोड़ा–थोड़ा फल वे लोग प्राप्त करेंगे जो उसमें कुछ समय को ठहरेंगे। उसका अप्रत्यक्ष लाभ धर्मशाला बनवाने वाले को होगा। कुछ भी हो, परन्तु प्रत्यक्ष लाभ उसमें ठहरने वालों को तो हुआ ही। इस प्रकार उस शुभ–कर्म के फल में सामूहिक भाग स्पष्ट है।

विद्यालय, औषधालय, कुआँ, तालाब, छात्रावास, अन्नक्षेत्र, गौशाला, अनाथालय, धर्म प्रचार आदि शुभ कार्य यद्यपि कर्ता ने अपने आत्म-कल्याण के लिये किये थे, पर उनका लाभ उन कार्यों के सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को भी मिलता है और वह कर्ता जिस जाति, देश, समाज या सम्प्रदाय से सम्बन्धित होता है उसकी भी प्रशंसा होती है। संसार में समय-समय पर अनेक महापुरुष होते रहे हैं, उनके कारण उस युग, देश और समाज की भी प्रतिष्ठा बढ़ी है जिसमें वे जन्में। राम के जन्म से अयोध्या और कृष्ण के जन्म से मथुरा का गौरव बढ़ा। गीता–ज्ञान ने सारे संसार में भारतवर्ष का गौरव बढ़ाया।

सर टामसरो के साथ आये डॉक्टर ने अपने देश के माल पर से चुंगी माफ करा के सारे इंग्लैण्ड निवासियों को लाभ पहुँचाया। जिन वैज्ञानिकों ने रेल, तार, रेडियो, बिजली, कारखाने के यन्त्र, वायुयान, चिकित्सा आदि के आविष्कार किये उनसे सारी मानव जाति को लाभ पहुँचा। धर्म सदाचार अध्यात्म, सहयोग, सहिष्णुता, संयम, समानता आदि के आदर्शों का जिन विद्वानों ने प्रतिपादन और प्रसार किया, उन्होंने भी समस्त मानव–जाति के उत्कर्ष में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है। स्वतन्त्रता युद्ध के संयोजकों और बलिदानियों के प्रयत्न का फल समस्त भारतवासी राजनैतिक स्वाधीनता के रूप में उपलब्ध कर रहे हैं।

जिस प्रकार व्यक्ति के सत्कर्मों का लाभ सारे समाज को मिलता है वैसे ही उसके दुष्कर्मों का परिणाम भी दूसरों को भुगतना पड़ता है। डाकू, चोर और जेबकट अपने कृत्यों से अगणित मनुष्यों को हानि पहुँचाते और क्षुभित करते हैं। गुण्डों की उद्दण्डता का फल अगणित शान्ति प्रिय नागरिकों को भुगतना पड़ता है। गन्दे लोग हमेशा हैजा आदि रोगों से ग्रसित होते हैं और उनकी छूत से बीमारी दूर–दूर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक फैल कर अनेकों के लिए प्राण-घातक संकट उत्पन्न कर देती है। व्यसनी, व्यभिचारी, नशेबाज, जुआरी, अपनी बुरी आदतें दुर्बल मस्तिष्क के अनेक लोगों को सिखा कर उन्हें भी अपने जैसा ही बना लेते हैं।

व्यक्ति सर्वथा एकाकी नहीं है। वह समाज का एक अंग है। इसलिये उसके भले या बुरे कार्यों का प्रभाव केवल उसी तक सीमित नहीं रहता वरन् सारे समाज को भुगतना पड़ता है । पेट में विकार हो जाय दर्द होने लगे तो उससे केवल पेट को ही हानि नहीं वरन् सारे शरीर की ही व्यवस्था बिगड़ती है। मस्तिष्क यदि प्रचुर विद्या और ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो उसका लाभ केवल सिर को ही नहीं मिलता वरन् इस ज्ञान के फलस्वरूप सभी अंगों के लिए सुख-साधन उपलब्ध होते हैं यही बात व्यक्ति के सम्बन्ध में भी है।

इसलिये दूसरों के भले-बुरे कार्यों की ओर ध्यान रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। हमें अपने काम से काम, अपने मतलब से मतलब कहने मात्र से काम नहीं चल सकता। ऐसा करने से बुरों का विरोध न हो सकेगा और वे मनमानी करके अपनी दुष्टता बढ़ाते हुए दूसरे लोगों के लिए दिन–दिन अधिक भयंकर बनते चलेंगे। उसी प्रकार सज्जनों के कार्यों में प्रोत्साहन या सहयोग न दिया जाय तो वे भी निराश होकर चुप बैठे रहेंगे और उनके कार्यों से अनेकों को जो लाभ हो सकते थे वे न हो सकेंगे।

बाढ़, भूकम्प, दुर्भिक्ष, महामारी, अतिवृष्टि, युद्ध आदि दैवी प्रकोपों को मानव जाति के सामूहिक पापों का परिणाम माना गया है। निर्दोष व्यक्ति भी गेहूँ के साथ घुन की तरह पिसते हैं। वस्तुतः वे भी निर्दोष नहीं होते, सामूहिक दोषों के हटाने और घटाने का प्रयत्न न करना, उनकी ओर उपेक्षा दृष्टि रखना भी पाप है। इस दृष्टि से निर्दोष दीखने वाले व्यक्ति भी सदोष सिद्ध होते हैं और उन्हें सामूहिक दण्ड का भागी बनना पड़ता है।

किसी नगर में बड़े पैमाने पर उपद्रव होने पर उस सारे नगर पर सरकार सामूहिक अधिक दण्ड लगाती है और निर्दोषों से भी जुर्माना वसूल करती है। उन निर्दोषों का कसूर यह माना जाता है कि उन्होंने अपने क्षेत्र में दुष्कर्म होते हुए भी उसे रोकने में उपेक्षा बरती, कायरता दिखाई, शान्ति स्थापना के लिए प्रयत्न न किया, इसलिये वे भी अपराधी हैं।

समाज में हो रही बुराइयों को रोकने के लिए ईश्वर ने ऐसी ही सामूहिक जिम्मेदारी हर व्यक्ति को सौंपी है। उसका कर्तव्य है कि अनीति जहां कहीं भी हो रही है उसे रोकने, घटाने का प्रयत्न करें, विरोध करें, असहयोग करें। जो भी तरीका उसे अनुकूल जँचे उसे अपनाये। पर कम से कम इतना तो होना ही चाहिये कि उस बुराई में अपना सहयोग प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप से न हो। बुरे कर्मों की प्रशंसा तो कदापि न की जाय। उनके प्रति भर्त्सना, घृणा और विरोध की भावना अवश्य ही रखी जाय।

इसी प्रकार सत्कार्यों के समर्थन, सज्जनों के सम्मान एवं प्रोत्साहन के लिये हममें से हर व्यक्ति को कुछ न कुछ करना चाहिये। ऐसे लोकोपयोगी कार्यों में यथासम्भव योग दान देना चाहिये। कम से कम उनकी प्रशंसा करना और सद्भाव रखना तो नितान्त आवश्यक ही है।

हम सब अलग–अलग होते हुए भी एक समाज के अंग हैं। एक नाव में बैठे हैं। यदि एक व्यक्ति नाव के पैंदे में छेद करें तो अन्य यात्रियों का कर्तव्य है कि उसे ऐसा करने से रोकें क्योंकि उसके छेद करने से औरों का जीवन भी संकट में पड़ जायगा। सामाजिक सुव्यवस्था एवं धर्म मर्यादाओं के स्वयं पालन करने और दूसरों से पालन कराने में भी हमारा यही दृष्टिकोण रहना चाहिये।

कर्मदेव का अपमान न करें !

प्रत्येक कार्य जीवन में महान् सम्भावनायें लेकर आता है। कर्मयोगी की भावना होती है कि काम भी जीवन–विकास के लिये उसी तरह महत्त्वपूर्ण है जिस तरह एक छोटा बीज, जो कालान्तर में विशाल वृक्ष बन जाता है। किसी मनुष्य का मापदण्ड उसकी आयु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नहीं वरन् उसके काम ही हैं जो उसने जीवन में किये हैं। इसलिये कर्मवीरों ने काम को ही जीवन का आधार बनाया। एक मनीषी न तो यहाँ तक कह दिया, 'हे कार्य ! तुम्हीं मेंरी कामना हो, तुम्हीं मेरी प्रसन्नता हो, तुम्हीं मेरा आनन्द हो।

इसमें कोई संदेह नहीं कि तुच्छ से महान्, असहाय से समर्थ–शक्तिशाली, रंक से राजा, मूर्ख से विद्वान, सामान्य से असामान्य बनने वाले वे छोटे से लेकर बड़े सभी कार्य हैं जो समय–समय पर हमारे सामने आकर उपस्थित होते हैं। किन्तु एक हम हैं जो अनेक शिकायतें करके अपने कर्मदेव का अपमान करते हैं और वह हमारे द्वार से लौट जाता है तब हमको पश्चाताप करने और हाथ मलने के लिये ही विवश होना पड़ता है।

कभी–कभी हम शिकायत करते हैं " यह काम तो बहुत छोटा है। यह मेरे व्यक्तिव के अनुकूल नहीं है, मैं इन तुच्छ कामों के लिए नहीं हूँ" आदि–आदि। लेकिन हमने कभी यह भी सोचा है उद्गम से आरम्भ होने वाली नदी प्रारम्भ में इतनी छोटी होती है कि उसे एक बालक भी पार कर सकता है। एक विशाल वृक्ष जो बहुतों को छाया दे सकता है, मीठे फलों से तृप्त कर सकता है, अनेक पक्षियों का बसेरा होता है, आरम्भ में एक छोटा–सा बीज ही था, जो तनिक सी हवा के झोंके से उड़ सकता था। एक छोटी–सी चिड़िया भी उसे निगल सकती थी, एक चींटी उसे उठा कर ले जा सकती थी। बहूमूल्य मोती प्रारम्भ में एक साधारण–सा बालू का कण ही होता है।

यही स्थिति हमारे सामने आने वाले कार्यों की भी है। प्रत्येक महान् और असाधारण बनाने वाला काम भी प्रारम्भ में छोटा, सामान्य लगता है। किन्तु कर्मवीर जब उसमें एकाग्र होकर लगते हैं वे ही महान् असाधारण महत्त्व के कार्य बन जाते हैं।

वैज्ञानिक बनने की आकांक्षा रखने वाले बालक एडीसन को उसके शिक्षक ने पहले घर में झाड़ू लगाने का काम सौंपा था और जब शिक्षक ने देखा कि इस कार्य में भी बालक की वैज्ञानिक प्रतिभा और गहरी दिलचस्पी काम कर रही है, तो उसे विज्ञान की शिक्षा देनी प्रारम्भ की और वह अपने इस सद्गुण को विकसित करता हुआ वैज्ञानिक बना। प्रत्येक महान बनने वाले व्यक्ति के जीवन का प्रारम्भ उन छोटे-छोटे कार्यक्रमों से ही होता है जिन्हें हम छोटे, तुच्छ समझकर मुँह फेर लेते हैं। उन छोटे-छोटे कार्यों का जिन्हें हम छोटे, महत्त्वहीन, सामान्य कहकर टाल देते हैं, हमारे जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन पर ही हमारे जीवन की महानताओं का भवन खड़ा होता है। एक-एक कण मिलकर ही वस्तु का आकार-प्रकार बनाते हैं। विशालकाय इन्जन में एक कोल का भी अपना महत्व होता है। उसे निकाल दीजिये सारा इन्जन बेकार हो जायगा। बड़े भवन में एक छोटे से पत्थर को भी अस्थिर और ढीला–ढाला छोड़ दिया जाय तो उसके गिर जाने का खतरा रहेगा। हमारे जीवन में आने वाले छोटे-छोटे कार्य मिलकर ही महान जीवन का सूत्रपात करते हैं लेकिन जब हम अपने कामों को छोटे और महत्त्वहीन समझकर उन्हें भली प्रकार नहीं करते तो वे हमें बहुत बड़ा शाप देते हैं, जिससे हमारे जीवन की सफलता अधूरी अपंग रह जाती है।

काम जो सामने खड़ा है उसमें रुचि–अरुचि का प्रश्न उठाना उसी तरह अयुक्त है जिस तरह गर्मी के दिनों में सर्दी की कामना करना। गर्मी है तो इसी में रहने का अभ्यास डालना पड़ेगा जो काम हमारे सामने हैं उसे पूरा करने में जुट जाना हमारा वर्तमान धर्म है, महत्वाकांक्षा या रुचि के अनुसार सब कुछ तुर्त–फुर्त नहीं हो जाता है। धीरे–धीरे ऐसी भी परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं जब मनुष्य को अपनी रुचि के अनुसार काम करने को मिले किन्तु यह तभी सम्भव है जब हम वर्तमान में जो काम सामने है उसे पूरा करने में लगे रहें। रुचि के अनुकूल काम कब मिलेगा यह भविष्य पर निर्भर है किन्तु जो आवश्यक और अनिवार्य है, वह है अपने प्रत्येक काम से प्यार करना, उसमें रस लेना और बड़ी तन्मयता लगन के साथ उसे पूर्ण करना। इसी से हमारा उद्धार हो सकेगा।

इच्छानुसार काम की प्रतीक्षा में मनुष्य को सम्पर्ण जीवन ही बिता देना पड़े तो कोई संदेह नहीं कि ऐसे व्यक्ति के लिये जीवन में कभी भी ऐसा काम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं आयेगा। बिना रूचि से किये गये काम न पूर्ण होते हैं ने उनका कोई ठोस परिणाम ही मिलता है।

अपने काम में रुचि–अरुचि का प्रश्न उठाना अनुपयुक्त है। यह एक तरह से अपनी अकर्मण्यता और आलस्य को प्रोत्साहन देना है। मानव–मन की यह विशेषता है कि वह जिस प्रकार के भावों से प्रभावित होता है वैसा ही बनता जाता है काम में रुचि–अरुचि का अभ्यस्त मन आगे चलकर ऐसा बन जाता है कि उसे किसी भी काम में रुचि नहीं रहती और वह उसे अधूरा छोड़ देता है। ऐसे व्यक्ति एक काम को हाथ में लेते हैं। नये–नये काम आरम्भ करते रहते है और थोड़े समय के बाद उससे भी अरूचि हो जाती है तो दूसरे में लगते हैं। तात्पर्य यह है कि वे किसी भी काम में दृढ़ स्थिर नहीं रह पाते। दूसरी और जब उपस्थित काम में हम प्रयत्न पूर्वक लग जाते हैं तो थोड़े समय में ही रूचि भी वैसी ही बन जाती है। इसलिये रूचि–अरूचि का प्रश्न उठाना असन्तुलित मनोभूमि का कारण है। आलस्य प्रमाद की प्रेरणा से ही मनुष्य इस तरह की मीनमेंख निकालता रहता है।

कई बार अपने काम में धैर्य और निष्ठा का अभाव में सफलता के द्वार से वापस लौटा देता है तब हमारी शिकायत होती है " कब तक करते रहेंगे" मनुष्य की यह एक स्वाभाविक कमजोरी होती है वह तुर्त–फुर्त अपने काम का परिणाम देख लेना चाहता है। जिस तरह बच्चे खेल खेलने में आम की गुठली मिट्टी में गाढ़ते हैं और उसे जल्दी–जल्दी बार–बार उखाड़कर देखते हैं कि कहीं आम का पेड़ उग तो नहीं आया ? वे भोले बालक यह नहीं जानते कि कहीं कुछ मिनट में ही आम का पौधा कभी उगता है ? अपने काम के परिणाम के बारे में जल्दी–जल्दी सोचना इसी तरह की बचकानी प्रवृत्ति है। यह निश्चित है कि अच्छे उद्देश्य से भली प्रकार किया गया काम समय पर अपने परिणाम अवश्य प्रदान करता है। लेकिन किसी काम का फल कब मिलेगा इसका ठीक–ठीक सामाधान सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता। इसलिये अपने काम के परिणाम के बारे में अधिक सोच–विचार न करके कर्मवीर के सामने एक ही मार्ग है कि वह जब तक सफलता न मिले अपने काम में डूबा रहे।

आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने काम से प्यार करें, उसकी इज्जत करें। कर्म साधना में पूर्ण तन्मय हो जायें। काम के प्रति छोटे–बड़े, रूचि–अरूचि, कब तक करेंगे आदि शिकायतें न करें। तभी हम देखेंगे कि हमारा काम ही हमें जीवन के महान वरदानों से परिपूर्ण कर देगा। वस्तुतः काम करना हमारे स्वभाव का आवश्यक अंग होना चाहिये। इस प्रकार की कार्य पद्धति कार्य को कर्मयोग बना देती है और सामान्य जीवनचर्या के बीच भी मनुष्य लौकिक सफलता तथा उच्च आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त करता है।

भक्तियोग का वास्तविक स्वरूप

आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध

आत्मा परमात्मा का ही अंश है। जिस प्रकार जल की धारा किसी पत्थर से टकराकर छोटे–छीटों के रूप में बदल जाती है, उसी प्रकार परमात्मा की महान् सत्ता अपने क्रीड़ा विनोद के लिए अनेक भागों में विभक्त होकर अगणिक जीवों के रूप में दृष्टिगोचर होती है। सृष्टि संचालन का क्रीड़ा-कौतुक करने के लिए परमात्मा ने इस प्रकार की रचना की। वह अकेला था। अकेला रहना उसे अच्छा न लगा, सोचा एक से बहुत हो जाऊँ। उसकी यह इच्छा ही फलवती होकर प्रकृति के रूप में परिणित हो गई। इच्छा की शक्ति महान् है। आकांक्षा अपने अनुरूप परिस्थितियाँ तथा वस्तुयें एकत्रित कर लेती है विचार ही कार्य रूप में परिणित होते हैं और उन कार्यों की साक्षी देने के लिए पदार्थ सामने आ खड़े होते हैं। परमात्मा की एक से बहुत होने की इच्छा ने ही अपना विस्तार किया तो यह सारी वसुधा बनकर तैयार हो गई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमात्मा ने अपने आपको बखेरने का झंझट भरा कार्य इसलिये किया कि बिखरे हुये कणों को फिर एकत्रित होते समय असाधारण आनन्द प्राप्त होता रहे। बिछुड़ने में जो कष्ट है उसकी पूर्ति मिलने के आनन्द से हो जाती है। परमात्मा ने अपने टुकड़ों को, अंश जीवों को बखेरने का विछोह-कार्य इसलिये किया कि वे जीवन परस्पर एकता, प्रेम, सद्भाव, संगठन, सहयोग का जितना प्रयत्न करें उतने आनन्दमग्न होते रहें। प्रेम और आत्मीयता से बढ़कर उल्लास इस पृथ्वी पर और किसी वस्तु में नहीं है। इस प्रकार एकता और संगठन से बढ़कर शक्ति का स्रोत और कहीं नहीं है। अनेक प्रकार के बल इस संसार में मौजूद हैं पर प्राणियों की एकता के द्वारा जो शक्ति उत्पन्न होती है, उसकी तुलना और किसी से नहीं की जा सकती। पति-पत्नी, भाई-भाई, मित्र-मित्र, गुरू-शिष्य आदि की आत्मीयता जब उच्चस्तर तक पहुँचती है तो उस मिलन का आनन्द और उत्साहवर्द्धक प्रतिफल इतना सुन्दर होता है कि प्राणी अपने को कृतकृत्य कानता है।

कबीर का एक दोहा प्रसिद्ध है–

राम बुलावा भेजिया कबिरा दीना रोय।
जो सुख प्रेमी संग में सो बैकुण्ठ न होय।।

इस दोहे में बैकुण्ठ से अधिक प्रेमी के सान्निध्य को बताया गया है। कबीर प्रेमी को छोड़कर स्वर्ग जाने में दुःख मानते और रोने लगते हैं। वस्तु स्थिति यही है। सच्चे प्रेम में ऐसा ही आनन्द होता है । जहाँ मनुष्य–मनुष्य के बीच में निष्कपट, निःस्वार्थ आन्तरिक और सच्ची मित्रता होती है, वहाँ गरीबी आदि की कठिनाइयाँ गौण रह जाती हैं और अनेक अभावों एवं परेशानियों के रहते हुए भी व्यक्ति उल्लास भरे आनन्द का अनुभाव करता है।

उपासना में प्रेम का अभ्यास एक प्रमुख आधार है। ईश्वर की भक्ति करने का अर्थ है–आदर्शवाद प्रेम के विकास का आधार भी यही है। सच्चे और ईमानदान मनुष्यों के बीच ही दोस्ती बढ़ती है और निभती है। धूर्त और स्वार्थी लोगों के बीच तो मतलब की दोस्ती होती है वह जरे सा आघात लगते ही कांच के गिलास की तरह टूट-फूट कर नष्ट हो जाती है। लाभ में कमी आते ही तोते की तरह आंखें फेर ली जाती है। यह दिखावटी धूर्ततापूर्ण मित्रता तो एक प्रवंचना मात्र है, पर जहाँ जितने अंशों में सच्चा मैत्रीभाव होगा। वहाँ आनन्द सन्तोष और प्रफुल्लता की निर्झरिणी निरन्तर झरती रहेगी। यदि कुछ लोगों का परिवार या संगठन प्रेम के उच्च आदर्शों पर आधारित होकर विकसित हो सके तो वहाँ उस परिवार के सभी सदस्यों को विकास एवम् हर्षोल्लास का परिपूर्ण अवसर मिलता रहेगा। जिस समाज में सच्ची मित्रता, उदारता सेवा और आत्मीयता का आदर्श भली प्रकार फलने लगता है, वहाँ निश्चित रूप में स्वर्गीय वातावरण विनिर्मित होकर रहता है। देवता जहाँ कहीं भी रहते होंगे वहाँ उनके अच्छे स्वभाव ने प्रेम का वातावरण बना रखा होगा और उस भाव–प्रवाह ने वहाँ स्वर्ग की रचना कर दी होगी। स्वर्ग यदि कहीं हो सकता है तो उसकी सम्भावना वहीं होगी जहाँ सज्जन पुरुष प्रेमपूर्वक मिल-जुल कर आत्मीयता, उदारता, सेवा और सज्जनतापूर्वक रह रहे होंगे।

शास्त्रों के अनुसार उपासना से स्वर्ग की प्राप्ति का जो महात्म्य बताया गया है उसमें उपासना करने वाले को भक्ति-मार्ग अपनाना पड़ता है। परमात्मा को, आत्मा को, आदर्शवाद को जो भी प्यार करना सीख लेगा अनिवार्यतः प्राणिमात्र से प्रेम का अभ्यास होगा और इस कारण के रहने से उसका निवास स्थान एवं समीपवर्ती वातावरण स्वर्गीय अनुभूतियों से ही भरपूर रहेगा। उपनिषद् का वचन है– "रसो वै सः" अर्थात् प्रेम ही परमात्मा है। बाइबिल में भी इसी तथ्य की पुष्टि की है और मनुष्य को प्रेमी स्वभाव का बनने पर जोर देते हुए कहा है कि जो प्रेमी है ईश्वर का सच्चा भक्त कहलायेगा। भक्ति की महिमा से अध्यात्म शास्त्र का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है। भक्ति से मुक्ति मिलन की प्रतिष्ठापना की गई है। भक्त के वश में भगवान को बताया गया है। इन मान्यताओं का कारण एक ही है कि प्रेम की हिलोरें जिस अन्तरात्मा में उठ रही होंगी उसका स्तर साधारण न रहेगा जिसमें दिव्य गुण, दिव्य स्वभाव का आविर्भाव होगा वही दिव्य कर्म भी कर सकेगा। ऐसे ही व्यक्तियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को देवता कह कर पुकारा जाता है। जहाँ देवता रहेंगे वहाँ स्वर्ग तो अपने आप ही होगा।

प्रेम का अभ्यास ईश्वर को प्रथम उपकरण मानकर किया जाता है। सूक्ष्म ब्रह्म की उपासना जिन्हें कठिन पड़ती है वे साकार प्रतिमा बनाकर अपनी भावनाओं को किसी पूजा प्रतीक पर केन्द्रित करते हैं फलस्वरूप निर्जीव होते हुए भी वह माध्यम सजीव हो उठता है मूर्ति पूजा का तत्त्वज्ञान यही है। इस बात को हर कोई जानता है कि देव प्रतिमा पत्थर या धातु की निर्जीव होती है उनमें जीवन होने की बात कोई सोचता नहीं। पर यह आध्यात्मिक तथ्य मूर्ति–पूजा के माध्यम से प्रकाश में लाया जाता है कि जिस किसी से प्रेम किया जायगा, जिसके लिये भी आस्था और श्रद्धा का प्रयोग किया जायगा वह वस्तु चाहे निर्जीव हो या सजीव, भक्त की भावना के अनुरूप फल देने लगेगी। मूर्ति–पूजा करते हुए साकार उपासना करने वाले अगणित भक्तजन जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकने में सफल हुए हैं। मीरा, सूर, तुलसी, राम कृष्ण परमहंस आदि की साकार उपासना निरर्थक नहीं गयी, उन्हें परमपद तक पहुँचा सकने में ही समर्थ हुई।

रबर की गेंद दीवार पर मारने से लौटकर फेंकने वाले के पास ही पीछे को लौटती है। कुएँ में मुँह करके आवाज लगाने से प्रतिध्वनि गूंजती है। उसी प्रकार इष्टदेव को दिया प्रेम लौटकर प्रेमी के पास ही आता है और उस प्रेम प्रवाह से रससिक्त हुआ अन्तरात्मा ईश्वर मिलन ब्रह्म साक्षात्कार एवं भगवत् कृपा का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। एकलव्य भील की बनाई हुई मिट्टी की द्रोणाचार्य की प्रतिमा उसे उतनी शस्त्र–विद्या सिखाने में समर्थ हो गई जितनी कि गुरू द्रोणाचार्य स्वयं भी नहीं जानते थे। मिट्टी के द्रोणाचार्य में एकलव्य की जो अत्यन्त निष्ठा थी, उसके कारण ही वह प्रतिक्रिया सम्भव हो सकी कि वह भील बालक उस युग का अनुपम शस्त्र–चालक बन सका। ईश्वर के साकार व निराकार स्वरूप का ध्यान पूजन, तप, अनुष्ठान करते हुए साधक अपनी प्रेम भावना, श्रद्धा और निष्ठा को ही परिष्कृत करता है। इस मार्ग में वह जितनी प्रगति कर सके उतनी ही ईश्वरानुभूति का परमानन्द उसे उपलब्ध होने लगता है।

साधना यदि सच्चे उद्देश्य से की गयी हो तो उसका परिणाम यह होना चाहिए कि उपासक के मन में प्रेम की धारा प्रवाहित होने लगे वह अपनी आत्मा को प्राणिमात्र में देखे। दूसरों का दुःख उसे अपने निज के दुःख जैसा कष्टकारक प्रतीत हो और दूसरों को सुखी, समुन्नत देखकर अपनी श्री समृद्धि की भाँति ही सन्तोष का अनुभव करें। प्रेम का अर्थ है–आत्मीयता और उदारता। जिसके साथ प्रेमभाव होता है, प्रेम अपने को कष्ट और संयम में रखता है और अपने प्रेमपात्र को सुविकसित, सुन्दर एवं सुरम्य बनाने का प्रयत्न करता है। सच्चे–प्रेम का यही एक मात्र चिह्न है कि जिसके प्रति प्रेम-भावना उपजे उसे अधिक सुन्दर, अधिक उज्ज्वल एवम् प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाय।

प्रेम जो मनुष्य का मनुष्य के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है उसे उसकी सत्ता के मूल स्रोत में पहुँचा देता है। जो वस्तु मनुष्य समाज को धारण किये रखती है उसके विकास और नैतिक उत्कर्ष में सहायता देती है, यह प्रेम ही है यदि मनुष्य के बीच प्रेम का आदान–प्रदान न रहा होता और मानवजाति का प्रगति के मूल में प्रेम का प्रेरक भाव न होता तो नैतिक क्षेत्र में उसने कोई भी उन्नति न की होती।

मनुष्य विकास क्रम में सृष्टि के अन्य जीवों की अपेक्षा बहुत पीछे है। संसार के अन्य प्राणियों में जो नैतिक मर्यादायें देखी जाती हैं, वे ईश्वर प्रदत्त होती हैं। यदि उसे केवल अपना ही ध्यान रहा होता, अपने स्वार्थों की फिक्र रही होती, अपने ही सुख सुहाये होते तब न तो उसे समाज–सेवा के लिये प्रोत्साहन मिला होता, न व्यक्तिगत जीवन में पराक्रम करने की प्रेरणा मिला होती। प्रेम की शक्ति का साम्राज्य आज सुव्यवस्थित और सुनियोजित विश्व के रूप में देखने को मिल रहा है।

प्रेम के बगैर मनुष्य मुर्दा है। जब मनुष्यों में प्रेम का अभाव होगा तो कोई आकर्षण भी किसी चीज के लिए न होगा और जब आकर्षण न होगा तो क्रिया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न होगी, तो यह सारा संसार नीरव, उदासीन और जड़वत् हो जायगा। इसलिए प्रेम ही जीवन है।

ईश्वर–उपासना में इस उदात्त भावना का दर्शन संसार में सभी धर्मों में पाया जाता है। भगवान् को प्रेममय समझ कर प्रेम मार्ग द्वारा उनकी साधना सभी देशों के भक्तों एवं साधकों में देखी जाती है। उपनिषद् में भगवान् को "मधुब्रह्म" कहा है यह उसके विशुद्ध प्रेममय स्वरूप ही है। परमात्मा प्रेम द्वारा ही मधुर होता है– "मधुक्षरन्तिद्ब्रह्म" जिससे मधु–अर्थात् प्रेम प्रकीर्ण होता है वही ब्रह्म है अपने इसी रूप में ये भक्त के लिये, आराधक के लिये पुत्र, धन, आत्मीय, स्वजन–इन सबसे बढ़कर प्रियतम हो जाते हैं।

प्रेम ही परमेश्वर है

प्रेम मानव-जीवन की महान् कसौटी है। इससे मनुष्य के दृष्टिकोण, हृदय की विशालता एवं बुद्धि की सूक्ष्मता का पता चलता है। जिसके हृदय में प्रेम का प्रकाश जगमगाता है वह मनुष्य उत्कृष्ट होता है। मनुष्य शरीर में देवत्व प्राप्त करने का सौभाग्य उन्हें मिलता है जो प्रेम करना जानते हैं। प्रेम मानव-जीवन की सर्वोच्च प्रेरणा है। शेष सभी भाव आश्रित भाव हैं। स्वाधीन और सद्गति दिलाने वाली आन्तरिक प्रेरणा प्रेम है जिनसे संसार की रचना होती है, जीवन समृद्ध बनता है और मानव जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

प्रेम हृदय की उस पवित्र भावना का शब्द रूप है जो अद्वैत का बोध कराती है। 'मैं' और 'तुम' के विलगाव का भाव वहाँ नहीं होता। इसलिये समष्टिगत विशाल भावना का नाम प्रेम माना गया है। यह विशुद्ध बलिदान है। त्याग और आत्मोत्कर्ष की भावना है। जिसमें मनुष्य अपने हितों का अपने प्रेमी के लिए हवन करते हुए असीम तृप्ति का अनुभव करता है। बदले की भावना से नहीं जो केवल प्रेम करता है वही सच्चा प्रेम है।

साधारण तौर पर अपनी प्रेरणा का आधार अपना स्वार्थ होता है। अपने "स्व" या "अहम्" की पूर्ति के लिये सब कुछ करते हैं, भूख मिटाने शृंगार-सजावट करने, महल उठाने, जायदाद जमा करने की सम्पूर्ण चेष्टाओं के पीछे अपने स्वार्थ काम किया करते हैं। इससे अपनी इच्छा–आकांक्षाओं की पूर्ति तो होती है किन्तु अन्तःकरण का वह आध्यात्मिक भाव जागृत नहीं होता जिसमें प्रेम का स्वाद चखा जा सके। यह लेन–देन जीवन का साधारण नियम है। जब हम इससे आगे बढ़ते हैं और लेने के संकीर्ण भाव को समाप्त कर देते हैं तो प्रेम का उदय होता है। इसमें सब देना ही देना है। प्रेम का पुरस्कार केवल प्रेम है और किसी दूसरी वस्तु से इसे खरीदा या बेचा नहीं जा सकता।

यह भाव जितना विस्तृत होता जाता है मनुष्य का व्यक्तिव भी उसी क्रम से परिष्कृत होने लगता है। आरम्भ में यह यह भाव अपने ऊपर तक रहता है जो कुछ खायें हम खायें, जो अच्छा हो वह हम पहनें आदि की स्वार्थपूर्ण भावनाओं से मनुष्य अपने को ही जब तक प्राथमिकता देता रहता है तब तक वह प्रेम की अनुभूति नहीं कर पाता। इसलिये तब तक बड़ी अस्थिरता, चंचलता और अशान्ति बनी रहती है। धीरे–धीरे इसका परिष्कार होने लगता है। धर्मपत्नी आ जाती है तो अपने स्वार्थों में कटौती करते हैं। अब प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। अपनी व्यष्टि जितनी ही समाप्त होती चली जाती है उतनी ही प्रेमपूर्ण भावनायें बढ़ने लगती हैं। पुत्रों के प्रति, गांव, समाज, देश और जाति के प्रति, धर्म और संस्कृति के प्रति अपने स्वार्थों का त्याग करते–करते पूर्ण आन्तरिक परिष्कार हो जाता है और हम इस योग्य हो जाते हैं कि विश्वात्मा का सान्निध्य सुख प्राप्त कर सकें।

जब यह उत्सर्ग की भावना प्राणिमात्र के प्रति जाग्रत होने लगती है तो सच्चे प्रेम की अनुभूति होने लगती है। इसलिये गीताकार ने सन्देश दिया है– **आत्मनं सर्वभूतेषु सर्वभूतानि चात्मनि। इक्षते योगंयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः।।**

अर्थात्–"सभी भूत प्राणियों में एक ही आत्मा समाया हुआ है इसलिये सभी को समभाव से देखते हुए सभी के साथ प्रेम करना चाहिये।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रेम संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। जिसे बड़ी–बड़ी मशीनें, अस्त्र–शस्त्र और बलवान् मनुष्य नहीं जीत पाये, उसे प्रेम की कोमल भावनायें जीतने में समर्थ हुई हैं।

महापुरुष ईसा ने लिखा है– "हमें एक–दूसरे से प्रेम करना चाहिए, क्योंकि प्रेम ही ईश्वर है। ईश्वर को वही जानता है जो प्रेम करता है।" परमात्मा की उपासना का मूल आधार प्रेम है। जो अपने सजातीयों से प्रेम करता है वही सच्चा ईश्वर भक्त है।

भगवान कृष्ण ने जिस कर्मयोग की आवश्यकता पर गीता में अधिक बल दिया है, उसका आधार भी प्रेम ही है। यह निश्चित बात है कि जब तक स्वार्थपूर्ण भावनाओं का उन्मूलन नहीं होता तब तक विशुद्ध कर्तव्य-भावना का उदय नहीं होता। इसलिये जैसे ही हम फल की भावना रहित होकर केवल कर्तव्य की दृष्टि से काम करने लगते हैं वैसे ही अपने अन्तःकरण में सच्चे प्रेम का प्रादुर्भाव होने लगता है। प्रेम के बिना कर्म की पूर्णता में विश्वास नहीं किया जा सकता। कर्म-कौशल, जो प्रेम की प्रेरणा से हो यही योग है।" ऐसा भगवान कृष्ण ने गीता में प्रतिपादित किया है। इन शब्दों से प्रेम के स्वयं योग होने की बात पुष्ट होती है अर्थात् परमात्मा को प्राप्त करने का सबसे सीधा रास्ता और सरल उपाय विशुद्ध प्रेम ही है।

किन्तु आत्म–बलिदान का मार्ग कठिन भी उतना ही है। संसार में पुरुष-प्रेम, नारी-प्रेम, देश, जाति या संस्कृति का प्रेम कोई भी क्यों न हो, उसके लिए एक परीक्षा निश्चित है। जो इस परीक्षा में अन्त तक धैर्यपूर्वक टिके रहते हैं उन्हें ही लक्ष्य की प्राप्ति होती है। महापुरुषों में सदैव ही यह परीक्षा दी है, उन्होंने मार्ग में बिछे हुये काँटों को भी फूलवत् हंस-हंस कर चुना है। कठिनाइयों, मुसीबतों और आपदाओं को अपनी छाती से लगाया है। तब कहीं जाकर उन्हें महान् कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ। कृष्ण प्रेम में मतवाली मीरा को यमुना में फेंका गया, विष दे दिया, घर से निष्काषित कर दिया, किन्तु उसकी निष्ठा में राई-रत्ती भर भी कमी नहीं आई। तब कहीं मीरा महान् बनी। देश–प्रेम के दीवाने राणाप्रताप जंगलों-जंगलों भटके, मिट्टी के बरतनों में घास की रोटियाँ खाईं, किन्तु अकबर की दासता उन्होंने स्वीकार नहीं की। राणाप्रताप इस तितिक्षा पर कस कर धन्य हुये।

इस संसार में आये दिन लोग जन्म लेते हैं और सैकड़ों तादाद में रोज मरते रहते हैं, किन्तु जिन्होंने अपने सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक विश्वास किया जो अपनी आस्थाओं के प्रति सदैव ईमानदार बने रहे, जिन्होंने प्रेम किया और जीवन की आखिरी सांस तक इस व्रत का निर्वाह किया, उनका हाड़–मांस का तन भले ही नष्ट हो गया हो, पर उनका यश शरीर युग–युगान्तरों तक लोगों को प्रेरणा व प्रकाश देता रहता है।

चरित्र का उत्कृष्ट रूप प्रेम है। यह मानवता का सर्वश्रेष्ठ साधन है, जिससे आत्म-बल प्राप्त होता है। निर्भीकता, दृढ़ता, साहस, पवित्रता, त्याग, सत्यनिष्ठा और कर्तव्य-भावना का आधार शुद्ध और पवित्र प्रेम है। इसे अपने जीवन में धारण करने वाला पुरुष मानव न रहकर महामानव और देवता बन जाता है जाति का जीवन खिल उठता है। ऐसे कर्तव्यनिष्ठ नागरिकों के बाहुबल से ही राष्ट्रों के हित फलते–फूलते हैं, प्रेम मानव-जीवन की सार्थकता हैं। प्रेम विहीन जीवन तो पशुओं का भी नहीं होता।

प्रेम एक निर्मल झरना है। उसके प्रवाह में जो भी आ जाता है, वह निर्मल हो जाता है। पात्र और कुपात्र से घृणा जैसे झरने के स्वच्छ प्रवाह में नहीं होती है, वैसे ही प्रेमी के अन्तःकरण में किसी प्रकार की ईर्ष्याद्वेष या घृणा की भावनायें नहीं होतीं। महात्मा गाँधी अपने आश्रम में हाथों से एक कोढ़ी की सेवा-सुश्रुषा किया करते थे। इससे उन्हें कभी भी घृणा पैदा नहीं होती थी। प्रेम की विशालता में ऊपर से जान पड़ने वाली मलिनतायें भी वैसे ही समा जाती हैं जैसे हजारों नदियों का कूड़ा–कबाड़ा समुद्र के गर्भ में विलीन हो जाता है। प्रेम आत्मा के प्रकाश से किया जाता है। आत्मा यदि मलिनताओं से ग्रसित है तो भी उसकी नैसर्गिक निर्मलता में अन्तर नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आता। यहीं समझकर उदारमना व्यक्ति अपनी सहानुभूति से किसी को भी वंचित नहीं करते।

प्रेम साधन या वस्तुएँ नहीं मांगता। धर्मपत्नी को चाहे जिस स्थिति में रखें, वह अपने पति के प्रेम में कम या अधिक की दुर्बल प्रवृत्ति से दूर बनी रहती है। पति की जितनी आय, साधन और परिस्थितियाँ होती हैं उन्हीं में सच्चा सुख मानती है। जिन दम्पत्तियों में ऐसी भावनायें होती हैं, वे अनेक अभाव रहते हुये भी असीम सुख का अनुभव करते हैं। प्रेम की सच्ची परख भी यही है कि अभाव और अयोग्यता के कारण भी सहृदयता और कर्तव्य-भावना में किसी प्रकार का विक्षेप उत्पन्न न हो।

सच कहें तो मानव–जीवन का आज तक जो भी विकास हुआ है, वह प्रेम का सबल पाकर हुआ है। घृणा और ईर्ष्या–द्वेष के कारण लोगों के दिल–दिमाग बेचैन, उदास और खिन्नमना बने रहते हैं। निर्माणकर्ता प्रेम है जिससे विशुद्ध कर्तव्य–भावना का उदय होता है। हम यदि इस भाव को अपने जीवन में धारण कर पायें तो अमीरी या गरीबी, शहर में रहते हों या गाँव में मकान पक्का हो अथवा कच्चा, एक ऐसा जीवन जी सकते हैं जिसे सुखी जीवन कह सकें। कहते है परमात्मा की उपासना से बड़े सुख मिलते हैं। वह सुख प्रेम का ही प्रसाद प्रेम की पूजा ही परमात्मा की पूजा है। फिर हम भी प्रेमी ही क्यों न बनें ?

प्रेम से भगवान का दर्शन

जो चैतन्य सत्ता इस स्थूल संसार का धारण–पोषण कर रही है, जो आत्म रूप में सबमें व्याप्त है, वह प्रेम ही है। व्यष्टि और समष्टि में आत्मा का वह प्रेम–प्रकाश की ईश्वर की मंगलमयी रचना का सन्देश दे रहा है। जब मनुष्य आत्मा के उस प्रेम प्रकाश का अवलम्बन लेता है तभी वह संसार को आनन्द और सुखों का घर मानने लगता है और तभी उसे सच्चा सुख मिलता है। प्रेम ही आत्मा का प्रकाश है। जो इस प्रकाश में जीवन-पथ पर अग्रसर होता है, उसे संसार शूल नहीं फूल नजर आता है, दुःखों का घर नहीं वरन् स्वर्ग मालूम होता है।

प्रेम ही एक ऐसा प्रकाश है जिसका अवलम्बन लेकर मनुष्य इस संघर्षमय संसार में जीवन–यात्रा को सफल कर सकता है। प्रेम ही जीवन की सर्वोच्च प्रेरणा है। अन्य प्रेरणाएँ अन्धकर की जनर हैं। प्रेम–प्रेरित कर्मों से संसार की रचना होती है। अन्य तो उसके विनाश और बुराई बढ़ाने का कारण बनते हैं। जीवन को समृद्ध बनाने, परम ध्येय की मंजिल तक ले जाने का एक ही रास्ता, एक ही नियम है, वह है प्रेम। आत्मा का प्रकाश प्रेम है, वही प्रभु का विधान मंगलमयी सृष्टि के लिये है। जो इसे जीवन में प्रधानता देता है उसके लिये संसार ही स्वर्ग है, प्रभु का मन्दिर है, जीवन–क्रीड़ा सुन्दर उद्यान है।

प्रेम का लक्ष्य प्रेम स्वरूप की प्राप्ति के लिये है, किन्तु हम तो जो कुछ कर रहे हैं सब अपने लिये, अपने अहम् की तुष्टि के लिये, स्वार्थ के लिये जिस काम में हमारा स्वार्थ सधता हो वही काम तो हमें अच्छा लगता है। अपनी भूख, शान्ति रक्षा, साज–सामान का इकट्ठा करने के लिये ही तो हमारी सारी कार्य प्रणाली चल रही है किन्तु यह सब तो सौदे–बाजी, लेन–देन का साधारण नियम है। प्रेम का नियम इससे बिल्कुल भिन्न है। प्रेम सौदा नहीं है प्रेम कुछ पाने की इच्छा से नहीं किया जाता बल्कि देने की भावना से किया जाता है। प्रेम पुरस्कार नहीं लेता, बदला नहीं चाहता। प्रेम दान का नियम है जो निरन्तर देता रहता है, यदि लेता है तो केवल प्रेम ही। प्रेम की पूर्ति प्रेम से होती है। स्वतः कृतार्थ होने के लिये प्रेम किया जाता है। प्रेम, प्रेम के लिये कीजिये, किसी स्वार्थ, लेने की भावना से नहीं। कुछ भी आपके पास है उन्मुक्त भाव से लुटाते रहिये प्रेम के लिये।

प्रेम किन्हीं सीमा, मर्यादा, समय, रूप, रंग, जाति, वर्ग आदि के नियमों में बंधा नहीं रहता है। वह हर समय एकरस, अचल, सब के लिये होता है। यह प्रेम साधना का दूसरा नियम है। हम किसी से सुबह प्रेम करें और शाम को न करें, वह धोखा है। मन्दिर में आँसू बहाने वाला प्रेम यदि दुःखी, क्लान्त भाइयों को देखकर द्रवित न हो तो व प्रेम नहीं ढोंग है। दूसरों का खून करने वाला व्यक्ति यदि अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर के सदस्यों से प्रेम करें तो वह प्रेम नहीं स्वार्थ है, भोग है। दूसरों के बच्चों से कटु व्यवहार करने वाले मां-बाप अपने बच्चों से प्रेम नहीं कर सकते। दूसरों के साथ धोखे–बाजी, चालाकी, कूटनीति छल–कपट बरतने वाले व्यक्ति किसी से प्रेम करें यह कठिन है। सच्चा प्रेम वह है जो घर-बाहर, मन्दिर-मस्जिद, समस्त जाति-वर्ण में एक रस एक समान व्याप्त होकर हमारी नस-नस में समा जाय और जीवन का अंग बन जाय। वही प्रेम कहलाने का अधिकारी है। यदि इस कसौटी पर उतरने वाले प्रेम-पूजकों की संख्या बढ़ जाये तो यह धरती ही स्वर्ग बन जाये।

प्रेम आत्मा का सहन प्रकाश है जो प्रत्येक जीवन में स्थिति है। उसे प्राप्त करने के लिए धन, दौलत कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता। प्रेम का अथाह समुद्र हमारे चारों ओर बाहर भीतर उमड़ रहा है, केवल आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी हृदय नगरी में जो मल, विक्षेप, अहंकार, स्वार्थ, पद–प्रतिष्ठा आदि भरे पड़े हैं उन्हें निकाल कर इस प्रेम समुद्र का मधुर अमृत भर लें। यह एक सहज और स्वाभाविक क्रिया हें किन्तु खेद है मनुष्य की अमीरी, उसकी पद–प्रतिष्ठा, अहंकार इस सहज को सफलत नहीं होने देते। यदि हमें प्रभु के प्रकाश को प्राप्त करना है तो इन बनावटी चालों का त्याग करना होगा। पीड़ित मानवता में, दीन-दुःखी भाइयों में, अन्य जीव पशु-पक्षियों के बीच हृदय खोलकर आना होगा, उन्हीं की पंक्ति में खड़ा होना होगा। यहाँ कोई निर्बल-सबल, गरीब-अमीर, ऊँच-नीच नहीं है। प्रभु के सब समान पुत्र हैं। हमें हृदय खोल कर अपने सारे भौतिक आवरणों को दूर उतार कर प्राणिमात्र से प्रेम करना है। सबके साथ सहानुभूति, सहयोग करके अपना कर्तव्य निभाना है। प्रेम सारे भौतिक आकर्षणों से ऊपर रहता है, इनका त्याग किये बिना सच्ची प्रेम–साधना सम्भव नहीं हो सकती।

महात्मा गाँधी एक कोढ़ी की स्वयं पट्टी आदि करते थे, अपने हाथों से घाव धोते थे, जबकि अन्य लोग दूर भागने का प्रयत्न करते थे। ईसामसीह, चैतन्य महाप्रभु, राम, कृष्ण आदि महापुरुषों के जीवन आज भी उनकी प्रेम-साधना के ज्वलन्त उदाहरण हैं। उनके हृदयों से प्रेम की भागीरथी निरन्तर बहती रही, जिसमें प्राणिमात्र ने अपने आपको कृतार्थ किया। वहाँ कोई भेद भाव नहीं था। इस तरह जिसके हृदय में प्रेम का अखण्ड दीप जलकर रहे, वस्तुतः वही सच्चा प्रेम है। महर्षि रमण मनुष्यों से ही नहीं प्राणिमात्र से प्रेम करते थे। सांप, बिच्छू, पशु, बन्दर, सिंह आदि उनके पास परिवार के सदस्यों की तरह आया करते थे और महर्षि उन्हें बड़े प्यार से खिलाया–पिलाया करते थे प्रेम सर्वत्र व्याप्त है, किन्तु मनुष्य ने भेद–भाव, स्वार्थ, अहंकार, राग–द्वेष का जो रंगीन चश्मा चढ़ा रखा है, इसी के कारण उसके दर्शन नहीं हो पाते और इसीलिए वह रात–दिन दुःखी–व्याकुल नजर आता है।

प्रेम के लिये अपने आपको उत्सर्ग करने वाला जीवन ही वस्तुतः जीवन कहलाने का अधिकरी है। जीवन में सभी कुछ बदलता रहता है। अवस्था, विचार, परिस्थितियाँ, मनुष्यों का श्विास, यहाँ तक कि यह देह भी बदलती है। इस परिवर्तन प्रधान संसार में यदि अजर–अमर रहता है तो वह है प्रेम।

प्रेम का मूल्य बलिदान से चुकाया जाता है। महात्मा गाँधी ने देश से, मानवता से प्रेम किया था और अन्त में इसी के लिये अपने आपको बलिदान किया। देश प्रेम के मतवाले राणाप्रताप अरावली की पथरीली घाटियों में भूखे–प्यासे फिरते रहे। धर्म से प्रेम करने वाले तेगबहादुर, गुरू गोविन्दसिंह के बच्चों ने मुगलों के हाथों सहर्ष अपना बलिदान स्वीकार किया था आजादी और देश प्रेम के अनेक मतवालों ने सूली, फांसी, गोली, तोपों को सहर्ष स्वीकार किया था। ऐसे प्रेम-पथिकों की भारत में साथ ही विदेशों में भी कमी नहीं रही, जिन्होंने अपने विश्वास, ध्येय, उद्देश्य, लक्ष्य आदि के लिए प्रेम किया अपने को जीवित ही तिल-तिल मिटाया और अन्त में इसी के लिए सहर्ष बलिवेदी पर चढ़े।

अपने आराध्य के प्रेम में मतवाली मीरा गाती थी–

ऐ री मैं तो प्रेम दिवानी मेंरो दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज पिया की किस विधि मिलना होय।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रेम के मार्ग में बेशक कांटे बिछे हुए हैं, किन्तु जब प्रेमी उन कांटों को अपने प्रेम स्वरूप के लिये फूल मानकर आगे बढ़ता है, उन्हें अपने प्रेमी के लिए दिल से लगाता है तभी मीरा का जहर अमृत बन जाता है। गाँधी जी को लगी गोली उनके अमर जीवन का कारण बन गई। भटकते हुए प्रताप आज मेंवाड़ के मुकुट बन गये। कृष्ण–प्रेम के मतवाले अन्धे सूरदास, राम प्रेम के मतवाले तुलसीदास आज घर–घर मानव–हृदय में मूर्त रूप में विराजमान हैं। जब प्रेम कांटों पर चलकर भी मतवाला, दृढ़, स्थिर बना रहता है, तभी उसका वास्तविक स्वरूप निखरता है। जो इन विपन्नताओं में परीक्षा काल में भी प्रेम–पथ पर अन्तिम सिद्धि तक पहुँच जाता है। असफलताओं में जो स्थिर रहे वही जीवित रहता है।

सत्य की उक्त कसौटियों पर अपनी प्रेम साधना के पथ पर आगे बढ़िये, तुच्छ स्वार्थों आकर्षणों, लेन–देन के लिये प्रेम शब्द का दुरूपयोग और उसके कलंकित मत कीजिये। उन्मुक्त भाव से प्रेम कीजिये समस्त मानव-जाति से, प्राणिमात्र से, समस्त-वसुधा से। प्रेम में गरीब–अमीर, ऊँचा–नीचा, मेरा-तेरा, भाषावाद, प्रान्तीयता, जाति-पांति आदि का कोई स्थान नहीं है। इन संकीर्ण बन्धनों को तोड़कर जब आप प्रेम–पथ पर अग्रसर होंगे तभी उस विश्व प्रेम स्वरूप का पुण्य साक्षात्कार सम्भव हो सकेगा। ज्योतिर्मयी आत्मा के पुण्य प्रकाश से प्रेम का अवलम्बन कीजिये और जीवन-लक्ष्य की ओर अग्रसर होइये।

परमात्मा की प्राप्ति का दिव्य साधन- प्रेम

आध्यात्मिक उन्नति की अवस्था तथा ईश्वर प्राप्ति की अन्तिम भक्ति अवस्था प्रेम है। भक्ति का स्वरूप भी निःस्वार्थ प्रेम ही कहा गया है। इस विषय में कोई विवाद नहीं है कि यह परमात्मा प्राप्ति के अन्य सभी साधनों में दिव्य एवम् सुखद साधन है और उसका प्रत्येक साधन में समावेश होना चाहिए। वस्तु कितनी ही सुन्दर क्यों न हो यदि उसके प्रति आकर्षण का भाव नहीं होगा तो न उसकी प्राप्ति का प्रयत्न ही हो सकता है और न उस प्रयत्न में चिरस्थाई ही रहा जा सकता है। प्रेम का विकसित रूप ही आध्यात्मिक गुणों– श्रद्धा, भक्ति, विकास आदि के रूप में प्रकट होता है पर ईश्वर उपासना में उसे किसी न किसी रूप में प्रकट होना आवश्यक है। इसके बिना उपासना अधूरी है, सच्ची भक्ति तो प्रेम और परमात्मा का प्रकट स्वरूप है।

प्रेम ईश्वर प्राप्ति की साधना की कसौटी है जिसमें तपकर जीवन विशुद्ध बनता है और ब्रह्म में मिलने की स्थिति को प्राप्त करता है। जीव और परमात्मा के बीच जो तादात्म्य है वह अपने शुद्ध रूप के द्वारा ही प्रकट होता है। प्रेम न होता तो पृथ्वी पर लोगों को आध्यात्मिक तत्त्वों की अनुभूति भी न होती। यह स्थिति प्रारम्भ में आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए विकलता विरह के रूप में प्रकट होती है पर जिसने स्वाभाविक रूप में वह स्थिति प्राप्त करना अपने जीवन का उददेश्य मान लिया हो तो उन्हें भी प्रेम का अभ्यास करना पड़ता है। तप, त्याग और सुख की इच्छाओं का दमन कर अन्तःकरण में प्रेम वृत्ति को जागृत करना पड़ता है।

प्रेम जो मनुष्य का मनुष्य के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है उसे उसकी सत्ता के मूल स्रोत में पहुँचा देता है। जो वस्तु मनुष्य समाज को धारण किये रखती है उसके विकास और नैतिक उत्कर्ष में सहायता देती है वह प्रेम ही है यदि मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम का आदान प्रदान न रहा होता और मानव जाति का प्रगति के मूल में प्रेम का प्रेरक भाव न होता तो नैतिक क्षेत्र में उसने कोई भी उन्नति न की होती।

मनुष्य विकास क्रम में सृष्टि के अन्य जीवों की अपेक्षा बहुत पीछे है। संसार के अन्य प्राणियों में जो नैतिक मर्यादायें देँखी जाती हैं, वे ईश्वर प्रदत्त होती हैं। यदि उनके जीवन में प्रेम परिचालक न रहा होता तो उनकी सारी नैतिक मर्यादायें भंग हो गई होती। स्वार्थ या छल कपट की अधिकता वाले प्रदेशों में आज भी इस सिद्धान्त को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

प्रेम विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली सत्ता है उसी के आधार पर मनुष्य समाज जीवित है यह न होता तो मनुष्य बड़ा दरिद्र एवम् अविकसित रहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता। उसे केवल अपना ही ध्यान रहा होता, अपने स्वार्थों की फिक्र रही होती, अपने ही सुख सुहाये होते तब न तो उसे समाज–सेवा के लिए प्रोत्साहन मिला होता, न व्यक्तिगत जीवन में पराक्रम करने की प्रेरणा मिली होती। प्रेम की शक्ति का साम्राज्य आज सुव्यवस्थित और सुनियोजित विश्व के रूप में देखने को मिल रहा है।

प्रेम के बगैर मनुष्य मुर्दा है। जब मनुष्यों में प्रेम का अभाव होगा तो कोई आकर्षण भी किसी चीज के लिये न होगा और जब आकर्षण न होगा तो क्रिया न होगी, तो यह सारा संसार नीरव, उदासीन और जड़वत् हो जायगा। इसलिए प्रेम ही जीवन है।

ईश्वर-उपासना में इस उदात्त भावना दर्शन संसार में सभी धर्मों में पाया जाता है। भगवान् को प्रेममय समझ कर प्रेम मार्ग द्वारा उनकी साधना सभी देशों के भक्तों एवं साधकों में देखी जाती है। उपनिषद् में भगवान् को 'मधु ब्रह्म' कहा है यह उसका विशुद्ध प्रेममय स्वरूप ही है। परमात्मा प्रेम द्वारा ही मधुर होता है–"मधुक्षरन्तिद्ब्रह्म" जिससे मनु–अर्थात् प्रेम प्रकीर्ण होता है वही ब्रह्म है अपने इसी रूप में वे भक्त के लिये, आराधक के लिये पुत्र, धन, आत्मीय, स्वजन, इन सबसे बढ़कर प्रियतम हो जाते हैं।

महापुरुष ईसा का कथन है–"प्रेम ही परमेश्वर है।" सन्त इमर्सन की वाणी है "परमात्मा का सार तत्त्व प्रेम है। "सभी ईसाई सन्तों ने भगवान् की साधना, आनन्द, मधुमय एवं प्रेममय रूप में ही की है।

सेंट टेरसा नामक पाश्चात्य साधिका ने लिखा है– " परमात्मा के प्रति प्रेम होता है तभी सच्ची उपासना बन पड़ती है। आत्मा के उत्थान की यह प्रारम्भिक अवस्था है। अन्त में जीव और ब्रह्म का प्रणय-संस्कार होता है तो दोनों एक दूसरे में आत्मसात् हो जाते हैं। न जीव रहता है और न परमात्मा केवल प्रेम ही शेष रह जाता है जो ब्रह्म के समान सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् दिखाई देता है।

मुसलमानों में सूफी सन्तों की प्रेममई भक्ति-धारा बहुत प्रसिद्ध हुई है। इन सन्तों ने परमात्मा की उपासना प्रियतमा (माशूका) के रूप में की है और जीवात्मा को प्रेमी आशिक के रूप में माना है। इस प्रेम भक्ति का सुन्दर प्रवाह जायसीकृत "पद्मावत" में भली-भाँति देखने को मिलता है। जलालुद्दीन भक्त बड़े प्रेमी सन्त हुए हैं उन्होंने लिखा है–"तुम्हारे हृदय में परमात्मा के लिये प्रेम होगा तो उसे भी तुम्हारी चिन्ता अवश्य होगी।"

जिस प्रेम–शक्ति का सन्तों, अध्यात्म–तत्त्ववेत्ताओं ने इतना समर्थन किया है वह मनुष्य जीवन में अवतरित होकर किस प्रकार उसे अन्दर ब्रह्म की ओर विकसित करती है यह जानने योग्य है। लोगों के अन्तस में अनेक बुरी वृत्तियाँ हैं– काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, कुसंगति, चोरी, व्यसन आदि। इन्हें जीते और दूर करने का प्रयास जीवन भर करते रहते हैं तो भी वे दूर नहीं हो पातीं। मन स्वभावतः कुमार्गगामी होता है और वह किसी भी नियम-बन्धन को मानने के लिये तैयार नहीं होता। ऐसी अवस्था में लोग यह मान कर निराश हो जाते हैं कि इन बुराइयों से बचने का कोई उपाय नहीं है। पर यदि मनुष्य के अन्तःकरण में प्रेम जागृत हो सका तो उसे इन्हें जीतने में कोई कठिनाई नहीं होती। प्रेमी के लिये कुछ उत्सर्ग करने में या अभावग्रस्त जीवन जीने में तो आनन्द है। मनुष्य का मन प्रेम का गुलाम है। प्रेम की शक्ति के सहारे उसे जिस मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया जाय वह उसी पर चलने के लिये तैयार हो जाता है, प्रेम ही मानव जीवन के उत्थान का यह आध्यात्मिक रहस्य है।

असीम सुख की प्राप्ति के लिये प्रेमी अपने आपको घुलाता है और इसमें उसे एक अनिर्वचनीय तृप्ति मिलती है। प्रेम का वास्तविक स्वरूप अपने आपको प्रेमी के प्रति आत्मोत्सर्ग करना ही होता है। उसका उदात्त रूप बच्चे के प्रति माता के वात्सल्य में दीख पड़ता है। प्रेमवश माता बच्चे के ध्यान में अपने आपको बिलकुल विस्मृत कर देती है। उसे अपनी सुख-सुविधा, विश्राम, निद्रा और भूख-प्यास की कोई सुध नहीं रहती।

ईश उपासना में ऐसा प्रेम जागृत करने के लिए इष्टदेव से मिलने के लिये तीव्र और अदम्य इच्छा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जागृत करनी चाहिए। साधारण मनुष्य के प्रेम में जब लोग इतने विभोर हो जाते हैं तो ईश्वर के प्रेम में ऐसा क्यों न होना चाहिये। पर इसके लिये हमें भी त्याग और बलिदान के लिये उसी भावना से तैयार रहना चाहिये, जिस प्रकार अपने प्रेमास्पद का मुख देखने को तरसते हैं और उसके सामने अपने विद्या-बुद्धि, धन-सम्पत्ति, पद, यश सबको तुच्छ मान लेते हैं।

हमारा प्रयत्न यह होना चाहिये कि परमात्मा के शुद्ध प्रेम के लिये अपने आपको, अपनी आत्मा को, अपने बच्चों, अपनी धर्मपत्नी, घर, गाँव, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण मानव भाइयों के प्रति विकसित करना चाहिए। यथाशक्ति उसकी सेवा और त्याग भावना द्वारा निष्काम प्रेम, वासना और कामना रहित प्रेम बढ़ाना चाहिए। इस विकास के मार्ग पर जितना अपना अहंभाव नष्ट होता जायगा हम उतना ही परमात्मा की सत्ता में समाते चले जायेंगे इसी प्रेम आयास में परम पिता परमात्मा का द्वार प्रेमी भक्तों के लिये सदैव ही खुला रहता है।

ईश्वर प्राप्ति की साधना

पूजा–अर्चना का तात्पर्य ईश्वर को प्रसन्न करना ही नहीं वरन् अपनी भक्ति–भावना, प्रेम, प्रकृति को विकसित करना है। एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक व्यायाम की तरह ही पूजा–अर्चना की प्रकिया को माना जा सकता है, जिसके आधार पर पूजाकाल में किया हुआ अभ्यास हमारे स्वभाव का एक अंग बन जाय। विचारों और कार्यों में प्रेम की दिव्य पुण्य प्रकृति झिलमिलाने लगे यही पूजा की सार्थकता है। हम जो कुछ भी सोचें वह प्राणिमात्र के हित–साधन की आकांक्षा से ओत प्रोत रहे और जो कुछ करें उसके प्रत्येक अंश विश्वमानव की सुख–शान्ति की अभिवृद्धि करने वाला सिद्ध हो, यही तो प्रेममय जीवन की गतिविधि हो सकती है। भक्ति–मार्ग का यही लक्ष्य है। ईश्वर भक्त के लिए अपने जीवन को उसी दिशा में अग्रसर करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। भक्त उसे ही कहा जा सकता है जो प्राणिमात्र में ईश्वर को समाया हुआ देखता है और उसे पाप–पंक की गन्दगी से स्वच्छ करके सब प्रकार स्वच्छ एवं उत्कृष्ट बनाने के लिए प्रयत्न करता रहता है। हर किसी को उसकी इच्छानुसार सन्तुष्ट कर सकना न तो उचित है और न आवश्यक क्योंकि बहुत से लोग ऐसे है जो दुष्टतापूर्ण आकांक्षायें रखते हैं, दूसरों का शोषण करना चाहते है। यदि उन दुष्प्रवृतियों को भी पुर्ण करने के लिए कोई भोला भावुक व्यक्ति प्रयत्न करने लगे तब तो उसमें अनीति ही पनपेगी, असुरता का पोषण होगा, प्रेमी को विवेकशील भी रहना पड़ता है ताकि दूसरो के हित साधन का सच्चा उपाय समझ सके और जरूरत हो तो कड़ुई कुनेन खिलाने या फोड़े का आपरेशन करने वाले डॉक्टरो की तरह बाहर से निष्ठुर एवं कठोर दीखने वाला दूरदर्शितापूर्ण व्यवहार भी कर सके। कठोरता के पीछे भी अनन्त करूणा छिपी हो सकती है।

समयानुसार व्यवहार की कोमलता या कठोरता का अन्तर रहना स्वाभाविक है और आवश्यक भी। पर उसके मूल में अपना स्वार्थ साधन नहीं दूसरों के हित की साधना दूरवर्ती स्थिर फल देने वाली श्रेय योजना ही सन्निहित होनी चाहिए। जीवन की यही सर्वोत्कृष्ट नीति हो सकती है। इसी में मानव जीवन की सफलता और सार्थकता मानी जा सकती है। प्रेमी स्वभाव बनाने की साधना को ही ईश्वर–भक्ति या पूजा–अर्चना कहते हैं। इस उद्देश्य में हम जितने ही सफल होते जाते है। ईश्वर उतना ही हमारे निकट खिंचता चला आता है। वस्तुतः ईश्वर हमारे नितान्त निकट हैं। रोम–रोम में समाया हुआ हैं। प्रत्येक श्वास–प्रश्वास में उसी की वंशी बजती है। अन्तरात्मा में बैठा हुआ वह क्षण–क्षण में हमारे साथ विचार–विनिमय करता है और बिना पूछे ही श्रेय साधन के आवश्यक परामर्श देता रहता है। हम ही है जो उसकी उपेक्षा करते है, भुलाये रहते है और अवज्ञा की अशिष्टता बरतते हैं। ईश्वर भक्ति इतने से ही हो सकती है कि उसे हम अपने कण–कण में समाया हुआ अपने चारों और फैला हुआ, हर घड़ी साथ रहता, खेलता और मैत्री निवाहता हुआ देखें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतनी अनुभूति अन्तरात्मा में जागृत हो सके तो समझना चाहिए कि ईश्वर मिल गया।

ईश्वर को अपनी मनमर्जी के अनुसार चलाने की, उसे नौकर जैसे हुक्म देने की धृष्टता छोड़कर यदि उसकी मर्जी से अपनी मर्जी मिलाने की शिष्टता सीख लें तो ईश्वर की उपलब्धि का जो लाभ मिल सकता है वह निश्चित रूप से मिल जायगा। ईश्वर–प्राप्ति कोई ऐसा कार्य नहीं है जिसके लिये जगह जगह भटकना पड़े। परमात्मा कही खोया हुआ नहीं है जिसे ढूँढ़ना पड़े। वह नाराज नहीं है जिसे प्रसन्न करना पड़े, करना केवल इतना ही है कि उसे जानते हुए भी अनजान जैसी गतिविधियो को अपना रखा है, उन्हे बदल दिया जाय। पूजा-अर्चना के समय तक ही ईश्वर का जप– ध्यान करने को सीमित न रखकर उस अनुभूति को यदि पूरे समय, पूरे जीवनक्रम में पूरी स्नेह सम्वेदना के साथ देखा, समझा और अनुभव किया जा सके तो ईश्वर प्राप्ति का यह लक्ष्य सहज ही प्राप्त हो सकता है।

अंगार पर भस्म की परत चढ़ जाने से उसका स्वरूप अग्नि जैसा न रहकर कुछ और ही प्रकार का बन जाता है। जलता हुआ अंगार गरम होता है। रंग लाल होता है, प्रकाश भी उसमें से निकलता है, किन्तु जब वह कुछ समय ऐसे ही निष्क्रिय पड़ा रहता है और नया ईंधन नहीं मिलता तो धीरे-धीरे बुझने लगता है। ऊपर के परत प्रर भस्म की पर्त छा जाती है तब देखने में वह काला, प्रकाश रहित और छूने में उष्णता से रहित बन जाता है, यही बात आत्मा की भी है। ईश्वर का अंश होने से वह अग्नि जैसे दिव्य गुणों से परिपूर्ण है, पर जब दिव्य विचारों और दिव्य कर्मों का ईंधन नहीं मिलता तो वह मुरझाने और बुझने लगता है। मल, आवरण, और विक्षेप की राख जैसी पर्त उस पर छा जाती है। तब वह निकृष्ट कोटि का जीव मात्र रह जाता है। अगणित मनुष्य इसी स्थिति में पड़े हुए है उनके गुण, कर्म स्वभाव ऐसे घटिया होते हैं कि पशु से कीट-पतंगों से भी निम्न श्रेणी में ही उन्हें गिना जा सकता है। ऐसी दशा में यह सन्देह होने लगता है कि इन घृणित व्यक्तियों को ईश्वर का पुत्र व आत्मा कैसे कहा जाय? जलते हुए अगार और राख से ढके हुए अंगार में जो अन्तर होता है वही प्रबुद्ध आत्माओं और पतित नर-पामरों के बीच भी पाया जाता है।

राख का परत हटा देने पर अंगार का भीतरी भाग पुनः गरम प्रकाशवान और लाल ही दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार कुविचारों और कुसंस्कारों का आवरण हटा देने पर साधारण स्तर का प्रतीत होने वाला मनुष्य भी महात्मा, महापुरुष एवं देवता की श्रेणी में पहुँच जाता है। अन्तस्तल में महानता मौजूद रहने से आवरण को हटा देने मात्र की प्रक्रिया उसे पूर्व स्थिति में ले आती है। उपासना और आराधना आत्मा पर चढ़े हुये मल आवरण और विक्षेपों के हटाने के निमित्त ही की जाती है। बर्तन माँजने से वे पुनः चमकने लगते हैं धो डालने से कपड़े पुनः स्वच्छ हो जाते है, स्नान करने से शरीर में पुनः ताजगी आ जाती है। उपासना के द्वारा आत्मा पर उच्च संस्कार ड़ालने की विधि– व्यवस्था यदि ठीक प्रकार बनी रहे तो उसकी पवित्रता, महानता एवं उत्कृष्टता भी निरन्तर बढ़ती चली जाती है। वह प्रगति धीरे-धीरे उन्नति के उच्च शिखर तक ले पहुँचती और आत्मा की स्थिति भी परमात्मा के समान बन जाती है। उसमें वे सब विशेषताये और शक्तियाँ अवतरित होती हैं जो उसके उद्गम केन्द्र परमात्मा में मौजूद हैं।

इसमें कठिनाई अवश्य है। पूजा में थोड़े कर्मकाण्ड की विधि व्यवस्था पूरी कर लेने से काम चल सकता है, पर ईश्वर प्राप्ति तो तभी निभेगी जब पूरा जीवनक्रम ही दिव्यता के सांचे में ढल जाय। आत्मिक पवित्रता ही ईश्वर की प्राप्ति की निशानी है। जो आत्मा पवित्र है, उसे भीतर परमात्मा की झांकी प्रतिक्षण होती रहेगी।

तपस्वी साधकों में अनेक आध्यात्मिक विशेषतायें पाई जाती हैं। उनका व्यक्तित्व अनेक ऋद्धि–सिद्धियों से भरा होता है। अपने निज के लिए उज्ज्वल भविष्य की रचना करने के साथ साथ वे दूसरों का भी बहुत भारी हित साधन कर सकने की शक्ति से सम्पन्न होते है। माया, स्वार्थ, अज्ञान,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वासना, तृष्णा के काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर के वन्धनों में वँधा हुआ जीव तुच्छ है। उसकी शक्ति, सामर्थ्य स्थिति सब कुछ तुच्छ है। छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए उसे दीनता प्रकट करते और अभाव, कठिनाइयों का रोना रोता देखा जा सकता है। पर जब वह इन इच्छाओं का परित्याग कर आत्मस्वरूप को पहचान लेता है और जो सोचना चाहिये वही सोचता है, जो करना चाहिए वही करता है, तो वह प्रबुद्ध आत्मा ईश्वर के बिल्कुल समीप जा पहुँचती है और वे सब विशेषतायें उसमें प्रकट होती हैं जो ईश्वर में मौजूद हैं। सिद्ध पुरुषों की संकल्प–शक्ति के बल पर सारा संसार दहल उठता है, लोक-लोकान्तरों तक इनकी आकांक्षा हलचल मचा देती है । अपने तप और आशीर्वाद का एक कण दूसरों को देकर यह उन्हें निहाल बना सकता है। अष्ट सिद्धियों का और नव निद्धियों वर्णन झूँठा नहीं है। मानव प्राणी अनन्त शक्तियो से ओत–प्रोत है ब्रह्माण्ड का सारा नक्शा पिण्ड में मौजूद है। इस शरीर के अन्दर समस्त दिव्य शक्तियो बीज रूप में मौजूद हैं। साधना के द्वारा उन्हें विकसित करने के पश्चात मनुष्य ऐश्वर्यवान बन सकता है।

उपासना बिना कल्याण नहीं

चन्द्रमा तब चमकता है जब उस पर सूर्य चमकता है। जब वह चमक उसे प्राप्त नहीं होती है तो अमावस्या के दिन यथास्थान रहते हुए भी उसका अस्तित्त्व लुप्त प्रायः ही रहता है। होते हुए भी न होने जैसी स्थिति उसकी रहती है। पृथ्वी के उतने भाग में दिन रहता है जितने पर सूर्य की किरणें पड़ती है। जितने भाग पर वे नहीं चमकती वहाँ घोर अन्धकार छाया रहता है और हाथों-हाथ सूझ नहीं पड़ता । यही बात आत्मा के सम्बन्ध में है । उस पर जब परमात्मा का प्रकाश चमकता है वे उज्ज्वल और दीप्तिमान दीखता है और जब चमक बन्द हो जाती है तो मानव शरीर धारी एक निकृष्ट नर पशु के रूप में घृणित एवं निकम्मा अस्तित्त्व मात्र ही दृष्टिगोचर होता है। परमात्मा से दूर रहने वाले मनुष्य बहुधा मनुष्यता से रहित ही पाये जाते है।

आत्मा परमात्मा का एक अंश मात्र है। उसे जो कुछ शक्ति और प्रतिभा प्राप्त है, ईश्वर की विभूति है। जिसमें यह विभूति जितनी कम पड़ जाती है, वह उतना ही दीन-हीन बना रहता है। शक्ति का स्रोत जिस उद्‌गम से प्रवाहित होता है उसके साथ सम्बन्ध जोड़ लेने से सामान्य जीव को भी शक्ति का पुञ्ज बनने में देर नहीं लगती। बिजली घर के साथ जुड़े हुए पतले-पतले तार अपने भीतर भी इतनी शक्ति धारण कर लेते है कि उनके द्वारा सैकड़ो घोड़ो की शक्ति वाली मशीने धड़धड़ाती हुई चलने लगती है। उनकी स्पर्श करने वाले बल्व अधेरी रात को दिन जैसा प्रकाशवान बना देते है। बिजली घर से जब सम्बन्ध है तभी तक उन तारो में यह विभूति रहती है कि उनके स्पर्श से चमत्का उत्पन्न हो सके । जब वह सम्बन्ध कट जाता है तारों को बिजली घर के विद्युत-भण्डार की धारा का प्रवाह मिलना रूक जाता है तो फिर उनका कोई महत्त्व नहीं रह जाता । देखने में पहले जैसा लगने पर भी वे न प्रकाश उत्पन्न करते है और न मशीने चला पाते है। तार का मूल्य बिजली घर से सम्बन्ध होने के कारण ही तो था, वह टूट गया तो फिर उसकी महत्ता कहाँ स्थिर रह सकती थी।

आत्मा के द्वारा अनेक लौकिक और पारलौकिक प्रयोजन पूर्ण किये जाते है। अनेक सफलता और समृद्धियों को प्राप्त करने का श्रेय आत्म-बल को ही दिया जा सकता है। शरीर की दृष्टि से सब मनुष्य लगभग समान होते है। देह के बल पुञ्जों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। फिर भी मनुष्य-मनुष्य के बीच जमीन–आसमान का अन्तर पाया जाता है। एक भीरू है तो दूसरा दुस्साहसी, एक दुष्ट है तो दूसरा महात्मा, एक तृष्णा-वासना की मृग-मरी चिका में भटकता है दूसरा आनन्द और उल्लास का परितृप्त का रसास्वादन करता है। एक के उद्वेग और शोक-संताप का ठिकाना नहीं दूसरे को संतोष की शांति आह्लादित किये रहती है। एक को सम्पूज्य और दूसरों को तिरष्कृत देखते है। एक प्रगति की ओर बढ़ रहा है तो दूसरा पतन के गर्त में गिरता ही चला जा रहा है। इस प्रकार के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असाधारण अन्तर मनुष्य की आन्तरिक आत्मिक स्थिति की भिन्नता के कारण ही उत्पन्न होते हैं।

आत्म-बल संसार के बलों में श्रेष्ठ है। धनबल, शरीरबल, बुद्धिबल संख्याबल आदि अनेक बलो के द्वारा मनुष्यों को विविध प्रकार की सफलतायें मिलती है पर उन सबके मूल में आत्मबल की ही प्रधानता रहती है। उसके अभाव में अन्य सब बल बालू की भीत की तरह अस्थिर रहते है। जरा-सा आघात लगते ही उनके अस्त-व्यस्त होने में देर नहीं होती। जीवन की सार्थकता आत्मबल पर ही निर्भर रहती है। अन्य बल तो छाया मात्र है।

आत्मा को जब भी स्थायी बल प्राप्त होता है तब उसे वह उपलब्धि परमात्मा से ही मिली होती है। मोती समुद्र से ही निकलते है। उनका उपयोग कही भी किसी कार्य के लिये किया जा सकता है पर उसकी उत्पति समुद्र के अतिरिक्त और कही नहीं होती। इसी प्रकार आत्म-बल का वरदान भी परमात्मा से प्राप्त होता है। अन्धा लाठी के सहारे अपनी मंजिल पार करता है। जीव भी इस पाप-ताप के अन्धकार से भरे संसार से जीवन लक्ष्य प्राप्त करने की यात्रा ईश्वर का अवलम्बल प्राप्त करके ही पूर्ण कर सकता है।

परमात्मा समस्त उच्च शक्तियों औार संभावनाओं का केन्द्र है। उसी भण्डार से आत्मा अपनी अभीष्ट वस्तुयें उपलब्ध करता है। इसी अमृत को पीकर उसकी प्यास बुझती है। पपीहा तब तक तृषित ही रहता है जब तक उसे स्वाति नक्षत्र की वर्षा का जल नहीं मिलता । आत्मा भी तब तक अतृप्त ही रहता है जब तक उसे प्रभु की शरणागति प्राप्त नहीं हो जाती । नव जात शिशु अपनी माता का पयपान करके ही जीवन-धारण कर सकने में समर्थ होता है। मानवीय महानताये भी परमात्मा के सान्निध्य से प्राप्त होती है।

प्रभु की अवज्ञा करके अहकार से परमात्मा को विस्मरण करके अपने पुरुषार्थ के आधार पर कुछ भौतिक सम्पदाये भी प्राप्त की जा सकती है पर आन्तरिक महानता उद्दार दृष्टि एवं प्राणिमात्र के प्रति आत्मीयता का वरदान केवल ईश्वर की अनुकम्पा से ही मिल पाता है। बिना डोरी के पतंग की तरह जीव निरूद्देश्य दिन काटता है पर जब भगवान के साथ वह अपना सम्बन्ध बना लेता है तो उसे अपने स्वरूप और लक्ष्य का पता चल जाता है तब मंजिल को पूरी करने का क्रम भी यह जान लेता है और दृढ़तापूर्वक नियत दिशा में चलते हुए उन सब विभूतियो को प्राप्त कर लेता है जिन्हे प्राप्त करने के लिये उसे यह सुरदुर्लभ मानव शरीर मिला होता है।

पाप का प्रलोभन और आपतियों का भय मनुष्य का पग–पग पर पथ भ्रष्ट करता है। ऐसी परिस्थितियाँ आती ही रहती है, जिनके अनुसार अनुचित मार्ग को अपनाकर आकर्षक लाभ उठाया जाना सम्भव होता है। ऐसे विघ्न भी आते ही रहते है जो सन्मार्ग छोड़कर, कुपथ अपना लेने से टल सकते है। आधार विहीन व्यक्ति ऐसे अवसरो पर स्थिर नहीं रह सकते उन्हे पथभ्रष्ट होते देर नहीं लगती। छोटे से परीक्षा अवसर सामने आने पर भी वे अपनी प्रामासिकता खो बैठते है। धर्म और नीति की पतवार हाथ से छूट जाती है और जमाने की बढ़ती हुई धारा में डोलती हुई उनकी नाव भी भंवर में जा फंसती है। उन विपति से छूड़ा सकने की सामर्थ्य केवल प्रभु आश्रये में ही है । भगवान् की सबल पकड़ रहने से ही जीवन अपनी रक्षा पतनकारी आँधी तूफानों से कर सकता है। इसी आश्रय को लेकर भव–सागर से पार उतर सकना संभव होता है।

जिसने सच्चे मन से भगवान् का आश्रय लिया उसे सम्मति का वरदान मिला। मति का सही दिशा में लगना न लगना ही जीवन क्रम का सफलता असफलता का आधार होता है। जिसको जीवन के सदुपयोग की चिन्ता हो गई जिसने सत्य का धर्म और पवित्रता का अवलम्बन ग्रहण कर लिया उसे अपने भीतर आत्म-सन्तोष और बाहर से सहयोग एवं सम्मान की तरंगे उठती दिखाई देगी। और वह उसी आन्नद में निमग्न होकर मानव जीवन को सफलता का रसास्वादन कर रहा होगा। यह अवसर ईश्वर की कृपा से ही मिलता है। पुरुषार्थ से भौतिक वैभव भले ही मिले पर आत्म विकास के साधन तो भगवान्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की कृपा से सम्भव होते है। जो प्रभु के आगे अपना हदय खोलकर रखता है और उनकी करूणा के लिये प्यासे की तरह पुकारता है उसे निश्चय ही अतृप्त नहीं रहना पड़ता।

कुतुबनुमा की सुई उतर की ओर ही मुँह करके स्थिर रहती है जब तक उसे दूसरी दिशाओं में घुमाया जाता रहेगा तब तक वह अस्थिर ही बनी रहेगी स्थिरता तब आती है जब आधार का सही आश्रय मिल जाता है। आत्मा का लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति है जब तक यह दिशा प्राप्त नहीं होती तब तक अस्थिरता, उद्विग्नता, चंचलता एवं अशान्ति ही बनी रहती है। पर जब लक्ष्य की दिशा में पग उठने लगते है, परमात्मा को प्राप्त करने की लग्न लग जाती है तब उस प्रयत्न का प्रत्येक चरण जीवात्मा के लिये शान्ति का सृजन करने लगता है।

जीव स्वयं तो निबद्ध है, तुच्छ है, उसे विशालता और महानता परमात्मा के सान्निध्य से ही उपलब्ध होती है। इसके लिये जो प्रयत्न करता है वही बुद्धिमानी है। दूरदर्शिता की एक मात्र कसौटी यह है कि अपने सुदूर भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लियेू भावना उठे, विचारणा चले और क्रिया आरम्भ हो। जानते, समझते और चाहते हुए भी वह हो नहीं पाता। पैर कदम-कदम पर ड़गमगातें है। विपन्नताएँ मार्ग रोक कर खड़ी होती है। विभीषिकाएँ निराश करती हैं और सांसारिक आकर्षणों का जाल अपने बन्धनों में कसकर साँध लेता है। इस कुचक्र में फँसा हुआ जीव कुछ कर नहीं पाता। श्रेय प्राप्ति का उद्देश्य प्रेम की उलझन में ही फँसा रह जाता है । इस चक्रव्यूह से उद्धार केवल भगवान् की कृपा से ही हो सकता है और वह तब मिलती है जब भक्त सच्चे मन से आतुर होकर भगवान् को पुकारता है।

प्रार्थना में बड़ी शक्ति है। वह भगवान् को भक्त के समीप खीच लाती है या भक्त को भगवान् तक पहुँचा देती है। सच्चे मन से की हुई अन्तरात्मा की आर्त पुकार कभी अनसुनी नहीं की जा सकती है। भगवान् उसे सुनते हैं और पूरा करते है। शर्त एक ही है– प्रार्थना सच्ची होनी चाहिए। सच्ची प्रार्थना का अर्थ है, आत्म-कल्याण के लिये पाप-तापो से, प्रलोभन–आकर्षणों से बचने और सन्मार्ग पर चलने की उत्कट आकांक्षा और उसकी अभिव्यक्ति लौकिक कष्टों की निवृति और सफलताओं की प्राप्ति के लिए भावनाशील भक्त अपने भगवान् को कष्ट देना उचित न समझेगा, इस सम्बन्ध में तो वह अधिक से अधिक इतना ही कह सकता है कि विपतियों से लड़ने प्रारब्ध कर्मो को हॅसते हुए सहने और पुरुषार्थ के बल पर आवश्यक साधनों को उपार्जित करने योग्य उसे आवश्यक साहस, धैर्य, और स्वभाव मिल जाये तो उतना ही पर्याप्त है।

विश्व प्रेम ही ईश्वर- प्रेम

एकांगी उपासना का श्रेय विकसित कर अपना अहंकार बढ़ाने वाले व्यक्ति, ईश्वर के सच्चे भक्त नहीं कहे जा सकते। परमात्मा सर्व न्यायकारी है। वह ऐसे भक्त को जो अपना सुख, अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना चाहता हो कभी प्यार नहीं कर सकता संसार के और भी जितने प्राणी है, वे सब भी उसी परमात्मा के प्यारे बच्चे है। किसी के पास शक्ति कम है, किसी के पास गुण कम है, तो इससे क्या ? अपने सभी बच्चे पिता को समान रूप से प्यारे होते है। जो उसके सभी बच्चों को प्यार कर सकता है, परमात्मा का वास्तविक प्यार उसे ही मिल सकता है। केवल अपनी ही बात, अपने ही साधन सिद्ध करने वाले व्यक्ति लाख प्रयत्न करके भी उसे प्राप्त नहीं कर सकते

प्रेमी भक्तों का लक्षण बताते हुए गीता में भगवान् कृष्ण ने लिखा है –

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रीः करूण एव च।
निर्ममो निरहकारः सम दुःख सुख क्षमी।।
सन्तुष्ट सत्तं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चय।
मद्र्पित मनबुद्धयोः मद्भक्त स में प्रिय,।।

(गीता १२/१३/१४)

हे अर्जुन ! मैं उन भक्तों को प्यार करता हूँ जो कभी किसी से द्वेष भाव नहीं रखते, सब जीवो के साथ मित्रता और दयालुता का व्यवहार करते है। ममता रहित, अहंकार शून्य, दुःख और सुख में एक

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सा रहने वाला सब जीवो के अपराधो को क्षमा करने वाला, सदैव सन्तुष्ट, मेंरा ध्यान करने वाला विरागी, दृढ़निश्चयी और जिसने अपना मन तथा बुद्धि मुझें समर्पित कर दिया है ऐसा भक्त मुझे अतिशय प्रिय है।

यहाँ हमें एक बात समझ लेनी चाहिए कि यह सारा संसार भगवान् के एक अंश में ही स्थित है। छोटे-बड़े अच्छे-बुरे सब उसी के बनाये हुए है। उनके हित और कल्याण का भी उसे ध्यान होना चाहिए। केवल अपनी-- अपनी इच्छाओं की तृप्ति ढूँढने में यह कहाँ सब सम्भव है कि मनुष्य औरो के साथ द्वेष न करें। सुख की इच्छा में प्रतिस्पर्द्धा आवश्यक है। कामनाग्रस्त मनुष्य किसी की भलाई भी क्या कर सकेगा और ऐसा व्यक्ति परमात्मा की दया का अधिकारी भी क्यों बन सकेगा?

चराचर जगत् में एक ईश्वर की सत्ता ही अनेक रूपों में कार्य कर रही है। ईश्वर के एक अंग की उपासना की जाय और अन्यो की बिल्कुल उपेक्षा की जाय तो परमात्मा उस भक्त से कैसे सन्तुष्ट हो सकता है ? भक्ति का स्वरूप सर्वांगण होना चाहिये। मुँह से भोजन कराया जाय और पाँवो को बाँधकर एक ओर पटक दिया जाय तो वह परमात्मा अपने उपासक की भावनाओं से कैसे सन्तुष्ट हो सकेगा ? ईश्वर के पारलौकिक और अदृश्य जगत् को यदि माना जाय और सम्पूर्ण संसार को उसकी देह को उससे भी उतना प्यार होना चाहिए जितना प्राण से। देह की उपेक्षा से प्राणों का अस्तित्त्व भला कहीं सम्भव हो सका है ?

ईश्वर के उपासक में श्रद्धा, भक्ति, एकाग्रता बुद्धि की तीक्ष्णता के साथ-साथ जीव और प्रेम का भी समवन्य होना चाहिए क्योंकि प्रेम ही विश्व का आधार है, विश्व की आत्मा है। ईश्वर प्रेम भी विश्व के अन्तर्गत है। प्राणिमात्र के साथ सद्व्यवहार आत्मीयता और मैत्री की भावना रखने वाले लोग उसे बिना साधन प्राप्त कर लेते है।

चतुर जनों की यह रीति है कि वे किन्हीं महापुरुषों की कृपा प्राप्त करने के लिये उनकी प्रिय सन्तान की सेवा और प्यार करते है। अपने आत्मीय जनो को प्यार करता हुआ देखकर बड़े कठोर हदय के व्यक्तियो को भी पिघलता देखा गया है, फिर परमात्मा जो इतना सहृदय और दयालु है वह अपने बालको के प्रति कर्तव्य-भावना को पूरा हुआ देखकर भला क्यों न प्रसन्न होगा ? इससे तो वे भक्त की अन्य कामनायें भी सहर्ष पूरी कर देते हैं।

वेद में कहा गया है कि जो लोग सम्पूर्ण प्राणियो के हित में संलग्न रहते है, परमात्मा उनका भार स्वयं वहन करता है। पर समाज के प्रति अपने कर्तव्यो का समुचित रीति से पालन न करने वाले ईश्वर-भक्त आत्म-कल्याण में समर्थ नहीं होते। समाज भी तो मनुष्य का अपना ही स्वरूप है। अपने स्वार्थ की पूर्ति में तो उद्यत रहा जाय, पर अपने ही समान अपने समाज के प्रति परमार्थ का ध्यान न रखा जाय तो उस ईश्वर-उपासना से आत्म-सन्तोष होना असम्भव है।

ममता और अहंकार से मुक्ति मिल गई, इसका प्रमाण एकात्मवादी होकर नहीं दिया जा सकता। मनुष्य सबके प्रति उदारतापूर्ण व्यवहार करेंगा तभी उसका अहन्ता का भाव नष्ट होगा। अहंकार भी जब तक अपने आप को औरो के लिये त्यागपूर्वक न घुलाया जायगा तब तक दूर होना सम्भव नहीं। ईश्वर कभी किसी के सामने प्रत्यक्ष प्रकट नहीं हुआ। इसलिए वह प्रत्यक्ष सेवायें भी कभी नहीं ले सकता। उपासना और प्रार्थना से प्रभावित होकर मनुष्य रूप धारण कर कदाचित् वह ईश्वर अपनी विभूतियो सहित भक्त के समक्ष उपस्थित हो जाता और भक्त अपना सर्वस्व अर्पण कर देता तो संभव था उन स्थिति में उसे आत्म-सन्तोष हो जाता। पर परमात्मा के संसार में ऐसी व्यवस्था नहीं है। वह यदि अपने आराधक की त्याग वृत्ति को देखना चाहेगा तो अपने किसी बालक को ही परीक्षा के लिये भेजेगा। हम अपने बच्चे धर्म पत्नी परिवार गाँव-मुहल्ले वाले समाज और राष्ट तथा सम्पूर्ण विश्व के लिये आत्म-त्याग की भावना का परिष्कार करके ही सर्वात्मा की कृपा का पुण्य फल प्राप्त कर सकते है और यह तभी सम्भव है जब हम सबके साथ प्यार करें। सबके साथ आत्मीयता रखे सबके साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सहानुभूति बरतें सबकी उन्नति में सहयोग दे किसी के साथ ईर्ष्या, द्वेष, छल, पाखण्ड, अन्याय अत्याचार करके परमात्मा की कृपा का अधिकार प्राप्त करने की बात सोचना मिथ्या है।

तब यह आवश्यक है कि उपासना का स्वरूप बहुमुखी हो। आत्मोद्धार के लिये एकान्त में बैठकर करूण-भाव से ईश्वर की उपासना की जाय पर अपने अन्य भाइयो को भी असहाय अवस्था से ऊपर उठाया जाय। भगवान के स्वरूप को याद करते हुए प्रेमपूर्वक उनके नाम का जप और कीर्तन ध्यान और भजन तो किया जाय पर उनके समाज शरीर की भी उपेक्षा न की जाय। सम्पूर्ण जीवो में भगवान का अंश विराजमान है सब लोग उसी की विविध मूर्तियाँ है। सब उसके अंग है। सब उसके साधन है। एक साधन के लिए अन्य साधन क्यों भुलाये जाये ? ईश्वर की एकांगी उपासना क्यों की जाय ?

"परमात्मा केवल एकान्तवासी को मिलते है और निर्ममता का अर्थ परिवार छोड़कर योगी हो जाना है"– यदि ऐसा अर्थ लगाया जाय तो फिर हमारे ऋषियों की सारी व्यवस्था एवं भारतीय दर्शन की नारी मान्यता ही गलत हो जायेगी। जप ध्यान के साधन की एक निश्चित सीमा होती है, उसके बाद की साधना समाज और विश्व के हित साधन तथा लोक-मंगल में जुटने की होती है। ऋषियों ने गृहस्थ में रहकर पर्याप्त साधनाये की पर उन्हे कोई स्वार्थवादी नहीं कह सकता। वे समाज के हित के लिए अन्त तक लगे रहे। निर्ममता का अर्थ भी दरअसल मैं और मेरे का त्याग है। यह जो कुछ है परमात्मा का अंश है। परमात्मा के प्रत्येक अंश को पूजकर ही उसकी पूर्ण कृपा की जा सकती है।

ईसा, मंसूर, शंकराचार्य, रामकृष्ण तथा दयानन्द आदि अनेक ईश्वर परायण देवदूत हुए है। ईश्वर की कृपा के फलस्वरूप उन्होंने सामान्य व्यक्तियो से उच्चतर सिद्धियॉ प्राप्त की। यदि ईश्वर उपासना का अर्थ एकांगी लाभ उठाना रहा होता तो इन महापुरुषो ने भी या तो किसी एक स्थान में बैठकर समाधि ले ली होती या भौतिक सुखों के लिये बड़े से बड़े साधन एकत्र कर शेष जीवन सुखोपभोग में बिताते। पर उनमें से किसी ने भी ऐसा नहीं किया। उन्होने अन्त में महामानव की ही उपासना की। सिद्धि से उन्हे सन्तोष नहीं हुआ तो लौटकर वे फिर समाज में आये और प्राणियो की सेवा को अपनी उपासना का आधार बनाया।

मुक्ति के अधिकारी मनुष्यों को परलोक की ही चिन्ता नहीं करनी चाहिए। लोक भी परलोक ही है, हम यहाँ भी उस परमात्मा के स्वरूप का दर्शन करें। जीव-मात्र में उसकी आभा देखने वाले के लिये परलोक की कामना क्यों होने लगी ? परमात्मा से हम प्यार, स्नेह, ज्ञान, शक्ति, भावनाओं के ऊर्ध्वगामी सुखो की अपेक्षा करते है,यह सुख हमें मनुष्य और जीवो की सेवा से भी उपलब्ध हो सकते है। इस विश्व में पशु-पक्षी आदि जीवो को जिनको आत्म-ज्ञान की प्राप्ति विधेय नहीं है, उनकी रक्षा, वृद्धि और उनके हित के लिये भी तो कुछ करना चाहिए अन्यथा परमात्मा के इस सुन्दर बाग की रखवाली और उसको सुसज्जित रखने के अपने उतरदायित्व का पालन कैसे हो सकता है?

जिस प्रकार परमात्मा की उपासना में उनके रूप, गुण और ऐश्वर्य का कीर्तन करते है वैसे ही हमें उसके पुत्रो का भी कीर्तन-भजन करना चाहिये जो पदार्थ जीवों के लिये उपयोगी है और सद्गुणों तथा सत्कर्मों की वृद्धि में सहायक है उन पदार्थों की उन्नति, वृद्धि, और रक्षा करने की चेष्टा करना भी आवश्यक है। परमात्मा अपनी प्रत्येक सुन्दर वस्तु की साज संवार देखकर उतना प्रसन्न होगा जितना शायद वह अपने गुणो की प्रशंसा मात्र से न होगा।

उपयोगी पदार्थों की रक्षा द्वारा सत्सम्पतियों को बढ़ाने की चेष्टा के साथ बुराइयों को रोकना भी ईश्वर की ही उपासना है। इसमें भी परमात्मा के सौन्दर्य गुण ही उपसना का भाव छिपा है। जो पदार्थ जीवो के दुगुर्ण और दुष्कर्मो को बढ़ाने वाले हैं, उनके घटाने और नष्ट करने के लिए भी हमारे प्रयत्न बिना किसी कामना या द्वेष भावना से चलते रहने चाहिये। हानिकारक पदार्थों के न रहने में जीवो का हित है और विश्व के हित व कल्याण की निष्काम कामना रखना ही विश्व–प्रेम है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार जो विशुद्ध प्रेम और सेवा भावना से प्राणियो के कार्यों में रत रहते हैं वे बाहर से देखने पर लोगों को कैसे ही दिखाई दे पर ईश्वर की दृष्टि में वही सच्चे प्रेमी भक्त होगे, समाज की उपेक्षा करके जाने वाली ईश आराधना का उतना महत्त्व नहीं, विश्व-प्रेम ही ईश्वर का सच्चा प्रेम है।

हम प्रकाश की ओर चलें

दुःख का कारण है– अज्ञान। अज्ञान– अर्थात किसी वस्तु के वास्तविक स्वरूप को न जानना। वास्तविकता का ज्ञान न होने से ही मनुष्य गलती करता है और दण्ड पाता है। यही दुःख का स्वरूप है अन्यथा परमात्मा न किसी को दुःख देता है न सुख। वह निर्विकार है, उसकी किसी से शत्रुता नहीं जो किसी को कष्ट दे, दण्ड दे।

प्रकाश ज्ञान का प्रतीक है इसीलिये वह उपासनीय परमात्मा के प्रकाश रूप में, ज्ञान रूप में ही सर्वत्र व्याप्त है जो उसे इस रूप में जानते और भजन करते है उनका अज्ञान दूर होता है। अज्ञान दूर होने से मनोविकार मिटते है। दोषपर्ण कार्य नहीं होते फलस्वरूप उन्हें किसी प्रकार की यातना भी नहीं भुगतनी पड़ती। ज्ञानवान् परमात्मा की दृष्टि को मंगलमय रूप में देखता है। उसके लिये इस सृष्टि में आनन्द होता है।

भारतीय संस्कृति में दीपक का जो असाधारण महत्व है वह इसी दृष्टि से है, दीपक जीवन के ऊर्ध्वगामी होने, ऊँचे उठने और अन्धकार को मिटा ड़ालने की प्रेरणा देता है इसलिये वह प्रत्येक मंगल कार्य में प्रतिष्ठित होता है। भावार्थ है कि मनुष्य प्रकाश की व्याख्या को समझे । संसार में जो अन्तर्निहित ज्ञान है उसे अपने हृदय में प्रविष्ट होने दे । जब तक मनुष्य के लिये यह सत्य प्रकट नहीं होता तब तक उसके जीवन का कुछ मूल्य नहीं होता । दीपक कहता है कि तुम्हारे अन्दर जो प्राण जलता है, जो सत्, चित् और आनन्दमय है तुम उसे ढूँढो, जानो और अपने जीवन के अभावों को दूर कर लो । प्रकाश में सब कुछ साफ और स्वच्छ दिखाई देता है । भय नहीं लगता ज्ञान से मनोविकार शान्त होते हैं और सांसारिक शूल मिटते हैं । इसलिये जब यह कहा जाता है के दीपक की उपासना करो तो उसका संकेत ज्ञान की उपासना ही होती है । ज्ञान–अर्थात् प्रकाश ही परमात्मा का दिग्दर्शक स्वरूप है इसलिये प्रार्थना की जाती है ।

तव त्रिधातु पृथिवी उतद्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त ।
त्वम् भाषा रोदसी अततन्थाम्रेण शोचिषा शोशुचानः।।
(ऋग्वेद ७।५।४)

"अर्थात्–हे वैश्वानर देव ! यह पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्युलोक तुम्हारा ही अनुशासन मानते हैं । तुम प्रकाश द्वारा व्यक्त होकर सर्वत्र व्याप्त हो । तुम्हारा तेज ही सर्वत्र उद्भासित हो रहा है, हम तुम्हें कभी न भूलें ।" ज्ञान का ही सर्वत्र आदर होता है, वह इसी रूप में है । सौन्दर्य सबको मधुर और प्यारा लगता है । सब उसकी ओर आकर्षित होते हैं और उसके समीप कुछ क्षण बितालेने का जी करते हैं । अपने इस रूप में वह लौकिक सुखों का दाता बन जाता है । इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि अन्धकार की ओर न जाकर प्रकाश की ओर गमन करें । तब यह प्रकाश ही जीवन में आनन्द बनकर ओत-प्रोत हो जाता है ।

१२ - दानशीलता

भारतीय संस्क्रति परमार्थ और परोपकार को प्रचुर महत्त्व देती है। जब अपनी सात्विक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाय, तो लोक-कल्याण के लिए दूसरो की उन्नति के लिए दान देना चाहिए। प्राचीनकाल में ऐसे निःस्वार्थी लोक-हित-निरत ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, पुरोहित, योगी, सन्यासी होते थे, जो समस्त आयु लोक-हित के लिए दे ड़ालते थे। सदा दूसरो की सेवा सहायता करते थे। कुछ विद्यादान, पठन-पाठन में ही आयु व्यतीत करते थे। उपदेश द्वारा जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, सहयोग, सुख, सुविधा, विवेक, धर्मपरायणता आदि सद्गुणो को बढ़ाने का प्रयत्न किया करते थे। मानवीय स्वभाव में जो सत् तत्त्व है, उसी की व्रद्रि में वे अपने अधिकांश दिन व्यतीत करते थे। ये ज्ञानी उदार महात्मा अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आप में जीवित-कल्याण की संस्थाएँ थे, यज्ञ रूप थे। जब ये जनता की इतनी सेवा करते थे, तो जनता भी अपना कर्तव्य समझकर इनके भोजन, निवास,वस्त्र सन्तान का पालन-पोषण का प्रबन्ध करती थी। जैसे लोक-हितकारी संस्थाएँ आज भी सार्वजनिक चन्दे से चलाई जाती है, उसी प्रकार ये ऋषि, मुनि, ब्राह्मण भी दान, पुण्य, भिक्षा आदि द्वारा निर्वाह करते थे। प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियो का व्यक्तिव इतना उच्च, पवित्र और प्रवृति इतनी सात्विक होती थी कि उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार के सन्देह की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी, क्योकि उन्हे पैसा देकर जनता उसके सदुपयोग के विषय में निश्चित रहती थी। हिसाब जाँचने की आवश्यकता तक न समझती थी। इस प्रकार हमारे पुरोहित, विद्यादान देने वाले ब्रहाण, मुनि, ऋषि दान दक्षिणा द्वारा जनता की सर्वतोमुखी उन्नति का प्रबन्ध किया करते थे। दान द्वारा उनके जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने का विधान उचित था। जो परमार्थ और लोक-हित जनता की सेवा सहायता में इतना तन्मय हो जाय कि अपने व्यक्तिगत लाभ की बात सोच ही न सके, उसके भरण-पोषण की चिन्ता जनता को करनी ही चाहिए।

इस प्रकार दान देने की परिपाटी चली। कालान्तर में उस व्यक्ति को भी दान दिया जाने लगा जो अपंग, अंधा, लंगड़ा, लूला, अपाहिज या हर प्रकार से लाचार हो, जीविका उपार्जन धारण करने के लिए अन्य कोई साधन ही शेष नहीं रहता। इस प्रकार दो रूप में दूसरो को देने की प्रणाली प्रचलित रही है– १– ऋषि– मुनियो, ब्राह्मणों, पुरोहितों, आचार्यों, सन्यासियों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता का नाम रखा गया दान, २– अपंग, लंगड़े, लूले, कुछ भी कार्य न कर सकने वाले व्यक्तियो को दी जाने वाली सहायता को भिक्षा कहा गया। दान और भिक्षा दोनों का ही तात्पर्य दूसरे की सहायता करना हे। पुण्य, परोपकार सत्कार्य, लोक-कल्याण सुख-शान्ति की वृद्धि, सात्विकता का उन्नयन तथा समष्टि की, जनता की सेवा के लिए ही इन दोनों का उपयोग होना चाहिए।

दूसरों को देने का क्या तात्पर्य है। भारतीय दान परम्परा और कुछ नहीं, उधार देने की एक वैज्ञानिक पद्धति है। जो कुछ हम दूसरो को देते हैं, वह हमारी रक्षित पूँजी की तरह जमा हो जाता है। अच्छा दान वह है जो जरूरतमन्दों को दिया जाता है। बिना जरूरतमन्द को देना कुछ विशेष महत्व नहीं रखता। कुपात्रों को धन देना व्यर्थ हैं। जिसका पेट भरा हुआ हो, उसे और भोजन कराया जाय, तो वह बीमार पड़ेगा और अपने साथ दाता को भी अधोगति के लिए घसीटेगा। भारतीय संस्क्रति के अनुसार दान देना बहुत ही उतम धर्म-कर्म है। जो, अपनी रोटी दूसरो को बाँट कर खाता है, उसको किसी बात की कमी नहीं रहेगी। जो अपने पैसे को जोड़-जोड़कर जमीन में गाढ़ते है, उन पाषाण हृदयों को क्या मालूम होगा कि दान देने में कितना आत्म-संतोष, कितनी मानसिक तृप्ति मिलती है। आत्मा प्रफुल्ल हो जाती है। मृत्यु बड़ी बुरी लगती है, पर मौत से बुरी बात यह है कि कोई व्यक्ति दूसरे को दुःखी देखे, भोजन के अभाव में रोता चिल्लाता या मरता हुआ देखे, और उसकी किसी प्रकार भी सहायता करने में अपने आप को असमर्थ पावे। हिन्दु शास्त्र एक स्वर से कहते है कि मनुष्य-जीवन में परोपकार ही सार है। हमें जितना भी संभव हो सदैव परोपकार में रत रहना चाहिए। किन्तु यह दान अभिमान, दम्भ, कीर्ति के लिए नहीं, आत्म कल्याण के लिए ही होना चाहिए। मेंरे कारण दूसरों का भला हुआ है, यह सोचना उचित नहीं है। दान देने से स्वयं हमारी ही भलाई होती है। हमें संयम का पाठ मिलता है। यदि आप दान न भी दें, तब भी संसार का काम तो चलता ही रहेगा। परमात्मा इतना विपुल भण्डार लुटा रहे है। कि हमारी छोटी-सी सहायता के बिना भी जनता का कार्य चल ही जायेगा। आप यदि न देगे, तो कोई भिखारी भूखा नहीं मर जायेगा। किसी प्रकार उसके भोजन का प्रबन्ध हो ही जायेगा, लेकिन आपके हाथ से दूसरों के उपकार को करने का एक अवसर जाता रहेगा। हमारी उपकार भावना कुण्ठित हो जायगी। दान से जो मानसिक उन्नति होती, आत्मा को जो शक्ति प्राप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती, वह दान लेने वाले को नहीं, वरन देने वाले को प्राप्त होती है। दूसरों का उपकार करना मानों एक प्रकार से अपना ही कल्याण करना है। किसीन को थोड़ा सा पैसा देकर भला हम उसका कितना भला कर सकते है ? किन्तु उसकी अपेक्षा हम अपना भला हजार गुना कर लेते है। हमारी उदारता काप विकास हो जाता है। आनन्द–स्रोत खुल जाता है।

दान आत्मा का दिव्य गुण है। दानशीलता की सात्विक भावना जिस पुरुष के अन्तःकरण में प्रवेश करती है, उसे उदार बना देती है। उस प्रकाश का पुंज बना देती है । दान रूपये, पैसे या रोटी भोजन कपड़े का ही नहीं, श्रम का भी हो सकता है । सच्चा दानी लोक-उपकार को प्रमुखता देता है । वह दधीचि की तरह अपनी हड्डियाँ लोक-उपकार के लिए दान दे देता है । नारदजी की तरह दिन रात धर्म का प्रचार करता हे । व्यास जी की तरह अपनी आयु सद्ग्रन्थों की रचना में लगा देता है ? द्रोणाचार्य की तरह शस्त्र-विद्या का प्रचार करता है । पाणिनी की तरह व्याकरण बनाता है, बुद्ध की तरह प्रेम धर्म का उपदेश देता है । इस प्रकार सच्चा दानी समय और देश की आवश्यकताओं के अनुसार अपनी बुद्धि, योग्यता, कला, प्रतिभा शक्तियों का दान करता रहता है ।

यह तो दान देने वाले के पक्ष का विवेचन हुआ । अब लेने वाले के पक्ष को देखिए । भिक्षावृत्ति या दान लेना एक बड़ा उत्तरदायित्व है, जिसका भार उठाने का साहस बहुत कम व्यक्तियों में होता है । शास्त्रकारों ने भिक्षा की उपमा अग्नि के दी है । जैसे अग्नि का प्रयोग बड़ी हानि और उत्पात कर सकती है, इसी प्रकार भिक्षा या दान लेने से पूर्व खूब सोच-समझ लेना चाहिए । जिससे आप कुछ भी दान लेते हैं, उसको अपने श्रम, या बुद्धि द्वारा दुगुने रूप में लौटाने को प्रस्तुत रहना चाहिए । अपनी आवश्यकताएँ बहुत ही कम रखनी चाहिए । दाता की सेवा, सहायता कठिनाइयाँ हल करने का उद्योग करना चाहिए या सद्भावना और आशीर्वाद के रूप में बहुमूल्य उपदेश देते रहना चाहिए ।

भिक्षा के दो प्रयोजन बताये गये हैं–एक तो यह कि दान देने वाले को त्याग का, परोपकार का, आत्म-सन्तोष प्राप्त होता है । दूसरा यह कि उन ऋषिकल्प ब्राह्मणों को अपने अभिमान और अहंकार के परिमार्जन करते रहने का अवसर प्राप्त होता है । प्राचीन काल में लोक-सेवक, परोपकारी तथा महात्मा अहम्मन्यता उत्पन्न न होने देने के लिए भिक्षुक की तुच्छ स्थिति ग्रहण करते थे । ऐसे भिक्षुकों को दान देते हुए देने वाले अपना मान अनुभव करते थे और लेने वाले निरभिमान बनते थे । उससे उन दोनों के बीच सुदृढ़ सौहार्द बढ़ता था । भिक्षावृत्ति करने वाले की अपेक्षा देने वाले को ही अधिक लाभ रहता था । इस परमार्थ की भावना से यथार्थ में यह भिक्षा उचित भी थी, शास्त्र सम्मत भी ।

आजकल दान-वृत्ति से अनुचित लाभ उठाने वाले अनेक अकर्मण्य भिखमंगे, ठग, दुष्ट व्यक्ति लोगों को ठगते फिरते हैं । यह स्वयं तो परिश्रम करना नहीं चाहते, मुफ्त का माल उड़ना चाहते हैं । पिछले वर्ष भिखारियों की संख्या ५६ लाख के लगभग पहुँच गई थी । इसमें कष्ट पीड़ितों की संख्या तो अल्प है, अधिकतर तो वे ही व्यक्ति हैं, जो दूसरों के श्रम का अनुचित लाभ उठाते हैं, धर्म के नाम पर नाना प्रकार के आडम्बर, घृणित मायाचार और असत्य व्यवहार कर भिक्षावृत्ति करते हैं । इससे समाज में विषैला, अनिष्टकारी वातावरण फैलता है । हमारा यह कर्त्तव्य है कि धर्म के नाम पर मुफ्त माल उड़ाने वाले इन लुटेरों से सावधान रहें ।

सत्पात्र को, जरूरतमन्द को, अपंग अपाहिज कुछ काम न कर सकने वाले बीमार को दान करें । जितना संभव हो, जैसे संभव हो सहायता करें । हमारे यहाँ कहा गया है–

"दानशूरो विशिष्यते"

'दानवीर पुरुष ही अन्य सब पुरुषों से विशिष्ट है ।"

दान में विवेक की आवश्यकता

भिक्षा वृत्ति एक प्रकार का महान उत्तरदायित्व है जिसका भार उठाने के लिये बिरले की व्यक्तियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

को साहस होना चाहिये । शास्त्रकारों ने भिक्षा को अग्नि से से उपमा दी है, जैसे अग्नि को बड़ी सावधानी से स्पर्श करने की पूर्ण सतर्कता के साथ यथोचित स्थान में रखने की और फिर उसे उपयोग में लाना बहुत ही बरतने पर अग्नि की एक छोटी सी चिनगारी भयंकर, घातक परिणाम उपस्थित कर देती है वही हाल भिक्षा का है, यदि इस "अग्नि वृत्ति" का थोड़ा भी गलत उपयोग किया जाय तो बड़े व्यापक पैमाने पर भयानक अनिष्ट उत्पन्न हुए बिना नहीं रहते ।

(१) यज्ञार्थाय और (२) विपद् वारणाय, इन दो कार्यों के लिये ही शास्त्रकारों ने भिक्षा का विधान किया है । इन दो कार्यों के लिये भिक्षा दी जानी चाहिये । यज्ञ का अर्थ है पुण्य, परोपकार, सत्कार्य, लोक–कल्याण, सुख–शान्ति की बृद्धि, सात्विकता का उन्नयन । जिन कार्यों से समिष्टि की–जनता की–सांसार में श्रेय अभ्युदय की, अभिवृद्धि होती हो उन लोकोपयोगी कार्यों के लिये भिक्षा ली जानी चाहिये । शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, सहयोग, सुख, सुविधा बढ़ाने के कार्यों के लिये जो प्रसान्न किये जाते हैं वे तथा मानवीय स्वभाव में सत् तत्व को–प्रेम–त्याग, उदारता, क्षमा, विवेक, धर्मपरायणता, ईश्वर, प्राणधाम दिया, उत्साह श्रम सेवा, संयम आदि सदगुणो को बढ़ाने के लिये प्रयक्ष किये जाते थे, इन दोनेा ही प्रकार के कार्यों को अनुष्ठान को यज्ञ कहा जाता है। आजकल अनेक संस्थाएँ इस प्रकार के कार्य कर रही है। प्राचीन समय में कुछ व्यक्ति ही जीवित संस्था के रूप में जीवन भर एक निष्ठा से काम करते थे। स्वर्गीय भी गणेशशंकर विद्यार्थी की मृत्यु पर महात्मा गांधाने कहा था कि विद्यार्थी जी एक संस्था थे। जिसका जीवन एक निष्ठा पूर्वक, सब प्रकार के प्रलोभनों और भयो से विभुक्त होकर यज्ञार्थ लोक सेवा के लिये– लगा रहता है वे व्यक्ति भी संस्था ही है प्राचीन समय में ऐसे यज्ञ रूप ब्रह्म परायण व्यक्तियों को ऋषि, मुनि, ब्रह्मण पुरोहित ,आचार्य योगी सन्यासी आदि नामो से पुकारते थे। जैसे संस्था की स्थापना के लिये आजकल दफतर कायम किये जाते हैं और इन दफतरो का मकानभाढ़ा खर्च करना होता है उसी प्रकार उन संस्था व्यक्तियों ऋषियों की आत्मा के रहने के मकान–उनके शरीर– का मकान भाड़ा, भोजन, वस्त्र आदि का निर्वाह व्यय, खर्च करना पड़ता था। जैसे मकान भाड़े के लिये और संस्थाओं के अन्य कार्यों के लिये धन जमा किया जाता है वैसे ही दान, पुण्य, भिक्षा, आदि द्वारा उन ऋषि संस्थाओं को पैसा दिया जाता था। उन ऋषियों का व्यक्तिव, उग्र,अधिक उग्र,इतना उग्र, होता था जिसके सम्बन्ध में किसी प्रकार के सदेह की कल्पना तक उठने की गुंजायश न होती थी। इसलिये जनता उन्हे पैसा देकर उस पैसे के सदुपयोग के सम्बन्ध में पुर्णतया निश्रित रहती थी, उसका हिसाब जांचने की आवश्यता न समझती थी। ऋषि लोग भिक्षा द्वारा प्राप्त धन का उतम से उतम सदुपयोग स्वयं ही कर लेते थे।

देव पूजन, दान-दक्षिणा आदि के नाम पर लोग स्वयमेव समय-समय पर कई बहानों से संस्कार, पर्व, कथा,तीर्थ, पूजा, अनुष्ठान, व्रत परायण संस्था व्यक्ति ब्राह्मणों के द्वारा होने वाले लोकोपयोगी कार्यों से जनता पूरी तरह प्रभावित रहती थी और उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उनके लिये समुचित साधन जुटाने के लिए धन व्यवस्था करने में कोई कमी न रहने देती थी।

व्यक्तिगत रूप से इन ब्राह्मणों की आवश्यकताएँ बहुत ही स्वल्प होती थी, पीपल के छोटे-छोटे फल पिप्पली खाकर निर्वाह करने वाले पिप्पलाद ऋषि थे। खेत काटने पर जो अन्न के दाने खेतों में फैले रह जाते थे उन्हें तीन कर वे गुजारा कर लेते थे । रहने को फूंस की झोंपड़ी, पहनने को कटिवस्त्र, भोजन में कंद मूल इस निर्वाह को जुटा लेना कुछ खर्चीला न था। दान दक्षिणा में प्राप्त धन वे लोग लोकोपकारी कार्यों के लिये ही लगा देते थे। तक्षशिला जैसी युनीवर्सिटियां जिनमें तीस-तीस हजार छात्र पढ़ते थे और एक-एक हजार आचार्य पढ़ाते थे एक दो नहीं सैकड़ो की संख्या में थी जहाँ छात्रों और गुरूजनों का भोजन व्यय उन युनिवर्सिटियों की ओर से उठाया जाता था, यह धन दान द्वारा ही प्राप्त होता था। सर्जरी और चिकित्सा के सर्वोतम साधनो से सम्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बृहतम अस्पताल इन ऋषियों द्वारा चलते थे। ज्योतिष, मनोविज्ञान, योग, धर्म, शिक्षा, नीति, कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, शिल्प, राजनीति, आदि के सम्बन्ध में उन ऋषियों की विचार सभाएँ बैठती थी और महत्त्वपूर्ण अनुसंधान करके तत्त्सम्बन्धी खोजों को ग्रन्थों के रूप में उपदेशों के रूप में अनुभव शालाओं के रूप में जनता के सामने उपस्थित करते थे। वायुयान, जलयान, रेडियो, युद्ध , वस्त्र, रसायन आदि नाना प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधानों के करने के लिये ऋषियों के आश्रमों में ही प्रयोगशालाएँ रहती थीं । उनमें सदैव वैज्ञानिक अनुसंधान होते रहते थे। इस प्रकार के कार्यों का व्यय इस दान पर ही निर्भर रहता था।

वे प्रायः स्मरणीय ब्राह्मण लोग केवल जनता के द्वारा दिये जाने वाले दान पर हीन निर्भर न रहते थे वरन् उनके घरों पर जाकर द्वार द्वार पर भिक्षा मॉगते थे। इस भिक्षाटन में बड़ा भारी रहस्य महत्त्व और लाभ सन्निहित होता था। भिक्षा प्रयोजन को लेकर महात्मा लोग उन व्यक्तियो के घर पर भी स्वयमेंव पहुँचते थे जो सत्संग के लिये ऋषि आश्रमो में पहुँचने का समय नहीं निकाल पाते थे। इन घरो में जाकर वे अधिक से अधिक पांच ग्रास तक भिक्षा ग्रहण करते थे, इससे अधिक इसलिए नहीं लेते थे कि देने वाले पर अधिक भार न पड़े, उसकी आथिक स्थिति को आघात न पहुँच । भिक्षा लेकर वे चम्पत न हो जाते थे वरन दाता के घर की स्थिति मालूम करते थे और उसकीन कठिनाइयो को हल करके महत्व पूर्ण पथ प्रदर्शन करते थे। कहना न होगा कि इस प्रकार का भिक्षाटन उन लोगों का स्वर्ण सौभाग्य होता था जिनके घर पर ऐसे भिक्षुक जा पहुँचते थे। दो चार ग्रास अन्न देना या लेना कुछ महत्त्व नहीं रखता पर इस बहाने थोड़ें समय के लिये भी जिन्हें उन महात्माओं को अपने दरवाजे पर पधारने का सौभाग्य मिल जाता था वे उनके बहुमूल्य उपदेशों से कृत्य हो जाते थे। बीमारी, गरीबी, केश, कलह अनीति, भीति, भ्रान्ति आदि की दारूण कठिनाइयों से वह सत्संग , ग्रहस्थों को अनायास ही पार लगा देता था। आज वकील, डॉक्टर, लीडर, वैज्ञानिक, प्रोफेसर, आदि की सलाह या सेवा लेनी हो तो उसके बदले उनकी खुशामद के साथ मोटी रकम अदा करनी पड़ती है, परन्तु उस समय इन सब योग्यताओं के भण्डार ऋषि लोग पाँच ग्रास भिक्षा माँगने के लिये जनता जनार्दन के द्वार-द्धार पर पहुँचते थे। और इस बहाने से जनता को अपनी अमूल्य सम्पतियों से उपकृत करते थे।

इसके अतिरिक्त भिक्षा के दो और भी प्रयोजन हैं। एक तो यह कि दान देने से देने वाले को त्याग का परोपकार का पुण्य का आत्म-संतोष प्राप्त होता था दूसरा यह कि उन ऋषि कल्प ब्राह्मणों को अपने अभिमान एवं अहंकार के परिमार्जन करते रहने का अवसर मिलता था। भीख मांग कर जीविका ग्रहण करने से विनय, नम्रता, निरभिमानता, कृतज्ञता एवं ऋणी होने का भाव उनके मन में जागृत बना रहता था। वे अपने में लोक सेवक, परोपकारी तथा महात्मा उनकी अहम्मन्यता उत्पन्न न होने देने के लिये भिक्षुक की तुच्छ स्थिति ग्रहण करते थे। ऐसे भिक्षुकों को दान देते हुए देने वाले अपना मान अनुभव करते थे और लेने वाले निरभिमान बनते थें। इससे उन दोनों के बीच सुदृढ़ सौहार्द उत्पन्न होता था। भिक्षा वृति करने वाले की अपेक्षा, देने वाले को ही अधिक लाभ रहता था। इस परमार्थ अपेक्षा, देने वाले को ही अधिक लाभ रहता था । इस परमार्थ और परमार्थ की भावना से ब्रह्म जीवी महात्माओं के लिये भिक्षा का विधान किया गया था।

इस प्रकार यज्ञार्थ भिक्षा ब्राह्मणों द्वारा ग्रहण की जाती थी, वे इस प्राप्त हुए धन को लोक-कल्याण के, जनता की सुख समृद्धि की वृद्धि के कार्यों में व्यय करते थे, अपना शरीर और मन उन्होने परमार्थ में लगा रखा होता था, इन शरीरों की क्षुधा, तृषा, शील, धूप, निवारण से रक्षा के लिये भी कुछ व्यय हो जाता था तो वह भी यज्ञ की आहुति के समान ही फलदायक होता था। ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा या भिक्षा देने का यही वास्तविक तात्पर्य होता था, ब्राह्मण इसीलिये भिक्षा जीवी होते थे। जो व्यक्ति या जो संस्था, लोक हित के कार्यों में लगे है वह ब्राह्मण है उसे भिक्षा मांगने या प्राप्त करने का अधिकार है। यज्ञार्थ के लिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भिक्षा उचित है शास्त्र सम्मत है। ब्रह्म कार्यों के लिये या ब्रह्म जीवी व्यक्तियो के लिये भिक्षा का प्रयोजन धर्म सम्मत है।

इसके अतिरिक्त दूसरी श्रेणी विपद् वारणाय है। संकट ग्रस्तों का संकट दूर करने के लिये, सहायता देना मानवीय अन्तकरण का दैवी स्वभाव है । इस दैवी तत्त्व को सुरक्षित रखने एवं विकसित करने के लिये मनुष्य में दया उत्पत्र होती है। दुःखियों का दुःख देख कर हर एक सच्चे मनुष्य का हृदय करूणा से पूरित हो जाता है और आँखे छलक पड़ती है। इस दैवी प्रैरणा को तृप्त करने से ही मनुष्य परमात्मा के निकट पहुँचता है। दूसरो को कष्ट में देख कर जो लोग अपना कलेजा पत्थर का कर लेते है, निष्ठुरता धारण कर लेते है, अनुदारता एवं स्वार्थपरता में निमग्न होकर उनकी ओर उपेक्षा प्रकट करते है ऐसे मनुंष्य असुरता को प्राप्त होकर नर पिशाच का जीवन बिताते है। पीड़ितो की सहायता करना, दुखियो को दुख से छुड़ाना आवश्यक है इसके लिये शरीर से बुदि से, धन, से जैसे भी बन पड़े सहायता करनी चाहिए। विपद् वारणाय भिक्षा देनी चाहिए।

अग्निकाण्ड, जल प्रवाह, अकाल, चोरी, आक्रमण, अन्याय, दुर्दैव आदि किसी आकस्मिक कारण से जो लोग असहाय हो गये हो जिनकी अपनी सामर्थ्य नष्ट हो गई हो, गिर पड़ हों, अपने पैर पर आप खड़े न हो सकते हों, उनको सहायता देने की आवश्यकता है जिनका शरीर एवं मस्तिष्क उपार्जन शक्ति के लिये बिलकुल अनुपयुक्त हो गया हो उनको सहायता की जरूरत है। इस प्रकार के व्यक्तियों को पैसे की सहायता जरूरी होती है। परन्तु अन्य अनेक प्रकार के पीड़ित ऐसे हैं जिन्हें पैसे की नहीं शरीर एवं बुद्धि की सहायता आवश्यक होती है। शोक चिन्ता उद्विग्नता क्लेश-कलह निराशा-भय, ईर्षा, कोध, लोभ, तृष्णा अहकार असंभव, भ्रम, अज्ञान आदि मानसिक संकटों से अनेक मनुष्य ग्रसित होते है वे उतना ही कष्ट पाते हैं जितना कि कठिन रोगों के रोगियों को कष्ट होता है। ऐसे लोगों की पैसे से सहायता हो जाय तो कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, उनके लिये बुद्धि द्वारा, विवेक द्वारा, जो सहायता पहुँचाई जाती है वही सही सहायता है। जिनके पास पैसा है जो आसानी से अपने स्वास्थ्य के लिये पर्याप्त पैसा खर्च कर सकते है उन्हे मुफ्त दवा बाटना निरर्थक है। उन्हें उपयोगी चिकित्सा विधि का मार्ग बताना एव उस मार्ग तक पहुँचने में क्रियात्मक सहायता देना पर्याप्त है। किसी करोड़पति अमीर को तपैदिक हो जाय तो उसे मुफ्त दवा की आवश्यकता नहीं उत्तम चिकित्सक तथा उत्तम चिकित्सा स्थान के परिचय की आवश्यकता है। इस प्रकार की सहायता देना और उपयुक्त साधन से मिला देना पर्याप्त है।

गरीब आदमी को पैसा देने मात्र से काम नहीं चलता। उसे गरीबी से छुड़ाने के लिये किसी कारोबार से लगा देना होगा । बहुत से गरीब ऐसे है जिनको शारीरिक योग्यताएँ कुछ काम करने योग्य है बहुत से अंग-भंग मनुष्य, अंधे, असमर्थ भी ऐसे होते हैं जो शरीर के अन्य अंगो से काम लेकर जीविका उपार्जन कर सकते हैं। जैसे लंगड़े आदमी, हाथ से हो सकने वाले धंधे कर सकते है, अंधे, गूंगे,बहरे, कुबड़े भी किसी न किसी प्रकार की मजदूरी कर सकते हैं। जिनके शारीरिक अंग असमर्थ हैं उन्हें यदि पढ़ा लिखा दिया जाय तो वे प्राणी, विचार और बुद्धि से हो सकने वाले अध्यापकी आदि कार्य कर सकते है। गरीबो या असमर्थों को तात्कालिक आरम्भिक कुछ सहायता की आवश्यकता अवश्य होती है पर उनकी सची सहायता यह है कि उन्हे समझा बुझा कर काम करने, स्वतन्त्र, जीविका उपार्जन के लिए तैयार किया जाय और उनके उपयुक्त काम ढूँढ देने की व्यवस्था बनाई जाय। इसी प्रकार अग्निकाण्ड, जल प्रवाह, अकाल, आकमण चोरी आदि से पीड़ित व्यक्तियों को आरंभ में तात्कालिक सहायता पहुँचाने के बाद अपने पैरों पर खड़ा होने योग्य बनाने में मदद करनी चाहिए। विपति में पड़े हुए व्यक्तियों को आरंभ में कुछ धन की सहायता होती है। परन्तु वस्तुतः उन्हें उठाकर खड़े

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर देने के लायक साधन और मनोबल देने की अधिक जरूरत रहती है।

स्वाथी रूप से उन विपद ग्रस्तों को भिक्षावृति ग्रहण करने का अधिकर है जो शरीर और बृद्धि की दृष्टि से बिलकुल असमर्थ है। जिनको निकट कुटुम्बियों से सहायता प्राप्त करने की भी सुविधा नहीं है। अनाथ, बालक, गरीब, रोगी, पागल, अनिब्रद्ध, अपाहिज, तथा कोढ़ आदि अस्पर्श्य रोगो वाले व्यक्ति स्वाथी रूप से दान के अन्न से अपना निर्वाह कर सकते है। ऐसो की जीवन रक्षा करने के लिए जीवनोपयोगी अन्न, वस्त्र एवं निवास स्थान आदि की सुविधाएँ देना समाज का कर्तव्य है।

यहाँ स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि विपद्र ग्रस्तों को दूसरों की वही सहायता लेनी चाहिये जो वे अपनी शेष शक्तियों से नहीं कर सकते। वह सहायता उन्हें उतने ही समय तक एवं उतनी ही मात्रा में लेनी चाहिए जिससे वे अपने पैरों पर खड़े हो जावे। फिर जो सहायता लें उसे कर्ज रूप से ग्रहण करें और मन में दृढ़ संकल्प रखे कि समर्थ होते ही उस सहायता को दूसरे पीड़ितों को व्याज समेत चुका देंगे । असहाय या असमर्थ व्यक्तियों को भिक्षा अन्न के बदले लोककल्याण की शुभ कामनाएँ आशीर्वादात्मक, प्रार्थनात्मक सद्रभावनाऐ देते रहना चाहिए और मन में ध्यान रखना चाहिए, इस जन्म में या अगले जन्म में समर्थ होने पर इस ऋण को समाज के लिए पुनः लौटा देगें।

दान लेने और देने वाले के मन में यह प्रश्न पूरी सतर्कता के साथ उपस्थित रहना चाहिये कि इस पैसे का उपयोग (१) यज्ञार्थाय (२) विवद् निवारणाय, इन दो कार्यों के अतिरिक्त और किसी तीसरे काम में तो नहीं होगा । जब यह पूर्ण निश्चय हो जाय तभी दान देना और लेना चाहिए। संसार में शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक विभूतियो की संवृद्धि के लिये एवं पाप तापोको हटाने के लिए जो प्रयत्न होते है वे यज्ञ है और विपदा ग्रस्तों को अपने पैरो खड़ा कर देने के लिये एवं असमर्थो की जीवन रक्षा के लिये जो कार्य किये जाते हैं वे विपद निर्वारण की श्रेणी में आते हैं। पर प्राण तक दे देने चाहिये। यह दान की शास्त्रीय मर्यादा है।

उपरोक्त शास्त्रीय मर्यादा के अतिरिक्त अन्य प्रयोजनों के लिये जो दान लिया या दिया जाता है वह सब प्रकार अनिष्ट कर, घातक, भयंकर, परिणाम, उतपत्र करने वाला तथा पाप कर्म अशास्त्रीय भिक्षा–पाप अनाचार दुख दुर्गुण एवं नरक सृष्टि करती है। भिक्षा सचमुच एक लज्जा की चीज है। सर्वत्र भिक्षा मँगाने की मृत्यु के समान कष्टदायक अपमान जनक कहा है। सचमुच अशास्त्रीय भिक्षा अत्यन्त ही गर्हित है वह नीचता, हीनता, निर्लजता एवं पशुता को प्रकट करती है।

हमारे देश एवं धर्म का यह दुर्भाग्य है कि आज अशास्त्रीय भिक्षा पर जीविका निर्भर करने वाले मनुष्यो की संख्या लाखों तक पहुँच गई है पिछली सरकारी जनगणना के अनुसार भारतवर्ष में भिखारियों की संख्या ५६ लाख के लगभग पहुँच गई है। इनमें से भिक्षा के वास्तविक अधिकारी अँगुलियों पर गिनने लायक निकलेंगे। लोक कल्याणकारी, जन सेवा के कार्या में सर्वतो भावेन लगे हुए विद्वान विस्रृत ब्राह्मणों की संख्या अत्यन्त ही न्यून निकलेगी सब कुछ त्याग कर सन्यास लेकर जनता जनार्दन की आराधना में प्रवृत साधु सन्यासी चिराग लेकर खोजने पड़ेगे। आकस्मिक घोर अनिवार्य विपत्ति से पीड़ितों एवं असमर्थ, असहाय, दरिद्रों की संख्या भी बहुत ही कम निकलेगी। इन छप्पन लाख भिक्षुको में पाँच हजार भिक्षुक भी कठिनाई से ऐसे निकलेगे जो शास्त्रीय भिक्षा के अधिकारी हैं शेष साठ पचपन लाख तो ऐसे मिलेंगे जिन्होंने भिक्षा को एक लाभदायक व्यापार व्यवसाय बना लिया है।

ब्राह्मणत्व के समस्त गुणों से रहित व्यक्ति भी अपने को इस आधार पर भिक्षा का अधिकारी बताते हैं कि हम ब्राह्मणों के वंशज है। यह झूठा दावा है। ब्राह्मणत्व कोई जागीर नहीं है जो पुश्त दर पुश्त विरासत में मिलती चली जाय। जो व्यक्ति ब्राह्मणत्व के गुण कर्म स्वभाव से युक्त है। उसे भिक्षा जीविका करनी चाहिये पर यदि उसके बेटे में वे गुण न रहे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तो उसे ब्राह्मणत्व के लिए मिलनी वाली भिक्षा ग्रहण करने का अधिकार नहीं है। इसी प्रकार संसार को मुक्ति दिलाने के प्रयत्न में अपनी मुक्ति तक को त्यागे हुए जो सन्यासी हैं वे ही अपनी सेवा के बदले में संसार से भिक्षा ले सकते है। जो केवल मात्र अपनी निज की मुक्ति के लिए प्रयत्न शील है, दुनिया को झूठा कहते है लोक सेवा से दूर रहते है वे पक्के स्वार्थी है वे अपने निप्त के लाभ में ही तो प्रवृत है चाहे वह लाभ धन का हो, स्वर्ग का हो या मुक्ति का हो। जैसे धन कमाने के लिए ही सदा अपने व्यापार में प्रवृत कोई व्यापारी भिक्षा का अधिकारी नहीं, वैसे ही अपनी निज की मुक्ति में तल्लीन योगी सन्यासी भी भिक्षा के अधिकारी नहीं । जब संसार झूठा है तो भिक्षा भी झूठी है। जब संसार की सेवा से उपेक्षा करते है और अपने को उससे अलग मानते है तो फिर भिक्षा से भी अलग रहना चाहिये, उसकी भी उपेक्षा करनी चाहिए। भजन करना व्यक्तिगत नित्य कर्म है। स्नान,भोजन, व्यायाम की भाँति भजन भी एक अत्यन्त लाभ प्रद नित्यकर्म है। भजन करना किसी दूसरे पर अहसान करना नहीं है। न इसके करने से किसी को भिक्षा लेने का अधिकार मिलता है।

देखा जाता है कि धर्म के नाम पर या दीनता के नाम पर नाना प्रकार के आडम्बरों घृणित मायाचारों से भिक्षा उपार्जन की जाती है। इन मायाचारो से जहां जनता का पैसा बर्वाद होता है वहाँ उनके मस्तिष्क में अन्धविश्वास, भ्रम, भय, अज्ञान एवं अविचार का विष भी प्रवेश होता। पुरुषार्थ, प्रयत्तापें, कर्म और साहस को छोड़ कर लोग आकाश में से देवताओं द्वारा छोड़ कर लोग आकाश में से देवताओं द्वारा स्वर्ग पुष्प वरसाये जाने की आशा करने लगते है। अनेको व्यक्ति अपने कार्यों में दोष ढूँढ़ कर उन्हे सुधारने की अपेक्षा दैव कोप की अविष्ट कल्पना करके हतोत्साह हो जाते है। धर्म का आडम्बर करके जीविका कमाने वालों के पांस विद्या, बल, विवेक, ज्ञान, अनुभव, तप आदि महत्तायें तो होती नहीं इनके न होने पर वे झूठा आधार ग्रहण करते हैं, अपने आपको देवताओं का प्रतिनिधि, कृपापात्र या ऐजेन्ट साबित करते है जिससे भोली जनता उन्हें देव कृपा प्राप्त करने के लिये पूजे । यह मायाचार जनता में ऐसे विषैले अन्ध विश्वास पैदा करता है, संसार में भयकर अनिष्ट उत्पत्र होते हैं।

गरीबी का आडम्बर बना कर भिक्षा मँगाने वाले अधिकांश ऐसे व्यक्ति होते है, जिनके शरीर में श्रम करने की जीविका उपार्जन करने की पर्याप्त क्षमता होती है, वे चाहें तो मेहनत मजदूरी करके आसानी से अपना गुजारा कर सकते हैं। पर उन्हें बिना परिश्रम किये आसानी से जब भिक्षा मिल जाती तो पसीने बहाने के लिये क्यों तैयार हों ? वे गरीबी के, बीमारी के, विपत्ति के झूठे बहाने बना कर भिक्षा मांगते रहते है। कुछ अत्यन्त घृणित कोटि के भिक्षुक तो अधिक जीविका कमाने के लिये बड़े लोग हर्षक कार्य करते हैं। वे अपने शरीर में स्वेच्छा पूर्णक घाव बनाते है, घावों को अच्छा नहीं होने देते, अपने बालकों के नेत्र, हाथ, पैर, आदि तोड़-फोड़ देते है, इस घृणित काम को वे इसलिये करते हैं कि दर्शक लोग दया द्रवित होकर उन्हें अधिक पैसा दें । गायों या बछड़ों को पाँच पैर का या अधिक अंग का बनाने के लिये कसाइयो द्वारा कलम लगवाई जाती है। एक बछड़े का पैर काट कर ओर दूसरे बछड़े की पीठ का मांस काट कर इन दोनों को कसाई लोग सी देते है। जब तक वह घाव अच्छा नहीं होता तब तक बछड़ें को इस प्रकार जकड़ा रहने देते है कि वह जरा भी हिल न सके। जब वह जुड़ जाता है तो इसे शिव जी का बाहन नन्दी बता कर भिखारी लोग भीख माँगते हैं। बहुत से बछड़ो के पैर की जगह माँस का लोथड़ा भी जोड़ देते है। इस क्रिया में एक बछड़ा तो आरम्भ में ही मार डाला जाता हैं, दूसरा जिसमें कलम लगाई गई थी या तो मर जाता है या बड़ी मुश्किल से मृत्यु तुल्य कष्ट सह कर जी पाता है। ऐसे निर्दय हिंसापूर्ण कार्य करते हुए उन्हें तनिक भी दया नहीं आती। धर्म जीवी भिक्षुकों में से भी अनेक ऐसे ही निर्दय हो जाते हैं। देवी– भैरव भवानी, पीर मसान आदि के नाम के नाम पर बकरा, मेंड़ा, भैंसा, मुर्गा, आदि पशु पक्षियों का गला काटते और कटवाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अशास्त्रीय भिक्षा, पाप रूप। ऐसा अत्र खाने वालों के रोम-रोम में दुर्गुणों का समावेश हो जाता है। वे झूठ, चोरी, छल, व्यभिचार, मद्यपान, नशेवाजी, ढोग, पाखण्ड, आलस्यः प्रमाद, हिंसा, असहिष्णुता अनुदारता आदि असख्यों दोषो से ग्रसित हो जाते है। स्वावलम्ब एवं नष्ट होने के साथ-साथ आत्मा की भव्य ज्योति बुझ जाती है और उनसे मन मरघट में पैशाचिक कुविचार नंगा नृत्य करने लगते है। अशास्त्रीय भिक्षा का अन्न खाने वाले को शीघ्र ही एक घृणित दमनीय नारकीय प्राणी के रूप में परिणत कर देता है। ऐसे प्राणियों की वृद्धि होना किसी भी देश या जाति के लिये एक भारी खतरा है क्योंकि वे प्राणी संक्रात्मक रोगों के कीटाणुओं की भाँति जहाँ भी फिरते हैं वह अनिष्ट उत्पत्र. करते हैं।

सच्चे यज्ञार्थों भिक्षुकों की अभिवृद्धि किसी भी समाज के लिये गौरव की बात हैं। त्यागी, परोपकारी, विद्वान, विशेषज्ञ, अपने सम्पूर्ण निजी स्वार्थों को तिलांजलि देकर जनकल्याण के कार्य में जुटे रहें यह बड़ा ही ऊचा आदर्श है। जहाँ थोड़ी-सी योग्यता वाले मनुष्य अपनी योग्यता के बदले में प्रचुर धन कमा कर ऐश्वर्यवान बन जाते है वहाँ महान तप योग्यताओं को जनता जनार्दन के चरणों में अर्पित करके केवल मात्र भिक्षा के दानों पर निर्वाह करना दैवी त्याग है, ऐसे त्यागियों की वृद्धि होना गौरव की बात है। परन्तु खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि ऐसे भिक्षा जीवी अब प्रायः विलुप्त हो चले हैं। अब तो व्यवसायी लोग इस यज्ञ सामिग्री की भिक्षा की लूट कर रहे हैं। यह शर्म की, कलंक की और दुःख की बात है।

भिक्षा वृति का सदुपयोग हो, सच्चे भिक्षुको का हक, चोर लुटेरे न लुटने पांवे, इसके लिये भिक्षा देने वालों की जिम्मेदारी बहुत है। उन्हें देखना चाहिये कि माँगने वाला यज्ञार्थाय या विपद वारणाय ही मँगाता है न ? यदि इन दोनों में से माँग रहा हो तो उसें एक तिनका भी देने से मना कर देना चाहिये। अविवेक पूर्वक, कुपात्रों को दिया हुआ दान, उस दान दाता को नरक में ले जाता है क्योंकि उन निठल्ले भिक्षुकों द्वारा फैलने वाली अनैतिकता का उतरदायित्व उन अविवेकी दानदाताओं पर ही पड़ता है। यदि उन्हे भिक्षा न मिले तो सीधे रास्ते पर आने के लिये स्वयं ही मजबूर होंगे परन्तु यदि अविवेकी दाता उनका घड़ा भरते ही रहेंगे तो उनके सुधारने की सीधे रास्ते पर आने की कोई आशा नहीं करनी चाहिये।

दान में विवेक आवश्यक है जो दान के अधिकारी हैं उन्हें जी खोल कर युक्त हस्त होकर देना चाहिये। संसार में सात्विकता, सद्भावना, ज्ञान, विवेक तथा सुख शान्ति बढ़ाने के लिये एंवं विपत्ति ग्रस्तों को संकट से बचाने के लिये हर समय सहायता दी जानी चाहिये। शरीर से, बुद्धि से, पैसे से, यहाँ तक कि प्राण देकर भी विश्व के कष्ट मिटाने और सुख बढ़ाने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। सच्चे ब्रह्मणों को सच्चे साधुओं को सच्चे ब्रह्म साधकों को, संस्थाओं को दृढ़ कर उन्हें शान्ति की पुष्टि होती है। विपद ग्रस्तों को उठा कर छाती से लगाना चाहिये, उनके लिये हर समय एवं उचित सहायता पहुँचानी चाहिये। परन्तु सावधान– गौ का ग्रास शृंगाल न छीनने पावे, भिक्षा का हवन शाकल्य यज्ञ कुण्ड़ में पड़ने की जगह अपवित्र गली में न बह जाय। यज्ञार्थाय और विपद् प्रयुक्त न होकर कहीं आपका दान कुपात्रों द्वारा न लूट लिया जाय। इसलिये दान में विवेक की आवश्यकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारतीय संस्कृति का सामाजिक पक्ष

सामाजिक पक्ष का महत्त्व

अपने सामाजिक पक्ष में भी भारतीय संस्कृति वैज्ञानिक आधारों पर खड़ी हुई है । भारतीय तत्त्व ज्ञानियों ने सामाजिक क्षेत्र में बहुत खोज–बीन करके ऐसे नियम निर्धारित किए थे, जो प्रचुर फल देने वाले हैं और आज भी जिनसे समग्र हिन्दू जाति लाभ उठा रही है । हमारे शास्त्रों में आचार को परम धर्म कहा गया है । भारतीय तत्त्ववेत्ता यह मानते हैं कि जो सिद्धान्त अथवा विचार आचरण में नहीं आ सकते, वे उपयोगी नहीं हैं और जो धर्म व्यवहार में नहीं आता, जिससे हमारा दैनिक जीवन और समस्याएँ हल नहीं होतीं, जीवन सुख–शान्तिमय नहीं बनता, हम उसे "धर्म" नहीं कह सकते । हमारी संस्कृति में धर्म के अन्तर्गत उन सिद्धान्तों को स्थान दिया गया है, जिनसे हमारा नैतिक और आध्यात्मिक ही नहीं, वरन् सामाजिक जीवन भी उन्नत बनता है । वर्त्तमान युग संक्रान्ति और संघर्ष का युग है । यदि हम भारतीय आचार परम्परा को बचाना चाहते हैं, तो हमें अपनी संस्कृति में घुसे हुए दोषों को दूर कर पूरी श्रद्धा से पूर्वजों की परिपाटी को ग्रहण करना होगा ।

एक युग ऐसा आया था कि भारतीय संस्कृति को वाम–मार्ग से कड़ा मुकाबला करना पड़ा था । आर्य संस्कृति के समर्थकों ने अपने उज्ज्वल चरित्र के बल पर वाम–मार्ग के प्रभाव को रोक दिया था । आज पुनः वही विचारधारा नूतन रूप में पाश्चात्य संस्कृति की वेश–भूषा में हमारे सम्मुख आई है । भौतिकवाद और कम्यूनिज्म के प्रचारक खुले आम पुराने आचार–विचार का विरोध कर रहे हैं, लेकिन हमारा विश्वास है कि भारतीय संस्कृति के पुष्ट सामाजिक पक्ष के सम्मुख इस भौतिकवाद की बालू की दीवार न ठहर सकेगी ।

भारतीय समाज की आधार–शिला सदाचार पर ही आसीन है, इसलिए उसका धर्म बतलाते हुए प्रथम सूत्र "आचारः प्रथमो धर्म" कहा गया है । हमारे यहाँ चार वर्ण और चार आश्रमों की व्यवस्था रही है । इसकी उत्कृष्टता पर यहाँ संक्षेप में विचार प्रस्तुत किए जाते हैं ।

१-चार वर्ण

हमारे वेदों में वर्ण-व्यवस्था का विधान रखा गया है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वार्णों में सम्पूर्ण समाज विभक्त कर दिया गया है । चारों वर्णों का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक अपना निर्धारित कार्य मिल-बाँट कर पूरी कुशलता से सम्पन्न करें । यदि एक व्यक्ति एक प्रकार का कार्य पूरा मन लगाकर करता है, तो उसमें कुशलता और विशेषज्ञता मिल जाती है । बार-बार कार्य को बदलते रहने से कुछ भी लाभ नहीं होता, न काम ही अच्छा बनता है । अतः वेदों में चारों वर्णों के कर्मों का पृथक्-पृथक् वर्णन है :–

"ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय"

(यजुर्वेद ३८-१४)

अर्थात् "हमारे हित के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को धारण करो ।"

"उस विराट् पुरुष (ईश्वर) के ब्राह्मण मुख हैं, क्षत्रिय भुजाएँ हैं, वैश्य उरू हैं और शूद्र पैर हैं ।"

(यजुर्वेद ३१-११)

महाभारत काल में वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी । चारों वर्णों के कर्त्तव्य अनेक स्थलों पर बतलाये गये हैं । (देखिए महाभारत आदि पर्व ६४/८/३४) यह भी वर्णन आता है कि सारे वर्ण अपने-अपने वर्णानुसार कर्म करने में तत्पर रहते थे और इस प्रकार आचरण करने से धर्म का ह्रास नहीं होता था । (महाभा० आदि० ६४–२४) गीता में वर्ण-व्यवस्था का उल्लेख इस प्रकार किया गया है:–

"चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।"

(गी० ४-१३)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"मैंने गुण-कर्म के भेद से चारों वर्ण बनाये ।"

इस प्रकार गुण-कर्म के अनुसार हमारे यहाँ वर्णों का विधान है । ब्राह्मण वह है, जो अपनी विद्या, बुद्धि और ज्ञान से समाज के अज्ञान और मूढ़ता को दूर करने का प्रण करता है । जो कमजोरी या दुर्बलता की कमी की पूर्त्ति करता है, वह क्षत्रिय है । सारे समाज की रक्षा का भार उस पर है ।

आर्थिक अभाव की पूर्त्ति करने वाला वैश्य है । कृषि, वाणिज्य और गौ-रक्षा द्वारा समाज को सम्पन्न बनाना वैश्य-कर्म कहा गया है । चौथा वर्ण शूद्रों का है । वास्तव में शूद्र में वह बुद्धि या विवेक, दूरदृष्टि इत्यादि नहीं जिससे वह स्वयं स्वतन्त्र कार्य कर सके । अतः वह उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा सहयोग और सहायता ही कर सकता है । इसमें निम्न कोटि के कार्य भी आ जाते हैं जिन्हें उसे करना पड़ता है । इन उद्देश्यों को दृष्टिगत रख गुण-कर्म का ध्यान रखते हुए चारों वर्णों की स्थापना हुई थी । तीन उच्च वर्णों की पृथकता और उज्ज्वलता स्पष्ट करने के लिए जनेऊ का विधान किया गया था, लेकिन कालान्तर में यह वर्ण-व्यवस्था कठोर बन गई और जन्म से ही वर्ण का निर्णय होने लगा, जो उचित नहीं था । जिसके जैसे गुण कर्म हों, उन्हें उसी वर्ण के अनुरूप कार्य और सामाजिक सम्मान मिलना चाहिये । जिस व्यक्ति में अपने वर्ण के अनुकूल गुण कर्म न हों, उन्हें उस वर्ण में शामिल नहीं करना चाहिए । पुराणों में भी जाति बदलने का उल्लेख मिलता है । जैसे-विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय थे, पर अपने विद्या, बुद्धि, उच्च सांस्कृतिक वैभव और ज्ञान-साधना के बल से ब्राह्मण बने थे ।

हमारी जाँति-पाँति के काम का विभाजन मात्र है । जो जैसा कार्य करना जानता हो, वह वैसा ही कार्य करे, वैसी ही जाति में शामिल समझा जाये । आज इस व्यवस्था का दुरुपयोग हो रहा है । हमारे यहाँ अनेक उपजातियाँ बन गई हैं । ब्राह्मणों में ही दो सहस्र अवान्तर भेद हैं । केवल सारस्वत ब्राह्मणों की ही ४६६ शाखाएँ हैं । क्षत्रियों की ६६० और वैश्यों तथा शूद्रों की तो इससे भी अधिक उपजातियाँ हैं । इस संकुचित दायरे के भीतर ही विवाह होते रहते हैं । फल यह हुआ है कि इससे भारत की सांस्कृतिक एकता नष्ट हो गई है । कुछ व्यक्ति योग्यता या शुद्धाचरण न होते हुए भी अपने को ऊँचा और पवित्र मानने लगे हैं और कुछ अपने को नीच और अपवित्र समझने लगे हैं ।

गुण-कर्म ही आदर तथा उच्चता के मापदण्ड हैं । गुण का ही सामाजिक सम्मान होना चाहिए, न कि जन्म का । शूद्र वर्ण का कोई व्यक्ति यदि अपनी योग्यता, विद्या, बुद्धि बढ़ा लेता है, तो उसका भी ब्राह्मण के समान आदर होना चाहिए । जन्म के कारण कोई बहिष्कार के योग्य नहीं है, महाभारत में युधिष्ठिर और यज्ञ के सम्वाद में कहा गया है–

"मनुष्य जन्म से ही ब्राह्मण नहीं बन जाता, न वह वेदों के ज्ञान मात्र से ब्राह्मण बन जाता है उच्च चरित्र से ही मनुष्य ब्राह्मण माना जाता है ।"

मनुस्मृति का वचन है–

"विप्राणां ज्ञानतो ज्येष्ठयम् क्षत्रियाणां तु वीर्यतः"

अर्थात् "ब्राह्मण की प्रतिष्ठा ज्ञान से है तथा क्षत्रिय की बल-वीर्य से ।" जावालि का पुत्र सत्यकाम जाबालि अज्ञात वर्ण होते हुए भी सत्यवक्ता होने के कारण ब्रह्म-विद्या का अधिकारी समझा गया । अतः जाति-व्यवस्था की संकीर्णता छोड़ देन योग्य है । गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार ही वर्ण का निर्णय होना चाहिए ।

द्विजत्त्व की अवधारणा

भारतीय संस्कृति में द्विजत्त्व को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है । उसे प्रमुख संस्कारों में सम्मिलित करके उपनयन या दीक्षा का नाम दिया गया है । द्विजों को श्रेष्ठ और वरिष्ठ ठहराया गया है, जबकि उससे रहित लोगों को हेय दृष्टि से देखा गया है । चतुर्थ वर्ण कहकर अनगढ़ लोगों में गिना गया है । द्विजत्व प्राप्त कर लेना किसी के लिए भी गर्व-गौरव भरी उपलब्धि समझा गया है ।

प्रयोजन जातिगत वंश परम्परा से नहीं । वरन् गुण, कर्म, स्वभाव स्तर के साथ जुड़ता है । शरीर-संरचना की दृष्टि से सभी मनुष्य समान हैं । अस्ल की दृष्टि से मनुष्य प्राणी सभी समान है । उनमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

किसी को भी जन्म-जात रूप से न छोटा माना जा सकता है न बड़ा न कोई ऊँचा न नीचा । व्यक्ति के साथ जुड़ी हुई उत्कृष्टता, निकृष्टता ही किसी को श्रेष्ठ या हेय बनाती है । रावण ब्राह्मण होते हुए भी असुर माना गया और केवट, शवरी अद्विज होते हुए भी परम भक्तों में गिने गये । इसमें जन्म को नहीं कर्म को प्रमुखता दी गई समझी जा सकती है।

द्विज का अर्थ है--दूसरी बार जन्मना एक जन्म हर किसी का माता-पिता के सहयोग से होता है । सामान्य जन्म प्राणिमात्र का इसी प्रकार होता है मनुष्य का भी । दूसरा जन्म मनुष्य को अपनी आस्थाओं के बल-बूते स्वयं लेना पड़ता है । उसका प्रतीक यज्ञोपवीत दीक्षा को माना गया है । यह आत्म-ज्ञान परक है । गुरु को इसका श्रेय दिया जाता है, क्योंकि उसी के माध्यम से उस तत्त्व-ज्ञान की उपलब्धि होती है, जिसके आधार पर नर-पशु को नर-देव बनने का अवसर मिलता है। सद्ज्ञान का प्रतीक गुरु है। गुरु व्यक्ति को नहीं ज्ञान-गरिमा को कहते हैं । इसमें स्वाध्याय सत्संग, चिन्तन, मनन को आधार माना गया है । यह वातावरण के प्रभाव से ही हस्तगत हो सकता है और पूर्व संचित संस्कारों के आधार पर अन्तः प्रेरणा से भी । जब मनुष्य सोचता है कि वह पशु पक्षियों से जीव-जन्तुओं से अधिक विकसित एवं समर्थ है तो उसे अपनी वरिष्ठता का बोध होता है । इस बोध को व्यावहारिक जीवन में उतारने की उत्कंठा मचलती है । यही है वह प्रसव पीड़ा, जिसमें होकर गुजरने पर दूसरा जन्म द्विजत्व उपलब्ध होता है। ऐसी दशा में पेट-प्रजनन गौण हो जाता है और मानवी गरिमा के अनुरूप उत्कृष्टता अपनाने आदर्शों को जीवन-चर्या में घुला देने की योजना बनती है। इसी उत्कंठा का क्रियान्वयन दूसरा जन्म है।

यह सुयोग हस्तगत हुआ, उसी का उत्सव यज्ञोपवीत संस्कार के रूप में समारोह पूर्वक उत्साह के वातावरण में मनाया जाता है । अनेक क्षेत्रों तथा वर्गों में यज्ञोपवीत संस्कार को विवाह जैसे धूम-धाम के साथ मनाया जाता है । अब उस समारोह के साथ व्यक्तित्व के निखार की अन्तराल को हिला देने वाली परिपाटी नहीं रही । मात्र शुष्क कर्मकाण्ड और खर्चीली परिपाटी उसके साथ जुड़ी रह गई है । ऐसी दशा में, उसकी उपेक्षा होना स्वाभाविक ही था । इन दिनों द्विजत्व का प्रतीक यज्ञोपवीत संस्कार किसी प्रकार चिह्न पूजा के रूप में ही पूरा होता है । अनेकों ने तो उसे आडम्बर मात्र समझ कर छोड़ दिया है ।

महत्त्व कर्मकाण्ड का नहीं, उस भाव परिवर्तन में निर्धारण का है जिसमें नर-पशु के स्तर का परित्याग आवश्यक हो जाता है और उस त्याग के साथ उच्चस्तरीय आदर्शों को चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार में अधिकाधिक गहराई तक सम्मिलित करते चलना आवश्यक हो जाता है । यही आत्मिक-प्रगति का सोपान भी है ।

पशु पेट-प्रजनन के लिए जीते हैं । मन की मौज ही उनकी दिशा निर्धारित करती है । स्वार्थ के अतिरिक्त और कुछ समझदारी नहीं। अपना सुख बँटा देने एवं दूसरों का दुःख बँटा लेने जैसी प्रवृत्ति न उठती है न बनती है । संकीर्ण स्वार्थपरता की बात सोचने और वैसी ही क्रिया-प्रक्रिया अपनाने के अतिरिक्त और कुछ उन्हें सूझता ही नहीं । फिर ऐसे कदम उठाना तो सम्भव ही कैसे हो जिसमें आत्मानुशासन जग सके, संयम बरता जाये और अपनी क्षमता का पुण्य परमार्थ में नियोजन करते बन पड़े । यह पशु-स्तर सर्व-विदित है । मनुष्य काया में भी असंख्य नर-पशु इसी स्तर के निवास करते पाये जाते हैं । उनकी जिन्दगी लिप्सा, लालसा में व्यतीत हो जाती है । वासना, तृष्णा और अहंता की पूर्त्ति ही इसका एक मात्र लक्ष्य रह जाता है । जो कुछ करते और सोचते हैं, उनमें लोभ, मोह, अहंकार को अधिकाधिक मात्रा में पूरी करते रहना है । कर्तृत्व का प्रधान अंग बन जाता है। इस स्थिति को ही भव-बंधन कहते हैं। माया पक्ष भी इसी को कहा जाता है। ऐसा दृष्टिकोण नरक जैसा निन्दित बन जाता है । उन्हें नीति, कर्त्तव्य, परमार्थ जैसे आधार अपनाने की इच्छा ही नहीं होती । इन्हें मानवी-काया में निवास करने वाले भूत-प्रेत भी कहा जा सकता है । अन्धकार में जीने की यही स्थिति है । आदर्शों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का प्रकाश न उनके चिन्तन में उतरता है और न आचरण में । इस स्तर के लोग अपनी लालसाओं को पूरा करने के लिए प्रायः न्याय नीति अपना कर सफल नहीं हो पाते, इसलिए उन्हें अनाचरण, अत्याचार का मार्ग अपनान पड़ता है । अपराधी कृत्य करते रहते हैं । स्वयं जलते और दूसरों को जलाते, स्वयं गिरते और दूसरों को गिराते रहते हैं ।

द्विजत्त्व ठीक इससे विपरीत स्थिति है । उसमें निजी महत्त्वाकांक्षाओं को आरम्भ से ही पैरों तले कुचलना पड़ता है । स्वार्थ के नाम पर शरीर-पोषण की अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी करने भर के प्रयत्न चलते हैं । औसत नागरिक स्तर का गुजारा पर्याप्त लगता है । इतना उपलब्ध कर लेना किसी के लिए भी कुछ भी कठिन नहीं पड़ता । जब कीट, पतंग, पशु-पक्षी अपने शरीर निर्वाह की व्यवस्था सरलता पूर्वक कर लेते हैं, तो मनुष्य जैसे अनेकानेक शारीरिक मानसिक विशेषताओं से सम्पन्न बुद्धिमान प्राणी के लिए उतना कुछ कर सकना क्यों कुछ कठिन होना चाहिए ? रोटी, कपड़ा और मकान जैसी छोटी आवश्यकतओां की पूर्ति में क्यों अधिक समय लगाने की, अधिक श्रम करने की आवश्यकता पड़नी चाहिए ? इन प्रयोजनों में थोड़ा-सा समय और श्रम लगाने के उपरान्त ढेरों की ढेरों क्षमता ऐसी बनानी चाहिए जिसे आत्म-कल्याण के लिए, लोक मंगल के लिए, सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए लगाया जा सके । स्वयं उठना और दूसरों को उठाना निरन्तर बनता पड़ता रहे । लिप्सा, लालसाओं से बचाई हुई क्षमता ही परमार्थ में प्रयुक्त हो सकती है और उसी के आधार पर आत्म-कल्याण तथा लोक-कल्याण का दुहरा प्रयोजन साथ-साथ पूरा हो सकता है ।

देव-स्तर का द्विजत्व किस प्रकार प्राप्त हो इसका प्रथम चरण यही है कि आत्म-संयम की साधना की जाये । इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम विचार संयम की चार कसौटियों पर अपने को खरा सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाये ऐसा करने पर ब्राह्मणोचित जीवन जी सकना सरल और सन्तोषप्रद बन जाता है । न्यूनतम में शरीर यात्रा चलाने की योजना बनाने पर फिर हर किसी के पास इतना समय श्रम, कौशल और साधन शेष बच जाता है, जिसे जनहित के परमार्थ में लगाया जा सके । महामानवों जैसा पुण्य जीवन जिया जा सके । सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए लोक-कल्याण के लिए इतना कुछ किया जा सके जिसके बल पर आत्म-सन्तोष, जन-सहयोग और देवी-अनुग्रह का पुण्य प्रसाद प्रचुर परिमाण में हस्तगत किया जा सके । इस राजमार्ग पर चल पड़ना ही द्विजत्व है । उसे मानवी महानता का गौरव भी समझा जा सकता है ।

व्यक्ति उच्चस्तरीय क्षमताओं का असामान्य भण्डार है एवं परमात्मा का ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार होने के कारण उसे नियन्ता की समस्त क्षमताएँ बीज रूप में अनायास ही उपलब्ध हैं, पर वे प्रसुप्त स्थिति में ही उनका अस्तित्त्व अन्तराल में विद्यमान रहता है । उनका उभार, जागरण उन्नयन न बन पड़े तो फिर व्यक्तित्व मात्र काय कलेवर तक ही सीमित रह जाता है । अनगढ़ स्थिति में वन-मनुष्यों जैसा जीवन जीना पड़ता है । आत्म-बोध और आत्म-जागरण के युग्म को अध्यात्म की, तत्त्व-दर्शन की विद्या माना गया है । इसके लिए आत्म-परिष्कार की, अन्तराल परिमार्जन की आवश्यकता पड़ती है, इसी को कर पाना आमतौर से कठिन पड़ता है। बाहर के दृश्यों को हर कोई देखता है, किन्तु आत्म-निरीक्षण में न किसी को ज्ञान होता है और न उसके लिए उत्साह ही पाया जाता है । इसलिए समीक्षा, निन्दा दूसरों की ही सूझ पड़ती है। दूसरों के दोष ढूँढ़ना और उन्हें उजागर करते रहना ही सरल लगता है । आत्म-निरीक्षण का क्रम चले तो यह सूझे कि अपने गुण कर्म, स्वभाव में कहाँ कितनी त्रुटियों का समावेश है ? उनका निराकरण किस प्रकार किया जाय ? अनुपयुक्त आदतों को उखाड़ कर उनके स्थान पर किस तरह सत्प्रवृत्तियों को स्वभाव का अंग बनाया जाये ? इसके लिए निरीक्षण, निर्धारण करना होगा उसी से यह भी बन पड़ेगा कि मनुष्य में देवत्त्व का उदय कर सके । महामानवों जैसी जीवनचर्या अपना कर अपने को धन्य बना सके और अपने सम्पर्क क्षेत्र को श्रेष्ठ समुन्नत बना सकने में समर्थ हो सके ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतना उनसे बन पड़े तो समझना चाहिए कि उनने द्विजत्त्व की भूमिका में प्रवेश किया और मानवी गरिमा को अपनाकर सम्पर्क क्षेत्र को व्यापक वातावरण को श्रेष्ठता से भरा पूरा बनाने में उत्साहवर्द्धक सफलता प्राप्त करने की सम्भावना बन गई ।

द्विजत्त्व की अवधारणा में वाणी को परिमार्जित करना पड़ता है,क्योंकि उसी के माध्यम से सत्परामर्श का विचार विनमय का, मार्ग-दर्शन का सुयोग बन पड़ता है । दूसरों की सेवा करते हुए ही अपनी सेवा करते बन पड़ती है। मेंहदी पीसने वाले के हाथ अनायास ही रंग जाते हैं । इत्र बेचने का व्यवसाय करने वाले के कपड़े अपने आप महकने लगते हैं । अपने परिवार के पड़ोस के लोगों को सत्परामर्श देते रहने की सेवा-साधना अपनाने पर जो दूसरो से कहा जा रहा, उसे स्वयं करने के लिए भी दबाव पड़ता है । सेवा-धर्म अपनाने वाले जिस प्रकार की शिक्षा दूसरों को देते हैं, उसका अनुकरण उन्हें स्वयं भी करना पड़ता है । न करें तो उपहास होता है, व्यंग्य बरसते हैं और किसी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । इस प्रकार तथ्यतः सेवा-धर्म अपनाना प्रकारान्तर से अपना परिष्कार परिमार्जन करना भी है । कहना न होगा कि व्यक्तित्व की उत्कृष्टता ही प्रगति के सभी मार्ग खोलती है । वस्तुतः परमार्थ ही सच्चा स्वार्थ साधन है । द्विजत्त्व की यही एक मात्र शिक्षा है कि जन्म-जन्मान्तरों से संचित पशु-प्रवृत्तियों से नाता तोड़ा जाये और देवत्त्व की गौरव-गरिमा को जीवन-चर्या में सफलतापूर्वक सम्मिश्रित किया जाये ।

मनुष्य जन्म दो आधारों पर ही सफल, सार्थक होता है कि अपने आपको सर्वतोमुखी संयम की कसौटी पर निरन्तर कसते रहा जाये । उत्कृष्ट आदर्शवादिता के अनुरूप जीवन ढला या नहीं, इसका निरीक्षण, परीक्षण करते रहा जाय । जो कमियाँ दृष्टिगोचर हों उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़ कर निरस्त बहिष्कृत किया जाये । ऐसा बन पड़े जो अन्तर्मुखी होकर कड़ाई के साथ आत्म-समीक्षा करते रहने पर ही बन पड़ता है । आमतौर से सभी अपने को हर दृष्टि से भला, बेकसूर और सर्वांगपूर्ण मानते हैं । दूसरों में ही दोष देखते और लोइना लगाते हैं । यह प्रवृत्ति उलटनी चाहिए, अन्यथा दूसरों के गुणों पर प्रसन्न होना और उनसे कुछ सीख सकना बन ही न पड़ेगा। दूसरों के दोषों का ही ध्यान रखने पर अपनी प्रवृत्ति ऐसी बन जायेगी जैसी कि कूड़ेदान में कचरा भरते जाने पर उसकी स्थिति दिन-पर-दिन बुरी होती जाती है। पुनर्जन्म का द्विजत्त्व धारण करने का सीधा अभिप्राय एक ही है कि अपने को अधिक श्रेष्ठ, अधिक वरिष्ठ, अधिक प्रखर और अधिक प्रतिभावान् बनने के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहा जाये । किसी भी दिशा में यदि प्रगतिशीलता निरन्तर जारी रहती है तो गति धीमी होने पर भी लम्बी मंजिल पार कर ली जाती है । यही बात बुराइयों के सम्बन्ध में भी है । यदि पानी ढलान की तरफ बहना शुरू करता है तो वह इधर-उधर घूमता-घामता खारे समुद्र में ही जा मिलता और फिर उसमें रह कर दिन गुजारता है । द्विजत्त्व का यज्ञोपवीत धारण और नव-जीवन की दीक्षा ग्रहण करने का एक ही अर्थ है कि पशु-प्रवृत्तियों से छुटकारा पाकर देवोपम जीवनचर्या अपनाने के राजमार्ग पर योजनाबद्ध रूप से बढ़ा जाये । उत्कर्ष का अभ्युदय का यही मार्ग है । जीवन लक्ष्य की प्राप्ति हो सकना इसी आधार पर सम्भव हो सकता है । द्विजत्व की अवधारणा इसी सुयोग का श्री गणेश कहा भी गया है–

लोकस्तु जन्मना सर्वः शूद्र एवाभिजायते ।
संस्कारैरभिजायन्ते पश्चात्सर्वे द्विजातयः ।।

(पच्चाध्यायी)

(जन्मना) जन्म से (तु) तो (सर्वः) सम्पूर्ण (लोक) संसार (शूद्रः) शूद्र (एव) ही (अभिजायते) होता है । (पश्चात्) बाद में (संस्कारैः) संस्कारों से (सर्वे) सब लोग (द्विजातयः) द्विज (अभिजायन्ते) होते हैं ।

शास्त्र का अभिमत है कि जन्म से तो सभी वर्ण शूद्र होते हैं, किन्तु पीछे संस्कारों से द्विज बन जाते हैं । द्विज शब्द ही इस अर्थ का बोधक है कि इस व्यक्ति का दो बार जन्म हुआ है । मामूली हिन्दी पढ़े-लिखे व्यक्ति भी जानते हैं कि 'द्वि' अर्थात् दो बार 'ज' अर्थात् जन्म, जिसका दो बार जन्म हो वह द्विज । षोडस संस्कारों की भारतीय प्राचीन प्रथा के अन्तर्गत यही रहस्य छिपा हुआ है कि पशु को मनुष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनाने के लिए उसकी आरम्भ से ही देखभाल रखी जाय । आज गर्भाधान, सीमन्त, पुसवन, नामकरण, अन्न प्राशन, चूड़ा कर्म, उपनयन आदि संस्कारों की चिह्न-पूजा मात्र कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होती है, परन्तु पूर्व काल में ऐसा न था । बालक के गर्भ प्रवेश करने से पूर्व ही माता-पिता इस बात की चिन्ता करते थे कि इसे अपने परिश्रम द्वारा सुसंस्कृत द्विज बनावें, क्योंकि वे जानते थे कि यदि ऐसा न किया जायेगा तो बालक शूद्र का शूद्र ही रह जायेगा । जन्म से तो मनुष्यों की एक ही जाति है, पर उसका श्रेणी विभाजन कर्मों के अनुसार होता है । घोड़ा, गधा, गाय, भैंस, कबूतर, बतख, मोर आदि की अलग-अलग जातियाँ इसलिए हैं कि उनकी आकृति, बनावट, खुराक, कार्य रुचि में अन्तर है । गधों की शारीरिक बनावट अन्य पशुओं से एक अलग प्रकार की है, इसलिए उनकी एक स्वतन्त्र जाति हुई । इसी प्रकार अन्य पशु पक्षी भी अपनी-अपनी शरीर-रचना के आधार पर एक विशेष जाति वाले कहलाते हैं । संसार के सम्पूर्ण मनुष्यों की शरीर रचना एक ही प्रकार की है, इसलिए वे सब मनुष्य जाति के ही कहला सकते हैं । उपभेदों की बारीकी में यहाँ हम नहीं आना चाहते । जैसे—अर्बी, तुर्की आदि घोड़े और नागौरी, मद्रासी आदि बैलों में उपभेद होते हैं । आर्य, मंगोल आदि मतभेद मनुष्यों में भी हैं, किन्तु उपभेदों के कारण मूल जाति में कोई अन्तर नहीं आता । स्थान भेद के कारण साँपों के रंग रूप में अन्तर आ सकता है, उनका उपभेद हो सकता है, पर जाति तो सर्प ही रहेगी । काले, पीले, लाल, भूरे सभी प्रकार के मनुष्यों की एक जाति रहेगी ।

यह मानने में भी कुछ आपत्ति नहीं है कि, प्रकृत रूप से मनुष्य एक प्रकार का पशु ही है । वाशिंगटन के वैज्ञानिक ब्रेविन ने अपने तत्त्वावधान में कुछ मानव-शिशुओं को एकान्त स्थान में इस प्रकार पाला कि बाहरी दुनियाँ के बारे में वे कुछ न जान सका ये बालक बड़े होने पर जब जवान हुए तो आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि पशु तुल्य योग्यताओं के अतिरिक्त और उन्हें कुछ भी ज्ञान न था । सामाजिक, धर्मिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक आदि किसी नियम के बारे में वे कुछ भी नहीं जानते थे । असभ्य, जंगली और अशिक्षित लोगों की सन्तानें भी करीब-करीब अपने निकटस्थ समाज की मर्यादा में ही न्यूनाधिक ज्ञान रखती हैं । जंगली भील का लड़का अपने कुटुम्बियों के समान शिकार मारने की योग्यता तो ज्यादा या कम मात्रा में रख सकता है, पर बौद्ध दर्शन शास्त्र के बारे में उसका ज्ञान बिल्कुल शून्य होगा, क्योंकि उस प्रकार के वातावरण का संस्कार उस तक नहीं पहुँचा । मनुष्य में अनुकरण शक्ति, समझने की शक्ति, तर्क शक्ति, विकास शक्ति अद्भुत है, पर उसका विकास तो तभी हो सकता है, जब उस विषय का बाह्य ज्ञान प्राप्त हो, अन्यथा कैसा ही तीव्र बुद्धि वाला व्यक्ति क्यों न हो, अपरिचित विषय में जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता । यह हो सकता है कि जीवनोपयोगी समस्याओं को सुलझाने की निरन्तर इच्छा होने से मनुष्य बिना बाह्य सहायता के भी कुछ आविष्कार करे, पर वह बहुत ही अधूरे होंगे और बड़ी धीमी गति से आगे बढ़ेंगे । शरीर को सर्दी-गर्मी से बचाने की गुत्थी को सुलझाते हुए पत्ते, वृक्षों की छाल, पशु चर्म, बालों का नर्मदा, कपास का गद्दा, रस्सियों का जाल बनाते-बनाते आधुनिक वस्त्रों तक पहुँचने में करोड़ों वर्षों का लम्बा जमाना व्यतीत हो गया, पचासों पीढ़ियाँ इस आविष्कार के बारे में सोचती रहीं, तब एक व्यवस्थित चीज पा सकीं । इस तरह का क्रमिक विकास हो सकता है, पर जितना ज्ञान आज मनुष्य समाज को उपलब्ध है, वह शिक्षा के द्वारा ही स्वल्प काल में प्राप्त किया जा सकता है । बिना सामाजिक सहायता के अकेला मनुष्य यदि ज्ञान प्राप्त करना चाहे, तो उसे असम्भव ही कहा जायेगा ।

हमारा तात्पर्य यह कहने का है कि मनुष्य जन्म से ही कुछ ज्ञान लेकर नहीं आता, वरन् जिस समाज में रहता है, वैसे ही संस्कारों से प्रभावित हो कर, अपनी शारीरिक और मानसिक योग्यताओं का निर्माण करता है । कसाई का बालक पशु वध देख कर विचलित नहीं होगा, पर ब्राह्मण का बालक उस रक्त-पात को देख कर घबरा जायेगा । यदि एक ही माता के दो बालाकों को अलग-अलग रख कर एक को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मांसाहार कराया जाये और दूसरे को माँस से घृणा कराई जाये तो दोनों वैसे ही बन जायेंगे । एक योरोपियन व्यक्ति अपनी कुमारी बहिन या बेटी को उसके अंतरंग मित्रों के साथ देखकर बुरा नहीं मानेगा, परन्तु भारतीय व्यक्ति के सामने ऐसा प्रसंग आवे तो वह आग बबूला हो कर मरने-मारने पर उतारू हो जायेगा । कारण यह है कि दोनों ने अपने-अपने विचारों का निर्माण विपरीत परिस्थितियों में किया है, इसलिए उनके विश्वास और भाव भी भिन्न हैं । यदि स्वभावतः ही सब को ज्ञान होता, तो सब लोगों के एक से ही विचार और विश्वास होते, परन्तु ऐसा होता नहीं । हम देखते हैं कि मनुष्यों में आपसी बहुत मतभेद हैं । सभी पक्ष अपनी-अपनी मान्यता को ठीक समझते हैं । इस पेचीदगी पर मनौवैज्ञानिक विधि से दृष्टिपात करने पर प्रतीत होता है कि बालक आरम्भ में एक गीली मिट्टी के गोले के समान होता है, उसे अपने चारों ओर जैसा ढाँचा मिल जाता है, वह उसी में ढल जाता है । उसके विचार और विश्वास वैसे ही बन जाते हैं और यह सब उसे इतने प्रिय एवं अभ्यस्त हो जाते हैं कि, सभ्यता तथा संस्कृति का ऊँचा नाम देकर उनकी रक्षा करता है। अनेक सभ्यता और संस्कृतियों की दुहाई हम चारों ओर सुनते हैं, इससे प्रतीत होता है कि यह वस्तु प्राकृतिक नहीं है, परन्तु पीछे बनी हुई है। यदि ईश्वर प्रदत्त होती, तो जैसे सब घोड़े घास खाते हैं, वैसे ही सब लोगों के विचार एक ही समान होते।

जन्म से सब शूद्र हैं—यह एक सचाई है, जिसे निष्पक्ष नेत्रों से हम अपने चारों ओर बिखरी हुई देख सकते हैं। एक-सी मानसिक योग्यता वाले दो बालकों में से एक को घसियारे के यहाँ छोड़ दिया जाय और दूसरा पण्डित के यहाँ रहे, तो बड़ा होने पर पण्डित की संरक्षता वाला शास्त्री हो जायेगा, किन्तु घसियारा बेचारा उन्नित करने पर भी लकड़हारा ही हो सकता है। परिस्थितियों से, शिक्षा से, प्रभाव से, वातावरण से, संगति से, मनुष्य का निर्माण होता है । इस सत्य को भारतीय तत्त्ववेत्ता पूर्व काल से ही स्वीकर करते आ रहे हैं, इसलिए उन्होंने जन्म काल के पूर्व से ही उस बालक पर संस्कार डालने की ओर सतर्कता पूर्वक व्यवस्था बनाई थी। जिसका बालक कुसंस्कारी हो जाता था, उसके माता-पिता शिक्षक एवं अभिभावकों को लज्जित होना पड़ता था। कुपुत्र से माता कहती थी—"मेरी कोख लजाई" पिता कहता था—"मेरा नाम डुबोया।" इन शब्दों में वे स्वीकार करते हैं कि हमने बालक को संस्कृत करने में लज्जा पिता जनक भूल की है । यदि बालक की भूल समझी जाती, तो माता कहती 'तूने अपने को लजाया' पिता कहता—'तूने अपना नाम डुबोया', परन्तु ऐसा नहीं कहा जाता, क्योंकि सचाई को अन्ततः स्वीकार `करना ही पड़ता है।

बालक जब तक कि स्वयं विचारशील नहीं हो जाता, अपनी भलाई-बुराई नहीं समझने लगता, तर्क नहीं करने लगता, अपनी जिम्मेदारी अनुभव नहीं करने लगता, तब तक उस का निजी स्थायित्व स्वीकर नहीं किया जाता। नाबालिगों को राजदरबार में शूद्र माना जाता था । उनकी बुद्धि को कच्ची और नासमझ माना जाता था। नाबालिग के हाथ के दस्ताबेज सही नहीं माने जाते। सम्पत्ति, विवाह, वोट, जमानत के मामलों में उसे अछूत समझा जाता है। जैसे मन्दिर में शूद्रों का पदार्पण नहीं होता, वैसे ही जहाँ समझदारी का प्रसंग है, विवेक विचार का विवेचन है, वहाँ नाबालिग को अन्त्यज घोषित कर दिया जाता है। ठीक भी है, बिना परिपूर्णता आये, बिना विश्वस्तता का प्रकटीकरण हुए, क्यों कर उत्तरदायी कार्यों का बोझ उसे दिया जा सकता है ?

पाठक समझ गये होंगे कि 'जन्म से सब शूद्र हैं' कहने का क्या अभिप्राय है। पत्थर पड़ा हुआ है, जब तक संस्कार होकर वह मूर्ति न बन जाये, कौन उसकी पूजा करेगा ? बिना मोती की सीप को जौहरी क्यों खरीदेगा ? बिना ज्ञान, बुद्धि, चरित्र और योग्यता के कौन मनुष्य द्विज कहा जायेगा ? यदि द्विज कहा भी जाये, तो कागज के हाथी के समान उपहास का ही साधन बनेगा । निःसन्देह जन्म से तो गीली मिट्टी के समान सभी मनुष्य ज्ञान रहित शूद्र हैं, पीछे वे जिस साँचे में ढलकर ये बाहर निकलते हैं, जिन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कारों से परिपूर्ण होते हैं, उन्हीं के अनुसार पद पाते हैं।

शूद्र को द्विज बनाने वाले संस्कार क्या हैं और वे किस प्रकार एक ही प्रकृति वाले प्राणियों को चार वर्णों में विभक्त कर देते हैं, इसका विस्तृत परिचय पाठक आगे पढ़ेंगे ।

सच्ची वर्ण-व्यवस्था ही हितकारी है

इस समय संसार में समाज संगठन की जो दो नवीन मुख्य प्रणालियाँ प्रचलित हुई हैं, वे हैं– पूँजीवाद और साम्यवाद। इन दोनों में घोर विरोध है, जिसके कारण समस्त संसार में भीषण संघर्ष उत्पन्न हो रहा है। पूँजीवाद का उद्देश्य है कि संसार की सम्पत्ति जनसाधारण के पास से निकल कर थोड़े से पूँजीपतियों के पास इकट्ठी हो जाये । उधर साम्यवाद कहता है कि किसी के पास पूँजी जमा न हो और सबमें देश की सम्पत्ति का समान रूप से वितरण किया जाये । इन दोनों के विरोध और दोषों को मिटाने के लिये कितने ही विचारकों ने भारतीय वर्ण-व्यवस्था को पेश किया है, जिसका उद्देश्य है कि प्रत्येक मनुष्य से उसकी योग्यतानुसार काम लिया जाये तथा उसकी स्थिति तथा आवश्यकतानुसार भरण-पोषण की सामग्री दी जाये । वर्ण-व्यवस्था पर विचार करने से तीन मुख्य सिद्धान्तों की सृष्टि होती है। वे सिद्धान्त हैं– (१) कौशल, (२) शक्ति-प्रतिभान और (३) यथा योग्य दीक्षिणा ।

कौशल–हर एक मनुष्य सब प्रकार के कामों में कुशल नहीं हो सकता। विधाता ने हर एक मनुष्य को कोई न कोई समाज के लिए उपयोगी काम करने की शक्ति दी है। यदि मनुष्य सब कुछ जानने का विफल प्रयास करने के बजाय अपनी शक्ति को किसी एक ही दिशा में केन्द्रित करे तो उसे अवश्य कम या ज्यादा सफलता मिलेगी और उसके द्वारा समाज का हित-साधन होगा। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को सामान्य विषयों का थोड़ा बहुत ज्ञान रखते हुए किसी एक विशेष पेशे में विशेष कौशल प्राप्त करना चाहिए। भारतीय समाज शास्त्रकारों ने यह कार्य तीन भागों में बाँट दिये थे:–

(१) प्राकृत पदार्थों को, शारीरिक श्रम तथा बुद्धि-कौशल द्वारा, मनुष्य-जीवन के लिये उपयोगी बना कर मानव-समाज की दरिद्रता दूर करना। इस दिशा में कौशल प्राप्त करने वाले वैश्य कहलाते हैं।

(२) काम, क्रोध, लोभादि मानव स्वभाव सुलभ दुर्बलताओं के कारण होने वाले अन्यायों को बलपूर्वक दूर करना तथा सद्व्यवहार को प्रचलित करना इस दिशा में कौशल प्राप्त करने वाले क्षत्रिय कहलाते हैं।

(३) मानव समाज के लिये हितकारी सब प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने तथा अविद्या को दूर करने में जीवन लगाना। इस दिशा में कौशल प्राप्त करने वाले ब्राह्मण कहलाते हैं।

इन तीनों प्रकार के कार्यों के लिये अलग-अलग तरह की योग्यता की आवश्यकता पड़ती है। यह बात तो ठीक है कि आहार, निद्रा आदि में सब लोग समान होते हैं, इसलिये वे किसी भी कार्य को करें उनको आवश्यकतानुसार भोजन, वस्त्र, मकान आदि तो मिलना ही चाहिये । तो भी इन लोगों में से जिसने जैसा सरल अथवा कठिन कार्य-भार उठाया है, उसके अनुसार यथायोग्य अधिकार या उचित दक्षिणा तो उसको मिलनी ही चाहिये । इसके बिना समाज का कल्याण नहीं हो सकता । इसलिये वर्ण-व्यवस्था में सबसे पहले इसी बात का ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक आदमी उस कार्य का भार अपने ऊपर ले जिसे वह सबसे अच्छी तरह कर सकता है । इसके निर्णय चाहे तो वह स्वयं खूब सोच-विचार कर करे अथवा अन्य विशेषज्ञों से इस सम्बन्ध में सहायता ले और जब वह अपना कोई एक विशेष कार्य निश्चित करले तो उसमें अधिक से अधिक कौशल प्राप्त करे।

शक्ति–प्रतिमान–इस प्रकार कौशल प्राप्त करने वाले मनुष्य समाज में रह कर परस्पर किस प्रकार व्यवहार करें इसके लिये नियम बनाये जाने अनिवार्य हैं। जो तीन कार्य ऊपर बतलाये गये हैं उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है, अज्ञान का दूर करना । क्योंकि अन्याय के विरुद्ध शस्त्र उठाने वाले तथा प्रकृति पदार्थों से सम्पत्ति उत्पन्न करने वाले दोनों ही अपना कार्य बिना ज्ञान के भली प्रकार कदापि नहीं कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते। ज्ञान इन दोनों प्रकार के लोगों को उत्पन्न कर सकता है, पर ये दोनों ज्ञान को उत्पन्न नहीं कर सकते। इसलिये ज्ञान तथा आत्म-संयम का मेल रखने वाले जितने व्यक्ति राष्ट्र में मिल सकते हैं, वे इस पहले वर्ग में आने चाहिये । अगर किसी राष्ट्र के सभी व्यक्ति एक से प्रतिभाशाली और संयमी हैं, तब तो वह बड़ा भाग्यशाली है और वह स्वयमेव उन्नति के शिखर पर पहुँच जायेगा। परन्तु जब तक ऐसा समय नहीं आता और मनुष्य आत्म-संयम के अभ्यासी नहीं हैं तब तक हमको कोई ऐसी व्यवस्था करनी ही होगी जिससे प्रेरित होकर मानव-समाज के श्रेष्ठतम मनुष्य इस ओर झुकें । इसके लिए यह आवश्यक है कि इस वर्ग वालों को ज्ञान-वृद्धि की सुविधा में और सामाजिक आदर आधिक से अधिक मात्रा में दिया जाय । यह ठीक है कि आत्म-संयम के अभ्यास में आदर की इच्छा का जीतना भी एक आवश्यक अंग है, पर ऐसी स्थिति बाद में आ सकती है। आरम्भ में तो राष्ट्र के सबसे अधिक प्रतिभाशाली और योग्य बालकों को इस कार्य के लिए प्रेरित करने के निमित्त यह आवश्यक है कि इस वर्ग का स्थान सबसे अधिक सम्मान का रखा जाये । चाहे ऐसे श्रेष्ठ स्वभाव वालों को लौकिकमान की भूख न हो, पर राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि जो लोग योग्य होते हुये भी अपनी प्रतिष्ठा नहीं चाहते, उनकी ओर भी अधिक प्रतिष्ठा की जाये जिससे हर एक व्यक्ति को इस गुण को धारण करने की प्रेरणा मिल सके।

परन्तु यह भी याद रखना चाहिये कि आत्म-संयम की भी सीमा है। जिस प्रकार प्रत्येक कार्य में उच्चकोटि का कौशल प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों का वर्गीकरण आवश्यक है और प्रत्येक वर्ग की सफलता के लिए उसके साथ यथोचित व्यवहार किया जाना भी जरूरी है, उसी प्रकार यह भी ध्यान रखना चाहिये कि किसी एक वर्ग के हाथ में इतनी शक्ति न दे दी जाये जिससे वह निरंकुश बन कर समाज-हित की अवहेलना कर सके । क्योंकि मर्यादा से अधिक शक्ति किसी भी वर्ग के हाथ आ जाने से वह पतित हुए बिना रह नहीं सकता । इसलिए भारतीय समाजशास्त्र वेत्ताओं ने ऐसे नियम बनाये थे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण एक-दूसरे को मर्यादा के भीतर रखने में समर्थ हो सकें। इसी का नाम शक्ति–प्रतिमान है।

यथायोग्य दक्षिण–संसार में इस समय जितनी सामाजिक व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं उनमें प्रत्येक व्यक्ति को उसके कार्य के उपलक्ष्य में पारिश्रमिक अथवा दक्षिणा धन के रूप में ही दी जाती है । योग्यतानुसार धन की मात्रा कम या अधिक देकर हम सन्तुष्ट हो जाते हैं कि हमने यथायोग्य दक्षिणा दे दी । पर वर्ण-व्यवस्था के अनुसार हम यह भी विचार करते हैं कि जिस व्यक्ति के लिए जो वस्तु उपयोगी है वही उसे दी जाये। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि धन के द्वारा प्रत्येक पदार्थ और सब तरह की सेवाएँ खरीदी जा सकती हैं, फिर क्यों न धन को दक्षिण का माध्यम बनाया जाय ? पर ऐसा करने से एक बहुत बड़ा दोष यह पैदा होता है कि धन का गौरव सबसे अधिक बढ़ जाता है और शक्ति-प्रतिमान में बाधा पड़ जाती है। इसलिए वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्तानुसार ब्राह्मण को ज्ञान वृद्धि के साधना तथा पूजा दी गई। क्षत्रिय को शासनाधिकार दिया गया। वैश्य को सांसारिक वैभव दिया गया । यही उनकी यथायोग्य दक्षिणा है और इसी के द्वारा समाज में सन्तुलन ठीक रह कर सुख और शान्ति का विस्तार हो सकता है।

धर्म-शास्त्रों में अलग-अलग तरह के लोगों के लिये अलग–अलग तरह की शिक्षाएँ दी गई हैं । कहीं नरकों के कठोर चित्रण, चौरासी लाख योनियों में पड़ने का कष्ट, ईश्वरीय दण्ड आदि का भय दिखलाया गया है, कहीं ईश्वर की कृपा से धन-सन्तान, ऐश्वर्य, सुख, स्वर्ग, मोक्ष आदि मिलने का प्रलोभन है और कहीं आत्मा के सच्चिदानंद स्वरूप में आत्म रमण करने का, समाधि आनंद एवं परम पद प्राप्त करने का तत्त्व-ज्ञान है । लोग समझते हैं कि शास्त्र में यह परस्पर विरोधी अनेक तरह के उपदेश हैं, परन्तु विचारपूर्वक देखने से इस अनेकता में एकता छिपी हुई है । अधिकारी भेद के कारण अलग-अलग कर्मोपदेश किये जाते हैं। पशुओं को केवल दंड द्वारा ही काम में लगाया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाठी लेकर ही कोई भेड़ों के झुण्ड को इधर से उधर को हाँक सकता है। उन्हें प्रेमपूर्वक समझाया जाये कि आप लोग कृपा करके सीधी सड़क पर चलिए, शायद भेड़ें उसका कुछ अर्थ न समझ सकेंगी और न उसके अनुसार आचरण करेंगी । मनुष्यों में बहुत से इसी पशु संज्ञा के हैं, जो केवल नियन्त्रण और बल प्रयोग द्वारा ही सन्मार्ग पर चलाये जा सकते हैं। चौर, डाकू, गुंडे आततायी बिना दंड और भय के सीधे रास्ते पर चलेंगे ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

मध्यम श्रेणी के लोगों को उनका हित अहित समझाकर प्रेम द्वारा उनसे हृदय स्पर्श करके, ऊँच-नीच का मर्म बता कर ठीक रास्ते पर लाया जा सकता है । उन्हें यदि भय या दंड दिया जायेगा तो विरोधी हो जायेंगे एवं सुधरने के बजाय और बिगड़ेंगे । उनके लिए तो प्रेम ही अस्त्र है । पारिवारिक झगड़ों को दंड से नहीं, प्रेम से सुलझाया जा सकता है।

जो विचारक हैं, उच्च मनोभूमि के हैं, जिनकी आत्मा प्रबुद्ध है, उनके लिए संकेत भी पर्याप्त है, एक इशारे से वे अपनी भूल समझ सकते हैं, और बिना एक पल का विलम्ब लगाये सावधान हो सकते हैं।

वस्तुतः सत्य एक ही वस्तु है, पर अधिकारी भेद से उसका तीन तरह उपयोग होता है, इसलिए सत्य, प्रेम और न्याय के तीन नामों से उसे सम्बोधन करना पड़ता है । देखना चाहिए कि कौन विद्यार्थी किस कक्षा में पढ़ता है, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए । बाल कक्षाओं के छोटे-छोटे बालक अध्यापक के डर से सब काम करते हैं। यदि आध घण्टे के लिए अध्यापक उठ कर चला जाये, तो वे पढ़ना-लिखना बन्द कर देंगे और स्कूल के सारे नियम तोड़ कर हो—हल्ला मचाने लगेंगे। अध्यापक उन्हें धमकाता है और भय दिखा कर व्यवस्था में रखता है । ऐसे व्यवहार मिडिल कक्षा के किशोर बालकों के साथ नहीं होता । अध्यापक उन्हें समझाता है कि पढ़ने में तुम्हारा क्या लाभ है और न पड़ने में क्या हानि है। प्रेम पूर्वक समझाने से यह विद्यार्थी ठीक आचरण करने लगते हैं, गुरु को उन्हें पीटने की आवश्यकता प्रायः नहीं पड़ती । कॉलेज के छात्रों से उनके प्रोफेसर दूसरी तरह का व्यवहार करते हैं, उन्हें बराबरी का समझते हैं, उनके सम्मान का ध्यान रखते हैं और आशा करते हैं कि अपनी शिक्षा के लिए वे स्वयं ही बहुत प्रयत्नशील होंगे । लेक्चर देने के बाद प्रोफेसर इस बात की चिन्ता नहीं करता कि छात्र पढ़ रहे हैं या नहीं, क्योंकि उसे विश्वास है कि ये जवान लड़के अपनी भलाई-बुराई खुद समझने लगे हैं।

विभिन्न मनुष्य विभिन्न प्रकार के व्यवहार के अधिकार होते हैं । कोई सत्य से सुधर सकता है, कोई प्रेम से और कोई न्याय दंड से। इसी प्रकार सत्यधर्म के अनुयायियों को अपने लिए अलग प्रकार का मार्ग चुनना होता है। हिन्दू धर्म की वर्ण-व्यवस्था इसी चुनाव की बोधक है। जिनकी रुचि जिस विषय में है वह उसे स्वीकार कर सकता है। सत्य के उपयुक्त जिनकी मनोभूमि है, वे ब्राह्मण हैं । जिनके मन में प्रेम भरा हुआ है, वह वैश्य है और जो न्याय शक्त में दिचस्पी लेते हैं, वे क्षत्रिय हैं । यह वृत्तियाँ एक दिन में नहीं बन जाती हैं, पुराने प्रारब्ध कर्मों संचित विश्वासों और बहुत दिनों के ज्ञान एवं अज्ञान संस्कारों के कारण यह ब्राह्मणत्व, वैश्यत्व और क्षत्रियत्व दृढ़ होता है । बहुत बार जो मनुष्य जिस घर में जन्मा है, उसमें वैसे ही गुण होते हैं, बहुत बार संस्कारों का प्रबलता के कारण जन्म और कर्म के स्वभाव में अन्तर होता है । इनमें प्रधानता जीवन के स्वभाव और संस्कार को ही दी जाती है । गणिका के गर्भ से उत्पन्न हुए वशिष्ठ, अज्ञात पति से गर्भ धारण करने वाली जावाला का पुत्र सत्यकाम जावाल, सूपकारके घर उत्पन्न हुए रामानुज, क्षत्रिय के घर जन्मे हुए विश्वामित्र और गौतमबुद्ध, यह सब अपने संस्कारों के कारण ब्राह्मण हुए। इसी प्रकार ब्राह्मण के घर जन्मे हुए द्रोणाचार्य, कृपाचार्य एवं परशुराम क्षत्रिय कहलाये । वैश्यों के वर्ण-परिवर्तन की भी कथायें प्राप्त होती हैं ।

सत्य, प्रेम और न्याय में से जिसमें हमें विशेष रुचि हो और जिस योग्य मनोभूमि हो, हम उसके अनुसार अपना वर्ण चुन सकते हैं । भौतिक वर्ण यदि हमारा जन्मजात बना रहे तो भी कुछ हर्ज नहीं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जन्मजात वर्ण का वश या समाज समझा जा सकता है। आध्यात्मिक वर्ण अपने संस्कारों की प्रबलता एवं रुचि आकर्षण के अनुसार चुना जा सकता है । जैसे बहुत से लड़कों के दो नाम होते हैं—एक माता-पिता का प्यार का नाम, दूसरा स्कूल के रजिस्टर में दर्ज नाम, उसी प्रकार यदि हम अपने दो वर्ण रखें तो कोई हर्ज नहीं है। भौतिक वर्ण, दूसरा आध्यात्मिक वर्ण । जो जिस वर्ण को स्वीकार करे, वह उसी के अनुसार आचरण करे और दूसरों को आचरण करने के लिए उत्साहित करे। तीनों सड़कें आले चल कर एक ही चौराहे पर पहुँचती हैं, किसी एक को अपना अवलम्बन बना कर हम अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं।

पाठक पूछेंगे कि तीन वर्ण तो यह हुए, चौथा वर्ण क्यों छोड़ दिया गया ? इस सम्बन्ध में हमारा मत है कि जैसे अँधेरा कोई वस्तु नहीं है, प्रकाश न होने को ही अँधेरा कहते हैं और जीवन का अभाव मृत्यु कहलाती है, उसी प्रकर उपरोक्त तीन गुणों का, तीन वर्णों के धर्म का, अभाव ही शूद्रत्व है। जिस व्यक्ति की मनोभूमि बिलकुल ही जड़ है, जो सत्य, प्रेम, न्याय में से किसी को न तो जानता है और न उसके प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, वह शूद्र है। शूद्रत्व मनुष्यता का अभिशाप है । किसी मनुष्य को अपने को शूद्र कहाते हुए लज्जित होना चाहिए, क्योंकि यह शब्द करीब-करीब पशुत्व का बोधक है। आरम्भ में सभी मनुष्य जब ज्ञान से रहित होते हैं तो शूद्र कहलाते हैं, किन्तु जब ज्ञान में प्रवेश करते हैं तो उस पुराने आध्यात्मिक चोले को उतार कर फेंक देते हैं । तीन वर्णों को द्विज या द्विजन्मा कहते हैं, अर्थात् उन्होंने पुराने शूद्रत्व को उतार फेंका और मानवीय उच्चता का शरीर प्राप्त कर लिया । दीक्षा लेकर और तीन तार का यज्ञोपवीत कन्धें पर धारण करके शूद्र द्विज बनते हैं। आध्यात्मिक द्विजत्व प्राप्त करना हर मनुष्य का कर्त्तव्य है, जो उस ओर ध्यान नहीं देता, उस शूद्र का जीवन सर्वथा धिक्कारने योग्य है।

वर्ण-व्यवस्था सामाजिक उत्थान के लिये सर्वोत्तम है

भारतीय वर्ण-व्यवस्था की उपयोगिता और श्रेष्ठता को अनेक विद्वान समय-समय पर बड़े स्पष्ट ढंग से बलता चुके हैं। उन्होंने उदाहरणों तथा तर्क द्वारा सिद्व कर दिया है कि हमारी प्राचीन वर्ण-व्यवस्था उदार वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर अवलम्बित थी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-विकास का पूरा अवसर मिलता था। वर्णश्रम के कारण समाज में किसी प्रकार की विषमता फैलने नहीं पाती थी, जैसी कि इस बीसवीं शताब्दी मे चारों ओर दिखाई देती है, उसके द्वारा भारतीय समाज ने विश्व—भ्रातृत्व का सिद्धान्त अपनाया था । क्या अमीर, क्या विद्वान्, क्या मूर्ख सबको उसी परम पुरुष का अंग समझा गया था, इसलिए वे सब भाइयों की तरह थे, एक के दुःख या कष्ट में दूसरे के द्वारा सहायता करना स्वाभाविक कर्त्तव्य माना गया था।

पर आजकल वर्ण-व्यवस्था के कई अंशों में विकृत हो जाने से अनेक लोग उस पर आक्षेप करने लगे हैं। कुछ तो यही कहते हैं कि अध्यापक (ब्राह्मण), सिपाही (क्षत्रिय), व्यापारी (वैश्य), मजदूर (शूद्र) तो स्वयमेव हर देश में होते हैं, इनके सम्बन्ध में किसी प्रकार के प्रचार की क्या आवश्यकता है ? ऐसे कहने वाले न तो 'वर्ण' को समझते हैं न 'व्यवस्था' को। उनका कहना ऐसा ही है, कि हाथ-पैर तो सबके स्वयं होते हैं फिर व्यायाम तथा उत्तम भोजन द्वारा उनको पुष्ट और सुडौल बनाने की क्या आवश्यकता है ? बीज धरती में पड़कर अनाज पैदा करता ही है, फिर कृषि शास्त्र के अध्ययन की क्या आवश्यकता है, यह लोग इस बात को भूल जाते हैं कि हर एक अध्यापक ब्राह्मण नहीं, हर एक सिपाही क्षत्रिय नहीं, है । हर एक व्यापारी वैश्य नहीं होता । ब्राह्मण केवल उन अध्यापकों को कह सकते हैं जो केवल जीविका के लिए अध्यापक का कार्य नहीं करते, पर जिनने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

अध्ययन को ही जीवन का लक्ष्य बना लिया है और उसे धन के बड़े से बड़े प्रलोभन के लिए भी नहीं छोड़ सकते।

इसी प्रकार हर एक सिपाही का नाम क्षत्रिय नहीं वरन् क्षत्रिय नाम उन लोगों का है, जिन्होंने संसार से अन्याय को मिटाने के लिए अपने प्राण अर्पित करने का व्रत लिया है और किसी भी दशा में उसे छोड़ने को तैयार नहीं हो सकते ।

हर एक व्यापारी का नाम वैश्य नहीं है, वैश्य वही व्यापारी है जो प्रजा की दरिद्रता मिटाने के लिए धन कमाते हैं और ब्राह्मण व क्षत्रियों को विशेष सम्मान पाते हुए देखकर भी अब व्रत को छोड़ने को तैयार नहीं ।

इस प्रकार के अध्यापक, सिपाही अथवा व्यापारी स्वयम् नहीं मिल सकते, किन्तु बचपन से व्रत धारणा करके और उसके अनुसार वर्षों तक तैयारी करने पर बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं।

यहाँ तक तो 'वर्ण' के रहस्य पर विचार किया गया, अब 'व्यवस्था' के अर्थ को समझिये । आवश्यकता इस बात की है कि समाज में सब से ऊँचा स्थान सत्य और ज्ञान के प्रचारों को दिया जाय, फिर क्षत्रियों और वैश्यों को । किन्तु इस समय सब से ऊँचा स्थान स्वार्थी व्यापाारियों को प्राप्त है, जो समाज के धन को अनेक प्रकार की चालाकियों और कभी-कभी बेईमानी से भी खींचकर अपनी तिजोरी में बंद कर देते हैं और इस प्रकार समाज की व्यवस्था को बिगाड़ते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस अव्यवस्था को बदलने के लिए समाज को घोर संघर्ष करना पड़ेगा जिसमें शायद लाखों जीवनों का बलिदान कर देना पड़े ।

वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में दूसरा आक्षेप यह किया जाता है कि यदि इन नामों को स्थिर रहने दिया जायेगा तो थोड़े दिनों में फिर वही पुरानी विकृत वर्ण-व्यवस्था, नई व्यवस्था का स्थान ग्रहण कर लेगी, पर ऐसा विचारना भूल है। जन्म के आधार पर खड़ी होने वाली पुरानी वर्ण-व्यवस्था के प्रति लोगों में विरोध-भाव उत्पन्न करने का सबसे अच्छा मार्ग यही है कि सच्ची वर्ण-व्यवस्था को उसके मुकाबले में स्थापित कर दिया जाय । यदि जात-पाँत तोड़कर भी लोग उसी प्रकार सैकड़ों में बँटे रहे तो जात-पाँत तोड़ने से लाभ क्या हुआ ? नीच जाति में उत्पन्न होकर श्रेष्ठ ब्राह्मण का आदर्श उपस्थित करके एक व्यक्ति झूँठी जात-पाँत के विरुद्ध जितनी जोरदार भावना पैदा कर सकता है, वह सैकड़ों व्याख्यानों से भी नहीं हो सकती । फिर जब लोगों ने जन्म की जाँत-पाँत की हानियाँ इतनी अच्छी तरह देख लीं हैं, तो वे इस गड्ढ़े में फिर नहीं गिर सकते । सच तो यह है कि पुरानी जाँत-पाँत की रूढ़ियाँ इसलिए नहीं टूटती, क्योंकि पुराने ब्राह्मणों, क्षत्रियों के स्थान पर नये ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं बनाये जाते। उदाहरण के लिए आपके सामने धार्मिक क्रिया कराने वालों के दो वंश हैं । एक में वही पुराने ढर्रे का अनपढ़ पुरोहित जो शुद्ध बोल भी नहीं सकता, पुरानी लकीर को पीट रहा है। दूसरी ओर एक सच्चा त्यागी, तपस्वी, विद्वान पुरोहित है (चाहे यह ब्राह्मण कुलोत्पन्न न भी हो) जो अपनी शक्ति को यजमान के कल्याण में लगा रहा है तो आपको अपने आप जाँत–पाँत का झूँठा ढोंग करने वाले से विरक्ति हो जायेगी। जाली सिक्के का जालीपन पूरी तरह तभी स्पष्ट होगा, जब असली सिक्का सामने रख दिया जाये । इसलिए यह आशंका निर्मूल है कि वर्णों का नाम रहने से पुरानी व जन्म मूलक वर्ण-व्यवस्था हमको फिर आ घेरेगी ।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि किसका कौन वर्ण है, इसका निश्चय कैसे हो, जबकि प्रत्येक आदमी को सुबह से शाम तक अनेक तरह के काम करने पड़ते हैं, जो किसी एक वर्ण के नहीं होते, वरन् चारों वर्णों से सम्बन्ध रखते हैं । इस आक्षेप का उत्तर पहले ही दिया जा चुका है कि वर्ण का निर्णय उस व्रत से होगा जिसे प्रत्येक व्यक्ति वाल्यावस्था में ही ले चुका है । जिसने अपनी रुचि के अनुसाार या विशेषज्ञ विद्वानों के निर्णय के अनुसार जिस वर्ण के उपयोगी शिक्षा प्राप्त की है वही निश्चित रूप से उसका वर्ण है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी काम में विशेष कौशल प्राप्त कर लेने का अर्थ यह नहीं, कि वह दूसरे कामों को कभी हाथ ही न लगाये। आपत्तिकाल में या राष्ट्र पर आक्रमण होने से सबको

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षत्रिय के कार्य के लिए तैयार हो जाना चाहिए । इसी प्रकार दुर्भिक्ष आदि किसी आर्थिक सकंट के समय सबको वैश्यकर्म करना पड़े तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु विशेष अभ्यास मनुष्य एक ही कर्म का कर सकता है और वही उसका वर्ण होगा ।

अन्त में विरोधियों की ओर से यह कहा जाता है कि वर्ण-व्यवस्था किसी समय अच्छी भी रही होगी, पर अब तो वह बिलकुल निकम्मी और हानिकारक सिद्ध हो रही है, पर लोगों ने वास्तविक वर्ण-व्यवस्था को भूलकर यदि उसके स्थान पर कोई अन्यायपूर्ण दुर्व्यवस्था प्रचलित कर दी है तो उसके कारण वर्ण-व्यवस्था को बदनाम करना अनुचित है। यह सच है कि सम्पत्ति के बहुत अधिक विषमतापूर्ण विभाजन के कारण इस व्यवस्था में कई बड़े दोष पैदा हो गये हैं, किन्तु जितने लम्बे समय तक इस व्यवस्था ने संसार का कल्याण किया है, उतना और किसी व्यवस्था ने नहीं किया और अब भी थोड़े से उद्योग से इसे समाज के लिए कल्याणकारी बनाया जा सकता है ।

इसमें संदेह नहीं कि जब वर्ण-धर्म की स्थापना की गई तो लोक नेताओं के सामने उसका एक बहुत ऊँचा आदर्श रहा होगा । यही कारण है कि उन्होनें ब्राह्मण का स्थान जितना ऊँचा रखा उसकी जवाब देही–उत्तरदायित्व भी उसी प्रकार असीम रखा । जहाँ सब लोगों को यह आदेश दिया गया कि वे ब्राह्मण को पूज्य मानें, और उनके प्रत्येक आदेश को अक्षरशः शिरोधार्य करें वहाँ ब्राह्मण के लिए भी अनिवार्य रूप से यह विधान बना दिया गया कि वे सरल, आडम्बरहीन, जीवन बितावें और अपना लक्ष्य ज्ञान की प्राप्ति और कठोर तपस्या ही रखकर समाज का संचालन करें ।

पर दुर्भाग्यवश यह ऊँचा आदर्श बहुत दिन नहीं टिक सका। जब श्रद्धा सम्मान सहज ही मिलने लगा और कठारे तपस्या की आवश्यकता न रही, तो आदर्श से भ्रष्ट होने में कितनी देर लगती है ? परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे प्राचीन ऋषियों की तपोभूमियाँ तीर्थों और मठों के रूप में बदल गई और वहाँ के आचार्यों और तपस्वियों के उत्तराधिकारी महन्तों और पण्डों के रूप में प्रकट हुए। जिन लोगों के ऊपर समाज के नेतृत्व, संचालन का भार था वे सीध-सादा जीवन छोड़कर ऐश-आराम की जिन्दगी बिताने लगे।

शास्त्रों में बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि ब्राह्मण का आदर्श उच्च और महान् होना चाहिए। उस आदर्श से भ्रष्ट होने पर जन्म से ब्राह्मण होने पर भी उसका ब्राह्मणत्व जाता रहता है। 'स्कन्द पुराण' में कहा गया है कि "राजद्वार पर वेद बेचने वाला ब्राह्मण पतित है। सदाचारहीन, सूदखोर और दुर्विनीति ब्राह्मण शूद्र हैं ।" 'पदम पुराण' में कहा गया है कि "केवल वेद पढ़ना ही ब्राह्मणत्व के आदर्श के लिये पर्याप्त नहीं है। वेद पढ़कर भी विचारपूर्वक जो उसका तत्त्व न समझ सके, वह ब्राह्मण शूद्र–कल्प अपात्र है ।"

इस प्रकार उस समय जो लोग लोक-मत का परिचालन या निर्माण करते थे, उनके हृदय में एक महान् आदर्श था, और समाज को उस आदर्श पर अग्रसर करना ही उनका उद्देश्य था । इसीलिए वर्ण-धर्म में ऐसी व्यवस्था की गई थी कि उससे प्रत्येक मनुष्य समाज का उपयोगी बनकर अपना जीवन सार्थक कर सकें। जहाँ आदर्श और उद्देश्य रहते हैं वहाँ मनुष्य की विचार-बुद्धि जाग्रत रहती है। जहाँ कोई भी आदर्श और लक्ष्य नहीं, वहाँ विचार किस बात का होगा ? इसलिये जब उस समय के नेताओं ने देखा कि वर्ण-धर्म से जो महान् उद्देश्य पूरा होना चाहिए वह सफल नहीं हो रहा है तो उन्होंने उपर्युक्त प्रकार के तीव्र विचार प्रकट किये थे। आज एक मात्र धन की सत्ता ने हमारा उद्देश्य और आदर्श लुप्त-कर दिया है, इसलिए विभिन्न समुदायों के कर्त्तव्यों पर जोर देने का विचार भी जाता रहा । प्राचीन काल की तुलना में आजकल हमारा समाज तामसिकता से भर गया है। फिर भी कभी-कभी कुछ लोगों के मन में विचार-बुद्धि जाग्रत हो जाया करती है। कबीर, रैदास, तुकारामा, नानक, दादू आदि मध्य युग के महापुरुष बारम्बर इस आदर्शहीनता और अन्याय की तीव्र आलोचना करते रहे हैं, इसके पहले भी अनेक विद्वानों ने इस झूँठे जात्य भिमान की निन्दा की है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महाभारत में ही इस विषय में सैकड़ों श्लोक पाये जाते हैं, जिनमें नाम मात्र की जाति के महत्त्व को अस्वीकार किया गया है, पर इस सम्बन्ध में सबसे स्पष्ट विवेचन 'बज्र सूची-उपनिषद्' में मिलता है। यह तो अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं लग सका कि इसका रचयिता कौन है, पर सन् १६७३ में इसका अनुवाद चीनी भाषा में हुआ था, इससे इसकी प्राचीनता का अनुमान किया जा सकता है । इस ग्रंथ में मुख्य रूप से इस सम्बन्ध में विचार किया गया है कि ब्राह्मण कौन है । इसके आरम्भ में ही यह प्रश्न किया गया है–

''तत्रचोद्यमस्ति कोवा ब्राह्मणोनाम, किं जीवः किं देहः, किं जातिः, किं ज्ञानम्, किं धार्मिक, इति।''

अर्थात् ''प्रश्न यह है कि ब्राह्मण कौन है ? जीव देह, जाति, ज्ञान, धर्मी, इनमें ब्राह्मण कौन है ?''

''पहले विचार किया जाये कि क्या जीवन ब्राह्मण है ? ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि जीवन भूत-काल से भिन्न-भिन्न देहों में निवास करता आ रहा है। वह एक रूप है, एक ही जीव को कर्मवश अनेक देह मिलती है। इस प्रकार सब देहों के जीव एक ही रूप के हैं और उसको ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता ।''

''तो फिर क्या देह ब्राह्मण है ? नहीं, क्योंकि ब्राह्मण से चाण्डाल तक सभी लोगों की पंच-भौतिक देह एक ही तरह की है। सब में बुढ़ापा और मृत्यु एक तरह ही आता है। ऐसा तो कोई नियम दिखाई नहीं पड़ता कि ब्राह्मण श्वेत वर्ण, का, क्षत्रिय रक्त रक्त वर्ण का, वैश्य पीले वर्ण का और शूद्र काले वर्ण का ही हो । देह अगर ब्राह्मण होता तो पिता की मृत देह का दाह करने पर पुत्र को ब्राह्मण हत्या का पाप लगता । इस विचार से देह ब्रह्मा नहीं है।''

''तो फिर क्या जाति ब्राह्मण है ? नहीं। ऐसा होता तो अन्य प्राणियों में भी अनेक जातियाँ होतीं। मनुष्य जाति के सिवा भी अन्य जाति से अनेक महर्षियों का उत्पन्न होना बतलाया गया है । जैसे– शृंगी ऋषि मृगी से, कौशिक ऋषि कुश से, जाम्बुक ऋषि जम्बुक (स्यार) से, व्यासजी मल्लाहिन से, वशिष्ट जी उर्वशी (स्वर्ग की वेश्या) से, अगस्तजी घड़े से उत्पन्न हुए कह जाते हैं । जाति के बिना भी अनेक ज्ञान सम्पन्न ऋषि हुए हैं । इससे जाति ब्राह्मण नहीं है ।''

''तो फिर क्या ज्ञान ब्राह्मण है ? नहीं, शास्त्रों के ज्ञाता और परमार्थदर्शी अनेक क्षत्रिय भी हैं। इसलिए ज्ञान ब्राह्मण नहीं है ।

''तो फिर ब्राह्मण कौन है ? वह, जो अद्वितीय, जाति, गुण, क्रिया हीन, सत्य, अनन्तज्ञान स्वरूप आत्मा का साक्षात्कार प्रत्यक्ष भाव से करता है। यही स्मृति, श्रुति, पुराण, इतिहास का अभिप्राय है। अन्यथा और किसी प्रकार से ब्राह्मणत्व की सिद्धि नहीं हो सकती ।''

इसी प्रकार 'भविष्य पुराण' में कहा गया है–

सामग्र्यानुष्ठानगणैः समग्रः
शूद्रायतः सन्ति समाद्विजानाम्।
तस्माद्विशेषो द्विज शूद्रनाम्नो--
नाध्यात्मिको बाह्य निमित्त को वा।।

(४१-२६)

''क्योंकि सम्मान्य शूद्र और सम्मान्य ब्राह्मण ये दोनों समाग्री और अनुष्ठान में समान ही हैं, इसलिये ब्राह्मण और शुद्र में बाह्य या आध्यात्मिक कोई भेद नहीं है ।''

इस प्रकार भारतीय वर्ण-धर्म जहाँ जाति-भेद का उत्पादक है, वहाँ उसमें गुणों और कर्त्तव्यों पर भी बहुत अधिक जोर दिया गया है। यह बात दूसरी है कि संसार में हीन प्रकृति के लोगों की ही अधिकता रही है और वे प्रत्येक अच्छे से अच्छे नियम में भी अपनी स्वार्थ सिद्धि का छिद्र ढूँढ़ लेते हैं । यही कारण है कि अनेक लोग ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न होने का अनुचित लाभ उठाते रहे हैं, तो भी कुछ लोग अपने कर्त्तव्य पालन में भी सचेत रहे हैं । इसका एक प्रमाण यही है कि जिन लोगों ने प्राचीन समय से अब तक जाति-भेद और ब्राह्मणत्व की त्रुटियों के विरोध में आवाज उठाई है, वे अधिकांश में उच्च-वर्ण के ब्राह्मण ही थे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप और लक्ष्य

समय और श्रम का सदुपयोग करके ही मनुष्य प्रगति की ओर बढ़ता है । यदि इन दोनों का क्रम अस्त-व्यस्त रहे तो फिर जीवन का कोई महत्त्वपूर्ण लाभ न उठाया जा सकेगा। जो अपना समय बर्बाद करते रहते हैं, जिन्हें अपनी आयुष्य का क्रम विभाजन करना नहीं आता, जिन्हें उपलब्ध क्षणों का सद्व्यय का मार्ग नहीं सूझता वे यहाँ से खाली हाथों चले जाते हैं। मृत्यु के समय उन्हें प्रतीत होता है कि कितनी बड़ी मूर्खता उन्होंने इस सुअवसर की उपेक्षा करते हुए की है। श्रम करने की शरीर और मन में जो अद्भुत क्षमता है, उसी का सदुपयोग करने से विभिन्न दिशाओं में सिद्धियाँ तथा सफलताएँ प्राप्त होती हैं। श्रम से जी चुराने वाले आलसी और समय का दुरुपयोग करने वाले प्रमादी एक प्रकार के आत्महत्यारे ही कहे जा सकते हैं ।

समय और श्रम यह दो प्रत्यक्ष देवता है। हनुमान-अंगद की तरह, नल-नील की तरह, राम-लक्ष्मण की तरह, सूर्य-चन्द्र की तरह, धरती आकाश की तरह इनका जोड़ा है। इनका दोनों पहियों का ठीक तरह ताल-मेल बिठाकर ही मानव-जीवन का प्रगति रथ आगे बढ़ता है। रात और दिन की तरह इन्हीं के आधार पर सुख-शान्ति का सन्तुलन बना हुआ है । जिसने समय का मूल्य नहीं समझा, उसे ज्यों-त्यों गुजार दिया, जिसने श्रम में उत्साह नहीं दिखाया, काम चोर की तरह बेगार भुगताने की तरह मजबूरी में जितना अनिवार्य था उतने ही हाथ पैर हिलाये तो यही समझना चाहिए कि वह जीवित रहते हुए भी मृतक जैसा आचरण कर रहा है। समय का अपव्यय और श्रम में अनुत्साह की बुराई जिसमें मौजूद है उसे सौ शत्रुओं और हजार विघ्नों से बढ़कर प्रगति पथ के अवरोध का सामना करना पड़ेगा ।

ऋषियों ने इस तथ्य को समझा था और उन्होंने एक सुव्यवस्थित योजना बनाकर मानव जाति को क्रमबद्ध अनुशासन में कसते हुए यह प्रयत्न किया था कि हर मनुष्य अपने समय और श्रम का पूरा-पूरा ध्यान रखें । समुचित सावधानी तभी रह सकती है, जब उसका क्रम-विभाजन ठीक तरह हो सके। पूरे दिन यदि कोई मनुष्य एक ही काम करता रहे, न कार्य में भिन्नता हो न अवधि नियत हो, हर समय एक ही काम करते रहा जाये, कब तक कितना करना है, उसकी कोई सीमा निर्धारित न हो तो काम मनुष्य के लिए भार बन जायेगा, उसमें न आनन्द रहेगा न उत्साह। अच्छा और रुचि का कार्य भी बोझिल हो जायेगा और करने वाला उससे घबराने लगेगा।

चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र के नाम से विख्यात हैं और ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास यह चार आश्रम कह जाते हैं । वर्णों की रचना किसी विशेष लक्ष्य को चुन कर उसी के माध्यम से आत्मिक प्रगति में एकनिष्ठ भाव होकर लग जाने के उद्देश्य से की गई है। यों जीवन का लक्ष्य तो आत्म कल्याण एवं पूर्णता की प्राप्ति ही है, पर उसका अभ्यास करने के लिए कोई लौकिक माध्यम भी तो अपनाना पड़ेगा। विद्या पढ़ने के लिए पुस्तकों की, बल प्राप्ति के लिए व्यायाम उपकरणों की, धन प्राप्त करने के लिए उद्योग की व्यवस्था करनी पड़ती है। बुद्धि, आरोग्य, समृद्धियों अदृश्य एवं सूक्ष्म शक्तियाँ हैं, पर उनका वैभव तो किसी स्थूल माध्यम से ही प्रकट होता है। इसी प्रकार आत्म-कल्याण का सूक्ष्म उद्देश्य प्राप्त करने के लिए भी कोई भौतिक कार्यक्रम तो चाहिए ही। इच्छा और कामना करते रहने से तो कोई लाभ मिल नहीं जाता । आत्म-कल्याण का उद्देश्य पूरा करने के लिए भी बाह्य जीवन में कोई रुचिकर, उपयोगी एवं सदुद्देश्यपूर्ण कार्यक्रम निर्धारित करना ही पड़ता है । एक दिशा निर्धारित करके उस पर चलते रहने से ही पथिक को अपनी यात्रा का परिणाम प्राप्त करने का अवसर मिलता है। जो कभी इधर, कभी उधर भटकता रहेगा, कोई दिशा निर्धारित न करेगा उसे न तो किसी लक्ष्य की प्राप्ति होगी और न वह किसी कार्य में विशेषज्ञता प्राप्त कर अपनी प्रतिज्ञा ही चमका सकेगा ।

अस्तु, यह आवश्यक है कि आत्म-कल्याण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए मनुष्य अपना एक निर्धारित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्यक्रम निर्धारित करे और फिर पूरी दिलचस्पी के साथ संसार का सर्वोत्तम काम समझ कर उसी क्रम को आजीवन अपनाये रहे, इसी विधान को वर्ण-धर्म कहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का क्रम-विभाजन, मनुष्य-मनुष्य के बीच ऊँच-नीच या छोटे-बड़े का भाव पैदा करने के लिए नहीं, वरन् गुण, कर्म स्वभाव के अनुसार एक निर्धारित गतिविधि अपना कर तीर की तरह लक्ष्य की ओर बढ़ चलने की व्यवस्था बनाने के लिए हुआ है ।

संसार में चार ही प्रमुख शक्तियाँ हैं (१) ज्ञान (२) बल (३) धन (४) श्रम, इन्हीं चारों खम्भों पर प्रगति का मंच खड़ा किया गया है । मुनष्य ने अब तक जो उन्नति की है, उसका सारा श्रेय इन चार विभूतियों को ही है। यदि यह न हों तो जन्मजात रूप से जैसा भी कुछ मानव प्राणी उत्पन्न होता है उसे सबसे पिछड़ा ही माना जा सकता है । एक-एक वर्ण इनमें से एक-एक शक्ति की विशेष आराधना करने उसमें विशेषता प्राप्त करने का लक्ष्य बनाता है और उस मार्ग पर निरन्तर चलते हुए अपने तथा दूसरों के लिए सुख-शान्ति का लक्ष्य प्रशस्त करता है ।

ब्राह्मण ज्ञान-शक्ति का, क्षत्रिय बल-शक्ति का, वैश्य जन-शक्ति का और शूद्र श्रम-शक्ति का अभिवर्धन करते हुए इसका लाभ सारे सामाज को पहुँचाते हैं। इस कार्य विभाजन को दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि जो ज्ञान की आराधना में संलग्न हैं, वह ब्राह्मण, जो बल की साधना में लगा है, वह क्षत्रिय, जिसने समृद्धि की अभिवर्धन में मन लगाया, वह वैश्य और जो श्रम-देवता का अनुष्ठान करके इस गन्दे, अव्यवस्थित एवं कुरूप संसार को सुन्दर बनाने का तप कर रहा है वह तपस्वी शूद्र कहलाता है । यह विशुद्ध कर्म-विभाजन है, इसमें ऊँच-नीच की क्या बात हुई ? एक ही परिवार के कई व्यक्ति कई तरह का काम करते हैं, उनमें से कोई ऊँच-नीच नहीं होता । वृद्ध पिता जी पूजा-पाठ एवं कथा-वार्त्ता एवं समाज-सेवा में लगे रहते हैं, वे ब्रह्मण हुए, एक लड़का सेना में हवलदार है, वह क्षत्रिय हुआ, दो लड़के दुकान चलाते हैं वे वैश्य हुए, स्त्रियाँ घर का काम-धंधा, रोटी-चौका का प्रबन्ध करती हैं वे शूद्र हुईं । इनमें से किसी को नीच-ऊँच कैसे कहा जा सकता है। अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार कार्य-विभाजन में भिन्नता रहने से अच्छा ही हुआ। समाज की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार सम्भव हो गई। सब लोग एक ही काम करते तो उसमें नीरसता आती और अन्य काम बिगड़ते। इसलिए कार्यों में थोड़ा अन्तर होना व्यक्ति एवं समाज के विकास की दृष्टि से उचित भी है और आवश्यक भी ।

संसार में समस्त दुःखों के चार कारण हैं । (१) अज्ञान (२) अशक्ति (३) अभाव (४) आलस्य । जितने भी मनुष्य, जितने भी प्रकार के कष्ट भुगत रहे हैं, उन सबके दुःखों का मूल कारण इन चार में से ही कोई हो सकते हैं । अज्ञानी का दृष्टिकोण, विचारने का ढंग गलत होता है वह न सोचने योग बातें सोचता और न करने योग्य निर्णय करता है। फलस्वरूप अनेकों अनावश्यक उलझनों में उलझकर दुःख भोगता है। अशक्त अपनी दुर्बलता के कारण न तो उपयुक्त उपार्जन कर पाता है, न संघर्षों का मुकाबिला कर पाता है, उसे कमजोर पाकर भीतरी और बाहरी शत्रु अपना आक्रमण प्रबल कर देते हैं, फलतः उसे त्रास सहने पड़ते हैं ।

अभावग्रस्त मनुष्य जीवनोपयोगी वस्तुओं से वंचित रहकर अपना सामान्य क्रम चलाने में असमर्थ हो जाता है। दरिद्रता उसे मनोबल, सम्मान, स्वास्थ्य एवं संतुलन को खा जाती है । साधनों के अभाव में आगे बढ़ने का न तो साहस होता है और न सुयोग बैठता है। ऐसी दशा में उसे मन मसोस कर दीन दुःखियों की स्थिति में पड़े रहकर अभावजन्य दुःखों को भोगते रहना पड़ता है । आलस्य तो सबसे बड़ा, सबसे दुष्ट शत्रु है ही, उसकी छाया जहाँ भी पड़ रही होगी, वहाँ सब कुछ चौपट हो रहा होगा। शनि ग्रह की दशा की चर्चा ज्योतिष ग्रन्थों में पाई जाती है। वह शनि आकाश में रहने वाला जड़ पिंड नहीं वरन् आलस्य ही होता है। जिस पर उसकी दशा आई वह बर्बाद हुए बिना नहीं रह सकता। आलस्य के कारण इस संसार में कितना दुःख दरिद्र फैला हुआ है। इसका अनुमान लगाया जाये तो उसके मानव-जाति का घोर शत्रु ही माना जायेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपरोक्त चारों दुःख-हेतुओं को अपने निज के जीवन में से बहिष्कार करने के संघर्ष में संलग्न होने की वीरता अपने-अपने क्षेत्र में चारों ही वर्णों को दिखानी पड़ती है । अपने कार्यक्रम में प्रगति करते हुए जो शक्तियाँ उपलब्ध होती हैं, उनका लाभ स्वयं ही उठाते रहने की स्वार्थपरता से बचते हुए सारे समाज को उसका लाभ पहुँचाने का व्रत लेना पड़ता है, तभी वह वर्ण-धर्म ठीक तरह पालन हुआ समझा जायेगा ।

ब्राह्मण अपने सद्ज्ञान से बिना किसी फल की आकांक्षा रखे सारे समाज को उसका लाभ देने का प्रयत्न करता है । गुरुकुल, चिकित्सालय, कथा, प्रवचन, सत्संग, संस्कार आदि की प्रक्रिया अपनाकर जन-समाज का भावना स्तर ऊँचा बनाने के लिए वह प्राण-पण से प्रयत्न करता है । उसका व्यक्तित्व श्रद्धास्पद बना रहे इसलिए दूसरों की तुलना में अधिक त्यागी, तपस्वी, संयमी, अपरिग्रह में रह कर अपनी वाणी से ही नहीं चरित्र से भी यह शिक्षा देता है कि सन्मार्ग पर चलते हुए यदि गरीबी से भी रहना पड़े तो आन्तरिक उल्लास एवं बाहरी आनन्द में कोई कमी नहीं आ सकती ।

क्षत्रिय अपने प्राण हथेली पर रखकर अनैतिक तत्त्वों से संघर्ष करता है । साधारण लोग प्रत्याक्रमण के भय से भयभीत होकर दुष्टता के आगे सिर भी झुका देते हैं और उससे समझौता भी कर लेते हैं पर वह क्षत्रिय जिसने समाज की सुरक्षा का दुर्बलों की हिमायत करने का व्रत लिया है, वह अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए शरीर बल-शस्त्र बल एवं सत्ता बल प्राप्त करके उद्दंडताओं को नियन्त्रित करने के कार्य में लगता है । उसका कार्य किसी भी त्यागी, तपस्वी, आत्म-बलिदानी से कम महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता ।

वैश्य उत्पादन और उद्योग के प्रत्येक पहलू को विकसित करते हुए जनसाधारण की जीवनोपयोगी सुविधाओं को बढ़ाता है । अन्न, वस्त्र, दूध, शाक, औषधियाँ, पुस्तकें, सुई, साबुन, बुहारी आदि अनेक आवश्यकीय साधनों से जनता को वंचित न रहना पड़े इसलिए वह उत्पादन एवं वितरण के लिए आवश्यक व्यवस्था करते हुए सर्वसाधारण की एक बड़ी कठिनाई को दूर करता है । श्रम के बिना कोई भी कार्य पूरा नहीं हो सकता । छोटे से बड़े हर काम में श्रम ही सफलता उत्पन्न करता है। उस अभाव की पूर्त्ति शूद्र वर्ण को करनी पड़ती है, इसलिए इस सहयोग के अनुरूप उसका गौरव भी अधिक माना गया है ।

आज चारों वर्णों का विकृत स्वरूप ही दिखाई पड़ रहा है। इसका कारण उस व्यवस्था का दोष नहीं वरन् लोगों की नासमझी एवं अनुपयुक्त गतिविधियों को ही माना जा सकता है । वर्ण-धर्म हमें सिखाता है कि जीवन को कोई लक्ष्य बना कर जिया जाये । एक निर्धारित दिशा में पूर्णता प्राप्त करने के लिए लोकहित का उद्देश्य लेकर तन्मयतापूर्वक संलग्न रहा जाये और यह समझा जाये कि हमारा कार्य संसार के किसी भी श्रेष्ठतम कर्म से घट कर नहीं हो सकता । ईमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठा, समाज-सेवा एवं आत्म-कल्याण का लक्ष्य रखकर अपनी आन्तरिक सद्वृत्तियों के विकास का अभ्यास करने के लिए कोई भी कार्य अपनाया जाये, वह योग साधना, तपश्चर्या एवं पुण्य परमार्थ से किसी भी प्रकार कम श्रेयस्कर न होगा ।

वर्ण-धर्म में आज भयंकर विकृति यह आई है कि उसे कर्म-विभाजन न मानकर वंश-परम्परा का रूप मिल गया है जातियों को वर्ण समझा जाने लगा है । ऊँच-नीच की निरर्थक भावना को इसी आड़ में प्रश्रय मिला है और अलग-अलग गुटों के रूप में हमारा जातीय जीवन खण्ड-खण्ड हो गया है । मानव-जाति की एकता और श्रेष्ठता को नष्ट-भ्रष्ट करने में आज वर्ण-धर्म की विभूतियाँ अभिशाप बन रही हैं, पर उनका मूल स्वरूप वस्तुतः वैसा है नहीं। उसका निर्माण मानव के सुव्यवस्थित विकास क्रम को सरल बनाने के लिये ही हुआ है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि और क्षमता के अनुरूप कार्य चुने, सदुद्देश्य से उसे आरम्भ करे और आन्तरिक सद्-वृत्तियों के विकास को माध्यम मानते हुए पूरी ईमानदारी, जिम्मेदारी और दिलचस्पी से उसे पूरा करने में तत्परतापूर्वक लगा रहे तो उसमें उसका भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कल्याण है और समाज का भी । वर्ण-धर्म की यह प्रेरणा मानव-जाति का भविष्य उज्ज्वल बनाने में निस्सन्देह बहुत ही सहायक सिद्ध हो सकती है ।

वर्ण और जाति में जमीन-आसमान का अन्तर

समाज व्यवस्था के कर्णधारों ने कभी व्यक्ति की योग्यता एवं प्रवृत्ति तथा समाज में विभिन्न क्रिया कलापों की आवश्यकता का सन्तुलन बिठाते हुए वर्ण व्यवस्था का निर्धारण किया था । यह अपने समय की दूरदर्शिता एवं व्यवहार कुशलता से भरी-पूरी पद्धति थी । व्यक्ति की योग्यता और समाज की आवश्यकता का सन्तुलन न बैठे तो फिर बेकारी बढ़ेगी । अकुशल लोग जिस, तिस कार्य में घुसेंगे आवश्यक कार्यों के कर्त्ता घटेंगे और सुविधा सम्मान आदि को देखते हुए घुसपैंठ एवं धिचपिच इतनी होगी कि श्रम आजीविका दोनों ही क्षेत्री में वैसी ही अराजकता दृष्टिगोचर होगी, जैसी कि आज है ।

इन दिनों हर शिक्षित व्यक्ति मेज-कुर्सी पर बैठकर पंखे के नीचे हलका-फुलका काम करना चाहता है । बाबू गीरी उसे पसन्द है । समाज-व्यवस्था में जितने बाबू चाहिए उससे अनेक गुने बढ़ गये, फलतः बेरोजगारी की धूम है । दूसरी ओर गृह उद्योगों का क्षेत्र खाली पड़ा है । परिश्रम, मनोयोग, कौशल के लिए परम्परागत प्रशिक्षण एवं अभ्यास चाहिए । उसके न मिलने पर मात्र स्कूली शिक्षा से प्रवीणता आती नहीं । फलतः कारीगरों की संख्या ही नहीं कुशलता भी घटती जा रही है । ऐसे ही असंतुलनों की पूर्व कल्पना करते हुए उनसे बचने के लिए कभी वर्ण-व्यवस्था का प्रावधान किया गया था ताकि समाज की आवश्यकता भी पूरी होती रहे और व्यक्ति भी बेरोजगार न रहे तथा कार्य शैली का परम्परागत अभ्यास रहने से कौशल भी पनपता रहे ।

वर्ण-व्यवस्था एक बात है और जाति-पाँति दूसरी । वर्ण कर्म प्रधान है, जबकि जाति-पाँति का जन्म वंश से सम्बन्ध है । वर्ण-व्यवस्था परम्परागत रहे और एक व्यवसाय के लोग अपनी एक परम्परा बना लें तो हर्ज नहीं, पर इसमें न तो परिवर्तन जैसा प्रतिबन्ध है और न ऊँच-नीच का कोई प्रश्न ! अध्यापक सेवा निवृत्त होने पर दुकान खोल सकता है । इस प्रकार वह ब्राह्मण से वैश्य वर्ण में परिवर्तन करता है । इससे जन्म वंश के कारण कोई बाधा नहीं पड़ती और न उसके सम्मान पर कोई आँच आती है । जाति-व्यवस्था में मात्र वंश विभाजन ही नहीं ऊँच-नीच का यहाँ तक कि छूत—अछूत का भी विष घुल जाता है, फलतः वर्ण और जाति के बीच सैद्धान्तिक आधार लड़खड़ा जाने के स्थान पर वह लाभदायक के स्थान पर हानिकारक बन जाता है । उससे एक ओर अहंकार के परिपोषण तथा दूसरी ओर किसी पर पिछड़ापन लादने की अवांछनीयता पनपती है ।

वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति 'वृ' (वृञ्—वरणे) धातु से हुई है, जिसका अर्थ है वरण अथवा चुनाव करना । इस प्रकार जब व्यक्ति अपने गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार व्यवसाय चुनता है, वही वर्ण है । वर्ण का वास्तविक सम्बन्ध व्यक्ति के गुण तथा कर्म से पाया जाता है । जिन व्यक्तियों के गुण में स्वभावतः समानता पायी जाती है, उन्हें एक वर्ण का माना गया । गीता में श्री कृष्ण भगवान् ने कहा है— "मैने ही गुण और कर्म के आधार पर चारों वर्णों की रचना की है।" इस तथ्य से प्रमाणित है कि मनुष्य के गुण तथा कर्म पर आधारित ही वर्ण-व्यवस्था का सामाजिक स्तरी-करण है, जिसके अन्तर्गत चार वर्णों के रूप में समाज का कार्यात्मक विभाजन हुआ है । समाज के कार्य को सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिए व्यक्तियों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए उन्हें चार वर्णों में विभाजित किया गया है ।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वर्णों की उत्पत्ति में कहा गया है कि ब्राह्मण, पुरुष अर्थात् विराट् स्वरूप परमात्मा के मुख रूप हैं, क्षत्रिय उनकी भुजायें हैं, वैश्य उनकी जंघाएँ अथवा उदर हैं और शूद्र उनके पाँव हैं । पुरुष सूक्त के इस श्लोक के आधार पर वर्णों के पृथक्-पृथक् गुण तथा कर्म माने गये हैं । महाभारत में भी विराट् पुरुष के शरीर के अनेकों अंगों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से वर्णों की उत्पत्ति मानी जाती है । शान्ति पर्व में अपने शिष्य भारद्वाज को बताते हुए महर्षि भृगु ने कहा है कि प्रारम्भ में केवल एक ही वर्ण ब्राह्मण था । यही वर्ण बाद में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र के रूप में विभक्त हो गया ।

भृगु ने स्पष्टतया वर्णों की उत्पत्ति को नये भेद के आधार पर नहीं माना, अपितु गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर माना है । ब्रह्मा ने प्रारम्भ में सबको एक समान, बिना ऊँच-नीच के पैदा किया, किन्तु कालान्तर में ब्राह्मण ने जिस तरह के गुणों को अपनाया उसी के आधार पर ब्राह्मणों की उत्पत्ति पुरुष के मुख से हुई । मुख से बोला जाता है अतएव ब्राह्मणों का कार्य बोलना है अथवा अध्यापक एवं गुरु के रूप में मानव को शिक्षित करना है । भुजाओं को शक्ति का प्रतीक माना जाता है, अतएव क्षत्रीय का कार्य शस्त्र धारण एवं शासन संचालन करके देश की रक्षा करना है । वैश्यों की उत्पत्ति जंघाओं से मानी जाती है, अतएव बलिष्ठता एवं पौरुष प्रतीक होने के कारण इन्हें कृषि एवं व्यवसाय का कार्य सौंपा गया । विराट् पुरुष के पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए, पैरों का कार्य शरीर का भार वहन करना है, इसलिए शूद्रों को सेवा कार्य द्वारा समाज के भार को वहन करना है । विराट् पुरुष के अंगों से उत्पत्ति इस तथ्य को प्रकट करती है कि चारों वर्णों में अलग-अलग स्वाभाविक विशेषतायें निहित हैं । उनमें आत्म-निर्भरता भी शारीरिक अवयव के विभिन्न अंग होने के कारण स्पष्ट दीखती है । अतएव 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदू बाहूराजन्यः कृतः । उरू तदस्य यद्वेस्यः पदभ्यां, शूद्रों अनायत । पर वर्ण-व्यवस्था का निर्माण हुआ । गीता में भी सामाजिक वर्ण व्यवस्था का विभाजन गुण के आधार पर हुआ है ।

ब्राह्मणों के मुख्य रूप से छः कर्म वर्णित हैं, जिनमें अध्ययन और अध्यापन, यज्ञ करना और कराना, दान देना और लेना आते हैं । सात्विक गुणों के साथ इन कर्मों के सम्बन्ध हैं । ब्राह्मण को सात्विक गुण की प्रधानता के कारण सर्वोच्च स्थिति प्रदान की गई है । भीष्म के अनुसार ब्राह्मण का मुख्य कर्त्तव्य पठन, आत्म-नियन्त्रण करना एवं तप का अभ्यास करना है।

क्षत्रियों के लिए मनुस्मृति में वर्णित है कि प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, तथा विषयों में अनाशक्ति रखना ही उनका कर्म है । महाभारत के अनुसार क्षत्रिय उसे कहते हैं जो वेदाध्ययनरत हो ।

क्षत्रियों के प्रमुख कार्य प्रजा की रक्षा, वीरता दिखाना युद्ध से कभी मुँह न मोड़ना तथा दुष्टों को दण्ड देने में समर्थ होना आदि बताये गये हैं । क्षत्रीय के धर्म में भी यही आता है कि वह प्रजा में धर्म के प्रति प्रेम उत्पन्न करे और प्रजा को सत्कर्मों में लगाये ।

महाभारत के अनुसार वैश्यों को वेदाध्ययन से सम्पन्न होकर व्यापर, पशुपालन तथा कृषि कार्य से अन्न संग्रह करने वाला होना चाहिए । मनुस्मृति में वैश्यों के कर्मों के बारे में वर्णन है कि पशुओं की रक्षा करना, दान देना तथा कृषि करना उनके मुख्य कर्म हैं । गीता के अनुसार—कृषि, गोरक्षा, व्यापार वैश्यों के मुख्य कर्म माने गये हैं । क्रय-विक्रय करने में निपुणों को शुक्राचार्य ने वैश्य बताया है और इन्हें व्यापार में, पशुओं की रक्षा एवं कृषि उत्पादन में संलग्न रहना चाहिए, ऐसा कहा है ।

शूद्र वह समुदाय है जो शारीरिक श्रम की आवश्यकता पूरी करता है । ज्ञान, पराक्रम, धन की ही तरह श्रम भी उतना ही आवश्यक है । वह न मिले तो उपरोक्त तीनों कार्यों के लिए आधार भूत साधन तक खड़े नहीं हो सकते । इन दिनों तो बिजली, भाप, तेल आदि के सहारे भी कितने ही यंत्रीय श्रम साधन गतिशील रहते हैं; पर किसी जमाने में तो मात्र मानवी श्रम ही प्रधान था उसके बाद पशु श्रम से कृषि, शिल्प, उद्योग आदि का काम चलता था । इसलिए उस वर्ण को भी अन्यान्य वर्णों के समान मान और सम्मान दिया गया है । आज शूद्र के सामाजिक सम्मान में कमी होने का एक ही कारण है कि पुरातन वर्ण-व्यवस्था को लोग भूल गये और उसके स्थान पर जाति-पाँति की अनुपयोगिता को अपना बैठे ।

महाभारत उपनिषदों तथा कुछ स्मृतियों से दिखायी पड़ने वाली वर्ण-व्यवस्था के रूप से स्पष्ट है कि यह सामाजिक स्तरीकरण की एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके माध्यम से मनोवैज्ञानिक आधार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर समाज का कार्यात्मक विभाजन किया गया था । वर्ण व्यवस्था की इस लचीली व्यवस्था से मानव समाज को अपने गुण, कर्म एवं स्वभाव के आधार पर अपनी स्थित में उन्नति करने का सुअवसर मिला । इसमें व्यक्ति अपने गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार परिवर्तन भी कर सकता था । प्रमाणित है कि नियन्त्रित गतिशीलता के आधार पर इस व्यवस्था ने सामाजिक प्रगति में अपने समय में महत्त्वपूर्ण योगदान किया ।

शक्ति-सन्तुलन को प्रमाणित करने की दृष्टि से भी वर्ण-व्यवस्था महत्त्वपूर्ण है । इसमें यह प्रयास किया गया था कि कुछ व्यक्तियों के अन्तर्गत विभिन्न शक्तियाँ केन्द्रित न होने पायें । समाज में शास्त्र या ज्ञान-शक्ति, शस्त्र या सैन्यबल, अन्न या सम्पत्ति, सेवा या श्रम बल पाया जाता है । यही शक्तियाँ कुछ समूहों में केन्द्रित हो जायें तो समाज में अत्याचार व्याप्त हो जायेगा तथा इससे समूह में अहंकार तथा निरकुंशता बढ़ जायेगी । इसी दृष्टि से वर्ण-व्यवस्था में चारों शक्तियों के पुरस्कार को भिन्न-भिन्न रखा गया है । ब्राह्मण ज्ञान सेवा से समाज से सम्मान पाता है, क्षत्रिय देश रक्षा के पुरस्कार स्वरूप शासन करता है, वैश्य समाज की अन्न पूर्ति करके धन के रूप में पुरस्कार पाता है, शूद्र तीनों वर्णों की सेवा करने पर पुरस्कार स्वरूप आवश्यकताओं की पूर्ति करता है ।

वर्ण और जाति का अन्तर समझा जाना चाहिए। एक में दूरदर्शिता एवं सुव्यस्था देखनी चाहिए और दूसरी में अविवेक पूर्ण हठवादिता की भरमार । यदि पुरातन काल जैसी वर्ण-व्यवस्था इन दिनों सम्भव न रही हो तो फिर जाति-पाँति के जंजाल को भी हटा कर संस्कृति के आधार पर बड़े समुदायों का नये सिरे से निर्धारण करना चाहिए । इस दृष्टि से समस्त भारतीय संस्कृति के अनुयायी एक वर्ण या एक जाति वाले कहे जा सकते हैं । ऊँच-नीच की बात जन्म पर आधारित नहीं हो सकती, वह तो व्यक्ति के चरित्र एवं कौशल पर निर्भर रहती रही है । आगे भी उसका आधार वही रह सकता है ।

वर्ण-व्यवस्थायें 'कर्म' के आधार पर

वर्ण-व्यवस्था में वंश या कुल प्रधान नहीं । कर्म प्रधान है । अकर्म करने से उच्च कुल में जन्म लेने वाला भी पतित हो जाता है और श्रेष्ठ कर्म करने वाले तथाकथित नीच कुल में जन्म लेने वाले भी उच्च बनते हैं । वस्तुतः कोई कुल न तो उच्च है और न नीच । जिस वंश में श्रेष्ठ परम्परायें प्रचलित रहती हैं, सत्कर्म होते हैं, सज्जन और सेवा भावी सत्पुरुष उत्पन्न होते हैं, उन्हीं को ब्रह्म वंश कह कर सम्मानित करते हैं और जहाँ निकृष्ट परम्परायें चल पड़ती हैं, कुकर्म होते हैं और दुष्ट दुर्गुणी जन्मते हैं, वही नीच कुल कहा जाता है ।

यह परम्पराएँ बदलने पर वंश की उत्कृष्टता निकृष्टता भी बदल जाती है । वर्ण-व्यवस्था जन्म के आधार पर नहीं कर्म के माध्यम से ही बनी है ।

एकवर्ण मिदं पूर्व विश्वमासीद् युधिष्ठिरः ।
कर्म क्रिया विभेदेन चातुवर्ण्य प्रतिष्ठितम् ।।
सर्वे वै योनिजा मर्त्याः सर्वे मूत्रपुरोषजाः ।
एकेन्द्रियेन्द्रियार्थश्च तस्माच्छील गुणैद्विजः ।।
शूद्रोऽपि शील सम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत् ।।

(महाभारत वन पर्व)

पहले एक ही वर्ण था पीछे गुण, कर्म भेद से चार बने । सभी लोग एक ही प्रकार से पैदा होते हैं । सभी की एक-सी इन्द्रियाँ हैं । इसलिए जन्म से जाति मानना उचित नहीं है । कर्म के आधार पर ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हैं । यदि शूद्र अच्छे कर्म करता है तो उसे ब्राह्मण ही कहना चाहिए और कर्त्तव्यच्युत ब्राह्मण को शूद्र से भी नीचा मानना चाहिए ।

क्षत्रियात् जातमेवं तु विद्याद् वैश्यात् तथैव च ।।

(मनुस्मृति)

आचरण बदलने से शूद्र ब्राह्मण हो सकता है और ब्राह्मण शूद्र । यही बात क्षत्रिय तथा वैश्य पर भी लागू होती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः ।

(वशिष्ठ स्मृति)

आचरण हीन को वेद भी पवित्र नहीं करते ।

वेदाध्ययनमप्येत ब्राह्मण्यं प्रतिपद्यते ।
विप्रवद्वैश्यराजन्यौ राक्षसा रावणा दया ।।
श्वाद चांडाल दासाश्च लुब्धकाभीर धीवराः ।
येन्येऽपि वृषलाः केचित्तेपि वेदान धीयते ।।
शूद्रा देशान्तरं गत्त्वा ब्राह्मण्यं श्रिता ।
व्यापाराकार भाषद्यैविप्रतुल्यैः प्रकल्पितैः ।।

(भविष्य पुराण)

ब्राह्मण की भाँति क्षत्रिय और वैश्य भी वेदों का अध्ययन करके ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है । रावण आदि राक्षस, श्वाद, चाण्डाल, दास, लुब्धक, आभीर, धीवर आदि के समान वृषल (वर्णशंकर) जाति वाले भी वेदों का अध्ययन कर लेते हैं । शूद्र लोग दूसरे देशों में जाकर और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि का आश्रय प्राप्त करके ब्राह्मणों के व्यापार, आकार और भाषा आदि का अभ्यास करके ब्राह्मण ही कहलाने लगते हैं ।

जातिरिति च । न चर्मणो न रक्तस्य मांसस्य न
चास्थिनः । न जातिरात्मनो जातिर्व्यवहार प्रकल्पिता ।

(निरावलम्बोपनिषद्)

जाति चमड़े की नहीं होती, रक्त, माँस की नहीं होती, हड्डियों की नहीं होती, आत्मा की नही होती । वह तो मात्र लोक-व्यवस्था के लिये कल्पित कर ली गई है ।

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यात् अन्न दोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति ।।

(मनु०)

वेदों का अभ्यास न करने से, आचार छोड़ देने से, कुधान्य खाने से ब्राह्मण की मृत्यु हो जाती है ।

अनध्यापन शीलं च सदाचार बिलंघनम् ।
सालस च दुरन्नाहं ब्राह्मणं बाधते यमः ।।

स्वाध्याय न करने से, आलस्य से ओर कुधान्य खाने से ब्राह्मण का पतन हो जाता है ।

यस्त्वाचारविहीनोऽत्र वर्तते द्विजसत्तमः ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यो यथा शूद्रस्तथैव सः ।।

(देवी भागवत)

जिसके श्रेष्ठ आचरण नहीं उस ब्राह्मण को ही शूद्र समझना चाहिए और बहिष्कार करना चाहिए ।

पुत्रो गृत्सदमस्यापि शुनको यस्य शौनकाः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच ।।

(हरिवंश१५/२७)

गृत्समर्द के पुत्र शुनक और उनके पुत्र शौनक नाम के विख्यात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र पुत्र उत्पन्न हुए ।

एक एव पुरा वेदः प्रणव सर्ववाङ्मयः ।
देवो नारायणो नान्यः एकोऽग्निवर्ण एव च ।।

(श्रीमद् भागवत ६/१४)

पहले एक ही वेद था, एक ही प्रणव उपास्य था । एक ही देवता नारायण था । एक ही साधन अग्नि था । एक ही वर्ण मनुष्य था ।

वज्रसूचिकोपनिषद् में ब्राह्मणत्व की विवेचना करते हुए इस तथ्य पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है । उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं–

ब्रह्मक्षत्रियवैश्यशूद्रा इति चत्वारो वर्णास्तेषां वर्णानां ब्राह्मण एव प्रधान इति वेदवचनानुरूपं स्मृतिभिरप्युक्तम् । तत्र चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम किं जीवः किं देहः किं जातिः किं ज्ञानं किं कर्म किं धार्मिक इति ।। तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत्तन्न । अतीतानागतानेकदेहात् जीवस्यैकरूपत्वात् एकस्यापि तमवशादनेकदेहसंभवात् सर्वशरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च । तस्मान्न जीवो ब्राह्मण इति ।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चार वर्ण कहे गये हैं, जिनमें ब्राह्मण प्रधान है, ऐसा वेद का वचन है और स्मृतियों में भी यही कहा गया है । यहाँ प्रश्न यही है कि ब्राह्मण कौन है ? क्या वह जीव है, अथवा देह है अथवा जाति है अथवा ज्ञान है, अथवा कर्म है, अथवा वह धार्मिकता है ?

इसमें अगर सबसे पहले जीव को ब्राह्मण कहा जाय तो यह नहीं हो सकता । भूत और भविष्यकाल में अनेक शरीरों में जो जीव हुए हैं अथवा होंगे वें सब एक से ही हैं । जीव एक है और कर्मों के अनुसार अनेक देहों में उसका जन्म होता है । सब शरीरों में जीव में एकता रहती है । इसलिए जीव ब्राह्मण नहीं हो सकता ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तर्हि देहो ब्राह्मण इति चेत्तन्न । आचाण्डालादिपर्यन्तानां मनुष्याणां पाञ्चभौतिकत्धेन देहस्यैकरूपत्वात् जरामरणधर्माधर्मा दिसाम्यदर्शनात् । ब्राह्मणः श्वेतवर्णः क्षत्रियो रक्तवर्णो वैश्य पीतवर्णः शूद्र कृष्णवर्ण इति नियमाभावात् पित्रादिशरीरदहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्यादिदोषसंभावाच्च । तस्मान्न देहो ब्राह्मण इति ।। तर्हि जातिर्ब्राह्मण इति चेत्तन्न तत्र जात्यन्तर-जन्तुष्वनेकजातिसंभवात् । महर्षयो बहवः सन्ति । ऋष्यश्रंगो मृग्यः, कौशिकः कुशात्, जाम्बूको जम्बूकात, बाल्मीकोः बाल्मीकात्, व्यासः कैवर्तकन्यकायाम्, शशपृष्ठात् गौतमः वसिष्ठ उर्वश्यमि्, अगस्त्यः कलशे जात इति श्रुतत्वात । एतेषां जात्या विनाऽप्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयो वहवः सन्ति । तस्मान्न जातिर्ब्राह्मण इति ।।

तब क्या देह ब्राह्मण है ? यह भी नहीं हो सकता । चाण्डाल से लेकर समस्त मनुष्यों के शरीर एक से पञ्च भौतिक होते हैं, उनमें वृद्धावस्था, मरण, धर्म, अधर्म एक से ही होते हैं । ब्राह्मण गोरा, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीला और शूद्र काला ही हो ऐसा कोई नियम देखने में नहीं आता और न पिता, भाई आदि के शरीर की दाह क्रिया करने से पुत्र आदि को ब्रह्महत्या आदि का दोष लगता है । इसीलये देह ब्राह्मण नहीं हो सकता ।

तब क्या जाति ब्राह्मण है ? यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि भिन्न जाति वाले प्राणियों से भी अनेक महर्षियों की उत्पत्ति कही गई है, जैसे–मृगी से शृंगी ऋषि, कुश से कौशिक, जम्बुक से जाम्बुक, बाँवी से वाल्मीकी, मल्लाह की कन्या से व्यास, शशक की पीठ से गौतम, उर्वशी वैश्या से वशिष्ठ, कलश से अगस्त्य ऋषि की उत्पत्ति कही जाती है । इस प्रकार से ऋषि बिना जाति के ही पूर्व में ज्ञानी हुए हैं, इसलिए जाति को ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता ।

कामरागादिदोषरहितः शमदमादि सम्पन्नो भावमात्सर्यतृष्णाऽऽशामोहदिरहितो दम्भाहंकारा दिभिरसंस्पृष्ठकेता वर्त्तत एवमुक्तलक्षणो यः स एव ब्राह्मण इति श्रुतिस्मृतिपुराणोतिहासानाममिप्रायः ।

काम, राग आदि दोषों से रहित, शम, दम आदि से युक्त, मात्सर्य, तृष्णा, आशा, मोह आदि से रहित, दम्भ, अहंकार आदि से चित्त को सर्वथा पृथक् रखने वाला ही ब्राह्मण कहा जा सकता है ।

गीता और भावी वर्ण-व्यवस्था

जिस समय गीता की रचना हुई, उस समय भारतीय समाज चार वर्णों में विभक्त था । वर्ण-व्यवस्था के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न जातियों के धर्म या काम जन्मसिद्ध माने जाते थे । समाज में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र इन चार चरणों के सिवाय और भी "पाप योनि" जातियाँ थीं, कुत्ते खाने वाले श्वपाक (चण्डाल) भी थे । गीता के अनुसार उस जमाने में जिस जाति के हिस्से में जो काम आया, उसी को करना ठीक माना गया था । यही नहीं गीता में यहाँ तक कह दिया गया है कि अपना कर्म छोड़ कर दूसरे का धर्म स्वीकार करना बड़े भय की बात है । उससे समाज व्यवस्था को हानि पहुँचने की आशंका है ।

विचारणीय विषय यह है कि गीता के समय में समाज की व्यवस्था कैसी भी रही हो, पर क्या उसका आशय यह है कि देश और काल में चाहे जैसा परिवर्तन हो जाये, वह प्राचीन व्यवस्था सदा अटल रहेगी । स्वयं गीता ने ऐसी बात की कोई गारंटी नहीं दी है । गीता ने उपरोक्त व्यवस्था उस समय के लिये दी थी जबकि चारों वर्णों के व्यक्ति अपने धर्म का वास्तविक रूप में पालन करते थे । इतना ही नहीं उस समय जो वर्ण जितना ऊँचा और सम्मान का पात्र माना जाता था, उसका उत्तरदायित्व भी उतना ही अधिक था । ब्राह्मण अगर अधिक आदर के पात्र माने जाते थे तो इन्द्रिय सुख को भोगने का अधिकार भी उनको सबसे कम था । बाहर और भीतर की इन्द्रियों को संयम में रखना उनका कर्त्तव्य माना गया था । गीता के समय के समाज का जितना वर्णन हमको मिलता है, उसमें एक भी ब्राह्मण ऐसा नहीं मिलता जिसने दौलत इकट्ठी की हो या जो ऐश-आराम की जिन्दगी बिताता हो । क्षत्रिय जाति यद्यपि राजपद की अधिकारी थी, पर उसको सदा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी जान हथेली पर लेकर रहना पड़ता था । उस समय हार जाने की बदनामी मरने से भी बुरी समझी जाती थी । इसलिये कोई क्षत्री रणभूमि में पीठ नहीं दिखा सकता था । यही कारण है कि गीता में ब्राह्मणों के लिये जहाँ इस कर्त्तव्य और क्षत्रियों के लिये सात कर्त्तव्य बतलाये हैं, वहाँ वैश्यों के लिये तीन कर्तव्य और शूद्रों के लिए केवल एक ही कर्त्तव्य का बंधन बतलाया गया है । बंधन और सम्मान में कमी और वेशी इस प्रकार रखी जाती थी कि समाज-व्यवस्था में किसी व्यक्ति का पलड़ा भारी नहीं होने पाता था । इसीलिये गीता के 'विभूति योग' अध्याय में प्रत्येक जाति की मुख्य बातों को बतलाते हुये भगवान् ने कहीं पर भी नहीं कहा कि 'वर्णानां ब्राह्मणोंऽम्यहम् अर्थात् "चारों वर्ण वालों में से मैं ब्राह्मण हूँ ।"

आज उच्च जाति के कहलाने वाले लोग केवल सम्मान चाहते हैं और उत्तरदायित्व अथवा बंधन से दूर हटते हैं, पर ऐसा किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? आज ब्राह्मणों ने अपनी विद्या का क्षत्रियों ने अपने बल का और वैश्यों ने अपने धन का उपयोग समाज हित के लिये करना छोड़ दिया है । आज सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि वास्तविक रूप से छोटे-लोगों को भी समान अधिकार दें । जब तक हम न्याय और समता के सिद्धान्त पर चलने नहीं लगेंगे, तब तक उत्तम सामाजिक व्यवस्था की स्थापना हो सकना सम्भव नहीं ।

जब हम वर्तमान समय की अस्वाभाविक असमानता से छुटकारा पाकर प्रकृति के अनुकूल समानता के स्तर पर आ जायेंगे, तब किसी भी व्यक्ति के लिये कर्म का निश्चय केवल इसी बात के आधार पर किया जायेगा कि उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति किस ओर है । ऐसा निर्णय प्रथम तो प्रत्येक व्यक्ति अपने लिये स्वयं ही कर सकता है, यदि उसे कठिनाई हो तो अनुभवी गुरुजनों से भी सम्मति मिल सकती है । समाज में समानता की भावना पैदा हो जाने के कारण लोगों के मन में यह धारणा तो रहेगी नहीं कि कौन-सा काम श्रेष्ठ है और कौन-सा काम घटिया है । इसी प्रकार सबको जीवन निर्वाह तथा सुख पाने की एक-सी सुविधाएँ होने से यह भी विचार मन में न आयेगा कि इस काम में ज्यादा आमदनी होगी और इसमें कम होगी । इस समय केवल एक यही बात विचारणीय रहेगी कि हम कौन-सा काम अच्छी तरह से और योग्यता पूर्वक कर सकेंगे । जब हम इस प्रकार अपनी रुचि और प्रकृति के अनुसार काम करने का मौका पायेंगे तो उसमें असफल या फिसड्डी रह जाने का डर भी नहीं रहेगा ।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में संशोधन करके नई व्यवस्था का निर्माण करने से पहले प्रत्येक कार्य को प्रतिष्ठा और आर्थिक समता की स्थिति का लाना अनिवार्य है । यह कार्य कठिन अवश्य है, पर जैसा गीताकार ने कहा है 'काम, एष, क्रोध एवं रजोगुण समुद्भवः' के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर हम इंद्रियों का संयम करके विषमता की भावना को नष्ट कर सकते हैं, जबकि हमारे पूर्वज हमको स्पष्ट शब्दों में 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' और 'आत्मौपम्ये सर्वत्र समं पश्यति' का उपदेश दे गये हैं और स्वयं उस पर चलकर हमको मार्ग दिखला गये हैं, तो कोई कारण नहीं कि हम उसके अनुसार आचरण न करें सकें । अर्जुन के समान चंचल मन के कारण हमको भी इस साम्य योग पर चलने में आरम्भ में कठिनाई जान पड़ेगी, पर अभ्यास, वैराग्य और संयम से इसे सिद्ध करना ही होगा ।

नये युग के अनुरूप वर्ण-व्यवस्था

प्राचीनकाल में वर्ण-व्यवस्था की आवश्यकता इसलिये महसूस की गई थी, ताकि समाज का सारा क्रिया-व्यपार व्यवस्थित रूप से चल सके । शूद्र वर्ग को सेवा-कार्य सौंपा गया था । वैश्य वाणिज्य-व्यापार को सम्भालते थे । पराक्रम-पुरुषार्थ एवं युद्ध-विद्या का उत्तरदायित्व क्षत्रियों के कन्धों पर था, जबकि सदृज्ञान का प्रसार, पुण्य, परमार्थ एवं लोकमंगल जैसे कार्य ब्राह्मण वर्ग के जिम्मे थे । यह सब मिल-जुलकर उस समय की समाज-व्यवस्था को सुन्दर-सुगढ़ बनाये हुए थे । किसी का किसी से कोई टकराव नहीं था, फलतः वातावरण सतयुगी बना हुआ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

था । ऐसा जिसकी आज भी कल्पना करके लोग पुलकित हुआ करते हैं ।

यह चारों वर्ग आज भी जीवित हैं, पर कुत्साओं के कारण समाज को ऊँचा उठाने, लोगों को प्रेरणा देने की जगह गन्दगी फैला कर सड़ाध उत्पन्न कर रहे हैं ।

मनुस्मृति में भगवान् मनु ने मनुष्य को जन्म से 'शूद्र' बताया है और कहा है कि बाद के जीवन में मनुष्य अपने कर्त्तव्यों के द्वारा ही आगे के वर्णों में प्रवेश करता है । यदि आज के मनुष्य समाज पर हम दृष्टिपात करें, तो हमें अधिकांश लोग इसी श्रेणी में दिखाई पड़ेंगे । मनु ने मनुष्य को शूद्र इसलिये कहा था, क्योंकि आरम्भिक स्थिति में उसकी चेतना अत्यन्त सीमित, संकुचित होती है और व्यक्ति आत्म केन्द्रित बना रहता है । निम्न प्राणियों की तरह 'अपना और अपनों, का ही ख्याल रख पाता है । इससे आगे उसकी विचारणा जाती ही नहीं किन्तु बाद में जब वह समाज के संसर्ग में आता है, तब उसे प्रतिदान की बात याद आती है और ऋण को चुकाने के लिये वह सेवा–सहकार में प्रवृत्त होता है, तब वह उच्चतर श्रेणियों का प्रवेशाधिकारी बनता है, तब सेवाकार्य में संलग्न लोग 'शूद्र' कहलाते थे, पर आज इससे विमुख लोगों को इस श्रेणी में रखा गया है ।

वैश्य श्रेणी के लोगों की आज भी कमी नहीं है । तब ऐसे लोगों का कार्य था–कृषि कर अन्न संकट को दूर करना, भूखों को रोटी देना और नंगों को वस्त्र प्रदान करना । दूसरे शब्दों में कहा जाये तो ये परमार्थी प्रकृति के लोग होते थे । सामाजिक कार्यों में आने वाले धनाभाव की पूर्ति में इस वर्ग के लोग सदैव आगे रहते थे, पर आज उनकी मनोवृत्ति संचय जन्य बन गयी है । अब वे भौतिकता के पीछे भागते और ऐशो-आराम की आकांक्षा करते हैं, फलतः उन्हें आज के व्यवहारानुकूल वैश्य की संज्ञा दी गयी है । सम्भवतः इसीलिए प्रसिद्ध मनोविज्ञानी जुंग ने वैश्य की तुलना किशोरों से की है, क्योंकि वैश्य-प्रवृत्ति उनकी व्यक्तिगत विशेषता होती है । संचय-वृत्ति उनके स्वभाव का अभिन्न अंग होती है । सम्वेदना और समझदारी का उनमें उतना ही अंश होता है, जिससे वे प्रचलित प्रवाह में बह सकें, उससे विपरीत चलने और अनुकरणीय उदाहरण बनने का साहस उनमें नगण्य जितना होता है । फिर भी वर्तमान समय में भी कई ऐसे उदारचेता हुए हैं, जिन्हें देख और सुनकर ऋषि-युग की याद आ जाती है । ऐसे ही एक व्यक्ति थे द्विजेन्द्र नाथ ठाकुर, बंगाल के प्रसिद्ध साहित्यकारों और शान्ति-निकेतन के वयोवृद्ध आचार्यों में उनकी गणना होती थी । एक बार उनके पास एक अत्यन्त गरीब व्यक्ति आया, कहने लगा–"मेरे पास तन ढकने को कोई कपड़ा नही हैं ।" उनकी करुणा ऐसी उमड़ी कि उनने अपना महँगा कश्मीरी दुशाला उसे देते हुए कहा कि "जल्दी यहाँ से चला जा अन्यथा मेरे घर वाले इसे तुमसे छीन लेंगे ।" एक अन्य अवसर पर एक ग्रामीण आकर कहने लगा कि "मेरी लड़की की शादी के लिये मेरे पास पैसे नहीं हैं, कुछ कृपा कीजिये ।" ठाकुर साहब ने कहा–"भाई ! अभी तो मेरे पास कुछ नही हैं, सिर्फ यह घोड़ा गाड़ी है । इसे ही ले जा, बेच कर काम चला ले ।" उसने वैसा ही किया । यह थी प्राचीन समय की वैश्य-वृत्ति अर्थात् संचय-वृत्ति का त्याग, पर आज तो यह स्वप्नवत् बनी हुई है ।

क्षत्रियत्व अर्थात् पुरुषार्थ-पराक्रम । समाज को बदलने के लिये, लोगों में नवीन चेतना भरने के लिये साहस परिचय । दुष्टता का दमन भी इसी का एक हिस्सा था, पर आज के लोग तो जैसे पुरुषत्वहीन हो गये हैं । उनसे न तो स्वयं उठते बनता है और न दूसरों को उठाते, वरन् और गिराने, सताने एवं शोषण करने की ही दुरभि सन्धि रचते रहते हैं । इसी में वे अपना पुरुषार्थ मानते हैं और प्रभुत्व जमाते हैं । यदि वे चाहते तो अपने प्रभाव और बल को समाज के प्रचलित प्रवाह को तोड़ने-मरोड़ने में लगाकर अभिनव समाज की संरचना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते थे, पर ऐसा न कर वे क्षत्रियत्व पर कलंक ही लगा रहे हैं । सम्भवतः इसीलिये मूर्धन्य मनःशास्त्री शेल्डन ने युवकों को व्यक्तित्व विश्लेषण के आधार पर "एण्डोमारफिक" की संज्ञा दी है । निश्चय ही उनमें प्रभुता और वर्चस्व की आकांक्षा तो रहती है, पर इसके लिए वे पुरुषार्थ दिखा नहीं पाते,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह पुरुषार्थ तो आज समय की माँग है । कदाचित इसीलिये स्वामी विवेकानन्द ने कहा था "कि यदि मुझको मेरे जैसे सौ युवक मिल जाएँ तो मैं इस दुनिया को बदल कर रख दूँ ।" क्योंकि वे जानते थे कि युवकों का क्षत्रियत्व, उनका पराक्रम यदि किसी प्रकार जगाया जा सका तो वे महाक्रान्ति उपस्थित कर सकते हैं ।

इन सबमें ऊपर था-ब्राह्मण वर्ग, क्योंकि उसका कार्य इन दोनों से महत्त्वपूर्ण था । सत्परामर्श देना, परमार्थ प्रयोजनों में निरत रहना और महत्वकांक्षाओं से विलग रहकर औसत भारतीय स्तर का निर्वाह करना । एक प्रकार से देखा जाय तो यह मानवीय गुणों की चरम परिणति थी—मानवी विकास की अन्तिम अवस्था, क्योंकि इसमें करुणा और भाव सम्वेदना इस कोटि तक विकसित हो जाती थी, जहाँ न कोई अपना होता था और न पराया । सारा संसार अपना ही परिवार दृष्टिगोचर होने लगता था, इसीलिए वह पूरी वसुधा को ही अपना कुटुम्ब मानकर चलते, उसके कल्याण के लिये दान—पुण्य की व्यवस्था करते एवं लोगों को मार्ग-दर्शन देते थे, पर आज तो चतुर, चालाक और गड्ढे में गिराने वाले निष्ठुर लोग ही इस श्रेणी में आते हैं ।

आज हम ब्राह्मण तो बनें, पर शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय कर्मों की सर्वथा उपेक्षा न करें । शूद्र अर्थात् सेवा विराट् ब्रह्म की अर्थात् संचय-वृत्ति का त्याग एवं समाज-कल्याण हेतु धन-दान और क्षत्रियत्व अर्थात् मन्यु, अनीति के प्रति आक्रोश, साहस, पराक्रम—इन तीनों का ही साथ-साथ निर्वाह करें । यही महाकाल की पुकार है और उसकी महत् इच्छा और आकांक्षा भी ।

ब्राह्मणत्व की ओर

द्विपद मानव सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा मन्तव्य आज तक के सभी दार्शनिकों का रहा है, परन्तु सापेक्ष एवं तुलनात्मक दृष्टि से समस्त मानव भी एक स्तर के नहीं हैं । उनकी विचार-प्रणाली, विषय-प्रवृत्ति, प्रेरक तत्त्व, कार्य-संचालन, बुद्धि-वैभव, शारीरिक सम्पत्ति आदि सभी में विभिन्नता है । सबकी अपनी-अपनी कमाई है जो कभी एक समान नहीं होती । एक जैसे अवसर मिलने पर भी मानव एक जैसे नहीं बन पाते । एक ही दम्पत्ति की संतति विषम गुणों वाली देखी जाती है । एक ही गुरु से शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों में श्रेणीगत वैषम्य होता है । विश्व की विविधरूपता को सिद्ध करने के लिये प्रमाण एवं तर्क की आवश्यकता नहीं है । वह तो स्वयं सिद्ध है । यह विविधरूपता मानव-जगत में भी ज्यों की त्यों विद्यमान है ।

अन्य प्राणियों की अपेक्षा मानव की श्रेष्ठता उसके बुद्धि-वैभव के कारण ही है । अतः बौद्धिक स्तर का उच्चाउच्च होना ही मानवों के विभिन्न स्तरों का भी प्रधान कारण है । कुछ मनुष्य बुद्धि के रहते हुए भी उससे कार्य नहीं लेते । वे दूसरों की बुद्धि द्वारा यन्त्रवत् परिचालित होते रहते हैं । ऐसे व्यक्ति दूसरों के कार्यसाधक तो बनते हैं, पर अपना कार्य नहीं कर पाते और इसी कारण उनके अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का भी विकास नहीं हो पाता । साधन रूप में प्रयुक्त होने पर जो कुछ मिल जाता है, उसी के आधार पर उनका जीवन-यापन होता है । आहार, निद्रा, भय और भोग तक ही उनकी निर्मिति सीमित रहती है । इससे ऊपर उठकर वे स्वतन्त्रचेता के गौरवशाली पद को प्राप्त नहीं कर पाते । आर्य संस्कृति की वर्ण-मर्यादा में ऐसे व्यक्तियों को शूद्र संज्ञा दी गयी है । शारीरिक श्रम, कठोर दैहिक तप-इनकी विशेषता है । वैदिक उक्ति तपसे शूद्रम् का यही भाव है ।

इस स्तर से ऊपर ऐसे व्यक्तियों का वर्ग है जो शारीरिक श्रम तो करते हैं, पर उसका लक्ष्य उनकी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है । किसान खेती करता है, पशु-पालन करता है, वैश्य वाणिज्य व्यवसाय करता है, तो उसका उद्देश्य उसके अपने लिये है, किसी अन्य के लिये नहीं । इन सभी कार्यों में कठोर तप करना पड़ता है । शीत उष्णा, सुख-दुःख आदि के द्वन्द्व सहने पड़ते हैं पर सबका परिणाम अपना हित होता है,यही इस स्तर का पूर्व स्तर से अन्तर है । इस अन्तर में बुद्धि की क्रियाशीलता भी निहित है । बिना बुद्धि का उपयोग किये कोई भी व्यक्ति न खेती से लाभ उठा सकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है न वाणिज्य व्यवसाय से और यदि बुद्धि का उपयोग नहीं करता, तो स्वयं दूसरों के साध्य का साधन बन जाता है । ऐसी अवस्था प्रथम स्तर से ऊपर की नहीं कही जा सकती । बुद्धि क्रियाशील होकर ही व्यक्ति को साधनमात्र होने से बचा देती है । यह स्तर वैश्य-वर्ग का है ।

मानव का तीसरा स्तर ऐसे व्यक्तियों का है जो वैश्य–वर्ग की अपेक्षा बुद्धि से अधिक काम लेते हैं । इनका कार्य समाज की रक्षा करना है जिसके लिये इन्हें अनेक उपाय सोचने पड़ते हैं । आन्तरिक तथा बाह्य दोनों ही प्रकार के घातकों से सावधान रहना, उनकी कुटिल चालों की जानकारी रखना, उपयुक्त समय पर जागरूक रहते हुए तत्परता पूर्वक रक्षा के साधनों को जुटाना और निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाना, शारीरिक बल के साथ विविध प्रकार के अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग करना, उसके संचालन की विधि से पूर्णतया अभिज्ञ होना आदि ऐसे कार्य हैं जिनमें इस वर्ग को दक्ष होना पड़ता है । शारीरिक श्रम यहाँ भी है पर पूर्वोक्त दोनों वर्गो की अपेक्षा अधिक बुद्धि पूर्वक । लक्ष्य में यहाँ आकर एक विशिष्ट अन्तर पड़ जाता है । वैश्य वर्ग के कार्यों का लक्ष्य वह वर्ग स्वयं है । जो कुछ उत्पादन उसके द्वारा होता है, उसका उपयोग अधिकांश में उस वर्ग के लिये ही होता है । पर इस वर्ग के कार्यों का लक्ष्य समग्र समाज की रक्षा है । शूद्र बुद्धि रहित होकर एक व्यक्ति को सेवा करता है, पर यह वर्ग बुद्धि पूर्वक समग्र समाज की सेवा करता है अतः कई दृष्टियों से यह वर्ग पूर्वोक्त दोनों वर्गों के स्तर से उच्चकोटि का है । यह क्षत्रिय वर्ग है ।

चौथे स्तर पर ऐसे व्यक्ति हैं जिनका लक्ष्य बुद्धि के उपयोग द्वारा किसी सांसारिक उद्देश्य की पूर्त्ति नहीं, प्रत्युत स्वयं बुद्धि का अधिक-से-अधिक विकास करना है । जीवन-यापन के लिये प्रभु का सहारा तथा बुद्धि सम्बन्धी कोई कार्य जैसे--अध्यापन, पौरोहित्य आदि–इसके अनन्तर सारा समय मस्तिष्क को आलोकित करने में लगाना-यही एकमात्र उद्देश्य इस स्तर के व्यक्तियों का होता है । आर्य-संस्कृति में यह स्तर ब्राह्मण-वर्ग का माना गया है ।

ऊपर जिन चार वर्गों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है, उनमें से एक-एक वर्ग के अन्दर भी कार्य तथा बुद्धि–स्तर के आधार पर कई विभाग किये जा सकते हैं और किये भी गये हैं । सत् और असत् के आधार पर सभी वर्गों के दो-दो मोटे विभाग हो सकते हैं । पुनः इन दो के भी अनेक विभाग हो सकते हैं । यों मानवता की एक श्रेणी है, पर यह एक श्रेणी नाना रूप बनकर कम-से-कम विकास के चार स्तरों में विभाजित की जा सकती है ।

अन्तर्मनोदशा तथा भावना की दृष्टि से शूद्र-वर्ग चिन्ता रहित जीवन व्यतीत करना चाहता है । लम्बी आयु, अनेक पुत्र-पौत्रों के बीच मनोरंजन करना, अपने स्वामी से प्राप्त धन के आधार पर, किसी भी जोखिम को उठाये बिना, निश्चिन्त होकर रहना शूद्र-वर्ग की विशेषताएँ हैं । ऐसा जीवन मानवता के विकास का द्योतक नहीं है । चिन्ता विकास की प्रथम आवश्यक सीढ़ी है । चिन्ता चिन्तन की जननी है । मानव की सार्थकता इसी चिन्तन या मनन द्वारा सिद्ध होती है । जिस व्यक्ति के जीवन में चिन्तन ने प्रवेश नहीं किया, वह तम्थुष की भाँति स्थिर रह सकता है, चरकी की तरह गतिशील नहीं बन सकता । जो गतिशील नहीं है, वह विकसित भी नही हैं । आर्य-संस्कृति में 'जन्मना जायते शूद्रः' का भी यही अर्थ है । निश्चिन्त, मनन रहित सभी बालकों की संज्ञा शूद्र है । संस्कार सम्पन्न होकर ही वह द्विज कहलाने के अधिकारी बनते हैं । संस्कार निश्चित रूप से मन का ही होता है ।

वैश्य वर्ग में यह चिन्ता पग-पग पर दिखायी देती है । कृषि के लिए भूमि की जुताई करनी है, उसमें खाद डालना है, बीज बोना है, पानी देना है, अंकुरित दलों की कीड़ों से रक्षा करनी है, फसल के तैयार होने पर पशु–पक्षियों से उसे बचाना है, फिर काटना, गाहना, राशि करना—ऐसी एक नहीं, न जाने कितनी चिन्ताओं से कृषक का जीवन आक्रांत रहता है । वह इन समस्त चिन्ताओं का साम्मुख्य करता है । अल्पवृष्टि, अतिवृष्टि, टिड्डादल आदि अनेक दैवी आपदाएँ आकर उसके जीवन को झकझोरती रहती हैं । वह स्थिर निश्चिन्त जीवन व्यतीत कर ही नहीं पाता और इसी हेतु उसके जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का विकास भी होता है । इस वर्ग की विशेष चिन्तन-प्रणाली धन, समृद्धि, वैभव आदि की वृद्धि में अनुभूत होती है । वाणिज्य-व्यवसाय तथा उससे सम्बद्ध अन्य जोखम से भरे कार्य करने वाले व्यक्तियों की गणना इसी वर्ग में होती है । मनु ने इस वर्ग को सत्यानृत का सम्मिलित वर्ग माना है ।

क्षत्रिय श्रेणी वैश्य की अपेक्षा कहीं अधिक चिंताकुल दिखायी देती है । उसके प्राण सदैव हथेली पर रखे रहते हैं । उसे न शरीर का ध्यान है, न अपने पुत्र-पौत्रों का, न धन का, आवश्यकता पड़ने पर वह इन सबको ठुकरा सकता है । हाँ, उसकी एक कामना है, मन की एक आकांक्षा है-वह है उसकी और उसके समाज की कीर्ति । यही उसकी आन है, विरुद है । यश रहे, प्राण या धन रहे, चाहे न रहे । कीर्ति के पिपासु क्षत्रिय, यशोलिप्सा के भूखे वीर एक सत्य की रक्षा के लिये अपने सर्वस्व की आहुति दे देते हैं, अपने प्रण पर मर मिटते हैं, पर वचन को नहीं जाने देते । यह है सत्य की सुरक्षा, पर कभी-कभी क्षत्रिय का असत् कुस्ति, क्रोधान्ध रूप भी दिखायी देता है । निरीहों की हत्या अपने नाम के लिये सत्यमूर्ति विप्रों की अवमानना, धनिकों का निर्मम शोषण-दूसरे शब्दों में अपने बल का, क्षत्रियत्व का अनुचित एवं गर्हणीय प्रयोग—यह क्षत्रियत्व का उद्योतन नहीं, अवगमन है, उत्थान नहीं, पतन है, विकास नहीं, विनाश है । सच्चा क्षत्रिय अपने समाज को घायल होने से बचाता है, सतर्क रहकर अत्याचारियों से उसकी रक्षा करता है, प्राचीन प्रतीकात्मक शब्दों में 'गोब्राह्मण का प्रतिपालक'' होता है । वह सत्यसन्ध है, सत्यपक्षी है, सत्य का सरंक्षक है । उसकी चित्त के प्रधान विषय यही हैं ।

ब्राह्मण वर्ग की चिन्ता न आयु और प्राण है, न पशु और प्रजा हैं, न धन और कीर्ति हैं । उसका प्रमुख लक्ष्य ब्रह्मवर्चस्व की प्राप्ति है । समष्टि दृष्टि से जो बुद्धितत्व द्योके रूप में सर्वत्र समाया हुआ है, सत् का जो आलोक सर्वव्याप्त है, उसको पहचान लेना और उसके साथ अपने व्यष्टि बुद्धितत्त्व को मिला देना अर्थात् धी-योग को प्राप्य कर लेना उसके ध्यान का चरम बिन्दु है । यह स्थिति चिन्तन और मनन से ऊपर की है ।

ब्राह्मण चिन्तनशील तो होता ही है, इससे भी ऊपर वह प्रकाश सम्पन्न बनता है । ब्रह्मतेज से युक्त होकर वह अपनी गतिशील स्थिति से चारों ओर की परिस्थितियों को प्रभावित करता है उसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति इस प्रकार का अनुभव करते हैं और उधर चलने के लिये उन्मुख होते हैं । दिव्यता का आविर्भाव और उसका प्रभाव ऐसा ही होता है ।

आर्य-संस्कृति में इसे ब्राह्मी वृत्ति का सम्पादन कहा गया है । मनु ने इसकी प्राप्ति के लिए स्वाध्याय,व्रत, होम त्रयी विद्या, इज्या, सुत, महायज्ञ और यज्ञ रूप साधनों का वर्णन किया है । स्वाध्याय-अप्रमत्त होकर वेद-शास्त्रादि, ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थों के अध्ययन में निरत रहना, व्रत रखना-उपवास आदि द्वारा इन्द्रिय-संयम को उपलब्ध करना, दैनिक अग्निहोत्र करना, ज्ञान-कर्म-उपासना रूप वेदत्रयी का आचरण, दर्श-पौर्णमास आदि यज्ञों का करना, गृहस्थ धर्म का पालन-संतति का प्रसव, महायज्ञ—सर्वहुत तथा पंच महायज्ञों का करना और अन्त में समग्र यज्ञ पूर्ण जीवन को यज्ञमय ही बना देना ब्राह्मणत्व प्राप्ति के साधन कहे गये हैं । अन्तिम साधन त्याग की पराकाष्ठ को सूचित करता है । ऐसे ब्राह्मण ही संन्यासी की उस प्रतिज्ञा को पूर्णतया चरितार्थ कर सकते हैं जिनमें पुत्र-वित्त-यश सभी आकांक्षाओं के त्याग का प्रतिपादन है ।

शूद्र का सत्य अपने स्वामी की सेवा है । वैश्य सत्यानृत है । क्षत्रिय सत्यसन्ध है, परन्तु ब्राह्मण सत्य का उपासक और अपने वास्तविक स्वरूप में सत्य की मूर्ति है ।

शूद्र पराश्रित है । वैश्य स्वाश्रित एवं पराश्रित दोनों ही हैं । क्षत्रिय स्वाश्रित अधिक है, पराश्रित कम है । ब्राह्मण सम्पूर्ण रूप से स्व-आत्मा पर ही आश्रित है ।

शूद्र स्वामी की सेवा से सदैव भयभीत रहता है । वैश्य विविध प्रकार के विघ्नों से भयभीत रहते हुए भी निर्भयता का आस्वाद ले लेता है । क्षत्रिय निभर्य होते हुए भी भय से आक्रान्त रहता है, परन्तु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्राह्मण निर्भय है । उसकी निर्भयता को किसी विशेषण की आवश्यकता नहीं है, भय द्वितीय से होता है । जो किसी को द्वितीय रूप में देखता ही नहीं है, सबको अपना आत्मा ही समझता है, उसे किसी से भी भय नहीं होता 'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो' वेद की इस मन्त्र पंक्ति को जीवन में चरितार्थ करने वाला व्यक्ति प्रत्येक अवस्था में निर्भय रहता है ।

शूद्र स्थिर है । वैश्य गतिशील है । क्षत्रिय उससे भी अधिक गतिशील है । ब्राह्मण परम गतिशील होते हुए भी स्थिर है ।

विकास की दृष्टि से भी मानवता के ऊपर वर्णित चारों स्तरों में एक विशेष क्रम परिलक्षित होता है । शूद्र के निश्चित जीवन में पराश्रित धन प्राप्ति कभी-कभी चोट पैदा कर ही देती है और वह स्वभावतः स्वाश्रित होकर धन के संचय की ओर झुक जाता है । यही उसका वैश्यत्व की ओर प्रयाण है। वैश्य धन तो पैदा करता है, पर उसकी बुद्धि और सुरक्षा की चिन्ता उसे ऐसे साधनों से सम्पन्न बनने की ओर भी प्रेरित करती रहती है जो उसके लिए निर्विघ्न वातावरण का निर्माण कर सके । यही वैश्यत्व का क्षत्रियत्व में परिणमन है । क्षत्रियत्व या राजनीति अनेक वक्रताओं से संश्लिष्ट है उसमें साम, दाम, दण्ड, भेद सभी का प्रयोग करना पड़ता है । यश का अर्जन साधारणतया सरल कार्य नहीं है । राजनीति में प्रवेश करके उसकी अन्तःअनार्जव अवस्था का दर्शन होता है और अन्त में मानव वक्रता से व्याकुल होकर सरलता से संयुक्त जीवन की ओर अग्रसर होता है । यही ब्राह्मणत्व की ओर चलना है। ब्राह्मण सरलता की प्रतिमा है, छल-छद्म से कोसों दूर निष्कपट भोलेपन की मूर्ति है । वह सबका है। वह सबका है, सब उसके हैं—फिर किससे कैसा दुराव-छिपाव । वह उन्मुक्त है, गगनवत् खुला हुआ, कुसुमवत् खिला हुआ, चन्द्रिका के समान आह्लाद-दायक, सूर्य के समान प्रकाश प्रदायक, ब्रह्मरश्मियों में स्नात धौतमल, विगतकल्मष, शान्त, सौम्य, ऐसा ब्राह्मणत्व किस मूर्ख को प्यारा नहीं है ? न हो, तब भी जाने, अनजाने सब उसी ओर चले जा रहे हैं । प्रकृति माता सबको खींच-खींचकर उधर ले जा रही है । जो हठवश, प्रमाद पूर्वक उधर नहीं जा रहे वे अभागे हैं । अन्यथा इस मिट्टी से हट कर उस द्योकी ओर गमन करना सभी को अभीष्ट है, अन्न से आनन्द की ओर जाना सभी का लक्ष्य है । मृत से अमृत बनना सभी को प्यारा है ।

२-चार आश्रम

भारतीय संस्कृति ने जीवन के हर क्षेत्र में गम्भीरता से विचार किया है । सम्पूर्ण जीवन को सौ वर्षों का मान कर २५—२५ वर्षों के चार भाग बना दिये हैं । प्रथम पच्चीस वर्ष शरीर, मन, बुद्धि के विकास के लिए रखे गए हैं । इस आश्रम का नाम ब्रह्मचर्य है । इन वर्षों में युवक या युवती को संयमी जीवन बिताकर आने वाले सांसारिक जीवन के उपयुक्त शक्ति-संचय करना पड़ता था । वह मूलः एक विद्यार्थी ही होता था, जिसका कार्य प्रधान रूप से शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियाँ प्राप्त करना था । यह ठीक भी है, जब तक हर प्रकार की शक्तियाँ एकत्रित कर मनुष्य सुसंगठित न बने, जब तक उसकी बुद्धि और मन शरीर इत्यादि की शक्तियों का पूरा-पूरा विकास न हो, वह पूरी तरह चरित्रवान्, संयमी, दृढ़ निश्चयी न बने, तब तक उसे सांसारिक जीवन में प्रविष्ठ नहीं होना चाहिए ।

दूसरा आश्रम गृहस्थ है । २५ से ५० वर्ष की आयु गृहस्थ आश्रम के लिए है । पति-पत्नी धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए पूरी जिम्मेदारी से अपने नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करते थे । परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारी को पूरा करते थे । अपने व्यवसाय में दिलचस्पी लेकर आनन्दमय जीवन व्यतीत करते थे । धर्माचरण द्वारा गृहस्थ जीवन के सुख प्राप्त करते थे । धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, आदि चारों का सुख भोग करने का विधान है ।

उम्र ढलने पर सांसारिक कार्यों से हटना चाहिए । लेकिन इस पृथकता से समय लगता है। धीरे—धीरे भौतिक जीवन की आवश्यकताएँ कम करनी होती है । अतः ५० से ७५ वर्ष तक की आयु में गृहस्थ भार से मुक्त होकर जन-सेवा का विधान है । इसे वानप्रस्थ कहा गया है । गृहस्थ जीवन की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिम्मेदारियों से मुक्ति पाना मनुष्य की मानसिक शांति के लिए परम उपयोगी है । पारमार्थिक जीवन के लिए पर्याप्त समय निकल आता है । वानप्रस्थ का अर्थ यह भी है कि घर पर रहते हुए ही मनुष्य ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे, संयम का अभ्यास करे, बच्चों को विद्या पढ़ाये, फिर धीरे-धीरे अपनी जिम्मेदारी अपने बच्चों पर डालकर बाहर निकल जाये । पूर्ण परिपक्व व्यक्ति ही घर से बाहर संन्यासी के रूप में निकल कर जनता के हित के लिए नाना सार्वजनिक कार्य कर सकता था । चिकित्सा, धर्म-प्रचार और पथ-प्रदर्शन का कार्य इन योग्यतम संन्यासियों के हाथ में ही रहता था । समाज उन्नति की दिशा में आगे बढ़ता था । आज जैसे कम उम्र के अनुभव विहीन दिखावटी धर्म-प्रचारक उन दिनों नहीं थे । वे पैसा-कौड़ी भी न लेते थे और काम पूरे मन से करते थे । आज इतना व्यय करने पर भी वह लाभ नहीं होता । संन्यास की पहिचान भी ज्ञान ही है ।

यह आश्रम-व्यवस्था भारतीय मनोवैज्ञानिकों की तीव्र बुद्धि कौशल की सूचक है । व्यावसायिक दक्षता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य पूरे परिश्रम और लगन से २५ वर्ष तक सीखे करे । उस कार्य की गुप्त बारीकियों को देखे, समझे और तब उसमें प्रवष्टि हो । पच्चीस वर्ष तक तप जाने से मनुष्य आगे आने वाले जीवन के लिए मजबूत बन जाता था । जिम्मेदारियों, अच्छाइयों, बुराइयों को समझ जाता था । आश्रम-परिवर्तन का तात्पर्य उसके मन में धीरे-धीरे आने वाला मानसिक परिवर्तन भी था । धीरे-धीरे मानसिक परिपक्वता आती थी और अगला आश्रम आसान बनता जाता था । चुनाव और सोचने के लिए भी पर्याप्त अवकाश प्राप्त हो जाता था । ऐसा भी होता था कि सीधे ब्रह्मचर्य से कुछ उपकारी व्यक्ति वानप्रस्थ हो जाते थे और सन्यास ले लेते थे । तात्पर्य यह कि एक आदर्श मार्ग-दर्शन का रूप हमारे इन वर्णाश्रमों में रखा गया था । आज इस अवस्था में गडबड़ी आ गई है । इस कारण तपे हुए अनुभवी वृद्ध कार्यकर्त्ता समाज को नहीं मिल रहे हैं । उपदेशकों और प्रचारकों में अर्थ मोह या प्रसिद्धि का मोह बना हुआ है ।

आश्रम-धर्म की उपयोगिता और आवश्यकता

आयुष्य का समय विभाजन करने की दृष्टि से आश्रम-धर्म की परम्परा का निर्माण किया गया है । जिन्दगी को चार हिस्सों में बाँटा जा सकता है—बालकपन, जवानी, ढलती आयु और वृद्धावस्था । इन चारों की अपनी-अपनी अलग स्थिति है, उनकी विशेषताओं तथा परिस्थितियों का ध्यान रखकर उपयुक्त कार्यक्रम बने तभी से जीवन का संतुलित विकास हो सकेगा । प्रतिदिन हमें इसी प्रकार का क्रम विभाजन करना पड़ता है । सबेरा होते ही शौच, स्नान, व्यायाम, जलपान का क्रम रहता है । धूप फैलते ही काम पर जुट जाना पड़ता है । मध्यान्ह को भोजन, विश्राम, सायंकाल काम को समेटना, दिन छिपने पर नित्यकर्म, रात को सोना यह एक स्वाभाविक क्रम है । उसे बिगाड़ कर उल्टा-सीधा ढंग अपनाया जाये, प्रातःकाल भोजन, दिन चढ़ते ही सोना, सायंकाल शौच स्नान, रात को काम करना, इस प्रकार का उल्टा ढर्रा बन जाये तो विशेष परिस्थितियों की बात छोड़िये—साधारणतया इस अस्वाभाविक क्रम को अनुपयुक्त ही माना जायेगा और उसका स्वास्थ तथा कार्य की सफलता पर भी बुरा प्रभाव पड़ेगा ।

बालकपन, यौवन, ढलती आयु और वृद्धावस्था को भी एक जीवन दिन मानकर उसका यथोचित क्रम विभाजन ही श्रेयस्कर हो सकता है । न्यूनतम बीस वर्ष की आयु तक स्वास्थ्य और बुद्धि के विकास के लिए—शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य सम्वर्धन के लिए ब्रह्मचर्य, खेलकूद, व्यायाम, अध्ययन एवं भावी जीवन में आने वाली समस्याओं को समझने तथा उन्हें हल करने की विधि का सांगोपांग प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए । यह आयु इसी क्रम में लगनी चाहिए । दस-बारह वर्ष तक की आयु तो माता-पिता के सान्निध्य में ही बितानी चाहिए पर इसके बाद किशोर अवस्था को उच्च चरित्र एवं विवेकशील जीवन कला विशेषज्ञों की देखरेख में अत्यन्त सावधानी के साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनाई हुई क्रम विधि के अनुसार व्यतीत की जानी चाहिए ।

किशोर अवस्था जीवन की सबसे संवेदनशील एवं महत्त्वपूर्ण स्थिति है । मनुष्य का बनना बिगड़ना इसी में होता है । नया खून, नया उत्साह, नयी आशा एवं नया अनुभव पाने के लिए मचलता रहता है । जोश बहुत और होश कम रहने के कारण बच्चे इसी आयु में दिग्भ्रान्त होते और कुमार्गगामी बनते हैं । इसलिए इसे जीवन का सबसे खतरनाक समय माना गया है । निर्माण के लिए उपयुक्त समय भी वही है । महापुरुष बनने के लिए उपयुक्त संस्कार प्रायः इसी आयु में अंकुरित होते हैं, इसलिए किशोर अवस्था का समय सुसंस्कारी सान्निध्य, प्रशिक्षण एवं नियन्त्रण में व्यतीत किया जाना चाहिए । जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था बन गई । वहाँ बच्चे के भविष्य को उज्ज्वल बनाने का सुदृढ़ शिलान्यास हो गया, यही मानना चाहिए । प्राचीन काल जैसी गुरुकुल पद्धति अब नहीं है फिर भी हमें उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए दूसरे उपाय सोचने चाहिए । ब्रह्मचर्य का मतलब केवल कामेन्द्रिय संयम ही नहीं, वरन् उसका वास्तविक तात्पर्य जीवन का सर्वांङ्गीण विकास ब्रह्म का, सद्ज्ञान का सहचर्य, सान्निध्य ही है । ब्रह्मचारी अर्थात् आदर्शवादी परम्पराओं के आचरण का अभ्यास करने वाला बालकपन, जन्म से लेकर बीस पच्चीस वर्ष तक का आयुष्य भावी जीवन को विधिवत् जीने की कला सीखने की इस तैयारी में ही लगाया जाना चाहिए ।

आश्रम-व्यवस्था का क्रम जितना आवश्यक प्राचीन काल में था उतना ही अब भी है । वह नृतत्व-विज्ञान की गहन-गवेषणा के आधार पर विनिर्मित होने के कारण एक शाश्वत् सत्य ही माना जा सकता है । पद्धति चाहे पहले जैसी हो, चाहे आधुनिक स्थिति के अनुरूप, उसमें हेर-फेर किया गया हो पर तथ्य ज्यों के त्यों ही रहेंगे, उन्हें बदला नहीं जा सकता । चढ़ती आयु को शारीरिक और मानसिक विकास के उपयुक्त वातावरण में व्यतीत न किया जायेगा तो व्यक्तित्व सड़ी-गली आदतों के ढाँचे में ढल कर निकृष्ट कोटि का ही बन सकेगा । ऐसे कुसंस्कारी लोग धन या सत्ता प्राप्त कर लेने पर भी अपने तथा समाज के लिए अभिशाप बने रहते हैं ।

युवावस्था जीवन का पौरुष प्रदर्शित करने के लिए है । महत्त्वाकांक्षाओं को सुनियोजित ढंग से कार्यान्वित करते हुए अपनी क्षमताओं का विकास करने एवं समाज की भौतिक समृद्धि बढ़ाने के लिए है । श्रम द्वारा उत्पादन बढ़ाना, अपनी क्षमताओं को कार्यरूप में परिणत करते हुए अपना साहस एवं अनुभव बढ़ाने और अपने समीपवर्ती क्षेत्र में उल्लास उत्पन्न करने का समय यही है । वित्तेषणा, पुत्रेषणा, लोकेषणा की कामनाएँ स्वभावतः मन में हिलोरें लेती रहती हैं, इसलिए उनकी नैतिक ढंग से पूर्त्ति का अवसर भी उसी आयु में मिलता है । धन का उपार्जन, मंगलमय गृहस्थ की रचना तथा पुरुषार्थ द्वारा दूसरों की तुलना में अपने को अधिक प्रतिभावान् एवं सफल सिद्ध करने का अवसर युवावस्था में ही मिलता है । जो कामनाएँ और वासनाएँ विकृत होकर मनुष्य को पतन के मार्ग पर ले दौड़ सकती हैं, उन्हें नियंत्रित कर नैतिक रूप में अपना रास्ता बना सकना गृहस्थ में ही सम्भव है । संसार की भौतिक सम्पदाएँ इसी आयु में बढ़ाई जा सकती हैं । वैज्ञानिक, कलाकार, सैनिक, श्रमिक सभी कोई बीस या पच्चीस से लेकर पचास-पचपन वर्ष की आयु तक महत्त्वपूर्ण कार्य कर लेते हैं । यह तीस वर्ष का मध्यान्ह काल तपते हुए सूर्य की तरह व्यतीत किया जाता है । कर्मठता और पुरुषार्थ इसी आयु में चुनौती देने आते हैं । ब्रह्मचर्य में संग्रहीत ज्ञान-योग को गृहस्थ में प्रवेश करने पर ही कर्मयोग में परिणत करने का अवसर मिलता है ।

इसका अर्थ यह नहीं कि युवावस्था में केवल भौतिक कार्य ही करने चाहिए । आध्यात्मिक या पारमार्थिक कार्यों की ओर ध्यान ही नहीं देना चाहिए । वास्तविकता यह है कि जीवन को आदि से अन्त तक सदुद्देश्यों के लिए ही व्यतीत किया जाना चाहिए । युवावस्था में गृहस्थ रचना से लेकर अर्थ उपार्जन तक जो भी कार्य किये जायें उनके पीछे पारमार्थिक उद्देश्य ही सन्निहित रहना चाहिए । काम का स्वरूप चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक यदि उसे उच्च भावनाओं से, लोकहित की दृष्टि से किया गया है तो वह अपने लिए आत्म-कल्याण का और समाज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए लोकहित साधना का ही सिद्ध होगा । सत्कर्म करने की स्थिति प्रत्येक आयु में—प्रत्येक आश्रम में रहती है । व्यक्तिगत जीवन के भौतिक उत्कर्ष के साथ-साथ आत्म-कल्याण एवं लोकहित के पारमार्थिक कार्य भी चलते रह सकते हैं । संसार के अधिकांश महापुरुषों ने अपने गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए युवावस्था में भी जनहित के महत्त्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन किया है ।

ढलती आयु जिसे वानप्रस्थ कहते हैं, समाज का ऋण चुकाने के लिए है । मानव-जीवन का तनिक भी विकास सामाजिक सहयोग के बिना सम्भव नहीं हो सकता । अन्य जीवन अपने एकाकी बलबूते पर अपने निर्वाह कर लेते हैं, पर मनुष्य प्राणी के लिए यह शक्य नहीं, वह पग-पग पर दूसरों की सहायता पर निर्भर रहता है और जिसे जितना अच्छा सहयोग मिल जाता है, उतना ही वह सुखी एवं समुन्नत बन सकता है । इस तथ्य ने हर मनुष्य को समाज का ऋणी बना रखा है । उस ऋण को चुकाये बिना जो मर जाता है, शास्त्र के अनुसार उसे नरक में जाना पड़ता है । ज्ञान सम्पादन और सुखोपयोग के अवसर ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रमों में मिलते हैं, उन ऋणों से उऋण होने की स्थिति वानप्रस्थ में ही प्राप्त होती है ।

पचास पचपन की आयु तक पहुँचते-पहुँचते आम तौर से अपने बच्चे बड़े हो जाते हैं । गृहस्थ में प्रवेश करके कुछ उपार्जन करने लगते हैं । अपनी कमाई भी बुढ़ापे के लिए कुछ तो संचित रहती ही है । इस सबके द्वारा ऐसा क्रम बनाना पड़ता है कि ढलती आयु का व्यक्ति अपने परिवार की साधारण देखभाल तथा व्यवस्था करते हुए अपने समय का कम से कम आधा भाग परमार्थ में—लोक हित में लगाने लगे । समाज सेवा का—लोक मानस की उत्कर्षता को बनाने और बढ़ाने का उत्तरदायित्व वानप्रस्थों का ही है । वे बिना आर्थिक प्रतिफल चाहे लोकहित के कार्यों में समय दे सकते हैं । गुजारे की व्यवस्था घर पर रहने से उन्हें निर्वाह के लिए सार्वजनिक धन की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती । इन्द्रिय शिथिल होने लगने—रूप यौवन चले जाने से वासनात्मक विकृतियों की सम्भावना भी कम हो जाती है । लोक-सेवा के योग्य अनुभव भी संग्रह हो जाता है और सफेद बाल हो जाने से दूसरों पर इस ढलती उम्र का भी प्रभाव पड़ने लगता है । मृत्यु की समीपता से धर्म में रुचि भी वास्तविक होती है और युवावस्था में अन्य भोगों के भोग लेने से उनकी निरर्थकता भी समझ में आ जाती है । इसलिए जन-कल्याण के लिए निस्वार्थ लोकसेवा का परम पवित्र उत्तरदायित्व वानप्रस्थों के कन्धे पर ही आता है । जो लोग उसकी उपेक्षा करते हैं वे समाज के साथ विश्वासघात करने वाले अथवा कर्त्तव्य की अवहेलना करने वाले 'कार्य-हीन' ही माने जा सकते हैं ।

वानप्रस्थ मानव-जीवन का सबसे महत्वपूर्ण समय है । अपने परिवार का भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रशिक्षण करने के लिए उसे एक प्रकार से अध्यापक का काम करना पड़ता है । घर को गुरुकुल बनाकर उसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए सर्वांगीण विकास की योजना बनाना और उनमें से हर एक को उचित नियन्त्रण में रखना उस कुलपति वानप्रस्थ का ही कर्त्तव्य है । अवकाश अधिक रहने और सम्मानास्पद स्थिति उपलब्ध रहने के कारण गृह-व्यवस्था का संचालन वह अधिक सुविधापूर्वक कर भी सकता है । इसके अतिरिक्त उसे घर से बाहर सार्वजनिक हित के कार्यों में आगे बढ़कर भाग लेना चाहिए । सेवा-कार्यों में सबसे उत्कृष्ट प्रकार का सबसे अधिक आवश्यक और सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि लोगों की प्रवृत्तियों और भावनाओं को कुमार्गगामी बनने से रोकने और सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करने के लिए पूरी शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग किया जाये ।

लोक मानस में सात्विकता, सद्भावना और उत्साह करने वाली प्रवृत्तियों का संचालन वानप्रस्थियों का कार्य है । अवकाश के क्षणों का सदुपयोग उन्हें इसी दिशा में करना चाहिए । युग-निर्माण-योजना के १०८ कार्यक्रम इसी प्रकार के हैं जिन्हें अपनाने के लिए वानप्रस्थ आश्रम के लोगों को आगे बढ़कर आना चाहिए । कई व्यक्ति भजन करके शान्ति प्राप्त करने की बात सोचते हैं । यह बात शरीर से पूर्ण अशक्त हो जाने पर चौथेपन के लिए उपयुक्त हो सकती है, पर जिनने समाज का ऋण नहीं चुकाया है, वानप्रस्थ का कर्त्तव्य पूरा नहीं किया है, वे तब तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एकान्त की बात सोचने लगें तो उन्हें भगोड़े सिपाहियों की तरह कायर एवं शास्त्र मर्यादा को तोड़ने वाला उच्छृंखल ही माना जायेगा । भजन हर किसी को करना चाहिए । हर आश्रम में उसकी आवश्यकता है । ब्रह्मचर्य और गृहस्थ की तरह वानप्रस्थ में भी भजन, स्वाध्याय, आत्म-चिन्तन एवं योग साधन करना चाहिए, पर इसके लिए घर छोड़कर भाग खड़े होने या सामाजिक उत्तरदायित्वों को तिलांजालि देने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है ।

जिस प्रकार बचपन में सफेद डाढ़ी-मूँछ लगाकर बुड्ढा बनने का अभिनय करने वाला उपहासास्पद है, उसी प्रकार आश्रम धर्म को तिलांजलि देकर—बिना ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ की नियत धर्म-मर्यादा पूरी किये अन्धाधुन्ध बाबाजी बन जाने वाला भी उपहासास्पद है । वे अनैतिक वातावरण उत्पन्न करने में ही सहायक होते हैं । आज ५६ लाख बाबाजी इधर-उधर मारे-मारे फिरते और दूषित वातावरण उत्पन्न करते देखे जाते हैं । उनमें से थोड़े से ही ऐसे होंगे जिन्होंने प्रबल वैराग्य से प्रेरित होकर सामयिक विषमताओं से झूझने के लिए बुद्ध, शकंराचार्य, दयानन्द आदि की तरह समय से पूर्व संन्यास लिया हो । अपवाद किन्हीं विशिष्ट महापुरुषों के लिए उपयुक्त हो सकते हैं । साधारणतया तो आश्रम धर्म की मर्यादाओं का पालन करते हुए नियत विधान के अनुसार ही जीवन को सार्थक बनाने वाले क्रम को अपनाते हुए ही आगे बढ़ना चाहिए ।

जीवन के अन्तिम अध्याय में जब मनुष्य अपने शरीर, मन की ब्रह्मचर्य में, परिवार और समाज की गृहस्थ में और धर्म-संस्कृति की वानप्रस्थ में सेवा करले तब उचित है कि सत्तर-अस्सी के लगभग संन्यास की तैयारी करे । 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मानता हुआ, मोह ओर तृष्णा से निवृत्त होकर उच्चतम भावनाओं में निमग्न रहे । अपने सम्पर्क में आने वालों को ज्ञान एवं प्रकाश दे तथा वानप्रस्थों का उसी प्रकार मार्ग—दर्शन करे जैसे वानप्रस्थ, गृहस्थों का मार्ग प्रदर्शन करते हैं । संन्यासी के लिए परिव्रजा उचित है, वह एक स्थान पर न ठहरा रहे वरन् भ्रमण करते रह कर साधना का अन्तिम अध्याय पूर्ण करे ।

चार वर्ण और चार आश्रम किसी भी समाज व्यवस्थित विकास के लिए सर्वोत्तम योजना हो सकती है । भारतीय धर्म में उसकी उपयोगिता के कारण ही उसे आवश्यक धर्म—कर्त्तव्य गिना गया है ।

आश्रम धर्म और सन्तान सीमाबन्ध

परिवार-नियोजन अथवा संतति निरोध आज का एक आवश्यक प्रश्न नहीं महती आवश्यकता है । इस प्रश्न को हल करने और आवश्यकता को पूरी करने के लिये उपाय, प्रयास तथा उपचार चल रहे हैं । किन्तु समस्या हल होती नहीं दीखती और, जनसंख्या वृद्धि से सम्भावित खतरा निश्चित होता चला जा रहा है ।

इस समस्या तथा आवश्यकता पर विश्व के विद्वानों का आज ही ध्यान गया हो अथवा यह खतरे की नई जानकारी हो ऐसा नहीं । आज तो जब जनवृद्वि की भयंकरता सामने आ गई और लोग उसका कष्ट पूरी तरह अनुभव करने लगे हैं, तब चौंके, आँखें खोलीं और विचार, प्रचार व प्रयास शुरू हुआ ।

भारतीय दार्शनिकों, विचारकों, समाज-वेत्ताओं और विद्वानों ने अपनी दूरदृष्टि से इस विभीषिका को अनेक सहस्त्राब्दियों पूर्व देख लिया था और संसार को बचाने के लिये उपाय कर दिया था । ऐसा उपाय जो न तो अवैज्ञानिक था, न अप्राकृतिक, न अनिश्चित, न हानिकर और न दुष्कर, बल्कि जो हर प्रकार से युक्त, उचित साध्य और जीवन की हर दिशा में अतिरिक्त कल्याणकारी था । ऐसा विधान ऐसा उपाय, जिस एक का अवलम्बन कर लेने से एक साथ संतति निरोध, आत्मोद्धार, समाज विकास तथा लोक-परलोक की समस्यायें हल हो सकती थीं ।

रेतस् ही प्रजनन का मूल आधार है । यदि उसका उस दिशा में प्रयोग न हो तो सन्तानोत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता । यदि वीर्य अन्तर्मुखी रखा जाये और उसका उपयोग म किया जाये तो गर्भ-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निरोध के कृत्रिम उपकरणों के प्रयोग की आवश्यकता ही न रहे । आज इस मांगलिक एवं मूल उपाय पर तो ध्यान दिया नहीं जा रहा है, बल्कि अवरोध, निरोध, शल्य, पात एवं औषधियों का सहारा लेकर स्त्री-पुरुषों की दुर्दशा का उपाय अपनाया जा रहा है । ब्रह्मचर्य धारण करने के स्थान पर उसे अथवा उसके प्राकृतिक प्रभाव को व्यर्थ करने की ओर ध्यान दिया जा रहा है । वीर्य जैसा तत्त्व जो कि मनुष्य का जीवन तत्त्व और प्राण है और कृपणता के साथ जिसका व्यय केवल सन्तान प्राप्ति के उद्देश्य के लिये किया जाता था, आज विजातीय तत्त्व की तरह बाहर फेंका और इसलिये व्यर्थ किया जा रहा है कि सन्तान न हो । जब पौध नहीं चाहिये तो बीज वपन क्यों किया जाय ? इस सीधी-सी बात को कोई नहीं समझ पा रहा है । बीज बो कर उसे नष्ट करने में कौन-सी बुद्धिमानी है ? किन्तु क्या कहा जाये इस विषयी वृत्ति और घातक मनोरंजन को जो क्षणिक ही नहीं अकल्याणकारी भी है, जिसकी लिप्सा में इस सत्य को नहीं समझा जा रहा है कि जिस तत्त्व के क्षय में इतना सुख है उसके संचय में कितना आनन्द होगा, जबकि क्षय का सुख मिथ्या और संचय का आनन्द चिरन्तन एवं स्थायी है ।

भारतीय विचारकों की दी हुई जीवन-व्यवस्था आश्रम धर्म पर आधारित थी । ब्रह्मचर्य-आश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ-आश्रम, संन्यास आश्रम । मनुष्य की औसत आयु सौ वर्ष की मान कर इन चारों आश्रमों की अवधि पच्चीस-पच्चीस वर्ष रखी गई थी । परिवार-नियोजन का उद्देश्य सामने रख कर यदि इस आश्रम धर्म-व्यवस्था की विवेचना की जाये और आलोक में देखा जाये तो स्पष्ट पता चल जायेगा कि ऋषियों ने इस जीवन-विधान में निश्चय ही परिवार-नियोजन तथा संतति निरोध का दृष्टिकोण इस उद्देश्य से अवश्य रखा है कि देश की जन-संख्या सीमित रहे, सन्तान स्वस्थ एवं सुयोग्य बने, गृहस्थों का स्वास्थ्य सुरक्षित रहे, जिससे कि समाज एवं राष्ट्र, स्वस्थ, सुखी और सशक्त स्थिति में बना रह कर अजेय रहे ।

ब्रह्मचर्याश्रम में रह कर पच्चीस वर्ष से पहले विवाह करने का कोई प्रश्न ही नहीं था । जहाँ सोलह साल से पूर्व ही विवाह हो जाते हैं और सत्तरह अठारह साल की आयु से बच्चे होने लगते हैं, वहाँ तब पच्चीस वर्ष के बाद विवाह करने पर छब्बीस, सत्ताइस वर्ष की अवस्था से पूर्व सन्तान होने का प्रश्न ही नहीं था । अनुमान लगाया जा सकता है कि इन दस वर्षों के अन्तर में पूरे देश में जनसंख्या वृद्धि में कितना अन्तर हो सकता है । यदि दो वर्ष में एक संतान का अनुपात लगा लिया जाये तब भी प्रति व्यक्ति पाँच बच्चे कम हो जाते हैं । इस प्रकार पूरे राष्ट्र में प्रति वर्ष लाखों करोड़ों का अन्तर पड़ जाता है ।

आगे, जब ब्रह्मचारी गृहस्थ धर्म में आता था, तब वह यों ही नहीं आ जाता था, अपने पूर्व आश्रम में गृहस्थ धर्म की शिक्षा लेकर और संस्कार बना कर आता था, जिससे वह कामुक विषयी बन कर इस आश्रम का उपयोग नहीं करता था, बल्कि धर्मपूर्वक गृहस्थ का कर्त्तव्य-पालन करता था । दाम्पत्य एवं संतानोत्पादन सम्बन्धी नियमों का पालन करता था । उसकी शिक्षा-दीक्षा और संस्कार उसे इसमें पूरी मदद करते थे । साथ ही वह अपने ब्रह्मचर्य के विषय में बड़ा कृपण एवं ममतावान रहता था । इसलिये कि अपने पूर्वाश्रम में ब्रह्मचर्य का सुख देख चुका होता था, आवश्यकता समझ चुका होता था और आत्मोद्धार के अगले दो चरणों में उसकी अनिवार्यता जान चूका होता था । पूर्वकालिक ब्रह्मचर्य का अभ्यास उसे गृहस्थाश्रम में पूरी मदद करता था, क्योंकि ब्रह्मचर्य पालन से ब्रह्मचर्य में और विषय से विषय में ही प्रवृत्ति बढ़ती है—ऐसा नैसर्गिक नियम है ।

इस प्रकार आश्रम धर्म का अनुयायी गृहस्थ जीवन भी अधिकाधिक ब्रह्मचारी ही रहा करता था जिससे परिवार-नियोजन का उद्देश्य आप से आप पूरा होता रहता था । इसके लिए हठात् प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती थी । फिर गृहस्थाश्रम की सफलता, पवित्रता, सम्पन्नता तथा सुख-शान्ति के लिये वर्ष में न जाने कितने यज्ञ-याग, पूजा-अनुष्ठान,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्रत-उपवास, पर्व-उत्सव, पाठ-पारायण आदि का विधान रहता था जिनमें संयम एवं पवित्रता का नियम अनिवार्य था । अनेक बार, तिथि, मास और समय का समागम के सम्बन्ध में निषेध था । सन्तान के लिये दाम्पत्य धर्म का एक शास्त्रीय विधान था, जिसका पालन करना प्रत्येक गृहस्थ का पावन कर्त्तव्य था । इस प्रकार पूरी आयु के चौथाई भाग में भी अधिकांश भाग ऐसा रहता था, जिसमें समय एवं ब्रह्मचर्य की रक्षा रहती थी । शेष बचे हुये समय में कुछ ही संतानों की सम्भावना हो सकती थी ।

इसके अतिरिक्त गृहस्थों पर सन्तान के सम्बन्ध में एक सामाजिक उत्तरदायित्व भी था—कि सन्तान धर्मात्मा, निरोग, सशक्त, सुयोग्य तथा सुशील होने के साथ-साथ दीर्घजीवी भी हो । इसके लिये धर्माचरण का निर्वाह तो किया ही जाता था आयुर्वेद तथा कामशास्त्र के नियमों का भी पालन करना पड़ता था, जिसके लिये यथायोग्य सन्तान पाने के लिये एक सन्तान पाने के लिये एक सन्तान के बाद दूसरी सन्तान के लिये बीच में गर्भ, प्रजनन सौर, दूध, पालन तथा अन्य संस्कारों के लिये कम से कम चार पाँच साल का अन्तर रहना जरूरी था, अन्यथा संतान का निर्बल एवं कुसंस्कारी होना स्वाभाविक था । यह स्थिति समाज में हेयता तथा अपवाद का कारण बनती थी । साथ ही पूर्वकालीन धर्मनिष्ठ, नैतिक तथा शीलवान् व्यक्ति पहली संतान के समझदार होते ही प्रजनन इसलिये भी बन्द कर देते थे कि बच्चे पर अवांछित प्रभाव पड़ सकता है, पारिवारिक मर्यादा तथा शील संकोच के नैतिक गुणों की हानि हो सकती थी ।

नैतिक और शुभ कमाई से पाली गई सन्तान ही सुसंस्कारी हो, सकती है इस शाश्वत् सत्य को प्रत्येक गृहस्थ अच्छी तरह जानता था और और उसका पालन करता था । शुभ तथा ईमानदारी की कमाई इतनी कदापि नहीं हो सकती जिससे कि चार—चार छः—छः संतानों का समुचित पालन पूरी शिक्षा-दीक्षा आदि का प्रबन्ध किया जा सके । एक या दो सन्तानों को ही सुसंस्कृत, सुनिश्चित बनाया जा सकता है । इसलिये गृहस्थ अपने तथा समाज के हित में भी प्रयत्न पूर्वक कम से कम संतान की कामना करते थे । इन सब प्रतिबन्धों, नियमों एवं निर्बन्धों के साथ गृहस्थ जीवन में लोगों के प्रायः एक या दो सन्तानें ही होती थीं, जो कि पूर्ण स्वस्थ, सुयोग्य एवं सामर्थ्यवान् होती थीं, तभी किसी समाज में राम, कृष्ण, भीष्म, भीम, द्रोण, अर्जुन, प्रताप व शिवा जैसे शूरवीर और गौतम कणाद तुलसी एवं विवेकानन्द जैसे विद्वान होते हैं, जिनसे राष्ट्र अभेद्य अजेय, उन्नत तथा जगद्गुरु बनते हैं ।

अब भी कुछ अधिक नहीं बिगड़ा है । यदि संसार कृत्रिम, अप्राकृतिक, नैतिक, अनिश्चित एवं वीभत्स उपायों को छोड़कर भारतीय आश्रम धर्म को अपने जीवन में स्थान दे सके तो न केवल आपसे आप परिवार नियोजन ही हो जाये, बल्कि लोक-परलोक दोनों के लिए सफलता एवं सुख का पथ प्रशस्त हो जाये ।

आश्रम व्यवस्था से दीर्घ-जीवन

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्चशरदः शतात् ।। *(यजु० ३६.२४)*

"वह परमात्मा देवों का हित करने वाला हो, (जो) अनादि और विशुद्ध ज्ञान का उपदेश करता है । हम सौ वर्ष के जीवन काल में उसका दर्शन कर सकें । सौ वर्ष के जीवन में इसी ध्येय के लिए जीवित रहें । सौ वर्ष तक के जीवन में हम इस परमात्मा का श्रवण और मनन करते रहें । सौ वर्ष तक के जीवन काल में हम इस परमात्मा का गुणगान गाते रहें । सौ वर्ष के जीवन में हम कभी भी दीनता वृत्ति प्रकट न करें । सौ वर्षों से यदि अधिक जीवन भी मिले, तब भी हम अपने जीवनकाल में उक्त कार्य करते रहें ।

उक्त वेद मंत्र से ज्ञात होता है कि मनुष्य की आयु १०० वर्ष से कम नहीं वरन् अधिक ही है । इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्ध में भारत के प्राचीन इतिहास का अवलोकन करने पर पता चलता है कि रामायण और महाभारत काल में मनुष्यों की आयु १०० वर्ष से अधिक आयु १०० वर्ष से अधिक होती थी । महाभारत के अधिकतर पात्र १०० वर्ष से अधिक आयु के थे । यहाँ तक कि इच्छामृत्यु के भी उदाहरण मिलते हैं । तात्पर्य यह है कि मनुष्य की आयु १०० वर्ष है । "शतापूर्वे पुरुषाः" यह वेद भगवान् की साक्षी है । उस समय केवल सौ वर्ष की आयु ही नहीं होती थी वरन् जीवन की अन्तिम अवस्था तक शरीर में शक्ति, स्फूर्ति, तेज बने रहते थे ।

हमारी सौ वर्ष की आयु और उसमें भी शक्ति, सामर्थ्य, तेज, ओज आदि होने का एक कारण यह था कि मानव-जीवन को बड़े सुव्यवस्थित एवं मर्यादापूर्ण नियम में बाँधा गया था, जिनको धार्मिक माध्यम से प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक निर्धारित किया गया । इनमें आश्रम व्यवस्था भी एक थी । भारतीय ऋषियों ने दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता पूर्वक आश्रम व्यवस्था बनाई थी । जीवन को चार भागों में विभक्त कर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, एवं संन्यास इन चार आश्रम के विभिन्न धर्म-पालन करते हुए १०० वर्ष जीने का मार्ग प्रशस्त हुआ । इन चारों आश्रमों का यथाविधि पालन किया जाये तो मनुष्य को सौ वर्ष की आयु एवं सुन्दर स्वास्थ्य, शक्ति, सामर्थ्य आदि की प्राप्ति हों ! प्रत्येक आश्रम में २५ वर्ष तक जीवन बिताना आवश्यक बताया गया है । आश्रम-व्यवस्था के अनुसार आचरण करने से जहाँ जीवन में शतायु, शक्ति, बल आदि की वृद्धि होती है, वहाँ मनुष्य जीवन के अन्य अंगों का भी विकास होता है । अस्तु प्रत्येक आश्रम के बारे में आवश्यक जानकारी करना चाहिए ।

ब्रह्मचर्याश्रमः—ब्रह्मचर्याश्रम जीवन के प्रारम्भिक वर्षों तक पालन किया जाता है । इन २५ वर्षों में मनुष्य के लिए ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने का आदेश है । इसके साथ-साथ अपनी विभिन्न शक्तियों को विकसित करने एवं बढ़ाने का भी अवसर यही है । ब्रह्मचर्याश्रम मानव-जीवन की नींव है जिसमें शक्ति संयम योग्यताओं का बढ़ाना, ज्ञान विज्ञान की सततः साधना, तपश्चर्यामय जीवन बिताना, सेवा आदि से मनुष्य जीवन का सर्वांगीण विकास होता है । पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन शतायु होने के लिए अत्यावश्यक बताया गया है । ब्रह्मचर्य ही मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है । कहा भी गया है "ब्रह्मचर्यतपसा देवा मृत्यु मुपाघ्नतः" । ब्रह्मचर्य तप से देवताओं ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की । अतः ऋषियों ने मनुष्य को शतायु होने के लिए सर्वप्रथम २५ साल तक ब्रह्मचर्याश्रम में रहने की आज्ञा दी, जिससे शक्ति संचय, स्वास्थ्य तेज, बल स्फूर्ति आदि की वृद्धि होकर सौ वर्ष तक के सुखी जीवन का निर्माण होता है ।

गृहस्थाश्रमः—मानव-जीवन की दूसरी अवस्था २५ से ५० वर्ष तक गृहस्थाश्रम में प्राप्त शिक्षा, ज्ञान, स्वास्थ्य, अनुभव आदि से अपने गृहस्थ जीवन को सफल बनाया जाता है । गृहस्थाश्रम में आवश्यक नियमों का पलन कर संयमी, सदाचारी नैतिक एवं पवित्र जीवन बिताना आवश्यक है । गृहस्थाश्रम में आवश्यक नियमों का पालन करता हुआ मनुष्य सौ वर्ष तक जीने का अधिकारी होता है । गृहस्थ संचालन के लिये किये जाने वाले परिश्रम, पुरुषार्थ, व्यस्तता, परस्पर सहयोग, परम पिता परमात्मा के इस सृष्टि उद्यान में उसका युवराज बनकर आनन्द भोग करना, आदि मनुष्य जीवन में सरसता, सुन्दर स्वास्थ्य, शक्ति, उत्साह, आत्मविश्वास आदि को बनाये रखते हैं जिससे मनुष्य शतायु को प्राप्त होता है ।

वानप्रस्थाश्रमः—मानव-जीवन की तीसरी अवस्था ५० से ७५ वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम में बिताने की आज्ञा है, जिसमें वह लोक कल्याण, जनहित परोपकार आदि में जीवन बिताये । इस आश्रम में मनुष्य को ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने का भी आदेश है । इस प्रकार परमार्थ साधना में रत, देश और समाज के कल्याण के लिए अथक परिश्रम, आदि मनुष्य जीवन में नवीन उत्साह, स्वास्थ्य, उच्च भावनायें, शक्ति आदि को बनाये रखते हैं । साथ ही ब्रह्मचर्य का पालन भी जीवन-शक्ति को नष्ट होने से बचाकर बढ़ाने में सहायक होता है । वानप्रस्थ आश्रम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में मनुष्य का आत्म-सम्बन्ध विस्तत होकर अखण्ड देश-प्रेम, समाज-सेवा, राष्ट्र-भक्ति आदि से मनुष्य में आत्मबल साहस, सहनशीलता, समानता, उदारता, शक्ति पुरुषार्थ की निर्झरिणी बहती रहती है जो उसकी उम्र को बढ़ाती है । यही कारण था कि महात्मा गाँधी कहते थे "मैं १२५ वर्ष तक जिन्दा रहूँगा ।"

संन्यास आश्रम:-- मनुष्य जीवन में अन्तिम आयु ७५ से १०० तक संयास आश्रम में बिताना चाहिए । इस अवस्था में मनुष्य का आत्म-विस्तार समस्त विश्व ही नहीं चराचर मात्र के लिए हो जाता है । उसका जीवन सेवा, परमार्थ एवं कल्याण का प्रत्यक्ष स्वरूप बन जाता है । संन्यासी अपनी शारीरिक आवश्यकताओं, सुख-दुःखों की परवाह न करते हुए निरन्तर जनहित, जनसेवा में प्रवृत्त हो जाता है । उसके अन्तःकरण में प्राणिमात्र की सेवा के लिए प्रबल भावनाएँ जाग उठती हैं जिनके संयोग से उसकी शान्ति, सामर्थ्य, स्वास्थ्य, प्रतिभा अनेकों गुना बढ़ जाती हैं । प्रकृति भी अपनी मर्यादाओं का व्यतिरेक कर उस सर्वजनहिताय, परमार्थगामी, विश्वबन्धु संन्यासी को अनुकूल परिणाम प्रदान करती है । फलतः उसकी आयु क्षीण नहीं होती और पूर्ण आयु प्राप्त होती है । इस प्रकार वह शतायु को प्राप्त होता है ।

आश्रम व्यवस्था की उक्त भूमिका मनुष्य की आयु को १०० वर्ष का माध्यम मान कर की गई है । इससे अधिक होना भी कोई विशेष बात नही है । कम से कम सौ वर्ष तक जीने का प्रत्येक का अधिकार है । जो इससे कम आयु को प्राप्त होता है, उसका उत्तरदायित्व स्वयं उसी पर ही है, न कि अन्य किसी शक्ति पर । १०० वर्ष तक जीना मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है ।

खेद है कालान्तर में जिस भारत भूमि में शतायु एवं सौ से अधिक आयु प्राप्त की जाती थी उसकी औसत आयु आजकल करीब २७ वर्ष है । भारतीय जाति अल्पायु हो गई है । जिस जाति का शरीर महान् शक्ति एवं सामर्थ्य का केन्द्र, जिसके चेहरे पर अदम्य उत्साह, तेज, वीरता झलकती थी, वह जाति आज निरुत्साह, निर्बल, तेजहीन होती जा रही है । इसका एक कारण आश्रम-व्यवस्था का बिगड़ जाना भी है । आज कम उम्र में ही ब्रह्मचर्य नष्ट होता है, साथ ही प्रकृति विरुद्ध आचरण, असंयम, आहार-विहार आदि अन्य कारण भी हैं । किन्तु इसमें प्रमुख आश्रम-व्यवस्था भी बिगड़ जाती है । यदि हम शतायु होना चाहते हैं, शक्तिशाली, सामर्थ्यवान्, पुरुषार्थी होना चाहते हैं तो जीवन में आश्रम-व्यवस्था को अपनाना होगा । आश्रम-व्यवस्था से शून्य निरुद्देश भार रूप जीवन शीघ्र ही समाप्त हो जाता है, वह अधिक नहीं टिक सकता । अतः जीवन की बारीकियों का सूक्ष्म दृष्टि से अनुशीलन करने वाले तत्त्वदर्शी ऋषि-महर्षियों की बनाई गई आश्रम-व्यवस्था हमारे लिए सुखी जीवन प्रदान करेगी, यह सत्य है, निभ्रान्त है और अनुभव सिद्ध है जिसका बहुत पहले से ही परीक्षण किया जा चुका है । हमें भी दीर्घजीवी बनने के लिए इसी का अवलम्बन करना हितकर सिद्ध होगा ।

चार आश्रम व्यक्तित्व-विकास के चार चरण

मानवी चिन्तन एवं आचरण पर यदि नैतिक एव सामाजिक मर्यादाओं का अंकुश न हो तो पशु और मनुष्य के बीच विशेष अन्तर नहीं रह जायेगा । बिरले होते हैं, जो मानव जीवन की गरिमा समझते हैं और तदनुरूप आचरण करते हैं । जीवन लक्ष्य को प्राप्त करते और अपनी महानता से दूसरों को भी कृतार्थ करते हैं । अन्यथा अधिकांश जन-प्रवाह की दिशा-धारा में बहते हैं । उन्हें अपनी महत्ता का भान नहीं होता, न ही अपने लक्ष्य का बोध रहता है । आत्म-नियंत्रण का अभाव पाया जाता है । ऐसे में यदि नैतिक एवं सामाजिक बन्धन मर्यादाएँ शिथिल हों तो पशु प्रवृत्तियों के उभरने, उच्छृंखलता बढ़ने की खुली छूट मिल जायेगी ।

इच्छाएँ, आकाँक्षाएँ, शरीरगत एवं मनोगत वासनाएँ भी मनुष्य को बेतरह परेशान करती हैं । मनोवैज्ञानकि दृष्टि से उनमें से कुछ ऐसी होती हैं जिनकी परितृप्ति भी आवश्यक है अन्यथा अड़ियल घोड़े की तरह वे प्रगति मार्ग पर अवरोध बनकर खड़ी रहती हैं और मनुष्य को आगे नहीं बढ़ने देती, कुछ विशेष कार्य करने नहीं देतीं । उचित आकांक्षाओं की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूर्त्ति होती चले तथा भटकाव से बचकर अपने लक्ष्य की ओर क्रमशः बढ़ता चले, इसके लिये आत्म-निर्माण एवं आत्म-परिष्कार की महती आवश्यकता पड़ती है । यह प्रयोजन पुरातन काल में जिस माध्यम से सम्पन्न होता था, उसे 'आश्रम' के नाम से जाना जाता है । मनुष्य के निर्माण एवं सर्वांगीण विकास की आश्रम पद्धति एक समग्र और सफल सामाजिक व्यवस्था थी, जिसकी आचार संहिता बनाने वाले ऋषि -मनीषियों को मानव-जीवन के सम्बन्ध में गहन अध्ययन था ।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास चार आश्रमों में विभक्त प्रत्येक आश्रम जीवन की एक अवस्था है जिसमें एक निश्चित अवधि तक रहकर व्यक्ति स्वयं को प्रशिक्षित परिमार्जित करता और इस प्रशिक्षण के आधार पर कार्य करता हुआ वह अपने को दूसरी अवस्था के योग्य बनाता है । आश्रम वस्तुतः व्यक्ति के विकास की चार महत्त्वपूर्ण सीढ़ियाँ हैं । इन पर क्रमशः चढ़ते हुए मनुष्य अपने को सर्व समर्थ बना सकता है ।

आश्रम व्यवस्था पुरुषार्थ सिद्धान्त की चरम अभिव्यक्ति है । मानव-जीवन के सम्पूर्ण दायित्वों को इस सिद्धान्त के माध्यम से व्यक्त किया गया है । भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चार माने गये हैं,—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इन चारों दायित्वों का निर्वाह मनुष्य तभी कर सकता है, जब वह अपना शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास करे, अभीष्ट स्तर की क्षमता सम्पादित करे, व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करे । विभिन्न आश्रमों में रहता हुआ मनुष्य स्वयं में उन सभी गुणों का विकास करते हुए जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अपने को योग्य बनाये । इस व्यवस्था के द्वारा अर्थ एवं काम का उपयोग करते हुए धर्म तथा मोक्ष को भी अन्ततः प्राप्त करता है । अर्थ और काम को धर्म और मोक्ष की प्राप्ति में साधन मानते हुए वह जीवन व्यतीत करता है ।

जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ बाल्यावस्था किशोरावस्था, वृद्धावस्था जिस तरह समग्र जीवन के अविछिन्न अंग हैं, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक आश्रम का एक-दूसरे से घनिष्ट एवं अन्योयाश्रित सम्बन्ध है । बिना एक में प्रविष्ट किये तथा जुड़े कर्त्तव्यों का निर्वाह किये मनुष्य दूसरे, तीसरे तथा चौथे के दायित्वों को पूर्ण नहीं कर सकता । प्रत्येक आश्रम वस्तुतः उत्तरोत्तर अन्य आश्रमों में प्रवेश हेतु एक प्रशिक्षण स्थलभावी जीवन का निर्माण काल है ।

शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से वयस्क होने तक की अवधि ब्रह्मचर्य आश्रम के अन्तर्गत आती है । ब्रह्मचर्य दो शब्दों से बना है 'ब्रह्म' और 'चर्य' । ब्रह्म से तात्पर्य है—महान् और चर्य का अर्थ है—चलना । महानता की ओर चलना, महानता का विकास करना ब्रह्मचर्य का लक्ष्य है । स्थूल अर्थों में ब्रह्मचर्य का अर्थ इन्द्रिय निग्रह भी माना जाता है पर समग्र अर्थों में ब्रह्मचर्य का भाव है—तप के माध्यम से जीवन साधना । अर्थात् तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए, शारीरिक मानसिक संयम बरतते हुए सद्गुणों का धारण एवं विकास ब्रह्मचर्य का लक्ष्य है । प्राचीन काल है गुरुकूलों में बालकों को कठोर अनुशासन में रहना पड़ता था । तप-तितिक्षा से युक्त उनकी दिनचर्या रहती थी । अभ्यास द्वारा वे संस्कार पड़ जाते थे जो भावी जीवन के सुसंचालन के लिए आवश्यक होते थे ।

प्रायः किशोर वय में संवेग प्रबल होते हैं । यह समय संधि काल है जिसमें बाल्यावस्था का अन्त और युवा वय का आरम्भ होता है । शरीर में युवावस्था के चिन्ह भी उभरने लगते हैं । फलतः मन में भी तीव्र उतार-चढ़ाव होते हैं । जोश होता है, पर होश नहीं रहता । भारतीय मनीषी इन मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों से भली-भाँति परिचित थे । ब्रह्मचर्य आश्रम के माध्यम से उन्होंने ऐसी व्यवस्था बनायी ताकि किशोरों का शारीरिक मानसिक एवं भावनात्मक तीनों ही पक्षों का सन्तुलित विकास होता चले । ज्ञान और बल ही नहीं चरित्र और महानता का भी उसे प्रशिक्षण मिलता था । ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्यार्थी यह सीखता था कि भौतिक आवश्यकतायें आध्यात्मिक उद्देश्य की पूर्त्ति में केवल साधन मात्र हैं । वह सादा जीवन उच्च विचार के आदर्श से प्रेरित होता था । वैसा ही बनता एवं ढलता था । तत्पश्चात् वह द्वितीय आश्रम गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी बनता था ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवाह संस्कार सम्पन्न होने के बाद गृहस्थाश्रम का आरम्भ माना जाता है । विवाह धार्मिक तथा सामाजिक कर्त्तव्य पालन के लिये किया जाता था । धर्म, अर्थ एवं काम की उचित रीति से प्राप्ति गृहस्थाश्रम का लक्ष्य माना गया है । वस्तुतः वह आश्रम कर्म का वह स्थल है, जहाँ कि ब्रह्मचर्याश्रम में प्राप्त शिक्षाओं को मूर्त रूप दिया जाता है । प्राचीन काल में ऐसी ही व्यवस्था थी । गृहस्थ धर्म की पूर्त्ति के लिये प्रतिदिन हर गृहस्थ को पंच यज्ञ करना पड़ता था । ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ । ये यज्ञ वस्तुतः महान् दायित्वों के पूरा करने के लिये किये जाते हैं । यज्ञीय प्रेरणाओं से गृहस्थ का जीवन परिचालित होता था ।

मनीषियों ने गृहस्थाश्रम को धुरी माना है, जिस पर सम्पूर्ण आश्रम व्यवस्था का अस्तित्व टिका हुआ है । मनु ने तो यहाँ तक कहा है कि 'जिस तरह वायु का आश्रय लेकर सब जीव-जन्तु जीते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय लेकर सभी आश्रम जीवन प्राप्त करते हैं । जिस प्रकार सभी छोटी और बड़ी नदियाँ अन्त में समुद्र में ही स्थायी रूप से विश्राम पाती हैं, उसी तरह सब आश्रमों के व्यक्ति गृहस्थ के हाथों सुरक्षा एवं स्थायित्व प्राप्त करते हैं, स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था—"गृहस्थ सारे समाज की नींव सदृश्य है, सम्पूर्ण समाज उसी से साधन प्राप्त करता है ।"

भारतीय संस्कृति योग्यता सम्बर्धन, अर्थ-प्राप्ति तथा काम-संतुष्टि को मनुष्य जीवन का लक्ष्य नहीं मानती । इन्हें विकास का साधन मानती है । गृहस्थाश्रम में अर्थ एवं काम की सन्तुष्टि हो जाती है । विभिन्न क्षेत्रों का अनुभव प्राप्त करके तथा कर्म भूमि में ब्रह्मचर्याश्रम में अर्जित किये गये ज्ञान को परिपक्व होने का अवसर मिल जाता है। फलतः भटकाव की गुंजाइश कम रहती है । ऐसे में जबकि शारीरिक एवं मानसिक परिपक्वता अर्जित कर ली गयी है, यह आवश्यक हो जाता है कि अधिक गुरुत्तर उत्तरदायित्वों का निर्वाह किया जाये । वानप्रस्थ आश्रम इसी प्रयोज़न के लिये बनाया गया था कि व्यक्ति अधिक व्यापक क्षेत्र में निकले । अपने ज्ञान अनुभवों एवं क्षमताओं को उच्चस्तरीय प्रयोजनों में नियोजित करते हुये आत्म-विकास एवं आत्म-सन्तुष्टि का दिव्य लाभ लें । पचास से पचहत्तर वर्ष की आयु वानप्रस्थ आश्रम की मानी गयी थी, तब प्रायः अधिकांश व्यक्ति शरीर से समर्थ भी रहते थे । आज जैसी दीन-हीन परिस्थितियाँ नहीं थीं । गृहस्थाश्रम के दायित्वों से मुक्त होकर हर कोई लोक-मंगल के कार्यों के लिये सहर्ष निकल पड़ता था । वह अकर्मव्य जीवन नहीं व्यतीत करता था, बल्कि अधिक तत्परता एवं सजगता से समाज के श्रेष्ठ कार्यों में लग जाता था । निठल्ले बैठे रहने को सामाजिक एवं नैतिक अपराध मानने की परम्परा थी ।

न्यूनतम साधनों में वह गुजारा करता तथा अपने समय एवं क्षमता का अधिकाधिक लाभ समाज को देता था । इस आश्रम में वानप्रस्थी सांसारिक सुखों से धीरे-धीरे विरक्त होने का प्रयास करता । उपासना, साधना, तप-तितिक्षा के माध्यम से वह अपनी प्रवृत्तियों को परिमार्जित करता । ज्ञान आलोक में उसे जो कुछ भी उचित प्रतीत होता उसका लाभ दूसरों को प्राप्त कराता । इस परम्परा का ही परिणाम था कि न केवल भारत बल्कि सारे संसार को भारतीय ज्ञान एवं विज्ञान की विभिन्न धाराओं का अजस्र अनुदान समय-समय पर मिलता रहा । वानप्रस्थों की एक विशाल सेना विश्व वसुधा की सेवा में सतत् संलग्न रहती थी । जो प्रकाश एवं प्रेरणा से समस्त मानव-जाति को परितृप्त करती थी । ऐसे वानप्रस्थों के ढेरों उदाहरण इतिहास के पन्ने उलटने पर मिलते हैं ।

ससीम से असीम में प्रवेश करने का आश्रम था—संन्यास आश्रम, जिसमें व्यक्ति को सीमित व्यक्तियों एवं वर्ग से निकलकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के क्षेत्र में प्रवष्टि होना पड़ता था । संन्यास में नाम परिवर्तन की परम्परा का प्रचलन है, जिसके साथ मूल प्रेरणा यह है कि मनुष्य पुराने सभी ढर्रे को भुला दे । संन्यास का अर्थ था—काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईष्या, अहंता जैसी दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा पा जाना । इसके लिए कुछ स्थूल क्रिया-कलाप भी अपनाने पड़ते थे । वस्त्र रंगना, नाम परिवर्तन,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रवज्या धारण आदि इसी के अन्तर्गत आते थे । प्राचीन काल में आज जैसी विडम्बना की स्थिति नहीं थी । साठ लाख संन्यासधारी साधु बाबा समाज पर भार बने विचरते दिखायी पड़ रहे हैं, जिनका कोई लक्ष्य नहीं है, पर तब के संन्यासी अपने गुरुवर उत्तरदायित्वों को समझते एवं निर्वाह करने की हर सम्भव कोशिश करते थे । इस तरह लोक-मंगल समाज कल्याण के कार्यों में लग करके जीवन का परम लक्ष्य–अमरत्व को प्राप्त करते थे ।

आश्रम परम्परा प्राचीन हो गयी, पर वह जिन सिद्धान्तों को लेकर बनायी गयी थी वे आज भी अत्यन्त उपयोगी और आधुनिक समाज को दिशा देने में समर्थ हैं । व्यक्ति को ढालने एवं उसी क्षमताओं को श्रेष्ठतर प्रयोजनों में नियोजित करने की वह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया थी । आश्रम-व्यवस्था का पुरुषार्थ सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिसके माध्यम से व्यक्तित्व को समग्र रूप से विकसित होने का अवसर मिलता है । विभिन्न आश्रमों के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों लक्ष्यों की प्राप्ति करता तथा धर्म, अर्थ और काम पर नियंत्रण करता है । एक आचरण संहिता के रूप में उसका मार्ग-दर्शन करता है ।

अर्थ से तात्पर्य मात्र धन अथवा सम्पत्ति से नहीं हैं, बल्कि समस्त भौतिक साधनों से है जो जीवन निर्वाह में सहायक हैं, पर अर्थ साध्य नहीं, साधन है । सम्पन्नता अर्जित करने की प्रवृत्ति एक सहज मानवी आकांक्षा का अंग है । इसी कारण धन को भी महत्त्व दिया गया है। काम को भी पुरुषार्थ के रूप में मान्यता मिली है । मनुष्य एवं दोनों ही के लिए इसकी उपयोगिता स्पष्ट है । प्रायः 'काम' से अभिप्रायः यौनतृप्ति समझा जाता है, पर यह काम का एक नगण्य छोटा रूप है । काम से अर्थ विनोद एवं उल्लास की उन समस्त प्रवृत्तियों से है जो मनुष्य को सुख एवं आनन्द की अनुभूति करती है । काम का उच्च स्तरीय स्वरूप यही है जो मानव व्यक्तित्व के विकास में सहायक है ।

मोक्ष जीवन का अन्तिम लक्ष्य है जिसकी पूर्त्ति के साधन अन्य पुरुषार्थ हैं । उनका निर्वाह ठीक ढंग से हो सके तो मनुष्य जीवन मुक्ति–अमरत्त्व का अधिकारी बन जाता है । जीवन मुक्ति से तात्पर्य है–संसार में रहते हुए भी कष्टों से निवृत्ति तथा तत्त्व-ज्ञान की उपलब्धि ।

इस तरह चारों पुरुषार्थों की पूर्ति में चारों आश्रमों की महती भूमिका है । आज की बदली परिस्थितियों में भी आश्रम व्यवस्था के शाश्वत् सिद्धान्त उतने ही उपयोगी हैं जितने कि प्राचीन काल में थे । आवश्यकता मात्र इतनी भर है कि उनका सही स्वरूप और प्रयोजन समझा जाय तथा वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप उन्हें अभिनव स्वरूप दिया जाये ।

आश्रम-व्यवस्था में सामाजिक दृष्टिकोण

सामाजिक व्यवस्थाएँ इसलिये बनाई जाती हैं कि व्यक्ति अपनी प्रगति के साथ-साथ अपने समाज की प्रगति में भी सहायता करता चले । हमारी प्राचीन आश्रम प्रणाली में व्यक्ति और समाज के बीच ऐसा ही सामंजस्य स्थापित किया गया था । आज उस व्यवस्था के इस मूल उद्देश्य का पालन कुछ अंशों में होता है । वर्तमान समय को देखते हुए उस व्यवस्था को ज्यों का त्यों तो लागू नहीं किया जा सकता, किन्तु उसमें निहित उद्देश्यों को ग्रहण किया जा सकता है । ऐसा होने पर मनुष्य की निरन्तर व्यक्तिवादी होने की विडम्बना से परित्राण भी पाया जा सकता है ।

नित्य प्रति के जीवन क्रम को भी पृथक्-पृथक् भागों में विभक्त करने से सुविधा रहती है । वैसे ही प्राचीन समय में मनुष्य अपने जीवन-लक्ष्य को सामने रखकर आयु के चार भाग कर लेते थे, उन्हें आश्रम कहा गया था । वर्तमान समय में इस प्रकार का समय विभाजन नहीं होने से मनुष्य अपने जीवनोद्देश्य से भटक जाता है । आज भी ब्रह्मचर्याश्रम को विद्याध्ययन काल, गृहस्थ आश्रम को उपार्जन एवं परिवार-निर्माण-काल तथा वानप्रस्थ सन्यास को समाज-सेवा-काल के रूप में मान लिया जाय तो व्यक्ति अपने जीवनोद्देश्य को पूरा करता हुआ अपनी तथा समाज की प्रगति कर सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन के पूर्वार्ध ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थाश्रम में व्यक्ति की अपनी प्रगति को प्रमुख तथा समाज-सेवा को गौण स्थान दिया जाता था, किन्तु व्यक्ति के कार्य-कलाप समाज विरोधी नहीं हो सकते थे । जीवन के उत्तरार्ध में समाज-सेवा प्रमुख हो जाती थी । वानप्रस्थ तथा संन्यासाश्रम में व्यक्ति केवल समाज-सेवा को लक्ष्य बनाकर चलता था, उसका अपना हित कुछ भी नहीं रहता था । अपनी सामान्य शारीरिक आवश्यकताओं को पूरी करने तक ही उसका अपना हित सीमित था ।

आजकल यह व्यवस्था नहीं चलती । अधिकांश व्यक्ति सारे जीवन भर अपने व्यक्तिगत सुख सुविधाओं, अपने परिवार के हितों तक ही सीमित रहते हैं । इसका दुष्परिणाम सामाजिक समस्याओं के रूप में उभर कर सामने आता है, जबकि मनुष्य को पग-पग पर समाज का अनुदान मिलता है, तभी वह अपनी व्यक्तिगत एवं पारिवारिक प्रगति कर सकता है । उस अनुदान को चुकाना अनिवार्य होता है ।

बालक उत्पन्न होने पर प्राचीन समय में आठ-दस वर्ष की आयु तक ही घर पर रहता था । उसके पश्चात् उसका उपनयन संस्कार कराके उसे गुरुकुल में विद्याध्ययन के लिये भेजा जाता था । गुरुकुलों में विद्याध्ययन करने इसलिये भेजते थे कि वह अपने लिये तथा समाज के लिये उपयोगी बन सके । बालक की जो वित्त वृत्तियां अभी तक खाने खेलने तक ही सीमित थीं उन्हें अपने तथा समाज के हित में लगाने की ओर मोड़ा जाता था । इसी कारण उपनयन संस्कार को दूसरा जन्म—सामाजिक व्यक्तित्व का जन्म कहा जाता था ।

इन गुरुकुलों में उस विद्याध्ययन के उद्देश्य से रहने वाले छात्र का जीवन त्याग एवं तितीक्षा मय होता था । शिक्षा के साथ-साथ वह गुरु का स्नेह तथा अनुशासन दोनों पाता था । अधिकांश गुरुकुल समाज की निशुल्क सेवा करने वाले आचार्यों द्वारा संचालित होते थे । इस जीवन में छात्र जिसे ब्रह्मचारी कहा जाता था, बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण करता था । ये गुरुकुल समाज तथा गुरु की सेवा साधना के आधार पर चलते थे । इनमें रहने वाले ब्रह्मचारी को इस बात का ध्यान रहता था कि उसे समाज का कितना अनुदान मिला है । यही नहीं गुरुकुल के नियमानुसार वे सदैव या यदा-कदा समाज में भिक्षा माँगने जाते थे ताकि उन्हें ज्ञान रहे कि उन्होंने समाज से प्रत्यक्ष अनुदान मिला है ।

इन गुरुकुलों में सभी ब्रह्मचारियों को एक ही समान वेशभूषा तथा जीवनयापन की न्यूनतम सुविधा दी जाती थी । इन्द्रिय संयम का पाठ पढ़ाकर उन्हें बलवान तथा बुद्धिमान बनाया जाता था । सम्पन्न, तथा गरीब का कोई भेद न होने से सभी पारिवारिक स्थितियों के छात्रों में परस्पर भ्रातृवत स्नेह उत्पन्न हो जाता था । एक ही गुरुकुल में पढ़े हुए छात्र 'गुरु भाई' कहलाते थे । श्रीकृष्ण व सुदामा ऐसे ही गुरु भाई थे । श्रीकृष्ण ने सुदामा की विपन्नता दूर की थी ।

यह परम्परा अब विश्रृखंलित सी हो गई है । पहले की तरह बालक को अनिवार्य रूप से शिक्षित करना तथा उसका शारीरिक मानसिक विकास करना माता-पिता की इच्छा पर निर्भर हो गया है, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज हमारे देश में ५६ करोड़ देशवासियों में से ३८ करोड़ निरक्षर हैं । शिक्षा इतनी महँगी हो गई है कि हर कोई व्यक्ति अपने बालक को पढ़ा नहीं सकता । शिक्षा संस्थान भी अब छात्र का पूरा-पूरा शारीरिक मानसिक विकास कर सकें ऐसे नही रहे ।

इसका प्रमुख कारण यही है कि हमने अपने व्यक्तिगत हितों की ओर अधिक ध्यान दिया । समाज के हितों को भूल गये । वानप्रस्थ की परम्परा नहीं रही । पहले योग्य शिक्षक निस्वार्थ भाव से स्वयं को समाज सेवा के लिये प्रस्तुत करते थे । वैसे शिक्षक वानप्रस्थी ही होते थे । आज अभिभावक का दृष्टिकोण भी अपने बालक को पढ़ाने के पीछे सामान्यः यही रहता है कि पढ़-लिखकर आजीविका कमाने योग्य हो जाय ।

इस संकुचित दृष्टिकोण से अपार हानियाँ उठानी पड़ रही हैं । आज वैसे गुरुकुल तो चलाये नहीं जा सकते, किन्तु यदि वानप्रस्थ परम्परा को पुनजीर्वित किया जाय, सेवा मुक्त शिक्षित तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुभवी व्यक्ति प्राचीन आचार्यों की तरह अपने आप को प्रस्तुत करें तो इस दिशा में क्रान्तिकारी सुधार हो सकते हैं । छात्र अपने इस समाज सेवी निस्पृह शिक्षकों से बहुत कुछ सीख सकता है । उनका दृष्टिकोण समाज परायण हो सकता है ।

अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात् छात्र गुरुकुल छोड़कर अपने परिवार में पहुँचता था तब तक माता पिता, गुरु तथा समाज का काफी ऋण उस पर चढ़ जाता था । यहां आने के पश्चात् उसका विवाह होता था । उसे एक सुशील, कन्या पत्नी के रूप में मिलती है जिससे वह अपने पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्व निभाने में सहायता पाता था ।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने–विवाह करने के दस वर्ष तक ही अपनी आर्थिक स्थिति तथा समाज की स्थिति को देखकर व्यक्ति सन्तानोत्पादन करता था । दस वर्षों में सन्तान उत्पन्न न होती तो ऐसे अधिकांश निःसन्तान दम्पत्ति फिर आगे इस झमेले में नहीं पड़ते थे ।

ये प्रथम दस वर्ष की सन्तानोत्पादन के लिये इसलिये रखे जाते थे ताकि उन्हें अपने वानप्रस्थाश्रम प्रवेश की आयु में वृद्धि न करनी पड़े । गृहस्थाश्रम के इस प्रथम चरण में उत्पन्न सन्तान इस आश्रम की अवधि पूरी होने तक परिवार का भार सम्भालने योग्य हो जाती थी । माता-पिता पर कोई उत्तरदायित्व नहीं रहता था । वे इन्हें सहर्ष समाज सेवा के लिए प्रस्तुत करते थे । अधिकांश अपने माता-पिता के जीवनयापन की सामान्य सुविधाएँ भी जुटाते रहते थे ।

अपंग, अपाहिज, अनाथ लोगों का प्रबन्ध भी समाज के एक उत्तरदायी सदस्य की तरह गृहस्थ करते थे । प्रथम तो ऐसे व्यक्ति होते भी बहुत कम थे । उनमें से भी अधिकांश स्वावलम्बी होते थे या स्वाभिमान के कारण कन्द मूल, फल या पेड़ों के पत्तों पर निर्वाह कर लेते थे । गिने चुने जो लोग समाज का उपकार लेना चाहते थे, उनका भार समाज उठाता था । उन्हें दर-दर भीख नहीं माँगनी पड़ती थी । प्रत्येक गृहस्थ व्यक्ति भले ही वह सम्पन्न होता या विपन्न वह अपने को समाज के प्रतिनिधि मानकर अपाहिज, अनाथों का भार उठाना अपना कर्त्तव्य समझता था तथा समाज सेवा करने वालों–लोक मंगल में लगे सेवाभावियों का भार उठाना अपना पर सौभाग्य मानता था ।

जीवन के उत्तरार्ध को वानप्रस्थ तथा सन्यास दो आश्रमों में विभक्त किया अवश्य गया था, किन्तु जन सामान्य की यह आधी आयु वानप्रस्थ समाज-सेवी के रूप में ही व्यतीत करता था । जो ज्ञान-वृद्ध ब्राह्मण होते थे उनके लिये सन्यास का विधान था ।

गृह त्याग तथा अपनी सहधर्मिणी से विलग रहना वानप्रस्थ में अनिवार्य नहीं था । इस आयु के व्यक्ति का दृष्टिकोण विशुद्ध समाज सेवा का बन जाता था। यही भावना वानप्रस्थ की प्रमुख आधार थी । पत्नी यदि चाहती तो पति के साथ रहकर समाज सेवा करती थी अथवा अपने पुत्रों के पास रहकर ही उस कार्य को सम्पादित करती थी । महिलाओं के मार्ग-दर्शन का क्षेत्र इन्हीं के हाथों में रहता था ।

वानप्रस्थ की यह परम्परा समाज सेवियों की एक सेना तैयार करती थी । इनमें योग्य आचार्य, साहित्यकार, कलाकार तथा समाज को नयी दिशा देने वाले-समाज सेवा करने वाले योग्य अनुभवी व्यक्ति होते थे । समाज की अपनी प्रगति का सूत्र ये स्वयं संचालित करते थे । वर्तमान समय में विश्व विद्यालय, चिकित्सा, समाज कल्याण विभाग, आर्थिक प्रगति, सम्बन्धी जो कार्यक्रम शासन द्वारा संचालित होते हैं वे इन सेवाभावी वानप्रस्थों के द्वारा होते थे ।

वर्तमान समय में अपने जीवन के उत्तरार्ध में भी यह भावना अधिकांश लोगों में नहीं जगती । नौकरी से मुक्त हो जाने पर अधिकांश व्यक्तियों के सामने कोई काम नहीं होता । वे नई नौकरी ढूँढते हैं या कोई व्यवसाय करना चाहते हैं । जिन लोगों की आयु आज प्राचीन वानप्रस्थ की तरह समाज सेवा करने की हो जाती है, तब वे यह तो अनुभव करते है कि उनके लिये अब घर में कोई दायित्व नहीं रहा ।

कई व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो कि जीवन के उत्तरार्ध में भी अपने धन्धे व्यापार में लगे रहते हैं । उनका जीवन एकांगी रहता है । वे परिवार वालों के लिये बूढ़े बैल की तरह हल में जुते ही रहते हैं । समाज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने उन्हें जो कुछ दिया था उस अनुदान का बदला वे चुका नहीं पाते ।

आज इस वानप्रस्थ परम्परा समाज सेवा के अनिवार्य दायित्व को भुला देने के कारण ही हमारा समाज विशृंखलित होता जा रहा है । अनेकों सामाजिक समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं । राजकीय स्तर पर उनके निराकरण के प्रयत्न चल रहे हैं फिर भी उनका पूर्णरूपेण हल नहीं हुआ है । कई कई समस्याएँ तो निरन्तर बढ़ती ही जा रही हैं ।

समाज यदि अपनी व्यवस्था अपनी प्रगति स्वयंमेव करता रहे तो शासन की जो व्यवस्थाएँ हैं उन्हें वह पूरी तरह सम्पन्न कर सके । परिवार का भार लड़के सम्हाल लें तो उसके पश्चात् पिता समाज सेवा का क्षेत्र चुन ले । इसे अनिवार्य दायित्व समझ कर सन्तानोत्पादन काल विवाह के पश्चात आठ, दस वर्ष तक ही सीमित रखें तो समाज की अपनी व्यवस्था समाज के द्वारा हो सकती है ।

प्राचीन आश्रम व्यवस्था में निहित सामाजिक दृष्टिकोण को आज भी अपनाया जा सकता है । समय तथा परिस्थितियों को देखते हुए उसके स्वरूप में थोड़ा परिवर्तन भले ही करना पड़े यह व्यक्ति व समाज की प्रगति का सुदृढ़ सेतु बन सकता है ।

आश्रम-व्यवस्था पर एक सापेक्ष दृष्टि

विचारपूर्वक देखा जाय और मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का गहन अध्ययन किया जाय तो मनुष्य की अवस्था चार भागों में विभाजित होती है—(१) जिज्ञासा और विकास की अवस्था । (२) उद्योग और उपभोग की अवस्था । (३) ज्ञान और अनुभव में सामञ्जस्य काल । (४) आत्म-कल्याण की धारणा । इन्हीं चार बातों को लेकर यह जीवन पूर्ण होता है । इन अवस्थाओं में नियन्त्रण न रखा जाय तो मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति अधोगामी बन सकती है, इस विचार से ही यहाँ उन्हें कर्त्तव्यों की सीमा में बाँधने का प्रयत्न किया गया है । ये विभाग वास्तव में मानव की शक्ति और उसके स्वभाव को ही अनुसरण करके बनाये गये हैं । इस जीवन पद्धति में कहीं कोई विकार नही है । मनुष्य इन चारों अवस्थाओं का रसास्वादन करता हुआ कल्याण की स्थिति प्राप्त कर सकता है । यदि इस तरह से भारतीय जीवन को संस्कारित न किया गया होता तो यहाँ भी अन्य देशों की तरह ही भोगवाद प्रधान रहा होता । जो शुद्धता, पवित्रता, नैतिकता, उत्कृष्टता, आदर्शवादिता, शक्ति और विशेषता यहाँ के जीवन में रही है वह न होती । यहाँ के लोग वह समृद्धि, सुख और आनन्द प्राप्त न कर सके होते जिसके लालच में जीवनमुक्त आत्मायें भी यहाँ लौट-लौटकर आई हैं । इस जीवन पद्धति में कोई त्रुटि नहीं, कोई शिकायत नहीं । सम्पूर्ण व्यवस्थित जीवन का नाम है आश्रम-व्यवस्था । यह जीवन पद्धति की उत्कृष्ट कला का विकास है ।

हिन्दू धर्म में मनुष्य जीवन को लक्ष्य सिद्धि का परम पुरुषार्थ माना गया है । इस क्रम में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आते हैं । इन चारों अवस्थाओं का क्रमशः लाभ प्राप्त करता हुआ मनुष्य शाश्वत्, बन्धन मुक्ति, सिद्धि, स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त कर ले इस हिसाब से जीवन को भी चार भागों में विभक्त किया गया है जो अवस्था और विकास से संगत और क्रमशः है । धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चार उद्देश्यों का विस्तार ही (१) ब्रह्मचर्य (२) गृहस्थ, (३) वानप्रस्थ और (४) सन्यास है । नीचे उस अवस्था और स्थिति पर प्रकाश डालेंगे, जिससे यह पता चलेगा कि भारतीय जीवन पद्धति का विकास कितना बुद्धिमत्ता के साथ हुआ है और आज की अवस्था में उसकी कितनी आवश्यकता है ।

प्रारम्भ काल में बालक की जिज्ञासायें अशान्त होती हैं । वह संसार और यहाँ के अनेक पदार्थों का रहस्य जानने के लिये उत्सुक होता है । साथ ही चूँकि वह प्रकृति के अत्यधिक समीप होता है, अतः उसे भले-बुरे का ज्ञान भी नहीं होता । इन्द्रियाँ भी विकास की ओर उन्मुख होती हैं—इसलिये शक्ति-संचय और संयम की भी यही अवस्था होती है । जिज्ञासाओं की तृप्ति के लिये साधन, अवस्था, स्वाभाविक प्रवृत्तियों को सुनियोजित और नियन्त्रित रखने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिये, शक्तियों के संचय के लिये ब्रह्मचर्य की आवश्यकता होती है । ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल इन्द्रिय संयम ही नहीं वरन् ब्रह्म प्राप्ति के सम्पूर्ण आचरणों का नाम ब्रह्मचर्य है । यह साधनावस्था है इसलिये गम्भीर देखरेख तथा पूर्ण नियन्त्रण की आवश्यकता पड़ती है ।

प्रारम्भिक अवस्था में बालक के विचार, संस्कार और संकल्प बहुत कोमल होते हैं, इसलिये उनके पिछले जीवन के कठिन संस्कारों को भी मोड़ा जाना सम्भव होता है । किन्तु यह संस्कार यदि स्वभाव की गहराई में धँस गये तो उनका उखाड़ कर बाहर निकालना कठिन हो जाता है । बालकों में श्रद्धा की मात्रा इतनी पर्याप्त है कि वह संस्कारों के विकास में गुरुओं के कठोर नियन्त्रण में बने रह सकें और आत्म-सिद्धि की कठोर साधनायें पूर्ण निष्ठा के साथ करते रहें ।

ब्रह्मचर्य का दूसरा उद्देश्य है सांसारिक सुखोपभोग के लिये शक्ति-संचय । ब्रह्मज्ञान हो जाने पर जो विशुद्ध कर्त्तव्य पालन शेष रह जाता है उसे सुविधाजनक स्थिति में चलते रहने देने की दृष्टि से शारीरिक शक्ति अपेक्षित है । जीव की शेष जीवन यात्रा शरीर द्वारा ही पूरी होती है इसलिये उसका सुदृढ़ और मजबूत होना नितान्त आवश्यक है । गुरुकुलों के जीवन में इन्द्रिय असंयम के कोई भी कारण शेष नहीं रहते थे । उन वातावरणों को यज्ञादि से और भी बल प्रदायक बनाया जाता था । फलस्वरूप एक निश्चित समय तक वहाँ रहने से ब्रह्मचारी का मन, बुद्धि, शरीर सब पूर्ण पुष्ट और परिपक्व हो जाता था । ज्ञान की दृष्टि से, शारीरिक दृढ़ता से वह पूर्ण होकर आश्रमों से निकल कर आते थे और एक उत्तरदायी जीवन गृहस्थ जीवन के लिये सारी तैयारियाँ पूर्ण कर लेते थे ।

दूसरा आश्रम गृहस्थ है । वह उद्योग, अर्थोपार्जन और सुखोपभोग का जीवन होता है । सांसारिक सुखों का भी एक निश्चित सीमा में औचित्य है । उनका उपभोग किया जाना भी अधर्म नहीं है । सन्तानोत्पत्ति की दृष्टि से पति-पत्नी का संयोग दोषपूर्ण नहीं है । इससे वंश चलते हैं, समाज राज्य और राष्ट्र का निर्माण होता है । लौकिक जीवन में मनुष्य का सहयोग भी धर्म है । राष्ट्र को सबल और सुशिक्षित, सुदृढ़ और चरित्रवान् नागरिक देने की आध्यात्मि प्रवृत्तियाँ गृहस्थ जीवन में परिपूर्ण होती हैं । ब्रह्मचर्य काल में व्रतधारी को जो शिक्षायें मिली होती हैं व्यवहार में उनका अनुभव गृहस्थ में होता है । प्रेम, दया, करुणा, मैत्री सहानुभूति, संगठन, परोपकार, कर्त्तव्य पालन, त्याग, उदारता, क्षमा, सहिष्णुता कष्ट परायणता आदि की व्यावहारिक रसानुभूति गृहस्थ जीवन में ही पूरी होती है । स्त्री पुरुष मिलकर निर्माण कार्यों में प्रवृत्त होते हैं और राष्ट्र की सर्वांगीण प्रगति में सहयोग करते हैं । गृहस्थ इस बात का प्रतीक है कि मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना जागृत है और कर्त्तव्य-पालन के लिए उसमें समुचित साहस है । अपनी भावनाओं का विकास भी इसी क्षेत्र में रह कर होता है । कष्ट और कठिनाइयों में मनुष्य का आत्म विकसित होता चला जाता है ।

बोधायन धर्म सूत्र में गृहस्थाश्रम को अनेक प्रयोजनों को पूरा करने वाला सर्वोच्च आश्रम माना है । इसमें सुखोपभोग के साथ-साथ धर्म का भी समन्वय होने से महर्षि गौतम ने गृहस्थाश्रम को सब आश्रमों का मूल कहा है । जिन लोगों का यह कथन है कि गृहस्थ जीवन जंजाल है, व्यर्थ है, इसमें रहकर ईश्वर उपासना का लाभ नहीं उठाया जा सकता उन्हें जानना चाहिए कि महर्षि कण्व, जमदग्नि, विश्वामित्र, वशिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, शंख, दक्ष आदि अनेक ऋषि गृहस्थ ही थे और गृहस्थ में रहकर ही उन्होंने उच्च तत्त्वों की शोध की थी । वस्तुतः मनुष्य के विकास में परिवार पहली और सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई है । अनेक कष्ट और कठिनाइयाँ भी गृहस्थ जीवन में हँसी-खुशी के साथ काट ली जाती है । दूसरे तीनों आश्रमों के संचालन की व्यवस्था भी इसी से पूरी होती ।

तैरना सीखने की आवश्यकता जल में ही पूरी होती है । जमीन में लेटकर कोई तैरना नहीं जान सकता । जीवन में परोपकार और धर्मपालन की आवश्यकता भी इसी तरह पारिवारिक जीवन से अलग रह कर नहीं की जा सकती । अर्थ का आचरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी उतना ही आवश्यक है यदि इसका कोई प्रयोग न किया जाय तो यह जो सांसारिक गतिविधियाँ चल रही हैं यह सब बन्द हो जायँ और यह संसार बिलकुल, शुष्क, नीरस और जनहीन हो जाय, तब यह संसार ही जड़वत् दिखाई देने लगे ।

वानप्रस्थः—गृहस्थ में रहते हुये एक अवस्था ऐसी आती है, जब उसके लिये अपनी आवश्यकता घटने लगती है । गृहस्थी के संचालन का उत्तराधिकारी सन्तान ले लेती है । अर्थ और काम्य प्रयोजनों को पूरा कर लेने से इन्द्रियों के विषय भी काफी तृप्त हो चुके होते हैं । शास्त्रों में यह अवस्था ५० के लगभग मानी जाती है, जब लोगों को अपने कन्धों का भार उतार कर परिवार के ज्येष्ठ प्रतिनिधि को सौंप देना चाहिये और लोक हित के कार्यों में अधिक रुचि लेना चाहिये । अधिक आयु के पुरुषों तथा युवकों के विचारों में प्रायः साम्य नहीं होता इसलिये पारिवारिक जीवन को अकारण कलह से बचाने के लिये भी यह आवश्यक है कि उतरती उम्र के व्यक्ति अपना जीवन समाज के लिये समर्पित कर दें । उदर-पोषण के लिये या जब तक उत्तराधिकारी पूर्ण रूप से विकसित न हो जाये और उस व्यक्ति के मार्ग-दर्शन की आवश्यकता बनी रहे, तब तक कोई व्यक्ति पारिवारिक सम्पर्क में बना रह सकता है, पर उसे केवल अपने आपको व्यवस्थापक रह कर ही चलना चाहिये और जीवन का अधिकांश भाग आत्म-चिन्तन तथा लोकोपकारी साधनाओं में खर्च करना चाहिये । अनावश्यक आसक्ति और मोह के कारण प्रायः लोग परिवार को छोड़ना नहीं चाहते, उसी से चिपटे रहना चाहते हैं । उन्हें यह गलतफहमी होती है कि यदि वे नहीं रहेंगे तो शायद बालकों का जीवित रहना कठिन हो जायगा । यह मोह—बुद्धि परिवार में अनेक बखेड़ों का कारण बनती है । गृहस्थी का संचालन सुचारु रूप से चलते रहने देने की दृष्टि से अपना शरीर परिवार से हटा लेना कुछ बुरा नही वरन् यह एक नैतिक धर्म कर्त्तव्य है । नये की स्थापना के लिये पुराने को वहाँ से हट ही जाना चाहिये ।

संन्यासः— परिवार में रहते हुये धर्म अर्थ, काम के त्रिविध प्रयोजन पूर्ण हो जाने के बाद आत्म-कल्याण की स्थिति आती है । मनुष्य शरीर में जीवात्मा का अवतरण बन्धन से मुक्ति या मोक्ष प्राप्ति के लिये होता है । समाज और संसार में रहते हुये मानसिक उलझनें, उत्तेजनायें आदि रहनी स्वाभाविक थीं । अधर्म की पहिचान होते हुये भी कई बार औरों के हित की दृष्टि से उसे करना पड़ जाता है इससे अकारण आत्म-वेदना मिलती है । अतः चौथी अवस्था में प्राणी को संसार के शेष बन्धनों को भी त्यागकर अपने आपको पूर्णतया परमात्मा की इच्छा के सहारे छोड़ देना चाहिये । उस समय मनुष्य का ज्ञान पक जाता है और इन्द्रियाँ अशक्त हो जाती हैं अतः विषयों से भी छुटकारा मिल जाता है तथा अकारण पैदा होने वाली दुर्भावनायें भी सामाजिक सम्पर्क से दूर हो जाने से छूट जाती हैं । न कुछ मोह रह जाता है न आसक्ति । किसी तरह का कोई कर्त्तव्य भी शेष नहीं रह जाता । परमात्मा के चिन्तन में विचरण करता हुआ मनुष्य अन्त में संन्यास की स्थिति में प्राण त्यागकर आनन्द की अन्तिम स्थिति में विलीन हो जाता है ।

यह आश्रमों की परम्परा जब तक हमारे देश में जीवित रही, तब तक यश, श्री और सौभाग्य में यह राष्ट्र सर्व शिरोमणि बना रहा । श्रेय और प्रेय का इतना सुन्दर सामंजस्य किसी अन्य जाति या धर्म में मिलना कठिन है । हमारी कल्पना है कि मनुष्य आनन्द में जन्म लेता है । आनन्द से जीवित रहता और अन्त में आनन्द में ही विलीन हो जाता है । मनुष्य का लक्ष्य भी यही है । इन आवश्यकता की पूर्त्ति आश्रम व्यवस्था में ही सन्निहित है । समाज की सुदृढ़ रचना और मनुष्य के जीवन ध्येय की पूर्त्ति के लिये आश्रम— व्यवस्था का पुनर्जागरण अत्यन्त आवश्यक है ।

ब्रह्मचर्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता

संसार में प्रत्येक व्यक्ति आरोग्य और दीर्घ-जीवन की इच्छा रखता है । चाहे किसी के पास कितना ही सांसारिक वैभव और सुख सामग्रियाँ क्यों न हों पर यदि वह स्वस्थ नही हैं तो उसके लिये वे सब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधन-सामग्री व्यर्थ ही हैं । हम अपने ही युग के राकफेलर जैसे व्यक्तियों को जानते हैं जो संसार के सबसे बड़े धनी कहलाते हुए भी अस्वस्थता के कारण दो रोटी खाने को भी तरसते थे । इसलिये एक विद्वान् के इस कथन को सत्य ही मानना चाहिये कि "धन संसार में बहुत बड़ी चीज नहीं है, स्वास्थ्य का महत्त्व उससे कहीं ज्यादा है ।"

आरोग्य–शास्त्र के आचार्यों ने स्वास्थ्य-साधन की मूल चार बातें बतलाई हैं–आहार, श्रम, विश्राम और संयम । आहार द्वारा प्राणियों की देह का निर्माण और पोषण होता है । अतः उसका उपयुक्त होना सबसे पहली बात है । दूसरा स्थान श्रम का है, क्योंकि उसके बिना न तो आहार प्राप्त होता है और न वह खाने के पश्चात् देह में आत्मसात् हो सकता है । विश्राम भी स्वास्थ्य–रक्षा का आवश्यक अंग है, क्योंकि उसके द्वारा शक्ति-संग्रह किये बिना कोई लगातार श्रम करते रहने में समर्थ नहीं हो सकता । चौथा संयम है, जो अन्य प्राणियों में तो प्राकृतिक रूप से पाया जाता है, पर अपनी बुद्धि द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लेने का अभिमान रखने वाले मनुष्य के लिये जिसके उपदेश की नितांत आवश्यकता है ।

संयम की आवश्यकता यद्यपि आहार, श्रम, विश्राम आदि सभी विषयों में है, क्योंकि इनमें अनियमित रूप से व्यवहार करने का परिणाम हमेशा दुःखदायक ही होता है, पर यहाँ उसका तात्पर्य विशेष रूप से भोगों की सीमा और मर्यादा का पालन करना है । सांसारिक भोगों में एक ऐसी मोहक और आकर्षक शक्ति है कि वे निरन्तर मनुष्य को अपनी ओर खींचते रहते हैं और जितने ही अधिक वे प्राप्त होते जाते हैं, मनुष्य की प्रवृत्ति उनकी तरफ उतनी ही अधिक बढ़ती जाती है ।

इस प्रकार भोग की अधिकता का परिणाम मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, आत्मिक–तीनों प्रकार की शक्तियों का नाश होता है । क्योंकि भोग के परिणामस्वरूप शरीर के सार रूप वीर्य का अपव्यय होता है, जिसका कुप्रभाव समस्त शरीर पर पड़ता है और सब भीतरी तथा बाहरी अंगों की शक्ति घट जाती है । यह दूसरी बात है कि चढ़ती हुई युवावस्था में शारीरिक तत्त्वों की वृद्धि होते रहने के कारण कोई इसे अनुभव न करे, अथवा मदान्ध होकर हठधर्मी से सत्य बात को भी न माने, पर इसमें सन्देह नहीं कि वीर्य का उचित समय से पहले दुरुपयोग होने लगना अथवा गृहस्थ जीवन में भी उसकी अधिकता पतन का कारण बनती है ।

वर्तमान समय में शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार के व्यक्तियों की गति इस सम्बन्ध में विपरीत दिखाई पड़ती है । अशिक्षित और अल्पबुद्धि वाले व्यक्तियों की बात तो छोड़ दीजिये, क्योंकि वे विवेकशक्ति से हीन होते हैं और जैसी लकीर चली आई है, उसी पर चल सकने लायक शक्ति और योग्यता रखते हैं । पर आजकल के शिक्षित भी नई रोशनी से चकाचौंध होकर अपने प्राचीन आदर्श से दूर हटते जाते हैं और पश्चिमी देशों की ऊपरी चमक-दमक पर लट्टू होकर संयम तथा चरित्र की शुद्धता के महत्व को भूलते जाते हैं । वे अब यह कहने लगे हैं कि ब्रह्मचर्य की शिक्षा और आदर्श की बातें केवल कहने-सुनने की हैं, व्यवहार में ऐसे ब्रह्मचर्य का पालन कठिन ही नहीं असम्भव है । खाने-पीने, निंद्रा और मल-मूत्र त्याग की तरह सम्भोग वृत्ति भी स्वाभाविक है । इस पर किसी प्रकार का अंकुश या बन्धन लगाना व्यर्थ है ।

इन्द्रिय-संयम की महिमा

जो नवयुवक विदेशी काम-शास्त्र की पुस्तकें पढ़कर या अनुभवहीन लोगों की दलीलें सुनकर स्वयं भी ब्रह्मचर्य को निरर्थक कहने लगते हैं, वे अपने चारों तरफ निगाह दौड़ाकर अपने साथियों की दशा देखें उनमें से हजारों जवानी में ही शक्तिहीनता का अनुभव करके 'ताकत की दवायें' या टॉनिक आदि ढूँढ़ने लगते हैं, हजारों प्रमेह के शिकार होकर पीले शरीर और निस्तेज चेहरे को लिये फिरते हैं और हजारों ऐसे भी हैं जो सुजाक और गर्मी जैसे भयंकर रोगों के शिकार बनकर अपने जीवन को बर्बाद कर लेते हैं । यह हो सकता है कि इंग्लैण्ड,फ्रांस,जर्मनी जैसे देशों के लोग ठण्डी आब-हवा के कारण तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माँस-मदिरा आदि उत्तेजक आहार की अधिकता से अधिक सम्भोग के दुष्परिणाम को इतना शीघ्र अनुभव न करते हों, पर भारत जैसे गर्म आब–हवा वाले तथा शाकाहारी देश के निवासी यदि उनकी नकल करेंगे तो उन्हें अपनी गलती का प्रतिफल तुरन्त ही सहन करना होगा ।

भारत के प्राचीन मनीषियों ने इस तथ्य को उसी समय भली प्रकार समझ लिया था और इसीलिये बालकों के लिये छोटी आयु से ही किसी सद्गुरु के निकट रहकर युवावस्था तक ब्रह्मचर्य-पालन का विधान बनाया था । उसी युग में वेदों ने स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया था–

''ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत''

अर्थात्–''ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य स्वास्थ्य और शक्ति ही प्राप्त नहीं करता वरन् वह मृत्यु को भी जीत सकता है ।'' इसका यह आशय नहीं कि वह कभी मरेगा ही नहीं । पर वह अकाल मृत्यु को हटाकर दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है और शक्ति, साहस, वीरता का ऐसा उदाहरण उपस्थित कर सकता है जिसे देखकर संसार चकित रह जाये । हनुमान, लक्ष्मण, भीष्म, शंकराचार्य आदि महापुरुष इसके उदाहरण हो चुके हैं । हम भी यदि शास्त्रीय विधान के अनुसार आचरण रखते हुए सच्चे अर्थों में ब्रह्मचर्य का पालन करें तो वर्तमान की अपेक्षा बहुत अधिक महत्त्व के कार्यों का सम्पादन और संचालन करके दिखा सकते हैं ।

वर्तमान समय में भी ब्रह्मचर्य की महत्ता के कुछ उदाहरण मिलते रहते हैं । इस युग के सर्वश्रेष्ठ मनुष्य माने जाने वाले और 'महामानव' की पदवी के सच्चे अधिकारी महात्मा गाँधी ने सपत्नीक होते हुए भी ३६ वर्ष की आयु में पूर्ण ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण कर लिया था और ४० वर्ष से अधिक समय तक उसका दृढ़तापूर्वक पालन किया । इस ब्रह्मचर्य से प्राप्त शक्ति का ही प्रताप था कि वे संसार में शक्तिशाली माने जाने वाले तथा सर्व साधन सम्पन्न अँगरेजी साम्राज्य का आत्मबल से मुकाबला करके भारत को स्वतन्त्र करा सके । इस ब्रह्मचर्य व्रत को उन्होंने किस प्रकार ग्रहण किया और कैसे प्रयत्नपूर्वक निवाहा इस सम्बन्ध में वे स्वयं लिखते हैं–

''खूब चर्चा और दृढ़ विचार करने के बाद १९०६ (३७ वर्ष की आयु) में मैंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया । व्रत लेते हुए मुझे बड़ा कठिन मालूम हुआ । मेरी शक्ति कम थी । विकारों को कैसे दबा सकूँगा ? पत्नी के साथ रहते हुए विकारों से अलिप्त रहना भी अजीब बात मालूम होती थी । फिर भी मैं देख रहा था कि यह मेरा स्पष्ट कर्त्तव्य है । मेरी नीयत साफ थी । यह सोचकर कि ईश्वर शक्ति और सहायता देगा, मैं कूद पड़ा । अब बीस वर्ष बाद उस व्रत को स्मरण करते हुए मुझे सानन्द आश्चर्य होता है । संयम करने का भाव तो सन् १९०१ से ही प्रबल था और उसका पालन भी कर रहा था । परन्तु जो स्वतन्त्रता और आनन्द मैं अब पाने लगा वह मुझे याद नहीं कि पहले मिला हो । ब्रह्मचर्य के सोलहों आने पालन का अर्थ है–ब्रह्मदर्शन । यह ज्ञान मुझे शास्त्रों के द्वारा न हुआ था । यह अर्थ मेरे सामने धीरे–धीरे अनुभव सिद्ध होता गया ।––इसके लिये तन, वचन, काया से समस्त इन्द्रियों का संयम रखना अनिवार्य है । इस ब्रह्मचर्य में त्याग की बड़ी आवश्यकता है । प्रयत्नशील ब्रह्मचारी नित्य अपनी त्रुटियों का दर्शन करेगा तो अपने हृदय के कोने-कोने में छिपे विकारों को पहचान लेगा और उन्हें निकाल बाहर करने का प्रयत्न करेगा ।''

हिन्दू-धर्म की अनुपम निधि

सन्त विनोबा का जीवन भी इस दृष्टि से आदर्श है । वे छोटी अवस्था से ही बाल ब्रह्मचारी रहे और सदा पूर्ण संयम का जीवन बिताकर अपनी शक्ति देश और जनता की सेवा में लगाते रहे हैं । इसी महाव्रत का प्रभाव है कि सत्तर वर्ष की आयु में, जबकि हमारे अधिकांश देशवासी या तो मर जाते हैं या निष्क्रिय होकर बैठ जाते हैं, उन्होंने हजारों मील की पैदल यात्रा की और 'भूदान' जैसे अद्वितीय आंदोलन को सफल बनाकर दिखा दिया । ब्रह्मचर्य की महत्ता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"हिन्दू धर्म ने विशिष्ट आचार के लिये एक ऐसा शब्द बनाया है, जो अन्य दूसरे धर्मों में नहीं दीख पड़ता । वह है–'ब्रह्मचर्य' ब्रह्मचर्याश्रम की व्यवस्था हिन्दू–धर्म की विशेषता है । अँग्रेजी में ब्रह्मचर्य के लिये कोई शब्द नहीं है । लेकिन उस भाषा में शब्द नही है, तो इसका यह मतलब नहीं कि उन लोगों में कोई संयमी हुआ ही नहीं । ईसामसीह स्वयं ब्रह्मचारी थे । वैसे वहाँ भी अच्छे-अच्छे लोग संयमी जीवन बिताते हैं, लेकिन ब्रह्मचर्य-आश्रम की वह कल्पना उन लोगों में नहीं है, जो हिन्दू धर्म में पाई जाती है । ब्रह्मचर्याश्रम का अर्थ यह है कि मनुष्य जीवन को आरम्भ से ही अच्छी खाद मिले । जैसे वृक्ष को जब वह छोटा रहता है, तब खाद की अधिक आवश्यकता होती है, बड़ा हो जाने के बाद खाद देने से जितना लाभ है, उससे अधिक लाभ जब वह छोटा रहता है, तब देने से होता है । यही मनुष्य-जीवन का हाल है । यह खाद अगर अन्त तक मिलता रहे तो अच्छा ही है, लेकिन बराबर नहीं मिले तो कम से कम बचपन में तो वह बहुत आवश्यक है । जैसे हम बच्चों को दूध देते हैं, उन्हें अन्त तक मिलता रहे तो अच्छा ही है, लेकिन बराबर न मिले, तो कम से कम बचपन में तो मिलना ही चाहिये । शरीर की तरह आत्मा और बुद्धि को भी जीवन के आरम्भ में अच्छी खुराक मिलनी चाहिये, इसीलिये ब्रह्मचर्य-आश्रम की योजना की गई है ।

"विषयवासना मत रखो"–यह ब्रह्मचर्य का निगेटिव या अभावात्मक रूप हुआ । सब इन्द्रियों की शक्ति आत्मा की सेवा में खर्च करो–यह उसका 'पोजीटिव' या भावात्मक रूप है । 'ब्रह्म' यानी कोई वृहत् कल्पना । अगर मैं चाहता हूँ कि इस छोटी-सी देह के सहारे दुनिया की सेवा करूँ, उसके ही काम में अपनी सब शक्ति खर्च करूँ, तो यह एक विशाल कल्पना हुई । विशाल कल्पना रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन हो जाता है । ..... मैंने अध्ययन के लिये ब्रह्मचर्य रखा । उसके बाद देश की सेवा करता रहा । वहाँ भी इन्द्रिय-संयम की आवश्यकता थी, लेकिन बचपन में इन्द्रिय-निग्रह का अभ्यास हो चुका था, इसलिये बाद में वह कठिन मालूम नहीं हुआ । मैं नहीं कहता कि ब्रह्मचर्य आसान चीज है । हाँ, विशाल कल्पना मन में रखोगे, तो आसान हो जायेगा । ऊँचा आदर्श सामने रखना और उसके लिये संयमी जीवन का आचरण करना, इसको मैं ब्रह्मचर्य कहता हूँ ।"

ब्रह्मचर्य की विश्वव्यापी महिमा

यद्यपि सृष्टि-कर्म को स्थिर रखने के लिये हमारे पूर्वजों ने गृहस्थ आश्रम और दाम्पत्य जीवन की आवश्यकता भी स्वीकार की है, पर उसमें भी संयम का पालन अनिवार्य माना है । धर्म-कर्त्तव्य के रूप में सन्तानोत्पत्ति और बात है और कामुकता के फेर में पड़कर अन्धाधुन्ध वीर्य-नाश करना बिल्कुल भिन्न है । इस प्रकार के आचरण को संसार के सब विद्वान और विचारकों ने गर्हित तथा मानव-जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करने वाला माना है ।

हिन्दू-धर्म के आदि ग्रन्थ वेद-भगवान् का कथन है–"वीर्य रक्षा करने से अकाल-मृत्यु नहीं होती, जो मनुष्य शरीर में अनुपम वीर्य का संचय करता है वह दीर्घजीवी होता है ।"

आयुर्वेद के आदि ग्रन्थ 'चरक-संहिता' में ब्रह्मचर्य को सांसारिक सुख का साधन ही नहीं मोक्ष-दाता भी बतलाया है–

सतामुपासनं सम्यगसतां परिवर्जनम् ।
ब्रह्मचर्योपवाश्च नियमाश्च पृथग्विधाः ।।

(दू० भा० १४३)

"सज्जनों की सेवा, दुर्जनों का त्याग, ब्रह्मचर्य, उपवास, धर्म शास्त्र के नियमों का ज्ञान और अभ्यास आत्म-कल्याण का मार्ग है ।"

अब से ढाई हजार वर्ष पहले भगवान् बुद्ध ने घोषित किया था–

"भोग और रोग साथी हैं और ब्रह्मयर्च आरोग्य का मूल है ।"

श्री गुरु गोविन्दसिंह ने कहा है–"इन्द्रिय–संयम करो, ब्रह्मचर्य पालो, इससे तुम बलवान् और वीर्यवान् बनोगे ।"

आयुर्वेद के आचार्य वाग्भट्ट का कथन है–"संसार में जितना सुख है वह आयु के अधीन और आयु ब्रह्मचर्य के अधीन है ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"हठयोग प्रदीपिका" में लिखा है– "मनुष्य जब तक ऊर्ध्वरता (ब्रह्मचारी) रहता है, तब तक अकाल–मृत्यु का भय नहीं होता ।"

'छान्दोग्योपनिषद्' में लिखा है– "एक तरफ चारों वेदों का उपदेश और दूसरी तरफ ब्रह्मचर्य- यदि दोनों को तौला जाय तो ब्रह्मचर्य का पलड़ा वेदों के उपदेश के पलड़े के बराबर रहता है।"

'योगतत्वोपनिषद्' में कहा है–"जब तक वीर्य स्थिर रहता है, तब तक मनुष्य को काल का भी भय नहीं रहता ।"

भीष्म पितामह का कथन है–"तीनों लोक के साम्राज्य का त्याग करना, स्वर्ग का अधिकार छोड़ देना, इससे भी उत्तम कोई वस्तु हो तो उसको भी छोड़ देना, परन्तु ब्रह्मचर्य को भंग न करना ।"

भगवान् धन्वन्तरि ने उपदेश दिया था–"जो शांति–कांति, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य और उत्तम सन्तति चाहता हो उसे संसार के सर्वोत्तम धर्म ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये ।"

इस प्रकार वेदों से लेकर मध्य काल तक के समस्त धर्म-ग्रन्थों ने ब्रह्मचर्य से होने वाले अपार लाभों और उसे नष्ट करने के दुष्परिणामों का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है और लोगों को उपदेश दिया है कि यदि वे अपने लौकिक और पारलौकिक जीवन को सार्थक बनाना चाहते हैं तो ब्रह्मचर्य का अवश्य पालन करें । आयुर्वेद शास्त्र के महान् आचार्यों ने भी सब श्रेणियों के मनुष्यों को चेतावनी दी है कि यदि वे अपने स्वास्थ्य और आरोग्य को स्थिर रखते हुए सुखी जीवन व्यतीत करने के इच्छुक हैं तो प्रयत्नपूर्वक वीर्यरक्षा करें । समस्त शास्त्रों के साररूप 'भगवत् गीता' में तो अनुचित विषय-वासना को नाश का मूल कारण बताया है । दूसरे अध्याय में भगवान् कृष्ण कहते हैं–

ध्यायतो विषयानुन्पंसः संगंस्तेपूपजायते ।
सात्संगजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ।।
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः ।
स्मृति-भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धि नाशात्प्रणश्यति ।।

अर्थात्– "जो मनुष्य मन से विषयों का चिन्तन करता रहता है उसकी उनमें आसक्ति हो जाती है । आसक्ति से उन विषयों की पूर्ति की कामना होने लगती है और उस कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध होता है । क्रोध से मूढ़ भाव उत्पन्न होता है, मूढ़ता से स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है । इससे बुद्धि अर्थात् ज्ञान-शक्ति का नाश होता है और बुद्धि-नाश होने से वह व्यक्ति ही नष्ट हो जाता है ।"

पाँचवे अध्याय में इस बात को और भी स्पष्ट करते हुए कहा है–

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनयः एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।।

"यह जो इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप प्रतीत होते हैं, तो भी वास्तव में वे दुःख के ही हेतु है और नाशवान् भी हैं, इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति उनमें आसक्त और लिप्त नहीं होते ।"

आगे चलकर गीताकार ने ब्रह्मचर्य को बहुत बड़ा व्रत और तप बतलाया है–

देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।।

(१७ -१४)

"देवता, द्विज,गुरु, ज्ञानोजनों का सत्कार, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा–यह शारीरिक तप कहा जाता है ।"

हमारे धर्म-शास्त्रों में शरीर को भगवान् का मन्दिर माना गया है, जिसको पवित्र और शुद्ध रखना हमारा परम कर्त्तव्य है । इसका मुख्य साधन ब्रह्मचर्य का पालन ही है ।

आधुनिक विद्वानों द्वारा समर्थन

ब्रह्मचर्य की रक्षा और विकास का नियम ऐसा शाश्वत् है कि प्राचीन ही नहीं अर्वाचीन मनीषियों ने भी उसका पूर्णतः समर्थन किया है और उसके लाभों को बतलाकर ठीक ढंग से पालन करने पर जोर दिया है । आत्मलीन स्वामी रामतीर्थ का उपदेश इस सम्बन्ध में बड़ा प्रभावशाली है–

"जैसे दीपक का तेल बत्ती के द्वारा ऊपर चढ़कर प्रकाश के रूप में परिणित होता है, वैसे ही ब्रह्मचारी के अन्दर का वीर्य सुषुम्ना नाड़ी द्वारा प्राण बनकर ऊपर चढ़ता हुआ ज्ञान-दीप्ति में परिणित हो जाता है । दुनियाँ के विचारों को बदलने वाला समर्थ विद्वान् हर्वर्ट स्पेन्सर और स्वीडनवर्ग अखण्ड

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मचारी थे । दुनिया का सबसे बड़ा तत्त्वज्ञानी 'केण्ट' भी ब्रह्मचर्य के प्रताप से दीर्घायु हुआ था ।"

महायोगी अरविन्द घोष ने कहा है–"रेतस (वीर्य) का जो तत्त्व रति करने के काम में लगता है, जितेन्द्रिय होने से वह तत्त्व प्राण, मन और शरीर की शक्तियों को पोषण देने वाले एक महत्त्व के दूसरे तत्त्व में बदल जाता है । इस तरह आर्यों का रेतस का ओजस में रूपान्तर होने के फलस्वरूप उसकी ऊर्ध्वगति करने का आदर्श सर्वोच्च है ।"

सुप्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक साधु टी० एल० वास्वानी लिखते हैं–"ब्रह्मचर्य का मार्ग स्वर्ग का मार्ग है । स्वर्ग का राज्य ब्रह्मचारियों के लिये है । उसके द्वार पर प्रदीप्त अक्षरों में लिखा है–जो शक्तिहीन हों भीतर न आयें ।"

स्वामी विद्यानन्द का कथन है –"ब्रह्मचर्य से परोपकार की वृत्ति जागृत होती है और परोपकार की वृत्ति के बिना किसी को मोक्ष मिलना सम्भव नहीं है ।"

स्वामी शिवानन्द की सम्मति है–"अगर आप ब्रह्मचर्य पालेंगे तो आप में अतुल बल आयेगा ।"

श्री किशोरलाल मशरूवाला ने लिखा है– "ब्रह्मचर्य का अर्थ है ईश्वर के मार्ग पर चर्या (चलना) । सब शक्तियों का ईश्वर के मार्ग में उपयोग करना ही ब्रह्मचर्य है ।

स्वामी अभयानन्द ने कहा था– "अगर आपको ब्रह्मचर्यरूपी शक्ति प्राप्त हो जाये तो ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो आपके हाथ में नहीं आ सकती ।"

प्रो० कृष्णराम ने कहा है– "अचिन्त्य और अद्भुत पराक्रम करने के लिये, तमाम अनुपम मानसिक तथा शारीरिक शक्तियाँ, प्रशंसनीय सद्गुण और दीर्घायु केवल ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही प्राप्त कर सकते हैं ।"

जैसा विनोबा भावे ने कहा है यद्यपि विदेशों में ब्रह्मचर्य को धार्मिक रूप नहीं दिया गया है तो भी वहाँ संयमी जीवन व्यतीत करने वालों का सर्वथा अभाव नहीं हैं । वहाँ के विद्वानों ने भी शारीरिक दृष्टि से ब्रह्मचर्य के महत्त्व को स्वीकार किया है और उसकी बड़ी प्रशंसा की है । प्रसिद्ध जीवशास्त्री डॉ० क्राउन एम० डी० ने लिखा है–

"ब्रह्मचारी यह नहीं जानता कि व्याधिग्रस्त दिन कैसा होता है । उसकी पाचनशक्ति सदा नियमित रहती है । उसको वृद्धावस्था में भी बाल्यावस्था जैसा ही आनन्द आता है ।"

डॉ० लेटशन एम० डी० ने कहा है–"प्रजोत्पादक तत्त्व वीर्य में जीवनी शक्ति का आश्चर्यकारक समूह रहता है । उसकी रक्षा करते रहने से शरीर क्षीण नहीं होता । जब इस तत्त्व का शरीर में पोषण होता है, तब उसकी जीवनी शक्ति में वृद्धि होकर स्वास्थ्य उन्नत होता है, आँखें तेजस्वी होती हैं, चाल स्थिति स्थापक बनती है, शरीर सदा जवान दिखाई देता है ।"

अमरीका के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० बेनीडिक्ट लुस्टा का कथन है–"जितने अंशों तक जो मनुष्य ब्रह्मचर्य की विशेष रूप से रक्षा करता है उतने अंश तक वह मनुष्य विशेष महत्व का कार्य कर सकता है ।"

प्रो० रौबन्सन ने सम्मति दी है कि– 'ब्रह्मचारी की बुद्धि कुशाग्र और विशद् होती है, उसकी वाणी मोहक होती है, उसकी स्मरणशक्ति तीव्र होती है, उसका स्वभाव आनन्दी और उत्साही होता है ।"

डॉ० गोल एम० डी० का मत है– "ब्रह्मचर्य से आध्यात्मिक शक्ति मिलती है । शरीर में वीर्य के संचय से और व्याप्त हो जाने से दैवी–शक्ति में अद्भुत वृद्धि होती है ।"

ब्रह्मचर्य के विषय में भ्रान्तियाँ : उसकी उपेक्षा

महापुरुषों और विद्वानों के उपर्युक्त उद्गारों को पढ़कर स्वभावतः यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि जब ब्रह्मचर्य की महिमा इतनी बढ़ी–चढ़ी है तो आजकल लोग उसके प्रति इतनी उपेक्षा की भावना क्यों रखते हैं ? युवकों की बात छोड़ दीजिये, आजकल दस-बारह साल के बालकों में दूषित भावनायें देखी जाती हैं । वे गन्दी अश्लील बातें सरेआम करते हैं और उनमें से कितने ही परोक्ष में ऐसी हरकतें भी करते हैं, पर उनके माता-पिता और समाज के अगुआ, कोई भी इस समस्या पर विचार नहीं करते और न उन बालकों को कुटेबों से बचाकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सच्चरित्रता की शिक्षा देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं । अधिकांश माता-पिता तो अपने लड़के को निर्दोष और भोलाभाला समझकर इस बात की आशंका ही नहीं करते कि जल्दी या देर में वह इस तरह की बुरी आदतों का शिकार हो जायेगा । इसलिये वे उसे इस सम्बन्ध में कुछ बतलाना या दुश्चरित्रता की हानियों से सावधान करना अनावश्यक समझते हैं ।

बहुत से अभिभावक ऐसा भी सोचते हैं कि बालकों से इस विषय की चर्चा करना ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा करने से वे समय से पूर्व ही इन बातों को जान जायेंगे और फिर कौतूहलवश लुक-छिपकर विपरीत आचरण करने लगेंगे । परिणाम यह होता है कि वे तो संकोच या असावधानीवश इस बात को टालते रहते हैं और बालक अपने किसी नीच प्रकृति के संगी-साथी या नौकरी आदि से इस प्रकार की वीर्य-हानि करने वाली शिक्षा प्राप्त कर लेता है और शारीरिक पतन के मार्ग पर चलने लगता है । इसलिये आप इस भ्रम को सर्वथा त्याग दीजिये कि कोई अन्य व्यक्ति-शिक्षक, गुरु, उपदेशक आदि आपके बच्चे को इस विषय में उचित मार्ग-दर्शन करा देगा और वह हानिकारक दुष्कर्म से बचा रहेगा ।

प्राचीन काल में इसी दृष्टि से अधिकांश बालक कुछ समझदार होते ही मानसिक शिक्षण में कुशल गुरुओं के पास पढ़ने को भेज दिये जाते थे । वे उनको साधारण पढ़ने-लिखने की शिक्षा के साथ चरित्र सम्बन्धी शिक्षा भी देते थे और इस बात का ध्यान रखते थे कि लड़का वीर्य-रक्षा के नियमों का पालन करते हुए सदाचार के पथ पर चले उसका शारीरिक और मानसिक विकास उचित रूप में हो सके और वह भावी—जीवन में सुखी तथा सफल बन सके । यह प्रणाली जब तक उपर्युक्त रूप में प्रचलित रही, तब तक भारतीय नर-नारी ज्ञान, चरित्र, बुद्धि, पराक्रम, समृद्धि—सभी क्षेत्रों में अग्रगामी रहे । उपर्युक्त समय तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के प्रताप से उनके शरीर और मन में ऐसी सुदृढ़ता और शक्ति भर जाती थी कि वे अपने व्यक्तिगत, सामाजिक, नागरिक कर्त्तव्यों का प्रशंसनीय रूप में पालन कर सकते थे और देश तथा राष्ट्र के सम्मान को ऊँचा रखने में सहायक होते थे ।

वर्तमान शिक्षा-संस्थाओं की दुर्गति

पर इस समय बालकों की शिक्षा-दीक्षा के लिये जिन विदेशी ढंग की शिक्षा-संस्थाओं का विकास हुआ है उनकी दशा बिल्कुल विपरीत है । आरम्भ में चाहे इनसे कुछ उपकार भी हुआ हो और देश को ऊँचा उठाने वाले थोड़े-बहुत व्यक्ति उनमें शिक्षा पाकर निकलें हों, पर इस समय तो उनकी दशा सब तरह से शोचनीय ही दिखाई पड़ती है यद्यपि उनकी संख्या बहुत बढ़ गई है और उनमें विद्यार्थियों की भीड़ भी बहुत अधिक रहने लगी है, पर उनकी उत्कृष्टता का दिन-पर-दिन ह्रास होता जाता है । अब ये स्कूल और कालेज, लड़कों के चरित्र-निर्माण के बजाय चरित्र-हीनता का आधार बनते जाते हैं । लड़कों की उद्दण्डता, शिक्षकों के प्रति उनका असम्मानजनक व्यवहार, पढ़ाई की अपेक्षा फैशन तथा शोंकों में उनकी प्रवृत्ति आदि दोष तो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ ही रहे हैं, वीर्य-रक्षा की भी उनमें बड़ी दुर्गति हो रही है । वहाँ का वायुमण्डल ऐसा दूषित हो गया है कि जो सीधे और सुशील स्वभाव के बालक भी वहाँ जाते हैं वे अन्य लड़कों की संगति में पड़कर, उनका उदाहरण देखकर थोड़े दिन में वैसे ही बन जाते हैं । जो थोड़े से बालक घरेलू परिस्थितियों वश और स्वाभाविक रूप से सदाचारी रहना भी चाहते हैं उनको बड़ी आयु के दुष्ट लड़के बुरी तरह छेड़ते तथा तंग करते हैं जिससे वे पूरी तरह नहीं तो कुछ अंशों में चरित्र से गिर ही जाते हैं ।

इन शिक्षा-संस्थाओं के शिक्षक और मास्टर भी अब बहुत निम्नस्तर के होने लगे हैं । 'शिक्षा वृद्धि' के नाम पर इस समय जो नये स्कूलों की भरमार हो रही है, उसके कारण ज्यादातर अधकचरे युवकों को ही शिक्षा-कार्य के लिये नियुक्त कर दिया जाता है । ये स्वयं ही दो-चार वर्ष पहले इन्हीं शिक्षा-संस्थाओं के विद्यार्थी थे और उनमें वे सब दुर्गुण अथवा त्रुटियाँ मौजूद रहती हैं, जिनकी शिकायत इन स्कूलों के सम्बन्ध में की जाती है । कुछ इने-गिने प्रसिद्ध और पुराने विश्वविद्यालयों और कॉलेजों को छोड़ दिया जाये तो इस समय सामान्य स्कूलों के शिक्षक स्वयं सच्चरित्रता, नैतिकता,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सदाशयता के गुणों से अनजान होते हैं । उनको कभी इन गुणों की शिक्षा प्राप्त करने या अभ्यास करने का अवसर ही नहीं मिला, अतः वे इनके महत्त्व और शिक्षण-विधि को समझ भी कैसे सकते हैं ? इसलिये वे लड़कों के चरित्र और सद्‌गुणों पर न तो ध्यान दे सकते हैं और न उसकी योग्यता रखते हैं । अनेक शिक्षक तो स्वयं चरित्रहीनता के दोषी पाये गये हैं और उनके संसर्ग से लड़कों के बिगड़ जाने की शिकायतें प्राप्त होती रहती हैं ।

यह दशा वास्तव में बड़ी भयजनक है । जब रक्षक ही भक्षक बन जाय तो सुधार और उन्नति की आशा ही कैसे की जा सकती है ? माँ-बाप स्वयं तो प्रायः इन विषयों से अनजान होते हैं और उनको अपने अन्य जीवन-निर्वाह सम्बन्धी कार्यों से इतना अवकाश भी नहीं मिलता जिससे स्वयं बालकों की ठीक-ठीक देख-रेख रखकर उनको सुमार्ग पर चलने की व्यवस्था कर सकें । साथ ही अधिकांश घरों में बालकों के प्रति जिस प्रकार का गलत तरीके का लाड़-प्यार रखा जाता है, उसके कारण वे स्वयं बालकों पर उचित अनुशासन रखने में भी समर्थ नहीं होते । उनको निरुपाय होकर अपने बालकों को इन्हीं स्कूलों के भरोसे छोड़ना पड़ता है ।

घरों की असन्तोषजनक व्यवस्था

इन परिस्थितियों में बालकों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा मिलने और किशोरावस्था में प्रयत्नपूर्वक वीर्य-रक्षा कर सकने की सम्भावना ही कहाँ रहती है ? फिर हमारे घरों का वातावरण भी इसके प्रतिकूल ही होता है । अधिकांश माँ-बाप और अन्य वयस्क लोग छोटे बच्चों को अनजान समझकर उनके सामने या समीप रहते ही दाम्पत्य-जीवन सम्बन्धी वार्त्तालाप या व्यवहार किया करते हैं । गरीब श्रेणी के लोगों के तो घर भी इतने छोटे रहते हैं कि उनमें बालकों के पृथक् रह सकने की गुंजायश ही नहीं रहती । एक दो छोटे कमरों में ही, सबको रहना-सहना और जीवन-यापन के सब काम करने पड़ते हैं ।

इस अवस्था में बालकों का स्वस्थ मनोविकास असम्भव हो जाता है । एक तरफ तो अभिभावकगण संकोच अथवा सामर्थ्य के अभाव से उनको सच्चरित्रता और ब्रह्मचर्य की शिक्षा स्वयं नहीं दे सकते और दूसरे उनको बहुत छोटी आयु से ही काम-विकार सम्बन्धी बातें सुनने और देखने का मौका मिलता रहता है । इससे वे ४–५ वर्ष की छोटी आयु से ही स्त्री-पुरुषों के गुप्त अंगों के विषय में कुछ जान जाते हैं और चर्चा भी करने लगते हैं । देखने में तो यह आता है कि घर के बड़े लोग छोटे बच्चों के मुँह से अश्लील शब्दों को सुनकर हँसते रहते हैं और कितने ही तो उनको छेड़–छाड़कर अपना मनोविनोद करते हैं । जब आगे चल कर इसका परिणाम बुरा निकलता है और लड़का कुमार्गगामी बन जाता है, तब उनको गलती का अनुभव होता है ।

घरों का अन्य रहन-सहन, खान-पान तथा व्यसनों का अभ्यास भी ऐसा होता है, जिसमें रहकर ब्रह्मचर्य की सम्भावना मिट जाती है । भारतीय माँ-बापों में शायद ही एक-दो ऐसे होते हों, जो बालकों के विशेष खान-पान का ध्यान रखते हों । नहीं तो सर्वत्र जैसा मिर्च-मसालेदार, उत्तेजन, गरिष्ठ, अप्राकृतिक भोजन स्वयं किया जाता है, वैसा ही बच्चों के लिये भी दे दिया जाता है । इतना ही क्यों घर का वातावरण से बहुत छोटी अवस्था में ही बालक बीड़ी, सिगरेट, भाँग, शराब आदि जैसे हानिकारक पदार्थों का व्यवहार भी सीख जाते हैं । जब घर के सब लोग इनको काम में लाते हों, तो बालकों पर नियन्त्रण रख सकना कठिन हो जाता है । आजकल ६–७ वर्ष के बालक भी बीड़ी पीते देखे जाते हैं, यह उनके घरों के दूषित वातावरण का ही परिणाम है । इतना ही क्यों जिन घरों में या जातियों में हुक्का, भांग, मदिरा आदि का खुले तौर पर प्रचार है, वे स्वयं ही अपने बालकों को आरम्भिक अवस्था से थोड़ा-थोड़ा करके इनकी आदत डालते जाते हैं, जिससे बड़े होनें पर उनको पूरी तरह से ये व्यसन लग जाते हैं ।

ये सब उत्तेजक और नशे के पदार्थ ब्रह्मचर्य अथवा वीर्य–रक्षा के विरोधी हैं । बड़ी आयु में भी इनके कारण काम–विकार पैदा होता है और दूषित होता है । बालकपन में इनका प्रयोग करने से तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जड़ पर ही कुठाराघात होता है और ऐसे लड़के दस-पन्द्रह वर्ष की आयु में ही किसी न किसी तरह वीर्यपात करने लग जाते हैं । जिस तत्त्व को शरीर का राजा कहा जाता है और बल, ओज, तेज, साहस, उत्साह आदि सब जिससे स्थिर रहते हैं, उसको नष्ट करके ये आगामी जीवन में सुख-शांति और सफलता किस प्रकार पा सकते हैं ? ऐसे लोग बड़े होकर निश्चय ही दुराचारी, दुर्गुणी, शठ, लम्पट बनकर अपना जीवन नष्ट करते हैं और जिस समाज में रहते हैं उसे भी तरह-तरह के कुकर्मों द्वारा नीचे गिराते हैं ।

सिनेमा की सत्यानाशी हवा

ब्रह्मचर्य-नाश की दृष्टि से इस समय जो सबसे बड़ी व्याधि पैदा हो गई है वह सिनेमा की है । यद्यपि इसका विस्तार हुए तीस-पैंतीस वर्ष से अधिक नहीं हुए, पर इसी बीच यह हमारे जीवन पर छा गया है । जीवन के जिस क्षेत्र में देखिये इसका कुप्रभाव दृष्टिगोचर होता है । युवकों के चरित्र तथा स्वास्थ्य को तो यह बुरी तरह चौपट कर रहा है । मनोरंजन के नाम पर स्त्रियों के अर्धनग्न अंगों का प्रदर्शन करके, अश्लीलतापूर्ण गाने और नाच दिखाकर विद्यार्थियों तथा नई आयु के युवक-युवतियों में जिन वासनाओं और कुप्रवृत्तियों को भड़काया जाता है, उससे उनका नैतिक स्तर चरमरा जाता है । इससे उनमें विषय-भोग की इच्छा जागृत हो जाती है और उसकी पूर्ति के लिये वे उन्हीं अनुचित उपायों का अवलम्बन करने लगते हैं जिनकी शिक्षा सिनेमाघरों में मिलती है ।

इस समय तो दशा यहाँ तक बिगड़ गई है कि सामान्य घरों के तीन-चार वर्ष के बच्चे अपनी तोतली वाणी से सिनेमा के 'संगम होगा या नहीं' जैसे मशहूर गन्दे गायनों को अलापते नजर आते हैं और माँ-बाप भी अपनी संतान की 'प्रतिभा' को देखकर बड़े प्रसन्न होते हैं ! स्कूलों के कविता पाठ में ८–१० वर्ष के बालक बड़ी लय के साथ 'मेरा महबूब आया है' जैसे निकृष्ट गीतों को सुनाते हैं और 'मास्टर साहब' भी उनको सुनकर खुश होते रहते हैं । इस दुरावस्था का प्रभाव ब्रह्मचर्य के लिये कैसा घातक होता है, इस सम्बन्ध में एक विद्वान का यह कथन ठीक ही है–

"सबसे बड़ा विष तो सिनेमाघरों में बोया जाता है । यह मनोविनोद नहीं है, चरित्र के पतन तथा ब्रह्मचर्य के नाश का खुला द्वार है । छात्रावस्था में सिनेमा के अनैतिक दृश्यों का बहुत व्यापक और घातक प्रभाव होता है । युवक-युवतियों के मन चंचल हो जाने से वीर्य अपने स्थान से चलित हो जाता है । आजकल के नवयुवकों में से जो ८० प्रतिशत वीर्य-विकार से पीड़ित हैं, उसका एक बड़ा कारण सिनेमा भी है।"

अश्लील साहित्य और चित्र आदि-

हमारे चारित्रिक पतन के कारणों में अश्लील साहित्य का भी हाथ है । इस व्यापक युग में 'साहित्य' भी धन कमाने का साधन मान लिया गया है और नीच प्रवृत्तियों के अनेक लेखक उसकी गरिमा को बिल्कुल भुला बैठे हैं । इस समय लेखकों की एक ऐसी श्रेणी पैदा हो गई है जो यौन-असदाचार तथा कामुकता की बातों का यथातथ्य वर्णन करने में ही अपनी विशेषता समझती है ।

कुछ समय पहले ऐसे अश्लील उपन्यासों और कहानी पत्रिकाओं की बाढ़ आ गई थी और ये गन्दे लेखक एक-दूसरे से आगे बढ़कर अपने 'जौहर' दिखलाने लगे थे । उसी बहाव में एक कहानी-पत्रिका के प्रथमांक में ये शब्द पड़ने में आये थे कि "आप शृगांर, प्रेम, कामोपयोग की बातें पढ़ना चाहते हैं तो हम वह भी आपको पर्याप्त मात्रा में देंगे ।" ऐसे लेखक स्वयं वेश्यागमन आदि दुराचारों में लिप्त होते थे और उन्हीं अनुभवों को कलम द्वारा प्रकट करके अन्य युवक-युवतियों को विपथगामी बनाने का कार्य करते थे । चूँकि इस प्रकार का साहित्य सर्वथा निस्सार होता था, इसलिए कुछ समय बीतने पर उसका प्रभाव बहुत कुछ नष्ट हो गया । तो भी बाजार में ऐसे साहित्य का अभाव नहीं है और नीची श्रेणी के तथा बाजारी पाठक मनोरंजन के लिये उसी को पसन्द करते हैं ।

इस प्रकार की पुस्तकों तथा पत्रिकाओं का प्रभाव नई उम्र के लड़कों और युवकों के लिये बहुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घातक होता है । ऐसे वर्णन प्रायः कामोद्दीपक होते हैं और उनसे सम्भोग की इच्छा उत्पन्न होती है । गन्दा साहित्य अवश्य ही पाठकों के मन में गंदगी पैदा करता है और वे विभिन्न मार्गों से वीर्य-नाश में प्रवृत्त हो जाते हैं । यदि उनको अपने विचारों को व्यावहारिक रूप में परिणित करने की सुविधा नहीं मिलती तो भी वे मानसिक दुराचार में प्रवृत्त होते हैं और इसके परिणामस्वरूप प्रमेह, स्वप्नदोष आदि जैसे वीर्य सम्बन्धी रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं ।

अश्लील चित्रों का प्रचार भी आजकल बढ़ रहा हैं । बहुत बड़े नगरों में तो गुप्त पुस्तक विक्रेता सड़कों पर ही नंगे चित्रों की पुस्तकें बेचने लग जाते हैं । कितने ही नगरों में भले और प्रामाणिक समझे जाने वाले प्रकाशक ऐसी गन्दी तस्वीरों की किताबें गुप्त रूप से छपाते और बेचते पकड़े गये हैं । बहुत से युवक जिन्होंने आरम्भ से ही वीर्य नाश करके अपने को खोखला बना लिया है और वीर्य के निर्बल पड़ जाने से जो अपने दाम्पत्य-सम्बन्ध में भी असमर्थ हो गये हैं, ऐसे कामोपभोग के चित्रों से उत्तेजना प्राप्त करना चाहते हैं । यह नहीं कहा जा सकता कि वे ऐसी योजनाओं में कहाँ तक सफल होते हैं, पर इस भ्रम के कारण ऐसे गन्दे चित्रों की पुस्तकें काफी बिक जाती हैं । यही कारण है कि अनेक बार पकड़ा-धकड़ी होने और दण्ड दिये जाने पर भी ऐसा साहित्य बन्द नहीं हो पाता और उससे अनेक अनुभवहीन व्यक्तियों का जीवन दूषित होता रहता है ।

इस दृष्टि से सिनेमा-पत्रिकाओं और पोस्टरों के अनेक चित्र भी आपत्तिजनक और हानिकारक होते हैं । ये अर्थ पिशाच 'निर्माता' नीति-अनीति का ख्याल छोड़कर केवल इस बात की चेष्टा में लगे रहते हैं कि लोग अधिक से अधिक उनकी फिल्मों की ओर आकर्षित हों और उन्हें भरपूर कमाई करने का मौका मिले, पर इससे जनता के चरित्र की कितनी हानि और समाज के दोष-दुर्गुणों की वृद्धि होती है इसकी चिन्ता वे कभी नहीं करते ।

ब्रह्मचर्य-रक्षा कैसे करें ?

इस प्रकार ब्रह्मचर्य की भावना के घटते जाने और वीर्य-नाश की प्रवृत्ति के जोर पकड़ते जाने के अनेक कारण है, पर सबसे बड़ा कारण समाज की परिस्थिति ही है । मनुष्य चाहे जैसा उच्छृंखल अथवा सदाचार रहित हो उसे समाज का ध्यान रखना ही पड़ता है । यदि समाज यौन-सदाचार को महत्त्व देने वाला हो और चरित्रहीनता को हेय दृष्टि से देखता हो तो बहुत कम व्यक्ति कुमार्ग पर जाने का साहस करेंगे । उस अवस्था में सदाचार-विमुख व्यक्ति सामाजिक अपमान और बहिष्कार से बचने के लिये राजी से नहीं तो लाचारी से ही अनैतिक कार्यो की ओर एकाएक अग्रसर न होंगे । यदि जनता का सदाचारी भाग प्रभावशील हो तो व्यभिचार के इच्छुक भी उस मार्ग पर चलने से रुक सकेंगे । यदि कोई विवेकहीन वैसा कर्म करेगा भी तो वह उसी प्रकार घृणित और नीच समझा जायेगा जिस निगाह से हम वेश्या आदि को देखते हैं । इस तथ्य का विवेचन करते हुए एक विचारक ने लिखा है-

"यह बात समझने की जरूरत है कि समाज का गृहस्थ-जीवन जितना पवित्र होगा, उतनी ही उस समाज में ब्रह्मचारियों की संख्या अधिक मिल सकेगी । जिस देश में बहुसंख्यक लोगों का गृहस्थ-जीवन अपवित्र होगा वहाँ बहुत से शुद्ध ब्रह्मचारी कभी नहीं हो सकते ।"

महात्मा गाँधी ने चार पुत्र हो जाने के पश्चात् बड़ी आयु में ब्रह्मचर्य–व्रत ग्रहण किया था और उसे स्वानुभव तथा अभ्यास के बल से इतनी परिपूर्ण स्थिति तक पहुँचा दिया था कि उनका जीवन करोड़ों के लिये आदर्श बन गया । उन्होंने अपने 'ब्रह्मचर्य के अनुभव' विस्तारपूर्वक लिखे हैं और उन उपायों को भी बतलाया है जिनसे उनको इस कठिन कार्य में सफलता मिल सकी । नीचे उनके लेख का कुछ अंश दिया जाता है-

ब्रह्मचर्य और स्वादेन्द्रिय-

"ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये स्वादेन्द्रिय को वश में करना चाहिये । मैंने खुद अनुभव करके देखा है कि यदि स्वाद को जीत लें तो फिर ब्रह्मचर्य अत्यन्त सुगम हो जाता है । इस कारण मेरे भोजन-प्रयोग केवल अन्नाहार की दृष्टि से नहीं, पर ब्रह्मचर्य की दृष्टि से होने लगे थे । मुझे अनुभव हुआ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि भोजन कम, सादा, बिना मिर्च–मसाले का करना चाहिये । ब्रह्मचारी का सर्वोत्तम भोजन तो पेड़ के पके फल हैं । फलाहार के दिनों में मेरे लिये ब्रह्मचर्य सहज था, पर जब मैं दूधाहार करने लगा तो वह कष्टसाध्य हो गया । पर दूध जैसा शरीर की रगों–नसों को मजबूत बनाने वाला और उतनी ही आसानी से हजम हो जाने वाला खाद्य दूसरा नहीं हैं । इसलिये मैं किसी से उसके त्याग के लिये नहीं कह सकता ।''

ब्रह्मचर्य और उपवास-

''इन्द्रियाँ ऐसी बलवान् हैं कि चारों ओर से, ऊपर-नीचे दशों दिशाओं से जब उन पर घेरा डाला जाता है, तभी कब्जे में रहती हैं । सभी लोग इस बात को जानते हैं कि आहार के बिना वे अपना काम नहीं कर सकतीं । इसलिये इन्द्रिय-दमन हेतु इच्छापूर्वक किये गये उपवासों से ब्रह्मचर्य पालन में बड़ी सहायता मिलती है । कितने ही लोग उपवास करते हुए भी सफल नहीं होते । कारण यह होता है कि वे उपवास से ही सब काम पूरा हो जाने की आशा कर लेते हैं । वे बाहरी तौर पर उपवास करते हैं, पर मन में छप्पन भोगों का ध्यान लगाते रहते हैं । उपवास से वास्तविक लाभ वहीं होता है, जहाँ मन भी देह-दमन में साथ देता है ।''

ब्रह्मचर्य और मनोविकार-

''ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले बहुतेरे इसलिये विफल होते हैं, क्योंकि वे आहार-विहार तथा अवलोकन इत्यादि में 'अब्रह्मचारी' की तरह बर्ताव किया करते हैं । संयमी तथा स्वच्छन्द और भोगी तथा त्यागी जीवन में भेद अवश्य होना चाहिए । साम्य तो सिर्फ ऊपर ही रहता है । भेद स्पष्ट रूप में दिखाई देना चाहिये । आँख से काम तो दोनों तरह के व्यक्ति लेते हैं, परन्तु ब्रह्मचारी देव-दर्शन करता है, भोगी नाटक–सिनेमा में लीन रहता है । कान का उपयोग दोनों करते हैं, परन्तु एक ईश्वर भजन सुनता है और दूसरा विलासमय गीतों के सुनने में आनन्द मानता है । भोजन दोनों करते हैं, परन्तु एक शरीर रूपी तीर्थ-क्षेत्र की रक्षा मात्र के लिये पेट में अन्न डाल लेता है और दूसरा स्वाद के लिये देह में अनेक चीजों को भरकर उसे दुर्गन्धित बनाता है ।''

''ब्रह्मचर्य पालन के लिये- मन, वचन, कर्म से समस्त इन्द्रियों के संमय के लिये पूर्वोक्त त्यागों की आवश्यकता है । जब तक अपने विचारों पर इतना कब्जा न हो जाये कि अपनी इच्छा के बिना एक भी विचार न आने पाये, तब तक पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन की आशा नहीं करनी चाहिये । जितने भी संसारी विचार हैं वे सब एक तरह के विकार हैं । उनको वश में करने का अर्थ है–मन को वश में करना और मन को वश में करना, वायु को भी वश में करने से भी कठिन है । यद्यपि इसमें बड़ी कठिनाइयाँ हैं, पर यह न मान लेना चाहिए कि यह असाध्य है । ब्रह्मचर्य तो परम अर्थ है और परम अर्थ के लिये परम-पुरुषार्थ की आवश्यकता हो तो इसमें कौन आश्चर्य है ।''

ईश्वर परायणता और आस्तिक भाव-

अन्त में सबसे बड़ा उपाय है ईश्वर-परायणता और ईश्वर की कृपा पर अटल विश्वास रखना । यदि हम मन से ईश्वर का चिंतन करें, वाणी से उसकी चर्चा करें, शारीरिक कर्मों में भी यही ईश्वर-सेवा का भाव रखें तो ब्रह्मचर्य-पालन बहुत सरल हो जायेगा । उस स्थिति में काम-विकार की बात सोचने और उसकी चर्चा करने का अवसर नहीं मिलेगा । महात्मा गाँधी भी अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे । उन्होंने लिखा है कि '' जब मैं अफ्रीका से लौटकर पुनः भारत आया तो मैंने देखा कि ब्रह्मचर्य केवल प्रयत्न साध्य नहीं है । जब तक मैं कहता था कि फलाहार से ब्रह्मचर्य का पूर्णतः पालन हो जायेगा, तब तक वस्तुतः मैं एक प्रकार के विदेशी भाव में था । भारत आकर मुझे अनुभव हुआ कि सच्चे आत्मार्थी ब्रह्मचारी का अन्तिम साधन तो राम नाम और राम कृपा ही है ।

भोजन का शुद्ध और सात्विक होना-

शरीर के निर्माण और विकास का मुख्य आधार हमारा आहार होता है । शरीर ही नहीं मन पर भी इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । अशुद्ध अथवा अनीति द्वारा उपार्जित आहार को करता हुआ कोई मनुष्य संयमी रह सके यह सम्भव नहीं । जो लोग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक मसालेदार चटपटा अथवा गरिष्ठ भोजन करते हैं वे प्रायः कब्ज के शिकार हो जाते हैं । कब्ज हो जाने पर मल को बाहर निकालने में अधिक जोर लगाना पड़ता है । लगातार ऐसा करते रहने से इसका कुप्रभाव जननेन्द्रिय और वीर्यवाहिनी नसों पर भी पड़ता है और पेशाब के साथ वीर्य निकलना आरम्भ हो जाता है । इस प्रकार वीर्य नाश होना स्वास्थ्य के लिये असंदिग्ध रूप से हानिकारक होता है ।

आलस्य, प्रमाद, शृंगारप्रियता, कृत्रिम जीवन, दुराचारी लोगों की संगति और उनकी कामुकता तथा वासनापूर्ण बातों में रस लेना, अनियमित दिनचर्या आदि अन्य अनेक बातें भी वीर्य-रक्षा की दृष्टि से आपत्तिजनक है । इनके कारण मनुष्य के मन को कुपथ में जाने का अवसर मिल जाता है और वह क्रमशः दूषित जीवन को अपना लेता है । यही कारण है कि प्राचीन धर्म-शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य-आश्रम के लिये ऐसे कठिन नियम बनाये थे कि वे स्त्रियों के संसर्ग से ही न बचें, वरन् किसी स्त्री के प्रति दूषित विचार भी मन में न लायें । इसमें संदेह नहीं कि जो व्यक्ति स्वस्थ, सदाचारी, पवित्र और सुखी जीवन व्यतीत करके इस मानव-जन्म को सार्थक करना चाहता है, उसे अपना आचार-विचार ऐसा शुद्ध और सात्विक रखना चाहिये कि अनुचित रीति से वीर्य-नाश जैसा प्रसंग उसके सम्मुख कभी उपस्थित ही न हो । ऐसा ही व्यक्ति अपना तथा अपने देश और समाज का उत्थान कर सकता है और किसी उच्च लक्ष्य को पूरा करके लोक और परलोक में सद्गति का अधिकारी बन सकता है ।

उन्नति का मूल मन्त्र-ब्रह्मचर्य

न तपस्तप इत्याहु ब्रह्मचर्य तपोत्तमम् ।
ऊर्ध्वरेता'भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः ।।

अर्थात् जननेन्द्रिय-संयम द्वारा मनुष्य देवताओं के गुण को प्राप्त हो जाता है, उसकी दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का पूर्ण विकास होता है ।

"ब्रह्मचर्य " का अर्थ है-ब्रह्म (अर्थात् परमात्म तत्त्व) में विचरण करना अर्थात् अपने मन संयम, निग्रह, शुद्धाचरण द्वारा उसकी ओर मन, वचन, कर्म द्वारा अग्रसर होना । आज हम जीवन को इस उच्च भूमिका में तो नहीं उठा पाते इसलिए "ब्रह्मचर्य" शब्द का अर्थ है–'वीर्य रक्षा' जननेन्द्रिय का संयम, आत्मिक बल की वृद्धि । वीर्य की रक्षा करते हुए वेदाध्ययन पूर्वक ईश्वर चिन्तन करने का नाम ब्रह्मचर्य है । दूसरे शब्दों में जिसका वीर्य ऊर्ध्वरेता है–वह ब्रह्मचारी है, क्योंकि सब इन्द्रियों से अधिक चंचल जननेन्द्रिय का संयम सबसे अधिक कठिन है । ब्रह्मचर्य वह तप है, जिसके द्वारा ब्रह्म तक पहुँचा जा सकता है । यह एक प्रकार का व्रत है जिसके द्वारा मनुष्य को अपने वीर्य की रक्षा कर उच्च ईश्वरीय जीवन की साधना और तदनुसार वृद्धि का विकास करना पड़ता है । शुद्धआचरण द्वारा वीर्य की मन, वचन, कर्म द्वारा रक्षा करते हुए शास्त्रों में वर्णित सात्विक जीवन व्यतीत करना ब्रह्मचर्य है ।

भगवान् शंकर कहते हैं "ब्रह्मचर्य" अर्थात् वीर्य धारण करना, उसकी रक्षा करना ही उत्कृष्ट तप है । इससे बढ़कर तपश्चर्या तीनों लोकों में दूसरी कोई हो नहीं सकती । अखण्ड वीर्य को धारण करने वाला पुरुष इस लोक में प्रत्यक्ष देवता ही है । ब्रह्मचर्य से बुद्धि प्रखर होती है, इन्द्रियाँ अंतर्मुखी हो जाती है, स्मरण शक्ति तीव्र होती है, मनन शक्ति बढ़ जाती है, चित्त में एकाग्रता आती है, आत्मिक बल बढ़ता है, आत्म-निर्भरता, साहस, निर्भीकता आदि देव-दुर्लभ गुण स्वतः प्रसूत हो जाते हैं । विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य पालन से शरीर, मन और आत्मा दृढ़ होती है । ऋषियों के अनुसार सांसारिक और परमार्थिक उन्नति का मूल ब्रह्मचर्य ही है । ब्रह्मचर्य पालन से सुख, आरोग्य और तेज बढ़ता है, बल और वीर्य में वृद्धि होती है, स्वास्थ्य और दीर्घायु मिलती है, हमारा सुख, तेज, विद्या, बल, सामर्थ्य सब ब्रह्मचर्य पर ही आश्रित है ।

शास्त्र कहता है–"जिस प्रकार समुद्र को पार करने का नौका उत्तम उपाय है, उसी प्रकार इस संसार से पार होने का उत्कृष्ट साधन ब्रह्मचर्य है । जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य रूपी तपस्या करते हैं और उत्तम विद्या एवं ज्ञान से अपने मन को पवित्र बना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेते हैं, वह संसार के समस्त दुःखों, कठिनाइयों को पार कर जाते हैं । महान् परिश्रम पूर्वक वीर्य का साधन करने वाले ब्रह्मचारी के लिए इस पृथ्वी पर भला किस कार्य में सफलता नहीं मिलती ? ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य मेरे (ईश्वर के) तुल्य हो जाता है । 'ब्रह्मचर्य परंतपः' अर्थात् ब्रह्मचर्य ही सबसे श्रेष्ठ तपश्चर्या है । एक ओर चारों वेदों का फल और दूसरी ओर ब्रह्मचर्य का फल विशेष है ।''

स्वामी सत्यदेव जी ने लिखा है—'वीर्य' शब्द में जादू भरा है । इसके उच्चारण करने से श्रेष्ठ और सात्विक भावों का संचार होने लगता है । ईश्वर वीर्यवान् है । रामचन्द्रजी बड़े यशस्वी वीर्यवान् राजा थे, भीष्म ने आयु भर वीर्य का संचय कर ब्रह्मचर्य धारण किया । इसी के प्रताप से भीष्म में इच्छा मृत्यु की शक्ति थी । वीर्य रक्षा ही संजीवनी है । शिवजी और शुक्राचार्य के ज्वलंत उदाहरण हमें उपलब्ध हैं । श्री हनुमान जैसे ब्रह्मचर्य का बल, स्फूर्ति और पुरुषार्थ आज भी विस्मय का प्रश्न बना हुआ है । संसार में वीर्यवती जाति ही अपना साम्राज्य स्थापित कर सकी है ।

संसार में जो कुछ भी निरोग, सुन्दर, स्वरूपवान, कांतिमय, मनोहर है, जो कुछ वीरता, ओज, पराक्रम, पौरुष, तेज, विशेषणों से प्रकट होता है तथा धैर्य, निर्भीकता, बुद्धिमत्ता, सौम्यता, मनुष्यत्व आदि गुणों से जो विचार उत्पन्न होते हैं, वे सब वीर्य शब्द के अन्तर्गत हैं । जैसे—सूर्य संसार को प्रकाश देता है, वैसे ही वीर्य मनुष्य, पशु-पक्षी और वृक्षों में अपना प्रभाव दिखाता है । जिस प्रकार सूर्य रश्मियों से रंग-बिरंगे फूल विकसित होकर प्रकृति का सौन्दर्य बढ़ाते हैं, इसी प्रकार वह वीर्य भी अपने भिन्न-भिन्न स्वरूपों में अपनी प्रभा की छटा दिखाता है ।

संसार वीर्यवान के लिए है । वीर्यवती जातियों ने संसार में राज्य किया और वीर्यहीन होने पर उनका नामोनिशान मिट गया । जिन मुसलमान वीरों ने अपनी चमकती हुई तलवार से योरोप, एशिया में बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित किये थे, वे व्यभिचार आदि दोषों में फँसकर अपना सर्वस्व खो बैठे, जिन महाराष्ट्र शूरवीरों ने मुसलमानी राज्य को छिन्न—भिन्न कर भारत में हिन्दू राज्य स्थापित किया था, वे ही विषय-भोग, परस्पर की फूट तथा कलह के कारण अपनी सब आशाओं पर पानी फेर बैठे । योरोप की बड़ी-बड़ी जातियों का इतिहास भी इसी वीर्य की महिमा को बतलाता है । योरोप की जिस स्पेन जाति ने नई दुनियाँ में अपनी विजय पताका उड़ाई थी, वहीं स्पेन समृद्धिशाली होने पर विषय-भोग का शिकार बन गया और अपने उपनिवेशों को वीर्य हीनता के कारण खो बैठा ।

नित्य प्रति के जीवन में ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य धारण का प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जाता है । वीर्य हीन डरपोक, कायर, दीन—हीन, रोगी और दुर्बल होता है । जिस व्यक्ति के शरीर में वीर्य नहीं है, वह जीवित नहीं रह सकता, क्योंकि वीर्य की एक बूँद नष्ट करना मृत्यु का एक बूँद धारण करना जीवन है । वीर्यवान पुरुषार्थ होता है । साहस और हिम्मत से बोल सकता है, कठिनाई का मुकाबला कर सकता है, वह उत्साही, सजीव, शक्तिशाली और दृढ़ निश्चयी होता है । उसे रोग नहीं सताते, वासनाएँ चंचल नहीं बनातीं, दुर्बलताएँ विवश नहीं करतीं । वह प्रभावशाली व्यक्तित्व प्राप्त करता है और दया, क्षमा, शांति परोपकार, भक्ति, प्रेम, वीरता, स्वतंत्रता, सत्य द्वारा पुण्यात्मा बनता है । धन्य है ऐसा ब्रह्मचारी ।

वीर्य का प्रचण्ड प्रताप-

मनुष्य के रक्त में जो जीवाणु हैं, उनका प्रमुख कारण वीर्य नामक तत्त्व है । रक्त में जो लाली है, जो चमक और आभा है, त्वचा में जो दमक है उसका प्रधान कारण वीर्य तत्त्व ही है । वैद्यक शास्त्र में वीर्य को मनुष्य का सारतत्व माना है । हमारे भोजन से रक्त और रक्त से एक नियत मात्रा में वीर्य की उत्पत्ति होती है । आयुर्वेद का मत है—भोजन के पचने पर रस, रस से रक्त, रक्त से माँस, माँस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य उत्पन्न होता है । रस से लेकर मज्जा तक प्रत्येक धातु पाँच रात-दिन और डेढ़ घड़ी तक अपनी अवस्था में रहती है, तत्पश्चात् तीस दिन-रात और नौ घड़ी में रस से वीर्य बनता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधारणतः चालीस सेर खुराक से एक सेर रक्त बनता है और एक सेर खून से दो तोला वीर्य बनता है । एक मनुष्य मास में एक मन से अधिक भोजन नहीं खा सकता । इस प्रकार दो तोला वीर्य एक मास की कमाई है, जो मूर्ख और नासमझ लोग एक ही बार में नष्ट कर डालते हैं ।

कुछ व्यक्तियों के अनुसार ४० ग्राम आहार से एक बूँद रक्त और ४० बूँद रक्त से १ बूँद वीर्य तैयार होता है । रासायनिक रूप से वीर्य में खट तथा फास्फोरस की मात्रा अधिक होती है और ये दोनों जीवन-तत्त्व शारीरिक पोषण के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं । प्रारम्भिक १५ वर्ष तक प्रकृति अपने नियंत्रण से वीर्य एकत्रित करती है । किशोरावस्था तक पहुँचते-पहुँचते वीर्य पकने लगता है और पुरुष में बाह्य तथा आन्तरिक परिवर्तन प्रारम्भ हो जाते हैं । अण्डकोषों से बहि स्राव भी प्रारम्भ हो जाता है । अण्डकोषों के अन्तःस्राव से पुरुष में पुरुषत्व प्रकट होता है । ब्रह्मचर्य का अभिप्राय, शरीर क्रिया विज्ञान की दृष्टि से इन जनन ग्रन्थियों को स्वस्थ रखना है । जनन ग्रन्थियों में जीवन बढ़ता रहता है । इसके संयम से आयु और स्वास्थ्य दोनों को लाभ होता है । यदि इन ग्रन्थियों का अन्तःस्राव होता रहे और शरी में खपता रहे तो शरीर के अंगों का विकास होता है ।

वीर्य को नष्ट करने वाला नरकगामी होता है, जीवन भर रोगी, अभाग्यशाली और दुःखी रहता है । वीर्य अत्यन्त अनमोल वस्तु है । इसी के संचय से मनुष्य देवता बनता है । वीर्य के अभाव से मनुष्य की प्रत्येक प्रकार की उन्नति रुक जाती है । वीर्य चारों पुरुषार्थों का मूल है, मुक्ति देने वाला है । प्रकृति चाहती है कि वीर्य के द्वारा मनुष्य को दृढ, मजबूत और पुरुषार्थ बनावे, मेधाशक्ति को अभिवृद्धि करे, दीर्घ जीवन, उत्साह, स्वास्थ्य प्रदान करे, आत्मा को बलवान बनावे । २५ वर्ष की आयु तक वीर्य कच्चा रहता है, किन्तु इसके अनन्तर ज्यों-ज्यों वीर्य पकने लगता है, मनुष्य अपने आपको जीवन शक्ति से पूर्ण समझता है । जो व्यक्ति मन, वचन, काया से दृढ़तापूर्वक ब्रह्मचर्य पालन करता है, उसी का वीर्य परिपक्व होता है । अंग-अंग सौन्दर्य से परिपूर्ण हो उठते हैं, मुख तथा कपोलों पर एक अभिनव आभा दृष्टिगोचर होने लगती है, वीर्य की परिपक्वता से पूर्व, उसका अपव्यय करने से युवक आजीवन अकर्मण्य, पौरुषहीन और हीनत्व की भावना ग्रन्थि से पूर्ण बनता है ।

वीर्य एक ऐसी पूँजी है, जिसे बरवाद कर आप बाजार में खरीद नहीं सकते, जिसके अपव्यय से आप ऐसे गरीब बनते हैं कि प्रकृति तक आपके ऊपर दया नहीं करती, आरोग्य लुट जाता है, आयु क्षीण हो जाती है । आपको एक नियमित प्रमाण में ही वीर्य की पूँजी मिलती है । यह भी आपके अपने संयम, पाचन, भोजन, व्यायाम का परिणाम होता है, इसके लिए आपको स्वयं मेहनत करनी होती है । कोई आपको यह पूँजी उधार नहीं दे सकता, दया कर को कोई यह अमूल्य पदार्थ आपको दान नहीं दे सकता । इसकी भिक्षा नहीं माँगी जा सकती । अतः सावधान ! अपनी इस संचित पूँजी को सम्हाल कर खूब सावधानी से व्यय कीजिए, वीर्य नाश कर मृत्यु की परेशानी की ओर, रोग, शोक की ओर न जाइये । वीर्य रक्षा द्वारा धन, मान, पद, प्रतिष्ठा, गृहस्थ, बुद्धि, वैभव, दीर्घायु, सम्पन्नता का आनन्द प्राप्त कीजिए । शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक जिम्मेदारियाँ उठाने के लिए ब्रह्मचारी बनिये ।

वीर्यहीन युवकों के लक्षण

वीर्यहीन व्यक्ति संसार में जीवित नहीं रह सकता । ज्यों-ज्यों वीर्यशक्ति क्षीण होती है, मानो मृत्यु का संदेश सुनाती है। वीर्यनाश द्वारा मृत्यु होती है उसकी चेतावनी प्रकृति कई रूपों में देती है। यदि रोगी इस पर भी नहीं सम्भल पाते तो रोग, शोक, आधि-व्याधि, शारीरिक दुर्बलताएँ सामने आ खड़ी होती हैं। अतः यदि निम्न लक्षणों में से कुछ भी आप में हों तो बड़े सावधान रहें—

वीर्य नाश करने वाले बालक में हीनत्व की दुर्बल भावना ग्रन्थि बन जाती है, एक अव्यक्त भय उसके अन्तर्मन में छिपा रहता है। वह अपने से बड़ों से आँख से आँख मिलाकर बातें नहीं कर सकता। औरतों की भाँति उसकी आँखें जमीन पर लगी रहती हैं, वह छिपता फिरता है और अपराधी की भाँति जनसमुदाय से बचता है। यदि वह हिम्मत कर बड़ों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से बातें करना भी चाहता है तो ढीठ और असंस्कृत बनता है। वह जितना ही अपने आपको निर्दोष साबित करने का प्रयत्न करता है, उतना ही धूर्त प्रतीत होता है। उसका किसी कार्य में जी नहीं लगता, सुस्त रहता है, स्वभाव चिड़चिड़ा, क्रोधी और रुक्ष बन जाता है। उसके मन में गन्दे, अश्लील, कामी विचार हुड़दंग मचाते रहते हैं, मानसिक दुर्बलता बढ़ जाती है, स्मृति कमजोर हो जाती है। शृंगार प्रधान उपन्यास, सिनेमा, गन्दे गीत, विषय-वासना सम्बन्धी पुस्तकों की ओर रुचि बढ़ जाती है, कुसंगति में रुचि होती है। वासना का ताण्डव प्रारम्भ होता है और युवक किसी अव्यक्त वेदना से पीड़ित इधर-उधर मारा-मारा फिरता है । उसका मुख जो प्रसन्न रहना चाहिए था, दुःखी और उदास बन जाता है। स्वभाव का माधुर्य कटु और रूखा हो जाता है। मुखमण्डल निस्तेज बन जाता है। वीर्य के कारण रक्त में जो चमक और लाली होती है, वह कम हो जाती है और त्वचा फीकी, पीली और खुरदरी, कंभी-कभी काली बन जाती है।

शरीर में कमजोरी, नेत्र व कपोल अन्दर धँस जाना, मूछें पीली व लाल हो जाना, बाल सफेद हो जाना, कोई रोग न होने पर भी शरीर का जर्जर, ढीला सा रहना, गालों पर मुँहासे के दाग, झाँई, काले चकते पड़ना, जोड़ों में दर्द, तलवे तथा हथेली पसीजना, अपच और कब्जियत, रात्रि में स्वप्नदोष होना, पेशाब करते हुए वीर्य निकल जाना, रीढ़ की हड्डी का अत्यधिक झुक जाना, एकाएक आँखों के सामने अँधेरा-सा छा जाना, मूर्छा आ जाना, छाती के मध्य का अन्दर धँस जाना, हड्डियाँ दीखना, नाक के कोने में कालिमा छा जाना, वृषण की बृद्धि तथा उनका बेहद लटक जाना, आवाज का मोटा, रूखा और अप्रिय बन जाना, सिर, कमर तथा छाती में पुनः पुनः दर्द उत्पन्न होना, दाँतों के मसूड़े फूलना, मुँह से दुर्गन्ध आना--ये वे शारीरिक विकार हैं जो अप्राकृतिक ढ़ंगों से वीर्यपात करने वाले युवकों में अक्सर पाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त मूत्र मार्ग में पीड़ा प्रारम्भ हो जाती है, मूत्र थोड़ा-थोड़ा कर बार-बार आता है, गरमी, प्रमेह, सुजाक इत्यादि निन्द्य रोग घेर लेते हैं । स्वप्नदोष तो रोज रात को हो जाता है, मुँह पर मुँहासे खूब निकलने लगते हैं, दिमाग में गर्मी छा जाती है, किसी भी उद्देश्य में सफलता नहीं मिलती, आयु क्षीण हो जाती है और आत्म ग्लानि तथा पश्चाताप के कारण कभी-कभी वीर्य का नाश करने वाला काल का ग्रास बन जाता है ।

वीर्य एक अनमोल जीवन तत्त्व है । जीवन में दो-चार-दस बार को छोड़ कदापि किसी भी अवस्था में वीर्य नाश नहीं होना चाहिए । इस वीर्य संग्रह के बल पर मनुष्य देवता बन सकता है । बिना ब्रह्मचर्य के सामान्य मनुष्यों की तो क्या इन्द्र महाराज की भी दुर्गति हो सकती है । वीर्य मुक्ति-प्रदाता, जीवन-शक्ति, दीर्घायु, सम्पूर्ण सिद्धियाँ, स्वास्थ्य, श्रेष्ठता स्वतंत्रता देने वाला अनमोल जीवन तत्त्व है । वीर्य को नष्ट करने वाला युवक अकाल से बच नहीं सकता ।

किशोरावस्था से यौवन में प्रवेश

चौदह वर्ष के पश्चात् प्रत्येक बालक एक नवीन जीवन में प्रवेश करता है । उसमें धीरे-धीर मानसिक और शारीरिक परिवर्तन प्रारम्भ हो जाते हैं । उसमें पुरुषत्व के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं, प्रजनन ग्रन्थियों में वीर्य तेजी से बढ़ने लगता है, लड़कों के ऊपर के होंठ, ठोड़ी तथा जननेन्द्रिय प्रदेश में बाल उग आते हैं । वीर्य तेजी से बनना प्रारम्भ हो जाता है । शुक्र कण बढ़ने लगते हैं । बहुत कम व्यक्ति शुक्रकण तथा वीर्य में अन्तर समझते हैं । शुक्रकण अण्डकोषों से उत्पन्न होते हैं, वीर्य कई स्रावों का नाम है, इसमें शुक्राशय का स्राव अष्ठीला तथा ऊपर की ग्रन्थियों के स्राव मूत्रकण भी सम्मिलित हैं । इसमें फास्फोरस अधिक मात्रा में होती है । शुक्रकण जीवन-तत्त्व से पूर्ण छोटे-छोटे कीटाणु हैं, जिनमें रज-कणों से संयुक्त होकर नव-जीवन उत्पन्न करने की शक्ति होती है । इनकी रक्षा से शरीर पुष्ट होता है । सादा और तपस्यामय जीवन व्यतीत करने वाले बालक में किशोरावस्था देर से आती है । भोग-विलासमय जीवन वाले बालक की दाढ़ी-मूछें शीघ्र उग आती हैं, आयु क्षीण होने लगती है । मानव-जीवन के पूर्ण विकास के लिए इन तत्त्वों का संरक्षण ठीक तरह होना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किशोरावस्था से यौवन में प्रवेश का समय बड़ा नाजुक होता है । यदि युवक सम्हल जाये तो ठीक, अन्यथा बिगड़ने और कुमार्ग पर जाने के लिए इतने प्रलोभन फैले हुए हैं कि अच्छे कुल के युवक भी बुरे मार्ग पर जा सकते हैं । माता-पिता तथा गुरुजनों का कार्य तथा उत्तरदायित्व महान् है । उन्हें युवक की मनोभावनाओं, काम-वासनाओं के उद्याम प्रादुर्भाव, विपरीत लिंग वाले व्यक्ति की ओर आकर्षण को समझना चाहिए । युवक को एक साथी के रूप में मार्ग-प्रदर्शन करना चाहिए । यह तीखी नजर रखनी चाहिए कि किशोर हस्तमैथुन, गुदामैथुन, लिंगेन्द्रिय को निर्बलता स्वप्नदोष, प्रमेह, व्यभिचार आदि का शिकार न बन जाये । आजकल समाज में ऐसी शैतान मण्डली दुष्ट प्रकृति के लोगों की कमी नहीं है, जो किशोर को कुमार्ग पर ले जाने में नही हिचकते । छात्रावासों तक में ऐसे दुष्ट व्यक्तियों का वास रहता है जो किशोरों को कुमार्ग पर लगा देते हैं । उनकी कच्ची उम्र में ही वासना प्रदीप्त हो उठती है, अप्राकृतिक ढंग से वीर्यपात होना प्रारम्भ होता है । वे अनर्गल औषधियों का सेवन करते हैं, उससे मूत्ररोग और बढ़ते हैं, स्वप्नदोष पुनः-पुनः होता है, वीर्य पतला पड़ जाने के कारण बूँद-बूँद कर मूत्र मार्ग से नष्ट होने लगता है, शरीर की हड्डियों में पीड़ा होती है, कप-कपी आने लगती है । यहाँ तक कि भरी युवावस्था ही में शरीर जर्जर होकर मृत्यु हो जाती है ।

प्रकृति का यह नियम है कि जितनी देर से यौवन आता है उसका उपभोग प्रारम्भ होता है उससे चौगुने समय तक आयु रहती है । यदि पच्चास वर्ष तक एक बिन्दु भी वीर्य नष्ट न किया जाये या इससे अधिक अवस्था तक इन धन का किफायतदारी से उपभोग किया जाये तो मनुष्य सौ-डेढ़ सौ वर्ष तक मजे में जी सकता है । यौवन तो वीर्य पर निर्भर है । वीर्य की रक्षा कीजिए, यौवन की रक्षा हो जायेगी । वासना पच्चीस वर्ष की आयु में जागृत होगी, यदि अस्वाभाविक जीवन न बिताया जाये । शरीर जब पूर्ण परिपक्व हो जाय तभी विवाह करना ठीक है ।

डा० एलवट ने लिखा है--घोड़े पर चढ़ना, सीने की मशीन को पैरों से चलाना, अधिक इन्द्रिय--स्पर्श, बाइसिकल चलाना, रेलगाड़ी में अधिक सवारी से उत्तेजना होती है और यह उत्तेजना आगे चलकर किशोर को हस्तमैथुन की ओर प्रवृत्त कर देती है ।' बड़े-बड़े घरों में दुष्ट नौकर बच्चों की भावना को जागृत कर उन्हें कुमार्ग पर लगाते हैं, कुसंग, गन्दी पुस्तकें, सिनेमा, नग्न तस्वीरें, कुत्सित कल्पनाएँ, अस्वाभाविक पतन के अन्य कारण हैं । सिनेमा ने किशोर, युवकों तथा विद्यार्थियों का जितना अनैतिक पतन किया है, इतना शायद अन्य कोई भी न कर सकता था । सिनेमा तो शैतान का जादू, कुमार्ग का आकर्षक कुआँ, कुत्सित कल्पनाओं का भण्डार है । यह फैशनेबिल शराब आज के युवकों को खोखला बना रही है । इसी के कारण छोटे किशोर अनेक गन्दी बातें सीख लेते हैं, । ऐसे प्रेम मिलन के दृश्य दिखाऐ जाते हैं, ऐसे-ऐसे गन्दे गाने गाये जाते हैं, जिन्हें सुनने से मुँह लज्जा से नीचे झुक जाता है । आज हमारे सिनेमा घर व्यभिचार, धूर्तता, मायाचार और कामोत्तेजक वातावरण से भरे हैं । गन्दे फिल्मों की भरमार है और दुःख तो यह है कि लोग सिनेमा जाना बुरा नहीं समझते । सिनेमा अभिनेत्रियों के चित्र इतने बिकते हैं, गन्दे उत्तेजक उपन्यास आज इतने मिलते हैं कि उनसे पापमयी वृत्तियाँ यकायक उत्तेजित हो जाती हैं । प्रारम्भ में पाप झिझक के साथ किया जाता है किन्तु धीरे-धीरे झिझक जाती रहती है और दुष्ट मन पाप को छिपाने का भी प्रयत्न नहीं करता ।

अनेक बार किशोर अपने गुह्य अंगों की सफाई यथोचित रीति से नहीं करते । वे उधर इतना कम ध्यान देते हैं कि गुह्य अंगों में मैल जम जाता है फिर खुजली प्रारम्भ हो जाती है, तत्पश्चात् छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं और हाथ अपने आप गुप्त अंगों का स्पर्श करता है । अनजान में ही बालक को उत्तेजना का साधन मिल जाता है ।

बालक बालिकाओं की सह-शिक्षा हानिकर है । स्कूल और कॉलेजों में सह-शिक्षा से हानि अधिक हुई है । छिपे-छिपे विद्यार्थी घृणित से घृणित पाप करने के लिए तैयार हो जाता है । कच्ची आयु में लड़के लड़कियों की संकल्प-शक्ति इतनी दृढ़ नहीं होती कि वे अपनी अप्राकृतिक कामोत्तेजना को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संकल्प दृढ़तापूर्वक शमन कर दें, इस उत्तेजना को शांत करने के लिए अस्वाभाविक उपायों का अवलम्बन करने लगते हैं ।

हमारा आजकल का भोजन इतना अप्राकृतिक हो गया है कि उससे काम-वासना कुमारी अवस्था में ही जागृत हो जाती है । मनुष्य जैसा भोजन करता है, वैसा ही बन जाता है । राजसी भोजन से शृंगार रस उत्पन्न होता है । काम–वासना उद्दीप्त हो जाती है । राजसी भोजन कौन-कौन से हैं ? अत्यन्त उष्ण, कडुआ, तीखा, नमकीन, मिठाइयाँ, तेल से तले पदार्थ, गरिष्ठ वस्तुऐं जैसे–पकौड़ी, कचौड़ी, मालपुआ, मिष्ठान, खट्टा, चरपरा, लाल मिर्च से भरा भोजन, प्याज, लहसुन, मांस, अण्डा, शराब, चाय, काफी, सोड़ा, लेमन, पान, तम्बाकू, गाँजा, भाँग, इत्यादि राजसी भोजन है । इनके प्रयोग से नवयुवक कामी बन जाता है । मिर्च, मसाले, खटाई कामोत्तेजक पदार्थ हैं । आज की दुनियाँ में इन भोजनों का बोलवाला है । आज फैशनेबिल जगत में बीड़ी, सिगरेट का जितना प्रचार है, शायद उतना कभी नहीं हुआ । छोटे-छोटे बच्चे बीड़ी फूँकते दिखाई देते हैं, पान खाते हैं, सिनेमा के भद्दे गाने गाते फिरते हैं, कुचेष्टाऐं करते फिरते हैं, अनुचित प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टाऐं करते हैं । यह सब कुछ अज्ञान में होता है । छोटे बालक पापाचरण से अनजाने में ही अपने भावी सुख, स्वास्थ्य, आयु की जड़ें खोखली कर डालते हैं । वीर्य नाश का फल उन्हें उस समय तो विदित नहीं होता, कुछ आयु बढ़ने पर मोह का पर्दा दूर होता है, वे अपने अज्ञान के लिए पश्चाताप करते हैं । प्रारम्भ का कुसंग, छिपे पापाचरण, जननेन्द्रिय का असंयम उन्हें गड्ढे में गिराता है । वे जीवन पर्यन्त नहीं सम्हल पाते । रीढ़ में हमेशा दर्द बना रहता है, गठिया सताने लगता है, स्नायु सम्बन्धी रोग फैलते हैं । मृगी तथा अन्य मानसिक रोग हो जाने से मानसिक प्रगति बिल्कुल रुक जाती है । ऐसे बूढ़े नवयुवक आज गली-गली में चूरन, चटनी, माजून, वीर्यवर्द्धक गोलियाँ ढूँढ़ते फिरते हैं । अब भी समाज में कहीं-कही बाल-विवाह प्रचलित हैं । इसके कारण बालक–बालिकाओं का बड़ा अनैतिक पतन हो रहा है ।

प्रत्येक माता-पिता का कर्त्तव्य है कि किशोरावस्था समाप्त होने से पूर्व किशोर को इस परिवर्तन के रहस्य को धीरे-धीरे समझा दें । यह न समझें कि बालक स्वयं ही इन बातों को समझ लेगा । उसे सन्मार्ग पर चलाने का कार्य पवित्र और उत्तरदायित्व पूर्ण है । शिक्षक भी यथासम्भव निष्प्रयोजन बातों, गन्दे लड़कों, अश्लील पुस्तकों से अपने विद्यार्थियों की रक्षा करें, स्त्रियों में अधिक न बैठने दें, नशीली चीजों से बचावें, सिनेमा के भूत से दूर ही रहने की शिक्षा दें । वीर्यनाश से होने वाले भयंकर रोगों के बताने में जरा भी संकोच न करें । इसमें शर्माना, लजाना या बीतराग रहना मानो भावी नागरिकों का सर्वनाश करना है । यौवन से पूर्व ही प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित ब्रह्मचर्य रक्षा के अनमोल नियमों से उन्हें भली-भाँति परिचित करा देना चाहिए ।

वीर्य रक्षा और पुनरुत्थान के अनूठे नियम

(१) **सात्विक संकल्प-** क्या गृहस्थ, क्या कुमार यदि यह अत्यधिक वीर्यघात का शिकार होकर रोग ग्रस्त हो चुका है, तो सद्संकल्प से पुनः आत्म सुधार के मार्ग का पथिक बन जाता है ।"विश्वासो फलदायकः" आत्मोन्नति में विश्वास तथा दृढ़ संकल्प पुनरुत्थान के प्रधान तत्त्व हैं । आप आन्तरिक मन से संकल्प कीजिए कि विषयभोग वीर्यनाश, कामोद्रोक, वासना की पूर्ति स्वास्थ्य, सदाचार, प्रकृति के विरुद्ध है । स्त्री प्रसंग करना कफन की तैयारी करना है । व्यभिचार, हस्तमैथुन, गुदामैथुन, कुसंग, क्षण–क्षण निर्बल, निस्तेज, दुःखी तथा अल्पायु बनाने वाले हैं । वीर्य के एक बिन्दु का नष्ट करना मानों अपनी जीवन शक्ति को गन्दे नाले में फेंकना है । सभी अप्राकृतिक वीर्य नाश के मार्ग शरीर की कोमल नसों को निर्बल करने वाले शरीर की चमक-दमक कांति का नाश करने वाले हैं । अतः प्रत्येक तर्क से आप आन्तरिक मन को समझाइये कि वह कामोपभोग में प्रवृत्त न हो, न वैसी बातें करे, न सोचे । पवित्र संकल्प कीजिए कि आप पुण्यात्मा, सदाचारी, वीर्यवान् बनेंगे, जीवन की सर्वांगीण उन्नति करेंगे, बुद्धि तथा मन को शिव संकल्प, शुद्ध विचार, कल्याणकारी कामों में लगायेंगे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और मन, वचन, कर्म द्वारा अद्‌भुत दैवी शक्ति प्रकट करेंगे ।

शुभ संकल्प उन पुष्ट विचारों का नाम है, जिनमें कूट–कूट कर विश्वास भरा हो । यदि आप हृदय से चाहते हैं कि निम्न जीवन की भूमिका से उठकर उच्च आध्यात्मिक जीवन पर चलें, तो उसके लिए दृढ़ संकल्प कर लीजिए । अपने संकल्प तथा विचारों से हम नेष्ठ या श्रेष्ठ बनते हैं । यदि गुप्त रूप से मन में, आन्तरिक गुप्त मन में कोई दबी हुई वासना या कुकल्पना छिपी रहे तो वह भी साधक का पतन करने के चारों ओर उसी प्रकार का वातावरण निर्माण करते हैं । मन में सद्‌संकल्प को सजाना, आन्तरिक मन में दृढ़ता से जमाना वीर्य रक्षा का प्रथम सोपान है ।

पुण्य संकल्पों में पाप संकल्पों से कहीं अधिक शक्ति है । पाप स्वयं निर्बल हैं, वह असत्य है, खोखला और निर्जीव है । उसमें स्थायित्व नहीं, ठहराव नहीं । अतः पुण्य संकल्प स्वभावतः ही बुरे विचार, कुकल्पना, दुश्चिन्ताओं को परास्त करेंगे । पापमय भावना पुण्य संकल्प के समक्ष ठहर नहीं सकती । भगवान् ने स्वयं कहा है–तुम्हारी यह चेष्टा कभी निष्फल न होगी । तुम्हारा अवश्य–अवश्य उद्धार होगा । आपके पुण्य संकल्प निश्चय ही पापमय वासना को दग्ध कर देंगे । कुबुद्धि, अज्ञान और कुविचारों को परास्त करेंगे । दुस्वप्नों का नाश करेंगे । आपके हृदय में एक अनतः ज्योति है, ईश्वर का एक मंदिर है, अन्तरात्मा की एक आवाज है, उसे विकसित कीजिए । उस दैवी ज्योति को जागृत कीजिए । यह विवेक जागृत ही उन्नति का राजमार्ग है । इस अन्तर्ज्योति के जागृत होने से काम-वासना, रतिप्रसंग, विषय–भोग से स्वयं वैराग्य हो जायगा । यह अन्तज्योर्ति चैतन्य शक्ति है, अन्तर्बल है । आज से ही दृढ़तापूर्वक संकल्प कीजिए "मैं कभी निन्द्य वासना से सने हुए अपवित्र विचारों, गंदी कल्पनाओं की तरंगों को हृदय में ग्रहण नहीं करता । मैं प्रत्येक स्त्री को माता या भागिनी के रूप में देखता हूँ । इन्द्रियाँ मेरे वश में हैं, मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ । वीर्य की रक्षा करता हूँ । शुभ सोचता हूँ, शुभ कर्म करता हूँ । काम-वासना मनुष्य का पतन करने वाली है वह विध्वंसक है । अतः मैंने उसे जड़-मूल से उखाड़ फेंकने का निश्चय किया है । मैं इस शुद्ध विचार द्वारा ही वीर्यरक्षा कर सकता हूँ । बिन्दु को साधने वाला सप्त सिन्धुओं को अपनी मुट्ठी में कर सकता है । सम्पर्क संसार में ऐसी कोई स्थिति नहीं जिसे ब्रह्मचारी अपने वश में न कर सकता है । वीर्य रक्षा के इस संकल्प में निश्चय ही मेरी विजय होगी ।"

यह तत्त्व गाँठ बाँध लीजिए कि मनुष्य गंदे और निंद्य विचारों से पापात्मा और शुद्ध विवेक पूर्ण दृष्टि से पुण्यात्मा बनता है । अतः आप हृदय मंदिर में पवित्रता, प्रेम, प्रसन्नता, उत्साह, निर्भयता, सभ्यता और शांतिदायक सद्‌विचारों का आह्वान कीजिए । कामुक भावना स्वयं दग्ध हो जायेगी ।

(२) **काम का दमन**– जिन्हें वीर्य रक्षा करनी है, उन्हें काम-वासना से घोर संघर्ष करना होगा । काम का उदय न होने दीजिए क्योंकि एक बार उत्तेजना होने से यह वासना इतनी शक्तिशाली हो जाती है कि मनुष्य का सर्वनाश कर सकती है । लोक लाज, प्रतिष्ठा स्वास्थ्य, वीर्य सबका पतन हो जाता है ।

अनेक बार देखा जाता है कि प्रत्यक्ष मैथुन से इतनी हानि नहीं होती जितनी कि मानसिक मैथुन से होती है । मानसिक व्यभिचार के कारण सूखी खाज, पकने वाली खुजली दाद, फुन्सियाँ, मुँहासे, झाई, बगलगन्ध, दुर्गन्ध युक्त पसीना तथा अन्य गुप्त रोग फैलते हैं । मानसिक व्यभिचार से दूर रहने के लिए साधक को अत्यन्त सर्तकता पूर्वक इन आठ प्रकार के मैथुनों से दूर रहना चाहिए ।

१– **स्मरण**– नारी का पढ़ा हुआ वर्णन, देखे हुए चित्र की स्मृति, सुने हुए या सिनेमा में देखी हुई नर्तकियों अभिनेत्रियों का ध्यान चिन्तन या स्मरण । सुन्दर स्त्रियों के स्मरण से अनावश्यक उत्तेजना फैलती है, कामुकता के भाव उदय होते हैं । शरीर की गर्मी बढ़ जाती हैं और वीर्य (जीवन शक्ति) का नाश हो जाता है ।

२– **कीर्तन**-स्त्रियों के रूप, गुण और अंगों की चर्चा या वर्णन करना, गन्दे गीत, सिनेमा के भद्दे गीत,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शृंगारिक कविता पाठ, कजली, होली के गीत, भद्दी बातें बकना, अपशब्दों का उच्चारण हमेशा के लिए त्याग दीजिए ।

३– **केलि**– स्त्रियों के साथ खेलना, अधिक रहना, अनावश्यक कार्य निकाल कर उनके पास रहना, उसके सम्पर्क में रहकर गेंद, ताश, शतरंज, फाग खेलना, मनोविनोद करना, स्त्रियों की संगति में आनन्द लेना कामोत्तेजना बढ़ाने वाले हैं । इससे अनजाने में गुप्त मन कामुक हो जाता है और स्वप्नदोष प्रारम्भ होता है ।

४– **प्रेक्षण**– किसी स्त्री की ओर पापपूर्ण अथवा चोर दृष्टि से देखना । यह इस बात को स्पष्ट करता है कि मन में काम-वासना का प्रचण्ड ताण्डव मचा है । मन वासना की पूर्त्ति चाहता है । नीचतापूर्ण संकेत, औरतों को छिप-छिपकर देखना, मोहित हो जाना, कामुक मन का प्रत्यक्ष लक्षण है । गुप्त मन की वासना अनेक मानसिक रोगों, भावना ग्रन्थियों, पागलपन, अनिद्रा, बेढंगें व्यवहारों में प्रकट होती है ।

५– गुप्त भाषण– स्त्रियों के पास बैठकर गुप्त भाषण करना, औरतों में पुनः आना-जाना और उनके साथ एकान्त में बैठने की इच्छा, बातचीत, औरतों के सौन्दर्य की चर्चा, सान्निध्य की भावना ब्रह्मचर्य नाश में पूर्ण समर्थ हैं ।

६– संकल्प– शृंगार रस, पूर्ण वाहियात् गन्दे उपन्यास, कहानियाँ पढ़ना, वेश्याओं, अभिनेत्रियों के चित्र पास रखना, गन्दी कविताओं का उच्चारण अथवा नाटक, सिनेमा में भद्दे कामोत्तेजक दृश्य देखकर उन्हीं को प्राप्त करने का संकल्प या इरादा करना पतन का खुला द्वार है ।

७– अध्यवसाय– किसी अप्राप्य या देखी-सुनी स्त्री की प्राप्ति के लिए पापपूर्ण कोशिश, लोकलाज की परवाह न कर काम तृप्ति के प्रयत्न । वेश्यागमन या गन्दी औरतों को पाने की इच्छा ।

८– प्रत्यक्ष सम्भोग– अनुचित तरीके से व्यभिचार । व्याभिचार चोरी, भय, लज्जा, झिझक के साथ किया जाता है, उसे छिपाने का प्रयत्न किया जाता है, उपयुक्त अवसर ढूँढ़ने के प्रपंच मन में उठा करते हैं । यह पाप वृत्तियाँ धीरे–धीरे मन में गहरी उतर जाती हैं और अप्रत्यक्ष मन में अड्डा जमा लेती हैं । वही से ये पाप वासनाएँ अस्थिरता, खींचतान, आकर्षण–विकर्षण का दौर चलाती हैं । जीवन धूर्तता, मायाचार और छल से भर जाता है । व्यभिचारी व्यक्तियों से चिडचिड़ाहट, झुंझलाहट, घबराहट, आवेश, अतृप्ति छा जाती है । अमृत संयोग मस्तिष्क सम्बन्धी विकार और मानसिक दुर्गुण उत्पन्न करता है । मानसिक उद्वेग में शरीर दिन–दिन तत्त्व के अपव्यय के कारण अनेक नवयुवक पाप के शिकार होते हैं । व्यभिचार से मनुष्य जाति की सामूहिक हानि है । अतएव यह प्रत्येक दृष्टि से त्याज्य है, अर्धम है । ब्रह्मचारी को मानसिक व्यभिचार से सदैव दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिए ।

ऊपर जिन आठ प्रकार के मैथुनों का उल्लेख किया गया है, ठीक उनके विपरीत कार्य करने चाहिए । अपने कर्म में बड़े सावधान रहिए । सावधान ! यदि इनमें से कोई भी बात आप छिपे-छिपे करते रहें तो नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगे । स्वास्थ्य, आयु और जीवन शक्ति सभी का नाश होगा । काम का उद्भव ही होने न दीजिए कामान्ध पुरुष को स्त्री का सहवास–सम्पर्क बड़ा भला मालूम होता है, बेचारा मोहवश होकर स्त्री संग करता है और फिर वीर्य नाश कर रोगी बनता है । विषयों से कभी मन तृप्त न होगा, स्वप्नदोष और बढ़ेगा और अकाल से ही जीवन दीप बुझ जायेगा ।

सच्चा कल्याण इसी में है कि–

यच्च कामसुखे लोके यच्च दिव्यं महत्वसुखम् ।
तृष्णाक्षय सुखस्यैते नार्हतः षोडशी कलाम् ।।

अर्थात् निजामता में, विषयों के वैराग्य में जो सुख भरा हुआ है, उसका सोलहवाँ हिस्सा भी सुख संसार के व स्वर्ग के समस्त विषयों में तथा दिव्य ऐश्वर्यादि में नहीं है । अतः इस महा पापात्मा काम रिपु को शत्रु मानकर तुरन्त मार डालो नहीं तो यह दुष्ट तुम्हें भक्षण कर जायगा । सावधान ।

(३) **काम शमन के उपाय**– यदि काम रूपी शत्रु आपको विचलित करे तो तुरन्त ही उसे मार डालिये । कामोत्तेजना प्रारम्भ न होने दीजिए । मन में यदि वासना का तनिक भी संचार हो तो यह समझ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर न रह जाइये कि कोई हर्ज नहीं, हम कोई गंदा काम थोड़ा ही करते हैं । सोचने-विचारने, कल्पना करने में क्या हानि है ? नहीं, आपको मन से काम-वासना के सब भाव, कल्पना, इच्छा एकदम निकालनी होगी, मन को विषयों की ओर से मोड़ना होगा, उसे सात्विक विषयों में एकाग्र करना होगा तभी आप रिपु से बच सकेंगे । यदि प्रयत्न करने पर भी गुप्तेन्द्रियों में उत्तेजना हो तो काम शमन के लिए आप निम्न कार्य कीजिए ।

१– आप तुरन्त आपने वातावरण को परिवर्तित कर दीजिए । घर से बाहर निकल आइये, बाजार में घूम लीजिए, सरिता, उद्यान, जंगल, पुस्तकालय, मंदिर इत्यादि में चले जाइये । इष्टमित्र के या किसी महापुरुष के गृह पर चले जाइये ।

२– कुछ थोड़ा सा व्यायाम कर लीजिए । दौड़िये या कोई खेल–खेलने निकल जाइये ।

३– कुछ सात्विक ग्रन्थ, कोई मासिक पत्र, भजन, उपदेश पढ़िये । मन को वैराग्य, सदाचार, भक्तिपूर्ण उपदेशों में लगाइये ।

४– कामोत्तेजना से शरीर में गर्मी बढ़ जाती हैं, श्वास गर्म आने लगती है, त्वचा का तापमान बढ़ जाता है, रक्त का वेग बढ़ जाता है । इस गर्मी के दाह से कुछ धातुएँ पिघल कर मूत्र के साथ स्रावित होने लगती हैं । अतः थोड़ा सा ठण्डा जल पी लीजिए । स्नान कीजिए या गुप्तेन्द्रिय को धो डालिये ।

५– यदि आप कोई उत्तेजक उपन्यास, कहानी या नाटक पढ़ रहे हैं तो उसे त्याग दीजिए । उसके स्थान पर कोई सदाचार का ग्रन्थ पढ़िये ।

६– अकेले मत रहिए । माता–पिता, भाई इत्यादि के पास चले जाइये और कुछ काम करने लगिये । खाली मन शैतान का घर है । उससे काम लीजिए ।

७– मन में वैराग्य की भावनाएँ लाइये । किसी मातृस्नेही का स्मरण कीजिए । किसी लाश का मानसिक चित्र बनाइये । बैराग्य की भावनाएँ काम शमन कर सकेंगी ।

(४) पवित्र मातृभाव की दृष्टि–वीर्य रक्षा के लिए आप स्त्रियों की ओर से अपना दृष्टिकोण बदल दीजिए । कामोद्रेक तब होता है, जब आप उन्हें पत्नी रूप में देखते हैं । आप उन्हें केवल माँ या बहिन के रूप में देखा कीजिए । 'माँ' शब्द कितना पवित्र है । माँ के सन्मुख आते ही पाप वासनाएँ दग्ध हो जाती है । प्रत्येक स्त्री में ईश्वर की प्रतिमा देखिये । जब कभी किसी स्त्री के प्रति वासना पैदा हो, तुरन्त अपनी माँ या ईश्वर की प्रतिमा उसमें देखिये । आपका मन लज्जा से भर जायेगा और तुरन्त उस नाशकारी विचार को त्याग देंगे । अपनी करनी पर तुम्हें बेहद शर्म आवेगी ।

यदि आप गृहस्थ हैं तो स्मरण रखिए कि केवल एक ही स्त्री आपकी पत्नी हो सकेगी । अनेक और व्यर्थ मन को लुभाने से व्यर्थ ही उद्वेग बढ़ेगा, मन में अस्थिरता, चंचलता खींचातानी बढ़ेगी । अतः मन में उद्वेग की सृष्टि क्यों करते हैं ? इस प्रलोभन से बचिये । प्रत्येक नारी को पवित्र मातृ दृष्टि से देखिये । जब आप किसी पाप के विचार तथा अशुभ कल्पना में प्रवृत्त होते हैं तो अतृप्त संयोग, मस्तिष्क सम्बन्धी विकार ओर मानसिक दुर्गुण उत्पन्न करता है । इच्छित तृप्ति न होने पर मन अन्य कार्यों के लिए बेकाम हो जाता है, कुचेष्टाओं में उलझा रहता है । अनिद्रा एवं दुःस्पप्न आते हैं । मानसिक व्यभिचार सर्वथा निन्दनीय है । यह एक प्रकार का क्षय रोग है जो युवक को निर्बल, कांतिहीन और खोखला बना देता है, रक्त की गति मंद और वीर्य को पतला कर देता है । परिणाम स्वरूप पागलपन, उन्माद, मृगी, नपुंसकता न्यूनाधिक रूप से प्रकट हो जाती है । एक विशेषज्ञ के अनुसार मानसिक व्यभिचार रक्तचाप की बीमारी उत्पन्न कर देता है ।

वासना भी मन से ही उत्पन्न होती है । यदि हम मन में पवित्रता रक्खें, दृष्टि में प्रत्येक नारी के लिए मातृ भावना रक्खें तो मन, वचन, कर्म सभी अवस्थाओं में ब्रह्मचर्य पालन कर सकेंगे । अतः मन में कामुकता के किसी भाव, विचार या कल्पना को कदापि स्थान न दीजिए ।

(५) मानसिक व्यभिचार से बचिए- मानसिक संयम ब्रह्मचर्य का मूल है । यदि हमारा मन काम-वासना के इशारों पर नृत्य करता रहेगा, कभी इस, कभी उस स्त्री पर दौड़ता रहेगा तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानसिक उन्नति कदापि न रुकेगी । रह-रहकर बुद्धि लुप्त हो जाया करेगी और वीर्य रक्षा न हो सकेगी । ब्रह्मचर्य अथवा वीर्य रक्षा का यह अर्थ कदापि नहीं है कि मन से तो चौबीसों घण्टे व्यभिचार में लिप्त रहें, कल्पनाओं के गन्दे स्थानों पर दौड़ते रहें और बाहर से ब्रह्मचारी बनने का अभिनय करें । मानसिक व्यभिचार का कुफल संक्रामक बीमारियों के रूप में मिलेगा । दूषित कल्पना कामोत्तेजना के कारण आपके सम्मुख स्वनिर्मित प्रतिमाएँ सामने ला खड़ी करेंगी जो स्वप्नदोष प्रारम्भ कर देंगी । कुत्सि कल्पनाओं, कुविकल्पों, गन्दी-गन्दी अश्लील तस्वीरों, गन्दी पुस्तकों, स्टेशन के बुक स्टालों पर बिकने वाली कामोत्तेजक प्रेम कहानियों, उपन्यासों को सदा के लिए छोड़ दीजिए । यदि आपकी कल्पना शक्ति किसी गन्दी दलदल में फँसी है तो शुभ संकल्पों से उन्हें पवित्र कीजिए । मानसिक व्यभिचार और दुराचार का वायुमण्डल जो सिनेमा की गन्दी फिल्मों, नाटकों, अर्द्ध नग्न नर्तकियों के नाच, नाचघरों द्वारा सभ्य जगत् में बन गया हैं, तोड़ दीजिए । यदि आप गुप्त रूप से कामुकता की तृप्ति में लगे हैं, तो उसे तुरन्त छोड़ दीजिए । बाजीकरण औषधियाँ, बाजारू दवा-दारू, चटनी, भस्म का प्रयोग त्याग दीजिए ।

हमारी अन्तरात्मा स्वयं गन्दी बातों, पापमय जीवन से बचना चाहती है । काम-वासना की अप्राकृतिक तृप्ति तथा स्वप्नदोष के पश्चात हृदय में स्वभाविक रूप से लज्जा, आत्म-ग्लानि, संशय, चिन्ता, क्लेश की भावनाएँ जागृत हो जाती हैं । प्रारम्भ में यह आत्म-ग्लानि अत्यन्त तीव्र होती है । आत्मा बुरा-बुरा कहती है, पाशविक वृत्तियों "केवल एक बार और वासना की बात सोच लूँ केवल एक बार" – यह सोचते-सोचते अधःपतन प्रारम्भ हो जाता है । पुनः पुनः काम-वासना में लिप्त रहने से अन्तरात्मा की आवाज भी उसके विरुद्ध नहीं उठ पाती । फिर मन का बाँध टूट-सा जाता है, गंदी बात सोचते बुरा नहीं लगता, व्यभिचार, मैथुन आदि भी साधारण-सी बात प्रतीत होने लगती है, सम्पूर्ण जीवन वासनामय बन जाता है, मन कुचेष्टाओं में सदैव फँसा रहने लगता । काम-कल्पना की आदत एक पिशाचिनी है जो मनुष्यों की संतानों को मार्ग-भ्रष्ट कर देती है अतः काम, वासना का उद्भव ही न होने दीजिए । मन में वासना को स्थान ही न दीजिए । यदि उत्पन्न हो जाय तो तुरन्त उसका गला दबा दीजिए । यह न सोचिए कि जरा इस दूषित कल्पना का और मजा ले लें, बाद में इसे दबा देंगे । एक बार इस पिशाचिनी के चंगुल में फँसे, कि फँसे इसे यहीं मार डालिए ।

धिक्कार है उस पापमय जिन्दगी पर जो मक्खियों की तरह पापों की बिष्ठा के ऊपर भिनभिनाने में और कुत्तों की तरह विषय-भोगों की जूठन चाटने में व्यतीत होती है । उस व्यक्ति को धिक्कार है जो पर स्त्री कल्पना में निरत रहता है या गुप्त रूप से व्यभिचार में प्रवृत्त रहता है । खेद है उस पापमय जीवन पर जो काम-वासना उद्वेग तथा मानसिक आवेश में उलझा रहता है । वह जिन्दगी घृणास्पद है जो कपट, धूर्तता, मायाचार, छल, अनुचित यौन सम्बन्धों से युक्त है । जिनका जीवन इस वासनामय स्वार्थों को पूर्ण करने की उधेड़बुन में निकल गया हाय ! वे कितने अभागे हैं । सुर दुर्लभ मानव देह रूपी बहुमूल्य रत्न इन दुर्बुद्वियों ने काँच के टुकड़ों के बदले बेच दिया है, किस मुख से वे कहेंगे कि हमने यौवन का सद्व्यय किया । इन कुबुद्वियों को अन्त में पश्चाताप ही प्राप्त होगा । एक दिन उन्हें अपनी भयंकर भूल प्रतीत होगी, पर उस समय अवसर उनके हाथ से निकल गया होगा और सिर धुनने के अतिरिक्त उन्हें कुछ भी प्राप्त न होगा।

साधको ! आत्मा को जगाओ, वासना को दूर भगाओ, उसकी केंचुली तोड़ डालो । ब्रह्मचर्य ही जीने योग्य जिन्दगी है, यही वह जीवन है जिसे आदर्श और अनुकरणीय कहा जा सके । आपका जीवन प्रेम से, न्याय से, सत्य से भरा पूरा होना चाहिए ।

(६) **मानसी पूजा की आदत डालिए**- आप ऐसा साचिए कि परमेश्वर आपके सामने है । आप उनकी उपस्थिति में निरंतर रहते है । वे आपके कार्य ही नहीं, आपके मनोभावों, विचारों तथा गुप्त से गुप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मन्तव्यों को भी देखते हैं । आप उनसे कुछ छिपा नहीं सकते । अतः जो कुछ भी बुरे भाव अन्तःकरण में लायेंगे, वे अपने पास रखकर आप पतित और कुपथगामी बनेंगे । आप मन में किसी घृणित विचार को स्थान ही न दीजिए कि आराध्य देव के समक्ष नीचा देखना पड़े । अपना जीवन एक खुली पुस्तक रखिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति उसे देख सके, उसमें कोई ऐसी गंदी बात ही न छोड़िये कि किसी के सामने आपको लज्जित होना पड़े बाहर, भीतर एकसा रहिए ।

पूजा और उपासना की अनेक विधियाँ है । आप अपने अन्तःकरण में परमात्मा के किसी भी रूप–गणेश; शिव, दुर्गा, महावीर को रख लीजिए । उस मूर्ति का प्रतिबिम्ब आप अपने अन्तःकरण में देखा कीजिए । मानसी पूजा मे किसी वाहन, उपकरण, पुष्प, तप, चंदन, अक्षत् की आवश्यकता नहीं होती । बाहरी मूर्ति की पूजा तो आन्तरिक मानस पूजा का प्रारम्भ है । ब्रह्मचारी को किसी बाह्य पूजा की इतनी आवश्यकता नही पड़ती जितनी मानस पूजा की । मानस पूजा के लिए किन पुष्पों की आवश्यकता है ? आपकी शुभ भावनाएँ शिव संकल्प, भद्र कल्पनाऐं इन पूजा के लिए कौन से धूप, दीप, चंदन चाहिए ? आपके सुन्दर कृत्य, प्राणिमात्र की सच्ची सेवा, त्याग, क्षमा और उदारता । जैसे यज्ञ में समिधा डालकर जलाते हैं, उसी प्रकार मन की कल्मष इसमें भस्म कर दीजिए ।

अपने आराध्य देव में आप जिन गुणों का अस्तित्व समझते हैं, उनके मानसिक चित्र मानस पटल पर निर्माण कीजिए । फिर उस मानसी पूजा में इतने तल्लीन हो जाइये कि आप उसी में तदाकार हो जायँ । जैसी भी स्थिति में रहे, अपने व्यक्तित्व को अपने इष्ट उद्देश्य में पिरोते रहिए । यह तदाकारिता ही सच्ची उपासना है । धीरे-धीरे आपके गुप्त मन से ऐसी प्ररेणा होने लगेगी कि वासना, कुभाव और कुकृत्य की ओर आपकी प्रवृत्ति ही न होगी । आपकी पूजा सफल हो जायेगी और इच्छित फल प्राप्त हो जायेगा ।

(७) **यह विलास प्रियता छोड़िये**- शृंगार से काम उत्पन्न होता है, कुत्सित इन्द्रियों को अनावश्यक उत्तेजना हो जाती है । आजकल का जीवन विलास प्रियता और फंशन से बुरी तरह भर गया है, जिसमें तन, मन और धन तीनों स्वाहा हो रहे हैं । हर तरह के ऐशो–आराम का चस्का मनुष्यों को लग गया है । वे आलसी ओर सुकुमार बन गए हैं । बनावटी, अस्वाभाविक रूप से दूसरों को भ्रम में डालने के लिए आज मायाचार का बोलवाला है । यह दम्भ अनीति, अहंकार, असत्य, ठगी, दुर्भाव और प्रपंच समाज में फैल रहा है । यह दंभ भड़कीली पोशाक के रूप में हम अपने चारों ओर फैला हुआ देखते हैं । ऐसे व्यक्ति जो बिल्कुल साधारण से हैं, अँग्रेजी पोशाक पहन कर आंशिक रूप से अपने बड़प्पन की धाक लोगों पर जमाना चाहते हैं । केवल वस्त्रों तक ही यह फैशन सीमित नहीं, मनोरंजन, खान-पान, सजावट, वेश-विन्यास में यह बैठ गया है । युवक अपने को अधिक से अधिक रूपवान सिद्ध करने के लिए खूब शृंगार करते है, पान बीड़ी, सिगरेट, शराब, इत्र, फुलेल, क्रीम पाउडर का प्रयोग करते हैं । उनकी हर चीज पर विलासिता की छाप रहती है । सिनेमा ने तो समाज में अन्धेरा ही ढा दिया है । हर एक उभरता हुआ युवक अपने आपको अभिनेता जैसा बना-ठना सुन्दर चाहता है । किसी सुन्दरी (कल्पित ही सही) के प्रेम-पाश में आबद्ध होना चाहता है । प्रेम भी उपहास की वस्तुं बन गया है । इस शृंगारपूर्ण वातावरण में आत्म संयम बहुत कठिन है ।

ब्रह्मचर्य के लिए सादी रहन-सहन अथवा सभ्य जगत् के भोग-विलास से विरक्ति अत्यन्त आवश्यक है । विशेष सजधज, कामोत्तेजन वस्त्र वेशभूषा, सुगन्धित तेल, इत्र, हार-मालाएँ, शृंगार छोड़ देना चाहिए । विलास की अनावश्यक वस्तुऐं आस–पास से हटा देनी चाहिए अन्यथा बार–बार उनके उपयोग के लिए मन दौड़ता है । शृंगारपूर्ण वस्तुओं से न तो सहायता ही मिलती है, न आत्म-संयम ही । यह मन को बहुत पथ-भ्रष्ट करती हैं । भ्रम में डालने के लिए बनाव, शृंगार का झूठे आकर्षण के मायाचार को छोड़ दीजिए । तड़क-भड़क भरी खर्चीली पोशाक के स्थान पर साधारण सादी रहन-सहन अपनाइये । फैशन और विलासिता के रंगीलेपन से बचिये । भड़कीले फैशन के दंभ के मूल में अमीरी का या

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूपवान् होने का अहंकार छिपा रहता है । यह अहंकार आध्यात्मि दृष्टि से सर्वथा हानिकारक है । यदि इसका पोषण होता है तो वह अधिक मजबूत एवं परिपुष्ट बन जाता है । तब वह अनेक बुराइयों की सृष्टि करता है । विलासप्रियता से दंभ बढ़ता है । मेहनत न करने को जी चाहता है अनेक प्रकार की सामाजिक बुराइयाँ बढ़ती है । फैशनपरस्ती बाहर से देखने में साधारण-सी बात प्रतीत होती है, किन्तु काम-रिपु को प्रोत्साहन देकर यह सर्वग्रसी घातक वस्तु बन जाती है । अतः भाइयो ! इस व्यर्थ के अभिनय को छोड़िये, रूप हीनता का गंदा उपहासास्पद विज्ञान न कीजिए । आप सादगी पसन्द कीजिए । अपने विचारों की भाँति वेशभूषा को भी सात्विक रखिए । आध्यात्मिक दृष्टि से यह अनावश्यक एवं हानिकारक है ।

दृढ़तापूर्वक आप संकल्प कीजिए कि खान–पान, वस्त्र, आभूषण, विलास, सजावट, मायाचार में अपना बहुमूल्य समय व्यतीत न करेंगे, सदा सरल और उच्च जीवन व्यतीत करेंगे । विलास प्रियता, शृंगार या उत्तेजक वातावरण में न रहेंगे, अधिक सुख भोग की सामग्री एकत्रित न करेंगे, भोग-विलास की बातों से सदैव दूर रहेंगे । दृढ़ता से शांत चित हो निम्न संकेत अपने गुप्त मन को दीजिए–

"मैं अब रात-दिन शरीर के पोषण एवं शृंगार में ही अपना समय नष्ट नहीं करता, मुझे प्रतीत हो गया है कि वासनाओं को बढ़ाने और तृप्त करने से परम सुख की प्राप्ति नहीं होती । अब मैं तुच्छातितुच्छ इच्छाओं का गुलाम नहीं रहूँगा । छुद्र वासनाऐं अब मुझे नीचे नहीं दबा सकतीं । क्षण भंगुर प्रलोभनों, भड़कीली, अस्वाभाविक, रंग बिरंगी, खर्चीली, विलासमय, फैशनपरस्ती के पीछे-पीछे अब मैं नहीं छटपटाता । सांसारिक दंभ, मायाचार, फैशन, वेशविन्यास, शृंगारमय वस्तुएँ मुझे तंग नहीं कर सकतीं । धूर्त लोगों की बनावटी आकर्षण, विलास की मोहक वस्तुएँ मुझे ब्रह्मचर्य से विचलित नहीं कर सकतीं । प्रबल से प्रबल दुष्ट आसुरी वासना का मुझ पर न आक्रमण हो सकता है और न वे मुझे दबा सकती हैं ।

उपरोक्त संकेत स्मरण करो, पुनः पुनः प्रतिदिन प्रातःकाल अथवा सायंकाल एकान्त स्थान में शांत चित्त होकर दृढ़ता से सरल सादे जीवन की उपरोक्त भावना पर मन लगाओ । तुम्हें स्वयं बनावटी विलास प्रियता से घृणा हो जायेगी ।

(८) **सत्संग कीजिये** - हम जैसे मित्रों, व्यक्तियों के वातावरण में निवास करते हैं, वैसे ही बनते हैं । हमारे मित्रों के विचारों का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से हमारे मनोजगत पर पड़ता है और हमारे अन्तःकरण का निर्माण करता हैं । जैसे एक अतिसूक्ष्म बीज उचित वातावरण पाकर फल, फूल पत्तियों से युक्त एक विशालकाय वृक्ष बन जाता है, ठीक इसी प्रकार सत्संगति या कुसंगति से सामाजिक क्रिया-प्रतिक्रिया आघात से उचित तथा अनुचित वासनाओं का मानसिक प्रभाव हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करता है । मनुष्य के मन में जितनी भावनाएँ उठती हैं उनमें से अधिकांश सज्जन या दुर्जन व्यक्तियों के संकेतों द्वारा प्रेरित होती हैं । दूसरे के ये संस्कार अनेक प्रकार सम्मिश्रित होकर हमारे मन में भावनाओं के रूप में उठा करते हैं । बाह्य चेतना के कारण उससे सम्बन्धित भाव मन में परिपुष्ट होते और क्रियाओं के रूप में प्रकट होते हैं ।

सत्यसंग से गुप्त मन में सत्य, प्रेम, न्याय, शांति, वैराग्य, आध्यात्मिकता इत्यादि सद्भावनाओं का उदय होता है, हम पवित्रता की ओर बढ़ते हैं, सद्भावों और सद्गुणों का विकास होता है । ब्रह्मचर्य के लिए साधक को दुर्जनों का साथ तुरन्त त्याग देना चाहिए । कुसंग से नर्क की प्राप्ति होती है, मन में वासनाओं का ताण्डव प्रारम्भ होता है और मनुष्य पापी, नीच और दुरात्मा बन जाता है । आधुनिक सभ्यता में माता, पिता, अध्यापकों को अपने बच्चों तथा विद्यार्थियों के संग का विशेष ध्यान रखना चाहिए । गंदे और आवारों लड़कों के साथ रहकर बच्चे बिगड़ते हैं । नौकर पुष्प जैसे बालकों को पथ भ्रष्ट करते हैं । कुसंग का भूत आज हमारे युवकों को डस रहा है ।

श्रीमच्छंकराचार्य का वचन है –"सत्संग से निःसंग की प्राप्ति होती है । निःसंग से निर्मोहत्व अर्थात् विषयों में वैराग्य बढ़ता है, निर्मोह से सत्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का पूर्ण ज्ञान व निश्चय होता है और सत्तत्व से, निश्चल ज्ञान से मनुष्य जीवन मुक्त होता है अर्थात् इस संसार से तर जाता है।"

सत्संग का दायरा बहुत विस्तृत है । इसमें निम्न बातों का समावेश है–

(१) ऐसे दुर्जनों का साथ छोड़ दीजिए जो पापी, कामी, नीच और दुरात्मा हैं, जो आपको गन्दी बातें सिखलाते हैं या गन्दे स्थानों में खींचते हैं । कामी पुरुष के साथ रहने से अवश्य कामवासना जागृत होगी । नीच पुरुष अपनी ही तरह अपने मित्रों को भी नीच, पापी, दुरात्मा बनाता है ।

(२) ऐसी पुस्तकों का साथ छोड़ दीजिए जिनमें कामोत्तेजक दृश्यों, चरित्रों, घटनाओं के वातावरण का वर्णन है । प्रेम कहानियाँ, गन्दे उपन्यास, भद्दे गीत, सस्ते नाटक, सिनेमा के गानों की पुस्तकों का साथ त्याग दीजिए । पुस्तकें यदि उत्तम हों तो मनुष्य की उन्नति कर सकती हैं । यदि वे ही पुस्तकें गन्दी हों तो पतन का मार्ग और भी ढालू कर देती है । आज ऐसों की ही भरमार है । सावधान ! ऐसी किसी पुस्तक का विष काले सर्प की भाँति महान् दुर्गतिकार है ।

(३) ऐसे वातावरण,स्थान या वस्तुओं का संग त्याग दीजिए जिनसे उत्तेजना होती है । सिनेमा में न जाइये, नाटक न देखिये, व्यभिचार के अड्डों की तरफ कभी भूल कर भी न निकलिए । कुस्थानों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सब नष्ट हो जाते हैं, परन्तु सत्संग से चारों पुरुषार्थ अनायास ही सध जाते हैं ।

(४) ऐसे विचारों को मन से निकाल डालिए जिनसे मनः लोक नीरस, गंदा, शुष्क, धुंधला और वासना के अंधकार से पूर्ण हो जाता है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहंकार, छल, पाखण्ड, असंयम, दुराचार आदि के कुविचार एक प्रकार के मानसिक शत्रु हैं, अतः वे मनः लोक में निशाचरों की भाँति छिपे बैठे रहते हैं और अवसर पाते ही दल-बल सहित निकल पड़ते हैं ।

हम किसका संग करें ? इस प्रश्न के उत्तर में हम कहेंगे कि आप सज्जनों को ढूँढ़िये, विद्वान महात्मा, योगी, शुभचिन्तकों के साथ रहिए, उनके उपदेश सुनिये, उन पर काया, वाचा, मनसा के आचरण कीजिए । जिह्वा से कभी गंदी बात न कहिये, कान से गन्दी कामोत्तेजक बात (कजली, होली, गालियाँ, भद्दे गीत) न सुनिये नेत्र से कामोत्तेजक चीजें (नाटक, वेश्याओं के नाच, सिनेमा, थियेटर, अभिनेत्रियों के चित्र, नग्न स्त्रियों के चित्र, गुप्त अंग) न देखिये, मन में कुविचारों, कुकल्पनाओं, कामोत्तेजन दृश्यों का स्मरण न कीजिए । जब नीच विषय-विकार चित्त को विचलित करें तो सत्पुरुषों के पास जाइये, आपकी सम्पूर्ण नीच वृत्तियाँ दब जायेंगी । परमात्मा का शुभ चिंतन सब विकारों को दुग्ध करने वाला अमोघ अस्त्र है । अतः अन्तर्दृष्टि से उसी का मानसिक चित्र बाहर–भीतर चहुँ ओर देखते रहो । जो मनुष्य विषय का दृढ़ चिन्तन करता है, वह तद्रूप हो जाता है । तुम ब्रह्म का चिंतन (जप, धारणा, ध्यान) करोगे तो उसी के अलौकिक गुण–धर्म तुम में विकसित हो जावेंगे और तुम सच्चे अर्थों में ब्रह्मचारी बन जाओगे ।

यदि आपको ज्ञानी महात्मा नहीं मिलते तो सद्ग्रन्थों का संग कीजिए । यदि आप ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अध्यात्म के अच्छे जीवन चरित्र पढ़ें तो सम्पूर्ण पाप वृत्तियाँ दब जायें । सद्ग्रन्थ इस लोक की चिन्तामणि हैं । ग्रन्थ हमारे अन्तर्जगत् का निर्माण करते हैं । हमारे अव्यक्त मन में यदि शुभ संकल्प, शुभ भावनाएँ रहें तो उन्हीं के अनुसार हमारे कर्म बन कर पुस्तकों से आंतरिक अन्धकार दूर होता है और अद्भुत दैवी शक्ति जागृत होती है ।

अच्छी पुस्तकों को अपना मित्र बनाइये । सुख में दुःख में, विषम परिस्थितियों में सद्ग्रन्थ आपको मार्ग प्रदर्शन करेंगे, आन्तरिक शांति देंगे, आचरण की सभ्यता सिखायेंगे । जिन्हें अपने वीर्य की रक्षा करनी है, उन्हें निम्न पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए ।

१–श्रीमद्भगवद्गीता
२–योग वाशिष्ठ
३–दास बोध
४–रामायण, ज्ञान वैराग्य प्रकाश
५–तत्त्व चिन्तामणि–जयदयाल कृत
६–सत्यामृत–सत्यभक्त कृत
७–भक्तों के जीवन–चरित्र
८–तुलसी, सूर, नानक, कबीर, मीरा के काव्य–ग्रन्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्म-संस्कार के विधान का स्वाध्याय एक प्रमुख अंग है । आत्म-संस्कार सम्बन्धी मासिक पत्र (कल्याण, अखण्ड ज्योति, कल्प वृक्ष, गीता धर्म, मानव धर्म, गुरुदेव) आज वृहत संख्या में ऐसे लेख दे रहे हैं, जिनसे ज्ञान वैराग्य भक्ति बढ़ती है । जीवन चरित्र पढ़ने से हमें महान् व्यक्तियों की उन्नति के रहस्य प्रतीत होते हैं । पढ़ना वही चाहिए जिससे कुछ शिक्षा मिले, शुभ कर्म में प्रवृत्ति हो, कुछ संयम आवे । अध्ययन सूर, तुलसी, मीरा, नानक, कबीर जैसे कवियों का करना चाहिए जो सद्वृत्तियों को जागृत करते हैं ।

सावधान ! कोई बुरी कुवासनाओं की उत्तेजना देने वाली पुस्तक न पढ़ बैठना । उसका नशा न उतरेगा, वह तुम्हारा सर्वनाश कर देगा । आजकल प्रेम को बदनाम करने वाली कुरुचिपूर्ण पुस्तकों का बड़े आकर्षक ढंग से विज्ञापन किया जाता है । पुस्तक खरीदते समय आप यह जाँच कर लीजिए कि कौन पुस्तकें पवित्र और सार गर्भित हैं और कौन पुस्तकें अपवित्र और निःसार हैं । उत्तेजक कहानियाँ, प्रचलित संशयवाद, उद्वेगपूर्ण उपन्यास, शृंगारपूर्ण काव्य से ईश्वर के लिए दूर ही रहिए, जितना भी हो सके धर्म ग्रन्थ, नीति ग्रन्थ, चरित्र ग्रन्थ, चरित्र को उन्नत करने वाली सद्ज्ञान ग्रन्थ माला के अनमोल ग्रन्थ पढ़िये । ये ऐसी पुस्तकें हैं जो आपको यह बतलावेंगी कि कैसे जीना चाहिए ? क्या करना चाहिए ? आपकी धारणा में उत्तम ज्ञान भर देगी, कल्पना में उत्तम चित्र अंकित कर देंगी । श्रेष्ठ मनोभावों को उभार देंगी और हृदय को पवित्र और मृदुल भावनाओं से परिपूरित कर देंगी ।

पुस्तकों में वैसी ही क्रियमाण जीवन-शक्ति उत्पन्न करने का गुण होता है जैसी उनके लिखने वालों की आत्मा में था । पुस्तकों में उनके लेखकों की पवित्र बुद्धि का सार खींचकर रक्खा रहता हैं, जिसके सेवन से ब्रह्मचारी में ज्ञान का संचार होता है ।

सतसंगी की परीक्षा कैसे हो ? हम कैसे जानें कि आपने सत्संग महाव्रत प्रारम्भ कर दिया है ? श्री पथिकजी ने सत्संग की कसौटी यह बताई है, ''सत्संग प्रेमी सज्जन व्यवहार शुद्धि के लिए निरन्तर विवेकपूर्वक सावधान रहते हैं । सतोगुणी प्रकृति दृढ़ रहने के लिए दूषित संग और तमोगुणी न रजोगुणी आहार नहीं करते । अशुद्ध विचारों से निरन्तर सजग रहकर विरोध एवं परित्याग करते हुए शुद्ध सात्विक विचारों को ही अपने मन या मस्तिष्क में स्थान देते हैं ।

सत्संगी सदा शांत, प्रसन्नचित, उत्साही, गम्भीर दुःखों के बीच में सहनशील और निर्भय रहता है । सत्संगी को मोह नहीं होता, प्रेम होता है मोही वह है जो अपना सुख चाहता है, प्रेमी वह है जो दूसरे का सुख चाहता है । जो प्रेमास्पद को ही सुख देने के लिए सब कुछ करता है ।

सत्संगी में गरीबी व दुखियों की सेवा के लिए तन,मन, धन से तत्परता रहती है । रात-दिन जाड़ा, गर्मी, वर्षा आदि द्वन्द्वों में भी सेवा के अवसरों में वह आलस्य या प्रमाद नहीं करता । सत्संगी किसी की निन्दा नहीं करता और निन्दा करने वालों से बहुत बचता है, किन्तु अपनी निन्दा तथा निन्दकों से विरोध या द्वेष नहीं करता, क्योंकि अपनी निन्दा से सत्संगी की उन्नति होती है । अनेक सद्गुणों का अभ्यास दृढ़ होता है, विनम्रता, सहनशीलता और निरभिमान आदि सद्भाव पुष्ट होते हैं । सत्संगी अपनी सेवा नहीं कराता वरन् करता है । कभी-कभी वह दूसरों की प्रसन्नता के लिए, भाव विकास के लिए ही दूसरों को भी अपने प्रति सेवा का अवसर देता है ।

सत्संगी में काम-वासना का पूर्ण संयम रहता है । न गंदी बातें सोचता है, न दुष्कर्म करता है । वासना से उसे वैराग्य होता है । उसकी आत्मा ऐसी उच्च भूमिका में निवास करती है कि कामोद्वेग उसे होता ही नहीं । बाह्य एवं आन्तरिक दृष्टि से वह स्वच्छ रहता है ।

(६) **खान-पान का संयम**- ब्रह्मचर्य रक्षा के लिए मन, वचन तथा शरीर तीनों की स्वच्छता की परम आवश्यकता है । मन का कल्मष दूर करने के लिए उपयोगी नियम दिये जा चुके हैं । अब हम शारीरिक स्वच्छता पर विचार करेंगे ।

जैसा हमारा आहार होगा, वैसे ही विचार उत्पन्न होंगे । यदि कामोत्तेजक तामसी आहार करें तो हम कामोत्तेजक विचारों के शिकार बनेंगे, पाप कर्मों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमारी प्रवृत्ति होगी और काम, क्रोध, मद, अहंकार रोगादि हमें पतन की ओर खींचेंगे । यदि हम सदा सात्विक अल्पाहार करेंगे तो पवित्र ब्रह्मचर्य बनेंगे, भोजन की महत्ता हमें ब्रह्मचर्य रक्षा में न भूलनी चाहिए । अनेक व्यक्ति यह नहीं जानते कि रात्रि का उत्तेजक भोजन किस प्रकार चित्त को उद्विग करता है और स्वप्नदोष का कारण बनता है । ठूँस-ठूँस कर हलुआ, पूड़ी, मिर्च-मसाले वाले भोजन मनुष्य को मलीन, आलसी, विषयी, निस्तेज और अल्पायु बनाते हैं । सादा व अल्पाहार करने वाला व्यक्ति निरोगी, निर्विकारी, उत्साही और तेजस्वी बन सकता है ।

अधिक भोजन करने वाला ब्रह्मचर्य धारण नहीं कर सकता । कामदेव पेटू मनुष्य को बुरी तरह पछाड़ता है, महीनों की संचित वीर्य सम्पत्ति कुछ क्षणों में नष्ट हो जाती है, मन और तन दोनों रोगी बन जाते हैं, स्वप्नदोष प्रायः रोज ही होने लगता है । केवल चटपटा स्वाद होने की बजह से ही बहुत-सा भोजन कर लेने में हर प्रकार की हानि है, भोजन भी अधिक खर्च होगा और बचा हुआ पेट में नाना प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न करेगा । पेटू व्यक्ति का मन विषयी काम चिन्तन, वासना तृप्ति की ओर पुनःपुनः भागता है । अधिक भोजन-वृत्तियों को चंचल, चित्त को विचलित और वीर्य को अपने स्थान से च्युत कर देता है । फलतः मन और तन दोनों विकारपूर्ण बन जाते हैं । ब्रह्मचारी को अपने भोजन पर तीव्र दृष्टि रखनी चाहिए । आहार की शुद्धि से सत्व की शुद्धि होती है, सत्व की शुद्धि से बुद्धि निर्मल और निश्चयी बन जाती है । फिर पवित्र व निश्चयी बुद्धि से मुक्ति भी सुलभता से प्राप्त होती है । जिह्वा वश में करना मन और शरीर को वश में करना है । सात्विक भोजन (फलाहार, दुग्धाहार, मधु, तरकारियाँ, मूँग, गेहूँ) इत्यादि के प्रयोग से शांत रस उत्पन्न होता है, बुद्धि निर्मल रहती है, वासना पर अधिकार रहता है । राजसी भोजन (कचौड़ी, पूड़ी, खट्टा, मिर्च युक्त, लहसुन, प्याज, माँस, गाँजा, चाय, भाँग, मादक द्रव्य) से मन कामी, वासना प्रिय, पापी और रोगी बन जाता है । तामसी भोजन (वासी रसहीन चीजें, तेल की तली हुई चीजें, मिठाइयाँ, गरिष्ठ पदार्थ) से वीभत्य रोगादि उत्पन्न होते हैं । जो रस अधिक उग्र होता है, अन्य रस उसी के कब्जे में आ जाते हैं ।

(१०) **ब्रह्मचारी का भोजन**– भोजन के विषय में ब्रह्मचारी सावधान रहें, क्योंकि गलत चुनाव से न केवल बीमारियाँ ही उत्पन्न होंगी, प्रत्युत रक्त विषैला और मन विकारपूर्ण बन जायेगा । प्राण शक्ति का क्षय होगा और आयु कम हो जायेगी ।

कामोत्तेजन भोजन कदापि न कीजिए । माँसाहार कामोत्तेजक है । गौ माँस, भैंस की चर्बी, भेड़ का दूध, मछली, कछुआ स्वभाव से ही अहितकर पदार्थ हैं । अधिक गुड़, शक्कर गर्मी उत्पन्न करती है । अत्यन्त मिर्चों वाला, उष्ण, मीठा, तेलयुक्त पदार्थ, प्याज, लहसुन, लाल मिर्च, उरद की दाल, मसाला, चाय, कॉफी, कोको, पान, तम्बाकू, गाँजा, भाँग, अफीम, चरस, चण्डू तामसी आहार हैं । ब्रह्मचारी को इन्हें छोड़ देना चाहिए । माँस खाने से आयु क्षीण होती है । अक्सर गठिया की बीमारी हो जाती है, रक्त विकृत होकर फोड़े-फुन्सी निकल आते हैं । माँस तमोगुणी है । शर्करामय पदार्थ हानिकर है।

ब्रह्मचारी को हलका, सादा, सुपाच्य भोजन करना चाहिए । प्राचीन काल से ही हमारे यहाँ शाकाहार और फलाहार का प्रचार रहा है । ब्रह्मचारी अधिक से अधिक फलों तथा तरकारियाँ प्रयोग करें । हम देखते हैं कि जो पशु-पक्षी प्राकृतिक भोजन करते हैं, वे स्वस्थ और दीर्घजीवी होते हैं । हमारे पुराने आचार्य मिर्च-मसालों के पक्ष में नहीं हैं । कच्चा और प्राकृतिक आहार फल, दूध, मेवे, घृत, शहद, तरकारियाँ जैसे–खीरा, ककड़ी, टमाटर, गाजर, अनार, आँवला, मुनक्का, खजूर, छुआरा, फालसा, खिरनी, नीबू, अंजीर विशेष हितकर है । अनाजों में लाल शाठी चावल, जौ, गेहूँ, मूँग, मसूर, अरहर, सेंधा नमक ये उत्तम हैं । शाक–तरकारियों में परवल, लौकी, ननुआ, बैंगन, भिण्डी आदि पत्ती वाली सब्जियाँ जैसे–पालक, मैंथी, पात गोभी, मूली, मौसमी फलों से रक्त में क्षारता बढ़ती है और अनेक रोग दूर होते हैं । ये सात्विक आहार ब्रह्मचारी के लिये विशेष उपयोगी हैं ।

ब्रह्मचारी थोड़ा खाये और जो खाये उसे खूब चबा–चबा कर, कुचल–कुचल कर खाये, लार का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिकाधिक मिश्रण करे । अधिक खाने वाला कभी वीर्य नहीं रोक सकता ।

अनेक व्यक्तियों की यह गलत धारणा है कि खूब दूध-मलाई-मिठाई उड़ाने से नष्ट किया वीर्य पुनःबन जाता है । यह विचार नितान्त भ्रान्ति है । वीर्य को बनाने में वही एक मास लगता है । अधिक गरिष्ठ भोजन से शरीर में और भी विकार उत्पन्न हो जाते हैं । धातु के नाश से रक्त के जीवाणु कमजोर पड़ जाते हैं । अतः ऐसा भोजन वीर्य को और उछाल देता है । कुछ मूर्ख दवाइयों के पीछे हाथ धोकर पड़ जाते हैं । कोई भी दवाई तुरन्त शक्ति या वीर्य पुष्टि नहीं प्रदान कर सकती । अधिकतर बाजारू दवाइयाँ ऐसा उत्तेजक गुण रखती हैं कि उससे खाने वाले को प्रारम्भ में शक्ति आती हुई मालूम होती है, किन्तु यह क्षणिक होती है । अतः ब्रह्मचारी को इन पौष्टिक दवाइयों से बड़ा सावधान रहना चाहिए । वीर्य तो सादे, सस्ते, स्वच्छ और स्वल्प भोजन से ही मिल सकता है, पर संयम की आवश्यकता है । सूखी रोटी भी हमें स्वास्थ्य, बल, उत्साह दे सकती है यदि हम अन्न में 'ब्रह्म दृष्टि' रक्खें । ब्रह्म की भावना से हम साधारण भोजन में से प्राणतत्त्व खींच सकते हैं ।

(११) **व्यसनों को त्याग दीजिए**—ब्रह्मचारी को समस्त व्यसनों से दूर रहना चाहिए, क्योंकि इनसे अनावश्यक उत्तेजना उत्पन्न होती है, रक्त में उष्णता बढ़ती है और वीर्य उछल पड़ता है । जितना आज बीड़ी, सिगरेट का प्रचार है, इतना शायद कभी भी नहीं रहा । तम्बाकू प्रत्यक्ष विष है । एक विशेषज्ञ का राय है कि तम्बाकू के सेवन से उत्तेजित होकर वीर्य पतला पड़ जाता है, पुरुषत्व क्षीण होता है, बिगड़ जाता है, नेत्र ज्योति मंद पड़ जाती है, मस्तिष्क व छाती कमजोर हो जाती है, खाँसी, दमा बढ़ते हैं । आलस्य, कार्य में अनिच्छा, हृदय की धकधकाहट, व्यर्थ की चिन्ता व अनिद्रा बढ़ती है, मुख से बुरी गन्ध आती है, शारीरिक, मानसिक, आर्थिक व सामाजिक भयंकर हानि होती है ।

तम्बाकू कहता है कि "महाराज कलि का मैं दूत हूँ । उन्हीं की आज्ञा से उस पवित्र चातुर्वर्ण्य को जिसे विधाता ने धर्माचरण के लिए बनाया है, बलपूर्वक नष्ट-भ्रष्ट और एकाकार करने के लिए इस संसार में अवतीर्ण हुआ हूँ ।"

ब्रह्मचारी को तम्बाकू किसी भी रूप में भूल कर भी न लेना चाहिए, इसके गुलाम बनने से पापों की एक सेना हमारे ऊपर आक्रमण करती है, चरित्र शिथिल हो जाता है और मनुष्य शराबखोरी और व्यभिचार की ओर झुक जाता है, सत्यासत्य, नीति-अनीति का विवेक नष्ट हो जाता है । अन्य मादक पदार्थों की अपेक्षा तम्बाकू से बुद्धि को अधिक हानि होती है । इन्द्रियं उत्तेजना, स्मरण शक्ति को हानि, चित्त की चंचलता और मस्तिष्क के अनेक रोग उत्पन्न होते हैं । अतः इस कालकूट से ब्रह्मचारी को बड़ा सावधान रहना चाहिए ।

शराब तो साक्षात् विष है । शराबी अक्सर व्यभिचारी होता है । उसे धर्म, नीति, सदाचार का ज्ञान कहाँ ? शराब की उत्तेजना में मनुष्य पशु से भी बदतर हो जाता है और अपने मनोवेगों का गुलाम बन जाता है । शराब से स्मरण शक्ति पंगु हो जाती है और बिगड़ते ही कल्पना, मनन, विवेचन, ध्यान, निर्णय आदि सूक्ष्म मानसिक शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, मन अश्लील कल्पनाओं से भर जाता है, स्नायु निर्बल हो जाती हैं और उनकी शक्ति कम होते ही एकाग्रता, चिंतन और निर्णय शक्ति पंगु हो जाती है ।

चाय को लोग साधारण पेय समझते हैं किन्तु साधारण दीखने वाली यह चीज भी दुष्परिणामों से भरी है । इससे जीवन शक्ति का ही नाश नहीं होता प्रत्युत स्नायुओं की क्षणिक उत्तेजना से इसका अनैतिक प्रभाव बड़ा पड़ता है । जो व्यक्ति अधिक चाय पीते हैं, वे प्रायः चिडचिड़े, क्रोधी, अग्निमांद्य और अजीर्ण के शिकार, शारीरिक दौर्बल्य से ग्रस्त रहते हैं । अतः इसे त्याग देना चाहिए । भाँग, गाँजा, चरस प्राचीनता प्रेमी व्यसनियों की प्रिय वस्तु है । साधु-संत, बैरागी मंदिरों में रहकर इन व्यवसनों का प्रयोग करते हैं । ब्रह्मचारी यदि इनकी संगति में बैठे तो उसे कहीं उनकी देखा-देखी उन लोगों का अनुकरण न करने लगना चाहिए ।

व्यभिचार एक ऐसा सुन्दर और आकर्षण शक्ति वाला दैत्य है जो अपनी सुन्दर मूर्ति से लोगों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मौत के घाट उतारता है । भयंकर से भयंकर परिणाम, पाप इस व्यसन से होते हैं । आज समाज में जो विषय लोलुपता दिखाई देती है, जो पापाचार फैला हुआ है, उसका एक कारण उत्तेजक कामवासना को जगाने वाला दूषित साहित्य है । व्यभिचार से सावधान रहने को भी लेखक इस ढंग से लिखते हैं । ऐसे पतित साहित्य से ब्रह्मचारी बड़ा सावधान रहे । व्यभिचार के कई कारण हैं । जैसे—घर का गंदा या बुरा वातावरण । बुरी सोहबत, कुसंगति, नौकरी की संगति, दुश्चरित्र पाठक और छात्रालयों के संचालक, सिनेमा, नाटक, समाज की अश्लील गालियाँ गाने, होली, कजली इत्यादि । अनेक व्यक्ति केवल मनोविनोद के लिए कौतूहल वश व्यभिचार के शिकार बनते हैं ।

ब्रह्मचारियों ! इस पाप से सावधान ! इसमें कहीं न फँस जाना, अन्यथा सिरदर्द, बदहजमी, रीढ़ की बीमारियाँ, मिर्गी, बहुमूत्र वीर्यपात, स्वप्नदोष, क्षय, पागलपन और अन्ततः मृत्यु के शिकार बनोगे । इन सब रोगों का प्रधान कारण वीर्य पात है । वीर्य की रक्षा करो, इन सबसे मुक्त हो जाओगे । अस्वाभाविक वीर्यपात बलबुद्धि, प्रतिभा, स्वातंत्र्य भावना का नाशक है । अतः सावधान !

(१२) **गुप्तांगों का शौच**— गुप्तांगों के स्पर्श से मन में काम-वासना का उद्रेक होता है । अनेक व्यक्ति गुप्तांगों की उचित सफाई नहीं करते, अतः उनमें मैल जमा हो जाता है और खुजली होती है, खुजली करने से इन्द्रियों में उत्तेजना होने लगती है । मन गर्हित विचारों से भर जाता है और गुप्त वासना जाग्रत हो जाती है । जननेन्द्रिय में शरीर की तमाम कोमल नसें इकट्ठी होती हैं, अतः उनका शौच ब्रह्मचारी के लिए अति आवश्यक है ।

अशुचि स्थानों का स्पर्श न कीजिए, न उनकी और दृष्टिपात कीजिए अन्यथा मन में वासना का उद्रेक हो जायेगा । काम रिपु जागृत होने पर आप अपने को न सम्हाल सकेंगे । गुप्तांगों को देखने मात्र से वासना का ताण्डव प्रारम्भ हो जावेगा, क्योंकि गन्दे विचारों से इन्द्रियाँ छुब्ध हो जावेंगी । स्नान करते समय साबुन से सफाई करके धो डालिए, शौच के समय भी स्वच्छता से धो डालने की आछत बनाओं । मैल एकत्रित न होने दीजिए । हमारे पूर्व पुरुषों ऋषि-मुनियों के मूत्र-त्याग के समय तक जल ले जाने की आज्ञा दी है । इसका उद्देश्य ही है कि मूत्र त्याग के पश्चात् इन्द्रिय स्नान करा दिया जाय । मूत्र के कण उसमें न लगें । मल-मूत्र त्यागने पश्चात् स्वच्छता से हाथ-पाँव धोने चाहिए । शौच क्रिया में काफी पानी ले जाइये । गुप्त इन्द्रिय की त्वचा में मल एकत्रित न हो जाये, यह ध्यान रखिये । ठण्डे जल से गुप्तेन्द्रिय को स्नान करा देने से मन शांत हो जाता है । समस्त वासनाएँ दब जाती हैं और मन पर काबू हो जाता है ।

ब्रह्मचारी को उचित तो यही है कि शौच के पश्चात् स्नान करे, किन्तु यदि सम्भव न हो तो कम से कम वस्त्र बदल लेना चाहिए । मिट्टी से हाथ धोने के पश्चात पुनः एक बार साबुन से स्वच्छतापूर्वक हाथ धोने चाहिए । मूत्र त्यागने के पश्चात् ठण्डे जल से इन्द्रिय स्नान अवश्य करना चाहिए । इसके द्वारा आप अपने विकार, असुरी विचार, मनोवेगों, राक्षसी कल्पनाओं को वश में कर सकेंगे । ब्रह्मचारी को इन्द्रिय स्नान, स्वच्छता और गुप्तांगों की उचित सफाई का ध्यान रखना चाहिए । सत्यव्रतजी लिखते हैं 'जननेन्द्रिय को परब्रह्म की उत्पादक शक्ति का चिन्ह समझना चाहिए । उसकी ओर जाते ही दैवी भावों का उदय होना चाहिए । इन्द्रिय स्पर्श कभी न करना चाहिए । ऐसे कार्य की ओर कभी भूलकर भी ध्यान नहीं देना चाहिए जिसे खुले करते हुए हृदय में पाप की लज्जा तथा भय की आशंका होती है । ऐसा कार्य सदा पापमय होता है । यही पाप की पहचान है । जननेन्द्रिय के अगले हिस्से को, धीरे से उसकी ऊपरी त्वचा पीछे हटाकर शुद्ध भाव से प्रतिदिन धोना एक धार्मिक कृत्य के रूप में करना चाहिए । इस समय हृदय में परमात्मा की मातृ-शक्ति का ध्यान करते रहना चाहिए ।'

आपके शरीर का प्रत्येक अंग पवित्र हेतु से बना है । उसमें दैवी शक्तियों का अस्तित्त्व है । गन्दगी के लिए कहीं भी गुंजायश नहीं रक्खी गई है । इन्द्रियों की स्वच्छता पर मन की स्वच्छता, आत्मा की स्वच्छता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्भर है । इन्द्रिय, अंग–प्रत्यंगों की अशुचिता का स्पष्ट परिणाम निन्द्य वासना मय विचार, कुत्सित कल्पनाओं की वृद्धि और अन्ततः वीर्य नाश है ।

गुह्येन्द्रिय को हर प्रकार से स्वच्छ रखना सीखिये । उसे शीतल जल से मल-मूत्र त्याग के पश्चात धोया कीजिए । इन्द्रिय स्पर्श के समय ब्रह्मचारी अधिक घर्षण न करे अन्यथा उत्तेजना होनी सम्भव है । ठण्डे जल से इन्द्रिय स्नान कराने से सब नसों की शीतलता रहती है, इन्द्रियों की चंचलता नष्ट होती है और मन शान्त और प्रफुल्ल रहता है । चूँकि वासना का सम्बन्ध गुप्तेन्द्रिय से है, अतः उसके शौच, स्वच्छता, निर्मलता की बड़ी सावधानी रखनी चाहिए ।

(१३) **शरीर को बलवान बनाइये**– बलवान् शरीर आध्यात्मिक उन्नति और ब्रह्ममय जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है । बलवान् शरीर से आत्मा बलवान् बनती है, मन प्रसन्न रहता है और मनोद्वेगों को रोकने, चित्तवृत्ति के निरोध करने में सहायता मिलती है । बलवान् व्यक्ति, काम के दैत्य भावों, पाशविक वृत्तियों, वासना और दूषित विकारों का दृढ़ता पूर्वक दमन कर सकता है । कमजोर व्यक्तियों को कामदेव पटक-पटक कर मारता है । आसुरी विचार नाच नचाते हैं, मन चंचल रहता है । उसके विकार बलवान् होते हैं और इच्छा शक्ति पंगु बन जाती है ।

उच्च और पवित्र दिशाओं में चित्त वृत्तियों को एकाग्र करने के लिए ब्रह्मचारी का बलवान् शरीर चाहिए । ब्रह्मचारियों ! मजबूत बनो, अंग-अंग को व्यायाम से दृढ़ करो, अणु-अणु में जीवन शक्ति भर लो । शक्तिशाली ब्रह्मचारी के पास मन को चंचल करने वाला, अन्तःस्थल को अशान्त करने वाला, प्रचण्ड विकारों के वशीभूत करने वाला कोई मानसिक राक्षस नहीं आ सकता ।

अपनी परिस्थिति, शक्ति और हैसियत के अनुसार प्रत्येक ब्रह्मचारी व्यायाम चुन ले । सूर्य नमस्कार, प्राणायाम, आसन, डण्ड-बैठक, डम्बल, तैरना, कूदना, श्वास-प्रश्वास की कसरतें चुन लेनी चाहिए । सूर्य नमस्कार के व्यायामों द्वारा सूर्य की रश्मियों द्वारा प्राण तत्त्व हमारे फेफड़ों में प्रवेश करता है । श्वास-प्रश्वास द्वारा फेफड़ों की अच्छी कसरत हो जाती है । प्राणायाम द्वारा आनन्द, बल, नवस्फूर्ति मिलती है आलस्य में न रहें । जो कुछ भी हो सके थोड़ा बहुत व्यायाम अवश्य करें । जो सारे दिन आलस्य की केंचुली में बन्द पड़ा रहेगा, वह भला किस प्रकार ब्रह्मचर्य स्थिर रख सकता है ? ब्रह्मचारी तो स्वस्थ, कुशाग्र, बुद्धिमान, स्फूर्तिमान होता है । शारीरिक बल से उसे आत्मबल प्राप्त होता है ।

नियमित व्यायाम करने से हमारी समस्त नीच इन्द्रियाँ फीकी पड़ जाती है और पाप वासनाऐं तत्काल दब जाती है । रक्त का प्रवाह प्रत्येक अंग में तीव्र गति से होने लगता है । नियमित व्यायाम करने वाले पहलवान पूर्ण शान्त निर्विकारी, ब्रह्मचारी और दीर्घजीवी रहते हैं । व्यायाम आत्मोद्धार का गुप्त उपाय है । इस अमृत-संजीवनी का उचित प्रयोग होना चाहिए ।

(१४) **ब्रह्म मुहूर्त से लाभ उठाइये**– कवियों ने ब्रह्म मुहूर्त को लेकर मधुर कल्पनाएँ की हैं–प्रातःकालीन सुखद समीर सुरम्य सरोवरों, उषा की रसभरी आभा और स्वर्णमयी रश्मियों की थिरकन के जो गीत गाये हैं, वे नितान्त सत्य है । सूर्योदय का आगमन जीवन, बल, आशा, उत्साह, नवजीवन का द्योतक है । सूर्य भगवान् की प्रथम किरण के स्पर्श मात्र से समस्त प्रकृति गद्‌गद् हो चारों ओर सुगंधित सौरभ, मतवाली महक, आलौकिक आनन्द, सुमधुर गुंजन, अनूठी कांति बिखेरती फिरती है ।

चाणक्य नीति में कहा है, "सूर्योदय के समय सोने वाले को, चाहे वह चक्रधारी विष्णु ही क्यों न हो, लक्ष्मी छोड़ देती है । संसार के प्रायः सब दीर्घजीवी महापुरुष बड़े-बड़े योगी-मुनि, तपस्वी सूर्योदय से पूर्व ब्रह्म मुहूर्त में उठने के अभ्यासी थे । बाल सूर्य की प्रथम रश्मियों को नेत्र पर लेना, सूर्य को अर्ध्य देना, सूर्योदय के समय दर्शन करना इसी महत्ता का द्योतक हैं । इस मंगलमय समय को ब्रह्म मुहूर्त कहा गया है । ब्रह्म मुहूर्त सूर्योदय से डेढ़ घण्टे पूर्व होता है । ब्रह्मचारी को ब्रह्म मुहूर्त में शैय्या त्याग कर शौचादि नित्य कर्मों से निवृत्त होना अनिवार्य हैं । कहा है–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वास्थ्यो रक्षार्थ मायुषः ।
तत्र दुःखस्य शान्तर्थे स्मरेद्वि मधुसूदनम् ।।

अर्थात्—"स्वस्थ मनुष्य को चाहिए कि वह अपने जीवन की रक्षा के निमित्त ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाये तथा दुःखनाश के लिए भगवान् का भजन करें ।"

ब्रह्मचारी को जल्दी सोने और जल्दी उठने का अभ्यास होना चाहिए । प्रातःकाल आलस्य में बिस्तर पर पड़े रहने से अनेक प्रकार की कुत्सित वासनाएँ हमें अशान्त कर देती हैं, मनोवृतियाँ अनुचित मार्गों की ओर आसानी से प्रवृत्त हो जाती हैं । काम-वासना प्रायः ऐसे ही व्यक्ति को तंग करती है, जो आलस्य में अधजगे शैय्या पर पड़ा रहता है । काम, क्रोध, आलस्य, निद्रा, मैथुन इनमें ज्यों-ज्यों अधिक फँसो, त्यों-त्यों ये अधिकाधिक सताते हैं । स्वामी शिवानन्दजी ब्रह्म मुहूर्त के विषय में लिखते हैं "प्रातः-काल को अमृत वेला कहते हैं । सचमुच सृष्टि के इस प्रातःकालीन दिव्य अमृत को त्यागने वाला पुरुष जल्दी ही वृद्ध एवं मृत के तुल्य हो जाता है । हमारे ऋषि-मुनि इसी अमृत का नित्यशः ब्रह्म मुहूर्त में यथेष्ठ सेवन कर इतने चंगे और चैतन्यमय बने हुए थे, रातभर के आराम के कारण प्रातःकाल में सम्पूर्ण शक्तियाँ अत्यन्त सतेज और बलिष्ठ रहती हैं । ऋषि ब्रह्म मुहूर्त में उठकर सर्वप्रथम शक्तिमान, परमात्मा का ध्यान करते थे, जिससे परमात्मा की शक्ति प्रवेश करती थी और बड़े-बड़े राजा भी उनके सामने सिर झुकाते थे । यदि हम चाहते हैं कि हमारे सम्पूर्ण काम, क्रोध अर्न्तबाह्य शत्रु हमारे सामने सिर झुकावें और संसार में हमारी कीर्ति हो तो हमें प्रातःकाल उठने का अभ्यास डालना चाहिए ।"

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि रात्रि में मनुष्य अपनी दूषित वायु कार्बनडाय ऑक्साइड गैस को बाहर फैंकता है और इसी दूषित वायु को ग्रहण कर वृक्ष प्राणवायु—ऑक्सीजन को छोड़ा करते हैं अतएव ऐसे समय शुद्ध वायु प्राप्त होती है । इस स्वच्छ वायु से सब दिशाएँ व्याप्त होती हैं और वह श्वासोच्छ्वास द्वारा फेफड़ों में जाकर फेफड़ों के समस्त विकारों को दूर कर शरीर में प्राण संजीवन कर हमें निरोग रखता है ।

ब्रह्म मुहूर्त की वायु में बुद्धि का, विकास का परिणाम अधिक मात्रा में विद्यमान रहता है, रक्त की स्वच्छता एवं गति बढ़ जाती है और मस्तिष्क पुष्ट बनता है । सर वाल्टर स्काट का कथन है कि प्रातःकालीन वायु स्मरण शक्ति और कल्पना शक्ति में आश्चर्यजनक तीव्रता एवं सजगता उत्पन्न करती है, नये-नये विचार पैदा कर उल्लास, उत्साह और उत्फुल्लता की अभिवृद्धि करती है ।

इस शरीर का आत्मा से क्या सम्बन्ध है ? सब जीवों के साथ परमात्मा को क्या सरोकार है ? शैय्या से उठते ही पहले इस तत्त्व पर मन केन्द्रीभूत कीजिए। तत्पश्चात 'जगत् में कल्याण भरा है, यह सोचिए । फिर शौचादि से निवृत हो पूजन भजन गीता पाठ कीजिए । फिर जो ॐ भूर्भुवः स्वः इन तीनों को प्रकाशित करने वाले और चैतन्य का विकास करने वाले हैं, उन परमदेव परमेश्वर का स्मरण करते हुए घूमने निकल पड़िये । आपकी मुख कांति द्विगुणित होगी, बुद्धि का विकास होगा, पवित्र रक्त और पवित्र चिंतन से आप में नई स्फूर्ति का संचार होगा । मन के विकल्प वासना पूर्ण इच्छाएँ, चंचल मनोवृत्तियाँ नष्ट हो जायेंगी ।

प्रातःकाल जल्दी उठने के लिए यह आवश्यक है कि जल्दी ही सोया जाये । बारह बजे के पहिले की एक घण्टा नींद बाद के दो घण्टों के बराबर होती है । ब्रह्मचर्य रक्षा के लिए दस बजे, उससे पूर्व ही सो जायँ और प्रातः काल चार बजे शैय्या त्याग कर दें प्रातःकाल हम आलस्य में पड़े रह जाते हैं तो स्वप्नदोष हो जाता है स्वपन्दोष अन्तिम पहर में होता है । मूत्र त्यागने में जहाँ आलस्य हुआ कि स्वप्नदोष हो जाता है, अतः चार बजे ही उठ बैठना चाहिए । जो व्यक्ति ब्रह्म मुहूर्त में पड़े-पड़े खर्राटे लेते हैं । अल्पायु आलसी दरिद्र हठी और बुरे विचार वाले बनते हैं । ब्रह्मचारी का सोना-जागना नियमित होना चाहिए । प्रातःकाल उठकर मन में इस प्रकार के भाव रखने चाहिए—

"गर्हित वासनाएँ, कामोत्तेजक विचारधाराएँ मेरी मनः शांति को भंग नहीं करती । सांसारिक माया, मोह, प्रबन्ध, व्यर्थ के धुओं में फँसकर मैं अपने हृदय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को शांति को नही खोता । मेरा मन स्वस्थ है, चित्त समतोल है, हृदय मे भक्ति, प्रेम और शंति का स्रोत खुल गया है । मोह, काम, शंका, भय, शोक और वासना की तरंगें मेरे मानस सरोवर में अन्तर्द्वन्द्व नहीं मचा सकती । मैं उद्वेग और मनोवेगों पर पूर्ण नियत्रण रखता हूँ ।"

कोई पवित्र भजन गुनगुनाते हुए उठिये । अपने आपको वीर्यवान् होने के संकेत दीजिए । यदि हम अपने आपको वीर्यवान् कहेंगे, समझेंगे वैसा ही उच्चारण करेंगे और वैसा ही अभिनय करेंगे तो अनायास ही वीर्यवान् बनते जायेंगे । अतः इसी प्रकार का भाव हमें प्रातःकालीन स्तुति प्रार्थना में लाना चाहिए । ब्रह्मचारी को प्रातःकाल उठते ही दो चार भजन अत्यन्त प्रेम से गाने चाहिए । उत्तमोत्तम भक्तिपूर्ण पदों का पाठ करने से दैवी तेज प्रकट होता है और समस्त दुश्चिन्ताओं का नाश होता है । अतः आप ब्रह्मचर्य धारण का दृढ़ संकल्प मन में रखकर शुभ संकल्प से अपना दिन प्रारम्भ किया कीजिए । ये पवित्र भजन शिव संकल्प, शुभ भावना, स्थूल रूप से मूर्तिमान होकर प्रकट होंगे । हम अपने गुप्त मन में जिन चित्रों की सृष्टि करते हैं, वे व्यवहार में स्थूल रूप में प्रकट होते हैं, इसलिए वेद में कहा गया है—"साधको ! तुम्हारी कल्पना सदा सर्वदा शिव संकल्पमयी हो, तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तुः" । अपने अन्तःकरण में पवित्र अनन्त स्वरूप परमात्मा के मानसिक चित्र की रचना किया करो ।

(१५) **काम-वासना को भूखे मारिये-** उपवास आत्म शुद्धि का सर्वोत्तम उपाय है । आयुर्वेद में कहा है, "अग्नि आहार को पचाती है और उपवास दोषों (वासना, कुत्सित कल्पना, आन्तरिक विकार) को पचाता अथार्त् नष्ट करता है ।" उपवास हमारे शरीर का एकत्रित मल निकालता है, मानसिक मल भी दूर होता है । जब हम अनेक प्रकार के भोजनों से उदर को भर लेते हैं, तो मन की चंचलता और बढ़ जाती है । भरे पेट पर हमें शरारत की सूक्षती है । प्रकृति ने दोष निवारण की जो विधियाँ निकाली हैं, उपवास उसमें सर्वोत्कृष्ट है, उपवास की रोग तथा मन का मैल दूर करने की शक्ति पर प्राचीन ऋषि-मुनियों को बड़ी श्रद्धा थी । अब धीरे-धीर लोग उपवास के महत्त्व को मानने लगे हैं ।

ब्रह्मचारी के लिए मास में दो उपवास (एकादशी) यथेष्ट हैं । वह आलसी नहीं होता, सदैव काम काज भजन-पूजन में निरत रहता है, इससे शरीर में गन्दगी कम इकट्ठी होती है, किन्तु फिर भी मास में दो उपवास अतीव आवश्यक हैं । अनेक व्यक्ति यह समझते हैं कि उपवास प्रारम्भ करने से पूर्व खूब भोजन किया जाये और उपवास तोड़ने पर फलाहार के साथ-साथ मिठाई, रबड़ी इत्यादि गरिष्ठ पदार्थ लिये जायँ यह धारणा नितान्त मूर्खतापूर्ण है । जब आप कोष्ठ शुद्धि अथवा आत्म-बुद्धि के निमित्त उपवास करते हैं तो भोजन ठूँसने से क्या लाभ ? उपवास करने का मुख्य आशय तो इन्द्रियों की प्रबलता एवं चंचलता नष्ट करना है । अतः भोजन खान-पान के बखेड़े से दूर रहकर ब्रह्मचारी को अपना अधिकांश समय आत्मचिंतन में लगाना चाहिए । किसी ग्रन्थ का अवलोकन करें, साधु महात्माओं का सत्संग करें या स्वास्थ्य रक्षा के लिए किसी रमणीय प्राकृतिक स्थान में टहलें । सिनेमा, ताश, शतरंज या नाच गाने में व्यर्थ समय नष्ट न करें । उपवास के समय मानसिक स्थिति शांत, धर्मरत रहनी चाहिए यदि ब्रह्मचारी किसी भय एवं चिन्ता के कारण उपवास नहीं कर सकता तो उपवास न करना ही उत्तम है । उपवास के समय चित्त वृत्ति उच्च विषयों पर एकाग्र करना चाहिए, अपनी शक्तियों का कम से कम क्षय करना चाहिए ।

साधारण उपवास में थोड़ा-थोड़ा पानी पीते रहना चाहिए । प्यास के अनुसार पानी की मात्रा में न्यूनाधिक परिवर्तन करना चाहिए । निर्जल उपवास शरीर की गंदगी को बहुत तेजी से निकालता है, किन्तु यह अपेक्षाकृत कठिन है । जल का प्रयोग अनेक दृष्टियों से उत्तम है । उपवास के साथ प्राणायाम, कसरत, मालिश, धूप से स्वास्थ्य सुधारना चाहिए ।

(१६) **प्राणायाम किया कीजिए**— मन तथा इन्द्रियों को पवित्र व स्थिर करने के लिए प्राणायाम अद्वितीय है । प्राणायाम से रोगी भी निरोगी और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पतित व्यक्ति भी ब्रह्मचारी बन सकता है । मनुस्मृति में लिखा है–''जैसे अग्नि में तपाने से स्वर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध हो जाता है, वैसे ही प्राणायाम करने से मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं '' प्राणायाम से मन की अवस्था शांत और स्थिर हो जाती है और चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है । इस अवस्था में ब्रह्मचारी को जो आनन्द होता है, वह अवर्णनीय है । यदि आप ब्रह्मचर्य स्थिर रखना चाहते हों तो प्राणों पर काबू करने के लिए प्राणायाम अवश्य कीजिए ।

प्राणायाम के अनेक लाभ हैं, मन और चित्त की वृत्ति का निरोध होकर ज्ञान प्राप्त होता है । आयुष्य की वृद्धि होती है, सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकार के शरीरों का विकास होता है, इन्द्रियों पर बहुत शीघ्र ही विजय होती है, वीर्य ऊर्ध्वगामी और अमोध हो जाता है, धारणा शक्ति का विकास, दिव्य बुद्धि की प्राप्ति और विषय-वासना का नाश होता है । शारीरिक विकार दूर होकर मन हलका हो जाता है ।

प्राणायाम तीन प्रकार का होता है–पूरक, कुम्भक और रेचक । पूरक अर्थात् शरीर में शुद्ध वायु पूर्ण रूप से भरना । शुद्ध वायु के भरने से रक्त पवित्र होता है, प्राणायाम से नवजीवन प्राप्त होता है । कुम्भक का अर्थ है-फेफड़ों में भरी हुई वायु को स्थिर रखना और रेचक का अभिप्राय है हवा को धीरे-धीरे बाहर निकालना । इन तीनों क्रियाओं का मतलब यही है कि हम श्वास-प्रश्वास की क्रियाओं को करें, फेफड़ों में धीरे-धीर हवा भरें, उसे कुछ देर तक अन्दर रक्खें, स्थिर रखें और तत्पश्चात धीरे-धीर बाहर निकालें इन क्रियाओं से दूषित वायु बाहर निकलेगी और शुद्ध वायु से फेफड़े अपना कार्य अच्छी तरह कर सकेंगे । नासिका के एक स्वर से वायु भरना और दूसरे से निकालना भी अत्युत्तम है । पूरक, कुम्भक और रेचक तीनों मिलकर प्राणायाम हुआ । यह क्रिया बार-बार होनी चाहिए ।

प्राणायाम से आत्मबल बढ़ता है और विचारों में सात्विक भावनाएँ उठने लगती हैं, मस्तिष्क की थकान दूर हो जाती है, आत्मज्योति जागृत होने लगती है और वीर्य शुद्ध बनता है । प्राणायाम से ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है । अतः दीर्घायु, निरोग, ब्रह्मचारी और सामर्थ्य सम्पन्न बनने के लिए प्राणायाम की प्रचण्ड शक्ति को अपनाइये ।

उद्योगी बनिये–आलस्य जीवन का मैल है । काम में आने वाला औजार चमकदार रहता और अधिक चलता है । उसी भाँति जो ब्रह्मचारी सदा उद्योग में प्रवृत्त रहता है, व्यर्थ गप-शप में, निन्दा, पर छिद्रान्वेषण में अपना समय नहीं लगाता, वह काम-वासना का दमन कर सकता है । ऐसे उद्योगी व्यक्ति के पास वासना पूर्ति के लिए समय ही कहाँ ? आलसी व्यक्ति को कामदेव पटक-पटक कर मारता है । किन्तु जो सदा सुकर्मों में प्रवृत्त रहता है, आलस्य को मार भगाता है, वह निरन्तर प्रगतिवान् रहता है । निरुद्योगी पुरुष कभी ब्रह्मचर्य धारण नहीं कर सकता, सततोद्योगी अपनी कांति सुगन्ध से सबका मन मोह सकता है। उद्योग से नीच वासनाएँ स्वयं दब जाती हैं ।

ब्रह्मचारियों ! अपने जीवन का एक पल भी व्यर्थ बरबाद न करो । कुछ न कुछ करते रहो । आलसी मस्तिष्क शैतान का पिटारा बन जाता है । उद्योगी के पास आलस्य नहीं फटक सकता । वह जगत् का कल्याण भी कर सकता है, साथ ही समाज सेवा, जनता में धर्म प्रचार भी पर्याप्त रूप से कर सकता है । वह निकम्मा न रहे, अपने जीवन के प्रत्येक पल का सदुपयोग करे, उद्योगी बने ।

प्राण-शक्ति सम्वर्धित कीजिए

विवेकानन्द ने एक बार कहा था कि जिन्हें जीवन में कुछ कहने लायक सफलता अर्जित करनी हो, उन्हें ब्रह्मचर्य के महत्त्व को समझ लेना चाहिए । भौतिक जीवन में जहाँ इससे संकल्प और प्रतिभा का जागरण होता है, वहीं आध्यात्मिक जीवन को विभूतिवान बनाने में इसकी महती भूमिका है ।

यों ब्रह्मचर्य का प्रचलित अर्थ तो इंद्रिय संयम है, पर इसका शब्दार्थ इससे बिल्कुल भिन्न है । जो चर्या ब्रह्म के गिर्द चलती हो, वह ब्रह्मचर्य कहलाती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । ईश्वर प्राप्ति के लिए काम सेवन पर नियंत्रण प्राप्त करना प्राचीन काल में एक आवश्यक अनुबंध के रूप में स्वीकार किया गया था और इस मार्ग को ब्रह्मचर्य कहा गया था । चूँकि इसमें अहर्निशि ब्रह्मचर्चा और चिंतन ही प्रमुख थे, अस्तु क्रिया-बोधक नाम रखा गया । उपासना के क्षणों में ईश्वर का गुणानुवाद तो अभीष्ट था ही, इसके अतिरिक्त दिनचर्या के अन्य कामों में भी दिव्य सत्ता का सतत् स्मरण और समीपता का अनुभव किया जाता । इस प्रकार हर कार्य में ब्रह्मसत्ता के बराबर मनन के कारण ही यह मार्ग ब्रह्मचर्य कहलाया ।

आज इसकी लकीर भर पीटी जा रही है । तथाकथित भगवद्परायण लोग संयम के नाम पर स्खलन को तो किसी प्रकार रोक लेते हैं, पर मानसिक निग्रह के न बन पड़ने से जो ऊर्जा ऊपर चढ़कर व्यक्ति को उर्ध्वरता बना सकती थी, वह दूसरे मार्ग से क्षरित होकर उन्हें खोखला बनाती रहती है। इस तरह सत्चिंतन के अभाव में शारीरिक नियमन आधे-अधूरे स्तर का बना रहता है । शायद इसी कारण से प्राचीन आचार्यों ने इस बात की आवश्यकता अनुभव की थी कि मन को सदा उदात्त भूमि में बनाये रखा जाये । इससे इन्द्रिय संयम स्वतः निभता चलेगा । निश्चित ही तब वे इस मनोविज्ञान से पूर्ण-रूपेण परिचित हरे होंगे कि मन ही कामुकता की जड़ है । उसे यदि किसी श्रेष्ठ चिंतन में लगा दिया गया तो फिर काम का उल्लास में उदात्तीकरण सम्भव है । वर्तमान में सर्वत्र इसके विपरीत आचरण हो रहा है, अतः काम को परिष्कृत कर पाने में न तो सफलता मिल पाती है न कोई वास्तविक ब्रह्मचारी बन पाता है । देखा गया है कि क्षरण को रोक लेना ही सम्प्रति ब्रह्मचर्य की कसौटी बनी हुई है, भले ही चिंतन कितना ही अश्लील और कामोत्तेजक क्यों न हो । प्राचीन समय में ऐसी बात नहीं थी । तब विचारणा को प्रमुख और बिंदु क्षरण को गौण माना जाता था । विचारणा यदि ठीक–ठीक सध गई, तो फिर काम-क्रीड़ा पर नियंत्रण कोई बहुत कठिन नहीं रह जाता और यदि इन दोनों पर विजय प्राप्त कर ली गई, तो लक्ष्य तक पहुँचना सरल हो जाता है । यहाँ जानने योग्य तथ्य यह है कि काम-कौतुक से जितनी ऊर्जा बरबाद होती है, उससे कई गुनी अधिक शक्ति मानसिक काम-सेवन से नष्ट होती रहती है । इसलिए आत्मोत्थान के लिए ऊर्जा क्षरण के उक्त दोनों मार्गों को बन्द करना पड़ता है तभी यथार्थ उन्नति करतलगत कर पाना सम्भव है, अन्यथा दूसरों पर बड़प्पन जताने हेतु येन-केन प्रकारेण भले ही काम-वृत्ति पर रोक लगा दी गई हो पर इससे कोई बड़े लाभ की आशा नहीं की जा सकती । आत्मोत्कर्ष जैसा महत्त्वपूर्ण प्रयोजन तो इतने भार से सध ही नहीं सकता यह तो वैसा ही करना हुआ जैसे किसी पात्र में रखे पानी के एक मार्ग को बंद कर दूसरे को खोल देना । इससे अंतर इतना ही पड़ सकता है कि जो संग्रह कुछ ही दिनों में समाप्त होने वाला था, अब वह धीरे-धीरे कर खत्म होगा और थोड़े अधिक समय तक चलेगा । यहाँ महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि शक्ति क्षरण के कितने रास्ते बंद हैं ? महत्ता इस बात की है कि पथ पूर्णतया बंद है या नहीं ? यदि नहीं तो फिर यही समझना चाहिए कि धीमी आत्महत्या जैसी प्रक्रिया चल पड़ी जिसमें व्यक्ति की मृत्यु तो नहीं होती पर शनैः–शनैः प्राण शक्ति के क्षीण होते जाने से अंत में खोखली काया भर शेष रह जाती है । इस अवस्था में कलेवर पुतलों की तरह चलता–फिरता दिखाई तो पड़ता है, पर कुछ कर-धर पाने में असहाय स्तर का बना रहता है । यह मरण से भी बुरी दशा है । ऐसी स्थिति में आत्मोन्नति तो क्या, भौतिक प्रगति भी भारी पड़ने लगती है और जैसे-तैसे कर जर्जर शरीर को खींचा-धकेला जाता है । इस दोहरी हानि से बचने के लिए ही असंयम से विरत रहने का उपदेश किया गया है, जबकि संयम पालने वाले न सिर्फ शरीर की दृष्टि से बलिष्ठ, ओज और तेजवान होते हैं, अपितु चेतना की दृष्टि से भी प्राणवान् होते हैं । प्राणबल के लगातार इकट्ठा होते चलने से व्यक्ति अपने चरम लक्ष्य की ओर बढ़ता रहता और अंततः उसे प्राप्त कर लेता है । यह समग्र प्रक्रिया ही ब्रह्मचर्य के अंतर्गत थी, पर इसे विडंबना ही कहना चाहिए, जिसमें आधे को पूर्ण मान लिया गया हो ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"सेलिबैसी-ह्वाट डज इट रियली मीन ?" नामक ग्रंथ में जॉन ट्रेबर लिखते हैं कि वीर्य वस्तुतः एक प्रकार का रसायन है, जिसकी क्षति-पूर्ति शरीर द्वारा बराबर होती रहती है । महत्त्वपूर्ण इस रसायन को रोक रखना नहीं, वरन् उस अपव्यय की सुरक्षा है, जो बिन्दुपात के साथ प्राण के एक बड़े हिस्से के रूप में बरबाद होती रहती है । यदि प्राण निर्गमन को रोक कर वीर्य को गिरा पाना किसी प्रकार सम्भव हो तो फिर रतिक्रिया में किसी प्रकार की कोई हानि जैसी बात नहीं, पर ऐसा कर पाना शक्य नहीं । इसीलिए उस क्षति को टालने के लिए वीर्यपात को ही रोकना पड़ता है ।

'काम' का अपना एक आनन्द है । शरीर उसे भोगना चाहता है पर जब व्यक्ति हठपूर्वक उसको रोकता और उस सुख से देह को वंचित करता है तो अंदर से एक तीव्र प्रतिरोध उभरता है । यही खतरनाक है । दुःख और पागलपन यहीं पैदा होते है । ऐसी दशा में यदि कोई दूसरा बड़ा सुख मिल जाये तो विक्षिप्तता टल जाती और एक अनिर्वचनीय आनन्द मिलने लगता है । पागलपन तो उस स्थिति में आता है, जब मनुष्य उपलब्ध सुख को त्याग दें, किन्तु सामने कोई दूसरा सुख नहीं हो । यदि काई दूसरा बड़ा सुख मिल जाये तो निश्चय ही वह पहले वाला छोटा और गौण हो जायेगा एवं उसकी महत्ता नगण्य जितनी रह जायेगी, ठीक वैसे ही जैसे छोटी रेखा के आगे कोई बड़ी लकीर खिंच जाये तो पहले वाली अप्रधान और दूसरी प्रमुख हो जाती है ।

इसकी उपलब्धि के लिए ऋषियों ने एक सारगर्भित सूत्र दिया है । यदि उसे जीवन में उतारा गया तो निस्संदेह उस बड़े आनन्द की प्राप्ति की जा सकेगी, जिसके आगे काम–सुख तुच्छ हो जाता है। यह सूत्र है–अन्तर्यात्रा का । बहिर्यात्रा व्यक्ति को काम में उलझाती है, जबकि अन्तर्यात्रा उसे राम तत्त्व का रसास्वादन कराती है । इस अंतर्यात्रा का सही ढंग से अभ्यास किया गया तो भोग से भी अधिक रस इस अन्तर्योग में आने लगेगा । यदि इसके पीछे की वैज्ञानिकता को समझ लिया जाय तो बात और भी स्पष्ट हो जायेगी । यथार्थ में हम जिसे सुख मानते और बाहरी वस्तुओं में तलाश करते हैं, वह वास्तव में अन्दर की मन की चीज है । बाहरी जगत से उसका रंचमात्र भी सम्बंध नहीं । यदि ऐसी बात नहीं रही होती तो किसी सामग्री के उपभोग के पश्चात् वह फीकी लगती प्रतीत नहीं होती और रस की खोज में मन फिर किसी अन्य की माँग नहीं करता, पर दैनिक जीवन में अनुभव इसके विपरीत होते जान पड़ते हैं । इससे स्पष्ट है–मन ही सरसता और नीरसता के लिए जिम्मेदार है। इस मन के सुख की जो व्याख्या आप्तवचनों में की गई है, उसके अनुसार जब मन का योग एक विशेष प्रकार की विद्युत धारा से होता है तो सुख की अनुभूति होती है और जब दूसरे प्रकार के प्रवाह से हाता है, तब दुःख का कारण बनता है । अर्थात् दोनों स्थितियों के लिए आन्तरिक तरंगे ही उत्तरदायी हैं । ब्रह्मचर्य के दौरान इन्हीं में से एक तंरग को जगाना पड़ता है, पर यह जगे कैसे ? इसकी भी प्रक्रिया बतायी गई है ।

विज्ञान के अनुसार यह तरंगे सिर के पीछे स्थित दो छोटी परस्पर सटी ग्रांथियों के कारण पैदा होती है । विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि इनमें से यदि सुखोत्पादक ग्रन्थि जाग जाये, तो फिर चाहे कितना भी दारुण कष्ट उपस्थित हो जाये, भयंकर घटना घट जाये, व्यक्ति को कभी भी दुःख नहीं होगा । इसी तरह क्लेश पैदा करने वाली ग्लैण्ड के जागृत होने से आदमी कदापि सुखी नहीं रह पायेगा, भले ही उसे कुबेर जितनी सम्पत्ति मिल जाये, साधनों का अम्बार लग जाये, अनुकूलता की अट्टालिका खड़ी हो जाये, पर इन सबके बावजूद वह पीड़ित बना रहेगा, कारण कि उक्त ग्रंथियों से सम्बन्धित अंतस् की जो सम्वेदना थी वह जाग गई । यह जागरण व्यक्ति अथवा वस्तु के कारण भी हो सकता है, परन्तु यहाँ वे मात्र सम्वेदना को जगाने का निर्मित्त बनते है, सुख-दुःख का नहीं । सुख-दुःख का निमित्त तो वह भीतरी स्पन्दन ही है, जिसके कारण ग्रंथियाँ सक्रिय बनती और तत्सम भाव की प्रतीति कराती है । इसे सम्वेदना का विज्ञान कहा गया है । ब्रह्मचर्य के दौरान इसी का संयम करना पड़ता है । इसके मर्म को जिसने समझ लिया वही ठीक–ठीक उसका पालन कर सकता है, अन्यथा इसके रहस्य को जाने बिना वह बाहरी पदार्थों में ही भटकता रहेगा, संसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से पलायन करेगा, इस उम्मीद में कि शायद कन्दरा में ब्रह्मचर्य सध जाये, पर वहाँ भी उसे दुःख के अतिरिक्त कुछ भी हस्तगत नहीं होगा और जीवन यों ही बरबाद होता चला जायेगा ।

यहाँ तनिक उस शरीरशास्त्र को समझ लेना जरूरी है, जो काम वासना का निमित्त हैं । ज्ञातव्य है कि शरीर की अधिकांश क्रियाएँ रसस्रावों पर निर्भर हैं । यह स्राव यदि ज्यादा हुआ तो तत्त्सम्बन्धी क्रिया भी असामान्य स्तर की हो जाती है और कम होने पर भी वह असामान्य बनी रहती है , पर दोनों के स्तर में अन्तर होता है । अधिक रस बनने से क्रियाविधि काफी तीव्र हो जाती है, जबकि कम होने पर मन्द पड़ जाती है । सामान्य भूमिका में वह तभी रह पाती है, जब हारमोन संतुलित मात्रा में निकलें । यही सहज स्थिति है । वासना की दशा में यौन हार्मोन्स के स्राव पर पहले पिट्यूटरी का कठोर नियंत्रण होता है । यही कारण है कि बालकों को आरंम्भ के कुछ वर्षों तक काम-लिप्सा का ज्ञान तक नहीं होता, उसके सताने की बात तो दूर है, किंतु जब वह १४–१५ साल की अवस्था के हो जाते हैं, तो निसर्ग के नियमानुसार यौन हारमोन्स पर पिट्यूटरी ग्रंथि का नियमन ढीला पड़ने लगता है । उसके ढीला पड़ते ही 'काम' सम्बन्धी रसस्राव गोनैड (काम केन्द्र) को प्रभावित करने लगता है । यही वह आरम्भिक अवस्था है, जिसमें काम सम्बन्धी जानकारी का प्रथम उदय बालकों में होता है । बाद में जिसमें जिस अनुपात में कामरस पैदा होता है, उसमें उसी अंश में उसके प्रति ललक देखी जाती है । कई व्यक्तियों में कई बार यौन के प्रति भयंकर अतृप्ति पायी जाती है, जबकि कुछ सामान्य ढंग की अभिरुचि प्रदर्शित करते हैं, तो कइयों की इसके प्रति एकदम अरुचि होती है । इन भिन्न–भिन्न मनोदशाओं के पीछे रसस्राव की भिन्न–भिन्न मात्रा की ही भूमिका होती है ।

इस यौन प्रवृत्ति को नियंत्रित कैसे किया जाय ? इसके दो तरीके हैं–एक दमन का तरीका है, दूसरा उदात्तीकरण का है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दमन से विक्षिप्तता आ सकती है, व्यक्ति असामान्य बन सकता है, किन्तु उदात्तीकरण से आनन्द की उपलब्धि होती है । यह एक व्यापक आध्यात्मिक प्रयोग है, जिसमें काम वृत्ति को इतना परिष्कृत और विशाल बना दिया जाता है, कि सताने जैसी कोई बात शेष रह नहीं जाती ।

काम नियंत्रण के द्वारा जब प्राण-शक्ति को सम्बर्धित किया जाता है, तो वही प्रतिभा, प्रखरता, साहस, मनोबल, पुरुषार्थ, पराक्रम, विवेक सहिष्णुता जैसी कितनी ही धाराओं के रूप में प्रकट और प्रस्फुटित होती है । धृति, स्मृति, आत्मविश्वास, शारीरिक स्वस्थता, कायिक बलिष्ठता, ओज, तेज-यह सब ब्रह्मचर्य के ही सत्परिणम हैं, जो इसे जितने अंशों में धारण करेगा, उसी परिणाम में हाथों-हाथ यह विभूतियाँ मिलती चली जायेंगी ।

धन्यो गृहस्थाश्रमः

गृहस्थ धर्म अन्य सभी धर्मों से अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है । महर्षि व्यास के शब्दों में "गृहस्थ्येव हि धर्माणां सर्वेषां मूलमुच्यते" गृहस्थाश्रम ही सर्व धर्मों का आधार है । "धन्यो गृहस्थाश्रमः" चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम धन्य है । 'जिस तरह समस्त प्राणी माता का आश्रय पाकर जीवित रहते हैं उसी तरह सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित हैं ।

परिवार संस्था सहजीवन के व्यावहारिक शिक्षण की प्रयोगशाला है । इसलिये कुटुम्ब समाज संस्था की इकाई माना जाता है । गृहस्थ में बिना किसी संविधान, दण्डविधान, सैनिक शक्ति के ही सब सदस्य परस्पर सहयोगी सहजीवन बिताते हैं । माता–पिता, पुत्र, पति-पत्नी, नाते-रिस्तों के सम्बन्ध किसी दण्ड के भय अथवा कानून की प्रेरणा पर कायम नहीं होते, वरन् वे स्वेच्छा से कुल-धर्म, कुल परम्परा, आनुवांशिक संस्कारों पर निर्भर करते हैं । प्रत्येक सदस्य अपनी-अपनी मर्यादाओं का पालन करने में अपनी प्रतिष्ठा, कल्याण, गौरव की भावना रख कर खुशी-खुशी उन्हें निभाने का प्रयत्न करता है । कुटुम्ब के साथ सह-जीवन में आवश्यकता पड़ने पर प्रत्येक सदस्य अपने व्यक्तिगत सुख स्वार्थों का त्याग करने में भी प्रसन्नता अनुभव करता है । यही सह-जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की सर्वोपरि आवश्यकता होती है । बिना अपने स्वार्थों का त्याग किये, कष्ट सहन किये सह-जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती और उसमें भी विशेषता यह है कि यह त्याग-सहिष्णुता स्वेच्छा से खुशी के साथ वहन की जाती है । सह-जीवन के लिये ऐसा शिक्षण और कहाँ मिल सकता है ।

कुटुम्ब के निर्माण के लिये फिर किसी कृत्रिम उपाय संकल्प विधान की आवश्यकता नहीं होती । परिवार अपने आप में "स्वयं-सिद्ध" संस्था है । माता–पिता, भाई–बहन, चाचा, ताऊ, पुत्र आदि के चुनाव करने की आवश्यकता नहीं होती । जहाँ गृहस्थ है वहाँ ये सब तो हैं ही और इन सम्बन्धों को स्थिर रखने के लिये किसी कृत्रिम उपाय की भी आवश्यकता नहीं होती । कुटुम्ब तो सहज आत्मीयता पर चलते हैं ।

गृहस्थाश्रम वृत्तियों का शोधन करने की, जीवन की साधना की एक रचनात्मक प्रयोगशाला है । मनुष्य की काम वासना को, पति-पत्नी में एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्य, निष्ठा में परिवर्तन कर कामोपभोग को एक सांस्कृतिक संस्कार बनाकर सामाजिक मूल्य में बदल देना गृहस्थाश्रम की ही देन है । स्मरण रहे गृहस्थाश्रम में शरीर-निष्ठा अथवा रूप-निष्ठा नहीं होती । कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व प्रेम की निष्ठा ज्यों-ज्यों बढ़ती है, शरीर नष्ट होने लगता है और क्रमशः पूर्णरूपेण शारीरिकता का अन्त होकर उक्त दिव्य आधार मुख्य हो जाते हैं । कामुकता भी नष्ट हो जाती है । इसलिए गृहस्थाश्रम कामोपभोग का प्रमाण-पत्र नहीं, अपितु संयम–ब्रह्मचर्य मूलक है । समय का एक क्रमिक लेकिन व्यावहारिक साधना स्थल है । सेवा–शुश्रूषा, पालन-पोषण, शिक्षा एक-दूसरे के प्रति प्रेम त्याग सहिष्णुता के माध्यम से मनुष्य की काम शक्ति संस्कारिता निर्मल होकर मनुष्य को व्यवस्थित, संयत, दिव्य बनाने का आधार बन जाती हैं ।

गृहस्थ तप और त्याग का जीवन है । गृहस्थी के निर्वाह-पालन के लिये किया जाने वाला प्रयत्न किसी तप से कम नहीं हैं । कुटुम्ब का भार वहन करना परिवार के सदस्यों को सुविधापूर्ण जीवन के साधन जुटाना, स्त्री, बच्चे, माता-पिता अन्य परिजनों की सेवा करना बहुत कठिन तपस्या है । गृहस्थ में स्वयमेव मनुष्य को अपनी अनेकों प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना पड़ता है, कोई भी गृहस्थ स्वयं कम खा लेता है, पुराना कपड़ा पहन लेता है, लेकिन परिवार सदस्यों की चिकित्सा, वस्त्र, भोजन, बच्चों को पढ़ाते हैं । फटा कपड़ा स्वयं पहनकर बच्चों को अच्छे–अच्छे वस्त्र पहनाते हैं । गृहस्थ में जिम्मेदार व्यक्ति के सामने अन्य सदस्यों की सुखी-सन्तुष्ट रखने का ध्यान प्रमुख होता है, स्वयं का गौण । उधर गृहणी सबसे पीछे जो बच जाता है वह खा लेती है । सबकी सेवा में दिन-रात लगी रहती है, बिना किसी प्राप्ति की इच्छा के सहज रूपेण । सचमुच गृहस्थाश्रम एक यज्ञ है तप और त्याग का प्रत्येक सदस्य उदारता पूर्वक सहज ही एक-दूसरे के लिये कष्ट सहता है । एक-दूसरे के लिए त्याग करता है ।

गृहस्थाश्रम समाज को सुनागरिक देने की खान है । भक्त, ज्ञानी, सन्त, महात्मा, महापुरुष, विद्वान, पण्डित, गृहस्थाश्रम से ही निकल कर आते हैं । उनके जन्म से लेकर शिक्षा-दीक्षा पालन-पोषण ज्ञान–वर्धन गृहस्थाश्रम के बीच ही होता है । परिवार के बीच ही मनुष्य की सर्वोपरि शिक्षा होती है ।

गृहस्थाश्रम की सर्वोपरि उपलब्धि है उनका आतिथ्य धर्म । आतिथ्य धर्म कितना बड़ा सामाजिक मूल्य है ? जिसे कहीं भोजन न मिले, असंयोग से ही पहुँच जाये उसे भोजन कराये वगैर गृहस्थ भोजन नहीं करता । गाँव में पास-पड़ोस में कोई भूखा न रह जाये, इसके लिए प्रतिदिन नियम पूर्वक किसी अतिथि को भोजन कराये बिना कुछ भी न खाना हमारे यहाँ गृहस्थाश्रम की अभूतपूर्व देन है । असंख्यों असमर्थ, अपाहिज अथवा अन्य उच्च कार्यों में लगे त्यागी तपस्वी, संन्यासी, सेवकों का जीवन निर्वाह गृहस्थाश्रम से ही होता ।

गृहस्थाश्रम समाज के संगठन, मानवीय मूल्यों की स्थापना, समाज निष्ठा, भौतिक विकास के साथ-साथ मनुष्य के आध्यात्मिक-मानसिक विकास का क्षेत्र है । गृहस्थाश्रम ही समाज के व्यवस्थित स्वरूप का मूलाधार है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार संस्था और उसका महत्त्व

भारतीय समाज निर्माताओं ने मनुष्य के आन्तरिक बाह्य जीवन को अधिकाधिक परिष्कृत उन्नत, विकसित करने के लिए भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में नाना प्रयोग किये । नाना आदर्श संस्थाओं की स्थापना की । धर्म, दर्शन, अर्थविज्ञान, वर्ण-व्यवस्था, आश्रम आदि इसी प्रकार के प्रयोग थे । लेकिन जीवन में विभिन्न पहलुओं का एकीकरण करते हुए उन्होंने परिवार संस्था का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग किया था जो व्यावहारिक, सहज सुलभ, सुखकर सिद्ध हुआ। परिवार संस्था ने मनुष्य के जीवन को आदि काल से ऐसा मार्ग-दर्शन किया है जैसा अन्य किसी भी संस्था ने नहीं किया होगा । इतिहास बदल गये, दुनियाँ का नक्शा बदल गया, समाज संस्थाओं में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए, लेकिन भारतीय समाज में परिवार संस्था आज भी ध्रुव बिन्दु की तरह जीवित है। यद्यपि वर्तमान युग में कई आर्थिक, वैज्ञानिक, सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव अब परिवार पर भी पड़ने लगा है, लेकिन भारतीय परिवार के मूल में जो विशाल भावना जीवित प्रेरणा का काम कर रही है, वह उसे मिटने नहीं देगी । वर्तमान संक्रमक काल के बाद नई परिस्थितियों में परिवार संस्था पुनर्गठित होकर मानव के उत्कर्ष में अपना योगदान जारी रखेगी ।

वस्तुतः मानवीय जीवन में जो कुछ भी आनन्दमय, रसपूर्ण साथ ही कर्त्तव्य और धर्म का सारतत्व है, वह "हिन्दू–परिवार" में सरलता से मिल जाता है । हमारे समाज-शिल्पियों ने "परिवार संस्थान" की नींव में ऐसे अमृततत्त्वों के बीच वपन कर दिये हैं, जिनके कारण काल के अनन्त प्रवाह में भी भारतीय परिवार अपना अस्तित्व सदा-सदा कायम रखेगा ।

भारतीय मनीषियों की एक विशेषता रही है, वह यह है कि उनके प्रयोग केवल स्थूल पक्ष अथवा भौतिक तथ्यों तक ही सीमित नहीं रहते थे । वे सूक्ष्म क्षेत्रों में विश्व का संचालन करने वाले सार्वभौमिक तथ्यों की खोज करते थे और फिर उन्हें भौतिक विधानों में व्यवस्थित करते थे । परिवार संस्था के मूल में किसी ऋषि के इसी तरह के सूक्ष्म अन्वेषण का रहस्य छिपा हुआ है ।

नारी और पुरुष परिवार संस्था के दो मूल स्तम्भ हैं। दोनों मानो नदी के दो तट हों जिनके मध्य से परिवार की जीवन धारा बहती है । वैदिक साहित्य में स्त्री-पुरुष की उपमा पृथ्वी और द्युलोक से दी गई है । विवाह संस्कार के अवसर पर भी पुरुष-स्त्री से कहता है–'द्यौरहं पृथ्वी त्वम् ।' मैं द्यौ हूँ, तू पृथ्वी । आकाश और धरती, पुरुष और प्रकृति के संयोग से ही विश्व-परिवार का उदय हुआ, ठीक इसी तरह स्त्री और पुरुष के संयोग से परिवार संस्था का निर्माण होता है । हिन्दू परिवार की मूल प्रेरणा बहुत विशाल है, जिसमें हिन्दू धर्म की वह मूल भावना सुरक्षित रहती है । उसके अनुसार हमारे यहाँ स्थूल और नश्वर का सम्बन्ध विश्वव्यापी चिरन्तन नित्य सूक्ष्म सत्ता के विधान से मिलाया गया है । परिवार संस्था केवल स्थूल व्यवस्था मात्र नहीं है, अपितु उसमें भी एक सूक्ष्म किन्तु सनातन सत्य की जीवन ज्योति समाई हुई है । विश्व-जीवन मे द्यौः और पृथ्वी से लेकर परिवार में स्त्री-पुरुष के गृहस्थ जीवन की मधुर कल्पना में ऋषि का एक ही दार्शनिक दृष्टिकोण रहा है । जैसे द्युलोक और पृथ्वी एक ही संस्थान के पूरक तत्त्व है, उसी तरह स्त्री और पुरुष भी परिवार संस्था के पूरक अंग हैं ।

स्त्री-पुरुष की अभेदता को व्यक्त करते हुए, पुरुष स्त्री से कहता है-"सामोऽहिस्मि ऋक्त्वम्" मैं यह हूँ, तू वह है । तू वह है, मैं यह हूँ । मैं साम हूँ, तू ऋक् है । किसी वस्तु का व्यास अथवा परिधि परस्पर अभिन्न होते हैं । व्यास न हो तो परिधि का अस्तित्व नहीं, परिधि न हो तो व्यास कहाँ से आये ? सृष्टि के मूलभूत हेतु में जिस तरह द्युलोक और पृथ्वी का स्थान है उसी तरह परिवार संस्था में स्त्री-पुरुष की कैसी विशाल कल्पना थी–हमारे समाज शिल्पी मनीषी की पारिवारिक जीवन के अन्तराल में ।

परिवार संस्था में जहाँ स्त्री-पुरुष की अभेदता का प्रतिपादन किया गया है, वहाँ पूरे संस्थान को कर्त्तव्य-धर्म की मर्यादाओं में बाँध कर उसे सभी भाँति अनुशासन, सेवा त्याग, सहिष्णुता-प्रिय बनाया जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है और इन पारिवारिक मर्यादाओं पर ही समाज की सुव्यवस्था, शान्ति, विकास निर्भर करता है । परिवार में माता-पिता, पुत्र बहन, भाई, पति-पत्नी, नातेदार, रिश्तेदार , परस्पर कर्त्तव्य-धर्म से बँधे हुए होते हैं । कर्त्तव्य की भावना मनुष्य में एक-दूसरे के प्रति सेवा सद्भावना उत्सर्ग की सद्वृत्तियाँ पैदा करती है । हिन्दू परिवार में समस्त व्यवहार कर्त्तव्य की भावना पर टिका हुआ है। सभी सदस्य एक-दूसरे के लिये सहर्ष कष्ट सहते हैं । दूसरों के लिये अपने सुख और स्वार्थ का प्रसन्नता के साथ त्याग करते हैं । शास्त्रकारों की भाषा में यही स्वर्गीय जीवन है । इसके विपरीत जहाँ अपने सुख और स्वार्थ के लिये दूसरों के हकों की छीना-झपटी, अपने अधिकार जताकर केवल पाने या लेने ही लेने का व्यवहार सामूहिक जीवन में परस्पर तनाव और संषर्ष को जन्म देता है, वहाँ विरोध, द्वेष, ईर्ष्या, पैदा हो जाते हैं । इसे ही नीतिकारों ने नरक कहा है । यदि धरती पर स्वर्गीय जीवन की प्रत्यक्ष रचना कहीं हुई है तो वह है भारतीय परिवार संस्था । रस, आनन्द, त्याग, उत्सर्ग, सेवा-सहिष्णुता का स्वर्गीय वातावरण यदि कहीं देखना हो तो वह हिन्दू परिवार में सफलता से देखा जा सकता है । रामायण का आदर्श हिन्दू परिवार का ज्वलन्त उदाहरण है । इसमें स्वार्थपरता, पदलोलुपता, बुराइयों के ऊपर त्याग, सेवा, सद्गुणों की विजय बताई गई है ।

परिवार ने जहाँ व्यक्ति के विकास में भारी योग दिया है वहाँ सामाजिक सांस्कृतिक उत्थान में भी बहुत बड़ा हाथ रहा है । परम्परा को आधार बनाकर उससे आगे नियमित विकास और सन्तुलित प्रगति के क्षेत्र में परिवार संस्था सदा-सदा कार्य करती रही है । समाज के लिये जो भी हितकर, आवश्यक है उसकी रक्षा परिवार संस्था ने पूरी की है । पर्व, त्योहार, कला, सौजन्य, उत्साह, उमंग को परिवार संस्था ने ही सदा-सदा जीवित रखा है ।

समाज और संस्कृति के विकास में परम्परा का अपना एक महत्त्व रहा है । लोग अपनी परम्परा को शानदार बनाये रखने के लिये बड़े से बड़ा त्याग करते हैं और इस तरह के आदर्श कुलों का जहाँ बाहुल्य होता है, वह समाज भी आदर्श और महान् बन जाता है ; महात्मा विदुर ने युधिष्ठिर को आदर्श कुलों के आधार बताते हुए कहा था "तप, दम, ब्रह्मज्ञान, यज्ञ, दान, शुद्ध विवाह सम्यक् विचारों से कुल आदर्श बनते हैं " इन बातों में कहीं भी ऐसा नहीं है कि धन अथवा भौतिक ऐश्वर्य सम्पदाओं से कुल की मर्यादा घटती है । धर्म के आचरण से ही परिवार उन्नत होते हैं । प्रत्येक सदस्य परिवार की शान के लिये उसकी समृद्धि विकास के लिये, अपने जीवन में बड़े से बड़ा काम करने की इच्छा रखता है और ऐसी उत्साह-युक्त सिद्धि होती हैं । व्यक्ति जहाँ परिवार के भवन में धर्म आदर्श की सीढ़ियों पर ऊँचे से ऊँचा चढ़ता है, वहाँ ऐसे व्यक्तियों से समाज भी समुन्नत होता है, और अनेक सदस्यों से युक्त परिवार का उत्थान सभी भाँति स्वच्छ, फलता-फूलता समृद्ध और विकसित ही होता रहता है ।

परिवार संस्था तपस्थली है, जहाँ व्यक्ति स्वेच्छा से तप त्याग, धर्माचरण का अवलम्बन लेता है, परिवार में मनुष्य का आत्मिक-मानसिक विकास सरलता से हो जाता है। परस्पर एक-दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्य निभाने का धर्म मनुष्यों का जीवन निखार देता है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दू परिवार व्यक्तिगत जीवन निर्माण के साथ-साथ सामाजिक जीवन की समृद्धि के लिए एक महान् प्रयोग हुआ है । हमारे देश में अनेकों आक्रमणों, आघातों को सहकर भी आज जो हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक धरोहर सुरक्षित रही है, उसके मूल में परिवार संस्था का बहुत बड़ा योग रहा है । हिन्दू परिवार मानो भारतीय समाज का शक्ति स्रोत ही रहा है । आवश्यकता इस बात की है कि आज के परिवर्तनों, परिस्थितियों में परिवार संस्था को पुनर्गठित करके समाज की इस जीवनदायिनी धारा को अधिक शक्तिशाली और समृद्ध बनाया जाये ।

परिवार भी हमारा एक शरीर ही है

शारीरिक समस्या के बाद पारिवारिक एवम् आर्थिक समस्याओं का नम्बर आता है । परिवार भी एक प्रकार का सामाजिक शरीर ही है । मनुष्य अपनी देह तक ही सीमित नहीं रहता, वरन् उसे अपनी स्त्री, बच्चे, भाई-बहिन, माता-पिता आदि को मिलाकर एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुटुम्ब बनाना पड़ता है। एक घर में एक साथ रहने वाला कुटुम्ब भी एक प्रकार से शरीर ही होता है । जिस प्रकार अपनी देह के पालन–पोषण की सुख-दुःख की चिन्ता करनी पड़ती है, वैसे ही परिवार के प्रत्येक सदस्य के बारे में हमें सोचना-समझना और विचार करना पड़ता है । उनका उत्तरदायित्व सिर पर लेना पड़ता है । आर्थिक दृष्टि से अपनी देह की ही भाँति उन सबका भरण-पोषण करना, स्वस्थ एवम् प्रसन्न रखना, प्रगतिशील बनाना आवश्यक होता है । घर के लोगों का सुखी या दुःखी होना, अच्छा या बुरा होना अपने को उतना ही भला या बुरा लगता है जितना अपने शरीर के किसी अंश का पीड़ित या अप्रसन्न रहना ।

हर कोई चाहता है कि उसका परिवार उसकी इच्छानुकूल अच्छे स्वभाव का अच्छे गुण चरित्र का हो । पड़ोस का कोई परिवार दुःखी अस्त-व्यस्त या क्लेश-कलह में डूबा हुआ हो तो लोग उसका उपहास करते हुए मजा ले सकते है, पर अपने परिवार का एक भी सदस्य यदि बुरे स्वभाव का दिखाई देता है या न करने योग्य काम करता है, तो उसका सीधा प्रभाव अपनी आर्थिक स्थिति पर प्रतिष्ठा पर संगठन एवम् व्यवस्था पर पड़ता है। इस गड़बड़ी से अपने को वैसा ही कष्ट होता है जैसा शरीर के किसी अंग के ठीक तरह काम न करने पर होता है। इसलिए हर किसी की आकांक्षा यह रहती है कि परिवार की भीतरी व्यवस्था क्रिया, प्रेम, सच्चाई, सेवा, सद्गुण, पुरुषार्थ मितव्ययिता के आधार पर चले । घर का कोई सदस्य बाहर वालों को धोखा देकर कमाई कर लावे, चोरी चालाकी करे, झूठ बोले, ठगे, इसे तो प्रसन्नतापूर्वक सहन कर लिया जाता है, पर घर के भीतर परिवार के सदस्य एक दूसरे के प्रति ऐसा ही व्यवहार करने लगें तो अव्यवस्था और क्लेश का वातावरण उत्पन्न हो जाता है । यह कोई नहीं चाहता कि मेरी स्त्री व्यभिचारिणी बने, मेरा पुत्र घर में से चोरी करके ले जाया करे, बच्चे आपस में लड़ा करें, एक भाई दूसरे भाई से सहानुभूति न रखे । कारण स्पष्ट है कि मानव स्वभाव के दुर्गुण निश्चित रूप से कष्टकारक प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं ।

जो दुर्गुण घर के भीतर किसी सदस्य में प्रवेश पाकर घर की सारी व्यवस्था को अस्त-व्यवस्त कर देते है , वे दुर्गुण के समाज के व्यापक क्षेत्र में अशान्ति उत्पन्न करते हैं । यदि अपने घर का कोई सदस्य बाजार से सौदा मँगाने पर उसमें से पैसे बचा लेता है, गलत हिसाब बता देता है, तो उसका प्रभाव घर की आर्थिक स्थिति पर पड़ता है और वह व्यक्ति घर के अन्य लोगों का अविश्वासपात्र बन जाता है । एवम् बड़ा आर्थिक उत्तरदायित्व सौंपे जाने के अयोग्य माना जाता है । यही बात जब बढ़ती है तो वह पैसे चुराने वाला लड़का बड़ा होने पर यदि व्यापारी है तो अपने साझी से चोरी करता है । ग्राहकों को कम नापता–तोलता है अथवा यदि नौकर है तो रिश्वतखोरी, समय की चोरी आदि बुराइयाँ पैदा करता है । दुश्चरित्र लोगों की बात आखिर खुलती ही है । लोगों की आँखों में वह घृणा–पात्र बनता चला जाता है, अविश्वासी बनता है और फिर उसे सच्चेमन से प्यार करने वाला कोई नहीं रह जाता । शिष्टाचारवश उससे मीठी बातें लोग कर सकते हैं, पर जब भी सच्ची सहायता का समय आता है तब सभी मुँह छिपा जाते हैं । भीतर दबी हुई घृणा ऐसे समय में आमतौर से असहयोग के रूप में प्रकट होती है । कभी तो उसके मित्र ही उसके प्रति दबी हुई घृणा का अप्रत्यक्ष प्रतिशोध लेते हैं और मुसीबत के समय सहायता करने की अपेक्षा अनुकूल अवसर आया जान कर चोट भी करते हैं ।

जिस पर मित्रों ने कुसमय में चोट की है, वह समझता है कि मेरे साथ दुर्व्यवहार किया गया, अनीति बरती गई, मित्र शत्रु बन गये, पर सच बात यह है कि वे उसके मित्र थे ही नहीं, केवल ऊपरी शिष्टाचार बरतने वाले चालूस लोग थे, जो परीक्षा के समय असली रूप में प्रकट हो गये । सच बात यह है कि किसी बेईमान का कोई सच्चा मित्र नहीं होता । स्वार्थ, लाभ या मजबूरी जब तक एक रस्सी में बाँधे रहती है, तब तक लोग बेईमान के साथ बँधे रहते हैं और जब भी अवसर मिलता है, तब रस्सी तोड़कर भागते हैं । चोर भी यह नहीं चाहते कि उसका साथी चोरी के माल में हिस्सा बाँटते समय चोरी, बेईमानी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करे । डाकू भी यह नहीं चाहते कि उनके साथ उन्हीं के घर पर डाका मारे । व्यभिचारी व्यक्ति उस कुकर्म में अपने दिन-रात साथ रहने वाले लोगों से भी यह आशा नहीं करते कि वे उसी की बहिन, बेटी या पत्नी को कुमार्गगामी बनावें । जब कभी इसमें व्यक्तिक्रम होता है तभी मित्रता-शत्रुता में बदल जाती है । इसका अर्थ यह हुआ कि ईमानदारी ही एक मात्र ऐसा तत्त्व है जिसके ऊपर मित्रता टिकी रहती है, सहानुभूति उपलब्ध होती रह सकती है और समय पर दूसरे लोग उस श्रद्धा में प्रेरित होकर बड़ी से बड़ी सहायता कर सकते हैं । यह स्पष्ट है कि कोई व्यक्ति यदि इस संसार में बड़ी सफलता प्राप्त कर सकते हैं तो उसका सर्वोपरि कारण उसके मित्रों की सहायता से ही हुआ है जिसे यह नहीं मिल सकी वह कितनी ही बड़ी योग्यता या क्षमता सम्पन्न क्यों न रहा हो, कभी कोई बड़ी सफलता प्राप्त नहीं कर सका है । झूँठे और चोर प्रकृति के मनुष्य कभी-कभी कुछ सफलता प्राप्त कर तो लेते हैं, पर वह होती बहुत ही क्षणिक एवं स्वल्प है । जैसे-जैसे लोग उससे सावधान होते जाते हैं, बचने की कोशिश करते हैं, वैसे ही वैसे उनकी सफलता का क्षेत्र सिकुड़ता चला जाता है और अनन्तः उसे असफलता एवं दुर्गति ही हाथ रह जाती है ।

कोई यह न चाहेगा कि उसका लड़का इस प्रकार लोगों का घृणास्पद, मित्रहीन, एवं अनन्त, दुर्गति का अधिकारी बने, पर अपने बच्चे का भविष्य अन्धकारमय बनाने की प्रक्रिया हम उसी दिन से चालू कर देते हैं जिस दिन कि बाजार से साग-सब्जी खरीदने में पैसे बचाने की भद्दी आदत को हम उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और उसे एक हल्की-सी बात मानते हैं । बचपन में यह आदत दो-चार पैसे से शुरू होती है पीछे स्कूल जाते समय वह कापी, किताब के नाम पर बैठती है और अन्ततः जेवर, रुपये चुराने या लड़-झगड़ कर आवश्यकता से अधिक पैसे ले लेने की बात तक जा पहुँचती है । अपव्यय करने की आदत आरम्भ में छोटी होती है । बच्चे दो-चार आना पाकर उसकी बेकार चीजें खरीदते हैं, पीछे उनहें शौक-मौज की चीजें खरीदना अच्छा लगता है चाहे वह बेकार ही क्यों न हो । कई अच्छी आमदनी के लोग भी सदा कर्जदार और आर्थिक तंगी में बने रहते हैं, क्योंकि उन्हें अनावश्यक खर्च करने की फिजूजखर्ची की बुरी लत लगी होती है । यह लत उनने बचपन में उस समय सीखी होती है, जब घर से उन्हें अनावश्यक खर्च करने के लिए किसी प्रकार पैसे मिल जाते थे और पैसे का मूल्य उनकी दृष्टि में तुच्छ प्रतीत होता था । यदि उन्हें आरम्भ में ही यह समझा दिया गया होता कि पैसा कितने कठोर श्रम से कमाया जाता है और उसके सदुपयोग–दुरुपयोग के परिणामों में क्या अन्तर है, तो सम्भवतः बच्चा अपव्यय की बुरी आदतों से बच जाता और उसी कर्जदारी आर्थिक तंगी से ग्रसित एवं इसी के लिए चोरी बेईमानी करने के लिए विवश न होना पड़ता ।

हम अपने भविष्य के बारे में सोचते रहते हैं । अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने की योजना बनाते रहते हैं, पर वह योजना तब तक अधूरी ही है, जब तक कि हम अपने सारे परिवार के भविष्य को उज्ज्वल बनाने की बात न सोचें, क्योंकि अकेले अपनी उन्नति होते रहने पर भी पिछड़े हुए कुटुम्बी त्रासदायक ही बने रहते हैं । कोई व्यक्ति कितनी-सी आर्थिक, पद-सत्ता का विद्या-बुद्धि के क्षेत्र में उन्नति क्यों न करले, जब तक उसका परिवार भी उन्नति के क्षेत्र में कदम–कदम बढ़ाकर न चलेगा, तब तक प्रगति सर्वथा अधूरी ही रहेगी । स्त्री बच्चे चाहे कितने ही छोटे या कम महत्त्व के क्यों न दीखते हों वे अपने जीवन के एक अंग होने के कारण निरन्तर हमारी मानसिक शान्ति या अशान्ति के कारण बने रहेंगे । इसलिए उनकी ओर भी उतना ही ध्यान देना चाहिए जितना कि हम अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में रख सकते हैं ।

आमतौर से लोग अपने स्त्री-बच्चों को प्रसन्न रखने या उन्नतिशील बनाने के सम्बन्ध में इतना ही सोच पाते हैं कि समुचित आर्थिक प्रबन्ध हो जाये तो उनकी प्रगति एवं सन्तुष्टी के लिए पर्याप्त है । बच्चों की फीस, पढ़ाई, कपड़ा, जेबखर्च, आदि का प्रबन्ध होता रहे तो बस बाकी सब कुछ अपने आप हो जायेगा । इसी प्रकार धर्मपत्नी के बारे में सोचते हैं कि यदि उन्हें जेवर, कपड़ा, नौकर, आराम आदि का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समुचित प्रबन्ध मिल जाये तो फिर उनके सुखी रहने का प्राप्त साधन बन जायेगा । इस प्रकार की मान्यता सब प्रकार अधूरी एवं निरर्थक है । किसी भी मनुष्य की प्रसन्नता एवं प्रगति उसे प्राप्त होने वाली भौतिक सुविधाओं एवं वस्तुओं पर निर्भर नहीं, वरन् उसके गुण, कर्म, और स्वभाव पर निर्भर है ।

गरीबी में भी कई परिवार स्वर्ग का आनन्द उठाते हैं और कई के यहाँ प्रचुर लक्ष्मी होते हुए भी नरक का वातावरण बना रहता है । कितने ही लोग गरीब घर में जन्म लेकर प्रगति के पथ पर अपने पुरुषार्थ से आगे बढ़ रहे हैं और उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचे हैं। इसके विपरीत कितने ही व्यक्ति अमीरी में पाले-पोसे और सब कुछ प्राप्त होने पर भी पूर्वजों से प्राप्त उत्तराधिकार की प्रचुर सम्पदा को गँवा बैठे हैं । उन्नति के सब साधन मिलने पर भी आगे बढ़ना तो दूर उल्टे अवनति के गर्त में गिरे हैं । इसलिए यह सोचना भूल है कि आर्थिक प्रबन्ध ठीक होने पर सारा परिवार सुखी एवं सन्तुष्ट रह सकता है । तथ्य यह है कि शान्ति, प्रगति और समृद्धि मनुष्यों के स्वभाव पर निर्भर रहती है । दृष्टिकोण के गलत या सही होने के कारण ही द्वेष बढ़ता है, या प्रेम पनपता है । अच्छी आदतें जहाँ होती हैं वहाँ पराये अपने बन जाते हैं । परायों को अपना बना लेने के सद्गुण जिनके पास हैं सचमुच इस संसार में वे ही अमीर है, वे जहाँ कहीं भी रहेंगे वहीं उनके मित्र और सहयोगी पर्याप्त मात्रा में पैदा होने और बढ़ने लगेंगे । गुलाब की खुशबू अपने चारों ओर भौंरे और मधुमक्खी जमा कर लेती है । अच्छी आदतें मनुष्य रूपी फूल में खुशबू का काम करती हैं, उनके कारण दूसरे असंख्यों लोग मधुमक्खी और भौंरे के रूप में सहायक एवं प्रशंसक बनकर मँडराने लगते हैं । इसके विपरीत बुरी आदतें वह दुर्गन्ध हैं जिनसे हर किसी की नाक फूटती है और हर कोई वहाँ से दूर भागना चाहता है ।

हम यदि सचमुच ही अपने परिवार को सुखी बनाना चाहते हैं तो उनकी आर्थिक व्यवस्था ठीक रखने तक की ही बात सोचकर सन्तोष न करलें, वरन् उनके स्वभाव को अच्छाई की दशा में ढालने का प्रयत्न भी उतनी ही तत्परता से करें जितना की आर्थिक सुविधा जुटाने के लिए करते हैं । माना कि आर्थिक सुविधा के बिना प्रगति रुक जाती है और असुविधा एवं असन्तोष का जन्म होता है । माना कि हममें से हर एक को अपना आर्थिक सन्तुलन ठीक बनाये रखने के लिये शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए, पर यह भी मान लेने की ही बात है कि इतने मात्र से किसी का जीवन न तो प्रगतिशीली बन सकता है और न शान्ति का वातावरण ही बन सकता है । आदतें यों देखने में बहुत ही छोटी वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं, कई बार तो उनका कुछ मूल्य और महत्त्व भी समझ में नहीं आता पर सच बातें यही है कि उन्हीं के ऊपर जीवन की सारी आधार शिला रखी होती है । छोटा-सा बीज ही अनुकूल परिस्थितियों में पाले-पोसे जाने पर विशाल वृक्ष के रूप में परिणित होता है । छोटी-छोटी आदतें ही मनुष्य के जीवन के विकास या विनाश का एक मात्र आधार होती हैं । विषवृक्ष और अमर फल के जैसे परस्पर विरोधी गुण हैं, वैसे ही प्रतिफल बुरी और अच्छी आदतों के होते हैं । यदि हमें अपने परिवार को सुखी और समुन्नत बनाना हो तो प्रत्येक परिजन में अच्छी आदतें उत्पन्न करने के लिये जी-जान से प्रयत्न करना चाहिये ।

जिस प्रकार साग खरीदकर लाते समय बच्चे की पैसे बचा लेने की आदत आगे बढ़कर उसे चोर, बेईमान, मित्रहीन, बन्दीगृहवासी एवं दुर्गतिग्रस्त बना सकती हैं, उसी प्रकार अन्य बुरी आदतें भी उनके पतन का कारण बन सकती हैं । आलस्य, आवेश, उद्दण्डता, कटुभाषण, अशिष्टता, शौकीनी, मटरगस्ती, सिनेमाबाजी, बुरी संगति, फिजूलखर्ची, फैशनपरस्ती, चटोरापन, बहानेबाजी, समय का दुरुपयोग आदि दुर्गणों के विष-वृक्ष धीरे-धीरे बढ़ते रहने पर एक दिन ऐसे भयानक प्रतिफल उत्पन्न कर सकते हैं जिनके कारण जीवन में असफलता, दुर्दशा, पीड़ा और पश्चाताप के अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही न दे । यदि कोई पिता अपने स्त्री-बच्चे के लिये आर्थिक सुविधायें तो जुटाता है, पर उनकी अच्छी आदतों को बढ़ाने एवं बुरी आदतों को हटाने के लिये प्रयत्न नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करता तो उसका परिवार कभी भी शान्तिपूर्ण परिस्थितियों में नहीं रह सकता । जिसके घर में क्लेश रहेगा, अनुपयुक्त घटनाएँ और परिस्थितियाँ बनी रहेंगी, वहाँ शान्ति कहाँ रहेगी, और जहाँ शान्ति नहीं, वहाँ समृद्धि का अर्थ ही क्या रह जाता है ?

शरीर की उपेक्षा करने वालों को रोग्रस्त होकर पछताना पड़ जाता है । अकाल मृत्यु में मरते समय उसे अपनी भूलों पर भारी दुःख होता है । देह का विकसित रूप ही परिवार है । कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व, आवश्यकता, व्यवस्था और स्नेह के स्वाभाविक बन्धनों से परिवार को मनुष्य के साथ ईश्वर ने इतनी मजबूती से बाँध दिया है कि उससे छुटकारा मिल सकना कठिन है । देह के सभी अंग-प्रत्यंगों को जिस प्रकार हमें अपने साथ ही रखना और सम्भालना होता है, उसी प्रकार परिवार के सदस्यों को भी साथ लेकर चलना होता है । साथियों का सज्जन होना ही स्वर्ग और दुर्जन होना ही नरक माना जाता है । यदि अपने परिजनों की दुर्जनता छुटाने और सज्जनता बढ़ाने में हम सफल न हो सके तो इसका दण्ड हमारी आत्मा हर घड़ी जलन, कुढ़न, खेद, पश्चाताप आदि के रूप हमें देती रहेगी, और एक प्रकार से नरक की आग में हम सदा जलते रहेंगे ।

परिवार के सदस्यों को दुर्गुणी बनने देना समाज एवं राष्ट्र के साथ अपराध करने के समान है । समाज में अगणित चोर, डाकू, बेईमान, व्यभिचारी भरे पड़े हैं, इन कलाओं को सीखने का कोई विधिवत, विद्यालय कहीं खुला नहीं है । हमारे घर ही इन बुराइयों को सिखाने की पाठशाला होती है । बच्चे चुपके-चुपके यहीं से सब कुछ सीखते हैं और यहीं से प्राप्त हुई आदतें उन भयकर अपराधों का रूप धारण कर लेती है । शिक्षा का स्थान स्कूल हो सकते हैं, पर दीक्षा का स्थान तो घर ही है । बेचारा अध्यापक गणित, भूगोल, इतिहास आदि को ही पढ़ा सकता है । गुण, कर्म, स्वभाव को उत्तम बनाने की दीक्षा देने का उत्तरदायित्व घर वालों पर है माता-पिता पर है । जिन माता-पिता ने जान या अनजान में बुरी आदतें सिखाकर अपने बालकों को एक दुष्ट नागरिक के रूप में राष्ट्र के सामने उपस्थित किया, उनने सचमुच समाज की एक बड़ी कुसेवा की है । बच्चों का भविष्य बनाने एवं अपने लिये जीवन भर कुढ़न का सरंजाम जमा कर लेने का उत्तरदायित्व भी उनका ही मानना पड़ेगा ।

हमारा पूर्ण शरीर परिवार के सभी सदस्यों से मिलकर बना है । इसे स्वस्थ रखना भी हमारा कर्त्तव्य है। जिस प्रकार अनुपयुक्त विचारों से हमारी देह रोगग्रस्त होती है, उसी प्रकार अपने कर्त्तव्य को भुला देने से परिवार के प्रति अपना दृष्टिकोण सही न रखने से ही हमारा यह कुटुम्ब–शरीर रोगग्रस्त होता है । पारिवारिक स्वास्थ्य का सुधार भी शारीरिक स्वास्थ्य को सुधारने की तरह पूर्णतया है, पर इसके लिये हमें अपने को ही सुधारना पड़ेगा, अपनी विचारधारा को ठीक करना पड़ेगा । अपने को सुधारने से दूसरे स्वतः ही सुधरने लगते हैं ।

परिवार किसी उद्देश्य के लिये बसाया जाय

परिवार परम्परा को प्रोत्साहित करने में ऋषियों का मन्तव्य केवल इतना ही नहीं रहा कि व्यक्ति एक से बहुत होकर रहे, दुःख तकलीफ पड़ने पर उसका हाथ बँटाने वाला उसके साथ हो, व्यक्ति व्यवस्थित रूप में स्थायी होकर रहे और परिजनों के साथ अधिक उल्लासपूर्ण जीवन-यापन करे । इस साधारण मन्तव्य के साथ उनका एक इससे कहीं ऊँचा मन्तव्य भी रहा है, वह यह कि–परिवार के माध्यम से मनुष्य आत्म-कल्याण की ओर भी अग्रसर हो । उसमें सामाजिकता, नागरिकता और सबसे बड़ी बात विश्व-मानवता का कल्याणकारी भाव जागे । वह अपने जैसे मनुष्यों के लिये त्याग, सहानुभूति, सौहार्द एवं आत्मीयता का अभ्यस्त हो सके ।

मनुष्य की संकीर्णता दूर होकर उसकी आत्मा का व्यापक विकास हो वही आत्म-कल्याण का राज मार्ग है । मनुष्य दूसरे का दुःख दर्द समझकर उसके साथ सहानुभूति रख सके, उसकी सेवा सुश्रुषा तथा सहायता करने को तत्पर रहे यही आत्म-उन्नति के लक्षण हैं । पारिवारिक जीवन में इन आध्यात्मिक गुणों के विकास का पूरा-पूरा अवसर रहता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक पिता जब वह बालक रहा होगा, तब निश्चय ही आज की तुलना में अधिक संकीर्ण अधिक स्वार्थी तथा अपने तक अधिक केन्द्रित रहा होगा । वह यहीं चाहता रहा होगा कि उसे सबसे अधिक और अच्छा पहनने को मिले, सबसे अधिक खर्चे करने को मिले और सबसे अधिक सुख-सुविधा के साथ स्नेह दुलार भी उसे ही मिलें । अपनी इस स्वार्थ भावना के वशीभूति वह दूसरों के हितों का ध्यान रखे बिना ही अपना हठ पूरा करने का प्रयत्न करता रहा होगा। दूसरों के प्रति वह पूर्ण उदासीन रहा होगा । दूसरे के प्रति अनुदारता एवं कृपणता उसके स्वभाव के अंग रहे होंगे ।

किन्तु अनन्तर जब उसने विवाह किया होगा और उसकी एकान्तिक स्वार्थपरता एवं संकीर्णता में दरार पड़ गई होगी, तो वह केवल अपने स्वार्थ के प्रति आग्रहीत न रहकर पत्नी की सुख-सुविधा, उसकी इच्छाओं एव हँसी-खुशी के विषय में भी सोचने लगा होगा । एक चीज यदि अपने लिये लाता होगा तो एक पत्नी के लिये भी और इस प्रकार उसकी आत्मीयता की परिधि बढ़ गई होगी । उसका प्रेम, स्नेह एवं सहानुभूति अपने से बढ़कर दूसरे तक जा पहुँची होगी और वह अपने अतिरिक्त अपनी पत्नी का भी आत्मीय बन गया होगा ।

आज जब वह अनेक बच्चों का पिता बन गया है तो उसका सारा जीवन ही उसके परिवार का हो गया है । उसका अपना कुछ नहीं रहा है । कहने के लिए उसका जो कुछ है वह सब उसके बच्चों का है आज न वह पूर्ववत् स्वार्थी है न संकीर्ण और न अनुदार । उसमें त्याग, सन्तोष, सहानुभूति, सम्वेदना तथा आत्मीयता के गुण आपसे–आप विकसित हो गये हैं । उसकी संकुचित आत्मा अनेकों तक निःस्वार्थ भाव से विस्तृत हो गई है । यह आत्मिक विकास कैसे हुआ ? पारिवारिक जीवन अपनाने से । यदि उसने पारिवारिक जीवन न अपनाया होता और उत्तरदायित्व न समझा होता तो न तो उसकी आत्मा का विस्तार पत्नी तक होता और न बच्चों तक फैलता । वह यथावत् स्वार्थी एवं संकीर्ण बना हुआ पशुओं की तरह जड़ एवं अविकासशील जीवन बिता रहा होता । त्याग, सहानुभूति, सम्वेदना, स्नेह तथा अन्यों से आत्मीयता का क्या सुख होता है ? इस अनुभव से सदा सर्वथा अनभिज्ञ रहता । यह पवित्र पारिवारिक जीवन का ही प्रभाव है कि उसकी आत्मा के संकीर्ण बन्धन शिथिल हुए और विस्तार हो सका । इसी प्रकार पत्नी से परिवार और परिजनों से पार्श्वजनों और पर्श्वजनों से पुरजनों में फैलती हुई उसकी आत्मीयता विश्व तक जा पहुँचे तो सहज ही कड़ी-कड़ी करके उसकी आत्मा के बन्धन निःशेष हो जायें और वह मानव-जीवन का अन्तिम लक्ष्य मुक्ति अथवा मोक्ष की उपलब्धि कर ले । पारिवारिक जीवन एवं गृहस्थ आश्रम की व्यवस्था देने में ऋषियों का मुख्य उद्देश्य यही था–सांसारिक सुख सुविधा तो स्वाभाविक एवं गौण थी ।

किन्तु खेद है कि पारिवारिक जीवन के इस महत्वपूर्ण एवं कल्याणकारी अनुपम उद्देश्य की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता । यही नहीं पारिवारिक व्यवस्था के सामान्य एवं स्वाभाविक सुख-शान्ति के उद्देश्य से भी हाथ धो डाले गये हैं । आज का गृहस्थ-जीवन तो निरुद्देश्य की खींचतान एवं तनातनी भर रहा गया है । जिस व्यवस्था से इतने बड़े श्रेयपूर्ण आत्मोद्धार के उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है, वह आज पाप जैसे अभिशाप से भरा हुआ वर्तमान में तो नारकीय यातना दे ही रहा है, भविष्य के लिये भी नरक के द्वार खोल रहा है । यह कुछ कम दुर्भाग्य की बात नहीं है ।

यदि परिवार व्यवस्था का उद्देश्य ठीक-ठीक समझा जाये और इसे आत्मोन्नति की प्रयोगशाला मानकर वरता जाये, तो सांसारिक सुख-शान्ति तो स्थिर ही हो जाये, साथ ही मनुष्य आत्मोद्धार की दिशा में भी सफलता प्राप्त कर सकता है ।

अनेक लोग परिवार को आत्मोन्नति के मार्ग में बाधक मानते हैं । उनका कहना होता है–परिवार-पालन के दायित्व के कारण मनुष्य को दिन-रात सांसारिक उलझनों में फँसा रहना पड़ता है । उसे बाल-बच्चों की चिन्ता से ही अवकाश नहीं मिलता, फिर भला वह आत्मोद्धार के लिये किस प्रकार प्रयत्न कर सकता है ! इस प्रकार सोचने वाले गलत रूप में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सोचते हैं । उलझनों का कारण परिवार नहीं बल्कि यह गलत व्यवस्था है जिसकी और लोग प्रमादवश ध्यान नहीं देते और परिवार की गाड़ी उल्टी-सीधी खींचते चले जा रहे हैं । किसी भी वस्तु का गलत प्रयोग ही उसे हानिकारक बना देता है । भोजन मनुष्य-जीवन के लिये नितान्त उपयोगी वस्तु है । इसके अभाव में जीवन असम्भव हो जायेगा, इसी से मनुष्य को स्वास्थ्य एवं शक्ति मिलती है। इसी उपयोगी एवं जीवनप्रद भोजन को जब अनुचित रूप से उपयोग किया जाता है, तब यही अनेक रोगों का कारण बन जाता है और मनुष्य को आशक्त बना देता है । उसी स्थान पर विधिपूर्वक उपवास के रूप में भूखा रहना अनेक अवसरों पर आरोग्य एवं जीवनदाता बन जाता है । दूध, घी, मक्खन, मधु आदि सर्वविदित पौष्टिक पदार्थ हैं । इनका विधि-पूर्वक उपयोग करने से मनुष्य जीवन के लिये अमृत का काम करते हैं, किन्तु यह अमृततुल्य पदार्थ अविधि पूर्वक सेवन करने से विष बन जाते हैं । संखिया और पारा आदि प्राणघातक विष हैं । सब जानते हैं और इनसे डरते हैं, किन्तु जब यही विष शोधन करके औषधि बना लिये जाते हैं तो निर्भय होकर इनका सेवन करते हैं और अनेक रोगों से मुक्ति पाते हैं। यही बात गृहस्थ जीवन के साथ में भी है ।

जो परिवार त्याग, उदारता, सहयोग एवं स्नेह के आधार पर मतैक्य की डोरी से मजबूती के साथ बँधे रहते हैं और जिनमें अनुशासन, शिष्टाचार, सदाचार, नियम एवं मर्यादाओं का यथोचित पालन किया जाता है, उनमें सभी सदस्य लौकिक सुख-शान्ति के साथ आत्म-विकास अथवा आत्मोद्धार का आध्यात्मिक उद्देश्य भी पूरा कर सकने का अवसर पा सकते हैं । जिन परिवारों में दिन-रात कलह-क्लेश और स्वार्थपूर्ण हाय-तोबा मची रहती है, जिनको अविधिपूर्वक बरता जाता है, वे स्वभावतः आत्म-पतन एवं आत्म-बन्धन के हेतु बनेंगे ही ।

जैसा कि बताया जा चुका है कि कौटुम्बिक जीवन आत्म-विकास का एक सुअवसर है, किन्तु तब, जब इसका उपयोग उस दिशा में किया जाये । अपनी पत्नी, पुत्र, प्रिय एवं परिजनों के बीच आत्मीयता का विस्तार करते हुए सार्वभौमिक आत्मीयता की अनुभूति प्राप्त की जाये । किन्तु होता यह है कि लोग अपने प्रिय एवं परिजनों तक ही आत्मा का विस्तार करके रुक जाया करते हैं । परिवार तक ही सौहार्द एवं आत्मीयता की परिधि को परिमित कर लेते हैं । इनके त्याग, उदारता, दया, दान, करुणा, सम्वेदना, सहानुभूति, सेवा, सहयोग एवं सहायता तक ही बढ़कर रह जाते हैं । उन्हें अपने परिवार, सो भी निकटतम परिवार को छोड़कर किसी दूसरे के परिजनों से किसी प्रकार का स्नेह अथवा सौहार्दपूर्ण सरोकार नहीं रहता और कभी-कभी तो लोग अपने परिवार को मोहवश अधिक सुख-सुविधा देने के लिये दूसरे लोगों की सुख-सुविधा अथवा हित-अनहित का ध्यान नहीं रखते । यहीं तक नहीं अनेक लोग अपने परिवार की तुलना में दूसरे परिवारों को हेय अथवा हीन तक समझने लगते हैं । अथवा अपने परिवार की अपेक्षा अन्यों की सुख-समृद्धि में विकास देखकर डाह तक करने लगते हैं अपने बच्चों की ममता में दूसरे बच्चों को डाटने, फटकारने और दुतकारने तक में संकोच नहीं करते । यह घोरतम संकीर्णता है, जिससे परिवार के आगे आत्म-विस्तार का तो प्रश्न ही नहीं उठता इन्हें आत्मसंकोच ही होता है जिससे पतनपूर्ण पाश में पड़ना असंदिग्ध एवं अनिवार्य है ।

परिजनों तक फैला हुआ आत्म-विस्तार भी किसी हद तक आध्यात्मिक दिशा में सहायक हो सकता है यदि उनको अन्य जीवों की तरह विश्व-विराट का अंग समझकर पालन-पोषण सेवा-सहायता की जायेगी, किन्तु कठिनाई तो यह है कि लोग परिजनों के प्रति भी तो इस प्रकार का उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण विकसित नहीं कर पाते । उनके प्रति भी जो कुछ त्याग एवं उदारता बरती जाती है, जो भी सेवा-सहायता की जाती है, जितना भी स्नेह, सहानुभूति एवं सौहार्द दिया जाता है, सब ममता के वशीभूत होकर दिया जाता है । परिवार के प्रति उनकी सारी आत्मीयता के पीछे यह 'यह सब मेरे हैं ' का भाव ही सक्रिय रहा करता है । इसीलिये उनके प्रति किया हुआ उनका सारा उपकार आध्यात्मिक दिशा में निष्फल चला जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । ममत्व के भाव से किया हुआ शुभ कार्य भी परमार्थ की सूची में अंकित नहीं हो सकता, फिर चाहे वह निःस्वार्थ अथवा निर्लोभ ही क्यों न हो । 'मेरे अपने' के भाव से किसी के प्रति भी किया हुआ कोई भी उपकार घूम–घूमकर अपने लिये ही किया हुआ माना जायेगा । अपने लिये अथवा अपने आत्म-सन्तोष के लिये किया हुआ बड़े से बड़ा परमार्थ भी स्वार्थ ही है । ममत्व भाव से बढ़ी हुई आत्मीयता का विस्तार विश्व-विराट के प्रति निर्बन्ध आत्मीयता की अनुभूति नहीं करा सकता । इसके लिये परिजनों तथा प्रियजनों को भी विश्व-विराट का एक अंग समझना होगा । उन्हें समस्त संसार के जीव-समुदाय में मिलकर व्यापक दृष्टिकोण से देखना होगा । इस प्रकार जब आपका अपनत्व अपने तथा अपने परिवार की परिधि पार कर जीवमात्र के लिये समान रूप से सक्रिय होने लगेगा तो वह विशुद्ध एवं व्यापक ममत्व भी आध्यात्मिक प्रेम में परिपक्व होकर आत्मोद्धार की सीमा तक सहायक बन जायेगा ।

पारिवारिक जीवन को आत्मोद्धार में सहायक बनाने के लिये मनुष्य को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही परिवार बसाना चाहिये । बहुधा परिवार बसाने में लोगों का दृष्टिकाण महत्त्वपूर्ण ही होता है । उनके मस्तिष्क में एक यही बात रहती है कि समाज में वे एक घर बार वाले व्यक्ति समझे जायेंगे । उनका बोझ वजन बढ़ेगा, लोग उन पर विश्वास करेंगे और वे समाज में एक उत्तरदायी गौरव पायेंगे । पत्नी में उनके प्रणय और बच्चों में स्नेह को आश्रय मिलेगा, अपने पेट को गौण मानकर बेटे के लिए आजीवन अनवरत श्रम करने का साहस कोई बाप ही कर सकता है ।

पाल-पोस कर बड़ा कर दिया । शिक्षा-दीक्षा पूरी कराई, विवाह-शादी करा दी, धन्धा लग गया । पिता से पुत्र की कमाई बढ़ गई । उसके अपने बेटे हो गये, स्त्री की आकांक्षायें बढ़ी । बेटे ने बाप के सारे उपकारों पर पानी फेर दिया । कोई न कोई बहाना बनाकर बाप से अलग हो गया । हाय री तृष्णा ! तेरे लिये इतना सब कुछ किया और तू उसकी वृद्धावस्था का पाये भी न बन सका । इस कृतघ्नता से बढ़कर इस संसार में कौन-सा पाप हो सकता है । अपने स्वार्थ , भोग-लिप्सा, स्वेच्छाचारिता के लिये बाप को ठुकरा देने वालों को पामर न कहा जाये तो और कौन-सा सम्बोधन उचित हो सकता है ?

पिता परिवार का अधिष्ठाता, आदेशकर्त्ता और संरक्षक होता है । उसकी जिम्मेदारियाँ बड़ी होती हैं । सबकी देख-रेख, सबके प्रति न्याय, सबकी सुरक्षा रखने वाला पिता होता है । क्या उसके प्रति उपेक्षा का भाव मानवीय हो सकता है ? कोई राक्षस वृत्ति का मनुष्य ही ऐसा कर सकता है जो अपने-अपने माता–पिता को वृद्धावस्था में असहाय छोड़ देता हैं ।

परिवार में पिता को सम्मान मिलता है तो उनके दीर्घकालीन अनुभव योग्य संचालन, पथ-प्रदर्शन, भावी योजनाओं को नियन्त्रित करने का लाभ भी परिवार को मिलता है । अपने प्रेम, वात्सल्य, करुणा, उदारता, संगठनात्मक बुद्धि से वह सब पर छाया किये रहता है । वह परिवार का पालन करता है । पिता की पूजा करना, उसकी उचित सेवा-टहल और देख-रेख रखना, परमात्मा की उपसाना से कम फलदायक नहीं होता । पिता का आशीर्वाद पाकर पुत्र की आकांक्षायें तृप्त होती हैं, जीवन सुमधुर, नियन्त्रित और बाधा रहित बनता है ।

इस युग में पिता और पुत्र के सम्बन्धों में जो कडुवाहट आ गई हैं वह मनुष्य के संकुचित दृष्टिकोण और स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप ही है । पिता पुत्र के लिए अपना सर्वस्त्र अर्पित कर दे और पुत्र व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा अनुशासन-अवज्ञा करे तो उस बेटे को निन्दनीय ही समझा जाना चाहिए ।

मनुष्य का सबसे शुभचिन्तक मित्र हितैषी, पथ–प्रदर्शक उदार जीवन रक्षक पिता ही होता है । वह समझता है कि बेटे को किस रास्ते लगाया जाय कि वह सुखी हो, समुन्नत हो, क्यों कि उसकी त्रुटियों का ज्ञान पिता को ही होता है । जो इन विशेषतओं का लाभ नहीं उठाते उन्हें अन्त में दुःख और दैन्यताओं का ही मुँह देखना पड़ता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पिता और पुत्र, पिता और पुत्री के सम्बन्ध बड़े कोमल, मधुर और सात्त्विक होते हैं । इस आध्यात्मिक सम्बन्ध का सहृदयतापूर्वक पालन करने वाले व्यक्ति देव श्रेणी में आते हैं । उनका मान और प्रतिष्ठा होनी ही चाहिए ।

परिवार में माता का स्थान पिता के समतुल्य ही होता है । एक दूसरे को बड़ा-छोटा नहीं कहा जा सकता । पिता कर्म है तो माता भावना कर्म और भावना के सम्मिश्रण से जीवन में पूर्णता आती है । गृहस्थी की पूर्णता तब है, जब उसमें पिता और माता दोनों को समान रूप से सम्मान मिले । माता का महत्त्व किसी भी अवस्था में कम नहीं हो सकता ।

व्यक्ति का भावनात्मक प्रशिक्षण माता करती है। उसी के रक्त मांस और ओजस से बालक का निर्माण होता है । कितने कष्ट सहती हैं वह बेटे के लिये। स्वयं गीले बिस्तर में सोकर बच्चे को सूखे में सुलाते रहने की कष्टदायक क्रिया पूरी करने की हिम्मत भला है किसी में ? माता का हृदय दया और पवित्रता से ओत–प्रोत होता है, उसे जलाओं तो भी दया की ही सुंगधि निकलती है, पीसो तो दया का ही रस निकलता है । ऐसी दया और ममत्व की मूर्ति माता को जिसने पूज्यभाव से नहीं देखा, उसका सम्मान नहीं किया आदर की भावनायें व्यक्त नहीं की वह मनुष्य नर–पिशाच ही कहलाने योग्य हो सकता है ।

इस विकृति को फिर से सुधारना है । राम और भरत, गोरा और बादल के आदर्श भ्रातृ-प्रेम को फिर से पुनरुज्जीवित करना है । इससे हमारी शक्ति सद्भावत्तायें जागृत होंगी । हमारा साहस बढ़ेगा और पुरुषार्थ पनपेगा ।

स्नेहमयी बहिन उदारता की मूर्ति भावजों को भी उसी तरह सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए जिस तरह माता के प्रति अपनी आत्मीयता पूर्ण भावनायें हों ।

घर का वातावरण कुछ इस तरह का शील-संयुक्त हँसमुख और उदार बने जिससे सारा परिवार हरा-भरा नजर आये । इसके लिये धन आदि उपकरणों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी अपने सम्बन्धियों के प्रति कर्त्तव्य और सेवा की भावना की । परिवार में सौमनस्य हो तो वहाँ न तो सुख की कमी रहेगी, न शान्ति की । आह्लाद फूटा पड़ रहा होगा, उस घर में जहाँ सबके दिल मिले होंगे । हमारा घर भी ऐसा ही हो तो हम समझें कि पारिवारिक जीवन के प्रति अपने उत्तरदायित्व भली प्रकार पूरे किये हैं । यही परमात्मा की सच्ची पूजा है इसे तिरस्कृत न किया जाना चाहिए ।

गृहस्थाश्रम एक कर्त्तव्य धर्म

मनुष्य का जीवन लक्ष्य शाश्वत् शान्ति प्राप्त करना है । वह चरम शान्ति ईश्वर के अंग में ही प्राप्त हो सकती है । क्रम-क्रम से आत्मोन्नति करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर लेता है और उसी रूप में चिरन्तन शान्ति ।

जीवन का यह चरम लक्ष्य पाने के लिए मनुष्य का निष्काम, निर्लिप्त तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि की भावनाओं से मुक्त होना आवश्यक है और उनके स्थान पर उदारता, त्याग, सम्वेदना, सहानुभूति, प्रेम तथा आत्मीयता की प्रतिष्ठापना करनी पड़ती है ।

ईश्वर की लीला बड़ी विचित्र है । उसने एक कारण से दो कार्य बनाये हैं । जहाँ उसने मनुष्य के लिए शाश्वत् शान्ति का लक्ष्य निर्धारित किया है, वहाँ उसकी यह इच्छा भी है कि उसकी इस रचना सृष्टि का क्रम भी चलता रहे । अस्तु मनुष्य को सृष्टि-क्रम में नियोजित करने के लिए उसने स्त्री-पुरुषों में अनेक आवेगों का सृजन कर दिया ।

लगता है कि संसार चक्र से सम्बन्ध और शाश्वत् शान्ति परस्पर विरोधी ही नहीं विपरीत बातें हैं, तथापि कोई अन्य विकल्प नहीं । किन्तु ऋषियों तथा मुनियों ने मनुष्य की इस समस्या का हल निकाल दिया । उन्होंने पूरे जीवन की ऐसी पद्धति निर्मित कर दी जिससे संसार का क्रम भी चलता रहे और मनुष्य लक्ष्य की ओर भी अग्रसर होता रहे । इन परस्पर दोनों बातों में केवल सामंजस्य ही न हो जाये, बल्कि दोनों एक-दूसरे की सहायिका बन जायें ।

ऋषियों की दी हुई मनुष्य जीवन की वह पद्धति है–आश्रम-व्यवस्था । जीवन अवधि के चार भाग ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम ! इनमें से गृहस्थाश्रम वह भाग है जिसमें रह कर मनुष्य सृष्टि सम्पादन की ईश्वरीय इच्छा पूरी करता है । विवाह करता, बच्चे पैदा करता और इसी में रह कर यापन करता, अनुभव करता और इसी में उसके अवरोध रूप आवेग एवं विकार प्रशमित होते हैं । इसी आश्रम में रहकर वह संसार में साधन इकट्ठे करता और आने वालों के लिए कर्त्तव्य पूर्त्ति का मार्ग प्रशस्त कर जाता है । साथ ही आयु का यही भाग ऐसा भी है जो जीवन लक्ष्य से भटका देता है, इस आश्रम का सर्वोपरि महत्त्व है । जिसका यह आश्रम सफल हो गया, उसका सारा उद्देश्य पूर्ण हो जाता है ।

गृहस्थाश्रम की सफलता के लिए एक आचार पद्धित बनाई गई, जिसे धर्म के नाम से भी पुकारते हैं । बताया गया कि गृहस्थाश्रम को भोग-संभोग न माना जाये बल्कि इसे वह योग माना जाये जिससे सृष्टि-संचालन तथा शाश्वत् शान्ति दोनों का प्रयोजन सध सके । किन्तु गृहस्थाश्रम, जिसमें भोग-विलास की सुविधायें तथा सम्भावनायें खुली पड़ी रहती हैं । योगाश्रम कैसे बनाया जाये ? इसके लिए पूर्व आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम में तैयारी करने के लिए कहा गया है ।

निश्चित है कि जो तन, मन से निर्बल होता है विकार एवं विकृतियाँ उसी को दबाती हैं, सबल को नहीं । पच्चीस साल का नियमित ब्रह्मचर्य एक बड़ा अर्थ रखता है । जन्म से लेकर पच्चीस साल तक की तरुण अवस्था तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने से शरीर में अपरिमित शक्ति और मन, बुद्धि में प्रखरतम तेज भर जाता है । ब्रह्मचर्य के साथ-साथ इसी आश्रम में विद्याभ्यास, शिल्प, कला-कौशल तथा धर्म का उपार्जन करने का भी निर्देश दिया गया है । इसी में विकारों तथा विकृतियों के कारण तथा परिणाम जान लिए जाते हैं । इसी में संयम का स्थायी अभ्यास सिद्ध हो जाता है और यही वह आश्रम है जिसमें गृहस्थ में प्रवेश करने की योग्यता और उसे सफल बनाने की क्षमता प्राप्त कर ली जाती है ।

अनन्तर, पूरी तैयारी के बाद मनुष्य गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है । जहाँ वह विवाह करके जीवन संगिनी अथवा लक्ष्य-सहयोगिनी के रूप में एक नारी ग्रहण करता है । नारी के अभाव में सृष्टि सम्पादन का ईश्वरीय मन्तव्य पूर्ण नहीं हो सकता, साथ ही वह विकारों तथा आवेगों की प्रशमिता भी होती है । ऐसा अतल गर्भ होती है जिसमें मनुष्य के सारे आवेग समा कर विलीन हो जाते हैं और वह निर्विकार होकर आगे बढ़ने के लिए तैयार हो जाता है । संसार में संघर्ष है, प्रतिकूलताएँ तथा अप्रियताएँ भी हैं । असफलता क्रान्ति तथा उद्विग्नता भी है । निराशा और हतोत्साह की परिस्थितियाँ भी हैं । विरक्त एवं विपरीत कर देने वाली कुटलता, कटुता तथा कुण्ठायें भी हैं । थकान तथा प्रशमन भी हैं । यह सबके सब असमंजस्य काफी हैं कि वे मनुष्य को जल्दी ही उठाकर मैदान से हटा दें और वह उद्देश्य से विरत होकर एक ओर जा पड़े । किन्तु नारी एक ऐसा आकर्षण केन्द्र है जिसे पाकर मनुष्य पराजित होकर भी मैदान से भागने नहीं पाता । वह बार-बार सहचरी से स्फूर्ति तथा उत्साह पाकर कर्त्तव्यों में संलग्न होता रहता है । गृहस्थ जीवन में नारी की बड़ी उपयोगिता है ।

पुरुष स्वभाव से पाशविक शक्तिशाली, कठोर, अर्हवादी उद्दण्ड, उच्छृंखल, प्रचण्ड तथा असहनशील ही नहीं, झगड़ालू तथा ध्वंसक तक होता है । नारी उसके इन सारे वेगों तथा आवेगों को अपनी सुन्दरता, सुशीलता, शालीनता, शान्ति एवं सहनशीलता से अनतरहित कर लेती है । उसका विकार-विष पीकर पचा जाती है । वह उपकूलों की तरह पुरुष के उच्छखंल एवं अनियन्त्रित प्रवाह को मर्यादित कर सृजन की ओर, शांन्त धारा की ओर प्रवाहित कर देती है ।

विवाह–अर्थात् विधिवत् नारी ग्रहण पुरुष के लिए परमावश्यक है । यदि ऐसा नहीं करता है तो उसके मूल विकार प्रशमित नहीं हो सकते और वह उन गुणों को प्राप्त नहीं कर सकता जिनकी आगे चलकर लक्ष्य प्राप्ति के लिए आवश्यकता होती है । यदि गृहस्थाश्रम का उल्लंघन करके वह ब्रह्मचर्य से सीधा वानप्रस्थ तथा संन्यास में चला जाये तो न जाने कितने विकार, कितनी पूर्णतायें और कितनी कुण्ठायें उसके साथ चली जायें ? उसके प्राकृतिक आवेग जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ जीवन में ही उभर कर बह जाते हैं, अन्तस्तल में छिपे-छिपे साथ भले जायें और उस जीवन में बाधक बनें ।

विवाह पर बल देते हुए, अविवाहितों की कठिनाइयाँ तथा हानियाँ बतलाते हुए प्रसिद्ध दार्शनिक डॉक्टर जेम्स स्टाक ने कहा है–"अन्य विचारों तथा न्यूनताओं के साथ कौमार्य से मनुष्य की आयु क्षीण होती है । विवाहित व्यक्तियों में चालीस और बीस वर्ष के मध्य चौहद सौ सात व्यक्ति प्रति वर्ष मरते हैं, किन्तु इसी अवस्था में कुँआरे एक लाख में से अठारह सौ पैतीस प्रतिवर्ष मरते हैं । पच्चीस से चालीस के मध्य में मरने वाले अविवाहितों की मृत्यु का अनुपात विवाहितों से दुगुना है यही कारण है कि बीमा कम्पनियाँ अविवाहितों की तुलना में विवाहितों को प्राथमिकता देती हैं ।

विवाहित जीवन स्वीकार न करने वाले व्यक्ति में अनेक प्रकार के मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं । आयु कम हो जाती है, मानसिक भावनायें विकसित नहीं हो पाती, संसार के महत्त्वपूर्ण कार्यों में जी नहीं लगता । मन पुनः पुनः सुन्दर स्त्रियों के मानसचित्र बनाता और स्वप्न दूषित कर देता है । अविवाहित पुरुष की उत्पादन शक्ति क्षीण हो जाती है । उसे जीवन में वह स्फूर्ति, चाव, उत्साह तथा प्रेरणा प्राप्त नहीं होती है जो विवाहित व्यक्तियों को सहज ही प्राप्त होते रहते हैं ।

ऐसा होना स्वाभाविक है । ईश्वर ने सृष्टि सम्पादन की प्रेरणा भरने के लिए जिन विकारों, भावनाओं, आवेगों तथा आवश्यकताओं को मनुष्य जीवन में समाहित कर दिए हैं, उनका प्रशमन, पूर्ति तथा तृप्ति विवाहित होकर ही हो सकती हैं । विवाह न करना इस प्राकृतिक आवश्यकता का विरोध करना है जिसका परिणाम मानसिक विकारों तथा भयानक कुण्ठाओं के रूप में सामने आते हैं ।

गृहस्थ जीवन में आकर पुरुष तथा नारी, पति एवं पत्नी एक-दूसरे के सुख के लिए, त्याग तथा बलिदान का पाठ सीखते हैं । एक-दूसरे को प्रसन्न तथा अधिकाधिक सुखी बनाने के लिये कष्ट सहते हैं । उनमें सहानुभूति, सम्वेदना तथा पारस्परिक आत्मीयता का विधान होता है । प्रेमवश अपने जीवन सहचर के लिये अधिकाधिक त्याग करने के लिये प्रस्तुत रहने से उनकी आत्मा की स्वार्थपरता, संकीर्णता नष्ट हो जाती है और उनके लिये सुख का मार्ग प्रशस्त हो जाता है ।

बच्चे होते हैं तो उनके प्रेम तथा त्याग की परिधि और विकसित तथा बड़ी होने लगती है । दोनों उनके लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षा में अपना सार-सुख भूल कर उनका विचार करने लगते हैं । इस प्रकार प्रेम, त्याग, बलिदान, सम्वेदना, सहानुभूति तथा आत्मीयता का स्थायी अभ्यास सिद्ध कर पुरुष आगे संसार के लिये भी उन गुणों को विकसित कर सकने के योग्य हो जाता है । विधि पूर्वक गृहस्थ सेवन तथा संचालन करने से वह सफल हो जाता है । जिससे न केवल सृष्टि सम्पादन का ईश्वरीय मन्तव्य ही पूरा होता है, बल्कि आत्मा में एक सन्तोष, एक तृप्ति, एक पूर्णता आ जाती है जो जीवन लक्ष्य प्राप्त करने के लिए बहुत सहायक होती है ।

इस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम में संचित शक्ति तथा क्षमताओं को गृहस्थ आश्रम में उपयोग कर मनुष्य वानप्रस्थ में आता है और तब गृहस्थ से निश्चिन्त होकर अपनी आत्म-साधना में लग जाता है । इस आत्म-साधना के अवसर पर वह संसार एवम् समाज की सेवा द्वारा उसके उपकारों का प्रतिशोध करता है जिससे उसकी आत्मा उऋण होकर संसार के कर्त्तव्यों से मुक्त हो जाती है, तब वह संन्यासाश्रम में जाकर केवल एकमात्र आत्मचिन्तन और अन्वेषण करता है । वह विकारों, आवेगों, कर्त्तव्यों तथा ऋणों से रहित होकर पूर्व प्रसन्नता तथा तन्मयता की स्थिति में निरन्तर आत्मोन्मीलन में लगा रहता है और कुछ ही समय में शाश्वत् शान्ति के रूप में ईश्वर का अथवा ईश्वर की प्राप्ति से शाश्वत् शांति का चरम लक्ष्य पा लेता है ।

ब्रह्मचर्याश्रम की पूर्णता के बिना गृहस्थाश्रम सफल नहीं हो सकता और गृहस्थाश्रम की असफलता आगे के दोनों आश्रम असफल कर देती है । संसार का सार कम क्या शेष तीनों एवं मनुष्य का निर्माण गृहस्थाश्रम में ही सम्भव है । किन्तु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थाश्रम की सफलता भी इस बात पर निर्भर है कि गृहस्थाश्रम की स्थापना को ऐसा साधन माना जाये जिसके द्वारा हम सहज ही आत्म-विकास कर सकते हैं और आत्मा के सतोगुण की परिपुष्टि कर, सुखी, समृद्धि तथा संतुष्ट प्रवृत्तियाँ उपलब्ध कर सकते हैं । सेवा, कर्म, साधना तथा त्याग, बलिदानों के उच्च सोपानों पर पैर रखना सीख सकते हैं । गृहस्थाश्रम विषय-भोग का अवसर नहीं है । यह दो आत्माओं के पारस्परिक सहवास द्वारा शुद्ध न्याय, सुख प्रेम तथा पुण्य प्राप्त करने का एक साधन है । यह वह तपोभूमि है, वह साधना कुटीर है जिसकी सहायता से सांसारिक भोगों की निःसारता, एक क्षण भंगुरता का भान होता है । अपूर्णता से पूर्णता प्राप्त होती है परसेवा तथा परहित की मंगल-भावना का विकास होता है । यदि उसे इस उद्देश्य का माध्यम न मान कर भोगों की क्रीड़ास्थली और स्वार्थों लोभों, मोहों तथा विषयात्मक भावनाओं की वृद्धि का साधन मान लिया गया तो परिपूर्ण रूप से असफल होकर घोरतम वेदना का कारण बनेगा और तब शाश्वत् शान्ति का लक्ष्य तो मिलना क्या उल्टे लोक तथा परलोक में नारकीय यात्रा की परिस्थितियाँ बन जायेंगी ।

ब्रह्मचर्याश्रम में पूरी तैयारी कर के योग भावना पूर्वक गृहस्थ आश्रम द्वारा सृष्टि सम्पादन का ईश्वरीय मन्तव्य पूर्ण करते हुए और संसार की निःसारता, भोगों की क्षणभंगुरता का अनुभव प्राप्त करने के बाद त्याग, तपस्या तथा सेवा, प्रेम, सहानुभूति की सम्पत्ति के साथ अगले दो आश्रमों में साधन द्वारा शाश्वत् शान्ति का लक्ष्य प्राप्त करिये । अन्य कोई साधन नहीं है ।

विवाह भले ही कीजिए पर ध्यान यह भी रखिए

स्पष्ट बात है कि जिस व्यक्ति की आर्थिक स्थिति योग्य न हो उसे परिवार नहीं बसाना चाहिये या बसे तो उस परिवार को विवाह और बच्चे कर के नहीं बढ़ाना चाहिये । एकाकी जीवन से पारिवारिक कलह अथवा अभाव का वातावरण ज्यादा कष्टदायक है । बीबी नंगी भूखी रहे, बच्चे अशिक्षित, नंगे भूखे और अयोग्य बन कर रहें और आवारगर्दी करते रहें तो इसका क्या लाभ ?

पहले अपना कार्य, रोजगार जमाइये और फिर उसके बाद विवाह करिये । विवाह करने में दो चार बातों में सावधानी बर्तना बहुत आवश्यक है । एक तो यह कि अपनी स्थिति में ऊँची स्थिति में विवाह मत करिये । ज्यादा पढ़ी-लिखी अथवा सुन्दर लड़की पर मत जाइये । बहुत से लोग प्रतिष्ठा, सहारा अथवा दहेज के लालच में बड़े परिवारों में विवाह कर बैठते हैं, किन्तु उनकी यह इच्छा पूरी नहीं होती, उन्हें एक ज्यादा खर्चीली लड़की गले बँध जाती है ।

बहुत बार युवक बहुत सुन्दर लड़की से विवाह करने के लिए लालायित होते रहते हैं । यह लोभ बड़ा स्वाभाविक होता है । फिर भी सुन्दरी से ही विवाह करने की जिद नहीं करनी चाहिए । पति के व्यक्तित्व के अनुरूप ही पत्नी भी फबती है फिर जिस सौन्दर्य को सजाने, बढ़ाने अथवा सुरक्षित रखने की स्थिति में हम यदि नहीं हैं तो उस सुन्दरता को अपने बन्धन में लाने से क्या लाभ ? यदि सुन्दरता का महत्त्व हमारी दृष्टि में है तो उसको सुरक्षित रखने का कर्त्तव्य भी पूरा करने की शक्ति होनी चाहिए । सुन्दरता प्रशंसनीय भी है और वांछनीय भी तथापि गुणों का भी अपना कुछ मूल्य महत्त्व है । यदि संसार के सारे व्यक्ति सुन्दर लड़कियों की ही चाह करने लगें तो उन बेचारियों का क्या होगा जिन्होंने अपनी इस सुन्दरता की कमी को गुणों से पूरा करने के लिये साधना की है ? गुण भी आदरणीय ही हैं । सामान्य स्थिति के युवकों को सुन्दरता के बजाय गुणों पर ही जाना चाहिए । रूपवती की अपेक्षा गुणवती अधिक सफल तथा समर्पणशीला गृहिणी सिद्ध होती है ।

अपनी स्थिति तथा अपने अनुरूप लड़की से विवाह करिये और इस प्रयत्न से कभी भी असावधान न रहिये कि अधिक बच्चे न हों । साधारण स्थिति का गृहस्थ दो बच्चे से अधिक बच्चों को ठीक से न तो पाल सकता है और न उन्हें शिक्षित करा कर योग्य बना सकता है । दो बच्चे के बाद प्रजनन बन्द करा दीजिये अन्यथा भयानक आर्थिक संकट में पड़ना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

होगा । बहुत बार लोग एक पुत्र के लालच में सन्तानों की संख्या बढ़ाते जाते हैं । यदि उनके तराऊपर दो लड़कियाँ हो गई तो वे तीसरी सन्तान इसीलए और करते हैं कि शायद उनको पुत्र प्राप्त हो । ऐसे-ऐसे अदूरदर्शी समाज में मौजूद हैं जिन्होंने एक पुत्र की आशा में सात-सात लड़कियों को जन्म दे डाला और जीवन-भर उनकी शादी-ब्याह की व्यवस्था में जीवन खपा कर, जमीन जायदाद बेच कर और भारी कर्ज का बोझ लिए इस संसार से चले जाने की तैयारी करते हैं । यदि एक के बाद दूसरी लड़की हो जाये तब तो शपथ पूवक प्रजनन बन्द ही कर देना चाहिये । यह दो लड़कियाँ आर्थिक नींव हिला देने को काफी हैं । पुत्र की आशा में यदि तीसरी लड़की और हो गई तो समझिये आपने अपनी बरबादी के बीज पूरी तरह से बो लिए । अपनी जवानी तथा बुढ़ापा पूरी तरह नष्ट कर डालने की तैयारी कर ली । पुत्र हो अथवा पुत्री आज हर मध्यम वर्ग के गृहस्थ की दो सन्तानों से ज्यादा नहीं ही करना चाहिए—यदि वह अपनी जिन्दगी सुख-चैन से काटना चाहता है—वैसे उसकी अपनी मर्जी बेचैन रहे, अभावग्रस्त रहे या कर्जदार बन कर दिन-रात चिन्ता करे ।

आय से अधिक व्यय करने की मूर्खता कभी मत कीजिए । कोई परिस्थिति अथवा मजबूरी क्यों न आ जाये अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहिये । दृढ़ता जीवन की सुख-शान्ति का बहुत बड़ा स्तम्भ है । साहस पूर्वक स्थिति पर विजयी होने का गुण कीजिये । व्यय से अधिक खर्च न करने का नियम तोड़ा नहीं कि जल्दी ही आर्थिक संकट मुँहवाये सामने आकर खड़ा हो जायेगा । इस नियम के टूटने में जो दो—तीन स्वभाविक कारण सामने आते हैं उनसे सदा सावधान रहिये ।

एक तो यह कि जब नया-नया विवाह होकर आता है । नई उमंग और नये हौसले और नया-नया प्रेम होता है । निरन्तर यह आकांक्षा जोर बाँधती रहती है कि कितना, क्या लाकर पत्नी के चरणों में रख दूँ ? कितनी और किन-किन उपहारों से उसको प्रसन्न किया जाये ? संसार के कौन से पदार्थ और कौन से पट-परिधान उसके सामने ढेर लगा दिये जायें ? भावनाओं की यह बाढ़ बड़ी स्वाभाविक तथा वेगवती होती है । जो अपनी इस भावुकता को रोक नहीं पाते वे अपना संचय तो जल्दी खर्च ही कर डालते हैं । साथ ही कर्जदार भी बन जाते हैं और कभी-कभी गलत रास्ते पर भी चले जाते हैं । नहीं अपनी इस भावुकता को रोक कर कर्त्तव्य देखना होगा, वर्तमान के साथ भविष्य पर भी दृष्टि डालनी होगी, प्यार के साथ अपनी स्थिति भी देखनी होगी । और पत्नी पर प्रेम प्रकट कर दे अथवा उसको सप्रसन्न करने के लिए सब कुछ करते हुए भी अपनी आर्थिक मर्यादा में रहना ही होगा, तभी दोनों की जीवन गाड़ी देर तक दूर तक ठीक गति से चल पायेगी, नहीं तो अन्धाधुन्ध दौड़ में वह जल्दी ही टूट जायेगी या उलट जायेगी । एक आध वर्ष बाहर रहने के बाद अभाव का पतझर शुरू हो जायेगा । कर्ज निपटाये नहीं निपटेगा । सूद ब्याज और दर-ब्याज बढ़ता जायेगा, आमदनी का बड़ा भाग निकलता जाएगा और बच्चों के साथ परिवार व खर्च बढ़ता जायेगा, जिसका फल वह होगा कि बीबी के कपड़े फटे रहने लगेंगे, बच्चों की फीस रुकने लगेंगी, रोटी चलाना मुश्किल हो जायेगा । साल दो साल की बहार के लिए जीवन-भर का यह पतझर ले लेना बुद्धिमानी नहीं । जो विवाह के प्रारम्भिक ज्वार को सम्भाल ले गया वह मानो अपनी जीवन नौका समतल धार में ले आया । इस संकट से बचाने में पत्नी को पति का सहायक होना चाहिये । उसकी बुद्धिमानी इसी में है कि वह पहले दिन से ही सद्गृहणी की गरिमा तथा गम्भीरता धारण कर ले और पति को प्रेम में आकर अपनी आर्थिक मर्यादा हठपूर्वक न तोड़ने दे । उसका यह सार्थक प्रेम पति के लिये वरदान सिद्ध होगा और जीवन—भर इसके लिए आभारी रहेगा । इससे बड़ी पति सेवा शायद गृहस्थी के लिए और क्या हो सकती है कि वह उसके प्रारम्भिक उन्माद का आनन्द न लेकर बर्बाद होने से बचा ले ।

पहला बच्चा होने पर तो पति-पत्नी दोनों को ही अपनी आर्थिक मर्यादा का होश नही रहता । दोनों हर्ष विभोर होकर सर्वस्व लुटा देने को तैयार हो जाते हैं । हँसी-खुशी, दान-दक्षिणा, बाजागाजा,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुलावा-चलावा, उत्सव-उल्लास, दावत-भोज आदि अनेक खर्चीले आयोजनों का ताँता लग जाता है । सारी पूँजी स्वाह हो जाती है और सिर पर कर्ज लद जाता है और फिर वही पूर्वोक्त परिणाम शुरू हो जाते हैं । बच्चे की खुशी किसे नही होती ? कौन उत्सव उल्लास नहीं मनाना चाहता फिर भी मानवीय विवेक का तकाजा है कि घर फूँक तमाश नहीं देखना चाहिये । खुशी के जोश में जिसे होश नही रहता वह जीवन में गहरा धोखा खाता है और सदा पछताता रहता है ।

बच्चा होना खुशी की अपेक्षा जिम्मेदारी की बात ज्यादा है । उसके होने की खुशी में खर्च किया जाने वाला पैसा यदि सुरक्षित कर के उसकी शिक्षा-दीक्षा तथा उन्नति विकास में लगाया जाये तो कहीं अधिक हितकर हो । पुत्रोत्सव में साधारण-सा खर्च करके बाकी पैसा बचा लिया जाये और उसके बच्चे को बनाने, उसको कार–रोजगार में लगाने और उसका भविष्य सम्भालने में लगा कर उसे योग्य बना दिया जाये सच्ची खुशी की बात तो तब है । उस भी दिग्मात्र नवजात शिशु की खुशी में बेतहाशा पागल होकर अपनी कमर न तोड़ लीजिये । परिवार को कर्जदान बना कर छोड़ दिया जाय, बच्चे न केवल अयोग्य हो रक्खें जाये बल्कि उन पर भी अपने कर्ज का भार उतारा जाये तो ऐसी खुशी किसने मानी ? यह तो वह खुशी है जो बच्चे के लिए विष होकर सामने आयेगी ।

खर्च का तीसरा दौरा पहले बेटे के विवाह में पड़ता है । इनका भी कोई वार–पार नहीं होता । लम्बी चौड़ी बारात, दर-दर के रिश्तेदार, दोस्तों की भीड़, बाजा, रोशनी, सवारी, आतिशबाजी, जेवर, कपड़े, लेन-देन, दावत-भोज का ऐसा अनियन्त्रित प्रवाह चलता है कि सारी आर्थिक नींव उखड़ कर बह जाती है और हाथ लगती है एक पराई कन्या का पालन-पोषण और लम्बा-चौड़ा कर्ज जो आप से लेकर बेटे, पोतों तक के लिए काफी हो पाता है । ब्याह भारतीय समाज में एक लम्बा-चौड़ा और अनियन्त्रित आयोजन होता है । इस अवसर पर जरा भी असावधानी जीवन भर के लिए काँटे बो देती है । कोई क्या कहेगा ? समाज में भद्द होगी, नातेदारों में प्रतिष्ठा उठ जाएगी यार–दोस्त ताने मारेंगे और रिश्तेदार कंजूस समझेंगे यह सारी भावुकता निरर्थक तथा हानिकारक है । इसकी परवाह नहीं करना चाहिये । सब ओर मजबूत एक जबाव–हम अपनी चादर से आगे पैर नहीं फैला सकते । दो, चार दिन की निरर्थक बाहवाही के लिए परिवार पर बज्रपात नहीं कर सकते । कुछ ही दिनों में लोगों के मुँह बन्द हो जायेंगे और आप बरबादी से बच जायेंगे । आदर्श विवाह करिये और छोटा-सा समयोचित उत्सव मनाइये । अविवेकशील और अदूरदर्शी व्यक्तियों की तरह पागल हो जाना ठीक नहीं ।

कहना न होगा कि जिसने अपनी इन प्रियारजन, पुत्रोत्सव तथा विवाहोत्सव की तीन आर्थिक-अल्पों को बुद्धिमानी से पार कर लिया, उसने मानों अपनी आर्थिक स्थिति की आयु बढ़ा ली और जो इनके प्रभाव अथवा दबाव में आ गया वह बरबाद होने के लिए तैयार ही रहेगा ।

जो इन तीन बड़े वारों को पार कर गया और स्थिति से अधिक खर्च न करने के सिद्धान्त पर डटा रहा है, उसे पत्नी की जिद बच्चों का हठ, समाज का दिखावा, दूसरों की नकल, ऊँचा किन्तु निरर्थक रहन-सहन, स्थिति से आगे, बड़े व्यापार का लोभ, यार–दोस्तों की संगति, व्यसन-विलास तथा चटोरे-पटोरे होने की आकांक्षा विचलित ही क्या कर सकती है ? आय-व्यय का ठीक-ठीक सन्तुलन बनाये रखिये, भविष्य के लिए बचाते चलिये साथ ही मृत्यु-भोज, पितर-पूजन, दान-पुण्य आदि की अनुचित प्रथाओं को छोड़ने का साहस दिखाते हुए जीवक यापन करिये । आप पर, परिवार पर अथवा आपके बच्चों पर कभी भी आर्थिक संकट नहीं आयेगा और सब सुख, चैन की जिन्दगी जीते चलेंगे ।

दाम्पत्ति जीवन की मधुरता एवं निष्ठा

आखिर ये कौन–सी कमियाँ हो सकती हैं जिनके कारण कोई दम्पत्ति आपस में मनमुटाव रख सकते हैं, एक-दूसरे से लड़-झगड़ सकते हैं और आपस में तनाव मान सकते हैं । पति-पत्नी का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्ध तो बड़ा मधुर और सबसे आनन्ददायक माना गया है । ऐसे दो मित्रों सहचरों अथवा साथियों का वैमनस्य कहाँ तक उचित है जिन्हें आजीवन दिन-रात एक-दूसरे के साथ रहना है जवानी और बुढापा साथ-साथ काटना है।

कहना न होगा कि पारस्परिक अनबन बनी रहने से आज का दाम्पत्य जीवन घोर नरक की स्थिति में पड़े हुए हैं । इसका दुष्प्रभाव ने केवल उन दोनों के जीवन पर ही पड़ता है, बच्चों तथा समाज पर भी पड़ता है । निश्चय ही इसके कारण दूर किये ही जाने चाहिये ।

दाम्पत्य जीवन को नरक बनाने का एक कारण तो है–भोग भावना। इस भावना के कारण लोग अपना कर्त्तव्य भूल जाते हैं । स्वास्थ्य और माधुर्य खो देते हैं, जिससे शरीर व स्वभाव जर्जर और कर्क हो जाता है । इसका अधिक दोष पति को ही दिया जा सकता है। विषय की अधिकता से नारी का सौन्दर्य और सौष्ठव अकाल में ही अस्त हो जाता है । पुरुष की शक्ति क्षीण हो जाती है निदान आकर्षण कम हो जाता है और उसका रिक्त स्थान विरिक्ति अथवा उदासीनता ले लेती है । नारी अपने को उपेक्षित अथवा तिरस्कृत और पति को स्वार्थी और शरीर लोलुप समझ कर प्रतिक्रियाग्रस्त हो उठती है और अनेक प्रकार की कलह का सूत्रपात हो जाता है ।

नारी के प्रति आकर्षण और प्रेम बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि पुरुष संयम पूर्वक अपनी क्षुधा का रक्षा किये रहे जिससे स्वास्थ्य, सौन्दर्य तथा मानवीय नैतिकता बनी रहती है । स्त्री प्रेम पाती और प्रसन्न बनी रहती है ।

अधिक बच्चे भी दाम्पत्य कलह का एक कारण है । सारा समय सारी कमाई और सारी शक्ति बच्चों के ही अर्थ लग जाती है । चिन्तायें और परेशानियाँ बढ़ जाती हैं दिन-रात हाय-तोबा मची रहती है । दिमाग गरम रहता है । बच्चों के साथ हाय-हाय करते-करते सारा माधुर्य नष्ट हो जाता है। पति-पत्नी को कुछ देर साथ-साथ बैठ कर प्रेम वार्तालाप करने का भी अवसर अवकाश नहीं मिलता । बच्चों से उत्पन्न खीझ तथा प्रेम-भाव में मन की कटुता कुछ तो बच्चों पर उतरती है और कुछ आपस में लड़-झगड़ कर ।

दाम्पत्य सुख-शान्ति के लिए सन्तुलित तथा नियोजित परिवार का होना बहुत आवश्यक है । आर्थिक स्थिति मजबूत तथा साधनों की कमी न होने पर भी अधिक बच्चों का उत्पादन ठीक नहीं रहता । अधिक बच्चों के माता-पिता का आपस में प्रेम-भाव नहीं रहता ।

अधिकार भावना भी दाम्पत्य सुख में चिनगारी के समान है । जहाँ पति-पत्नी के शरीर, रूप, लावण्य तथा उसके रोम-रोम पर उससे भी अधिक अपना अधिकार समझता है और चाहता है कि खाने-पीने से लेकर सोने-जागने और शृंगार करने तक में उसकी रुचि तथा शासन का पालन करें, वहाँ पत्नी की यह भावना रहती है कि पति की पाई-पाई कमाई पर उसका एकाधिकार है । समय पर उसकी पूरी कमाई उसके हाथ पर आनी चाहिये । इसमें विलम्ब अथवा कटौती उसे जरा भी सहन नहीं । जिस प्रकार पति उसे शारीरिक गुलाम बनाये रखना चाहता है पत्नी उसे आर्थिक दास । एक-एक पैसा वह अपने हाथ से खर्च करे । कहाँ किस मद में कितना और क्यों खर्च किया गया है ? इस प्रश्न को उसके सामने न उठाया जाये । इतना ही नहीं वह भोजन और नाश्ते में भी पति को अपने अधीन रखना चाहती है । वह जो कुछ बनाये बिना मीनमेख के स्वीकार किया जाये । उसने कहाँ, क्या खर्च किया यह तो उससे जरूर पूछा जाये, किन्तु यह उसे अवश्य बतलाया जाये कि पति ने कहाँ, क्या और क्यों खर्च किया ? इस प्रकार पति यदि उसके शरीर पर अधिकार चाहता है तो वह उसके पर्स पर एकाधिपत्य चाहती है । कहना न होगा कि दोनों अपनी जगह पर गलत हैं ।

एकाधिपत्य की भावना में मित्रता, दासता तथा अहं का दोष होता है । जो पारस्परिक प्रेम को कुण्ठित कर देता है । पत्नी का रोम-रोम पति का और पति का सर्वस्व पत्नी का होता है, इसमें अलग अधिकार भावना कैसी ? पति कमा कर लाये पत्नी उसे सँजोकर रक्खे और घर चलाये यह तो एक सामान्य-सा गृहधर्म है । दोनों एक-दूसरे के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुख-दुःख तथा रुचियों का ध्यान रक्खें । दोनों के सुख-दुःख और दोनों की रुचियाँ उनकी अपनी रुचियाँ हैं । जिनका समन्वय तथा निर्वाह करते चलना पारस्परिक प्रेम को सुरक्षित रखने का एक सभ्य उपाय है, जिसे दोनों को काम में लाना ही चाहिये ।

कपट, दाम्पत्य प्रेम में भयानक, अभिशाप की भूमिका प्रस्तुत करता है । हृदयों में कोई चोरी छिपाये रहने से आत्मा दूषित होती है जिससे उदात्त भावनाओं का ह्रास और पारस्परिक विश्वास की हानि होती है । पति-पत्नी को चाहिये कि उनमें से कोई भी ऐसा कोई काम न करे तो एक-दूसरे से छिपाना पड़े । दोनों का जीवन दोनों के लिये स्पष्ट शब्दों में लिखी सरल पुस्तक के समान ही होना चाहिये जिससे वे दोनों एक-दूसरे को पूरी तरह से समझ सकें । क्षीर-नीर की तरह मिले हुए दो हृदय को फाड़ देने के लिए कपट को तीव्र अम्ल के समान माना गया है । खाने, पहनने, खर्च करने, कहीं आने-जाने अथवा मनोरंजन करने में में किसी को किसी से कपट नहीं करना चाहिये । पति-पत्नी के आने-जाने के स्थानों तथा मित्रों का पूरा परिचय दोनों को होना चाहिये । कोई भी स्थान अथवा व्यक्ति ऐसा न होना चाहिये जो किसी से छिपा हो । सबसे अच्छा तो यह हो कि उन दोनों के आने, जाने तथा मित्र मुलाकाती एक ही हो । कष्ट बाह्य जीवन अथवा व्यवहार ही में नहीं, प्रेम में भी नहीं करना चाहिये । जिसके पास जितने प्रेम तथा भावनाओं का कोष हो उसमें से एक-एक बूँद एक-दूसरे को समर्पित कर देना चाहिये । क्योंकि वे ही इसके पूरे, उचित और सच्चे अधिकारी हैं । प्रेम की चोरी कभी छिपाई नहीं जा सकती । कभी न कभी खुल ही जाती है और तब कलह का ऐसा विस्फोट होता है कि पूरा जीवन ही टूट कर रह जाता है। पति-पत्नी को एक-दूसरे का तन, मन, धन से सम्पूर्ण समर्पण करना चाहिये । यही दाम्पत्य जीवन को सुख-शान्ति से सराबोर कर देने के लिए इसे महामन्त्र माना गया है।

आचरण हीन दम्पत्ति स्वप्न में भी कभी सुख-शान्ति नहीं पा सकते । आचरणहीन का प्रेम दूषित होता है । उसमे शालीनता की सुगन्ध नहीं व्यभिचार की दुर्गन्ध आती है । उनका प्रेम, प्रेम न होकर वासना की तरंगभर होती है जो ज्वार की तरह चढ़ती और भाटे की तरह उतर जाती है । आचरणहीन दम्पत्ति एक-दूसरे का विश्वास खो देते हैं । जहाँ विश्वास नहीं वहाँ मैत्री तथा सौजन्य हो ही कैसे सकता है ? इस दोष के कारण दोनों में एक-दूसरे के प्रति परकीय भाव बना रहता है और वे अपनी-अपनी ओर खिचे रहते हैं । चरित्र गृहस्थ का सबसे मूल्यवान धन है । इसके न रहने से पारस्परिक प्रेम ही नहीं; पारिवारिक प्रतिष्ठा तथा सांसारिक उन्नति तक समाप्त हो जाती है ।

सद्गृहस्थों को एक-दूसरे के प्रति सन्देह तथा अविश्वास से सदा बचते रहना चाहिये । एक बार इसको अवसर अथवा अवकाश मिलते ही फिर यह शत्रु सदा के लिए जम कर बैठ जाता है और लाख प्रयत्न करने पर भी दूर नहीं होता । हृदय में सन्देह अथवा अविश्वास दोनों की साधारण से साधारण गतिविधि को संदिग्ध बना देता है । किसी के पास बैठना-उठना, बोलना-चालना, खाना-पीना अथवा पहनना-ओढ़ना तक शंका और सन्देह से दूषित हो जाता है । ऐसी तुच्छ तथा निन्दनीय स्थिति में प्रेम जैसी पवित्रता की आशा किस प्रकार की जा सकती है ? उसमें तो कलह-क्लेश, बाद-विवाद तथा व्यंग्य-विष की ही आशा की जा सकती है । शंका तथा अविश्वास दाम्पत्य सुख के सबसे बड़े शत्रु हैं । इनसे सदा सर्वदा ही बचे रहना चाहिये । दोनों को दोनों के प्रति उदार तथा स्वच्छ हृदय ही रहना चाहिये ।

दाम्पत्य जीवन में दोष दृष्टि का समावेश अपने साथ अशांति तथा असन्तोष लेकर होता है । बुराई किसमें नहीं होती, कमियों तथा न्यूनताओं से कौन बचा है ? एक-दूसरे के दोष देखते रहना, आलोचना प्रत्यालोचना करते रहना ठीक नहीं । रूप-सरूप की आलोचना, खाने-पहनने, उठने-बैठने और बोलने-चालने की आलोचना करना अथवा उनमें बुराई खोजते रहना अशोभनीय तुच्छता है जो किसी भी सद्गृहस्थ को शोभा नहीं देती । दोनों एक-दूसरे के प्रति उदार तथा क्षमा दृष्टि रक्खें । उनके दोषों को भूलें और गुणों को याद करें । उनकी प्रशंसा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करें और बढ़ाने का प्रयत्न करें । दोष दृष्टि जल्दी ही उनके बीच प्रेम खत्म कर कलह पैदा कर देती है । कोई भूल, त्रुटि अथवा गलती हो जाने पर हँसकर क्षमा माँग लेने और प्रेम-पूर्वक क्षमा कर देने में कोई मानापमान नहीं । यह तो विनम्रता तथा सभ्यता का लक्षण है । एक सुन्दर मानवीय गुण है जो जीवन में बड़े-बड़े संघर्षों को आने से बचा देता है ।

अपने को प्राथमिकता देना अथवा किसी माने में बड़ा समझना, दूसरे का तिरस्कार करना । पति-पत्नी में न कोई बड़ा है और न छोटा, न कोई पहले हैं और न पीछे । दोनों अपने-अपने स्थान पर आदर तथा समानता के अधिकारी हैं । जो उन्हें एक-दूसरे की ओर से मिलना ही चाहिये । किसी को किसी बात पर दबाने लजाने से भी कलह की सम्भावना रहती है । जहाँ दबाना–लजाना एक दोष है वहाँ किसी भूल पर अथवा कर्त्तव्यवश कहीं पर स्वयं जाना या लज्जित हो जाना एक गुण है । इससे गलत फहमी दूर होती है और विनम्रता का भाव बढ़ता है । पति-पत्नी का कर्त्तव्यों के प्रति लज्जा और अधिकारों के लिये एक-दूसरे पर निर्भर होकर चलना ऐसी नीति है जो पारस्परिक विवाद को कभी आने ही नहीं देती ।

बहुत बार दोनों में किसी का स्वभाव कुछ ज्यादा परुष होता है । बात-बात में गुस्सा हो उठना, नाराजी जाहिर करना अथवा कुछ कह बैठना असम्भाव्य नहीं होता । यद्यपि यह दोष है तथापि इसका बदला लेना ठीक नहीं । इसके लिये दम्पत्ति को अपने स्वभाव में सहिष्णुता का विकार करना ही चाहिये और ऐसे अवसर को बुद्धिमत्ता पूर्वक मौन रह कर टाल जाना चाहिये । बहुत बार पुरुष परुष और नारी मानिनी स्वभाव की मिल जाती है । ऐसे विषम स्वभाव के दम्पत्ति को अपने-अपने अवसर पर अवश्य ही मौन तथा सहनशीलता का सहारा लेना ही चाहिये । सहनशीलता में हार-जीत का भाव नहीं लाना चाहिए यह भी क्षमा शीलता की तरह एक मानवीय सद्गुण है । किसी अवसर पर एक कडुआ घूँट पी जाना जीवन की लम्बी अवधि में सुख–शान्ति लाने का उपक्रम है । सहनशील दम्पत्ति जीवन में सदा सुखी रहते हैं ।

दम्पत्ति में भिन्नता का भाव तो जरा भी नहीं होना चहिये । उन्हें अधिक से अधिक साथ ही रहना चाहिये । साथ खाना यथासम्भव साथ ही बाजार घूमना मनोरंजन करना तथा सैर-सपाटे और मित्रों के यहाँ साथ-साथ जाना उन्हें एक-दूसरे के अधिकाधिक पास लाते हैं । उनमें आत्मीयता और अपनत्व का भाव बढ़ता है । विपत्ति और संकट में तो उन्हें और भी एक-दूसरे के पास आ जाना चहिये । सुख में सहचरों के समान और रोग पीड़ा, अथवा विपत्ति में उन्हें एक-दूसरे का अभिभावक बन जाना चाहिये । दोनों की पीड़ा तकलीफ को अपना मान कर चलने और हर तरह के तन-मन से सेवा करने वाले दम्पत्ति घर में स्वर्ग का अवतरण कर लेते हैं, और जो पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति उपेक्षा, तिरस्कार, स्वार्थपरता, अधिकार, अहंकार अथवा सन्देह का दृष्टिकोण रखते हैं वे निश्चय ही वांछित सुख-शान्ति सें वंचित रह जाते हैं । दाम्पत्य जीवन एक सुखकर कर्त्तव्य और आनन्ददायक उत्तरदायित्व है जिसका उचित तथा नीतिपूर्वक निर्वाह करने वाले न कभी दुःखी होते हैं औन न निराश ।

दाम्पत्य जीवन का सफल निर्वाह

दाम्पत्य जीवन को स्वर्ग का सुन्दर सोपान कहा गया है, किन्तु यह कथन चरितार्थ तभी होता है, जब पति-पत्नी के बीच अखण्ड एकता, स्नेह, सौन्दर्य तथा विश्वास हो अन्यथा दाम्पत्य जीवन से बढ़कर सुख देने वाली कोई परिस्थिति नहीं होती ।

दाम्पत्य जीवन को सफल और सार्थक बनाने के लिये पति-पत्नी को एक-दूसरे के प्रति सहयोग, आत्मोत्सर्ग, त्याग तथा 'सेवा का भाव रखना चाहिये । सफल दाम्पत्य जीवन न केवल पति-पत्नी के लिये ही सुखदायक होता है अपितु उससे सुन्दर और सुशील परिवार का भी निर्माण होता है और परिवार एक सुन्दर समाज की रचना करते हैं । इस प्रकार व्यक्ति से लेकर समाज तक की उन्नति तथा विकास के लिये दाम्पत्य जीवन का सफल एवं सन्तुष्ट होना बहुत आवश्यक है ।

दाम्पत्य जीवन को सफलता पूर्वक चलाने का साहस तथा आकांक्षा लेकर ही युवक और युवतियाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवाह सूत्र में बँधते हैं । वे परस्पर एक-दूसरे का निर्वाह करने के लिये कुछ कम प्रतिज्ञायें नहीं करते । अपने इस साहस के हर्ष स्वरूप ही मानो विवाह का समारोह मनाया जाता है । बाजे बजते हैं और सारे सम्बन्धी व मित्र प्रसन्नता से परिपूर्ण हो जाते हैं । दाम्पत्य बन्धन का सूत्रपात बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता है । लोगों को आशा होती है कि यह जो दो आत्मायें परस्पर एक सूत्र में बँध रहीं हैं वे परस्पर के सुन्दर व्यवहार द्वारा जीवन का भरपूर आनन्द प्राप्त करेंगी । इसकी खुशी सभी को होना स्वाभाविक ही है ।

किन्तु खेद है कि आज कल यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं चल पाती । कुछ दिन तो नव दम्पत्ति हर्ष आनन्द तथा प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं, फिर धीरे-धीरे उनमें मनोमालिन्य तथा तनाव आने लगता है और एक दिन ऐसा आ जाता है कि वे एक-दूसरे को देखे नहीं भाते दिन-रात लड़ते और कलह करते रहते हैं । जो दाम्पत्य जीवन सुख स्वर्ग की सीढ़ी बनना चाहिये वह नरक का द्वार बन जाता है । इस प्रकार के निकृष्ट दाम्पत्य जीवन से दोनों, पति-पत्नी का मानसिक विकास रुक जाता है, जीवन के प्रति उनकी रुचि कम हो जाती है । अनेक बार दाम्पत्य जीवन की असफलता तथा कुरूपता से अक्सर लोग घर तक छोड़ देते हैं । जो बुद्धिमान होते हैं वे अपनी व्यक्तिगत वेदना समाज सेवा में डुबा कर भुला लेते हैं ओर जो मूर्ख होते हैं वे या तो साधु बाबा बन कर भीख माँगने को निकल पड़ते हैं अथवा घर में रह कर शराब आदि पीने और अपनी पीड़ा भुलाने का प्रयत्न करने लगते हैं । यह स्थिति मानव-जीवन के लिये और भी असहनीय तथा दुःखदायक है ।

इस प्रतिकूल स्थिति के आने का एक बड़ा कारण तो यह होता है कि लोग कुछ ही समय में दाम्पत्य जीवन का उद्देश्य एवं स्वरूप भूल जाते हैं । विवाह के समय जो वे बड़ी-बड़ी प्रतिज्ञायें किया करते हैं उनके पालन की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते । उन्हें यह आदर्श विस्मरण हो जाता है कि पति–पत्नी संसार पथ पर गतिशील जीवन रथ के दो पहिये हैं । जब तक उनमें समानता तथा पारस्परिकता बनी रहती है, जीवन सरलता पूर्वक लक्ष्य की ओर चलता रहता है । नर-नारी के रूप में पति-पत्नी एक-दूसरे के जीवन संगी ही नहीं, पूरक भी हैं । एक के अभाव में दूसरा सर्वथा अधूरा ही रहता है ।

नारी शक्ति है तो पुरुष पौरुष माना गया है । जिस पौरुष को शक्ति का सहयोग न मिले तो वह व्यर्थ ही पड़ा रहेगा और उस शक्ति का भी कोई उपयोग नहीं हो सकता जिसको अभिव्यक्ति के लिये पौरुष का माध्यम नहीं मिलता । पौरुष तथा शक्ति मिलकर ही वह स्थिति उत्पन्न करते हैं जिससे जीवन में वांछित सुख-सन्तोष के साथ स्त्रजन की सम्भावना रहती है । पुरुष को अर्ध नारीश्वर तथा नारी को अर्धांगिनी कहने का तात्पर्य भी यही है कि पति-पत्नी के रूप में नर और नारी मिल कर एक पूरी इकाई एवं पूरा व्यक्तित्व बनते हैं । जीवन की लम्बी यात्रा एकाकी सरलता पूर्वक नहीं काटी जा सकती । जीवन का एकाकीपन बड़ा कडुआ और कंटक के समान कष्ट देने वाला होता है इसीलिये नर को पत्नी के रूप में और नारी को पति के रूप में एक जीवन सहचर, एक सहयोगी तथा एक साथी की व्यवस्था की गई है । निश्चय ही जो पति-पत्नी दाम्पत्य जीवन का ठीक-ठीक अर्थ समझ कर परस्पर सहयोग तथा सौहाद्र्य पूर्वक रहते हैं वे जीवन यात्रा को सरलता ही नहीं सरसता पूवर्क भी पूरा करते हैं । उनके जीवन में सदा सर्वदा सुख-शान्ति की वर्षा होती रहती है। दाम्पत्य जीवन का असहयोग तथा विसंगत भयानक यातना का कारण बनती है। अस्तु इस सम्बन्ध को बताने और निबाहने में सदैव ही सबको पूरी तरह सावधान रहना चाहिये । थोड़ी-सी असावधानी अथवा उपेक्षा दाम्पत्य जीवन का सारा उद्देश्य, सारा सुख नष्ट कर देती है ।

दाम्पत्य जीवन में विसंगति पैदा करने का कारण बहुधा पति-पत्नी की असमानता ही होती है। प्रायः देखा जाता है कि जहाँ पति तो अच्छी प्रकार शिक्षित होता है, वहाँ पत्नी या तो अशिक्षित होती है अथवा अल्प शिक्षित । परिस्थितियों वश अथवा अनुभव के आधार पर पुरुष अधिक परिपक्व बुद्धि का होता है और नारी कम । पुरुषों की अपेक्षा नारियों में दूरदर्शिता की भी कमी रहती हैं । गरीब घरों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अच्छी-खासी, पढ़ी-लिखी लड़कियाँ दहेज के कारण अयोग्य पति से भी बँध जाया करती हैं । इन दोनों विसंगतियों में पति-पत्नी को परस्पर उदारता पूर्वक निर्वाह ही नहीं हृदय से व्यवहार भी करना चाहिये।

इस संयोग, परिस्थिति अथवा किन्हीं अन्य कारण से आयी विसंगति को मिटाने का एक सरल तरीका यह है कि जिन पुरुषों की पत्नियाँ अशिक्षित हों उनहें शिक्षित बनाने का प्रयत्न करें । यदि वे उनकी शिक्षा का अलग से प्रबन्ध नहीं कर सकते तो स्वयं ही थोड़ा समय निकाल कर पढ़ाना चाहिये । इस प्रकार नारी न केवल शिक्षित ही होती चलेगी बल्कि उसका प्रेम भी बढ़ता और प्रगाढ़ होता जायेगा । इधर पति को भी उसके साथ गुरुत्व के नाते उसके प्रति अधिकाधिक सहानुभूति होने लगेगी । अपने आप सुयोग्य बनाई हुई पत्नी के प्रति पति का प्रेम कुछ अधिक हो जाता है । जहाँ दोनों और प्रेम का भाव हो वहाँ वह ऊपरी विसंगति अथवा असमानता दाम्पत्य जीवन में व्यवधान नहीं डाल सकती । दोनों एक-दूसरे को निभाते हुए सुखपूर्वक जीवन यापन करते चले जायेंगे ।

हो सकता है कि पढ़ी-लिखी पत्नी को अपने अशिक्षित पति को पढ़ाने में कुछ संकोच हो अथवा पति को यह बात अपने आत्म गौरव के प्रतिकूल लगे । किन्तु यह हीन अथवा अभिमान की भावना उचित नहीं । पति-पत्नी में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता । जीवन यात्रा के पथ पर पति-पत्नी परस्पर अभिन्न हृदय साथियों की तरह होते हैं । दोनों का समान महत्त्व तथा स्थान है । वे स्वाभाविक रूप से एक-दूसरे के सहायक तथा पूरक होते हैं । उन दोनों की कमी उनकी और मिलीजुली योग्यता एक ऐसी योग्यता होती है जिसके दोनों ही बराबर के भागीदार होते हैं । योग्यता बढ़ाने के सम्बन्ध में दोनों को हीन अथवा अभिमान भाव छोड़ देना चाहिये । पत्नी-पति को आदर पूर्वक पढ़ायें और पति को सम्मान पूर्वक उससे शिक्षा लेने में संकोच नहीं करना चाहिये । दो अभिन्न मित्रों के बीच संकोच का क्या काम ?

समान योग्यता के पति-पत्नियों में भी बहुत बार अनबन हो जाती है और वे एक-दूसरे से लड़ने-झगड़ने लगते हैं । विसंगति न होने पर भी पति-पत्नी में अनबन के अनेक कारण होते हैं । उनमें से एक कारण होता है--एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान न रख कर व्यवहार करना । अपने आराम, स्वार्थ अथवा सुख-सुविधा के लिए किसी की भावनाओं की अवहेलना कर देना उनमें द्वेष तथा कलह उत्पन्न करे देता है । पति का बहुत रात गये घर आना और पत्नी से यह अपेक्षा करना कि वह उसकी प्रतीक्षा करती मिले, अन्याय है जो उसके लिए कष्ट देने वाला है । पत्नी को घर पर अेकला छोड़ कर अन्य यार-दोस्तों के साथ बैठ कर गप्प लड़ाना या सैर-सपाटा करना भी एक ऐसा व्यवहार है जिससे उसकी भावनाओं को तकलीफ पहुँचती है । पत्नी को भी घर में एक साथी की आवश्यकता होती है और उसका वह साथी पति ही होता है । उसकी यह इच्छा कि काम-काज से फुरसत पाकर वह भी थोड़ी देर पति से बात करे, हँसे और विनोद का वातावरण पाये, किसी प्रकार भी अनुचित नहीं कही जा सकती । जो पति उसकी इच्छा का ध्यान नहीं रखते वे अपने दाम्पत्य जीवन में आग लगाने का उपक्रम किया करते हैं ।

पति-पत्नी का सदैव एक-दूसरे की भावनाओं, विचारों तथा स्वतंत्र अस्तित्व का ध्यान रख कर व्यवहार करना, दाम्पत्य, प्रेम तथा सफलता के लिए बहुत आवश्यक है । कभी भी एक-दूसरे से वह व्यवहार न करना चाहिये जो अपने लिए पसन्द न हो । इसी विषमता अथवा व्यवहार-चलन के कारण ही घर-घर दाम्पत्य जीवन अशांति तथा असन्तोष के केन्द्र बने हुए हैं ।

दाम्पत्य जीवन का महत्त्व तथा उसके सुख का मूल्य जानने वाले सद्गृहस्थ कभी एक-दूसरे की कटु आलोचना नहीं करते । मनुष्य-मनुष्य ही है । क्या स्त्री और क्या पुरुष कुछ न कुछ कमी सबमें होती है । किसी समय किसी से किसी विषय में भूल भी हो सकती है । ऐसी दशा में दोनों को सहनशीलता से काम लेना चाहिये । एक-दूसरे की गलती को हँस कर टाल देना चाहिये और यदि कोई गम्भीर ही बात हो तो भी उसके लिए लड़ना-झगड़ना अथवा नैन-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाण चलाना उचित नहीं । इससे भूल का तो सुधार नहीं ही होता है साथ ही कटुता बढ़ जाती है । दोनों को भूल के कारणों पर विचार करके उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये और मानव-स्वभाव को सहज दुर्बलता समझ कर क्षमा कर देना चाहिये । जो दम्पत्ति पारस्परिक व्यवहार में सहनशील तथा दयावान होते हैं उनके जीवन में कलह तथा कटुता के अवसर नहीं के बराबर ही आते हैं । अपने सम्बन्धों का माधुर्य तो किसी मूल्य पर भी नहीं जाने देना चाहिये । भूल सुधर सकती है, क्षति पूर्ति हो सकती है किन्तु एक बार प्रमादवश पति-पत्नी के हृदय फट जाते हैं । फिर आजीवन नहीं मिल पाते । इसलिये घातक स्थिति से दोनों को सदा सर्वदा सावधान रहना चाहिये । कष्ट सहकर त्याग तथा बलिदान करके भी अपने हृदय की अकिलात की रक्षा करते रहना सफल दाम्पत्य जीवन का मूल मन्त्र है ।

एक-दूसरे को एक-दूसरे की क्षमताओं का विचार रख कर ही अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति का प्रयत्न करना चाहिये । बहुत बार पत्नी पति की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रख कर अपने लिए वस्त्र तथा प्रसाधनों की माँग किया करती है । सिनेमा दिखाने तथा सैर सपाटा कराने की जिद किया करती हैं और पति उनकी क्षमताओं से बाहर की सेवा लेने के लिए विवश किया करते हैं । यह मनोवृत्ति आततायी मनोवृत्ति है जो किन्हीं भी दम्पत्ति को अपने पास नहीं आने देना चाहिये । दूसरे की शक्तियों तथा सुविधा का विचार न रख कर अपने स्वार्थ की ओर ही देखते रहना किन्हीं भी सद्गृहस्थ के लिए उचित नहीं । कम से कम सेवा स्वार्थ का दृष्टिकोण रखने वाले दो जीवन सहचर दाम्पत्य कलह से कभी भी कष्ट नहीं पाते ।

इस प्रकार दाम्पत्य सम्बन्ध का महत्त्व उसकी उपयोगिता तथा सफलता के लिए जो दम्पत्ति विसगंति उच्च व्यवहार, स्वार्थ तथा आलोचना, प्रत्यालोचना को दूर रख कर जीवन-यात्रा में दो सच्चे साथियों की तरह चलते हैं वे न केवल सुखी ही रहते हैं बल्कि दिन-दिन आत्मोन्नति भी करते जाते हैं ।

गृहस्थाश्रम-एक स्वर्गधाम

आपका परिवार एक छोटा-सा स्वर्ग है, जिसका निर्माण आपके हाथ में है । परिवार एक ऐसी लीला भूमि हैं जिसमें पारिवारिक प्रेम, सहानुभूति, सम्वेदना, मधुरता अपना गुप्त विकास करते हैं । यह एक ऐसी साधना भूमि है, जिसमें मनुष्य को निज कर्त्तव्यों तथा अधिकारों, उत्तरदायित्व एवं आनन्द का ज्ञान होता है । मनुष्य को इस भूतल पर जो सच्चा और अकृत्रिम सौख्य और दुःख से मुक्त सुख प्राप्त हो सकता है, वह कुटुम्ब का सुख ही है।

कुटुम्ब की देवी स्त्री है । चाहे वह माता, भागिनी या पुत्री किसी भी रूप में क्यों न हो । उन्हीं के स्नेह से हृदय की हरियाली, रस स्निग्ध वाणी और सौन्दर्यशील प्रेम से परिवार सुखी बनता है । वह स्त्री जिसका हृदय दया और प्रेम से उछलता है परिवार का सबसे बड़ा सौभाग्य है । उसकी वाणी में सुधा की-सी शीतलता और सेवा में जीवन प्रदायिनी शक्ति है । उसके प्रेम की परिधि का निरन्तर विकास होता है । वह ऐसी शक्ति है, जिसका कभी क्षय नहीं होता और जिसका उत्साह एवं प्रेरणा, परिवार में नित्य नवीन छटाएँ, पूर्णता में नवीनता उत्पन्न कर मन को मोद, बुद्धि को प्रबोध और हृदय को सन्तोष प्रदान करती हैं ।

हिन्दू भावना स्त्री के रूप में केवल अर्धांगिनी और सहधर्मिणी की हो सकती है । अन्य कुछ नहीं । हिन्दू की सृष्टि में नारी केवल साथिन के रूप में या थोथी और उथली अद्भुत प्रेमिका नहीं दिखाई देती । इस वैचित्र्यमय जगत में नानात्व की अभिव्यंजना के साथ नारी को भी हम अनन्त शक्ति-रूपिणी, अनन्त रूप से शक्तिदायिनी स्नेहमयी जननी, आज्ञाकारिणी भगिनी, कन्या और सखी के रूप में निरखते आये हैं ।

हिन्दू परिवार में पुत्र क्षणिक आवेश में आकर स्वच्छन्द विहार के लिए परिवार का तिरस्कार नहीं करता । वरन् परिवार के उत्तरदायित्व को और भी दृढ़ता से वहन करता है । हिन्दू जीवन में पति उत्तरदायित्वों से भरा हुआ प्राणी है । अनेक विघ्नों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के होते हुए भी उसका विवाहित जीवन मधुर होता है । यहाँ संयम, निष्ठा, आदर, प्रतिष्ठा तथा जीवन-शक्ति को रोक रखने का सर्वत्र विधान रखा गया है । यदि वह संयम न हो तो विवाहित जीवन गरल-मय हो सकता है । हिन्दू, नारी को भोग-विलास की सामग्री नहीं नियन्त्रण, प्रेरणा, साधना, विघ्न-बाधाओं में साथ देने वाली जीवन-संगिनी के रूप में देखता है ।

इन दैवी गुणों की वृद्धि कीजिए—पारिवारिक जीवन को मधुर बनाने वाला प्रमुख गुण निःस्वार्थ प्रेम है । यदि प्रेम की पवित्र रज्जु से परिवार के समस्त अवयम सुसंगठित रहें, एक-दूसरे को मंगल कामना करते रहें, एक दूसरे की परस्पर सहयोग प्रदान करते रहें तो सम्पूर्ण सम्मिलित कुटुम्ब सुघड़ता से चलता रहेगा । परिवार एक पाठशाला है एक शिक्षा संस्था है, जहाँ हम प्रेम का पाठ पढ़ते हैं ।

अपने पारिवारिक सुख की वृद्धि के लिये यह स्वर्णसूत्र स्मरण रखिये कि आप अपने स्वार्थों को पूरे परिवार के हित के लिये अर्पित करने को प्रस्तुत रहें । हम अपने सुख की इतनी परवाह न करें जितनी दूसरों की । हमारे व्यवहार में सर्वत्र शिष्टता रहे । यहाँ तक कि परिवार के साधारण सदस्यों के प्रति भी हमारे व्यवहार शिष्ट रहें छोटों की प्रतिष्ठा करने वाले, उनका आत्म-सम्मान बढ़ाने वाले, उन्हें परिवार में अच्छा स्थान देकर समाज में प्रविष्ट कराने वाले भी हमीं हैं ।

छोटे-बड़े, भाई-बहिन, घर के नौकर, पशु-पक्षी सभी से आप उदार रहें । प्रेम से अपना हृदय परिपूर्ण रखें । सबके प्रति स्नेहसिक्त, प्रसन्न रहें ! आपको प्रसन्न देखकर घर भर प्रसन्नता से फूल उठेगा । प्रफुल्लता वह गुण है जो थके-हारे सदस्यों तक में नवोत्साह भर देता है ।

आप अपने परिवार में खूब हँसिये, खेलिये, क्रीड़ा कीजिये । परिवार में ऐसे रम जाइये कि आपको बाहरीपन मालूम न हो । आत्मा तृप्त हो उठे । मैंने चुन-चुन कर अपने परिवार में मनोरंजन के भी नवीन ढंग अपनाये हैं, लेकिन इन सब के मूल में वृत्ति है, वही हंसी विनोद और विश्राम की है ।

धर्म प्रवर्त्तक लूथर ने कहा है—"विचारपूर्ण विनोद, मर्यादापूर्ण साहस बुद्धि और युवक के लिए उदासी की अच्दी दवा है।"

रूखापन परिवार के लिए रेत की तरह बेमजे है । तनिक विचार कीजिए, रूखी रोटी में क्या मजा है, रूखे बाल कैसे अस्निग्ध प्रतीत होते हैं रूखी मशीन कैसी खड़खड़ चलती है, रूखे रेगिस्तान में कौन रहना पसन्द करेगा ?

प्राणी मात्र सरसता के लिए तरस रहा है । वह आपका प्रेम, सहानुभूति,दया, करुणा, प्रशंसा, उत्साह, आह्लाद चाहता है । पारिवारिक सौभाग्य के लिये सरसता और स्निग्धता की आवश्यकता है । मनुष्य का अन्तःकरण रसिक है । स्त्रियाँ स्वभाव से ही कवि हैं । भावुक हैं, सौन्दर्य उपासक हैं, कलाप्रिय हैं, प्रेममय हैं । मानव-हृदय का यही गुण है, जो उसे पशु जगत् से ऊँचा उठाता है ।

सहृदय बनिये । सहृदयता का अभिप्राय कोमलता, मधुरता, आद्रता है । सहृदय व्यक्ति सब के दुःख में हिस्सा बँटाता है । प्रेम तथा उत्साह देकर नीरस हृदय को सींचता है । जिसमें यह गुण नहीं है उन्हें हृदय होते हुए हृदयहीन कहा जाता है । "हृदयहीन का अर्थ है, जड़ पशुओं से भी नीचा ।" नीरस गृहस्वामी पूरे परिवार को दुःखी बना देता है ।

जिसने अपनी विचारधारा और भावनाओं को शुष्क, नीरस और कठोर बना रखा है, उसने अपने आनन्द, प्रफुल्लता और प्रसन्नता के भण्डार को बन्द कर रखा है । वह जीवन का सच्चा रस प्राप्त करने से वंचित रहेगा । आनन्द का स्रोत सरसता की अनुभूतियों में है ।

परमात्मा को आनन्दमय निर्देश किया गया है क्यों ? क्योंकि वह कठोर और नियन्त्रणप्रिय होते हुए भी सरस और प्रेम-मय है । श्रुति कहती है—'रसो वै सः, अर्थात् परमात्मा रसमय है । परिवार में उसे प्रतिष्ठित करने के लिए वैसी ही लचीली कोमल, स्निग्ध और सरस भावनाएँ विकसित करनी पड़ती हैं ।

नियन्त्रण आवश्यक है—जब हम आपसे सरसता को विकसित करने का आग्रह करते हैं, तो हमारा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिप्राय यह नहीं है कि आप नियन्त्रण को भी टूट जाने दें । हम नियन्त्रण के पक्षपाती हैं । नियन्त्रण से आप नियमबद्ध संयमी, अनुशासनबद्ध, आज्ञाकारी परिवार की उत्पत्ति करते हैं । परिवार के नियन्त्रण में आप दृढ़ रहें, गलतियों पर डाटें-फटकारें, सजायें दें और पथभ्रष्ट को सन्मार्ग पर प्रतिष्ठित करें । परिवार की उन्नति के लिए आप कड़ा कदम उठा सकते हैं ।

पर एक बात कदापि विस्मृत न कीजिए । आप अन्ततः हृदय को कोमल द्रवित होने वाला दयालु प्रेमी और सरस ही रखिये । संसार में जो सरलता का, सौहार्द का अपार भण्डार भरा हुआ है उसे प्राप्त करना सीखिये । अपनी भावनाओं को जब आप कोमल बना लेते हैं, तो आपको चारों ओर आने वाले हृदयों में अमृत-सा झरता हुआ प्रतीत होता है । भोले-भाले मीठी-मीठी बातें करते हुए बालक, प्रेम की प्रतिमायें—माता, भगिनी, पत्नी, अनुभव ज्ञान और शुभ कामनाओं के प्रतीक वृद्धजन ये सब ईश्वर की ऐसी आनन्दमय विभूतियाँ हैं, जिन्हें देखकर परिवार में मनुष्य का हृदय कमल के पुष्प के समान खिल जाना चाहिये ।

परिवार एक पाठशाला है जो हमें आत्मसंयम, स्व-संस्कार, आत्मबल और निःस्वार्थ सेवा की अनमोल शिक्षाएँ देती है । प्रतिदिन हम परिवार की भलाई के लिये कुछ न कुछ करते रहें अपना निरीक्षण खुद करें ।

परिवार के प्रत्येक समझदार व्यक्ति को चाहिए कि प्रति रात को सावधानी के साथ अपने चरित्र का निरीक्षण करे । यह देखे कि आज मैंने कौन-सा कार्य पशु के समान, कौन-सा असुर के समान, कौन-सा सत्पुरुष के समान और कौन-सा देवता के समान किया है । यदि प्रत्येक व्यक्ति सहयोग और निःस्वार्थ सेवा की भावना से परिवार की सम्पन्नता में हाथ बटावे, तो गृहस्थ सुख-धाम बन सकता है ।

'हमें अधिकार दीजिये'—एक दूषित भावना—आए दिन इस बात का झगड़ा रहता है कि हमें अधिकार दीजिये नवयुवक, नवयुवतियाँ तथा अन्य सदस्य अधिकारों की रट लगाये रहते हैं । अधिकार माँगने की प्रवृत्ति दूषित स्वार्थ की भावना पर अवलम्बित है । वे दूसरों को कम देकर उनसे अधिक लेना चाहते हैं । यह स्वार्थमयी भावना जिस दिन अंकुरित होती है, परिवार से सुख और शान्ति की भावना का तो उसी दिन तिरोभाव हो जाता है । प्रत्येक मनुष्य छोटे के साथ अनुचित व्यवहार करता है और कहता है कि हमारा अधिकार है । सास बहू पर अनुचित अधिकार जमाती है । बड़ा भाई छोटे भाई से दुर्व्यवहार करता है ।

"अधिकार' माँगने वाला दूसरे से कुछ चाहता है, परन्तु दूसरे को देने की बात विस्मृत कर बैठता है । उसे यह ज्ञान नहीं कि अधिकार और कर्त्तव्य साथ-साथ चलते हैं । इस हाथ दीजिए, उस हाथ से लीजिए । इस माँग और भूख की लड़ाई में ही गृहस्थ-जीवन का सुख विदा होना आरम्भ हो जाता है ।

प्रेम, समता, त्याग और समर्पण—ये ऐसी दैवी विभूतियाँ हैं जिनसे गृहस्थ स्वर्ग बनता है । वहाँ अधिकार नामक शब्द का प्रवेश निषेध है । वहाँ तो दूसरा शब्द "कर्त्तव्य" ही प्रवेश पा सकता है । परिवार के प्रत्येक सदस्य का उत्तर दायित्व है, कुछ न कुछ कर्त्तव्य है । वह अपना कर्त्तव्य करता चले । जो तुम्हारा अधिकार है वह तुम्हें अनायास ही प्राप्त हो जायेगा । लेकिन कर्त्तव्यों की बात भूल कर केवल अधिकार की माँग लगाना नैतिक दृष्टिकोण से गर्हित है । समस्त बखेड़ों की इस जड़ को काट देना चाहिए ।

संसार के सम्बन्धों को देखिये । दुनियाँ का सब कार्य स्वयं ही आदान-प्रदान से चल रहा है । जब कुछ दिया जाता है, तब तुरन्त ही कुछ मिल जाता है । अतः लेने की आकांक्षा होने पर देने की भावना पहले बना लेना जरूरी होता है । अधिकार में केवल लेने की ही भावना भरी रहती है, त्याग, बलिदान, सेवा, सहानुभूति की नहीं । इसलिए पारस्परिक प्रेम का क्षय प्रारम्भ होता है । जिस दिन वह अधिकार की लालसा गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट हो जाती है, गृहस्थ कलह का अखाड़ा बन जाता है । आज पढ़े—लिखे मदान्ध नवयुवक इसी भावना को मन में भरे पृथक् कुटुम्बों की आवाज बुलन्द करते हैं । अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही हाथों उन्होंने अपने सुख-सुविधा को लात मार दी हैं ।

अधिकार का अभिप्राय है–दूसरों को अपने अधीन रखना, अपने सुख का, भोग का यन्त्र बनाना । जब किसी भावना का प्रवाह एक ओर से चलना प्रारम्भ हो जाता है, तो उसकी प्रतिक्रिया दूसरी ओर से भी आरम्भ हो जाती है । तब एक-दूसरे को भोग का यन्त्र बनाना चाहता है तो दूसरा भी पहले को यन्त्र बनाने की धुन में लग जाता है ।

इस कुचक्र से बचने का उपाय यही है कि परिवार का हर सदस्य अधिकार की अपेक्षा कर्त्तव्य पर अधिक ध्यान दे । लेने की अपेक्षा देने का अधिक ध्यान रखे, तभी गृहस्थ आश्रम स्वर्ग सुख का धाम बन सकता है ।

गृहस्थ-धर्म– एक-योग साधना

गृहस्थ धर्म एक योग–साधन है जिसमें मनुष्य पर पग-पग पर उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्यों का भार है । यह आश्रम हमें आगे आने वाले कष्टसाध्य जीवन की एक तैयारी कराता है । यदि इसमें रहकर हम इन्द्रिय सुखों की निस्सारता, क्षण भंगुरता एवं नीरसता को न जानें और सीधे वानप्रस्थ या संन्यास आश्रम ग्रहण करलें, तो हमारी बड़ी साधना में वासनाओं और क्षुद्र इच्छाओं का ताण्डव चलता ही रहेगा ।

गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों की पुष्टि के लिए है । दूसरे शब्दों में यों कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास–यह तीनों ही आश्रम गृहस्थाश्रम को व्यवस्थित और सुख-शान्तिमय बनाने के लिए हैं । ब्रह्मचारी इसलिये ब्रह्मचर्य का पालन करता है कि उसका भावी गृहस्थ-जीवन शक्तिपूर्ण और समृद्ध हो । वानप्रस्थ और संन्यासी लोग लोकहित की साधना करते है। इन्द्रलोक और संसार का सुख प्रकट करने वाला गृहस्थ धर्म ही है । यदि गृहस्थाश्रम की व्यवस्था बिगड़ जाये, तो अन्य तीनों आश्रम ठीक रीति से नहीं चल सकेंगे ।

गृहस्थाश्रम से 'अहं' का विस्तार होता है । आत्म-भाव की सीमा बढ़कर उसमें परिवार के अन्य सदस्य भी आते हैं । छोटे-छोटे शिशुओं की सेवा सुश्रूषा में निःस्वार्थ भाव से संलग्न होना पड़ता है ।

स्त्री, पुत्र, सगे-सम्बन्धी, परिवार, पड़ोसी, घर के पशु-पक्षी आदि में आत्मीयता बढ़ जाती है । क्रमशः उन्नति की ओर हम चलते हैं । अन्त में मनुष्य पूर्ण तथा आत्म-संयमी हो जाता है । दूसरों के लिए अपने को भूल जाता है । खुदी मिटती जाती है और खुदा मिलता जाता है । गृहस्थ-योग की साधना जब अपनी विकसित अवस्था पर पहुँचती है तो आत्मा-परमात्मा में लीन हो जाती है ।

गृहस्थ हमें तुच्छता और संकीर्णता से महानता और उदारता की ओर ले जाता है, स्वार्थ का परिशोधन कर परमार्थी बना देता है । यदि हम गृहस्थ धर्म के सब उत्तरदायित्वों को पूर्ण करते रहें,स्वार्थ हटाकर परमार्थ की साधना करते रहें, तो ब्रह्म-निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं ।

आत्मीयता की उन्नति का अभ्यास करने के लिए सबसे उत्तम स्थान अपना घर है । आत्मीयता के साधन में अपना दृष्टिकोण, देने और सेवा करने का बनाना पड़ता है, प्रेम की उदार भावनाओं से अपने अन्तःकरण को परिपूर्ण कर सगे-सम्बन्धियों के लिए त्याग करना पड़ता है । इस आत्मीयता के प्रसार से घर स्वर्ग बन जाता है ।

गृहस्थ का सोपान पार करने के पश्चात् जीवन यात्रा का एक नया चरण प्रारम्भ होता है । मनुष्य को प्रतीत होने लगता है कि सांसारिक सुखों के आगे भी कोई चीज है । काम, क्रोध, मोह से भरे हुए जीवन से उसे परितोष नहीं हो पाता । वह धीरे-धीरे आत्मा के सुखमय प्रदेश में प्रवेश करता है । आत्मा का प्रदेश वह मंगलमय संसार है जहाँ इन्दियों की लोलुपता, आकर्षण और प्रलोभन नहीं है । यह उच्चावस्था गृहस्थ जीवन में रह कर भी प्राप्त की जा सकती है । ऐसा होने के कारण ही गृहस्थ को 'योग' की संज्ञा दी गई है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्म–शास्त्र का प्रवचन है–

''तथा तथैव कार्याणि न कालस्तु विधीयते ।
अभिन्नेव प्रयुज्जानो ह्यस्मिन्नेव प्रलीयते ।।''

इस संसार के साथ हमारा संयोग है, इसी संसार में हमारा लय हो जायेगा, तब हमें जिस समय जो कर्त्तव्य हो, वही करना अनिवार्य है । व्यक्तिगत सुविधा तथा असुविधा को लेकर कर्त्तव्य के पुण्य पथ से परिभ्रष्ट होना उचित नहीं । इसीलिए धर्म ने गृहस्थाश्रम को तपोभूमि कह कर उसकी महत्ता स्वीकार की है । यहाँ तक कि धर्म की दृष्टि में गृहस्थाश्रम ही चारों आश्रमों का मुख्य केन्द्र है । इस सम्बन्ध में योगिवर वशिष्ठ का निर्देश देखिये–

'गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः ।
चतुर्णामाश्रमाणान्तु गृहस्थस्तु विशिष्यते ।।

अर्थात्–गृहस्थ ही वास्तविक रूप से यज्ञ करते हैं । गृहस्थ ही वास्तविक तपस्वी हैं । इसलिए चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही सबका सिरमौर है ।

भारतीय धर्म के अनुसार गृहस्थाश्रम प्रकृत तपोभूमि है । इस काल में दो पवित्र आत्माओं का परस्पर सामंजस्य होता है तथा वे जीवन के युद्ध में प्रवष्टि होते हैं । उन्हें पग-पग पर उत्तरदायित्व, कठिनाइयों, सांसारिक संघर्ष, प्रतियोगिताओं में भाग लेना होता है । दोनों आत्माएँ परस्पर सम्मिलित होकर एक-दूसरे की सहायता करते हुए, तपस्या और साधना के मार्ग पर अग्रसर होती है ।

प्रकृति ने प्रजनन-क्रिया की सिद्धि के निमित्त जिस उद्दाम वासना को मानव-हृदय में प्रतिष्ठित किया है, उसकी उच्छृंखलता यौवन में आकर इतनी तीव्र हो उठती है कि सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से उसका संयम आवश्यक है । भारतीय धर्म ने उस उद्दाम प्रवृत्ति को स्वीकार किया है तथा विश्व की संस्थिति और सम्पूर्णता के लिए, मनुष्य के विकास के लिए उसे जरूरी माना है । अतएव प्रत्येक नागरिक को इस महायज्ञ में प्रवृत्त होने का आदेश प्रदान किया है ।

गृहस्थाश्रम विषय-भोग की सामिग्री नहीं है, विलास मन्दिर नहीं, वरन् दो आत्माओं के पारस्परिक सहवास द्वारा शुद्ध आत्म-सुख, प्रेम और पुण्य का पवित्र प्रसाद है, वात्सल्य और त्याग की लीलाभूमि हैं, निर्वाण प्राप्ति के लिए शान्ति–कुटीर हैं । विवाह से मनुष्य समाज का एक अंग बनता है, अपूर्णता से पूर्णता प्राप्त करता है, निर्बलता से सबलता की ओर अग्रसर होता है । नये उत्तरदायित्व और नये आनन्द प्राप्त होते हैं । भारतीय ऋषियों ने गृहस्थाश्रम को अनेक व्रत, नियम, अनुष्ठान, आतिथ्य-सत्कार इत्यादि पुण्य कर्त्तव्यों की लीलाभूमि बनाकर उसकी महिमा को द्विगुणित किया है । उन्होंने पारिवारिक व्यवस्था में प्रेम और वात्सल्य तथा दूसरी ओर अपने से छोटों के प्रति उन्हीं के हित में त्याग तथा तपस्या के द्वारा इसे तपोभूमि के समान बना दिया है ।

एक लेखक का विचार है–''इस तपोभूमि के पुण्य स्वरूप और पुण्य साधना का मधुर रहस्य जानने के लिए हम हिमालय की उस तुषार मण्डित शिला पर चलें, जहाँ हिमालय की किशोरी पार्वती तपश्चर्या में निमग्न है । यही भारतीय गृहस्थाश्रम के मंगलमय स्वरूप का प्रथम दर्शन है । गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने से पूर्व रमणी को तपोभूमि साधना में प्रवृत्त होना पड़ता हैं, क्योंकि जिस मगंलमय उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह अपने पवित्र सुन्दर जीवन को उत्सर्ग करती है उसके लिए तपस्या और त्याग की परम आवश्यकता है । कुमार की उत्पत्ति तपस्या की सिद्धि का मधुर फल है, क्योंकि विश्व के परित्राण के लिए, देश के मंगल के लिए, समाज के अभ्युदय के लिए और मनुष्यता की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिए ही कुमार अवतार की आवश्यकता है । पुत्र या कन्या का जन्म भी धार्मिक महत्त्व रखता है । उसमें रमणी की उत्कृष्ट सिद्धि भी सम्मिलित है ।''

भारतीय वैवाहिक जीवन मगंलमय है । उसका प्रत्येक व्रत, नियम, अनुष्ठान, पूजन, चिन्तन इत्यादि विशेष महत्त्व रखता है । सतीत्व तथा एक पत्नीव्रत की पवित्रता से समुज्ज्वल, मातृत्व के मृदुल वत्सल्य से विभूषित, उत्तरदायित्वों के मनोरम भार से परिपूर्ण प्रेम के प्रवाह से पूर्ण भारतीय विवाहित जीवन त्याग का तेजोमय तीर्थ और पुण्य एवं कर्म की भूमि है । इसी के द्वारा स्त्रियों में स्त्रीत्व तथा पुरुषों में पुरुषत्व का विकास होता है । नर-नारी के मंगलमय चिर सम्मिलन के समय भारतीय समाज उन दोनों को प्रण-सूत्र में आबद्ध करने के साथ ही साथ इस जन्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथा मृत्यु के पश्चात् परलोक में ही परस्पर सहायता, सहानुभूति एवं स्नेहमय व्यापार के प्रतिज्ञा सूत्र में आबद्ध करता है।

हमारा हिन्दू धर्म जिस मंगलमयी साधना को लेकर सदा व्यस्त रहता है, वह है 'प्रवृत्ति को निवृत्ति के पथ पर परचालित करना ।" हमारे यहाँ वासना की प्रवृत्ति को माना है, किन्तु साथ ही साथ इस प्रवृत्ति के परिष्कार, उन्नतिकरण और अन्ततः निवृत्ति में परिणत करना यह फल माना है । वैवाहिक जीवन हमारे जीवन का एक स्टेज है, जो भावी जीवन के निर्माण में सहायक है । हम सदा से यह मानते आये हैं कि असंस्कृत और उच्छृंखल प्रवृत्ति, साधना और तपस्या के द्वारा परम शान्त और त्यागमयी बनाई जा सकती है । विनाश की अपेक्षा वृत्तियों का सही मार्गों में बहाव, स्वार्थ और लालसा से निकल कर प्रेम और त्याग के मार्गों में उनका प्रवाह हमारे लिए विशेष महत्त्व रखता है ।

आदि कवि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक ने अपने साहित्य में गृहस्थाश्रम का मनमोहक रूप प्रतिष्ठित किया है । कौन ऐसा प्रान्त है, जिसमें मातृत्व की मंगलमय मूर्ति, सतीत्व का त्याग, सौन्दर्य और वात्सल्य की मन्दाकिनी प्रवाहित न हुई हो ?

भारतीय संस्कृति का मेरुदंड– वानप्रस्थ

भौतिक जानकारियाँ देने का जहाँ तक सवाल है वहाँ अध्यापक के चरित्र की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती । उसके लिए इतना ही पर्याप्त है कि शिक्षक का ज्ञान एवं पढ़ाने का ढंग उपयुक्त हो । किन्तु आदर्शवादिता की दिशा में अग्रसर करने वाली प्रेरणायें प्रस्तुत करने में उतने भर से काम नहीं चल सकता । जो जिस विषय को पढ़ाता है, उसे उसमें दक्ष होना चाहिए । यदि नीति और सदाचरण की शिक्षा दी जाती है तो उसके लिए अपने विषय का अनुभवी एवं अभ्यस्त होना चाहिए । दूसरे विषयों की तरह धर्म भी ऐसा विषय है जिसके प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त व्यक्तित्व की ही आवश्यकता रहेगी । यदि ऐसा न हो तो निर्जीव असंख्यों उपकरण धर्म शिक्षा देते रहते हैं । जानकारी तो उनसे भी मिल सकती है, फिर इसके लिए आदर्शवादी मनुष्यों की क्यों आवश्यकता पड़ती ? छपी पुस्तकों में धर्म सदाचार के भण्डार भरे पड़े हैं । ग्रामोफोन रिकार्ड एक से एक अच्छे भजन मधुर स्वर और आकर्षक वाद्य यन्त्रों के साथ जोर-जोर से गाते रहते हैं । कथा प्रवचनों की धूम रहती है । सत्संग के अखाड़े खड़े ही रहते हैं । इतने पर भी जन-मानस जहाँ का तहाँ बना रहता है । लोग कानों को तृप्ति देने के लिए सुनते तो बहुत कुछ हैं, किन्तु प्रभाव तनिक भी ग्रहण नहीं करते । इसका एकमात्र कारण है कि अन्तःकरण को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का घोर अभाव बना रहता है। वक्ताओं के निजी आचरण की रिक्तता, सुनने वालों को देर तक प्रभावित नहीं कर पाती । क्षणिक उत्साह उत्पन्न करके इन प्रवचनों का प्रभाव पानी के बबूले की तरह समाप्त हो जाता है ।

नशेबाज, जुआरी, चोर, लवार–लम्पट अपने जैसे अनेकों व्यक्ति अपने साथी अनुयायी जीवन काल में बना लेते हैं, किन्तु धर्म शिक्षा अत्यधिक श्रेयस्कर होते हुए भी लोगों के गले नहीं उतरती । धर्मोपदेशकों के अनुयायी नहीं मिलते, उनकी कलाकारिता प्रशंसा एवं दक्षिणा तो उपार्जित कर लेती है, पर ऐसा प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाती कि अनुकरण की परम्परा चल पड़े । कारण यह नहीं है कि सुनने वालों की उस प्रसंग के प्रति उपेक्षा है या जो कहा गया वह सारगर्भित नहीं था । यदि यह कमियाँ रही होती तो कोई सुनने ही क्यों आता ? धर्मोपदेश दक्षिणा एवं प्रशंसा क्यों पाते ?

धर्म शिक्षा गले इसलिए नहीं उतरती कि सुनने वालों के अन्तराल में वैसी सूक्ष्म परीक्षक चेतना अपनी सहज बुद्धि से उपदेशक के मर्मस्थल को परखती रहती है । वहाँ वचन और कर्म में अन्तर दीखता है तो उससे छद्म का स्पष्ट आभास हो जाता है । इतने भर असमञ्जस में सुनने वालों का अन्तःकरण सतर्क हो जाता है और आत्म-रक्षा के लिए ऐसा घेरा बना लेता है जिसमें किसी प्रवर्तक के जाल में फँसने से बचा जा सके । यही है वह सूक्ष्म अवरोध जिसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण श्रोता वक्ता के बीच गहरी खाई बनी रहती है और एक-दूसरे से दूर ही बने रहते हैं ।

कुकर्मी अपने साथी अनुयायी इसलिए बना लेते हैं कि उनके भीतर और बाहर के स्तर में एकता रहती हैं । जो सोचते, कहते हैं वही करते भी हैं । मन वचन और कर्म की एकता से शक्ति उत्पन्न होती है । उस शक्ति से अपने आप में भी प्रतिभा उत्पन्न होती है और दूसरों पर भी उस प्रभाव का जादू चलता है । प्रभावोत्पादक परम्परायें सदा प्रखर व्यक्तित्व के सहारे ही आरम्भ और अग्रसर हुई हैं । छद्म और पाखण्ड की विसंगतियाँ केवल कौतुक कौतूहल उत्पन्न करती है, उनका स्थायी प्रभाव परिणाम नहीं के बराबर होता है । स्थायी और गहरी छोड़ने के लिए प्रतिभा की कम और आस्था की आवश्यकता अधिक रहती है । महामानवों द्वारा सम्पादित किये गये महान् प्रयोजनों में उनकी प्रतिभा का उतना योगदान नहीं रहा जितना कि आस्था का । भीतर और बाहर से जो एक ही विचारों और कार्यों को एक रखता है उसका प्रभाव पड़ना निश्चित है । जो अपने आपको प्रभावित कर सकने में समर्थ है, वही दूसरों को भी अनुकरण के लिए सहमत कर सकेगा । अनेकों धर्मोपदेशकों ने कष्ट सहकर त्याग बलिदान करने के लिए असंख्यों अनुयायी उत्पन्न किये हैं । बुद्ध और महावीर के सहस्त्रों अनुयायी उन्हीं के सामने अपने सुख-साधनों को लात मारकर सत्प्रयोजनों के लिए अपने प्राण हथेली पर रखकर आगे आये थे । निज की तपश्चर्या ने ही उनमें इतनी प्रखरता उत्पन्न की थी कि संसार के जिस भी कोने में वे गये वहीं उन्होंने परिवर्तन का चमत्कार उत्पन्न कर दिया । गाँधी जी का चमत्कार अभी कल-परसों ही आँखों के सामने से गुजरा है । गोली खाने-फाँसी पर चढ़ने जेल जाने और स्वेच्छापूर्वक तरह-तरह की बर्बादी सहने के लिए उन्होंने असंख्यों को सहमत कर लिया था । अन्यान्य युग प्रवर्तकों और महामानवों के प्रभाव भी ऐसे रहे हैं कि अगणित रीछ-वानर स्तर के रीछ-वानर तक उनकें पद-चिन्हों पर चलने के लिए आतुर हो गये थे ।

अपने युग की सबसे बड़ी आवश्यकता जन–मानस के परिष्कार की है । अगणित आकार प्रकार के विग्रह, संकट, अभाव और शोक सन्ताप एक ही कारण से उत्पन्न हुये हैं । वह कारण है मानवी नीति निष्ठा का अभाव–आदर्शवादिता के प्रति अरुचि–उत्कृष्टता के प्रति अनास्था । इसी एक ही सड़ी कीचड़ में अनेकों आकार प्रकार को विषाणु तथा गन्दे कृमि कीटक–मक्खी मच्छर उत्पन्न होते हैं । सामयिक समस्यायें एवं उलझनें अनेक हैं । उनके प्रत्यक्ष कारण भी विभिन्न दीखते हैं, पर थोड़ी अधिक गहराई में उतरने पर मूल तथ्य एक ही दीखता है कि मानवी गरिमा के अनुरूप चिन्तन और चरित्र को स्थिर रख सकने वाली सत् श्रद्धा में भारी कमी हुई हैं आस्थायें गिरी और निष्ठायें घटी हैं । फलतः दुर्बल शरीर में आये दिन उत्पन्न होते रहने वाले अनेकों रोगों की तरह असंख्य शोक संताप मनुष्य जाति के सामने खड़े रहते हैं । व्यक्ति और समाज की समस्त समस्याओं के समाधान का एक ही उपाय है–अत्कृष्ठता का अभिवर्धन । इसी का उपाय उपचार प्रस्तुत करने वाले विज्ञान को अध्यात्म कहते हैं । धर्म का मूल प्रयोजन यही है । वर्तमान विपन्नता से छुटकारा इसी एक उपाय से सम्भव हो सकता है कि जन-मानस में फिर से उच्चस्तरीय आस्थाओं की प्रतिष्ठापना की जाये । उज्ज्वल भविष्य की आशा और सम्भावनायें इसी एक उपाय पर अवलम्बित हैं । आज या आज से हजार वर्ष बाद–जब भी सुख-शान्ति की परिस्थितियों का अवतरण होगा उसमें इसी उपाय की प्रमुख भूमिका रहेगी ।

अपने युग का सबसे बड़ा उत्पादन यही हो सकता है कि जन-मानस पर प्रभाव छोड़ सकने वाले प्रतिभा सम्पन्न लोकनायक उत्पन्न किये जायँ । वे जिस स्तर के, जितने अधिक उत्पन्न होंगे, उसी अनुपात से लोकमानस में उत्कृष्टतावादी तत्व भरते जायेंगे । इतने पर से प्रवाह उलट जायगा । बर्बादी और विध्वंस में लगी हुई शक्तियाँ जब सृजनात्मक प्रयोजनों में जुट जायेंगी तो जिस तेजी से अधःपतन की परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं, उसी अनुपात में सृजनात्मक गतिविधियाँ चल पड़ेंगी । हर मनुष्य जब उत्थान की बात सोचेगा, सत्प्रयोजनों में निरत रहेगा तो बिना किसी योजनाबद्व व्यवस्था के बनाये हुए अपेक्षित नव-निर्माण के असंख्यों आधार अनायास ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खड़े होते चले जायेंगे । मनुष्य की उत्पादन शक्ति असीम है । उसके पास सामर्थ्य की कमी नहीं । साधनों की मात्रा उतनी है जिसे विपुल कहा जा सके । इन दिनों इस समस्त सम्पदा की या तो बर्बादी होती है या फिर उसका उपयोग विग्रह एवं विनाश के लिए किया जाता है । इसी विपन्नता को विभिन्न विभीषिकाओं के रूप में सामने खड़ा देखा जाता है । जन-मानस का प्रवाह उलट सके और विनाश को, बर्बादी को विकास के लिए प्रयुक्त किया जा सके तो उज्ज्वल भविष्य के अवतरण में तनिक भी देर न लगेगी ।

जन-मानस को-युग प्रवाह को उलट सकने में समर्थ प्रतिभाओं की इन दिनों अत्यधिक आवश्यकता है । यह विभूतियाँ उपजें और भागीरथी तप साधना का मार्ग अपनायें तो कोई कारण नहीं कि परम पावनी नवयुग की पवित्र धारा—पतित पावनी गंगा की तरह अपनी इसी धरती पर प्रवाहित न होने लगे । यह युग भागीरथ अन्यत्र कहीं नहीं मिलेंगे इन्हें वानप्रस्थ परम्परा को पुनर्जीवित करके, उसी खदान में से खोद निकालना पड़ेगा । नर-रत्न इसी रत्नाकर में से उपलब्ध होते रहे हैं । आज भी हमारी दृष्टि इसी क्षेत्र पर केन्द्रित होनी चाहिए ।

प्राचीन काल में देव-विभूतियाँ वानप्रस्थ आश्रम में से ही विपुल संख्या में उपलब्ध होती थी । ब्राह्मणत्व आदर्शवादिता की प्रौढ़ता और साधुता की परिपक्वावस्था है । वे पहले भी बहुत थोड़ी संख्या में निकल पाते थे, अब तो उन दोनों का नाम रूप ही देखने को मिलता है । वास्तविकता तो बड़ी कठिनाई से जहाँ-तहाँ, जब-तब दीख पड़ती है । वानप्रस्थ सरल है । उसमें गृहस्थ और विरक्त का समन्वय है । सामान्य और असामान्य का समावेश है । यह विशुद्ध लोकसेवी की परम्परा है जिसमें आत्म निर्माण और लोक-निर्माण का मिला-जुला क्रिया-कलाप छात्राध्यापकों की तरह चलता है । अध्यापन की शिक्षा प्राप्त करते समय स्वयं पढ़ा भी जाता है और साथ-साथ छोटी कक्षाओं को पढ़ाते हुए अनुभव सम्पादन भी किया जाता है । इसमें उत्तरदायित्व सीमित है और क्रमिक विकास का क्षेत्र खुला पड़ा है । इसलिए वह प्राचीन काल में भी सर्वसुलभ था और अभी भी वैसा ही है ।

आधा आयुष्य शरीर परिवार के लिए लग जानो पर समझा जाना चाहिए कि पूर्वार्ध की सामान्य जीवन प्रक्रिया सम्पन्न हो गई । अब उत्तरार्ध के महान उत्तरदायित्व को सम्भाला जाना चाहिए । समाज ऋण-देव ऋण चुकाने के लिए वानप्रस्थ परम्परा अपनाये बिना काम चल नहीं सकता । भौतिक ललक-लिप्साओं में जितनी आस्था, उत्सुकता एवं उत्कण्ठा बढ़ती है, उसी अनुपात से वानप्रस्थ की अवधारणा अंगीकृत की गई मानी जाती है । इस मान्यता को हृदयंगम कर लेने के उपरान्त उसका विकास, विस्तार क्रमशः भी होता रह सकता है । बीजारोपण को वृक्ष बनाने में जो समय लगता है उसकी प्रतीक्षा भी की जा सकती है । किन्तु यदि आरम्भ भी न हो सके तो स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण ही कही जायेगी । प्रत्येक जागृत आत्मा को अपने लिए धर्म का, युग का, ईश्वर का, आत्महित का सम्मिलित आह्वान वानप्रस्थ के रूप में सामने खड़ा अनुभव करना चाहिए । साथ ही समझना चाहिए कि उस उपेक्षा में, समाज हित का हनन अधिक है ।

प्राचीन काल में अवांछनीयताओं के परिशोधन और सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन को वानप्रस्थ अपना निजी कर्त्तव्य उत्तरदायित्व मानते थे और उसका निष्ठापूर्वक परिवहन करते थे । लोक-मंगल की अनेकों दिशायें हैं और उन सभी के लिए अग्रिम पंक्ति में खड़े होने वाले कर्मठ कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है । अपनी-अपनी योग्यता और रुचि के अनुरूप उनमें से कोई भी काम चुना जा सकता है । इस प्रकार हर लोकसेवी को अपने समय का उपयोग परमार्थ प्रयोजनों में करने के लिए मिल सकता है । इस प्रक्रिया को अपनाने से हर क्षेत्र में असंख्यों लोकसेवी मिल सकते हैं । सर्वतोमुखी प्रगति के लिए लोक-निर्माण के अगणित काम किये जाने हैं, उनमें से हर योग्यता और हर स्थिति का व्यक्ति अपने लिए परमार्थ सम्पादन का कार्य कर सकता है ।

आवश्यक नहीं कि हर लोकसेवी को मात्र प्रवचन ही करने पड़े । वह कार्य विद्वान् मनीषियों का है । अधिकारी व्यक्ति उसे भी करें, पर यह नहीं समझा जाना चाहिए कि लोक-निर्माण का यही एक कार्य है । श्रमदान, समयदान, अंशदान करने का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निश्चय करने पर समीपवर्ती क्षेत्र में ही सृजनात्मक प्रवृत्तियों की ध्वनि हर दिशा से पुकारती सुनाई पड़ेगी । उन पुण्य प्रयोजनों में अपना समय कोई भी कितना ही लगा सकता है । संगठित रूप से तो वे कार्य और भी अच्छी तरह हो सकते है पर यदि वैसी व्यवस्था न बन पड़े तो एकाकी व्यक्ति भी अपने अकेले के बलबूते इतना अधिक कर सकता है जिसे अनेकों के लिए प्रेरणाप्रद आदर्श एवं अनुकरणीय कहा जा सके ।

प्रौढ़ शिक्षा, सफाई अभियान, वृक्षारोपण, व्यायामशाला, पुस्तकालय, जैसे अनेकों कार्य ऐसे हैं जिन्हें काई भी व्यक्ति एकाकी प्रयत्न से अपने सम्पर्क क्षेत्र में आरम्भ कर सकता है । अवांछनीयताओं के उन्मूलन के लिए अनेकों सुधारात्मक, विरोधात्मक कार्य करने के लिए और भी बड़ा क्षेत्र खुला पड़ा है । विवाह विकृतियाँ अपने समाज में भयंकर अभिशाप है । बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, दहेज, अपव्ययी धूमधाम के कारण अपने समाज में शादियाँ बाहर से हर्ष और भीतर से भयंकर विषाद से भरी हुई हैं । जाति-पाँति के नाम पर बरती जाने वाले ऊँच-नीच की, नर-नारी के बीच स्वामी सेवक की मान्यतायें सर्वथा अनैतिक हैं । मनुष्य-मनुष्य के बीच अन्याय पूर्ण भेदभाव उत्पन्न करने वाली और मौलिक मानवी अधिकारों का हनन करने वाली यह कुप्रथायें अपने समाज को जर्जर बनाये दे रही हैं । भिक्षा व्यवसाय के चित्र-विचित्र तरीके, ठगने और ठगाने के पाखण्ड खड़े करके आर्थिक अनाचार से भी अधिक अनैतिक पाखण्ड खड़े करते हैं और भोले लोगों को दिग्भ्रात करके पैसा लूटते, समय खराब करते देखे जाते हैं । इसके अतिरिक्त मृतक भोज, भाग्यवाद, भूत-प्रेत, टोना-टोटका जैसे न जाने कितने भ्रम जंजाल, भ्रान्तियाँ बढ़ाते और बर्बादी कराते जगह-जगह देखे जा सकते हैं । आर्थिक क्षेत्र का अनाचार और भी अधिक बढ़ा-चढ़ा है । चोरी, बेईमानी, ठगी, रिश्वत, जुआ, सट्टा, कम तौल, मिलावट, मुनाफाखोरी, जमाखोरी, कर चोरी जैसी भ्रष्टतायें बुरी तरह जन-स्वभाव में सम्मिलित होती जा रही हैं अतः उनके उन्मूलन की आवश्यकता है । नशेबाजी जैसे व्यसन शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की बर्बादी करने पर तुले हुए हैं । संतान संख्या बढ़ाने की बुराई अभी तक अपने देशवासी समझ ही नहीं पाये हैं । आलस्य, प्रमाद, अस्वच्छता, अशिष्टता, कामुकता, संकीर्ण स्वार्थपरता जैसी दुष्प्रवृत्तियों का जन-जन अभ्यस्त होता चला जा रहा है । इस सर्वभक्षी विनाश के प्रतिरोध में बहुत कुछ किया जा सकता है । समर्थ प्रतिरोध के बिना ही दुष्टता और भ्रष्टता का प्रकोप दिन-दिन बढ़ता चल रहा है । हर व्यक्ति इनसे रुष्ट और असन्तुष्ट है । एकाकी विरोध से कुछ बनता नहीं । यदि संगठित प्रतिरोध खड़े किये जा सकें तो अनाचार के उन्मूलन में पूरा-पूरा जन-सहयोग मिल सकता है । प्रश्न एक ही है कि अनाचार के प्रतिरोध की अग्रिम पंक्ति में कौन खड़ा हो ? इसके उत्तर में वानप्रस्थ परम्परा को पुनर्जीवित करके उसमें से प्रखर प्रतिभायें उत्पन्न करने पर ही दृष्टि केन्द्रित होती है । यदि यह क्षेत्र जागृत हो सके तो समझना चाहिए कि नव-प्रभाव की नव-जागरण की पुण्य बेला निकट आ पहुँची । अन्धकार का अन्त होने पर अनाचार के निशाचर स्वयं ही भाग खड़े होते और मुँह छिपाते हैं । वह सुयोग अवसर प्रस्तुत करने के लिए एकमात्र वानप्रस्थ का पुनर्जीव ही समर्थ और सफल हो सकता है ।

लोक-मंगल का महत्त्व सर्वत्र समझा जाता है और उसके लिए कार्यकर्त्ता जुटाने के लिए हर मंच से अपने-अपने ढंग का प्रयत्न किया जाता है । सरकारी कर्मचारी सोशल सर्विस में संलग्न माने जाते हैं वे अपने को लोक सेवक कहते भी हैं । सार्वजनिक संस्थाओं के पास भी अनेकों कर्मचारी होते हैं और वे अपनी-अपनी योग्यतानुसार वेतन पाते और श्रम बेचते हैं । यह बाजारू मोल–तोल हुआ । इस प्रयास से पैसा और श्रम का विनियोग होता है और उसमें यदि ईमानदारी बनी रहे तो कारखाने स्तर का प्रयोजन सधता है । युग की आवश्यकता इससे ऊँची और आगे की है उसमें जन-मानस को इतने उत्कृष्ट चिन्तन के लिए प्रशिक्षित किया जाता है कि लोग उसे प्रखर-प्रेरणा के रूप में अपनायें और आदर्श कर्तृत्व के लिए कटिबद्व हो सकें । इसके लिए भावभरा मार्ग-दर्शन, सफल प्रोत्साहन प्रस्तुत कर सकना उन्हीं का काम है जिन्होंने इन दोनों प्रयोजनों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

को स्वयं अपनाया हो । उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व अपनाये जाने का प्रत्यक्ष प्रमाण वानप्रस्थ परम्परा को अपनाया जाना है । इसमें निस्वार्थ भाव का, पवित्र जीवन का, परमार्थ प्रयोजन का, लोकमंगल का, धर्म धारण का, आदर्शों के लिए त्याग बलिदान का प्रत्यक्ष समन्वय है । इतनी विशेषताओं से मुक्त व्यक्तित्व जिस कार्य को भी हाथ में लेंगे, जिस भी दिशा में आगे बढ़ेंगे, लोगों से जो भी करने को कहेंगे उसमें सुनिश्चित रूप से सफलता ही मिलेगी। प्राचीनकाल में यह प्रयोग चिरकाल तक आजमाया और सफल पाया गया । अब फिर उन जागृत आत्माओं का ध्यान इसी पुण्य परम्परा के जागरण पर केन्द्रित होना चाहिए जो वस्तुतः आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण के लिए आस्थावान है ।

यह मार्ग बहुत बड़ा है । विशाल निर्माण के लिए बड़ी संख्या में कुशल शिल्पियों एवं श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है । नव–निर्माण की परिधि में मनुष्यों का विश्व-परिवार आता है । उस समुदाय के वैयक्तिक चिन्तन तथा क्रिया-कलापों को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालना, संसार के समस्त भौतिक निर्माणों के लिए किये जा रहे समस्त प्रयासों की तुलना में अधिक भारी और अधिक महत्त्वपूर्ण है । इसी का नाम समाज-निर्माण या युग-निर्माण है । भौतिक प्रगति की छोटी-छोटी योजनाओं में कितना कौशल, कितना श्रम-मनोयोग, कितना धन-साधन लगता है इसका मोटा अनुमान लगाने के लिए अपने देश की पंचवर्षीय योजनाओं पर दृष्टिपात किया जा सकता है । ऐसी ही योजनायें विश्व में अन्यत्र भी बनती रहती हैं । उनमें कितने साधन लगे और कितने सत्यपरिणाम आये इसका पर्यवेक्षण करने से पता चलता है कि सृजनात्मक योजनाओं के लिए कितनी शक्ति जुटानी पड़ती है । फिर युग-निर्माण तो सृजनात्मक प्रयत्नों में चरम स्तर की योजना है । उसके लिए कल्पना, आशा और अपेक्षा करने से नहीं अभीष्ट साधन जुटाने से ही काम चलेगा ।

भौतिक प्रगति एवं परिस्थिति परिवर्तन के लिए साधनों का महत्त्व है । उसके लिए उपकरणों की–जानकारी की–पूँजी की–श्रम की–व्यवस्था जुट सके तो ही अभीष्ट परिणाम उत्पन्न होंगे । भावनात्मक उत्कर्ष के लिए, चेतन जीवन के प्रवाह क्रम को उलटने के लिए चेतनात्मक पूँजी और भावभरे क्रिया-कौशल की आवश्यकता पड़ेगी । दूसरे शब्दों में इस नियोजन के लिए ऐसे लोकनायकों की आवश्यकता पड़ेगी जिनमें जन-मानस में देवत्व का उभार लाने के लिए आवश्यक क्षमता विद्यमान हो । यह क्षमता दो बातों पर निर्भर है –एक तो आदर्शवादिता के अनुरूप ढला हुआ, उत्कृष्टता की कसौटी पर हर दृष्टि से खरा उतरा हुआ चरित्र-व्यक्तित्व । दूसरे लक्ष्य प्राप्ति को प्राण-प्राण से जुट जाने का प्रबल पराक्रम । दोनों में से एक की भी कमी रही तो वह उपयुक्तता उभरेगी नहीं जो युग सृजेताओं में भरी होना चाहिए । पहाड़ तोड़ने के लिए बारूदी सुरंगों की आवश्यकता पड़ती है । किले गिराने के लिए अष्ट धातु की तोपें गोले बरसाती हैं । बारूदी, सुरंगों और अष्ट धातु की ढली तोपों की तुलना करने वाले जीवन्त व्यक्तित्व आज की परिस्थिति में वानप्रस्थों के ही हो सकते हैं । योग्यता की दृष्टि से वे हलके पड़ते हों तो भी उत्कृष्टता और प्रचण्ड पुरुषार्थ परायणता के रहते उनसे लगभग वैसा ही बन पड़ेगा जैसा कि योग्यतम व्यक्तियों से बन पड़ता है । इतिहास का सृजन चतुर लोग नहीं भावनाशील करते हैं ।

अतीत का महान् गौरव वापिस लाने की, अपनी इसी धरती पर स्वर्ग के अवतरण की, मानवी काया में देवत्व का प्रत्यक्ष दर्शन करने की, यदि सचमुच ही आवश्यकता प्रतीत होती है तो उस परम्परा को पुनर्जीवित करना होगा जिसके सहारे अपनी देव-संस्कृति स्वयं गौरवान्वित हुई थी और समस्त संसार को अपने अजस्र अनुदान बाँटकर सर्वतोमुखी प्रगति का सरंजाम खड़ा किया था । अपनी गरिमा की आधारशिला वानप्रस्थ परम्परा ही है, जिसे अपनाने वाला सच्चे अर्थों में लोक-शिक्षक बन सकता है । उसी का मार्ग-दर्शन जन-जन द्वारा अपनाया जाता है । दूसरों को शिक्षा देने से पूर्व जिसने आदर्शवादिता को स्वयं मान्यता तक सीमित न रखकर व्यवहार में सम्मिलित कर लिया है, उसी की वाणी दूसरों को अनुकरण के लिए प्रेरित कर सकती है । ऐसी शक्ति भजन पूजन भर से नहीं आती उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए अपने ही जीवन क्रम को उलट सकने वाले सत्संकल्प और सत्साहस की आवश्यकता पड़ती है । जो इतना कर सकेगा, उसी से युग परिवर्तन के लिए कुछ ठोस काम दूसरों से करा सकने की आशा की जा सकेगी । बक-बादी तो ऐसे ही जीभ चलाते और बकझक करते हैं और थकने पर जनता की शिकायतें करके एक कोने में जा बैठतें हैं । वाचालता की कलाकारिता से तो कोई व्यक्ति सस्ती ख्याति और मुफ्त की सम्पत्ति भी कमा सकता है ।

तथ्यों को समझने के उपरान्त दुर्बल लोगों का तो नहीं प्राणवान जीवन्त आत्माओं का युग की माँग पूरी करने के लिए, कुछ करने के लिए कुछ विशेष उत्तरदायित्त्व कन्धों पर आता है । इसका निर्वाह सोचते रहने से नहीं कुछ साहसिक कदम उठाने से ही बन पड़ेगा । यह कदम यही हो सकता है कि तृष्णाओं को घटाकर निर्वाह भर पर सन्तोष किया जाये, परिवार को सम्पन्न नहीं सुसंस्कृत बनाने भर का कर्त्तव्य सीमित किया जाये, बड़े आदमी नहीं महान् मानव बनने का लक्ष्य निर्धारित किया जाये । जो मनःस्थिति को इस स्तर की बना लेगा उसके लिए वानप्रस्थ की परम्परा का पूरा या अधूरा निभा सकना तनिक भी कठिन नहीं रह जायेगा । उसे परिस्थितियों की प्रतिकूलता की शिकायत तनिक भी नहीं रहेगी । नये दृष्टिकोण के अनुरूप वे सहज ही अनुकूल होती चली जायेंगी । सन्मार्ग पर आगे बढ़ने में कठिनाई मात्र आन्तरिक कृपणता की रहती है । वह जितनी ही घटती चलेगी, उसी अनुपात से अपना आदर्शवादी स्वरूप भी निखरता चलता जायेगा परिस्थितियाँ नया मोड़ लेंगी, उपाय नये सूझेंगे, मार्ग नये निकलेंगे और नव-जीवन के मार्ग में जो प्रतिकूलतायें पहाड़ जैसी दिखाई पड़ती थीं वे बरसाती बदली की तरह फटती और हटती चली जायेंगी ।

जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व पूरे या हलके हो गये, वे घर के अन्य सदस्यों की व्यवस्था का हस्तान्तरण अन्यों को आरम्भ करने की बात सोचें । जितना हाथ खाली होने लगे उतना युग की माँग पूरी करने के लिए लगाना आरम्भ करें । इतने भर से कई घन्टे उस प्रयोजन में नित्य नैमित्तिक रूप से लगा सकना सम्भव हो सकेगा जिसमें कि पूर्ण वानप्रस्थों को पूरा समय लगाना पड़ता है । आवश्यकता तो इस बात की थी कि अपने ही देव-परिवार में से एक बड़ी सेना उपार्जन के उत्तरदायित्वों से निवृत जागृत आत्माओं की गठित होती और नवयुग का, नव-जीवन की अलख जगाने निकल पड़ती । परिस्थिति की दृष्टि से अपने ही परिवार में ऐसे हजारों व्यक्ति मौजूद हैं, जिनके मार्ग में आन्तरिक कृपणता के अतिरिक्त और कोई बाधा इस मार्ग में है नहीं । वे चाहें तो परिवार के लोगों को बिना राई भर भी क्षति पहुँचाये अपना शेष जीवन अपनी महान् परम्परा के निर्वाह में, वानप्रस्थ स्थिति में, अत्यन्त सरलता पूर्वक लगा सकते हैं । इस स्थिति के लोगों को अनुभव करना चाहिए कि युग का देवता उपयुक्त उद्‌बोधन लेकर उनके कपाट निरन्तर खटखटा रहा है । अनसुनी करके वे किसी बुद्धिमानी का नहीं अदूरदर्शिता का ही परिचय दे रहे हैं ।

जिनकी परिस्थितियाँ सचमुच ही बाधक हैं । पारिवारिक भरण-पोषण का उत्तरदायित्व जिनके ऊपर है, वे साल में कुछ महीने का अवकाश इसके लिए निकाल सकते हैं । यह आंशिक एवं सामयिक वानप्रस्थ कहा जायेगा । किसान अध्यापक प्रायः वर्ष में दो महीने का अवकाश पा जाते हैं । नौकरी करने वालों को भी संचित अवकाश मिलते हैं । व्यवसायों का भी कुछ महीने काम-धाम ठण्डा रहता है । यह समय वानप्रस्थ स्तर का बिताया जा सकता है । बाहर जाना न हो सके तो अपने समीपवर्ती क्षेत्र को ही सेवा क्षेत्र निर्धारित किया जा सकता है । अच्छा तो यही है कि इस प्रयोजन के लिए अपने स्थान की अपेक्षा अन्यत्र जाँय । परिचित क्षेत्र में राग-द्वेष भी रहते हैं और अति परिचय से "अवज्ञा" वाली उक्ति भी सार्थक होती है । 'दूर के ढोल सुहावने' की मान्यता लोक-सेवा के क्षेत्र में अधिक सही बैठती है । संसार भर के महामानवों के इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि उन्हें अपना स्थानीय सम्पर्क क्षेत्र छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ा है । अपने स्थान से ही चिपके रहते तो कदाचित् उन्हें वैसी सफलता मिल ही न पाती जैसी कि अन्यत्र कार्य-क्षेत्र बनाने पर उन्हें मिल सकी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थयात्रा की पुण्य परम्परा के पीछे एक बड़ा कारण यह भी है कि जिनके पास अवकाश है वे स्थानीय सम्पर्क-क्षेत्र में आगे बढ़कर अन्यत्र जाने की तैयारी करें । इससे उतने समय तक अपना चिन्तन और समय पूरी तरह अभीष्ट प्रयोजनों के लिए लगा सकना सम्भव हो सकेगा, अन्यथा ठाली रहने पर भी स्थानीय चिन्तन सर्वथा निरर्थक होते हुए भी सिर पर छाया रहता है और परिचित लोग उस ठालीपन का लाभ उठाकर बेकार के कार्यों में उसे घसीटते रहते हैं । घर से बाहर जाने पर चिन्तन और समय दोनों को ही पूरी तत्परता और तन्मयता के साथ त्याग सकना सम्भव हो सकता है ।

वानप्रस्थ शब्द के पीछे तीर्थयात्री जैसी गतिविधियाँ अपनाने का संकेत है । वानप्रस्थ का शब्दार्थ है—"वन में रहने वाला" घर और वन का अर्थ स्पष्ट है । घर अर्थात् नियत निवास स्थान । वन अर्थात् ऐसा क्षेत्र जो नियत स्थान से भिन्न हो और भी स्पष्ट रूप से समझना हो तो इसे 'परिब्राजक' स्थिति कह सकते हैं । परिब्राजक अर्थात् परिभ्रमण करने वाला । एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान को कार्य-क्षेत्र बनाने वाला । वस्तुतः ठोस और अधिक कार्य इसी प्रकार हो सकता है । कुछ विशेष प्रतिभाशाली व्यक्तियों की बात भिन्न है जो अपने अतिरिक्त प्रभाव का उपयोग अपने परिचितों पर डालकर अपेक्षाकृत अधिक सफलता प्राप्त कर लेते हैं । ऐसा विशेषतया धनी लोगों में बन पड़ता है । उनके प्रभाव परिचय में दूसरे धनी लोग होते हैं । फलतः वे उनसे कुछ अधिक आर्थिक सहयोग परमार्थ प्रयोजनों के लिए प्राप्त कर सकते हैं । ऐसा ही कुछ वे लोग भी कर सकते हैं जिनका किसी अन्य कारण से किसी क्षेत्र विशेष पर अतिरिक्त प्रभाव पहले रहा हो अथवा अब हो । अन्यथा सर्वत्र लागू होने वाला नियम यही है कि परिचित स्थान से हट कर सेवा क्षेत्र बनाया जाये । सफलता की सम्भावना इसी में अधिक रहती है ।

पूरा समय दे सकने वाले पूर्ण वानप्रस्थ और वर्ष में एक दो महीना निकाल सकने वाले आंशिक वानप्रस्थ कहे जा सकते हैं । उनकी निर्धारित कार्य पद्धति धर्म प्रचार के लिए जन सम्पर्क की तीर्थयात्री जैसी ही हो सकती है । शारीरिक स्थिति अथवा अभीष्ट परिस्थिति के कारण जिन्हें एक स्थान पर बैठकर काम करना पड़े तो वह एक अतिरिक्त बात हुई ।

कहा जा चुका है कि जिनके पास थोड़ा भी समय बचता हो वे उस न्यूनतम समय का उपयोग अपने छोटे से सम्पर्क क्षेत्र में करते हुए वानप्रस्थ का थोड़ा बहुत निर्वाह हर परिस्थिति में कर सकते हैं । झोला पुस्तकालय, चल पुस्तकालय, दीवारों पर वाक्य-लेखन, कथा-प्रवचन, प्रभातफेरी, गोष्ठी आयोजन जैसे कार्य वानप्रस्थ स्तर के ही हैं और उनसे तीर्थयात्रा प्रयोजन की पूर्ति किसी न किसी अंश में होती है । घरेलू कार्यों में से कुछ घण्टे नियमित रूप से निकाल सकना किसी भी आदर्शवादी आस्था सम्पन्न व्यक्ति के लिए सहज सरल बना रह सकता है । साप्ताहिक अवकाश का दिन भी यदि पूरे का पूरा इसी कार्य के लिए रखा जा सके तो वर्ष में ५२ सप्ताह लगभग दो महीनें के बराबर हो जाते हैं । प्रश्न मनःस्थिति का है, परिस्थिति का नहीं ।

जागृत आत्माओं के लिए यह युग परिवर्तन की पुण्य बेला में बहुत कुछ करने का खुला आमन्त्रण है । इसके लिए उन्हें समयदान, अंशदान के लिए साहस जुटाना होगा । यही है वानप्रस्थ परम्परा का पुनर्जीवन जिसके लिए हममें से प्रत्येक को न्यूनाधिक रूप से भागीदार बनना चाहिए ।

जिनका मन ऐसा कुछ करने के लिए उमंगता हो उसके लिए सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि अभीष्ट प्रयोजन को सही रूप से सम्पन्न करने के लिए आवश्यक शिक्षा प्राप्त करें । इसके लिए मात्र भावना या कल्पना पर्याप्त नहीं । जिस क्षेत्र में उतरना है, उसके सन्दर्भ में जानकारी क्षमता, एवम् कुशलता प्राप्त करना आवश्यक है । विशिष्ट विषय की प्रवीणता प्राप्त किये बिना तो भावनाशील और बुद्धिमान समझे जाने वाले व्यक्ति भी असफल रह जाते हैं । युद्ध मोर्चे पर लड़ने जाने से पूर्व उस सन्दर्भ का विशिष्ट कला-कौशल, अनुभव, अभ्यास करना पड़ता है । सिद्धान्तों मोड़ों एवं समस्याओं को समझने का, गुत्थियों को सुलझाने का विशेष अध्ययन करना पड़ता है । इसके बिना अन्धाधुन्ध दौड़ते हुए मोर्चे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर जा खड़े होना बुद्धिमानी नहीं हैं । देश-भक्त, बहादुर, बलिष्ठ जैसी सभी भावनात्मक विशेषताओं के रहते हुए भी यदि बन्दूक चलाने एवं युद्ध कौशल की अन्य बातों का अनुभव परिघय नहीं है तो आत्माहुति भले ही दे दी जाये । विजय श्री वरण करने का उद्देश्य पूरा न हो सकेगा । अस्तु जितनी भाव श्रद्धा अभीष्ट है उतनी आवश्यकता इस बात की भी है कि वानप्रस्थ परम्परा के अनुरूप चिन्तन एवं कौशल की पूँजी संग्रहीत की जाये । स्वर्ण सुगन्ध का समन्वय इसी प्रकार बन पड़ेगा ।

वानप्रस्थ जीवन तीन भागों में विभक्त है—(१) तपश्चर्या द्वारा संचित कुसंस्कारों का परिशोधन तथा प्रसुप्त आत्मबल का सम्वर्धन । (२) ब्रह्मविद्या के सहारे आत्मज्ञान एवं (३) व्यावहारिक अनुभव अभ्यास इन तीनों का ही उचित सम्पादन करने से सच्चे अर्थो में वानप्रस्थ साधना बन पड़ती है । तीनों का समावेश रहने से ही इस पुण्य परम्परा का निर्वाह ठीक प्रकार बन पड़ता है ।

सामान्यतया पारिवारिक उत्तरदायित्व हर किसी पर होते हैं । नया परिवार न बसाया जाये तो भी वयोवृद्ध अभिभावकों के भरण-पोषण तथा वयस्कों छोटों को कई प्रकार के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है । घर में यदि अन्य लोग उस भार को वहन कर सकते हों, या निर्वाह के लिए संचित साधन मौजूद हों तो बात दूसरी है अन्यथा सामान्य परिस्थितियों में हर प्रौढ़ व्यक्ति पर घर वालों की आज्ञा पर चलने का तो नहीं, पर उनके उचित सहयोग का उत्तरदायित्व तो रहता ही है । ढलती आयु आने तक उस सबसे सहज निवृत्ति मिल जाती है । इसके उपरान्त वानप्रस्थ पूर्ण निश्चिन्ततापूर्वक निभ सकता है ।

भौतिक जानकारियाँ तो स्कूली मास्टर भी देते रहते हैं । बच्चों को पढ़ा-लिखाकर ग्रेजुएट बना देते हैं, पर नैतिक शिक्षण का कार्य हर किसी से नहीं हो सकता । उसके लिए जन स्तर से ऊँचे व्यक्तित्व चाहिए । जो अध्यापक बच्चों के बराबर ही पढ़ा हो उतनी ही आयु का हो तो उससे शिक्षण का उत्तरदायित्व निभेगा नहीं । नैतिक और सामाजिक उत्कृष्टता उत्पन्न करने वाले, सफल लोक-शिक्षण कर सकने वाले, व्यक्ति ऐसे होने चाहिए जिनने अपना जीवन क्रम अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा उठा लिया है । वानप्रस्थ का स्तर इस प्रकार का है कि वह अपने आप को अधिक चरित्र-निष्ठा, समाज-निष्ठा एवं आदर्श परायणता की कसौटी पर खरा सिद्ध करता है फलतः उसकी प्रेरणायें जन-मानस को प्रभावित करने में सफल होती हैं । साधु ब्राह्मण की परम्परा इसी प्रयोजन के लिए है कि आदर्शवादी शिक्षण करने वाले अध्यापक का निजी स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसे देखकर यह जाना जा सके कि जो शिक्षा दूसरों को दी जा रही है उस पर शिक्षक की आस्था है या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर वाणी से नहीं आचरण से ही दिया जा सकता है । समाज में भावनात्मक उत्कृष्टता उत्पन्न करने के प्रयासों में सर्वप्रथम यह है कि शिक्षक दीपक की तरह पहले स्वयं प्रकाशवान् बने तब प्रकाश के वितरण का कदम उठाये । वानप्रस्थ स्तर के लोग ही सच्चे और सफल शिक्षक हो सकते हैं । इस आवश्यकता की जितनी पूर्त्ति होगी, वानप्रस्थ संस्था जितनी प्रखर होगी, उतना ही समाज का स्तर हर दृष्टि से ऊँचा उठता जायेगा । साधु और ब्राह्मण की महान् परम्परा का व्यावहारिक, सार्वजनिक सुगम समावेश वानप्रस्थ में होता है । अस्तु वह अपेक्षाकृत अधिक सरल और सफल सिद्ध होती है । प्राचीनकाल के गरिमा भरे गौरव का, सतयुगी स्वर्णिम काल का कारण और आधार तलाश करने पर प्रतीत होता है कि उच्चस्तरीय-निस्पृह लोकसेवियों का बाहुल्य ही उन दिनों भारत को समस्त संसार के सम्मुख गौरवान्वित कर रहा था । उस महान् परम्परा को आज पुनर्जीवित करने की महती आवश्यकता है । पवित्र और प्रखर व्यक्तियों से ही नवयुग का अवतरण सम्भव हो सकेगा ।

वानप्रस्थ एक शास्त्र मर्यादा-धर्म मर्यादा

वानप्रस्थ परम्परा की महत्ता शास्त्रकारों ने एक स्वर में गाई है और भावनाशील धर्म-प्रेमियों को निर्देश दिया है कि वे ब्रह्मचर्य, और गृहस्थ के जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के पूर्वार्ध में पूरे करलें । इसके उपरान्त ढलती आयु को परमार्थ प्रयोजन के लिये समर्पित कर दें । उत्तरार्ध का श्रेष्ठतम सदुपयोग शास्त्रकारों ने यही बताया है कि उसे ज्ञान-साधना तपश्चर्या एवं लोकमंगल की परिव्राजक प्रक्रिया में लगते हुए आत्म-कल्याण एवं विश्व-कल्याण कार्य प्रयोजन पूरा कर लें । परिवार के बचे हुए उत्तरदायित्व बड़े और स्वावलम्बी लड़कों को सौंपे जा सकें, इसके लिए उन्हें पहले से ही प्रशिक्षित करना चाहिए । तभी वे इस भार को उचित रीति वे वहन कर सकने की मनःस्थिति में हो सकेंगे ।

वानप्रस्थ परम्परा के सम्बन्ध में शास्त्रकारों के कुछ निर्देश इस प्रकार हैं–

ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भूत्वा बनी भवेत् ।
बनी भूत्या प्रव्रजेत् ।

(शतपथ ब्राह्मण)

ब्रह्मचर्य आश्रम पूरा होने पर गृहस्थ में प्रवेश करें । गृहस्थ की अवधि पूरी होने पर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करें और धर्म प्रचार के लिए परिभ्रमण करें ।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत् स्नातको द्विजः
बने बसेत् नियतों यथावत् विजितेन्द्रियः ।

(मनु०)

विद्याध्ययन और गृहस्थ के उपरान्त इन्द्रियजयी हो कर वानप्रस्थ में प्रवेश करें ।

गृहस्थस्तु यदा पश्येत् वली पलितमात्मनः
अपत्यस्यैव पापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ।

(मनु ६/२)

जब गृहस्थ को यह दिखाई पड़े कि चमड़ी पर झुरियाँ पड़ने लगीं, बाल सफेद होने लगे और पुत्र भी गृहस्थ बन गया तो उसे घर छोड़ कर वानप्रस्थ में प्रवेश करना चाहिए ।

पुत्रे सर्व समातज्य वसेन् आग्रामास्य माश्रिताः ।

(मनु ४/२५७)

गृहस्थ उत्तरदायित्व पुत्र पर छोड़ कर ममता रहित होकर वनवास के लिए चल पड़ें ।

गृहस्थः सोमयाज्ञे पुत्रं पौत्र च दृष्टवा त पुत्रादीन गृहे संस्थाप्य मौयंडम कृत्वा । प्राजापत्यं कृच्छचरेत् । बसन्ते शुक्ल पक्षे पुण्यक्षों पलिया सार्धवनाङ्गम याति ।

(वैखानस गृहसूत्र ६/२/१)

धर्मकृत्यों में निरत गृहस्थ बिताने के बाद पुत्र के पुत्र हो जाने पर सन्तान को गृह भार सौंप कर मुण्डन प्रजापत्यकृच्छ करते हुए शुभ समय में वानप्रस्थ प्रवेश करें ।

जीवनस्य चतुर्थांश परभार्थे नियाजयेत् ।
वैराग्यं विषयात्कृत्वा लोभ मोहौ परित्यजेत् ।।

जीवन का चतुर्थांश परार्थ में व्यतीत करे । विषय से वैराग्य की ओर अग्रसर होकर लोभ और मोह को त्याग दे ।

अनासक्तेः सुकर्त्तव्ये ममता बन्धनं स्वयम् ।
कृत्वा परिणतं युक्तया स्वाध्याय निरता भवेत् ।।
सत्संगे चात्मसंलग्नों भवेत् सार्थक जीवनः ।
गृहस्योत्तरदायित्वं प्रहृष्टमनसा श्रियेत् ।।

ममता के बन्धन को अनासक्त कर्त्तव्य में परिणत कर स्वयं स्वाध्याय, सत्संग, उसी प्रकार आत्म-चिन्तन में संलग्न होवे । यह वानप्रस्थ आश्रम की रीति-नीति है ।

स्कन्धयोरूत्तरे स्वस्य योग्याधिकारिणः शनैः ।
मनसः वामना तृष्णो द्वेष दुर्भावने तथा ।।
दूरी कृत्य भवल्लनः साधनोपा सनादिषु ।
निरतो लोक सेवायाँ स्वेन्द्रियाणि नियन्त्रयेत् ।।

घर का उत्तरदायित्व प्रसन्नचित से अपने योग्य उत्तराधिकारी के कन्धों पर डाल दे । वह वानप्रस्थ में प्रवेश करें ।

मन से वासना, तृष्णा, द्वेष, दुर्भाव दूर कर अपनी साधना उपासना आदि में संलग्न होवे । लोक सेवा में तत्पर होता हुआ अपनी इन्द्रियों का नियन्त्रण करें ।

सदाध्यात्मिक सम्पतिः सञ्चयेल्लोक सेवया ।
समयस्य विशिष्टांशं शुभकार्ये नियोजयेत् ।।
विश्वं मत्वाऽऽत्मरूपं यत् शिक्षक वद् गृहाद्वहिः ।
जीवनस्यास्य साफल्यं वैराग्योपरितिष्ठिति ।।

वानप्रस्थ सदैव आध्यात्मिक सम्पत्ति को लोक सेवा से सचिंत करे । विश्व को आत्मस्वरूप मानकर शिक्षक की भाँति घर से बाहर समय का विशिष्टांश शुभ कार्य में लगावे, क्योंकि इस जीवन की सफलता निस्वार्थ भाव पर निर्भर है ।

निवृत्ति प्रधान वानप्रस्थ को स्वार्थ मुक्ति तथा दूसरी अध्यात्म विभूतियों का केन्द्र माना गया है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस सन्दर्भ में महर्षि चरक का मन्तव्य माननीय है ।

निवृत्तिकपवर्गस्तत्पकं तत्प्रशात्तं तदत्रकं तद् ब्रह्म समीक्षः तत्रमुमुक्षूणांमुदयनानि व्याख्यास्यामः ।

(चरक श० ५/१०)

निवृत्ति ही अपवर्ग है । यही अपवर्ग श्रेष्ठ है । यही शान्त है । यही कभी नष्ट न होने वाला अक्षर है । यही ब्रह्म है । यही मोक्ष है । इसी में मुमुक्षु आत्माओं के लिए अभीष्ट प्राप्ति का मार्ग है ।

वानप्रस्थ जीवन का क्रिया-कलाप, उद्देश्य और आचार व्यवहार क्या हो ? इस प्रश्न का उत्तर अनेक धर्म शास्त्रों में विस्तार पूर्वक बताया गया है ।

विमुक्तादार संयोगै विमुक्ताः सर्व संकर्रः ।
विमुक्ता सर्व पापैश्च चरन्ति मुनयो बने ।

(महाभारत अनुशासन पर्व)

काम सेवन को छोड़ कर, पापों का प्रायश्चित कर के—वानप्रस्थ वन प्रदेश में निवास करें और परिभ्रमण करता रहे ।

एतासां ऋषि वनस्थानामूर्चीणामिक सागरात् ।
विविधानों विचित्राणां लतानमिव माधवे ।
भव्या जितमनोमोहा, दृष्ट लौक परावराः ।
जीवनमुक्ता भ्रमन्तीह प्रबृद्धाबा उदुम्बराः ।

सागर में उत्पन्न हुई लहरों की भाँति उद्यान में उत्पन्न हुई लताओं की भाँति वानप्रस्थ ऋषि जीवन मुक्त बन कर रहते हैं और जगत का कल्याण के लिए भ्रमण करते हैं ।

बनेषुच विहृत्यैवं तृतीयं भाग मायुष ।
चतुर्थमानुषो भागं त्यक्त्वा संगात्परिव्रजेन् ।

आयु के तीसरे भाग का आरम्भ होने पर वानप्रस्थ ग्रहण करें । आत्म-ज्ञान के लिए यह सुअवसर अभ्यास के उपयुक्त ही है ।

वानप्रस्थ ग्रहण करते समय जो प्रतिज्ञा की जाती है उस संकल्प में उस आश्रम के उद्देश्य प्रयोजन एवं कार्यक्रम का स्पष्ट निर्देश है—

न्यायं बदामि उभयलोका हतं गदामि ।
लोकौ अतीत्य परमार्थ युज्ञ स्तवीमि ।।
शंसामि यन्ननु निर्देज्ञन आर्या मेव ।
गृहपवीत हृष्ट हृदयाः तद अथार्य वर्याः ।

मैं न्याय का अनुसरण करते हुए भाषण करूँगा । लोक और परलोक सुधारने वाले प्रवचन करूँगा । आत्मा-कल्याण और समाज-कल्याण में निरत रहूँगा । समष्टि के श्रेय साधन में लगूँगा । यज्ञादि सत्कर्मों का उत्थान करूँगा । उत्साह पूर्वक आर्य-धर्म का विस्तार करूँगा ।

आनये तमारभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु
प्रजानन् । तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो
नाकमाक्रमताँ तृतीयाम् ।

(अथर्व ६/५/२४)

ब्रह्मचर्य आश्रम में बल बुद्धि—गृहस्थ आश्रम में परिवार निर्माण के उपरान्त तीसरे वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता हूँ । तपश्चर्या और ज्ञानार्जन सहित परमार्थ साधन करूँगा ।

पुरुषों की तरह ही महिलायें भी वानप्रस्थ में प्रवेश कर सकती हैं । पति-पत्नी दोनों साथ-साथ इस पुण्य प्रयोजन में संलग्न हो सकें तो उसकी शास्त्रकारों ने पूरी छूट दी है । यों पत्नी से कष्टसाध्य तपस्वी जीवन के लिए आवश्यक तितीक्षा न हो—शिक्षा, योग्यता और भावना के अभाव में उस महान् व्रत धारण में कठिनाई अनुभव हो तो घर रहना भी अच्छा है । पति को एकाकी जीवन साधना करने में सुविधा हो तो उन्हें वैसा करने देना चाहिए ।

वैरवनसा नाम पत्नी वाऽपत्नी वा शुभे क्षणे
तीव्रेण तपसा युक्ता दीप्ति मन्त स्वतेजसा ।

(वैखानस गृह्यसूत्र)

वैखानस, वानप्रस्थ, पत्नी सहित अथवा वनवास निवास करते हैं । तीव्र तपश्चर्या करते हैं और आत्म-तेज को करते हैं ।

संत्यज्य ग्राम्य माहारं सर्व चैव परिच्छदम्
पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य बन गच्छेत्सहैववा ।

(मनु६/३)

रजोगुणी आहार विहार छोड़ कर वानप्रस्थी जीवन में प्रवेश करें । पुत्रों पर पत्नी की जिम्मेदारी सौंप दें अथवा उसे भी साथ ले जायें ।

विपवायें और कुमारियाँ भी उपयुक्त अवसर पर वानप्रस्थ ले सकती हैं । कुन्ती विधवा थी, किन्तु अपने जेठ-जिठानी, धृतराष्ट्र और गान्धारी के वानप्रस्थ लेने पर वे स्वयं भी वानप्रस्थी बन गई और उनका सहयोग करने के लिए स्वयं भी उनके साथ रही । इसकी तैयारी करते हुये उन्होंने अपने पुत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

युधिष्ठिर को अपना वानप्रस्थ संकल्प व्यक्त करते हुए कहा–

श्वश्रूश्वशुरयोः कृत्वा शुश्रूषां वन वासिनोः
तपसा शोषायिष्यामि युधिष्ठर कलेवरम् ।

(महाभारत)

हे युधिष्ठिर, अब मैं वनवासी सास-ससुरवत (जेठ–जिठानी की सेवा करके तपस्वी जीवन व्यतीत करूँगी । उनने भी वनवास में ही अपना जीवन तप पूर्वक बिताया ।

कुमारी कन्यायें भी परिपक्व आयु में वानप्रस्थ ले सकती हैं । तपस्विनी सुलभ का उदाहरण इस आर्ष पद्धति को स्पष्ट कर देता है ।

तपस्विनी सुलभा ने राजा जनक को अपना परिचय देते हुए कहा–

साहं तस्मिन् कुलेजाता भर्तर्यसति याद् विधे
विनीलावान प्रस्थेषु चराभ्यका मुनिव्रतम् ।

(महाभारत)

मैं कुलीन जन्मी । योग्य पति न मिलने से विवाह न हो सका । तब मैंने वानप्रस्थ की दीक्षा ले ली । अब मैं मुनिव्रत धारण करके परिव्राजक बन कर विचरण करती हूँ । वानप्रस्थ को एकान्त नदी तट, पुण्य-तीर्थ, नगर ग्राम के न अति समीप न अति दूर प्राकृतिक वातावरण में तप साधना करने के लिए निर्देश किया है। सुयोग्य विद्वान तपस्वियों से अभीष्ट मार्ग-दर्शन, प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए। इस शास्त्र निर्देश के अनुरूप एवं उपयुक्त स्थान पर ही शान्तिकुञ्ज बना है। हिमालय की गोद, गंगा तट, सप्त ऋषियों की तपोभूमि प्रमुख तीर्थ होने के साथ-साथ एकान्त एवं प्राकृतिक वातावरण भी वहाँ है। तपश्चर्या एवं ज्ञान साधना की दृष्टि से भी अभीष्ट सुविधायें यहाँ सहज ही उपलब्ध हैं । वानप्रस्थी साधना के लिए उपयुक्त स्थान चुनने के सन्दर्भ में शास्त्रकारों का अभिमत इस प्रकार है–

स्व आश्रम वानप्रस्थोक्त सदाचार विद्वच्छिक्षता फलमूलोदकान्वित तपोवन प्राप्यरम्यदेशे ब्रह्मघोष समन्वित.... नदी तीर्थे ग्रामेनगरे नातिदूरे वापि सुशोभन कृत्वा। शाडिल्योपनिषद् ।।

वानप्रस्थ के उपयुक्त आचार व्यवहार को जानें विद्वानों के आश्रय में ज्ञान साधना करें। फल, मूल, पुष्प, जल की सुविधा वाले नदी तट, तीर्थ आदि पवित्र स्थान में निवास करे। स्थान ग्राम नगर से अति दूर न हो प्राकृतिक उपयुक्त हो।

सज्जनोचित जीवन यापन करने की प्रक्रिया यही है कि वह अपनी क्षमताओं और प्रतिभा को तपश्चर्या में आत्मशोधन आत्म-विकास में लगावे । इस तपश्चर्या से शान्ति सन्तुलन प्रतिभा और महत्ता प्राप्त करे। स्वंय बन्धनों से छूटे और दूसरों को बन्धनों से छुड़ाये। यह सारे प्रयोजन जीवन के क्रमिक विकास को वानप्रस्थ स्तर तक पहुँचाते हुए सहज ही प्राप्त हो सकता है। शास्त्रकारों ने उसी पर जोर दिया है। उसी के लिए आग्रह किया है।

सज्ज्नः तपसोभूयात् तापसः शान्ति माप्नुयात्
शान्तिमुच्येत् बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेतु।

(महाभारत)

सज्ज्न तपस्वी बनें, तपस्वी शान्ति पावें। शान्त लोग भव-बन्धनों से मुक्त हों । जीवन मुक्त दूसरों को भव-बन्धनों से मुक्त करें।

वैराग्य की विवेचना

वैराग्य का अर्थ है–रागों को त्याग देना। राग मनोविकारों को, दुर्भावों और कुसंस्कारों को कहते हैं। अनावश्यक मोह, ममता, ईर्षा, द्वेष, क्रोध, शोक, चिन्ता, तृष्णा, भय, कुढ़न आदि के कारण मनुष्य-जीवन में बड़ी अशान्ति एवं उद्विग्नता रहती है। कितने ही लोग अपने को बड़ा दीन, दुःखी, अभावग्रस्त, संतप्त, अभागा, समझते हैं और यह रोना रोते रहते हैं कि हमारे पास अमुक वस्तु नहीं, अमुक स्थिति अनुकूल नहीं, अमुक त्रास है, परन्तु असली बात दूसरी ही होती है। अन्तःकरण में रहने वाले राग-द्वेष भीतर से उठते हैं और मनमें घुमड़ते हैं, उन्हीं की विषैली गर्मी से मनुष्य संतप्त रहता है ।

तत्त्वदर्शी सुकरात का कथन है कि–"संसार में जितने दुख हैं उनमें तीन चौथाई काल्पनिक हैं।" मनुष्य अपनी कल्पना शक्ति के सहारे उन्हें अपने लिए गढ़कर तैयार करता है और उन्हीं से डर-डर कर खुद दुःखी होता रहता है । यदि वह चाहे तो अपनी कल्पना शक्ति को परिमार्जित करके अपने दृष्टिकोण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को शुद्ध करके इन काल्पनिक दुःखों के जंजाल से आसानी से छुटकारा पा सकता है । अध्यात्म शास्त्र में इसी बात को सूत्र रूप में इस प्रकार कह दिया है कि–"वैराग्य से दुःखों की निवृत्ति होती है ।" हम मनचाहे भोग नहीं भोग सकते । धन की, संतान की, अधिक जीवन की, भोग की एवं मनमानी परिस्थिति प्राप्त होने की तृष्णा किसी भी प्रकार पूरी नहीं हो सकती, एक इच्छा पूरी होने पर दूसरी नई दस इच्छाएँ उठ खड़ी होती हैं । उनका काई अन्त नहीं, कोई सीमा नहीं । इस अतृप्ति से बचने का सीधा-साधा उपाय अपनी इच्छाओं एवं भावनाओं को नियंत्रित करना है । इस नियंत्रण द्वारा, वैराग्य द्वारा ही दुःखों से छुटकारा मिलता है । दुखों से छुटकारे का वैराग्य ही एक मात्र उपाय है ।

वैराग्य हिन्दू धर्म की शिक्षाओं में आदि से अन्त तक ओत-प्रोत है । जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हर मनुष्य को वैरागी रहने का आदेश है, क्योंकि वैरागी मनुष्य ही अपने मानसिक संतुलन को ठीक रख सकता है, जीवन के सच्चे आनन्द का उपभोग कर सकता है, उन्नत, समृद्ध, यशस्वी, प्रतापी एवं पारलौकिक सम्पन्नता के लिए भी वैराग्य की प्राथमिक आवश्यकता है । एक शब्द में यों कह सकते हैं–"जीवन को सुसम्पन्न बनाने का एक मात्र आधार वैराग्य है ।" गीता का कर्मयोग, वैराग का ही दूसरा नाम है ।

हर स्थिति के व्यक्ति को सदैव अपना दृष्टिकोण वैराग्य मय रखना चाहिए, यह भारतीय दर्शनशास्त्र का सर्वमान्य सिद्धान्त है । इस सिद्धान्त की चर्चा प्राचीन ग्रन्थों में हमें सविस्तार मिलती है, पर कितने दुःख की बात है कि आज वैराग्य के अर्थ का अनर्थ कर दिया गया है । उसका तात्पर्य कुछ से कुछ निकाला जाने लगा है । आज हमें वैरागी कहलाने वालों की एक भारी जनसंख्या निरुद्देश्य बेकारी में समय काटती हुई, मुफ्त की रोटियां खाती हुई, इधर से उधर मारी-मारी फिरती दीखती है । आज के वैराग्य का अर्थ यह समझा जाता है घर छोड़कर चल देना, कुटुम्ब के महान उत्तरदायित्व को तिनके के समान तोड़ कर फैंक देना, संसार को मिथ्या बनाना, फिर भी संसार के अन्न, मकान, धन आदि का उपभोग करना लोक सेवा से सर्वथा दूर रह कर अपनी निजी मुक्ति या स्वर्ग प्राप्ति की खुदगर्जी की बातें सोचते रहना, भांग चरस, गांजा, तमाखू आदि नशीले पदार्थों की भरमार रखना, पात्र कुपात्र का विचार न करके दीनता पूर्वक भीख माँगना, भाग्यवादी अकर्मण्यता का उपदेश करना, विचित्र प्रकार का वेष बना लेना, आदि ।

आज के वैरागियों ने वैराग की जो दुर्दशा कर रखी है, आइए, उस पर विचार करें और यह देखें कि उनकी कार्य पद्धति ठीक है या नहीं ? छोटे-छोटे बाल-बच्चों को अनाथ बनाकर, तरुण पत्नी, वृद्ध माता-पिता को छोड़कर कई लोग घर से भाग खड़े होते हैं । यह कर्म परित्याग किसी भी दृष्टि में उचित नहीं ठहराया जा सकता । प्राचीन समय में ऐसे उदाहरण हमें देखे नहीं मिलते । साधारण जनता अपना साधारण ग्रहस्थ जीवन बिताते हुए ही वैराग्य का दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास करती थी, पर जो विशेष रूप से वैराग्य साधन का कार्यक्रम बनाते थे वे भी कुटुम्ब को त्यागते न थे । योगेश्वर भगवान शंकर ने दो बार विवाह किया उनकी पहली स्त्री सती और दूसरी पार्वती थी । गणेश और स्वामिकार्तिक दो पुत्र उनके थे । गीता के प्रवक्ता योगिराज कृष्ण की कई स्त्रियाँ और कई संतानें थीं । शुकदेवजी को ब्रह्मविद्या सिखाने वाले राजा जनक की एक सौ पत्नियाँ थीं । याज्ञवल्क ऋषि की कात्यायल्की और मैत्रेयी दो स्त्रियाँ थीं । गौतम ऋषि की अहिल्या पत्नी थी । जमदग्नि की रेणुका स्त्री और परशुराम पुत्र थे । च्यवन ऋषि की सुकन्याय पत्नी थी । अत्रि ऋषि की स्त्री अनुसूया थी, जिन्होंने सीताजी को पतिव्रत धर्म का उपदेश किया । व्यासजी की पत्नी मत्सोदरी ने शुकदेव को जन्म दिया । वशिष्ठजी के शत पुत्रों को विश्वामित्रजी ने मार डाला । लोमश ऋषि के पुत्र ऋंगी ऋषि ने परीक्षित को शाप दिया । दुर्वाशा ऋषि की शकुन्तला कन्या थी । पुलिन्त ऋषि का पुत्र रावण हुआ । उद्दालक ऋषि के पुत्र नचिकेता थे । उद्दालक, बाजिश्रवा के पुत्र थे । द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा था । छान्दोग्य उपनिषद में उपमन्यु के पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष के पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लवे के पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष के पुत्र जन और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अश्वतराश्विका के पुत्र बुडिल इन पाँचों को महाशाल अर्थात् वेद पढ़ाने वाले महा अध्यापक ने लिखा है वे पाँचों ऋषिकुमार थे । अरुण के पुत्र आरुणि उद्दालक के श्वेतकेतु पुत्र था । इन सबकी माताओं के नाम अविदित हैं तो भी उनकी माताएँ रही अवश्य होंगी । इस प्रकार उन ऋषियों का सपत्नीक होना निश्चित है । वह आम प्रथा थी । गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए ऋषि लोग वैराग्य मय जीवन बिताते थे । इसमें न तो कोई दोष है और न कभी कोई दोष समझा गया है । आज का वैराग्य तो विचित्र वैराग्य है उसमें उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य कर्मों का त्याग ही त्याग समझा जाने लगा है ।

आज के वैरागी दुनियाँ को मिथ्या बताते हैं और लोक सेवा से नाम-भौं सकोड़ कर अपने निजी स्वर्ग मुक्ति की तरकीवें लड़ाते हैं, पर प्राचीन काल में यह विचारधारा बहुत बुरी दृष्टि से देखी जाती थी । यह तो एक विशुद्ध खुदगर्जी है । व्यापारी लोग अपने निजी लाभ के लिए धन कमाते हैं ऐसी दशा में उनके लिए भिक्षा माँगने का कोई अधिकार नहीं और न वे माँगते ही हैं । इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने निजी स्वर्ग या मुक्ति की साधना में लगे हुए हैं, उन्हें दूसरों से भिक्षा माँगने या दूसरों पर अपना किसी प्रकार का कोई भार डालने का अधिकार नहीं है । प्राचीन काल में ऋषि गण इस प्रत्यक्ष सत्य को भली-भाँति जानते थे और वे अपने जीवन को लोकोपयोगी कार्यों में लगाये रहते थे । जब अपना सारा जीवन जनता जनार्दन के चरणों में अर्पण कर दिया तो प्रसाद स्वरूप दान या भिक्षा के रूप में निर्वाह साधन लेने का भी उन्हें अधिकार था । आज तो वैरागी कहे जाने वाले लोग लोक सेवा से कोसों दूर भागते हैं और दूध मलाई उड़ाने के लिए तैयार रहते हैं ।

प्राचीन काल में ऋषिलोग लोक सेवा में तल्लीन रहते थे । धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार, चरक सुश्रुत, बागभट्ट, शार्गधर आदि ऋषियों के शरीर विज्ञान स्वास्थ्य, औषधि अन्वेषण और चिकित्सा में अपने सारे जीवन लगाये । जनता को रोग मुक्त करके उसे सुखी बनाने के लिए उन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया । नागार्जुन सरीखे कितने ही वैज्ञानिक रसायन विद्या की शोध करके जनता के लिए उपयोगी ज्ञान सामने लाये । आर्य भट्ट सरीखे ऋषि खगोल विद्या के अन्वेषणों में लगे रहे और ग्रह नक्षत्रों की गतिविधि की महत्त्वपूर्ण जानकारी जनता के सामने रखी । नालन्दा, तक्षशिक्षा जैसे पचासों विश्वविद्यालय उन्हीं के द्वारा चलते थे और संसार में विद्या का प्रकाश किया जाता था । वात्स्यायन जैसे कामशास्त्र के अन्वेषक वैरागी ही थे । बाण-विद्या द्रोणाचार्य सिखाते थे । नारद जी सदा भ्रमण ही करते रहते थे और एक स्थान के समाचारों से दूसरे स्थान के समाचारों से दूसरे स्थान की जनता को अवगत कराते थे । विश्वकर्मा ऋषि शिल्प विद्या के आचार्य थे । चाण्क्य राजनीति के अनुपम महारथी थे । समय पड़ने पर परशुराम जी ने अत्याचारी शासकों के विरुद्ध स्वयं फरसा उठाया और उन्हें मिटा कर जनता को अभय किया । असुरों के नाश के लिए दधीचि ने अपनी अस्थियाँ तक निकाल कर दे दीं । व्यासजी ने अनुपम काव्य पुराण लिखे, सूत जी कथा और उपदेशों द्वारा धर्म प्रचार करते थे । संगीत, साहित्य, व्याकरण, सर्वविद्या, मल्लविद्या, विमान विद्या, शस्त्र विद्या, अर्थ शास्त्र युद्धविद्या, मंत्र विद्या, रसायन विद्या, पशु विद्या आदि अनेकानेक प्रकार के वैज्ञानिक अन्वेषण ऋषियों के आश्रमों में होते थे और वहाँ से बड़ा महत्त्वपूर्ण ज्ञान संसार को मिलता था । वे एकान्त सेवी नहीं थे वरन् संसार की गतिविधि पर अपना पूरा नियंत्रण रखते थे, राजाओं के शासन उनकी इच्छानुसार चलते थे । दशरथ के गुरु वशिष्ठजी, असुरों के गुरु शुक्राचार्य, देवताओं के गुरु बृहस्पतिजी निमंत्रण जीम कर दक्षिणा लेने वाले गुरु नहीं थे । उनके नियन्त्रण में ही राजसत्ता की सारी गतिविधि चलती थी ।

आज के तथाकथित वैरागी "दुनिया से हमें क्या मतलब" की रट लगाते हैं, पर प्राचीन काल में इस दूषित, ओछे संकीर्ण दृष्टिकोण को कोई सच्चा बैरागी पास भी नहीं फटकने देता था । भगवान बुद्ध कहा करते थे कि—"मैं तब तक स्वर्ग या मुक्ति नहीं चाहता जब तक कि संसार का एक भी प्राणी बन्धन में है । "कहाँ वह वाधितत्वमयी ऋषी उचित भावनाएँ, कहाँ आज के वैरागियों का खुदगर्ज दृष्टिकोण ? दोनों में जमीन आसमान का अंतर है । आज देश

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और जाति की जो दुर्दशा है उसे देख कर सच्चे संत का हृदय पानी की तरह पिघल पड़ता है । प्रति वर्ष लाखों गौओं के सिर-धड़ से अलग हो जाते हैं असंख्यों स्त्री, बच्चे उदर की ज्वाला शान्त करने के लिए विधर्मी बन जाते हैं । बीमारी, गरीबी, विदेशी शासन की रक्त शोषक दासता, अविद्या, साम्प्रदायिक कलह आदि के कारण भारत माता जर्जर हो रही है । जिसके हृदय में संत पन का एक कण भी मौजूद है वह चुप नहीं बैठ सकता, अपनी शक्ति और सामर्थ के अनुसार पीड़ित जनता की सेवा के लिए कुछ न कुछ किये बिना उससे रहा ही नहीं जा सकता । ५६ लाख वैरागी जिस काम को भी हाथ में ले ले उसे बात की बात में पूरा कर सकते हैं, पर करें तब न, जब संतपन या वैराग की सच्चाई उनके पास हो ।

वेश की नकल करने से कुछ आयोजन सिद्ध नहीं हो सकता । सिंह की खाल ओढ़ कर गधा सिंह नहीं बन सकता । जिस वेश की नकल करके आज लोग वैरागी कहलाते हैं वह प्राचीन समय में सर्व साधारण का गृहस्थों का वेश था । प्राचीन समय के महापुरुषों के या देवताओं की तस्वीरें या मूर्तियाँ जो आजकल प्राप्त होती हैं उनमें हम देखते हैं कि वे प्रायः नंगे बदन रहते थे । धोती और बहुत हुआ तो कंधे पर दुपट्टा यही भारतीय पहनाव था । सिर पर सब कोई लंबे बाल रखते थे । आबादी कम थी, जंगल अधिक थे । छोटे-छोटे गाँवों में झोंपडी बना कर वनवास करना पड़ता था । लकड़ी की खडाऊँ आसानी से बिना खर्च और कठिनाई के बन जाती थी । वस्त्रों के अभाव में अपने आप मरे हुए मृग आदि पशुओं का चर्म आसन आदि के काम में ले लिया जाता था । दियासलाई उस वक्त थी नहीं, जंगली हिंसक पशुओं को डराने के लिए अग्नि जलती रखी जाती थी, लकड़ियों की कमी थी नहीं यह धूनी हर घर में सदा ही जलती रहती थी । यह सब रहन-सहन आम जनता का था । संतों का वैरागियों का भी वही रहन-सहन था । आज स्थिति बदल गई है पुरानी रहन-सहन की नकल करना उतना उपयोगी नहीं रहा है और आज तो वह नकल वैरागी होने के साइनबोर्ड की तरह काम में लाई जाती है । इस अवध अनुकरण में क्या विवेक शीलता है इसे वे नकलची ही समझ सकते हैं । जब कि न तो हिंसक पशुओं के आक्रमण का भय है न लकड़ियों की बहुतायत, दियासलाई से अग्नि प्राप्ति की असुविधा भी नहीं रही ऐसी दशा में धूनी जलाने का क्या प्रयोजन है इसे वे ही समझ सकते हैं ।

विवेकशीलता हमें पुकारती है । प्राची से प्रकाश का उदय हो रहा है । हमें हर समस्या पर विवेक के आधार पर विचार करना पड़ेगा । वैराग्य जैसे महातत्व को हम दैनिक व्यवहार में उपयोग करके जीवन को सच्चे अर्थ में आनंदित बनाना लाभदायक है या वैराग का ऊटपटांग आडम्बर करना उचित है ? इस प्रश्न का भी हमें सही उत्तर प्राप्त करना होगा, तभी हम सत्य की दिशा में अग्रसर हो सकेंगे ।

गृहत्यागी-बैरागी बनने का वास्तविक उद्देश्य

गृह-त्यागी और वैरागी की एक पुरातन परम्परा है जो अभी भी अपने लंगड़े-लूले रूप में कार्यान्वित होती देखी जाती हैं । अपने देश में साधु-बाबाओं की संख्या ६० लाख के करीब है । इनके क्रिया कलाप, मन्तव्य और स्वरूप को देखकर यह अनुमान लगाना पड़ेगा कि वर्तमान स्थिति में इस परम्परा का निर्वाह किस प्रकार होता है और उनकी उपयोगिता कितनी रह गयी है ?

भारतीय तत्त्वदर्शन में आधा समय परिवार व्यवस्था और आधा समाज हित में उत्सर्ग करने का प्रावधान है । आश्रम-धर्म में बचपन, किशोरावस्था और तरुणाई की स्थिति को घर परिवार में रहकर गुजारने का नियम है । इसमें अध्ययन, अभ्यास, अनुभव कौशल सम्पादित करनेके लिए अनेक अवसर मिलते हैं । व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती संस्था परिवार है । उसका निर्वाह अभ्युदय एवं सुसंस्कारिता सम्वर्धन, स्वावबन्धन जैसे प्रयोजन के निमित्त परिवार के सभी सदस्यों को आवश्यक अभ्यास कराना पड़ता है । इसके लिए जिनकी प्रतिभा परिपक्व हो जाती है नियंत्रण एवं मार्गदर्शन उनका कर्त्तव्य हो जाता है । वह सीखने सिखाने की विद्या है । इसमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उठने-उठाने का अवसर मिलता है । सांसारिक क्रम व्यवस्था ठीक प्रकार चलती रहे, वंश परम्परा बनी रहे, इस दृष्टि से यह निर्धारण उपयुक्त भी है कि जीवन का पूर्वार्द्ध घर-परिवार की सीमा के अन्तर्गत बिताया जाय ।

कच्चा फल पेड़ के डंठल से चिपका रहता है, पर जब वह पक जाता है तो टहनी से डंठल का मोह छोड़कर टपक पड़ता है । यह बिछुड़न अकारण ही नहीं सोद्देश्य होता है । फल का लाभ वे उठायें जिनको उसकी आवश्यकता है । पके फल में बीज भी होते हैं, उनमें नये पेड़ उगाने की सामर्थ्य भी होती है वे बीज विकसित होकर कई पौधे उगाते और फलदाल वृक्षों का सिलसिला चलाते है । यह उदाहरण इसलिए नहीं हैं कि ढलती आयु में भी सन्तानोत्पादन किया जाय । इस कथन का उद्देश्य यह है कि जीवन के उत्तरार्द्ध को परमार्थ प्रयोजन के लिए समर्पित मानकर उसका उपयोग वैसे ही लोक सेवी उत्पन्न करने में किया जाय जैसी कि परम्परा स्वयं अपनाई है ।

निर्धारित चार आश्रमों में से पूर्वार्द्ध के दो ही हैं—जिनमें अनुभव और अभ्यास करने का अवसर मिलता है जिससे व्यक्तित्व निखरे और प्रतिभाशाली व आदर्शवादी बने । यह विकास काल है, परिपक्वता की साधना का समय भी । इसके बाद प्रौढ़ता के साथ-साथ उत्तरार्द्ध शुरू होता है । इसमें निजी स्वार्थों से ऊँचा उठकर लोक-मंगल के लिए अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुरूप कार्यरत होना पड़ता है । इसी को वानप्रस्थ परिव्राजक या संन्यास कहते हैं ।

सुविस्तृत संसार में अभाव एवं अन्याय की भरमार है । इनसे जूझने के लिए प्रवीण, प्रतिभा सम्पन्न होना चाहिए । सैनिक आत्मरक्षा के लिए या बैठे-ठाले पेंशन आदि के लोभ में भर्ती नहीं होते । उनका आदर्श देश सेवा होता है । आक्रान्ताओं तथा उपद्रवियों से वे जूझते हैं । इस भिड़न्त में चोट भी खाते हैं और प्राण भी गँवाते है । देश भक्ति का प्रत्यक्ष परिचय देने का अवसर सैनिकों को तभी मिलता है जक वे घर छोड़ कर छावनी में अपना डेरा डालते हैं । अपनी तत्परता का निरन्तर अभ्यास करते रहते हैं । जीवन का उत्तरार्द्ध लोक मंगल के मोर्चे पर लड़ने के लिए होता है । वह आराम, का, आलस्य, प्रमाद में दायित्वहीन समय गुजारने का विश्राम नहीं है वरन् उस क्षेत्र की जिम्मेदारी उठाना है जो अपने बलबूते अपनी सुरक्षा एवं आवश्यकताओं की पूर्ति में समर्थ नहीं हैं । यह त्याग का, तप का, परमार्थ का अवसर है, जिसे अपनाने के कारण स्वयं को असीम आत्म सन्तोष मिलता है और दूसरे उनकी सहायता पाकर ऊँचे उठने, आगे बढ़ने का लाभ उठाते हैं । वानप्रस्थ और संन्यास के पीछे जुड़े हुए दायित्व यही हैं ।

विचारशीलता घट जाने और अनौचित्य का आडम्बर बढ़ जाने पर लोग लकीर के फकीर बन जाते है और चिन्ह-पूजा भर से उस लक्ष्य की पूर्ति होने की बात सोचते हैं जिसे पुरातन काल के उदारचेता मनीषी अपनाते और परिवार का त्याग करते थे ।

इन दिनों साधु-सन्तों में से अधिकांश वे देखे जाते हैं जो घर परिवार का दायित्व नहीं सम्भाल सके । उस क्षेत्र की जिम्मेदारियों और कठिनाइयों का सामना नहीं कर सके । जिनने निर्वाह के लिए ऐसी पगडण्डी ढूँढ़ी जिसमें बदले का श्रम नहीं करना पड़ता । गुजारा चलता था साथ ही भावुकजनों से सम्मान भी मिलता था । इस सुविधा को बटोरने के लिए जिनने पंडितों को सम्भालने-सिखाने की वास्तविक जिम्मेदारी का परित्याग कर दिया उन्हें उस श्रेणी में नहीं गिना जा सकता, जिसमें कि पुरातन काल के योगी, तपस्वी दीक्षित होते थे ।

पूछने पर इस समुदाय के लोग प्रायः यही कहते पाये जाते हैं कि वे भोजन के लिये इस क्षेत्र में प्रविष्ट हुए हैं । गृह-त्यागी वैरागी बने हैं । विचारणीय है कि इस कथन में कितनी यथार्थता है इसे कसौटी पर कसा और जाँचा जाय कि इस प्रकार तथाकथित भजन बन भी पड़ता है या नहीं ।

ईश्वर स्मरण का एक ही उद्देश्य है कि उसके द्वारा सौंपे गये मानव-जीवन के साथ जुड़े हुए कर्त्तव्यों के परिपालन में उपेक्षा का, आलस—प्रमाद का प्रवेश न होने पाये नियति द्वारा प्रदत्त इस अनुपम अवसर का विराट ब्रह्म के लिए-विशाल विश्व का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसा साधन बन पड़ने में चूक न होने पाये । ईश्वर को किसी की चापलूसी, मनुहार, प्रशंसा या नामरट की अपेक्षा नहीं है । इसमें उसका कुछ लाभ भी नहीं है । उपहार, मनुहार तो ओछे लोग बटोरने के लिए लालयित रहते हैं । ईश्वर को उस स्तर का मान बैठना किसी भी प्रकार उचित नहीं है । उसकी प्रसन्नता तो पूरी तरह इस बात पर निर्भर है कि जिस उच्च उद्देश्य के लिए मनुष्य जीवन दिया गया है, उसे आत्मोत्कर्ष और लोकमंगल के लिए कितनी ईमानदारी के साथ नियोजित किया गया । ऐसी दशा में सच्चे मन से किया गया थोड़ा भजन भी पर्याप्त आत्मबल वर्धक हो सकता है । गांधीजी, विनोबा, विवेकानन्द आदि की दैनिक साधना एक घण्टे से भी कम की होती थी । शेष सारा समय वे ईश्वर के निमित्त अर्थात् उसके विश्व उद्यान को सुविकसित, सुरम्य, सुसंस्कृत बनाने के निमित्त लगाया करते थे । भजन का यही सही और सार्थक तरीका है ।

यदि निजी स्वर्ग–मुक्ति, ऋद्धि–सिद्धि के लिए भजन, जप, तप, करना है तो उस निजी लाभ का सम्पादन करते हुए दूसरे पर अपने निर्वाह का भार नहीं डालना चाहिए । दान स्वीकार नहीं करना चाहिए । पुरुषार्थ से रोटी कमानी चाहिए । स्वावलम्बी निर्वाह करना चाहिए । श्रेष्ठता का अहंकार करने की तो कोई बात ही इसमें नहीं है । दूसरों की श्रद्धा, सद्भावना, प्रशंसा, पूजा स्वीकारने से भी स्पष्ट इन्कार करना चाहिए । साधु तो परमार्थी होते हैं । इसी निमित्त गृहत्यागी वैरागी जुटते हैं । यदि उस मार्ग पर चलने का सिद्धान्त या व्यवहार सही नहीं उतरता तो यही उचित है कि लौटकर घर सम्भाला जाय और समय, श्रम तथा मनोबल को सार्थक प्रयास में लगाया जाय ।

संन्यास वे ही लें, जो उसकी मर्यादाएँ निभा सकें

भारतीय आश्रम व्यवस्था में चौथा आश्रम संन्यास है । ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ की अवधि तथा प्रक्रिया पूर्ण करने के उपरान्त ही उसे ग्रहण करने का विधान है । अपवाद स्वरूप शंकराचार्य जैसे व्यक्ति पूर्व जन्मों में आवश्यक साधना कर चुकने पर आरम्भ से ही संन्यास ग्रहण कर लेते हैं, पर यह सामान्य नियम एवं शास्त्र मर्यादा नहीं है । जिस प्रकार कोई छात्र नीची कक्षाएँ उत्तीर्ण करता हुआ ही एम० ए० करता है । अथवा आयुक्रम से जिस प्रकार बालकपन, जवानी, ढलती उम्र और तदुपरान्त बुढ़ापा आता है, उसी प्रकार प्रारम्भिक तीन आश्रम पूरा करने के उपरान्त ही चौथे आश्रम संन्यास को ग्रहण किया जा सकता है ।

यही उचित भी है । युवावस्था के उभार, काम, क्रोध, लोभ, मोह अपने समय पर उफन कर शिथिल हो लेते हैं । वानप्रस्थ में रहकर समाज का ऋण चुकाने और परमार्थरत रहकर आन्तरिक उदारता बढ़ाने का भी पर्याप्त अवसर मिल जाता है । गृहस्थ के उत्तरदायित्व समाप्त हो जाते है । जीवन के अन्तिम चरण में लौकिक ऐषणायें एवं महत्वाकांक्षायें भी समाप्त हो जाती है । यही परिपक्व स्थिति संन्यास ग्रहण के उपयुक्त है । शरीर अधिक शिथिल हो जाने के कारण लोक सेवा के कार्य कर नहीं पाता तब तपश्चर्या द्वारा आत्मिक अग्नि को प्रखर करना और जनसम्पर्क के मोह एवं मनोविकारों के दमन करने का साधन उपयुक्त पड़ता है ।

इससे पूर्व कच्ची आयु, कच्ची मनःस्थिति में बिना परिश्रम किये मुफ्त में सुविधायें प्राप्त करने–वेश एवं वस्त्र के आधार पर सम्मान प्राप्त करने और आरामी जीवन जीने के लिए कई व्यक्ति उस स्थिति के सर्वथा अनुपयुक्त होते हुए भी संन्यास वेश बना लेते हैं यह सर्वथा अवांछनीय है । ऐसे संन्यास को ग्रहण करने वाले स्वयं पतन के गर्त में गिरते हैं और भौतिक आकांक्षाओं के लिए उद्विग्न रहने के कारण समाज को भी नीचे गिराते हैं । आजकल ऐसे ही सन्यासियों की भरमार है ।

ज्ञान वृद्ध ब्राह्मण को संन्यास लेना चाहिए ऐसी शास्त्र मर्यादा है । स्वाध्याय, मनन, चिन्तन की दृष्टि से जिसकी ज्ञान भूमिका अति प्रखर हो गई हो, जो आयु की दृष्टि से वृद्ध हो गया है– ब्रह्म परायण ब्राह्मण के शम, द्वम, तितीक्षा, अपरिग्रह आदि सद्गुण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिपक्व हो गये हों, उसी को सन्यास वेश ग्रहण करने जैसे महान् उत्तरदायित्व को वहन करने का साहस करना चाहिए ।

संन्यास–घोर तपस्वी जीवन की स्थिति है । उसमें सुविधाओं का लेश भी नहीं है । पग-पग पर घोर प्रतिबन्ध और कठोर नियम साधन हैं । उस मर्यादा का निर्वाह करने को शरीर और मन बड़ी कठिनाई से ही तत्पर होता है । इसलिए उन सब साधनाओं का अभ्यास पहले ग्रहस्थ और वानप्रस्थ की अवधि में ही परिपक्व करना चाहिए और जब यह विश्वास हो जाये कि इस तपश्चर्या का पूरी तरह निर्वाह किया जा सकेगा । मर्यादाओं के पालन से दृढ़ रहा जा सकेगा–वेश को कलंकित या उपहासास्पद बनाने का कोई अवसर नहीं आने दिया जायेगा, तभी किसी को उस पवित्र अग्निवेश को धारण करने के लिए कदम बढ़ाना चाहिये अन्यथा हाथ-पाँव से रोटी कमाते हुए–घर ग्रहस्थ में रहकर श्रेष्ठ सदाचारी और परमार्थी जीवन जीना ही अधिक श्रेयस्कर है ।

संन्यास की कठोर मर्यादाओं में से कुछ का परिचय इस प्रकार है–

तथा चेत्ताड्यमानस्तु तदा भवति भैक्षभुक् ।।
अहमेवाक्षर ब्रह्म वासुदेवाख्यमद्वयम् ।
इति भावों ध्रुवो यस्य तदा भवित भैक्षभुक् ।।

(नारद परिव्राजकोपनिषद्)

जिसकी चेतना ब्रह्म भाव में परिपक्व हो गई है । सबमें एक ही आत्मा मानकर तदनुरूप आचरण करता केवल उसी को भिक्षा का अन्न खाने का अधिकार है ।

यस्मिञ्छान्तिः शमः शौचं सत्यं संतोष आर्जवम् ।
अर्किचनमदम्भश्च स कैवल्याश्रमे भवेत् ।।

(नारद परिव्राजकोपनिषद्)

जिसमें शान्ति, शम, शौच, सत्य, सन्तोष, दयालुता, नम्रता निरहंकारिता, दंभहीनता भरी हो, वही संन्यास का अधिकारी है ।

कौपीनयुगलं कन्या दण्ड एकः परिग्रहः ।
यतेः परमहंसस्य नाधिकं तु विधीयते ।।
यदि वा कुरुते रागादाधिकस्य परिग्रहम् ।
रौरवं नरकं गत्वा तिर्यग्योनिषु जायते ।

(नारद परिव्राजकोपनिषद्)

दो लँगोटियाँ, एक गुदड़ी, एक दण्ड यही वस्तुएँ संन्यासी को संग्रह करनी चाहिए इससे अधिक नहीं । यदि लोभवश अधिक वस्तुयें संग्रह करेगा तो वह गौरव नरक में पड़ेगा और तिर्यक् योनियों में भ्रमण करेगा ।

कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम् ।
पादुके चापि गृह्णीयात् कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ।
एतानि तस्य लिंगानि यतेः प्रोक्तानि सर्वदा ।।
सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु ।
सभ्यक् याचेच्च कवलं दक्षिणेन करेण वै ।।
पात्रं बामकरे स्थाप्य दक्षिणेन तु शेषयेत ।
यावतान्नेन तृप्तिः स्यात्तवद्भैक्षं समाचरेत् ।।

(हरीतस्मृति)

संन्यासी के पास कोपीन, आच्छादन वस्त्र और शीत निवारण के लिए गुदड़ी भर रहनी चाहिए । दो खड़ाऊँ भी । इसके अतिरिक्त और कोई वस्तु संग्रह न करे ।

संन्यासी को सायंकाल के समय ब्राह्मणों के घर पर जाकर इतनी भिक्षा लेनी चाहिए जितनी दाहिने हाथ से ग्रास के रूप में प्राप्त की जा सके ।

जितने ग्रास में तृप्ति हो जाये उतनी ही भिक्षा ग्रहण करनी चाहिए ।

एकोभिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वौ चेव मिथुनं स्मृतम् ।
त्रयो ग्रामस्तथा ख्यात ऊर्द्धवन्तु नगरायते ।।
नगरं हि न कर्त्तव्यं ग्रामोवा मिथुनं तथा ।
एतत्त्रयं प्रकुर्व्वागः स्वधर्माच्चयवते यति ।।

(दक्षस्मृति)

संन्यासी अकेला ही रहता है । दो साथ रहने लगे तो 'मिथुन' बन गया है । तीन हों तो ग्राम बना और इससे अधिक रहें तो समझना चाहिये कि नगर ही बस गया ।

संन्यासी को मिथुन, ग्राम, नगर नहीं बनना चाहिए, अर्थात् कइयों को इकट्ठे होकर नहीं रहना चाहिये जो यह व्यवस्था तोड़ता है वह धर्म से च्युत हो जाता है ।

आज्यं रुधिरमिव त्यजेदेकत्रान्नं पललमिव
गन्धलेपनमशुद्धलेपनसिव क्षारमन्त्यजमिव
वस्त्रमुच्छिष्टपात्रमिवाभ्यंग
स्त्रीसंगमिव मित्राह्लादकं मूत्रमिव स्पृहां गोमांसमिव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्ञातचरदेशं चण्डालवाटिकामिव स्त्रियमहिमिव सुवर्ण कालकूटमिव सभास्थलं श्मशानस्थलमिव राजधानीं कुम्भीपाकमिव शवपिण्डवदेकत्रान्नम् । न देवताचनम् । प्रपञ्चवृत्तिं परित्यज्य जीवन्मुक्तो भवेत् ।

(संन्यासोपनिषद्)

संन्यासी–घी को कुरुचि के समान, संग्रह किये अन्न को माँस के समान, गन्ध लेपन को गन्दगी पोतने के समान, नमक को अस्पर्श के समान, वस्त्रों को अशुद्ध बर्तन के समान, तेल मालिश को स्त्री प्रसंग के समान, यार-दोस्तों में हँसी-मजाक सूत्र के समान, अहंकार गोमाँस के समान, परिचित घर में भिक्षा चाण्डाल के समान, स्त्री को सर्पिणी के समान, पैसे को विष के समान, जन समूह को श्मशान के समान, राजधानी नरक के समान, एक ही घर का भोजन मृतक पिण्ड के समान मानकर त्याग दें ।

आसनं पात्रलोपश्च संचयः शिष्यसंचयः ।
दिवास्वापो वृथालापो यतीनां पातकानि षट् ।।
कालान्तरोपभोगार्थं संचयः परिकीर्तितः ।
शुश्र षालाभपूजार्थं यशोऽर्थं वा परिग्रहः ।।
एकान्नं मदमात्सर्यं गन्धपुष्पविभूषणाम् ।
ताम्बुलाभ्यञ्जने क्रीड़ा भोगकाङ्क्षा-रसायनम् ।।
कत्थनं कुत्सतं स्वस्ति ज्योतिश्च क्रयविक्रयम् ।
क्रिया कर्मविवादश्च गुरुशास्त्रविलंघखन् ।
संधिश्व विग्रहो यात मञ्चकं शुक्लवस्त्रकम् ।
शक्रोत्सर्गो दिवास्वापो भिक्षाधारस्तु तैजसम् ।
विषं चैवायुधं बीच हिंसा तैक्ष्ण्य च मैथुनम् ।
त्यक्तं संन्यासयोगेन गृहधर्मादिकं व्रतम् ।।

(सन्यासोपनिषद्)

संन्यासी के लिए आसन पात्र, संग्रह, शिष्य बनाना दिन में सोना, व्यर्थ बातें करना यह छै पाप है ।

आगे के लिए सग्रंह करना संचय है । सुश्रूषा, पूजा, यश की चेष्टा करना परिग्रह है । आत्म-कल्याण के लिए आये उसके अतिरिक्त स्वार्थी लाभी को शिष्य बनाना शिष्य संग्रह है ।

अहकांर, मत्सर, एक घर का अन्न, गन्ध, पुष्प, आकर्षण, पान खाना, तेल लगाना, क्रीड़ा, भोगाकांक्षा, रसायन बनाना, खुशामद, निन्दा, बेकार की पूछताछ, स्त्रिय विकय की चर्चा, वाद-विवाद, अनुशासन का उलंघन, संधि विग्रह, प्रसंग, श्वेत वस्त्र, मैथुन, दिन में सोना, धातु पात्र, पैसा, हिंसा, क्रोध इन सब का संन्यासी को त्याग कर देना चाहिये । १०४, १०५, १०६

एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थं ग्राममाविशेत् ।।
एको भिक्षर्यथोक्तः स्याद् द्वावेवः मिथुन स्मृतम् ।
त्रयो ग्रामः समाख्यात ऊर्ध्व तु नगरायते ।।
नगरं न हि कर्त्तव्यं ग्रामं वा मिथुनं तथा ।
एतत्रयं प्रकुर्वाणः स्वधर्मच्चयवते यतिः ।
राजवार्त्तादि तेषां स्वादिक्षावार्त्ता परस्परम् ।
स्नेह पैशुन्य मात्सयं सनिरुषोन्नत्पशयः ।
मश्चकं शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकथा लौल्यमेव य ।
दिवास्वापं च यानं च यतोनां पातकानि षट् ।।
दूरयात्रां प्रयत्नेन वजंयेदात्मचिन्तकः ।
सदोपनिषदं विद्यामभ्यसेन्मुक्तिहैतुकीम् ।।
न तीर्थसेवी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः ।
न चाध्ययनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत् ।।

(नारद परिव्राजकोपनिषद्)

अकेला ही रहे । भिक्षा के लिए ही ग्राम में प्रवेश करे । दो मिल गये तो जोड़ी बन गई । तीन जमा हुए तो गाँव ही है और इससे ज्यादा इकटठे रहने लगें तब तो पूरा नगर ही समझना चाहिये । कई व्यक्तियों के साथ रहने से निन्दा, चुगली, लोभ, सम्पर्क आदि की निरर्थक बातें होती हैं । इसलिए शास्त्र की आज्ञा है कि संन्यासी अकेला ही रहे ।

मंच पर न बैठे, श्वेत वस्त्र न पहने, इन्द्रियों का लोलुप न बने, स्त्रियों की चर्चा न करें, दिन में न सोये सवारी पर न चढ़े, यह संन्यासी के लिये पाप हैं ।

दूर यात्रा न करे, स्वाध्याय और विद्याभ्यास में निरत रहे, तीर्थों में भटकता न फिरे, व्याख्यान बाजी न करे ।।

एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् ।
सर्वाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासंश्च चतुरो वसेत् ।।
द्विरात्रं न वसेद्ग्रामे भिक्षुयदि वसेत्तदा ।
रागादयः प्रसज्येरंस्तेनासौ नारकी भवेत् ।
ग्रामान्ते निर्जने देशे नियतात्मानिकेतनः ।
पर्यटेत्कीटवद् भूमौ वर्षास्वेकत्र संवसेत् ।।

(नारद परिव्राजकोपनिषद्)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किसी ग्राम में एक रात्रि से अधिक न रहे । बड़ा नगर हो ता पाँच रात्रि तक ठहर सकता है । वर्षा में चार मास ठहरा जा सकता है । यदि संन्यासी दो रात एक जगह रहेगा तो राग द्वेष पैदा करेगा और नरक में पड़ेगा । ग्राम से दूर एकान्त स्थान में उसे रहना चाहिए और अपने लिये आश्रम मठ आदि नहीं बनाना चाहिये । जिस प्रकार कीड़े भ्रमण करते रहते हैं वैसा ही संन्यासी को भ्रमणशील होना चाहिये ।

न संभाषेत्स्त्रियं कंचित्पूर्वदृष्टां च न स्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि ।।
एतश्चतुष्टयं मोहात्स्त्रीणामाजरतो यतेः ।
चित्तं विक्रियतेऽवश्यं तद्विकारात्प्रणश्यति ।।

(नारद परिव्राजकोपनिषद)

किसी स्त्री से बातचीत ने करे । पूर्व परिचित स्त्री का स्मरण न करे । स्त्रियों के चित्र न देखे । स्त्रियों के सम्बन्ध में चर्चा न सुने । क्योंकि स्त्री सम्बन्धी चर्चा, स्मरण, चिन्तन एवं सम्भाषण से मन में विकार उत्पन्न होते हैं और इससे संन्यास धर्म नष्ट हो जाता है ।

एतैः सर्वैः सुसम्पन्नो यतिर्भवति नेतरः ।
पारिव्रज्यं गृहीत्वा च योधर्मे नावतिष्ठते ।
श्वपदेनाङ्कयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ।।

(दक्ष स्मृति)

संन्यासी को कभी भी स्त्री का ध्यान नहीं करना चाहिए । न स्त्री के साथ कभी बात ही करनी चाहिए । न रति की कामना करनी चाहिए । इस आचरण वाला ही यति है । यदि कोई संन्यासी इन नियमों का पालन न करे । मात्र वेश भर बनाये फिरे तो राजा का कर्त्तव्य है कि उसे कुत्तों से कटवाकर तत्काल अपने देश से निकाल दे ।

माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा च माद्यति ।
तस्माद्दृष्टिविषां नारीं दूरतः परिवर्जयेत् ।।
संभाषण सह स्त्रीभिरालापप्रेषणं तथा ।

(नारद परिव्राजकोपनिषद्)

मदिरा पीने से मद आता है । परनारी के दर्शन से ही उन्मत्तता आती है । इसलिए संन्यासी को नारी के दर्शन नहीं करने चाहिए और न उनसे वार्त्तालाप करना चाहिए ।

इतना त्याग समय, तितीक्षा, अपरिग्रह, तप न होने पर भी जो मुफ्त का भोजन और मुफ्ता का सामान पाने और आलसी, विलासी जीवन-यापन करने के लोभ में संन्यासी वेश बना लेते हैं । शास्त्र में उनकी घोर भर्त्सना की गई है ।

तितिक्षाज्ञानवैराग्यशमादिगुणवर्जितः ।
भिक्षामात्रेण जीवी स्यात्स यतिर्यतिवृत्तिहा ।।
न दण्डधारणेन न मुण्डनेन ।
न वेषेण न दम्भाचारेण मुक्तिः ।।
ज्ञानदण्डो धृतो येन एकदण्डी से उच्यते ।
काष्टदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ।
स याति नरकान्घोरान्महारोरवसञ्ज्ञिकान् ।।
प्रतिष्ठा सूकरौविष्ठासमा गीता महर्षिभिः ।
तस्मादेनां परित्यज्य कीटवत्पर्यटेद्यतिः ।।

(नारद परिव्राजकोपनिषद्)

संन्यासी को तितीक्षा, ज्ञान, वैराग्य, शम, दम आदि श्रेष्ठ गुणों का पालन करना चाहिए।

इन गुणों को त्याग कर जो पेट पालने के लिए भिक्षा वृत्ति करता है वह संन्यास धर्म को नष्ट करता है ।

सिर मुड़ा लेने, दण्ड धारण करने से काम नहीं चलता । ज्ञान दण्ड ही असली दंड है । जिसने लकड़ी का दंड ही धारण कर रखा है, पर मन में इच्छाएँ प्रदीप्त हैं, ज्ञान का अभाव है । ऐसे ढोंगियों को घोर नरक में जाना पड़ता है ।

संन्यासी के लिए प्रतिष्ठा की इच्छा शूकर की विष्ठा के समान त्याज्य है । उसे कीड़े की तरह निरहंकारी होना चाहिए ।

पुंसा जटाधरणमौण्डयवतां वृथैव
मोघाशिनामखिलशौचनिराकृतानाम् ।
तोयप्रदानपितृपिण्डबहिष्कृतानां
सम्भाषणादपि नरा नरकं प्रयान्ति ।।

(विष्णु पुराण)

जो अकारण ही जटा धारण करते और सिर मुँड़ा लेते हैं तथा जो सब प्रकार से अशुद्ध और जलदान-पिण्डदान आदि से बहिष्कृत है, उन व्यक्तियों से बातचीत करने वालों को भी नरक की प्राप्ति होती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नीरुजश्च युवा चैव भिक्षु नविसस्थावहः ।
स दूषयति तत्स्थानं बुधान पीडयतीति च ।।
नीरुजश्च युवा चैव ब्रह्मचर्य्याद्विनश्यति ।
ब्रह्मचर्य्याद्विनष्टस्तु कुलञ्चैव तु नाशयेत् ।।

(दक्ष स्मृति)

जवान संन्यासी अपनी आयु के कारण कई तरह की विकृतियाँ उत्पन्न करता है । जहाँ रहता है उस स्थान को दूषित करता है और लोगों को सताता है ।

जवान संन्यासियों का बहुधा ब्रह्मचर्य नष्ट ही हो जाता है । ऐसे लोग अपनी कुल परम्परा को भ्रष्ट करते हैं ।

व्रतयज्ञतपोदानहोमस्वाध्यायवर्जितम् ।
सत्यशौचपरिभ्रष्टं सन्यास नैव कारयेत् ।

(संन्यासोपनिषद्)

वृत, यज्ञ, तप, दान, होम, स्वाध्याय रहित सत्य और पवित्रता से भ्रष्ट, व्यक्तियों को संन्यास न दिया जाये ।

अन्नदानपरो भिक्षुर्वसत्रदीनां प्रतिग्रही ।
आविकं वनाविक वा तथा पटुपटानति ।।
प्रतिगृह्य यतिश्चैतान्पतत्येव न संशयः ।

(सन्यासोपनिषद्)

चटोरापन, ऊनी, रेशमी वस्त्र ग्रहण करने वाला संन्यासी पतित हो जाता है ।

अनृता ह्यधीयवाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः ।
तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ।।

(पारासर स्मृति)

जहाँ अविद्वान, मिथ्याचारी लोग भिक्षा पर उतारू हो वहाँ के राजा को दण्ड देना चाहिए । क्योंकि यह तो चोरों को आश्रय देने के समान है ।

अथ खलु सोम्येदं पारिव्राज्यं नैष्टिकमात्मधर्म यो विजहाति स वीराहा भवति स ब्रह्महा भवति स भ्रूणहा भवति स महापातकी भवति । य इमां वैष्णवीं निष्ठा? परित्यजति स स्तेनो भवति स गुरुतल्पगो भवति स मित्रघ्नभवति स कृतघ्नो भवति स सर्वान्लोकान् प्रच्युतो भवति । तदेतदृचाभ्युक्तम् ।

(शाट्यायनीयोपनिषद्)

जो संन्यासी अपने नैष्ठिक संन्यास कर्त्तव्य को छोड़कर स्वेच्छाचारी आचरण करता है । वह ब्रह्मघातियों, महापातकियों के समान होता है । धर्म परम्परा छोड़ देना चोरी करने के समान है । ऐसे कर्त्तव्यघाती संन्यासी अपना लोक-परलोक बिगाड़ते हैं और अद्योगति को प्राप्त होते हैं ।

जिन लोगों ने संन्यास की कठिन मर्यादाओं को न समझते हुए ऐसे ही दिल्लगी मजाक समझ कर अथवा मुफ्त में सुविधाएँ पाने के लिए संन्यास लिया हो, उनके लिए उचित मार्ग यही है कि अपनी भूल समझें, प्रायश्चित्य करें और पुनः गृहस्थ में वापिस लौट जायँ, शास्त्र यही कहते हैं –

ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्याग्निजलादिषु ।
अनाशकनिवृत्ताश्च गृहस्थत्वं चिकीर्षतः ।।
चरेयुस्त्रीणि कृच्छाणि त्रीणि चान्द्रायणानि वा ।

(आपस्तम्ब स्मृति)

जो संन्यासी फिर ग्रहस्थाश्रम में वापिस लौट आये उन्हें तीन कृच्छ व्रत और तीन चान्द्रायण व्रत करने चाहिए ।

अनाशकान्निर्वन्ते चिकीर्षन्ति गृहस्थितिम् ।
धारयेन्त्रीणि कृच्छाणि चान्द्रायणमथापि वा ।।

(अत्रि स्मृति)

जो व्यक्ति संन्यास ग्रहण तो करले पर उसे साधने में असमर्थ हैं । संन्यास त्याग कर गृहस्थ में पुनः प्रवेश करना चाहे तो प्रायश्चित-स्वरूप तीन कृच्छ व्रत एक चान्द्रायण व्रत करे ।

वर्णाश्रम धर्म का आधार

हिन्दू धर्म वर्णाश्रम धर्म है । उसमें कर्त्तव्यों का निर्धारण और उनका दृढ़तापूर्वक निर्वाह करते रहने के अनुशासन पर बहुत जोर दिया गया है ।

वर्ण चार हैं । आश्रम चार हैं । पर वे गुण, कर्म, स्वभाव–रुचि एवं कार्यविधि के अनुसार सदा बदलते रहते हैं । जैसे बचपन, यौवन, प्रौढ़ता और वृद्धावस्था समय के साथ शरीर क्षेत्र में बदलते रहते हैं । उसी प्रकार वर्ण और आश्रमों में भी स्थिति के अनुसार परिवर्तन होता रहता है ।

शास्त्रकार ने जन्मतः सबको शूद्र माना है । शूद्र वह जिसकी इच्छा, आवश्यकता और चेष्टा शरीर पर आधारित रहे । छोटा बच्चा ज्ञान-विज्ञान तो कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समझता नहीं । नीति-मर्यादा का भी उसे कुछ पता नहीं होता । मात्र शारीरिक कष्ट से ही दुःखी होता या मोद मनाता है । उसका दायरा इतना ही सीमित है । इसी घेरे में सोचता है । आत्मा-परमात्मा, देश-धर्म को समझ पाने की स्थिति में उसकी चेतना होती नहीं । यह बात बड़े होने पर भी कितनों में ही बनी रहती है । तब उन्हें बचपन के अतिरिक्त बड़े होने पर भी शूद्र संज्ञा में गिनते रहते हैं और शारीरिक श्रम से ही वह अपना परिवार का तथा समाज का हित साधन करता रहता है ।

बड़े होने पर पारिवारिक वातावरण, शिक्षा अध्यापन तथा आकांक्षा अनुभव के सहारे जिनका रुझान और प्रयास बदलने लगता है, तब वे अन्य वर्णों में गिने जाते हैं । पाठशाला में प्रवेश करने वाले हर छात्र को वर्णमाला तथा आरम्भिक विषय समान रूप से पढ़ने पड़ते हैं । बड़े होने पर वे इच्छित विषयों में से किसी को चुन लेते हैं, तब उनकी करनी बदल जाती है । पाठ्य पुस्तकें भी तद्नुसार भिन्न प्रकार की आ जाती हैं । यही हेर-फेर वर्णों के सम्बन्ध में समझदारी और स्वतंत्र रुचि एवं अभिभावकों की इच्छानुसार होता है ।

व्यवसाय प्रधान रुचि वाले उत्पादक वर्ग को वैश्य कहते हैं । वह न केवल अपना वरन् सारे समाज का अभाव दूर करने की योजनाएँ बनाता और उन्हीं की पूर्ति में उत्साहपूर्वक जुटा रहता है ।

इसके अतिरिक्त एक वर्ग ऐसा चाहिए जो समाज की व्यवस्था बनाये । बनी हुई व्यवस्था को बिगाड़ने वाले, उच्छृंखलता बरतने वाले लोगों से जूझे । राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति जागरूक रहे । भीतर के और बारह के अनाचारियों का मार्ग अवरुद्ध करे । इसके लिए यदि जूझने का खतरा उठाना पड़ता है तो उसे प्रसन्नतापूर्वक उठाये । यह कार्य वैश्य की तुलना में अधिक जोखिम का है । इसके लिए लड़ाकू साहस, शरीर बल, शौर्य बल, रण कौशल आदि अनेकों विशेषताओं की जरूरत पड़ती है । क्षत्रिय इनसे सम्पन्न होने में प्रयत्नशील रहता है और जब भी आवश्यकता पड़ती है तभी बिना हिचकिचाये उनका प्रयोग करता है । इन दिनों पुलिस, सेना जैसे विभागों को क्षत्रिय कर्त्तव्यों की पूर्ति करनी पड़ती है । इन्हीं संगठनों में सम्मिलित होकर यह कर्त्तव्य ठीक तरह निभाते हैं । यों छोटे-मोटे दैनिक प्रसंगों में भी अनीति बरतने वालों को डरा–धमाका देना कठिन नहीं है । कड़े दण्ड तो न्यायालय के माध्यम से ही दिये जा सकते हैं ।

चौथा वर्ण हैं–ब्राह्मण । ब्राह्मण अर्थात् अध्यापक । उसे शिक्षा साक्षरता का अभाव जन-साधारण को न रहने देने की जिम्मेदारी तो उठानी ही पड़ती है । साथ ही धर्मधारणा के माध्यम से कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वों को समझने एवं निभाने के लिए सर्वसाधारण को तैयार भी उन्हें ही करना पड़ता है ।

साक्षरता का प्रयोजन तो सामान्य अध्यापकों द्वारा भी पूरा हो सकता है, पर नीतिसदाचार में आस्था उत्पन्न करने वाले शिक्षक का स्तर ऊँचा होना चाहिये । ताकि उसके व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो सके । जो स्वयं धर्म मर्यादाओं का कठोरतापूर्वक पालन करता है । उसी की प्रमाणिकता इस योग्य समझी जाती है कि सर्वसाधारण के मन में उनके निर्देशों का परिपालन करने के लिए अन्तःप्रेरणा उठे । इसलिए ब्राह्मण को न केवल विद्या का धनी बनना पड़ता है, वरन् आदर्शवादी जीवनचर्या भी ऐसी अपनानी पड़ती है जिसका दूसरे अनुकरण कर सके ।

आदर्शवादिता के उपदेश तो कोई भी दे सकता है पर उसे पॉथी के बेंगन समझकर इस कान सुनकर उस कान निकाल दिया जाता है । चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में जो स्वयं उच्चस्तरीय आदर्शवादिता का समावेश किये रहते हैं, वे ही सच्चे अर्थों में जनता का मार्गदर्शन कर सकते हैं । ब्राह्मण को इस संदर्भ में भी सुदृढ़ होना पड़ता है । इन्हीं प्रवृत्तियों का जिसमें जैसा परिवर्तन होता है, वह उसी वर्ण का सदस्य माना जाता है । यही वर्णाश्रम परम्परा का सार संक्षेप ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्णाश्रम धर्म की महान पृष्ठ भूमि

यों वर्ण-धर्म का भी अपना महत्त्व है । उससे श्रम एवं उत्तरदायित्वों का विभाजन होता है और एक वर्ग अपने लिए निर्धारित कार्य पद्धति निश्चित करके उस दिशा में वंश-परम्परा युक्त विशेषताएँ उत्पन्न करता है । पूर्वज जिस कार्य को करते रहे हैं उसे भावी संतान भी अधिक अच्छी तरह कर सकती है । अध्यापक के बच्चे अपेक्षाकृत अच्छे अध्यापक बन सकते है और व्यापारी के बालकों में व्यावसायिक कुशलता का होना स्वभाविक है । जो चर्चा, जो क्रिया जो परिस्थिति सामने रहती है—परम्परागत चली आती है उसमें पीढ़ियाँ स्वयमेव अधिक सुविधा अनुभव करती है और कुशलता बढ़ाती चलती है । व्यवसाय एवं श्रम—विभाजन का भी संतुलन बना रहता है । बेकारी नहीं बढ़ती । ऐसी कितनी ही विशेषताएँ थी जिन्हें ध्यान में रखते हुए वर्ण-व्यवस्था को भारतीय संस्कृति में एक महत्त्वपूर्ण विशेषता के रूप में निर्मित विकसित किया गया था ।

दुर्भाग्य को क्या कहा जाय—जिसने वर्ण-व्यवस्था जैसी महत्त्वपूर्ण समाज-प्रक्रिया को, एक समाज को, खण्ड-विखण्डों में काट कर फेंक दिया । अदूरदर्शिता पूर्ण—अनीति मूलक और अत्यन्त अहित कर ऊँच—नीच मान्यता को जन्म दिया और एक समाज के ऐसे असंख्य टुकड़े बँट कर बिखर गये, जो परस्पर रोटी—बेटी तक का व्यवहार करने के लिए तैयार नहीं । वर्ण-व्यवस्था का मूल स्वरूप अब लगभग नष्ट हो गया है उसके स्थान पर बिरादरीवाद की विकृति ने जड़ जमाली है । जाति में से उपजाति की विष बेलें फूटती और फैलती चली गई हैं । यह जंजाल राष्ट्रीय जीवन में अन्तःकलह की भूमिका प्रस्तुत कर रहा है । धर्म, व्यवसाय, राजनीति आदि सब में बिरादरीवाद का बोलबाला है । प्रान्तवाद, भाषावाद की तरह ही अब जाति-पाँति का सम्प्रदायवाद भी भीतर ही भीतर आग की तरह सुलग रहा है और राष्ट्रीय एकता को भस्मसात करने की विभीषिका उत्पन्न करता जा रहा है ।

ऐसी दशा में वर्ण-व्यवस्था पर नये सिरे से विचार करना पड़ेगा और उसमें मौलिक एवं क्रांन्तिकारी परिवर्तन करने होंगे । जन्म-जाति की वर्तमान मान्यताओं का उन्मूलन करना पड़ेगा । मनुष्य—मनुष्य के बीच बिरादरी के नाम पर जो ऊँच नीच की भेड़चाल चल पड़ी है उसे हटाना होगा । व्यवसाय के आधार पर वंशपरम्परागत जाति चल सकती है । और भले बुरे कर्मों के आधार पर ऊँच—नीच का निर्धारण किया जा सकता है । इन क्रांन्तिकारी परिवर्तनों से निश्चित ही वर्ण-व्यवस्था का समयानुकूल पुनर्निर्धारण होगा । आज जो स्थिति है उसके रहते वर्ण-धर्म का समर्थन करना—उसे प्रोत्साहित करना आत्मघाती ही हो सकता है ।

जातियाँ अपनी पञ्चायतें करके विभिन्न वर्गों और क्षेत्रों में फैली हुई कुरीतियों का उन्मूलन कर सकती हैं और उपजातियों की बेड़ी काट कर जाति में—जाति का बंधन काट कर महाजाति में परिणत होने के लिए कदम बढ़ा सकती हैं । मात्र इस एक ही प्रयोजन के लिए जाति-संगठनों अथवा सम्मेलनों का समर्थन किया जा सकता है अन्यथा उस विभेद की उपयोगिता अब नष्ट ही हो गई । जब तक नये सिरे से पुनर्निर्धारण न हो जाय, वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में हमें उदासीन ही रहना होगा । प्राचीन परम्परा के अनुसार वर्ण—धर्म की उपयोगिता कितनी ही बड़ी क्यों न हो—भविष्य में उसका कितना ही अच्छा उपयोग क्यों न किया जाय पर आज की स्थिति में इस क्षेत्र में विष-बेल जैसी विकृतियों की झाड़ियाँ उग पड़ी हैं उन्हीं से निपटना पड़ेगा । समर्थन एवं अभिवर्धन की बात तो इसके बाद ही सोची जा सकेगी ।

आश्रम-व्यवस्था में वैसी कठिनाई नहीं हैं । वह आयुष्य विभाजन की शाश्वत् सनातन और सार्वभौम प्रक्रिया है । उस पर आँच आने का प्रश्न नहीं । सामयिक विकृतियों में थोड़ा-सा ही हेर-फेर कर देने से वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया मानव—जाति की महती सेवा करने में पुनः समर्थ हो सकती है । बाल—विवाह की प्रथा हटा दी जाये, अध्ययन और स्वास्थ्य-संवर्धन किशोरावस्था के अनिवार्य कर्त्तव्य ठहरा दिये जायें—शिक्षा—पद्धति में मानवोचित गुणों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के समावेश का प्रबन्ध कर दिया जाय, तो ब्रह्मचर्य आश्रम पुनः पूर्वकाल जैसा ही प्रशस्त हो सकता है । परिवार संस्था में कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वों का वर्गीकरण करके सुनियोजित आचार संहिता का निर्धारण करेगा जिससे परिवार के किसी सदस्य के न तो उचित अधिकारों का अपहरण हो और न निठल्ले बैठकर खाने की प्रवृत्ति पनपे । उपार्जन करने और उपार्जन न करने वालों का तालमेल न्यायोचित आधार पर बिठाया जाय । बच्चों की संख्या न बढ़ने देने के सम्बन्ध में कठोर दृष्टि रहे । बड़े लड़के अपनी वधू को लेकर अलग हो जायें और छोटे भाई बहिनों का ख्याल न रखें, इस स्वार्थी प्रवृत्ति पर नियन्त्रण किया जाये । घरों में घुटन के आतंक का वातावरण न रह कर एक सहयोग-समिति जैसी हँसती खेलती परिस्थितियाँ रहें तो अपने परिवार स्वर्ग बन सकते हैं । अर्थ-व्यवथा में सभी का परामर्श और सहयोग रहे । शिक्षा और संस्कार का घरों में आवश्यक वातावरण रहे बच्चों को कहानियों के माध्यम से जीवन की दिशा देने वाला मार्ग दर्शन मिलता रहे, तो भारत की संयुक्त परिवार वाली पद्धति समस्त संसार के लिए अनुकरणीय बन सकती है । परिवार-संस्था संसार में टूट रही है, भारत में उसका स्वरूप अभी भी मजबूत है; यदि उसे व्यवस्थित और परिष्कृत बना लिया जाये तो समस्त विश्व को एक ऐसी दिशा मिल सकती है जिससे श्रेष्ठ समाज के निर्माण की आधी समस्या हल हो जाये । व्यक्ति और समाज के बीच की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कड़ी परिवार-संस्था है । उसे सुनियोजित करके ही समाज का पुनर्निमार्ण सम्भव हो सकता है । इस दृष्टि से गृहस्थाश्रम का पुनर्निमाण यदि एक व्यवस्थित आन्दोलन के रूप में चलाया जा सके तो प्राचीनकाल की आश्रम–व्यवस्था में चार चाँद लग सकते हैं । परिष्कृत गृहस्थ को घर में स्वर्ग के अवतरण की भूमिका के रूप में देखा जा सकता है ।

संन्यास का जो स्वरूप इन दिनों है शायद उसमें आमूलचूल ही परिवर्तन करना पड़ेगा । निठल्ले व्यक्ति लाल, पीले कपड़े पहन कर अपनी हेय् गतिविधियों से समाज की जो कुसेवा करते हैं उससे केवल हानि ही हानि हाथ लगती है । भिक्षा-व्यवसाय अपने देश में जिस ढंग से पनपा है वह किसी समय देश के लिए चिन्ता, लज्जा और कलंक की बात होगी । साधु सन्तों ने प्राचीनकाल की तरह लोकोपयोगी जीवन जिया होता और उसकी गतिविधियाँ सृजनात्मक रही होती तो अब ५६ लाख से बढ़ कर ८० लाख तक जा पहुँचे इस वर्ग का भार भी उठाया जा सकता था, पर जिस प्रयोजन को लेकर वे चलते हैं उसमें ऐसी कोई गुंजायश नहीं है, इसीलिए ऐसी आशा भी नहीं रही कि वे समाज से जितना लेते हैं कम से कम उतना अनुदान तो लौटा ही सकेंगे । इस निराशाजनक स्थिति में संन्यास का सार्वजनिक समर्थन नहीं किया जा सकता । कुछ सुयोग्य और आदर्शवादी सन्त प्राचीनकाल की आश्रम-व्यवस्था का आदर्श जीवित रखने के लिए दृष्टिगोचर होते रहें तो इतने से ही हमें सन्तोष करना होगा ।

आश्रम-धर्म के अन्तर्गत सबसे महान् और सबसे महत्वपूर्ण आश्रम इन दिनों वानप्रस्थ ही हो सकता है । प्राचीनकाल में भी उसी की गरिमा सर्वोत्कृष्ट थी । व्यक्ति अपना आधा जीवन भौतिक प्रयोजनों के लिए रख कर चढ़ते खून के उभारों को सही दिशा में खर्च कर लेता था । परिवार संस्था की सेवा करता था । राष्ट्र की भौतिक समृद्धि के अभिवर्धन में योगदान देता था । पुरुषार्थ के बढ़े-चढ़े अवसरों के सहारे अनेक उपयोगी सफलताओं का सृजन करके प्रगति शील सम्भावनाएँ प्रस्तुत करता था । धन, श्रम एवं समर्थन से सत्प्रवृत्तियों का पोषण करता था । ब्रह्मचर्य भौतिक जीवन की तैयारी और दूसरे में कर्म–एक में संचय, दूसरे में प्रयोग का जोड़ा बनता था और इन दोनों आश्रमों की संयुक्त शृंखला समाज के मौलिक स्वरूप को आदर्श, उत्कृष्ट एवं सुसम्पन्न, सुदृढ़ बनाने के लिए बहुत कुछ करती थी । राष्ट्र में सर्वतोमुखी समर्थता फूटती थी । प्रगति और समृद्धि के बहुमुखी प्रयोजन ब्रह्मचारी और ग्रहस्थ का सुसम्बद्ध युग्म ही पूर्ण करता था । इसलिए उसकी उपयोगिता सर्वमान्य समझी जाती रही है और समझी जाती रहेगी ।

जीवन का उत्तरार्ध भारतीय संस्कृति के निर्माणकर्त्ता मनीषियों की दृष्टि से परमार्थ–प्रयोजनों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए ही नियत निर्धारित किया गया है । इसमें व्यक्ति और समाज दोनों का आत्यन्तिक हित साधन सन्निहित है । पूर्वार्ध व्यतीत कर लेने के उपरान्त व्यक्ति की इन्द्रिय–जन्य वासनाओं और मनोविकार से सम्बद्ध तृष्णाओं की निरर्थकता का तब तक भली भाँति अनुभव हो चुकता है और उसकी लिप्सा-लालसाएँ आयु ढलने के साथ-साथ तृप्त नहीं तो शिथिल अवश्य हो लेती हैं । लोभ और मोह के आवेशों का खोखलापन स्पष्ट हो लेता है । ऐसी दशा में आन्तरिक उद्वेगों की धमाचौकड़ी घट जाने से अन्तः स्थिति में विवेक और संतुलन की इतनी मात्रा उत्पन्न हो जाती है कि आत्म-कल्याण एवं परमार्थ–प्रयोजन के लक्ष्य की ओर शान्ति स्थिरता एवं गम्भीरता पूर्वक कदम बढ़ा सकें ।

ऐसी आयु में आत्मा को आन्नद विभोर कर देने वाली ब्रह्मविद्या का तत्त्व–चिन्तन मनन, स्वाध्याय और निदिध्यासन सम्भव हो जाता है । आत्मबोध और तत्त्वबोध की ज्ञान-साधना से ही ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रकट होती है और जीवात्मा का 'भूमा' स्थिति प्रज्ञता में प्रवष्टि होना सम्भव होता है । आत्मा की यह भूख बुझाने के लिए नये सिरे से विद्याध्ययन करना पड़ता है –यह ब्रह्मचारी की लौकिक शिक्षा से सर्वथा भिन्न होता है, वानप्रस्थ लेने का प्रथम सोपान है–ब्रह्मविद्या का पारायण करना, उसमें पारगंत होना–ज्ञानामृत से परिपूर्ण व्यक्ति ही ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त करते हैं और लोक निर्माण जैसे महान प्रयोजन् के लिए अधिकारी बनते हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं ।

उत्तरार्ध में जिस वानप्रस्थ आश्रम की उपयोगिता मनीषियों ने जोर देकर प्रतिपादित की है, उसका दूसर चरण है–तपसाधना, योगाभ्यास । आत्मा पर चढ़े हुए कषाय कल्मष और मल, आवरण एवं विक्षेपों का निवारण निराकरण इसी अग्नि संस्कार द्वारा सम्भव होता है । दबी हुई आन्तरिक प्रखरता इसी मार्ग पर चलने से निखरती है । आत्मबल के सम्पादन का प्रधान मार्ग तप ही तो है तपस्वी ही प्रकारान्तर से तेजस्वी होता है–अतः क्षेत्र में–पञ्चकोशों में–षटचक्रों में तीन शरीरों में जो एक से एक अद्‌भुत विभूतियाँ दबी पड़ी हैं, उन्हें सुषुप्त मूर्छना से उवार कर प्रखर एवं प्रचण्ड बनाने का मार्ग तप ही है । योग के बिना आत्मा को परमात्मा से जोड़ा नहीं जा सकता और जब कि ईश्वरीय समर्थन-सहयोग प्राप्त न हो तब तक महामानवों की–ऋषि भूमिका में प्रवेश करना कठिन पड़ता है । आत्मा को–देवात्मा बनाते हुए उसे परमात्मा स्तर तक पहुँच देना, योग-साधना द्वारा ही सम्भव है । इसलिए तप-साधना का परम पुरुषार्थ भी करना पड़ता है । श्रेयार्थी के लिए तपस्वी जीवन की रीति–नीति अपनानी ही पड़ती है । ब्रह्म-तेजस उसी से निखरता है । इसी बलिष्ठता के–समर्थता के आधार पर व्यक्ति अपनी जीवन-नौका को खेता हुआ लक्ष्य तक ले पहुँचता है और साथ ही उसमें बिठा कर अनेकों को पार कर सकता है ।

ब्रह्मविद्या की उपलब्धि और योगाभ्यास परक तपश्चर्या के अतिरिक्त परमार्थ जीवन का तीसरा चरण है–सेवा-साधना । भौतिक सेवा-साधना तो धनी मानी लोग कर सकते हैं, पर जन-मानस में उत्कृष्टता को बोना उगाना और बढ़ाना केवल ब्रह्म परायण लोगों के लिए ही सम्भव होता है । उसे वकवादी वक्ता पूरा नहीं कर सकते । धर्मशाला, मन्दिर, प्याऊ, सदावर्त, विद्यालय, चिकित्सालय, उद्योगशाला, व्यायामशाला जैसे अर्थ-सम्भव परमार्थ प्रयोजन धनीमानी लोग ही करते हैं । उनके धन का सदुपयोग भी ऐसे ही कार्यों में है । किन्तु उच्चस्तरीय भावनाओं और प्रवृत्तियों का जन-मानस में आरोपण, अभिवर्धन केवल उच्च कोटि के परमार्थ-परायण व्यक्ति ही कर सकते हैं । धन-लोलुप प्रचारक तो लोकरंजन भर कर सकते हैं । उनकी उछल-कूद सुनने वालों का कौतूहल ही तृप्त कर सकती है । किसी को बदल सकना उनके लिए अशक्य है । जिसने अपने को ही नहीं बदला वह दूसरों को कैसे बदलेगा । वक्ताओं और प्रचारकों की सेना हर संस्था द्वारा भरती की जाती है, पर उसमें प्रोपगेण्डा एवं धन उपार्जन के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता । ऊँचा उठाने और परिवर्तन करने के लिए ऐसे व्यक्तित्व ही समर्थ हो सकते हैं जो स्वयं ऊँचे उठे हैं जिन्होंने अपना परिवर्तन किया है । समाज की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस महती सेवा-साधना को ज्ञानवृद्ध—तपस्वी एवं सेवा परायण वानप्रस्थ ही पूरा कर सकते हैं । उन्हें ही करनी भी होगी ।

जीवन के पूर्वार्ध की आनन्द-उपलब्धियाँ अपने ढंग की हैं—उन्हें जाना-समझा गया है, इसलिए उनका आकर्षण सर्व विदित है पर उत्तरार्ध की सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप यदि जिया जा सके तो उसका आनन्द—आकर्षण पूर्वार्ध की तुलना में अत्यन्त उच्चकोटि का और उत्कृष्ट स्तर का होगा । कठिनाई एक ही है कि उसे क्षेत्र में प्रवेश करके अपनी दिव्य अनुभूतियों का रसास्वादन सर्वसाधारण पर प्रकट कर सकें ऐसे व्यक्ति दृष्टिगोचर ही नहीं होते ।

बचपन के खेल-कूद, आमोद-प्रमोद, निश्चित मनःस्थिति—बड़ों का स्नेह—संरक्षण, उत्साह भरी प्रकृति, मनोवृत्ति, अभिनव काय-कलेवर का सौन्दर्य-उल्लास देखते ही बनता है । इसलिए बचपन की याद बुढ़ापे में बेतरह सताती रहती है । पढ़ने और खेलने की अल्हड़ दिनों का स्मरण बार-बार आता रहता है । यह आनन्द अपने ढंग का अनोखा ही था ।

युवावस्था की मादकता भी अपने ढंग की अनौखी ही होती है । अर्थ उपार्जन का गौरव, दाम्पत्य जीवन के गुह्य आकर्षण की कसक, पिता बनने का गर्व परिपुष्ट शरीर की साहसिकता, बढ़-चढ़ कर किये गये पुरुषार्थों का श्रेय सम्मान जैसी अगणित उपलब्धियाँ यौवन काल की हैं । दिवानी जवानी कुछ ऐसी ही होती है जिस में पैर धरती पर नहीं जमता—वे अधर में चलते हैं और आसमान में बिना पंखों के उड़ते हैं । कल्पनाओं, कामनाओं और आकांक्षाओं की सघन घटायें मस्तिष्क के अन्तरिक्ष में ऐसी उमड़ती-घुमड़ती है कि हर घड़ी सावन बरसता सरसता रहता है । जिससे झगड़ना पड़ा उसके प्रति रोष—प्रतिशोध भी ऐसा गर्जन तर्जन करता है मानो आज नहीं तो कल प्रलय ही प्रस्तुत की जानी है । ऐसे सुहावने होते हैं दिन—जवानी के । बुढ़ापा जब उसकी याद करता है तो आठ-आठ आँसू रोता है । जरा जीर्ण अवस्था सामने आने पर मनुष्य कितनी अन्तर्व्यथा अनुभव करता है इस तथ्य को देखकर यह सहज ही जाना समझा जा सकता है कि जवानी के दिनों का कितना अधिक मूल्य महत्त्व है । भौतिक उपलब्धियाँ और सरसताएँ इन्हीं दिनों तो ऐसी ललक उत्पन्न करती हैं जिससे मनुष्य मादकता में खोये भोया रहता है ।

भौतिक जीवन की सरसता जीवन के पूर्वार्ध में अपनी पूर्णाहुति सम्पन्न कर लेती है । उत्तरार्ध—सांसारिक दृष्टि से रुग्णता, पीड़ा, असमर्थता, अपमान और उपेक्षा की अवधि है । ज्ञानेन्द्रियाँ साथ छोड़ती जाती हैं और कमेन्द्रियों की शिथिलता उपहासास्पद जीवन काटना कठिन हो जाता है । एक—एक दिन भारी पड़ता है । गुजरे हुए दिन याद आते हैं तो काँटे जैसे, डंक जैसे चुभते हैं । खीच बढ़ती है और स्वभाव में चिड़चिड़ापन आता है । यहाँ जायँ, वहाँ बैठे ऐसे ही ताना—बाना बुनते रहते हैं पर चैन कहीं नहीं—जहाँ भी जायँ उपेक्षा अवज्ञा ही हाथ लगती है ।

जीवन का उत्तरार्ध भौतिक दृष्टि से अपने लिए कष्ट कारक और परिवार के लिए क्रमशः अधिकाधिक भार भूत होता चला जाता है । वे दिन भी निकट आते हैं जब स्वयं भगवान से मौत माँगनी पड़ती है और घर वाले मन ही मन वैसी प्रार्थना कामना करते हैं । इस हेय स्थिति के आने से पूर्व यदि समय रहते सजग हो सका जाये और अध्यात्म भूमिका में प्रवेश करके अपनी गतिविधियों को वानप्रस्थ स्तर का बना लिया जाये तो प्रतीत होगा कि नया जन्म हो गया । पूर्वार्ध जितना आनन्दमय और शानदार था उसमें हजार गुनी अधिक प्रसन्नता और सरसता प्रदान करने वाली संजीवन मूँरि हाथ लग गई । वानप्रस्थ की विधि व्यवस्था दूरदर्शी ऋषि मनीषियों ने इसी दृष्टि से बनाई और उसे सांस्कृतिक जीवन प्रक्रिया में अत्यन्त उच्च कोटि का स्थान दिया है ।

वर्णाश्रम, धर्म और उसकी दुर्गति

हिन्दू धर्म का पुरातन नाम वर्णाश्रम धर्म है । चार वर्ण और चार आश्रमों का क्रम जब तक अपने सही रूप में चलता रहा, तब तक यह देश समाज निरन्तर उत्थान के मार्ग पर अग्रसर होता रहा, पर आज तो सब कुछ उलटा ही दीख रहा है । फलतः

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम संसार की जनसंख्या का पांचवाँ भाग होते हुए भी पिछले लोगों में गिने जाते हैं ।

आश्रम धर्म में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास की चार परम्परा आती हैं । पच्चीस वर्ष तक की आयु का ब्रह्मचर्य कहाँ पलता है ? छोटी उम्र से ही निचुड़ना प्रारम्भ हो जाता है और बालक कच्ची उम्र में ही खोखले हो जाते हैं । ग्रहस्थ धर्म में उपार्जन की योग्यता बढ़ाकर परिवार का तथा समाज का आर्थिक पोषण सम्पन्न किया जाता था । आज अन्धाधुन्ध सन्तानोत्पत्ति और कुरीतियों दुर्व्यसनों में बढ़ते हुए खर्च के कारण लोग अनीति उपार्जन के लिए विवश होते हैं और ऋणी बनते हैं ।

चारों आश्रमों में अति महत्त्वपूर्ण था– वानप्रस्थ । ढलती आयु से पहले ही सन्तान की जिम्मेदारियों से निच्छल होकर लोग लोक-मंगल की कामों में लगते थे । समाज की सुयोग्य लोक सेवी अवैतनिक रूप से मिलते थे । वे समूचे समाज को प्रगतिशील बनाने के कार्य में निरन्तर लगे रहते थे । फलतः देश-विदेश में ज्ञान, विज्ञान, नीति, धर्म, सदाचार का वातावरण बनाते थे । यही कारण था कि यहाँ के तेतीस कोटि नागरिक तेतीस कोटि देवताओं के नाम से प्रख्यात हुए और यह भारत भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' कहलाई । संन्यासी शरीर से थक जाने पर परिभ्रमण तो नहीं करते थे, पर अपने उपयुक्त स्थानों पर निवास करते हुए विद्यालय, चिकित्सालय, धर्म शिक्षण मार्ग-दर्शन कार्य करते थे। जिस समाज में ऐसी सुव्यवस्था हो उसका उन्नतिशील होना सुनिश्चित है । आज ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ आश्रमों की ही दुर्गति नहीं हुई । वानप्रस्थ का तो कहीं नाम निशान ही नहीं दीखता । भजन-पूजा के बहाने ६० लाख भिक्षुक मात्र वेश के बहाने सन्त कहलाते है और समाज के लिए कोई उपयोगी कार्य न करके भारभूत जीवनयापन करते हैं । यह आश्रम-धर्म की दुर्गति हुई ।

अब वर्ण-धर्म की बात आरम्भ होती है । निरन्तर लोक सेवा में लगे हुए अपरिग्रही, ब्रह्मपरायण विद्वान ब्राह्मण कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते । उद्दण्ड अनाचारियों से निपटने के लिए जान हथेली पर रखे फिरने वाले क्षत्रिय भी दृष्टिगोचर नहीं होते । उचित लाभांश से अपना निर्वाह चलाने वाले समाज के अभावों को दूर करने वाले वैश्य भी कहाँ हैं ? अधिक लाभ कमाने वाले, कर चुराने वाले और तमाखू जैसे हानिकार पदार्थ उगाने, बेचने वाले वैश्य ही आज तो सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं । शूद्र अर्थात् श्रमिक जिस प्रकार श्रम कराने वाले श्रमिकों का शोषण करते हैं, उसी प्रकार श्रमिक भी काम चोरों में किसी से पीछे नहीं रहते । उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि रखकर पूरा श्रम करने वाले–अधिकार की तरह कर्त्तव्य को भी प्रधानता देने वाले श्रमिक वर्ग का भी अब अभाव होता चला जा रहा है ।

वर्ण-धर्म जब तक ठीक प्रकार चल रहा था तब तक कार्य विभाजन रहने से हर वर्ग की उपयुक्त सन्तुलित संख्या बनी रहती थी । वंश परम्परा से उस शिक्षा में प्रवीणता आती जाती थी । न बेकार की समस्या उत्पन्न होती थी । न किसी कार्य के लिए आवश्यकता से अधिक या कम लोगों की भरमार रहती थी । श्रम की दृष्टि से समाज में असन्तुलन उत्पन्न होने वाली प्रवीणता के अभाव में अकुशल लोगों की ही भरमार होती थी, पर आज तो वेश के आधार पर आश्रम और वंश के आधार पर वर्ण रह गया है । चारों आश्रमों में वानप्रस्थ संन्यास को श्रेष्ठ माना गया है । उनके कर्त्तव्य उत्तरदायित्व लोगों ने भुला दिये हैं । मात्र लाल, पीले कपड़े पहनने भर से उसकी लकीर पिट जाती है । इसी प्रकार वर्णो में ब्राह्मण श्रेष्ठ माना गया है, किन्तु उसके साथ ही ज्ञान का संचय और वितरण, तपश्चर्या और अपरिग्रह की मर्यादा भी है । वह सब भुला दी गई है । मात्र वंश का अहंकार बच रहा है । कौन किस वंश में जन्मा इस आधार पर जाति-पाँति का प्रचलन शेष है । वर्ण और जाति अब समानार्थ बोधक रह गये हैं । वर्णों के साथ कर्त्तव्य जुड़े हुए हैं, किन्तु जातियों के साथ ऐसा कुछ नहीं है । जो जिस वंश में जन्मा उसी हिसाब से उसकी जाति गिनी जानी लगी और जाति को ही वंश मान लिया गया, जबकि यह बातें सर्वथा भिन्न है । गीताकार ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट किया है–

चातुर्वण्यं भया सृष्टं गुण कर्म विभागशः
तस्यकर्तारमपि यां विध्य कर्तारमव्ययम् ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान कहते हैं चारों वर्णों की रचना मैंने गुण को विभाजन के अनुसार विनिर्मित की । यही मेरी कार्य पद्धति है । यहाँ गुण कर्म का विभाजन स्पष्ट किया है । यह कुल वंश का कोई उल्लेख नहीं है । कुल वंश की बात वहाँ तो एक सीमा तक लागू भी होती है जहाँ गुण कर्म की परम्परा का निर्वाह होता है । बढ़ई, लुहार, धोबी, अध्यापक व्यवसायी आदि बचपन से ही अपने परिवार में चल रहे कार्यों को आरम्भ से ही देखते और सीखते रहने के कारण प्रवीण हो जाते हैं । इसमें गुण, कर्म प्रधान है । वंश के हिसाब से यह गणना नहीं हो सकती । किसी का पिता कलक्टर, डॉक्टर, इन्जीनियर था किन्तु उसके बेटे बिना पढ़े मूर्ख हैं । उन्हें अपने को पिता की पदवी धारण करने का अधिकार कैसे मिल सकता है । कलक्टर का लड़का चपरासी बन सका तो वह अपने को कलक्टर की पदवी लगाने लगे तो यह बात उपहासास्पद होगी । स्तर बदल जाने के कारण उसे अपने को चपरासी ही कहना चाहिए, कलक्टर कोई वंश नहीं है । इसी प्रकार डाक्टर इन्जीनियर वंश नहीं हो सकता । उस कुल में जो भी जन्मे वह डॉक्टर इंजीनियर कहलावे यह कैसे हो सकता है । वर्ण को जाति कहना और जाति को वंश मानना सर्वथा गलत है । वंश स्थिर नहीं रह सकता उसके गुण, कर्म जैसे-जैसे बदलते जायेंगे वैसे-वैसे जाति भी बदलती जायेगी । वैसे सामान्यतः सभी मनुष्य जाति के हैं । घोड़ा, गधा, बैल आदि की तरह मनुष्य भी एक जाति के हैं । सबकी शरीर संरचना सबका रक्त माँस एक जैसा है । इस कारण वंश के हिसाब से उनके बीच भिन्नता नहीं हो सकती ।

इस सम्बन्ध में आज पूरा भ्रष्टाचार फैल रहा है । जातियों के भीतर उपजातियों का सिलसिला चल रहा है । फिर आपस में रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं । ब्राह्मणें के बीच बीसियों उपजातियाँ हैं और आश्चर्य इस बात का है कि वे आपस में रोटी-बेटी तक का व्यवहार नहीं रखते । क्षत्रिय–क्षत्रिय के बीच, कायस्थ–कायस्थ के बीच उपजातियों में रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं । और तो और जिन्हें, अछूत कहा जाता है वे भी आपस में वैसा ही विलगाव का बरताव करते हैं जैसा कि सवर्णों और अछूतों के बीच होता है । जाति-पाँति के इस भेदभाव ने सारे हिन्दू समाज को विशृंखलित करके रख दिया है । इसका परिणाम संगठन की दृष्टि से बहुत ही बुरा हुआ है । बाहर से हिन्दू कहलाते हुए भी जातियों और उपजातियों के विभाजन के कारण वर्ग भेद इतना व्यापक और गहरा हो गया है कि उनके कारण दहेज जैसी अनेकों कुरीतियाँ उपज पड़ी हैं और बहुमत होते हुए भी वस्तुतः हम सब आत्म मत में विभाजित होते चले जा रहे हैं । इसका प्रभाव सामजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत ही हानिकारक और चिन्ताजनक पड़ रहा है ।

यदि प्राचीन वर्णाश्रम धर्म अब नहीं रहा तो उसका गुर्ण कर्म स्वभाव के आधार पर नया गठन हो सकता है । यदि वहाँ भी सम्भव नहीं रहा तो मात्र हिन्दू या मनुष्य के रूप में अपना परिचय देना पर्याप्त मानना चाहिए ।

अपनी महान् परम्पराओं को खोकर ही हम दीन-हीन बने हैं

प्राचीन भारत की सर्वतोमुखी गौरव गरिमा समस्त विश्व में सव्याप्त थी । इस भूमि का महान् उत्पादन संसार के कोने-कोने तक आलोक उत्पन्न करता था और उससे समस्त मानव-जाति लाभान्वित होती थी । ज्ञान और विज्ञान की–सम्पत्ति की समर्थता का कोई पक्ष ऐसा न था जिससे इस देश के नररत्न सुसम्पन्न न रहते हों । यह महान् उपलब्धियाँ इतनी आकर्षक एवं उपयोगी थीं कि उन्हें सीखने समझने के लिए संसार भर के लोग यहाँ आते थे । सच्चे अर्थों में भारत ही उन दिनों विश्वविद्यालय था । आवश्यकतानुसार यहाँ की प्रतिभायें अन्यान्य देशों की व्यवस्था बनाने और सुधारने के लिए जगद्गुरु–चक्रवर्ती शासक, विज्ञानवेत्ता एवं सम्पदा सम्पन्न व्यक्तित्वों के रूप में उपस्थित होती थीं । भारतीय महामानवों के इस अनुदान से समस्त विश्व किसी समय कृतकृत्य था ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज की स्थिति सर्वथा बदल गई । अन्न से लेकर शास्त्रों तक के लिए हम परमुखापेक्षी हैं । हमारी शिक्षा आवश्यकता विदेशी पूरी करते हैं । चिकित्सा तक में आत्मनिर्भर नहीं । यह तो भौतिक सम्पत्ति की बात रही । आत्मिक क्षेत्र की दशा और भी अधिक दयनीय है । अनुशासन, वचन पालन, समय की नियमितता, नागरिक कर्त्तव्य, सामाजिक–उत्तरदायित्व, देश-भक्ति, शिष्ट व्यवहार जैसी मानवोचित विशेषताओं की कसौटी पर हमारा जनजीवन खरा नहीं खोटा ही सिद्ध होता है । स्वच्छता जैसी प्राथमिक मानवी आवश्यकता तक से हम अभी परिचित नहीं हो पाये हैं । सामाजिक कुरीतियाँ, मूढ़–मान्यताएँ एक प्रकार से देश की जड़े खोखली कर चुकी हैं । नर-नारी की असमानता–वंश जाति के आधार पर बरती जाने वाले ऊँच-नीच की मान्यता लगभग एक करोड़ लोगों द्वारा अपनाया गया भिक्षा व्यवसाय, विवाहों की प्राणघातक खर्चीली धूम-धाम, जैसे कुष्टव्रण राष्ट्र की काया को किस प्रकार अपंग, कुरूप और कलंकित किये हुए हैं, यह देख कर दर्द उठता है । जिस देश में शिक्षा २० प्रतिशत हो ८० प्रतिशत अशिक्षित भरे पड़े हों, वहाँ विविध भ्रष्टाचारों का पनपना स्वभाविक है । धर्म से लेकर राजनीति तक में धूर्त विडम्बनायें अपनी जड़ें दिन–दिन अधिक गहरी घुसाती चली जा रही हैं इन परिस्थितियों में हम अन्तर्द्वन्दों में–गृह युद्ध जैसी स्थिति में रहते हुए प्रगति से वंचित ही रह सकते थे–रह रहे हैं ।

प्राचीन काल की महान् प्रगति और आज की अवगति की तुलना पर्वत-शिखर और गहरे गर्त से की जा सकती है । भौतिक दृष्टि से जो खोया सो दुःखद है, उसकी क्षति पूर्ति आसानी से हो सकती है, पर मर्मभेदी दुःख उस आत्मिक स्थिति के पतन का है जिसके कारण इस दशे का प्रत्येक घर नर–रत्नों की खान बना हुआ था, जिसके कारण समस्त विश्व अपने उत्कर्ष के लिए आशा भरे सहयोग की अपेक्षा करता था ।

यह अत्यधिक विचारणीय प्रश्न है कि धर्म और अध्यात्म कलेवर भूतकाल की अपेक्षा इन दिनों घटा नहीं बढ़ा है । धर्म संगठनों की, धर्म ध्वजीमहन्त मठाधीशों की–साधु ब्राह्मणों की ही वृद्धि नहीं हुई, कथा-कीर्तनों की–देवाराधन कर्मकाण्डों की भी धूम है । मन्दिर तो इस तेजी से बनते चले जा रहे हैं। मानो उन्हीं की संख्या वृद्धि पर धर्म की आधारशिला रखी हुई हो । इतना सब होते हुए भी धर्म की आत्मा क्यों मर गई ? उसकी सड़ी लाश ही हमारे हाथ क्यों रह गई ?

इन प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ने के लिए गहराई में उतरने और विस्तृत विवेचन करने पर हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि हमारे आश्रम धर्म की रीढ़ टूट गई और प्राचीन भारत की गौरव गरिमा की स्थिति अपंग जैसी हो गई । भारतीय धर्म को दूसरे शब्दों में वर्णाश्रम धर्म कह सकते हैं । चार आश्रमों की सुदृढ़ आधारशिला पर अपनी संस्कृति का भवन खड़ा किया गया था ।

जब तक वे स्तम्भ बने रहे, तब तक गौरव–गरिमा भी गगनचुम्बी बनी रही । जब उसमें विग्रह संकट उत्पन्न हुआ तो सारा ढाँचा ही लड़खडा गया और धर्म विडम्बनाओं की अवांछनीय विकृतियाँ ही हमारे हाथ रह गईं ।

अब एक ही वर्ण शेष है–वैश्य । और एक ही आश्रम जीवित है गृहस्थ । शेष तीन वर्ण मर गये तीन आश्रमों का भी अन्त हो गया । हर व्यक्ति का जीवन–लक्ष्य धन है । त्यागी–वैरागी भी प्रकारान्तर से उसी कुचक्र के इर्द–गिर्द घूमते देखे जा सकते हैं । आकाँक्षाओं का केन्द्र अब सम्पत्ति ही बन कर रह गया है । वासनाओं और तृष्णाओं की पूर्ति उसी से तो होती है । इसके अतिरिक्त अन्य कुछ लक्ष्य किसी का नहीं दीखता । ऐसी दशा में यह कहना अत्युक्ति न होगा कि वर्ण–धर्म सिमट कर वैश्य–वर्ण में सीमित हो गया है । ठीक इसी प्रकार आश्रम धर्म की दुर्गति हुई है । स्कूल में जाते-जाते अबोध बालक काम कुचेष्टाएँ सीख जाते हैं, पास-पड़ोस में उन्हें अश्लील गालियाँ सीखने को मिल जाती हैं । घर बाहर कामुकता की विविध प्रवृत्तियाँ बचपन में ही गृहस्थ की दीक्षा दे देती हैं और उसमें क्रमशः वृद्धि ही होती रहती है । किशोरावस्था परिपक्व होने से पहले ही बच्चे अपना बहुत हद तक आत्मघात कर चुके होते हैं । स्मरण शक्ति की कमी, चेहरे की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निस्तेजता, काया की दुर्बलता और मानसिक उद्वेगों का बाहुल्य देखते हुए यह सहज ही समझा जा सकता है कि उन पर क्या बीती है । समय से पूर्व गृहस्थ की किसी भोंड़ी और फूहड़ प्रवृत्ति का जो दुष्परिणाम होना चाहिए उसे अपने हर बालक पर काली घटाओं के रूप में छाया देखते हैं । बाल-विवाह तो और भी कोढ़ में खाज का काम करता है । जिन्दगी के अन्त तक कामुकता–प्रजनन, अर्थोपार्जन, कुटुम्बचर्या के अतिरिक्त कभी कोई बात सूझती ही नहीं । समस्त प्रवृत्तियाँ इसी केन्द्र पर केन्द्रीभूत रहती हैं । होश सम्भालने के दिन से लेकर होश बन्द होने की घड़ी तक गृहस्थ स्तर की आकांक्षाएँ ही मनःक्षेत्र को आच्छादित किये रहती हैं । ऐसी दशा में यही कहा जा सकता है कि चार आश्रमों में से तीन समाप्त हो गये । ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास की परम्पराएँ नष्ट हो गईं । केवल एक ही आश्रम बचा है–गृहस्थ । साधु-सन्तों की मनोदशा और गतिविधियों को देखते हुए उन्हें भी भगवा वस्त्रधारी गृहस्थ ही कह सकते हैं । तीन पाये टूट जाने पर एक के ऊपर खड़ी की गई चारपाई की जो डाँवाडोल स्थिति होनी चाहिए, वही है आज भारतीय समाज की । इन परिस्थितियों में भौतिक आर्थिक स्थिति की स्थिरता की कुछ बात तो सम्भव भी है, पर आत्मबल पर टिकी हुई उन महानताओं की आशा नहीं की जा सकती जिन पर प्रचीन भारत का महान गौरव आधारित रहा है ।

वर्ण-धर्म के अनुसार ब्राह्मण वर्ण को नैतिक और सामाजिक स्थिति की सुदृढ़ता बनाये रखने का उत्तरदायित्व सम्भालना पड़ता था । धर्म और अध्यात्म का, उपासना और साधना का विशाल काय कलेवर मनुष्य की आन्तरिक महानता में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि का लक्ष्य रखकर ही खड़ा किया गया है । नीति-निष्ठ, कर्त्तव्य परायण और समाजसेवी व्यक्तित्वों का विकास ही धर्मधारणा का, अध्यात्म–दर्शन का एकमात्र प्रयोजन है । ईश्वर की समीपता और प्रसन्नता प्राप्त करने का आधार लेकर चलने वाले मनुष्य को आत्म-परिष्कार और उदार ममता विस्तार का अवलम्बन स्वीकार करना पड़ता है । इस तरह प्रकारान्तर से आस्तिकता और ईश्वर भक्ति-धर्म धारणा और तपश्चर्या का चरम प्रयोजन मनुष्य में देवत्व का अवतरण ही बनता है । ब्राह्मण वर्ग इसी प्रयोजन की पूर्ति में अपने को खपाता था । अपनी विचारणा और गतिविधियों को नियोजित करता था । एक सुयोग्य वर्ग के सदस्य जब बड़ी संख्या में जन-समाज के भावनास्तर को सम्भालने में अपने अस्तित्व को समर्पित कर दें तो कोई कारण नहीं कि जन-जीवन में उत्कृष्ट चिन्तन एवं आदर्श कर्तृत्व का बाहुल्य न रहे । आज ऐसा ब्राह्मण कहा है ? जाति-पाँति के नाम पर वामन कहलाने वाले व्यक्ति करोड़ों की संख्या में होने पर भी उनमें ब्रह्मपरायण आत्मायें ढूँढ़ निकालना बहुत ही कठिन है । अब ब्राह्मण जीवन का आदर्श प्रत्यक्ष प्रस्तुत करने वाले लोगों की संख्या लगभग शून्य के स्तर पर जा पहुँची है । पेट्रोल के अभाव में मोटर क्या चलेगी ? आग के अभाव में भोजन कैसे पकेगा ? पानी के अभाव में प्यास कैसे बुझेगी ? ब्राह्मण के अभाव में जन-मानस में धर्म का अस्तित्व कैसे जीवित रहेगा ? आदर्शवादी धर्मधारणा को उपेक्षित कर देने के बाद जन-समाज में नर-पशुओं के अतिरिक्त और किस वर्ग का अस्तित्व दृष्टिगोचर होगा ।

चारों वर्ण सिमटकर वैश्य बन जायें, ब्रह्मसत्ता का अस्तित्व मिट जाय यह भारतीय संस्कृति के उस मूल-भूत आधार की कपाल-क्रिया है, जिस पर कि विश्व-मानव को देव-स्तर पर पहुँचाने की किसी समय सफल चेष्टा की गई थी । कितने दुर्भाग्य की बात है कि तैतीस कोटि देवताओं की जनसंख्या वाले'–इस देव मानवों के देश में देव–पुरोहितों का ब्राह्मणों का इस प्रकार दयनीय अन्त देखना पड़े । उसका परिणाम पतनोन्मुख समाज को दुर्दशा ग्रस्त स्थिति में पड़े रहने की विभीषिका के रूप में देखना पड़े ।

यहाँ जन्म के आधार पर अपने को ब्राह्मण कहने और कहाने का अभिमान करने वाले जाति वालों की चर्चा नहीं हो रही है । वे तो अभी भी करोड़ों है और प्रजनन की दृष्टि से किसी से पीछे न रह कर दिन–दिन बढ़ ही रहे हैं । यहाँ चर्चा कर्म-ब्राह्मणों की हो रही है । पोथी-पत्रा के सहारे आजीविका कमाने वाले लोगों की भी यहाँ गणना नहीं की जा रही है । यहाँ ब्राह्मण से अभिप्राय उस वर्ण से है जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने अस्तित्व को लोक-मंगल के लिए भावनात्मक उत्कृष्टता अभिवर्धन के लिए, अपने आपको तिल-तिल करके जलाता है । अपनी सत्ता को पूर्णतया समर्पित करता है । यह वर्ण अपना व्यक्तित्व अत्यन्त उच्चकोटि का समान आदर्शवाद में ओत-प्रोत करके आरम्भ करता है और क्रमशः उसकी परिणति लोक-मंगल एवं लोक-शिक्षण की विविध प्रवृत्तियों के अभिवर्धन में दृष्टिगोचर होती है । ब्राह्मण की तात्विक परिभाषा के अन्तर्गत ऐसे ही व्यक्तित्व आते हैं । ब्राह्मणत्व का आधार जन्म नहीं कर्म है । आज जो लोग जन्म से वर्ण मानते हैं, वे ऐसी ही भूल करते हैं जैसी किसी को जन्म से ही वकील, डॉक्टर, प्रोफेसर अथवा चोर-डाकू, व्यसनी, दुर्गुणी आदि मानने वाले करते हैं । जन्म से तो मनुष्य सिर्फ नर-पशु ही पैदा होता है, पीछे जो कुछ वह बनता है उसी के आधार पर उसका वर्ण विभाजन होता है । उसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए ऊपर की पंक्तियों में ब्राह्मणत्व के अभाव और उसके व्यापक दुष्परिणाम की चर्चा की गई है ।

आश्रम धर्म की महत्ता वर्ण-धर्म से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। उसके अनुसार प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी को बाध्य किया गया है कि अपना आधा जीवन व्यक्तिगत एवं भौतिक प्रयोजनों के लिए रखे और आधा आत्मिक एवं पारमार्थिक उद्देश्य के लिए सुरक्षित रखे । ब्रह्मचर्य अवधि मस्तिष्क को, शरीर को परिपुष्ट बनाने के लिए विद्याध्ययन एवं सम्वर्धन के क्रिया-कलापों में लगे इसके पीछे जोशीले खून की विविध उमंगी एवं महत्त्वकांक्षाओं की पूर्ति के लिए गृहस्थी बसाये, अर्थ उपार्जन करें, परिवार का सुसंचालन करें, समाज की भौतिक प्रगति में योगदान दें, अर्थ-उपार्जन का एक बड़ा अंश लोकोपयोगी कार्यों में देकर सत्यवृत्तियों का पोषण करें । इस प्रकार आधा जीवन ब्रह्मचर्य और गृहस्थ-आश्रम की परिधि में रहकर भौतिक प्रयोजनों की पूर्ति में लग जाता है और उससे व्यक्तिगत एवं सामाजिक आवश्यकताओं की अपने स्तर की आवश्यकताएँ पूर्ण होती हैं ।

जीवन का उत्तरार्द्ध परमार्थ प्रयोजनों में लगाया जाना चाहिए । यह हमारी सांस्कृतिक परम्परा है । वानप्रस्थ और संन्यास की परिपाटी इसी प्रयोजन के लिए है । आधी आयु बीत जाने पर आत्म-कल्याण एवं परमार्थ प्रयोजन में जीवन धारा मोड़ दी जानी चाहिए । यही वस्तुतः दूसरा जन्म है । आदर्शवादी जीवन-नीति को स्वीकार करने वाले द्विज कहलाते रहे हैं और भौतिक लिप्साओं में निमग्न व्यक्ति अत्यन्त अछूत रह कर उपहासास्पद तिरस्कृत समझे जाते रहें हैं । जीवन के उत्तरार्द्ध को देव भाग माना गया है, जो उसे भी पशु-प्रवृत्तियों के आगे फेंक दें, उसे धार्मिक परिभाषा के अनुसार इसी हेय वर्ग में गिना जा सकता है ।

पूर्वार्ध में भौतिक प्रगति का लक्ष्य रख कर जो प्रक्रिया अपनाई जाती है । लगभग उसी की पुनरावृत्ति उत्तरार्द्ध में होती है । ब्रह्मचारी विद्याध्ययन और स्वास्थ्य सम्वर्धन इसलिए करता है कि उसे गृहस्थ के संचालन में सहायता मिलेंगी । वानप्रस्थ में नये सिरे से उस ज्ञान का उपार्जन अध्ययन करना पड़ता है जो आत्म-कल्याण एवं लोक-मंगल के लिए नितान्त आवश्यक है । ऐसा ज्ञान क्रमबद्ध रूप से पहले कभी दत्तचित्त से नहीं किया होता, इसलिए वानप्रस्थ में स्वाध्याय को, अध्यात्म तत्वदर्शन को, लोकस्थिति के स्वरूप एवं समाधार को नये सिरे से सांगोपांग विधि से अपनाना पड़ता है, उसे ज्ञानयोग की साधना कहते हैं । वानप्रस्थ मनोबल, आत्मबल सम्पादन करने के लिए योगाभ्यास, तपश्चर्या तितीक्षा, मनो-निग्रह की रीति-नीति अपना कर अपनी आन्तरिक प्रखरता प्रदीप्त करता है । ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ दोनों ही अपने-अपने स्तर का अध्ययन और स्वास्थ्य सम्वर्धन करते हैं । अन्तर इतना ही रहता है कि पूर्वार्ध की चेष्टाएँ होती हैं भौतिक प्रयोजनों के लिये उत्तरार्ध की मनोबल आत्मबल बढ़ाने के लिये ।

वानप्रस्थ की अवधि का एक अंश ज्ञान सम्पादन एवं योगाभ्यास परक तपश्चर्या में लगता है और दूसरा अंश लोक-मंगल की सेवासाधना में प्रयुक्त होता है । उसे लोक-शिक्षण के लिए परिव्राजक की तरह भ्रमण करना होता है । उन दिनों शरीर में उतनी समर्थता भी रहती है कि दौड़-धूप के प्रयोजन पूरे कर सके सुन्दर क्षेत्रों में आवागमन कर सके और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कष्टसाध्य सेवाकार्यों को अपने बलबूते क्रियान्वित कर सके । सत्यवृत्तियों में जन-साधारण के साथ कन्धे से कन्धा लगाकर कदम मिलाकर कार्य कर सके । इसलिए वानप्रस्थी को ज्ञान सम्पादन और योगाभ्यास में आधे से कम समय लगाकर आधे से अधिक समय प्रत्यक्ष लोकसेवा कार्यों में समर्पण करना होता है ।

आध्यात्मिक प्रौढ़ता और परिपक्वता वानप्रस्थ की अवधि पूरी करने के उपरान्त आती है। उस आत्मिक यौवनकाल को संन्यास कह सकते हैं । आयुष्य के चौथे भाग में शरीर शिथिल हो जाता है, भागदौड़ की क्षमता नहीं रहती, कष्ट-साध्य योग-साधना भी नहीं बन पड़ते । तब एक स्थान पर बैठ कर गुरुकुल चलाने जैसे सरल कार्य उन्हें चलाने होते हैं । उपासना में ध्यान प्रक्रिया ही मुख्य रह जाती है ।

प्रकारान्तर से जीवन के परमार्थ–परायण उत्तरार्ध का दो स्थितियों में रहने के कारण कार्य–विभाजन दो विभागों में कर दिया गया है । जब तक शरीर में जान रहे, तब तक स्वाध्याय, तपश्चर्या और सेवा-साधना की दौड़-धूप । जब शरीर अशक्त-अमसर्थ हो जाये तो एक स्थान पर बैठ कर अध्यापन, प्रवचन, सत्संग जैसे सेवा-साधनों को तथा ध्यान-धारणा परक उपासना की पूर्ति । वस्तुतः दोनों का लक्ष्य एक ही है–शरीर की स्थिति के अनुरूप कष्ट साध्य एवं सरलतम कार्यों का विभाजन किया गया है ।

आश्रम धर्म में यह उत्तरार्ध ही भारतीय धर्म की महानतम सम्पदा रही है, उसी पूँजी के बल पर इस देश के नागरिकों का स्तर देवोपम रहा है और यह भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' कहलाती रही है । ज्ञानवान्, प्रतिभावान्, परिष्कृत भाव सम्पदा से सुसम्पन्न परम निस्वार्थ लोक-सेवियों की भारी सेना जीवन क्रम के उसी उत्तरार्ध मञ्च से निकल रही है । वही विकृतियों से जूझी है । उसी ने सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन किया है । जन-मानस को पतनोन्मुख होने से उसी ने बचाया है । आदर्शवादी व्यक्तित्वों को विकसित करने में उसी की प्रमुख भूमिका रही है । अनुकरणीय सत्कर्मों का बाहुल्य उसी के प्रयास से सम्भव हुआ है । धर्म सेवा ने ही असुरता को हराया और देवत्व को जिताया है । स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति जहाँ भी रहेगी, वहाँ हर क्षेत्र में प्रगति और समृद्धि के ही सुखद प्रतिफल दिखाई देगें । यही है प्राचीन भारत की गौरव गरिमा का रहस्य । वर्णाश्रम धर्म के आधार पर बिन वेतन के न्यूनतम निर्वाह लेकर समाज की अति महत्त्वपूर्ण सेवाएँ कर सकने में समर्थ अनुभवी सुयोग्य एवं भावनाशील प्रतिभाएँ आगे आती थीं और मानव जाति के सर्वतोमुखी उत्कर्ष के लिए अपने को समर्पित करती थीं । इतनी बड़ी पूँजी के आधार पर यदि भारत भूमि विश्व की मुकट मणि बन कर रही हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है । उन महान् परम्पराओं को खोकर हम मणिहीन सर्प की तरह निर्जीव और निस्तेज बनकर कूड़े के ढेर में पड़े हैं तो इसमें भी कुछ अनहोनी बात नहीं है । परम्पराओं की बहुमूल्य सम्पत्ति को नष्ट–भ्रष्ट करने पर यह दुर्गति होनी ही थी जिसने हमें अत्यन्त कष्टकर त्रास के चंगुल में बेतरह जकड़ लिया है ।

खान-पान

भारतीय संस्कृति यह मानती है कि "आहार शुद्धो सत्त्वशुद्धिः ।" (छान्दोग्योपनिषद् ७, २६, २) अर्थात् भोजन की शुद्धि होने पर मानव की अन्तरात्मा शुद्ध होती है । "अन्नमयं हि सौम्य मनः (छा० उ० ६, ५, ४) अर्थात् है सौम्य ! अन्न से ही मन बनता है । जैसा अन्न खाया जाता है, वैसा ही मन (बुद्धि, भावना, विचार, कल्पना इत्यादि) हो जाता है ।

खान-पान के सम्बन्ध में हमारा आदर्श यह रहा है कि ईमानदारी की कमाई ही खाई जाये, बेईमानी, असत्य तथा धोखेबाजी से अर्जित जीविका से बचा जाय :–

"रमतां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ।

(अथर्ववेद ७,११५,४)

अर्थात् "पुण्य से कमाया हुआ धन ही मनुष्य को सुख समृद्धि देता है । जो पापयुक्त धन है, उसको मैं नाश करने वाला बनूँ ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम अन्न को देवता रूप समझ कर ग्रहण करते रहे हैं । मनुस्मृति में कहा गया है कि 'अन्न ब्रह्म है' यह समझकर उसकी उपासना करनी चाहिए । दोनों हाथ और दोनों पाँव और मुख को अच्छी तरह स्वच्छ कर ब्रह्म–चिंतन कर भोजन ग्रहण करना चाहिए । पहले भोजन का पूजन करना चाहिए । उसे देखकर हर्षयुक्त होना चाहिए और प्रसन्नतापूर्वक अभिनन्दन करते हुए उसे ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अन्न ब्रह्म है, रस विष्णु है और खाने वाला महेश्वर है ।

भोजन केवल क्षुधा-निवारण का साधन है, स्वाद या चटोरेपन के लिए नहीं है । वह भी ईश्वर की उपासना का एक अंग है । अतः भोजन में कोई अपवित्र वस्तु ग्रहण नहीं करना चाहिए ।

हमारी संस्कृति में भोजन की आंतरिक स्वच्छता को अधिक महत्त्व दिया है । सर्व प्रथम तो स्थान स्वच्छ होना चाहिए, फिर बनाने वाले की मनः स्थिति पवित्र होनी चाहिए । अतृप्त, भूखा, लालची, निम्न जाति का व्यक्ति या गन्दा रसोइया अपने सम्पर्क से ही भोजन को दूषित कर देता है । माता, पत्नी या बहिनों के द्वारा बनाये हुए भोजन में प्रायः वे सब शुभ वृत्तियाँ मिल जाती हैं । भोजन से पूर्व एक छोटी-सी प्रार्थना कर उसे ब्रह्मार्पण करने का विधान है । सच्चा हिन्दू भोजन सामने आने से नेत्र मूँद ईश्वरीय चिन्तन करते-करते यह मन्त्र उच्चारण करता है—

''तेजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवनां धामनामसि विश्वमसि विश्वायुः।'' (वेद)

अर्थात् ''हे अन्न ! तुम (तेज) वीर्य हो ! तुम उत्साह हो । तुम बल हो । तुम दीप्ति हो । तुम ही चराचर विश्वरूप हो । तुम ही विश्व के जीवन हो ।''

''ॐ द्यौस्त्वा परिददातु ॐ पृथिवी त्व गृह्णातु ।''

अर्थात् ''हे अन्न ! आकाश तुझे देता है और पृथ्वी तुझे ग्रहण करती है ।''

''ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नो धेह्यानमीवस्य शुष्मिणः प्रदातारं तारिष उर्जन्नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।''

अर्थात् ''हे अन्नपते अग्ने । इस यज्ञ का भाग हमें दीजिए ।''

गृहस्थ योग

भारतीय संस्कृति में नारी अत्यन्त मान और आदर-सत्कार की पात्री है । महाभारत में कहा गया है–

''लालितानुगृहीता च स्त्री श्रीः भवति भारत।''

(महाभारत अनु० ८१-१५)

अर्थात् ''सत्कार की हुई और प्यार से रखी हुई स्त्री साक्षात् लक्ष्मी के समान होती है ।''

''स्त्रियस्तु मानमर्हन्ति ता मानयतं मानवाः''

(म०भा० अनु० ८१-६०)

अर्थात् ''स्त्रियाँ मान के योग्य हैं । हे पुरुषो ! उनका मान करो ।''

नारी माता के रूप में सन्तान उत्पन्न कर मानव सृष्टि का क्रम चलाने वाली है, गृहिणी के रूप में पुरुष की सखा है, मंत्री है, उसके घर की व्यवस्था करने वाली है । धर्म के साधन एकत्रित करने वाली है । अपने स्वाभाविक गुण–वात्सल्य, दया, प्रेम, धैर्य, परिश्रम एवं स्वार्थ-त्याग के बल पर पुरुष वर्ग में शक्ति और उत्साह भरने वाली है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में नारी के कन्यापन, मातृत्व तथा गृहिणी की पूजा की गई है, धर्म और स्वर्ग-साधन तथा पुरुष की शक्ति मानी गई है । मनुजी ने तो यहाँ तक कहा है कि स्त्री-पुरुष मरण-पर्यन्त धर्म, अर्थ आदि में परस्पर अभिन्न होकर रहे ।

भारतीय नारी में सर्वाधिक महत्त्व जिस गुण को दिया गया है, वह पतिव्रत्य या सतीत्व है । संसार की सब नारियों से हिन्दू नारी इस गुण में बढ़ी-चढ़ी है । ''सतीत्व'' इस एक गुण पर सब समस्याएँ केन्द्रित हैं । आमरणान्त हिन्दू स्त्री एक ही व्यक्ति को पति के रूप में चुनती है; उसी में अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है, उसी को सुख-सर्वस्व मानती है । कबरी ने कहा है–

''पतिव्रता मैली भली, काली कुचल कुरूप ।
पतिव्रता के रूप पर, वारौं कोटि सुरूप ।।''

धर्म की दृष्टि से जब नारी केवल एक ही व्यक्ति तथा उसके परिवार में अपने आप को केन्द्रित कर देती है, तब पति और सन्तान की उन्नति के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक अवसर रहता है। इससे विशुद्ध विमल वंशों की इमारत बनती है; उत्तम संस्कार फूलते–फलते हैं । ऐसे परिवारों के व्यक्ति बहुत उन्नति करते हुए देखे जाते हैं । शुद्ध उत्तम संस्कारों की सन्तान नारी जाति की सर्वोत्तम देन है ।

सतीत्व धारण करने के लिए भारतीय नारी ने अनेकों कठिनाइयाँ सही हैं, हँसते-हँसते जीवन का बलिदन किया है; अग्नि में कूद कर पवित्रता की रक्षा की है । अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हुए उन्होंने पति पर निर्मल प्रीति रखी है । पर पुरुष को तृष्णावत् समझा है ।

भारतीय दृष्टिकोण से पतिव्रता वह है, जो पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष से कोई सम्बन्ध नहीं रखती है, मर्यादाशील और लज्जा की रक्षा हो, ऐसे वस्त्र पहिनती है; उत्तम दान-पुण्य करके सत्कीर्ति का सम्पादन करती है, शील और अपनी पवित्रता की सदा रक्षा करती है । सन्तोष, समता, सहनशीलता, त्याग, विनय, सत्य, क्षमा आदि सद्गुणों को धारण करती है । धर्म-नीति, सद्व्यवहार और कला-कौशल की शिक्षा स्वयं प्राप्त कर अपनी संतान को देती है; हर्ष–शोक में समान रहती है; सद्गुणवती और सुपात्र स्त्रियों की ही संगति करती है । इस प्रकार सतीत्व का गौरव बढ़ाने में हिन्दू नारियों का प्रधान हाथ रहा है । कौशल्या, द्रौपदी, सीता, सुभद्रा, कुन्ती, शीलवती, पद्मावती आदि भारतीय सतियाँ पूज्य पद को प्राप्त हुई हैं । भारतीय नारी पूज्य है, जननी है । माता और मातृ-भूमि स्वर्ग से भी ऊँची है । जहाँ नारी-पूजा होती है, वहाँ देवत्व का वास होता है ।

मनुष्य पर देव-ऋण, पितृ-ऋण और ऋषि-ऋण रहते हैं । इनमें विवाह करके पितरों के श्राद्ध तर्पण के योग्य धार्मिक एवं सदाचारी पुत्र उत्पन्न करके पितृ-ऋण को चुकाने में नारी का ही हाथ है । तभी मोक्ष-मार्ग मिल सकता हैं ।

'योग' का अर्थ है–'जोड़ना–'मिलना' । मनुष्य की साधारण स्थिति ऐसी होती है जिसमें वह अपूर्ण होता है । इस अपूर्णता को मिटाने के लिये वह किसी दूसरी शक्ति के साथ अपने आप को जोड़कर अधिक शक्ति का संचय करता है, अपनी सामर्थ्य बढ़ाता है और उस सामर्थ्य के बल से अपूर्णता को दूर कर पूर्णता की ओर तीव्र गति से बढ़ता जाता है, यही योग का उद्देश्य है । उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हठयोग, राजयोग, जपयोग, लययोग, तन्त्रयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, स्वरयोग, ऋजुयोग, महायोग, कुंडलिनी योग, बुद्धियोग, समत्वयोग, प्राणयोग, ध्यानयोग, सांख्ययोग, जड़योग, सूर्ययोग, चन्द्रयोग, सहजयोग, प्रणवयोग, नित्ययोग, आदि ८४ प्रसिद्ध योग और ७०० अप्रसिद्ध योग हैं । इन विभिन्न योगों की कार्य-प्रणाली, विधि-व्यवस्था और साधना पद्धति एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न है तो भी इन सबकी जड़ में एक ही तथ्य काम कर रहा है । माध्यम सबके अलग अलग हैं, पर उन सभी माध्यमों द्वारा एक ही तत्व ग्रहण किया जाता है । तुच्छता से महानता की ओर, अपूर्णता से पूर्णता की ओर, असत् से सत् की ओर, तम से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर, जो प्रगति होती है, उसी का नाम योग है । आयु आत्मा का परम आत्मा बनाने का प्रयत्न ही योग है । यह प्रयत्न जिन-जिन मार्गों से होता है, उन्हें योग मार्ग कहते हैं ।

एक स्थान तक पहुँचने के लिये विभिन्न दिशाओं से विभिन्न मार्ग होते हैं, आत्म-विस्तार के भी अनेक मार्ग हैं । इन मार्गों में स्थूल दृष्टि से भिन्नता होते हुए भी सूक्ष्म दृष्टि से पूर्ण रूपेण एकता है । जैसे भूख बुझाने के लिए कोई रोटी, कोई चावल, कोई दलिया, कोई मिठाई, कोई फल, कोई माँस खाता है । यह सब चीजें एक-दूसरे से बिल्कुल पृथक् प्रकार की हैं तो भी इन सबसे "भूख मिटाना" यह एक ही उद्देश्य पूर्ण होता है । इसी प्रकार योग के नाना रूपों का एक ही प्रयोजन है–आत्म-भाव को विस्तृत करना, तुच्छता को महानता की पूँछ के साथ बाँध देना ।

अनेक प्रकार के योगों में एक "गृहस्थ योग" भी है । गम्भीरता पूर्वक इसके ऊपर जितना ही विचार किया जाता है यह उतना ही अधिक महत्त्वपूर्ण, सर्व सुलभ तथा स्वल्प श्रम साध्य है । इतना होते हुए भी इससे प्राप्त होने वाली जो सिद्धि है वह अन्य किसी भी योग से कम नहीं वरन् अधिक ही है । गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों की पुष्टि और वृद्धि करने वाला है, दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है "कि ब्रह्मचर्य,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वानप्रस्थ और संन्यास यह तीनों ही आश्रम गृहस्थाश्रम को व्यवस्थित और सुख शान्तिमय बनाने के लिये हैं ।'' ब्रह्मचारी इसलिये ब्रह्मचर्य का पालन करता है कि उसका भावी गृहस्थ्य जीवन शक्तिपूर्ण और समृद्ध हो । वानप्रस्थ और संन्यासी लोग लोक-हित की साधना करते हैं, संसार को अधिक सुख शांतिमय बनाने का प्रयत्न करते हैं । यह 'लोक' और ''संसार'' क्या है ? दूसरे शब्दों में गृहस्थाश्रम ही है । तीनों आश्रम एक ओर—और गृहस्थ आश्रम दूसरी ओर—यह दोनों पलड़े बराबर हैं । यदि गृहस्थाश्रम की व्यवस्था बिगड़ जाय तो अन्य तीनों आश्रमों की मृत्यु ही समझिये ।

गृहस्थ धर्म का पालन करना धर्मशास्त्रों के अनुसार मनुष्य का आवश्यक कर्त्तव्य है । लिखा है कि संतान के बिना पितर नरक को जाते हैं, उनकी सद्गति नहीं होती । लिखा है कि—सन्तान उत्पन्न किये बिना पितृ ऋण से छुटकारा नहीं मिलता । कहते हैं कि—जिनके संतति न हो उनका प्रातःकाल मुख देखने से पाप लगता है । इस प्रकार के और भी अनेक मन्तव्य हिन्दू धर्म में प्रचलित हैं, जिनका तात्पर्य यह है कि गृहस्थ धर्म का पालन करना आवश्यक है । इतना जोर क्यों दिया गया है ? इस बात पर जब तात्विक दृष्टि से गम्भीर विवेचना की जाती है तब प्रकट होता है कि गृहस्थ धर्म एक प्रकार की योग साधना है जिससे आत्मिक उन्नति होती है, स्वर्ग मिलता है, मुक्ति प्राप्त होती है और ब्रह्म निर्वारण की सिद्धि मिलती है । प्राचीन समय में अधिकांश ऋषि गृहस्थ थे । वशिष्ठ जी के सौ पुत्र थे, अत्रिजी की स्त्री अनुसूया थी, गौतम की पत्नी अहिल्या थी, जमदग्नि के पुत्र परशुराम थे, च्यवन की स्त्री सुकन्या थी, याज्ञवल्य की दो स्त्री गार्गी और मैत्रेयी थी, लोमश के पुत्र शृंगी ऋषि थे । वृद्धावस्था में संन्यास लिया हो यह बात दूसरी है, परन्तु प्राचीन काल में जितने भी ऋषि हुए हैं वे प्रायः सभी गृहस्थ रहे हैं । गृहस्थ मे ही उन्होंने तप किये हैं और ब्रह्म निर्वाण पाया है । योगिराज कृष्ण और योगेश्वर शंकर दोनों को ही हम गृहस्थ रूप में देखते हैं । प्राचीन काल में बाल रखाने, नंगे बदन रहने, खडाऊं पहनने, मृगछाला बिछाने का आम रिवाज था, घनी आबादी होने के कारण छोटे गाँव और छोटी कुटियाँ होती थीं । इन चिन्हों के आधार पर गृहस्थ ऋषियों को गृह-त्यागी मानना अपने अज्ञान का प्रदर्शन करना है ।

आत्मोन्नति करने के लिये गृहस्थ धर्म एक प्राकृतिक, स्वाभाविक, आवश्यक और सर्वसुलभ योग है । जब तक लड़का अकेला रहता है, तब उसकी आत्म-भावना का दायरा छोटा रहता है । वह अपने ही खाने, पहिनने, पढ़ने, खेलने तथा प्रसन्न रहने की सोचता है । उसका कार्य-क्षेत्र अपने आप तक ही सीमित रहता है। जब विवाह हो जाता है तो यह दायरा बढ़ता है, वह अपनी पत्नी की सुख-सुविधाओं के बारे में सोचने लगता है, अपने सुख और मर्जी पर प्रतिबन्ध लगा कर पत्नी की आवश्यकतायें पूरी करता है, उसकी सेवा सहायता और प्रसन्नता में अपनी शक्तियों को खर्च करता है । कहने का तात्पर्य यह कि आत्म-भाव की सीमा बढ़ती है, एक से बढ़कर दो तक आत्मीयता फैलती है । इसके बाद एक छोटे शिशु का जन्म होता है । इस बालक की सेवा शुश्रुषा और पालन-पोषण में निस्वार्थ भाव में इतना मनोयोग लगता है कि अपनी निज सुख-सुविधाओं का ध्यान मनुष्य भूल जाता है और बच्चे की सुविधा का ध्यान रखता है । इस प्रकार यह सीमा दो से बढ़कर तीन होती है । क्रमशः यह मर्यादा बढ़ती है । पिता कोई मधुर मिष्ठान लाता है तो उसे खुद नहीं खाता वरन् बच्चों को बाँट देता है, खुद कठिनाई में रह कर भी बालकों की तन्दुरुस्ती, शिक्षा और प्रसन्नता का ध्यान रखता है । दिन-दिन खुदगर्जी के ऊपर अंकुश लगता जाता है, आत्म-संयम सीखता जाता है और स्त्री, पुत्र, सम्बन्धी, परिजन आदि में अपनी आत्मीयता बढ़ाता जाता है । क्रमशः आत्मोन्नति की ओर चलता जाता है ।

भगवान् मनु का कथन है कि ''पुरुष उसकी पत्नी और सन्तान मिलाकर ही एक 'पूरा मनुष्य' होता है ।'' जब तक यह सब नहीं होता, तब तक वह अधकचरा, अधूरा और खंडित मनुष्य है । जैसे प्रवेशिका परीक्षा पास किये बिना कॉलेज में प्रवेश नहीं हो सकता, उसी प्रकार गृहस्थी की शिक्षा पाए बिना वानप्रस्थ संन्यास आदि में प्रवेश करना कठिन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। आत्मीयता का दायरा क्रमशः ही बढ़ता है। अकेले से, पति पत्नी दो में, फिर बालक के साथ तीन में, सम्बन्धियों में, पड़ोसियों में, गाँव, प्रान्त, प्रदेश, राष्ट्र, विश्व में यह आत्मीयता क्रमशः बढ़ती है। आगे चल कर सारी मनुष्य जाति में आत्म-भाव फैलता है फिर पशु पक्षियों में, कीट पतंगों में, जड़ चैतन्य में यह आत्म-भाव विकसित हो जाता है। जो प्रगति एक से बढ़कर दो में, दो से तीन में हुई थी, वही उन्नति धीरे-धीरे आगे बढ़ती जाती है और मनुष्य सम्पूर्ण चर-अचर में आत्म-सत्ता को ही समाया देखता है, उसे परमात्मा की दिव्य ज्योति सर्वत्र जगमगाती दीखती है। पत्नी तक अपने मन को जितने अंशों में फैलाया जाता है उतने अंशों में अपनी खुदगर्जी पर संयम होता है। बाल बच्चों के होने पर यह आत्मसंयम और अधिक बढ़ता है, अन्त में जीव पूर्णतया आत्म-संयमी हो जाता है। दूसरे के लिए अपने आप को भूलने का अभ्यास क्रमशः इतना अधिक पुष्ट हो जाता है कि अपना कुछ रहता ही नहीं, सब कुछ बिराना हो जाता है। "मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर" की ध्वनि उसके अन्दर से निकलने लगती है। खुदी मिटती जाती है और खुदा मिलता जाता है। "मैं" का अन्त होने से "तू" ही शेष रहता है । गृहस्थ योग की छोटी-सी सर्व सुलभ साधना जब अपनी विकसित अवस्था तक पहुँचती है तो आत्मा, परमात्मा बन जाता है । अपूर्णता से छुटकारा पाकर पूर्णता उपलब्ध करता है और योग का वास्तविक उद्देश्य पूरा हो जाता है ।

दृष्टिकोण का परिवर्तन ।

इस बात को भली प्रकार समझ रखना चाहिए कि योग का अर्थ अपनी तुच्छता संकीर्णाता को महानता, उदारता और विश्वबन्धुत्व में जोड़ देना है । अर्थात् स्वार्थ को परिशोधन करके उसे परमार्थ बना लेना है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये असंख्य प्रकार के योगों की साधनायें की जाती हैं । उन्हीं में से एक ग्रहस्थ योग की साधना है । अन्य साधनाओं की अपेक्षा यह अधिक सुखद और स्वाभाविक है । इसलिये आचार्यों ने गृहस्थ योग का दूसरा नाम सहज योग भी रखा है । महात्मा कबीर ने अपने पदों में सहज योग की बहुत चर्चा और प्रशंसा की है ।

किसी वस्तु को समुचित रीति से उपयोग करने पर वह साधारणा होते हुए भी बहुत बड़ा लाभ दिखा देती है और कोई वस्तु उत्तम होते हुए भी यदि उसका दुरुपयोग किया जाये तो वह हानिकारक हो जाती है । दूध जैसे उत्तम पौष्टिक पदार्थ को भी यदि अवधि पूर्वक सेवन किया जाये तो वह रोग और मृत्यु का कारण बन सकता है इसके विपरीत यदि जहर को भी उचित रीति से शोधन मारण करके काम में लाया जाये तो वह अमृत के समान रसायन का काम देता है । गृहस्थाश्रम के सम्बन्ध में भी यही बात है यदि उचित दृष्टिकोण के साथ आचरण किया तो गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी ब्रह्म निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है जैसा कि अनेक ऋषि महात्मा योगी और तपस्वी पूर्वकाल में प्राप्त कर चुके हैं । आजकल गृहस्थों को दुःख, चिन्ता, रोग, शोक, आधि-व्याधि, पाप-ताप में ग्रसित अधिक देखा जाता है इससे ऐसा अनुमान न लगाना चाहिए कि इसका कारण गृहस्थाश्रम है, यह तो मानसिक विकारों का कुविचार और कुसंस्कारों का फल है । दूषित मनोवृत्तियों के कारण हर एक वर्ण में, हर एक देश में ऐसे ही संकट, दुःख उपस्थित होंगे । इसके लिये बेचारे गृहस्थाश्रम को दोष देना बेकार है । यदि वह वास्तव में ही दूषित, त्याज्य या तुच्छ होता तो संसार के महापुरुषों, अवतारों और युग निर्माताओं ने इससे अपने को अलग रखा होता, किन्तु हम देखते हैं विश्व की महानता का करीब-करीब, समस्त इतिहास गृहस्थाश्रम की धुरी पर केन्द्रीभूत हो रहा है ।

आत्मीयता की उन्नति के लिए अभ्यास करने का सबसे अच्छा स्थान अपना घर है । नट अपने घर के आँगन में कला खेलना सीखता है । बालक अपने घर में खड़ा होना और चलना-फिरना सीखता है, योग की साधना भी घर से ही आरम्भ होनी चाहिए । प्रेम, त्याग और सेवा का, अभ्यास करने के लिये अपने घर का क्षेत्र सबसे अच्छा है । इन तत्त्वों का प्रकाश जिस स्थान पर पड़ता है वही चमकने लगता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब तक आत्मीयता के भावों की कमी रहती है, तब तक औरों के प्रति दुर्भाव, घृणा, क्रोध, उपेक्षा के भाव रहते हैं किन्तु जब अपने पन के विचार बढ़ते हैं तो हलके दर्जे की चीजें भी बहुत सुन्दर दिखाई पड़ने लगती हैं । माता अपने बच्चे के प्रति आत्म-भाव रखती है, इसलिये यदि वह लाभदायक न हो तो भी उसे भरपूर स्नेह करती है, पतिव्रता पत्नियों को अपने काले कलूटे और दुर्गुणी पति भी इन्द्र जैसे सुन्दर और बृहस्पति जैसे गुणवान् लगते हैं ।

दुनियाँ में सारे झगड़ों की जड़ यह है कि हम देते कम हैं और माँगते ज्यादा हैं । हमें चाहिए कि दें बहुत और बदला बिलकुल न माँगें या बहुत कम पाने की आशा रखें । इस नीति को ग्रहण करते ही हमारे आस पास के सारे झगड़े मिट जाते हैं । आत्मीयता की महान् साधना में प्रवृत्त होने वाले को अपना दृष्टिकोण देने का, त्याग और सेवा का, बनाना पड़ता है । आप प्रेम की उदार भावनाओं से अपने अन्तःकरण को परिपूर्ण कर लीजिए और सगे सम्बन्धियों के साथ त्याग एवं सेवा का व्यवहार करना आरम्भ कर दीजिए । कुछ ही क्षणों के उपरान्त एक चमत्कार हुआ दिखाई देने लगेगा । अपना छोटा-सा परिवार जो शायद बहुत दिनों से कलह और क्लेशों का घर बना हुआ है । सुख-शान्ति का स्वर्ग दीखने लगेगा । अपनी आत्मीयता की प्रेम भावनाएँ परिवार के आस-पास के लोगों से टकराकर अपने पास वापिस लौट आती हैं और वे आनन्द की भीनी सुगन्धित फुहार से छिड़क कर मुरझाये हुए अन्तःकरण को हराकर देती हैं ।

माली अपने ऊपर जिस बगीची की जिम्मेदारी लेता है उसे हरा-भरा बनाने, सर सज्ज रखने का जी जान से प्रयत्न करता है । यही दृष्टिकोण एक सद-ग्रहस्थ का होना चाहिये । उसे अनुभव करना चाहिये कि परमात्मा ने इन थोड़े से पेड़ों को सींचने, खाद देने, सम्भालने और रखवाली करने का भार विशेष रूप से मुझे दिया है । यों तो समस्त समाज और समस्त जगत के प्रति हमारे बहुत से कर्त्तव्य हैं, परन्तु इस छोटी बगीची का भार तो विशेष रूप से अपने ऊपर रखा हुआ है । अपने परिवार के हर एक व्यक्ति को स्वस्थ रखने, शिक्षित बनाने, सद्गुणी, सदाचारी और चतुर बनने की पूरी-पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर समझते हुए, इसे ईश्वर की आज्ञा का पालन मानते हुए अपना दायित्व पूरा करने का प्रयत्न करना चाहिए । अपने परिवार के सदस्यों की सेवा भी परमार्थ, पुण्य, लोक सेवा, ईश्वर पूजा से किसी प्रकार कम नहीं है ।

स्वार्थ और परमार्थ का मूल बीज अपने मनोभाव, दृष्टिकोण के ऊपर निर्भर है । यदि पत्नी के प्रति उसे अपनी नौकरानी, दासी, सम्पत्ति, भोग सामग्री समझ कर अपना मतलब गाँठने, सेवाऐं लेने, शासन करने का भाव हो तो यह भाव ही स्वार्थ नरक, कलह, भार, दुःख की ओर ले जाने वाला है । यदि उसे अपने उपवन का एक सुरभ्य सरस वृक्ष समझ कर उसके प्रति सात्विक त्यागमय सेवा का, पुनीत उदारतामय प्रेम का भाव हो, अपने स्वार्थ की अपेक्षा उसके स्वार्थ को महत्त्व देने का भाव हो तो यह भाव ही दाम्पत्ति जीवन को, पत्नी सान्निन्य को परमार्थ, स्वर्ग, स्नेह और आनन्द का घर बनाया जा सकता है । "देना कम और लेना ज्यादा ।" यह नीति झगड़े की, पाप की कटुता की, नरक की जड़ है । "देना ज्यादा ओर लेना कम से कम" यह नीति–प्रेम, सहयोग, पुण्य और स्वर्ग की जननी है । बदला चाहने, लेने, स्वार्थ साधने, सेवा कराने की स्वार्थ दृष्टि से यदि पत्नी, पुत्र, पिता, भाई, माता, भुआ, बहिन को देखा जाय तो यह सभी बड़े स्वार्थी, खुदगर्ज, बुरे, रूखे, उपेक्षा करने वाले, उद्दंड दिखाई देंगे, उनमें एक से एक बड़ी बुराई दिखाई पड़ेगी और ऐसा लगेगा मानो गृहस्थ ही सारे दुःखों, स्वार्थों और पापों का केन्द्र है । कई व्यक्ति ग्रहस्थी पर ऐसा ही दोष लगाते हुए कुढ़ते रहते हैं, खिन्न रहते हैं एवं घर छोड़ कर भाग खड़े होते हैं । असल में यह दोष परिवार वालों का नहीं वरन् उनके अपने दृष्टिकोण का दोष है, पीला चश्मा पहनने वाले को हर एक वस्तु पीली ही दिखाई पड़ती है ।

प्रत्येक मनुष्य अपूर्ण है । वह अपूर्णता से पूर्णता की ओर यात्रा कर रहा है । ऐसी दशा में यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि हमारे परिवार के सब सदस्य स्वर्ग के देवता, हमारे पूर्ण आज्ञानुवर्ती होंगे । जीव अपने साथ जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को साथ लाता है, यह संस्कार धीरे-धीरे, बड़े प्रयत्न पूर्वक बदले जाते हैं, एक दिन में उन सबका परिवर्तन नहीं हो सकता, इसलिये यह आशा रखना अनुचित है कि परिवार वाले पूर्णतया हमारे आज्ञानुवर्ती ही होंगे । उनकी त्रुटियों को सुधारने में, उन्हें आगे बढ़ाने में, उन्हें सुखी बनाने में संतोष प्राप्त करने का अभ्यास डालना चाहिए । अपनी इच्छाओं की पूर्ति से सुखी होने की आशा करना इस संसार से एक असम्भव माँग करना है । दूसरे लोग हमारे लिये यह करें, परिवार वाले इस प्रकार हमसे व्यवहार करें, इस बात के ऊपर अपनी प्रसन्नता को केन्द्रित करना एक बड़ी भूल है ऐसी भूल को जो लोग करते हैं, उन्हें गृहस्थ के आनन्द से प्रायः पूर्णतया वंचित रहना पड़ता है ।

स्मरण रखिये गृहस्थ का पालन करना एक प्रकार के योग की साधना करना है । इसमें परमार्थ, सेवा, प्रेम, सहायता, त्याग, उदारता और बदला पाने की इच्छा से विमुखता—यही दृष्टिकोण प्रधान है । जो इसको धारण किये हुए हैं वह, वही ब्रह्मी स्थिति में है । वह घर में रहते हुए भी सन्यासी है ।

गृहस्थ में वैराग्य

गृहस्थ आश्रम की निन्दा करते हुए कोई-कोई सज्जन ऐसा कहते हुए सुने जाते हैं कि—"घर गृहस्थी में पड़ना माया के बंधन में फँसना है ।" उनकी दृष्टि में घर गृहस्थी माया का पिटारा है और बिना गृहस्थी रहना स्वर्ग की निशानी है । परन्तु विचार करने पर प्रतीत होता है कि उपरोक्त कथन कुछ विशेष महत्त्व का नहीं है, कारण यह है कि माया का बन्धन बाहरी वस्तुओं या बाहरी मनुष्यों में नहीं वरन् अपनी मनोवृत्तियों में है यदि मन अपवित्र है, काम, क्रोध, लोभ से भरा हुआ है तो जो बातें गृहस्थ में होती हैं वही संन्यास से बाहर भी हो सकती हैं। हमने देखा है कि बहुत से बाबाजी कहलाने वाले महाराज भिक्षा माँग-माँग कर धन जोड़ते हैं, मरने पर उनके पास प्रचुर धन राशि निकलती है । हमने देखा है कि गृह—विहीन लोगों की इन्द्रियाँ लोलुप होती हैं । शब्द, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श में वे लोलुप रुचि प्रकट करते हैं, उनके आकर्षण से आकर्षित होते हैं । अपनी वस्तुओं से—कुटी, वस्त्र, पुस्तक, पात्र, शिष्य, साथी आदि से ममता रखते हैं । यही सब बातें ही दूसरे रूप में गृहस्थों में होती हैं ।

वैराग्य, त्याग, विरक्ति, इन महातत्त्वों का सीधा सम्बन्ध अपने मनोभावों से है । यदि भावनाएँ संकीर्ण हों, कलुषित हों, स्वार्थमयी हों तो चाहे जैसी उत्तम सात्विक स्थिति में मनुष्य क्यों न रहे मन का विकार वहाँ भी पाप की दुराचार की पुष्टि करेगा । यदि भावनाएँ उदार एवं उत्तम हैं तो अनमिन और अनिष्टकारक स्थिति में भी मनुष्य पुण्य एवं पवित्रता उत्पन्न करेगा । महात्मा इमर्सन कहा करते थे कि "मुझे नरक में भेज दिया जाये तो भी मैं अपने वहाँ अपने लिए स्वर्ग बना लूँगा ।" वास्तविक सत्य ही है, हर आदमी अपनी भीतरी स्थिति का प्रतिबिम्ब दुनियाँ के दर्पण में देखता है । यदि उनके मन में माया है, तो घर, बाहर, वन, आरण्य, मन्दिर, स्वर्ग सब जगह माया ही माया है, माया के अतिरिक्त और कुछ नहीं यदि मन साफ है, पवित्रता, प्रेम और परमार्थ की दृष्टि है तो घर का एक कोना पुनीत तपोवन से किसी भी प्रकार कम न रहेगा । राजा जनक प्रभूति अनेकों ऋषि हुए हैं जिन्होंने गृहस्थ में रहने की साधना की और परम पद पाया।

वीरता भागने में नही, वरन् लड़ने में है । यदि गृहस्थाश्रम में अधिक कठिनाइयाँ हैं तो उनसे डरकर दूर रहना उचित नहीं । पानी में घुसे बिना तैरना कैसे सीखा जायेगा ? कोई व्यक्ति यह कहे कि मैं अखाड़े में जाकर व्यायाम करने की कठिनाई में पड़ना नहीं चाहता, परन्तु पहलवान बनना चाहता हूँ तो उसकी यह बात बालकों जैसी अनगढ़ होगी । काम, क्रोध, लोभ, मोह के दाव घातों को देखना, उनसे परिचित होना, उनसे लड़कर विजय प्राप्त करना इन्ही सब अभ्यासों के लिए वर्णाश्रम धर्म तत्वदर्शी आचार्य गृहस्थाश्रम को सर्वश्रेष्ठ सर्वोपरि आश्रम बनाते हैं । सम्पूर्ण देवार्षि इसी महान् गुफा में से उत्पन्न और विकसित हुए हैं । जरा कल्पना तो कीजिये—यदि गृहस्थ-धर्म, जिसे निर्बुद्धि लोग माया या बन्धन तक कह बैठते हैं न होता तो राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, गान्धी कहाँ से आते ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सीता, सावित्री, अनुसूया, मदालसा, दमयन्ती, पार्वती, आदि सतियों का चरित्र कहाँ से सुन पड़ता ? इतिहास के पृष्ठों पर जगमगाते हुए उज्ज्वल हीरे किस प्रकार दिखाई देते ? अन्य तीनों आश्रम बच्चे हैं, गृहस्थ उनका पिता है । पिता को बन्धन कहना, नरक बताना त्याग्य ठहराना एक प्रकार की विवेक हीनता है ।

उत्तरदायित्व का भार पड़े बिना कोई व्यक्ति वास्तविक, गम्भीर, जिम्मेदार और भारी भरकम नहीं होता । अल्हड़ बछड़े बहुत कूदते-फाँदते और दुलत्तियाँ उड़ाते हैं, परन्तु जब कन्धे पर भार पड़ता है तो बड़ी सावधानी से एक कदम रखना पड़ता है । हाथी जब गहरे पानी में धँसता है तो अपना एक पैर भली प्रकार जमा लेता है, तब दूसरे को आगे रखता है । उसकी सारी सावधानी और होशियारी उस समय एक स्थान पर केन्द्रीभूत हो जाती है । जिस चित्तवृत्ति निरोध को, एकाग्रता को पातञ्जलि ने योग बताया है वह एकाग्रता कोरी बातूनी जमाबन्दी से नहीं आती उसके लिये एक प्रेरणा जिम्मेदारी चाहिये । गृहस्थाश्रम का बोझ पड़ने पर मनुष्य जिम्मेदारी की ओर कदम बढ़ाता है । अपना और अपने परिवार का बोझ पीठ पर लाद कर उसे चलना पड़ता है, इसलिये उच्छृंखलता को छोड़कर वह जिम्मेदारी अनुभव करता है । यह जिम्मेदारी ही आगे चलकर विवेकशीलता में परिणित हो जाती है । राजा को एक साम्राज्य के संचालन की बागडोर हाथ में लेकर जैसे सम्भल-सम्भलकर चलना पड़ता है, वैसे ही एक सद्गृहस्थ को पूरी दूरदर्शिता, विचारशीलता, धैर्य, सहनशीलता और आत्मसंयम के साथ अपना हर एक कदम उठाना पड़ता है । चाबुक सवार जैसे घोड़े को अच्छी चाल चलना सिखाकर उसे हमेशा के लिये बढ़िया घोड़ा बना देता है, वैसे ही गृहस्थ धर्म भी ठोक-पीटकर कडुवे-मीठे अनुभव कराकर एक मनुष्य को आत्म-संयमी, दूरदर्शी, गम्भीर एवं स्थिर चित्त बना देता है । यह सब योग के लक्षण हैं । वैसे फल पक कर समयानुसार डाली से स्वयं अलग हो जाता है, वैसे ही गृहस्थ की डाल से चिपका हुआ मनुष्य धीरे-धीरे आत्म-निग्रह और आत्म-त्याग की शिक्षा पाता रहता है और अन्ततः एक प्रकार का योगी हो जाता है ।

लिप्सा, लालसा, तृष्णा, लोलुपता, मदान्धता, अविवेक आदि बातें त्याज्य हैं, यह बुरी बातें गृहस्थ आश्रम में भी हो सकती हैं और आश्रमों में भी । इसीलिये गृहस्थ आश्रम त्यागने योग्य नहीं वरन् अपनी कुवासनाएँ ही त्यागने योग्य हैं ।

गृहस्थ धर्म तुच्छ नहीं है

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन बहुत ही उत्तम, उपयोगी एवं लाभदायक साधना है । यह शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टियों से हितकर है । जो जितने अधिक समय तक ब्रह्मचारी रह सके उसके लिये उतना ही अच्छा है । साधारणतः लड़कों को कम से कम २० वर्ष तक और लड़कियों को १६ वर्ष तक तो ब्रह्मचारी अवश्य ही रहना चाहिए । जो अपने मन को वश में रख सकें अधिक समय तक रहें ।

ब्रह्मचर्य में मानसिक संयम प्रधान है । यदि मन वासनाओं में भटकता रहे और शरीर को हठ पूर्वक संयम में रखा जाये तो उससे लाभ की जगह पर हानि ही है । शारीरिक काम-सेवन से जितनी हानि है उससे कई गुनी हानि मानसिक असंयम से है । वीर्यपात की क्षति आसानी से पूरी हो जाती है, परन्तु मानसिक विषय चिन्तन से जो उत्तेजना पैदा होती है वह यदि तृप्त न हो तो कुचले हुए सर्प की तरह क्रुद्ध होकर अपने छेड़ने वालों के ऊपर आक्रमण करती हैं ।

मनोविज्ञान शास्त्र के यशस्वी आचार्य डॉक्टर फ्राइड, डॉक्टर ब्राईन, डॉक्टर बने प्रभृति विद्वानों का मत है कि वासनाएँ कुचली जाने पर सुप्त मन से किसी कोने में एक बड़ा घाव लेकर पड़ी रहती हैं और जब अवसर पाती है तभी भयानक, शारीरिक या मानसिक रोगों को उत्पन्न करती है । उनका कहना है कि पागलपन, मूर्छा, मृगी, उन्माद, नाड़ी संस्थान का विक्षेप, अनिद्रा, कायरता आदि अनेक रोग वासनाओं के अनुचित रीति से कुचले जाने के कारण उत्पन्न होते हैं । इसलिए ब्रह्मचर्य की पहली शर्त 'मन की स्थिरता' मानी गई है । जिनका मन किन्हीं उत्तम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विचारों में निमग्न रहता है, विषय वृत्तियों की ओर जिनका ध्यान ही नही जाता या जाता है तो तुरन्त ही अरुचि और घृणापूर्वक वहाँ से हट जाता है वे ही ब्रह्मचारी हैं । जिसका मन वासना में भटकता है, चित्त पर जो काबू रख नहीं पाते, उनके शारीरिक ब्रह्मचर्य को विडम्बना ही कहा जा सकता है ।

किसी स्रोत में से पानी का प्रवाह जारी हो किन्तु उसके बहाव के मार्ग को रोक दिया जाये तो वह पानी जमा होकर दूसरे मार्ग से फूट निकलेगा । मन से विषय चिन्तन और बाहर से ब्रह्मचर्य यह भी इसी प्रकार का कार्य है । मन में वासना उत्पन्न होने से जो उत्तेजना पैदा होती है, वह फूट निकलने के लिए कोई न कोई मार्ग ढूँढ़ती है। साधारण मार्ग बन्द होता है तो कोई और मार्ग बनाकर वह निकलती है । यह नया मार्ग अपेक्षाकृत बहुत खतरनाक और हानिकारक साबित होता है ।

संसार भर की जनगणना की रिपोटों का अवलोकन करने से यह सच्चाई और भी अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती है । विवाहित स्त्री--पुरुषों की प्रतिशत जितनी मृत्यु होती है । विधवा या विधुरों की मृत्यु का अनुपात प्रायः उससे हयौढ़ा रहता है । मोटी दृष्टि से देखने पर विवाहितों की जीवनी शक्ति अधिक और अविवाहितों की कम खर्च होती हे इससे विवाहितों की अल्पायु और रोगी रहने की सम्भावना प्रतीत होती है, परन्तु होता इसका ठीक उल्टा है । विवाहित लोग सम्भोगजन्य क्षय, बालकों का भरण-पोषण, अधिक चिन्ता तथा जिम्मेदारी आदि के भार के खींचते हुए भी जितनी आयु और निरोगता प्राप्त करते हैं, अविवाहित लोग उतनी नहीं कर पाते । इसका एक मात्र कारण वासना की अतृप्ति से उत्पन्न हुआ मानसिक उद्वेग है, जो बड़ा घातक होता है, उसकी विषाक्त ज्वाला से सारे जीवन तत्त्व भीतर ही भीतर जल-भुन जाते हैं । चित्त की अस्थिरता और अशान्ति के कारण कोई कहने लायक महान् कार्य भी उनसे सम्पादित नहीं हो पाता । कोई बड़ी सफलता भी नहीं मिल पाती । इस प्रकार विवाहितों की अपेक्षा यह अविवाहित अधिक घाटे में रहते हैं ।

पाठकों को हमारा आशय समझने में भूल न करनी चाहिए । हम ब्रह्मचर्य की अपेक्षा विवाहित जीवन को अच्छा बताने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं । ब्रह्मचर्य एक अत्यन्त उपयोगी और हितकर साधना है । इसके लाभों की कोई गणना नहीं हो सकती । इन पंक्तियों में हम मानसिक असंयम और विवाहित जीवन की तुलना कर रहे हैं । जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य की साधना में अपने को समर्थ न पावें, जो मानसिक वासना पर काबू न रख सकें उनके लिये यही उचित है कि विवाहित जीवन व्यतीत करें । होता भी ऐसा ही है सौ में से निन्यानवे आदमी गृहस्थ जीवन बिताते हैं । इस स्वाभाविक प्रक्रिया में कोई अनुचित बात भी नहीं है ।

यह सोचना ठीक नहीं कि गृहस्थाश्रम में बँधने से आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती । आत्मा को ऊँचा उठाकर परमात्मा तक ले जाना यह पुनीत आत्मिक साधना अन्तःकरण की भीतरी स्थिति से सम्बन्ध रखती है । बाह्य जीवन से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । जिस प्रकार ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ या संन्यासी आत्म-साधना द्वारा जीवन लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं, वैसे ही गृहस्थ भी कर सकता है । सदा सनातक काल से ऐसा होता आया है । अध्यात्म साधकों में गृहस्थ ही हम अधिक देखते हैं । प्राचीन काल के ऋषिगण आज के गैर जिम्मेदार और अव्यवस्थित बाबाजीओं से सर्वथा भिन्न थे । घनी बस्ती न बसाकर स्वच्छ वायु में दूर-दूर घर बनाना, पक्के मकान न बनाकर छोटी झोंपड़ियों में रहना, वस्त्रों से लदे न रहकर शरीर को खुला रखना आदि उस समय की साधारण प्रथायें थी । उस समय के राजा तथा देवताओं के जो चित्र मिलते हैं उससे वे सब भी कटि वस्त्र के अतिरिक्त और कोई कपड़ा पहने नहीं दीखते । यह उस समय की परिपाटी थी । आज जिस वेश-भूषा की नकल करके लोग अपने को साधु, मान लेते हैं वह पहनाव-उढ़ावा, रहन-सहन उस समय में सर्व साधारण का था ।

यह एक बिलकुल ही वे सिर पैर का विचार है कि पुराने समय में ऋषि लोग अविवाहित ही रहते थे । यह ठीक है कि ऋषि मुनियों में कुछ ऐसे भी थे, जो बहुत समय तक अथवा आजीवन ब्रह्मचारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहते थे, पर उसमें से अधिकांश गृहस्थ थे । स्त्री बच्चों के साथ होने से तपश्चर्या में आत्मोन्नति में उन्हें सहायता मिलती थी । इतिहास पुराणों में पग-पग पर इस बात की साक्षी मिलती है कि भारतीय महर्षिगण, योगीयती, साधुी, तपस्वी अन्वेषक, चिकित्सक, वक्ता, रचयिता, उपदेष्टा, दार्शनिक, अध्यापक, नेता आदि विविधि रूपों में अपना जीवन-यापक करते थे और अपने महान् कार्य में स्त्री बच्चों को भी भागीदार बनाते थे ।

आध्यात्मिक मार्ग पर कदम बढ़ाने वाले साधक के आज अज्ञान और अविवेक भरे मूढ़ विश्वासों ने एक भारी उलझन पैदा कर दी है । "आत्म-साधना गृहस्थ से नहीं हो सकती, स्त्री नरक का द्वार है, कुटुम्ब परिवार माया का बन्धन है, इनके रहते भजन नहीं हो सकता, परमात्मा नहीं मिल सकता" इस प्रकार की अज्ञान जन्य भ्रम पूर्ण कल्पनाएँ साधक के मस्तिष्क में चक्कर लगाती हैं । परिणाम यह होता है कि या तो वह आत्म-मार्ग को अपने लिये असम्भव समझ कर उसे छोड़ देता है या फिर पारिवारिक महान्, उत्तरदायित्व को छोड़कर भीख टूक माँग खाने के लिये घर से निकल भागता है । यदि बीच में ही लटका रहा तो और भी अधिक दुर्दशा होती है । परिवार उसे गले में बँधे हुए चक्की के पाट की तरह भार रूप प्रतीत होता है । उपेक्षा, लापरवाही, गैर जिम्मेदारी की दृष्टि से वर्ताव करने के कारण उसके हर एक व्यवहार में कुरूपता एवं कटुता रहने लगती है । स्त्री बच्चे सोचते हैं कि यह हमारे जीवन को दुःखमय बनाने वाला है, शत्रुता के भाव मन में जगते हैं, प्रतिशोध की वृत्तियाँ पैदा होती हैं, कटुता, कलह, घृणा और तिरष्कार के विषैले वातावरण की सृष्टि होती है । उस वातावरण में रहने वाला कोई भी प्राणी स्वस्थता और प्रसन्नता कायम नहीं रख सकता ।

वास्तविक बात यह है कि आत्म-साधना में जो विक्षेप पैदा होता है उसका कारण अपनी कुवासना, संकीर्णता, तुच्छता अनुदारता और स्वार्थपरता है । यह दुर्भाव ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यास जिस भी आश्रम में रहेंगे उसे ही पापमय बना देंगे । इसके विपरीत यदि अपने मन में त्याग, सेवा, सत्यता, सृजनता, एवं उदारता की भावनाएँ विद्यमान हों तो कोई भी आश्रम स्वर्ग दायक, मुक्ति प्रद, परम जाने वाला, हो सकता है । आध्यात्मिक साधकों को अपनी मनत्री, वानप्रस्थ इस भ्रम को पूर्णतया बहिष्कृत कर देना चाहिए कि ग्रहस्थाश्रम कोई छोटा या गिराने वाला धर्म है । यदि समुचित रीति से उसका पालन किया जाये तो ब्रह्मचर्य या संन्यास की तरह वह भी सिद्धदाता प्रमाणित हो सकता है ।

गृहस्थ धर्म जीवन का एक पुनीत, आवश्यक एवं उपयोगी अनुष्ठान है । स्त्री और पुरुष के एकत्रित होने से दो अपूर्ण जीवन एक पूर्ण जीवन का रूप धारण करते हैं । पक्षी के दो पंखों की तरह, रथ के दो पहियों की तरह, स्त्री और पुरुष का मिलन एक दृढ़ता एवं स्थिरता की सृष्टि करता है । शारीरिक और मानसिक तत्त्व के आचार्य जानते हैं कि कुछ तत्वों की पुरुष में अधिकता और स्त्री में न्यूनता होती है इसी प्रकार कुछ तत्व स्त्री में अधिक और पुरुष में कम होते हैं । इस अभाव की पूर्ति दोनों के सहचरत्व से होती है । स्त्री-पुरुष में एक-दूसरे के प्रति जो असाधारण आकर्षण होता है उसका कारण वही क्षति पूर्ति है । मन की सूक्ष्म चेतना अपनी क्षति पूर्ति के उपयुक्त साधनों को प्राप्त करने के लिए विचलित होती है, तब उसे संयोग की अभिलाषा कहा जाता है । अंध और पंगु मिलकर देखने और चलने के लाभों को प्राप्त कर लेते हैं, ऐसे ही लाभ एक-दूसरे की सहायता से दम्पत्ति को भी मिल जाते हैं ।

मूलतः न तो पुरुष बुरा है न स्त्री, दोनों ही ईश्वर की पवित्र कृतियाँ हैं। दोनों में ही आत्मा का निर्मल प्रकाश जगमगाता है । पुरुष का कार्य-क्षेत्र घर से बाहर रहने के कारण उसकी बाह्य योग्यतायें विकसित हो गई हैं, वह बलवान, प्रभावशाली, कमाऊ, और चतुर दिखाई देता है, पर इसके साथ-साथ ही आत्मिक सद्गुणों को इस बाह्य संघर्ष के कारण उसने बहुत कुछ खो दिया है । सरलता, सरसता, बफादारी, आत्म-त्याग, दयालुता, प्रेम तथा वात्सल की वृत्तियाँ आज भी स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक देखी जाती है । मुद्दतों से शिक्षा, दीक्षा, अनुभव एवं सामाजिक कार्य-क्षेत्र से पृथक एक छोटे पिंजड़े से घर में जीवन भर बन्द रहने और अपने जैसी अन्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मूर्खाओं की संगति मिलने के कारण वे बेचारी व्यावहारिक ज्ञान में बहुत कुछ पिछड़ गई हैं तो भी उनमें आत्मिक सद्‌गुण पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक विद्यमान है। उनके सान्निध्य से नरक, पतन, माया, बन्धन जैसे किसी संकट के उत्पन्न होने की आशंका नहीं है । सच तो यह है कि उनके पवित्र अंचल की छाया में बैठकर पुरुष अपनी शैतानी आदतों से बहुत कुछ छुटकारा पा सकता है । उनकी स्नेह गंगा के अमृत जल का आचमन करके अपने कलुष कषायों से पाप तापों से छुटकारा पा सकता है ।

जिनका अन्तःकरण पवित्र है, वे कोमलता की अधिकता के कारण स्त्री में और भी अधिक सत् तत्त्व का अनुभव करते हैं । हजरत मुहम्मद साहब कहा करते थे कि "मेरी स्वर्ग मेरी माता के पैरों तले है ।" महात्मा विलियम का कथन है कि "ईश्वर ने स्त्री के नेत्रों में दो दीपक रख दिए हैं ताकि संसार में भूले-भटके लोग उसके प्रकाश में अपना खोया हुआ रास्ता देख सकें ।" तपस्वी लोवेल ने एक बार कहा था "नारी का महत्त्व मैं इसलिए नहीं मानता कि विधाता ने उसे सुन्दर बनाया है, न उससे इसलिये प्रेम करता हूँ कि यह प्रेम के लिये उत्पन्न की गई है । मैं तो उसे इसलिये पूज्य मानता हूँ कि मनुष्य का मनुष्यत्व केवल उसी में जीवित है ।" दिव्यदर्शी टेलर ने अपनी अनुभूति प्रकाशित की थी कि "स्त्री की सृष्टि में ईश्वरीय प्रकाश है, वह एक मुधर सरिता है जहाँ मनुष्य अपनी चिन्ताओं और दुःखों से त्राण पाता है ।" दार्शनिक लेटो ने कहा है—"सृष्टि के आदि में मनुष्य अपंग था, वह पृथ्वी के एक कोने में पड़ा सिसक रहा था । स्त्री ने ही उसे उठाया और पाल कर बड़ा किया । आज वही कृतध्न उस स्त्रियों को पैर की जूती समझता है।" कवि हारग्रच की अनुभूति है कि स्त्रियाँ भूलोक की कविता हैं । पुरुष के भाग्य का निस्तार उन्हीं के हाथ में है ।" कारलाइल कहा करते थे ।"यदि तुम प्रेम के साक्षात् दर्शन करना चाहते हो तो माता के गद्‌गद् नेत्रों को देखो।" सृष्टि के आरम्भ काल का दिग्दर्शन कराते हुए सन्त केलवैल ने कहा कि—"जब तक आदम अकेला था, तब तक उसे स्वर्ग भी कण्टकाकीर्ण था । देवताओं के गीत, शीतल समीर और ललित वाटिकाएँ उसके लिये सभी व्यर्थ थी, यह सब होते हुए भी वह उदास रहता था और आहें भरता था, परन्तु जब उसे हवा मिल गई तो सारा दुःख दूर हो गया । काँटे फूलों में बदल गये ।"

जिन सन्तों ने अपने पवित्र नेत्रों से नारी को देखा है उन्हें उसमें ईश्वर की सजीव कविता मूर्तिमान दिखाई दी है । जिनकी आँखों में पाप है, उनके लिये बहिन, बेटी और माता की समीपता में ही नहीं, प्रत्येक जड़ चेतन की समीपता में खतरा है । जिनके अंचल में आग बँधी हुई है उसके लिये सर्वत्र अग्निकाण्ड का खतरा है, जिसकी आँखों पर हरा ठंडा चश्मा है उसके लिए कड़ी धूप भी शीतल है । पाठको ! अपना दृष्टिकोण पवित्र बनाओं । विश्वास रखो, राजा जनक की भाँति आज भी गृहस्थ में रहते हुए सच्चे महात्मा बन सकते हैं ।

गृहस्थ योग से परम पद

पुण्य और पाप किसी कार्य के बाह्य रूप के ऊपर नहीं वरन् उस काम को करने वाले की भावना के ऊपर निर्भर है । किसी कार्य का बाहरी रूप कितना ही अच्छा, ऊँचा या उत्तम क्यों न हो परन्तु यदि करने वाले की भीतरी भावनाएँ बुरी हैं तो ईश्वर के दरबार में वह कार्य पाप में ही शुमार होगा । लोगों को धोखा दिया जा सकता है । दुनियाँ को भ्रम या भुलावे में डाला जा सकता है, परन्तु परमात्मा को धोखा देना असम्भव है। ईश्वर के दरबार में काम के बहारी रूप को देखकर नहीं वरन् करने वाले की भावनाओं को परख कर धर्म अधर्म की नाप तोल की जाती है ।

आज हम ऐसे अनेक धूर्तों को अपने आसपास देखते हैं जो करने को तो बड़े-बड़े अच्छे काम करते हैं पर उनका भीतरी उद्देश्य बड़ा ही दूषित होता है । अनाथालय, विधवाश्रम गौशाला आदि पवित्र संस्थाओं की आड़ में भी बहुत से बदमाश आदमी अपना उल्लू सीधा करते हैं । योगी, महात्मा साधु, संन्यासी का बाना पहने अनेक चोर डाकू लुच्चे लफंगे घूमते रहते हैं, यज्ञ करने के नाम पर पैसा बटोर कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कई आदमी अपना घर भर लेते हैं । बाहरी दृष्टि से देखने पर अनाथालय, विधवाश्रम, गौशाला चलाना, साधु, संन्यासी महात्मा उपदेशक बनना, यज्ञ, कूआँ, मन्दिर बनवाना आदि अच्छे कार्य हैं, इनके करने वाले को पुण्यफल मिलना चाहिए, परन्तु वास्तविक बात यह है कि यदि करने वाले की भावनाएँ विकृत हैं तो यह अच्छे काम भी उसकी मुख्य सम्पदा में कुछ वृद्धि न कर सकेंगे । वह व्यक्ति अपने पापमय विचारों के कारण पापी ही बनेगा, पाप का नरक मय दण्ड ही उसे प्राप्त होगा ।

यदि कोई आदमी साधारण काम करता है मामूली व्यक्तियों की तरह जीवन यापन करता है, किन्तु उन साधारण कार्यों में भी उद्देश्य, मनोभाव, और विचार ऊँचे रखता है तो वह साधारण काम भी तपस्या जैसा पुन्य फलदायक हो जाता है । यहीं तक नहीं-बल्कि यहाँ तक भी होता है कि बाहर से दीखने वाले अधर्म युक्त कार्य भी यदि सद्भावना से किये जाते हैं तो वे भी धर्म बन जाते हैं । जैसे हिंसा करना, किसी के प्राण लेना, हत्या या रक्तपात करना प्रत्यक्ष पाप है । परन्तु आततायी, दुष्ट और दुरात्माओं से संसार की रक्षा करने की सद्भावना से यदि दुष्टों को मारा जाता है तो वह पाप नहीं वरन् पुन्य बन जाता है । भगवान कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करके हजारों मनुष्यों को मरवा डाला पर इससे अर्जुन या कृष्ण को कुछ पाप नहीं लगा । राम रावण युद्ध में बड़ा भारी जन-संहार हुआ परन्तु उन दुष्टों को मारने वाले पापी या हत्यारे नहीं कहलाये। यहाँ हिंसा प्रत्यक्ष है तो भी हिंसा करने वाले सद्भावना युक्त थे इसलिए उनके कार्य पुन्य ही हुए। इसी प्रकार झूठ, चोरी, छल आदि भी समयानुसार-सद्उद्देश्य से किये जाने पर धर्ममय ही होते हैं। उन्हें करने वाले को पाप नहीं लगता वरन् पुन्य फल ही प्राप्त होता है ।

उपरोक्त पंक्तियों को पढ़कर पाठकों को किसी भ्रम में न पड़ना चाहिए । हम सत्कर्मों की निन्दा या असत् कार्यों की प्रशंसा नहीं कर रहे हैं । हमारा तात्पर्य तो केवल यह कहने का है कि काम का बहारी रूप कैसा है, इससे दुनियाँ की स्थूल दृष्टि ही कुछ समय के लिए चकाचौंध में पड़ सकती है । पर परमात्मा प्रसन्न नहीं हो सकता । आत्मा और परमात्मा के समक्ष तो भावना प्रधान है । संसार के लोगों की सूक्ष्म बुद्धि भी भावना को ही महत्त्व देती है । यदि किसी ने अपने किसी स्वार्थ-साधक के लिये कोई प्रीति भोज दिया हो या और कोई ऐसा काम किया हो तो जब लोगों को असली बात का पता चलता है तो लोग उसकी चालाकी के लिये मन ही मन मुसकराते हैं, कनखिया लेते हैं और मसखरी उड़ाते हैं, धर्मात्मा की बजाय उसे चालाक ही समझा जाता है । अब दूसरी ओर चलिये किसी आदमी द्वारा भूल से, मजबूरी से, या गैर जानकारी से कोई अनुचित बात हो जाती है और जानकारी होने पर पता चलता है तो उस अनुचित बात के लिये भी क्षमा कर दिया जाता है । अदालतें भी अपराधी की नीयत पर मुख्यतया ध्यान रखती है । यदि अपराधी की नीयत बुरी न साबित हो तो अपराधी को कठोर दण्ड का भागी नहीं बनना पड़ता ।

जीवन के हर एक काम की अच्छाई, बुराई कर्त्ता की भावना के अनुरूप होती है । जीवन भले ही सादा हो, पर यदि विचार उच्च हैं तो जीवन भी उच्च ही माना जायगा । रुपये-पैसे या काम के बड़े आडम्बर से पुण्यफल का विशेष सम्बन्ध नहीं है । एक अमीर आदमी रुपये के बल से बड़े-बड़े ब्रह्मभोज, पूजा-पाठ, तीर्थ-यात्रा, कथा-पुराण, मन्दिर-मठ, कुआ-बावड़ी, सदावर्त, यज्ञ-हवन आदि की व्यवस्था आसानी से कर सकता है । दस लाख रुपया अनुचित रीति से कमा कर दस हजार रुपया इस प्रकार के कार्यों में लगाकर धर्मात्मा बनता है । दूसरी ओर एक गरीब आदमी जो ईमानदारी की मेहनत मजदूरी करता है, वह थोड़े से पैसे कमाता है जिससे कुटुम्ब का भरण-पोषण कठिनाई से हो पाता है बचता कुछ नहीं, ऐसी दशा में वह बेचारा भला ब्रह्मभोज, तीर्थ-यात्रा, यज्ञ-अनुष्ठान आदि की व्यवस्था किस प्रकार कर पावेगा ? यदि वह नहीं कर पाता है तो क्या वह धर्महीन ही रह जायेगा ? क्या दुनियाँ की भौतिक चीजों की भाँति ही पुण्यफल भी रुपयों से ही खरीदा जाता है ?

इन प्रश्नों की मीमांसा करते हुए पाठकों को यह बात भली प्रकार हृदयगंम कर लेनी चाहिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि--पुण्य का पैसे से कोई सम्बन्ध नहीं है । पुन्य तो भावना से खरीदा जाता है । आध्यात्मिक क्षेत्र में रुपये की तूती नहीं बोलती वहाँ तो भावना की प्रधानता है । दम्भ, अहंकार, नामवरी, वाहवाही, पूजा, प्रतिष्ठा के प्रदर्शन के लिए धर्म के नाम पर करोड़ रुपये खर्च करने पर भी उतना पुन्यफल नहीं मिल सकता जितना कि आत्मत्याग, श्रद्धा एवं सच्चे अन्तःकरण से रोटी का एक टुकड़ा देने पर प्राप्त होता है । स्मरण रखिये--सोने की सुनहरी चमक और चाँदी की मधुर चमचमाहट आत्मा को ऊँचा उठाने में कुछ विशेष सहायक नहीं होती । आत्मिक क्षेत्र में गरीब और अमरी का दर्जा बिलकुल बराबर है, वहाँ सबके पास समान वस्तु है, समान साधन है । भावना हर गरीब-अमीर को प्राप्त है, उसी की अच्छाई-बुराई के ऊपर पुन्य-पाप की सारी दारोमदार है । घटनाओं का घटाटोप, चौंधिया देने वाला प्रदर्शन, बड़े-बड़े कार्यों के विराट आयोजन रंगीन बादलों से बने हुए आकाश चित्रों की भाँति मनोरंजक तो हैं, पर उनका अस्तित्व कुछ नहीं । सच्चे हृदय से किये हुए एक अत्यन्त छोटे और तुच्छ दीखने वाले कार्य का जितना महत्त्व है उतना दम्भपूर्वक किये हुए बड़े भारी आयोजन का किसी प्रकार नहीं हो सकता । "भावना की सच्चाई और सात्विकता के साथ आत्म-त्याग और कर्त्तव्य पालन" यही धर्म का पैमाना है । इस भावना से प्रेरित होकर काम करना ही पुण्य है । सद्भावना जितनी ही प्रबल होगी आत्म-त्याग उतना ही बड़ा होगा । पैसे वाला अपने पैसे को लगावेगा, जी खोलकर सत्कार्य में लगावेगा, इसी प्रकार गरीब के पास जो साधन है, उसको ईमानदारी के साथ खर्च करेगा ।

लोग ऐसा समझते हैं कि धर्म-साधना के लिए, पुण्यफल प्राप्त करने के लिए, आत्मोन्नति के लिए, ईश्वर प्राप्ति के लिए, स्वर्ग या मुक्ति की उपलब्धि के लिए, किन्हीं विशिष्ट विचित्र या असाधारण कार्यों का आयोजन करने की आवश्यकता होती है । अमुक प्रकार की वेश-भूषा अमुक प्रकार का रहन-सहन, अमुक प्रकार का साधन भक्तिप्रद है, यह मानना बिलकुल गलत है । वेष-भूषा, रहन-सहन, साधक की सुविधा के लिए है, जिससे उसे आसानी रहे, इनके द्वारा सिद्धि किसी को नहीं मिलती । यदि वेश या रहन-सहन से ही सिद्धि मिलती होती तो आज जो साधु नामधारी लाखों कर्महीन भिखमंगे इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं मुक्ति के अधिकारी हो गये होते। अनेक प्रकार की आत्मिक साधनाएँ, अनेक प्रकार के मानसिक व्यायाम हैं जिनके द्वारा मनोभूमि को, भावना-क्षेत्र को निर्मल, पवित्र एवं सात्विक बनाया जाता है । आत्मोन्नति की असंख्य साधनाएँ हैं सभी लाभप्रद हैं, क्योंकि किसी भी रास्ते से सही भावना को उच्च बनाना है, यदि मनोभूमि उच्च न बने तो साधना निरर्थक है । साधना एक औजार मात्र है। उसको विवेकपूर्वक काम में लाने से इच्छित वस्तु का निर्माण हो सकता है, पर यदि विवेकपूर्वक न किया हो तो साधना निरर्थक है । अमुक पुस्तक का पाठ करने, मन्त्र जपने या अभ्यास करने से यदि मनोभूमि निर्मल बनती हो तो आत्मोन्नति होगी पर रूढ़ि की तरह अन्धविश्वासपूर्वक अविवेक के साथ किसी मन्त्र या पुस्तक को रटते रहा जाय, अमुक प्रकार से काया-कष्ट सहते रहा जाय तो उससे कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । जीवन लक्ष्य को प्राप्त करना आत्मिक पवित्रता द्वारा ही सम्भव है । उस पवित्रता के लिये अनेकों असंख्यों साधन हैं । जिनमें से देश, काल, पात्र को देखते हुए बुद्धिमान व्यक्ति अपने लिए उपयुक्त वस्तु चुन लिया करते हैं । जैसे एक ही कसरत सबके लिये अनिवार्य नहीं है । उसी प्रकार एक ही साधन हर ममक्ष के लिए आवश्यक नहीं है । शरीर, ऋतु, खुराक, पेशा आदि को देखकर ही चतुर व्यायाम विशारद अपने शिष्यों को भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यायाम कराते हैं, उसी प्रकार आत्म-तत्वदश आचार्य भी असंख्यों योगों में से उपयुक्त योग का अपने अनुयायियों के लिए चुनाव करते हैं ।

कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को छोड़कर साधारण श्रेणी के सभा पाठकों के लिये हम ग्रहस्थयोग की साधना को बहुत ही उपयुक्त, सुलभ एवं सुख साध्य समझते हैं । गृहस्थ योग की साधना भी राजयोग, जपयोग, लययोग आदि की ही श्रेणी में आती है । उचित रीति से इस महान् व्रत का अनुष्ठान करने पर मनुष्य जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। जैसे कोलतार पोत देने पर हर वस्तु काली और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कलई पोत देने पर सफेद हो जाती है उसी प्रकार योग की, साधना की, परमार्थ की, अनुष्ठान की दृष्टि रखकर कार्य करने से वे कार्य साधनामय परमार्थप्रद हो जाते हैं । अहंकार, तृष्णा, भोग, मोह आदि का भाव रखकर कार्य करने से उत्तम से उत्तम कार्य भी निकृष्ट परिणाम उपस्थित करने वाले होते हैं । घर गृहस्थी के संस्थान को सुव्यवस्थित रूप से चलाने में भावनाएँ यदि ऊँची, पवित्र, निस्वार्थ और प्रेममय रखी जावें तो निस्संदेह यह कार्य अतीव सात्विक एवं सद्गत प्रदान करने वाला बन सकता है। अपनी आत्मा ही अपने को ऊँचा या नीचा ले जाती हैं । यदि आत्मनिग्रह, आत्म-त्याग, आत्मोत्सर्ग के साथ अपने जीवन-क्रम को चलने दिया जाय तो इस सीधे-साधे तरीके की सहायता से ही मनुष्य परम पद को प्राप्त कर सकता है ।

गृहस्थ योग के कुछ मन्त्र

पिछले पृष्ठों पर बताया जा चुका है कि परमार्थ और स्वार्थ, पुण्य और पाप, धर्म, अधर्म यह किसी कार्य विशेष पर निर्भर नहीं, वरन् दृष्टिकोण पर अवलम्बित है। दुनिया का स्थूल बुद्धि-कार्यों का रूप देखकर उसकी अच्छाई-बुराई का निर्णय करती हैं, परन्तु परमात्मा के दरबार में काम के बाहरी रूप का कुछ महत्त्व नहीं वहाँ तो भावना ही प्रधान है । भावना का आरोपण मनुष्य की आन्तरिक पवित्रता से सम्बन्धित है । बनावट, धोखेबाजी और प्रवंचना बाहर तो चल सकती है पर अपनी आत्मा के सामने नहीं चल सकती । अन्तःकरण स्वयमेव जान लेता है कि अमुक कार्य किस दृष्टिकाण से किया जा रहा है, वहाँ कोई छिपावा या दुराब काम नहीं दे सकता । वरन् जो बात सत्य है वह ही मनोभूमि में स्वच्छ पट्टिका पर स्पष्ट रूप से अंकित होती है । जिस कार्य प्रणाली के द्वारा अन्तःकरण में आत्म त्याग, सेवा, प्रेम एवं सद्भाव का संचार होता हो वह कार्य सच्चा और पक्का परमार्थ है । वह कार्य निस्संदेह स्वर्ग और मुक्ति की ओर ले जाने वाला होगा, चाहे उस कार्य का बाह्य रूप कैसा ही साधारण या असाधारण सीधा या विचित्र, छोटा या बड़ा क्यों न हो ।

गृहस्थ संचालन के सम्बन्ध में भी दो दृष्टिकोण हैं । एक तो ममता, मालिकी, अहंकार और स्वार्थ का, दूसरा आत्मत्याग, सेवा, प्रेम और परमार्थ का । पहला दृष्टिकोण बन्धन, पतन पाप और नरक की ओर ले जाने वाला है । दूसरा दृष्टिकोण मुक्ति, उत्थान, पुन्य और स्वर्ग को प्रदान करता है । शास्त्रकारों ने, सन्त पुरुषों ने, जिस गृहस्थ की निन्दा की है, बन्धन बताया है और छोड़ देने का आदेश दिया है वह आदेश स्वर्ग मय दृष्टिकाण के सम्बन्ध में है । परमार्थमय दृष्टिकोण का ग्रहस्थ तो अत्यन्त उच्चकोटि का आध्यात्मिक साधना है । उसे तो प्रायः सभी ऋषि, मुनि, महात्मा, योगी, यती, तथा देवतओं ने अपनाया हो और उसकी सहायता से आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है । इस मार्ग को अपनाने से उनमें से न तो किसी को बन्धन में पड़ना पडना और न नरक को जाना पड़ा । यदि ग्रहस्थ बन्धन कारक, नरकमय होता तो उससे पैदा होने वाले बालक पुण्यमय कैसे होते । बडे.-बड़े योगी यती इस मार्ग को क्यों अपनाते ? निश्चय ही गृहस्थ धर्म एक परम पवित्र, आत्मोन्नति कारक, जीवन को विकसित करने वाला, धार्मिक अनुष्ठान है, एक सत् समन्वित आध्यात्मिक साधना है । गृहस्थ का पालन करने वाले व्यक्ति को ऐसी हीन भावना मन में लाने की कुछ भी आवश्यकता नहीं हैं कि वह अपेक्षाकृत नीचे स्तर पर है या आत्मिक क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है या कमजोर है । अविवाहित जीवन और विवाहित जीवन में तत्वतः कोई अन्तर नहीं है । यह अपनी-अपनी रुचि और कार्य प्रणाली की बात है, जिसे जिसमें सुविधा पड़ती हो वह वैसा करे । जिसका कार्यक्रम देशाटन का हो उन्हें स्त्री बच्चों का झंझट पालने की आवश्यकता नहीं, परन्तु जिन्हें एक स्थान पर रहना हो उसके लिये विवाहित होने ही में सुविधा है । इसमें पिछड़े हुए और बढ़े हुए की कुछ चीज नहीं, दोनों का दर्जा बिल्कुल बराबर है । मानसिक स्थिति और कार्य प्रणाली के आधार पर तुच्छता और महानता होती है । जहाँ भी ऊँचा दृष्टिकोण होगा, वहाँ ही महानता होगी ।

जीवन का परम लक्ष्य आत्मा को परमात्मा में मिला देना है, व्यक्तिगत स्वार्थ को प्रधानता न देते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुए लोकहित की भावना से काम करना, वही आध्यात्मिक साधना है । इस साधना को क्रियात्मक जीवन में लाने के लिये भिन्न-भिन्न तरीके हो सकते हैं । उन तरीकों में से एक तरीका गृहस्थ योग भी है । बालक घर में से ही प्रारम्भिक क्रियाएँ सीखता है । जीवन के लिये जितने काम चलाऊ ज्ञान की आवश्यकता है उनका आधे से अधिक भाग घर में ही प्राप्त होता है । हमारी आत्मिक साधना भी घर से आरम्भ होनी चाहिए । जीवन को उच्च, उन्नत, संस्कृत, संयमित, सात्विक, सेवामय एवं परमार्थ पूर्ण बनाने की सबसे अच्छी प्रयोगशाला अपना घर ही हो सकता है । स्वाभाविक प्रेम, उत्तरदायित्व, कर्त्तव्य पालन, परस्पर अवलम्बन, आश्रय, स्थान, स्थिर क्षेत्र, लोक लाज आदि अनेक कारणों से वह क्षेत्र ऐसा सुविधाजनक हो जाता है कि आत्मत्याग और सेवामय दृष्टिकोण के साथ काम करना इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक सरल होता है।

गृहस्थ योग के साधक के मन में यह विचारधारा चलती रहनी चाहिए कि– यह परिवार मेरा साधन क्षेत्र है । इस वाटिका को सब प्रकार सुन्दर, सुरभित और पल्लवित बनाने के लिये सच्चे हृदय से सदा शक्ति भर प्रयत्न करते रहना मेरा कर्मकाण्ड है । भगवान ने जिस वाटिका को सींचने का भार मुझे दिया है, उसे ठीक तरह सीचते रहना मेरी ईश्वर परायणता है । घर का कोई भी सदस्य ऐसा हीन दर्जे का नहीं है जिसे मैं तुच्छ समझूँ, उपेक्षा करूँ या सेवा से जी चुराऊँ, मैं मालिक, नेता, मुखिया या कमाऊ होने का अहंकार नहीं करता यह मेरा आत्म निग्रह है । हर एक सदस्य के विकास में अपनी सेवाएँ लगाते रहना मेरा परमार्थ है । बदले की जरा-सी भी इच्छा न रख कर विशुद्ध कर्त्तव्य भाव से सेवा में तत्पर रहना मेरा आत्म-त्याग है । अपनी सुख-सुविधाओं की परवाह न करते हुए, औरों को सुख-सुविधा बढ़ाने का प्रयत्न करना मेरा तप है । घर के हर सदस्य को सद्गुणी, सत् सुख स्वभाव का, सदाचारी एवं धर्म परायण बना कर विश्व की सुख शान्ति में वृद्धि करना मेरा यज्ञ है । सबके हृदयों पर जिसका मौन उपदेश हो, अनुकरण से सुसंस्कार बनें, अपना आचरण ऐसा पवित्र एवं आदर्शमय रखना मेरा व्रत है । धर्म उपार्जित अन्न से जीवन निर्वाह करना और कराना यह मेरा संयम है । प्रेम उदारता सहानुभूति की भावना से ओत-प्रोत रहना और रखना, प्रसन्नता, आनन्द और एकता की वृद्धि करना मेरी आराधना है । मैं अपने गृह-मन्दिर में भगवान की चलती-फिरती प्रतिमाओं के प्रति अगाध भक्ति-भावना रखता हूँ । सद्गुण, सत् स्वभाव और सत् आचरण के दिव्य शृंगार से इन प्रतिमाओं को सुसज्जित करने का प्रयत्न ही मेरी पूजा है। मेरा साधन सच्चा है, साधना के प्रति मेरी भावना सच्ची है, अपनी आत्मा के सम्मुख में सच्चा हूँ । सफलता-असफलता की जरा भी परवाह न करके सच्चे निष्काम कर्मयोगी की भाँति मैं अपने प्रयत्न की सच्चाई में संतोष अनुभव करता हूँ । मैं सत्य हूँ, मेरी साधना सत्य है । मैंने सत्य का आश्रय ग्रहण किया है, उसे सत्यता पूर्वक निभाहने का प्रयत्न करूँगा ।

उपरोक्त मन्त्र हर गृहस्थ योगी को भली प्रकार हृदयंगम कर लेना चाहिये । दिन में कई बार इस मन्त्र को दुहराना चाहिए । एक छोटे कार्ड पर सुन्दर अक्षरों में लिख कर इस मन्त्र को अपने पास रख लेना चाहिये और जब भी अवकाश मिले एक-एक शब्द का मनन करते हुए इस मन्त्र को पढ़ना चाहिये हो सके तो अक्षरों में लिख कर सुन्दर चित्र की भाँति इसे अपने कमरे में लगा लेना चाहिए । प्रातः निद्रा त्यागने पर पलंग पर पड़े-पड़े ही कई बार इस मन्त्रों को मन ही मन दुहराना चाहिए और निश्चय करना चाहिए कि आज दिन भर इन भावनाओं को अधिक से अधिक मात्रा में कार्य रूप में परिणित करने का प्रयत्न करूँगा । परिवार वालों के साथ व्यवहार करते समय मन्त्र की भावना का सतर्कता पूर्वक ध्यान रखूँगा । इस निश्चय के साथ शय्या त्याग करने का असर दिन भर रहता है । प्रातःकाल जो आदेश अन्तर्मन को दिये हैं अधिक गहरे उतर जाते हैं, वे जल्दी विस्मरण नहीं होते और यथा अवसर में ठीक समय पर स्मरण हो आते हैं । इसलिए प्रातःकाल इस मन्त्र को नियमित रूप से अवश्य ही दुहराना चाहिए ।

"मैं गृहस्थ योगी हूँ । मेरा जीवन साधनामय है । दूसरे कैसे हैं क्या करते हैं, क्या सोचते हैं, क्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहते हैं इसकी मैं तनिक भी परवाह नहीं करता । अपने आप में सन्तुष्ट रहता हूँ । मेरी कर्त्तव्य पालन की सच्ची साधना इतनी महान् है, इतनी शान्तिदायनी, इतनी तृप्तिकारक है कि उसमें मेरी आत्मा आनन्द में सराबोर हो जाती है। मैं अपनी आनन्दमयी साधना को निरन्तर जारी रखूँगा । गृह क्षेत्र में परमार्थ भावनाओं के साथ ही काम करूँगा । यह संकल्प दृढ़ता पूर्वक मन में जमा रहना चाहिए । जब भी मन विचलित होने लगे, जब भी पैर पीछे डिगने की सम्भावना प्रतीत हो तभी इस संकल्प को मनोयोग पूर्वक दृढ़ करना चाहिए ।

रात्रि को सोने से पूर्व दिन भर के कार्यों पर विचार करना चाहिए । (१) आज परिवार से सम्बन्ध रखने वाले क्या-क्या कार्य किये ? (२) उसमें क्या भूल हुई ? (३) स्वार्थ से प्रेरित होकर क्या अनुचित कार्य किया ? (४) भूल के कारण क्या अनुचित काम हुआ ? (५) क्या-क्या कार्य अच्छे, उचित और गृहस्थ योग की मान्यता के अनुरूप हुए ? इन पाँच प्रश्नों के अनुसार दिन भर के पारिवारिक कार्यों का विभाजन करना चाहिए और आगे से त्रुटियों के सुधार का उपाय सोचना चाहिए । (१) भूल की तलाश करना, (२) उसे स्वीकार करना, (३) गलती के लिए लज्जित होना और (४) उसे सुधारने का सच्चे मन से प्रयत्न करना यह चार बातें जिसे पसन्द हैं, जो इस मार्ग पर चलता है, उसकी गलतियाँ दिन-दिन कम होती जाती हैं और वह शीघ्र ही दोषों से छुटकारा पा लेता है ।

गृहस्थ योग की साधना के मार्ग पर चलते हुए साधक के मार्ग में नित नई कठिनाइयाँ आती रहती हैं । कभी अपनी भूल से, कभी दूसरों की भूल से, ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती है जिनका नियत सिद्धान्त से मेल नहीं खाता । इच्छा रहती है कि अपना हर एक आचरण ठीक रहे, हर एक क्रिया सिद्धान्तानुकूल हो, परन्तु अक्सर भूलें होती रहती हैं, साधक कुछ दिन तक सोचता है कि दस बीस दिन में या महीने में यह दूर हो जायेंगी और मेरी सम्पूर्ण क्रियायें सिद्धान्ताकूल होने लगेंगी, पर जब काफी समय बीत जाता है और तब भी भूलें समाप्त नहीं होती तो चिन्ता, निराशा और पराजय की भावनाएँ मन में घूमने लगती हैं । साधक सोचता है, इतने दिन से प्रयत्न कर रहा हूँ पर स्वभाव पर विजय नहीं मिलती, नित्य गलतियाँ होती है, ऐसी दशा में साधना चल नहीं सकती । कभी सोचता है हमारे घर वाले उजड्ड, गँवार, मूर्ख और कृतघ्न हैं यह लोग मुझे परेशान एवं उत्तेजित करते हैं और मेरे जीवन को साधन की नियत दिशा में नहीं चलने देते तो साधन व्यर्थ है । इस प्रकार के निराशाजनक विचारों से प्रेरित होकर वह अपने व्रत को छोड़ देता है ।

उपरोक्त कठिनाई से हर साधक को आगाह हो जाना चाहिए । मनुष्य स्वभाव में त्रुटियाँ और कमजोरियाँ रहना निश्चित है । जिस दिन मनुष्य पूर्ण रूपेण त्रुटियों से परे हो जायेगा, उसी दिन वह परम पद को प्राप्त कर लेगा, जीवन मुक्त हो जायेगा । जब तक उस मंजिल तक नहीं पहुँच जाता, जब तक मनुष्य योनि में है, देव योनि से पीछे है, तब तक यही मानना पड़ेगा कि मनुष्य त्रुटि पूर्ण है । जहाँ कई ऐसे व्यक्तियों का सम्मिलन है जिसमें कोई तो आत्मि भूमिका में बहुत आगे कोई बहुत पीछे हैं ऐसे क्षेत्र में नित नई त्रुटियों का, कठिनाइयों का सामने आना स्वाभाविक है । इनमें से कुछ अपनी गलती के कारण उत्पन्न हुई होंगी, कुछ अन्यों की गलती से । यह क्रम धीरे-धीरे दूर तो होता जाता है पर यह कठिन है कि अपना परिवार पूर्ण रूपेण देव परिवार हो जाय इसके लिये बहुत कठिनाई से डरने घबराने या विचलित होने की कुछ भी आवश्यकता नही है । साधना का अर्थ ही–"त्रुटियों के सुधार का अभ्यास" है । अभ्यास को निरन्तर जारी रखना चाहिए । योगीजन नित्य प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा-ध्यान आदि की साधना करते हैं, क्योंकि उनकी मनोभूमि अभी दोष-पूर्ण है ।

जिस दिन उनके दोष सर्वथा समाप्त हो जायँगे उसी दिन, उसी क्षण वे ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त कर लेंगे । दोषों का सर्वथा अभाव यह अन्तिम सीढ़ी का सिद्ध अवस्था का लक्षण है । वहाँ तक पहुँच जाने पर तो कुछ करना ही बाकी नहीं रह जाता । साधकों को यह आशा न करनी चाहिये कि थोड़े ही समय में इच्छित भावनाएँ पूर्ण रूप से क्रिया में आ जायेंगी । विचार क्षण भर में बन जाता है, पर उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संस्कार का रूप धारण करने में बहुत समय लगता है हथेली पर सरसों नहीं जमती । पत्थर पर निशान करने के लिए रस्सी की रगड़ बहुत समय तक जारी रहनी चाहिए । स्मरण रखिए दोषों से सर्वथा मुक्ति लक्ष्य है, ध्येय है, सिद्ध अवस्था है । साधक आरम्भिक लक्षण यह नहीं है । आम का पौधा उगते ही यदि मीठे आम तोड़ने के लिए उसके पत्तों को टटोलेंगे तो मनोकामनापूर्ण न होगी ।

गृहस्थ योग की अपनी साधना आरम्भ करते हुए आप इस बात के लिए कमर कस कर तैयार हो जाइए कि भूलों, त्रुटियों, कठिनाइयों और असफलताओं का आपको नित्य सामना करना पड़ेगा, नित्य उनसे लड़ना पड़ेगा, नित्य उनका संशोधन और परिमार्जन करना होगा और अन्त में एक न एक दिन सारी कठिनाइयों को परास्त कर देना होगा । जैसे भूख, निद्रा, मल त्याग आदि नित्य कर्मों को रोज करते हैं तो भी दूसरे दिन फिर उनकी जरूरत पड़ती है, इस रोज-रोज के झमेले से कोई निराश या अनुत्साहित नहीं होता वरन् धैर्य पूर्वक नित्य ही उसकी व्यवस्था की जाती है । इसी प्रकार ग्रहस्थ योग की साधना में अपनी या दूसरों की कमजोरी से जो भूलें हों उनसे डरना या निराश न होना चाहिए वरन् अधिक दृढ़ता एवं उत्साह से परिमार्जन का धैर्य पूर्वक प्रयत्न करते रहना चाहिए ।

पूर्ण रूप से सुधार हुआ है या नहीं, यह देखने की अपेक्षा यह देखना चाहिए कि पहले की अपेक्षा सात्विकता में कुछ वृद्धि हुई है या नहीं ? यदि थोड़ी बहुत भी बढ़ोत्तरी हुई हो तो यह आशा, उत्साह, प्रसन्नता और सफलता की बात है । बूँद-बूँद से घड़ा भर जाता है कन-कन जोड़ने से मन जमा हो जाता है, राई-राई इकट्ठा करने से पवर्त बन जाता है, यदि प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी सफलता भी मिले तो हमारे शेष जीवन के असंख्य दिनों में वह सफलता बड़ी भारी मात्रा में जमा हो सकती है । यह सम्पत्ति किसी प्रकार नष्ट होने वाली नहीं हैं । यह जमा होने का क्रम अगले जन्म में भी जारी रहेगा और लक्ष्य तक एक न एक दिन पहुँच ही जायेगा, धीरे–धीरे सफलता मिले तो अधिक उत्साह से काम करना चाहिए । निाश होकर छोड़ बैठने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

आप जब आत्म-निरीक्षण द्वारा अपनी भूलों को देखें तो देखकर निराश न हों वरन् इस भावना को मनः क्षेत्र में स्थान दें वीर योद्धा की तरह मैं जीवन युद्ध में रत हूँ । चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते समय के जो बुरे संस्कार अभी हम लोगों में लगे हुए शेष रह गये हैं, वे बार-बार मार्ग में विघ्न उपस्थित करते हैं, कभी मैं गलती कर बैठता हूँ कभी दूसरे गलती कर देते हैं, आये दिन ऐसे विघ्न सामने आते रहते हैं, परन्तु मैं उससे जरा भी विचलित नहीं होता, मैं नित्य इन कठिनाइयों से लडूँगा । ठोकर या चोट खाकर भी चुप न बैठूँगा । गिर पड़ने पर फिर उठूँगा और धूलि झाड़कर फिर युद्ध करूँगा । लड़ने वाला ही गिरता ओर घायल होता है, कुसंस्कार यदि मुझे गिरा देते हैं तो भी मुझे उनके विरुद्ध युद्ध जारी ही रखना चाहिए । मैं सत्य मार्ग का पथिक हूँ सच्चिदानन्द आत्मा हूँ, अपने और दूसरों के कुसंस्कारों से निरन्तर युद्ध जारी रखना और उन्हें परास्त कर देने तक दम न लेना ही मेरा कर्त्तव्य है । मैं अपने संकल्प, व्रत, साधना और उद्देश्य के प्रति सच्चा हूँ । अपनी सच्चाई की रक्षा करूँगा और इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करके रहूँगा । भूलों को नित्य परखने, पकड़ने और उन्हें हटाने का कार्य में सदा एक रस उत्साह के साथ जारी रखूँगा ।

उपरोक्त मन्त्र को सफलता के निरीक्षण के साथ मनन करना चाहिए । इससे निराशा नहीं आने पाती । गृहस्थ योग के मूल-भूत सिद्धान्तों का बीज मन्त्र, दृढ़ता का संकल्प और त्रुटियों से धर्म युद्ध जारी रखने की प्रतिज्ञा यह तीनों ही महामन्त्र साध की मनोभूमि में खूब गूंजने चाहिये । अधिक से अधिक समय इन विचारधाराओं में ओत-प्रोत रहना चाहिए ।

परिवार की चतुर्विधि पूजा

स्वाथ बुद्धि से व्यवहृत होने वाले गृहस्थ को माया बंधन कहा गया है, "मैं घर का स्वामी हूँ । घर के प्रत्येक सदस्य को मेरी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये, प्रत्येक को मेरी इच्छानुसार चलना चाहिए, प्रत्येक को मेरी मर्जी और सुविधा का आचरण करना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए । मैं जिस तरह रखना चाहूँ उस तरह रहना चाहिये'' इस प्रकार की इच्छा और आकांक्षाओं को लेकर जो गृहस्थ में प्रवेश करता है, उसे निस्सन्देह उसमें नरक, दुःख, क्लेश, भार बन्धन या माया के अतिरिक्त ओर कुछ दिखाई नहीं पड़ता । यह सम्भव नहीं कि सब लोग अपनी मन मर्जी के बन जावें । गुण-कर्म और स्वभाव की भिन्नता हर मनुष्य में पाई जाती है, अनेक जन्मों के संचित संस्कारों के समूह द्वारा स्वभाव बनता है, प्रयत्न करने पर उसमें सुधार तो हो जाता है पर यह सम्भव नहीं कि कोई प्राणी अपनी मौलिकता को बिलकुल खो दे । हर व्यक्ति की रुचि–इच्छा, वृत्ति, भावना एवं प्रवृत्ति भिन्न होती है, मिट्टी के पुतले की तरह चुपचाप हर एक आज्ञा को मन, वचन और कर्म से कोई शिरोधार्य करले यह सम्भव नहीं । इस प्रकार कुछ न कुछ मतभेद रहे ही, अपने स्वार्थों का संघर्ष नहीं मिट सकता है, इस प्रकार आपकी आज्ञा मानने में जहाँ उसके निजी स्वभाव में स्वार्थ में संघर्ष होता होगा वह व्यक्ति आज्ञा पालने में आनाकानी करेगा । इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि अपनी मर्जी यदि परिवारिक स्थिति की अपेक्षा बहुत आगे बढ़ गई तो भी दूसरे उसे मानने में तत्पर न होंगे । ऐसी दशा में जो असन्तोष, मन मुटाव, क्रोध, कलह एवं संघर्ष होगा वह अशान्ति का कारण बनेगा । घर में दुःख ही दुःख दिखाई देगा ।

ऐसी दुःखदायी स्थिति उत्पन्न न होने पाये इसके लिये समझौते की नीति से काम लेना पड़ता है । अपनी मर्जी पर अड़ने, या उसे दूसरों पर बलात् थोपने की अपेक्षा अपंने आपको नरम बनना पड़ता है जिस सीमा तक कोई दुष्परिणाम उपस्थित न होता हो उस सीमा तक समझौता कर लेना चाहिए । यह ठीक है कि घर के लोगों को ठीक मार्ग पर रखना अपन कर्त्तव्य है । पर यह भी ठीक है कि पूर्ण रूप से किसी को तत्काल इच्छानुवर्ती बना लेना भी सुगम नहीं । थोड़ा झुकने से ही काम चलता है । समझौते की नीति से गुजर होती है । सरकस के लिये जानवरों को सधाने वाले मास्टर जानते हैं कि उजड्ड जंगली जानवरों को रास्ते पर लाने में इच्छित खेल सिखाने में, कितनी देर लगती है, कितना नरम गरम होना पड़ता है। बिलकुल कड़ाई और बिलकुल ढील यह दोनों ही बातें उपयोगी नहीं । बीच के रास्ते से चलना, उदारता और सहनशीलता के आधार पर काम करना ही हितकर होता है इसी आधार पर घर की सुख-शान्ति कायम रह सकती है ।

शान्ति, सन्तोष और व्यवस्था कायम रखने का तरीका यह है कि आत्म त्याग की नीति को प्रधानता दी जाय । आप अपना उदाहरण ऐसा रखें, जिसे देखकर घर के अन्य लोगों को भी आत्म-त्याग की प्रेरणा मिले । ''मुझे कम आपको ज्यादा'' यह भाव जितनी ही प्रधानता प्राप्त करेंगे उतनी ही शान्ति और सुव्यवस्था कामय रहेगी । गृहस्थ योगी को अपने को एक निस्वार्थ, निष्पक्ष एवं सद्भावी सेवक के रूप में घर वालों के सामने उपस्थित करना चाहिए । घरके लोगों से मुझे क्या लाभ मिलता है ? यह लोग मेरे आत्म–त्याग की कद्र करते हैं या नहीं ? इन प्रश्नों को मन में कभी प्रवेश न करने देना चाहिए । वरन् सदा यह सोचना चाहिए कि एक ईमानदार माली की तरह मैं अपनी वाटिका को सुरभित बनाने में शक्ति भर प्रयत्न करता हूँ या नहीं ? अपनी योग्यता और सामर्थ्य में से कुछ चुराता तो नहीं हूँ ? मेरी निस्वार्थता और निष्पक्षता में किसी प्रकार कमी तो नहीं आ रही है ? कर्त्तव्य–पालन में किसी प्रकार का आलस्य या प्रमाद तो नहीं हो रहा ? यदि इन प्रश्नों का सन्तोषजनक, उत्तर मिलता हो तो यह बड़ी ही आनन्ददायक और शान्तिप्रद बात समझी जानी चाहिये । प्रशंसा होती है या नहीं ? कोई अहसान मिलता है या नहीं ? सफलता मिलती है या नहीं ? ऐसे प्रश्नों का लेखा लेना अपनी साधना को चौपट करना है । इन प्रश्नों का सन्तोषजनक या असंतोषजनक उत्तर देना दूसरों के हाथ की बात है । साधक को अपनी प्रसन्नता दूसरों के हाथ नहीं बेचनी चाहिए ? दूसरों के कुछ देने से प्रसन्नता मिले, यह एक कंगाली की स्थिति है । हमें आनन्द का स्रोत अपनी आत्मा में ढूँढ़ना चाहिये । यदि ठीक प्रकार कर्त्तव्य का पालन किया गया हो तो इससे अधिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आनन्द दायक दुनिया की और कोई बात नहीं हो सकती ।

संसार की सुख-शान्ति में वृद्धि करना यही तो परमार्थ का लक्षण है । प्याऊ, धर्मशाला, कूआँ, तालाब, बावड़ी, बगीचा, सड़क, पाठशाला, औषधालय आदि का निर्माण करने वाले धर्मात्मा लोग इन कार्यों द्वारा दूसरे लोगों के कष्ट निवारण और सुख में वृद्धि करना चाहते हैं । अनेक प्रकार की संस्थाओं के स्थापन और संचालन का भी यही उद्देश्य है । महात्मा–त्यागी, वैरागी, तपस्वी, देशभक्त, लोक सेवक, परोपकारी सत्पुरुषों की साधना भी इसी उद्देश्य के लिये होती है । शास्त्रकारों ने विश्व की सुख-शान्ति बढ़ाने वाले कार्यों का करना ही धर्म तथा ईश्वर प्राणिधान बताया है और कहा है कि ऐसे कार्यों से ही मनुष्य को लोक परलोक में पुण्य फल प्राप्त होता है। परमार्थ का यह कार्य अनेक रीतियों से किया जाता है । उन रीतियों में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण रीति यह भी है कि मनुष्यों में सत् तत्व की वृद्धि की जाये । यही रीति सर्वोपरि है । किसी को अन्न, जल वस्त्र आदि दान देने की अपेक्षा उसके विचार और कार्यों को उत्तम बना देना अनेक गुना पुण्य है । कारण यह है कि जो व्यक्ति सद्गुणी, सदाचारी और सद्भावी बन जाता है वह सुगन्धित पुष्प की भाँति जीवन भर हर घड़ी समीपवर्ती लोगों को शांति प्रदान किया करता है । सज्जन पुरुष एक प्रकार का जीवित और चलता फिरता सदावर्त है जो प्रतिदिन प्रचुर परिणाम में आत्मिक भोजन देकर अनेक व्यक्तियों को सच्चा प्राण दान देता है। दस हजार सदावर्त या जलाशय स्थापित करने की अपेक्षा एक पुण्यात्मा मनुष्य तैयार कर देना अधिक सफल प्रदान करने वाला है ।

अपने परिवार में यदि अच्छी भावना और विचारधारा ओत-प्रोत कर दी जाय तो कुटुम्बियों के स्वभाव और चरित्र में सात्विकता की वृद्धि होगी और फिर उसके द्वारा अनेक लोगों को पथ-प्रदर्शन मिलेगा । एक पेड़ के बीच अनेकों नये पौधे उत्पन्न करते हैं और फ़िर उन नये पौधों को बीज और नये-नये पेड़ उपजाते हैं, एक से दस, दस से सौ, सौ से हजार, इस प्रकार यह शृंखला फैलती है और आगे निरन्तर बढ़ती ही रहती है । इस प्रकार यदि सत् स्वभाव के चार मनुष्य बना दिये गये तो उनका प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हजारों लाखों मनुष्यों पर पड़ता है । हरिश्चन्द्र, शिव, दधीचि, शिवाजी, राणाप्रताप आदि की तरह कोई-कोई तो ऐसे निकल आते हैं, जिनका शरीर मर जाने पर भी 'यश शरीर' जीवित रहता है और लाखों करोड़ो वर्षों तक वह यश शरीर संसार में धर्म भावना का संचार करता रहता है । मनुष्य को सात्विक, उच्च, महान् बनाना इतना महान् पुण्य कार्य है जिसकी ईंट-पत्थर से बनने वाले छोटे-छोटे कार्यों से कोई तुलना नहीं की जा सकती । शास्त्र में लिखा है कि शिष्य के पाप पुण्यों के दसवें भाग का हिस्सेदार उसका गुरु होता है । जिस अध्यापक की कक्षा के लड़के अधिक फेल होते हैं उसका दर्जा घट जाता है और जिसका परीक्षा फल अच्छा रहता है उसको तरक्की मिलती है। कारण यह है कि बच्चों के फेल पास होने के साथ अध्यापक का परिश्रम जुड़ा हुआ है, इसलिये लड़कों के फेल पास होने में निन्दा प्रशंसा का भागी अध्यापक को भी बनना पड़ता है । इसी प्रकार स्वजनों के सत्गुणी या दुर्गुणी होने का पुण्य पाप गृह संचालक को भी लगता है । यदि स्वजनों को अपने चरित्र, सद्भाव और आत्म-त्याग द्वारा अच्छा, सच्चा और उन्नत बनाया तो यह उच्च कोटि के पुण्य कार्य से किसी प्रकार कम न होगा । यदि सब लोग अपने-अपने परिवारों को सुधारें तो सारी दुनिया का थोड़े ही समय में सुधार होना सम्भव है । यदि अपने-अपने क्षेत्र की जिम्मेदारी सब लोग पूरी कर लें तो इस पृथ्वी पर स्वर्ग उतरा हुआ ही समझिये ।

सूक्ष्म दृष्टि से यह निरीक्षण करते रहना चाहिये कि घर के हर एक स्त्री, पुरुष, बालक को शारीरिक और मानसिक उन्नति का समुचित अवसर मिल रहा है या नहीं ? जीवन विकास और भविष्य निर्माण के स्वाभाविक अधिकार से कोई वंचित तो नही हो रहा है ? किसी को अनावश्यक सुविधा और किसी पर अनुचित दबाव तो नही पड़ रहा है । इन तीनों प्रश्नों पर बारीकी से नजर डालते रहने से यह बात मालूम होती रहती है कि किस व्यवस्था में सुधार की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकता है । कुछ ऐसी प्रथा चल पड़ी हैं कि लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को, स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषो को और बिना कमाने वालों या कम कमाने वालों की अपेक्षा अधिक कमाने वाले को, अधिक सुविधा दी जाती है । खाने, पहनने, मनोरंजन तथा सम्मान पाने में वे आगे रहते हैं । बेचारी लड़कियाँ और स्त्रियाँ तो एक प्रकार के फालतू प्राणी समझे जाते हैं, उनकी सुविधा एवं आवश्यकता और विकास की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है । यह अन्याय मिटना और मिटाया जाना चाहिए । स्त्रियों, लड़कियों, न कमाने वालों और रोगी, वृद्ध या असमर्थों को भी उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप समुचित सुविधायें मिलनी चाहिये ।

यह चिन्ता करना गलत है कि कम आमदनी होने के कारण घर के सब लोगों की आवश्यकता किस प्रकार पूरी की जा सकेगी ? छोटी आमदनी होने पर जीवन निर्वाह का व्यवस्था क्रम मितव्ययी और सादगीपूर्ण बना लेना चाहिए । मोटा कपड़ा, मोटा अनाज, साधारण रहन-सहन रखने और टीम, टाम, फैशन, तडक-भड़क, दिखावट की अनावश्यक चीजों का स्वेच्छा और प्रसन्नता पूर्वक त्याग कर देने से थोड़ी आमदनी में अच्छी तरह काम चल सकता है । अमीर, फिजूल खर्च, फैशन परस्त, छैल-छबीले लोगों की नकल करने में अनावश्यक पैसा खर्च करने में कुछ भी बुद्धिमानी नहीं है । सादगी में सात्विकता है । समय को फिजूल कार्यों में से बचा कर शरीर, वस्त्र और मकान को साफ, निर्मल एवं उज्ज्वल रखा जा सकता हैं । यदि असमानता और पक्षपात चलता रहे तो अमीरी में भी कलह, वैमनस्य और दुर्भाव रहेंगे । यदि निष्पक्षता, समानता और आत्म-त्याग रहे तो गरीबी में भी प्रेम एवं सन्तोष का जीवन व्यतीत होगा । दुनियां में बहुत से अमीर हैं, ठाट-बाट से रहते हैं, शान-शौकत रखते हैं, मौज-मजा करते हैं, उनके ऐश-आराम और रहन-सहन की नकल करने की जरूरत नहीं, उनकी तीक्ष्ण, बुद्धि, चतुरता, परिश्रम शीलता और जागरुकता की नकल करनी चाहिए, जिन गुणों से उन्हें वैभव मिला है उन गुणों की तरफ देखना चाहिए, उनकी दूषित नीति या फैशनपरस्ती के दोषों को अपनाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए । सादगी और गरीबी पारिवारिक आनन्द को कायम रखने में किसी प्रकार बाधक नहीं हो सकतीं ।

स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन तथा भविष्य-निर्माण का हर एक को अवसर मिलना चाहिये । यह देखते रहना चाहिए कि किसी के ऊपर ऐसा शारीरिक या मानसिक दवाब तो नही पड़ रहा है, जिसके कारण उसका स्वास्थ्य नष्ट होता हो । आहार, विहार के असंयम के कारण कोई अपने को अस्वस्थता के मार्ग पर तो नहीं बढ़ाये लिये जा रहा है यह ध्यान रखने की बात है । यदि बहुमूल्य, बढ़िया, पौष्टिक भोजन प्राप्त न होता हो, मोटा-झोटा खाकर गुजारा करना पड़ता हो तो इसमें कोई चिंता की बात नहीं, इससे स्वास्थ्य नष्ट नहीं हो सकता, आहार-विहार की व्यवस्था ही वह दोष है जिसके कारण स्वास्थ्य नष्ट होता है । कीमती से कीमती भोजन इस दोष से होने वाले नुकसान को पूरा ही कर सकता । भोजन, शयन, व्यायाम, मल त्याग, स्नान, सफाई, ब्रह्मचर्य, नियत-परिश्रम आदि का ध्यान रखा जाय तो अस्वस्थता से बचा रहा जा सकता है। यदि कभी बीमारी का अवसर आवे और रोग साधारण हो तो बड़े-बड़े डॉक्टरों की लम्बी फीसें चुकाने और विलायती दवाओं के लिये घर खाली कर देने की आवश्यकता नहीं है । किसी अनुभवी और सहृदय व्यक्ति की सलाह से मामूली दवादारू के द्वारा रोग-निवारण की कोशिश करनी चाहिए । तेज और जहरीली दवाओं की भरमार से उस समय तो लाभ हो जाता है पर पीछे अनेक उपद्रव उठ खड़े होते हैं । इसलिये उपवास, फलाहार एवं मामूली चिकित्सा से रोग को दूर करना चाहिए ।

शरीर की भूख बुझाने के लिये जैसे भोजन आवश्यक है, उसी प्रकार मानसिक भूख को बुझाने के लिये शिक्षा आवश्यक है । घर के हर व्यक्ति को शिक्षित बनाना चाहिए जो स्कूल जा सकते हों वे स्केल में शिक्षा प्राप्त करें, जिनके लिये यह सम्भव न हो वे घर पर पढ़ें । बच्चे, जवान या बूढ़े कोई भी क्यों न हो सभी को पढ़ने की रुचि उत्पन्न करनी चाहिये और उसके लिये साधन तथा व्यवस्था का प्रबन्ध करना चाहिए । एक दो घण्टे नियमित रूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से गृह-पाठशाला चलती रहे । अक्षर ज्ञान हो जाने के उपरांत ऐसी चुनी हुई पुस्तकें उन्हें देनी चाहिये जिससे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, धार्मिक आदि विषयों का आवश्यक ज्ञान क्रमशः बढ़ता रहे । जीवन विज्ञान की आवश्यक समस्याओं को वे समझें और उन पर बारीकी के साथ विचार करना सीखें तथा प्रामाणिक व्यक्तियों की उस विषय पर सम्मतियाँ पढ़ें । रामायण आदि धार्मिक पुस्तकें पढ़ना ठीक है, परन्तु केवल मात्र इतिहास, पुराणें तक ही सीमित न रहना चाहिये । जीवन संग्राम की प्रत्यक्ष समस्याओं को समझाना और सुलझाना भी आवश्यक है । यह भी धर्म का ही अंग है । अक्षर ज्ञान शब्द–कोष, व्याकरण आदि द्वारा भाषा का ज्ञान बढ़ाना चाहिये, साथ-साथ आवश्यक विषयों पर सत्संग, विवाद, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान, प्रवचन आदि उपायों से जानकारी, बुद्धिमत्ता, विचार शक्ति की भी वृद्धि होनी चाहिये । शिक्षा एवं विद्या की वृद्धि का अवसर हर एक को आवश्यक रूप से उसी प्रकार मिलना चाहिये जैसे कि भोजन की व्यवस्था जरूरी होती है।

स्वास्थ्य और शिक्षा के बाद मनोरंजन का प्रश्न आता है । वह भी एक आवश्यक प्रश्न है । यदि मनुष्य को आनन्दित होने, उल्लसित होने, हँसने, प्रसन्न होने, खेलने, मनोविनोद करने का अवसर न मिले तो उसकी मनोभूमि बड़ी कर्कश, चिड़चिड़ी, असहिष्णु और निराशा मय बन जायेगी । जो सदा कोल्हू के बैल की तरह काम में जुते रहते हैं, कैदी की तरह एक नियत क्षेत्र में काम करते रहते हैं, भोजन, मजूरी निद्रा यही तीन कार्यक्रम जिनके रहते हैं उनकी मानसिक चेतना की सरसता धीरे-धीरे सूखती जाती है और वे भीतर बाहर से अनुदार, विरोधी, दोषारोपण करने वाले, अविश्वासी, डरपोक और कायर बन जाते हैं । ऐसे लोगों को दुनियाँ के प्रति सदा अविश्वास और असन्तोष रहता है । इन प्रवृत्तियों के कारण शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य नष्ट होने लगता है, आयु घटने लगती है और बुढ़ापा घेर लेता है ।

पौधे को विकसित होने के लिए अच्छी जमीन और पानी की जरूरत है, पर साथ ही हवा भी चाहिए। इसी प्रकार जीवन विकास के लिए भोजन, शिक्षा तथा मनोरंजन से वंचित रहते हैं वे एक बड़ा अन्याय करते हैं । नीतिकारों का वचन है कि जो संगीत, साहित्य तथा कला से विहीन है वह बिना सींग पूँछ का पशु है । इस कथन का तात्पर्य मनोरंजन रहित, शुष्क, नीरस जीवन की भर्त्सना करना है । निश्चय ही मनोरंजन एक आवश्यक भोजन है जिसके बिना जीवन मुरझाने लगता है । कुरुचि पूर्ण, दूषित, अश्लील, मनोरंजन से बचना ठीक है । सादा और सात्विक मनोरंजनों को तलाश करना चाहिए और उसके आधार पर मनोविनोद करना चाहिए संगीत, गायन वाद्य, भ्रमण, सम्मिलन, सहभोज, उत्सव, मेला, प्रतियोगिता, चित्र कला, व्याख्यान, देशाटन, प्रदर्शनी सजावट, अदभुत और ऐतिहासिक वस्तुओं का निरीक्षण, खेल, यात्रा आदि अनेक मार्गों से यथा अवसर मनोरंजन के छोटे-मोटे साधन प्राप्त किये जा सकते हैं । घर के पुरुषों को तो ऐसे अवसर मिलते रहते हैं, पर स्त्रियों और बालकों को इससे वंचित रहना पड़ता है । यह उचित नहीं उन्हें भी यथाशक्त ऐसे अवसर देने चाहिए । छोटे बालकों के लिए खिलौने जुटाते रहना चाहिए । मनोविनोद के कार्य में यदि थोड़ा पैसा खर्च होता हो तो उसमें कंजूसी न करनी चाहिए क्योंकि इस मार्ग में जो उचित खर्च होता है वह फिजूल खर्ची नहीं वरन् जीवन की एक वास्तविक आवश्यकता की पूर्ति है ।

चौथी बात भविष्य निर्माण की है । आज की जरूरत किसी प्रकार पूरी हो जाय, केवल मात्रा इतने से सन्तुष्ट न हो जाना चाहिए वरन् यह देखना चाहिये कि हर व्यक्ति का भविष्य उन्नत, सुखमय, समृद्ध, प्रकाशवान एवं उज्ज्वल कैसे हो सकता है ? प्राणी के जन्म धारण करने का उद्देश्य किसी प्रकार दिन काटते रहना नहीं वरन् यह है कि वह अपनी स्थिति को ऊँचा उठावे, आगे बढ़े और अधिक साधन सम्पन्न होता हुआ निरविकसित हो। ऊँचा, ऊँचा और अधिक ऊँचा जीवन बने, इसके लिए सदैव सोचते और प्रयत्न करते रहने की आवश्यकता है । भीतर और बाहरी जीवन के दोनों पहलू निरन्तर विकसित होते रहें ऐसा कार्यक्रम सदा जारी रहना चाहिए । भविष्य में उन्नति कर सकने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है उन साधनों को जुटाने के लिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सदैव ध्यान रखना आवश्यक कर्त्तव्य है । अपनी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और सामाजिक कठिनाई को हल करने योग्य शिक्षा, योग्यता और अनुभव सम्पादन किये बिना जीवन सुखमय नहीं बन सकता । इसलिये पढ़ने-लिखने की, कमाने की, स्वास्थ रहने की, बीमारी से बचे रहने की, बोलने चालने की, लेने देने की योग्यताएँ एकत्रित करने के अवसर हर एक को मिलने चाहिए । अपने पैरों पर खड़े होकर अपनी योग्यता से अपना निर्वाह कर लेने की क्षमता संपादन करने का आरम्भ से ही ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि दुर्भाग्यवश ऐसे अवसर भी जीवन में आ सकते हैं, जब नियत सम्पत्ति से या स्वजनों से हाथ धोना पड़े । ऐसे समय में वही मनुष्य विजयी होता है जिसने विपत्ति से लड़ने योग्य शास्त्रों से अपने को पहले से ही सुसज्जित कर रखा हो ।

इन चारों बातों को घर के हर मनुष्य के ऊपर लागू करके देखना चाहिये कि इन आवश्यकताओं में से कौन-सी बात किसे प्राप्त नहीं हो रही है । जो बात जिसे प्राप्त नहीं हो रही हो उसे प्राप्त कराने का यथा शक्ति अवश्य ही उद्योग करना चाहिए । यदि घर के दस आदमियों का जीवन किसी हद तक सुखी और समृद्ध बनाया जा सकता तो समझिये कि विश्व-कल्याण में, परमार्थ में, धर्म विस्तार में वृद्धि हुई और अपने को पुण्य फल मिला । यदि प्रयास प्रत्यक्ष रूप से सफल न भी हो तो भी लाभ ही है क्योंकि अपनी सद्भावनाएँ सदा अपने मस्तिष्क में काम करती रहेंगी और वे शुभ संस्कारों के रूप में अन्तः क्षेत्र में अपनी जड़ जमा लेंगी । यह शुभ संस्कार चुपचाप पल्लवित होते रहते हैं और अपने लोग परलोक को नाना विधि से आनन्दित एवं सुख समृद्धि युक्त बनाते रहते हैं ।

पारिवारिक स्वराज्य

'अनावश्यक संकोच' पारिवारिक कलह की वृद्धि में सबसे प्रधान कारण है । बाहर के आदमियों से तो हम घुल-घुल कर बात करते हैं, परन्तु घर वालों से सदा उदासनी रहते हैं, बहुत ही संक्षिप्त वार्त्तालाप करते हैं । बहुत कम परिवार ऐसे देखे जाते हैं, जिनमें घर के लोग एक दूसरे से अपने मन की बातें कह सकें । शिष्टाचार, बड़प्पन, लिहाज, लाज, पर्दा आदि का वास्तविक रूप नष्ट होकर उसका ऐसा विकृत स्वरूप बन गया है कि घर के सब लोग अपनी अपनी मनोभावनाएँ आवश्यकताएँ और अनुभूतियाँ एक-दूसरे के सन्मुख रखते हुए झिझकते हैं । इस गलती का परिणाम यह होता है कि एक-दूसरे को ठीक तरह समझ नहीं पाते । किसी बात पर मतभेद हो तो उस भेद को अवज्ञा, अपमान या विरोध मान लिया जाता है ऐसा न होना चाहिये । किसी बात का निर्णय करना हो तो घर के सभी सलाह दे सकने के योग्य स्त्री-पुरुषों की सलाह लेनी चाहिए । अपने अभाव प्रकट करने का हर एक को अवसर दिया जाय । जो काम करना हो उसे इस प्रकार अच्छी भूमिका के साथ तर्क और उदाहरणों के साथ रखना चाहिए कि उस पर घर वालों की सहमति मिल जावे । हर व्यक्ति यह अनुभव करे कि मेरे आदेश से ही यह कार्य हुआ । जिस प्रकार राज्य संचालन में प्रजा की सहमति आवश्यक है उसी प्रकार गृहव्यवस्था में परिजनों की सहमति रहने से शान्ति और सुव्यवस्था रहती है । राजनीतिक स्वराज्य से देश में अमनोअमान कायम रहता हे । पारिवारिक स्वराज्य से परिवार में सुव्यवस्था रहती है । परिवार की प्रजा यह न समझे कि किसी की इच्छा जबरदस्ती हमारे ऊपर थोपी जा रही है वरन् उसे यह भान होना चाहिए कि सबके लाभ और सब के हित के लिये विचार विनिमय और विवेक के साथ नीति निर्धारित की गई है तथा औचित्य एवं ईमानदारी को व्यवस्था संचालन में प्रधान स्थान दिया जा रहा है । इस सरल, स्वभाविक और बिना किसी कठिनाई की नीति का जिस परिवार में पालन किया जाता है वहाँ सब प्रकार सुख-शान्ति बनी रहती है ।

सास बहुओं में, ननद भौजाइयों में, देवरानी जिठानियों, में अक्सर छोटी-छोटी बातों पर लड़ाई हुआ करती है । स्त्री जाति को मानसिक विकास के अवसर प्रायः कम ही उपलब्ध होते हैं, इसलिए उनकी उदारता संकुचित होती है । निस्संदेह पुरुष की अपेक्षा आत्म-त्याग और स्नेह की मात्रा स्त्रियों में बहुत अधिक होती है, पर वह अपने बच्चे या पति में अत्यधिक लग जाने के कारण दूसरों के लिए कम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बचती है । समझा-बुझा कर एक-दूसरे के लिये उदारता प्रकट करने का अवसर देकर उन्हें यह अनुभव करना चाहिए कि परिवार के सब सदस्य बिल्कुल निकटस्थ, बिल्कुल सगे हैं । बिरानेपन या परायेपन की दृष्टि से सोचने की दुर्भावना को हटाकर आत्मीयता की दृष्टि से सोचने योग्य उनकी मनोभूमि को तैयार करना चाहिये । बड़े-बूढ़े यह आशा न करें कि हमारे साथ शिष्टाचार की अति बरती जानी चाहिये, उन्हें छोटों के प्रति क्षमा, उदारता, प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिये, दास, नौकर या गुलाम जैसा नहीं । इसी प्रकार छोटों को बड़ों के प्रति आदर-भाव रखना चाहिये, घर के अन्य कामों की अपेक्षा पहले आवश्यकता और इच्छाओं को पूरा करना चाहिये । घर का काम धंधा आम तौर से बँटा हुआ रहना चाहिये । बीमारी, कमजोरी गर्भावस्था या अन्य किसी कठिनाई की दशा में दूसरों को उसका काम आपस में बाँटकर उसे हलका कर देना चाहिये । नित्य पहिनने के जेवरों को छोड़ कर अन्य जेवर सम्मिलित रखे जा सकते हैं जिनका आवश्यकतानुसार सब उपयोग करलें । आपको यदि पैसे की सुविधा हो तो सबके लिये अलग-अलग जेवर भी बन सकते हैं पर वे सब के पास करीब करीब समान होने चाहिये । नई शादी होकर आने वाली बहू के लिये अपेक्षा कृत कुछ अधिक चीजें होना स्वाभाविक है । विशेष अवस्था को छोड़ कर साधारणतः सबका भोजन-वस्त्र करीब एकत्र ही होना चाहिये । इस प्रकार स्त्रियों में एकता रह सकती है ।

यदि कोई गलती कर रहा हो तो एकान्त में उसे प्रेम पूर्वक उसकी ऊँच, नीच, लाभ, हानि समझानी चाहिए । सबके सामने कड़ा विरोध करना, अपमान करना, गाली बकना, मारना-पीटना बहुत अनुचित है । इससे सुधार कम और बिगाड़ अधिक होता है । द्वेष दुर्भाव और घृणा की वृद्धि होती है, यह सब होना एक अच्छे परिवार के लिए लज्जाजनक है । समझाने से आदमी मान जाता है और अपमानित करने से वह क्रुद्ध होकर प्रतिशोध लेता एवं उपद्रव खड़े करता है ।

दूसरों की आँख बचाकर अपने लिये अधिक लेना बुरा है । बाजार में चुपके से स्वादिष्ट पदार्थ चट कर आना, चुपके-चुपके निजी कोष बनाना, अपने मनोरंजन, शौक या फैशन के लिए अधिक खर्च करना, घर भर को ईर्षा, घृणा, असन्तोष और निन्दा के लिए आमन्त्रित करना है । बाहर व्यवसाय क्षेत्र में काम करने के लिए यदि बढ़िया कपड़ों की आवश्यकता है तो सब लोगों को यह अनुभव करना चाहिए कि यह शौक या फैशन के लिए नहीं आवश्यकता के लिए किया गया है । अधिक परिश्रम की क्षति पूर्ति के लिए यदि कुछ विशेष खुराक की जरूरत है तो दूसरों को यह महसूस होने देना चाहिए कि यह चटोरेपन के लिए नहीं जीवन-रक्षा के लिये किया गया है । भावनाएँ छिपती नहीं, चटोरापन या फैशनपरस्ती बात-बात में टपकती है, विशेष आवश्यकता की विशेष पूर्ति केवल विशेष अवसर पर ही रहती है शेष आचरण सबके साथ घुलामिला और समान रहता है । जिसे जो विशेष सुविधा प्राप्त करती हो वह प्रकट रूप से होनी चाहिये ।

मधुर भाषण, प्रसन्न रहना, दूसरों को प्रसन्न रखना आवश्यक है और इन सबसे अधिक आवश्यक यह है कि परिवार का खर्च चलाने के लिये ईमानदारी से परिश्रमपूर्वक पैसा कमाया जाय । अनुचित रूप से कमाया हुआ अन्न सब की मन बुद्धि को दूषित करता है और फिर वे दोष नाना प्रकार से कलह, दुर्भाव और दुर्गुणों के रूप में प्रकट होते हैं । ईमानदारी से कमाये हुए अन्न से ऐसा सात्विक रक्त बनता है कि उससे शारीरिक और मानसिक स्वस्थता एवं सात्विकता अपने आप प्रचुर परिमाण में प्राप्त होती है और उसके आधार पर बिना अधिक परिश्रम के सद्भाव बढ़ते रहते हैं ।

गृहस्थ योगी को चाहिये कि अपने परिवार को सेवा-क्षेत्र बनावे । परिजनों को ईश्वर की प्रतिमूर्तियाँ समझकर उनकी सेवा में दत्तचित्त रहे, उन्हें भीतरी और बाहरी स्वच्छता से समन्वित करके सुशोभित बनाये । इस प्रकार अपनी सेवा-वृत्ति और परमार्थ-भावना का जो नित्य पोषण करता है, उसकी अन्तः चेतना वैसी ही पवित्र हो जाती है जैसे अन्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग साधकों की । गृहस्थ योगी को वही सद्गति उपलब्ध होती है जिसे अन्य योगी प्राप्त करते हैं ।

ऊँच-नीच, जाति-पाँति और छूआछूत

कुछ व्यक्ति यह मानते हैं कि ऊँच-नीच का भाव हिन्दू धर्म की उपज है, यह असत्य है । जाति-पाँति काम की बाँट है । जो व्यक्ति अपनी जीविका-उपार्जन के लिए जैसा पेशा या व्यवसाय चुन ले, वह उसी वर्ग विशेष में सम्मिलित हो जाय । जो व्यक्ति बुद्धि में कुशाग्र है, लिखने-पढ़ने का काम कर सकता है, वह ब्राह्मण का कार्य करे । प्राचीन काल में हमारे यहाँ योग्यता ही ऊँचाई का मापदण्ड था । प्रायः यह होता था कि जो व्यक्ति समाज में कोई अपराध करता था, उसका कुछ दिन के लिये सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था । उससे स्पर्श तक करना उचित नहीं समझा जाता था । जब सजा की अवधि समाप्त हो जाती थी, तो उसे पुनः समाज में मिला लिया जाता था । इस सामाजिक बहिष्कार के भय से कोई अपराध न करता था । इस व्यक्ति के जीवन तक अधिक से अधिक सजा चलती थी । बाद में दण्ड की व्यवस्था चल पड़ी और इस अपराधी वर्ग को बीच में अपवित्र समझा जाने लगा । नाई, कुम्हार, तेली, सुनार, तम्बोली आदि के पेशों के प्रति कुत्सित भाव पैदा होता गया । अज्ञानवश फिर उनकी जातियाँ अलग बनती चली गईं ।

छूआछूत और ऊँच-नीच की भावनाएँ बुरी हैं । समाज की उन्नति में बाधक हैं । वास्तव में गुण, योग्यता, सच्चाई, ईमानदारी बुद्धि आदि का आदर होना चाहिए । तिरस्कार करने से एक वर्ग हमेशा के लिए पिछड़ जाता है । यह राष्ट्र के लिए अहितकर होता है । ऊँच-नीच मूलक, जाति-पाँति का विष सारे हिन्दू-समाज में फैल गया है । यह बड़े ही दुःख का विषय है । सभी प्राणी भगवान् के हैं । कौन ऊँचा और कौन नीचा ! अतः सबके साथ समान व्यवहार होना चाहिए । यदि किसी से कोई अपराध हो भी जाय, तो उसे प्रायश्चित करा देना चाहिए । तदनन्तर उससे भी अन्य जैसा ही सद्व्यवहार होना चाहिए । समाज में काम न कोई ऊँचा है न नीचा ! सामाजिक दर्जा सब का बराबर होने में ही कल्याण है ।

जातिवाद और ऊँच-नीच एक भयंकर अभिशाप

भारतीय समाज इन दिनों जितने फिरकों और वर्गों में बटा हुआ है, उतना वर्ग भेद संसार के शायद ही किसी समाज में हो । अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, शहरी देहाती आदि वर्ग तो खैर नये हैं । ये सभी कोई जड़ भी नहीं हुए हैं और न ही इतने स्थिर हैं कि एक वर्ग का व्यक्ति दूसरे वर्ग में प्रवेश न कर सके । गरीब व्यक्ति थोड़ा श्रम करे, सम्पत्ति अर्जित कर ले तो उसे अमीर बनते या कहलाते देर नहीं लगेगी । अशिक्षितों के लिए शिक्षा प्राप्त करने के अवसर सदैव उपलब्ध हैं, इसी प्रकार शहरी और देहाती वर्ग भी बेहद लचीला है । जिस वर्ग भेद की चर्चा यहाँ अभीष्ट है, वह इतना जड़ है कि शताब्दियों से वह भारतीय समाज का अहित किये जा रहा है और आज भी अपने विषैलेपन में समाज को पतन के गर्त में धकेलता जा रहा है ।

जाति के आधार पर ऊँच-नीच के भेद-भाव ने भारतीय समाज और भारतीय राष्ट्र को जितनी हानि पहुँचाई है, उतनी हानि शायद ही अन्य किसी कारण से पहुँची हो । एक विशाल भूखण्ड, आबादी की दृष्टि से दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश, उच्च और महान संस्कृति, गौरवशाली अतीत तथा गरिमामय इतिहास, विद्या, बुद्धि और प्रतिभा से लेकर सम्पदा तक हर दृष्टि से सम्पन्न देश भारत आज भी छोटे-छोटे राष्ट्रों से पिछड़ा हुआ है तो इसका क्या कारण है ? इसका एक ही उत्तर है जाति के आधार पर ऊँच-नीच का भेद करने वाली मान्यता ।

सर्वविदित है कि आज के समय में वही समाज जीवंत प्रखर और उन्नत हो सकता है जो संगठित हो । भारत के पास सब कुछ होते हुए भी संगठित होने की सामर्थ्य का अभाव हैं, कारण एक ही है जातीय भेद-भाव और ऊँच-नीच की भावना ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथाकथित ऊँची जाति वाले लोग नीची कही जाने वाली जातियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना तो दूर रहा उनके पास बैठना तक पसन्द नहीं करते और नीची जाति के लोग उच्च वर्ग के लोगों के बराबर बैठने में झिझकते और संकोच करते हैं । शहरों और शिक्षित वर्गों में मान्यताएँ भले ही कुछ ढीली हुई हों पर कुछ लाख गाँवों में रहने वाली असंख्य प्रतिशत जनता पर न सुधारवादी प्रयासों का अपेक्षित प्रभाव हुआ है और न ही शिक्षा के प्रसार का । लगभग चार हजार जातियों, उपजातियों और प्रजातियों में विभक्त और बात–बात पर एक-दूसरे को तिरस्कृत तथा बहिष्कृत करने का अभ्यस्त, इस जर्जर समाज का सदाशंकालु सदस्य संसार के उन्नत और प्रगतिशील समुदायों से पिछड़ा नहीं तो क्या रहेगा ? कहाँ से आयेगा उसमें संगठन का, साथ रहने का, एक दूसरे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ने के लिए प्रयास करने का उत्साह, जबकि लोग एक दूसरे के पास बराबरी से बैठना तक सहन नहीं कर सकते ।

जिस समाज के सदस्य एक दूसरे को पास बिठाने, छूने, छुआ हुआ खाने, खिलाने, लोटा देने व लेने में ही घृणा करते हैं, जिसके मन्दिर मठ, घर-द्वार पनघट, घाट, तालाब गाँव और यहाँ तक कि चलने के रास्ते तक अलग-अलग हैं । इस समाज के साथ रह कर आगे बढ़ने, मिलजुल कर प्रगति प्रयास करने की आशा किस आधार पर की जा सकती है । इस व्यवस्था से एक बड़ी हानि यह हुई है कि भारतीय समाज अनेक भागों में बट गया । इन भिन्न-भिन्न समाजों, समुदायों ने अपने आपको एक अलग इकाई मान कर अपने दायरे बना लिए तथा उन्हीं में रहकर अपने विकास का प्रयास-प्रयत्न करने लगे । परिणाम स्वरूप आचार विचार, रहन-सहन में भिन्नता आई और अनेक प्रकार के कुनवे फिरके बन जाने से भावनात्मक एकता के आधार नष्ट हुए, फलतः भारतीय समाज की एक रूपता जाती रही ।

जितनी जातियाँ उतनी रीतियाँ और जितनी उप-जतियाँ उतने रिवाज । सबकी प्रथा परम्पराएँ अलग–अलग और इन सबका इतना जमघट इकट्ठा हो गया कि भारतीय धर्म तथा संस्कृति के सच्चे स्वरूप के दर्शन ही दुर्लभ हो गए । प्राचीनकाल में ऐसा कहा था । एक समय था जब पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक सम्पूर्ण राष्ट्र एक ही संस्कृति का अनुगामी था । दो ढाई हजार वर्ष पूर्व तक भारतीय समाज पूरी तरह संगठित रहा तथा लोग कर्मों के अनुसार वर्ण-धर्म का पालन करते हुए समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य पूरे करते रहे । कोई किसी को किसी से ऊँचा नहीं समझता था और कोई दूसरे को नीचा नहीं देखता था । वर्ण विभाजन इस समय विशुद्ध रूप से सामाजिक सुव्यवस्था की दृष्टि से किया गया था ।

कालान्तर में एक प्रतिगामी विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें कुछ लोंगों ने अधिनायक वाद और सामन्त शाही का खुल कर प्रचार किया । इस प्रचार के साथ और भी कई-कई कारण जुड़ते गए तथा धर्म की आन्तरिक व्यवस्था का विभाजन होने लगा । अनेक सम्प्रदाय मत मतांतर बने तथा विघटन प्रारम्भ हुआ । भारतीय समाज इस विघटन से दुर्बल हुआ तथा थोड़े से मुटठी भर लोगों से हार कर पतन के गर्त में गिरने लगा । यह पतन क्रम कुछ इस प्रकार चला कि समाज की मूल व्यवस्था ही लड़खड़ा कर चूर–चूर हो गई । अब यद्यपि भारत स्वतन्त्र है, अपने भाग्य भविष्य का निर्माता आप है, इसलिए इन कारणों को ढूँढा और निकाला जाना चाहिए जिनके कारण हमें पराधीन होना पड़ा तथा हजारों वर्षों की गुलामी सहनी पड़ी । स्पष्ट ही वे कारण जातिगत ऊँच-नीच तथा उस आधार पर समाज के विघटन से संबन्धित हैं ।

विघटन और विभाजन का क्रम केवल कुछ जातियों तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि जातियों के भीतर से कई उपजातियाँ निकली । ब्राहाणों में द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, गौड़, औदित्य, सारस्वत, सरयूपारी, मिश्र, शुक्ल, वैश्यों में ओसवाल, अग्रवाल क्षत्रियों में राठौर, चौहान, परिहार जैसी असंख्यों उपजातियाँ उत्पन्न हुईं और उपजातियों में गोत्र, वंश, जैसी अनेकों शाखा प्रशाखाएँ इन सभी के रीतिरिवाज अलग, खानपान अलग, इनमें भी ऊँच-नीच और कौन किस वंश में शादी करेगा किसमें नहीं, इसके अलग-अलग नियम । इस प्रकार की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाति उपजातियाँ इतनी अधिक हो गईं कि कोई एक जाति को भी संगठन के सूत्र में पिरोना चाहे तो प्रायः असम्भव ।

इस व्यवस्था के कारण व्याह शादियों की व्यवस्था इतनी जटिल और खर्चीली हो गई कि कई तरह की कुरीतियाँ पनपीं तथा लोगों का एक-दूसरे के परिवार से सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर भी उनमें परस्पर स्नेह सौहार्द्र बनाये रखना असम्भव-सा हो गया । क्योंकि वर वधू दोनों पक्ष एक-दूसरे की विवशता का लाभ उठाने ,मोकों और न तो को ठौर वाली स्थिति समझने के कारण जिस प्रकार एक-दूसरें का दोहन शेषण कराने के लिए घात प्रतिघात लगाने की बात सोचते रहे, उससे स्नेह सौहार्द्र बढ़ाना तो दूर रहा बनाये रखना भी सम्भव नहीं रहा ।

विवाह शादियों के रूप में ही नहीं, जातिवाद ने भारतीय समाज के लिए अपना अस्तित्व बनाये रखने की भी समस्या उत्पन्न कर दी । नीच कही जाने वाली जाति के लोगों से जिस प्रकार का तिरस्कार पूर्ण व्यवहार किया जाने लगा, उससे क्षुब्ध होकर लोगों ने तेजी से धर्म परिवर्तन करना शुरू कर दिया । अपने समाज के लोग गले नहीं लगाते तो अपनत्व पाने और आत्मीयता की प्यास बुझाने के लिए दूसरे धर्म स्वीकार करने लगे । इस कमजोरी का लाभ नाम गैर हिन्दू धर्म वालों ने उठाया ।

इस प्रकार जातिवाद के रोग ने आज भारतीय समाज के लिए अस्तित्व का संकट उत्पन्न कर दिया है । यह विचारणीय है कि जातिवाद के अभिशाप से ग्रस्त होने के कारण उत्पन्न हुए आस्तित्व का संकट किस प्रकार टाला जाए ? वर्तमान परिस्थितियों में इस संकट को टालने के लिए एक ही उपाय रह जाता है कि पुनः संगठन की शक्ति जगाई जाए । विचारशील व्यक्ति आगे आएँ और उच्च जाति के मद में डूबे हुए लोगों को चेत में लाएँ अपने समाज की अस्तित्व रक्षा ही नहीं उसे सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाने के लिए भी ऊँच-नीच के इस भेद भाव को रोकना आवश्यक है । एकदम निकट न आया जा सके तो क्रमशः चरण बढ़ाये जाए और विभिन्न जातियों में वही स्नेह सौमनस्य स्थापित करने का लक्ष्य लेकर आगे बढ़ा जाए जो पहले कभी था । समाज में जातिवाद के आधार पर पलने और बढ़ने वाली ऊँच-नीच की इस भावना को रोका जा सके तभी हम प्रगति की दौड़ में अन्य समाजों की बराबरी कर सकेंगे ।

जाति, उप-जातियों का दायरा चौड़ा किया जाये

भारतवर्ष के मध्यकालीन और वर्तमान समय के इतिहास में जाँति-पाँति की समस्या बड़ी महत्त्वपूर्ण है । यह तो कोई नहीं कह सकता कि आजकल भारतवर्ष में जो कई हजार जातियाँ पाई जाती हैं उन सब का अस्तित्व प्राचीन काल से हैं । तो भी इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि चार वर्णों का विभाजन अवश्य ही प्राचीन है । वेदो में यद्यपि चारों वर्णों का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं है तो भी ब्राह्मण, राजन्य, पणि शूद्र आदि का नामोल्लेख कितने ही स्थानों पर मिलता है । उसके बाद की स्मृतियों में तो चारों वर्णों का पूरा वर्णन ही नही किया गया है वरन् उनके संयोग से उत्पन्न अनेक मिश्रित जातियों का भी विवरण दिया गया है । इससे यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में जात-पाँत की पणाली अधिक नही तो कई हजार वर्ष पुरानी अवश्य है ।

पर जाँति-पाँति की प्रथा के पुरानी होने पर भी पुराने और नये समय में बहुत बड़ा अन्तर हो गया है । पहला अन्तर तो यह है कि पहले जहाँ चार मुख्य जातियाँ और दस बीस उपजातियाँ थीं, वहाँ अब जातियों और उपजातियों की संख्या कई हजार तक पहुँच गई है । इसमें बहुसंख्यक जातियाँ तो दो-चार सौ वर्ष के भीतर ही उत्पन्न हुई हैं । दूसरा प्रधान अन्तर यह है कि आरम्भ में यह विभाजन पूर्णतया कर्म पर आधारित था। इसका अर्थ यह है कि भगवान ने या नियति ने किसी को ब्राह्मण, क्षत्री, या शूद्र नहीं बना दिया वरन् जो व्यक्ति या समूह जैसे कार्य करते थें वे वैसे ही माने जाते थे, पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और लोगों में स्वार्थ तथा संकीर्णता के भाग प्रबल होते गये त्यों-त्यों जाति प्रथा में कठोरता आने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगी और अन्त में ऐसा समय आ पहुँचा जबकि लोगों को जाति और वर्ण का बदल सकना, एक जाति के व्यक्ति का दूसरी जाति में शामिल हो सकना असम्भव जान पड़ने लगा ।

जाति-पाँति के सम्बन्ध में महाभारत में बहुसंख्यक उद्धरण मिलते हैं, जिनसे विदित होता है कि प्राचीन समय में वर्ण ओर जाति का आधार मुख्यतया कर्म पर ही माना जाता था और जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य कर्म का त्याग कर देता था, उसे अपने वर्ण से च्युत मान लिया जाता था 'शाँतिपर्व' वे आरम्भ ही में भीष्म पितामह ने चारों वर्णों के धर्मों का वर्णन करते हुये कहा था–"अक्रोध, सत्यभाषण, धन को बाँट कर भोगना, क्षमा , अपनी स्त्री से सन्तान उत्पन्न करना ,शौच , अद्रोह ,सरलता और अपने फलनीय व्यक्तियों का पालन करना–ये नौ धर्म बताता हूँ । इन्द्रियों का दमन करना यह ब्राह्मण का पुरातन धर्म है । इसके सिवाय स्वाध्याय का अभ्यास भी उनका प्रधान धर्म है, इसी से उनके सब कर्मों की पूर्ति हो जाती है । यदि अपने धर्म में स्थित, शान्त और ज्ञान–विज्ञान से तृप्त ब्राह्मण को किसी प्रकार के असत् कर्म का आश्रय लिये बिना ही धन प्राप्त हो जाय तो उसे दान या यज्ञ में लगा देना चाहिये । ब्राह्मण केवल स्वाध्याय से ही कृतकृत्य हो जाता है, दूसरे कर्म वह करे या न करे । दया की प्रधानता होने के कारण वह सब जीवों का मित्र कहा जाता है ।"

इससे अगले अध्याय में कहा गया है–"जो ब्राह्मण दुश्चरित्र, धर्म हीन, कुलटा का स्वामी, चुगल खोर, नाचने वाला, राज सेवक अथवा कोई और निकृष्ट कर्म करने वाला होता है, वह अत्यन्त अधम है, उसे तो शूद्र ही समझो और उसे शूद्रों की पंक्ति में ही बिठाकर भोजन कराना चाहिए । ऐसे ब्राह्मण को देव पूजन आदि कार्यों से दूर रखना चाहिए । जो ब्राह्मण मर्यादाशून्य, अपवित्र, क्रूर स्वभाव वाला, हिंसामय और अपने धर्म को त्याग कर चलने वाला हो, उसे हव्य, कव्य अथवा दूसरे दान देना न देने के बराबर ही है । ब्राह्मण तो उसी को समझना चाहिए जो जितेन्द्रिय, सोमपान करने वाला, सदाचारी, कृपालु, सहनशील, निरपेक्ष, सरल, मृदु और क्षमावान हो । इसके विपरीत जो पाप परायण है उसे क्या ब्राह्मण समझा जाय ?" इसी अध्याय में इन्द्र वेशधारी भगवान विष्णु ने राजा मान्धाता को राज–धर्म का उपदेश करते हुये कहा है कि–"यज्ञ–योगादि कराना और जो चारों आश्रम कहे गये हैं, उनके धर्मों का पालन करना ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है । ब्राह्मणों का प्रधान धर्म यही है । जो विप्र इसका पालन न करे, उसे शूद्र के समान समझ कर शस्त्र से मार डालना चाहिए । जो ब्राह्मण अधर्म में प्रवृत्त है, वह सम्मान का पात्र नहीं हो सकता, उसका किसी को विश्वास भी नहीं करना चाहिये ।" इसी प्रसंग में आगे चलकर राजा मान्धाता ने कहा है कि "दस्यु नीच और दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति तो सभी वर्णों और आश्रमों में पाये जाते हैं । उनके चिन्ह अवश्य भिन्न-भिन्न होते हैं ।" इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि कोई व्यक्ति केवल जन्म से ब्राह्मण की उच्च पदवी का अधिकारी नहीं हो सकता, वरन् जो उस तरह के शुभ कर्म और त्याग का आचरण करेगा वही सम्मान और श्राद्ध का पात्र हो सकता है ।

मानवीय कर्त्तव्यों का सर्वोच्च दिग्दर्शन कराने वाली 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भगवान कृष्ण ने स्वयं कहा है–

शमो दमस्तपः शौचं क्षांति रार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमस्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वमावगम् ।।४२।।
शैर्यम् तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दीनमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावगम ।।४३।।
कृषिगोरक्ष्य वाणिज्यम् वैश्य कर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभाजम् ।।४४।।

(गीता, अध्याय १८)

"शम, दम, तप, शुद्धता, सहनशक्ति, सीधापन, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य ये सब स्वभाव ही से उत्पन्न हुए ब्राह्मण का कर्म है । स्वभाव ही से उत्पन्न क्षत्रिय कर्म हैं, शौर्य, तेज धैर्य, दाक्षिण्य, युद्ध से न भागना दान तथा ईश्वर भाव । स्वभाव से उत्पन्न हुये वैश्य के कर्म हैं–खेती, गोरक्षा तथा वाणिज्य शूद्र का स्वभाविक कर्म है–परिचर्या ।"

इस प्रकार गीता में स्वभाव को ही प्रधानता दी गई है । वेदान्त मत के अनुसार यह स्पष्ट बताया गया है कि जिसका जो स्वाभाविक गुण है, वही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसका वर्ण है । ब्राह्मण वर्ण जो सबसे श्रेष्ठ है, जन्म से साध्य नहीं किन्तु परमात्मा के ज्ञान से साध्य है ।

इतना ही नहीं अधिकांश शास्त्रों और पुराणों से यह भी प्रकट होता है कि पहले समय समग्र मनुष्य जाति का एक ही वर्ण था, चार वर्ण अथवा भिन्न-भिन्न जातियों की स्थापना बाद में हुई है । श्रीमद्भागवत में कहा है–

एक एव पुरावेदः प्रणवः सर्व वाङ्.मयः ।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ।।६-१४।।

श्रीधर स्वामी ने इसकी टीका करते हुये कहा है–"पहले सर्व वाङ्मय प्रणव (ओंकार) ही एक मात्र वेद था । एक मात्र देवता नारायण थे और कोई नहीं । एक मात्र लौकिक अग्नि ही अग्नि थी और एकमात्र हंस ही एक वर्ण था ।" इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि प्राचीन समय में चार वर्णों के स्थान में एक ही वर्ण था । यही बात 'महाभारत' में कही गई है–

एक वर्णमिदं पूर्व विश्वमासीद् युधिष्ठिर ।
कर्म क्रिया विभेदेन चातुर्वर्ण्यम् प्रतिष्ठितम् ।।
न विशेषोऽस्ति वर्णानाम् सर्व ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्व सृष्टं हि कर्मभिर्वर्णात् गतम् ।।

अर्थात्–"हे युधिष्ठिर, इस जगत में पहले एक ही वर्ण था । गुण–कर्म के विभाग से पीछे चार वर्ण स्थापित किये गये ।

"वर्णों में कोई भी वर्ण किसी प्रकार की विशेषता नहीं रखता, क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्ममय है । पहले सबको ब्रह्मा ने ही उत्पन्न किया है । पीछे कर्मों के भेद से वर्णों की उत्पत्ति हुई ।"

"वायु-पुराण" में बतलाया गया है कि भिन्न-भिन्न युगों में मानव-समाज का संगठन विभिन्न प्रकार का था–

अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभ पाययो ।
वर्णाश्रम व्यवस्थाश्च तदाऽऽसन्न संकरः ।।
त्रेतायुगे त्वविकलाः कर्मारम्भ प्रसिध्यति ।
वर्णानां प्रविभागाश्च त्रेतायां त् प्रकीर्तित : ।
शांताश्च शुम्भिणश्चैव कर्मिणो दुखनिस्तथा ।
ततः प्रवर्त्तमानास्ते त्रेतायां जक्षिरे पुनः ।।

(वायु पुराण ८, ३३, ४६, ५७)

अर्थात्–"सतयुग में कर्मभेद, वर्णभेद, आश्रमभेद न था । त्रेतायुग में मनुष्यों की प्रकृतियाँ कुछ भिन्न-भिन्न होने लगीं, इससे कर्म-वर्ण आश्रम भेद आरम्भ हुये । तदनुसार शान्त, शुष्मी, कर्मी और दुःखी ऐसे नाम पड़े । द्वापर और कलि में प्रकृति-भेद और भी अभिव्यक्त हुआ, तदनुसार, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र नाम पड़े ।"

"भविष्य–पुराण" (अध्याय ४) में लिखा है–

तस्मान्न गोऽश्ववत् किंचिज्जातिभेदोस्ति देहिनाम् ।
कार्य भेद निमित्तेन संकेतः कृतिमः कृतः ।।

अर्थात्–"मनुष्यों में गाय और घोड़े जैसा कोई जाति-भेद नहीं है । यह काम के भेद के लिये बनावटी संकेत किये गये हैं ।"

"विष्णु पुराण" में चारों वर्णों की उत्पत्ति शौनक ऋषि द्वारा बतलाई गई है–

"गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्य प्रवत्तायिताऽभूत् ।"

(विष्णु पुराण ४-८-१)

भार्गस्या भार्गभूमिः अतश्चातुर्वर्ण्य प्रवृत्तिः ।

(४-८-६)

अर्थात्–"गृत्समद के पुत्र शौनक ने चातुर्त्रर्ण्य–व्यवस्था स्थापित की ।"

"भार्ग से भार्गभूमि उत्पन्न हुये और उनसे चातुर्वर्ण्य प्रवृतित हुआ ।"

"हरिवंश पुराण" में भी इसी मत का समर्थन किया गया है–

पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः ब्राह्मणाः ।
क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ।।

(२६ वां अध्याय १५-१६-२०)

अर्थात्–"गृत्समद के पुत्र शुनक हुये । शुनक से शौनक कहलाने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बहुत से पुत्र हुये ।"

"पद्म पुराण" में आरम्भ में केवल ब्राह्मण होने का उल्लेख है–

स सर्ज ब्राह्मणानग्रे सृष्टया दौ स चतुर्मखः ।
सर्वेवर्णाः पृथक पश्चात् तेषां वंशेषु जक्षिरे ।।

अर्थात् "सृष्टि के आदि में पहले चतुर्मुख ब्रह्मा ने ब्राह्मण ही बनाये । फिर दूसरे वर्ण उन्हीं ब्राह्मणों के वंश में अलग–अलग उत्पन्न हुये ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनेक व्यक्ति "ऋग्वेद" के "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् वाहू राजन्या कृतः" वाले मन्त्र के आधार पर भगवान के विभिन्न अंगों से अलग–अलग वर्णों की उत्पत्ति बतला कर उनको ऊँचा-नीचा सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं । पर "भविष्य महापुराण" के ब्रह्मपर्व (अध्याय ४२) में इसको भ्रमपूर्ण बतलाते हुये लिखा है–

"यदि एक पिता के चार पुत्र हैं तो उन चारों की एक ही जाति होनी चाहिये । इसी प्रकार सब लोगों का पिता एक परमेश्वर ही है । इसलिये मनुष्य समाज में जातिभेद है ही नहीं । जिस प्रकार गूलर के पेड़ के अगले भाग, मध्य के भाग और जड़ के भाग तीनों में एक ही वर्ज और आकार के फल लगते हैं, उसी प्रकार एक विराट पुरुष, परमेश्वर के मुख, बाहु, पेट और पैर से उत्पन्न हुए मनुष्यों में (स्वाभाविक) जाति भेद कैसे माना जा सकता है ?"

वर्ण-भेद सामाजिक व्यवस्था के लिये उपयोगी है, वहाँ उसके सैद्धान्तिक आधार का बना रहना भी आवश्यक है, अन्यथा जातियों का बिल्कुल भी महत्त्व नहीं रह जाता । जातियों का संगठन गुण-कर्म स्वभाव की दृष्टि से हुआ है, अब जब उच्च जातियों में उच्च गुण-कर्म स्वभाव का अभाव ही है, तो उच्च वर्ण कैसे ? निम्न वर्ण के लोग यदि उत्कृष्ट स्वभाव, शिक्षा और रहन-सहन वाले हों तो उन्हें उच्च प्रतिष्ठा क्यों न मिले ?

शास्त्रकार इस सम्बन्ध में बिल्कुल स्पष्ट रहे हैं–अनेक उदाहरण हैं जिनमें जातियों का वर्गीकरण वंशानुगत क्रम से नहीं गुण, कर्म स्वभाव के विभाग के अनुसार किया गया है । शांतिपूर्व (महाभारत) में मोक्ष धर्म के सन्दर्भ में भृगु मुनि से प्रश्न किया गया है–"हे मुनि ! काम, क्रोध, लोभ, भय, चिंता, क्षुधा और श्रम आदि सभी बातें एक-सी हैं, तब वर्णभेद क्यों मानते हैं ? पसीना, भूख, कफ, पित्त, रक्त सबके शरीर में रहते हैं, तब एक वर्ण दूसरे वर्ण से अलग क्यों माना जाता है ?"

भृगु इस पर उत्तर देते हैं–"एक ब्राह्मण ही वर्ण था, इसलिए वर्णों में कोई विशेष अन्तर नहीं है । पहले ब्रह्मा ने एक ही वर्ण के लोग पैदा किए फिर उन्हें गुण-कर्म स्वभाव के अनुसार विभिन्न वर्णों में विभक्त किया ।

कठोपनिषद में इस बात को पूरी तरह स्पष्ट किया गया है । गीता में भगवान् कृष्ण ने स्वयं कहा है–"चातुर्वर्णा मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः" "हे अर्जुन ! मैंने गुण, कर्म, स्वभाव से चार वर्णों की सृष्टि की है ।"

प्राचीनकाल में सामान्य रीति-रिवाजों में ही नहीं विवाहादि तक में वर्णाश्रम धर्म की मान्यता उपरोक्त सिद्धान्त के आधार पर ही थी । आज की अपेक्षा पूर्वज अधिक धार्मिक थे, पर वे सामाजिक मामलों में पूर्णतया बुद्धि, विवेक और सिद्धान्तवादी थे । आज जैसी विचार संकीर्णता उनमें न थी । उच्च गुण, कर्म, स्वभाव वाली कन्या के लिये वर भी उच्च गुण, कर्म, स्वभाव वाला ढूँढ़ा जाता था । वर्ण में गुणों की दृष्टि से मेल होना आवश्यक था, जाति की दृष्टि से नहीं । अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन इसी बात की पुष्टि है । कन्याओं के लिये ही नहीं लड़कों के लिए वधुयें भी उच्च गुणों वाली ढूँढी जाती थीं और यदि उपयुक्त कन्या उपलबध हो जाती थी, तो निम्न कुल में पैदा होने पर भी उससे प्रसन्नतापूर्वक विवाह कर लिया जाता था । वह विवाह सामाजिक मान्यता प्राप्त होते थे । इससे लोगों की श्रेष्ठता वरीयता में कोई अन्तर नहीं आता था । इसके सैकड़ों उदाहरण हैं–

व्यास और पाराशर मुनि अपने-अपने समय में नहीं अब भी विद्वानों में प्रतिष्ठित और पूज्य हैं, उनका जन्म निम्न वर्ण की कन्याओं से हुआ । व्यास की माँ केवर्त्त पुत्री थी । पाराशर की माँ श्वपाक (चाण्डाल) के घर जन्मीं थीं । शृंगी ऋषि कश्यप, वेद ताण्ड्य, कृप, कक्षीवान्, कमाठादि, मतंग द्रोण, दत्त, आयु, यवक्रीत मात्स्य, द्रपद, यह सभी ऋषि नीच कुलों में उत्पन्न हुए, वाद में तपश्चर्या के प्रभाव से इन्होंने ऋषित्प प्राप्त किया ।

चित्रमुख नामक वैश्य ने अपनी पुत्री वशिष्ठ के पौत्र पाराशर को ब्याही थी । वीतहव्य क्षत्रिय था उसने ब्राह्मण कन्या से विवाह किया । राज नीप क्षत्रिय ने शुक्राचार्य ब्राह्मणा की कन्या हात्वी से विवाह किया । ब्रह्मदत्त इन्हीं के पुत्र थे । इन्हीं के कुल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में मुद्गल का जन्म हुआ जिनसे ब्राह्मणों का मौद्गल्य गोत्र चला ।

वशिष्ठ मुनि गणिका पुत्र थे, उन्होंने कर्दम क्षत्रिय की पुत्री अरुन्धती से विवाह किया । इनका पुत्र शक्ति हुआ जिसने चाण्डाल कन्या अदृश्यन्ति से विवाह किया । प्रियव्रत क्षत्रिय था उसने विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मति से विवाह किया । ययाति क्षत्रिय ने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से विवाह किया । महामुनि मातंग की माता ब्राह्मणी थी और पिता नाई कुल में जन्मे थे ।

प्रतिलोम विवाह की तरह अनुलोम विवाह भी शास्त्र-मर्यादा से बाहर नहीं थे । विश्वामित्र ने देवलोक की अप्सरा मेनका से सम्बन्ध स्थापित किया । उनकी पुत्री शकुन्तला दुष्यन्त को ब्याही गई, जिनके पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा । शृंगी ब्राह्मण ने राजा दशरथ की पुत्री और भगवान् श्री रामचन्द्र की बहन शान्ता से विवाह किया । प्रियव्रत क्षत्रिय की कन्या उर्जस्वती से शुक्राचार्य ने विवाह किया । यमदग्नि ने सूर्यवंशी कन्या रेणुका से विवाह किया । परशुराम उन्हीं के पुत्र थे । भगवान कृष्ण यदुकुल में थे उन्होंने अपनी बुआ सुभद्रा का विवाह क्षत्रिय कुल में अर्जुन के साथ किर्या ।

क्षत्रिय कन्या पद्मा, लोपामुद्रा ने क्रमशः पिप्पलाद और अगत्स्य से विवाह किया । यह दोनों ही ब्राह्मण थे । मान्धाता क्षत्रिय की कन्या से सौभरि और जनश्रुति की कन्या से रयिक्त ब्राह्मण के विवाह होने का उल्लेख मिलता है । इन सब विवाहों में गुण, कर्म, स्वभाव के अनुरूप जोड़ी की उपयुक्तता ही थी । जहाँ यह समझा जाता था कि विपरीत कुल में जन्म लेने पर भी किसी कन्या वर के गुणों में समानता है वहाँ उनका सम्बन्ध होने में कोई आपत्ति न की जाती है, न हीं किसी को जाति से बहिष्कृत किया जाता था । ऐसे विवाहों को इस दृष्टि से और भी समर्थन मिल जाता था कि योग्य दम्पत्ति होने से सन्तान भी तेजस्वी, साहसी, वीर और बलवान् होगी । तब ऐसा ही विश्वास किया जाता था । कुन्ती ने अपने पुत्र भीम का विवाह हिडम्बा राक्षसी से करने की अनुमति देते हुए कहा था, इनकी जो सन्तान होगी, वह बहुत वीर और बलवान् होगी । वीर घटोत्कच इन्हीं का पुत्र था जो महाभारत–काल के अद्वितीय वीरों में गिना जाता था ।

समाज को उत्कृष्ट नागरिक प्रदान करने का उद्देश्य रख कर इस तरह के अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन हो तब तो कहना ही क्या पर यदि सामान्य दृष्टिकोण से भी अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन होता है, तो कन्याओं के लिए योग्य वर ढूँढ़ने और दहेज के कुचक्र से बचने की आधी समस्या का तुरन्त अन्त हो सकता है ।

शक, हूण और यूची आदि अनेकों जातियाँ हिन्दू जाति में इस तरह विलीन हो गईं कि ढूँढ़ने पर भी आज उनका स्वतन्त्र अस्तित्त्व नहीं मिल सकता । अन्य जातियाँ हिन्दू बन सकती हैं तो अन्तर्जातीय भेद-भाव क्यों रखा जाय ? क्यों न इस तरह समाज में अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन किया जाये । यदि ऐसा होता है तो वह शास्त्रसम्मत, बुद्धि-संगत और सिद्धान्त रूप से उपयोगी ही रहेगा जिसकी शास्त्रकारों ने पुष्टि की है ।

इस प्रकार सभी प्राचीन शास्त्रों, पुराणों, इतिहासों के प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में वर्ण भेद नहीं था और बाद में जब चार वर्णों की व्यवस्था स्थापित भी की गई तो कर्म के अनुसार ही मनुष्यों का वर्ण माना जाता था। जैसे आज मुसलमानों और अंग्रेजों–अमरीकनों में भी एक प्रकार का जाति-भेद पाया जाता है और उनके सामाजिक सम्बन्ध प्रायः उसी के अनुसार ही होते हैं, तो भी उनमें कट्टरता का भाव नहीं पाया जाता । नीची श्रेणी का कोई भी व्यक्ति विद्या और धन प्राप्त करके ऊँची श्रेणी में सम्मिलित हो जाता है और ऊँची श्रेणी का व्यक्ति अयोग्यता के फलस्वरूप नीची में पहुँच जाता है। इस प्रकार का श्रेणी विभाजन, जो कर्म और योग्यता के आधार पर स्वाभाविक रूप में हो, बुरा नहीं कहा जाता, वरन् उससे समाज की व्यवस्था में सहायता मिलती है। वर्तमान समय में हिन्दू समाज में वर्ण-व्यवस्था तो नष्ट हो चुकी है और उसके स्थान पर बिना जड़ मूल की बिना आधार की जाति–प्रथा उत्पन्न हो गई है। इसको किसी दृष्टि से शास्त्रानुकूल या धर्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्मत नहीं कहा जा सकता और इस महा हानिकारक प्रथा को नष्ट किए बिना हिन्दू-समाज की स्थिति कदापि नहीं सुधर सकती।

जातीय एकता की शक्ति

संसार की विभिन्न जातियों के उत्थान पतन के इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि किसी समाज के ऊँचा उठने और नीचा गिरने का कारण उसका आन्तरिक संगठन, ऐक्य, प्रेम और सहयोग है। जो जातियाँ जब भी विकसित हुई हैं एकता के बल पर हुई हैं। धन, बल, विद्या, बुद्धि, साधन आदि से भी एकता की शक्ति अधिक है। साधन सम्पन्न जातियाँ एकता के अभाव में नष्ट हुई हैं और स्वल्प साधन वालों ने अपने संगठन के बल पर बड़े बड़े पराक्रम किये हैं।

किसी समय हिन्दू जाति बहुत ऊँची स्थिति में थी। जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक का पद उसे प्राप्त था। तब उसके आदर्श विश्व बन्धुत्व के, आत्मवत् सर्व भूतेषु थे। 'वसुधैव कुटम्बकम्' के सिद्धान्त को अपना कर आपस में सभी एक दूसरे पर आत्म-भाव रखते थे। एक की हानि सबकी हानि, और एक का लाभ सबका लाभ समझा जाता था। जाति, संस्कृति, धर्म, देश की रक्षा एवं उन्नति के लिए सभी सामूहिक रूप से सदा प्रयत्न शील रहते थे। यह गुण ही हमारे उत्कर्ष का सबसे बड़ा कारण था।

जब से एकता में कमी आई तभी से अनेक प्रकार की निर्बलताएँ प्रवेश करने लगीं। व्यक्तिगत लाभ के आगे जब सामूहिक लाभ को छोटा गिना जाने लगा, स्वार्थ के आगे जब परमार्थ की अवहेलना हुई, खुदगर्जी को जब आदर्श और सिद्धान्तों से ऊपर समझा गया तो निश्चित था कि हमारा जातीय पतन होता ।

लगभग एक हजार वर्ष पूर्व मुसलमानों ने हिन्दुस्तान पर आक्रमणकारियों की संख्या मुट्ठी भर थी। वे स्वल्प प्रयास में न केवल यहाँ की धन सम्पदा लूटते रहे, वरन् अपना शासन भी स्थापित करते गये। अपने शासन में उन्होंने अपनी धर्मान्धता के मद में जिस प्रकार कत्ले आम कराये उनकी साक्षी इतिहास के पन्ने पर मिलती है। यह सब होता रहा। थोड़े बहुत दिनों तक नहीं एक हजार वर्ष के लम्बे काल तक यह सब होता रहे । शासक बदलते रहे पर नीति में अधिक हेर-फेर नहीं हुआ ।

इतिहास हमें बताता है कि इस एक हजार वर्ष में कभी भी भारत इतना निर्बल नहीं हुआ था कि उसे थोड़े से लोग, इस आसानी से, इतने दीर्घ काल तक, इतनी बुरी तरह पददलित करते रहते। जब जहाँ आक्रमण हुए तब वहाँ के लोगों को ही वह सब भुगतना पड़ा। देश में अनेक राजा भरे पड़े थे, प्रजा के पास भी पर्याप्त अस्त्र शस्त्र थे, स्वास्थ्य और वीरता की दृष्टि से भी वे किसी से पीछे न थे, पर कमी एक ही थी, "अपने मतलब से मतलब" की नीति गहराई तक घुस गई थी। एक राजा दूसरे प्रदेश को बचाने के लिए खुद क्यों कष्ट उठावे ? एक प्रदेश की प्रजा दूसरे प्रदेश की प्रजा को बचाने क्यों जावे ? यह व्यापक स्वार्थ वहाँ भी व्याप्त था जहाँ आक्रमण होते थे। लोग संगठित होकर विरोध करने का प्रयत्न करने की अपेक्षा अपना व्यक्तिगत लाभ उठाने की बात सोचते थे। ऐसी विशृंखलित जाति को लूट लेना, यददलित कर देना किसी के लिए क्या मुश्किल हो सकता है।

उस घोर अंधकार के युग में शिवाजी, राणा प्रताप, गुरुगोविन्दसिंह, वन्दा वैरागी, सरीखे नक्षत्र गिने-चुने ही दीखते हैं। ऐसे तो कईयों उदाहरण है कि अपने ऊपर आ पड़ी तो बहादुरी से मर मिटे, पर ऐसे उदाहरण कम मिलेंगे जो दूसरों को बचाने के लिए उठ खड़े हुए हों। इसके विपरीत ऐसे लोगों का बाहुल्य है जिन्होंने व्यक्तिगत लाभ के लिए आक्रमण कारियों को, विदेशियों को, भर पूर सहायता दी। मुसलमान और अंग्रेजों के राज्य संचालक हिन्दू ही थे। उन्हीं की सहायता से उनकी शासन-व्यवस्था चल सकी । बड़े-बड़े राजाओं ने उनका साथ दिया, आधीनता स्वीकार की, व्यक्तिगत लाभ उनके लिए देश, धर्म सम्मान, स्वाधीनता सभी से बढ़ चढ़ कर था। बेचारे करते भी क्या ?—एकता के अभाव में नैतिक बल कायम भी तो नहीं रह सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमारी पराधीनता का इतिहास हमारी अशक्ति या आक्रमणकारियों की शक्ति का इतिहास नहीं है। वरन् अनैक्य की, विसंघटन की एक करुण कहानी है । जब इस विसंघटन में कमी आई, एकता की शक्ति का थोड़ा-सा संचार हुआ तो इतना प्रचंड राष्ट्र तेज जग पड़ा कि जिसके भय से आज विदेशियों को दुम दबा कर भागना पड़ रहा है। राष्ट्रीय महासभा काँग्रेस को जनता की शक्तियों का संगठन करते हुए अभी तीस वर्ष भी नहीं हुए कि राष्ट्र की प्रसुप्त आत्मा जाग पड़ी—इस भगवती दुर्गा की हुंकार मात्र से दिशाएँ थर-थर काँपने लगीं। पूरे एक लाख भी नहीं—केवल कुछ हजार सत्याग्रहियों ने, नंगे हाथों, जेल जाने मात्र का कार्यक्रम अपना कर उन शासकों को भगा दिया जो प्रलयंकारी परमाणु शक्ति से सुसज्जित थे, जिनके साम्राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता । यह सत्याग्रहियों की नहीं, काँग्रेस की नहीं, एकता की शक्ति है । यह जितनी बढ़ती जावेगी उतना ही हम उत्कर्ष की ओर बढ़ेंगे ।

जहाँगीर की बेटी का डॉक्टर सर टामस रो ने इलाज किया। लड़की अच्छी हो गई । जहाँगीर ने डॉक्टर से कहा—मुँह माँगा इनाम माँग लो । डाक्टर चाहता तो अपने लिए कोई बड़ी सी जागीर, ओहदा या लाख करोड़ की सम्पत्ति माँग सकता था और अपना पीड़ी दर पीड़ी के लिए शाही वैभव प्राप्त कर सकता था, पर उसने ऐसा नहीं किया। उसने जहाँगीर से माँगा कि "मेरे देश से आने वाले माल पर आपके राज्य में चुंगी न ली जाय" उसे मुँह माँगी मुराद मिल गई । सर टामस रो को व्यक्तिगत दृष्टि से कुछ नहीं मिला, पर उसका देश, इग्लैण्ड मालामाल हो गया । जिस देश के नागरिकों में सर टामस रो जैसी देश-भक्ति हो उसी देश-को, उसी जाति को उन्नति का गौरव प्राप्त होता है। अँग्रेजों के इसी गुण ने थोड़े से दिनों में ही उन्हें विशाल साम्राज्य का स्वामी बना दिया और इसी गुण को खो देने के कारण भारत को दीनता, दासता एवं बर्बरता की यातनाऐं सहनी पड़ीं ।

इस्लाम के जन्म को केवल मात्र तेरह सौ वर्ष हुए हैं। जातियों के जीवन की दृष्टि से यह समय अत्यंत ही स्वल्प है। इतने थोड़े समय में मुसलमानों की संख्या पचास करोड़ के लगभग हो गई । संख्या की दृष्टि से दुनियाँ में सबसे अधिक ईसाई हैं, उससे कम मुसलमान हैं। इतने थोड़े समय में दुनिया के कोने-कोने में मुसलमान इतनी प्रचंड मात्रा में हो गये, क्या आपने कभी विचार किया है कि इसका कारण क्या है ? प्रचार की, धन की, शासन की शक्ति अथवा दार्शनिक उत्कृष्टता के कारण वे इतने नहीं बढ़े हैं, इस वृद्धि का असली रहस्य है—उनकी जातीय एकता। अपने सजातीयों के लिए वे सब कुछ कर सकते हैं । भारतवर्ष के मुस्लिम राष्ट्रीय नेताओं तक के सामने जब जाति भक्ति और देश-भक्ति में से एक को चुनने का प्रश्न आया है तो समय-समय पर अनेकों ने स्वजातीयों का ही पक्ष लेकर राष्ट्रीयता को तिलाञ्जलि दी है, यह सब राजनीति के विद्यार्थियों से छिपा नहीं है। कसाईगीरी, वेश्यावृत्ति जैसे घृणित पेशे करने वाले स्त्री-पुरुष तक अपनी जातीय वृद्धि के लिए, तबलीग के लिए अपनी कमाई में से एक भाग देते हैं और अन्य उचित-अनुचित तरीकों से उसके लिए प्रयत्न करते हैं। सजातीयों का अनुचित पक्ष लेने में, उन्हें अनुचित एवं अनावश्यक सहायता देने में झिझक नहीं होती । मुस्लिम जाति की यही विशेषता उनकी इस वृद्धि का कारण हुई है । इस एकता के बल पर ही उन्होंने अपने दुराग्रह तक को पूरा कर लिया। धर्म के आधार पर देश का विभाजन जैसी अप्रजातांत्रिक, अवैज्ञानिक, अनौखी माँग को मनवा कर छोड़ा।

हिन्दू जाति कई दृष्टियों से अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। उसका धार्मिक आदर्श इतना ऊँचा है, जिसकी तुलना में अन्य धर्मों का साहित्य नहीं ठहर सकता। उसकी प्रथाएँ, परम्पराएँ, अनुपम हैं। पतिव्रत का ऐसा आदर्श अन्यत्र मिलना कठिन है। शारीरिक बल में, विद्या में, बुद्धि में, वाणिज्य में, कला में, चातुर्य में, सब में पर्याप्त क्षमता शील हैं, पर सबसे बड़ा दुर्गुण एक ही है, वह है—जातीय अनैक्य, फूट, विसंगठन। इस एक ही कमी ने सारी योग्यताओं को चौपट कर रखा है। यह योग्यताएँ सामूहिक कार्यों में लगें, सब लोग एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरे से हमदर्दी रखें, भाई-भाई के दुःख सुख को अपना समझे, एक-दूसरे को ऊँचा उठाने, सहायता देने और मुसीबत में बचाने के लिए तत्पर रहें तो कोई कारण नहीं कि हम प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त न कर सकें।

बहुत सो लिये, आइए अब उठें और एक-दूसरे की सहायता करते हुए अपने जातीय संगठन को मजबूत बनावें । अब हमारा सौभाग्य सूर्य पुनः उदय हो रहा है, अपनी भूलों को हम समझ गये हैं, उन्हें पुनः न दुहरावेंगे । अनैक्य ने हमें बर्बाद किया था, एकता के बल पर अब हम ऊँचे उठने लगे हैं । आइए, इस संघ शक्ति को प्रचण्ड रूप से जागृत करें और अपने महान् गौरव की प्राप्ति के लिए द्रुतगति से आगे बढ़ चलें ।

जातीय संगठनों का स्वरूप

प्राचीनकाल में मनुष्य जाति को गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार चार भागों में सामाजिक सुव्यवस्था की दृष्टि से विभक्त किया गया था । ज्ञान, शस्त्र, धन और श्रम की चार शक्तियाँ मानव–जाति की प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करती रही हैं। यों इन चारों की ही प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता पड़ती है, पर इनमें से एक-एक की विशेष आराधना करने के लिए भौतिक जीवन का सुनिश्चित कार्यक्रम बनाने के लिए वर्ण धर्म का विधान बनाया गया।

आध्यात्मिक प्रगति के लिए उपासना, जीवन शोधन और परमार्थ की विशिष्ट कार्य–पद्धति अपनानी पड़ती है तब जीवन लक्ष्य की प्राप्ति होती है। भौतिक प्रगति के लिए ज्ञान, शस्त्र और धन की आवश्यकता रहती है। इन्हीं के माध्यम से अज्ञान, अशक्ति और अभावों का निराकरण होता है। एक वर्ग इनमें से एक लक्ष्य को लेकर कार्य–संलग्न रहे तो उसमें विशेष योग्यता प्राप्त होने और अधिक सफलता मिलने की सम्भावना रहती है। इस तथ्य को समझते हुए ऋषियों ने चार वर्ण बनाकर सुन्दर ढंग से श्रम विभाजन कर दिया। सामाजिक उन्नति के लिए यह एक सुन्दर व्यवस्था भी है।

कर्म में वर्ण का सिद्धान्त सनातन है। वर्ण-व्यवस्था का आधार गुण, कर्म, स्वभाव है, पर वर्तमान जाति-व्यवस्था वंश परम्परा से चलती है। ज्ञानी, त्यागी और लोकसेवी ब्राह्मण का बेटा अशिक्षित दुर्बुद्धि, दुष्ट तथा दुराचारी होते हुए भी जब ब्राह्मण ही कहलाता है तब आश्चर्य होता है कि वर्ण-व्यवस्था का मूल आधार इस प्रकार उलट–पुलट क्यों हो गया ?

ऐतिहासिक तथ्यों की गहरी खोजबीन करने पर पता चलता है कि वर्तमान जातियाँ वर्ण नहीं वरन् वर्ग मात्र हैं। जिन लोगों में समीपता, प्रांत, भाषा, आचार, व्यवहार वंश की समानता के कारण परस्पर रोटी–बेटी का व्यवहार होता था उनकी परिवार शृंखला एक जाति या उपजाति कहलाने लगी। एक वंश तथा उससे सम्बन्धित रिश्तेदारों का समूह एक वर्ग या जाति कहलाया। अधिकतर तो एक वर्ग के भीतर ही गोत्र बचाकर विवाह शादी होती है, पर कहीं–कहीं ऐसा भी है कि एक उपजाति अपने में नहीं वरन् दूसरी उपजाति में विवाह करती है। रक्त से सम्बन्धित वंश और विवाह-शादियों की शृंखला से बंधे हुए अन्य परिवार मिलकर जो वर्ग बने उन्हें ही आज जातियों या उपजातियों के नाम से गिना जाता है । इनकी संख्या भारतवर्ष में १७ हजार से ऊपर है । यदि उनका आधार वर्ण होता तो वे चार ही रहतीं । इतनी बहु-संख्यक वे किसी प्रकार भी न बन पातीं ।

इन वर्गों को–जातियों या उपजातियों को वंश और बेटी सम्बन्ध के आधार पर बने समूह कहा जा सकता है। परिवार में केवल वंश ही प्रधान रहता है, जिसमें रिश्तेदार भी जुड़ जावें, उसे वृहत् परिवार कहा जा सकता है। यह छोटे-छोटे वृहत् परिवार ही आज जातियों और उपजातियों के रूप में विख्यात हैं। वर्ण-व्यवस्था से उनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। वर्ण का आधार कर्म है, वंश नहीं । वंश परम्परा तथा विवाह परम्पराओं का आधार लेकर चलने वाले समूहों को एक वृहत् परिवार ही माना जायेगा उसे ही उपजाति या जाति का नाम मिला है।

इन वृहत् परिवारों को सुविकसित करने का कार्य अलग-अलग संगठनों के अन्तर्गत किया जाय तो कुछ हर्ज नहीं, न इससे कोई हानि है और न संकीर्णता । श्रमिक वर्ग के कार्यों की या काम करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की स्थानों की भिन्नता के कारण अलग-अलग यूनियनें बनती हैं । यद्यपि उन सबका लक्ष्य एक ही होता है, पर संगठन की सुविधा के लिए उनकी पृथक्–पृथक् यूनियनें बनती हैं। मोटर ड्राइवर, ताँगा हाँकने वाले, रिक्सा चलाने वाले यद्यपि एक ही प्रकार का काम करते हैं और उनके संगठन का उद्देश्य भी एक ही है पर संगठन में सुविधा तभी रहती है जब मोटर ड्राइवर यूनियन, ताँगा यूनियन, रिक्सा यूनियन आदि अलग-अलग बनें। तेल मिलों के, कपड़ा मिलों के, औषधि फैक्टरियों के, हाथ करघा बुनकरों के अलग-अलग संगठन रहने पर भी यह नहीं सोचा जाता कि यह पृथकता फूट फैलाने या संकीर्णता बढ़ाने के लिए आरम्भ की गई है। सदुद्देश्य से क्षेत्र एवं एकरूपता की दृष्टि से किये हुए संगठन कभी हानिकारक नहीं हो सकते। जैन सभा, सनातन धर्म सभा, सिक्ख शिरोमणि सभा, ईसाई मिशन सभा आदि संगठन कोई बुराई उत्पन्न नहीं कर रहे। फिर जातीय संगठन यदि प्रगतिशील उद्देश्यों के लिए बनाये जा रहे हों तो उनसे न तो किसी प्रकार की हानि हो सकती है और न संकीर्णता एवं फूट बढ़ सकती है। छोटा संगठन भी वृहत् एकता की ओर बढ़ने की एक कदम ही होता है ।

युग-निर्माण योजना में परिवार-निर्माण पर अत्यधिक जोर दिया गया है, क्योंकि समाज का आधार परिवार ही है । परिवारों का सम्मिलित स्वरूप ही तो समाज है । ईंटों से मिलकर ही तो दीवार बनती है। ईंटें कच्ची रहती हैं तो दीवार भी कमजोर बनेगी। परिवारों का तारतम्य यदि अस्त-व्यस्त हो रहा होगा जो सभ्य समाज की भव्य रचना का दृश्य कहाँ दिखाई देगा ? परिवारों में स्वस्थ परम्पराओं का प्रवेश कराने के लिए 'अखण्ड–ज्योति' परिवार सदस्यों को प्रेरणापूर्वक लगाया गया है । फलस्वरूप तीन-चौथाई से अधिक इस परिवार के सदस्य अपने-अपने कुटुम्बों की अभिनव रचना करने में लगे हुए हैं। नियमित रूप से कुछ समय वें इस कार्य के लिये लगाते रहते हैं।

वृहत् परिवारों की सेवा, संगठन भी उसी प्रयत्न का विकसित रूप है। सन्मार्ग पर चलने की सफल प्रेरणा केवल उन्हें दी जा सकती है, जिस पर अपना व्यक्तिगत प्रभाव हो। सुधार आन्दोलन के संदर्भ में हर व्यक्ति का वास्तविक क्षेत्र भी उन्हीं लोगों के बीच रहता है। कुटुम्बी, रिश्तेदार, मित्र, परिचित एवं जो अपने प्रभाव में हैं उन्हीं से कोई सुधारात्मक कार्य जोर देकर कराया जा सकता है। अच्छी बात सुन तो कोई भी लेता है, पर करता उसी के आग्रह से है जिसका कुछ प्रभाव अपने ऊपर होता है । सन्मार्ग पर चलने में हर व्यक्ति को कुछ अड़चन अनुभव होती है उस अड़चन का मुकाबला करने के लिए आवश्यक साहस किसी प्रभावी व्यक्ति की प्रेरणा से ही मिलता है । इसलिए युग-निर्माण योजना के अन्तर्गत हर परिजन को यह कहा गया है कि दूर देशों तक धर्मोपदेश देने जाने का विचार छोड़कर वह अपने प्रभाव क्षेत्र में सेवा कार्य आरम्भ करें और वह प्रभाव क्षेत्र जैसे-जैसे बढ़ता जाय वैसे-वैसे सेवा क्षेत्र भी बढ़ता जाय।

वृहत् परिवार में–अपनी उपजाति के क्षेत्र में कार्य करते हुए प्रत्येक लोक सेवी को अधिक सुविधा रह सकती है। वंश, रिश्तेदारी सम्बन्धों में आपसी ताने-बाने तथा भावनात्मक स्वभावी एकता के कारण जाति या उपजाति के क्षेत्र में काम करना अपने छोटे परिवार की अपेक्षा उससे कुछ ही बड़े क्षेत्र में काम करने का अगला कदम जैसा ही प्रतीत होता है नियमों के सुधार और संगठन में हम लोग लगे ही हुए हैं। यदि वृहत् परिवारों तक जातीय संगठनों के इस कार्य-क्षेत्र को बढ़ादें और युग-निर्माण योजना के अनुसार सभ्य समाज की भव्य रचना के लिए एक और कदम आगे बढ़ावें तो यह उचित भी होगा, आवश्यक भी और प्रशंसनीय भी ।

यों वैवाहिक अपव्यय को रोकने और सात्विकता की आदर्शवादी परम्पराओं के अनुसार विवाह सम्बन्धों के प्रचलन की प्रेरणा देने के उद्देश्य से यह जातीय संगठनों का कार्य आरम्भ करना पड़ रहा है, पर उसका उद्देश्य इतने तक ही सीमित न होगा । निजी परिवारों में जिन स्वस्थ परम्पराओं को जन्म देना चाहें उन्हें भी इन वृहत् परिवारों में व्यापक बनाने का, मानवोचित गुण, कर्म स्वभाव के आध्यात्मिक प्रवेश तत्त्वों को दिलाने का प्रयत्न इन संगठनों को करना चाहिए। शिक्षा, स्वास्थ्य, सदाचार, सद्भावना एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुविधा बढ़ाने के लिये अनेकों कार्यक्रम बन सकते हैं और यह जातीय संगठन अपने कार्यक्षेत्र में समुचित उत्साह उत्पन्न कर सकते हैं। युग-निर्माण योजना के १०८ कार्यक्रमों को जब घर-घर में व्यापक बनाया गया है तो जातीय क्षेत्र भी तो उसी परिधि में रहेगा।

संन्ध्या, गायत्री, हवन, रामायण, गीता आदि की शिक्षाओं का क्रम और भी किया जा सकता है, स्त्री शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा के लिए विशेष जोर दिया जा सकता है और उसके लिये जगह-जगह रात्रि पाठशालाएँ आरम्भ की जा सकती हैं । वर्ष में एक बार सम्मेलन हो और उसमें सामूहिक यज्ञोपवीत संस्कार कराये जायँ तो अच्छा ही रहेगा । माँस मदिरा का सेवन, थाली में जूँठन छोड़ना, गाली देना, मृत्युभोज, पशु-बलि, अश्लील गाने, चित्र, पुस्तकें, आदि अनेकों बुराइयाँ ऐसी हैं जिन्हें छोड़ने के लिये आन्दोलन किया जा सकता है और उन अनेकों सत्प्रवृत्तियों को इन संगठनों के द्वारा फैलाया जा सकता है जो मानवता के आदर्शों को विकसित एवं परिपुष्ट करती हों। इस प्रकार यह प्रगतिशील जातीय संगठन अपने-अपने कार्य-क्षेत्र में अनेकों दुष्प्रवृत्तियों का शमन और सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन करते हुए युग-निर्माण की भूमिका में महत्त्वपूर्ण भाग ले सकते हैं ।

जातीय संगठनों का उद्देश्य--मानवता की रक्षा

भारतीय धर्म को दूसरों शब्दों में वर्णाश्रम धर्म कहा जा सकता है । चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यदि अपना-अपना कर्त्तव्य पूर्ण तत्परता, श्रद्धा और ईमानदारी से पालन करें तो समाज का ढाँचा अत्यन्त सुव्यवस्थित रूप में खड़ा रह सकता है । इसी प्रकार यदि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास की क्रम व्यवस्था यथोचित में रीति से चलती रहे तो प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी जीवन में सुविकसित एवं सुसमृद्ध हो सकेगा । व्यक्तिगत जीवन की सफलता के लिये चारों आश्रम और सामाजिक सुव्यवस्था के लियें चारों वर्णों की आप प्रणाली यथोचित रीति से चलती रहनी चाहिये ।

नव युग-निर्माण की पुण्य बेला में वर्णाश्रम धर्म को पुनर्जीवत किया जाना नितान्त आवश्यक है । अस्त-व्यस्त-व्यवस्था को पुनः सुगठित न किया जायेगा तो वर्तमान अव्यवस्था का निराकरण और सुख-शान्ति का सूर्योदय हो न सकेगा । ब्रह्मचर्य, ग्रार्हस्थय, वानप्रस्थ यह तीन आश्रमों को ठीक तरह पालन कर लेने वाला पके फल की तरह ज्ञान पक्व होकर 'वसुधैव कुटुबम्कम्' का आदर्श अपनाकर निरन्तर लोक सेवा एवं लोक शिक्षण में लगा रहता है । इसके शिक्षण की कोई आवश्यकता नहीं रहती । वर्ण धर्म का नव-निर्माण करने के लियें जातीय संगठनों की सुव्यवस्थित योजना आरम्भ की जा रही हैं । नष्ट भ्रष्ट हो सही पर वर्णों के ध्वसांवशेष बनें हुए हैं उन्हीं के आधार पर अभिनव रचना का कार्य सुगम पड़ेगा । जातीय संगठनों की रूपरेखा बताई जा चुकी है सदस्यों को चार वर्णों में विभाजित करके उनके स्वतन्त्र संगठन बना देंने का प्रबन्ध कर रहें हैं। इन संगठनों का कार्य अपने–अपने वर्णों में कर्त्तव्य भावना उत्पन्न करके सर्वांगीण श्रेष्ठता उत्पन्न करना होगा यह संगठन स्वतन्त्र रूप में विकसित होंगे और अपने वर्ण के धर्म कर्त्तव्यों को हृदयगम कराने एवं व्यवहार में प्रचलित करने के लिये पूरी तत्परता के साथ प्रयत्न करेंगे ।

आज जातिवाद का जो विकृत रूप हैं वह इतना प्रतिगामी हो गया है कि समझदार लोग उससें घृणा करते हैं और जाति-पाँति की बात करने वालों को संकीर्ण, प्रतिगामी, प्रगति विरोधी, फूट फैलानें वाले एवं अखण्ड मानवता को खण्डित करने वाले मानते हैं । इसलिये जातिवाद को साम्प्रदायवाद का ही एक रूप मान कर उसकी निन्दा करते हैं । यह निन्दा निश्चय ही उचित है । वर्तमान प्रकार की संकीर्णता भरी जाति–पाँति पद्धति जब तक जीवित रहेगी हिन्दू धर्म में आदर्शों में रोड़ा ही अटकाती रहेगी और मानवीय प्रगति को अवरुद्ध किये ही बैठी रहेगी। कर्त्तव्यों का सर्वथा परित्याग किये बैठे लोग भी जब केवल वंश के आधार पर अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं और साथ ही उसका अहंकार भी करते हैं तो उस मूर्खता पर कोई भी समझदार व्यक्ति घृणा किये बिना नहीं रह सकता। एक जाति दूसरी को ऊँच-नीच माने सो बात ही नहीं है, वरन् एक ही वर्ण-जाति के लोग परस्पर नीच-ऊँच का मापदण्ड बीघों विश्वों में गिनते हैं तो उसे मूढ़ता की पराकाष्ठा ही कहना चाहिए । चुनाव आदि में लोग अपनी जाति के लोगों से अपनी ही जाति के उम्मीदवारों को वोट देने के लिए कहते हैं। छोटे–छोटे स्वार्थों को लेकर जाति-पाँति के नाम पर पार्टी बन्दी बनाते और नीति-अनीति को ध्यान में न रखकर इसी आधार पर पक्षपातपूर्ण संघर्ष खड़े कर लेते हैं। ऐसी ही अन्य अनेक बुराइयाँ हैं जिनके कारण जातिवाद को एक संकीर्णता मान कर उससे घृणा की जाती है ।

उपरोक्त बुराइयों को कैसे सुधारा जाय और प्राचीन काल की वर्ण-व्यवस्था का लाभ किस प्रकार समाज को पहुँचाया जाय ? इस प्रश्न पर विचार करते हुए यह उपाय भावावेश मात्र मालूम पड़ता है कि जाति-पाँति से दूर रहा जाय, उसे मिटा दिया जाये । आज की परिस्थितियों में यह कहना सरल है, करना कठिन है । विवाह शादियों का क्षेत्र जातीय आधार पर कठिन हो चला है । जो परिपाटी को तोड़ता है उसके सामने अपने बच्चों की विवाह, शादी का प्रश्न आ उपस्थित होता है। जन मानस पूरी तरह न बदल जाय तब तक इस प्रकार का उत्साह दिखाने वाला यदि बहुत ऊँची स्थिति का व्यक्ति नहीं है तो उल्टा कठिनाई में फँस जाता है। जन-मानस बदलना एक दिन का काम नहीं, उसमें समय लगता है। इसलिए दूसरा उपाय अधिक उपयुक्त है कि वर्ण-धर्म की श्रेष्ठताओं को प्रचलित किया जाय और उसमें घुसी हुई बुराइयों को हटाकर शुद्ध समाज की रचना की जाय ।

यों जातिवाद से घृणा करने वाले भी प्रकारान्तर से उसका महत्त्व स्वीकार करते हैं और अपने नाम के साथ उसकी भी घोषणा गर्वपूर्वक करते हैं। महात्मा गाँधी, पंडित नेहरू, महामना मालवीय, राजर्षि टंडन, पं० पन्त आदि काँग्रेसी ही नहीं उग्रवादी निम्बूद्रीपाद, डांगे, भूपेश गुप्त आदि कम्युनिस्ट भी अपने नाम के साथ अपने जातीय परिचय का गर्वपूर्वक प्रयोग करते रहते हैं। यों यह लोग जातिवाद की भरपेट भर्त्सना करने में भी नहीं चूकते। इसके कारणों पर विचार करने से यही स्पष्ट होता है कि वंश परम्परा का स्मरण रखना कोई बुराई नहीं है। बुराई उन विकृतियों में है जो जाति-पाँति की आड़ लेकर हमारे समाज को जर्जर बनाने के लिए ब्रह्म रूप से घुस पड़ी हैं और ऐसी लगती हैं, मानो वे बुराइयाँ भी उन जातियों की अंग ही हों । यदि यह दोष को दूर किया जा सके तो निस्संदेह वर्ण-व्यवस्था प्राचीनकाल की तरह आज भी हमारे सामाजिक विनाश का रीढ़ बन सकती है और उसका नव-निर्माण एक तरह से समाज-निर्माण की भूमिका ही बन सकता है । हम जातीय संगठनों के द्वारा यही सब कुछ करने जा रहे हैं ।

हिन्दू समाज को कुप्रथाओं में सबसे बड़ी, सबसे घातक, सबसे घृणित दहेज एवं विवाह, शादियों में उन्मुक्त होकर पैसे की होली फूँकने की कुप्रथा है। इससे हर हिन्दू को अपनी आमदनी का आधे से अधिक भाग विवश होकर बर्बाद करना पड़ता है। मध्यम श्रेणी के लोग जिनके कई बच्चे, बच्ची विवाह योग्य हैं, इसी समस्या का हल ढूँढने में किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। बच्चों को अविवाहित रखा नहीं जा सकता, विवाह के लिये धन चाहिए, ईमानदारी से सीमित धन मिलता है ऐसी दशा में इसके अतिरिक्त और मार्ग नहीं कि अनीति एवं अधर्म से भी जितना अधिक कमाया जा सकता हो कमाया जाये और अपनी पारिवारिक आवश्यकता को पूरा किया जाये। यह स्वीकार करने में हर्ज नहीं कि हमारे आधे पाप और अपराध इस विवाहों में अन्धाधुन्ध खर्च कराने वाली कुप्रथा के कारण ही होते हैं। जब तक यह पिशाचिनी परम्परा जारी रहेगी हम रामायण, गीता पढ़ने, भजन, पूजन करने, गंगा-जमुना नहाने पर भी पाप कर्मों से विरत न हो सकेंगे और हमारी आध्यात्मिक और सामाजिक प्रगति का अवरोध ज्यों का त्यों अड़ा ही बैठा रहेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जातीय संगठनों की जो रूप रेखा बनाई गई है, उसकी तात्कालिक आवश्यकता इसलिए भी पड़ गई कि विवाहों के अपव्यय को, जेवर और दहेज की प्रथा को जल्दी से जल्दी समाप्त करना, उसके विरुद्ध घनघोर आन्दोलन करना और आदर्श विवाहों के असंख्यों उदाहरण प्रस्तुत करके इस घातक कुरीति पर करारी चोट करना नितान्त आवश्यक हो चला है । बुराई तेजी से बढ़ रही है इसे इसी रूप में बढ़ने दिया गया तो समाज की बर्बादी सुनिश्चित है। चीन और पाकिस्तान के खतरे से भी आन्तरिक दुर्बलता का यह पहलू अधिक आक्रमक है। इस मोर्चे पर भी सुरक्षा का प्रबन्ध किया जाना अनिवार्य हो गया है। इसमें देरी की गुंजायश नहीं। यह कैसे किया जाय ? इसका उपाय सोचने पर एक ही कारगर उपाय दृष्टिगोचर हुआ कि यह कार्य जातीय संगठनों के बिना वर्तमान परिस्थितियों में और किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता । वर-कन्या जब तक जाति के अन्तर्गत ही ढूँढ़े जाते हैं तब तक जातीय सुधार के अतिरिक्त और कोई भी व्यापक सुधार सामूहिक संगठित प्रयत्नों के बिना सम्भव नहीं हो सकता ।

विवाहों में कन्या पक्ष को दहेज के लिए तनिक भी दबाया न जाय, वर पक्ष को वधू को चढ़ाने के लिए कीमती जेबर कपड़े बनवाने को विवश न होना पड़े, बरातों की भीड़ ले जाने में अनेक लोगों के समय की बर्बादी और उनको रखने में बेकार का खर्च उठाने की जिम्मेदारी किसी पर भी न पड़े। आतिशबाजी, गाजे-बाजे और धूमधाम में गाढ़ी कमाई का पैसा नष्ट न हो । एक धार्मिक संस्कार मात्र सीधे-सादे ढंग से जैसे होना चाहिए वैसे ही सादगी और सात्विकता के वातावरण में विवाह, शादी हो जाया करें। यह हममें से हर एक चाहता है पर सामाजिक कुप्रथाएँ शक्ति से बाहर धन बर्बाद करने के लिए विवश करती हैं। इस विवशता को जातीय संगठनों के आधार पर आसानी से नष्ट किया जा सकेगा और अनुकरणीय आदर्श विवाहों का भारी संख्या में प्रचलन करके जनता की भीरुता को सरलतापूर्वक नष्ट किया जा सकेगा। यदि यह सुधार हो सका तो समझना चाहिए कि हिन्दू समाज की बर्बादी की भयंकर अड़चनों को जीत लिया गया । हमें यही करना है इसलिए अगले ही महीने प्रत्येक जाति का एक स्वतंत्र संगठन खड़ा कर रहे हैं।

दहेज एवं विवाहों में अपव्यय को हटाना तो एक सामयिक संघर्षात्मक पहलू है। ऐसी अनेक सामाजिक एवं नैतिक बुराइयाँ हमारे भीतर घुस पड़ी हैं, उनको एक-एक करके हटाते जाने के लिए प्रयत्न चलता रहेगा और यह संघर्ष तब तक जारी रहेगा जब तक अपना समाज पूर्ण पवित्र मानव-समाज के रूप में विकसित नहीं हो जाता । सामाजिक क्रांन्ति की चिनगारी दहेज उन्मूलन आन्दोलन के रूप में, आदर्श, विवाहों के रूप में आरम्भ की जा रही है, यह दावानल के रूप में जब प्रज्ज्वलित होगी तो उन सभी कषाय कल्पषों को भस्मसात् करेगी जिसने हमारे देव समाज को आज ऐसी लुंज-पुंज स्थिति में ला पटका है। हमें आध्यात्मिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए कुसंस्कारों से मुक्ति पानी ही पड़ेगी । जातीय संगठनों की रचना विभिन्न मोर्चे पर की हुई एक मोर्चेबन्दी ही कही जा सकती है जिसका उद्देश्य समस्त आसुरी प्रवृत्तियों का उन्मूलन करते हुए ऋषि परम्परा के अनुसार देव समाज का नव-निर्माण करना ही होगा ।

वर्ण-धर्म वस्तुतः मानवता का ही धर्म है । रुचि और स्थिति के अनुरूप, अज्ञान, अशक्ति और अभाव को दूर करने के लिए लोक हित की दृष्टि से कर्त्तव्य करते रहना ही वास्तविक वर्ण-धर्म है । कार्य विभाजन होते हुए भी लक्ष्य मानव मात्र का एक है । प्रत्येक वर्ण के कार्य भले ही बँटे हों पर उनके पीछे एक को एक ही उद्देश्य के लिए आत्म-कल्याण और सामाजिक उत्कर्ष के लिए ही प्रयत्न करना होता है। यह जातीय संगठन ऋषि धर्म की प्रत्येक श्रेष्ठ परम्परा को अपने कार्य-क्षेत्र में प्रसारित करते हुए महान् मानवता की सेवा करने की ही भूमिका प्रस्तुत करेंगे । इसी आशा और विश्वास के साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जातीय संगठनों की योजना को हम कार्यान्वित करने जा रहे हैं ।

प्रगतिशील जातीय संगठनों की आवश्यकता

भारतीय समाज में रोटी-बेटी, जाति-पाँति के दो आधारों में से रोटी की बात तो अब काफी हल्की होने लगी है। अपने पास-पड़ोस में न सही, कुछ दूर, जहाँ उँगली उठाने का प्रश्न पैदा न होता हो कच्ची रोटी आसानी से खा आते हैं। जानकारी के पास-पड़ौस में तो यह प्रतिबन्ध एक दंभ के रूप में अभी भी बरता जाता है, पर कुछ दूर हटकर आमतौर से लोग होटलों आदि में भोजन करते हैं, या अपने मित्रों के यहाँ कच्चा कहा जाने वाला भोजन करते हैं, फिर वे मात्र भले ही दूसरी बिरादरी के क्यों न हों। रोटी के सम्बन्ध में जातिवाद के बन्धन बहुत कुछ शिथिल हो चुके हैं और जो शेष हैं वह भी धीरे–धीरे समाप्त हो जायेंगे, ऐसा लगता है। रोटी के साथ धर्म की बात जोड़ना, अब उतना आवश्यक नहीं माना जाता, जितना कि कुछ समय पहले माना जाता था । विवेकशीलता की दृष्टि से यह एक शुभ चिन्ह है ।

बेटी का प्रश्न अभी भी जहाँ का तहाँ बना हुआ है । अपनी बिरादरी से बाहर की बात तो सामान्य जनता में सोची भी नहीं जाती। यहाँ तक कि अपने वर्ण के भीतर जो उपजातियाँ हैं, वे भी परस्पर विवाह सम्बन्ध करने को तैयार नहीं । ब्राह्मण एक वर्ण है, उसमें बीसियों उपजातियाँ हैं जो निवास करने के आधार पर बनी हैं । जैसे–मिथिला में रहने वाले मैथिल, कन्नौज में रहने वाले कान्यकुब्ज, मालवा में रहने वाले मालवीय, सरयू के किनारे रहने वाले सरयूपारीण आदि नामों से प्रसिद्ध हो गये। इसी प्रकार उनका अध्ययन जैसा था उसके अनुसार नाम पड़ गये। जिनके परिवार में वेद कंठाग्र करने की परिपाटी थी वे द्विवेदी, तीन वेद पढ़े जाते थे वे त्रिवेदी, चार वेद पढ़े जाते थे वे चतुर्वेदी कहलाते थे। इसी प्रकार के अन्य आधार भी हैं, जिनके कारण एक ही वर्ण के, एक ही जाति के लोग अलग-अलग नामों से पुकारे जाने लगे ।

इनमें परस्पर बेटी-व्यवहार होना तनिक भी अनुचित नहीं पूर्वकाल में यातायात के साधन न होने से लोग भले ही अपने स्थानीय समुदाय में विवाह करने के लिए विवश रहे हों, पर अब यातायात के साधन बढ़ जाने से वैसी कोई कठिनाई नहीं। एक ही रक्त के, एक ही वर्ण के, एक ही जाति के लोग अलग क्षेत्रों में रहने के कारण एक-दूसरे से भिन्न प्रकार के नहीं हो सकते, पर पिछले दिनों हम जिस अज्ञानान्धकार युग को पार करते हुए आगे आये हैं उसके देखते हुए यह आश्चर्यजनक भेदभाव अभी प्रचलित हैं ही, आमतौर से विवाह इसी दायरे में होते हैं। बड़े–बड़े सुधारवादी, क्रांन्तिकारी, राजनीतिज्ञ आदि भी यहीं चीं बोल जाते हैं। बाहर-बाहर जातिवाद की निन्दा वे कितने ही कड़े शब्दों में क्यों न करें, पर अपने लड़के, लड़की के विवाह अपनी बिरादरी में ही करेंगे। इससे स्थिति की कठिनता का आभास मिल जाता है। जो लोग जातिवाद के दायरे में विवाह करने के लिए विवश हैं, तो समझना चाहिए कि कठिनाई साधारण नहीं असाधारण है ।

जिन प्रगतिशील जातीय संगठनों के बारे में हमें कदम उठाना है, उनका उद्देश्य प्रगतिशीलता है। जिस प्रकार शासन की सुविधा के लिए कोई विशाल देश अपने प्रान्त एवं जिलों में बाँट दिया जाता है, लम्बे शिक्षण कार्यक्रम को कक्षाओं में विभक्त कर दिया जाता है, उसी प्रकार एक व्यापक नव-निर्माण कार्यक्रम को आवश्यकता एवं स्थिति के अनुसार विभक्त करके चलाया जाना चाहिए । जो समस्याएँ जातिवाद से सम्बन्ध रखती हैं, वे यदि उसी स्तर के संगठन बनाकर हल की जाँय तो इससे हानि कुछ नहीं सुविधा ही सुविधा है । मजदूर संगठन, व्यापार संगठन, धर्म संगठन अलग-अलग प्रकार के रहते हुए भी वस्तुतः राष्ट्र की सर्वांगीण प्रगति में योगदान ही करते हैं । इसी प्रकार राष्ट्र के समग्र सुधार आन्दोलन को उपयोगिता एवं आवश्यकता के अनुरूप अनेक भागों में विभक्त करना पड़ेगा। प्रगतिशील जातीय संगठनों से यही काम लिया जाना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुरानी जातीय संस्थाओं और नये प्रगतिशील संगठनों में मौलिक अन्तर यह है कि उनका सदस्य उस जाति का कोई भी व्यक्ति बन सकता है, भले ही वह घोर प्रतिगामी विचारों का ही क्यों न हो ? आमतौर से ऐसे ही लोग इन पर छाये रहते हैं और जो कोई से सुधारवादी लोग उनमें होते हैं, उनके मार्ग में रोड़े अटकाते रहते हैं । फलस्वरूप झंझट बहुत खड़ा रहता है और काम कुछ नहीं होता । नये प्रगतिशील जातीय संगठनों का स्वरूप बाहर से भले ही एक-सा प्रतीत हो, वस्तुतः सर्वथा भिन्न होगा। इन का सदस्य कोई व्यक्ति केवल इसलिए नहीं बन सकेगा कि वह उस जाति का है, वरन् संगठन के जो छः उद्देश्य हैं, उन पर उन्हें पूरा विश्वास होगा, उन मान्यताओं को स्वीकार, शिरोधार्य करेंगे वे ही उनके सदस्य बन सकेगें । इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह संगठन विशुद्ध रूप से सुधारवादी मान्यता वाले लोगों के होंगे और किसी को नया सदस्य बनने से पूर्व उसकी आस्थाओं का निश्चय करना होगा। यह लोग निर्धारित कार्य पद्धति को कार्यान्वित करने के लिए ही प्रयत्नशील रहेंगे और उसी में अपनी शक्ति लगावेंगे । मान्यताओं को स्वीकार करने न करने के प्रश्न को लेकर परस्पर टकराते रहने का कोई प्रश्न ही उनके सामने न रहेगा, रचनात्मक प्रयत्नों में संलग्न रहने में ही उनकी प्रतिभा का उपयोग होता रहेगा ।

अटपटापन कुछ नहीं

प्रगतिशील सुधारवादी लोग जातीय संगठन बनायें। बाहर से देखने में यह बात बड़ी अटपटी मालूम पड़ती है, पर जब थोड़ी गम्भीरता से वस्तुस्थिति पर विचार किया जाता है, तो तथ्य उभरकर सामने आ जाते हैं और आशंका का सहज ही समाधान हो जाता है। विवाहों में होने वाले अपव्यय को रोका जाना चाहिए। इसके लिए दोनों पक्षों को सुधारवादी होना चाहिए। यह सुयोग एक सीमित बिरादरी के अन्तर्गत ही मिलाना होगा, क्योंकि दो मोर्चो पर एक साथ नहीं लड़ा जा सकता । जाति तोड़कर बिना खर्च के आदर्श विवाह होने लगें, इसमें अभी देर है। अभी जब कि सीमित दायरे में शादियाँ होनी ठहरीं तो उन दायरों को भी प्रगतिशील बनाना होगा एवं उनमें जो प्रगतिशील लोग हैं उन्हें एक मंच पर लाना होगा। ताकि वे मिल-जुलकर उस अपने बिरादरी क्षेत्र को भी प्रतिगामिता से ऊपर उठाकर प्रगतिशीलता के स्तर तक ले जा सकें। प्रगतिशील जातीय संगठनों का यह उद्देश्य स्वरूप निश्चय ही राष्ट्रीय प्रगति में बाधक नहीं, सहायक ही होगा।

एक समान क्रियाओं को देखकर आमतौर से एक-सा उद्देश्य भी मान लिया जाता है, पर कई बार ऐसा भी होता है, कि एक-सी क्रिया करने वाले, एक-से साधन उपकरण एकत्रित करने वाले व्यक्ति कार्य बिल्कुल विपरीत कर रहे होते हैं। एक व्यक्ति आत्महत्या के लिए कुएँ में गिरता है, दूसरा उसे निकालने के लिए उसी कुएँ में प्रवेश करता है। बाहर से देखने में दोनों की क्रियायें बिलकुल एक-सी हैं, पर उद्देश्य भिन्न होने के कारण उनका परिणाम भी भिन्न होता है। आत्महत्या के लिए कुएँ में गिरने वाला, प्राण खो बैठता है, अंग-भंग होता है । बच गया तो सरकारी कानून के अनुसार जेल जाता है, समाज में निन्दा का पात्र बनता है, किन्तु जिसने बचाने, निकालने के लिए कुएँ में प्रवेश किया था, उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है और परिणाम भी अच्छा निकलता है। अपराधी बनना निन्दनीय है, पर सरकारी गुप्तचर अपराधी होने का बहाना करके उनमें मिल जाता है और गिरोह को पकड़वा देता है, तो कुछ समय अपराधियों जैसा आचरण करने, उनके साथ रहने की क्रिया को अनुपयुक्त नहीं मना जाता सरकार ऐसे गुप्तचरों की प्रशंसा करती है और पुरस्कार देती है, जबकि वास्तविक अपराधी दण्डनीय ठहराये जाते हैं ।

हमारा उद्देश्य राष्ट्र या समाज का विकास करना है। हर क्षेत्र तक हमें पहुँचना होगा। पिछड़े हुओं से घृणा करने से या उनसे दूर रहने से काम नहीं चलेगा वरन् उनके बीच जाकर उनके कल्याण एवं उत्थान का कार्य करना होगा। ईसाई मिशनरियाँ आदिवासियों के बीच रहकर उनका उत्कर्ष करती हैं। वे स्वयं आदिवासियों के दोषों से ग्रस्त नहीं होते वरन् उन्हें अपनी अच्छाइयाँ सिखाते हैं। कोढ़ियों की सेवा करना बुरा नहीं है। उनसे दूर रहकर उनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हित साधन कैसे होगा ? गाँधीजी दिल्ली की हरिजन बस्ती में ठहरते थे तो वे स्वयं कोई गन्दी आदत नहीं सीखते थे वरन् उन्हें स्वच्छता एवं प्रगति का सन्देश देते थे। जातीय क्षेत्रों में बेशक रूढ़िवादिता एवं संकीर्णता का बाहुल्य है, पर इसी कारण उससे नाक–भौं सिकोड़ना उचित न होगा वरन् उनसे सम्पर्क बनाकर सुधार कार्य आरम्भ करना होगा।

वस्तुस्थिति समझी जाये

यह स्वीकार करने में कोई हर्ज नहीं कि भारत में जातिवाद की जड़ें बड़ी गहरी हैं। इस बीमारी की भयंकरता का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है, कि प्रगतिशील लोग तक उसमें बुरी तरह ग्रसित हो रहे हैं। काँग्रेस को ही लीजिए उसके संगठन में तथा सरकार के संचालकों में जातिवाद भी गुटबन्दी का एक बड़ा माध्यम बना हुआ है। अन्य राजनैतिक दलों में भी यह बीमारी घुसी हुई है। चुनाव के दिनों में मतदान के पीछे तीन-चौथाई जातीय भावनायें काम करती हैं, इस प्रगट रहस्य को कौन नहीं जानता ? संस्थाओं में, संगठनों में, गुट-बन्दियों में जहाँ देखिए गुप्त रूप से जातिवाद का विष घुला मिलेगा । सवर्ण-असवर्ण का अन्तर कानून ने भले ही मिटा दिया हो, पर वह मस्तिष्कों में और व्यवहार में जहाँ मौजूद है। हमारी भावनात्मक एकता में यह भेद अत्यन्त घातक रूप से बाधा उत्पन्न कर रहा है। इस विष का भी उपचार करना ही होगा। जिस फूट ने, अलगाव की भावना ने हमारे राष्ट्र को इतना जर्जर बना दिया था कि लम्बी अवधि तक विदेशियों का नृशंस आधिपत्य सहन करना पड़ा वही स्थिति आगे भी आ सकती है। भीतर से बढ़ा हुआ और खोखला राष्ट्र उपचारात्मक एकता के सहारे ही समर्थ एवं सशक्त नहीं बनाया जा सकता।

प्राचीन काल में भी जातियाँ थीं, पर उनका स्वरूप विशुद्ध रूप से व्यावसायिक था। आज के श्रम-संगठनों की तरह ही उनका अस्तित्व सामने आया था। ऊँच-नीच, संकीर्णता या विलगाव का कोई तत्त्व उनमें न था, पर अब तो उनने इतना विकृत विपरीत रूप धारण कर लिया है कि हर बिरादरी अपने आपको एक अलग समाज बनाये बैठी है। अन्य बिरादरी वाले पड़ोसी व्यक्ति को अपने उत्सव आयोजनों में बुलाने की अपेक्षा पाँच मील दूर से अपनी बिरादरी वाले व्यक्ति को आमन्त्रित करते हैं।

कुरीतियाँ विभिन्न जातियों में विभिन्न प्रकार की हैं। एक ही नगर में बसने वाली इन जातियों में अलग-अलग प्रकार के रस्म-रिवाज मिलेंगे और उनकी कुरीतियाँ, अच्छाइयाँ अलग-अलग प्रकार की होंगी। एक गाँव के लोगों के लिए यदि एक प्रकार का आन्दोलन किया जाये तो उसकी आंशिक उपयोगिता ही सबके लिए रहेगी । फिर चूँकि रिवाजें अकेले व्यक्ति से सम्बन्धित ही रहतीं उनके पालन करने न करने का उस बिरादरी के अनेक लोगों से सम्बन्ध होता है, वे भला-बुरा मानते हैं, कई बार सामाजिक असहयोग के रूप में हमें विवश होकर इन बातों को मानना पड़ता है। इसलिए रस्म–रिवाजों का हेर-फेर कुरीतियों में सुधार तभी ठीक तरह हो पाता है, जब उस जाति के अन्य लोग भी इस परिवर्तन में सहयोग देने लगें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रगतिशील जातीय संगठन बड़े उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ।

अच्छाइयाँ बनाम बुराइयाँ

जातिवाद में कुछ अच्छाइयाँ हैं, कुछ बुराइयाँ। जो अच्छाइयाँ हैं उन्हें बढ़ाया जाना और जो बुराइयाँ हैं उन्हें घटाया जाना चाहिए । यह कार्य उन लोगों से दूर रहकर लाठी से थन छूने की कहावत चरितार्थ करते हुए सम्भव नहीं हो सकता है। दूर से किसी बात की निन्दा प्रशंसा करते रहना अलग बात है। आलोचना करना सबसे सुगम है, पर जो गन्दगी है उसे उठाने के लिए उसके पास तक पहुँचना पड़ेगा। कोई मेहतर बदबूदार चीजों से दूर-दूर रहे, उन्हें छुए, उठाए नहीं केवल दुर्गन्ध की निन्दा करता रहे गन्दगी उत्पन्न करने वालों को कोसता और वैसा न करने का उपदेश देता रहे, तो उस बेचारे का प्रलाप निरर्थक ही चला जायेगा क्योंकि वह बकवास अव्यावहारिक है। उचित यह है कि वह गन्दगी समेट-बटोर कर दूर फेंक आवे और मलीन स्थान की सफाई-धुलाई करके स्वच्छ बना दे। आलोचना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने वाले बहुत हैं उन्हें अपना काम करने देना चाहिए और हमें गन्दगी के ढेर तक जाकर उसकी सफाई का कार्य आरम्भ कर देना चाहिए।

प्रगतिशील जातीय संगठनों का यही उद्देश्य होगा । इस फेर में पड़े हुए लोगों तक पहुँचना और उनकी प्रतिगामी भ्रान्त मान्यताओं का सुधार करना, हमारा लक्ष्य रहेगा तो उद्देश्य के अनुरूप प्रतिफल भी श्रेष्ठ ही होने वाला है । जातिवाद के विकृत स्वरूप के स्थान पर उसका स्वच्छ आदर्श एवं उपयोगी स्वरूप प्रस्तुत करके स्थिति में आवश्यक परिवर्तन उत्पन्न किया जा सकता है। जिस मान्यता ने हमारी नस-नस को प्रभावित कर रखा है, उसे बढ़-चढ़कर बातें बनाने मात्र से उखाड़ कर नहीं फेंका जा सकता, उसें सुधारा भर जा सकता है । यह बात अविस्मरणीय रहे कि आज बिरादरीवाद की जड़ें काफी गहरी हैं। सच तो यह है कि भाषावाद, प्रान्तवाद, वर्गवाद आदि के नाम पर कई प्रकार की बिरादरियाँ बनती चली जा रही हैं। आज भी अनजान में हमारे राष्ट्र नेता भी इस भावना से अपने को अलग नहीं रख सके हैं। कहने को वे सम्प्रदायवाद, जातिवाद आदि के नाम सुनते ही आग–बबूला हो जाते हैं, पर अपने नामों के साथ गर्व और गौरव के साथ अपनी जाति या उपजाति का परिचय पत्र जोड़े हैं। इसमें कम्यूनिस्टों से लेकर स्वतंत्र पार्टी तक हर पार्टी राजनैतिक नेता सम्मिलित हैं ।

रोग को मारें रोगी को नहीं

महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, महामना मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य तिलक, सरोजिनी नायडू, गोपालकृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, चितरंजन दास गुप्त आदि कँग्रेसी, नम्बूदरी पाद, डाँगे, भूपेश गुप्त आदि कम्युनिस्ट, राम मनोहर लोहिया, आचार्य कृपलानी आदि समाजवादी, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, अटलबिहारी बाजपेयी, दीनदयाल उपाध्याय आदि जनसंघी सभी राजनैतिक दलों के नेतागण अपने नाम के साथ अपने जातीय परिचय के संकेत जोड़े हुए हैं । इससे स्पष्ट है कि जाति का उल्लेख, चर्चा या अस्तित्व स्वयं कोई ऐसी बात नहीं है, जिसे प्रतिगामिता कहा जा सके। यह विशुद्ध रूप में पारिवारिक वर्गीकरण है। जिसमें फूट फैलाने या संकीर्णता बढ़ाने जैसी कोई बात नहीं । यदि ऐसा होता तो उपरोक्त नेताओं ने न तो अपने नाम के साथ जातिवाद बोधक शब्द जोड़े होते और न अपनी जाति में विवाह–शादियों का प्रचलन रखा होता ।

जातिवाद की निन्दा में जो कुछ कहा जाता है, उसका तात्पर्य केवल मात्र इतना है कि उसमें जिन बुराइयों और संकीर्णताओं ने प्रवेश कर लिया है, वे अनुपयुक्त हैं। शुद्ध, सरल और सही रूप में यदि बिरादरियाँ अपना काम करती रहें तो उनसे राष्ट्रीय प्रगति में बाधा नहीं पड़ेगी वरन् सहायता ही मिलेगी। रोगी को नहीं रोग को मारा जाना चाहिए। अमुक नगर गन्दा है, उसका उपाय यह नहीं कि उस नगर को नष्ट या बहिष्कृत कर दिया जाये वरन् तरीका यह है कि वहाँ फैली हुई गन्दगी को स्वच्छ कर दिया जाये। इतना होने पर जिस नगर की गन्दगी के नाम से पहले नाक-भौं सिकोड़ी जाती थी उसकी परिवर्तित स्थिति के अनुरूप बढ़ी हुई स्वच्छता देखकर प्रशंसा की जाने लगेगी । जातिवाद की संकीर्णता एवं कुरीतियाँ ही निन्दनीय हैं, उसे सुधार देने पर वह उतना ही उपयोगी सिद्ध होगा जितना कि ऋषियों द्वारा उसका आविर्भाव किए जाते समय था ।

प्रगतिशील जातीय संगठनों की आवश्यकता इसी दृष्टि से अनुभव की गई है। उपेक्षा करते रहने से तो उस क्षेत्र में जमी हुई विकृतियाँ सड़े फोड़े की तरह सारे शरीर का रक्त दूषित करने वाली सिद्ध होंगी। यह चिकित्सा अनुपयुक्त के स्थान पर उपयुक्त की स्थापना से ही हो सकती है। जातिवाद को मिटाना उतना सरल नहीं, जितना उसे सुधार कर उपयोगी बनने को सम्पन्न करना। अश्लील गीतों का प्रचलन बन्द करना हो तो उनके स्थान पर सुरुचिपूर्ण गायनों का निर्माण एवं प्रचलन करना होगा। केवल अश्लील गीत बन्द करने की बात कहने से काम न चलेगा, क्योंकि लोग बिना गाये नहीं रह सकते । सुरुचिपूर्ण चीजें सामने न होंगी तो वे सामने प्रस्तुत कुरुचिपूर्ण चीजें ही अपना लेंगे । आज भारतीय समाज का जो स्वरूप है, उसमें जातियाँ एक तथ्य बनी हुई हैं । उससे यदि हानि दिखाई पड़ती है, तो उसे रोकने का एक मात्र उपाय यही है कि उनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुधरा रूप प्रस्तुत किया जाय । इससे वर्तमान ढाँचा भी ठीक बना रहेगा और अनुपयुक्तता का स्थान उपयुक्तता ग्रहण कर लेगी ।

काँटे से काँटा निकाला जाय

चेचक की रोकथाम के लिए चेचक के विष का टीका लगाया जाता है । होमियोपैथी का सिद्धान्त है–"विषस्य विषमौषधम्" अर्थात् विष ही विष की दवा है । काँटे से काँटा निकाला जाता है । जातिवाद के कारण जो रूढ़ियाँ और संकीर्णताऐं पनप रही हैं, उनका शमन करने के लिए उसी स्तर का समानान्तर सुधरा हुआ प्रयत्न आरम्भ करना होगा । प्रगतिशील जातीय संगठनों की आवश्यकता इसलिए अनुभव की गई है कि वे प्रचलित कुरीतियों से ग्रस्त जातियों को सुधारने और प्रतिगामिता को छोड़कर प्रगतिशीलता अपनाने के लिए उन्मुख कर सकें ।

आरम्भ में यह संभव है कि तथाकथित उग्रवादी मन्तव्य का ठीक तात्पर्य न समझकर और जातिवाद फैलाने का आरोप लगाकर नाक–भौं सिकोड़ें । इसी प्रकार जो रूढ़िवादी हैं वे यह समझें कि परम्पराओं के बिगाड़ने का यह प्रयत्न है । इसे वे अधर्म मानें और लड़ने–बिगड़ने को तैयार हों । दोनों पक्षों के विरोध की संभावना है, पर इसकी हमें परवाह तनिक भी न करनी चाहिए । क्योकि कुछ ही समय में जब वास्तविकता अपने सत्परिणामों के साथ सामने उसमें सहयोग देंगे । गायत्री उान्देलन के आरम्भ में सनातनी, आर्य समाजी दोनों अपने विरोधी थे । आर्य समाजी मूर्ति पूजा से मत–भेद होने के कारण गायत्री आन्दोलन का विरोध करते थे । ब्राह्मण पुरुषों के अतिरिक्त स्त्रियों या अन्य वर्ण के लोगों को सदस्य बनाने के कारण काले झण्डे दिखाते, गाली देते तथा ईंट–पत्थर फेंकते थे । हम लोग शान्ति और धैर्य पूर्वक रहे तो दोनों ही पक्षों ने वस्तुस्थिति को समझा और अब विरोध के स्थान पर सभी अपने आन्दोलन को असाधारण महत्त्व एवं सहयोग देते हैं । प्रगतिशील जातीय संगठनों को भी इन्हीं परिस्थितियों में होकर गुजरना पड़ेगा । आरम्भ में उसे उग्र भी कोसेंगे और रूढ़िवादी भी भड़केंगे, पर इससे विचलित होने की कोई बात नहीं । समय की कसौटी पर जब यह प्रयत्न परख लिए जायेंगे तो विरोध, सहयोग में परिणत हो ही जायेगा ।

भारतीय संस्कृति में गुण-कर्म की प्रधानता

गुण, कर्म, स्वभाव से ही किसी व्यक्ति की लघुता और महानता को नापा जा सकता है । जिस प्रकार कलक्टर का लड़का कलक्टर और चपरासी का लड़का चपरासी होना जरूरी नहीं, इस प्रकार किसी वंश में उत्पन्न होने वाले सभी व्यक्ति अपने पूर्वजों के समान ही हों, यह कोई आवश्यक नहीं । सर्वत्र कर्म की ही प्रधानता है । जो जैसे कार्य करता है उसकी गणना उसी श्रेणी में होने लगती है । पूर्व काल में चारों वर्णों का निर्धारण इसी आधार पर हुआ था । इसके कुछ प्रमाण नीचे उपस्थित किये जाते हैं–

एकवर्णमिदं पूर्व विश्वमासीद्युधिष्ठिर ।
कर्मक्रिया विशेषणा चतुर्वर्णा प्रतिष्ठितम् ।।

(महाभारत)

"पहले केवल एक एक ही वर्ण था । बाद में कर्म–क्रिया वशेष वश चार वर्णा हुये ।"

एक एव पुरावेदः प्रणावः सर्ववाङ्मयः ।
देव नारायणोनान्य एकोग्निर्वर्णा एव च ।।

(भागवत)

"पहले सर्ववाङ्मय प्रणव ही एक मात्र वेद था । एक मात्र देवता नारायरा था और कोई नहीं । एक मात्र लौकिक अग्नि ही अग्नि और एक मात्र हंस ही वर्ण था ।"

आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतम् ।

(पुराण)

"प्रारम्भ में–सत्ययुग में मनुष्य की एक मात्र जाति हंस थी ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अप्रंवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापये।
वर्णाश्रम व्यवस्थाश्च न तदसिन न संरः।।

(पुराण)

"उस सत्ययुग में पाप-पुण्य की सृष्टि नहीं हुई थी, वर्णाश्रम व्यवस्था नहीं थी। इसलिये उस समय वर्णाशंकर भी नहीं था ।"

चातुर्वर्ण्स्य वर्णोंन विभिद्यते
सर्वेषा खलु वर्णानां दृश्यते वर्णासंकरः।
कामः क्रोधो भयं लोभः शोकश्चिन्ता क्षुधाश्रमः
सर्वेषां नः प्रभवति कस्माद्वर्णो विभिद्यते।
चिदमूत्रपुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणित।
तनुः क्षरति सर्वेषां कस्याद्वर्णो विभिद्यते।।
जंगमानायसंख्येयाः स्थावराणां च जातयः
तेषां विविधवर्णानां कुतो वर्णविनिश्चयः।

(शान्ति० १८८।५)

"यदि रंग से ही वर्ण-भेद समझा जाय तब तो सभी वर्णों में वर्णाशंकर देखे जायेंगे। फिर हम सभी लोग काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, चिन्ता और भ्रम से पराभूत होते हैं, इसलिये वर्ण-भेद होते कैसे हैं ? स्वेद, मूत्र, पुरीष, श्लेश्मा, पित्त और शोणित सभी शरीरों में समान भाव से क्षरित हो रहे हैं फिर वर्ण-भेद कैसे होता है ? फिर अशेष प्रकार के स्थावर और जंगमों के वर्णों की विभिन्नता कैसे निश्चित् होगी !"

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सव ब्रह्ममिदं जगत।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टम् हि कर्मभिर्वर्णता गतम्।।१०।।
कामभोग प्रियास्तीक्षणाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।
व्यक्तस्वधर्मा रक्तागास्ते द्विपा क्षत्रता गताः।।११।।
गोभ्यो वृत्ति समास्माय पीताः कृष्णुप जीविन।
स्वधर्मान्नितिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः।।१२।।
हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्व कर्मोपजीविन।
कृष्णाःशौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः।।१३।।
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ताःद्विजाः वर्णान्तरंगताः
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते।।१४।।
इत्येने चतुरोवर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती विहिता
ब्रह्माण्ड पूर्वं लोभादज्ञानतां गता।।१५।।

(शान्ति पर्व)

"वर्णों की कोई विशेषता नहीं है । समस्त जगत् को ब्रह्मा ने पहले ब्राह्मणामय ही सृष्ट किया था। बाद में सभी कर्मानुसार नाना वर्ण को प्राप्त हुए । जो ब्राह्मण काम, भोगप्रिय, तीक्ष्णात्व-भाव, क्रोधी, प्रियसाहस और स्वधर्म त्याग करके राजसिक लोहित वर्ण हुये वे क्षत्रिय हो गये। गोरक्ष वृत्ति ग्रहण करके जो कृषिजीवि हुये वे स्वधर्म त्यागी पीतवर्ण वाले ब्राह्मण वैश्य हुए । जो ब्राह्मण हिंसाप्रिय, अनृतप्रिय लोभी और सर्वकर्मोपजीवी हो गये, वे शौच-परिभ्रष्ट कृष्णवर्ण ब्राह्मण शूद्र हुये। इन कर्मों से पृथक् पृथक् ब्राह्मण लोग ही वर्णान्तर को प्राप्त हुए । इसीलिए उनके लिए यज्ञ क्रिया और धर्म नित्य विहित हैं, निषिद्ध नहीं। इन चारों वर्णों को वेद में अधिकार है, ब्रह्मा का यही पूर्व विधान है। लोभ के कारण ही लोग अज्ञान को प्राप्त हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।

(१०म मण्डल ६० सूक्त १२)

"उस प्रजापति के मुख ब्राह्मण, बाहु क्षत्रिय, उरु वैश्य थे और पदों से शूद्र उत्पन्न हुये।"

ग्रत्समदस्य शौनकश्चातुर्षर्याय प्रवर्तयिताभूत्।

(विष्णु० ४।८।१)

विष्णु पुराण के मत से "गृत्समद के पुत्र शौनक ने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था प्रवर्त्तित की।"

भर्गस्य भार्गभूमि अतश्चतुर्वर्ण्यप्रवृतिः।

(विष्णु, चतुर्थ अंश ८, ६१)

"भार्ग से भार्गभूमि उत्पन्न हुए और उनसे चातुर्वर्ण्य प्रवर्त्तित हुआ।"

ब्राह्मश्च दक्षिणांगुष्ठ जन्मादक्ष प्रजापतिः।

(विष्णु ४,१,५)

"दक्ष प्रजापति ब्रह्मा के दाहिने अंगुष्ठ से उत्पन्न हुये।"

ब्राह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षणमहर्षयः।
मरीचिरपंगिरिसौः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
मरीचे कश्यपः पुत्रः कश्यपातु इमाः प्रजाः।

(आदिपर्व ६५,१०।११)

"ब्रह्मा के ६ मानस पुत्र हैं-मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतुः । मरीचि के पुत्र हैं कश्यप । उन्हीं से प्रजाओं की सृष्टि हुई।"

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुराकर्मविभगशः।

(गीता ४, १३)

"मैंने गुरा कर्म के अनुसार चातुर्वर्ण्य की सृष्टि की है।"

सर्वोऽयम् ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते।
वृत्ते स्थितस्तुशूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति।।

(अनु० १४३, ५१)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"चरित्र से सभी ब्राह्मरा हो सकते हैं, शूद्र भी यदि सच्चरित्र हो, तो ब्राह्मरात्व प्राप्त करता है।"

आर्जवे वर्तमानस्य ब्राह्मण्यमभि जायते।

(वन० २११, १२)

"जो आर्जव या सरलतापूर्वक आचरण करता है, उसी को ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है।"

एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्।।

(अनु० १४४, २६)

"सदाचार और कर्म से ही शूद्र ब्राह्मरा होता है और वैश्य क्षत्रिय होता है।"

एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजाति कुलोद्भवः।
शूद्राऽप्यागमसंपन्नो द्विजो भवति संस्कृतः।।

(अनु० १४४, ४६)

"सत्कर्म के फल से आगम सम्पन्न शूद्र सुसंस्कृत होकर द्विजत्व प्राप्त करता है।"

ब्राह्मणेवाऽप्यसद्वृत्तः सवसंकरभोजनः।
ब्राह्मण्यं स समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः।।

(अनु० १४४,४७)

"ब्राह्मण भी असत् चरित्र और सर्वसंकर भोजन करने से जातिच्युत होकर शूद्र हो जाता है।"

कर्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः।
शूद्रोऽपि द्विजवत् सेव्य इति ब्रह्माऽब्रवीत् स्वयं।।

(अनु० १४४, ४८)

"पवित्र कर्म करने से शुद्धात्मा और विजतेन्द्रिय शूद्र भी द्विजवत् सेवनीय होता है, यह बात स्वयं ब्रह्मा ने कही है।"

पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च।।

(हरिवंश-२६ अध्याय १५-१६-२०)

"गृत्समद के पुत्र शुनक हुए। शुनक से ही शौनक नाम से परिचित ब्राह्मरा, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बहुत से पुत्र उत्पन्न हुए ।"

अक्षराद् ब्राह्मणाः सौम्याःक्षरात् क्षत्रियबान्धवाः।
वैश्या विकारतश्चैव शूद्रा धूर्माविकारतः।।

(हरिवंश-भविष्य पर्व २१०, ११-१६)

"अक्ष से ब्राह्मरा, क्षर से क्षत्रिय, विकार से वैश्य और धूम-विकार से शूद्रगरा उत्पन्न हुए।"

वाक्यसंयमकाले हि तस्य वरप्रदस्य देवदेवस्य
ब्राह्मणः प्रथमं प्रादुभूर्ताः। ब्राह्मणेभ्यश्च शेषा वर्णाः प्रादुभूर्ताः।।

(महाभारत शांति० ३४२,२१)

"देवदेव नारायरा के वाक्य संयम के समय उनके मुख से पहले ब्राह्मराों की उत्पत्ति हुई। अन्यान्य वर्रा ब्राह्मराों से उत्पन्न हुए।"

यस्मात् त्रिषु वर्रोषु ब्राह्मणो यज्ञसृष्टा तस्मात्।
सर्वेऽपि वर्णा ऋजवः साधव एव यज्ञसंयोगात्।।

(नीलकंठ टीकाकार)

"चूँकि तीन वर्रा में ब्राह्मरा ही यज्ञसृष्टा है, इसलिये उससे उत्पन्न सभी वर्रा ही यज्ञ संयोगवश ऋजु अर्थात् साधु हैं ।"

संसर्ज ब्राह्मणानग्रे सृष्टयादौ स चतुर्मुखः।
सर्वे वर्णाः पृथक् पश्चात् तेषां वंशेषु जज्ञिरे।।

(पद्मपुराण, उत्कलखंड ३८,४४)

"चतुर्भुज ब्रह्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में पहले ब्राह्मराों का ही सृजन किया। फिर अन्य सभी वर्रा उन्हीं के वंश में पृथक्–पृथक् उत्पन्न हुए ।"

येन पूर्णमिवाकाशं भवत्यकेन सर्वदा।
शून्यं येन जनाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।।

(शान्ति २४४,११)

"जिसके अकेले रहते भी आकाश पूर्रा की भाँति ज्ञात होता है और शून्य स्थान जनाकीर्रा सा लगता है, उसे ही देवता लोग ब्राह्मरा कहते हैं।"

न क्रुध्येन्न प्रहृष्येच्च मानितोऽमानितश्च यः।
सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मण विदुः।।

(शान्ति २४४-१४)

"सम्मानित होकर भी जो धृष्ट नहीं होता, अपमानित होकर भी रुष्ट नहीं होता, जो सर्वभूत को अभय देने वाला है, उसे ही देवता लोग ब्राह्मरा कहते हैं।"

जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मो हर्यर्थमेव च ।
अहोरात्राश्च पुण्यार्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।।

(शान्ति २४४, २३)

"जिसका जीवन धर्म के लिये है, धर्म हरि के लिये है और दिन-रात पुण्य के लिये है, उसे ही देवता लोग ब्राह्मरा कहते हैं।"

निराभिषमनारंभं निर्नमस्कारमस्तुतिम्।
निर्मुक्तं बंधनैः सर्वैस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः।।

(शान्ति० २४४, ४४)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"जो निरामिष हैं, जो अनारम्भ है, जो स्तुति और नमस्कार से हीन हैं, जो सर्व बन्धन से विमुक्त हैं, उन्हें ही देवता लोग ब्राह्मराा कहते हैं।"

कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः।

(वन० ३१२, १०८)

"निस्सन्देह चरित्र ही ब्राह्मराात्व का कारण है ।"

ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुते।

(अनु० १४४, ५६)

"धर्म की सहायता से शूद्र भी द्विज हो जाता है और धर्म से विमुख होकर ब्राह्मराा भी शूद्र हो जाता है ।"

ब्राह्मणस्य सदाकालं शूद्रप्रेष्णकारिणः।
भूमावन्नं प्रदातव्यं यथाहि वा तथैवसः।६।३५

"ब्राह्मराा शूद्र की नौकरी करके कुत्ते के समान हो जाता है, उसे भी कुत्ते की तरह जमीन पर अन्न देना विहित है, क्योंकि जैसा कुत्ता है वैसा ही वह है ।"

तं होवाचनैतद् ब्राह्मणोविवक्तु मर्हति,
समाधि सौम्योहरोषमत्वा नेष्येनसत्यादगा इति।।

(छांदोग्य ४।४।५)

"जाबाल के पुत्र सत्काम के माता की बात को गुरु से ज्यों का त्यों कह देने से गुरु गौतम ने कहा कि-सच्चे ब्राह्मराा के सिवा और कोई ऐसी सच्ची बात नहीं कह सकता। जाओ सौम्य, समिध लाओ। मैं तुम्हें उपनीत करूँगा, इसलिए कि तुम सत्य से भ्रष्ट नहीं हुए ।"

ततो ब्राह्मणतां यातो विश्वमित्रो महातपः ।
क्षत्रियः सोऽप्यथ तथा ब्रह्मवंशस्य कारकः ।।

(शल्य०४।४८)

"विश्वामित्र क्षत्रभाव से ब्राह्मणभाव को प्राप्त हुये थे ।"

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठौर्वश्या ब्रह्मनमनसोऽधिजातः।

(ऋग्० ७।३३।११)

असल में अगर जन्म से ब्राह्मणत्व का विचार किया जाय तो पता चलता है कि वशिष्ठ स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी की सन्तान हैं। मित्रावरुण के औरस से उनका जन्म है। वशिष्ठ के जन्म के कुछ गोलमाल था, इसीलिये ऋग्वेद में कहीं उन्हें उर्वशीपुत्र और तृत्सु-वंशोत्पन्न कहा है । कई जगह उन्हें ब्रह्मा का मानस पुत्र भी कहा है।

किं ब्राह्मणस्य पितरं किमु पुच्छसि मातरं।
श्रुतुं चंदस्मिन् वेद्यं स पिता स पितामहः।।

(काठकसंहिता ३०।१)

कृष्णा यजुर्वेद कहता है—ब्राह्मराा के माता-पिता को क्यों पूछते हो ? यदि उसमें श्रुतु है, तो वही उसका पिता है, वही पितामह ।

नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं यथैकता समता सत्यता च ।
शीलं स्थितिर्दम्भनिधाननमार्जवं ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः ।

(शान्ति० १७५।३-७)

"एकता, सत्यता, समता, अहिंसा, सरलता और कर्म में अनासक्ति इनसे बढ़कर ब्राह्मराों का कोई धन नहीं है।"

तत्रचोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणोनाम, किं जीवः किं देहः किं जातिः, किं ज्ञानम् किं धार्मिक इति।

"ब्राह्मण कौन है ? जीव या देह या जाति या ज्ञान या कर्म या धर्म से ब्राह्मण नहीं होता, अद्वितीयात्मा का साक्षात्कार होने से ही ब्राह्मण होता है ।"

तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इतिचेतन्न। अतीतानागतनिक देहानां जीवस्यैकरूपत्वात् एकस्यापि कर्मवशाद नेक देह संभवात् सर्व शरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च। तस्मान्न जीवो ब्राह्मण इति।

"पहले विचार किया जाये कि क्या जीव ब्राह्मण है ? ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि अतीत और अनागत काल में नाना जातीय देहों में जीव चल रहा है, वह एकरूप है, एक ही जीव के कर्मवश अनेक देह पैदा होते हैं, इस प्रकार सर्व शरीर के जीव के एकरूपत्व की बात सोचने में जान पड़ता है कि जीव ब्राह्मरा नहीं हो सकता ।"

सामग्र्यानुष्ठाननगुणः समग्राः शूद्रायतः सन्ति समाद्विजानाम् तस्माद्विशेषो द्विजशूद्रानाम्नो-नाध्यात्मिको ब्राह्मनिमित्तकोवाभविष्यपुराण (४१।२६)

"सामान्य शूद्र और सामान्य ब्राह्मराा, ये दोनों सामग्री और अनुष्ठान में समान ही हैं, इसीलिये ब्राह्मराा और शूद्र में भी बाध्य या आध्यात्मिक कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भेद नहीं है ।''

तस्मान्नच विभेदोऽरित न वहिर्मान्तरात्मनि।
न सुखादौ न चाश्वेर्ये नाज्ञायां न भयेष्वपि।
न वीर्ये नाकृतौ नाक्षे न व्यापारे न चायुषि।
नांगे पुष्टे न दौर्बल्ये न स्थैर्य नापि चापले।
न प्रज्ञायां न वैराग्ये न धैर्ये न पराक्रमे।।
न त्रिवर्गे न नैपुण्ये न रूपादौ न भेषजे।
न स्त्रीगर्भे न गमते न देह मलसंप्लवं।
नास्थिरध्रे न च प्रेम्णि न प्रमाणे न लोभसु।

(भविष्यपुराण ४१।३५-३८)

''जाति-जाति में और सम्प्रदाय-सम्प्रदाय में कोई भेद नहीं है। भेद न तो बाहर है न भीतर, न सुख में, न ऐश्वर्य में, न आज्ञा में, न भय में, न वीर्य में, न आकृति में, न ज्ञान–दृष्टि में, न व्यापार में, न आयु में, न अंग की पुष्टि में, न दुर्बलता में, न स्थिरता में, न चंचलता में, न बुद्धि में, न वैराग्य में, न धर्म में, न पराक्रम में, न त्रिवर्ग में न नैपुण्य में, न रूपादि में, न औषध में, न स्त्रीगर्भ में, न गमन में न देह के मल–मोचन में, न हड्डी के छेद में, न प्रेम में, न प्रमारा में और न लोभ में ।''

न योनिर्नापि संस्कारों न श्रुतिर्नच सन्ततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमिव तु कारणम्।
सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते।
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च गच्छति।
ब्रह्मस्वभावःसुश्रोणि, समः सर्वत्र मे मतः।
निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः।

(ब्रह्मपुराण २२३/६-५८)

''जाति, संस्कार, श्रुति और स्मृति से कोई द्विज नहीं होता, केवल चरित्र से ही होता है, इस लोक में चरित्र से ही सबके ब्राह्मराात्व का विधान है, सद्वृत्ति में स्थित शूद्र भी ब्राह्मराता को प्राप्त होता है, ब्राह्मरा वही है जिसमें निर्मल, निर्गुरा ब्रह्म ज्ञान हो।

नामागरिष्टय पुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ।

(हरि० ११/६५८)

''नामगरिष्ट के दो पुत्र वैश्य से ब्राह्मरा हो गये थे ।''

पोरवस्य महाराज ब्रह्मर्षीः कौशिकस्यच।
सम्बन्धो ह्यास्य वंशोऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः।।

''पुरुवंशीय राजा और ब्रह्मर्षि कौशिक ये दोनों क्षत्रिय–ब्राह्मरा वंश परस्पर सम्बद्ध हैं, यह बात लोक प्रसिद्ध है।''

ब्राह्मराा:क्षत्रिया वैश्याः शूद्राद्रोहिजनास्तथा।
भाविताः पूर्वजा तीषु कर्मभिश्चशुभाशुभैः।।

(वायु० ८/१३४)

''सृष्टि के आदि काल में कर्मों के शुभाशुभत्व के अनुसार ब्राह्मराादि वर्रा बनाये गये थे।''

स्थितो ब्राह्मराधर्मेरा ब्राह्मण्यमुपजीवति।
क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति।।

(ब्रह्मपुराण २२३/१४)

''ब्राह्मरा धर्म के आचरण और ब्राह्मरा जीविका के अवलम्बन से क्षत्रिय और वैश्य भी ब्राह्मरा हो जाते हैं।''

रामिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैरचारितैस्तथा।
शूद्रो ब्राह्मराातां गच्छेद्वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्।।

(ब्रह्मपुराण २२३/३२)

''शुभ कर्मों के आचरण से शूद्र भी ब्राह्मराात्व को प्राप्त करता है और वैश्य भी क्षत्रियत्व को ।''

जन्मना जायतेशूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मराः।।

(मनुस्मृति।)

''जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं। द्विज कहलाया उनके संस्कारों की वजह से है । यदि वह वेदाध्ययन करने वाला है तो वह विप्र कहलायेगा और जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मरा कहलाता है।''

वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मण।
दुर्लभं तमलब्धवा हि हन्यात् पापेन कर्मण।।

(महाभारत शान्ति० अ० २१६)

''पुण्य कर्म करने से उच्च वर्रा को प्राप्त होता है और पाप कर्म करने से नीचता प्राप्त होती है।''

चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका ।
फलान्यथोदुम्बर वृक्षजातेर्यथाऽगुमध्यान्तभवानियान्ति ।
वर्णाकृतिस्पर्शरसैः समानि तथैकतो
जातिरतिप्रचिन्त्या ।।

(म० महापुराण ब्रा० अ० ४२)

''यदि एक पिता के चार पुत्र हों तो उन पुत्रों की एक जाति होनी चाहिये, इसी प्रकार सबका पिता एक ही परमेश्वर है अतः मनुष्य समाज में भी जाति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भेद बिल्कुल नहीं होना चाहिये । जिस प्रकार एक ही गूलर के वृक्ष के अग्रभाग, मध्यभाग तथा पींड में वर्ण, आकृति, स्पर्श तथा रस इन बातों में एक से फल लगते हैं उसी प्रकार एक विराट् पुरुष परम ब्रह्म परमेश्वर से उत्पन्न हुये मनुष्यों में भी किसी प्रकार का जाति भेछ नहीं हो सकता।

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समनि योक्त्रे सह वो पुर्नाज्म। सभ्यंचो अग्नि सपर्यत आरानाभिवाऽभितः।।

(अथर्व० ३/३०)

"ऐ मनुष्यो ! तुम लोगों की पानी पीने की तथा भोजन करने की एक ही जगह हों, समान धुरा में मैंने तुम सबको समानता से जोत दिया है । जिस प्रकार एक चक्र के बीच आरे जमे रहते हैं, उसी प्रकार तुम भी एक जगह एकत्रित होकर अग्नि में हवन करो।"

एक वर्णमिदं पूर्व विश्वमासीदी युधिष्ठिर ।
कर्मक्रिया विभेदेन चातुर्वर्ण्य प्रतिष्ठतम् ।।
सर्वे वै योनिजा मर्त्याः सर्वे मूत्रपुरीषजाः ।
एकेन्द्रियेन्द्रियार्थाश्च तस्माच्छीलगुरौद्विजः ।।
शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणावान् ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत् ।।

(महाभारत, वनपर्व अ० १८२)

"हे युधिष्ठिर ! इस जगत में पहले एक ही वर्ण था । आगे चलकर गुणकर्म के विभाग हो जाने से चार वर्ण हुए । सब मनुष्य योनि से ही उत्पन्न हुए हैं, सब लोगों की उत्पत्ति रज और वीर्य के मिश्रण से ही है । सब की इन्द्रियाँ समान हैं । इसीलिये जन्म से जाति-भेद मानना ठीक नहीं । जिस मनुष्य में शील की प्रधानता होती है, वह द्विज कहलाता है । यदि शूद्र शीलवान हो तो उसे द्विज ही समझना चाहिये और यदि ब्राह्मण शीलता से परे हो तो उसे शूद्र से भी नीच समझना चाहिये ।"

एक एव पुरा पदः प्रणवः सर्ववाड्मयः ।
देवो नारायणों नान्यः एकोऽन्निर्वर्ण एव च ।।

(श्रीमदभागवत् पु० स्क० ६/१४)

"प्रारम्भ में एक ही वाड्मय ॐ था, नारायण ही एकमात्र देव थे, दूसरा नहीं और एक ही अग्नि यानी ब्राह्मण वर्ण था ।"

जो मनुष्य अद्वितीय, अन्नत, शुद्ध, सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार द्वारा अनुभव करता है और जो काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि दोषों से अलग है, उसे ही ब्राह्मण कहना चाहिये । श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदि का भी यही मत है ।

न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः ।।

(भारत०)

"जो ईश्वर के सच्चे भक्त हैं, वे ही ब्राह्मण हैं, उन्हें शूद्र नहीं कहना चाहिये।"

अक्षमाला वशिष्ठेन संयुक्ताधर्मयोनिजा ।
शारंगी मंदपलिन जगामाभ्यर्हणीयताम् ।।
एताश्रान्याश्च लोकेऽस्मिन अपकृष्ट प्रसूतयः ।
उत्कर्ष योजितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भवर्त गुणौः शुभैः ।।

(मनु० ६/२३-२४)

"अधम योनिजा कन्या अक्षमाला वरिष्ठ के साथ युक्त होकर और तिर्यक–कन्या शारंगी मंदपाल ऋषि की परिणीता होकर मान्या पदवी को प्रज्ञपत हुईं थीं । इनके सिवा और अनेक नारियाँ निकष्ट कुल में उत्पन्न हो कर भी पति के महद्गुण के कारण उत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर गई थी ।"

शूद्र ब्राह्मणयोर्भेदो मृग्यमाणोऽपि यत्नतः ।
नष्यते सर्वधर्मेपु संहतौस्त्रिदशैरपि ।।

(भविष्यपुराण ४१/३६)

"अति यत्नपूर्वक सभी देवता मिलकर भी खोजे तो ब्राह्मण और शूद्र में कोई भेद नहीं पावेंगे ।"

न ब्राह्मणश्चन्द्रमरीचि शुक्ला न क्षत्रिया किंशुक पुष्पवर्णः ।
न चेद वैश्या हरिताल तुल्यः शूद्रान चांगार समानवर्णाः ।।

(भविष्यपुराण ४१,४१)

"ब्राह्मण लोग भी चाँदी की किरण के समान शुक्ल वर्ण नहीं हैं । क्षत्रिया लोग भी किंशुक पुष्प से लाल नहीं हैं । वैश्य लोग भी हरताल के समान पीले नहीं हैं और शूद्र कोयले के समान काले नहीं हैं ।"

पादप्रचारैस्तनुवर्ण, कैशेः दुःखेन च शोणितेन।
त्वड् मासमेदोऽस्थिरसैः समानाश्चतुः प्रभेदारि कथं भवन्ति ।।४२।।
वर्णप्रमाणा कृतिगर्भवासबुद्धि कर्मेन्द्रिय जीवितेषु ।
बलत्रिवर्गाभयभेषजेषु न विद्यते जातिकृतों विशेषः।।४३।।
चत्वार एकस्यपितुः सुताश्चतेषांसुतानां खलु जातिरेका ।
एवं प्रजानो हि पितेक एवक पित्रैकभावान्न च

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जातिभेदः ।।४४ ।।

(भविष्य पुराण ४१ अ०)

"चलना, फिरना, शरीर, वर्ण, केश, सुख, दुख, रक्त, त्वचा, माँस, मेद, अस्थि रस–इनमें सभी तो समान हैं, फिर चार वर्णों का भेद कहाँ है ? वर्ण, प्रमाण, आकृति, गर्भवास, वाक्य, बुद्धि, कर्म, इन्द्रिय, प्राणशक्ति, धर्म, अर्थ, काम, व्याधि, औषधि इनमें कहीं भी तो जातिगत प्रभेद नहीं हैं । जिस प्रकार एक ही पिता के चार पुत्रों की जाति एक ही होती है, उसी प्रकार सभी प्रजाओं का वह भगवान एक मात्र पिता है । इसीलिए जाति भेद नहीं है ।"

विवाह-संस्कार

हिन्दू संस्कृति में विवाह धर्म का एक अंग है । एक ओर यह सुव्यवस्थित समाजिक जीवन का अंग मात्र है, तो दूसरी ओर सृष्टि–विस्तार का स्त्रीत्व और पुरुषत्व का सम्मेलन है । हिन्दू-धर्म के अनुसार इस पुनीत संस्कार द्वारा पितृ–ऋण से मुक्ति और वंश-रक्षा का विधान है । पाश्चात्य देशों में जो उच्छृंगखलता है, भारत में उसे दूर कर सांसारिक व्यवस्था स्थिर करने के लिए विवाह–संस्कार का विधान है । एक पुरुष का एक स्त्री से आयु पर्य्यन्त वैवाहिक सम्बन्ध होने से वह सुसंस्कृत तथा सभ्य बनता है । पवित्रता का बन्धन होने के कारण मनुष्य को अपनी काम-वासना को नियमित और संयमित करने का अच्छा अवसर मिल जाता है । काम-वासना का परिष्कार होता है । पत्नी के प्रति अपना धार्मिक उत्तरदायित्व छोड़ नहीं पाता । अपनी सन्तान के प्रति कर्त्तव्य पालन खुशी-खुशी करता है । विवाह द्वारा मनुष्य का स्वार्थ या अपने शरीर का ममत्त्व अपने शरीर से आगे बढ़ पत्नी, पुत्र, पुत्री, परिवार आदि में बँट जाता है । आत्म-भाव का दायरा बढ़ जाता है । वैवाहिक जीवन में कठिनाइयाँ आती हैं । जिम्मेदारियाँ निभानी पड़ती हैं । इसलिए कष्टों में धैर्य सद्गुणों का विकास होता है ।

पारिवारिक सौख्य भारतीय विवाह–संस्कार की देन है । परस्पर आदर और सम्मान की भावना इस प्रेम की आधारशिला है । हमारे यहाँ पति और पत्नी में अटूट अनुराग रहा है । यहाँ तक कि एक के वियोग में प्रायः दूसरा रहना तक पसंद नहीं करता । इस पद्धति में दिखावे या झूँठे बनाव शृंगार का कोई महत्त्व नहीं है । पत्नी पति की आज्ञाकारिणी है । उचित बातों के साथ सदा सहयोग करती है । उसे हमारी संस्कृति में सहधर्मिणी और अर्द्धांगिनी माना गया है, न कि नीच वासनाओं की तृप्ति का साधन । वह अपने सत्परामर्श से जीवन को सही मार्ग पर चलाती है । इस प्रकार के दाम्पत्य से अच्छी सन्तान पैदा होती है जो देश, धर्म और जाति की सेवा के लिए सदा तैयार रहते हैं ।

हिन्दू शिष्टाचार

गुरुजनों के प्रति श्रद्धा हमारी संस्कृति का मूलाधार है । जो छोटे हैं, वे गुरुजनों के चरण–स्पर्श कर अपनी श्रद्धा, विनयशीलता और सभ्यता का परिचय देते हैं । गुरुजन छोटों को प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देते हैं । वास्तव में इस शिष्टाचार में एक मनोवैज्ञानिक तथ्य छिपा हुआ है । प्रत्येक मनुष्य के मन में विचारों की प्रचण्ड शक्ति निवास करती है । यह विचारों की बिजली उनके सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहती है । जब कोई छोटा पूज्य गुरुजन का चरण स्पर्श करता है, तो विचारों का यह पुष्ट विद्युत प्रवाह उसके शरीर से प्रविष्ट हो जाता है और उससे चरण स्पर्श करने वाले का आत्म-बल बढ़ जाता है । हमारे यहाँ बड़ों का मान करने की परिपाटी है । इसका एक उदाहरण भरत हैं, जिन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता राम का सदा जीवन भर बहुत आदर किया था । उनका उदाहरण ग्रहण करने योग्य है । अपने से बड़े तथा मान्य पुरुषों के साथ शान्ति, नम्रता और विनयशीलता का व्यवहार करना चाहिए । बातचीत के समय शिष्टाचार सूचक शब्द 'पंडित जी', 'बाबू साहब', 'श्रीमान' आदि का प्रयोग करना चाहिए । उपकार होने के बदले में सदा "मैं आपका अनुग्रहीत हूँ" "आपने बड़ा उपकार किया" आदि शब्दों का प्रयोग करना चाहिए । आपके वचन मधुर, शुद्ध और शिष्टतायुक्त होने चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू शिष्टाचार दूसरों के प्रति बड़ा शिष्ट, उदार और सभ्यता से भरा है । सम्मान सूचक शब्दों का हम सदा बहुलता से प्रयोग करते रहे हैं । यहाँ तक कि भिक्षुकों तक को, जिन्हें कुछ न भी देना हो, हम प्रेमपूर्वक हटाते रहे हैं ।

स्वच्छता हमारे शिष्टाचार व्यवहार का प्रधान अंग है । हमारे रसोईघर की स्वच्छता प्रसिद्ध है । उसमें किसी प्रकार की गन्दगी तो क्या, व्यर्थ की व्यक्तियों का बार-बार घुसना तक हमें पसन्द नहीं रहा है । स्वच्छता और पवित्रता के कारण पवित्र स्थानों में जूते ले जाना हमारे यहाँ वर्जित है ।

हमारे यहाँ कहा गया है:—

''वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया ।''

(महाभारत उद्यो० प० ८८-५२)

"न विद्या और न धन से बल्कि सद्आचरण (शिष्टाचार) से ही मनुष्य आर्य बनता है ।"

भाषा-वेश-भाव

भाषा और वेश के साथ गुप्त रूप से एक विशेष प्रकार की विचारधारा, जीवन-पद्धति और संस्कृति जुड़ी हुई रहती है । हम जो भाषा बोलते हैं, या जिस वेश में प्रायः रहते हैं, गुप्त रूप से उस वेश और भाषा में पाये जाने वाले सिद्धान्तों और आदर्शों से भी प्रभावित होते रहते हैं ।

भाषा के प्रत्येक अक्षर के पीछे स्वर और अर्थ का गुप्त भंडार छिपा हुआ रहता है । जब हम किन्हीं अक्षरों का उच्चारण करते हैं, तो उनका अर्थ किसी न किसी रूप में हमारे कार्य और चरित्र पर प्रभाव डालकर हमें अच्छा या बुरा बनाता है । भाषा में किसी जाति या राष्ट्र की संस्कृति निहित रहती है । विचारों और आदर्शों का स्पष्टीकरण उस देश या राष्ट्र का भाषा के ही माध्यम से होता है । हम चाहे इन गुप्त विचारों से कितना ही बचने का प्रयत्न करें किंतु उनका धीरे-धीरे चरित्र पर प्रभाव पड़ता ही रहता है । प्रत्येक राष्ट्र के अपने वीर पुरुष हुए है ।, जिनके कार्यों का विशद् वर्णन उस देश या राष्ट्र की भाषा में होता है । जब कोई व्यक्ति इन व्यक्तियों के चरित्र की श्रेष्ठता के विचार बार-बार पढ़ता है, तो चुपचाप उसी प्रकार के संस्कार, उन्हीं विचारों में विश्वास और उन्हीं आदर्शों या संस्कृति की ओर उसका झुकाव होता जाता है । भाषा कोरी भाषा मात्र नहीं है, वरन् वे तो जीते जागते विचार हैं जो चेतना में चिपक जाते हैं और चरित्र को मोड़ डालते हैं ।

प्रायः जब कोई जाति दूसरी जाति को जीतती है, तो उस पर अपनी भाषा का बोझ लाद देती है । विजित जाति इस भाषा के साथ-साथ अपने आप को निर्बल और जीतने वाली जाति को श्रेष्ठ समझने लगती है। इससे विजित जाति की मानसिक दासता या दिमागी गुलामी बढ़ने में सहायता मिलती है । अधिक दिन तक कोई भाषा पढ़ते-पढ़ते मनुष्य उस जाति के विचारों को श्रेष्ठ और अपने आप को कमजोर और हीन समझने लगता है । भारत में जब मुसलमान आये तो उन्होंने उर्दू फारसी का प्रचार किया और हिन्दू जनता को भी इन्हीं भाषओं को पढ़ने को प्रोत्साहित किया । राज्य का कार्य उर्दू में चला । इससे उर्दू—फारसी के साथ-साथ मुसलमानी संस्कृति, मुसलमानी जीवन और वैसे ही विचारों को फैलाने में हिन्दुओं की दिमागी गुलामी बढ़ाने में बहुत मदद मिली । ईसाई धर्म गुरुओं ने अँग्रेजी का प्रचार किया । जब भारत पर अँग्रेजी राज्य छा गया, तो अँग्रेजी को राज्य—भाषा बनाया गया और उसी का प्रचार किया गया । इससे पाश्चात्य संस्कृति का प्रचार हुआ । भारतवासियों के मन में अपने प्रति हीनता और अँग्रेजों की महत्ता की भावनाएँ छा गई । इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा और शिक्षा के साथ संस्कृति जुड़ी हुई है ।

भारत की अतीत कालीन संस्कृति और मानवीय गुणों के विकास के लिए देववाणी संस्कृत और राष्ट्रवाणी हिन्दी की अतीव आवश्यकता है । उन भाषाओं में आर्य जाति के पुनीत आदर्श, मानवी गुणों के विकास और अच्छे संस्कारों के निर्माण के लिए प्रचुर ज्ञान-सम्पदा भरी पड़ी है । सभ्य और सुसंस्कृत बनने का मार्ग संस्कृत और हिन्दी साहित्यों का अध्ययन है । यह वह सहित्य है जो हमारे गुणों की अभिवृद्धि करने, हमारे आन्तरिक विकास और उन्नति में सहायक ऊँचे आदर्शों पर ले जाने, संकीर्णता या खुदगर्ज़ी से हटा कर सर्वोदय की भावना को दृढ़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने वाला है । इससे जाति और देश की सेवा और कल्याण हो सकता है । भारत के सुन्दर भविष्य के लिए, उसकी आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए, नागरिकों को पुरानी संस्कृति से परिचित कराने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम अपने देश और जाति के इतिहास को अपने भाषा और साहित्य को पढ़ें । इस प्रबन्ध का एक प्रमुख अंग संस्कृत अध्ययन करना तथा दूसरों को उसके लिए प्रोत्साहित करना है । संस्कृत ही में अधिकतर वह सामग्री है, जिसके आधार पर हम अपने जातीय स्वरूप को यथावत् पहचान और जान सकते हैं । सहस्त्रों वर्ष से संस्कृत का आधारतल और पृष्ठभूमि वह आध्यात्मवाद रहा है, जो भारत की मानवता की विशेष देन है । भारत ने विश्व में प्रथम बार यह प्रकाशित किया था कि जगत् की हर प्रकार की विपत्तियों, बाधाओं, कमियों और कठिनाइयों से मानव तब तक मुक्ति नहीं पा सकता, जब तक कि उसका जीवन सत्य की उपासना, सेवा का अटल व्रत और न्याय की अविचल निष्ठा नहीं बन जाता ।

जो बात भाषा के लिए कही गई है, वही वेश के सम्बन्ध में भी है । पोशाक के साथ भी संस्कृति का निकट सम्बन्ध है । प्रत्येक संस्कृति और धर्म की पोशाक अलग-अलग है । अँग्रेजी पोशाक पहिनते ही मन में ऐंठ, अकड़, झूठी शान, विलासिता, शेखी के भाव उदय होते हैं । मुसलमानी पोशाक के साथ ऐश्वर्य, इन्द्रिय भोग की प्रवृत्ति, विलासिता, वासना तृप्ति आदि भावनाएँ संयुक्त हैं । पोशाक, वेश–भूषा आदि के साथ किसी संस्कृति का इतिहास जुड़ा हुआ रहता है । मुसलिम और अँग्रेजी संस्कृतियाँ भोगवाद पर खड़ी हैं । इन्द्रियों के नाना भोगों की अतृप्त इच्छा इन जातियों के मन को, उनके विचारों को, उनकी बुद्धि को भौतिक स्तर से ऊपर नहीं उठने देती । छोटी वस्तुओं, छोटे आदर्शों का स्वाद चखते-चखते वे ऊँची चीजों का स्वाद ही भूल गए हैं । इन संस्कृतियों की पोशाक में जो दिखावा, शेखी, सजावट, विलास इत्यादि है, वह मनुष्य की पंचेन्द्रियों का सुख है ।

आप अँग्रेजी पोशाक पहिनिये, आप मन में स्वयं उन विचारों का अनुभव करेंगे, जो अंग्रेजों में होते हैं । मिलिटरी की पोशाक पहिनते ही मनुष्य हिंसा, आतंक, दुष्टता और दूसरों पर अत्याचार तथा दंभ के भावों से भर जाता है । मुसलमान और ईसाई पोशाकों में उन्हीं जातियों के विश्वास, आकांक्षाएँ और व्यवहार आ जाते हैं । प्रायः देखा जाता है कि लड़कियाँ विवाह शादियों के अवसर पर जब कीमती पोशाकें पहिनती हैं, तो उनमें मिथ्या दर्प और अभिमान बढ़ जाता है, चाल-ढाल अमीरों जैसी बन जाती है । बारातों में आने वाले व्यक्तियों के नाज-नखरे प्रायः उनकी पोशाकों के कारण ही होते हैं । अतः मनुष्य अपने मन में जैसी संस्कृति को धारण करना चाहे, उसको वैसी ही पोशाक और वेश धारण करना चाहिए ।

भारतीय पोशाक–लम्बा कुरता, धोती, चप्पल, बास्कट इत्यादि इस देश के मौसम के अनुसार सस्ते और उचित हैं । इनमें स्वच्छता और आराम भी अधिक रहता है और व्यर्थ के दिखावे से मनुष्य बचा रहता है । विद्या और सादगी भारत की अपनी विशेषताएँ रही हैं । कम से कम वस्त्र रखकर प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करना, अपने शरीर को व्यर्थ के साज-शृंगार, टीपटाप, फैशन परस्ती से दूर रखना, सादा जीवन और उच्च विचार धारण करना– यह हमारा दृष्टिकोण रहा है ।

श्री भगवानदास केला ने उचित ही लिखा है–"दूसरे देशों ने जहाँ प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की भावना रखी है, भारत ने उसके साथ अपनापन स्थापित करने का विनीत प्रयत्न किया है । यहाँ के अनेक साधु-संन्यासी ही नहीं, अन्य व्यक्ति भी प्रकृति की गोद में आनन्द लेते रहे हैं । वे उसमें दासी की कल्पना न कर उसे माता के रूप में देखते रहे हैं । प्रकृति के वन, लता, पर्वत, नदी, पशु-पक्षी के साथ में उन्होंने कभी अकेलेपन का अनुभव नहीं किया । भारत में नदी और पहाड़ पवित्र और पूज्य माने गये हैं । इसलिए उनके निकट ही तीर्थों और मन्दिरों की स्थापना हुई है । वन और गाँव यहाँ की संस्कृति के सुन्दर प्रतीक रहे हैं ।"

अतः ग्रामीण वेश-भूषा, प्रकृति के साहचर्य में रहने से आने वाली सादगी, स्वच्छता, विनयशीलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उदारता हमारी पोशाक में भी पाई जाती है । पोशाक में हमारे यहाँ टीपटाप को ओछेपन की निशानी माना गया है । कृत्रिमता, बनावटीपन, रंग-बिरंगे आधुनिक शृंगार प्रसाधनों से हमारे यहाँ विरक्ति रही है । भारतीय संस्कृति यह मानती है कि जितनी ही कृत्रिमता हमारे अन्दर आयेगी और पोशाक के सम्बन्ध में जितनी ही अस्वाभाविकता को हम अपनाते जावेंगे, उतने ही उच्च जीवन से दूर हटते जावेंगे ।

सादगी का अर्थ दीनता, हीनता या दरिद्रता नहीं है, वरन् यह है कि बिना आडम्बर के उपयुक्त और आवश्यक वस्तुओं का शुद्धतापूर्वक प्रयोग करना । यह सादगी, स्वच्छता, निरभिमानिता हमारे नित्य व्यवहार में मिली हुई होनी चाहिए । वस्त्र बहुत मूल्यवान हों, बारीक रेशम के हों-ऐसी कोई विशेष आवश्कयता नहीं है । हम तो मोटे सफेद खद्दर के प्रेमी रहे हैं, किन्तु वह स्वच्छ होना चाहिए । तड़क-भड़क के, रंग-बिरंगे या बेढब फैशन के वस्त्र व्यर्थ थोथेपन के प्रतीक हैं । कम कपड़े पहिनने चाहिए, पर उनकी सफाई का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए । भारतीय विचारकों की तो यह मान्यता है कि जेबर लादने की अपेक्षा तो कुछ अधिक कपड़े बनवा लेना और उन्हें स्वच्छ रखने पर थोड़ा व्यय करना अधिक उपयोगी है । मन, विचार, शरीर, पोशाक और वातावरण की सादगी व स्वच्छता उच्च आध्यात्मिक जीवन की ओर खींच ले जाने की क्षमता रखते हैं । उन्नति की प्रगति यहीं से की जानी चाहिए ।

वेशभूषा शालीन ही रखिए

हमारा स्वास्थ्य जिस प्रकार आहार पर निर्भर है, उसी प्रकार वस्त्रों-पोशाकों का भी उस पर काफी प्रभाव पड़ता है, पर लोगों ने इस समय इस दृष्टिकोण को बिलकुल भुला रखा है । वे पोशाक का उद्देश्य लज्जा निवारण या शान-शौक मात्र समझते हैं । अब तो धीरे-धीरे यह मानव-जीवन का ऐसा अविच्छिन्न अंग बन गई है कि हम वस्त्रहीन मनुष्य की कल्पना भी नहीं कर सकते । अधिकांश लोग तो इसे इतना ज्यादा महत्त्व देते हैं और ऐसा अनिवार्य समझते हैं मानो मनुष्य वस्त्रों सहित ही पैदा हुआ है और उनके बिना उसका अस्तित्व ही नहीं रह सकता ।

पर सच तो यह है कि मनुष्य नंगा ही पैदा हुआ है और हजारों वर्ष तक यह उसी दशा में प्रकृति माता की गोद में निवास कर चुका है । उस समय उसका चमड़ा भी कुछ कड़ा था । बहुत अधिक ठण्डे स्थानों के निवासी चाहे शीत के प्रकोप से बचने के लिए भालू आदि जैसे किसी पशु के चर्म का उपयोग भले ही कर लेते हों, अन्यथा उस युग में सभी मनुष्य दिगम्बर अवस्था में ही जीवन यापन करते थे । फिर जैसे-जैसे रहन-सहन के परिवर्तन से शारीरिक अवस्था में अन्तर पड़ता गया और लिंग-भेद (सैक्स) सम्बन्धी मनोवृत्तियाँ वृद्धि पाती गयीं, मनुष्य लँगोटी, कटि-वस्त्र आदि पहनने लग गये ।

जब जीवन-निर्वाह के साधन बढ़ गये और अनेक लोग अपेक्षाकृत आलस्य का जीवन व्यतीत करने लगे तो ठण्डे देशों में उनको देह की रक्षा के लिए किसी प्रकार के वस्त्र पहिनने की आवश्यकता जान पड़ने लगी । धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति बढ़ती गई और आज पोशाक ने सजावट और शौक का ही नहीं, मान-मर्यादा का रूप भी ग्रहण कर लिया है । वस्त्रों से मनुष्य के छोटे-बड़े, गरीब-अमीर होने का पता लगता है । इतना ही नहीं मनुष्य के धर्म, देश तथा जाति की बहुत कुछ जानकारी पोशाक द्वारा हो जाती है । मजदूर, दफ्तरों के क्लर्क, व्यापारी आदि की पहिचान भी प्रायः उनके कपड़ों से की जा सकती है । इस समय एक दृष्टि से पोशाक का यह रिवाज मनुष्य के जीवन में ऐसा घुल-मिल गया है कि आरोग्य की दृष्टि से उस पर निरपेक्ष भाव से विचार कर सकना बड़ा कठिन है ।

योरोप का नग्न सम्प्रदाय

इस समय में भी दुनिया में ऐसे लोग हैं जो हर प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग अनावश्यक और हानिकारक समझते हैं और सर्वथा नग्न रहना ही सर्वोत्कृष्ट बतलाते हैं । कौतूहल की बात यह है कि ये जंगली या अर्द्ध-सभ्य जातियों के लोग नहीं हैं, वरन् योरोप-अमेरिका के ज्ञान-विज्ञान की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा प्राप्त तथा पूर्ण विचारशील व्यक्ति हैं । उनका कथन है कि प्रकृति ने मनुष्य को नंगा ही पैदा किया है और उसका शारीरिक तथा मानसिक विकास सदैव इसी अवस्था में रहने से जितना अधिक हो सकता है, उतना वस्त्रों से ढके-दबे रहने में कभी नहीं हो सकता । जर्मनी में तो सौ वर्ष पूर्व ऐसे विचार वालों की संख्या इतनी बढ़ गई थी कि उन्होंने अपनी अलग बस्तियाँ बना ली थीं, जिनमें सैकड़ों या हजारों स्त्री-पुरुष बिल्कुल नग्न अवस्था में रहते थे । जब वे लोग कार्यवश उस बस्ती से बाहर शहर या कस्बों में जाते थे तो शरीर पर एक लम्बा-सा कुरता या चोगा पहन लेते थे, पर भीतर नंगे ही रहते थे ।

इन लोगों ने अपना एक पृथक् सिद्धान्त ही चला दिया था, जिसका नाम 'म्यूडिज्म' था । पिछले सौ वर्षों में इसका प्रचार अनेक छोटे-बड़े देशों में न्यूनाधिक परिमाण में हो गया था और अनेक लोग निजी निवास स्थानों के भीतर काफी समय तक नंगे रहते थे । योरोपीय देशों में नग्नता सभ्यता के विरुद्ध मानी जाती है और वहाँ यदि कोई सार्वजनिक स्थानों में नग्न होकर निकले तो वह राजकीय कानून से दण्डित होता है । इसलिए यह सम्प्रदाय सामान्य जनता में अधिक प्रगति न कर सका और जर्मनी के सिवाय अन्य देशों में विचार क्षेत्र के अतिरिक्त व्यावहारिक रूप में उसका बहुत ही कम प्रचार हो सका ।

दर्शकों ने ऐसे लोगों की बस्तियों के जो वर्णन लिखे हैं, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग प्रायः उच्चकोटि के विद्वान् या विचारक नहीं होते थे वरन् सामान्य कोटि के व्यक्ति ही होते थे जो नग्नवाद के तर्कों से प्ररित होकर भावुकता या सनक के वशीभूत होकर उनमें सम्मिलित हो जाते थे । इन लोगों में एक बड़ा भाग ऐसे व्यक्तियों का भी होता था जो बीच-बीच में कुछ दिनों के लिए उन बस्तियों में जाकर नग्नावस्था में रहते थे और फिर नगरों में लौटकर सामान्य अवस्था में रहकर अपना धन्धा, रोजगार करते थे । जहाँ तक विदित हुआ है इस सम्प्रदाय का उद्देश्य परोक्ष रूप से व्यभिचार या दुराचार को उत्तेजना देना नहीं था जैसा हमारा देश 'वाममार्ग-भैरवीचक्र' आदि के लिए प्रसिद्ध है । ये लोग मुख्यतः स्वास्थ्य सम्वर्धन की दृष्टि से ही इस प्रकार का आचरण करते थे ।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायियों की सम्मति

प्राकृतिक चिकित्सा के ग्रन्थों में वस्त्रों की पूर्ण सादगी पर बल दिया है--कहा है कि वस्त्र यथासम्भव कम और हल्के होने चाहिए, जिससे बदन को वायु और प्रकाश मिलता रहे, क्योंकि मनुष्य का चर्म भी प्राणप्रद वायु को भीतर खींचता और दूषित तत्त्वों को बाहर निकालता रहता है । इससे शारीरिक विकारों की बहुत कुछ शुद्धि हो जाती है और शारीरिक अंगों की कार्य-क्षमता में वृद्धि होती है पर जो लोग फैशन के ख्याल से एक के ऊपर एक कई कपड़े पहनते हैं अथवा ठण्ड से डरकर मोटे-मोटे ऊनी-सूती बनियान, जर्सी, कमीज, कोट, ओवरकोट आदि लादे रहते हैं, वे वायु-मण्डल में व्याप्त प्राण शक्ति से बहुत कुछ वंचित ही रह जाते हैं । जो लोग शौक या दिखावे के लिए बहुत चिकने, चमकीले कपड़े पहनने की हिर्स करते हैं उनके बदन में बाहर की हवा बिल्कुल नहीं लग पाती और शरीर के भीतर से जो विकार निकलते हैं वे चर्म पर ही सूखकर तरह-तरह के दोष उत्पन्न करते हैं । इस दृष्टि से विचार करते हुए एक लेखक ने उपयोगी ढंग के वस्त्रों का विवेचन करते हुए कहा है--

'यह बात बड़े महत्त्व की है कि हम ऐसे कपड़े पहिनें और उन्हें इस तरह से बनवायें कि जहाँ तक हो सके अधिक हवा और रोशनी शरीर तक पहुँचती रहे । खाल में होकर जो दूषित पदार्थ शरीर से बाहर निकलते रहते हैं और शुद्ध वायु छिद्रों में प्रवेश करती है, उस क्रिया में बाधा न पड़े । अतएव हमारे वस्त्र, टीले, पतले व जालीदार होने चाहिए । आजकल बाजार में बहुत से इस प्रकार के कपड़े बिकते हैं जो जालीदार व पतले होते हैं । जैसे डोरिया, तनजेब, मलमल, खादी आदि । इनमें से हर मनुष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी परिस्थिति के अनुसार कम या ज्यादा कीमत के वस्त्र खरीद सकता है । ध्यान यह रहना चाहिए कि ऐसे कपड़े न खरीदे जायें जिनसे प्रकृति के उद्देश्य को हानि हो या परिवार पर बुरा असर पड़े । पोशाक न केवल जालीदार और पतली हो बल्कि ढीली भी होनी चाहिए । ऐसी पोशाक हरगिज न पहिनी जाये जो बहुत चुस्त और कसी हुई हो, जैसे चूड़ीदार पायजामा या बिरजिस या तंग बनियान आदि । ये शरीर को अपार हानि पहुँचाते हैं । हमको झूँठे फैशन या रूढ़ियों का गुलाम न बन जाना चाहिए और न बहुत अधिक मूल्य वाले वस्त्रों में धन नष्ट करना चाहिए । हमकों अपनी स्थिति के अनुसार प्रकृति के उद्देश्यों के अनुकूल वस्त्रों का उपयोग करना चाहिए ।

बहुत से लोग कहते हैं बारीक कपड़े पहिनने वाले नाजुक हो जाते हैं, यह बड़ी भूल है । मोटे कपड़े पहिनने से कोई बलवान नहीं बन सकता । बात यह है कि कुछ लोग मोटे और भारी वस्त्र बरदास्त कर सकते हैं और कुछ नहीं कर सकते । यह बात अपनी-अपनी इच्छा और आदत पर निर्भर है, आजकल अनेक प्रकार के कपड़े चल रहे हैं, जिनमें बहुत-सी त्रुटियाँ हैं । हमारी सम्मति में ऊनी बनियान और बुशर्शट या रुई की बण्डी आदि बहुत हानिकारक है, क्योंकि ठीक खाल के पास ऊन या रुई का रहना बुरा असर डालता है । इससे खाल नाजुक व कमजोर हो जाती है ।

तंग और कसे हुए वस्त्र पहिनने से दो प्रकार की हानियाँ विशेष रूप से होती हैं । एक तो उनके कारण त्वचा का मैल बाहर निकलने में बाधा पड़ती है और चर्म रोगों की वृद्धि होती हैं और दूसरे रक्त-संचार में विकृति उत्पन्न होती है । रक्त--वाहिनी नालियाँ त्वचा के पास तक आती है और उनमें अवाध गति से शुद्ध रक्त--संचारित होने से ही हमारा स्वास्थ्य सुदृढ़ रहता है, पर अनुपयुक्त वस्त्रों से दबाव पड़कर खून का दौरा उचित वेग के साथ नहीं हो पाता जिससे शरीर में जड़ता, शिथिलता, कार्यक्षमता की कमी आदि दोष उत्पन्न होते हैं ।

कृत्रिम वस्त्रों के दोष

आज कल रायन (नकली रेशम), प्लास्टिक आदि रासायनिक पदार्थों के द्वारा जो वस्त्र बनाये जाते हैं, वे इस दृष्टि से और भी आपत्तिजनक हैं । उसमें वायु जाने का गुण बिल्कुल ही नहीं होता या नाम-मात्र को होता है । ऐसे वस्त्रों से गर्मियों में प्रायः इतना पसीना आता है कि तबियत परेशान हो जाती है । कितने ही तरह के कपड़ों का मसाला भी ऐसा दोषपूर्ण होता है कि उससे अनेक प्रकार के चर्मरोग उत्पन्न हो जाते हैं और स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है । प्लास्टिक के बने कलाई घड़ियों के स्ट्रैप के प्रयोग करने से कितने ही लोगों के हाथ में सफेद दाग पड़ जाता है । जब इस तरह की बहुत शिकायतें हुईं तो अब प्रचार कुछ कम हो गया है और धातु के बने 'स्ट्रैप' काम में लाये जाने लगे हैं ।

रासायनिक प्रक्रियाओं से बने कपड़े बहुत ज्वलनशील होते हैं । वे जरा-सी अग्नि की लौ का स्पर्श पाते ही भक् से जल उठते हैं और फिर किसी तरह जल्दी नहीं बुझाये जा सकते । मशाले के पिघल जाने से वे जलने के साथ ही शरीर से चिपक जाते हैं, जिससे मनुष्य की प्राण रक्षा असम्भव हो जाती है । आजकल इस प्रकार की दुर्घटनाओं में स्त्रियों के जलकर मरने की खबरें बहुत अधिक आने लगी हैं, क्योंकि ऊपरी चमक-दमक के कारण इन वस्त्रों का प्रचार दिन दूना बढ़ता जा रहा है और बड़े घरों की महिलाएँ ही नहीं साधारण श्रेणी की स्त्रियाँ भी बड़ों का अनुकरण करने के लालच में इसी तरह की अधिक मूल्य वाले कपड़ों का प्रयोग करने लगी हैं । अभी कुछ ही समय पहले का समाचार है कि एक नव-विवाहिता वधू ने चाय के लिए स्टोव जलाया । स्टोव में भटाका हो जाने के कारण नाइलोन की साड़ी ने तुरन्त आग पकड़ ली और बहू जलने लगी । उसकी चीख-पुकार सुनकर पति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आकर आग को बुझाने लगा । अज्ञानवश वह भी वैसे ही कपड़े पहने था और उनमें भी तुरन्त आग लग गई । दोनों बुरी तरह जल गये और दो दिन के भीतर दोनों का देहावसान अस्पताल में हो गया ।

पश्चिमी फैशन की नकल

हमारा देश डेढ़ सौ वर्ष अँग्रेजों की अधीनता में रहा है और उस बीच में उनकी श्रेष्ठता की छाप हमारे मन पर इतनी अधिक पड़ गई हैं कि यहाँ के लाखों–करोड़ों व्यक्ति अँग्रेजी पोशाक का पहिनना बडप्पन, सौभाग्य का चिन्ह समझने लग गये । एक समय था कि हर एक कोट–पैण्टधारी को उच्च अधिकारी और प्रभावशाली समझा जाता था और छोटे-मोटे लोग उसे दूर से ही सलाम करते थे । इस परिस्थिति में अयोग्य लोगों में भी उनकी नकल करने की इच्छा होती थी ताकि पोशाक के जोर से वे भी थोड़े–बहुत अंशों में अनजान व्यक्तियों की निगाह में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकें ।

धीरे-धीरे यह मनोवृत्ति सर्वसाधारण में जड़ जमाती गई और आज यह स्थिति आ गई है कि अँग्रेजों का राज्य खत्म हो जाने पर भी उनकी पोशाक का प्रचार घटने के बजाय बढ़ता ही जाता है । हम ठीक हिसाब तो नहीं बतला सकते, पर इतना अनुमान अवश्य है कि अँग्रेजी राज्य के समय जितने भारतवासी विदेशी पोशाक पहनते थे, आज उनकी संख्या दुगुनी अवश्य हो गई है । पहले कुछ ज्यादा पढ़े-लिखे लोग, अधिक वेतन पाने वाले सरकारी कर्मचारी या सरकारी कार्यों से निजी सम्बन्ध रखने वाले ठेकेदार आदि कोट-पैण्ट का ज्यादा उपयोग करते थे पर अब सामान्य वेतन पाने वाले कर्मचारी, दफ्तरों में क्लर्क और हल्के काम करने वाले मजदूर तक पैण्ट–बुशशर्ट का खुलकर प्रयोग करने लग गये हैं । यद्यपि कपड़ा और सिलाई की दृष्टि से पैण्ट का खर्च धोती अथवा पाजामा की अपेक्षा बहुत अधिक बैठता है और उसमें उठने-बैठने की भी असुविधा रहती है, पर लोगों पर फैशन का भूत ऐसा सवार हुआ है कि वे खर्च, कठिनाई और विदेशीपन का कुछ भी विचार न करके उसी के पीछे लगे हुए हैं ।

इस प्रकार की फैशन-प्रियता का एक नमूना कुछ वर्ष पहले देखने में आया था जब कम उम्र के लड़के ही नहीं बड़ी आयु के जवान और शिक्षित लोग भी सिनेमा के दृश्यों अथवा अभिनेता और अभिनेत्रियों के चित्रों वाले कपड़े पहिनने लग गये थे । कपड़ों के कारखाने वाले तो लोगों की रुचि और धुन की परख करते हैं और अपना व्यापार बढ़ाने के लिए नये-नये फैशन के वस्त्र निकाला ही करते हैं । उन्होंने लोगों की इस मूर्खतापूर्ण सनक का खूब लाभ उठाया और दो-चार वर्ष बाजारों में चित्रदार कपड़े खूब बिकते रहे और लोग इस उपहासास्पद पोशाक को बड़ी शान और शौकत समझकर काम में लाते रहे ।

हमको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि पोशाक का राष्ट्रीयता से भी घनिष्ट सम्बन्ध है । वस्त्रों से मनुष्य की जाति और देश का प्रकटीकरण होता है और जिन लोगों को अपनी जातीयता का अभिमान होता है वे पोशाक की रक्षा प्राणपण से करते हैं । हमारे तो देशवासी इस तथ्य को भूलकर अँग्रेजी फैशन का अन्धानुकरण करते हैं । उनको यह पता नहीं कि स्वयं अँग्रेज अपनी राष्ट्रीय पोशाक के विषय में कितने दृढ़ हैं ? यह सभी जानते हैं कि भारत वर्ष इंग्लैण्ड की अपेक्षा बहुत कुछ गर्म देश है और इसीलिए यहाँ की संस्कृति में वस्त्रों का प्रयोग कम ही करने को अच्छा बतलाया गया है । यहाँ शरीर पर केवल दुपट्टा (उत्तरीय वस्त्र) डालकर बड़े-बड़े उत्सवों-समारोगों में भाग लेना भी हीनता का चिन्ह नहीं माना जाता । पर्वोत्सवों में तो आचार्य पुरोहित आदि पूजनीय व्यक्ति अनिवार्य रूप से केवल दो वस्त्र खण्डों का ही उपयोग करते हैं । इसका एक बड़ा कारण यही है कि इस देश की गर्म जलवायु में अधिक वस्त्रों का पहनना अनुपयोगी और असुविधाजनक ही सिद्ध होता है ।

पर इग्लैण्ड की दशा इससे बिल्कुल भिन्न है । वह शीत प्रधान देश है और वहाँ वर्ष के अधिकांश महीनों में ठण्ड से बचने के लिए कई ऊनी कपड़े एक के ऊपर एक पहिनते हैं । सबसे नीचे बनियान, फिर कमीज, वास्कट (वेस्केट) और कोट की वहाँ सामान्य पोशाक है । जब बहुत अधिक ठण्ड पड़ती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है तो ऊपर से ओवरकोट और पहिन लेते हैं। इंग्लैण्ड में तो यह आवश्यक और उपयोगी ही है, पर भारतवर्ष की आव-हवा में खासकर गर्मी की ऋतु में इतने वस्त्रों की कदापि आवश्यकता नहीं वरन् सबसे बड़ी परेशानी होती है । अँग्रेज लोग अपनी राष्ट्रीयता के ख्याल से इस देश में रहते हुए भी गर्मी का कष्ट सह लेते थे । जब बहुत अधिक असुविधा होती थी तो ठण्डे पहाड़ी स्थानों में चले जाते थे, पर कभी यह नहीं सोचते थे कि आव-हवा के अनुकूल भारतीय पोशाक को काम में लाने लगें ।

इस सम्बन्ध में हमको एक घटना का स्मरण हो आता है । बंगाल में जिन दिनों राजनैतिक आन्दोलन तेजी से फैला हुआ था लार्ड कारमाइकेल वहाँ के गवर्नर होकर आये । वे स्वभाव से ही बड़े सज्जन और बंगाल के राजनैतिक असन्तोष को कम करने के लिए उन्होंने भारतवासियों के साथ खूब मिल-जुलकर रहना और प्रेमयुक्त व्यवहार करना आरम्भ कर दिया । इसके परिणामस्वरूप उनका अनेक उच्च श्रेणी के भारतीयों से घनिष्ट सम्बन्ध और मित्रता हो गई । एक बार जब गर्मी बहुत अधिक पड़ रही थी, एक भारतीय सज्जन उनसे मिलने गये । उन्होंने देखा कि गर्मी की अधिकता से वे बहुत परेशान थे और खस की टट्टी, पंखा आदि की व्यवस्था होने पर भी कलकत्ते की गर्मी में व्याकुलता अनुभव कर रहे थे । उन भारतीय सज्जन ने इस विषय की चर्चा छिड़ने पर कहा कि–आप लोग तो गर्मी में इतने अधिक कपड़े क्यों पहिने रहते हैं ? अगर आप भारतवासियों की तरह कुर्त्ता-धोती जैसी हल्की पोशाक पहिन लेते तो गर्मी का इतना कष्ट न सहना पड़ता। लार्ड कारमाइकेल ने इस बात पर कुछ असन्तुष्ट होने का भाव प्रकट करते हुए कहा–"क्या करें हम मूर्ख हैं, जो इतनी गर्मी में भी इतने वस्त्र पहिने रहते हैं।" इसका आशय यही था कि यह हमारी जातीय पोशाक है। इसी को देखकर लोग हमको अँग्रेज जान लेते हैं। अगर हम दूसरे देश की पोशाक धारण करने लगें तो हमारी जातीयता की पहिचान और रक्षा कैसे हो सकेगी ? इसलिए हम गर्मी का कष्ट सहन कर लेते हैं, पर अपनी पोशाक को नहीं त्यागते। इसके विपरीत हमारे देशवासी क्या देश और क्या विदेश, हर जगह कोट–पैण्ट की विदेशी पोशाक में रहना ही शान समझते हैं। इस नकलचीपन के लिए एकाध बार उनको राष्ट्र संघ की बैठकों में भी टोका गया है कि क्या आपकी अपनी राष्ट्रीय पोशाक और राष्ट्रीय भाषा नहीं है ।

हमारे देश में भी ऊँचे दर्जे के विद्वान और विचारक हुए हैं, वे भारतीय परिधान की महत्ता को समझने वाले और उसकी रक्षा करने वाले हुए हैं। इस विषय में पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का उदाहरण बड़ा अनुकरणीय है। वे बंगाल में शिक्षा विभाग के एक उच्च पद पर नियुक्त कर दिये थे, जिसके कारण उनको प्रायः बड़े अँग्रेज अधिकारियों से मिलना-जुलना पड़ता था। बंगाल के गवर्नर के पास भी वे प्रायः जाया करते थे और गवर्नर साहब, गुणों के कारण उनका बड़ा सम्मान भी करते थे, पर एक बड़े अफसर होते हुए भी वे सदा अपनी ठेठ देशी पोशाक बगलबन्दी और धोती पहिनकर रहते थे। एक बार यह कायदा बना दिया गया कि गवर्नर साहब के पास कोई देशी पोशाक में न जाय, वहाँ कोट-पैण्ट पहिन कर जाना ही आवश्यक है। जब विद्यासागर जी को इस नियम की सूचना मिली तो वे गवर्नर साहब के पास पहुँचे और उनसे कहा कि–"मैं आज अन्तिम बार आपके पास आया हूँ । अब मैं सरकारी नौकरी नहीं कर सकूँगा ।" गवर्नर साहब ने कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए इसका कारण पूछा तो उन्हें स्पष्ट कह दिया कि–"किसी दशा में अपनी स्वदेशी पोषाक को नहीं छोड़ सकता और आपके यहाँ कोट–पैण्ट पहिन कर आने का नियम बना दिया गया है। इसलिए आपके यहाँ मेरा आ सकना और अपने कर्त्तव्यों को पूरा करते रह सकना असम्भव हो जायेगा।" लार्ड साहब उनके जातीय अभिमान के भाव को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और आज्ञा दे दी कि उक्त नियम आप पर लागू नहीं होगा, आप पूर्ववत् देशी पोशाक में ही आते रहें।"

इसी प्रकार लोकमान्य तिलक चोटी के विद्वान और भारत के सर्वमान्य नेता होते हुए भी महाराष्ट्रीय पोशाक में रहते थे और सदा धोती, पगड़ी आदि ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहिना करते थे। जब उनको अपने मुकदमे के सम्बन्ध में विलायत जाना पड़ा तब भी उन्होंने इस नियम को नहीं छोड़ा। इसी प्रकार मालवीयजी भारतीय पोशाक के परम भक्त थे और लम्बा अंगरखा तथा सफेद पगड़ी एक प्रकार से उनकी प्रतीक बन गई थी। वे सदा बड़ी-बड़ी सरकारी कौन्सिलों और कमेटियों में बुलाये जाते थे, सदस्य बनाये जाते थे, अँग्रेज अधिकारियों से विशेष सम्बन्ध भी रहता था, पर उन्होने एक दिन के लिए भी अपने नियत वस्त्रों के बजाय अँग्रेजी ढ़ंग के कपड़े नहीं पहिने। गाँधी जी की विशेषता तो जगत् प्रसिद्ध है। उन्होंने भारतीय आदर्श पालन करने के लिए लँगोटी और ओढ़ने के एक वस्त्र के अतिरिक्त सब कपड़ों का त्याग कर दिया था और विलायत में ब्रिटिश सम्राट् के महल में निमन्त्रित किए जाने पर भी उसी वेश में वहाँ गये। बादशाही महलों में पूरी पोशाक में ही जाने का नियम है और खुले पाँव रखकर वहाँ किसी भी व्यक्ति के प्रवेश करने पर निषेध है, पर गाँधी जी के लिए इस नियम को एक विशेष आज्ञा द्वारा हटा दिया गया और वे लँगोटी पहिन कर ही सम्राट् से मिले।

भारतीय परिधान की महत्ता

अगर प्राकृतिक जीवन के सिद्धान्तानुसार देखा जाय तो पोशाक के सम्बन्ध में भारतीय मनीषियों की मान्यता बहुत ही प्रशंसनीय और हितकारी है । वे प्रकृति के इस नियम को जानते थे कि शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से वायु तथा सूर्य-प्रकाश का हमारी देह से जितना सम्पर्क होता रहे उतना ही लाभजनक है । इसीलिए वे जो वस्त्र धारण करते थे वे केवल लज्जा निवारण के लिए होते थे । प्राचीनकाल में तो एक वस्त्र कमर के गुल्फ (टखनों) तक पहिन लेना और दूसरा उतना ही बड़ा ऊपर के अंग पर ओढ़ लेना पर्याप्त समझा जाता था । बड़े–बड़े ऋषि-मुनि ही नहीं, राजा-महाराजा तक भी अधिकांश समय इसी वेष में रहते थे । केवल दरबार अथवा युद्ध आदि के अवसर पर अन्य प्रकार की पोशाक धारण की जाती थी जो थोड़े समय बाद कार्य पूरा हो जाने पर उतार दी जाती थी मध्यकाल में लोग अंगरखा आदि पहिनने लग गये थे । पर वे भी प्रायः ढीले-ढाले और ऐसे होते थे जिनमें होकर वायु और प्रकाश शरीर को मिलते रहें ।

इस पोशाक में और भी कई विशेषताएँ हैं । प्रथम तो यह सस्ती और सुलभ है । आजकल यह दशा है कि जितना दाम कपड़े का लगता है लगभग उतना ही या थोड़ा कम उसकी सिलाई का लग जाता है । अच्छे सूती सूटों की सिलाई २५–३० रुपया या इससे भी अधिक लग जाती है । मुझे वह समय याद है जब कमीज का अच्छा सफेद कपड़ा (टिवल) ५–६ आने गज आता था, पर एक नामी दर्जी उसकी सिलाई सवा रुपया माँगता था । इस प्रकार शौकीन ग्राहकों को अठारह आने के कपड़े की सिलाई बीस आना देनी पड़ती थी ।

दूसरी सुविधा सफाई की है । धोती, कुर्त्ता या दुपट्टा आदि को चाहे जब धोया और सुखाकर काम में लिया जा सकता है । हमारे यहाँ, धार्मिक दृष्टिकोण से भी स्नान को अनिवार्य माना है और किसी तरह की अशुद्धि होते ही तुरन्त वस्त्रों सहित स्नान करना पड़ता है और धुला हुआ दूसरा वस्त्र पहिनना पड़ता है । यह कार्य धोती आदि से ही सम्भव है । कोट-पतलून आदि को तो स्वयं धोया ही नहीं जा सकता और उसके सिवा उनमें कलफ, इस्तरी आदि की भी सदैव आवश्यकता होती है जो धोबी द्वारा ही पूरी हो सकती है । इस प्रकार कोट-पतलून के धुलने का अवसर कई सप्ताह या महीनों बाद ही आता है । वे रंग के कारण चाहे गन्दे दिखाई न पड़ते हों, पर जो स्वच्छता और शुद्धता नित्य धोये कपड़ों में प्राप्त होती है, वह उनमें कभी नहीं मिल सकती ।

अधिक कपड़े एक भार की तरह हैं

चाहे हम दुनियाँ को दिखावे और शान के विचार से बहुत से वस्त्र पहिने रहें, पर वे वास्तव में एक भार के समान होते हैं । गर्मियों के मौसम में तो प्रायः यह होता है कि हम फैशन के नियमानुसार पूरी 'ड्रैस' पहिनकर बाहर जाते हैं, पर उसके भार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

से प्रायः पसीने से तरबतर हो जाते और घर लौटते ही जल्दी से जल्दी कपड़ों को उतार कर सन्तोष की साँस लेते हैं । ऐसे लोगों से पूछा जाये कि फैशन की ऐसी गुलामी (अथवा फार्मेलिटी) किस काम की जिसके लिए इस प्रकार अनावश्यक कष्ट और स्वास्थ्य की हानि सहन करनी पड़े । सच्ची बात यह है कि इस प्रकार शरीर पर कपड़ों को लादना सर्वथा अस्वाभाविक है और इसे एक प्रकार से 'सभ्यता का अभिशाप' ही कहा जा सकता है । जो आनन्द और लाभ हमकों प्रकृति के सहचर्य में मिल सकता है । वह इस प्रकार के दिखावटी कार्यों से हरगिज प्राप्त नहीं हो सकता । कपड़ों की अधिकता और उनसे होने वाले कुपरिणामों का वर्णन करते हुए एक लेखक ने ठीक कहा है–

"वास्तव में कपड़ों की जरूरत हमको इसलिए पड़ती है कि हजारों वर्षों से प्रकृति विरुद्ध आहार-विहार करते रहने के कारण हमारा शरीर बिल्कुल दुर्बल व शक्तिहीन हो गया है और रिवाज भी कपड़ों का इतना पुराना हो गया है कि हम समाज में कपड़ों के बिना जी ही नहीं सकते । बिन वस्त्रों के समाज में हमारी बड़ी हँसी होगी और निन्दा भी । लोग बेशरम कहेंगे । इसलिए हमको कपड़े पहिनने पड़ते हैं और जरूरी भी है अन्यथा कपड़ों से कोई लाभ नहीं, उल्टा वे हमारे स्वास्थ और आयु को क्षीण ही करते हैं ।

सिवाय खास-खास मौकों के अतिरिक्त अपने शरीर को सजाने की भी कोई जरूरत नहीं है और न यह सोचना चाहिए कि इससे हमारा शरीर सुन्दर मालूम देगा । सौन्दर्य तो और चीज है, जो स्वाभाविक जीवन के सिवाय और किसी उपाय से प्राप्त नहीं हो सकता । क्या आकर्षक हिरन, मोर, तोता आदि प्राणी कपड़ों द्वारा सुन्दर लगते हैं ? यदि हम भी प्राकृतिक जीवन व्यतीत करें तो धीरे-धीरे वस्त्रों की आवश्यकता कम होती जायेगी और हमारा जीवन अब की अपेक्षा अधिक सुखी प्रतीत होगा । जरा सोचिए, आज कपड़ों की संख्या कितनी अधिक बढ़ गई है । सिर पर टोपा, टोपी, साफा या पगड़ी चाहिए । गले में नेकटाई, कालर, गुलबन्द आदि । फिर नीचे बनियान, बण्डी और ऊपर कमीज, कुरता, वास्कट, कोट, शेरवानी आदि इनके अतिरिक्त लँगोट, धोती, पजामा, बिरजिस पैण्ट, सलवार आदि भी बराबर काम में लाये जाते हैं । पाँवों में मौजे, जूते चाहिए । जितना बड़ा आदमी होगा उतनी ही अधिक संख्या कपड़ों की होगी । यही हाल स्त्रियाँ का है । लहँगा, धोती, चोली, जम्फर, ब्लाउज, फ्रॉक, साड़ियाँ, शाल, दुशाले आदि कितनी ही तरह के कपड़े चल रहे हैं । यदि मानव जाति अपनी इन कृत्रिम आवश्यकताओं को धीरे-धीरे कम कर दें तो इतने रोग व कष्ट संसार में नहीं रहेंगे । जो धन व समय इनमें खर्च होता है वह शरीर सुधार व लोक-कल्याण में व्यय किया जाय तो दुनियाँ का रंग ही बदल जाय ।"

वास्तव में यह मनुष्य जाति का दुर्भाग्य ही है कि उन्होंने वस्त्रों को एक अनिवार्य आवश्यकता मानकर इतना बढ़ा-चढ़ा दिया है कि उनका दर्जा भोजन के बाद ही माना जा रहा है । इतना ही नहीं, ऐसे लोगों की भी कमी नहीं, जो कपड़ों की शान-शौकत के लिए भोजन की उत्तमता को गौण समझ लेते हैं । ऐसे लोग प्रायः यह कहा करते हैं कि "पेट के खाये को कौन देखता है ? अगर पोशाक–आभूषण आदि ठीक नहीं हुए तो चार भले आदमियों में इज्जत कैसे रह सकेगी ? इस प्रकार के उद्‌गारों का स्पष्ट आशय है कि मनुष्य आन्तरिक स्थिति की अपेक्षा बाहरी टीमटाम को अधिक महत्त्व देते हैं । इसलिए भीतर चाहे खोखलापन ही क्यों न रहे, ऊपरी चमक-दमक को बनाये रखना चाहिए, जिससे अनजान देखने वाले भ्रम में पड़ जायें और आपको कोई 'बड़ा' आदमी समझ सकें ।

पर ये सब बाल-बुद्धि की बातें हैं । अगर नकली मुलम्मे की चीजें असली के समान कीमती बन जाया करतीं तो समाज-संगठन कभी का तीन-तेरह हो गया होता । इस तरह की ओछी चालों में दस-बीस मूर्ख ही फँस सकते हैं, वह भी दो-चार दिन के लिए । वास्तविक काम तो अपनी आन्तरिक सुदृढ़ स्थिति और शक्ति से ही चलता है । बढ़िया से बढ़िया, चमकीले–भड़कीले वस्त्र तो सभी राजा, नवाब, तालुकेदार आदि पहिन लेते हैं और तो क्या वे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हीरे-मोतियों के आभूषण, मुकुट आदि भी धारण कर लेते हैं, तो क्या वे विद्वानों, देश-भक्तों, समाज-सेवियों से अधिक सम्मानित हो जाते हैं ? कभी नहीं, जहाँ मामूली पोशाकधारी देश-भक्तों का दर्शन करने को लोग घण्टों खड़े-खड़े प्रतीक्षा करते रहते हैं, ऐसे सजे-सजाये राजा-महाराजाओं को देखकर लोग उपहास ही करते रहते हैं और सजे हुए गुडडे के नाम से ही पुकारते हैं । जो महत्त्व और शालीनता सादा और स्वच्छ धोती, कुर्त्ता या बगलबन्दी आदि में है, वह चमक-दमक की या बड़े मूल्य की या लम्बी-चौड़ी पोशाकों में कदापि प्राप्त नहीं हो सकती । वे तो वास्तव में शरीर के लिए एक भार ही हैं, जिनका सम्मान बुद्धिहीन व्यक्ति ही कर सकते हैं ।

वस्त्र कम से कम तथा ढीले पहनें

मनुष्यों की त्वचा पर छोटे-छोटे असंख्यों छिद्र होते हैं जिनमें से वह भीतर के दूषित तत्त्वों को बाहर निकालती और बाहर से वायु एवं प्रकाश को भीतर खींचती रहती है । इससे शरीर के भीतरी विकार बाहर निकलते रहते हैं तथा बाहर से ताजी वायु और प्रकाश की ऊष्मा अन्दर जाती रहती है । इससे शरीर की स्फूर्ति तथा कार्यक्षमता में वृद्धि होती है । जो लोग आदतन अथवा फैशन के कारण शरीर को लादे–दाबे रहते हैं, वे इस प्राकृतिक लाभ से वंचित रह जाते हैं । उनके शरीर को बाहर की हवा-रोशनी नहीं मिलती और रन्ध्रों के बन्द रहने से भीतर के विकार जो वायु या पसीने के रूप में निकलते हैं, या तो ठीक से निकल नहीं पाते और जो निकलते भी हैं, तो वे जहाँ के तहाँ दबकर सूख जाते हैं, जिससे विविध प्रकार के चर्म रोग उत्पन्न हो जाया करते हैं । फैशन के कारण तो लोग गर्मी में भी बहुत से कपड़े लादे रहते हैं, किन्तु जाड़ों में तो अधिकांश लोग हर समय गरम मोटा कुर्त्ता, कमीज, जाकेट, कोट तथा ओवर कोट डाटे रहते हैं । जाड़े के दिनों तो बहुत से लोग ऊपर से नीचे तक सिर से पाँव तक तरह-तरह के वस्त्रों तथा उपकरणों से पूरी तरह छिपे रहते हैं । कुछ-कुछ आँखों के सिवाय उनकी एक उँगली तक दिखलाई नहीं देती ।

उनका इस प्रकार कपड़ों से लदा रहना सिद्ध करता है कि उन्हें जाड़ा बहुत लगता है । जरूरत से ज्यादा जाड़ा लगने का अर्थ यही होता है कि शरीर कमजोर है । शरीर की कमजोरी का मुख्य कारण कपड़ों का अधिक प्रयोग ही होता है । प्राकृतिक वायु, धूप या रोशनी न मिलने से शरीर असहिष्णु हो जाता है । उसका अभ्यास बिगड़ जाता है और वह प्रकृति के परिवर्तन तथा ऋतुओं का प्रभाव सहन नहीं कर पाता । ज्यादा कपड़े पहनने वालों का स्वभाव तथा शरीर इतना कोमल तथा कमजोर हो जाता है कि कभी संयोग से उन्हें बिना वस्त्रों के प्रकृति के सम्पर्क में आना पड़े तो तुरन्त ही उन्हें सर्दी-गर्मी सता जाती है । नजला, जुकाम अथवा ज्वर आदि हो जाता है ।

शरीर को अनावश्यक रूप से कपड़ों से जकड़े रहना एक अप्राकृतिक क्रिया है । प्रकृति तथा मनुष्य के बीच एक व्यवधान है, जो हर प्रकार से हानिकारक है । प्रकाश तथा शुद्ध वायु स्वास्थ्य के ही नहीं जीवन आधारभूत तत्त्व हैं । मनुष्य इनके सम्पर्क से जितना दूर होता जायेगा अस्वस्थ तथा अल्पायु बनता जायेगा । दिखावा, फैशन, शौक अथवा स्वभाव वश जो लोग अनावश्यक कपड़ों से कसे रहते हैं, वे प्रकृति का विरोध करते हैं, जिसका परिणाम विविध प्रकार के रोगों के रूप में सामने आता है । किसी भी फैशन परस्त युवक को देख लिया जाये कपड़ों के सिवाय उसके शरीर में कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता । न तो शारीरिक अवयव सुन्दर व सुडौल होते हैं न माँस पेशियों में दृढ़ता अथवा पुष्टता होती है । शरीर की चमक तथा मुख की कांति विलुप्त हो जाती है । कपड़ों के फैशनेबुल आदमियों के यदि वस्त्र उतरवा कर देखा जाय तो उनके शरीर में स्थान–स्थान पर विवर्ण धब्बे पड़े दिखलाई देंगे । वस्त्रों के मामले में प्रकृति का यह विरोध ठीक नहीं । इससे व्यर्थ व्यय तो बढ़ता ही है, साथ ही स्वास्थ्य तथा शारीरिक सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारत में ऋषि, मुनि, ब्रह्मचारी, वानप्रस्ती संन्यासी सदा कम से कम वस्त्र पहनते थे और अधिक से अधिक प्रकृति के सम्पर्क में रहकर वायु तथा प्रकाश का सेवन किया करते थे । यही कारण था कि उनका शारीरिक स्वास्थ्य तथा मेघा शक्ति अपनी चरम सीमा तक विकसित होती और स्थिर रहती थी । वे सभी ऋतुओं में जंगलों के बीच कुटियों में रहते थे । ऋतुओं का परिवर्तन उन पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाता था और वे ऋतुओं का पूरा-पूरा आनन्द लिया करते थे । प्रकृति के अधिक निकट रहने से ही उनमें वह क्षमता रहती थी कि वे हर क्षेत्र में ऐसे-ऐसे काम कर गये जो आज तक याद किए जाते हैं, उनका लाभ उठाया जाता है और जिनके आधार पर वे जन-साधारण के पूज्य बने हुए हैं ।

वस्त्रों का उपयोग मनुष्य के लिए अस्वाभाविक तथा अप्राकृतिक क्रिया है । प्रकृति ने वस्तुतः मनुष्य को नग्नावस्था में ही उत्पन्न किया है । हजारों वर्ष तक वह उसी दशा में रहा और स्वास्थ जीवन जीता रहा । उसके शरीर की स्वस्थ त्वचा ही उसका परिधान थी और उस पर उगी रोम राशि ही उसकी आशा थी । प्राकृतिक रूप से रहने के कारण उनकी त्वचा व शरीर की भीतरी शक्ति इतना दृढ़ तथा पर्याप्त होती थी कि वह प्रकृति के हर परिवर्तन को आसानी से सहन कर लेता था । उसे गर्मी में न तो लू सताती थी और न जाड़ों में जुकाम ही होता रहता था । जैसे-जैसे कृत्रिमता बढ़ती गई, मनुष्य प्रकृति से दूर होता चला आया और रोगों का शिकार बनता गया ।

बहुत अधिक वस्त्रों से जकड़ा रहना भी उचित नहीं कहा जा सकता । हमें उचित है कि हम कपड़े पहनें किन्तु उनका उपयोग कम करें । आवश्यकता से अधिक वस्त्र कदापि न पहनें । कपड़े इस प्रकार से बनवायें जिससे हवा और रोशनी शरीर तक आसानी से पहुँच सकें । त्वचा के द्वारा जो दूषित पदार्थ शरीर से बाहर निकलता रहता है, उसमें बाधा न पड़े । जहाँ तक सम्भव हो कपड़े सूती तथा जालीदार ही पहनना चाहिए । जाड़ों के दिनों में अलबत्ता मोटे तथा गरम कपड़े पहने जा सकते हैं । वह भी आवश्यकता से अधिक और बुरी तरह से चुस्त नहीं । वस्त्र ढीले-ढाले तथा हल्के ही ठीक रहते हैं ।

बहुत से लोग यह दलील देते हैं कि चुस्त वस्त्र पहनने से शरीर चुस्त और ढीले-ढाले वस्त्र पहनने से शरीर ढीला रहता है । यह धारणा गलत तथा प्रकृति के विपरित है । शरीर के अंगों को जितनी अधिक सुविधा हिलने-डुलने तथा मुड़ने-उठने में होगी उतनी ही फुर्ती उनमें आवेगी और जितनी अधिक बंदिश उन पर लगी रहेगी उतने ही वे धीरे–धीरे संचालित हो पायेंगे । आजकल के जो नौजवान लड़के-लड़कियाँ तंग पोशाक पहनते घूमते हैं उसके कारण न तो वे तेजी से चल पाते हैं, न दौड़ सकते हैं और न आराम से उठ-बैठ सकते हैं । चुस्त कपड़ों से शरीर की स्फूर्ति घटती और ढीले आराम देह कपड़ों से फुरती बढ़ती है । यह तो अनुभव सिद्ध बात है, इसके लिए प्रमाण अथवा तर्क-वितर्क की जरूरत ही नहीं ।

तंग तथा चुस्त वस्त्र पहनने की दो हानियाँ तो स्पष्ट हैं । एक तो यह कि उनके कारण त्वचा का मैल बाहर निकलने में बाधा पड़ती है, जिससे अनेक प्रकार के चर्म रोग उत्पन्न हो जाते हैं । दूसरे दबाव पड़ते रहने से रक्त का संचार स्वतंत्र वेग से नहीं हो पाता । रक्तवाहिनी नाड़ियाँ त्वचा के पास तक आई हुई होती हैं और उनमें अबाध गति से रक्त का संचार होने से ही हमारा स्वास्थ्य सुदृढ़ होता है । वस्त्रों के कसे रहने से उन पर अनुचित दबाव पड़ता है, जिससे रक्त का संचार रुक-रुक कर होता है, जिससे शरीर में जड़ता तथा कार्यक्षमता की कमी आदि के अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं ।

कपड़ों के मामले में आजकल एक और रोग भी बढ़ गया है । कृत्रिम कपड़े जो कि प्लास्टिक आदि रासायनिक पदार्थों से बनाये जाते हैं, यह देखने में जितने चमकदार होते हैं, स्वास्थ्य के लिए उतने ही हानिकारक । उनमें वायु तथा प्रकाश जाने का गुण बिल्कुल नहीं होता । इतना ही नहीं इस प्रकार रासायनिक प्रक्रियाओं से बने कृत्रिम कपड़े बड़े ही ज्वलनशील होते हैं । जरासी आग पाते ही सहसा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जल उठते और बुझाये नहीं जा सकते । मसाले के पिघलने के साथ ही वे शरीर से चिपट जाते हैं। जिससे मनुष्य की प्राण रक्षा असम्भव हो जाती है । आजकल इस प्रकार के कपड़ों के कारण न जाने कितने लोगों के जल मरने की खबरें रोज ही अखबारों में छपती रहती हैं । नाइलोन और टैरेलीन की साड़ियों पहनने वाली स्त्रियाँ तो आये दिन स्टोवों तथा अँगीठियों के सम्पर्क से साड़ी में आग लग जाने से जलकर मरती रहती है । उन्हें आग के पास अधिक रहना पड़ता है किन्तु फैशन तथा शौक के कारण वे ऐसे वस्त्र पहनती हैं । ऐसी भयंकर भूल से बचना ही श्रेयस्कर है ।

गहने पहिनने का जंगली रिवाज

ऐसे बुद्धिहीन लोग केवल चमक-दमक के या नये-नये फैशनों के कपड़े पहिनकर ही सन्तोष नहीं करते थे । वे अपने महत्त्व को साधारण लोगों की निगाह में और अधिक बढ़ाने के ख्याल से तरह-तरह के आभूषण धारण कर लेते हैं । वे इसको अमीरी या ऐश्वर्य का चिह्न समझते हैं और ख्याल करते हैं कि हम जितने अधिक और बहुमूल्य अलंकार करेंगे उतना ही लोगों की निगाह में प्रतिष्ठित और बड़े समझे जायेंगे । सम्भव है कोई जमाना ऐसा रहा हो, जब साधारण प्रजाजनों पर अपना रौब, प्रभाव जमाने के लिए राजा, महाराजा रत्न जटित मुकुट सुवर्ण सिंहासन तथा हीरे-मोतियों के आभूषणों का व्यवहार करना आवश्यक समझते होंगे, पर अब तो ये चीजें नुमायशी ही समझी जाती हैं और उनका किसी पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता । इसके विपरीत गहने या आभूषण धारण करने की प्रथा सब तरह से हानिकारक मानी जाने लगी है । महात्मा गाँधी ने इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए एक स्थान पर लिखा था ।

"शायद केवल कपड़ों से सन्तोष न होने पर स्त्री-पुरुषों ने गहने-पहनने शुरू कर दिये । बहुतेरे मर्द भी पैरों में कड़े पहिनते थे । कानों में बालियाँ लटकाते हैं और हाथ में अँगूठी पहिनते हैं । ये सब गन्दगी के घर हैं । यह समझना बहुत ही कठिन है कि इन सबके पहिनने में कौन-सी शोभा फटी पड़ती है । इस विषय में औरतों ने तो हद कर दी है । वे पैरों में ऐसी भारी–भारी कड़े, पाजेब पहनती हैं कि पैर उठाना भी कठिन हो जाता है । बालियों जितने गहने हों उतने ही थोड़े । इस पहिनाव से शरीर पर बड़ा मैल जमा हो जाता है । कान और नाम में तो मैल की हद ही नहीं रहती । इस मैली दशा को शृंगार समझकर खूब पैसे फूँकते हैं । चोरों के भय से जान-जोखिम में डालते हुए भी नहीं डरते । किसी ने बहुत ठीक कहा है कि अभिमान से पैदा हुई मूर्खता को हम तकलीफ सहते हुए जो नजराना देते हैं, वह बहुत अधिक होता है । ऐसे उदाहरण बहुत लोगों ने अपनी आँखों देखे होंगे कि कान में फोड़ा होने पर भी औरतों ने अपनी बालियाँ नहीं उतारने दीं । हाथ में फोड़ा होकर पक गया फिर भी पहुँची नहीं उतरी । उँगली पक कर सूज आई तब भी मर्द-औरत अपनी अँगूठी उतारना नहीं चाहते, क्योंकि वे समझते हैं कि इससे उनके रूप में फर्क पड़ जायेगा ।

दुनियाँ में मनुष्य के लिए बहुत से दुःख, आपत्तियों, भय परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होते रहते हैं, पर जो कष्ट स्वयं खर्च करके पैदा किया जाय उसके लिए क्या कहें ? गहनों के पहिनने की प्रथा ऐसी ही मूर्खता पूर्ण होती है । इनके व्यवहार करने से किसी प्रकार का शारीरिक, मानसिक लाभ होता दिखाई नहीं देता और आध्यात्मिक दृष्टि से तो यह अहंकार उत्पादक, अतएव आत्मा का पतन करने वाला है । हमारे देश के समाज हित चिन्तक व्यक्ति वर्षों से यह शिकायत करते आये है कि भारत वर्ष की पूँजी का एक बड़ा भाग गहनों के रूप में निष्क्रिय पड़ा रहता है । यदि इस अरबों रुपये के धन को उद्योग धन्धों में लगाया जाता तो लाखों व्यक्तियों को जीवन-निर्वाह का रोजगार मिलता और करोड़ों रुपये की सामग्री तैयार होकर देश की समृद्धि बढ़ती, पर जेबरों के रूप में उलटा उसमें टूट-फूट, घिसाई,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बार-बार बनवाना, खोना, चोरी जाना आदि कारणों से घटती ही होती रहती है और हजार रुपये की रकम दस-बीस साल में पाँच सौ की रह जाती है । मनुष्य की उन्नति या कल्याण में आभूषण जैसे पदार्थ से किसी प्रकार का सहयोग मिल सकें, यह असम्भव है । फिर भी ऐसी हानिकारण और अनावश्यक प्रवृत्ति को पाला पोसा जाये ? इन कृत्रिम आभूषणों के स्थान ने हमको सद्‌गुण रूपी आभूषण धारण करने चाहिए, जिससे लोक और परलोक दोनों जगह हमारा हित हो सके ।

जूतों और मौजों की अधिकता

यदि यह कहा जाये कि जूतों और मौजे को पहिनने वाले भी पैरों के आराम और सुरक्षा के बजाय फैशन क़ा ही अधिक ध्यान रखते हैं, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है । चमड़े के कसे हुए बूट-जूता, जिसमें पैर बन्द होकर बिलकुल पसीज जाता है, किसी दृष्टि से हमारे देश के उपयुक्त नहीं है । हमारे यहाँ तो प्राचीन समय के खड़ाऊँ जैसी चीजों का प्रचार था । जिनमें पैर खुला रहता है । उसे हवा लगती रहती है और केवल काँटो, ककंड, पत्थर तथा धूप से बचाव हो जाता है । कुछ स्थानों मे चप्पल जैसी चीजों का प्रचार था जिनको पहिन कर असानी से दूर तक चला जा सकता है । इनमें भी पंजों को पूरी तरह से हवा लगती रहती है और किसी तरह की गन्दगी तुरन्त दिखाई पड़ जाती है ।

हमारे समस्त अंगो में पैर ऐसे हैं जो शरीर के भीतर मैल को सबसे अधिक बाहर निकालते हैं उनका धूल-मिट्‌टी आदि से सम्पर्क भी अधिक होता है । इसलिए यह आवश्यक है कि उनकी सफाई का विशेष ध्यान रखा जाये । प्राचीन भारतीय सभ्यता में किसी अतिथि के बाहर से आने पर सबसे पहले उसके चरण धुलाने की प्रथा था । इसका उद्‌देश्य पैरों की स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना ही था । आजकल के फैशनपरस्त जूतें तो ऊपर से पालिश लगाकर चमकाने का तो बड़ा ध्यान रखते हैं , पर उसके भीतर किस प्रकार का पसीना और मैल जमा हो जाता है इस तरफ कभी ध्यान नहीं देते । यह गंदगी कैसी हानिकारक होती है, इस सम्बध में गाँधीजी ने लिखा है–

'पैरों के द्वारा भी हम बहुतेरे रोगों के पंजे में फँस जाते हैं । बूट इत्यादि पहिनने वाले के पैर नाजुक हो जाते हैं । उनमें पसीना निकलता है और यह बहुत ही बदबू करता है । जिस मनुष्य को वास की परख है वह मौजे और बूट पहिनने वाले मनुष्य के पास उस समय खड़ा नही रह सकता जब वह उनको उतार रहा हो । हम जूतों को "पादत्राण" या "कण्ठकारि" कहते हैं । इससे सिद्ध होता है कि जब हमको काँटो में ठण्डक या धूप में चलना पड़े तभी जूते पहिनने चाहिए सो भी इस प्रकार के जिनसे केवल तलुए ही ढके, सारा पैर न ढक जाये । इस कार्य को चप्पल या सैंडिल के आकार के जूतें भली–भाँति पूरा कर सकते हैं । जिनका सिर दुखता हो, जिनका शरीर कमजोर हो, जिनके पैरों में दर्द होता है और जिन्हें जूता पहिनने की आदत हैं उनके लिए तो हमारी यह सलाह है कि वे नंगे पैर चलने का प्रयोग करके देखे । इससे उन्हें तुरन्त मालूम हो जायेगा कि पैर खुले रखने, जमीन पर नंगे पैर चलने और उन्हें पसीना रहित रखने से हम कितना लाभ उठा सकते हैं ।"

पर आजकल यह देखने में आता है कि जो लोग चमड़े का फीतादार जूता पहिनते है उनका पैर सदा भीगा–भीगा सा बना रहता है और जूतें-मौजे में सदा गन्दगी बनी रहती है । इससे पैरो की ऐसी बीमारियां पैदा हो जाती है जो बहुत खर्च और परिश्रम करने पर भी शीघ्र ठीक नही होती । इतने पर भी फैशनपरस्त लोगों में जूतों का शौक बढ़ता ही जा रहा है । कॉलेज में पढ़ने वाले नये लड़के तो खाते समय भी जूता नहीं उतारते और अनेक बार तो पहिने हुऐ ही सोने लग जाते हैं । इस तरह की गन्दी आदत और लापरवाही स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत ही हानिकारक है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि जाड़े आदि में मौसम के कारण जूता पहिनने भी पड़े तो चमड़े के बजाय कपड़े का जूता काम में लाना अधिक ठीक रहता है । इनमें एक तो हवा जाने की गुंजायश रहती है, पैर दबकर घायल नहीं होते और एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जीव–रक्षा, अहिंसा की दृष्टि से भी चमड़े के जूतों से बचना और कैनवास आदि के जूतों का प्रयोग करना उचित है । जो लोग गौ-रक्षा पक्षपाती है उनको तो चमड़े का जूता कदापि व्यवहार में नहीं लाना चाहिए क्योंकि गौ-वध का मुख्य तथा बहुत बड़ा कारण चमड़े के लिए उनका मारा जाना ही है । जूता अधिक कसा कभी नहीं होना चाहिए और पसीना आने पर उसे तुरन्त उतार देना चाहिए । समय-समय पर जूतों तथा मौजों को,यदि उनका व्यवहार परिस्थिति वश करना पड़े तो साफ करते रहने चाहिए, क्योंकि चलने-फिरने में उन पर धूल-गर्दा पड़ना तथा गन्दा होना स्वभाविक ही है ।

छोटे बच्चों के वस्त्र

हमारी वस्त्र-सम्बन्धी धारणा जिस प्रकार अपने विषय में भ्रान्त हो गयी है, उसी का प्रयोग हम छोटे बालकों पर करते हैं। हम छोटे बच्चों की शारीरिक स्थिति और स्वास्थ्य पर ध्यान न देकर उसे सजाना और तरह-तरह के बहुत से वस्त्र पहिनना आवश्यक समझते हैं। बहुत से लोग तो पारिवारिक प्रतिष्ठा के खयाल से बच्चों को बढ़िया पोशाक, आभूषण आदि पहिनाना आवश्यक समझते हैं, चाहे बालक असुविधा अनुभव करके पहिनने के कैसे भी अनिच्छुक क्यों न हों। इस सम्बन्ध में एक अनुभवी लेखक की निम्न सम्मति विचारणीय है–

'बच्चों के वस्त्रों के सम्बन्ध में तो हम इतनी भयंकर भूल कर रहे हैं कि जिसका कोई ठिकाना नहीं । जन्म से ही बेचारे बच्चों को भारी गरम कपड़े पहना दिये जाते हैं ताकि हवा न लगे। कपड़े पहिना कर ही हम सन्तुष्ट नहीं होते बल्कि अबोध बच्चों को कपड़े से इतना ढँक देते हैं कि वे अन्दर घुटकर रोते रहते हैं। इस प्रकार हम अपने हाथों से अपने बच्चों का स्वास्थ्य व जीवन नष्ट कर देते हैं। जितना अधिक बच्चों को कपड़े से ढँका जायगा उतना ही अधिक कमजोर और बीमार वह होगा। बच्चे वस्त्रों का विरोध करते हैं और माता-पिता बलपूर्वक उन्हें पहिना देते हैं। वास्तव में स्वाभाविक गर्मी अधिक होती है, बड़े-बूढ़ों की अपेक्षा वे अधिक देर नंगे रह सकते हैं। बहुधा देखा गया है कि बच्चे अवसर पाते ही अपने सारे वस्त्र उतार कर फेंक देते हैं। उनका अन्तःकरण उन्हें ऐसा ही करने ही आज्ञा देता है। कपड़ों को उतार करके बड़े प्रसन्न होते हैं मानो उनके सिर से बोझ हट गया।

'जब जरूरत हो तो भी बच्चों को हल्के कपड़े पहिनने चाहिए। जब तक बच्चे पाँच वर्ष के न हों उनको यथासम्भव अधिक समय तक नंगे रहना चाहिए। फिर आप देखेंगे कि वे कैसे प्रसन्नचित्त, नीरोग व बलवान होते हैं। मगर आज माताएँ बच्चों को सिर से पाँव तक इस प्रकार ढँक देती हैं कि बदन का कोई हिस्सा खुला न रहे । सिर पर टोपा या टोपी होती है। गले में गुलूबन्द, बनियान, कमीज, कोट बदन पर होते हैं। फिर पैण्ट, जूते-मोजे भी साल भर की आयु में ही पहिना दिये जाते हैं। इस प्रकार अनावश्यक वस्त्रों से सदा ढँके-दबे रहने वाले बच्चे कभी पूर्ण स्वस्थ और शक्तिशाली नहीं हो सकते।

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि अभ्यास करते-करते ऐसे कामों को करके दिखा सकते हैं जो सामान्यतः असम्भव समझे जाते हैं। कुछ सर्कस आदि में काम करने वाले पहलवान तो चलती मोटर को रोक लेते हैं, पचास मन का पत्थर छाती पर रख लेते हैं अथवा हाथी को भी अपने ऊपर खड़ा करा लेते हैं। यह सब अभ्यास का ही फल है। स्वर्गीय पहलवान राममूर्ति ने सर्वप्रथम इन कार्यों का प्रदर्शन करके बड़ा यश और धन कमाया था। बतलाते हैं कि मैं बचपन में बहुत कमजोर था और प्रायः बीमार होता रहता था। किसी से प्रेरणा पाकर उन्होंने अपनी निर्बलता को दूर करने का निश्चय किया और व्यायाम करके आठ-दस वर्ष में अपने को इतना शक्तिशाली बना लिया कि उस समय के बहुत बड़े पहलवानों में उनकी गिनती की जाने लगी थी।

जिस प्रकार कमजोर आदमी, बालक स्वास्थ्य के नियमों का पालन करके और व्यायाम की मात्रा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ाकर बहुत बल और सुदृढ़ स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकते हैं, उसी प्रकार यदि उनको छुई-मुई के पौधे की तरह सदा दबा-ढँका रखा जाय और प्रकृति के सामान्य परिवर्तनों से भी बचाया जाय तो आगामी जीवन में उनका सशक्त और कर्मठ होना किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता । ऐसे बालक जरा-सी सर्दी-गर्मी के असर से बीमार होते रहते हैं। उनको सदा खाँसी, सर्दी और निमोनियाँ बने ही रहते हैं। ऐसे ही बालकों को शीघ्र लू लग जाती है और बार-बार ज्वर आदि का आक्रमण होता रहता है। अगर उनको छोटी अवस्था से ही विधिपूर्वक प्रकृति के साहचर्य में रहकर वस्त्रों का कम उपयोग किया जाता तो वे क्रमशः सहनशील बन जाते और आगे चलकर जीवन संघर्ष में अधिक समर्थ और सफल सिद्ध हो सकते । इसका यह भी आशय नहीं कि दो-चार महीने के बच्चों को लापरवाही से रखा जाय और कठोर शीत अथवा गर्मी में उनकी रक्षा न की जाय, पर सामान्य मौसम में उनको अवश्य मामूली कपड़ा पहिनाकर या नंगा ही रखकर खुले वातावरण में खेलने-कूदने का अवसर दिया जाय जिससे उनकी शारीरिक शक्तियों का ढंग से विकास हो सके ।

कृत्रिम जीवन को त्याग दीजिए

खेद का विषय है कि वर्तमान समय में मनुष्य प्राकृतिक जीवन को त्यागकर अधिकाधिक कृत्रिमता की तरफ झुक रहा है । हमारा खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार सब कृत्रिमता से प्रभावित हो रहे हैं। इसका परिणाम भी आँखों के सामने है। मनुष्य की शारीरिक शक्तियाँ दिन पर दिन क्षीण होती जाती हैं और वह यन्त्रों अथवा बाह्य उपकरणों की सहायता से जीवन निर्वाह कर रहा है । आज के लाखों युवक पच्चीस-तीस वर्ष की आयु में चश्मा लगाकर देख पाते हैं और हजारों ४० वर्ष की आयु में ही नकली दाँत लगाकर खाना खा पाते हैं, अधेड़ आयु में ही चलने के लिए सवारी की आवश्यकता पड़ती है। यह सब किन कर्मों का प्रतिफल है ?

यह सब प्रकृति से दूर हटकर सीधे, सरल, स्वाभाविक जीवन मार्ग को त्यागकर हर बात में बाहरी टीमटाम, परिश्रम से बचने, बड़प्पन की झूठी शान दिखलाने का ही नतीजा है। हम जानते हैं कि वर्तमान समय में वस्त्रों का पहिनना आवश्यक है, अब सामान्य मनुष्यों को नंगे रहने या केवल लँगोट लगाकर रहने की सलाह कोई सनकी ही दे सकता है, फिर भी वस्त्रों की जैसी अधिकता और कृत्रिमता आजकल देखने में आ रही है उसका समर्थन कभी नहीं किया जा सकता । गर्म देशों में या गर्मी की ऋतु में सूती वस्त्र और ठण्ड में ऊनी वस्त्र पहिनना बुरा नहीं है । इस प्रकार अधिक ठण्ड पड़ने पर शारीरिक स्थिति के निर्बल होने पर एक से अधिक वस्त्रों का प्रयोग भी अनुचित नहीं है, पर एतराज तो तब किया जाता है, जब वस्त्रों को शरीर की रक्षा के बजाय शान या शौक का साधन मानकर उनकी भरमार कर दी जाती है। शरीर को इस प्रकार अनावश्यक वस्त्रों से जकड़ लेने का नतीजा यह होता है कि हम सूर्य के स्वास्थ्यदायक प्रकाश और वायु की जीवनी शक्ति से वंचित रह जाते हैं । प्रकाश और शुद्ध वायु स्वास्थ्य के ही नहीं जीवन के आधार हैं । हमारी जो आदत या शौक उनके प्राप्त करने में बाधक होती है वह निस्संदेह निन्दा के योग्य त्याज्य है । आजकल करोड़ों लोग जिस प्रकार केवल दिखाने के लिए तरह-तरह के कई-कई कसे हुए वस्त्र पहिने रहते हैं वह निश्चय ही स्वास्थ्य की दृष्टि से घातक हैं । फिर किसी बीमारी आदि में किसी खास परिस्थिति को छोड़कर हमेशा वस्त्र पहने रहना और इसे ही सभ्यता का चिन्ह मान लेना भी गलती है ।

हमारे देश में तो ऋषि, मुनि, ब्रह्मचारी सदा कम से कम वस्त्र पहिनने वाले हुए हैं और वे सर्वसाधारण द्वारा पूज्य माने गये हैं । जीवन के सभी क्षेत्रों में ऐसे काम कर गये हैं जो आज तक स्मरण किए जाते हैं । इसलिए वस्त्रों का सम्बन्ध सभ्यता या आदर-सम्मान से जोड़ना एक भ्रामक विचार है । जिसको अब जितना हो सके शीघ्र छोड़ देना चाहिए ।

हम लोगों के लिए वस्त्रों का सबसे बढ़िया आदर्श महात्मा गाँधी बतला गये हैं उन्होंने जिस हाथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की बनी खादी का प्रचार किया था निस्सन्देह उससे बढ़कर स्वास्थ्य रक्षक दूसरा वस्त्र नहीं हो सकता । आवश्यकता हो तो ऐसी खादी यन्त्रों से भी बनाई जा सकती है और बनाई भी जाती है । यदि हम अपनी आर्थिक और सामाजिक स्थिति के अनुसार ऐसे कपड़े के धोती, कुर्त्ता, टोपी आदि का प्रयोग करें तो वह निस्संदेह सादगी, स्वच्छता, सुलभता की दृष्टि से आदर्श पोशाक हो सकती है । इससे हम अपने स्वास्थ्य और धन की ही रक्षा नहीं करेंगे वरन् इससे हमारे विचारों में भी शुद्धता आयेगी और हम झूँठे अहंकार से बचकर अपने सामान्य देश भाइयों के साथ प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार कर सकेंगे ।

वस्त्रों में बहुत अधिक भिन्नता रखना सबसे निराली, बहुत कीमती पोशाक पहिनना समाज में वैषम्य का कारण भी बनता है । ऐसे व्यक्ति व्यर्थ में अपने को दूसरे लोगों से बड़ा या विशेष मानने लगते हैं और इस प्रकार एक निरर्थक भेदभाव को जनम देते हैं, जो अन्त में राष्ट्रहित की दृष्टि से भी हानिकारक सिद्ध होता है । इसलिए हमको वस्त्रों के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण अवश्य बदलना चाहिए और जीवन-रक्षा के वास्तविक उद्देश्य के अतिरिक्त उनको यह अनुपयुक्त स्थान कदापि न देना चाहिए, जिससे वे हमारे लिए उपयोगी होने के बजाय हानिकारक अथवा पतन करने वाले सिद्ध हो सकें ।

प्रभावशाली व्यक्तित्व यों बनता है

एक उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति जिस काम में सफल नहीं होता उसमें दूसरा साधारण-सी शिक्षा पाकर भी अपना अधिकार कायम कर लेता है । इण्टरव्यू होता है, जिसमें कई बार देखा जाता है कि एम० ए० पास ले लिए जाते हैं । कई पण्डित, विद्वान, दुनियाँ के एक कौने में पड़े-पड़ें अपने भाग्य को कोसा करते हैं किन्तु सामान्य ज्ञान रखने वाले लोग दुनिया के रंगमंच पर उतरते हैं अपना प्रभाव और महत्ता कायम करते हैं ।

बाह्य साधन-सुविधा सम्पन्न कई व्यक्ति समाज के एक कोने में स्थान पाते हैं जब कि दूसरे अभावग्रस्त बाह्य साधन सुविधाओं से रहित व्यक्ति समाज में अपना आकर्षण और महत्त्व पैदा करते हैं, आगे बढ़कर समाज का नेतृत्व करते हैं । बहुत से लोग इस तरह के विरोधाभास को पक्षपात् भेदभाव, अन्धानुकरण आदि का कारण बताते हुए दूसरों को दोष देकर ही सन्तुष्ट हो लेते हैं । हालांकि कुछ अंशों में ये विषमतायें भी समाज में फैली हुई हैं जिनके कारण उक्त मनुष्य का अपना अविकसित संकीर्ण व्यक्तित्व ही होता है ।

महात्मा सुकरात के पास एक व्यक्ति तत्त्वज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आया, किन्तु मिलते ही उन्होंने उस व्यक्ति को ठीक से बाल काढ़ने, कपड़े पहिनने, उन्हें साफ रखने, शरीर को स्वस्थ बनाने का उपदेश दिया । वह हक्का-बक्का रह गया और तत्त्वज्ञान न देकर छोटी-छोटी बातें बताने की शिकायत की इस पर महात्मा सुकरात ने बताया—"स्वस्थ, सबल, व्यवस्थित जीवन ही आध्यात्मिक साधना की प्राथमिक आवश्यकता है । इसके अभाव में कोई भी तत्त्वज्ञान आध्यात्मिक अनुभूति का अधिकारी नहीं है ।" जीवन में सामान्य बातों से लेकर साधारण सफलताओं के लिए व्यक्तित्व का ठोस सबल और सर्वांगपूर्ण विकसित होना आवश्यक है । इसके बिना सफलता की आशा करना दुराशा मात्र ही है, स्वास्थ्य, शिक्षा, रहन-सहन बोलचाल काम करने का तरीका आदि विभिन्न बातें व्यक्तित्व के अंग हैं । इन सभी का व्यविस्थित, स्वस्थ, सुन्दर, सुरुचिपूर्ण होना सबल एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व का आधार है ।

किसी भी पदार्थ के स्वस्थ, सुन्दर, व्यवस्थित, निर्मल आचरण की ओर आकर्षित होना मानव स्वभाव की साधारण वृत्ति है । स्वास्थ्य, कपड़े, रहन–सहन की तरीके, बोल-चाल, भाव-भंगिमा आदि व्यक्तित्व के बाह्य प्रतिबिम्ब हैं, जिनसे दूसरे लोग प्रभावित प्रेरित होते हैं । जिनके बाल अस्त-व्यस्त बिखरे हुए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हों, वस्त्र गन्दे और बेतरतीव हों, जिनके पास जाने से ही बदबू आती हो इस तरह के लोगों का प्रथम प्रभाव ही बुरा पड़ेगा और समाज में लोग उनसे दूर हटने का प्रयत्न करेंगे । फिर ऐसे व्यक्ति कोई बड़ी सफलता मिलने की आशा कैसे रख सकते हैं ?

संयमित और मर्यादित जीवन बिताकर सुन्दर स्वास्थ्य पाया जा सकता है । सुन्दर स्वास्थ्य प्रकृति का महत्त्वपूर्ण उपहार है जो प्रत्येक प्राणी को मिलता है । अपने दुष्कृत्यों, अमर्यादित, अनियमित जीवन, अप्राकृतिक रहन-सहन के कारण ही स्वास्थ्य खराब होता है । शरीर और वस्त्रों को साफ रखना भी कोई कठिन बात नहीं केवल आलस्य के कारण ही मनुष्य तरह-तरह की बहानेबाजी लगाकर इनसे बचना चाहते हैं । कई लोग कहते हैं–"क्या किया जाय पैसों के अभाव में उनके लिए साफ-सुथरे रहना, स्वस्थ बनना सम्भव नहीं ।" किन्तु यह अपनी कमी को छिपाने का प्रयत्न दूहरी भूल है । कोई भी व्यक्ति इतना गरीब नहीं होता जो कपड़े तो पहने किन्तु इन्हें साफ रखने को साबुन के पैसे खर्च न कर सके उल्टे साफ न करने से कपड़े मैल और पसीने में लगकर अधिक फटते हैं, जिससे साबनु आदि के खर्चे से अधिक हानि हो जाती है ।

जो खा सकता है, वह स्वस्थ भी रह सकता है, जो कपड़े पहन सकता है, वह उन्हें स्वच्छ भी रख सकता है । अपने बढ़े नाखून काट सकता है । आँखों में जमी हुई कीचड़ धो सकता है, किन्तु मनुष्य लापरवाही और आलस्यवश अपने स्वास्थ्य और सफाई का उत्तरदायित्व पूरा नहीं करता, जिससे उसके व्यक्तित्व का बाह्य ढाँचा भी भद्दा-फूहड़ मालूम पड़ने लगता है और देखने वालों पर विपरीत प्रभाव डालता है फिर नौकरी न मिले, इण्टरव्यू में असफल होना पड़े, दर, दर धक्के खाने पड़ें तो उसमें आश्चर्य और दुःख की क्या बात हैं ? इतना ही नहीं अस्वस्थता, गन्दगी, अव्यवस्था से तो मनुष्य को आंतरिक प्रफुल्लता, सन्तोष, शान्ति, उत्साह स्फूर्ति आदि भी नहीं मिलते ।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी महत्त्व की है । व्यक्तित्व को सुघड़, स्वस्थ बनाने के लिए स्वास्थ्य, सफाई, स्वच्छता, व्यवस्था की तो आवश्यकता है ही किन्तु इसका उद्देश्य स्वास्थ्य संचय करने का अथवा बनाव–शृंगार, फैशन, तड़क-भड़क को ही महत्त्व देने के लिए नहीं होना चहिए । इससे यही बातें व्यक्तित्व के लिए हानिप्रद और विरोधी बन जाती है । अधिक टीम-टाम बनाना, चटक-मटक से रहने की आदत, गम्भीरता, स्वाधीनता संजीदगी का नहीं वरन् छछोरपन और बचकानी वृत्ति का परिचय देती है ।

कई लोग प्रथम भेंट में ही लोगों पर ऐसा प्रभाव डालते हैं कि वे सहज ही उनसे आकर्षित और प्रभावित हो जाते हैं । ऐसे लोगों में एक तरह का जादू होता है । उनके चेहने की आकर्षक मुद्रा मुस्कराहट नेत्रों में आशा भी चमक गजब की होती है । ऐसे व्यक्ति जहाँ होते हैं, वहाँ अपने अनुकूल वातावरण बना लेते हैं, उपयुक्त स्थान प्राप्त कर लेते हैं । इसका कारण होता है, मनुष्य का आत्म-विश्वास, दृढ़, इच्छा शक्ति, चेहरे से निकलता हुआ जीवन्त कार्यक्षमता का प्रकाश । ये ही तत्त्व दूसरों पर मनुष्य की अदम्य शक्ति की छाप डाल देते हैं और जादू की तरह प्रभावित करते हैं ।

जीवन में सादगी की आवश्यकता और उपयोगिता

यह निश्चित है कि हमारा जीवन जितना बनावटी होगा, हमारी आवश्यकताएँ जितनी बढ़ी हुई होंगी, उतना ही हमें अपनी शक्तियों को उनकी प्राप्ति के लिए किए जाने वाले प्रयत्न में लगाना होगा, जैसे कि आजकल हो रहा है । प्रतिमाह सौ रुपये से हजार रुपये पाने वाले व्यक्ति तक जीवन में अभाव ही महसूस करते हैं । उनका निर्वाह नहीं होता और जन-साधारण का जीवन इसकी पूर्ति के लिए भाग-दौड़ में ही लगा रहता है । नीति-अनीति से जैसे भी बने मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए जुटा रहता है। जीवन के किसी उत्कृष्ट पहलू, आदर्श दृष्टिकोण, महान् लक्ष्य पर सोचने-विचारने का उसे समय ही नहीं मिलता । अधिकांश मनुष्य गरीब से अमीर तक सभी अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्कयता की पूर्ति के गोरख धन्धे में ही लगे रहते हैं । इधर आमदनी बढ़ती है तो उधर आवश्यकताएँ सुरसा की तरह मुँह फाड़कर खड़ी हो जाती है और यह भी निश्चित है कि हमारी दिन–रात बढ़ने वाली आवश्यकताओं का कभी भी अन्त नहीं हो सकता । इन पर नियंत्रण प्राप्त करने का एक ही आधार है और वह है सादगी के आधार पर अपनी आवश्यकताओं का निर्धारण करना ।

वस्त्रों की आवश्यकता इसलिए होती है कि हम अपने शरीर को ढँक सकें । सर्दी-गर्मी से शरीर का बचाव कर सकें और यह साधारण मूल्य के कपड़े से सम्भव है । गाँधी जी तो खादी की एक धोती और चद्दर से ही काम चला लेते थे । संत महात्मा एवं महापुरुषों का काम थोड़े से कपड़ों से ही चल जाता है । फिर क्या आवश्यकता पड़ जाती है कि हम लोग बड़ा महँगा कीमती कपड़ा खरीदें और उसे नई तर्जों एवं डिजायनों में बनवायें ।

हम पेट भरने के लिए खाते, अपने स्वाद के लिए, मिठाइयाँ, पकवान, चाट-पकौड़ी न जाने क्या-क्या उड़ाते हैं और अपनी कमाई का पैसा गँवाते हैं, साथ ही इसके कारण बीमारियों के शिकार होकर डॉक्टर, वैद्य, हकीमों के पास जाते हैं फिर दवाओं के नाम पर खर्च करते हैं । यदि आदमी पेट भरने की दृष्टि से ही खाये तो बहुत कम खर्च में काम चला सकता है ।

इसी तरह हम रहन-सहन, रीति-रिवाज, त्योहार-वार, विवाह-शादी आदि के नाम पर दिखावे के लिए अपने नाम या बड़प्पन के लिए किस तरह इन्हीं में अनाप-शनाप खर्च करते हैं ? भारतीय नागरिक की कमाई का बहुत बड़ा अंश इन्हीं में खर्च हो जाता है । हालाँकि इसके लिए हमारी प्राचीन परम्पराएँ, रूढ़ियाँ आदि कम उत्तरदायी नहीं हैं फिर भी विचारशील व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक इस तरह के फालतू खर्चे को रोक सकते हैं ।

तथाकथित "जीवन स्तर" "स्टैण्डर्ड ऑफ लिविंग" की प्रचलित व्याख्या ही यह हो गई है कि मनुष्य कितना कीमती वस्त्र पहनता है, खाने-पीने, मौज–मजे करने में कितना अधिक खर्च करता है । समाज में व्याह-शादी, दावत-भोज आदि के नाम पर कौन कितना धन फूँकता है, इसके आधार पर ही उसका बड़प्पन आँका जाता है और इस सबके कारण मनुष्य दिन-रात कमाने की फिक्र में लगा रहता है । यदि लोगों के जीवन उद्देश्य के बारे में अन्वेषण किया जाय तो निन्यानवे प्रतिशत "कमाना और खा-पीकर जीवन बिना देना" ही निकलेगा और खाना-पीना, पहनना मौज-मजे करना भी ऐसा जिससे अन्त में मनुष्य को कोई लाभ नहीं मिलता, उसे पश्चात्ताप ही हाथ लगता है । सम्पूर्ण जीवन इसी गोरखधन्धे में लगा देना और फिर उसका नतीजा शून्य ! कैसी बिडम्बना है ? कैसी मरीचिका है ?

सादगी भारतीय जीवन पद्धति का एक महत्त्वपूर्ण नियम रहा है और शायद सादा जीवन बिताकर ही हमारे पूर्वजों ने ज्ञान की महान् साधना की होगी, उस ज्ञान की जिसके कारण समस्त संसार भारत को सभ्यता का सूर्य, ज्ञान-विज्ञान का देश मानता रहा, जिसके बल पर भारत जगद्गुरु कहलाया ।

सादगी एक ऐसा नियम है जिसके सहारे हम अपने वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन की बहुत-सी समस्याओं को हल कर सकते हैं । सादगी के द्वारा अपना बहुत-सा समय, धन खर्च होने वाली शक्तियाँ बचा सकते हैं । और उनका अपने उत्कर्ष के लिए सदुपयोग कर सकते हैं ।

इसलिए हमारे पूर्वजों ने जीवन के बाह्य विभाग को कम महत्त्व दिया है। सादगी से जीवन बिताने के लिए कहा है ताकि हम अपनी शक्ति व्यर्थ नष्ट न कर उसका सदुपयोग अच्छे कार्यों में कर सकें । ऋषियों का जीवन इसी सत्य का प्रतीक था और किसी भी महान् पथ का साधन करने वाले महापुरुष को सादगी का मार्ग ही अपनाना पड़ता है। अपनी आवश्यकताएँ बहुत कम सामान्य रखनी पड़ती है, जिनसे जीवन का निर्वाह सहज रूप में होता रहे ।

सादगी जहाँ व्यक्तिगत जीवन में लाभकारी होती है । वहाँ सामाजिक जीवन में भी संघर्ष,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहन-सहन की असमानता, कृत्रिम अभाव, महँगाई आदि को दूर करके वास्तविक समाजवाद की रचना करती है । सादगी समाजवाद का व्यावहारिक नियम कर दिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी । समाज में जीवन संघर्ष इसलिए बढ़ गया है कि प्रत्येक अपने लिए अधिक से अधिक माँग करता है । अपनी शक्ति के अनुसार साधन-सामग्री जुटा लेता है । इससे दूसरों का हक भी छिनता है और समाज में अभाव से महँगाई बढ़ती है । सादगी सिखाती है कि जितनी आवश्यकता हो, जितने से जीवन सरलता से चल जाता हो, उतना ही काफी है, फिर छीना–झपटी क्यों करेगा ? न किसी का हक छिनेगा न मँहगाई बढ़ेगी । यदि संसार के सभी लोग सादा जीवन बिताने लगें तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानव-जाति की अनेकों आर्थिक और सामाजिक समस्यायें सुलझ जायें । जीवन सरल हो जाये ।

इसलिए जीवन को सादा बनाइए, इससे आपका और समाज का बहुत बड़ा हित साधन होगा ।

अन्दर और बाहर की पवित्रता

पवित्रता, शुद्धता, स्वच्छता मानव जीवन को ऊँचा उठाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण सद्गुण है । अनेक लोग स्वच्छता अथवा सफाई का अर्थ केवल ऊपर की टीमटाम, आकर्षण, श्रृंगार या बढ़िया फैशन बना लेना ही समझते हैं । कुछ लोगों की दृष्टि से बढ़िया वस्त्र, आभूषण, प्रसाधन सामग्री का उपयोग करना सफाई और सौन्दर्य का प्रमाण माना जाता है । कुछ लोग ऐसे भी हैं जो शरीर और वस्तुओं की अधिक सफाई सौन्दर्य की वृद्धि आदि बातों को सांसारिक प्रपंच मानकर इनकी उपेक्षा करने में ही महानता अनुभव करते हैं, पर ये सभी दृष्टिकोण एकांगी है । यह हो सकता है कि कुछ लोग विलास प्रियता अथवा श्रृंगार के भाव से ही स्वच्छता और सफाई करते हों, यह भी हो सकता है कि अन्य लोग अपना वैभव बड़प्पन प्रकट करने के दृष्टिकोण से सफाई पर ध्यान देते हों, पर इससे स्वच्छता की प्रवृत्ति को अनावश्यक या उपेक्षणीय नहीं माना जा सकता । वास्तव में स्वच्छता, सफाई पवित्रता एक ही उच्च मनोवृत्ति के रूप हैं और शरीर को स्वस्थ, मन को प्रसन्न तथा आत्मा को शान्त रखने में इनका बड़ा योग रहता है । बाह्य स्वच्छता और पवित्रता सो अन्तःकरण की पवित्रता की भी वृद्धि होती है और मन में अशुद्ध भावों का उदय होना स्वयमेव कम पड़ जाता है ।

यदि केवल बाहरी सुन्दरता और रंगरूप को ही महत्त्वपूर्ण समझा जाय तो वह वेश्याओं में भी देखने में आता है, पर उनके जीवन को कौन प्रशंसनीय कह सकता है ? इसी प्रकार स्वास्थ्य की निगाह से खूब मजबूत, तगड़े पहलवान जिनका चरित्र आदि उत्तम नहीं होता और बोलचाल में भी अक्खड़पन प्रकट होता है, वे कहाँ लोकप्रिय या सम्माननीय समझे जाते हैं ? इसी प्रकार जो लोग पूजा-पाठ में विशेष लगे रहते हैं और धार्मिक क्रिया काण्ड का पालन करते हैं, पर जिसमें परोपकार, विनय सज्जनता आदि का अभाव होता है वे कैसे जीवन में सफलता प्राप्त कर सकते हैं ? इसलिए हमको यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि मानव जीवन के अनेक पहलू हैं, उन सभी की उन्नति करने से उनको शुद्ध तथा पवित्र बनाकर ही हम अपने जीवन को वास्तव में सुन्दर संसार के लिए उपयोगी महत्त्वपूर्ण बना सकते हैं।

जिस मनुष्य ने अपना जीवन आलस्य अकर्मण्यता में व्यतीत किया है, जिसे उद्योग, परिश्रम अध्यवसाय की रुचि नहीं है जिसमें हरामखोरी पराश्रित रहने की प्रवृत्ति ने जड़ जमा रखी है, वह कभी श्रेष्ठ और सुन्दर जीवन प्रज्ञपत करने की आशा नहीं रख सकता । चाहे भगवान ने जन्म से उसे सुन्दर शरीर दिया हो तो भी अपने आचरणों और गन्दे मनोविकारों के द्वारा यह उसे वीभत्स बना लेगा । ऐसे लोग सब जगह प्रायः तिरस्कार लाँछना और अपमान ही पाते हैं और इसीलिए उनकी दृष्टि में तमाम दुनियाँ ही दुःखपूर्ण कुरूप, घृणा करने योग्य जान पड़ती है । फलतः वे स्वयं भी वैसे ही बनते चले जाते हैं । अन्तः और बाह्य मलीनता ऐसे लोगों में प्रत्यक्ष दिखलाई देती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है और उसके कारण वे सर्वत्र उपेक्षणीय और निकृष्ट ही सिद्ध होते हैं । ये मनुष्य तामसिक श्रेणी के होते हैं ।

८-गायत्री, गौ, गीता और गंगाजी

भारतीय संस्कृति में गायत्री, गौ, गीता और गंगाजी का महत्वपूर्ण स्थान है । चारों माता रूप में श्रद्धा की वस्तु हैं । जिस प्रकार माता मनुष्य के लिए सदा कुछ न कुछ उपकार करती रहती है, उसी प्रकार ये चारों मानव जाति का सदा लाभ करने और उसे सन्मार्ग पर प्रतिष्ठित करने वाली माताएँ हैं । इनके द्वारा असंख्य गुणों तथा समाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक लाभों का विधान है । आदर्श हिन्दू इन चारों द्वारा आत्मा को शुद्ध करता है, वह शरीर और आत्मा को शुद्ध करता है । एक-एक माता के गुणों पर पृथक्-पृथक् विस्तार से विचार करना चाहिए ।

गायत्री भारतीय संस्कृति का सनातन एवं अनादि मन्त्र है । पुराणों में कहा गया है–

"सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को आकाशवाणी द्वारा गायत्री मन्त्र प्राप्त हुआ था । इसी की साधना का तप करके उन्हें सृष्टि-निर्माण की शक्ति प्राप्त हुई थी । गायत्री के चार चरणों की व्याख्या स्वरूप ही ब्रह्माजी ने चार मुखों में वेदों का वर्णन किया । गायत्री को वेद-माता कहते हैं । चारों वेद गायत्री की व्याख्या मात्र है ।"

गायत्री के २४ अक्षरों में वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति, उपनिषद् आदि की शिक्षाएँ दी गई हैं, जिनसे मनुष्य व्यक्तिगत, सामाजिक और परमार्थिक सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है ।

गीता में भगवान् कृष्ण ने स्वयं कहा है "गायत्री छन्दसामहम्" अर्थात् "गायत्री मन्त्र में स्वयं ही हूँ ।"

गायत्री सर्वश्रेष्ठ भारतीय मन्त्र है, जिससे उसे आयु, विद्या, सन्तान-प्राप्ति, कीर्ति, धन और ब्रह्म-तेज प्रदान करने वाली कहा गया है । गायत्री की साधना द्वारा हमारी आत्मा पर जमें हुए मल विक्षेप हट जाते हैं और आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है । अनेक ऋषि-सिद्धियाँ प्रकट होने लगती हैं । गायत्री मन्त्र की उपासना आरम्भ करते ही मनुष्य के आन्तरिक क्षेत्र में आत्मिक बल बढ़ता है, दुर्भाव नष्ट हो जाता है । संयम, नम्रता, उत्साह, स्फूर्ति, मशीलता, मधुरता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, उदारता, प्रेम, सन्तोष, शान्ति, सेवा-भाव, आत्मीयता आदि सद्गुणों की मात्रा दिनों-दिन बढ़ने लगती हैं । गायत्री को हमारे यहाँ भूलोक की कामधेनु कहा गया है, क्योंकि यह आत्मा की समस्त क्षुधा–पिपासाएँ शान्त करती हैं । गायत्री को सुधा कहा गया है, क्योंकि यह जन्म और मृत्यु के चक्र से छुड़ा कर सच्चा अमृत प्रदान करने की शक्ति से परिपूर्ण है । गायत्री को पारसमणि कहा गया है, क्योंकि उसके स्पर्श से लोहे के समान कलुषित अन्तःकरण शुद्ध हो जाते हैं । गायत्री उपासना से प्रमुखतः आध्यात्मिक उन्नति होती है । यही लाभ प्रमुख है । आत्म-कल्याण और सुख-शान्ति की दिशा में अग्रसर होने में गायत्री सहायक है ।

गौ माता भारतीय संस्कृति की ज्वलन्त प्रतीक है । प्राचीन आर्यों ने गाय को "मातेव रक्षति" अर्थात् यह माता हमारी रक्षा करें–कहा है । पुराणकाल में एक ऐसी गाय की कल्पना की गई है, जो हमारी सभी इच्छाओं की पूर्त्ति करती है । इसे कामधेनु कहते हैं यह स्वर्ग में रहती है और कभी-कभी जन-समाज के कल्याण के लिए मानव-लोक में अवतार लेती है । इसी भाव से साक्षात् ईश्वर के ही गाय के रूप में जन्म लेने की कल्पना की गई हैं । योगेश्वर कृष्ण ने गाय की सेवा द्वारा वह प्रशस्त पथ दिखाया था, जिससे हम उस आदर्श को जीवन में ग्रहण कर सकें । गृह सूत्रों के अनुसार जब विवाह आदि संस्कार होते हैं, तो दक्षिण रूप में गाय ही दी जाती है । अथर्व वेद में गो–सूक्तों में गौ माता के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए अनेक उपयोगी सिद्धान्त वाक्य कहे गये हैं, जो यहाँ उद्धृत किए जाते हैं :–

माता रुद्राणां दुहिता वसूना स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्रभु वोच चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ।।

अर्थात् "गाय रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री, अदिति पुत्रों की बहिन ,और घृत रूप अमृत का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

खजाना है । प्रत्येक विचारशील को चाहिए कि निरपराध एवं अवध्य गौ का वध न करें ।" आगे कहा गया है –

"गौओं ने हमारे यहाँ आकर हमारा कल्याण किया है । वे हमारी गौशाला में सुख से बैठें और उसे अपने सुन्दर शब्दों से गुँजा दें । ये विविध रंगों को गौएँ अनेक प्रकार के बछड़े-बछड़ियाँ जनें और इन्द्र के यजन के लिए उषाकाल से पहले दूध देने वाली हों ।"

"यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्र गृहं कृणुथ भद्रवाचो वृहद्वो वय उच्यते सभासु ।।"

"गौओ ! तुम कृश शरीर वाले व्यक्ति को हष्ट-पुष्ट कर देती हो एवं तेजोहीन को देखने में सुन्दर बना देती हो । इतना ही नहीं, तुम अपने मंगलमय शब्दों से हमारे घरों को मंगलमय बना देती हो । इसी से सभाओं में तुम्हारे ही महान् यश का गान होता है ।"

गौ से असंख्य लाभ है । गौ-धन की उपयोगिता को हिन्दुओं ने समझकर ही उसको इतना ऊँचा स्थान प्रदान किया है । भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए गौ-पालन और गौ-रक्षण धर्म है । गौ–धन का ऊँचा महात्म्य है । गौमाता से मानव-समाज को जो असंख्य लाभ हैं । उनसे मानव जाति सदैव ऋणी रहेगी । गौ वंश का हास आर्थिक और धार्मिक दोनों ही दृष्टिओं से राष्ट्र और समाज के लिए हानिकर है । प्रत्येक गाँव और शहर के चारों ओर यथेष्ट गोचर-भूमि छोड़नी चाहिए, जिससे दूध, घी, खाद और हृष्ट-पुष्ट बैलों की प्राप्ति होती रहे । भारतवर्ष में गौ-पालन सनातन धर्म है, उसका पालन होते रहना चाहिए ।

गीताजी हमारे लिए ज्ञान, बुद्धि, कर्मयोग और आत्मिक, नैतिक शिक्षा का अक्षय भंडार है । गीता का ज्ञान सदा हर क्षेत्र और जीवन के हर स्थान पर काम में आने वाला सद्ज्ञान है । भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने श्रीमुख से उच्चारण कर इस उपदेश में वह समस्त ज्ञान-भण्डार भर दिया है, जो जीवन की प्रत्येक गुत्थी को सुलझाने और गाँठ को खोल देने की सामर्थ्य रखता है । प्रत्येक श्लोक में असंख्य युगों का ज्ञान-नवनीत एक ही स्थान पर केन्द्रित कर दिया गया है । इसके एक-एक श्लोक में वह शक्ति, वह ज्ञान, वह विवेक, वह उपदेश, वह नीति-धर्म मिलता है, जिसके मुकाबले का दूसरा ग्रन्थ आज तक किसी देश और किसी भाषा में नहीं लिखा गया है ।

गंगाजी का जल ऐसे रासायनिक तत्त्वों से परिपूर्ण है, जिसके सेवन और स्नान से मनुष्य को असंख्य लाभ होते हैं । वैद्यक ग्रन्थों का मत है कि अजीर्ण, पुराना ज्वर, तपेदिक, पेचिश, दमा, मस्तक शूल आदि रोगों के लिए गंगाजल बहुत ही लाभदायक है । इसमें स्वास्थ्य को सबल बनाने और संक्रामक कीटाणुओं को नाश करने की शक्ति है । कोढ़ के रोगियों का गंगा किनारे रखने का यह प्रयोजन है कि वहाँ के जलवायु से कुष्ट रोग अच्छा हो जायेगा । प्रयोग करके देखा गया है कि गंगा जल के प्रयोग से कोढ़ रुक जाता है । वहाँ की जलवायु भी उत्तम है । जड़ी–बूँटियों में होता हुआ बर्फ का शुद्ध जल गंधक, चाँदी, सोना, अभ्रक इत्यादि-इत्यादि बहुत से रासायनिक तत्त्वों को लेकर बहता हुआ मनुष्य मात्र के लिए गुणकारी है । शोधक और रासायानिक तत्त्वों के कारण गंगाजल मानव मात्र के लिए उपकारी है ।

गंगाजल की विशेषता और महानता को दृष्टि में रखकर ही इसे हिन्दू धर्म में स्थान दिया गया है । अभी तक गंगाजल के विषय में खोज-बीन हो रही है । विश्व को एक दिन गंगाजी की महिमा ज्ञात हो जायेगी । जिस दिन इसके रासायनिक तत्त्वों की पूरी जानकारी हो जायेगी, संसार को गंगाजी की महिमा उसी प्रकार स्वीकार करनी पड़ेगी, जिस प्रकार आस्तिक हिन्दू लोग करते हैं ।

तात्पर्य यह है कि गायत्री, गौ, गीता और गंगाजी के असंख्य लाभों को दृष्टि में रखकर ही उन्हें भारतीय संस्कृति में इतना मान दिया गया है । यह सर्वथा उचित है । कोरी अन्धश्रद्धा या रूढ़ि मात्र नहीं है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गौ की ब्राह्मण और देवता से तुलना का आधार

भारतीय धर्मशास्त्रों ने गौ की तुलना ब्राह्मणों से की है और उसे देवताओं की पंक्ति में बिठाया है । मोटी दृष्टि से यह प्रतिपादन समझ में नहीं आता । कहाँ एक विचारवान साधना सम्पन्न ब्राह्मण कहाँ एक पशु गौ ? कहाँ दिव्य शक्ति सम्पन्न देवता कहाँ बेचारी गाय ?

भौतिक दृष्टि से उसके दूध में स्वास्थ्यवर्धक तत्त्वों का बाहुल्य बनाया जाता है । उसके बछड़े-गोबर हड्डी से कृषि का, चमड़े से जूते आदि उपकरणों का लाभ बताया जाता है सो सही है । समृद्धि की दृष्टि से स्वास्थ्य की दृष्टि से गाय की महत्ता असंदिग्ध है । इसलिए गौसंरक्षण, गौ सम्वर्धन के लिए जो भी प्रयत्न किया जाये उचित और उत्तम है ।

पर जिस दृष्टि से भारतीय धर्म में गौ को अति उच्च स्थान दिया गया है । उसे ब्राह्मण एवं देवता की पंक्ति में बिठाया गया है, वह आध्यात्मिक आधार है । पशु होते हुए भी उसके रोम-रोम में सतयुग का दिव्य तत्त्व अनायास ही उतनी मात्रा में विद्यमान है जितना बहुत तप साधना करने के उपरान्त भूसुरों-ब्राह्मणों को प्राप्त होता है।

गौ का असली लाभ उसके सम्पर्क सान्निध्य में होने वाला आध्यात्मिक लाभ है । गौ दुग्ध शारीरिक स्वास्थ्य संवर्धक ही नहीं वरन् मन में स्थिरता, शान्ति, उत्कृष्टता उत्पन्न करने वाला भी होता है । उसकी समीपता वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करती है जैसा सन्त और तपस्वियों की निकटता । पापों के प्रायश्चित्य में गौ दुग्ध, गौ घृत, गौमूत्र, गोबर, एवं गंगाजल का सम्मिश्रण करके पंच गव्य के रूप में दिया जाता है । यज्ञों में गौ घृत की प्रधानता है । न मिलने पर ही भैंस आदि का घृत ग्रहण किया जाता है। देव कर्मों में जहाँ भी 'घृत' का उल्लेख हुआ हो वहाँ घृत का ही निर्देश समझना चाहिए ।

दुर्भावनाएँ कुप्रवृत्तियाँ गौरस के सेवन से मिटती हैं । मनो विकारों के शमन करने की उसमें अद्‌भूत क्षमता है । प्रज्ञा और प्रतिभा को प्रखर बनाने में गौ रस का प्रभाव कभी भी देखा जा सकता । सद्‌गुणी-सुसंतति प्राप्त कराने में गौ रस की उपयोगिता कोई भी परीक्षा करके देख सकता है।

गोबर की खाद से उत्पन्न अन्न में जो दिव्य प्रभाव रहता है वह अन्य खादों में हो ही नहीं सकता । गौमूत्र अनेक रोगों की दवा है ।

आध्यात्मिक साधना में गौ की समीपता, गौ सेवा, एवं गौ रस पान का बड़ा महत्त्व है । इसलिए ब्रह्म परायण व्यक्ति गौ सेवा को सदा महत्त्व देते रहे हैं । ऋषियों के आश्रम में सदा गौएँ रही हैं । छात्र उनकी सेवा करके अपनी प्रज्ञा और प्रतिभा को बढ़ाते रहे हैं । साधना तपश्चर्या में तो गौ तत्त्व की सहायता देव आश्रय एवं गुरु समीपता जितनी लाभदायक होती है । गौ पालन का महत्त्व अपने धर्म में इन्हीं उच्चस्तरीय अनुदानों को ध्यान में रख कर दिया गया है ।

वृक्षा यूथेव वंसगःकृष्टी रियर्त्योजसा ।
ईशनों अप्रतिष्कुतः ।।

(ऋग्वेद १/७/)

गाय का दूध ग्रहण करो । गौ दुग्ध के सेवन और गौ के समान सात्विक जीवन यापन से तुम्हें यथेच्छ शारीरिक और मानसिक शक्ति मिलेगी ।

गावः पवित्रा मांगल्या गोषु लोकाःप्रतिष्ठताः
शकृन्मूत्रं परं तासामलक्ष्मीनाशनं परम् ।
गवां कण्डूयनं वारिदानं शृंगस्य मर्दनम् ।।
गोमूत्रं गोमयक्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
षडग्डग परमं पाने दुःस्वप्नादिनिवारणम् ।।
परगोग्रासदः स्वर्गी गोहितो ब्रह्मलोकभाक् ।
गोदानात्कीर्तनाद्रक्षां कृत्वा चोद्धरते कुलम् ।।
गवां श्वासात्पवित्रा भूः स्वर्शनात्किल्विषक्षयः ।
गोमूत्रं गोमयं सर्पिः क्षीरं दधि कुशोदकम् ।।
एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमि शोधयेत् ।
सर्वाशुभाविनाशाय पुराऽऽचरितमीश्वरैः ।।
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलषेकम् द्विधा कृतम् ।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवब्राह्मणगोसाधुसाध्वीभिः सकलं जगत् ।
धार्यते वे सदा तस्मात्सर्वे पूज्यतमाः ।।
पिबन्ति यत्र तत्तीर्थ गंगाद्या गाव एव हि ।

(अग्नि पुराण (गवायुर्वेद))

गौयें परम पवित्र और मांगलिक हैं । गाय का गोबर और मूत्र दरिद्रता दूर करता है । उन्हें खुजलाना, निहलाना, पानी पिलाना, पुण्यफलदायक है । गौमूत्र, गोबर, गौ दुग्ध, गौ दधि, गौ घृत, कुशौदक इनका मिश्रण पंच गव्य अशुभ अनिष्टों को दूर करता है । गोरक्षा के लिए प्रयत्नशील–गौ ग्रास देने वाला सद्गति प्राप्त करता । गौ दान करने से समस्त कुल का उद्धार होता है । गौ के श्वास से भूमि पवित्र होती है । गाय के स्पर्श से पाप नष्ट होते हैं । पंचगव्य पीने से पतित का भी उद्धार होता है ।

ब्राह्मण और गौ एक ही कुल में उत्पन्न हुए हैं । ब्राह्मण के पास मंच है । गौ के पास यज्ञ हवि । देवता, गो ब्राह्मण साधु, साध्वी इन्होंने ही संसार को धारण किया हुआ है । जहाँ गंगाजल और गौ है वहाँ तीर्थ ही प्रस्तुत समझना चाहिए ।

गावः प्रदक्षिणा कार्यावन्दनीया हि नित्यशः ।
मंगला पतन दिव्याः सृष्टास्त्वेतः स्वयम्भुवा ।।
अप्यागाराणि विप्राणो देवतायतनाति च ।
यद्गोमरोन शुद्धयान्ति किं ब्रूमो ह्यधिकं ततः ।।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिस्तथैव च ।
गवां पंच पवित्राणि पुनन्ति सकलं जगत्।।

(स्कन्द पुराण)

"ब्रह्मा जी ने गौओं को दिव्य गुणों से युक्त बनाया है । वे अत्यन्त मंगलकारिणी हैं । अतः सदैव उनकी परिक्रमा और वन्दना करनी चाहिए । जिस गौओं के गोबर से ब्राह्मणों के घर तथा देवमन्दिर भी पवित्र हो जाते हैं, उनसे बढ़ कर और किसे कहा जा सकता है ? गौओं के मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी–ये पाँचों वस्तुएँ पवित्र मानी गई हैं और ये सम्पूर्ण जगत को पवित्र करने वाली हैं ।"

वन्दिताऽसि वसिष्ठेन विश्वामित्रेण धीमता ।
कपिले हर में पाप यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।।
गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च ।
गावो ने हृदये चापि गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।

(अग्नि पुराण)

हे गौ माता आप वशिष्ठ और विश्वामित्र द्वारा पूजित हैं । आप पापों को दूर करने में समर्थ हैं । आप मेरे सामने रहें । मेरे पीछे रहें मेरे हृदय में रहे । मैं आप के बीच में रह कर ही जीवन व्यतीत करूँ ।

सर्वस्याधारभूते यं वत्सधेनु स्त्रयीमयी ।
यस्यांप्रतिष्टितविश्वं विश्वेहतुश्चयामता ।।
ऋकपृष्ठासौ यजुमध्यासावक्त्रशिरोधरा ।
इष्टापूर्त विषाणाचसाधुसूक्ततनूरुहा ।।
शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता ।।
आजीव्यमानाजगतांसाऽक्षयान्नापचीयते ।।
स्वाहाकार स्वधारकारोवषट्कारश्चपुत्रक ।
हंतकारस्तथैवान्यस्तस्याःस्तनचचुष्टयम् ।।
स्वाहाकारंस्तनंदेवाः पितरश्चस्वधामयम् ।
मुनयश्चवषट्कारदेवभूतसुरेतराः ।।
एवमाप्याययत्येषादेवादीनखिलांस्त्रयी ।।

(मार्कण्डेय पुराण)

यह गाय वेद भी कही है । विश्व का कल्याण गाय पर आधारित है । गाय की पीठ–ऋग्वेद, धड़–यर्जुवेद, मुख–सामवेद, ग्रीवा–इष्टापूर्ति सत्मकर्म, रोम–साधु सूक्त है । उसके मल मूत्र में शान्ति और पुष्टि है । जहाँ गाय रहती है वहाँ पुण्य क्षीण नहीं होते । वह जीवन को धारण कराती है । स्वाहा, स्वधा वषट और हंतकार यह चार गाय के धन हैं । इस गाय से सब की तृप्ति होती है । सब का कल्याण होता है ।

दाहेन च भुवः शुद्विर्वासेनाप्यथवा गवाम् ।
गावः पवित्रं मंगल्यं गोषु लोकाः प्रतिष्ठताः ।।
गावो वितन्वते यज्ञं गवः सर्व्वाघसूदनाः ।।
गोमूत्रं गोमयं सर्पिः क्षीरं दधि च रोचना ।
षर्डगमेतत्परमं मंगल्यं सर्वदा गवाम् ।।
शृंग्डोदकं गवां पुण्यं सर्व्वाघविनिसूदनम् ।
गवां कण्डूयनञ्चैव सर्वकल्मषनाशनम् ।
गवां ग्रासप्रदानेन स्वर्गलोके महीयते ।।
गवां हि तीर्थे वसतीह गंगा पुष्टिस्तथा सा रजसि प्रवृद्धा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्मीः करीषे प्रणतौ च धर्म्मसतासां प्रणामं
शतंच कुर्य्यात् ।।

(विष्णु स्मृति)

गौओं के निवास की भूमि पवित्र होती है । गौऐ पवित्र और मंगलमय है । उनसे समस्त लोक का कल्याण है । गायों से यज्ञ सफल होते हैं । उनकी सेवा से पाप नष्ट होते हैं । गो मूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गोदाधि, गो घृत यह सभी श्रेयस्कर हैं । गौओं को खुजलाने से रोग नष्ट होते हैं । गौओं को भोजन देने से स्वर्ग मिलता है । गौओं के बाड़ें में तीर्थों का निवास है । उनकी रज से बुद्धि और सम्पदा बढ़ती है । उन्हें प्रणाम करने से पुण्य होता है । इसलिए गौओं को बार-बार प्रणाम करना चाहिए ।

ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठंति हविरन्यत्र तिष्ठिति ।।

(भाविष्य पुराण)

ब्राह्मण और गौ यह एक ही कुल है जो दो प्रकार का कर दिया गया है। एक में मन्त्र अपनी स्थिति रखा करते हैं और दूसरे में हवि स्थित रहता है ।

विश्वामित्र ऋषि ने अपने नाम की सार्थकता गौ सेवक के रूप में बताई है–

विश्वे देवाश्च ये मित्रं मित्रमस्मि गवांसतथा ।
विश्वामित्रमिमि ख्यातं यातुधानि निबोध माम् ।।

(महाभारत)

सब देवता मेरे मित्र हैं । गौओं का मित्र हूँ । इसी से मुझे विश्वामित्र कहते हैं ।

तपस्वी ब्राह्मणों की अपनी आजीविका नहीं होती उन्हें दूसरों की सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है । शास्त्रों ने दान-दाताओं को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया है कि वे गौ दान का महत्त्व समझे उसे प्रधानता दें और देना ही हो तो उसे उन तपस्वी ब्राह्मणों को दें जो उससे ब्रह्मवर्चस की अभिवृद्धि कर सकें । ब्राह्मण गौ के अभाव में अपंग रह जाता है। उसकी असमर्थता दूर करने के लिए दिया गया गौ दान उच्च कोटि का पुण्य है । गौ के सहयोग से की गई साधना का बहुत बड़ा अंश उसे मिलता है जिसने तपस्वी ब्राह्मण की गौ की आवश्यकता पूरी की । गौ का महत्त्व और गौ दान की गरिमा शास्त्रों में इस प्रकार कही गई है–

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदान विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ।

(मनु स्मृति)

एक या दो गौ के साथ कन्यादान किया जाय । यही धर्म ग्रन्थों में कहा गया है ।

गोप्रदास्तु सुखं यान्ति निर्मुक्ताः सर्वपातकैः ।
विमानै है ससंयुक्तैर्यान्ति मासोपवासिनः ।।

(महाभारत)

गौदान करने वाले मनुष्य सब पापों से मुक्त हो सुख पूर्वक जाते हैं । एक मास तक उपवास व्रत करने वाले लोग हंस जुते हुए विमानों द्वारा यात्रा करते हैं ।

वेदवित्सु विशिष्टेषु प्रेत्यस्वर्ग समश्नुते ।
गवां वा सम्प्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

(कर्म पुराण)

जो वेदों के विद्वान हों और विशेषता से सुसम्पन्न हों उन्हीं विप्रों को दान देने से मनुष्य मर कर फिर स्वर्ग के वास को प्राप्त करता है । गोओं के भली-भाँति दान देने से मनुष्य सभी पापो से मुक्त हो जाया करता है ।

दातास्याः स्वर्ग माप्नोति वत्सराल्लोमसम्मितान् ।
कपिला चेत्तारयाति भूयश्चा सप्तमं कुलम् ।

(याज्ञवलक्य स्मृति)

गौ दान करने वाला उतने वर्ष स्वर्ग में रहता है, जितने कि गाय के शरीर में रोम होते हैं । उत्तम गौ दान करने वाले की सात पीड़ियों का उद्धार कर देती है ।

आजकल के व्यवहार में हिन्दू जाति का काम बिना गोत्र के नहीं चलता । सोचना चाहिए यह गोत्र क्या है, और हिन्दू जीवन के साथ यह क्यों लगा हुआ है ?

हम देखते हैं कि जो हिन्दू अपने जीवन को आध्यात्मिक बनाना चाहते हैं या जो अपने नित्य की उपासना में लगते हैं वे सबके सब ही उपासना आरम्भ करने के पहले संकल्प पढ़ते हैं और उसके अन्त में पढ़ते हैं । अमुक गोत्रस्य अमुकोऽहं इसलिए अमुकोऽहं के साथ लगने वाले इस गोत्र को जानना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ही चाहिए । ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग मिलता है–''गवां गोत्र मुदस्टजः'' गायों के लिए गोशाला खोल दी है । इस प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि अपने साथ गौशालायें रखते थे जहाँ सैकड़ों और कहीं-कहीं हजारों तक गायें रहती थीं और इसी कारण वे ऋषि कहीं-कहीं गोत्रपति के रूप में भी साहित्य में पुकारे गये हैं । इन्हीं गोत्रपतियों की हम सन्तान अपने प्राचीन गौरव की रक्षा के लिए नित्य प्रति अपने नाम के साथ अपने गोत्र का स्मरण करते हैं ।

गोत्रपति गायों को रखते थे और उनके दूध घी से अपने शरीर का निर्माण करते थे । उनका जीवन गाय के जीवन से इतना अभिन्न था कि गो–ब्राह्मण का संयुक्त शब्द ही प्रचलित हो गया ।

ऋषियों को जो शक्ति मिली थी और उनकी साधनाओं के कारण जो उनमें सिद्धियों की बहुलता थी उसका एक मात्र कारण गौ ही थी, इसीलिए वेदमन्त्र में कहा गया है–माता रुद्राणां दुहिता वसूनां । स्वसा आदित्यानां अमृतस्य नाभिः । गाय रुद्रों की माता है, वसुओं की पुत्री है, सूर्य की बहिन है और अमृत का केन्द्र है ।

गाय से रुद्र निकलते हैं, वसुओं ने उसे उत्पन्न किया है । सूर्य की शक्तियाँ उसके पास हैं और इसीलिए वह अमृत का केन्द्र है । कितना रहस्य पूर्ण वाक्य है ।

रुद्र विकारों पर अधिकार जमाये हुए हैं, वासना शून्य है अतएव गौ की उपासना करने वाला विकारों पर अधिकार करते हुए वासना शून्य हो जाता है ।

वसु सम्पत्ति के देवता हैं । सम्पत्ति से सम्पत्ति की उत्पत्ति होती है । गाय की उपासना से सम्पत्ति की वृद्धि होती है ।

सूर्य, जीवन शक्ति-वृद्धि का देवता है । गाय का उपासक जीवनी शक्ति-वृद्धि शक्ति सम्पन्न होता है ।

अमृत मानव की जीर्णता को मृत्यु को दूर करता है इसलिए गाय का उपासक जीर्णता और थकान–बुढ़ापा और नाउम्मेदी से दूर रह कर साहस और बल को प्राप्त करता है ।

विकार शून्यता, सम्पत्ति, बुद्धि, साहस और बल मानव-जीवन की आधार शिला है, जिसमें ये नहीं वह मनुष्य जिन्दा रहते हुए भी मृत के समान है । इसीलिए गाय का स्मरण रखने और उसकी उपासना करने की ओर ध्यान रखने के उद्देश्य से हमारे संकल्प में गोत्र शब्द को सन्निविष्ट किया है । कोई न कोई दिन तो ऐसा होगा जब साधक इस गोत्र पर विचार करेगा, संकल्प की महत्ता को समझेगा और पूर्वजों की जीवनचर्या पर ध्यान देकर अपने जीवन में गाय की उपासना को स्थान देगा ।

गाय की उपासना, गाय की सेवा, गौ दुग्ध पान से मनुष्य को वे सारी चीजें आसानी से प्राप्त हो जाती हैं जिनकी कि मनुष्य को मनुष्य बनने में आवश्यकता होती है । इसीसे मालूम होता है कि मनुष्य जीवन में गाय की कितनी बड़ी आवश्यकता है, बल्कि कहना यों चाहिए कि गाय के बिना मनुष्य का जीवन ही अपूर्ण है । इसलिए गाय को अपने जीवन का प्रधान अंग बनाना, गौ पालन करना, गौरस का सेवन करना, प्रत्येक मानव के लिए आवश्यक है ।

वेदों में गौ महिमा

मानव-जाति के लिए गौ से बढ़कर उपकार करने वाली और कोई वस्तु नहीं है । गौ मानव-जाति की माता के समान उपकार करने वाली, दीर्घायु और निरोगता देने वाली है । यह अनेक प्रकार से प्राणिमात्र की सेवा कर उन्हें सुख पहुँचाती है । इसके उपकार से मनुष्य कभी उऋण नहीं हो सकता । यही कारण है कि हिन्दू जाति ने गाय को देवता और माता के सदृश्य समझ कर उसकी सेवा शुश्रूषा करना अपना प्रधान धर्म समझा है । गाय का महत्त्व प्रतिपादन करने वाले कुछ वेद मन्त्र और शास्त्र वचन नीचे उपस्थित करते हैं ।

''देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्यमध्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवां अयक्ष्मा मावस्तेन ईशत माघशँ सो ध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यात् ।।''

(शु०यजु० १/१)

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'हे गौओं ! प्राणियों को तत्तत्कार्यों में प्रवृत्त कराने वाले सवितादेव, आपको हरित शस्य संपन्न विस्तृत क्षेत्र में चरने के लिए ले जायँ । क्योंकि आपके द्वारा श्रेष्ठ कर्मों का अनुष्ठान होता है । हे गौओं ! आप इन्द्र के क्षीर मूलक भाग को बढ़ावें अर्थात् अधिक दूध देने वाली हों । आपकी कोई चोरी न कर सके, व्याघ्रादि हिंस्रक जीव भी आपको न मार सकें, क्योंकि आप तमोगुणी दुष्टों द्वारा मारे जाने योग्य नहीं हो । आप बहुत सन्तान उत्पन्न करने वाली हैं जिनसे संसार का बहुत बड़ा कल्याण होता है । आप जहाँ रहती हैं वहाँ किसी भी प्रकार की व्याधि नहीं आ सकती । यहाँ तक कि यक्ष्मा (तपैदिक) आदि राजरोग भी आपके पास नहीं आ सकते । अतएव आप सर्वदा यजमान के घर में सुख पूर्वक निवास करें ।

अन्धस्थान्धो वो भक्षीय महस्थ महो वो महीयो ।
वो भक्षीय रायस्पोपस्थ राजत्पोथं वो भक्षीय ।।

(शु० यजु० ३/२०)

'हे गौओं ! आप अन्न को देने वाली हैं अतः आपकी कृपा से हम अन्न को प्राप्त करें । आप पूजनीय हैं, आपके सेवन से हममें सात्विक उच्च भाव पैदा होते हैं । आप बल देने वाली हैं हमें भी आप बल दें । आप धन को बढ़ाने वाली हैं अतः हमारे यहाँ भी धन की वृद्धि और शक्ति संचार करो ।

सँहितासि विश्वरूप्यूर्जामाविश गौर पत्येन । उपत्वाग्ने दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमोभरन्त एमसि ।।

(शु० यजु० ३/२२)

हे गौओं ! तुम विश्वरूपवाली दुग्ध-घृत रूप हविदान के निमित्त यज्ञ कर्मों में संगति वाली हो । क्षीरादि रस द्वारा गोस्वामित्व में मुझमें सब प्रकार से प्रवेश करो । अर्थात् हमारा गोस्वामित्व अविचलित रक्खो । रात्रि में भी निरन्तर निवास करने वाले हैं अग्नि देवता ! हम प्रतिदिन श्रद्धा–युक्त बुद्धि से तुमकों नमस्कार करते हुए तुम्हारे प्रति प्राप्त होते हैं ।

हे एशदित एहि काम्या एत ।
मयि वःकामधरणां भूयात् ।। *(शु० यजु० ३/२७)*

'हे पृथ्वीरूप गौ ! इस स्थान पर आओ । घृत द्वारा देवताओं को अदिति के सदृश पालन करने वाली अदिति रूप गौ ! इस स्थान पर आगमन करो । हे गौओं ! तुम सब साधनाओं को देने वाली होने के कारण सब की आदरणीय हो । हे गौओं ! तुम इस स्थान पर आओ तुम्हारा जो अपेक्षित फल धारकत्व है सो मुझ अनुष्ठान करने वाले में तुम्हारी कृपा से हो, तुम्हारे प्रसाद से मैं अभीष्ट फल का धारण करने वाला हूँ ।

अजस्रमिन्दुमहपंभुरण्युमग्निमीडे पूर्वचितिं नमोभिः ।
स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानी गां मा हि सीरदितिं विराजताम् ।।

(शु०यं० १३/४३)

'क्षय रहित ऐश्वर्य से युक्त रोष रहित अथवा आराधना के योग्य पूर्व महर्षियों से चयन के योग्य अन्नों से सबके पोषण करने वाले अग्नि द्वारा स्तुति करता हूँ । वह अग्नि पर्व द्वारा प्रत्येक ऋतु में कर्मों का सम्पादन करता हुआ अखण्डित अदीन दुग्धदानादि से विराजमान दशा ऐश्वर्य होने से गौ विराट है अतएव गौ को मत मारो ।'

गौ में माता ऋषभः पिता मे दिवम् शर्म्म जगती में प्रतिष्ठा ।।

(ऋग्वेद)

'गाय मेरी माता, बैल मेरा पिता, यह दोनों मुझे स्वर्ग और ऐहिक सुख प्रदान करें । गौओं में मेरी प्रतिष्ठा हो ।'

सूर्य गायो मेद कृशं चिदक्षीरं चि कृणुथा सुप्रतीकम् ।
अहं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहदो वय उच्यते सभासु ।।

(अथर्ववेद)

गौओं के दूध से निर्बल मनुष्य बलवान और हृष्ट-पुष्ट होता है तथा फीका और निस्तेज मनुष्य तेजस्वी बनता है । गौओं से घर की शोभा बढ़ती है । गौओं का शब्द बहुत प्यारा लगता है ।'

· शास्त्रों में भी–

गोम्यो यज्ञाः प्रवर्त्तन्ते गोभ्यो देवाः समुत्थिताः ।
गोभ्यो वेदाः समुद्गीर्णाः सषडंगपदक्रमाः ।।

'गौओं के द्वारा यज्ञ चलते है, गौओं से ही देवता हुए हैं । छओं अंगों सहित वेदों की उत्पत्ति गौओं से ही हुई है ।'

शृंगमूलं गवा नित्यं ब्रह्मविष्णु समाश्रितौ ।
शृंगाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"गौओं के सींग के मूल में ब्रह्मा और विष्णु निवास करते हैं, सींग के अग्रभाग में सब तीर्थ और स्थावर संगम रहते हैं ।

शिरोमध्ये महादेवः सर्वभूतमयः स्थितिः ।
गवामर्गेषु निष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।।

'गौओं के सिर के बीच में सारे संसार के साथ शिवजी निवास करते है । गौओं के अंगों में चौदहों भुवन रहते हैं ।

गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः ।
गावः कामदुहो देव्यो नान्यात्किंचात्परं स्मृतम् ।।

'गौएँ स्वर्ग की सीढ़ी है, स्वर्ग में भी गौओं की पूजा होती है । गौएँ अभिलषित फल देने वाली हैं । गौ से बढ़कर उत्तम और कोई वस्तु नहीं है ।

गौ की उत्पत्ति और उसकी महिमा

गौ की अपार महिमा और उसके दैवी गुणों से हिन्दू शास्त्रों के पृष्ठ भरे पड़े हैं । पुराणों में गौ के प्रभाव और उसकी श्रेष्ठता की ऐसी अनगिनती कथाएँ मिलती हैं जिनसे विदित होता है कि हमारे पूर्वज गौ के महान् भक्त थे और उसकी रक्षा करना अपना बहुत बड़ा धर्म समझते थे । गौ-रक्षा में प्राण अर्पण कर देना हिन्दू बड़े पुण्य की बात समझते थे और उसका पालन करना बड़े सौभाग्य की बात मानी जाती थी । गौ का महत्त्व यहाँ तक समझा जाता था कि उसके शरीर में उन ३३ करोड़ देवताओं का निवास बतलाया गया और उसकी उत्पत्ति अमृत, लक्ष्मी आदि चौदह रत्नों के अन्तर्गत मानी गई । यद्यपि ये कथाएँ एक प्रकार की रूपक हैं पर उनके भीतर बड़े-बड़े आध्यात्मिक तथा कल्याणकारी तत्त्व भरे हैं ।

गौ की उत्पत्ति की पुराणों में कई प्रकार की कथायें मिलती हैं । पहली तो यह है कि जब ब्रह्मा एक मुख से अमृत पी रहे थे तो उनके दूसरे मुख से कुछ फेन निकल गया और उसी से आदि—गाय सुरभि की उत्पत्ति हुई । दूसरी कथा में कहा गया है कि दक्ष प्रजापति की साठ लड़कियाँ थीं उन्हीं में से एक सुरभि भी थी । तीसरे स्थान पर यह बतलाया गया है कि सुरभि अर्थात् स्वर्गीय गाय की उत्पत्ति समुद्र मंथन के समय चौदह रत्नों के साथ ही हुई थी । सुरभि से सुनहरे रंग की कपिला गाय उत्पन्न हुई, जिसके दूध से क्षीर सागर बना ।

प्राचीन काल से आर्य-जाति गौ को बहुत अधिक महिमा मानती आई है । ऋग्वेद तथा अन्य वेदों में भी गौ के गुणानुवाद के सैकड़ों मंत्र भरे पड़े हैं । गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने भी कहा है कि गौओं में कामधेनु मैं हूँ ।" गाय के शरीर में सभी देवता निवास करते हैं । शास्त्रों में कहा गया है कि धन की देवी लक्ष्मी जी पहले गाय के रूप में आयी और उन्हीं के गोबर से विल्व वृक्ष की उत्पत्ति हुई ।

कपिल मुनि के शाप से जले हुए अपने साठ हजार पूर्वजों की राख का पता जब राजा रघु नहीं लगा सके तब वे गुरु वशिष्ठ जी के पास आये । गुरुजी ने दया करके उनकी आँखों में नन्दिनी गाय का मूत्र आँज दिया, जिससे रघु को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई और वे पृथ्वी में दबी हुई अपने पुरखों की राख का पता लगाने में समर्थ हो सके ।

गंगाजी को पहले पहल जब संसार (मृत्यु लोक) में आने को कहा तो वे बहुत दुःखी हुई और आनाकानी करने लगीं । उन्होंने कहा कि "पृथ्वी पर पापी लोग मुझ में स्नानादि करके अपवित्र किया करेंगे, इसलिये मैं मृत्युलोक में न जाऊँगी । तब पितामह ब्रह्माजी ने समझाया कि लोग तुमको कितना भी अपवित्र करें किन्तु फिर भी गौ का पैर लगने से तुम पवित्र होती रहोगी ।" इससे भी गौ और गंगा के हिन्दू धर्म से विशेष सम्बन्ध होने पर प्रकाश पड़ता है ।

रामचन्द्र जी पूर्वज महाराज दलीप की गौ—सेवा का उदाहरण बड़ा महत्त्वपूर्ण है । उन्होंने एक दिन मार्ग में जाती हुई नन्दिनी को देखकर प्रणाम नहीं किया इस पर उसके महाराज को पुत्रहीन होने का शाप दे दिया । इससे दुःखी होकर वे गुरु वशिष्ठ के पास गये और शाप से मुक्ति पाने के लिये बड़ी विनय करने लगे । वशिष्ठ जी ने नन्दिनी गाय उनको दे दी और उसका भली प्रकार से पूजन और सेवा करने को कहा । उनके आदेशानुसार राजा और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रानी दोनों मिलकर उसकी सेवा करने लगे । राजा गाय को वन में चराने ले जाते । वे नन्दिनी के चलने पर चलते थे, उसके बैठने पर बैठ जाते थे और सदैव उसकी रक्षा के लिये उद्यत रहते थे । एक दिन राजा का ध्यान जरा देर के लिये वन के दृश्य की तरफ चला गया कि नन्दिनी बड़े जोर से चिल्लाई । राजा ने देखा कि एक सिंह गाय को दबोच कर खाना चाहता है । उन्होंने तुरन्तु अपना धनुष उठा कर तीर चलाना चाहा, पर दैवी मायावश तीर छूट न सका । तब राजा ने विवश होकर नन्दिनी गाय के बदले अपना शरीर सिंह को देने के लिए चुपचाप उसके सामने पड़ गये । पर जब कुछ देर तक पड़े रहने पर भी सिंह ने उनको नहीं खाया तो उन्होंने मस्तक उठाकर देखा । उस समय वह माया रूपी सिंह गायब हो चुका था और केवल नन्दिनी खड़ी प्रसन्न हो रही थी । राजा की इस अनुपम भक्ति से वह संतुष्ट हो गई और उसने राजा को पुत्र होने का वरदान दे दिया ।

प्रसिद्ध देशभक्त महादेव गोविन्द रानाडे के जन्म के सम्बन्ध में भी ऐसी ही बात सुनने में आई हैं । उनके माता-पिता के कोई पुत्र न था और वे वृद्ध हो चले थे । एक दिन कोई संत उनके दरवाजे पर भिक्षार्थ आ गए । दम्पत्ति ने उनकी बड़ी सेवा की । साधु ने उन्हें उदास देख कर कारण पूछा और निस्सन्तान होने की बात सुनकर कहा—तुम एक दूध देने वाली सवत्सा काली गाय रखो । उसको साबित गेहूँ खिलाओ, जो गोबर के साथ निकल आवें । उन्हीं दानों को धोकर, साफ करके आटा तैयार करो । ब्रह्मचर्य पूर्वक रह कर उसी की रोटी खाओ । छः मास तक ऐसा करने से तुम्हारी मनोकमना पूर्ण हो सकेगी । दम्पति ने वैसा ही किया और फलस्वरूप उनको पुत्ररत्न प्राप्त हुआ काली गाय से पुत्र प्राप्त होने की बात भारतवर्ष में सर्वत्र प्रसिद्ध है ।

गणेश जी के जन्म के समय की एक मनोहर कथा इस प्रकार है कि गणेशजी जब उत्पन्न हुये उसी समय महादेवजी ने भूल से उनका मस्तक काट दिया । इससे पार्वती जी बहुत अधिक रोने लगी । गणेशजी को ठीक करने को देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमार बुलाये गये और उनकों मुँह माँगा वरदान देने को कहा गया । इस पर उन्होंने किसी हाथी का मस्तक जोड़ कर गणेशजी को जीवित कर दिया और वरदान में स्वयं महादेवजी को ही माँगा । इस पर बड़ी समस्या उपस्थित हो गई और उसका निपटारा करने को देवताओं की पंचायत की गई उसमें महादेव जी का मूल्य एक गाय रक्खा गया और वही अश्विनी कुमारों को देकर संतुष्ट किया गया ।

भगवान् कृष्ण का गौ-पालन और गौ-भक्ति तो प्रसिद्ध ही है जिससे उनका नाम ही गोपाल पड़ गया । वे स्वयं गायों को चराते थे उनकी सब प्रकार से सेवा सुश्रूषा करते थे, जो गायों को कष्ट पहुँचाता था उसे दण्ड देते थे । गायों की रक्षा को ही उन्होंने गोवर्धन धारण किया और इन्द्र का मान मिटा दिया । भागवत में बतलाया है कि जब गोपियों के साथ रास करते हुये वे अत्यन्त श्रान्त हो गये तो अपने बायें अंग से उन्होंने गौ उत्पन्न की जिससे दूध का एक कुण्ड बन गया और सब किसी ने उसी दूध को पीकर अपनी क्रान्ति दूर की । कृष्णजी के सम्बन्ध में ऐसी कथाएँ भरी पड़ी हैं । यह कहने में कोई अत्युन्ति नहीं कि भगवान कृष्ण को गौ-पालन से ही अपूर्व शक्ति प्राप्त हुई थी जिसके प्रभाव से उन्होंने संसार का उद्धार करने वाली गीता का ज्ञान प्रकट किया ।

च्यवन ऋषि के विषय में भी एक बड़ी रोचक कथा है कि एक बार वे गंगाजी के गर्भ में तपस्या कर रहे थे । वही पर कुछ मछुए मछली मारने आये तो जाल में मछली के बदले मुनिजी ही फँस कर चले आये । मछुए उनको राजा के दरबार में बेचने के लिये ले गये । राजा ने उनके बदले में एक थैली सोने की मोहरें मछुओं को देना चाहा, परन्तु मुनि जी ने कहा कि हमारा मोल इतना कम नहीं हो सकता । राजा ने और भी बहुत सा सोना और अन्त में अपना समस्त राज्य मुनिजी के बदले में देना चाहा पर उन्होंने उसे कम ही बतलाया । तब राजा ने विनय पूर्वक पूछा "महाराज आप ही बतलायें कि आपका मूल्य क्या होगा ? च्यवन ऋषि बोले कि हमारा मूल्य एक गाय है । आप एक गाय दे दीजिये बस यही हमारा वास्तविक मूल्य है ।" इस पर मछुओं को एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गाय दे दी गई । इससे प्रकट होता है कि उस युग में गाय का मूल्य राज्य से भी अधिक समझा जाता था ।

राजस्थान के क्षत्रियों में प्रमुख शीसोदिया वंश के संस्थापक बप्पा रायल बचपन में गायें चराया करते थे । एक दिन की बात है कि एक गाय ने गोड (गौ शाला) में आकर दूध नहीं दिया । मालिक ने यह शंका करके कि बप्पा ने गाय को दुहकर सब दूध पी लिया है, उसे खूब पीटा । निरपराध बप्पा को इससे मर्मान्तक पीड़ा हुई । दूसरे दिन भी वह गाय चराने गया और इस बात की खूब निगरानी रखने लगा कि गाय के दूध को कौन पीता है । संध्या के समय जब गायें घर की ओर चलीं तो उसने देखा कि एक गाय झुण्ड से अलग होकर एक लिंग महादेव पर दूध ढ़ाल रही है । अब तो बप्पा को चोर का पता लगा गया और वह लाठी लेकर महादेव को पीटने लगा । भोले बाबा उसकी सरलता और सच्चाई को देख कर प्रसन्न हुये और उन्होंने बप्पा को वरदान दिया । इससे आगे चलकर वे बड़े प्रतापशाली नरेश बने और उन्होनें महान् शीसोदिया वंश की स्थापना की । इसी वंश में राणा सांगा और महाराणा प्रताप जैसे देशभक्त, उत्पन्न हुये जिनका नाम और यश आज भी लोगों को प्रेरणा दे रहा है ।

इसी प्रकार भारतवर्ष में सदा से बड़े–बड़े व्यक्ति गौ की सेवा में संलग्न रहें है और इसके प्रभाव से उनको यश, मान धन आदि समस्त सांसारिक सफलतायें प्राप्त हुई हैं । वास्तव में गौ भारतवर्ष के सामाजिक और धार्मिक जीवन की एक स्तम्भ वे समान है और उसे सदैव सुदृढ़ बनाये रखना हमारा परम कर्त्तव्य है ।

गौ की उपयोगिता और हमारा कर्त्तव्य

गोभिर्विप्रैश्च वेदश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ।
अलुब्धै र्दान शीलैश्च सप्तभि र्धार्यते मही ।।

पृथ्वी को धारण करने वाले सात तत्त्व इस श्लोक में बताये गये हैं, उनमें गौ का प्रथम स्थान है । गौ का प्रथम स्थान क्यों है ? इस प्रश्न पर हम थोड़ा सा भी विचार करें तो पता चल जायेगा, कि माता-पिता, गुरु इनमें प्रथम स्थान माता का माना जाता है तो "गावो विश्वस्य मातरः" गाय विश्व की माता ही ठहरी, उसे क्यों न प्रथम स्थान प्राप्त हो ? गौ की उपोगिता सर्वत्र आपको दिखलाई देगी, चाहें आप धार्मिक दृष्टि से देखें, चाहे आर्थिक व चाहे स्वास्थ्य की दृष्टि से । गौ संसार का वह अनुपम धन है, जिसकी समता हो ही नहीं सकती । धार्मिक दृष्टि से देखें तो अपना कोई धार्मिक कृत्य ऐसा नहीं जिसमें गौ की आवश्यकता नहीं होती । चाहें वह हमारे षौड्स संस्कार हों चाहे अन्य कोई यज्ञ आयोजन हों । ऐसा प्रतीत होता है जैसे गौ ब्राह्मण एक ही कुल के हों और उनके दो भाग कर दिये गये हैं । आर्थिक दृष्टि से देखें तो ऐसा प्रतीत होगा कि हम गौ के बिना जीवित ही न रह सकेंगे । आज संसार का बहुत बड़ा भू-भाग ऐसा है जहाँ हमारे कृषि यन्त्र बेकार साबित हुये हैं, केवल गौ माता के पुत्र ही हमें रोटी देते हैं । इसके अतिरिक्त अनेकों स्थल ऐसे हें जहाँ रेल, बस आदि नहीं पहुँच पाते वहाँ का जीवन व यातायात का अवलम्ब केवल गौ पुत्र हैं ।

यदि यह भी मान लें कि हम समस्त पृथ्वी पर कलों (यन्त्रों) से कृषि कर लेंगे, तो यह यन्त्र क्या खाद भी दे सकेंगे ? अथवा श्री मैथली शरण जी के शब्दों में–

यदि तुम कहो कि हम कलों से जोत लेवेंगे मही ।
हम पूछते हैं क्या कलें वह दूध भी देंगी सही ।।

दूध भी मिल सकेगा ? यदि नहीं तो आप सोचें कि हमारे खेत कितने समय तक बिना खाद के अन्न दे सकेंगे ? और बिना दूध के कितने समय हमारा स्वास्थ्य देगा ?

इन महापुरुषों से हम और पीछे यदि अपने गौरवपूर्ण इतिहास पर दृष्टि डालें, तो एक दो नहीं, बीसियों गौभक्त आपको मिलेंगे । महर्षि वशिष्ठ का कामधेनु के लिये प्राणों की बाजी लगाना, महर्षि च्यवन का अपने शरीर के बदले नहुष का चक्रवर्ती राज्य ठुकरा कर एक गाय का मूल्य निश्चित करना गौ की कितनी बड़ी महत्ता प्रदर्शित करता है पाठक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचार करें ।

गौ की महत्ता केवल हिन्दू धर्म में ही हो ऐसी बात नहीं है, संसार के सभी धर्मों के जो सत्यान्वेषी पुरुष हैं इस विषय में एक मत हैं । अब पृथक्–पृथक् धर्म के व्यक्तियों की गाय की महत्ता के सम्बन्ध में विचारधारा नीचे दी जाती है ।

इस्लाम धर्म में गाय का स्थान–आज देश में बहुत बड़ी संख्या ऐसे व्यक्तियों की है, जो समझते हैं इस्लाम धर्म में गौवध अनिवार्य है । यदि ऐसा होता तो कई भारत के प्रसिद्ध मुस्लिम सम्राट् कभी इसके विरुद्ध आवाज नहीं उठाते । न मौलाना लोग गौबध के विरुद्ध फतवा ही देते । इस तथ्य की पुष्टि में कुछ उदाहरण दिये जाते हैं–

१–"जब भारत का शासन सूत्र तैमूरवंशी मुगल बादशाहों के हाथ आया, तो उसका प्रथम शासक बाबर हुआ । मरने के समय उसने अपने पुत्र हुमायूँ को एक पत्र लिखा था वह पत्र उसके हस्ताक्षर सहित हूबहू नवाब भूपाल के पुस्तकालय में है । उसका फोटो लेकर छपरे के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता डॉ० सैय्याद महमूद ने 'मार्डन रिब्यू' में एक लेख निकाला था जिसमें गौ हत्या से परहेज रखने की खास हिदायत की गई थी ।" (अखबार तोहफए हिन्द ६ जुलाई १६२३)

२–गरीब मुसलमान के लिये कुर्वानी जरूरी व और नैमित्तिक नहीं हैं ।

(मौलाना हसन निजामी का फतवा)

३–गाय की कुर्वानी जरुरी और नैमित्तिक नहीं है । अगर कोई उसे छोड़ देता है तो धर्म विरुद्ध काम नहीं करता । (लखनऊ के मौलाना हवी का फतवा जिस पर अब्दुल हसन, अब्दुल बहीद, अब्दुल अदबली हाजी, काजी हसन मोहम्मद के दस्तखत हैं)

४–"न तो कुरान न अरब की प्रथा ही गौ की कुर्वानी का समर्थन करती है" । हकीम अजमालखां

५–"हजरत आपशा फरमाती हैं कि गााय का दूध दवा, मक्खन सिफा, और गोश्त सरासरमर्ज है ।

६–"नावब साहब मुर्शिदाबाद, नवाब राधनपुर नवाब मंगरौल, नवाब दरजाना जिला करनाल, नवाब गुड़गांवा, यह सब गौवध के विरोधी हैं ।" (हिन्दुस्तान लखनऊ २ नवम्बर १६२४)

७–"सुन्दर वसुन्धरा भारत में गाय मांगलिक समझी जाती है । उसकी भक्तिभाव से पूजा होती है, और इसी से खेती होती है । इसके द्वारा उत्पन्न अन्न, दूध, मक्खन आदि से यहाँ के अधिकारियों की गुजर होती है । गौ मांस निषिद्ध और उसे छूना पाप समझा जाता है । (आईना ए अकबरी आईना से पृष्ठ ६३)

उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि गौ का कितना महत्त्व मुसलमानों की दृष्टि में है । यदि कुछ व्यक्ति भ्रमवश या रूढ़िवादिता के वशीभूत हो इस स्पष्ट सत्य की उपेक्षा करदें तो बात दूसरी है । जिसने सत्यासत्य के अन्वेषण में आँखें बन्द न करली हों, इस सच्चाई से कौन इनकार कर सकेगा ?

गौ ईसाई धर्मावलम्बियों की दृष्टि में-

१–"गौ हमारे दुग्ध भव की देवी है, वह भूखों को भोजन देती, नंगों को आच्छादन और बीमारों को स्वास्थ्य प्रदान करती है" होडर्स हेरीमैन अमेरिका का प्रसिद्ध पत्रकार ।

२–"मैं इसकी कल्पना कर सकता हूँ कि किसी राष्ट्र के बिना भी गौ हो सकती है, किन्तु मैं स्वप्न में भी यह अनुमान नहीं कर सकता कि कोई राष्ट्र बिना गौ के भी रह सकता है" (सर विलियम वैडरवर्न)

३–"गौ के सौम्य रूप में वास्तव में देवत्व भरा है । उसमें एक महानता और भव्यता है, जो ग्रन्थ देवता के अनुरूप है, उसमें शत प्रतिशत मातृत्व है, और उसका निश्चय मनुष्य जाति से माता का सम्बन्ध है" (श्री वाल्टर ए० डामर अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक)

४–"जिन लोगों ने संसार में कुछ नाम कमाया है, जो अत्यन्त बली और वीर हुये हैं, जिनके समाज में बाल मृत्यु की संख्या बहुत घट गई है, जिन्होंने व्यापार धन्धों पर अधिकार प्राप्त किया है, जो साहित्य और संगीत कला का आदर करते हैं, तथा जो विज्ञान व मानव बुद्धि की प्रत्येक दशा में प्रगतिमान हैं, वे वैसे लोग हैं जिन्होंने गौ के दूध और दूध के बने पदार्थों का स्वच्छंदता से उपयोग किया है" (डॉ. ई०. बी० मैकालम अमेरिका)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

५–"कोई जाति बिना गौ पालन के समृद्धि शाली नहीं हो सकती, गौ सबसे उत्तम भोजन मानव को प्रदान करती है । घास खाकर अमृत का दान करती है । जहाँ गौ की अच्छी सेवा की जाती है वहाँ की भूमि उपजाऊ, सभ्यता उच्च, जाति अधिक स्वस्थ व बलवान होती है । गौ का दूध संसार में अमूल्य पदार्थ है । गोबर व गोमूत्र की खाद भूमि के लिये अक्सीर है।" (फिजिकल कल्चर अमेरिका के सम्पादक)

जिन कतिपय ईसाई विद्धानों की सम्मतियाँ प्रस्तुत की गई हैं वह इतनी स्पष्ट और पक्षपात रहित कही गई हैं, कि उनका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता । उन्होंने जो अपनी सम्मति दी है उस पर स्वयं आचरण भी किया है । हम लोगों ने गौ की प्रशंसा के गीत तो बहुत गाये लेकिन उसके पालन–पोषण और वृद्धि पर बहुत कम ध्यान दिया है । हमारे यहाँ जो गायों का मूल्य और सम्मान था वह हमने भुला दिया । आज यह गौ का पुजारी देश करोड़ों अरबों का शुष्क दुग्ध उन देशों से क्रय करता है, जिन पर गाय के विरोधी होने का आरोप है । यदि हम अपनी पुरातन सभ्यता संस्कृति जैसा मान गौ को अब भी देने लगें, पाश्चात्य देशों से गौ सेवा का सबक लें, कृष्ण की गौ सेवा की पवित्र स्वर लहरी जो गौचारण में आत्म-विभोर हो बजी थी सुन सकें, तो यह अपना देश पुनः उस स्थान पर पहुँच सकता है जहाँ पहले था । यह भारत भूमि शस्य श्यामला बन पुनः सोना उगलने लगेगी । गौ वह अमर धन है जिससे हमें संसार के चारों पदार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है । हम चाहते हैं कि वह दिन शीघ्र आये, जब हम देखें कि गायें हमारे आगे हैं, पीछे हैं । चारों ओर है "गतांमध्येवसाम्यहम्" हम गायों के मध्य में हैं ।

गंगा की गौरव गाथा अकारण नहीं गाई जाती

गंगा भारत भूमि की सर्व प्रधान रक्त धमिनी है । उसके धर्मिक आध्यात्मिक महत्त्व पर कोटि-कोटि धर्म प्रिय भारतीय विश्वास करते हैं । उसके सम्पर्क सान्निध्य में शान्ति प्राप्त करते और प्रेरणा गृहण करते हैं उसकी मान्य पवित्रता को, सद्ज्ञान की गरिमा के साथ जोड़ते हुए तत्त्वदर्शी लोग ज्ञान गंगा की तुलनात्मक चर्चा करते हैं ।

आर्थिक दृष्टि से उसके द्वारा होने वाली सिंचाई, नौका नयन, भूमि को उपजाऊ बनाने जैसे कितने ही महत्त्व हैं । स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार किया जाय तो उसका जब अमृत है और समीपवर्ती क्षेत्रों में जो वातावरण बनता है उसका अपना महत्त्व है । तटवर्ती क्षेत्र में उगे हुए वृक्ष, गुल्म और वनस्पति ने केवल आर्थिक दृष्ट से वरन् स्वास्थ्यकर वायु प्रदान करने की दृष्टि से भी अत्यंत उपयोगी है ।

पदार्थ विज्ञान के बाल्यकाल में वस्तुओं की रासायनिक स्थिति को ही मान्यात दी गई थी यह नहीं स्वीकारा गया था कि–"उनका प्रभाव मनुष्य के मनः स्तर को उठाने गिराने में भी सहायक होता है । उपयोग की दृष्टि से अमुक वस्तु जितनी लाभदायक होती है वह उतनी ही प्रिय लगती है और उसी अनुपात से उसका मूल्य आंका जाता है" पदार्थ किसी की चेतनात्मक उत्कृष्टता–निष्कृष्टता को प्रभावित कर सकते हैं तब ऐसा नहीं माना जाता था । यही कारण है कि मांस और शराब जैसे पदार्थों के शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव को ही सब कुछ माना जाता था और उनका किसी की आन्तरिक भावनात्मक या मानसिक स्थिति पर कोई प्रभाव पड़ेगा, यह नहीं स्वीकारा जाता था, पर अब ऐसी बात नहीं रही । खाद्य पदार्थ मन को भी प्रभावित करते हैं इस आध्यात्मिक मान्यता के निकट ही अब विज्ञान खिंचता चला आ रहा है और फासला बहुत कुछ पट चुका है ।

गौ जैसे पशु वट, पीपल, आंवला जैसे वृक्ष तुलसी जैसे पौधे मनुष्य की चेतना में शान्ति एवं शालीनता की वृद्धि करते हैं, इसका परीक्षण खुली चुनौती की तरह किया जा सकता है । नशे, मसाले मनुष्य को क्रोधित एवं उद्विग्न बनाते हैं । यह तथ्य अब किसी को अस्वीकार्य नहीं, गंगा जैसे जल प्रवाह मे केवल शारीरिक, आर्थिक प्रभाव रखते हैं वरन्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उनकी क्षमता मनुष्य के मानसिक संतुलन को उच्चस्तरीय बनाये रखने में भी योगदान देती है । धार्मिक क्षेत्र की यह मान्यता अब विज्ञान के क्षेत्र में भी उपहासास्पद नहीं है । उसे क्रमशः अधिक तथ्य पूर्ण माना जा रहा है । गंगा स्नान, गंगा तट पर निवास, गंगा जल पान का महात्म अब मात्र श्रद्धा का विषय ही नहीं है उसके पीछे अनेक तथ्य, तर्क और प्रमाण भी जुड़ते जा रहे हैं ।

गंगा के आध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक प्रभावों को मात्र हिन्दू धर्मावलम्बी ही स्वीकार करते हों सो बात नहीं, भूतकाल में उसकी विशेषताओं को अन्य धर्मावलम्बी भी स्वीकार करते रहे हैं । अब उसमें कभी नहीं, वरन् वृद्धि ही हो रही है । गंगा की गरिमा को सार्वभौम और सर्वजनीन स्तर पर मान्यता मिल रही है । आशा की जानी चाहिए कि भविष्य में उसकी बहुमुखी विशेषताओं को और भी अच्छी तरह समझा जायेगा और जन-साधारण द्वारा उसका और भी अधिक लाभ उठाया जायेगा ।

इतिहास के पृष्ठ बताते हैं कि गंगा जल को बिना किसी धार्मिक भेदभाव के किसी तरह उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है ।

इब्नबहूता नामक एक भ्रमणशील लेखक अफ्रीका महाद्वीप, ऐशिया की लम्बी यात्रा करते हुए भारत भी आया था । उसने जो संस्मरण लिखे हैं उनका गिब्स ने अँग्रेजी में अनुवाद किया है । इस पुस्तक में तत्कालीन सुल्तान मुहम्मद तुगलक के शासन का विस्तृत वर्णन है । उसमें यह भी उल्लेख है कि बादशाह गंगा जल पीते थे । उनके लिए दौलताबाद गंगा जल पहुँचाने में ४० दिन लग जाते थे ।

अबुल फजल ने अपने ग्रन्थ "आईने अकबरी" में लिखा है अकबर को गंगा जल से भारी प्रेम था । उन्हें नित्य गंगा जल मिलता रहे । इसके लिए उन्होंने २० व्यक्तियों का दल नियुक्त किया। जब बादशाह आगरा या फतेहपुर सीकरी रहते है तब गंगा जल सोरों से आता है और जब वे पंजाब जाते हैं तब हरिद्वार से ।

फ्रान्सीसी यात्री बर्नियर सन् १४५६ से १४६७ तक आठ वर्ष भारत रहा । उसने शहजादा द्वाराशिकोह की चिकित्सा भी की थी अपने यात्रा विवरण में वे लिखते हैं -- औंरगजेब के भोजन के साथ गंगा जल भी रहता है । बादशाह ही नहीं अन्य दरबारी भी गंगाजल का नियमित प्रयोग करते हैं । यात्रा में भी वे ऊँटों पर लदवा कर गंगा जल अपने साथ ले जाते थे ।

एक--दूसरे फ्रान्सीसी यात्री टैवर्नियर ने लिखा है हिन्दुस्तान के राजे और नवाब समान रूप से गंगा जल का दैनिक उपयोग करते हैं ।

ब्रटिश कप्तान एडवर्ड मूर ने अपने संस्मरणों में लिखा है, शाहनवर के नवाब केवल गंगा जल पीते थे । इसके लिए उन्होंने काफिला तैनात कर रखा था ।

इतिहासकार गुलाम हुसैन ने अपनी पुस्तक 'रियाजु--स--सलातीन' में लिखा, हिन्दुओं की तरह इस देश के अन्य धर्मावलम्बी भी गंगा जल की बड़ी कद्र करते हैं और उसे स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत उपयोगी मानते हैं ।

पेशबाओं के पीने का पानी गंगाजल ही होता था । गढ़ मुक्तेश्वर तथा हरिद्वार से बहँगियों द्वारा उनके लिए गंगा जल पहुँचता था ।

दक्षिण भारत के राजा कृष्णराव को सन् १६२५ में कोई असाध्य रोग हो गया था । उन्होंने सब दवाएँ छोड़कर केवल गंगा जल लेना आरम्भ किया और वे उसी से अच्छे हो गये ।

अँग्रेजी शासन के दिनों वैज्ञानिक हैकिन्स ने गंगा जल की विशेषताओं के सम्बन्ध में प्रचलित किन्वदन्तियों पर शोध कार्य किया था । उन्होंने काशी नगर के गन्दे नालों का जल जाँचा जिसमें हैजे के असंख्य कीटाणु भरे हुए थे । वही नाला जब गंगा में मिला तो उसमें रहने वाले विषाणु तत्काल मर गये । सड़े हुए मुर्दों की लाश से निकलने वाला विष भी गंगा में घुलते ही अपनी हानिकारक प्रकृति खो बैठता है । कुँए में तथा अन्य जलों में हैजा के कीटाणु डाले गये तो वे तेजी से बढ़े किन्तु गंगा जल में मिलते ही स्वयमेव नष्ट हो गये ।

नन्दा देवी, गुरला, मान्धाता, धौलागिर, गोसाई थान, कंचन चंगा, एवरेस्ट जैसे संसार के सबसे ऊँचे गिरि शिखरों का पिघलता हुआ बर्फ हिमालय में इधर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उधर चक्कर काटता हुआ गोमुख पर एकत्रित होकर गंगा जल के रूप में दृष्टिगोचर होता है । इन विशिष्ट भू-क्षेत्रों की धातुएँ तथा रासायनिक वस्तुएँ ऐसी हैं जो गंगाजल को मानवी उपयोग के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बनाती है ।

रसायन विज्ञानी प्रो० एन० एन० गोडवोले ने गंगाजल की विशेषताओं का कारण ढूँढ़ने के लिए लम्बी रासायनिक छान-बीन की । उन्होंने गंगा जल में कुछ ऐसे विशेष प्रोटेक्टिव कालौइड पाये जो उसे सदा पवित्र एवं कीटाणु रहित बनाये रहते हैं । यह तत्व अन्य नदियों में बहुत कम मात्रा में पाया जाता है । गोडवोले ने अपने शोध निष्कर्ष में लिखा है, गंगाजल जीवाणु वृद्धि को रोकता ही नहीं वरन् उनका विनाश भी कर देता है । उनका यह भी कथन है गंगा जल का वास्तविक स्वरूप प्रयाग तक ही पाया गया, बाद में कई बड़ी नदियाँ मिल जाने से उसके वह गुण नहीं रहते जो इससे ऊपर पाये जाते हैं ।

आयुर्वेद शास्त्र में गंगा जल को शारीरिक और मानसिक रोगों का निवारण करने वाला और आरोग्य तथा मनोबल बढ़ाने वाला बताया गया है ।

गंगा वारि सुधा समं बहु गुण पुण्यं सदायुष्करं, सर्व व्याधि विनाशनं बलकरं वर्ण्य पवित्र परम् । हृद्यं दीपन पाचनं सुरुचिरम्मिष्टं सु पथ्यं लघु- स्वान्तध्वान्त निवारि बुद्धि जननं दोष त्रघध्नं वरम् ।

अर्थात् गंगा का जल अमृत के तुल्य बहुगुणयुक्त पवित्र, उत्तम, आयु का बढ़ाने वाला, सर्व रोगनाशक, बलवीर्य, वर्द्धक, परम पवित्र, हृदय को हितकर, दीपन पाचन, रुचिकारक, मीठा उत्तम पथ्य और लघु होता है तथा भीतरी दोषों का नाशक, बुद्धि जनक, तीनों दोषों को नाश करने वाला सब जलों में श्रेष्ठ है ।

गंगा का भौतिक परिचय भी कम महत्त्व का नहीं । वह अनेक नदियों का सहयोग अपने में समन्वित कर सकने में सफल हुई है । एकाकी सत्ता कितनी ही समर्थ क्यों न हो वह नगण्य, दुर्बल और स्वल्प प्रयोजन पूरा कर सकने में ही समर्थ हो सकेगी । बड़े कार्य समन्वय से ही सम्भव होते हैं । गंगा एक पवित्र नदी है । उसका गौरव इस बात में भी है कि उसने अपने में एक बड़ा परिवार घुलाया और आत्म–सात् किया है । यही कारण है कि उसका विस्तार वैभव इतने बड़े क्षेत्र को जल सुविधा देते हुए भी घटा नहीं वरन् बढ़ता ही गया है । बंगाल में पहुँचते-पहुँचते उसकी अनेक धाराएँ हो गई हैं और वे सभी जल राशि से सदा भरी पूरी रहती है ।

समुद्र तल से १३८०० फुट की ऊँचाई पर अवस्थित गंगोत्री निकल कर १५५७ मील की यात्रा करती हुई गंगा अनन्त सागर में विलीन होती है । इन दिनों जहाँ गंगोत्री तीर्थ है वहाँ से १० मील ऊपर गोमुख नामक स्थान से गंगा की धारा निकलती है, पर वह समूचा क्षेत्र गंगोत्री ही कहलाता है ।

गंगा में कितनी ही छोटी बड़ी नदियाँ मिलती है । इनमें से कितनी ही उल्लेखनीय हैं । यथा–नन्द प्रयाग में विष्णु गंगा, स्कंद प्रयाग में पिण्डर, रुद्र प्रयाग में मन्दाकिनी, देव प्रयाग में अलक नन्दा, प्रयाग में यमुना, आगे चलकर गोमती, घाघरा, सोन, गण्डक, कोसी, सरयू, ब्रह्मपुत्र जैसी बड़ी नदियाँ उसी में जा मिलती है । राम गंगा, बागवती, महानंदा आदि अन्य कई नदियाँ भी उसी में जा मिली हैं ।

गंगा तट पर मैदानी इलाके में काशी और प्रयाग तीर्थ प्रसिद्ध हैं । हिमालय क्षेत्र में कई काशी और कई प्रयाग है । जैसे गुप्त काशी–उत्तर काशी । रुद्र प्रया, विष्णु प्रयाग, सोन प्रयाग, देव प्रयाग, कर्ण प्रयाग, नन्द प्रयाग आदि ।

गंगा से कितनी सिंचाई होती है कितने बाँध तालाब भरे जाते है, उससे कितनी उपलब्धियाँ मिलती है । इसका लेखा-जोखा आश्चर्यचकित करता है वह भारत की अर्थ समृद्धि में भी भारी योग दान देती है । अपनी सूक्ष्म दिव्य शक्ति के कारण उसकी विशिष्ठ गौरव गरिमा तो यथा स्थान है ही ।

गंगा का कुल जल ग्रह क्षेत्र ६ लाख ६७ हजार वर्ग किलोमीटर है । गंगा नहरों से इन दिनों ६ लाख ६५ हजार हेक्टर भूमि की सिंचाई होती है । सिंचाई के अतिरिक्त गंगा की प्रवाह शक्ति का उपयोग करके भद्राबाद, मुहम्मद पुर और पथरी पर विशाल काय बिजल घर बने हैं । वर्षा में गंगा का फालतू पानी जो व्यर्थ ही बह कर समुद्र में चला जाता है, उसे दक्षिण की काबेरी नदी में मिलाने की योजना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचाराधीन है । यदि वह नहर सम्भव हो सकी तो वह छः राज्यों को पानी देती हुई दक्षिण भारत की जल व्यवस्था में भी बहुत योगदान देगी ।

धन्य हैं हम भारतवासी जिन्हें गंगा जैसी सर्व गुण सम्पन्न माता के पयपान करने का अवसर मिलता है ।

पुण्यतोया गंगा की पवित्रता नष्ट न होने दें

संसार के किसी भी देश की संस्कृति ने एक सरिता को नदी रूपी जलप्रवाह को अपने मांगलिक कार्यों में इस प्रकार इतनी श्रद्धा और अनुराग के साथ कभी ग्रहण नहीं किया होगा, जितना पुण्य सलिला गंगा को । गौमुख में गंगोत्री ग्लेशियार से निसृतः गंगा की भौगोलिक एवं प्राकृतिक विलक्षणता ने संसार के अनेकानेक मनीषियों, संधानकर्त्ताओं को आकर्षित किया है । किन्तु इन शिखरों के ऊपर से जो हिमानी ग्लेशियर सैकड़ों वर्ग मील में फैला है, उसके जटिलपथ की खोज का कार्य अभी तक किसी के लिए भी सम्भव नहीं हुआ है ।

गंगा एवं हिमालय एक दूसरे से अविछिन्न रूप से जुड़े हैं । देवात्मा हिमालय एवं भागीरथी दोनों का इतिहास जहाँ तक ज्ञात हो पाया है—यही बताता है कि दोनों ने मिलकर सृष्टि के आदि से अब तक वृहत्तर भारत को समृद्ध सम्पन्न बनाने में नहीं, आस्था उन्नयन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है । भारतीय संस्कृति का प्रथम मन्त्र गंगा का मन्त्र है । गंगा के किनारे ही पहला मन्दिर बना था । गंगा के तटवर्ती क्षेत्रों में ही पहला जनपद बसा था ।

बँगला के प्रसिद्ध कवि श्रीयुत द्विजेन्द्रलाल राय ने भारतीय आत्मा की अन्तिम श्रद्धा व्यक्त करते हुए भावपूर्ण शब्दों में लिखा है—

परिहरि भव सुख दुःख जे खत्ने,
माँ ! शापित अन्तिम शपने ।
वरषि श्रवणे तब जल कल-कल,
बरषि सुप्ति मम नयने ।
बरषि शान्तिमम शंकित प्राणे,
बरषि अमृत मम अंगे ।
माँ ! भागीरथि जान्हवि सुरधुनि,
माँ ! कल्लोलिनि गंगे ।

हे कल्लोलिनि गंगे । तुम जन्म-जन्मान्तरों के दुःखों को दूर करने वाली हो । अन्तिम समय मेरे शंकित मन और प्राणों को शान्ति और तृप्ति प्रदान करो । अपने अमृत मय जल की हमारे सम्पूर्ण अंगों में वर्षा करो ।

कवियों और शास्त्रकारों द्वारा अभिसव्यक्त इस श्रद्धा के पीछे कोई निराधार कल्पनाएँ और मात्र भावुकता नहीं रही । किसी भी तत्त्व के प्रति श्रद्धा, उसकी उपयोगिता और वैज्ञानिक गुणों के आधार पर रही है । गंगाजी के जल में ऐसे उपयोगी तत्त्व और रसायन पाये जाते हैं जो मनुष्य की शारीरिक विकृतियों को ही नष्ट करते वरन् विशेष आत्मिक संस्कार जागृत करने में भी वे समर्थ हैं, इसलिए उसके प्रति इतनी श्रद्धा व्यक्त की गई । वैज्ञानिक परीक्षणों से भी यह बातें स्पष्ट होती जा रही है ।

प्राचीनकाल में जब भारतवर्ष का अरब, मिश्र और योरोपीय देशों से व्यापार चलता था तब भी और इस युग में भी सब देशों के नाविक गंगा की गरिमा स्वीकार करते रहे हैं । डॉ० नेल्सन ने लिखा है कि हुगली नदी का जो जल कलकत्ता से जहाजों में ले जाते हैं, वह लन्दन पहुँचने तक खराब नहीं होता, परन्तु टेम्स नदी का जल जो लन्दन से जहाजों में भरा जाता है बम्बई पहुँचने के पहले ही खराब हो जाता है ।

तब जबकि जल को रासायनिक सम्मिश्रणों से शुद्ध रखने की विद्या की जानकारी नहीं हुई थी, तब पीने के पानी की बड़ी दिक्कत होती थी । खारी होने के कारण लोग समुद्र का पानी नहीं पी सकते थे । अपने साथ जो जल लाते थे, वह भी कुछ ही दिन ठहरता था, जबकि समुद्री यात्रा महीनों लम्बी होती है । यह दिक्कत उन्हें आने में ही रहती थी । जाते समय वे लोग (हुगली) गंगाजी का बहुत जल भर ले जाते थे, बहुत दिनों तक रखा रहने पर भी उसमें किसी प्रकार के कीड़े नहीं पड़ते थे । समुद्री जल मे रखे चावल बहुत दिन तक अच्छे नहीं रहते, सड़ने लगते हैं, जबकि गंगाजी के पानी में वह शीघ्र नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सड़ते । यों संसार में और भी अनेक पवित्र नदियाँ हैं, पर गंगाजी के जल में पाई जाने वाली जैसी पवित्रता किसी में भी नहीं है ।

गंगाजल के जो रासायनिक परीक्षण किए गए हैं, उनके निष्कर्षों पर एकाएक वैज्ञानिक भी विश्वास नही करते क्योंकि उसमें कुछ ऐसे तत्त्व पाये जाते हैं, जो संसार की ओर किसी भी नदी के जल मे नहीं पाये जाते, गंगाजल में अत्यधिक शक्तिशाली कीटाणु–निरोधक तत्त्व पाया गया है । उनका नाम कालोइड रखा गया है ।

फ्रान्स के प्रसिद्ध डॉ० डी हेरेल ने जब गंगाजल की इतनी प्रशंसा सुनी तो वे भारत आये और गंगाजल का वैज्ञानिक परीक्षण किया। उन्होंने पाया कि इस जल में संक्रामक रोगों के कीटाणुओं को मारने की जबर्दस्त शक्ति है । आश्चर्यजनक बात तो यह है कि एक गिलास में किसी नदी या कुएँ का पानी लें, जिसमें कोई कीटाणु नाशक तत्त्व न हो उसमें गंगाजल मिला देने पर उसमें कृमिनाशक सामर्थ्य आ जाती है । इससे सिद्ध होता है कि गंगाजी में कोई ऐसा विशेष तत्व है जो किसी भी मिश्रण वाले जल को भी अपने ही समान बना लेता है । यही कारण है १५५७ मील लम्बी गंगाजी में गोमती, घाघरा, यमुना, सोन, गण्ठक और हजारों छोटी-छोटी नदियाँ मिलती चली गई तब भी गंगासागर पर उसकी यह कृमिनाशक क्षमता अक्षुण्ण बनी रही । यह एक प्रकार का चमत्कार ही है ।

डॉ० डी हेरेल ने अपने प्रयोगों से सिद्ध कर दिया कि इस जल में टी० बी०, अतिसार, संग्रहणी, व्रण, हैजा के जीवाणुओं को मारने की शक्ति विद्यमान है । गंगाजी के जल की सहायता से ही उन्होंनें एक औषधि 'बैक्टीरियोफैज'' का निर्माण किया जो ऊपर कहीं गई बीमारियों की लिए काफी लाभप्रद सिद्ध हुई ।

डॉ० केहिमान ने लिखा है–''किसी के शरीर की शक्ति जवाब देने लगे तो उस समय यदि उसे गंगाजल दिया जाय तो आश्चर्यजनक ढंग से जीवनी शक्ति बढ़ती और रोगी को ऐसा लगता है कि उसके भीतर किसी सात्विक आनन्द का स्रोत फूट रहा है ।''

लगता है इस बात का पता भारतीयों को आदिकाल से था तभी प्राचीन काल के अधिकांश वानप्रस्थी और सन्यासी जीवन के अनितम दिनों में हिमालय की ओर चले जाते थे । आज भी गंगाजी के किनारे जितने आश्रम हैं, उतने सब मिलाकर समूचे भारतवर्ष में भी नहीं हैं ।

डॉ० हेनकेन आगरा में गवर्नमेन्ट साइन्स डिपार्टमेन्ट में एक बड़े अफसर थे । प्रयोग के लिए उन्होंने जो जल लिया वह स्नान घाट वाराणसी के उस स्थान का था, जहाँ बनारस की गन्दगी गंगाजी में गिरती है । परीक्षण से पता चला कि उस जल में हैजा के लाखों कीटाणु भरे पड़े है । ६ घण्टे तक जल रखा रहा, उसके बाद दुबारा जाँच की गई तो पाया कि अब उसमें एक भी कीड़ा नहीं है, जल पूर्ण शुद्ध है । हैजे के कीटाणु अपने आप मर चुके हैं ।

यह घटना अमेरिका के प्रसिद्ध साहित्यकार मार्कट्वेन को आगरा प्रवास के समय व्योरेबार बताई गई, जिसका उन्होंने भारत-यात्रा वृत्तान्त में जिक्र किया है । इस प्रयोग का वर्णन प्रयाग विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के अध्यापक पण्डित दयाशंकर दुबे एम० ए०, एल० एल० बी० ने भी अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'श्रीगंगा रहस्य' में किया है ।

बर्लिन के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० जे ओलिवर ने तो भारत की यमुना, नर्मदा, रावी, ब्रह्मपुत्र आदि अनेक नदियों की अलग-अलग जाँच करके उनकी तुलना गंगाजल से की और बताया कि गंगा का जल न केवल इन नदियों की तुलना में श्रेष्ठ है वरन् संसार की किसी भी नदी में इतना शुद्ध कीटाणु नाशक और स्वास्थ्यकर जल नहीं होता ।

डॉ० ओलिवर का इस सम्बन्ध में एक लेख न्यूयार्क से छपने वाले 'इण्टर नेशलन मेडिकल जर्नल' में भी छपा था ।

आरोग्य की दृष्टि से गंगाजल का जो महत्त्व है उससे आधुनिक वैज्ञानिक एवं डॉक्टर आश्चर्य चकित हैं । विश्लेषण करने पर गंगाजल में ताँबा, स्वर्ण, पारद आदि धातुओं एवं अनेक बहुमूल्य क्षरों की ऐसी संतुलित मात्र मिली है, जिसका सेवन एक प्रकार से औषधि का काम करता है । अच्छे स्वास्थ्य को वह और भी अधिक बढ़ाने में सहायक होता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गिरे हुए स्वास्थ्य को गिरने से रोकता है और बीमारियों को निरोग बनाने में बहुमूल्य औषधि का काम करता है । अनेकों रोगी जो वर्षों तक खर्चीला औषधि उपचार करने पर रोग मुक्त न हो सके, केवल मात्र गंगाजल के सेवन से रोग मुक्त होते देखे गये हैं । कोढ़ की एक मात्र चिकित्सा गंगाजल मानी गई है । प्राचीन काल के आयुर्वेद ज्ञाता कोढ़ी लोगों को गंगा किनारे रहने और निरन्तर गंगाजल सेवन करते रहने की सलाह देते थे और उसका परिणाम भी आशाजनक होता था ।

धर्म ही नहीं किन्तु आयुर्वेद की दृष्टि से भी गंगाजल में जो गुण पाए जाते हैं । उन्हें देखकर भी चकित रह जाना पड़ता है । चरक ने जिसका काल आज से दो हजार वर्ष पूर्व है—गंगाजल को पथ्य माना और कहा है "औषधि जादूवी तोय" गंगाजल औषधि है इसकी समता संसार की कोई औषधि नहीं कर सकती । चक्रपाणि दत्त ने १०६० वर्ष पूर्व ही खोज करके बताया था कि गंगाजल स्वास्थ्य वर्धक है । 'भण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट' में एक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ है 'भोजन कुतूहल' उसमें गंगाजल की उपयागिता बताए हुए लिखा है—गंगाजल श्वेत, स्वादु, स्वच्छ, रुचिकर, पथ्य, भोजन पकाने योग्य, पाचक, शक्ति बढ़ाने वाला और बुद्धि को तीव्र करने वाला है ।

गंगाजी से मिलने वाले व्यक्तिगत लाभों की चर्चा की जाये तो उसका एक स्वतन्त्र गंगा—पुराण ही बन सकता है । विश्रामधाम कार्यालय बम्बई के श्री एन० आर० निगुडकर एक बार हिमालय यात्रा पर गये । एक दिन वे चलते समय फिसलकर गिर पड़े । सिर में गहरी चोट आई, घाव हो गया। उन्होंने लिखा है कि मैं प्रतिदिन गंगा-जल से घाव धो लिया करता था, उतने से ही वह गहरा घाव अच्छा हो गया ।

गंगा स्नान महिमा के लेखक ललनप्रसाद पांडेय ने गंगा जल की औषधोपम उपयोगिता का वर्णन करते हुऐ १६ वें पृष्ठ पर लिखा है कि मैं स्वयं पेट का रोगी था, गंगा जल के नियमित सेवन से मेरे पेट की कमजोरी जाती रही ।

बौद्ध लोग भी गंगा का अत्यंत आदर करते थे । जब भूटान का युद्ध समाप्त हो गया तो तिब्बत के तूशीलामा ने एक दूत भेजकर वारेन होस्टिंग्स से गंगा किनारे कुछ जमीन माँग ली और वहाँ पर एक मन्दिर तथा मठ बनवाया । लामा का कहना था हिन्दुओं की ही तरह बौद्ध भी गंगाजी को परम पुनीत मानते हैं ।

भावनाशील श्रद्धासिक्त कविहृदय भगवती गंगा को मूर्तिमान देव-सत्ता के रूप में अनुभव करता है और उसके सान्निध्य की पुलकन को अपनी अभिव्यंजना में इस प्रकार व्यक्त करता है :—

विधिविष्णुः शम्भुस्त्वर्मास पुरुषत्वेन सकला,
रमोमागीर्मुख्यात्वमसिललनाजन्हुतनये ।
निराकारागाधा भगवति सदात्वं विहरसि,
क्षितौ नीराकाराहरसि जनतापान्स्वकृपया ।।

हे जाह्वी ! पुरुष रूप में तुम ब्रह्म, विष्णु तथा महेश हो और स्त्री होकर तुम रमा, उमा तथा सरस्वती हो । हे भगवति ! तुम निराकार तथा अत्यन्त गम्भीर हो, किन्तु इस पृथ्वी तल पर जल स्वरूप धारणकर विहार करती हो और अपनी कृपा से लोगों के पाप तापों को दूर करती हो ।

प्रसिद्धाते कीर्तिभवजलधिपारं गमयति स्मृतौ।,
वेदे लोके व्रजनहरिणी शान्ति सरणिः ।
अतोह्वं यामित्वां शरणम भये मोक्षजनान
र्भवत्या पाल्योऽस्मि प्रभवसि समुद्धारयशसा ।।

तुम्हारी यह कीर्ति प्रसिद्ध है कि तुम संसार सागर से पार करा देती हो । लोक, वेद तथा स्मृति में तुम्हारी प्रशंसा अत्यन्त प्रशस्त है । हे अभय तथा मोक्ष देने वाली मैं तुम्हारी शरण आया हूँ । मेरा उद्धार करो । वृहन्नारदीय पुराण के अध्याय ६ में गंगा और गायत्री को लोक-परलोक के लिये परम कल्याणकारक बताया गया है देखिए—

गायत्री जान्हवी चो भे सर्वपाप हरेस्मृते ।
दतयोर्यक्ति दीनोय स्तं विद्यात्पतितं द्विजाः ।।६०।।

हे द्विजो ! गायत्री और गंगाजी ये दोनों सब पाप हरने वाली है । इनकी भक्ति से जो हीन है । उसको पतित जानो ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गायत्री छन्दसां माता माता लोकस्य जान्हवी ।
उभेते सर्वपापाना नाशकारणतां गते ।। ६१।।

गायत्री वेदों की माता और लोक माता गंगाजी हैं ये दोनों सब पापों के नाश करने वाली है ।

यस्य प्रसन्ना गायत्री तस्य गंगा प्रसीदति ।
विष्णु शक्ति युतेतेच सर्व कामार्थ सिद्धदे ।।६२।।

जिस पर गायत्री प्रसन्न हैं, जिस पर गंगाजी प्रसन्न हैं । ये दोनों विष्णु शक्ति सहित सब काम अर्थ देने वाली हैं ।

धर्मार्थ काम मोक्षाणां फलरूपे निरंजने ।
सर्व लोकानुग्रहार्थ प्रवर्तते महोत्तमे ।।६३।।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनके फलरूप हुईं । ये दोनों (गंगा–गायत्री) सब लोक के अनुग्रह (कृपा) के अर्थ वर्तमान हैं ।

इन पौराणिक मान्यताओं की पुष्टि संत–साधकों द्वारा होती रही है । एक बार रामकृष्ण परमहंस के मन में इन शास्त्र वचनों के प्रतिशंका पैदा हुई । गंगा तट पर खड़े हुए वे सोचने लगे कि भगवती जाहन्वी को महिमा मंडित बनाने वाली यह सब कवियों की कल्पना मात्र है या इसके पीछे सत्य का कुछ अंश भी है वे अभी इसी असमंजस में डुबे हुए थे कि गंगा की विशाल जलराशि के मध्य दो हाथ ऊपर उठते दिखाई पड़े । कुछ समझ पाते इससे पूर्व एक दिव्य नारी मूर्ति प्रकट हुई और उनकी ओर आने लगी । पीछे–पीछे एक सुन्दर बालक शंखध्वनि करता चला रहा था । थोड़ी देर बाद दृश्य गायब हो गया । रामकृष्ण देव समझ गये कि यह सब उनकी शंक के निवारणार्थ ही था । स्वयं तरण तारिणी गंगा को इसके लिए प्रकट होना पड़ा वह निश्चय ही कलिमल हरणी है ।

गंगा माता की गोद में अमृतोपम पय पान

पौराणिक मान्यता के अनुसार भागीरथ ने प्रचण्ड तप करके गंगा को स्वर्ग से उतरकर धरती पर प्रवाहित होने का अनुग्रह करने के लिए सहमत किया था । इससे पूर्व उनका लाभ देव लोक के निवासी ही उठाते थे । गंगावरण में भगवान शिव का महान योगदान रहा । स्वर्ग से धरती पर उतरते समय उनका प्रचण्ड वेग धारण करने का प्रश्न बड़ा विकट था उसका समाधान भगवान शिव ने अपनी जटाओं पर उतरने का अवसर देकर सम्भव किया । भागीरथ तो तप करके वरदान पाकर ही निवृत्त हो गये । धार्मिक मान्यता के अनुसार शिवजी तो अभी भी उन्हें अपनी जटाओं में धारण किये हुए हैं । वे कहाँ से निकली ? पौराणिक उत्तर है–विष्णु भगवान के चरणों से । इस प्रकार गंगाजल, विष्णु का चरणामृत ही होता है।

दूसरी दृष्टि से गंगा को हिमालय का अमृत रस कह सकते हैं । उस क्षेत्र की रासायनिक विशेषताएँ प्रख्यात हैं । उनका सार तत्व निचुड़ता और गंगा के जल में सम्मिश्रित होकर प्रवाहित होता है दिव्य जड़ी बूढियाँ इस क्षेत्र में अभी भी पाई जाती हैं । अन्य क्षेत्र में उगने पर उनकी वे विशेषताएँ नहीं रहती जो हिमालय क्षेत्र में उगने पर रहती हैं । ब्राह्मी, अष्ट वर्ग, रत्न ज्योति जैसी बूटियाँ शिलाजीत जैसे खनिज होते तो अन्यत्र भी हैं, पर भूमि की विशेषता के कारण उनके गुण इस क्षेत्र के उत्पादन में रहते हैं । वे दूसरी जगह नहीं रहते । यह विशेषताएँ जल स्रातों के साथ घुलकर गंगा में जा पहुँचती हैं । गंगा लगभग ५०० मील हिमालय क्षेत्र में परिभ्रमण करने के उपरान्त मैदानी भूमि में आती है । इस बीच प्रायः तीस नदियाँ दूर–दूर से बहकर आती और गंगा में विसर्जित होती चलती है । इस प्रकार हिमालय के अति महत्त्वपूर्ण क्षेत्र का रासायनिक निचोड़ उसकी जलधारा में सम्मिलित होता रहता है । इस प्रकार आरोग्य शास्त्र की दृष्टि से गंगाजल की उपयोगिता किसी बहुमूल्य औषधि द्रव से कम नहीं रहती ।

आध्यात्मिक स्वास्थ्य सम्बर्धन गंगा की सर्वोपरि विशेषता है । मानवी सत्ता की तरह पदार्थ सत्ता के भी (१) स्थूल (२) सूक्ष्म (३) कारण तीन स्तर हैं ।

बाह्य दृष्टि से जो गुण या लाभ दिखाई पड़ते हैं वे स्थूल हैं । जो वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा गम्भीर अनुसंधान द्वारा प्रमाणित होते हैं वे सूक्ष्म हैं और जो तत्त्वदर्शी आत्म विज्ञानवेत्ता सूक्ष्म दृष्टी योगियों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्वारा योग दृष्टि से देखे और समझे जाते हैं । वे कारण गुण कहलाते हैं । तुलसी यों स्थूल दृष्टि से एक हरा-भरा पौधा मात्र है । सूक्ष्म दृष्टि से ज्वर नाशक एवं अन्य कई रोगों का शमन के गुण उसमें हैं । कारण शोध पर पता चलता है कि उसमें सतोगुणी आध्यात्मिक तत्त्व इतनी अधिक मात्र में है कि उसे घर में लगाने से और सेवन करने से शरीर में सतोगुणी प्रवृत्तियों अनायास ही बढ़ने लगती है । इसीलिये इसका धार्मिक कार्यों में उत्साहपूर्वक प्रयोग किया जाता है । गाय के सम्बन्ध में भी यही बात है । स्थूल दृष्टि से वह एक सीधा-सादा उपयोग पशु मात्र है । सूक्ष्म दृष्टि से गौ दुग्ध में प्राण तत्त्व एवं जीवनी शक्ति की अधिकता होती है । कारण दृष्टि से उसके कणों में देवत्व के परमाणु व्याप्त हैं । जिसके सान्निध्य से मनुष्य में दिव्य गुण, धर्म, स्वभावों, की आचार एवं विचारों में अभिवृद्धि होती है । तुलसी और गाय की तरह प्रत्येक पदार्थ में अपने-अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण स्तर होते हैं । उन्हीं के अनुसार उनके गुणों का निरूपण किया जाता है ।

गंगा जल की विशेषता में ऐसे ही दिव्य कारणों का समावेश होने से उसे देव संज्ञा दी गई है ।

स्थूल दृष्टि से यह एक आर्थिक लाभ वाली उपयोगी नदी मात्र है । सूक्ष्म दृष्टि से उसमें आरोग्य वृद्धि का विशेष गुण है । किन्तु कारण-दृष्टि से उसकी महिमा एवं महत्ता अपार है । उसमें स्नान से शरीर की गर्मी एवं मलीनता हटती ही नहीं अन्तःकरण में पवित्रता का संचार होना ही प्रधान हेतु हैं । इसी उद्देश्य से असंख्य भावनाशील नर-नारी उसमें स्नान करने के लिए दौड़े आते हैं और अपनी धर्म-भावना तृप्त करते हैं । यह अन्धविश्वास भर नही है, इसके पीछे तथ्य है । जहाँ गंगा की पवित्रता अभी भी अक्षुण्ण है वहाँ उसके तट पर कुछ समय निवास करके यह प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है कि उससे आन्तरिक शान्ति का कितना लाभ मिलता है । उसकी कल–कल ध्वनि कानों को पवित्र करती है, उसके दर्शन से नेत्रों की कुवासनाएँ शान्त होती हैं । उसकी समीपता से मन के कुविचारों पर अंकुश लगता है । उसके स्नान और पान से अन्तःकरण की भावनाएँ सात्विक बनती है । मनुष्य के रोम-रोम में जन्म-जन्मान्तरों से संचित दुष्प्रवृत्तियाँ रमी होती है, इन्हीं के उभार से मनुष्य दुष्कर्म करने का थोड़ा-सा भी अवसर मिलने पर फिसल पड़ता है और न चाहते हुए भी बरवस दुष्कर्म कर बैठता है । यदि इन संस्कारजन्य प्रवृत्तियों पर अंकुश लगा सके तो मनुष्य बहुत से पापों से बच सकता है ।

गंगा के महात्म्य में जगह-जगह उसके पाप नाशक गुण का वर्णन किया गया है । उसका तात्पर्य इन्हीं मानसिक दुष्प्रवृत्तियों से है जो अवसर आने पर प्रलोभन उत्पन्न होने पर कुमार्ग की ओर, कुकर्म की ओर धकेल देती है । गंगा का सान्निध्य, इनके ऊपर एक शक्तिशाली अंकुश के समान है । गंगा महात्म्य में पापनाश का मूल तत्त्व यही अंकुश है ।

कई लोग सोचते हैं कि किये हुए दुष्कर्मों का फल हमें गंगा स्नान करने के बाद न भोगना पड़ेगा, यह सोचना गलत है । किये हुए शुभ अशुभ कर्मों का प्रतिफल तो भोगना ही पड़ता है वह स्नान आदि साधारण उपायों से छूट नहीं सकता । किये जा चुके पापों की निवृत्ति का तो प्रायश्चित्य ही एक मात्र उपाय है जो गंगा तट पर और भी सुगमता से हो सकता है । पर गंगा महात्म्य का वर्णन करते हुए शास्त्रकारों ने जिन पापों के नाश का उल्लेख किया है वे मनोगत कुसंस्कार ही हैं । इनकी गणना भी मानसिक पापों में ही है, उनका उफान रुक जाना भी एक प्रकार से भावी पाप नष्ट हो जाते हैं पिछले और उनेक जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं । इसका तात्पर्य यही है कि पिछले अनेक जन्मों के संचित उन कुसंस्कारों का शमन होता है जो पाप कर्मों के वास्तविक उत्पादक हैं ।

गंगा के सान्निध्य से इन पाप वृत्तियों के नष्ट होने के अनेकों शास्त्र प्रमाण मिलते हैं । पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड, अध्याय ६०, ३६ और ४३ में इस प्रकार के कतिपय श्लोक हैं, उनमें से कुछ नीचे देखियेः–

गंगोति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम् ।
कीर्त्तनादतिपापानि दर्शनाद्गुरुकल्मषम् ।।

गंगाजी के नाम के स्मरण–मात्र से पातक, कीर्तन से अतिपातक और दर्शन से भारी-भारी पाप (महापातक) भी नष्ट हो जाते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्नानात् पानाच्च जाह्नांव्यां पितृणां तर्पणात्तथा ।
महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने-दिने ।।

गंगाजी में स्नान, जलपान और पितरों का तर्पण करने से महापातकों की राशि का प्रतिदिन क्षय होता रहता है ।

अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद् यथा ।
तथा गंगाजलस्पर्शात् पुंसा पापं दहेत क्षणात् ।।

जैसे अग्नि का संसर्ग होने से रुई और सूखे तिनके क्षणभर में भस्म हो जाते हैं, व उसी प्रकार गंगाजी अपने जल का स्पर्श होने पर मनुष्यों के सारे पाप एक ही क्षण में दुग्ध कर देती हैं ।

त्यजन्ति पितरं पुत्राः प्रियं पत्न्यः सुहृद्गणः ।
अन्ये च बान्धवाः सर्वे गंगा तान्न परित्यजेत् ।।

पुत्र पिता को, पत्नी प्रियतम को, सम्बन्धी अपने सम्बन्धी को तथा अन्य सब भाई–बन्धु भी प्रिय बन्धु को छोड़ देते हैं, किन्तु गंगाजी अपने जनों का परित्याग नहीं करती ।

विष्णुपादार्घसम्भूते गंगे त्रिपथगामिनि ।
धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि ।।

गंगे ! तुम विष्णु का चरणोदक होने के कारण परम पवित्र हो तभी तीनों लोकों में गमन करने से त्रिपथ गामिनी कहलाती हो । तुम्हारा जल धर्ममय है, इसलिये तुम धर्मद्रवी के नाम से विख्यात हो । जाह्नवी ! मेरे पाप हर लो ।

विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता ।
त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ।।

भगवान् विष्णु के चरणों से तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है । तुम श्री विष्णु द्वारा सम्मानित वैष्णवी हो । मुझे जन्म से लेकर मृत्यु तक के पापों से बचाओं

श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमता रजसा च ते ।
अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम् ।।

धर्म से परिपूर्ण महादेवी भागीरथी ! तुम अपने शोभायमान रजःकणों से और अमृतमय जल से मुझे श्रृद्धा–सम्पन्न बनाती हुई पवित्रं करो ।

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।।

जो सैकड़ों योजना दूर से भी गंगा, गंगा ऐसे कहता है वह सब पापों से मुक्त हो विष्णुलोक को प्राप्त होता है ।

पाठयज्ञपरैः सवैर्मन्त्रहोमसुरार्चनैः ।
सा गतिर्न भवेअन्तोर्गगंसंवेवया च या ।।

पाठ, यज्ञ, मन्त्र, होम और देवार्चन आदि समस्त शुभ कार्मों से भी जीव को वह गति नहीं मिलती, जो गंगा जी के सेवन से प्राप्त होती है ।

विशेषात्कलिकाले च गंगा मोक्षप्रदा नृणाम ।
कृच्छ्राच्च क्षीणसत्त्वानामनन्तः पुण्यसम्भवः ।।

विशेषतः इस कलिकाल में सत्त्वगुण से रहित मनुष्यों को कष्ट से छुड़ाने–मोक्ष प्रदान करने वाली गंगाजी ही है । गंगाजी के सेवन से अनन्त पुण्य का उदय होता है ।

पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति ।
अवगाढ़ा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम् ।।

गंगाजी नाम लेने मात्र से पापों को धो देती हैं, दर्शन करने पर सप्त पीढ़ियों तक को पवित्र कर देती हैं ।

न गंगासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः ।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः ।।

ब्रह्मा जी का कथन है कि गंगा के समान तीर्थ, श्रीविष्णु से बढ़ कर देवता तथा ब्राह्मणों से बढ़कर कोई पूज्य नहीं है ।

तीर्थानां तु परं तीर्थं नदीनामुत्तमा नदी ।
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि ।।

गंगा तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ, नदियों में उत्तम नदी तथा सम्पूर्ण महापातकियों को भी मोक्ष देने वाली है ।

सर्वेषां चैव भूतानां पापोपहतचेतसाम् ।
गतिरन्यत्र मर्त्यानां नास्ति गंगासमा गतिः ।।

जिनका चित्त पाप से दूषित है, ऐसे समस्त प्राणियों और मनुष्यों की गंगा के सिवा अन्यत्र गति नहीं है ।

पवित्राणां पवित्रं या मंगलानां च मगंलम् ।
महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वापापहरा शुभा ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

भगवान् शंकर मस्तक से होकर निकली हुई गंगा सब पापों को हरने वाली और शुभकारिणी हैं । वे पवित्र करने वाली और मगंलमय पदार्थों के लिये भी मंगलकारिणी है ।

कहा भी गया है–"औषधि जाह्नवी तोयं वेद्यौ नारायणः हरिः।" अर्थात् आध्यात्मिक रोगों की दवा गंगाजल है और उन रोगों के रोगियों के चिकित्सक नारायण हरि परमात्मा हैं । उन्हीं की कृपा से आन्तरिक पाप–दोषों का समाधान होता है । पाप वृत्तियाँ एक प्रकार की आध्यात्मिक बीमारियाँ ही हैं इनका उपचार सांसारिक उपायों से नहीं वरन् गंगा तट पर निवास करते हुए नारायण हरि की परब्रह्म परमात्मा की उपासना करने में ही है ।

सप्त ऋषियों ने अपनी तपस्थली हिमालय की छाया और गंगा की गोद में इसीलिए बनाई थी । भगवान राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अयोध्या की सुविधाओं को छोड़कर गंगा तट की दिव्य विशेषताओं को ध्यान मे रखते हुए ही इस क्षेत्र में तप करने के लिए आ गये थे । तपस्वियों की परम्परा हिमालय क्षेत्र में पहुँचने और गंगा तट पर निवास करने की रही है । यह सब अकारण ही नहीं होता रहा है । तत्तवदर्शी अध्यात्म विज्ञानियों ने शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अनुकूलताओं, उपलब्धियों को ध्यान में रखते हुए ही इस प्रकार का चयन किया था । गंगा यों एक नदी भर है, पर सूक्ष्म दृष्टि से उसे प्रवाहमान देव–सत्ता ही कहा जा सकता है। उसके स्नान, दर्शन, जलपान आदि से सहजही पवित्रता का संचार होता है। माता की गोदी में रहने के समान ही उसके सान्निध्य का भाव भरा आनन्द अभी भी भावनाशील लोग सहज ही उपलब्ध करते हैं ।

हमारे ब्रह्मवचर्स की स्थापना के पीछे गंगा माता की यही गौरव गरिमा का आधारभूत तथ्य सन्निहित है । गायत्री का यों भी गंगा से युग्म है । उस पर सप्तसरोवर का यह स्थल उस पवित्रता की ओर भी असंख्य गुना बढ़ा देता है, जिससे अन्य स्थानों की अपेक्षा यहाँ की गई साधनाओं का महत्त्व अधिक है । यहाँ आकर कोई भी साधक अपनी उस जिज्ञासा को तृप्त कर सकती है ।

भगवती गंगा का दिव्य प्रवाह

मोटी दृष्टि से हर नदी एक जलधारा मात्र है । पर सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उनके साथ जुड़े हुए गुणों का प्रभाव और परिचय प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। हिमालयों एक पहाड़ मात्र है पर दिव्य दर्शियों ने उसमें आध्यात्मिक दिव्यता का प्रकाश देखा है और उसके सम्पर्क में आकर आशातीत लाभ भी उठाया है । मेरी दृष्टि में हिमालय भी पत्थर, नदी, नाले, बरफ, वृक्ष, वनस्पति, पशु-पक्षियों का स्थल मात्र है पर उसकी आध्यात्मिक गरिमा इतनी असाधारण है कि उस क्षेत्र के सम्पर्क में आकर न जाने किस-किस ने क्या-क्या पाया ।

देखने में सभी नदियाँ लगभग एक सी लगती है । जल की मात्रा एवं उपयोगिता की दृष्टि से उन्हें न्यूनाधिक महत्त्व भी मिलता है पर आध्यात्मिक विशेषता उनमें से हर किसी में नहीं । भगवती गंगा भी यों एक नदी ही है और उसमें भी अन्यों जैसा ही जल बहता है । पर उसके अन्तराल में दिव्य प्रवाह का जो अजस्र श्रोत जुड़ा हुआ है उसके कारण उसमें प्रत्यक्ष देवत्त्व आ गया है । इस प्रभाव को कोई भी भावनाशील व्यक्ति अनुभव कर सकता है ।

गंगा के दर्शन, आचमन, पान मात्र से पवित्रता का संचार होता है । गंगा जल को वर्षों तक रखे रहने पर भी उसका न सड़ना उसमें स्वास्थ्य वर्धक तत्त्वों का बाहुल्य रहना जैसी भौतिक विशेषताऐं तो अति सामान्य है । मूल लाभ है उसके साथ जुड़ा हुआ दिव्य प्रभाव । कुछ प्रदेश जलवायु की दृष्टि से बड़े उपयोगी माने जाते हैं और लोग वहाँ आरोग्य लाभ करने की दृष्टि से जाते रहते हैं । गंगा तट आत्मिक आरोग्य लाभ करने की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण हैं । वहाँ जितनी शान्ति मिलती है एकाग्रता एवं स्थिरता रहती है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मशान्ति एवं तप साधना की सफलता के लिए गंगा तट का निवास-गंगाजल पान, गंगास्नान अमोघ आधार है, जिनके लिए जितने समय तक इस प्रकार का लाभ उठा सकना सम्भव हो उन्हें उसके लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

गंगा का आध्यात्मिक महत्त्व शास्त्रों में इस प्रकार बताया गया–

यत्र गंगा महाभागा स देशस्तत्तपोवनम् ।
सिद्धक्षेत्रन्तु तज्जेयं गंगातीरं समश्रितम् ।।

(कूर्मपुराण ४७)

जहाँ पर यह महाभागा गंगा है वह देश उसका तपोवन होता है । उसको सिद्ध क्षेत्र जानना चाहिए ।

स्नातानां तत्र पयसि गंगे ये नियतात्मनाम् ।
तुष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ।।२०।।

(पद्म पुराण)

गंगा के जल में स्नान किये हुए नियत आत्मा वाले पुरुषों को जो तुष्टि होती है वह तो बसन्त ऋतुओं से भी नहीं होती है ।।२०।।

भुक्तिमुक्तिप्रदा गंगा सुखमोक्षाग्रतः स्थिता ।
अनेकजन्मसंघातपापं पुसांविनश्यति ।।२८।।

(पद्म पुराण)

मनुष्यों के समक्ष मुक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाली सुख से ही मोक्ष कारिणी गंगा स्थित है। इस महा महिमामयी गंगा के प्रभाव से मनुष्यों के अनेक जन्मों के पापों का संघात नष्ट हो जाता है ।।२८।।

सम्प्राप्नोत्यक्षयं स्वर्गं गंगास्नानेन केशवम् ।
यशो राज्यं लभेत्पुण्यं स्वर्गमन्ते परां गतिम् ।।५ ।।

(पद्म पुराण)

गंगा के जल में स्नान करने की बहुत बड़ी महिमा है । इसके करने से कभी नाश को न प्राप्त होने वाला स्वर्गलोक का निवास मिल जाता है भगवान् श्री केश्वल के चरणों की प्राप्ति होती है संसार में उत्तम यश प्राप्त होता है । राज्य का लाभ होता है और महान् पुण्य मिलता है तथा अन्त समय में स्वर्गलोक और परा गति होती है ।।५।।

मनुयः सिद्धगन्धर्वा ये चान्ये सुरसत्तमाः ।
गंगातीरे तपस्तप्त्वा स्वर्गलोकेऽच्युताभवन् ।।११।।
पारिजातसमाः पुष्पवृक्षाः कल्पदुमोपमाः ।
गंगातीरे तपस्तप्त्वा तत्रैश्वर्य लभन्ति हि ।।१२।।
तपोभिर्बहुभिर्यज्ञर्वतैर्नानाविधैस्तथा ।
पुरुदानैर्गतिर्या च गंगा संसेवतां च सा ।।१३।।

मुनिगण–सिद्ध लोग–गन्धर्व वृन्द और जो अन्य देवों में परम श्रेष्ठ हैं वे गंगा के तट पर तपस्या करके स्वर्ग लोक में स्थायी रूप से निवास प्राप्त कर अच्युत होते हुए ही वहाँ रहते हैं ।।११।। गंगा के तट पर तपश्चर्या करके वहाँ पर परम ऐश्वर्य का लाभ कलया करते हैं क्योंकि वहाँ पर जो पुष्पों वाले वृक्ष हैं वे पारिजात (देवतरु) के समान है और समस्त मनोकामना पूर्ण कर देने वाले कल्प वृक्षों के तुल्य होते हैं । ।।१२।। बहुत प्रकार के तपों से यज्ञ और नाना प्रकार के व्रतों से तथा अधिक दानों से जो मनुष्य को गति प्राप्त होती है वही गति भागीरथी गंगा के जल में स्नानादि से प्राप्त होती है, अतः इस गंगा का भली-भाँति सेवन करना चाहिए ।।१३।।

नास्ति विष्णुसमं ध्येयं तपो नानशनात्परम् ।
नास्त्यारोग्यसमं धन्यं नास्ति गंगासमा सरित् ।

(अग्नि पुराण)

भगवान के समान कोई आश्रय नहीं । उपवास के समान तप नहीं । आरोग्य के समान सुख नहीं और गंगा के समान कोई जल तीर्थ नहीं है ।

येषां मध्ये याति गंगा ते देशाः पावना वराः ।
गतिगंगा तु भूतानां गतिमन्वेषतां सदा ।
गंगा तारयते चाभौ वंशौ नित्यं हि सेविता ।।
गंगातीर्थसमुद्भूतमृद्धारी सोऽधहाच्छडर्कवत्।
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्था गंगेतिकीर्तनांत्
पुनाति पुण्यपुरुषाञ्छततशोऽथ सहस्रशः ।।

(अग्नि पुराण (गंगा))

जिन क्षेत्रों में होकर गंगा जाती है वे पवित्र है । गंगा सद् गति देने वाली है । जो उसका नित्य सेवन करते हैं, वे अपने वंश सहित तर जाते हैं ।

गंगा तट की मिट्टी धारण करना । गंगा दर्शन गंगा स्नान, गंगा जल पान गंगा नाम का जप करने से असंख्य मनुष्य पवित्र और पुण्यवान् हुए हैं ।

प्रधानांशस्वरूपा सा गंगा भुवनपावनौ ।
विष्णुविग्रहसंभूता दवरूपा सनातनी ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पापिपापेध्यदाहाय ज्वलदग्नि स्वरूपिणी ।
सुखस्पर्शा स्नानपानैर्निर्वाणपददायिनी ।।
गोलोकस्थानप्रस्थानमुखासोपान रूपिणी ।

(देवी भगवत)

विष्णु भगवान के चरणों से उत्पन्न हुई परम पावनी गंगा तुम्हारा ही द्रव स्वरूप है । वह गंगा पापियों के पाप नाश करने में अग्नि ज्वाला के समान तथा निर्वाण पद देने में समर्थ वह तुम्हारे ही कारण है ।

गंगायांच मृतो मत्युःस्वर्ग मोक्षचविन्दति ।
या गतियोंगयुक्तस्य सत्वस्थस्यमनीषिणः ।।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान्गगायां तु शरीरिणः ।
चान्द्रायणसहस्राणि यश्चरेत्कायशोधनम् ।।
पानम् कुर्याद्यथेच्छ च गंगाम्भःस विशिष्यते ।

(पद्म पुराण)

गंगा के समीप में मृत्यु को प्राप्त होने वाला मनुष्य स्वर्ग का निवास और मोक्ष दोनों का लाभ प्राप्त किया करता है । जो गति योगाभ्यास में निरन्तर निरत एक योगी पुरुष की होती है और सत्य में संस्थित एक महा मनीषी पुरुष की गति हुआ करती है वही गति उस पुरुष की भी होती है जो गंगा के तट पर अपने प्राणों का त्याग किया करता है । एक सहस्त्र चान्द्रायण महावृत करके जो काया की शुद्धि की जाती है उसमें भी अधिक यथेच्छ रूप से गंगा के जल का पान करने से होती है ।

यद्यकार्यशतम् कृत्वाकृतम् गंगाभिषेचनम् ।
सर्वं तत् तस्य गंगाम्भो दहत्यग्निरिवेन्धनम् ।।
सर्व कृतयुगे पुण्यम् त्रेतायां पुष्करं स्मृतम् ।
द्वापरेऽपि कुरुक्षेत्रं गंगा कलियुगे स्मृता ।।

(महाभारत)

जैसे अग्नि ईंधन को जला देती है, उसी प्रकार सैकड़ों निषिद्ध कर्म करके भी यदि गंगास्नान किया जाय तो उसका जल उन सब पापों को भस्म कर देता है । सत्ययुग में सभी तीर्थ पुण्य दायक होते हैं । त्रेता में पुष्कर का महत्त्व है । द्वापर में कुरुक्षेत्र विशेष पुण्यदायक है और कलियुग में गंगा की अधिक महिमा बतायी गयी है ।

गंगा स्नान का पुण्यफल किसे ?

गंगा स्नान का पर्व था । भारी भीड़ स्नान का पुण्य लाभ करने के लिए जा रही थी । सभी गंगा माता की जय बोल रहे थे ।

शंकर पार्वती सूक्ष्म शरीर से आकाश मार्ग से उधर होकर निकले । पार्वती ने इतनी भीड़ को एक ही दिन गंगा स्नान के लिए जाने पर आश्चर्य व्यक्त किया और शंकर जी से इसका कारण पूछा ।

शंकर जी ने कहा—आज सोमवती अमावस्या पर्व है । शास्त्रों में इस पर्व का बहुत माहात्म्य बताया है और स्नान करने वाले स्वर्ग जाते हैं ऐसा लिखा है । इसी कारण हर पर्व पर इतने लोग गंगा स्नान को आते हैं । पार्वती जी का असमंजस और भी अधिक बढ़ गया । उन्होंने कहा स्वर्ग से तो हम लोगों का सम्पर्क निरन्तर रहता है । वहाँ तो थोड़ी जगह है । इतने लोग हर पर्व पर आते हैं, हर साल कई-कई सोमवती अमावस्याएँ पड़ती है एक वर्ष में ही करोड़ों लोग डुबकी लगाते हैं । सौ वर्ष में तो उनकी संख्या इतनी हो जायेगी जितनी के लिए वहाँ खड़े होने की भी जगह नही है, इसलिए यह माहात्म्य गलत मालूम पड़ता है । साथ ही शास्त्र लिखने वाले ऋषि झूठ क्यों बोलेंगे ? यह बात भी समझ में नही आती । देव ! इस सन्देह का निवारण कीजिए ।

शिवजी बोले देवि ! स्नान के साथ मन को स्वच्छ बनाने की भी शर्त है । उसका पालन यह स्नान करने वाले करते नहीं । ऐसी दशा में वे मेला मनोरंजन भर कर पाते हैं । उस पुण्य के भागीदार नहीं बनते जो शास्त्रकारों ने स्वर्ग जाने के रूप में कहा है ।

पार्वती जी की शंका का निराकरण न होते देखकर शिवजी ने उन्हें उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वस्तुस्थिति समझाने का प्रयत्न करने की बात सोची । उन्होंने एक नाटक रचा । जिस रास्ते दर्शनार्थी जा रहे थे, उसी से सटकर दोनों वेश बदल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कर बैठ गये । शिवजी ने वयोवृद्ध कोढ़ी का रूप बनाया । पार्वती को असाधारण सुन्दरी बनाकर पास में बिठा लिया ।

इस विचित्र जोड़े को देखकर दर्शनार्थी पूछते कि आप लोग आपस में कौन हैं ? यहाँ किस प्रयोजन से बैठे हैं ? पूर्व गढ़न्त के अनुसार पार्वती कहती है । यह वृद्ध मेरे पति हैं । इनकी इच्छा गंगा स्नान की हुई । अंग इनके काम नहीं देते सो इन्हें में अपनी पीठ पर लादकर यात्रा पूरी कर रही हूँ । बहुत थक जाने के कारण हम लोग यहाँ बैठे सुस्ता रहे हैं । जल्दी ही शेष यात्रा फिर आरम्भ करेंगे । कल ही तो सोमवती अमावस्या है ।

पूछने वालों में से अधिकांश की कुटिल दृष्टि थी । इशारों–शब्दों से उनमें से प्रत्येक ने अपने-अपने ढंग से एक ही परामर्श दिया कि इस बुड्ढे को गंगा में छोड़ देना चाहिए और रूपसी को उनके साथ चलना चाहिए । उनके लिए हर प्रकार की सुख-सुविधा उपलब्ध कराई जायेगी, चैन की जिन्दगी कटेगी ।

इन परामर्शों को सुनते-सुनते पार्वती हैरान हो गई कि यह कैसे धर्मात्मा लोग है ? वे भी गंगा पर स्नान करने जा रहे हैं । इनके मन इतने कलुषित हैं तो धर्माडम्बर रचने से क्या लाभ ? पार्वती जी पूछ बैठी–नाथ ! क्या सभी धर्माडम्बरी ऐसे ही होते हैं ? इस पर शिवजी बोले हाथ की पाँचों उंगली एक समान नहीं होती । इस भीड़ में कुछ सच्चे लोग भी होते हैं । वह भी तुम्हें देखने को मिलेंगे ।

प्रतीक्षा के बाद एक भावुक भक्त उधर आया । ध्यान पूर्वक इन पति-पत्नी की परिस्थिति और मनोदशा परखता रहा । गद्‌गद् हो गया । सुन्दरी के पद वन्दन करता हुआ बोला देवी तुम धन्य हो । तुम्हारी जैसी नारियों की धर्म भावना से यह धरती आकाश अपनी जगह पर स्थित है मैं कुछ आप लोगों की सेवा करना चाहता हूँ । मेरे पास कुछ सत्तू है । इसे आप लोग भी ग्रहण करें । भूखे होंगे न ? इसके बाद इन वृद्ध सज्जन को मैं अपनी पीठ पर बिठा कर गंगा स्नान कराऊँगा । आप कहेंगी तो आपको घर तक भी इन्हें पहुँचा आऊँगा ।

शिवजी ने पार्वती से कहा–देखा, इतनी भीड़ में केवल यह आदमी तीर्थ सेवन की गंगा स्नान की शर्तों को पूरी कर रहा था । यही है वह जिसको स्वर्ग जाने का वह प्रतिफल मिलेगा, जिसका प्रतिफल वर्णन गंगा स्नान के सम्बन्ध में ऋषि मनीषियों ने किया है ।

भागीरथ और उनकी भागीरथी

पौराणिक गाथा के अनुसार भागीरथ के पूर्वजों को शाप लगा था और वे जलकर भस्म हो गये थे । मरने के उपरांत भी उन्हें सद्‌गति नहीं मिली । वे नरकगामी हुए । उपाय यह बताया गया कि स्वर्ग से गंगा अवतरित होकर आवे और उस स्थान पर होती हुई बहे–जहाँ वे भस्म हुए थे–तो उन पितरों की सद्‌गति सम्भव हो ।

राजकुमार भागीरथ राजघरानों में उत्पन्न हुए अन्य विलासी लड़कों की तरह न थे, जिन्हें सुरा–सुन्दरी की नारकीय अग्नि में अपने चढ़ते यौवन को जला डालने की उतावली रहती है । यों बड़े आदमियों के पीछे कुसंग भी दुर्भाग्य की तरह पीछे पड़ा रहता है पर मनस्वी भागीरथ का संस्कारवान मन भटका नही, विचारशीलता ने उसे जीवन समस्याओं को ध्यान में रखने की प्रेरणा दी ।

पूर्वजों के प्रति अपने कर्त्तव्य की बात भागीरथ सोचा करते । शाप से पितरों के भस्म होने के कारण उनके कुल का गौरव घट गया था, वे चाहते थे कि ऐसा आदर्श पथ अपनाया जाये जिससे वह खोया हुआ सम्मान पुनः प्राप्त हो। दुष्कर्म स्वतः ही एक शाप है, जो उन्हें करता है वह भस्म हुए बिना नहीं रहता। फिर अपयश का नरक तो उन्हें मिलता ही है । पूर्वज इस प्रकार की भूल कर चुके थे, अब बिगड़ी बात बनानी हो तो आदर्श सत्कर्म करने का–श्रेष्ठता के पथ पर चलने का मार्ग ही शेष था। यदि दुष्कर्मों का फल नरक है तो सत्कर्म स्वर्ग भी तो दे सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गंगा को पृथ्वी पर लाने का पुण्य उन्हें ही नहीं उनके पूर्वजों को भी सद्गति प्रदान कर सकता है, तो जीवन उसी कार्य में क्यों न लगा दिया जाये, भागीरथ निरन्तर यही सोचते रहते ।

सोचना बहुत कुछ और करना कुछ नहीं, यह दुर्बल मनोभूमि के पुरुषों का मार्ग है। मनस्वी लोगों को जो उचित और उपयुक्त प्रतीत होता है उस पर वह चलने के लिये कटिबद्ध भी होते है। साहस के सामने बेचारी कठिनाइयाँ कितनी देर ठहर पाती हैं, उन्हें रास्ता देना ही पड़ता है । भागीरथ ने गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने का अपना निश्चय जब परिजनों को सुनाया तो वे अवाक् रह गये। इतना बड़ा काम, इतना छोटा लड़का कर सकेगा, इस पर उन्हें विश्वास न होता था। आरम्भ में सभी ने एक स्वर में असहमति प्रकट की और मार्ग की बाधाओं को बताते हुए निरुत्साहित किया, पर जैसा कि सदा से होता आया है वह यहाँ भी हुआ । दृढ़-निश्चय के आगे सब झुकते हैं और अन्ततः समर्थन भी मिलता है और सहयोग भी ।

भागीरथ घर से चल पड़े और हिमालय पर जाकर तप करने लगे । हिमि के देवता—शंकर का हृदय पसीजा । उन्होंने अपने मस्तक में निवास करने वाली गंगा को मरुभूमि में प्रवाहित होने की व्यवस्था कर दी । आधुनिक बुद्धिवादी कहते हैं कि शिवलिंग पर्वत के गर्भ में अपरिमेय जल की यह अजस्र—धारा—गंगा-छिपी पड़ी थी। तपस्वी भागीरथ ने एक तपस्वी इंजीनीयर के रूप में उसे खोजा और उसे मरुभूमि में ले आने के लिये अवरोध—भागों को तोड़—फोड़ कर भगवती जान्हवी को मैदान में उतारने की सफलता प्राप्त करली।

जो हो, भागीरथ अपने लक्ष्य में सफल हुए । यह तप उन्हें बहुत लम्बे समय तक करना पड़ा और दुर्गम प्रदेश की कठिनाइयों ने उनके शरीर को जीर्ण—जीर्ण भी कर डाला, पर इससे क्या ? मनुष्य शरीर की सार्थकता बहुत दिन जीने या ऐश आराम करने में नही, वरन् इस बात में है कि यश को उज्ज्वल बनाने वाला कोई सत् कार्य उससे बन पड़े । युवावस्था का महत्त्वपूर्ण भाग गंगावतरण के पराक्रम में लगाकर भागीरथ ने खोया कुछ नहीं, पाया बहुत कुछ । शाप पीड़ित पूर्वजों को सद्गति मिली, वे स्वयं यशस्वी हुए और सबसे बड़ी बात यह हुई कि उनके सत्प्रयत्न द्वारा अवतरित गंगा द्वारा अब तक कोटि—कोटि प्राणियों ने अपनी क्षुधा तृष्णा और अशान्ति मिटाते हुए समृद्धि और शान्ति का आनन्द लाभ किया ।

भागीरथ आज हम लोगों के बीच मौजूद नहीं हैं। काल की कराल गति ने उन्हें भी नियत अवधि से अधिक यहाँ नहीं रहने दिया। फिर वे अमर हैं। भगवती भगीरथी अपने कल-कल नाद में उस महा तपस्वी के पुरुषार्थ का निरन्तर गुणगान करती रहती हैं। जीवन ऐसे ही लोगों का धन्य है, यों वासना और तृष्णा के कीचड़ में कुलबुलाते हुए कीड़ों की तरह जिन्दगी को हम लोग भी किसी तरह पूरी कर ही लेते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सांस्कृतिक पुनरुत्थान

सांस्कृतिक पुनरुत्थान एक महत्वपूर्ण कार्य

भारतीय संस्कृति कितने वैज्ञानिक आधारों पर खड़ी है और कितनी उपयोगी जीवन-विद्या का प्रतिपादन करती है, यह स्पष्ट हो चुका है । मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने की दिशा में यही हमें अग्रसर करती है। इससे जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों का सुसंचालन होता है । मनुष्य के अन्तरंग को ठीक मार्ग पर आरूढ़ कराने की शक्ति इसी पद्धति में है। मनुष्य की पशुता का शमन करके उसे देवत्व की ओर अग्रसर करने का मार्ग यही पद्धति है। मनुष्य की व्यक्तिगत तथा सामूहिक सुख-शान्ति, सच्चरित्रता, सद्भावना और सहकारिता पर निर्भर है। इन तीनों महान् तत्वों का उद्गम स्थान अन्तरात्मा है। उस केन्द्र को प्रभावित करके कुमार्ग से घृणा और सत्मार्ग में प्रेरणा उत्पन्न की जा सकती है। यह कार्य इस पुस्तक में वर्णित भारतीय संस्कृति के द्वारा ही हो सकता है। भारतीय तत्त्वज्ञानियों ने हजारों वर्षों के प्रयोगों और परिश्रमों के बाद जिन रहस्यों का उद्घाटन किया था, उनका समावेश इस संस्कृति में आ गया है। पहले पहल इस जीवन-पद्धति का आविष्कार और क्रियात्मक प्रयोग भारत में होने के कारण इसका नाम "भारतीय संस्कृति" रखा गया, वस्तुतः यह मानव मात्र के लिए एक समान हितकारी है। यह विश्व-संस्कृति है। यदि विश्व में इन हितकारी जीवन-सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाय, तो शान्ति, सौहार्द और विश्वबन्धुत्व स्थापित हो सकता है।

यह बड़े दुःख का विषय है कि भारतीय विचारधारा और जीवन-यापन पद्धति आज बहुत विकृत, अव्यवस्थित, उपेक्षित और अस्त-व्यस्त दिशा में पड़ी हुई है । उसे ठीक तरह न समझ सकने के कारण हम विदेशी संस्कृतियों से प्रभावित होते जा रहे हैं ।

गलत पथ-प्रदर्शन और पूरी जानकारी न होने के कारण हम भारतवासियों को अपनी संस्कृति का पूरा ज्ञान नहीं है । जो ज्ञान है वह अधूरा और अपर्याप्त है । गलत विचार हमारे मन में भर दिये गए हैं । सुयोग्य पंडितों के अभाव में भारतीय सस्कृति को विकृत करके रूढ़िवाद, अन्ध विश्वास एवं मूढ़ता के बुरे रूप में उपस्थित कर दिया है । इस दुहरे आक्रमण से आहत हुई हमारी संस्कृति अपना उच्च स्थान कायम न रख सकी । उपेक्षा और तिरस्कार के गड्ढों में गिर कर दुर्दशा का जीवन बिताने लगी । पर स्मरण रखिए वही हमारे सब प्रश्नों का एक मात्र हल है । उसी की पुर्नस्थापना द्वारा फिर देश में महापुरुष पैदा हो सकते हैं । पारस्परिक स्नेह, सद्भाव और उदारता का समावेश हमारी संस्कृति की पुनरावृत्ति से ही हो सकता है ।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान दो प्रकार से होना चाहिए, एक तो भारतीय संस्कृति के लिए व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में सुव्यवस्थित कार्य प्रणाली का होना आवश्यक है । आज भारतीय धर्म, दर्शन, तत्त्वज्ञान, कर्मकाण्ड एवं आचार-विचार का जो रूप सामने उपस्थित है, वह लम्बे अज्ञानान्धकार में गुजरने के कारण विकृत, अव्यवस्थित और अनुपयोगी हो गया है । आज के युग में स्थिति यह है कि वह लाभदायक न होकर हानिकारक एवं प्रतिगामी बन गया है । इस स्थिति में हमें अपनी प्राचीन संस्कृति के वास्तविक एवं विशुद्ध रूप को सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित करना होगा और बताना होगा कि यह रूढ़िवाद, प्रतिगामिता, भ्रमजाल, संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता नहीं, वरन् एक अत्यन्त ही उपयोगी, बुद्धि संगत, विज्ञान सम्मत, मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र, समाज व्यवस्था एवं मानवता की दृष्टियों से यह सर्वोत्कृष्ट प्रक्रिया हैं। तभी हम आज के बुद्धिवादी युग में भारतीय संस्कृति के महत्व को स्वीकार करने एवं उसे आचरण में लाने के लिए किसी को सहमत कर सकेंगे।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान का महान् कार्य पूरा करने के लिए हमें विशाल पैमाने पर कार्यक्रम बनाना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और फैलाना होगा। तभी इतने बड़े देश की इतनी बड़ी जनसंख्या में उन सुसंस्कृत तथ्यों की स्थापना संभव हो सकेगी। जितने अंशों में हम इसे आगे बढ़ाने में सफल होंगे, उतना ही सहयोग और सद्भाव प्राप्त कर सकेंगे। एक बार अच्छी तरह इसकी उपयोगिता समझ लेने के उपरान्त इस गति-विधि को देश व्यापी और फिर विश्वव्यापी बनाना कठिन न होगा। हमारी योजनाएँ इस प्रकार हैं–

१–संस्कृति का परिमार्जित रूप जनता के सम्मुख रखना चाहिए। अभी तक भारतीय संस्कृति का कोई परिमार्जित रूप जनता के सामने मौजूद नहीं है। अनेक भ्रान्त विचार, आदर्श और रीति–रिवाज मध्यकाल की विभिन्न परिस्थितियों के कारण इसमें मिल गये हैं। लोग इन्हीं को परम्परागत धर्म मानने लगे हैं। जिस प्रकार सोना, ताँबा और पीतल की मिलावट को चतुर सुनार शोध कर पृथक-पृथक कर देता है उसी प्रकार सनातन भारतीय संस्कृति की शुद्धता और विदेशी आक्रमणों, स्वार्थी तत्वों तथा समय की रफ्तार के कारण आई हुई विकृतियों को दूर करना चाहिये। रूढ़ियों की अशुद्धता को अलग छाँट दिया जाय । संस्कृति और विकृति के भेद को स्पष्ट कर जनता से पालन करने योग्य ग्राह्य तत्वों को अपनाने और अग्राह्यों का मोह त्यागने के लिए कहा जाय।

धर्म के नियम देश, काल और पात्र के अनुसार बदलते रहते हैं । प्राचीन काल से लेकर आज तक जो अन्तर आ गया है, उसे ध्यान में रखते हुए जनता को यह बताया जाय कि प्राचीन परम्पराओं के अनुसार आज के जीवन में इन सिद्धान्तों को कितना निवाहा जा सकता है, या कितना हेर-फेर किया जा सकता है । हिन्दू परम्पराओं के अनुसार प्रचलित रीति-रिवाजों पर अनेक दृष्टिकोणों से विचार किया जाय और उनकी उपयोगिता-अनुपयोगिता को स्पष्ट किया जाय ।

सांस्कृतिक जीवन के आदर्श और व्यवहार को अपनाने पर मनुष्य को जो सुविधाएँ, सुख-शान्ति, समृद्धि एवं सफलताएँ मिल सकती हैं, उनको तर्क, प्रमाण, उदाहरण, तथ्य आदि के आधार पर भली भाँति सिद्ध किया जाय । उन निष्कर्षों को बड़े पैमाने पर प्रचारित किया जाय, साथ ही उन सांस्कृतिक आदर्शों की अवहेलना पर जो कठिनाइयाँ और परेशानियाँ उत्पन्न हो सकती हैं, उनका भी बुद्धिसंगत प्रतिपादन किया जाय । इस प्रकार पुस्तक, लेख, भाषण आदि द्वारा जनता को समझाया जाय कि उनकी व्यक्तिगत एवं सामूहिक उन्नति के लिए हमारी संस्कृति कितनी उपयोगी एवं आवश्यक है ।

हमारी संस्कृति में जो शास्त्रों के परस्पर विराधी सिद्धान्त तथा आदर्श पाये जाते हैं, उनको ऐसे सुव्यस्थित रूप में रखा जाय कि वे एक दूसरे के विरोधी नहीं, वरन् पूरक प्रतीत हों। दार्शनिक और धार्मिक मतभेदों के कारणों को बताते हुए उनका समन्वय किया जाय।

हमारी पौराणिक अलंकार गाथाओं का जो कहीं-कहीं असंगत और अनैतिक भी दीखती हैं, गूढ़ार्थ स्पष्ट कर जनता में फैले हुए उन भ्रमों को दूर किया जाय, जिनके कारण धार्मिक अविश्वास और सन्देह बढ़ते हैं।

देवी-देवताओं का अस्तित्व, विभिन्न रूप और उनके विचित्र इतिहास ऐसे हैं, जिनके रहस्यों को साधारण व्यक्ति आज समझने में असमर्थ हैं। जिन बातों को संदिग्ध समझा जाता है, उनका स्पष्टीकरण किया जाय। विद्वानों का कर्त्तव्य है कि देववाद का वैज्ञानिक रूप सर्वसाधारण के सामने प्रस्तुत करें।

भारतीय पुनर्जन्मवाद, परलोकवाद, अद्वैत, द्वैत और त्रैतवाद, वर्णाश्रम, धर्म, स्पर्शास्पर्श, कर्म-विपाक आदि दार्शनिक विषयों को सरल रूप से सर्व साधारण जनता के समझने योग्य रीति से उपस्थित किया जाय।

भारतीय आचार-विचार, रहन-सहन, भाषा-भेष, भाव एवं परम्पराओं की उपयोगिता एवं आवश्यकता को इस रूप में उपस्थित किया जाय कि जनता उनको अपना ले और उनमें से अपने लाभ की बात ग्रहण करले।

षोड़स-संस्कारों को परिष्कृत रूप में उपस्थित किया जाय। बहुत लम्बा समय और धन व्यय कराने वाले विधानों को सरल बनाकर संस्कारों को ऐसे ढंग से कराया जाये कि सर्वसाधारण को उनमें रुचि और आकर्षण हो जाये। पुंसवन सीमन्त-संस्कार के समय गर्भस्थ बालक के प्रति गर्भिणी के तथा गर्भिणी के प्रति घर-वालों के कर्त्तव्यों का उपदेश विस्तारपूर्वक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

किया जाय। बच्चों के उत्तम संस्कार उत्पन्न करने वाले नाम रखे जायँ । नामकरण के समय बालक को सुविकसित करने के लिए घरवालों को समुचित उपदेश दिया जाय। यज्ञोपवीत के समय बालक को द्विजत्व की, आदर्शमय जीवन की शिक्षा दी जाय। विवाह के समय पति-पत्नी को उनके कर्त्तव्यों को भली भाँति समझाया जाय और उन कर्त्तव्यों के पालन की चिह्न-पूजा के रूप में नहीं, वरन् विधिवत् प्रतिज्ञा कराई जाय। अन्त्येष्टि-संस्कार के समय जीवन की नश्वरता, सत्कर्मों की श्रेष्ठता आदि का उपदेश दिया जाय। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक संस्कार कर्त्तव्य और भावनाओं को गहराई और मजबूती से करने वाला बनाया जाय। साथ ही उन्हें इतना सरल बना दिया जाये कि उनका उपयोग साधारण व्यक्ति भी कर सके।

पर्वों और त्यौहारों को मनाने की ऐसी रीति बनाई जाय, जिससे हर एक त्यौहार कुछ नई शिक्षा एवं प्रेरणा दे सके । त्यौहारों के उत्सव सामूहिक रूप से मनाये जायँ और उनमें छिपे हुए सन्देशों को समझाया जाय, उनसे प्रकाश ग्रहण किया जाय।

संस्कृति की उपयोगिता को तर्क और प्रमाण सहित सिद्ध करने के लिए विद्वानों का एक शोध मण्डल कार्य करे। वे ऐसी ठोस जानकारी प्रस्तुत करें, जो शास्त्रीय दृष्टि से ही नहीं, भौतिक दृष्टिकोण से भी काफी मजबूत हो। सांस्कृतिक जीवन के पक्ष में प्रबल आधार खड़ा कर सामान्य बुद्धि की जनता एवं परिष्कृत मस्तिष्क के विद्यार्थियों को समझा सकने योग्य प्रमाणिकता यह शोध मण्डल तैयार करे।

ऐसे शोधों के निष्कर्षों को अधिकाधिक जनता तक पहुँचाने के लिए अत्यन्त सस्ते ट्रैक्ट छापे जायँ तथा लेखों द्वारा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करने के लिए लेखक तैयार किये जायँ । पत्रकारों से इस कार्य के लिए अपने पत्रों में स्थान देते रहने का अनुरोध किया जाय।

स्थान-स्थान पर ऐसे चलते-फिरते पुस्तकालय खोलने की आवश्यकता है, जो सांस्कृतिक साहित्य से परिपूर्ण हों। भले ही उनमें पुस्तकों की संख्या थोड़ी हो, पर उद्देश्यपूर्ण हो। उनके द्वारा घर-घर पुस्तकें पढ़वाने की अच्छी व्यवस्था अवश्य हो। यदि कुछ लगन वाले व्यक्ति इस कार्य के लिए थोड़ा-सा समय नियमित रूप से दे सकें, तभी ऐसे पुस्तकालय चल सकते हैं। पुस्तकालय खुलवाने और उन्हें प्रेरणा देने के लिए संगठित और व्यवस्थित रूप से प्रयत्न किया जाय।

गीता प्रेस गोरखपुर की रामायण और गीता परीक्षाएँ, ईसाइयों की बाइविल कोर्स की तरह सांस्कृतिक शिक्षाओं का एक पाठ्यक्रम बनाया जाय, पास होने वाले विद्यार्थियों को प्रमाण–पत्र, पदक, पुरस्कार, उपहार दिये जायँ। ऐसी शिक्षाओं के लिए समय–समय पर शिक्षण-शिविरों, रात्रि विद्यालयों एवं व्यवस्थित विद्यालयों की व्यवस्था की जाय।

रचनात्मक सांस्कृतिक आयोजन

सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए स्थान-स्थान पर अनेक संगठन बनाने तथा अनेक सम्मेलन, आयोजन करते रहने की आवश्यकता है, ताकि जनसाधारण की मनोभूमि पर सांस्कृतिक छाप गहराई तक डालने में प्रगति हो। इसके लिए निम्नलिखित कार्य-क्रम उपयोगी हो सकता है:–

सांस्कृतिक शिक्षण के लिए समय-समय पर शिक्षण-शिविर किए जायँ। इनमें एक व्याख्यानमाला द्वारा भारतीय संस्कृति का वास्तविक रूप समझाया जाय।

खास-खास मौकों पर या किसी महान् भारतीय नर-रत्न के जन्म दिन पर अनेक सांस्कृतिक उत्सव बराबर होते रहें। ग्राम, मुहल्लों में पर्व त्यौहारों को सामूहिक रूप से मनाया जाय। साधारण सभा-सम्मेलनों की अपेक्षा ऐसे वृहद् यज्ञ करना अधिक प्रभावोत्पादक हो सकता है, जिनमें सांस्कृतिक शिक्षा, धर्म-प्रचार तथा परस्पर विचार-विनिमय की समुचित व्यवस्था हो।

उत्तम योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए विचारशील एवं कार्य-संलग्न व्यक्तियों की विशेष गोष्ठियाँ सामयिक योजनाओं पर विचार करने के लिए होती रहें। प्रदर्शनी, अभिनय, संगीत, कवि-सम्मेलन, प्रतियोगिता, चित्रपट आदि मनोरंजनों द्वारा सांस्कृतिक भावनाओं का प्रचार किया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसे स्मारकों, केन्द्रों तथा संस्थानों का निर्माण हो, जहाँ से सांस्कृतिक प्रेरणा प्राप्त होती रहें। महिलाओं और बच्चों के सांस्कृतिक शिक्षण के लिए विशेष आयोजनाएँ की जायँ। सांस्कृतिक विकास के कार्यों पर अधिक ध्यान देने एवं अधिक सुविधाएँ देने के लिए सरकार से प्रार्थना की जाय।

सांस्कृतिक विद्यालय

भारतीय संस्कृति को घर-घर पहुँचाने, उसे सुरक्षित रखने और बढ़ाने का कार्य जो व्यक्ति करते थे, इस कार्य में पूरा-पूरा समय और मन लगाते थे, उन्हें पाधा, पंडित और पुरोहित आदि नामों से पुकारा जाता था। प्राचीन काल में यह लोग अपनी योग्यता, सेवा, बुद्धि एवं तपस्या बढ़ाने के लिए कठोर साधना और अपने सेवा क्षेत्र के यजमानों की विविध विधि सांस्कृतिक सेवा करने में संलग्न रहते थे। यजमान भी समय-समय पर दान-दक्षिणा देकर उनके जीवन-निर्वाह की व्यवस्था करते थे। गांधीजी ने प्रत्येक ग्राम के लिए एक "ग्राम-सेवक" द्वारा रचनात्मक कार्य करने पर जोर दिया है। लगभग वैसी ही सांस्कृतिक योजना के आधार पर प्राचीनकाल में हमारे दूरदर्शी पूर्वजों ने यजमानों और पुरोहितों की परम-पुनीत परम्परा प्रचलित की थी।

आज उस प्रथा का रूप विकृत हो गया है। उसे शुद्ध करने की आवश्यकता है। जहाँ संभव हो वहाँ पुराने पुरोहितों को नियत कार्य पर लगाने के लिए प्रयत्न करना है, साथ ही नई पीढ़ी के नये उपाध्याय इसी आदर्श के अनुसार तैयार करने हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक कार्यों के लिए पूरा समय देने वाले लगभग ५ लाख व्यक्तियों की सेना सहज ही तैयार हो सकती है। यह सेना अज्ञान, अन्धकार, कुसंस्कार, निकृष्ट जीवन, असुरता एवं भौतिकवाद के शत्रुओं को परास्त करके भारतीय संस्कृति की विजय-पताका फहराने में सफलतापूर्वक समर्थ हो सकती है।

देव-पूजा कार्यों के लिए भारत में लगभग ५६ लाख व्यक्ति अपना पूरा समय लगाये हुए हैं। साधु, सन्त, पंडे, पुरोहित, पंडित आदि वर्ग के लोग इतनी बड़ी संख्या में देवपूजा के कार्य के आधार पर अपनी जीविका चलाते हैं। देव कार्यों के बने हुए मन्दिरों, भवनों, इमारतों और इनसे सम्बन्धित चल-अचल सम्पत्तियों का मूल्य लगभग २३ अरब आँका जाता है। ५६ लाख की यह विशाल जन-सेना और २३ अरब रुपयों की विपुल सम्पत्ति इतनी बड़ी शक्ति है कि जिससे सांस्कृतिक पुनरुत्थान तो क्या, एक विश्व युद्ध जीता जा सकता है।

यह धन, जन की प्रचण्ड शक्ति आज निरर्थक पड़ी है। इतना ही नहीं अधिकांश तो इसका दुरुपयोग होता है। कुछ व्यक्तियों की स्वार्थ-सिद्धि के अतिरिक्त वह उद्देश्य पूर्ण नहीं होता, जो इस शक्ति के द्वारा होना चाहिए। देव-तत्वों को जनमानस में स्थापित करना ही वस्तुतः इस देव-सेना का उद्देश्य है। जो वस्तु जिस कार्य के लिए हो, जो व्यक्ति जिस कार्य के लिए जनता से आजीविका प्राप्त करते हैं, उस उद्देश्य को सर्वथा न भुला दिया जाय, इसके लिए कुछ प्रयत्न करना आवश्यक है।

हमें चाहिए कि अपने मन्दिरों को सांस्कृतिक-केन्द्र बना डालें। दान-दक्षिणा से जीविका चलाने वालों को सांस्कृतिक सेवा करने के लिए तैयार लिए भारी प्रयत्न और जनमत को तैयार करने की आवश्यकता है । दान देने वालों, देव सम्पत्तियों के स्वामियों और संरक्षकों को भी उद्देश्य पूर्ति के लिए कुछ करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए । दान देने वाले और दान लेने वाले दोनों को ही उनकी जिम्मेदारी बताने और उसे पूरा करने के लिए कुछ करने की प्रेरणा दी जानी चाहिए।

यज्ञ भारतीय सूक्ष्म विज्ञान का प्रधान आधार रहा है। उसमें आत्मोन्नति, स्वर्ग, मुक्ति आदि परमार्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति, बल-वृद्धि, रोग-निवारण, श्रीसमृद्धि, सुसन्तति, अभीष्ट वर्षा, कुसंस्कारों की निवृति, दिव्य अस्त्र-शस्त्र, व्यापक वातावरण में परिवर्त्तन, सूक्ष्म जगत् पर अधिकार, आपत्तियों का निवारण एवं सुख-शान्ति की अपार संभावनाएँ छिपी हुई हैं। आज यह यज्ञ-विद्या लुप्त प्रायः हो रही है। हमें भी पूर्वजों के इस महान् रत्न-भण्डार यज्ञ की शोध के लिए कुछ करना ही चाहिए। संसार में विभिन्न प्रकार की वैज्ञानिक शोधें हो रही हैं। हमें भी पूर्वजों की महान् यज्ञ-विद्या की शोध के लिए कुछ करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सांस्कृतिक पुनरुत्थान योजना

कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली में एक पादरी ने ईसाई धर्म छोड़कर हिन्दू धर्म में प्रवेश किया है। यह सज्जन जन्मतः भारतीय हैं पर बहुत वर्षों से ईसाई धर्म का प्रचार कर रहे थे। उन्होंने इस धर्म परिवर्तन का कारण बताते हुए कहा है कि मैंने अपने लम्बे अनुभव काल में यह भली प्रकार देख लिया कि ईसाई होने के बाद मनुष्य की मनोभावना किसी अन्य देश के साथ जुड़ जाती है, और वह उसी के रंग में रंग जाता है। यहाँ के अनेकों मुसलमानों का उदाहरण स्पष्ट है। वे अपनी जन्मभूमि की परवाह नहीं करते, अपने पूर्वजों का आदर नहीं करते, अपने देश के महानुभावों से उन्हें कोई प्रेम नहीं, मक्का, इस्लाम, मुस्लिम देश, अरबी फारसी लिपि, पोशाक तथा उन्हीं देशों के वीर पुरुषों एवं भाषाओं से उनका मानसिक सम्बन्ध जुड़ा रहता है। फलस्वरूप वे लोकाचार की दृष्टि से भारतीय होते हुए भी, मानसिक दृष्टि से विदेशी बन जाते हैं। यह बात किसी जाति विशेष पर लांछन लगाने के लिए नहीं कही जा रही है। यह तो एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है जो ऐसी स्थिति होने पर सभी पर लागू होता है।

इस तथ्य को अंग्रेज मनोवैज्ञनिक भली प्रकार जानते थे। वे अधिक विद्वान थे, इसलिए उन्होंने मध्यकाल के मुसलमान शासकों की तरह बलपूर्वक धर्म परिवर्तन की नीति को न अपनाकर पीछे की खिड़की में होकर प्रवेश किया। उन्होंने यह नीति अपनाई कि धर्म चाहे कोई भी रहे पर संस्कृति हमारी चले। लार्ड मैकाले प्रभृति चतुर व्यक्तियों ने अपनी सारी बुद्धिमत्ता खर्च करके स्कूलों, कालेजों, दफ्तरों, राज दरबारों तथा अनेक द्वारों से यह प्रयत्न किया कि यहाँ के निवासी हमारी संस्कृति अपना लें तो हमारे सजातीय हो जायेंगे। जन्म से वे भारतीय रहें पर मस्तिष्क में अंग्रेज ही होंगे। काले अंग्रेज पैदा करने की उनकी योजना प्रसिद्ध है। उनकी दूरदर्शिता की प्रशंसा करनी पड़ती है कि वे इस सम्बन्ध में शत-प्रतिशत सफल रहे। अंग्रेज हिन्दुस्तान छोड़ कर चले गये पर अंग्रेजियत को रत्ती भर भी क्षति नहीं पहुँची, सच तो यह है कि वह इन दिनों और अधिक बढ़ी है। जिस प्रकार अनेक अन्धविश्वास, भ्रम, पाखण्ड, व्यसन एवं दुर्गुणों को मनुष्य अनजाने ही वातावरण के प्रभाव से अपना लेता है, उसी प्रकार विदेशी संस्कृति को भी हमने अपना लिया है। इस 'स्व' त्याग और 'पर' ग्रहण का प्रभाव यदि केवल बोल चाल, पहनाव, उढ़ाव, खान, पान, वेश, विन्यास, रहन-सहन तक ही सीमित रहता तो कोई विशेष हानि न थी पर ऐसा हो सकना भी सम्भव नहीं है क्योंकि आचार और विचार आपस में अत्यन्त घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। जिस प्रकार मुसलमानी पोशाक, भाषा, रीति-रिवाज, खान, पान अपना लेने पर मस्तिष्क पर भी मुसलमानी आदर्श जम ही जाते हैं उसी प्रकार अंग्रेजियत हमारे व्यवहार में गहरी घुस जाती है तो मस्तिष्क में स्वार्थ तो भारतीय रह सकते हैं पर आदर्शों का रह सकना सम्भव नहीं है।

भारतीय संस्कृति की आत्मा त्याग, तप, संयम, सेवा, कृतज्ञता, उदारता के सिद्धान्तों से परिपूर्ण है। उन्हीं सिद्धान्तों से प्रेरित होकर यहाँ आत्मत्यागी ऋषि उत्पन्न होते रहे, सतियाँ और पतिव्रताएँ अपने उदाहरण उपस्थित करती रहीं, समाज सेवी और धर्मकर्त्तव्यों के लिये प्राण देने वाले सद्ग्रहस्थ घर-घर में होते रहे । ऐसे नर रत्नों के उज्ज्वल चरित्रों से भारतीय इतिहास का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है। कारण यही है कि आर्य सिद्धान्तों को व्यवहारिक जीवन में कूट-कूट कर भर देने के लिये जो रीति-रिवाज, आचार-विचार, संस्कार आदि की व्यवस्था थी उस पर सब लोग स्वभावतः चलते रहते थे, फलस्वरूप व्यक्तियों का निर्माण ऐसा ही होता था जिससे वे महापुरुष सिद्ध होते । यही भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

पाश्चात्य संस्कृति भोग, संचय, स्वामित्व, ऐश आदि ऐहिक सुख साधनों पर अवलम्बित होने से उसके रीति-रिवाज व्यवहार आदि भी वैसे ही हैं और उस ढांचे में मनुष्य ढलता भी वैसा ही है। श्रेय और प्रेय, त्याग और भोग यह दो विरोधी तत्व इस संसार में हैं और इन दोनों के विपरीत ही परिणाम हैं । एक का परिणाम है—परस्पर सौहार्द, प्रेम, सेवा, सहायता, मैत्री, शान्ति, दीर्घायु, श्री, सद्बुद्धि, सादगी, सद्गति।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरी का परिणाम है—अतृप्त वासना, अशान्ति, कलह, द्वेष, उत्पीड़न, दरिद्र, रोग, युद्ध, कृत्रिमता, दुर्गति। इन दोनों संस्कृतियों का आदि अन्त इसी प्रकार है।

यह दो संस्कृतियाँ जीवन की दो दिशाएँ हैं। लोग इन्हीं में से एक को पकड़ते हैं और उन्हीं के अनुसार फल भोगते हैं । आज अधिकांश व्यक्ति भोगवादी भौतिक संस्कृति को अपना रहे हैं। उसी आधार पर अपना फैशन, बोलचाल, रहन-सहन, आचार-विचार बना रहे हैं। तदनुसार परिणाम भी सामने हैं।

व्यक्तिगत उन्नति तथा सुख-शांति तथा सामाजिक स्थिरता तथा सुव्यवस्था के लिए अन्ततः श्रेय प्रधान, त्यागमयी भारतीय संस्कृति की ही आवश्यकता पड़ेगी । जब भौतिक तृष्णाओं से पीड़ित दुनियां थकान और पीड़ा से चूर हो जायगी तब उसके लिए अन्ततः एक मात्र यही आश्रय होगा । भौतिकवादी संस्कृति बढ़ती रही तो मनुष्य जाति का ही नहीं इस पृथ्वी ग्रह का भी अणु परमाणुओं के संघर्ष से नष्ट होना निश्चित है। मनुष्य को चाहे आज, चाहे कल अपनी सुख शान्ति की रक्षा के लिये उन्हीं आदर्शों को अपनाना पड़ेगा जिनको सूक्ष्मदर्शी ऋषियों ने हजारों वर्षों के तप तथा विचार द्वारा निर्धारित किया था।

अतीत को वापिस लाने का स्वप्न

धर्म, शिक्षा, न्याय, सभ्यता, विज्ञान, कला आदि मानव जीवन की आवश्यक प्रवृत्तियों की जन्मभूमि यह भारत भूमि है। पशु को मनुष्य बनाने वाली जिस सभ्यता और संस्कृति का उद्भव यहाँ हुआ वह किसी देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग या समाज के लिए नहीं, वरन् समस्त संसार के लिए है। भारतीय सभ्यता-मानवता की, समस्त मनुष्य जाति की अत्यन्त ही विवेक एवं दूरदर्शिता से भरी हुई जीवन पद्धति है। इसे अपनाने पर मनुष्य अगणित प्रकार की असुविधाओं, विकृतियों, और बुराइयों से बच कर सुख, समृद्धि, सफलता और सद्गति का अधिकारी बनता है। तत्वदर्शी ऋषियों ने इसी दृष्टि से अनेक प्रकार के आदर्श, नियम, प्रतिबन्ध, रीति-रिवाज, आचार-विचार विनिर्मित किये थे। इनमें अन्धविश्वास या मूढ़ परम्परा के लिए रत्ती भर भी स्थान नहीं है। यह समस्त सांस्कृतिक ढांचा मानव जाति के कल्याण को ध्यान में रख कर ही खड़ा किया गया है। इसकी एक-एक ईंट विज्ञान, तत्वज्ञान और दूरदर्शिता से परिपूर्ण है।

जब भारतीय संस्कृति का लोग महत्व समझते थे, उस पर विश्वास करते थे, उसको आचरण में लाते हुए अपना गौरव समझते थे, तब इस देश में घर-घर महापुरुष उत्पन्न होते थे। भौतिक समृद्धि और सामाजिक सुख शान्ति की कमी न थी। इस संस्कृति के ढाँचे में ढले हुए नर रत्न अपने प्रकाश से समस्त संसार में प्रकाश उत्पन्न करते थे और उसी आकर्षण के कारण विश्व की जनता उन्हें जगद्गुरु, चक्रवर्ती शासक एवं भू सुर-पृथ्वी के देवता मानंती थी। यह देश स्वर्ग की अपेक्षा भी श्रेष्ठ समझा जाता था। अतीत का इतिहास इस तथ्य को मुक्त कण्ठ से उद्घोष कर रहा है।

भारतीय संस्कृति के प्रभाव से प्रभावित प्रत्येक परिवार में स्वर्गीय शान्ति एवं सद्भावनाओं का निवास रहता था। पिता और पुत्र के बीच कैसे सम्बन्ध थे इसका उदाहरण देखना हो तो विमाता की आज्ञा से १४ वर्ष के लिये वनवास जाने वाले राम, अन्धे माता-पिता को कन्धे पर कांवर में बैठाकर तीर्थ यात्रा कराने वाला श्रवण कुमार, पिता के दान करने पर यमपुर खुशी-खुशी प्रस्थान करने वाले नचिकेता का चरित्र पढ़ लेना चाहिये। भाई का भाई के लिए क्या कर्तव्य है इसकी झाँकी राम, लक्ष्मण और भरत का चरित्र पढ़ लेने से सहज ही हो जाती है। कौरवों को जब यक्षों ने बन्दी बना लिया तो युधिष्ठर ने भ्रातृ प्रेम के वशीभूत होकर उन्हें छुड़वाया। पुष्कर के दुर्व्यवहार को भुला कर नल ने अपने भाई को क्षमा ही कर दिया । ऐसे भ्रातृ प्रेम के उदाहरण पग-पग पर मिलेंगे । सच्चे मित्र कैसे होते हैं यह कृष्ण ने सुदामा और अर्जुन के साथ अपना कर्त्तव्य पालन करके दिखाया था।

पति-पत्नी के बीच कैसे सम्बन्ध होने चाहिये इसके उदाहरण पत्नीव्रती पुरुष और पतिव्रता नारियों ने पग-पग पर उपस्थित किये हैं । सीता, सावित्री,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शैव्या, दमयन्ती, गान्धारी, अनुसूया, सुकन्या आदि की कथाएँ घर-घर गाईं जाती हैं । परस्त्री को माता एवं पुत्री समझने वाले भी सभी कोई थे। शिवाजी द्वारा, यवन कन्या को सुरक्षित रूप से सम्मानपूर्वक राजमहल में पहुँचा देना, अर्जुन का उर्वशी को लौटा देना, कच का रूपगर्विता देवयानी का प्रस्ताव अस्वीकार करना, सूर्पनखा का लक्ष्मण द्वारा उपहास करना जैसे प्रसंगों की कमी नहीं है। भीष्म, हनुमान, जैसे अखण्ड ब्रह्मचारी प्रचुर संख्या में परिलक्षित होते थे।

अतिथि सत्कार के लिये मोरध्वज का अपना पुत्र दे देना, भूखे बहेलिये के लिए कबूतर कबूतरी का अपना शरीर दे देना, दुर्भिक्ष पीड़ित समय में अनेक दिनों से भूखे ब्राह्मण परिवार का अपनी थाली की रोटियाँ चाण्डाल को दे देना आदि अनेकों वृतान्त महाभारत में देखे जा सकते हैं । शरणागत कबूतर की रक्षा के लिये राजा शिव ने अपना माँस काट-काट कर दे दिया था। कुन्ती ने ब्राह्मण कुमार के बदले अपने पुत्र भीम को राक्षस का आहार बनने के लिये भेजा था ।

अपने स्वार्थ, सुख-साधन, धन सम्पदा संग्रह, ऐश आराम को लात मारकर अपनी आत्मा का कल्याण करने के निमित्त लोक सेवा और परमार्थ में जीवन व्यतीत करने में यहाँ के लोग अपने जीवन की सफलता मानते रहे हैं । गौतम बुद्ध अपने राजपाट और सुख सौभाग्य को छोड़कर हिंसा और अज्ञान में डूबे हुये संसार को दया और आत्म ज्ञान की शिक्षा देने के लिए निकल पड़े । महावीर ने लालची और विषयासक्त दुनियाँ को त्याग और संयम का पाठ पढ़ाने के लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया । भागीरथ ने राज सुख को छोड़कर दीर्घ काल तक कठोर तप किया और प्यासी पृथ्वी को तृप्त करने के लिए तरण तारणी गंगा का अवतरण कराने का महान् कार्य सम्पादन किया । नारदजी कुछ घड़ी भी एक स्थान पर न ठहर कर आत्म-ज्ञान का प्रसार करने के लिए हर घड़ी पर्यटन करते रहते थे । व्यास जी ने संसार को धर्म ज्ञान देने के लिए अष्टादश पुराणों की रचना की । आदि कवि वाल्मीक ने रामायण की रचना करके मानव जाति को कर्त्तव्यपथ पर चलने के लिये अग्रसर किया । चरक, सुश्रुत, वाणभट्ट, धन्वन्तरि, प्रभृति ऋषियों ने जीवन भर जड़ी बूटियों, धातुओं, विषों आदि का अन्वेषण करके रोगग्रस्त पीड़ितों का त्राण करने के लिये सर्वांग-पूर्ण चिकित्सा शास्त्र का आविर्भाव किया । ज्योतिष विद्या की महान खोज, आकाशस्थ ग्रह नक्षत्रों की गति विधियों और उनका मनुष्य जाति पर जो प्रभाव पड़ता है उसकी खोज करने वाले वे ऋषि ही थे । सूर्य सिद्धान्त, मकरन्द, ग्रहलाघव, आदि को देखने से आश्चर्य होता है कि उस समय बिना वैज्ञानिक यन्त्रों के इस प्रकार की शोध करके संसार को महान् ज्ञान देने के लिये उन्हें कितना श्रम करना पड़ा होगा ।

सदा अपने को तप से तप्त करके अपनी महान सेवाएँ विश्व मानव के उत्कर्ष में लगाने वाले ऋषियों की जीवनियाँ पढ़ने पर मनुष्य की अन्तरात्मा उनके चरणों पर लोट जाने को करती है । विश्वामित्र, वशिष्ठ, जमदग्नि, कश्यप, भारद्वाज, कपिल, कणाद, गौतम, जैमिनी, पाराशर, याज्ञवल्क्य, शंख, कात्यायन, गोमिल, पिप्पलाद, शुकदेव, श्रंगी, लोमस, धौम्य, जरुत्कार, वैशम्पायन, आदि ऋषियों ने अपने को तिल-तिल जलाकर संसार के लिए वह प्रकाश उत्पन्न किया जिसकी आभा अभी तक बुझ नहीं सकी है । सूत और शौनक निरन्तर प्राचीनकाल के महापुरुषों की गाथाएँ, विरुदावलियां, धर्मचर्चाएँ सुना-सुना कर मानव जाति की सुप्त अन्तरात्माओं को जगाया करते थे । दधीचि ने असुरत्व से देवत्व की रक्षा के लिये अपनी हड्डियाँ ही दान कर दीं । धर्म की मर्यादा की रक्षा के लिए बन्दा वैरागी खौलते तेल के कढ़ाव में प्रसन्नतापूर्वक कूद पड़ा । हकीकतराय के कत्ल, गुरु बालकों के जीवित दीवारों में चुन जाने की कथाएँ आज भी धर्म कर्त्तव्य की उपेक्षा करके धन संग्रह और इन्द्रिय भोगों में लगे हुये लोगों पर लानत देती हुई आकाश में विहार कर रही हैं ।

आज अधिकांश पण्डित, पुरोहित, साधू, ब्राह्मण आदि संसार को मिथ्या बताते हुये मुफ़्त का माल चरते रहते हैं और आलस्य प्रमाद से चित्त हटा कर संसार का बौद्धिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए कुछ भी श्रम नहीं करते । पर भारतीय संस्कृति की परम्परा इससे सर्वथा भिन्न रही है । साधुता और ब्राह्मणत्व का आदर्श दूसरा ही है । शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट, सिख धर्म के दस गुरु, दयानन्द, ज्ञानेश्वर, तुकाराम,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रामदास, चैतन्य, कबीर, विवेकानन्द, रामतीर्थ, आदि असंख्यों धर्मगुरु लोक हित के लिये जीवन भर घोर परिश्रम प्रयत्न और परिभ्रमण करते रहे । उन्होंने लोक सेवा को एकान्त मुक्ति से अधिक महत्व दिया । भगवान बुद्ध जब अपनी जीवन लीला समाप्त करने लगे तो उनके शिष्यों ने पूछा–"आप तो अब मुक्ति के लिए प्रयाण कर रहे हैं ।" बुद्ध ने उत्तर दिया–"जब तक संसार में एक भी प्राणी बन्धन में बँधा हुआ है तब तक मुझे मुक्ति की कोई कामना नहीं है । मैं मानवता का उत्कर्ष करने के लिए बार-बार जन्म लेता और मरता रहूँगा ।" स्वामी दयानन्द सरस्वती भी योग साधना करने हिमालय में गये थे, पर उन्हें वहाँ ईश्वरीय प्रेरणा हुई कि "लोक सेवा ही सर्वोत्तम योग साधना है ।" स्वामी जी तपस्या से लौट आये और अज्ञानग्रस्त जनता में ज्ञान प्रसार करने को ही अपनी साधना मानते हुए जीवन समाप्त कर दिया । शंकराचार्य और दयानन्द अपने इस महान् त्याग के उपलक्ष में विषपान करके स्वर्ग सिधारे । गांधी जी ने जीवन भर ऐसा ही तप करके महात्मा शब्द को सार्थक किया । लोकमान्य तिलक और महामना मालवीय जैसे व्यक्तियों का चरित्र ही 'पण्डित' शब्द का वास्तविक प्रमाण है । गुरु कैसे होते हैं यह जानना हो तो गुरु गोविन्द सिंह आदि सिखों के दश गुरुओं का चरित्र पढ़ना चाहिये । शिष्य भी तब ऐसे ही होते थे । एकलव्य, अरुणि उद्दालक, धोम्य, नचिकेता आदि शिष्यों के चरित्र पढ़ने से अपनी संस्कृति पर सहज ही गर्व होने लगता है ।

भारतीय संस्कृति में पले हुए राजा कैसे होते थे इसका उदाहरण राजा जनक के जीवन से मिल सकता है । वे अपने गुजारे के लिए स्वयं खेती करते थे और राज्य कोष से एक पाई भी अपने लिए न लेकर उसे जनता के निमित्त ही खर्च करते थे । जनक को अपना खेत जोतते समय हल की नोक की उचाट से एक कन्या मिली थी । हल की नोंक को संस्कृत में सीता कहते हैं, इसलिए जनक ने अपने खेत में मिली हुई इस कन्या का नाम भी सीता रखा था । महर्षि विश्वामित्र को जब किसी यक्षीय (लोक हितकारी) कार्य के लिए धन की आवश्यकता पड़ी तो राजा हरिश्चन्द्र ने समस्त राज्य कोष ही दान नहीं कर दिया वरन् अपने तथा स्त्री-बच्चों के शरीर को बेच कर भी उसकी पूर्ति की और एक सच्चे राजा का आदर्श उपस्थित किया । छत्रपति शिवाजी का विशाल राज्य था उसे उन्होंने समर्थ गुरु रामदास के चरणों में अर्पित कर दिया था और स्वयं गुरु की आज्ञानुसार एक मुनीम की तरह इसका संचालन करते थे । भरत भी राम की चरण पादुकाओं को शासक मानकर स्वयं एक तुच्छ सेवक की भाँति १४ वर्ष राज्य चलाते रहे । धौलपुर की राजगद्दी के मालिक नृसिंह भगवान और मेवाड़ की राजगद्दी के मालिक भगवान एकलिंग जी माने जाते थे । राजा लोग अपने को उनका संचालक कहते थे । पीछे यद्यपि यह बात दिखावा मात्र रह गई, पर आरम्भ में त्याग भी उसी ऋंखला का एक प्रतीक अवश्य था । विक्रमादित्य प्रजा की वास्तविक स्थिति जानने के लिए वेष बदले प्रजाजनों के बीच घूमता रहता था । राणा प्रताप राजसुख की परवाह न करके जीवन भर स्वाधीनता संग्राम में धर्म युद्ध लड़ते रहे । महान् राजपुत्र दुर्गादास राठौर को लड़ाई में रोटी भी नसीब नहीं हो पाती थी तो वह घोड़े पर चढ़ा हुआ भाले की नोंक में छेद कर भुट्टे भून खाता था और स्वाधीनता संग्राम लड़ता रहता था । छत्रसाल की गाथा सर्वविदित है । ऐसे होते थे यहाँ के शासक। राज्यों के मन्त्री प्रधानमन्त्री कैसे होते थे उसका नमूना चाणक्य का जीवन है । यह विश्व का अभूतपूर्व कूटनीतिज्ञ एक फूँस की झोंपड़ी में गरीब लोगों की भाँति रहता था और राज्य कोष से अपने व्यय के लिये कुछ भी नहीं लेता था ।

धन सम्पत्ति जिनके पास होती थी वे उसे सात पीढ़ियों के लिए तिजोरी में बन्द नहीं करते थे वरन् तात्कालिक लोक हित के लिए उसे मुक्त हस्त से दान करते रहते थे । राजा कर्ण की दान वीरता प्रसिद्ध है । कहते हैं कि वे सवा मन स्वर्ण रोज दान करते थे । कृष्ण ने जब उनकी दान वीरता की परीक्षा कराई है तो उन्होंने अपनी जान जोखिम में डालकर कवच कुण्डल दिये हैं । मरते समय भी दाँत तोड़ कर उसमें लगा हुआ स्वर्ण दान करके याचकों को विमुख नहीं लौटने दिया है । मोरध्वज ने अपने पुत्र को दिया है । राजा वलि ने तीनों लोक का राज्य ही नहीं अपना शरीर भी उस समय लोक सेवा के प्रतीक समझे जाने वाले ब्राह्मण-वामन–को दान दिया है । जरूरतमन्दों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

के लिए लोग अपनी परसी थाली तक दे देते थे । भामा शाह ने अपनी करोड़ों की सम्पत्ति तिनके की तरह राणा प्रताप को दे डाली । राजा महेन्द्र प्रताप अपना राज-पाट राष्ट्रीय शिक्षा के लिये अर्पित करके भारतीय स्वाधीनता के लिये विदेश भागे थे । परशुराम ने २१ बार पृथ्वी का राज्य प्राप्त करके उसे दान दिया था । सुभाष बोस को वर्मा में भारतीयों ने अपना सर्वस्व स्वाधीनता संग्राम चलाने के लिए के लिए दिया था । उससे पूर्व श्री० बोस भारत की अपनी लाखों रुपये की सम्पत्ति को राष्ट्र के लिए सौंप कर उसको सार्वजनिक सम्पत्ति घोषित कर गये थे । सी० आर० दास अपनी बैरिस्ट्री में हजारों रुपया कमाते थे, वह सारा का सारा देकर और कई बार कर्ज लेकर भी सार्वजनिक आवश्यकताओं को पूर्ण करते थे । जमुनालाल बजाज ने अपने को गांधी जी का पाँचवाँ दत्तक पुत्र घोषित करके अपनी सारी सम्पत्ति महात्मा गाँधी के चरणों में अर्पित कर दी थी ।

ईश्वरचन्द विद्यासागर, राजा राममोहन राय, गोपाल कृष्ण गोखले, महादेव गोविन्द रानाडे, गणेश शंकर विद्यार्थी, श्रद्धानन्द, सर्वदानन्द, दर्शनानन्द, लेखराम, हैडगेवार आदि का जीवन जिस प्रकार से व्यतीत हुआ है उसमें भारतीय संस्कृति की झाँकी देखी जा सकती है । भूषण, गंग और चन्दवरदाई आदि चारणों ने अपनी ओजस्वी वाणी और कविता से अनेकों निष्प्राणों को प्राणवान बनाया । गंग इसी अपराध में हाथी के पैर के नीचे कुचलवाये गये , चन्द वरदाई ने गजनी में जो कष्ट सहा वह किसी से छिपा नहीं है । सन् ५७ से लेकर स्वाधीनता के हिंसात्मक संग्राम के क्रान्तिकारी वीर सैनिक और सन् २१ से लेकर सन् ४७ तक की अहिंसात्मक राज्य क्रान्ति में अगणित व्यक्तियों ने जो त्याग किये हैं, उनकी गाथाएं पढ़ते, सुनते हुए भुजाएँ फड़कने लगती हैं । पाकिस्तानी बर्बरता के सामने सिर न झुका कर अपने धर्म को अक्षुण्य रखने के लिये पंजाब और बंगाल के लाखों स्त्री-पुरुषों ने जो त्याग किये हैं उनका स्मरण करके चित्तौड़ की रानियों के जौहर और गुरु गोविन्दसिंह के कुछ पुत्रों की स्मृति ताजी हो जाती है ।

आस्तिकता की प्रतिष्ठापन के लिये घोर तप करने वाले लोगों की संख्या कम नहीं है । ध्रुव, प्रहलाद, सरीखे भक्त प्राचीनकाल में हुए हैं और मध्यकाल में सूर, तुलसी, रामकृष्ण परमहंस, रैदास, कबीर, दादू, रामानन्द, रामानुज, षट्कोपाचार्य, तिरुवल्लवर जैसे संतों की संख्या बहुत बड़ी है । अनीति के निवारण के लिए त्रेता में ऋषियों ने अपना खून निकाल-निकाल कर एक घड़ा भरा था और वह रक्त घट अन्त में राक्षसों के विध्वंस कराने के निमित्त—सीता जन्म—का हेतु बना था । इसी मार्ग पर यह आस्तिक सन्त अपनी साधना, भक्ति, ज्ञान, दीक्षा, आदि के द्वारा अनीति निवारण और धर्म विस्तार कार्य करते रहे हैं ।

विश्व मानव की सेवा के लिये भारतीय स्त्रियाँ भी पुरुषों से पीछे नहीं रही हैं । उनका कार्यक्षेत्र पुरुषों के समान विस्तृत क्षेत्र में न रह कर सीमित क्षेत्र में रहा है, इसलिये उन्हें यश उतना ही मिला है । केवल कुछ पतिव्रता स्त्रियों के कौतूहलपूर्ण चरित्रों का ही ग्रंथों में विस्तृत वर्णन आया है पर सच बात यह है कि भारतीय नारी ने प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों से अधिक कार्य किया है । उन्हीं की प्रेरणा और छत्रछाया से समर्थ होकर पुरुष जाति कुछ कर सकने में सफल हो सकी । इसलिये उनका नाम पुरुषों से पहले लिया जाता रहा है । सीताराम, राधेश्याम, गौरीशंकर, लक्ष्मीनारायण, उमामहेश, मायाब्रह्म, सावित्री सत्यवान् आदि नामों में पहला नाम नारी का है, दूसरा नर का है । कोई क्षेत्र ऐसा नहीं रहा है जिनमें भारतीय नारी ने महत्वपूर्ण भूमिका सम्पादन न की हो । वेदों के दृष्टा जिस प्रकार विश्वामित्र आदि ऋषि हुए हैं वैसे ही ऋषिकाएँ—स्त्रियाँ भी हुई हैं । ऋग्वेद १०।८५।१०—१३४।१०—३६।१०—४०।८—६१।१०—६५।५—२८।८—६१ आदि अनेकों सूत्रों की दृष्टा घोषा, गोधा, विश्वधारा, अपाला, जुहु, अदिति, सरमा, रोमशा, लोपा मुद्रा, शास्वती, सूर्या, सावित्री आदि ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ ही हैं । मनु की पुत्री इड़ा बड़ी प्रकाण्ड याज्ञिक थी । उसने अपने पिता मनु का यज्ञ कराया था । मैत्रेयी एक समय की अद्वितीय विद्वान थी । शाण्डिल्य की पुत्री श्रीमती ने अत्यन्त कठोर तप किये थे । महाभारत में शान्ति पर्व के अध्याय ३० में सुलभा नामक एक विदुषी का वर्णन है जिसने शास्त्रार्थ में राजा जनक जैसे ब्रह्मज्ञानी के छक्के छुड़ा दिये थे । भागवत में स्वधा

की पुत्री वयुना और धारिणी का वर्णन है वे विज्ञान विद्या में निष्णात् थीं । ब्रह्म वैवर्त पुराण में वर्णित वेदवती को चारों वेद सस्वर कण्ठाग्र थे । भारती देवी नामक महिला ने शंकराचार्य से ऐसा शास्त्रार्थ किया था कि बड़े-बड़े विद्वान भी अचम्भित रह गये थे । उसके प्रश्नों से निरुत्तर होकर शंकराचार्य को उत्तर देने के लिये कुछ मास की मोहलत माँगनी पड़ी थी ।

युद्ध कला प्रवीण कैकेयी को दशरथ जी लड़ाई में अपने साथ ले गये थे और जब रथ टूटने लगा तो कैकेयी ने ही उसका तात्कालिक उपचार करके पराजय से बचाया था । मदालसा, महामाया के चरित्र भी प्रसिद्ध हैं । चित्तौड़ की रानियाँ, बूँदी की रानी दुर्गावती, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, चांदबीबी आदि के पराक्रम से दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है । द्रोपदी, गान्धारी, कुन्ती आदि की असाधारण योग्यता को सुनते-सुनते तृप्ति नहीं होती । मीरा ने लोक लाज छोड़कर राज परिवार त्याग कर जनता जनार्दन के हृदयों में भक्ति का दिव्य रस ओत-प्रोत किया था । समाज सुधार और राजनैतिक क्षेत्रों में प्राण-प्रण से संलग्न महिलाएँ इस शताब्दी में भी कम नहीं हुई हैं ।

महापुरुषों और महान नारियों के दिव्य चरित्र से भारतीय इतिहास का पन्ना-पन्ना जगमगा रहा है । यहाँ घर-घर में ऐसे नर रत्न-पैदा होते रहे हैं जिनके उज्ज्वल चरित्र प्रकाश स्तम्भों की भाँति आज भी गिरी हुई मनुष्य जाति का पथ-प्रदर्शन करने के लिए जाज्वल्यवान हो रहे हैं । यह क्रम इस देश में केवल इसलिये चलता रहा है कि यहाँ ऋषि प्रणीत संस्कृति के प्रति लोगों की गम्भीर आस्था रही है । इन धर्म शास्त्रों, ऋषि प्रणालियों, आप्त वचनों का अनुगमन करने के लिये लोग श्रद्धापूर्वक हृदय और मस्तिष्क के द्वार खोले रहे हैं । आज भोगवादी भौतिक संस्कृति ने उस हमारी सनातन परम्परा से जनसाधारण को विमुख कर दिया है । फलस्वरूप सर्वत्र घोर अशान्ति, दारिद्र, रोग, शोक, भय, उत्पीड़न, तृष्णा और वासना से सभी के हृदय जर्जर हो रहे हैं ।

हमारा निश्चित विश्वास है कि भारतीय संस्कृति, ऋषि प्रणीत, रीति नीति-अपना करके ही मनुष्यता का उत्कर्ष हो सकता है, अन्यथा वर्तमान गतिविधि उसे सब प्रकार नष्ट करके ही छोड़ेगी । सत्य अमर है, श्रद्धा अमर है, धर्म अमर है, प्रेम अमर है, न्याय अमर है ये कभी मन्द भले ही हो जावें पर मर नहीं सकते । भारतीय संस्कृति भी अमर है, वह आज तमसाच्छन्न हो रही है पर कल अवश्य ही निर्मल होगी । हमारी अन्तरात्मा कहती है कि वह पुनः सजीव होगी और उसकी विजय दुन्दुभी फिर एक बार विश्व में बजेगी ।

हम उस भविष्य की प्रतीक्षा करते हैं जिसमें भारत में घर-घर अपने प्राचीन आदर्शों की भावना एवं मान्यता का विकास होगा । लोग आपस में ऐसे व्यवहार रखेंगे जैसे प्राचीन भारत में रखे जाते थे । माँ-बाप, भाई-बहिन, भाई-भाई, पिता-पुत्र, सास-बहू, स्त्री-पुरुष, स्वजन-सम्बंधी,बन्धु-बन्धुओं के बीच ऐसे प्रचुर एवं प्रेमपूर्ण सम्बन्ध होंगे जिन्हें देख कर देवता भी ईर्ष्या करें । पुरुष स्त्रियों के प्रति और स्त्रियाँ पुरुषों के प्रति अत्यन्त ही पवित्र भावनाएँ रखा करेंगे । व्यापारी और ग्राहक के बीच उचित मुनाफे पर ठीक वस्तुओं का ईमानदारी के साथ क्रय-विक्रय होगा । मजदूर पूरा काम करने में और मालिक पूरी मजदूरी देने में कसर न रखेंगे । आलस्य को, काम से जी चुराने को मानवीय अपराध समझा जायगा और हर आदमी पसीना बहाये बिना रोटी खाना पसन्द न करेगा । मनुष्य परस्पर सहिष्णु, सहनशील, एक-दूसरे की स्थिति और कठिनाई को समझने वाले, तथा उदार व्यवहार करने वाले होंगे । छल, चोरी, व्यभिचार, बेईमानी, दगाबाजी, विश्वासघात, अनीति, अन्याय आदि से लोग वैसी ही घृणा करेंगे जैसे अखाद्य और अभक्ष को भूखा रहने पर भी कोई नहीं खाता । संयम, सदाचार और नियमित जीवन के कारण सब लोग निरोग और दीर्घजीवी रहेंगे । सन्तोषी और परिश्रमी होने के कारण उन्हें किसी बात का घाटा न रहेगा । परस्पर स्नेह और सद्भावों के कारण आपसी व्यवहार स्वर्गीय सुख जैसे मधुर हो जायेंगे ।

यह बातें आज की स्थिति में तुलना करते हुये असम्भव-सी दीखती हैं पर वस्तुतः ये कुछ भी कठिन नहीं हैं । भारतीय संस्कृति के यह सहज फलितार्थ हैं । इस देश में लाखों-करोड़ों वर्षों तक लगातार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसा ही वातावरण स्थिर रहा है । हमारी यही विशेषताएँ हैं । यदि हम अनार्य संस्कृति की कीचड़ में से अपने पैर निकाल लें और आर्य संस्कृति की ओर कदम बढ़ावें तो उस प्राचीन इतिहास की पुनरावृत्ति होना बिलकुल सहज और स्वाभाविक है। इस भूमि में वह विशेषताएँ हैं कि वे सहज विकास करती रहें तो घर-घर में राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, भीम, अर्जुन, गांधी जवाहर पैदा हो सकते हैं और सब प्रकार की सुख सुविधाओं से परिपूर्ण होते हुए, हम भटके हुए संसार को सही रास्ते पर ला सकते हैं । आइए, अपने उसी प्राचीन गौरव को वापिस लाने के लिये हम सब मिल कर भागीरथ प्रयत्न करें ।

भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि

जिस प्रकार धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध आदि भारतीय धर्म के आदर्श किसी वर्ग विशेष के लिये नहीं वरन् सम्पूर्ण मनुष्य जाति के परम कल्याण के लिये हैं, उसी प्रकार जीवन-यापन की भारतीय पद्धति भी किसी सम्प्रदाय विशेष से बँधी हुई नहीं है वरन् मनोविज्ञान और भौतिक विज्ञान के ठोस सिद्धान्तों की कसौटी पर कसने के पश्चात् ही विनिर्मित हुई है । हिन्दू धर्म के आचार-विचार ऐसे ही हैं । उनका निर्माण मनुष्य जीवन की सुख सुविधायें बढ़ाने के लिये विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से ही किया गया है । आज उन नियमों में कुछ विकृतियाँ आ गई हैं जिन्हें सुधार कर उसको मूल रूप में उपस्थित करने की आवश्यकता है । साथ ही उन तथ्यों को समझने और समझाने की व्यवस्था न रहने के कारण उन पर लोगों की जो अरुचि एवं उपेक्षा वृत्ति उत्पन्न हो रही है उसे ठीक करने की आवश्यकता है । यदि हिन्दू जीवनयापन पद्धति के रहस्यों को जनसाधारण के समक्ष वैज्ञानिक एवं बुद्धिसंगत रीति से तर्क, प्रमाण, उदाहरण के साथ उपस्थित किया जाय तो निस्सन्देह उन महान् तथ्यों से हम सब फिर पहले की भाँति लाभान्वित हो सकते हैं ।

वर्णाश्रम धर्म को ही लीजिये यह सामाजिक सुव्यवस्था की सर्वोत्तम पद्धति है । हर व्यक्ति दूसरों की सुख सुविधा का अधिक और अपनी तृष्णा एवं सुखेच्छा का कम ध्यान रखे तभी समाज में प्रेम, सहयोग, सद्भाव, सुव्यवस्था और सुख समृद्धि सम्भव है । यदि हर कोई अपने अपने मतलब को प्रधानता देने लगे और दूसरों की सुविधा का विचार न करे तो समाज में घोर क्लेश और संघर्ष उत्पन्न हो जाता है । इस अव्यवस्था से बचने के लिये चार वर्ण बनाये गये । यह कहा गया कि जो द्विज है वस्तुतः वही मनुष्य है । द्विजत्व से रहित व्यक्ति तो घृणास्पद हैं । द्विजत्व का अर्थ है दूसरा जन्म । एक जन्म जो माता पिता के रज वीर्य से सभी का होता है वह शूद्र जन्म है । जब मनुष्य गायत्री मातारूपी सद्बुद्धि ऋतम्भरा प्रज्ञा तथा पितारूपी संयम और त्याग को अपना अभिभावक मान लेता है तब वह द्विज बनता है । यज्ञोपवीत, वेदारम्भ, गुरुदीक्षा नाम से द्विजत्व ग्रहण करने का समारोह संस्कार धूम-धाम के साथ होता है, ताकि वह व्यक्ति उस प्रतिज्ञा को, लक्ष्य की, वस्तुस्थिति को भली प्रकार समझे । द्विज का कर्त्तव्य है कि जीवन धारण योग्य वस्तुएँ अपने लिये लेकर शेष योग्यता, सामर्थ्य, शक्ति, क्रिया और भावना को समाज की भलाई के लिये लगावे ।

ब्राह्मण अत्यन्त तप और त्यागपूर्ण जीवन जीता है । अपना उज्ज्वल आदर्श ऐसा रखता है जिससे अन्य वर्ण उसका अनुकरण करके अधिक संयमी जीवन बितावें । वह अपना सारा समय सद्ज्ञान के संग्रह में लगाता है और उस ज्ञान को जनता में बिना मूल्य वितरण करता है । इस प्रकार हर आदमी को ज्ञान शोध का महान् श्रम न करते हुए भी उसका लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाता है । वेदों में सन्निहित अनेकों विद्याओं की शोध, उनका प्रकटीकरण, प्रयोग, उपदेश, आदि के द्वारा यह वर्ग जनता की भारी सेवा करने में संलग्न रहता है । दूसरा वर्ण क्षत्रिय है । इसका काम है समाज में जो आसुरी तत्व उभरें उन्हें न उभरने दें । चोर, डाकू, लुटेरे, हत्यारे, बेईमान गुण्डे, व्यभिचारी, अन्यायी तत्वों के आतंक से प्रायः हर कोई अलग-अलग होकर आत्मरक्षा नहीं कर सकता । इसलिये यह वर्ण संगठित रूप से अपनी शक्ति को बढ़ाता है । और उसका उपयोग केवल अनीति के निवारण और न्याय की रक्षा में करता है । इस प्रकार जनता को दुष्टता के आतंक से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छुटकारा पाकर निर्भयतापूर्वक अपने-अपने कामों में लगने का अवसर मिलता है यह क्षत्रिय लोग समाज हित के लिए अपनी जान को हर वक्त हथेली पर रखते हैं और ब्राह्मण के समान ही त्यागी, संयमी उदार तथा दयार्द्र भावनाओं से ओत-प्रोत होते हैं । जिस प्रकार ब्राह्मण अज्ञान का, क्षत्रिय अशक्ति का निवारण करने के लिये अपना जीवन उत्सर्ग करते हैं उसी प्रकार वैश्य समाज के अनेक अभावों को दूर करके उनकी आवश्यकताओं का सामान जुटाने में संलग्न रहते हैं । कृषि, गो रक्षा, वाणिज्य के द्वारा जनता में अन्न, दूध, घी, वस्त्र, औषधि, धातु आदि पदार्थों को जन जन के लिए उपलब्ध कराने में प्रयत्नशील रहते हैं । शुद्ध, उत्तम, उपयोगी वस्तुएँ उचित मूल्य पर जुटाते रहना इनका कार्यक्रम होता है । इस रीति से यदि कुछ धन संग्रह भी हो जाय तो उसे समाज की आवश्यकता के लिए मुक्त हस्त से दान करके अपने को ब्राह्मण क्षत्रिय से किसी भी प्रकार कम त्यागी सिद्ध नहीं होने देते ।

इस प्रकार जो लोग संसार में दुःखों के तीन प्रधान कारण अज्ञान, अशक्ति और अभाव को दूर करने के लिए–व्यक्तिगत सुख सुविधाओं को तिलांजलि देकर–संलग्न हैं वे द्विज माने गये हैं । ऐसे लोग जिस समाज में भरे हुए हों वह देश निस्सन्देह देवताओं वर्ग होता है । जो लोग उपर्युक्त प्रकार के त्याग न कर सके वे शूद्र ठहराये गये । उस पर भी यह प्रतिबन्ध रहा कि वे अपनी शारीरिक, मानसिक शक्तियों को केवल समाज की सेवा में ही लगावें । सेवा ही अपना धर्म मानें । इन नियमों से बँधा हुआ चातुर्वर्ण निस्सन्देह समाज रचना का उत्तम आधार था । आज वह आधार टूट रहा है । लोग अपने कर्त्तव्यों को भूल कर केवल जन्म मात्र से जाति मानने लगे हैं और व्यर्थ ही एक-दूसरे से ऊँच-नीच बनते हैं । इन विकृतियों को सुधार करके यदि प्राचीनकाल जैसा वर्ण-धर्म, प्रतिष्ठापित हो जाय तो निश्चय ही सब लोग प्रसन्नता दायक स्थिति का रसास्वादन कर सकते हैं । अपने-अपने व्यवसाय को लोग पैतृक परम्परा के साथ पकड़े रहें तो उसमें आसानी से बहुत चतुरता एवं सफलता प्राप्त करके अपनी उत्कृष्टता एवं विशेषज्ञता से राष्ट्र को लाभ पहुँचा सकते हैं । हर पीढ़ी पर पेशा बदलना एक सामाजिक अव्यवस्था का कारण ही बनता है ।

आश्रम-धर्म भी इसी प्रकार महत्वपूर्ण हैं । यौवन के समुचित विकास तक ब्रह्मचर्य, वीर्य-रक्षा होने से शरीर का रक्त माँस नसें, हड्डियाँ परिपुष्ट होकर रोग निवारिणी और दीर्घजीवन दायिनी शक्ति उत्पन्न हो जाती है । बल, बुद्धि विद्या, ओज एवं मानसिक और आत्मिक विकास का पर्याप्त समय मिल जाता है तथा भावी संतति उन्नतिशील होती है । गृहस्थ धर्म में प्रवेश करके नव निर्माण में अपना महत्वपूर्ण पार्ट अदा करना भी आवश्यक है । इसके उपरान्त जब आयु ढलने लगे नवीन वीर्य का उत्पन्न होना बन्द हो जाय तो वानप्रस्थ लेकर, घर की जिम्मेदारी बड़े बच्चों को सौंपनी चाहिये और अपनी देख रेख में ही उन्हें सुयोग्य बना देना चाहिये । साथ ही जीवन के अन्तिम भाग में परमार्थ साधना के लिये तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिये । जीवन के चतुर्थ अध्याय में पारिवारिक जिम्मेदारियों से छुटकारा पाकर अपने परिपक्व ज्ञान और अनुभव को जनता में फैलाने के लिये तथा अपनी वासनाओं को परिमार्जित करने के लिए संयास ले लेना चाहिए । आयु का यह विभाजन कितना वास्तविक, बुद्धिमत्तापूर्ण एवं उपयोगी है इसका अनुभव वे ही कर सकते हैं जो इसे क्रिया रूप में लाते हैं । आज तो जब तक वासना का उदय नहीं होता तब से लेकर मृत्यु पर्यन्त मनुष्य वासना और तृष्णा में ही कण्ठ तक डूबा रहता है । यह प्रवृत्ति स्वास्थ्य, सुसन्तति, समाज व्यवस्था तीनों ही दृष्टियों से हानिकारक है । यदि यह विकृति दूर हो जाय तो मनुष्य जीवन सब प्रकार व्यवस्थित एवं सुविधाजनक बन सकता है ।

कृतज्ञता हिन्दू धर्म का प्रधान आचार है । जो भी जड़ चेतन हमारे साथ में उपकार करते हैं उसके प्रति कृतज्ञ होना, अपनी कृतज्ञता की भावना की किसी-न-किसी रूप में समारोहपूर्वक अभिव्यक्ति करके अपने मन पर उस प्रकार के संस्कारों को सुदृढ़ बनाना, हमारे, समाज की एक प्रधान विशेषता है । तुलसी, पीपल आंवला, वट आदि पेड़, गौ, बैल, घोड़ा, कुत्ता आदि पशु, चील, कौए आदि पक्षी ही नहीं पूजे जाते, निर्जीव वस्तुओं में चूल्हा, चक्की, कुआ घूरा, कुम्हार का चाक, हल मूसल, कलम दवात, रुई,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पट्टी, बही, तलवार, तराजू आदि वस्तुओं की पूजा समय-समय पर होती है । इसका तात्पर्य यह है कि जिन भी जीवों या वस्तुओं से हमें सहायता मिलती है उनके लिए हम कृतज्ञ होते हैं, उनका उपकार मानते हैं । यह भावना यदि स्थिरतापूर्वक मन में जम जावे तो मनुष्य अपने को समाज का ऋणी समझे और उस ऋण को चुकाने के लिये, प्रत्युपकार के लिए उत्तम कार्य ही करता रहे । जीवित गुरुजनों की सेवा सुश्रूषा, चरण वन्दन तथा स्वर्गीय पितरों का श्राद्ध तर्पण, सन्तानों की कृतज्ञता के प्रतीक हैं । इनसे एक ऐसी भावना की पुष्टि होती है जिससे नई सन्ततियाँ पितृभक्त बनती हैं । आज तो इनकी चिन्ह पूजा मात्र रह गई है, पर यदि पूजा का वास्तविक रहस्य समझकर भावनापूर्वक उपयोग करें तो वह पार्थिव पूजा मनुष्य के अन्तःकरण को कृतज्ञता की दिव्य भावना से अभिप्रेत करके उसे निरन्तर संसार का प्रत्युपकार करने के लिये प्रेरित कर सकती है ।

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास, अत्येष्टि आदि १६ संस्कारों द्वारा समय-समय पर एक विशेष प्रभाव मनुष्य पर डाला जाता है । वेदमन्त्र की शक्ति द्वारा, तपस्वी वेदपाठी विद्वान अपनी व्यक्तिगत आत्म-शक्ति का प्रयोग करते हुए यज्ञ एवं देवाव्हान द्वारा उस व्यक्ति पर एक सूक्ष्म प्रभाव डालते हैं जिसका संस्कार होता है । इस प्रभाव के कारण उसकी मनोभूमि में कुछ विशेष तत्वों का बीज वपन होता है और वह बीज कालान्तर में परिपुष्ट होकर उस व्यक्ति को महापुरुष बनाने के लिए अग्रसर करता है । सोलह संस्कारों में से एक-एक की महत्ता ऐसी अद्‌भुत है कि यदि आर्य-प्रणाली से संस्कार कराने वाले और करने वाले मिल जावें तो निश्चय ही गीली मिट्टी की तरह मनुष्य को कुछ-से-कुछ ढाला जा सकता है । संस्कारों का शास्त्रोक्त विधान ऐसी ही रहस्यमय शक्तियों एवं संभावनाओं से भरा हुआ है । इन संस्कारों के समय जो प्रियजन, परिजन उपस्थित होते हैं उनकी उपस्थिति से उस समय दी गई शिक्षाओं को चरितार्थ करने का जो संकल्प यजमान लेता है उसका भी मन पर प्रभाव पड़ता है और कई बार तो वह स्वयं ही नहीं उपस्थित जनसमूह भी सन्मार्गगामी होता है । साधारण समय की शिक्षाओं की अपेक्षा संस्कार समारोह के समय दी हुई शिक्षाएँ अधिक प्रभावपूर्ण होती हैं । यदि कोई पुरोहित ठीक प्रकार विवाह संस्कार करा सके तो प्रतिज्ञापूर्वक यह कहा जा सकता है कि इनका दाम्पत्य जीवन सदा सुखमय एवं प्रेमपूर्ण रहेगा । आज तो टकापन्थी पण्डित और अश्रद्धालु यजमान इन संस्कारों को एक समारोह मात्र मानकर कुछ मनोरंजन या लकीर पीटना मात्र कर लेते हैं । पर यदि इनमें प्राचीनकाल जैसा सुधार हो सके तो मनोभूमि को उत्तम दिशा में विनिर्मित करने का एक महत्वपूर्ण कार्य हो सकता है । हर वर्ष जन्म तिथि मान कर हर व्यक्ति अपने विगत जीवन की आलोचना तथा भावी जीवन के निर्माण का विशेष उपकरण प्रस्तुत कर सकता है ।

व्रत त्यौहारों के आयोजन एक प्रकार से समाज के सामूहिक संस्कार हैं । जिस प्रकार किसी व्यक्ति के समय-समय पर सोलह संस्कार किये जाते हैं और उस पर व्यक्तिगत रूप से उत्तम भावनाओं की छाप डाली जाती है उसी प्रकार सामूहिक जन-समाज के मनों पर जमते रहने वाली विकृतियों को मांज धोकर शुद्ध करने एवं नवीन संस्कार जमाने के लिये त्यौहार मनाये जाते हैं । श्रावणी, कृष्णाष्टमी, अनन्त चतुर्दशी, पितृ पक्ष नव दुर्गा, विजया दशमी, धन तेरस, दिवाली, गोवर्धन, भैया दूज, गोपाष्टमी, देवोत्थान, शरद पूर्णिमा, मार्गश्री, मकर संक्रान्ति, बसन्त पंचमी, शिवरात्रि, होली, धूलि, सम्वत्सर, रामनवमी, गंगा दशहरा, देव शयनी, व्यास पूर्णिमा, हरियाली तीज आदि त्यौहारों को यदि प्राचीनकाल की भांति सामूहिक रूप से मनाया जाय तथा इनसे सम्बन्धित, कथाओं, शिक्षाओं सन्देशों, विधानों का भली प्रकार विवेचन किया जाय तो इनके आधार पर समाज में उत्पन्न होती रहने वाली विकृतियाँ इन उत्सवों के भावावेश पूर्ण प्रवाह में उसी प्रकार बह जा सकती हैं, जैसे आँधी में तिनके उड़ जाते हैं । जन-समाज के सामूहिक विचार प्रवाह को सही दिशा में प्रवाहित करने के लिये त्यौहारों के आयोजन बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं । आज केवल पकवान मिठाई खाने और उत्सव मनाने तक ही यह त्यौहार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सीमित हैं पर उनको प्राचीन रीति से मनाया जाय तो निस्सन्देह समाज का जीर्णोद्धार हो सकता है ।

खान-पान की पवित्रता में मानवीय विद्युत शक्ति के चमत्कार का भारी तत्व-ज्ञान छिपा पड़ा है । यह बात विज्ञान सम्मत है कि भोजन बनाने या परोसने वाले व्यक्ति की मनोवृत्तियों, गुण कर्म स्वभावों की छाप उस खाद्य पदार्थ पर पड़ती है और जो कोई खाता है उस पर वे संस्कार प्रभाव डालते हैं । इसलिये भोजन देने वाले, बनाने वाले, परोसने वाले, व्यक्ति के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेना और उपयुक्त व्यक्तियों को ही इस कार्य के लिये स्वीकार करना उचित है । माँस, मदिरा, अण्डे, मछली, मिर्च, मसाले जैसे उत्तेजक और तमोगुणी पदार्थ बुद्धि को आसुरी बनाते हैं इसलिये उन्हें अभक्ष माना गया है । भोजन की पवित्रता, सात्विकता का पूरा ध्यान रखना धर्म सम्मत इसलिये माना गया है कि इसी के द्वारा हमारा रस रक्त का, मन बुद्धि का आचार-विचार का निर्माण होता है । यह साम्प्रदायिकता का नहीं भोजन विज्ञान का प्रश्न है । इस सम्बंध में आज जो धाँधली बरती जा रही है उसमें सुधार होने की आवश्यकता है ।

हमारी वेश-भूषा, पोशाक इस देश के जलवायु तथा शील के उपयुक्त है । हलके, ढीले, कम, सादे, सफेद कपड़े भारत जैसे उष्ण प्रदेश तथा सतोगुणी प्रकृति के लिये उचित हैं । हर पोशाक के साथ हजारों वर्षों के भावों के साथ एक संस्कार भी संबद्ध हो जाता है । जो जैसी पोशाक पहनता है वह अज्ञात रूप से उस पोशाक के साथ छिपी हुई संस्कृति को भी अपनाता है । धोती-कुर्ता पहनने वाले के मन में सदा भारतीयता का भाव रहेगा पर अंग्रेजी पोशाक धारण किये हुये व्यक्ति अनायास ही अंग्रेजी मान्यताओं और विचारधाराओं को अपनाने लगेगा । योरोपीय ठण्डे देशों की पोशाक वहाँ के जलवायु तथा उन लोगों की कार्यप्रणाली के उपयुक्त हो सकती है पर भारतीय यदि अपने को हीन और योरोपियनों को महान् मानकर उनकी पोशाकों को धारण करें तो अपने मन की ओर उनकी उपेक्षा एवं तिरस्कार वृत्ति बढ़ेगी । साथ ही विदेशीपन से उनकी मनोभूमि भरने लगेगी । जातीय गौरव को भूल जाना एक प्रकार से सांस्कृतिक पराधीनता स्वीकार करना है । उसके परिणाम भी बौद्धिक क्षेत्र में वैसे ही होते हैं जैसे आर्थिक क्षेत्र में राजनैतिक गुलामी के होते हैं । लड़के और लड़कियाँ आज योरोपीयन पोशाक की ओर बहुत आकर्षित हो रहे हैं । फलस्वरूप उनके आचार-विचार भी वैसे ही बनते जा रहे हैं । भारतीयता में छिपी हुई महानता की रक्षा के लिये भाषा, वेश, और भाव की रक्षा करना आवश्यक है, उसके बिना हम अपनी सभी विशेषताओं एवं परम्पराओं से धीरे-धीरे रहित होते चले जावेंगे ।

तीर्थों में प्राचीनकाल के महान् व्यक्तियों ऋषियों, उनके कार्यों तथा वहाँ की भूमिगत विशेषताओं के कारण सिद्ध पीठ जैसे तत्व पाये जाते थे । वहाँ अनेक महापुरुषों का सत्संग लाभ होता था । जलवायु उत्तम थी । वहाँ के निवासी यज्ञ आदि के द्वारा उस प्रदेश के शान्तिदायक वायुमण्डल को बढ़ाते रहते थे । लोग पैदल यात्रा करके देशाटन से ज्ञान और स्वास्थ्य की वृद्धि करते थे और तीर्थ स्थानों में पहुँचकर वहाँ के वातावरण तथा सत्संग से शान्ति लाभ करते थे । आज वैसा वातावरण नहीं रहा । धूर्तता, और लूट-खसूट का बोलबाला है पर निराशा की कोई बात नहीं । तथ्य मजबूत हैं । मनस्वी लोग उनमें परिवर्तन करके वहाँ पुनः प्राचीन वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं । पण्डे, पुजारी, पुरोहित, साधु, भिखारी आदि की ५६ लाख मुफ्तखोर सेना हमारे देश के लिये भार बनी हुई है और नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ तथा बुराई फैलाती है । इसलिये इनके प्रति जनसाधारण में दुर्भावनाएँ उत्पन्न होना उचित ही है । पर प्राचीनकाल में यह लोग ऐसे न होते थे । वे राष्ट्र के लिये घोर परिश्रम करते थे और अपना सर्वस्व होम कर रोटी मात्र पर गुजारा करते हुए अपने महान् ज्ञान से जनता को लाभ पहुँचाते थे । उसी प्राणी को जाग्रत करने का अब समय आ गया है ।

पेटू, निठल्ले अयोग्य लोगों को सामाजिक बहिष्कार या राजदण्ड द्वारा इस पवित्र कार्य से हटा दिया जाय और केवल सच्चे त्यागी, सन्त, लोकसेवी लोग ही इस मार्ग में रहें तो यह साधू संस्था राष्ट्र की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, शिक्षा सम्बन्धी, स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को हल करने का बहुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारी कार्य कर सकती है । गौ पालन, गौ संवर्धन, सहयोग समितियाँ, वनश्री की वृद्धि, सार्वजनिक श्रमदान, साक्षरता प्रचार आदि अनेक राष्ट्र निर्माण के कार्य जिन्हें सरकार नहीं कर पा रही है, उन्हें यह जनसेवी, पुरोहितों की सेना अपने प्रभाव एवं उदाहरण से जनता द्वारा आसानी से पूरा करा सकती है । सन्त पुरोहितों की पद्धति बुरी नहीं है । प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने जनहित के महत्वपूर्ण प्रयोजनों को पूरा करने के लिए ही इनका प्रचलन किया था । मन्दिर–देवालयों में करोड़ों रुपयों की चल–अचल सम्पत्ति जमा है । ऐसी सम्पत्ति धर्म प्रचार के लिए भक्त लोग ईश्वरार्पण किया करते थे, उस धन से अनेकों धार्मिक योजनाएँ पूरी की जाती थीं, पर आज तो वह केवल मूर्तियों के राज भोग, श्रृंगार में या मठाधीशों के मौज मजे में खर्च होता है । यह धर्म–धन यदि धर्म प्रसार के लिये ही खर्च होने लगे तो सांस्कृतिक पुनरुत्थान का बहुत कार्य हो सकता है ।

प्राचीनकाल में विद्वान लोग एकत्रित होकर उस समय परिस्थितियों के अनुसार यह निर्णय करते थे कि इन दिनों किस प्रकार के धार्मिक कार्यक्रमों की आवश्यकता है । धर्म साधन का उद्देश्य आत्मा की उन्नति और सामाजिक सुव्यवस्था ही है । चूँकि समय–समय पर परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं, अनेक नई विकृतियाँ और समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं । उनका समाधान करने के लिये मनीषी लोग स्वयं उस प्रकार के कार्यक्रम में प्रवृत्त होते हैं और जनता को उसी मार्ग पर अग्रसर करते हैं। आज उस प्रकार की व्यवस्था लुप्त होती जा रही है। प्राचीनकाल की परिस्थितियों के अनुसार कार्यक्रम जनता के सामने रखे गये थे पर वे अब वैसा वातावरण न रहने के कारण निरर्थक हो गये हैं और नई समस्याएँ उत्पन्न हो जाने के कारण नये कार्यक्रम आवश्यक हो गये हैं । परन्तु वे मनीषी अब दिखाई नहीं देते जो देश, काल, पात्र, समय, परिस्थिति और आवश्यकता का ध्यान रखते हुये तदनुसार धार्मिक भावना का पथ प्रदर्शन कर सकें । आज तो "लकीर का फकीर" बनने की कहावत ही चरितार्थ हो रही है । आज अनेक रीति–रिवाज, विधान, प्रयोजन आदि में भारी हेर–फेर किये जाने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है ताकि धर्म भावना का युग–धर्म के साथ मेल बिठाया जा सके । संस्कृति निर्जीव नहीं है, जो सदा अचल रहे । वह गतिशील, प्रवाहशील, चैतन्य तत्त्वों की भांति अपने में आवश्यक हेर–फेर करती रहती है । आज के समय के अनुकूल हेर–फेर करने वाले तत्त्वज्ञानी, सूक्ष्मदर्शी मनीषियों को इस दिशा में बहुत काम करने की आवश्यकता है ।

यों मनुष्य अन्य पशुओं की अपेक्षा शारीरिक दृष्टि से काफी पीछे है पर उसकी बौद्धिक विशेषता ऐसी है जिसने इसे सृष्टि का मुकुटमणि बना दिया । यह मनःक्षेत्र जब जितना ऊर्ध्वगामी या अधोगामी हो जाता है तब उतनी ही मात्रा में वह मनुष्य उतना ही पशु, मनुष्य एवं देवता के रूप में बनता और बदलता रहता है । जिस व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के विचार ऊँचे रहते हैं वह बढ़ता है, सुदृढ़ रहता है, फलता–फूलता है और सुख शांति प्राप्त करता है । इसके विपरीत जहाँ विचार क्षेत्र में संकीर्णता, स्वार्थपरता, विलासिता आदि दुष्प्रवृत्तियों का समावेश हुआ वहीं सर्वतोमुखी अधःपतन प्रारम्भ हो जाता है और दुःख–शोक की घटाएँ घुमड़ने लगती हैं ।

भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए जो प्रधान कार्य हाथ में लेना है वह यह है कि लोगों को कुविचारों और दुष्प्रवृत्तियों की हानि तथा सद्विचारों एवं सत्प्रवृत्तियों के लाभ समझाने के लिये जनता में घुल–मिलकर भारी कार्य किया जाय । भारत में सफल राजनैतिक क्रान्ति हो चुकी, आर्थिक क्रान्ति के क्षेत्र में काफी काम हो रहा है । केवल सामाजिक और भावना क्षेत्र ऐसा ही है जो सबमें महत्वपूर्ण होते हुए भी सबमें पिछड़ा हुआ है । इस क्षेत्र में काम करने के लिए लोगों में दिलचस्पी पैदा करने एवं सुव्यवस्थित योजना देने की दिशा में गायत्री परिवार ने सुव्यवस्थित कदम उठाया है ।

गायत्री परिवार के तीन कार्यक्रम हैं– (१) बड़ी संख्या में प्रभावशाली, उच्च चरित्र के धर्म प्रचारक तैयार करना और उनके द्वारा जनता को सुलझे हुए विचार देना, सभा–सम्मेलनों, पर्व–उत्सवों, यज्ञों एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों का आयोजन करना । वाणी की शक्ति से जनमानस की सुप्त सद्भावनायें जगाना ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२) ऐसे सस्ते साहित्य का निर्माण करना जो बौद्धिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं चारित्रिक क्रान्ति की आवश्यकता पूरी करे । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पत्र-पत्रिकाएँ निकालना, वर्तमान पत्रों में लेख छपाना, सस्ती पुस्तकें तैयार करना, बौद्धिक क्रान्ति करने वाले ज्ञान मन्दिरों (पुस्तकालयों) की व्यापक श्रंखला फैलाना, भारी मात्रा में वितरण साहित्य, पर्चे, पोस्टर, आदर्शवाक्य, चित्र आदि तैयार करना एवं उन्हें लाखों की संख्या में बँटवाना, लेखनी द्वारा हो सकने वाला सभी प्रचार कार्य करना ।

(३) जनता के साथ घुल-मिलकर उसकी कठिनाइयों को सरल बनाने में व्यावहारिक सहायता देना । चिकित्सालय, विद्यालय, सेवा समितियाँ, कुरीति निवारक योजनाएँ, पारिवारिक सत्संग, जन्मदिन, यज्ञोपवीत, पर्व-त्यौहार आदि मनाने के आकर्षक कार्यक्रम, कुरीतियों को, दुर्व्यसनों को तोड़ने के लिए प्रतिज्ञाएँ लेना, जहाँ संभव हो वहाँ दुष्कर्मों को रोकने के लिए प्रतिरोधात्मक कदम उठाना ।

इन तीन कार्यक्रमों की पूर्ति के लिए सुविधा और परिस्थितियों के अनुसार अनेकों योजनाएँ बनती और कार्य रूप से परिणित होती रहेंगी । बौद्धिक क्रान्ति का यह त्रिसूत्री कार्यक्रम ठोस आधार पर आगे बढ़े, इसके लिए गायत्री परिवार की २००० शाखाओं और ६० हजार सदस्यों को इस बात की प्रेरणा की गई है कि वे ज्ञान प्रसार को, ज्ञान यज्ञ को सबसे श्रेष्ठ सत्कर्म मानें । इसमें ज्ञान रूपी ईश्वर की प्रत्यक्ष पूजा एवं प्रसन्नता अनुभव करें । सत् साहित्य का स्वाध्याय भी अपने नित्य जप के समान आवश्यक समझें । तीर्थ यात्रा एवं देवस्थानों की परिक्रमा के समान ही ज्ञान प्रचार के लिए की हुई धर्म फेरी का पुण्य मानें । नित्य नियमित रूप से, जब भी सुविधा हो, छुट्टी के दिन या जिस प्रकार भी बन पड़े, अपना थोड़ा-बहुत समय लोगों को सन्मार्ग पर लगाने के लिए ज्ञान सेवा के लिए अवश्य लगाते रहें । इसी प्रकार प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है कि वह नित्य ही कुछ दान अपने क्षेत्र में ज्ञान प्रसार करने के लिए करता रहे, चाहे वह एक पैसा रोज ही क्यों न हो। गायत्री परिवार का एक भी सदस्य ऐसा न हो जिसकी कमाई में से कुछ न कुछ दान नित्य ही ज्ञान-यज्ञ के लिए न हो । भिक्षुक को एक मुट्ठी अन्न देने की तरह घरों में धर्म घट रखकर भी यह दान प्रथा चलाई जा सकती है । किसी भी प्रकार हो यह ज्ञान-दान करने में कोई सदस्य कृपणता न दिखावे । कुछ-न-कुछ नियमित रूप से अवश्य करे । इस पैसे से सत्साहित्य मँगाना, अपने घर में ज्ञान मन्दिर (पुस्तकालय) की स्थापना करना, प्रचार साहित्य वितरण करना आदि कार्य होते रहने चाहिए । अपने घर की पुस्तकें पड़ौसियों को पढ़ने देते रहना और वापिस लाना, सदस्यों का धर्म कर्तव्य है । देखने में यह कार्य छोटे हैं तो भी राष्ट्र की बौद्धिक क्रान्ति का महान कार्य इसी प्रकृया में सम्पन्न होगा । समय, श्रम, सहयोग, देकर ही सांस्कृतिक पुनरुत्थान योजना को आगे बढ़ाया जा सकता है । प्रत्येक धर्म प्रेमी को गायत्री उपासना की परिवार पूरी प्रेरणा देगा ।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान योजना को सफल बनाने के लिए, अतीत के खोये हुए गौरव को प्राप्त करने के लिए, संसार में सच्ची सुख-शान्ति की स्थापना करने के लिए ऐसे लोगों की भारी आवश्यकता है जो निस्वार्थ भाव से, उत्साह और परिश्रम के साथ जनता का पथ प्रदर्शन करने, धर्म एवं ज्ञान की सेवा करने के लिए तत्पर हों । जिनके ऊपर पारिवारिक जिम्मेदारियाँ नहीं आई हैं, या जो पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त हो चुके हैं तथा जिनमें समाज सेवा की क्षमता है, संस्कृति की भारी सेवा कर सकते हैं । ऐसे नर-नारियों का गायत्री तपोभूमि सादर आह्वान करती है । उनकी शिक्षा एवं आवश्यक निर्वाह की व्यवस्था प्रसन्नतापूर्वक की जायेगी । गृहस्थ एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों से बँधे हुए लोग भी अपना थोड़ा समय नित्य देकर बहुत काम कर सकते हैं ।

गायत्री ज्ञान मन्दिरों की स्थापना

गायत्री तपोभूमि के आदर्शों के आधार पर छोटे–बड़े गायत्री–मन्दिर जगह–जगह स्थापित होने चाहिये । गरीब लोग भी थोड़े–थोड़े पैसे इकट्ठे करके, श्रमदान करके कच्चे–पक्के मन्दिर बना सकते हैं । जहाँ मूर्तियों की सुविधा न हो वहाँ बड़े

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चित्र सुन्दर चौकी पर सुसज्जित रीति से स्थापित कर लिये जाँय। सच पूछा जायं तो मूर्तियों की अपेक्षा चित्र स्थापना अधिक सुविधाजनक है, क्योंकि उनमें नियमित भोग, प्रसाद एवं पूजा–अर्चा का कठिन प्रतिबन्ध नहीं है । ऐसे मन्दिरों से धर्म–सेवा की, समाज–सेवा की अनेकों सत्प्रवृत्तियाँ संचालित की जा सकती हैं । जहाँ नया मन्दिर बनाना सम्भव न हो वहाँ एक कमरा माँग कर या किराये पर लेकर गायत्री–मन्दिर के रूप में सुसज्जित किया जा सकता है ।

सामाजिक जीवन में आध्यात्मिकता एवं धर्म–भावना को प्रवेश करने के लिये जिस प्रकार सार्वजनिक देव–मन्दिरों की आवश्यकता है उसी प्रकार पारिवारिक जीवन में सद्भावना और सत्प्रवृत्तियों को सुरक्षित रखने तथा बढ़ाने के लिए पारिवारिक देव–मन्दिरों की आवश्यकता होती है । भारतीय संस्कृति से प्रेम रखने वाले सद् गृहस्थों के घरों में अभी भी जहाँ–तहाँ छोटी देव पूजा की स्थापना दिखाई देती है । जिन घरों में नियमित पूजा, उपासना होती है, इसके लिये नियत कक्ष बने होते हैं, वहाँ अपेक्षाकृत बुराइयाँ घटती और अच्छाइयाँ बढ़ती जाती हैं। पाप, द्वेष, दुराचार, रोग–शोक, दुख–दारिद्रय घटते हैं और श्री, समृद्धि, उन्नति, सफलता एवं प्रसन्नता के कारण बढ़ते हैं । उपासना से उत्पन्न होने वाले शक्ति कम्पनों से ऐसा परिणाम होना सहज एवं स्वाभाविक है ।

उपासना–गृहों में स्वाध्याय की व्यवस्था अनिवार्य है। गायत्री सद्बुद्धि की देवी है । सद्बुद्धि का प्रधान मार्ग स्वाध्याय है । जप, ध्यान, पूजा, वन्दन के अतिरिक्त हर धर्म–प्रेमी को नियमित रूप से स्वाध्याय भी करना चाहिये । बुद्धि की देवी केवल रोली, अक्षत, धूप, दीप से प्रसन्न नहीं हो सकती, उसे प्रसन्न करने के लिए स्वाध्याय आवश्यक है । इसलिये प्रत्येक उपासना–गृह के साथ सत्साहित्य की एक अलमारी या सन्दूक भी अवश्य रहनी चाहिये । स्वाध्याय के लिये विचारोत्तेजक एवं जीवन की, समाज की गुत्थियों पर प्रकाश डालने वाला साहित्य होना चाहिए ।

जहाँ हजारों रुपये की लागात से बड़े–बड़े मन्दिर बनते हैं, वहाँ थोड़ी–सी लागात से बनने वाले यह छोटे ज्ञान–मन्दिर देखने में मामूली से प्रतीत होंगे पर निश्चय ही इनके द्वारा कार्य इतना बड़ा होगा, जितना अनेकों मन्दिर नहीं कर पाते । घर में पूजा उपासना होती रहे इतना ही नहीं, वरन् अपने समीपवर्ती क्षेत्र में यह ज्ञान–मन्दिर सद्बुद्धि का प्रकाश भी करते रहेंगे और इन्हीं के आधार पर लाखों–करोड़ों जनता को सद्विचारों की, सत्कार्यों की, सन्मार्ग की, आत्म–कल्याण की, नैतिकता एवं मानवता की एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान की शिक्षा दे सकना सम्भव होगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवन काल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युगनिर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्रनिर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़ पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद कांग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रंगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका-मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोबा जी के चले जाने के बाद अस्तित्त्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि. संवत् २०६८ में जन्में राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराम मत्त कहलाने वाले, आचार्य श्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रांति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माता जी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका-अपनी लेखनी से लिखी ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उनने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाब लाये कोई क्रांति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्व दर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में संपन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरु सत्ता को देखकर त्याग करने की यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उनने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेघ के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से संपन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक आँवल खेड़ा से अपनी जन्मभूमि से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी 12 वर्ष पूर्व आरंभ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंत: स्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हवेली कहा जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जोकि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ बनाई गई। १९५३ में एवं क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों- प्रज्ञा संस्थानों भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों-चरणपीठों का महत्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्य पूर्ण था। ***परम पूज्य गुरुदेव की महत्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ, इस प्रकार हैं-***

(१) **युगतीर्थ** आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शांतिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष जन्मा संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन ब्राह्म मुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर १९११ के दिन आती थी। एक श्री मंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित-पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थी। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुआँ जिसे पूरे गाँव का एक मात्र मीठे जल वाला कुआँ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीर धारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशा धारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इंटर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धन राशि द्वारा विनिर्मित्त है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ-एवं कन्या इंटर कालेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा एवं एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित संस्कारवान आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव निर्माण की सांस्कृतिक-भावनात्मक क्रांति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीया मण्डी, मथुरा में स्थित हैं। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रांतिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरंभ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तंभ व अन्यान्य

लेखों की पंक्तियों के माध्यम से संपन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतस्तल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुखी, तनाव ग्रसित व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परम वंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी टेण्ड्रिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजा घर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में 1942-43 में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ सहस्र कुण्डीयज्ञ की आधार शिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परम वंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं संपन्न हुआ। जन सम्मेलनों छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन विस्तार डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परम वंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू० गुरुदेव की साधना स्थली व प्रातः काल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन संपन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा संपन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्य श्री ने युग निर्माण योजना के शत सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युगनिर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरंभ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युगनिर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शांतिकुंज, हरिद्वार- ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने,

सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया । इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने 24 कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़ गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था । पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्त्तन सत्र जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े । यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का तांता लगा रहता है । पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं ।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्त ऋषियों की मूर्त्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को संपन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार संपन्न होते हैं। इस बीच परम वंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ संपन्न करना आरम्भ रखा । देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया । इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा ।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक अकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थ स्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया । यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी । स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है ।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परम-पूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवी स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७९ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था । वर्तमान शांतिकुंज-गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्त्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फल-श्रुतियों सहित स्थापित हैं । द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्त्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये । इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है । यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों-जैव विद्युत आदि पर पड़ा यह देखा जाता है । विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं । तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित हैं, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं । यहाँ प्राय: ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं । यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता ।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीला संदोह रचकर चली गयी । प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान २४००० से अधिक प्रज्ञा मण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जायें तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है । ❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org